॥ ॐ ॥

श्री श्रीहर्षप्रणीतं

खण्डनखण्डखाद्यम्

सराजहंसशारदाव्याख्यया समलङ्कृतम्

-प्रोफेसर सुधांशुशेखर शास्त्री

॥ ॐ ॥

श्री श्रीहर्षप्रणीतं

खण्डनखण्डखाद्यम्

सराजहंसशारदाव्याख्यया समलङ्कृतम्

-प्रोफेसर सुधांशुशेखर शास्त्री

ॐ

कवितार्किकचक्रचूड़ामणिश्रीश्रीहर्षप्रणीतं

खण्डनखण्डखाद्यम्

नाम

अनिर्वचनीयतासर्वस्वम्

यतिकुलचक्रचूड़ामणि-

श्रीमत्स्वामिशङ्करचैतन्यभारतीविरचितया

सराजहंसशारदाख्यव्याख्यया समलंकृतम्

स्वामिश्रीशिवशङ्करचैतन्यभारतीपूज्यपादशिष्य-

श्रीसुधांशुशेखरशास्त्रिविरचित-

भारतीभाषानुवादेन संयुतम्

प्रथमो भागः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयसंस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायस्य

संकायप्रमुखेन

तत्रत्यवैदिकदर्शनविभागाध्यक्षचरेण

प्रोफेसर श्रीसुधांशुशेखरशास्त्रिणा

सम्पादितं प्रकाशितञ्च

भारतीग्रन्थमालायाः द्वितीयं पुष्पम्

सम्पादकः प्रकाशकश्च

प्रोफेसर श्रीसुधांशुशेखर शास्त्री
भारतीभवनम्
सी. के. ३४/३९, लाहौरी टोला
वाराणसी - २२१००१ (उ.प्र.)

© पुनर्मुद्रणाधिकारोऽस्य
सम्पादकानुमत्यायत्तः

प्रथमसंस्करणम् : पञ्चशतसंख्यकानि
संवत् २०५६ आ.कृ. गुरुपूर्णिमाबुधवासरः
(२८/७/९९)

मूल्यम्   पञ्चशतरुप्यकाणि (रु. ५००.००)

प्राप्तिस्थानम्

सम्पादकनिवासस्थानम्
वाराणसीस्थापणेभ्योऽपि प्राप्यन्ते ।

मुद्रक :

महेश कुमार
डिवाइन प्रिन्टर्स
सोनारपुरा, वाराणसी
फोन : ३२१३७१

ॐ

निवेदनम्

इह पारमिव सार्वपथीनवैदुष्याकूपारस्य, जीवातुरिव निर्विशेषचिदद्वयवादस्य, निकष इव मतिप्रकर्षस्य, शरणमिवापदि निखिलतन्त्रस्य, फलितमिव पुण्यं मुमुक्षुनिवहस्य, पूर्णावतार इवापरो, द्वैतासुरजिघांसया भगवतः परमपुरुषस्य समुल्लसति कोऽप्यनिर्वचनीयतावादः । यः किल शैशवे निवसन्नपि स्वसदनेषु गोपैरिव तार्किकैरपरिचितमहामहिमा मुनिजनैरिव जैनैराराधितः । भिन्दता भेददानवाननायिषत यौवनदिनानि कियन्तिचित्सौगतसौधेषु येन । प्रौढिमानमास्पृशति च यो यौवनेऽङ्गनाभिरिव श्रुतिभिर्विलसितुमाससाद चिदानन्दोदधिवलयितं ब्रह्माद्वयवादिपुरम् । यस्य च किरीटीव श्रीश्रीहर्षः । समसेवि च यो विश्ववन्दितचरणयुगलेन विकलितसकलकलङ्केन शङ्करेण भक्तिभरितान्तरेण ।

तमिममधिकृत्य भावुककुलमौलिमण्डनायितेन श्रीशारदाप्रसादनासादितशेमुषीकेण त्रिभुवनप्रथितवैदुषीकेण कवितार्किकचक्रप्रपूजनीयपादपीठेन सर्वज्ञकल्पेनानुपद्रुतध्रुवधामाधिरूढेण श्रीश्रीहर्षेण प्राणायि खण्डनात्मनः खण्डखाद्यस्यावाप्त्युपायतामुपयन्नयमन्वर्थनामा निबन्धः । चिराय चायमात्मोचितमाचरन् तदनुविधायिनीञ्च परिश्रान्तिमनुभवन् तत्त्वप्रदीपिकया चन्द्रिकाञ्चितयाऽद्वैतसिद्ध्या बहुशो विरचितपरिचर्योऽपि भवितव्यस्यैव गौरवादम्लानमानसतामनासादयन्नव्यसरणिष्वनुत्साहतामिवावहन् द्रुहिण इव प्रीतया त्रिपुरया परया स्वमनोविनोदमादधतीं शारदां कामप्यवाप्य स्वातन्त्र्यवैभवभरैः पूर्णाहन्तामिवामृशन् विकसितचेताः समजनीति मन्ये । अस्याश्च दोषः श्रद्धालवस्य दोषाः, गुणास्तु त्रिगुणेश्वरेश्वराया गुणः । वयम्पुनरत्र के वराका इति न जानीमः । क्व निबन्धस्यास्य गम्भीता, क्वच मामकी मलीमसमतिः । किं वेह ब्रुवे, अस्योपक्रियायै प्रवृत्तिरियमित्यतिसाहसिक्यम्, अपक्रियायै पुनरेषेति मृषाभाषा, नोभयथापीत्यनिर्वचनीयता, चन्द्रिकामन्वञ्चतीयमित्यतिगौरवम्, नव्यतार्किकरीतीरपहस्तयतीत्यौद्धत्यम्, उपजीव्यावमानिनीति शिष्टसरणिविरुद्धम्, निर्दोषैषेति विश्वसीमोल्लङ्घनम्, निर्गुणेयमित्यपत्रपत्वम् । तदास्तामिह मौनितैव श्रेयसितरेति। धीराः ! न परं प्रचारणमेवापि तु निर्माणमपि निबन्धस्येदृशो भवादृशां दृशि दयार्द्रायामेवायतत इति कृतमतिविततया वाचा ।

अस्य च प्रत्यक्षखण्डन्तोऽयं भागो भवतां दृष्टिपथमवतरतु । भूमिकां पुनरस्यानिर्वाच्यवादाभिधां सौगतशैवाद्वैतादिसमालोचनपरां द्वितीयभागाङ्गभावमनुभवन्तीमुपहरिष्याम इति सम्भाव्यते । इह च दृष्टिदोषाद्वा, कृतेऽपि संशोधने स्थानान्तरे स्थापनीयस्यापरत्र प्राग्वदेव वा स्थापनेनाक्षरयोजकानां प्रमादाद्वा, क्वचित्क्वचिदलब्धावस्थितिमशुद्धिरिति नेदमपूर्वमिति क्षन्तव्यम्, शुद्धिपत्रं तु निवेशितमेवेति निवेदयन्नुपरमति –

ललिताघट्टस्थश्रीराजराजेश्वरीमन्दिरे
वाराणस्याम् ।

सतामनुचरः
शङ्करचैतन्यभारती

॥ ॐ ॥

भूमिका

मूलाधारामनाधारामाधाराधेयचेतनाम् ।
चेत्यचक्रपरां शान्तां तां परां समुपास्महे ॥

"अध्यात्मविद्या विद्यानाम्" श्रीजगद्गुरु का यह उद्घोष समस्त विद्याओं में अध्यात्मविद्या के प्रामुख्य को सिद्ध करता है । अध्यात्मशब्द की व्युत्पत्ति आत्मविषयक विद्या को अध्यात्मविद्या कहती है । इस परिधि के अन्तर्गत सभी दर्शनों का समावेश होता है । सभी दर्शन मुख्यतया आत्मा के ही प्रतिपादक हैं । आत्मतत्त्व के प्रतिपादन में ही दर्शनों का दर्शनत्व है । भले ही आत्मा के किसी भी रूपके प्रतिपादक हो, दर्शनपदव्यपदेश्य होते हैं। सभी दर्शनों का मुख्य प्रतिपाद्य तो आत्मा ही है । अत एव मुख्यतम आत्मस्वरूप के प्रतिपादक वेदान्त के प्रति सभी दर्शन सोपानपरम्परया उपयोगी सिद्ध होते हैं । अतएव –

न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक् ।
उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता ॥
न ग्राह्यभेदमवधूय धियोऽस्तिवृत्ति,
तद्बाधने बलिनि वेदनये जयश्रीः ।
नो चेदनित्यमिदमीदृशमेव विश्वं,
तथ्यं तथागतमतस्य तु कोऽवकाशः ।

इत्यादि नैयायिक उदयनाचार्य ने एवं

इत्याह नास्तिक्यनिराकरिष्णुरात्मास्तितीतां भाष्यकृदत्र युक्त्या ।
दृढत्वमेतद्विषयः प्रबोधः प्रयाति वेदान्तनिषेवणेन ॥

इत्यादि मीमांसकशिरोमणि भट्टपादने वेदान्त में ही अपने दर्शनों की विश्रान्ति कहा है। वेदान्तदर्शन ही साक्षात् आत्मस्वरूप के प्रतिपादक हैं, यह सर्वविदित है । अतएव वेदान्तदर्शन ही दर्शनीयतमं दर्शनम्" तथा सभी दर्शनों का मुकुटमणि कहा गया है ।

दर्शनानि समस्तानि शोभन्ते तावदेव हि ।
वेदान्तदर्शनं यावन्न पश्यामः शिरोमणिम् ॥

वेदान्तदर्शन का मूलरूप वेद ही है । "काण्डत्रयात्मको वेदः" इस उक्ति के अनुसार वेद के कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड यह तीन काण्ड प्रसिद्ध हैं । ज्ञान की विशेष

विवेचना करने के कारण वेद का उपनिषद् भाग ज्ञानकाण्ड कहलाते हैं। भारतीय दर्शन के मूल सिद्धान्त इन उपनिषदों में उपवर्णित है। यद्यपि समस्तवेद का मुख्य तात्पर्य अद्वितीय परमार्थतत्त्व के ही प्रतिपादन में है। कर्मादि के प्रधान होने पर भी संहितादि में अध्यात्मविषयक विपुल रहस्यों का उद्घाटन उपलब्ध होता है। तथापि मुख्यरूप से अध्यात्मविषयक महत्वपूर्ण समस्याओं का विशदविवेचन एवं समाधान उपनिषदों में ही किया गया है। अतएव उपनिषद् ही वेदान्त का मूलस्वरूप है, उपनिषद् को ही वेदान्त कहते हैं। इस नामकरण के दो कारण हैं – एक तो यह है कि उपनिषद् प्रायः वेद के अन्तिम भाग में है। वेदस्य अन्तः = अन्तिमो भाग इस व्युत्पत्ति के अनुसार वेदान्त नाम अन्वर्थ है। दूसरा कारण यह है कि – वेदान्तशब्द में अन्तःशब्द निर्णीतार्थ का वाचक है। वेदप्रतिपाद्य सिद्धान्त का नाम ही वेदान्त है। उपनिषदों में वही तत्त्व उपवर्णित है। अतएव उपनिषद् को ब्रह्मविद्या या अध्यात्मविद्या भी कहते हैं।

उप तथा नि उपसर्गक सद्धातु से क्विप प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द निष्पन्न होता है। सद्धातु के तीन अर्थ होते हैं। विशरण = नाश होना, गति = प्राप्ति होना, एवं अवसादन= शिथिल होना। जिस विद्या के परिशीलन से दृष्टानुश्रविक विषयों से वितृष्ण मुमुक्षुजनों की संसार-बीजभूत अविद्या नष्ट हो जाती है, जो विद्या उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है, तथ जिसके अनुशीलन से समस्त सांसारिक जन्ममरणादि दुःखों का सर्वथा शिथिलीकरण उच्छेदोन्मुखता हो जाती है वही अध्यात्मविद्या उपनिषद् कही जाती है। कठोपनिषद् भाष्यारम्भ में श्रीमद्भागवत्पाद के उक्त कथन के अनुसार उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या है और गौण अर्थ ब्रह्म विद्याप्रतिपादक ग्रन्थविशेष है।

यह ब्रह्मविद्या समस्त विद्याओं की प्रतिष्ठा आधारभूत है। मुण्डक में कहा है – "स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह" (मु० १।१)। अतएव समस्त विद्याओं का अन्तिम पर्यवसान ब्रह्मविद्या में ही होता है। उपनिषदों के लिए वेदान्त शब्द का प्रयोग अनेक उपनिषदों में उपलब्ध होता है – "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" (मु० ३।२।५) "वेदान्ते परमं गुह्यम्" (श्वे० ६।२२) वेदान्ते च प्रतिष्ठितः" (म०ना० १०।८) इत्यादि।

कालक्रम से सामर्थ्य के शिथिल होने पर उपनिषद् वाक्यार्थमें संशय होने लगा। मुमुक्षुजनों के उद्धार हेतु संशय निवृत्त कर उपनिषद् प्रतिपाद्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करना आवश्यक था। एतदर्थ मुमुक्षुभाग्यविधाता भगवान् बादरायण ने ब्रह्मसूत्रों की रचना की। जिनकी संख्या शङ्करसम्प्रदाय के अनुसार ५५५ (पाँच सौ पचपन) है। भाष्यटीकाकार श्री आनन्दगिरि एवं श्रीधर स्वामी के अनुसार इन्हीं सूत्रों का उल्लेख भगवान् श्रीकृष्ण ने "ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमंद्भिर्विनिश्चितैः" (गी. १३।४) इस पद्यांश में किया है।

पारमेश्वरा ज्ञानशक्ति अवतारभूत भगवान् बादरायण की –

अचतुराननो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचन शम्भू भगवान् बादरायणः॥ इत्यादि

विशेषताओं के साथ इन ब्रह्मसूत्रों की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि – इन्हीं सूत्रों के आधार पर वेदान्तदर्शन में अनेक सम्प्रदाय प्रस्फुटित हुए हैं । उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् बादरायण के सूत्रों पर अनेक आचार्यों ने अपने-अपने मत से भाष्य की रचना की है। जिनमें काल क्रम से विभिन्न वादों की प्रतिष्ठा की गई । इनमें श्रीमद्भगवतपाद का अद्वैतवाद, श्रीरामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीनिम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, श्रीमाध्वका द्वैतवाद, तथा श्री वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद आदि अनेकवाद सुप्रसिद्ध है । किन्तु इन सभी में अद्वैतवाद अर्थात् ब्रह्मात्मैक्यवाद जो तत्त्वमस्यादि चतुर्विध महावाक्य "विद्वान्नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दीव्यम्" (मु० ३।२।८) ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति" (मु० ३।२।९) यो यो देवानां प्रत्यबुध्यते स एव तदभवत् (बृ० १।४।१०) "परमेव ब्रह्म भवति य एवंवेद" इत्यादि शतशः श्रुतिवाक्यों के द्वारा एवं "आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च (ब्र. ४।१।३) इत्यादि ब्रह्मसूत्र के द्वारा बज्र के समान सुदृढतया सिद्ध है, अतिप्राचीन होते हुए भी घोर अन्धकार को ध्वस्त करते हुए भगवान् भास्कर के समान अपनी अतुलनीय विशेषताओं के कारण नवीनतम होकर आज भी देदिप्यमान है ।

अद्वैतसिद्धान्त में चिन्मात्रस्वरूप निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्म ही परमार्थ सत् है । वह नित्य शुद्धबुद्ध स्वभाव स्वतःसिद्ध है । वही व्यापक होने से आत्मा कहा जाता है । आत्मा का स्वतःसिद्धत्व शाङ्करभाष्य में प्रतिपादित है– "आत्मा तु प्रमाणादिव्यवहाराश्रयत्वात्प्रागेव प्रमाणादिव्यवहारात् सिद्ध्यति । न चेदृशस्य निराकरणं सम्भवति । आगन्तुकं हि वस्तु निराक्रियते न स्वरूपम् । य एव हि निराकर्ता तदेव तस्य स्वरूपम्, न ह्यग्नेरौष्ण्यमग्निना निराक्रियते। (शा०भा० २।३।७) "सर्वोह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति, न नाहमस्मीति । यदि हि नात्मास्तित्वप्रसिद्धिः स्यात् सर्वो लोको नाहमस्मीति प्रतीयात् । आत्मा च ब्रह्म" (शा०भा० १।१।१) इति ।

ईदृशब्रह्मातिरिक्त नानाविध भोक्तृभोक्तव्यादि समस्त प्रपञ्च माया अपरपर्याय अविद्या के द्वारा कल्पित है । माया या अविद्या रूप उपाधिवशात् हि उसी ब्रह्म में जीवेश्वरादिव्यवहार भी सम्पन्न होते हैं ।

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका या ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते ॥

विवेकचडामणि के इस पद्य में अविद्या को परमेश्वर की शक्ति अनादि त्रिगुणात्मक कार्यानुमेय तथा समस्त जगत् की कारण कहा है । "अनादिभावरूपं यदविज्ञानेने विलीयते" कहकर चित्सुखाचार्य ने उसे अनादिभावरूप एवं ज्ञान निवर्त्य कहा है । साथ ही इसे –

सन्नाप्यसन्नाऽप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नेत्युभयात्मिका नो ।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिकानो महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा ॥ (वि०चू० १११)

अविद्याया अविद्यात्वमिदमेव तु लक्षणम् ।
यत् प्रमाणासहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत् ॥

प्रत्येकं सदसत्त्वाभ्यां विचारपदवीं न यत्
गाहते तदनिर्वाच्यमाहुर्वेदान्तवेदिनः ॥

इत्यादि अनेक वचन अनिर्वचनीयता को सिद्ध करते हैं । इस अविद्या के सदसद्विलक्षणरूप अनिर्वचनीय होने से इसके द्वारा कल्पित समस्त प्रपञ्च भी अनिर्वचनीय है । ब्रह्म का विवर्त एवं अविद्या रूप मूलाज्ञान का परिणाम है । अतएव मिथ्या है । ब्रह्मसाक्षात्कार के द्वारा मूलाज्ञान की निवृत्ति होने पर ब्रह्म में आरोपित जीव भाव भी निवृत्त हो जाता है । वेदान्तसिद्धान्त के अनुसार मोक्षदशा में किञ्चित नवीन प्रापणीय पदार्थ मोक्ष नहीं है, अपितु मिथ्याभूत अनिर्वचनीय मूलाज्ञान रूप उपाधि के निवृत्त होने पर आत्मा के यथार्थ स्वरूप से अर्थात् ब्रह्मात्मना स्थित होना ही मोक्ष है । ''परमेव ब्रह्म भवति य एवं वेद'' (नृ० ५) ''अभयं वै ब्रह्म भवति य एवं वेद'' (बृ० ४।४।२५) इत्यादि श्रुतिवाक्य आत्मस्वरूपविश्रान्तिरूप मोक्ष का वर्णन करते हैं । ईदृश आत्मस्वरूपमोक्ष को प्राप्त करने के लिए आत्मव्यतिरिक्त समस्त प्रपञ्च में मिथ्यात्वभावना अनिर्वचनीयत्वभावना का दृढ होना परमावश्यक है । आत्मव्यतिरिक्त से विरत हुए बिना पूर्णरूपेण आत्मविश्रान्ति प्राप्त नहीं होती । अतएव –

अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः ।
निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः ॥

इत्यादि वार्तिक वचन अविद्यानिवृत्ति का ही मोक्ष रूप से उल्लेख करते हैं । वैराग्योत्पादन पूर्वक आत्मातिरिक्त समस्त प्रपञ्च से विरत करने के लिए ही वेदान्त ग्रन्थों में अनिर्वचनीयतावाद का दृढता से प्रतिपादन किया गया है । वेदान्त दर्शन (शाङ्कर) का मायावाद एकमात्र अनिर्वचनीयता पर ही निर्भर है । प्रतिपक्षी उसी का खण्डन करते हैं । यद्यपि मायावाद-अनिर्वचनीयतावाद केवल शङ्कर सम्प्रदाय से ही प्रचलित नहीं है अपितु पुराणों में भी इसका उल्लेख मिलता है । यथा –

न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः
एतद विलक्षणा काचिद् वस्तुभूतास्ति सर्वदा । (देवी भागवत)
नासद्रूपा न सद्रूपा मायानैवोभयात्मिका
अनिर्वाच्या ततोज्ञेया मिथ्याभूतासनातनी ।

(सूर्य पुराण – सां.भा. १-२६ से उद्धृत)

तथापि शाङ्करवेदान्त द्वारा जैसा यह प्रचारित एवं प्रसारित है अन्य के द्वारा नहीं है । अनिर्वचनीयतावाद के साधक वेदान्त ग्रन्थों में श्री श्रीहर्षविरचित 'खण्डनखण्डखाद्य' का प्रमुख स्थान है ।

ग्रन्थकार श्रीहर्ष का समय : ग्रन्थकार श्रीहर्ष के समय के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों

के विभिन्न मत उपलब्ध होते हैं। अच्युत ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित खण्डन भूमिका में भी इस सम्बन्ध में अनेक मतों का उल्लेख किया गया है। यहाँ इसका विशेष विस्तार न करते हुए इतना ही कहना पर्याप्त है कि खण्डनखण्डखाद्य में श्रीहर्ष ने उदयनाचार्यरचित लक्षणावली का खण्डन किया है। एवं नव्यन्याय के आविष्कर्ता गंगेशोपाध्याय ने 'एतेन खण्डनकार मतमपास्तम्' कहते हुए खण्डनकार के खण्डन का प्रयास किया है।

इसी प्रकार श्रीउदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि में –

शंकाचेदनुमास्त्येव न चेच्छंका ततस्तराम्
व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिर्मतः।

इस पद्य के द्वारा प्रत्यक्षैकप्रमाणवादी चार्वाक का खण्डन कर अनुमान प्रमाण को सिद्ध किया है, किन्तु श्रीहर्ष अनुमानप्रकरण में उक्त पद्य के ठीक विपरीत पद्य के द्वारा उदयनोक्ति का खण्डन प्रस्तुत करते हैं –

व्याघातो यदिशङ्कास्ति नचेच्छङ्का ततस्तराम्।
व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिः कुतः॥

पुनः गंगेशोपाध्याय ने चिन्तामणि के तर्क प्रकरण में इसी पद्य को उद्धृत करते हुए खण्डनकार का खण्डन प्रस्तुत किया है।

उदयनाचार्य का समय ९८४ ई० प्रायः निश्चित किया गया है एवं गंगेशोपाध्याय का समय १२०० ई० सिद्ध माना गया है। इस प्रकार पौर्वापर्य का विचार करने पर इन दोनों का मध्यकाल ही श्रीहर्ष का काल मानना उचित प्रतीत होता है। अपि च ऐतिहासिकों ने खण्डनोक्त 'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' इस वाक्य को उद्धृत करते हुए कान्यकुब्जेश्वराब्द से जयचन्द को स्वीकार किया है। श्रीचाण्डू पंडित ने भी नैषधदीपिका में इसका उल्लेख किया है एवं इसी सन्दर्भ में ११८६ ई० का एक दानपत्र भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार जयचन्द का कार्यकाल भी श्रीहर्ष का काल ठहरता है। जयचन्द का समय ११६२ ई० से ११९३ के बीच माना गया है। अतः यही समय श्रीहर्ष का भी निश्चित होता है।

खण्डनकार श्रीहर्ष के देश के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। प्रथम यह है कि –

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरसुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।

इस पद्यांश में श्रीहर्ष के पिता का नाम 'श्रीहीर' और माता 'मामल्लदेवी' दिया गया है। इस प्रकार के नाम या तो दक्षिण भारत में हो सकते हैं या कश्मीर में। अतः इन दोनों में से ही कोई एक श्रीहर्ष का देश रहना चाहिए।

कश्मीर के सम्बन्ध के लिए एक किंवदन्ति यह भी सुनी जाती है कि – काव्यप्रकाशकार मम्मट श्रीहर्ष के मातुल लगते थे । जो श्रीहर्ष के वैदुष्य से प्रायः क्षुब्ध रहते थे और उन्हीं के आदेश से उनकी पत्नी ने बालक बुद्धिमान श्रीहर्ष को बुद्धिमान्द्यसम्पादनार्थ एकमास पर्यन्त रात्रि में माष (उड़दी) एवं दधि खिलाया । किन्तु श्रीशारदाप्रसादलब्धमतिमान् श्रीहर्ष ने एकमासानन्तर मातुल (मम्मट) के कुशलक्षेमादि पूछे जाने पर – 'अशेषशेमुषीनाशमाषमश्नामि मातुल' इत्यादि सुमधुर ललित पंक्तियों के द्वारा उत्तर दिया । इस वृत्तान्त के अनुसार मम्मट के काश्मीरी होने से श्रीहर्ष का भी देश कश्मीर ही निश्चित होता है ।

द्वितीय मत यह है कि श्रीहर्ष कन्नौज के वास्तव्य थे । क्योंकि – 'ताम्बुलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्' के अनुसार श्रीहर्ष कान्यकुब्जेश्वरमहाराजा जयचन्द के राजसभा के राज्यपण्डित सिद्ध होते हैं और यह सभा कन्नौज में थी । अतः श्रीहर्ष भी वहीं रहते थे, वहीं उनका वास्तव्य देश था । इस प्रकार श्रीहर्ष का देश कन्नौज ही सिद्ध होता है ।

तृतीय मत का आशय यह है कि 'तथा च श्रीवाराणस्यां मुक्तिक्षेत्रेऽनुभूतपरब्रह्मस्वरूपो गङ्गादर्शनादिना धर्मकर्ममध्यमध्यासीनः' नैषधदीपिकारम्भस्थित श्रीचाण्डू पण्डित के इस कथन के एवं उक्त दानपत्र के अनुसार वाराणसी ही श्रीहर्ष की निवास भूमि सिद्ध होती है।

दमयन्ती के स्वयंवर सभा में काशीराज का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने भी वाराणसी का अतीव अनुराग से वर्णन किया है । श्रीहर्ष कहते हैं –

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां तत्रस्थितिर्मखभुजां भुवनेनिवासः ।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एवमुक्तिः स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक् ॥

(नैषध ११/११६)

'वाराणसी पृथ्वी लोक से परे है, उसमें रहना देवलोक में वास करना है । अतएव उस तीर्थ में मरने वालों को मुक्ति ही मिलती है अन्यथा मुक्ति के अतिरिक्त स्वर्ग से बड़ा कौन पद है जो अधिक आनन्ददायक हो ।'

स्वयंवर के पश्चात् प्रसन्न देवगण के द्वारा नल दमयन्ती को वाराणसी के समीप निवास करने के वरदान का वर्णन भी श्रीहर्ष ने किया है –

तवोपवाराणसि नामचिह्नं वासायपारेति परं पुरास्ति ।
निर्वातुमिच्छोरपि तत्र भैमीसंभोगसङ्कोचभियाधिकाशि ॥

(नैषध १४/१७५)

इस वरदान की कल्पना से यह अनुमान किया जा सकता है कि श्रीहर्ष वाराणसी में रहते थे या वाराणसी के समीप किसी गाँव में रहते थे । आज भी वाराणसी में अस्सी नाले के उस पार नरोत्तमपुर नरियापुर (नलपुर) तथा नैषढा (नैषधपुर) ग्रामत्रय विद्यमान है ।

रही बात – 'ताम्बूलद्वयं' इत्यादि कथन की तो उस विषय में यह कहा जा सकता है कि उस समय कान्यकुब्जेश्वर स्वयं भी काशी में ही निवास करते थे, या काशी का प्रशासन भी उन्हीं के अधीन हो । अतएव – विद्यासागर (खण्डनटीकाकार) ने भी 'कान्यकुब्जेश्वरः काशिराजा' कहा है । उक्त दानपत्र से भी यह स्पष्ट होता है । अतः श्रीहर्ष का वास्तव्य देश काशी-वाराणसी ही था, यह मानना उचित प्रतीत होता है । अतएव राजशेखर ने अपने प्रबन्धकोष में 'पूर्वस्यां वाराणस्याम्' कहा है । अथवा यह कल्पना भी की जा सकती है कि श्रीहर्ष भ्रमणशील विद्वान् थे । अतः मम्मट के मातुल होने की बात यदि सत्य है तो श्रीहर्ष का जन्मस्थान कश्मीर होगा । भ्रमणबेला में कन्नौज पहुँचे तो वहाँ की राजसभा में सम्मानित होकर कन्नौज में ही कुछ समय निवास किये हों और पश्चात् उक्त नृपति के साथ या एकाकी ही पुण्य क्षेत्र श्री वाराणसी आकर बस गये हों तथा शेष जीवन यहीं व्यतीत किये हों । क्योंकि उक्त पद्य के द्वारा उनका वाराणसी के साथ गाढ़ स्नेह भासित होता है ।

सुना जाता है कि श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर का किसी राजसभा में एक न्यायशास्त्र निष्णात विशिष्ट विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ हुआ था । जिसमें उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा । उसी पराभव से अत्यन्त दुःखित हो श्रीहीर ने श्रीजगन्माता की आराधना किया । किन्तु दैववशात् श्रीहर्ष के पञ्चवर्षीय बाल्यावस्था काल में ही श्रीहीर दिवंगत हो गये । शरीर परित्याग के पूर्व ही श्रीहीर ने अपनी पत्नी यानी श्रीहर्ष की माता को या स्वयं श्रीहर्ष को ही सविधि श्रीचिन्तामणिमन्त्र का उपदेश दे दिया था । श्रीहीर के दिवंगत होने के पश्चात् माता श्रीमामल्लदेवी ने उपनयनसंस्कारसंस्कृत बालक श्रीहर्ष के द्वारा उक्त महामंत्र के द्वारा श्री श्रीजगन्माता का आराधन कराया । आराधन से प्रसन्न श्री जगन्माता ने श्रीहर्ष को दर्शन दिया तथा अनुग्रह किया । उसके कृपाकटाक्ष से श्रीहर्ष बाल्यावस्था में सर्वशास्त्रपारंगत और असाधारण पाण्डित्यसम्पन्न हो गये और अपने पिता के पराभवकर्त्ताओं को परास्त कर राजसभा में सम्मान प्राप्त किया ।

कुछ लोग श्रीहर्ष को अपने पिता के पराभवकर्ता नैयायिक श्रीउदयनाचार्य का तिरस्कर्ता बताते हैं तथा श्रीउदयनाचार्य के प्रति श्रीहर्ष की अकाट्य तर्कयुक्त –

किंगवि गोत्वमथागवि गोत्वं यदि गविगोत्वं मयि नहि तत्त्वम् ।
अगवि च गोत्वं यदि भवदिष्टं भवतु भवत्यपि सम्प्रतिगोत्वम्' ॥

इस उक्ति को उद्धृत करते हैं किन्तु ऐतिहासिक प्रबल प्रमाणों से श्रीउदयनाचार्य एवं श्रीहर्ष दोनों के काल में लगभग पौने दो सौ वर्षों का अंतर सिद्ध होने से उक्त कथन विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता । यहाँ यह सम्भव अवश्य है कि श्रीउदयनाचार्य की लक्षणावलि आदि ग्रन्थों के प्रबल समर्थक किसी महान् नैयायिक के साथ श्रीहीर का शास्त्रार्थ हुआ हो और उसका नाम भी उदयनाचार्य ही हो उसी को परास्त करते समय श्रीहर्ष ने किसी प्रसङ्ग से उक्त उक्ति कही हो ।

यह भी सुना जाता है कि ये अपने नैषध काव्य को लेकर काश्मीर के तत्कालीन महाराजा श्रीमाधवदेव के पास गये थे । वहाँ दरबारी विद्वानों ने 'कहीं श्रीहर्ष ही सभा का प्रधान पण्डित न मान लिया जाय' इस ईर्ष्या से श्रीहर्षरचित नैषध का महत्वख्यापन न कर उसे दोषयुक्त बता दिया और तत्काल में राजा के द्वारा सम्मानित न होने दिया । किन्तु पश्चात् एक दिन श्रीहर्ष वहाँ के एक कूप पर संध्योपासनादि कार्य कर रहे थे उसी समय वहाँ दो व्यक्तियों में किसी कारण से कलह हो गयी । वाद-विवाद के उग्र होने पर जब निर्णय हेतु राजसभा में पहुँचे तो राजा ने उन्हें साक्षी देने को कहा । वहाँ अन्य कोई साक्षी न था । श्रीहर्ष को ही साक्षी रूप से उपस्थित होना पड़ा । राजा द्वारा पूछे जाने पर श्रीहर्ष ने उन दोनों की भाषा की अनभिज्ञता बताते हुए उन दोनों द्वारा उच्चारित वाक्यों को आनुपूर्वी सुना दिया। इस प्रकार की विलक्षण स्मरणशक्ति एवं प्रतिभा को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीहर्ष को वस्त्राभूषणादि के द्वारा सम्मानित किया ।

वहीं पर श्रीहर्ष ने अपने ग्रन्थ को काश्मीरपुरवासिनी श्रीशारदाम्बा के हाथ में समर्पित किया तो श्रीमाता ने उसे गिरा दिया । श्रीहर्ष के द्वारा प्रार्थना करने पर श्रीमाता ने कहा कि 'तुमने इसमें मुझे विष्णु पत्नी कहकर वर्णन किया है ।' पश्चात् शारदासाक्षात्कारसम्पन्न श्रीहर्ष ने प्रार्थना किया कि – मात: ! आप सर्वात्मा हैं, सभी रूपों से आप ही तो क्रीड़ा करती हैं, आपकी प्रतिज्ञा है 'एकैवाहम्' । अत: विष्णुपत्नी भी आप ही हैं आपसे भिन्न नहीं। दूसरी बात यह है कि मैंने अपने मन से ऐसा वर्णन नहीं किया, भगवान् व्यास ने अमुक पुराण में आपको विष्णुपत्नी कहा है, मैंने उसी को आधार मानकर वर्णन किया है । श्रीमाता भक्त के मुख से यही सुनना चाहती थीं, प्रसन्न हो अपने हाथ में उसे स्वीकार कर लिया ।

व्यक्तित्व : श्री श्रीहर्ष की विशेषताओं के ख्यापन में एक बात कहना पर्याप्त है कि श्रीहर्ष सिद्धसरस्वतीक थे । श्रीचिन्तामणिमन्त्र के आराधना से ये समस्त विद्याओं एवं कलाओं में निष्णात थे । जैसा कि श्रीशारदाकार ने कहा है – 'यदीयचिन्तामणिमन्त्रचिन्तयाजहर्ष हर्ष: परिलभ्यलिप्सितम्' । ये स्वयं ब्रह्मसाक्षात्कार सम्पन्न थे । अतएव कृतकृत्य थे । इस संबन्ध में स्वयं कहते हैं – वस्तुतस्तु वयं सर्वप्रपञ्चसत्त्वासत्त्वव्यवस्थापनविनिवृत्ता: स्वत: सिद्धे चिदात्मनि ब्रह्मतत्त्वे केवले भरमवलम्ब्य चरितार्था: सुखमास्महे' (खण्डन) खण्डन के अन्त में – 'य: साक्षात्कुरुते समाधिषु परब्रह्मप्रमोदार्णवम्' कहा है । यहाँ यह भी ऐतिहासिक वृत्त सुना जाता है कि इसके पहले भी श्री हर्ष ने इसी नाम का ग्रन्थ बनाया था किन्तु तत्कालीन विद्वानों के समझ में कण मात्र भी नहीं आया तब श्रीहर्ष को महामूर्ख कहने लगे। फिर श्रीशारदा का आराधन करके प्रार्थना की तब शारदा ने आदेश दिया कि इसे गङ्गा में विसर्जन करो तुम्हारी बुद्धि को कम करती हूँ फिर बनाओ इसी नाम का ग्रन्थ । उन्होंने वैसा ही किया ।

ग्रन्थ रचना : श्रीहर्ष के द्वारा रचित ग्रन्थ अनेक हैं । जिनमें खण्डनखण्डखाद्य एवं नैषध दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इसके अतिरिक्त ईश्वराभिसन्धि का उल्लेख खण्डन में है किन्तु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । किसी प्रकार १. अर्णववर्णन, २. शिवशक्तिसिद्धि,

३. साहसाङ्कचम्पूः, ४. छन्दप्रशस्तिः, ५. विजयप्रशस्तिः, ६. गौडोर्वीशकुलप्रशस्तिः, ७. स्थैर्यविचारणम् । ये सभी ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं किन्तु इनका संकेत नैषध के विभिन्न पद्यों में ग्रंथकार ने स्वयं किया है ।

खण्डनखण्डखाद्यम्

प्रकृत ग्रन्थ का नाम खण्डनखण्डखाद्य रखा गया है । इसका दूसरा नाम 'अनिर्वचनीयतासर्वस्वम्' भी है । इस नाम के विषय में स्थूलदृष्टि विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि यह खण्डनखण्डखाद्य नाम आयुर्वेदीय भाषा से अनुप्राणित है क्योंकि आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार 'शतावरी आदि अनेक ओषधियों के योग से एक अवलेह बनाया जाता है जिसका नाम खण्डखाद्य' है ।

चाक्षुष्यं बृहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्धनम् ।
श्रीकरं लाघवकरं खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥

यह 'खण्डखाद्य' दुर्बलता आदि दोषों को दूर कर बलपुष्टि आदि को देता है । यहाँ पर खण्डन अर्थात् कुतार्किकों के तर्क से सिद्ध ब्रह्मातिरिक्त समस्त जगत में मिथ्यात्व-अनिर्वचनीयत्व का साधन ही खण्डखाद्य है । जैसे आयुर्वेदसिद्ध खण्डखाद्य रोग को दूर कर स्वस्थता प्रदान करता है उसी प्रकार यह खण्डनरूप खण्डखाद्य भी ब्रह्मातिरिक्त समस्त जगत में सत्यत्वभावनारूप महारोग को दूर कर स्वात्मविश्रान्तिरूप स्वस्थता को प्राप्त कराता है। अतः इसका नाम खण्डनखण्डखाद्य मानना उचित ही है । अथवा कोशग्रन्थ के अनुसार खण्ड नाम मिश्री के टुकड़े का है । तदनुसार खण्डन अर्थात् परमत निराकरण ही खण्ड अर्थात् मिश्रीखण्ड (मिश्रीखण्ड के समान मधुर) है । वही है खाद्य अर्थात् प्रतिपाद्य जिसका ऐसा ग्रन्थ विशेष 'खण्डनखण्डखाद्य' है ।

वस्तुतस्तु सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर 'खण्ड्यतेऽपसार्यतेऽज्ञानं येन निरूप्यमाणेनेति-व्युत्पत्त्या खण्डनं तत्त्वम्' इस शारदोक्त पंक्ति के अनुसार खण्डन पदार्थ तत्त्व अर्थात् परब्रह्म ही ठहरता है । तत्त्वं ब्रह्मणि याथार्थ्ये कोश के अनुसार तत्त्वपदार्थ परब्रह्म ही है । वह परब्रह्म ही 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' के अनुसार आनन्दस्वरूप होने से खण्ड (मिश्रीखण्ड) कहा गया । वही है खाद्य = आस्वाद्य जिसमें ऐसे ग्रन्थ का नाम खण्डनखण्डखाद्य है ।

खण्डनखण्डखाद्य यद्यपि वितण्डावाद का ग्रन्थ माना जाता है और वितण्डा स्वपक्ष स्थापनहीना होती है । अतएव इसमें किसी पदार्थ की स्थापना-साधन नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति खण्डनखण्ड ही मुख्य प्रतिपाद्य कैसे कहा जाय । तथापि प्रतिपादन दो प्रकार से किया जाता है – एक विधिमुखेन और दूसरा निषेधमुखेन । श्रुतियों में उभयविध प्रतिपादन देखा

जाता है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' यह विधिमुखेन, एवं 'नेहनानास्ति किञ्चन' यह निषेधमुखेन। अतएव भाष्यकार ने ब्रह्म में ज्ञानविषयता का निरास करते हुए कहा है – अविद्याकल्पितभेदनिवृत्तिपरत्वाच्छास्त्रस्य नहि शास्त्रमिदंतया विषयभूतं ब्रह्म प्रतिपिपादयिषति। किं तर्हि प्रत्यगात्मत्वेनाविषयतया प्रतिपाद यदविद्याकल्पितं वेद्यवेदितृवेदनादिभेदमपनयति।' (ब्र. १/४/४)

वितण्डा के लक्षण में विधिमुखेन प्रतिपादन का निषेध किया गया है न कि निषेधमुखेन का। प्रकृति में श्री श्रीहर्ष ने निषेधमुखेन ब्रह्म का प्रतिपादन करने के लिए ब्रह्मातिरिक्त समस्त जगत में मिथ्यात्व अनिर्वचनीयत्व का प्रतिपादन किया है। किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य समस्त जगत से विमुख कर स्वाभिन्नपरब्रह्म में विश्रान्त करना ही है। अतएव स्वस्वरूपविश्रान्तिरूप मोक्षप्रयोजनकत्व भी इस ग्रन्थ में सिद्ध होता है। वेदान्तदर्शन की दृष्टि से अनिर्वचनीयत्व मात्र की सिद्धि को ही प्रयोजन नहीं कहा गया है। अत: प्रकृत ग्रन्थ के तन्मात्रपरकत्व होने से निष्प्रयोजनत्वापत्ति हो जायेगी।

ग्रन्थकार ने वस्तुतस्तु स्वात्मसिद्धमेव चिद्रूपम् कहकर ब्रह्म स्वत: ही सिद्ध है उसे सिद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं है इस वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर दिया। भाष्यकार भी कहते हैं – सर्वोह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति। यदि हि नात्मास्तित्वप्रसिद्धि: स्यात् सर्वोलोको नाहमस्मीति प्रतीयात्। आत्मा च ब्रह्म (ब्र. १/१/१) इति। अत: उसमें विश्रान्त करने हेतु तदतिरिक्त का निराकरण करना (अनिर्वचनीयतावाद दिखाना) ही आवश्यक समझा। ग्रन्थकार श्रीहर्ष ने ब्रह्मातिरिक्त पदार्थों में अनिर्वचनीयंता को भी बलपूर्वक थोपा नहीं है। अपितु वह पदार्थ स्वभाव से ही अनिर्वचनीय है यह दिखाया मात्र है। ग्रन्थकार स्पष्ट कहते हैं – "यदपि निर्वक्तुमसामर्थ्ये गु:ख उपास्यन्ताम् येभ्यो निरुक्तय: शिक्ष्यन्ते इत्युपालम्भवचनं तत्तदा शोभेत यदि मेयस्वभानुगामिनीयमनिर्वचनीयतेति न ब्रूयु: वक्तृदोषादिति च वदेयु:। यस्तु निरुत्त्यभिमानं धत्ते स निर्वक्तुं न तु शक्ष्यति, वक्तव्यदोषात्" इति।

"परस्य व्यवस्थयैवं पर्यवस्यति-निर्वचनप्रतिक्षेपादनिर्वचनीयत्वम्। विधिनिषेधयोरेकतरनिरासस्येतरपर्यवसायितायास्तेनाभ्युपगमात्। तत: परकीयरीत्येदमुच्यते – "अनिर्वचनीयत्वं विश्वस्यपर्यवस्यति।" वह एक ब्रह्म तत्त्व ही ऐसा है जिसका निराकरण किया ही नहीं जा सकता – यह "आत्मनश्च प्रत्याख्यातुमशक्यत्वात्, य एव निराकर्ता तस्यैवात्मत्वात्" इस भाष्योक्ति से सिद्ध है अत: पादिशेष्यात् उसमें विश्रान्त ही होना है। तस्मात् यह ग्रन्थ मुख्यप्रयोजन का साधक है।

ग्रन्थ : प्रकृत ग्रंथ में चार परिच्छेद हैं – इनमें प्रथम परिच्छेद के आरम्भ में अवतरण भाग है। इसमें – सत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम में कथाङ्गत्वखण्डन, शून्यतोत्सर्ग, असत: कारणत्वोपपत्ति: शून्यवादापवादस्वप्रकाशवाद, अनिर्वाच्यत्वनिरुक्ति:, परीत्या परमत निरासोपपत्ती, अद्वैत प्रमाण प्रश्न खण्डन, अद्वैतस्य प्रामाणिकत्वम् तथा प्रत्यक्षादिबाधोद्धार आदि विषयों का प्रतिपादन है। उसके बाद लक्षण सामान्य का खण्डन, प्रमा के समस्त

लक्षणों का खण्डन एवं करणों के समस्त लक्षणों का खण्डन कर प्रत्यक्षादि समस्त प्रमाणों का खण्डन तथा अन्त में हेत्वाभासों का खण्डन आदि प्रमुख विषयों को प्रस्तुत किया है ।

द्वितीय परिच्छेद में प्रतिज्ञाहान्यादिनिग्रहस्थानों का खण्डन, तृतीय परिच्छेद में सर्वनामार्थनिरुक्तियों का खण्डन एवं चतुर्थ परिच्छेद में भावत्व अभावत्व विशिष्टद्रव्यादिलक्षण सामान्य विशेष सम्बन्ध आधार विषयविषयीभावभेदकारणत्ववर्तमानत्वादिसंशय विरोधतर्कसामान्य तर्कविशेष एवं तर्काभासादि समस्त पदार्थो का खण्डन किया गया है ।

खण्डन की टीकाएँ : खण्डनखण्डखाद्य पर अनेक विद्वानों ने टीका की है, जिनका विवरण निम्न प्रकार से है –

	टीका	*टीकाकार*
१.	भावदीपिका	चित्सुखाचार्य
२.	खण्डनफक्किकाविभजन	आनन्दपूर्ण विद्यासागर
३.	प्रकाश	वर्धमान उपाध्याय
४.	आनन्दवर्धनी	शङ्कर मिश्र
५.	भूषामणि	रघुनाथ शिरोमणि
६.	शिष्यहितैषिणी	पद्मनाभ
७.	खण्डनदर्पण	प्रगल्भमिश्र
८.	खण्डनमण्डन	वरदपण्डित
९.	खण्डनटीका	पद्मनाभदत्त
१०.	खण्डनटीका	शुभङ्कर
११.	शारदा	श्री स्वामि शङ्करचैतन्यभारती
१२.	खण्डनरत्नमालिका	सूर्यनारायण शुक्ल
१३.	अंग्रेजी अनुवाद	श्री गङ्गानाथ झा
१४.	हिन्दी व्याख्या	चण्डी प्रसाद शुक्ल
१५.	हिन्दी व्याख्या	हनुमान प्रसाद षट्शास्त्री
१६.	हिन्दी व्याख्या	स्वामि योगीन्द्रानन्द

टीकाकार :

प्रस्तुत प्रकाशन में प्रकाशित "शारदा" नाम से प्रसिद्ध टीका के रचयिता प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री श्रीशङ्कर चैतन्य भारती जी हैं ।

यद्यपि श्री पूज्य चरणों के द्वारा ही उनके जीवन काल में संघटित अनेक चमत्कार

रहस्यों के उद्घाटन के लिए मैं प्रतिद्धि हूँ । तथापि तदातिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी अति संक्षिप्त कुछ बातों का मैं उल्लेख करता हूँ ।

स्वकीय निर्वाणतिथि से लगभग छः मास पूर्व श्रीचरणों ने ही किसी प्रसङ्ग में कहा था कि "मेरे जीवन के ४२ (बयालिस) वर्ष व्यतीत हो गये, अतः शरीर परित्याग की इच्छा होती है, अधिक जीने से क्या लाभ है ।" श्री चरणों के इस कथन के अनुसार ही निर्वाणतिथि से पूर्वकाल गणना करने पर श्री चरणों का आविर्भाव काल १९१५ या १९१६ ई. के लगभग ठहरता है । काश्मीर प्रान्तीय ग्राम विशेष के किसी विप्रकुल में आपका जन्म हुआ । बाल्यकाल से ही आप विलक्षण प्रज्ञासम्पन्न थे । आपने प्रारम्भिक विद्या का अध्ययन जम्मू-नगर के श्री रघुनाथसंस्कृतमहाविद्यालय में किया, तदनन्तर आप वाराणसी में आ गये, और वाराणसी में ही न्याय-वेदान्तादि समस्त शास्त्रों का अध्ययन सम्पन्न किया। चिन्तामणिमन्त्रसमुपासनसंतुष्ट श्री शारदाप्रसादलब्धशेमुषीक आचार्यचरण ने शीघ्र समस्त साङ्गोपाङ्ग निगमागम शास्त्रों में लोकोत्तर वैदुष्य नैपुण्य प्राप्त कर लिया इसमें श्री आचार्यचरण द्वारा निर्मित ग्रन्थ ही प्रमाणभूत है ।

इनके संन्यासगुरु श्री विश्वरूपाचार्य (श्री सुरेश्वराचार्य) भारती थे क्योंकि उन्हीं के नाम से आपने संन्यास लिया था । संन्यासी सम्प्रदाय में यह प्रथा (नियम) आज भी प्रचलित है कि जिसके नाम से संन्यास लिया जाता है वे ही उनके मुख्य गुरु माने जाते हैं । अतएव आचार्यचरण भारती पदवीक थे ।

विद्याभारेण सम्पूर्णः सर्वभारं परित्यजन् ।
दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्त्यते ॥

यह भारती पदवी श्री चरणों की अन्वर्थ थी । अतएव श्री पूज्य चरण ने –

यदीयवाचं विमलां जयोद्भटामवेत्य तर्कैर्नरिनर्तिभारती ।
चिदेकतानात्मना निरञ्जनः स विश्वरूपो विमलीकरोतु नः ॥

इस प्रकार शारदा के उपक्रम में एवं

सादरं तं नमस्कुर्वे विश्वरूपं तु भारतीम् ।
पादाम्बुजेषु यस्यासन् शिष्यालयः समन्ततः ॥

इस प्रकार ख्यातिवाद के उपक्रम में श्री सुरेश्वराचार्य जी को बड़े ही आदरपूर्वक प्रणति अर्पित की है ।

आपका संन्यासदीक्षासंस्कार पूज्य स्वामी श्री जयेन्द्र पुरिजी महाराज के द्वारा सम्पन्न किया गया था अतः उन्हें भी आचार्य चरण ने –

शमं यदीयं परिचिन्त्य कोविदा जयन्तिशाम्यन्मनस परेस्थिताः ।

स शान्तधाम्नां निवहो दयावहो दिशन्परां पातु जयेन्द्र शब्दितः ॥

इस पद्य से सादर प्रणामाञ्जलि अर्पित की है । आपके ही द्वारा रचित –

शोभा न द्वैतशून्ये परमसुखतया श्रूयमाणेऽपि देवे,
विद्यामाद्यां विना यां सकलसुरनुतां साऽपि येषां प्रसादे ।
इजासाम्राज्यभाजोऽगणितगुणगणाञ्शम्भुभावाद्भुतांस्तान्,
श्री विद्यानन्दनाथान् द्रविड़यतिवरान् मन्महे नादरैः कैः ॥

इस पद्य से ज्ञात होता है कि आप श्री विद्यानन्दनाथ के द्वारा पद्धतिविशेषादि के उपदेश को प्राप्त कर स्वात्मभूत चितिचरणार्थन में नियोजित किये गये थे ।

कुछ काल आप कनखल क्षेत्र में भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर रहे । तदनन्तर स्वामी श्री अखण्डानन्दजी के सानुनयनिवेदन को स्वीकार कर कुछ समय पञ्चवटी (नासिक) में रहकर दिल्ली के पास श्री शुक्रताल में आ गये । वहाँ कुछ दिन निवास करने के पश्चात् आप भगवान् विश्वनाथ की राजधानी महाक्षेत्र श्रीकाशीधाम में आ गये, और यहीं ललिताघाट पर स्थित श्रीराजराजेश्वरी मठ में यावज्जीवन निवास किये । यहाँ आने के बाद कहीं भी नहीं गये। यहीं रहकर आपने अनेक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की, जिनमें खण्डनखण्डखाद्य की शारदा टीका, राजहंस, दर्शनसर्वस्व (मौलिकग्रन्थ) उसकी टीका राजहंस एवं ख्यातिवाद (मौलिक) विद्वज्जनसमाज में लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थ प्रमुख है ।

आपके सर्वविध अनुग्रह पात्र प्रमुख शिष्य मेरे आराध्य देव स्वामी श्रीशिवशङ्करचैतन्य भारती जी महाराज हैं । श्री परमाचार्यचरण ने न केवल इन्हें प्रायः समस्तशास्त्र शिक्षा एवं संन्यास दीक्षा ही दी, अपितु अध्यात्मोपासनादिरहस्यविद्यादि में भी सुप्रतिष्ठित कर स्वात्मसात् कर दिया ।

इनके अतिरिक्त अध्यापनादिशिक्षादि द्वारा अनेक महात्मावृन्द विद्वज्जन श्री चरणों में अनुग्रहके भाजन बने । जिनमें निम्नलिखित विशेषतया संस्मरणीय हैं – परमपूज्य विरक्तशिरोमणि स्वा. श्री दयालुपुरीजी महाराज, परमपूज्य महामण्डलेश्वर स्वा. श्री गणेशानन्द जी महाराज (शिवमठ वाराणसी), म.म. स्वामी श्रीगणेशानन्दजी महाराज (कनखल, हरिद्वार), आवाहनपीठाधीश्वर म.म. स्वा. श्री अखण्डानन्द जी महाराज (पञ्चवटी, नासिक), निर्वाणपीठाधीश्वर म.म.स्वा. श्री कृष्णानन्दजी महाराज, म.म. स्वा. श्री महेश्वरानन्द जी महाराज (बम्बई), म.म. श्री स्वरूपानन्द जी महाराज, विरक्त स्वा. श्री दयानन्द जी महाराज, स्वा. श्री पूर्णानन्द जी महाराज, स्वा. श्री दीव्यानन्द जी महाराज, स्वा. श्री प्रकाशानन्द जी महाराज, स्वा. श्री गोपालानन्दजी महाराज, पण्डित प्रवर नैयायिकधुरन्धर श्री केशव मिश्र, पूर्वअध्यक्ष न्या. वै. विभाग सं.सं. वि.वि., वाराणसी, पण्डित प्रवर श्रीकेदारनाथ त्रिपाठी दर्शनविभागाध्यक्षचर, प्रा.वि.सं, का.हि.हि.वि., वाराणसी इत्यादि ।

यह अत्युक्ति नहीं है अपितु वस्तुस्थिति है कि "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस उक्ति के अनुसार ब्रह्मवेत्ता होने से तथा 'वासनाशून्यसंविद्' इस लक्षण के अनुसार सर्वविध वासनाशून्य होने से शारदाकार श्री श्रीआचार्यचरण साक्षात् शिवरूप थे । इनके संबन्ध में विद्वद्धौरेयों के द्वारा कुछ पद्यकुसुमाञ्जलि दी गयी है जिन्हें यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ –

श्रीशारदाख्यविषमाद्भुतटीकया यः ग्रन्थं व्यभूषयत्खण्डनखण्डखाद्यम् ।
चैतन्यभारतिपदान्वितशङ्कराख्यो वैराग्यमूर्तियतिराडभवत्तपस्वी ॥ १॥

टीकां यो विमलां सदा सुविषमां श्रीहर्षमिश्रैः कृते
ग्रन्थे खण्डनसंज्ञकेऽतिकठिने सर्वार्थसम्पत्करीम् ।
सञ्चक्रेकृतसम्मतिं बुधवरैः श्रीबालकृष्णाभिधैः
वन्दे तं सततं यतीशविदितं श्रीशङ्करं सद्गुरुम् ॥ २॥

तर्के यं प्रवदन्ति तर्करसिकाः साक्षादयं गौतमः ।
योगे योगविदः पतञ्जलिरिति प्रायेण संचक्षते ।
सांख्येसांख्यविशारदाश्च कपिलं ज्ञानाकरं सञ्जगुः ।
वेदान्ते विदुषां गणो गुरुवरं व्यासोऽयमित्याह यम् ॥ ३॥

मीमांसानतमस्तकान् गुरुमतं स्वीकुर्वतो नित्यशः ।
भट्टाचार्यपदानुगांश्च नितरां मीमांसया मांसलान् ।
कुर्वन्तु यतिपुङ्गवं सुमनसो यं जैमिनिं मेनिरे,
वन्दे तं सततं यतीशविदितं श्रीशङ्करं सद्गुरुम् ॥ ४॥

त्यागे यस्य शुकोऽपि याति लघुतां योगीशवन्द्यो ध्रुवम् ।
वार्ता केतरयोगिनां त्रिभुवने प्रख्यातिमालिंगताम् ।
श्रीविश्वेशपदारविन्दनिरतं शान्तं प्रदान्तं प्रभुं,
वन्दे तं सततं यतीशविदितं श्रीशङ्करं सद्गुरुम् ॥ ५॥

निबन्धं राजहंसं यो वेदान्तार्थप्रकाशकम् ।
तथा दर्शनसर्वस्वं रचयित्वान्वकम्पत ॥ ६॥

अपि च

कन्दर्पः प्रौढदर्पः पथिककुलवधूप्राणसंवर्तकारी
यान्यादायोरूमोहादगणितनियमं विश्वमंधी करोति ।

तैः पुष्पैरेव येषां प्रणतचरणयोः पूजनं संविधत्ते ।
तेषां श्रीभारतीनां पततु मयि चिरं कोऽपि कारण्यलेशः ॥
हस्ताभ्यामनुमन्यते चरणयोर्विस्पष्टमाभासते
द्वैतं दृश्यत एव सम्प्रति जनैर्नेत्रद्वयेऽपि स्थितम् ।
चित्तं हन्त परन्तु यस्य विमलं स्प्रष्टुं न शक्नोति तत् ।
सोऽयं शङ्करचेतनः स भगवान् वाचा कथं वर्ण्यताम् ।
गाम्भीर्येऽपि समुन्नते द्विजवरैरासेवितत्वात्मनां
द्वैतोत्तापनिवर्हणेऽतिनिपुणं निष्पन्नहंसग्रहम् ।
योगाध्वाध्वगतिं गतस्य भवतः प्राग्जन्मपापोदयान्
मन्ये हन्त मया प्रमत्तमतिना विक्षोभितं मानसम् ॥
औद्धत्यं मनसोऽथवास्तु वचसः स्वाभाविकं नात्मनो
नागन्तोः किल दुर्गुणस्य दलनं दुस्साध्यमालोक्यते ।
चित्तस्यास्य विशुद्धये सरजसः कृत्वोपवासद्वयम्,
तत्पापं परिमार्जितुं प्रयतते कश्चिद्विधेयस्तव ॥
अज्ञानौघमलीमसेन मनसा ज्ञातुं न शक्ता वयं,
प्रायश्चित्तविधिं यतोऽतिगहनं वेदैकवेद्यं परम् ।
स्वाध्यायाध्वरदीक्षितेन च मया कौमारिलं दर्शनं,
प्रागेवावगतं परं तदधुना निर्बाधमध्याप्यते ॥
कारुण्यं भवतः पुनर्यदिभवेत्संवत्सराणां त्रयम्
शिष्यस्ते भविताऽयमुन्नतमना कश्चिन्मुमुक्षुर्जनः
आविष्टा तरणिः समुद्रमतलं मध्ये कथं मज्जनं
वक्तव्यं किमतः परं खलु मया विश्वस्य साक्षीभवान् ।
तस्मात्खण्डनखण्डखाद्यपठने वद्धाभिलाषश्चिरात्
त्वां भूमितलचुम्बिनार्यशिरसा कश्चित्क्षमां याचते ।
वाणी साकलिता मया कणभुजो वात्स्यायनीया तथा
नीता एव समापनं च किमती सांख्येऽपि संख्याकृता
सदयहृदयदाहैः पातकाक्रान्तचेतास्तवचरणसरोजं प्राप्तवान् दीनदीनः
कथमपि दयनीयः क्षीणदोषोऽनुतापादिति विरमति कश्चिच्छात्रविज्ञानप्रार्थी ।

सन् १९५८ ई. में आषाढ कृष्णद्वादशी शनिप्रदोष के दिन आचार्यचरण ने अपने अवच्छेदक पाञ्चभौतिक शरीर का परित्याग कर स्वस्वरूपभूत परब्रह्म में प्रलीन हो गये ।

उस दिन मध्याह्न में २ बजे ही आप समाधिस्थ हो गये थे । उसी समाधि अवस्था में कुछ लोगों को शरीर परित्याग का भ्रम हो गया, क्योंकि उस अवस्था में समस्त शरीर में प्राणों

का संचार अवरुद्ध था। किन्तु परमपूज्य श्रीस्वामीजी महाराज (वर्तमान भारती जी) उस समय वहीं उपस्थित थे, वे स्पष्ट कह रहे थे कि "इस समय श्रीचरण समाधिस्थ हैं" उसी समय ज्ञात होने पर म.म. गोपीनाथ कविराज भी एक चिकित्सक (डॉक्टर) को साथ ले वहाँ आये और श्री चरणों का दर्शन किया तथा चिकित्सक को श्रीचरणों को देखने हेतु संकेत किया।

चिकित्सक ने आला द्वारा परीक्षण कर कहा "शरीर के नीचे भागों में प्राणों का संचार तो नहीं है किन्तु मुखमण्डल पर तेजपुञ्ज सा भासित होता है जहाँ हमारी एवं यन्त्र (आला) की गति नहीं है। म.म. गोपीनाथ काशीराज ने भी श्रीचरणों के समाधिस्थ होने की बात को स्वीकार किया।

पश्चात् उसी दिन रात्रि में करीब नौ बजे श्रीचरणों का किञ्चित् प्राण सञ्चार हुआ और तत्काल ही श्रीचरणों ने शिरोद्वार से प्राणों का विसर्जन किया। शिरोद्वार से प्राणों के विसर्जन की बात का तत्कालीन उपस्थित प्रायः २५ सज्जनों ने प्रत्यक्ष दर्शन किया। अतः इस प्रकार महायोगी ने परब्रह्मस्वरूप श्री आचार्य चरणो ने अपने अवच्छेदक शरीर का परित्याग किया यह तत्कालीन उपस्थित प्रायः सर्वजनविदित है।

शारदाटीका :

"खण्डनखण्डखाद्य" ग्रन्थ पर अनेक टीकाओं का उल्लेख किया जा चुका है। उन सभी टीकाओं में शारदा का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कुछ टीकाएँ तो सम्पूर्ण ग्रन्थ पर उपलब्ध नहीं है। जो उपलब्ध हैं उनमें भी कुछ अतिसंक्षिप्त हैं। जो कुछ विस्तृत भी हैं तो वे नव्यन्यायोक्त कर्कसतर्कों का साक्षात् सामना स्पष्टरूप से नहीं करती है।

यह सर्वविदित है खण्डननिर्माणकाल में नव्यन्याय का आविर्भाव न था। अतएव मूलखण्डन में प्राचीन न्यायोक्तदिशा उक्त पदार्थों का उसी रीति से निरास किया गया है। अतएव परवर्ति नव्यनैयायिकों ने खण्डनोक्तयुक्तियों के निरास का प्रयास करते हुए "खण्डनाकाराः परास्ताः" कह दिया। किन्तु शारदा में उन सभी परवर्ति तार्किकों के तर्कों का विधिवत् उत्तर दिया एवं सबको निरस्त किया। साथ ही कुछ खण्डन के ही टीकाकार जो न्याय वासना से वासितान्तःकरण होकर खण्डन को देखते थे उनको सुशिक्षित किया यत्तु इत्यादि शब्दों के द्वारा, यह अनुसन्धाताओं को विशेष अनुसन्धानवेला में व्यक्त हो जायेगा।

वस्तुतस्तु टीकाओं में शारदा ही खण्डनग्रन्थ के अनुरूप ठहरती है। खण्डन का काठिन्य सुप्रसिद्ध है। स्वयं ग्रन्थकार ने भी –

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञम्मन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेत्तर्करसोर्मिमज्ञनसुखेष्वासञ्जनं सज्जनः"

इस पद्य के द्वारा अपने खण्डनग्रन्थ की दुरूहता को व्यक्त किया है। इसी प्रकार

शारदा भी तदनुरूप ही कठिन मानी जाती है । इसके काठिन्य का एक यह भी कारण है कि- खण्डन सामान्यत: चतुर्विध होता है- १. दार्शनिक, २. आनुभविक, ३. पारिष्कारिक एवं ४.केवलवैतण्डिक । इन चारों ही प्रकार का समावेश शारदा में उपलब्ध है । शारदा में इन चारों प्रकारों का अनुसरण करते हुए नव्यन्याय के आविष्कर्ता से आरम्भ कर अन्य सभी प्रमुख न्यायाचार्यों की उक्तियों का उन्हीं की भाषा एवं सरणि में प्रौढयुक्तियों के द्वारा खण्डन प्रस्तुत किया गया है । अतएव इसका नाम शारदा यह सार्थक है । शारदाकार स्वयं कहते हैं कि – "खण्डनग्रन्थस्य प्राचीनन्यायादि खण्डनपरस्यनव्यन्यायाद्यध्येतृदृष्ट्या प्रसक्तं शारं = दोषै: कर्बुरत्वं कालुष्यमिति यावत् द्यति खण्डयतीतिव्युत्पत्ते: । किञ्च खण्डनग्रन्थस्य शारं = हृदयं ददाति = प्रकाशयति तस्मिन् स्फूर्तिं स्वातन्त्र्यं वा वितरतीति ।" अतएव शारदा अपने कलेवर की दृष्टि से भी अत्यन्तविस्तृत है । म.म. श्रीबालकृष्णमिश्र खण्डन मूल पढ़ाते समय नव्यन्याय दृष्टि से खण्डनमूल पर अनेक दोषों का उद्भावन करते थे किन्तु शारदा को देख कर उद्भावित समस्त दोषों के समाधान को सहर्ष स्वीकार कर लिया । तथा श्रीचरणों के निमित्त अत्यन्त प्रशंसापरक पत्र भी उन्होंने लिखा था । अतएव यह उचित ही कहा है कि–

टीकातु शारदा टीका सर्वमन्यत्तु टीकनम् ।
सैवोपास्या प्रयत्नेन गुरुशक्तिर्हि सामता
गुरुशक्तिस्वरूपत्वाद्ध्येया स्वान्तेसुधीजनै: ॥

शारदा के वैशिष्ट्य से सुधीजन सुपरिचित हैं अत: इसके सम्बन्ध में अधिक कहना अनावश्यक है । यह भी ध्रुव सत्य है कि यदि कोई मुमुक्षुजन शारदा सहित खण्डन को सम्यक्रूपेण आत्मसात् कर लेगा तो उसका चित्त समस्त प्रपञ्च से विरत अनाशक्त होकर अन्त में परमविश्रान्तिधाम स्वात्मभूत परमात्मा में ही विश्रान्त होगा और वह मुक्त हो जायेगा।

कृतज्ञताप्रदर्शनम् :

सर्वप्रथम मैं मेरे परमगुरु पूज्यपाद साक्षात् शिवस्वरूप शारदाकार स्वामी श्री शङ्करचैतन्य भारती जी महाराज के श्री श्री चरणारविन्दों में साष्टाङ्गदण्डवत् प्रणति निवेदन करता हूँ । साथ ही मैं अपने सद्गुरु परमपूज्य परमादरणीय विदितवेदितव्य स्वामी श्री शिवशङ्करचैतन्य भारती जी महाराज के श्री श्रीचरणों में साष्टाङ्गदण्डवत्प्रणति निवेदन करता हूँ जिनके आदेश से मैं इस अत्यन्त दुरूह कार्य में प्रवृत्त हुआ तथा शारदानुसार खण्डनखण्डखाद्य प्रथमभाग के अनुवाद करने में समर्थ हो पाया । जिनके श्रीचरणों में बैठकर मैंने व्याकरणन्याय वेदान्त इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया । मेरे पास जो कुछ ज्ञान सम्पदा है उनके कृपाकटाक्ष का ही फल है । एवं जिनके सम्बन्ध में स्वयं शारदाकार ने मेरे से स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि "प्रतिकृतिरियं मदीया, तदवच्छेदेनाहमेव त्वामध्यापयिष्ये"। मैं पुन: उन दोनों शिवमूर्तियों के अधमर्णताको यावज्जीवन वहन करता हुआ पुन: श्री चरणों में अपना प्रणति अर्पित करता हूँ ।

इसके अनन्तर मैं शारदाकार श्री श्री चरणों के द्वारा अनुगृहीत उस माता श्रीमती दुर्गादेवी के श्रीचरणों में सादर सविनय प्रणति निवेदन करता हूँ । जिनके वात्सल्य स्नेह से मैं सदैव लालित एवं परिपालित रहा । साथ ही इस अवसर पर मैं इस शरीर के जन्मदाता भगवान् श्रीविश्वनाथ के अनन्य भक्त पिता श्री पं. जगदीशचन्द्र मिश्र तथा पूजनीया जननी श्री बाईवच्ची देवी का स्मरण करता हूँ तथा उन दोनों के श्रीचरणों में मैं अत्यन्त विनीत भाव से प्रणति अर्पित करता हूँ ।

इसके अनन्तर मैं परमपूजनीय परमादरणीय विरक्तशिरोमणि सनातन धर्मसभा आदि अनेक संस्थाओं के संरक्षक एवं अध्यक्ष म.म. स्वामी श्रीगणेशानन्दजी महाराज के श्री चरणों में सादर सविनय प्रणति अर्पित करता हूँ जिन्होंने मुझे वर्तमान में दुर्लभ शारदा टीका के सहित-खण्डनखण्डखाद्य का श्रीशारदानुसारि भाषानुवाद के साथ सम्पादन करने का न केवल आदेश ही दिया, अपितु इसके सम्पादन का समस्त व्ययभार भी वहन कर मुझे अनुगृहीत किया है । साथ ही आप श्रीशारदाकार के स्नेह भाजन शिष्य हैं अत: अपने आराध्यदेव श्रीसद्गुरु की कृतियों का प्रकाशन कराकर शिष्टजनानुमोदित अपनी गुरुसेवा तथा गुरुभक्ति को प्रदर्शित कर तादृश पथ पर चलने हेतु मादृश जनों को पथ प्रदर्शन करके अनुगृहीत करते हैं । मैं एतदर्थ पुन: पुन: आप की कृतज्ञता को शिरसा वहन करता हूँ ।

इसके अनन्तर मैं इस ज्ञानयज्ञ में प्रूफ संशोधनादि द्वारा सहयोग प्रदान करने वाले स्वामी श्रीदीव्यानन्द जी श्रीप्रज्ञानानन्द सरस्वती, डॉ. श्री ललितकुमार चतुर्वेदी, डॉ. जगदीश चतुर्वेदी आदि का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ तथा भगवान् से इनके सर्वविध अभ्युन्नति की कामना करता हूँ ।

इस ग्रन्थ का मुद्रण कार्य में तथा प्रूफ संशोधन में भी सहयोग प्रदान करने वाले श्रीमहेश कुमार का भी मैं सहर्ष धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मनोयोग के साथ इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया ।

आत्म निवेदन : भगवान् श्री श्रीविश्वेश्वर के अनुग्रह से शारदानुसारिभाषानुवाद सहित एवं एवं सराजहंस शारदासहित खण्डनखण्डखाद्य के प्रथम भाग का यह नूतन संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ एवं आशा करता हूँ कि इस का द्वितीय भाग भी शीघ्र ही आपके समक्ष आयेगा । यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ के अतिशय गाम्भीर्य एवं काठिन्य को देखते हुए उसके भाषानुवाद के लिए मादृश अत्यल्पमति का प्रवृत्त होना निश्चित ही दु:साहसमात्र है तथापि "नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति" इस पारमेश्वरवचन के अनुसार अनुग्रहैकवपु परमगुरु परमात्मा की यत्किञ्चित् टूटी फूटी सेना भी मादृश अकिञ्चन के लिए श्रेयस्करी सिद्ध होगी । इसी मनीषा से मैं प्रवृत्त हुआ । इसमें सीमित ज्ञान एवं अत्यधिक समय संकोच होते हुए भी संशोधन का यथाशक्ति पर्याप्त ध्यान रखा गया है फिर भी यदि कहीं त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए मैं विद्वज्जनों से क्षमा प्रार्थी हूँ ।

यदि इससे मुमुक्षु परमार्थपथ पथिक पाठक वृन्द का यत्किञ्चित भी लाभ होगा तो मैं अपना सौभाग्य मानूँगा, साथ ही निवेदन करता हूँ ।

यदत्र सौष्ठवं किञ्चित्तद्गुरोरेव मे नहि।
पदत्रासौष्ठवं किञ्चित्तन्ममैव गुरोर्नहि॥

समर्पणम् : अन्त में इस यत्किञ्चित् सेवा को अनुगैहकवपु विश्वमयविश्वोत्तीर्ण-सच्चिदानन्द स्वरूप श्री विश्वनाथ के श्रीचरणारविदों में अर्पित कर नतमस्तकतया अतिविनीतभावेन प्रार्थना करता हूँ। कि

श्रीविश्वेश ! मया किञ्चिच्छक्यते न हि साधनम्
इयं तु वाङ्मयीपूजा कारिता स्वीकरोतु ताम्।
कृतकृत्यस्य तृप्तस्य तव किंक्रियते मया
बहिर्वाभ्यन्तरे वापि त्वया भावोहि गृह्यते । इतिशिवम्

गुरुपूर्णिमा सं २०५६ — सतामनुचरः
२८.७.९९ — **सुधांशुशेखरशास्त्री**

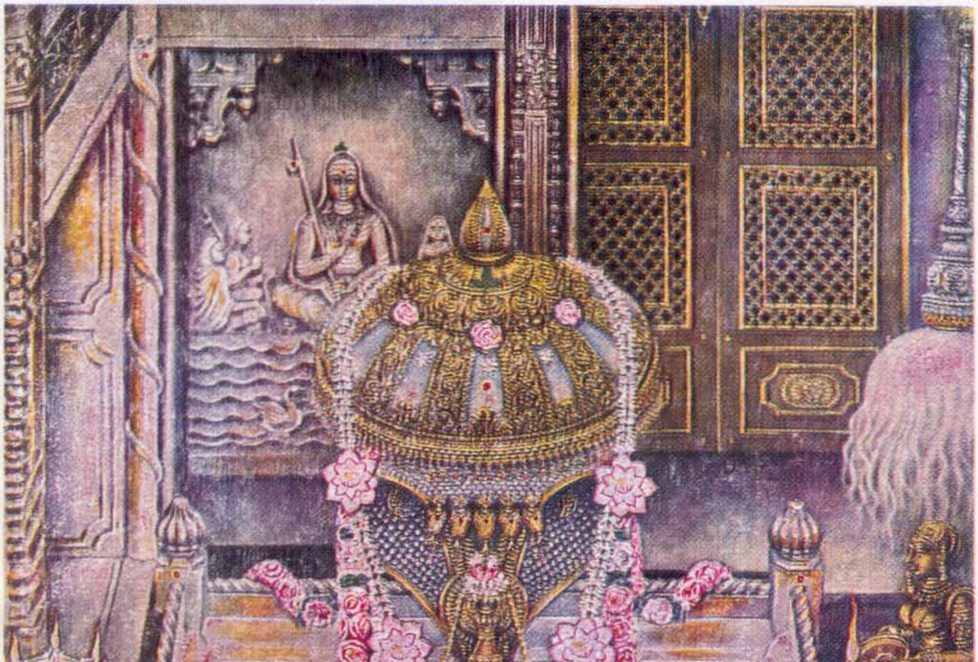

महाप्रकाशवपुषि काशिकायां महाप्रभुः ।
शङ्कराख्यं परं ज्योतिर्विश्वनाथो विराजते ।।

ॐ

'शारदा'समेतस्य प्रत्यक्षखण्डनान्तभागस्य
संक्षिप्ता विषयानुक्रमणिका

विषयः	पृष्ठं
मङ्गलम्	१
शाब्दबोधस्य निर्विकल्पकत्वसमर्थनादिकम्	५
सत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वखण्डनम्	**१८**
सपरिकरविप्रतिपत्तिनिरूपणम्	१८
चार्वाकस्यासत्ख्यातिवादित्वोपपादनम्	१९
भ्रमविषयस्योत्पत्तेरुपवर्णनम्	५०
शून्यतोत्सर्गः	**६५**
आत्मनोऽनिर्वाच्यतोपपादनम्	६५
शून्यतायाः पुरुषार्थत्वनिरूपणम्	६६
शून्यवादे कार्यकारणभावसमर्थनम्	६९
सामग्र्या दुर्वचत्वम्	७१
असतः कारणत्वोपपत्तिः	**७४**
विधेयान्वयिन एव विशेषणत्वमित्यत्रानेकसम्मतिप्रदर्शनम्	७५
कारणत्वस्य सत्त्वघटितत्वाभावोपपादनम्	८१
असद्घटसिद्धिः	८३
प्रातिभासिकस्यापि कारणत्वमिति वेदान्तिमतनिरूपणम्	९०
व्यावहारिकस्यैव कारणत्वमितिवेदान्तिमतनिरूपणम्	९२
भ्रमस्यासद्विषयकत्वोपपादनम्	१००
शून्यवादापवादः स्वप्रकाशवादः	**१०५**
आत्मनोऽबाध्यत्वोपपादनम्	१०५
शून्यतायाः पुरुषार्थत्वनिराकरणम्	१०७
स्वप्रकाशत्वनिरुक्तिः	१०८
स्वप्रकाशत्वे तर्कः	१०९
सामग्रीधाराविच्छेदे घटादेःसदातनत्वापादनम्	१२७

विषयः	पृष्ठं
मानाधीनसिद्धिकस्यैवासत्त्वं नतु स्वतःसिद्धिकस्येत्युपदर्शनम्	१३३
कर्मत्वखण्डनम्	१३७
योगाचारसम्मतस्वप्रकाशत्वत्यागः	१४९
अनिर्वाच्यत्वनिरुक्तिः	**१५७**
भ्रमविषयस्यालीकविशेषत्वमिति वेदान्त्येकदेशिमतनिराकरणम्	१५८
खण्डनानां जात्युत्तरत्वाभावोपपादनम्	१६०
सदसदुभयख्यातिः श्रीहर्षसम्मतेति नागेशभट्टोक्तिपराकरणम्	१६५
पररीत्या परमतनिरासोपपत्तिः	**१६५**
अद्वैते प्रमाणप्रश्नखण्डनम्	**१६९**
अद्वैतस्य प्रामाणिकत्वम्	**१७८**
श्रुतेः सिद्धार्थस्य च प्रामाण्यम्	१८०
प्रत्यक्षादिबाधोद्धारः	**१८४**
अद्वैतश्रुतेरभेदो वा प्रपञ्चमिथ्यात्वं वाऽर्थइति निरूपणं	१८४
विशिष्टाद्वैतादिनिराकरणं	१९७
शाब्दबोधस्याहार्यत्वोपपादनम्	२१३
अनौचित्यास्तर्कत्वोपपादनम्	२१६
भेदखण्डनम्	२२५
सत्यत्वानुमानेऽनुगतपक्षतावच्छेदकासम्भवोपपादनम्	२६२
अद्वैतश्रुतेरुपजीव्यादिविरोधपरिहारः	२६४
अद्वैतस्वरूपनिरूपणम्	**२७१**
मुमुक्षूपदेशः	**२७५**
खण्डनयुक्तीनां कथात्रयेऽप्युपयोगः	**२८३**

इति खण्डनावतरणभागः ।

विषयः	पृष्ठं
लक्षणसामान्यखण्डनम्	**२८९**
तत्त्वपदार्थखण्डनम्	**२९५**
अनुभवत्वस्य जातित्वखण्डनम्	**३०६**
प्रत्यभिज्ञायामनुभवत्वस्मृतित्वयोः साङ्कर्यप्रदर्शनम्	३१३
दोषखण्डनम्	३२९
ग्राह्यसम्बद्धविशेषणतायाः प्रत्यासत्तित्वोपपादनम्	३३७
प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डनम्	**३४८**
अख्यात्युपपादनम्	३४९
उद्बुद्धत्वखण्डनम्	३५४
अख्यातिखण्डनम्	३५५
स्मृत्यन्यत्वखण्डनम्	**३६५**
अवच्छेदकतादिघटितलक्षणानां निष्फलत्वोपपादनम्	३७१
मीमांसकादिमतेऽवच्छेदकभेदेनैव भेदाभेदोपपादनम्	३८०
भेदसंसर्गाभावयोर्भेदखण्डनम्	**३८४**
घटे घटस्य नभेदो नाप्यभेद इत्युपपादनम्	४०४
स्मृतित्वखण्डनम्	**४२५**
भट्टसम्मतज्ञानातीन्द्रियत्वे युक्तिप्रदर्शनम्	४२९
अनुभवत्वविशेषखण्डनम्	**४३१**
तत्त्वानुभवत्वखण्डनम्	**४३२**
याथार्थ्यखण्डनम्	**४४७**
सम्यक्त्वखण्डनम्	**४६२**
विशेषखण्डनम्	४६५
अव्यभिचारित्वखण्डनम्	**४७६**
अविसंवादित्वखण्डनम्	**४७८**
अबाधितत्वादिखण्डनम्	**४८९**
प्रमात्वस्य जातित्वखण्डनम्	४९१
प्रमात्वस्वतस्त्वविचारः	४९३
प्रमालक्षणसामान्यखण्डनम्	**४९६**
करणत्वखण्डनम्	**४९७**
अनुमितेः करणस्य दुर्निरूपत्वम्	५३४
लक्षणप्रयोजनखण्डनम्	**५७०**
स्वत्वानुगमखण्डनम्	५९०
संसर्गस्यानलीकत्वे भ्रान्ते व्यधिकरणप्रकारकत्वानुपपत्तिः	५९८
प्रमेयमात्रखण्डनयुक्तिः	६०६
मुनेराप्तविधया न लक्षणप्रणेतृत्वसम्भवः	६१९
साक्षात्कारित्वखण्डनम्	**६२०**
विशेषविषयकत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६२१
इन्द्रियकरणकत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६२७
ज्ञातताघटितलक्षणखण्डनम्	६२९
विषयजन्यत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६३१
इच्छाप्रतिबन्धकत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६३१
अज्ञायमानकरणकत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६३४
अव्यवधानघटितलक्षणखण्डनम्	६४३
ज्ञानाजन्यत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६४४
ज्ञानाकरणकत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६४४
वर्तमानकालावच्छिन्नत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६४९
सन्निकर्षेतराप्रयुक्तत्वघटितलक्षणखण्डनम्	६५३
लिङ्गोपधानमते प्रत्यक्षलक्षणखण्डनम्	६५६
लिङ्गोपधानमते प्रत्यक्षलक्षणान्तरखण्डनम्	६५९
विशिष्टवैशिष्ट्यविषयिताघटिलक्षणखण्डनम्	६६२
प्रत्यक्षत्वस्य जातित्वखण्डनम्	६६४
स्वाप्नबोधादेः स्मृतित्वखण्डनम्	६६५
जातिमात्रखण्डनम्	६६९
अनुमितित्वेनाभिमतस्य मानसप्रत्यक्षानातिरेकोपपादनम्	६७०
प्रत्यक्षत्वजातेर्व्यञ्जकनिरासः	६७७
प्राभाकराभिमतप्रत्यक्षत्वखण्डनम्	६८१
लिङ्गाद्यजन्यत्वघटितलक्षणानां खण्डनम्	६८४
शाब्दादिभेदघटितलक्षणखण्डनम्	६८८
पर्याप्तिनिराकरणम्	६९६
एकत्वस्यागुणत्वोपवर्णनम्	६९७
भट्टपादानां लक्षणानिर्वाच्यत्वे तात्पर्यनिरूपणम् ।	७११

— ❋ —

श्रीमच्छङ्करचैतन्यभारती भारतीस्वयम् ।
धर्मज्ञानादिवैराग्य योगमूर्तिर्विराजते ।।

ॐ

श्रीशारदायै नमः

खण्डनखण्डखाद्यम्

शारदाख्यव्याख्यासंवलितम्

प्रथमः परिच्छेदः

अविकल्पविषय एकः, स्थाणुः पुरुषः श्रुतोऽस्ति यः श्रुतिषु ।

॥ श्रीः ॥

शारदा

परापरविभागगा जनितनन्दितानन्तधीः
परागतमलीमसा विगतभेदवृत्त्योदिता ।

श्रीराजहंसो नाम मानसोन्मीलनम्
चित्तविलोपे प्राप्ये नवेन्दुमौलिप्रिये[१] कलोल्लसिते !
त्वत्पद्पद्मपरागोऽपरागतां[२] नयतु मां मातः ॥१॥

भारती

।। नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ।।

ओंकाराकारशुण्डाग्रं समष्ट्याम्नायरूपिणम् ।
महागणपतिं वन्दे प्रत्यूहव्रातवारकम् ॥ १ ॥
विद्यागुणविहीनोऽपि लालितो येन नित्यशः ।
नित्यं शुद्धं परं ब्रह्म विश्वेशं नौमि सर्वदा ॥ २ ॥
श्रीबालां शारदां नौमि राजराजेश्वरीं पराम् ।
यां विना न पश्यन्ति परमं पदमनामयम् ॥ ३ ॥
एकं ज्योतिरचिन्त्यं यच्छिवं शङ्करभारतीम् ।
ज्ञानयोगमयं नित्यं ज्ञानयोगेश्वरेश्वरम् ॥ ४ ॥
प्रणम्य परया भक्त्या तत्कृपापाङ्गलेशतः ।
भारतीं तनुते रम्यां शारदापथगामिनीम् ॥ ५ ॥
क्वाहं खण्डनखाद्यं क्व तत्रापि शारदासृतिः ।
श्रीमद्गुरुवच्चरणरेणुरेवात्र कारणम् ॥ ६ ॥

---

१. कलाभिः–शक्तिभिः, विश्वकलनया, चन्द्रकलया । २. रागशून्यताम् ।

शारदा

अखण्डसुखसङ्गता सदमृतात्मिका भव्यभा
चितिः सकलशान्तिदा लसतु मानसप्राङ्गणे ।।१।।

राजहंसः

हित्वा मोहं मलिननिवहे हेयताऽऽदेयते च
नीत्वा सीमां परिचितजनं शून्यताया अदृश्याम् ।
यावद्दृष्टिः पतति तृषिता त्रैपुरे पादपद्मे
तावत्काचिद्गलितमनसः शून्यता मे प्रियाऽस्तु ।।२।।
व्यवहारकथातीते शिवे शान्तरसात्मनि ।
विलोप्य लीलया कालं निर्वृतान् सततं स्तुमः ।।३।।
अन्यथा प्रतिपद्यापि जायन्तेऽवद्यदर्शिनः ।
इत्यवेत्य क्वचिद्भावः स्वयमेव विभाव्यते ।।४।।
यद्वा किमेतया भीत्या मध्यमानां बुधां कृते ।
क्वचिद् व्याख्यानयत्नोऽयं चिरायास्तु फलेग्रहिः ।।५।।
नेत्रं तृतीयमुन्मील्य चिदाकाशे कृतोत्सवैः ।
श्रीशारदेङ्गितं ज्ञातुं राजहंसो निषेव्यताम् ।।६।।
अल्पज्ञता वा सकलज्ञता वा स्वस्मिन्नवेक्ष्या परदोषवक्त्रा ।
आद्येऽप्रमा स्यान्ननु दोषदृष्टिरन्त्ये तु विश्वेश्वरताप्रसक्तिः ।।७।।

• **परापरेति** । अत्रैकशेषेण परापरञ्च परापरञ्चेति विभागद्वयायत्तेन परपरापरापरेति शब्दैरागमिकेषु प्रथितं शिवशक्तिनरात्मकं व्युत्क्रमेण परं क्षराक्षरपुरुषोत्तमेति गीतास्वपि त्रिभुवनानिबन्धनबन्धुनाभिहितं तत्त्वत्रयमप्यभिधित्सितम् । औपनिषदरीत्या तु परापरब्रह्मात्मको विभागः सुविदित एव । परा न परविभागगेत्यर्थे तु विरोधाभासोऽपि, परा = अपकर्षानाश्रयत्ववतीत्येवं च तत्परिहारः । सकलचितिपरतयापि चेदं पद्यं शक्यं योजयितुम् । तथाहि-परापरविभा मायिकोत्कर्षापकर्षाश्रयनैकविधलीलाविग्रहात्मना प्रथनात् । अगगा = कैलासस्था, पुत्रीत्वेन पर्वतविशेषगामिनीति वा । स्वेन जनितस्य नन्दितस्य = स्वात्मकशक्त्यावेशितस्य 'अनन्तः केशवे शेषे' इत्यभिधानादनन्तस्य = केशवस्य धीः = बुद्ध्यधिष्ठात्री, ब्रह्मवैवर्तादौ तथा प्रसिद्धेः, ज्ञानशक्तिरेव वा, परदेवता हि शिवमिच्छाशक्तिरूपेण विष्णुं ज्ञानशक्तिरूपेण विधिञ्चाध्यास्ते क्रियाशक्तिरूपेणेत्यागमेषु बहुलमुपलब्धेः । परागतमलीमसेति निरतिशयसौन्दर्यमभिप्रैति । महामहाकविभिर्विरिञ्च्यादिभिरपि साक्षात्तदीय-सौन्दर्यलवस्यापि निर्वक्तुमशक्यतयाऽन्यनिषेधमुखेन निरूपणाशयेन विगतेत्यादि । अनन्यसामान्यदशाया सदोदयमासादयन्तीति वा। अनवच्छिन्नसुखार्थमर्धनारीश्वरात्मना सङ्गतेत्याशयानस्य 'अखण्डे' त्याद्युक्तिः। सती चासावमृतात्मिका = अमृतरसस्यन्दितनुलता, सौवर्गामृतातिशायिताप्रत्ययार्थं सत्त्वममृतस्यैव वा विशेषणम्, अत एव तत्सम्पर्कमात्रमवाप्नुवतो भगवतो भवस्य न कालकूटपानप्रयुक्तकार्यविशेषभागितेति भावः। भव्यभा = कमनीयकान्तिरित्यर्थः ।।१।।

भारती

इस प्रारप्सित ग्रन्थ के निर्माता श्री श्रीहर्ष ग्रन्थारम्भ में शिष्टता के अभिव्यंजक तथा अन्तरायश्रेणी के शामक चिति के स्तवन का सम्पादन करते हैं– अविकल्प विषय

शारदा

रेणुना धवलितं वनालयं मेधकान्तिकमनीयतास्पदम् ।
श्वेतनीलसरितोः सुसङ्गमं कामधामनिचयं स्तुवीमहि ।। २ ।।
यदीयचिन्तामणिमन्त्रचिन्तया जहर्ष हर्षः परिलभ्य लिप्सितम् ।
अखर्वगर्वं सुममर्द गर्विणां सरस्वती सा तनुतात्कृपेङ्गितम् ।। ३ ।।
जनैश्चतुर्भिः कलितोऽपि पञ्चमो दिदेश कोटिं कृतिभिर्न पञ्चमीम् ।
स्वमद्वयां सौगतबोधचुम्बिनीं स शङ्कराचार्यवरः पुनातु नः ।। ४ ।।
यदीयवाचं विमलां जयोद्धटामवेत्य तर्कैर्नरिनर्ति भारती ।
चिदेकतानात्ममना निरञ्जनः स विश्वरूपो विमलीकरोतु नः ।। ५ ।।
शमं यदीयं परिचिन्त्य कोविदा जयन्ति शाम्यन्मनसः परे स्थिताः ।
स शान्तधाम्नां निवहो दयावहो दिशन्परां पातु जयेन्द्रशब्दितः ।। ६ ।।
यतीन्दुपादान् कलितेन्दुभालानभेदभावैर्धुतभेदभावान् ।
नत्वोचितं शास्त्रततिं समीक्ष्य श्रीशारदाभव्यपदप्रपन्नाः ।। ७ ।।
सत्तर्कपुष्पैः कलिताः सुमाला विन्यस्य माहर्षजनुर्जलौघे ।

राजहंसः

परिलभ्य लिप्सितमिति। अत्र परीति साभिप्रायं श्रीसरस्वत्याः करुणातिशयं द्योतयति। लिप्सितं लब्ध्वेत्युक्त्या हि यावल्लिप्सितं तावल्लब्धमिति प्रतीत्या न करुणातिशयः प्रतीयते, परिलिप्सितं लब्धवेत्यत्र तु लाभे न्यूनतैव, यथास्थिते तु समीहिताधिकफललाभलाभेनोत्कर्ष इति ॥३॥

न पञ्चमीति । अत्र निषेधपक्ष इव काकुपक्षोऽपि प्रतीयमानो ब्रह्मातिरिक्तांशे नापलप्य इत्यनिर्वाच्यत्वनिरुक्तिशारदायां द्रष्टव्यम् । स्वरूपभूतत्वमद्वयत्वं च पञ्चमकोट्याः सौगतबोधरीत्या। अपि वाऽधिष्ठानात्मना स्वरूपभूतामद्वयभूताञ्चेति स्वमतेनापि ॥४॥

परे स्थिता इति। परत्वमुत्तमत्वम् , निरतिशयं च तद् ब्रह्मण्येवेति परपदेन ब्रह्म लब्धुं शक्यम् । किञ्च परेऽपि स्थिताः = उत्कृष्टा अपि मतान्तरगा अपि च सन्त इत्यर्थः। उत्कर्षस्य नियमेनावधिसापेक्षतया तदाश्रयपरतायामपि परशब्दस्य सर्वनामसंज्ञासंभवः, मतान्तरगामितैव वा परशब्देन प्रत्येतव्या ॥६॥

पदप्रपन्ना इति। विन्यस्येत्यनेनान्वयः। ग्रन्थपक्षे शारदेतिपदं प्रपन्नाः, तद्बोध्यत्वात्, खण्डनग्रन्थस्य प्राचीनन्यायादिखण्डनपरस्य नव्यन्यायाद्यध्येतृदृष्ट्या प्रसक्तं शारं = दोषैः कर्बुरत्वं कालुष्यमिति यावत् , द्यति खण्डयतीति व्युत्पत्तेः । किञ्च खण्डनग्रन्थस्य हृदयं ददाति = प्रकाशयति, तस्मिन् स्फूर्तिं स्वातन्त्र्यं वा वितरतीति, शारदातिलकटीकायां हि 'शरः स्वतन्त्रं हृदयं स्फुरत्ता परमेशिता । शारश्चेत्युदिताः शब्दाः पर्यायाः इत्यभिधानमुपन्यस्तम् । औचित्यात्स्वतन्त्रशब्देऽत्र भावप्रधानत्वमादृतम् । किञ्च मूलग्रन्थस्य द्रुहिणात्मनाऽध्यवसितस्य स्वोचितकार्यकारितायां साहाय्यविशेषप्रदातृतया तत्पत्नीत्वेनाध्यवसितेयं शारदेति व्याख्या निगद्यते। निरूपितश्चैतच्छ्लेषेण 'चिराय चायमात्मोचित-

शारदा

तुरीयचर्याचरणेषुचित्रं सन्द्रक्ष्यते शङ्करचेतनेन ।। ८ ।।
येन क्षुद्रं लब्धं चित्तं दोषे दृष्टिस्तस्यावार्या ।
धीरो विश्वं दुष्टं दृष्ट्वा दोषं द्रष्टा का नो हानिः।। ९ ।।

अथ शिष्टताव्यक्तिजननीमन्तरायततिशमनीं चितिस्तवनीमातनोति अविकल्पेत्यादिना। श्रुतिषु श्रुतः = **श्रुत्यधीनशाब्दबोधविषयः। तात्पर्यनिर्णायकलिङ्गानां ब्रह्मविषयत्वसूचनाय बहुवचनम् एवञ्चात्र ''शास्त्रयोनित्वात् ''तत्तु समन्वया'' दिति सूत्रद्वयार्थ उपक्षिप्तः।**

राजहंसः

माचरन्नि' त्यादिग भूमिकायाम् । मालापक्षे तु पदात्रपन्नाः, तन्निर्माल्यत्वात् । सत्तर्कपुष्पैरिति। तर्काणां कर्कशत्वेन कोमलिमातिरिक्तधर्म एव रूपकबीजसादृश्यघटकतया ग्राह्यः। मालात्मना शङ्कलनीयपुष्पत्वेन रूपणं तु ग्रन्थरचनापरिपाटीषु संकलनाकौशलस्यावश्यकत्वप्रतीतये। विकीर्णस्य संग्रहः, संक्षिप्तस्य विस्तरः उक्तोपपादनम् अन्यत्र सञ्चारितयुक्तेर्विषयान्तरे संचारः, लेखनकौशलमजानता लिखितस्य सौष्ठवेन लेखनम्, अनुक्तकथनञ्चेतिग्रन्थरचनाप्रकारेषु हि सङ्कलनाकौशलापगमे ग्रन्थस्योपहास्यतैव। अनुक्तत्वस्य तु क्वचिदर्थेऽनादौ प्रवाहे वक्तुमशक्यत्वेऽपि विद्वद्विशेषीयापूर्वत्वप्रकारकमत्यैव व्यवहारः । केनचिदुक्तार्थस्य तु प्रतिबिम्बं छायां चानादाय 'तत्त्वस्यान्यस्य सद्भावे पूर्वस्थित्यनुयाय्यपि । वस्तु भातितरां तन्व्याः शशिच्छायमिवाननम् । अक्षरादिरचनेव योज्यते यत्र वस्तुरचना पुरातनी । नूतने स्फुरति काव्यवस्तुनि व्यक्तमेव खलु सा न दुष्यतीति ध्वन्यालोकोक्तरीत्यैव निबन्धनं स्वग्रन्थे कामनीयकमातनोति न त्वन्यथेति तु मन्तव्यम् ॥

माहर्षेति। गङ्गाप्रवाहपक्षे महर्षेर्जह्नोरिदं माहर्षं जनुर्यस्येत्यर्थः। अपि वा मा श्रीः तद्धर्षो भगवान् पुरुषोत्तमः, तस्माज्जनुर्यस्येति। ग्रन्थपक्षे तु श्रीहर्षः प्रसिद्ध एव, मा = विद्या तां प्रचारैर्हर्षयति तया वा हृष्यतीत्येवमपि तत्पक्षे योजनीयम् । **तुरीयचर्याचरणेति** । तुरीयचर्या = चतुर्थाश्रमस्तदनुकूलाचरणेषु प्राक्तनमहात्मगतेषु चित्रं = द्वैतोदन्तोपशमनप्रयुक्तश्चमत्कारः, अतएव सकलक्लेशोपनिपातोपायानात्ममतितिरस्कारेण खण्डनपदार्थो द्वैतोपशमावगम एव मिष्टभोज्यविशेषात्मकखण्डखाद्यात्मन रूप्यते, ग्रन्थे तादृशशब्दस्तूपचारात् । तुरीयचर्यानुकूलान्याचरणानि येषां महात्मनां तेषु, तदीयद्वैतोपशमोपदेश एवेषुः शरः, तत्प्रयुक्तं वा चित्रमिति व्याख्येयम् । तुरीयचर्या च रणेषु = उपस्थित्वाद्वाक्सङ्गरेषु चित्रं च सन्द्रक्ष्यते तुरीयचर्याचरणेषु स्वीयेषु सत्स्विति चार्थस्तु सम्भवन्नपि विनयाननुरूपत्वात्त्याज्यः। प्रवाहपक्षे तु चित्रमिति व्यस्तमेव, उदके कुसुमकलापोपकल्पने हि चित्रत्वमनीषोन्मेषोऽनुभूतिमानित एव । सप्तम्यन्तस्य तु हरिहरद्रुहिणत्रितयोत्तीर्णतया तुरीयाचर्या = अवस्था यस्या सा विश्वाम्बैव तच्चरणेषु वसतेत्यवर्णलभ्यम् वासः पुनर्वासनामात्रानुप्राणित इत्यन्यदित्यर्थः ॥७-८॥

विश्वं दुष्टमिति। विश्वस्य त्रिगुणात्मकतया रजसा तमसाऽपि च स्वप्रभावस्य तत्रावश्यमाधेयत्वादिति भावः ॥९॥

शिष्टतेति । शिष्टताव्यञ्जकत्वेन शिष्टाचारप्रमाणकत्वमुक्तम् । शमनीमिति। निवृत्तियोग्यामित्यर्थः। यद्यपि देवताप्रसादो मङ्गलफलम् विघ्नात्यन्तभावस्थलसाधारण्यात्, तेन हि सति विघ्ने तद्ध्वंसोऽसति तु प्रारिप्सितकृत्यौपयिकदृष्टकारणान्तरस्योपहारो वैशिष्ट्याधानं वा तत्र क्रियत

शारदा

अथासौ बोधः सप्रकारको वा निष्प्रकारको वा, आद्ये ''तमेव विदित्वे'' त्यादिश्रुतिविरोधः आत्मातिरिक्तप्रकाराणां मुक्त्यौपयिकवेदनविषयत्वे एवकारासङ्गतेः। द्वितीये शाब्दत्वस्य सप्रकारकत्वव्याप्तयाऽसम्भव इत्याशङ्क्याहा विकल्पविषय इति। संसर्गताख्यविषयत्वानिरूपकबोधात्मकमानसवृत्तिविषय इत्यर्थः। शाब्दत्वे सप्रकारकत्व-व्याप्तेरप्रामाणिकत्वेनाकाशपदाच्छब्दाश्रयत्वोपलक्षितव्यक्तेरिवाद्वितीयादिपदाद्द्वैता-भावोपलक्षितात्मव्यक्तेर्भानोपगमात्रानुपपत्तिः। अथाकाशादिपदस्यापि शब्दाश्रयत्वविशिष्टे एव शक्तिः, नच-नियतोपस्थितिविरहान्न शब्दाश्रयत्वस्य शक्यत्वम् कदाचिदष्टद्रव्याति-रिक्तद्रव्यत्वेनापि गगनोपस्थितेरिति वाच्यम् व्युत्पत्तिवैचित्र्यात् कस्यचिद्गवयत्वेन कस्यचिद्गोसदृशत्वेनोपस्थितावपि लाघवाद्गवयत्वविशिष्टस्यापि शक्यत्वमिवात्रापि शब्दविशिष्टस्यैव तत् शक्यतावच्छेदकश्च शब्द एव, तद्वत्त्वं तु संसर्गमर्यादया लभ्यम् विनिगमनाविरहेण ककारगकारादीनां सर्वेषामेव शक्यतावच्छेदकत्वे तेषामनुगमकं शब्दत्वम्, अन्यथा शक्त्यानन्त्यप्रसङ्गः शक्यतावच्छेदकमपि च शक्यम् अन्यथा गोत्वादेरप्यशक्यतापत्तेरिति नाकाशपदादपि व्यक्तिमात्रभानमिति चेन्नेदमादरणीयम् वैषम्यात्, व्यक्त्यानन्त्येन गवादिपदानां विशिष्टे शक्त्यौचित्येऽपि नाकाशादिपदानां विशिष्टे शक्तिः व्यक्त्यैक्येनानन्त्यव्यभिचारशङ्कानुदयात् , विशिष्टे शक्तेरुपगमे गौरवात् निष्प्रयोजनत्वात् । एतेन - आस्तां शब्दस्याशक्यता किन्तु तस्य शक्यतावच्छेदकत्वं न त्यागार्हम् , धर्म्यंशे प्रकारतया शाब्दबोधे भासमानतायां शक्यतावच्छेदकत्वस्यैव प्रयोजकत्वात् , गवादिपदाद् गोत्वादिना गवादेरिवाकाशपदादपि शब्दाश्रयत्वेनाकाशस्य स्मरणशाब्दबोधौ, क्वचिदष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वादिना तौ शक्तिभ्रमादेव, नतु कदाचिन्निष्प्रकारकौ तौ, याभ्यां रूपाभ्यां विशिष्टयोर्ययोः सम्बन्धग्रहः, तदन्यतररूपेणैव तयोरेकतरज्ञानेनापरावगम इति नियतेर्हस्तिहस्तिपकादाववधारणादितिनिरस्तम् , यदि हि गगनादिपदाधीनशाब्दबोधस्य सप्रकारकत्वमभ्युपगम्येत तदाऽतिप्रसङ्गभङ्गाय शब्दस्य शक्यतावच्छेदकत्वमास्थीयेतापि, यदा तु गगनादिपदात्सप्रकारकबोधस्यानुपगम एव, तदा शब्दस्य शक्यतावच्छेदकतोपगमो निष्प्रयोजनत्वात् गौरवापादकत्वाच्चानुचित

राजहंसः

इत्येव श्रद्धेयः सिद्धान्तः, तथापि विघ्ननिवृत्तियोग्यता सर्वत्र मङ्गलेऽगलितैवेति भावः। चरमजन्मनामपि च प्रवृत्तिरदृष्टफलमनुपार्जयन्त्यपि दृष्टफलोपार्जने प्रभवत्येव, अतएव भगवत्कृष्णद्वैपायनप्रभृतीनां श्रीशुकादिपुत्रोत्पत्तये तपश्चरणस्मरणमुपपद्यत इति ।

स्तवनीमिति। वचोव्यक्तिं विशेष्यतयानुसन्धाय प्रयुक्तमिदं करणे ल्युटि ङीपि रूपम् । **संसर्गताख्यविषयत्वानिरूपकेति** । संयोगादिस्वरूपलक्षणवाक्यतोऽपि निर्विकल्पकबोधाभ्युपगमेन तत्साधारण्याय संसर्गाविषयकेति नोक्तम् ।

अनुपगम एवेति। उक्तगौरवानुसन्धाननिष्णातस्येतित्वौचित्यप्राप्तम् । अन्यस्य त्वदुदितदिशा

शारदा

एव । एतेन प्रमेयत्वादेरप्याकाशादिपदजन्योपस्थितिशाब्दबोधप्रकारतापत्तिरित्यवधीरितम् अत्र तयोर्निष्प्रकारकयोरेवोपगमात्। अतएव घटादिपदाच्छिद्रेतरत्वादेरन्वयावगमो मा भूदिति वृत्त्या शब्दोपस्थापितेनैव शब्दस्यान्वयबोधकताया उपेयत्वे कथमाकाशपद-शक्यत्वतदवच्छेदकत्वाभ्यां विधुरस्य शब्दाश्रयत्वस्य तत्पदजन्यबोधीयविषयतेत्याशङ्क्य ''अस्तु वा पदादपि निर्विकल्पकमिति'' शब्दमणावभाणि । ज्ञानत्वस्येव स्मृतित्वशाब्दबोधत्वयोरपि सप्रकारकत्वाव्याप्यत्वात् । स्मृतेर्निर्विकल्पकत्वोपगमे प्रमेयत्वादिसामान्यलक्षणाधीनज्ञानाधीनसर्वविषयकनिर्विकल्पकस्मृतिबलात्स्वरूपतो निखिलजातिप्रकारकं मानसज्ञानं तु सामान्यलक्षणामनङ्गीकुर्वति न शक्यमापादयितुम्।

अतएवानुभवस्य स्वसमानप्रकारकस्मृतिजनकत्वमिति न नियमः, किन्तु स्वीयप्रकारान्याप्रकारकस्मृतिजनकत्वमित्येव, अतएव ''अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिरिति'' पातञ्जलसूत्रमपि सङ्गच्छते, अनुभूतविषयातिरिक्तविषयिका स्मृतिरिति तदर्थः। एवञ्च शब्दाश्रयत्वादिविशिष्टविषयकानुभवोऽपि शुद्धे स्मृतिमाधातुमीष्टे। जात्यखण्डोपाध्यति-रिक्तस्याप्येतादृशस्थले स्वरूपतो भाने बाधकाभावात् नाकाशस्य तादृशभानानुपपत्तिः। उपलक्षणव्यावृत्तविषयकत्वेन निर्विकल्पकबोधयोरपि प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावोपगमाच्च शब्दाश्रयो नैक' इति बाधग्रहदशायां गगनमिति वाक्यान्न शाब्दबोधापत्तिः, अतएव लघुचन्द्रिकायामाचार्यैः – 'रूपमन्धगम्यमिति रूपमन्धगम्यत्वाभाववदिति' वाक्ययोः

राजहंसः

शक्तिभ्रमजन्य एव सप्रकारको बोधः प्रमाणानां लघ्वर्थपक्षपातितायास्त्वयैव बाधदीधितावभिधानात्। तथा च गगनपदं विशिष्टवाचकं पदत्वात् पटादिपदवदित्यनुमाने नानाव्यक्तिवाचकत्वमुपाधिः, गगनपदं शक्त्या सप्रकारकबोधाधायकं पदत्वात्पटादिपदवदित्यत्र च विशिष्टशक्तत्वम् । शब्दो गगनपदशक्यतावच्छेदकः शक्तिभ्रमाप्रयोज्याया लक्षणाग्रहाप्रयोज्यायाश्च गगनपदजन्यशाब्दबोधीय-प्रकारताया आश्रयत्वादित्यत्र तु शक्तिभ्रमाप्रयोज्यत्वं विशेषणमसिद्धम् । अन्यथाऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वेऽपि गगनपदशक्यतायास्तदवच्छेदकताया वा तव स्वीकारप्रसङ्गात्, लाघवपक्षपातस्य प्रमाणेष्ववहेलनादिति समुदायार्थः ।

न शाब्दबोधापत्तिरिति। यद्यपि गगनमिति वाक्यस्य समानविभक्त्यन्तपदाघटितत्वेन न निर्विकल्पकबोधजनकत्वसम्भवः, न वोक्तबाधग्रहस्यापि निर्विकल्पकत्वम् भेदविषयकत्वात्, एवं च स्मृतित्वे सप्रकारकत्वव्याप्तिभङ्गेऽपि न शाब्दत्वे तद्भङ्गः, न च गगनमितिवाक्यजबोधे सुबर्थैकत्वस्य प्रकारतया भानेऽपि विशेष्यस्य स्वरूपेण भाने तदंशे निर्विकल्पकत्वं निर्बाधम्, गवादिपदघटितवाक्यजबोधस्यापि गोत्वाद्यंशे निर्विकल्पत्वेऽपि विशेष्यांशे तदूपपादनायैव गगनादिपदपर्यन्तधावनसम्भवादिति वाच्यम् , सामान्यतः शाब्दत्वे सप्रकारकत्वनियतेरनिवारणात्, तथापि सुबर्थैकत्वाविवक्षादशायां गगनमितिवाक्याद्वस्तुमात्रविषयकतया निर्विकल्पानुभवे न बाधकम्। यदा हि केचित्प्राथमिकपदार्थोपस्थितिस्थानेऽप्यनुभवनमेवाभिषिञ्चन्ति तत्तानुल्लेखात् तदा तात्पर्यालोचनानन्तरप्रसूतमतेरनुभूतितायां को विप्रतिपद्येत। निर्विकल्पकबोधयोरिति द्विवचनं तु स्थलान्तराभिप्रायेणेति। वस्तुतस्तु किमिह दृष्टान्तगवेषणप्रयासैः, निर्विकल्पमतेरौचित्यानीतत्वात् तथाहि– न तावदियं भाषा वैकल्यालम्बिनी, न च सर्वस्य प्रतिपादयितुस्तत्राकौशलम्, न च न कश्चिद्वस्तुमात्रप्रतिपित्सुरपि न चानुकम्पकस्य वक्तुरुपेक्षामपि सर्वोऽर्हति न च वस्तुमात्रमसंस्पृष्टं

शारदा

समानविभक्तिकपदघटितत्वेन निर्विकल्पकबोधजनकतां समर्थ्य ''यथाह्युपलक्षणविधया व्यावर्तकधर्मस्य बाधकधीविषयत्वं तथोपलक्षणविधया बाध्यधीविषयस्य बाध्यत्वं न्यायतौल्यादि''ति ग्रन्थेन तादृशवाक्यजबोधयोर्बाध्यबाधकभावो निरूपितः। यदि तु

राजहंसः

प्रकारैरलीकमपि, विशिष्टघटकतया परैरपि तदुपगमात्, न च न शाब्दी वृत्तिस्तात्पर्यवशंवदापीत्यकामेनापि निर्विकल्पमतिरुपेतव्या, माऽन्यथा प्रसाङ्क्षीदवक्तृतादिकमिति। एतच्चाकाङ्क्षादौ तात्पर्यविषयनिवेशन ध्वनितमेव परतोऽखिलमिति।

एवं च समानविभक्तिकत्वं नाखण्डार्थतानियतम्, नीलो घट इदं रजतमित्यादौ व्यभिचारात्, अन्यथा विशेषणविशेष्यभावाध्यासबाधसामानाधिकरण्यानामैक्यसामानाधिकरण्यपार्थक्येन परिगणनस्य प्राचामसामञ्जस्यापत्तेः। नापि लक्षणवाक्यत्वम् सर्वेषु तटस्थलक्षणेष्वपि केनाखण्डार्थताऽनुमन्येत, विशिष्टेऽपि तात्पर्यस्य क्वचित्सम्भवात् पूर्वकल्पेऽपि चैतत्समानम्। अपि तु स्वरूपतात्पर्यकवाक्यत्वम् स्वरूपमात्रबुभुत्सानिवर्तकवाक्यत्वं वा। न चैतयोर्वस्तुसतोर्नाखण्डार्थबोधोपयोगः, किन्तु ज्ञातयोरिति स्वरूपे तात्पर्यं गृह्णता स्वरूपमात्रबुभुत्सानिवर्तकतया प्रयुक्तवाक्यत्वं वाऽवगच्छता स्वरूपमात्रं प्राक् परिचेतव्यमेवेति किमन्योन्याश्रयपराहतेन व्यर्थेन वा बोधान्तरेणेति वाच्यम्, प्रकारताविशेष्यताभावमवधीर्य विषयतात्वेनैव रूपेण तत्तत्पदार्थनिष्ठविषयतानां परस्परनिरूप्यनिरूपकभावमागतानां तात्पर्यज्ञाननिष्ठकारणतायामवच्छेदकतोपगमेन परस्पराश्रयपरिहारो यद्यपि सप्रकारकबोधस्थले एव संगतः, तथाप्युपक्रमादिग्रहायत्त शक्तिविशेषात्मकतात्पर्यज्ञानं निष्प्रकारकावगमस्थलेऽपि प्राक् सम्भवत्येव, स्वरूपमात्रबुभुत्सानिवृत्तियोग्यतावच्छेदकञ्च स्वरूपतात्पर्यकत्वमेवेति द्वितीयस्यापि प्रथमे एव पर्यवसानमिति तु वस्तुगतिः। स्वरूपतात्पर्यकत्वज्ञानार्थं सम्पादनीयस्य स्वरूपज्ञानस्यागृहीताप्रामाण्यकत्वे बोधान्तरस्य वैयर्थ्येऽप्यन्यथा सार्थक्यमस्त्येवेति निष्पक्षपातः पन्थाः। समानविभक्तिकपदघटितत्वेनेति त्वग्रे स्वरूपतात्पर्यकत्वस्याप्युपलक्षणम्, तेन विना समानविभक्तिकत्वमात्रस्यानुपदोक्तरीत्याऽकिञ्चित्करत्वात्। बाध्यधीविषयस्येति। उपलक्षणयोर्बाध्यबाधकधीविषयत्वोपगमेऽपि विशेषणविधया विषयशरीरान्तः पातित्वाभावेन फलतो वस्तुमात्रविषयकत्वमक्षतं सप्रकारकयोरपि तादृशवाक्यजबोधयोः, एवञ्च निर्विकल्पकत्वं वस्तुमात्रविषयकत्वेन, न तु निष्प्रकारकत्वेन, उपलक्षणविधया प्रकारतायाः, सोढव्यत्वादिति। वस्तुतस्तु फलीभूतनिर्विकल्पकमतौ न सप्रकारकत्वमुपलक्षणमादायापि रक्षितुमुचितम्, अवान्तरबोधे तु विशेषणतयापि सप्रकारकत्वं न त्यक्तुमुचितम् उत्सर्गतो विशेषणतयैव धर्माणां प्रथनात्। अथैवमवान्तरबोधयोरेव प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावोपगमोऽस्तु, पश्चादुद्भवतोर्निर्विकल्पकबोधयोस्तथाभिधाने किं बीजमिति चेत्, न तावदज्ञाननिवृत्तिं विना तत्कार्यभ्रमसंशयनिवृत्तिः' न च वस्तुमात्रविषयकमज्ञानमतादृशा ज्ञानेन निवर्त्यते, न च सप्रकारकं ज्ञानं तादृशमिति निष्प्रकारकज्ञाने एव तत्तद्धर्मप्रकारकज्ञानजन्यत्वप्रयुक्तं तत्तद्धर्मप्रकारकभ्रमादिनिवर्तकत्वमज्ञाननिवर्तकत्ववद् व्यवह्रियते न तु तार्किकसम्मतप्रतिबध्यप्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्माक्रान्तताऽवान्तरबोधयोस्तिरस्क्रियते, फलीभूतबोधाधीनाबोधविध्वंसं विना तादृशधर्माक्रान्तताया अकिञ्चित्करतया तु निर्भरो निर्विकल्पकबोध एव विधीयते। तत्तेदन्तादेर्विशेषणतास्थले तत्कालावच्छिन्नत्वस्यैतत्कालेऽसम्भवेन विशेषणस्य च

शारदा

'अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमर्थे शब्दः करोति ही' त्यनुभवानुरोधिन्यायात् शाब्दबोधं प्रति बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकतैव न, अतएव मङ्गलवादयोग्यतावादमणिमाथुर्यादौ बाधनिश्चयस्य तत्संशयस्य च शाब्दबोधाप्रतिबन्धकतोक्ता व्यक्तीभविष्यति चेदमुपरिष्टादिति मतमीक्ष्यते तदा 'शब्दाश्रयो नैक इति बाधग्रहदशायामपि गगनमित्यादिवाक्याच्छाब्दबोधे नेष्टापत्तिविधौ बाधकं किमपि। आकाशपदाच्छब्दाश्रयत्वोपलक्षितव्यक्तेरुपस्थितेरेव च न 'शब्दाश्रयो गगनमिति' वाक्ये गगनपदस्य तद्वाच्यत्वादिपरत्वकल्पनया जघन्यवृत्याश्रयणप्रसङ्गोऽद्वैतिनाम्, अपि तु परेषामेव। न च निर्विकल्पकोपस्थितिविषयस्याकाङ्क्षादिशून्यत्वात्कथं शाब्दबोधेऽनुप्रवेशः, एकपदव्यतिरेकप्रयुक्तमपरपदनिष्ठं तात्पर्यविषयाननुभावकत्वं ह्याकाङ्क्षा, अव्यवधानेन शाब्दबोधानुकूलपदार्थोपस्थितिश्चासत्तिः, तात्पर्यविषयाबाधश्च योग्यता, तदेतत्त्रयमपि न संसर्गघटितमिति प्रकृते सम्भवत्येव तदिति।

राजहंसः

विधेयान्वयित्वनियमेन तु गृहीताप्रामाण्यकतया बोधे प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्माऽऽश्लेषोऽपि दुर्लभ इत्यन्यत् । पूर्वमेव विरोधप्रतिसन्धाने बोध उत्पद्यते वा न वेति तु प्रतिबन्धकस्य कार्यानुत्पादप्रयोजकत्वमुत्पन्नेऽप्रामाण्यज्ञापकत्वं वेति मतभेदेन समाधेयम् । न च वस्तुमात्रविषयकमज्ञानमेवाप्रसिद्धम् , तत्तद्धर्मोपलक्षितविषयकस्य तस्यादौर्भिक्ष्यात्। विशिष्टे शक्तिस्थले चैषाऽवान्तरधीरीतिः । व्यक्तिमात्रशक्तिस्थले तु प्रथमत एव निर्विकल्पमतिप्रसवसम्भवेन नवान्तरविशिष्टबोधोररीकारक्रम इति तादृशस्थले निष्प्रकारबोधस्यैव यथासंभवं प्रतिबध्यता प्रतिबन्धकता चेति । एवञ्चात्रेदन्त्वादिप्रकारकोऽपि व्यामुग्धो बोधो निर्विकल्पक इति मीमांसकादिमतात्, स्वलक्षणमात्रविषयको बोधः स इति सौगतसम्मतात्, प्रकारितादिविषयितात्रयशून्यतया जातिव्यक्त्यादिनिरूपिततुरीयविषयिताशाली स इति तार्किकसिद्धान्तात्, उपलक्षणविधया प्रकारतानिरूपकोऽपि वस्तुमात्रविषयकः स इति केषाञ्चिद्वेदान्तिनां मन्तव्याच्च पृथक्कृत्यैकवस्तुमात्रविषयकः प्रकारितादित्रयशून्य एव निर्विकल्पो बोध इत्युपन्यस्तं मतम् ।

बाधकं किमपीति । वस्तुतस्तु सुबर्थसङ्ख्याऽविवक्षायां परमतेऽप्युक्तबाधग्रहदशायां गगनमिति वाक्यादिष्ट एव बोधः । परमते शब्दाश्रयत्वप्रकारकः, एतन्मते त्वनवच्छिन्नविषयताक इत्यन्यत् । तद्वाच्यत्वादीत्यादिनाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वपरिग्रहः । **तात्पर्यविषयेति** । अन्वयस्थाने तात्पर्यविषयस्यान्वय बोधस्थाने च शाब्दबोधस्य प्रवेशेन तार्किकमताद्वैषम्यम् । **सम्भवत्येवेति।** यत्तु येन वाक्येन यत्र यद्वैशिष्ट्यावगाहिशाब्दानुभवो जन्यते तद्द्वारकबोधे तद्वाक्यतद्गताकाङ्क्षायोग्यताऽऽसत्तिहेतुत्वे मानाभावः। तथा च धूमोऽस्तीति वाक्यस्य वह्न्यादिबोधे इव सत्यादिवाक्यस्यापि सत्यत्वादिवैशिष्ट्यविषयकशाब्दानुभवद्वारकाखण्डार्थबोधेऽपि न तद्धेतुत्वम् । एतावांस्तु विशेषः – प्रथमस्यानुमितित्वेन तदजन्यत्वम् , द्वितीयस्य तद्गतलक्षणाज्ञानजन्यत्वेन शाब्दत्वेऽपि संसर्गाविषयकत्वेन, तत्संसर्गकशाब्दस्यैवोक्तजन्यत्वस्वीकारात्, विशिष्टार्थे पदवृत्तिज्ञानस्यैवाकाङ्क्षादिसहकारिकत्वकल्पनात्, शुद्धवाक्यार्थानुभवे तु तत्तात्पर्यज्ञानादिसहकृतस्य शुद्धलक्षणाज्ञानस्यैव हेतुत्वम् । निराकाङ्क्षादौ मृद्घट इत्यादौ च शुद्धलक्षणाज्ञानस्य क्वचित् सत्त्वेऽपि पदविशेषसमभिव्याहारज्ञानजन्यशाब्दबोधस्य द्वारीभूतस्य सहकारिणो विरहेण नाखण्डार्थबोध इति सत्यादिवाक्यार्थाखण्डत्वोपपत्तिप्रकरणे द्वितीयपरिच्छेदे लघुचन्द्रिकायामुक्तम् ; तद् यदि विद्वन्मानसावर्जि, तदा का नो हानिः, प्रत्युताकाङ्क्षादेः कारणताया अकल्पनीयत्वेन महल्लाघवमेव । परन्त्वेवं फलीभूतबोधे मानसत्वमेव कुतो नानुमन्यते? तत्र शाब्दत्वानुभवस्तु यदि स्यात्तदा वाक्यजत्वं प्रतिसन्धायेति

शारदा

अपि च तात्पर्यलिङ्गबलात्स्वरूपपरतायाः श्रुतीनां निर्णये 'कश्चन्द्र' इति स्वरूपप्रश्नोत्तरत्वेन प्रयुज्यमानानां 'प्रकृष्टप्रकाश' इत्यादिवाक्यानामिव प्रश्नोत्तरवैयधिकरण्यापत्तिभियाऽखण्डार्थपरत्वमनुमन्तव्यमेव, क्वचित् 'कश्चन्द्रधर्मः किंलक्षणश्चन्द्र, इत्यादि धर्मप्रश्नोत्तरत्वेन तादृशवाक्यप्रयोगेऽपि स्वरूपप्रश्नवाक्ये किंशब्दस्य धर्मबोधकपदासमभिव्याहृतत्वेन बुभुत्सामात्रसूचकत्वात् धर्मबुभुत्सायां लक्षणाया अप्रामाणिकत्वात् 'न हि खल्वनुन्मत्त आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे' इति न्यायेन 'आकाशस्तल्लिङ्गादिति' सूत्रितसिद्धान्तबीजभूतेन प्रश्नानुसारेणैवोत्तरस्य नेयत्वात्, लक्षणवाक्येषु व्यावृत्तिबोधकपदाभावेन स्वरूपबोधनद्वारैव व्यावृत्तेर्लाभेन व्यवहारकर्तव्यतायाश्च प्रश्नोत्तरव्यधिकरणतापत्तिभीत्यैव बोधासम्भवेनासाधारणचन्द्रस्वरूपप्रतिपत्तावेव च चन्द्रशब्दवाच्यताव्यवहारसम्भवेन प्रथमं तस्या आवश्यकत्वे तज्जनकत्वेनैव लक्षणवाक्यप्रामाण्योपपत्तौ व्यवहारकर्तव्यतापरताया अप्रामाणिकत्वेन प्रश्नार्थं चन्द्रस्वरूपज्ञानापेक्षणेऽपि भ्रमविरोधिज्ञानोदयाय प्रश्नसम्भवेन च न प्रकृष्टप्रकाशादिपदानामिव सत्यादिपदानामपि स्वरूपातिरिक्तपरत्वमिति चिदात्मनि निरुक्तनिर्विकल्पकबोधविषयत्वसम्भव इति ।

तदेतत्सर्वं ''श्रुतिस्तस्मिन्नविद्यादशायां पराभ्युपगमरीत्या प्रमाणमित्युच्यते'' इत्यग्रिमग्रन्थानुसारेण। वस्तुतस्तु स्वात्मसिद्धमेव चिद्रूपमि''ति वक्ष्यमाणनिष्कृष्टकल्पे तु– ''अविकल्पविषय'' इत्यस्य विकल्पो वृत्त्यात्मको बोधस्तदविषय इत्यर्थः। वृत्तिविषयतादशायां ब्रह्मणः शुद्धत्वासम्भवात् शुद्धस्य न वृत्तिविषयत्वमित्याशयः। अत एव विकल्पस्तर्कस्तदविषय इत्यर्थः ''नैषा तर्केण मतिरापनेये'' तिश्रुतेः। असंसृष्टत्वाच्च ब्रह्मणो न तर्कविषयता, तदुक्तं बौद्धाधिकारे ''तन्निर्धर्मकमिति विचारासंस्पृष्टं तस्य धर्मधर्मिभावमुपादायैव प्रवृत्ते'' रिति । स्वतःसिद्धत्वादेव च विकल्पो विरुद्धकोटिकं ज्ञानं तदविषय इत्यर्थः। सामान्यत आत्मनि कस्याप्यविप्रतिपत्तेः, तं विना विप्रतिपत्तेरेवासम्भवादित्याशयः। नचैवं सर्वथैवाविषयत्वे तस्य श्रुतिप्रमाणकत्व-

राजहंसः

स प्रतिकूलस्तत्र भवताम् नहि शब्दमपास्य तद्गतलक्षणाग्रहजन्यत्वेन शाब्दत्वानुभवो निर्विवादः । वाक्यस्य कारणत्वे तु तद्गताकाङ्क्षादेः कारणता हठादायाति। यदि तु नास्ति तत्र शाब्दत्वानुभवः, तदा मानसत्वेऽपि न बाधकं किञ्चित्। औपनिषदत्वं तु शुद्धे उपनिषद्घटकशब्दगतलक्षणा-ज्ञानजन्यग्रहविषयत्वेनेव परम्परयोपनिषत्सापेक्षप्रतीतिकत्वेनापि सम्भवत्येव । शुद्धे तात्पर्यग्रहेण विशेषणानां त्यागस्य शाब्दे इव मानसेऽपि सम्भवात् । शब्दतात्पर्यग्रहस्य शाब्दे एव हेतुता दृष्टेति तु शाब्दस्य शब्दादिजन्यत्वमपि दृष्टमिति समानमेव । शाब्दबोधेच्छावशाच्छ-ब्दाप्रयोगस्थलेऽपि पश्यतः श्वेतिमा[१] रूपमित्यादौ शाब्दोपगमं तु क इवोररीकुर्यात्, इच्छाननुसारित्वाज्ज्ञानगतवैजात्यस्य तत्रार्थापत्तेरेव यौक्तिकत्वात् ।

ब्रह्मगगनादिसाधारणव्यवहारकालाबाध्यत्वादिविशिष्टे सत्यादिपदशक्तिर्नतु व्यक्तिमात्रे इति पक्षेऽपि सप्रकारकबोधद्वारा तात्पर्यबलाल्लक्षणया निष्प्रकारकबोधोद्भवसम्भव इति भावेनाभिधत्ते **अपिचेत्यादि। भ्रमविरोधीति ।** भ्रमविरोधित्वमप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितस्यैव, प्रश्नप्रयोजकस्वरूपज्ञानस्य तु नाप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वमिति भावः । **इत्याशय इति ।** शुद्धे वृत्तिविषयत्वतदविषय-

१. आपश्यत इति सम्बन्धः ।

शारदा

व्याघातः, निर्धर्मकस्य तस्य साक्षाच्छ्रुतिप्रतिपाद्यत्वासत्त्वेऽपि नेहनानेत्यादिनाऽपरव्यावृत्तिबोधनेनैव वक्ष्यमाणदिशा फलतस्तद्बोधनोपगमात्, तदेतदप्युक्तम् – अविकल्पविषय **इत्यनेन, विविधं कल्प्यते इति विकल्पो दृश्यः, तदभावोऽविकल्पः, असन्देह इत्यादाविव समासः, दृश्यश्च ब्रह्मभिन्न एवेति ब्रह्मभिन्नव्यावृत्तिलाभेनातद्व्यावृत्त्या श्रुतिप्रतिपाद्य इत्यर्थलाभसम्भवात् । अतएव वक्ष्यति ''तदेतत्तु श्रुत्या प्रमाणेनोपलक्षणन्यायात्तात्पर्यतः प्रकाश्यते'' इति। अथासौ स्वप्रकाशो वा परप्रकाशो वा, आद्ये एकत्र विषयविषयिभावविरोधः, दृश्यत्वेन मिथ्यात्वापत्तिश्च, अतएव न द्वितीयोऽपीत्याशङ्क्याप्युक्तम्** – अविकल्पविषय **इति । विविधः कल्पः = कल्पना यत्रेति वा विगतः कल्पः = कल्पना यस्मादिति वा व्युत्पत्त्या विकल्पश्चिदात्मा तद्विषयत्वाभाववानित्यर्थः। तथाच चिदविषयत्वरूपमेव तत्र स्वप्रकाशत्वं, चिदतिरिक्तस्य सर्वस्यापि दृश्यस्य चिदध्यस्तत्वेन चित्तादात्म्यरूपविषयताश्रयत्वात् चिदविषयत्वस्य चित्येव विश्रमात् । धर्माधर्मादावपि वृत्तिप्रतिफलितचिदभेदापन्नाधिष्ठानचिद्विषत्वरूपफलव्याप्यत्वविरहेऽपि चित्तादात्म्यमस्त्येवेति ध्येयम् ।**

अथ चिद्विषयत्वघटकीभूता चित् लक्ष्यीभूतचितो यद्यन्या, तदा द्वैतापत्तिः, यद्यनन्या तदा चित्त्वमेव स्वप्रकाशलक्षणमस्तु लाघवात्, नवा तदपि युक्तम्, उद्देश्यतावच्छेदकविधेययोरैक्यात् सखण्डस्याखण्डस्य वा भावभूतधर्मस्य ब्रह्मण्यसम्भवाच्चेत्याशङ्क्याप्युक्तमविकल्पविषय **इति । उक्तव्युत्पत्त्या विकल्पश्चिदात्मा**

राजहंसः

त्वपक्षयोर्वृत्तिरूपोपाधिकालीनं शुद्धे विषयत्वमित्यर्थे पर्यवसानेन न विरोध इति भावः । एतेनात्र श्रुतिप्रमाणकत्वपक्षं परित्यज्य पुनः परतस्तत्प्रमाणकत्वव्याघातशङ्कायां सन्दर्भविरोध इति नाशङ्कनीयम् इहापि ब्रह्मणि श्रुतिप्रमाणकत्वपक्षस्य सर्वथाऽपरित्यागात् । आपाततः परिस्फुरन्तमर्थमादाय तु ''न चैवं सर्वथैवे'' त्याशङ्का ।

विरहेऽपीति । धर्माधर्मादिस्थले वृत्तेरन्तरेव समुल्लासेनोपाध्योरेकदेशस्थतया वृत्तिप्रतिफलिताधिष्ठानचितोरभेदसम्भवेऽपि तदभिव्यक्तिर्नाङ्गीक्रियते, अन्यथा धर्मादिकं साक्षात्करोमीतिव्यवहारप्रसङ्गात् तथाचाभेदापन्नत्वमभिव्यक्ताभेदकत्वमितिभावः। **तात्पर्यादिति।** अखण्डाभावघटकतया न वैयर्थ्यमिति तार्किकपरिभाषामनादृत्येदम् तदादरे तु चिदविषयत्वलक्षणमपि स्यान्निरवद्यमिति भावः। **सा विषयो यस्येति।** फलितार्थकथनमिदम् न तु समासविग्रहवाक्याकार ईदृशः, स्त्रीलिङ्गशब्दपरकत्वाभावेन पुंवद्भावासम्भवात् अविकल्पं = शून्यत्वं विषयो यस्येत्येव तु विग्रहवाक्यम् । **निगर्व इति** । निवातशब्दवन्निशब्दस्य निषेधार्थकत्वे पङ्क्तेर्गलितगर्वतामभिप्रैति। नितरामित्यर्थकत्वे तु ममैतावन्तोऽर्था इति पङ्क्तेर्गर्वविशेषम् । कैश्चिद् ग्रन्थकारैरीदृशस्थले निगर्भ इति प्रयुज्यते, रहस्यतमोऽर्थ इति तदर्थः । अत्राविमुक्तशब्दवद् 'अविशब्देन पापानि कथ्यन्ते द्विजसत्तमै' रिति पौराणिकोक्त्याऽविशब्दस्य पापार्थकत्वेन तत्कल्पनोपपादकाज्ञानस्याविकल्पपदार्थत्वसम्भवेन बहुव्रीहितत्पुरुषाभ्यां ब्रह्मणो 'अविकल्पविषय' इत्यनेन लाभसम्भवेऽपि दर्शितानेकार्थविलक्षणप्रमेयसमर्पकत्वाभावेन तादृशार्थस्यानुल्लेखो न न्यूनतावहः, एवमकारपदार्थे वासुदेवे कल्पितत्त्वमादायाविकल्पपदेन दृश्यसामान्यलाभस्य सम्भवतोऽप्यनुल्लेख इति ।

शारदा

तद्भिन्नोऽविकल्पः स विषयो यस्येत्यर्थः। ''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक, तस्य भासा सर्वमिदं विभाती'' तिश्रुत्या ब्रह्मण एव सर्वभासकत्वेन चैतन्यरूपत्वात्, इदम्पदसामानाधिकरण्येन च सर्वपदस्यानिदमात्मकात्मव्यतिरिक्तपरत्वात् परप्रकाश्यत्वाभावत्वोपलक्षितस्वरूपताया एव स्वप्रकाशत्वपदार्थतापर्यवसानात् अभावस्याधिकरणस्वरूपतोपगमेन च भावभूतधर्मोपगमनिबन्धनदोषानवकाशात्। चिदविषयत्वस्याप्युक्तलक्षणे एव तात्पर्यादिति भावः। नन्वेवं चिद्विषयत्वस्य प्रपञ्चे स्वीकारेऽपि विषयविषयिभावस्याध्यासिकस्यैव भवन्मतसिद्धत्वेन तादृशसम्बन्धानुयोगिप्रतियोगिनोरप्याध्यासिकत्वमेवोचितं सम्बन्धसम्बन्धिनोः समानयोगक्षेमत्वादित्याशङ्क्याप्युक्तमविकल्पविषय इति। विविधं कल्प्यते इति विकल्पो दृश्यः तद्भिन्नोऽविकल्पश्चिदात्मा स चासौ विषयश्चेति समासः। अनीलं घटमानयेत्यादिसामानाधिकरण्यानुरोधान्नञर्थो लक्षणया भेदवान्, तदैकदेशभेदे प्रतियोगितासम्बन्धेन विकल्पपदार्थस्य दृश्यस्यान्वयः। विषयत्वञ्च घटादिप्रकारकधीविशेष्यत्वमधिष्ठानत्वमेव पर्यवस्यति ''समारोप्यस्य। रूपेण विषयो रूपवान् भवेत्। विषयस्य तु रूपेण समरोप्यं न रूपव'' दिति भामत्यादौ विषयपदस्याधिष्ठाने प्रयोगदर्शनात्। विषयता विशेष्यवृत्तिरतिरिक्तः पदार्थ इति केषाञ्चित्तार्किकाणां सम्मतेश्च। अधिष्ठानत्वं च मायिकसामान्यविशेषभावभूमौ परात्मनि सामान्यतो ज्ञातत्वे सति विशिष्याज्ञातत्वम्। तथाच प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नविकल्पत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितभेदत्वावच्छिन्नविशेष्यत्वावछिन्नस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताश्रयनिष्ठविशेष्यत्वावच्छिन्नाभेदसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितनिरुक्तविषयत्ववद्विशेष्यताको बोधः। विकल्पनिष्ठप्रकारत्वनिरूपितविशेष्यत्वस्य भेदवन्निष्ठविशेष्यनिरूपितप्रकारत्वस्य च भेदनिष्ठत्वेन सामानाधिकरण्यात् एवं विषयनिष्ठविशेष्यत्वनिरूपितप्रकारत्वस्य भेदनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वस्य च सामानाधिकरण्यादवच्छेद्यावच्छेदकभावो बोध्यः। अयमाशयः- आध्यासिकसम्बन्धवतोरेकस्यैव मिथ्यात्वं न तु द्वयोः, शून्यवादप्रसङ्गात्, तथाचानुस्यूतत्वात्साक्षित्वाच्च चित एवाधिष्ठानत्वं वाच्यम् असाक्षिकबाधायोगात् यदाहुः ''बाधितोऽपह्नवो मानैर्व्यावहारिकमानता, मानानां तात्त्विकं किञ्चिद्वस्तु नाश्रित्य दुर्भणे''ति। तदेतदप्युक्तमविकल्पविषय इति। अविकल्पा = अविकल्पत्वेनाभिमता सुगतमतानुगता शून्यता सर्वकल्पनानास्कन्दिताया एव तस्यास्तैरूपगमात् कोटिचतुष्टये एव कल्पनाविश्रान्तेः। सा विषयो यस्य तादृश इत्यर्थः। दृश्यसामान्याभावातिरिक्तायास्तस्या अप्रामाणिकत्वेन दृश्यसामान्याभावस्य च व्यावहारिकत्वकल्पे ब्रह्मभास्यत्वावश्यम्भावात्। तथा च ब्रह्मण एवाधिष्ठानत्वम्। अतएव च तस्य कालानवच्छिन्नत्वमपि, अन्यथा शून्यवादापत्तितादवस्थ्यात् तदेतदप्युक्तम् अविकल्पविषय इति। विशेषेण कल्पस्य= कालविशेषस्य विषयो नेत्यर्थः। कालानवच्छिन्न इति तात्पर्यार्थः। एवं च यद्यपि ''अध्यस्तमेव परिस्फुरित भ्रमेष्वि'' त्यभियुक्तोक्तेरध्यस्ततादात्म्याद्युपहितरूपेणाधिष्ठानस्यापि मिथ्यात्वम्। तथापि स्वरूपेण पारमार्थिकत्वमेवेति निगर्वः।

ईश्वरमुमया न परं वन्दे नु मयापि तमधिगतम् ।।१।।

शारदा

ननु-अविकल्पविषय इत्याद्येकवचनेन ब्रह्मणि सजातीयद्वितीयराहित्यलाभेऽपि द्वैतसामान्याभावस्यालाभात् कथं ब्रह्मातिरिक्तस्याध्यासिकत्वलाभ उक्तविशेषणेन । न ह्येकवचनस्य द्वितीयसामान्यराहित्यमर्थः, तथासति लोके एकवचनप्रयोगविलोपापातादित्यत आह–एक इति। द्वैतसामान्याभावोपलक्षित इत्यर्थः। ''एकमेवाद्वितीय'' मिति श्रुतेः। यद्यप्येकशब्दोऽप्येकवचनसमानयोगक्षेम एव तथापि सजातीयद्वितीयराहित्यमात्रार्थकत्वे एक इति विशेषणस्यैव वैयर्थ्यापत्तिः, तादृशार्थस्यैकवचनादेव लाभात्, तस्मादुक्त एवार्थः। अथैवं ब्रह्मणि द्वैतस्य सर्वथैवाभावेन निरवच्छिन्नवृत्तिकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं यथा प्रपञ्चे, तथा ब्रह्मण्यपि तत्कुतो नेत्यत आह – स्थाणुरिति । **स्थाणुत्वं कूटस्थत्वं अधिष्ठानतत्त्वज्ञानाबाध्यत्वमिति यावत् । ब्रह्मणोऽपि तादृशज्ञानबाध्यत्वेऽधिष्ठानान्तरमेव वाच्यम्, निरधिष्ठानकबाधायोगात् यदाहुर्भाष्यकृतः ''कञ्चिद्धि परमार्थमालम्ब्यापरमार्थाः प्रतिषिध्यन्ते यथा रज्ज्वादिषु सर्पादय इति'' तथा चानवस्था, क्वचिदपि विश्रान्तौ वा तस्यैव पारमार्थिकत्वाद्ब्रह्मपदार्थत्वमस्तु, अप्रामाणिकानेकाधिष्ठानकल्पनापेक्षया वैकस्यैवाधिष्ठानत्वं कुतो न युक्तिमल्लाघवादिति भावः । अथैवमप्यसौ परिच्छिन्नो वाऽपरिच्छिन्नो वा, आद्ये परिच्छिन्नत्वव्यापकीभूतमिथ्यात्वेनापि तत्रावश्यं स्थातव्यम्, द्वितीये तु यत्किञ्चित्परिच्छेदशून्यत्वे यत्किञ्चित्परिच्छेदस्य तत्र सत्त्वात् मिथ्यात्वापत्तिः, कालदेशवस्तुपरिच्छेदसामान्यशून्यत्वे तु भेदप्रतियोगित्वरूप-वस्तुपरिच्छेदाभाववति तत्र जडत्वापत्त्या मिथ्यात्वापत्तिः, जडानुयोगिकभेदप्रतियोगित्वस्य ब्रह्मण्यभावात् ब्रह्मणो जडात्मकत्वध्रौव्यादित्यत आह–**पुरुषइति। **परिपूर्ण इत्यर्थः। तत्वं च तादृशपरिच्छेदत्रयशून्यत्वम्, स्वान्यूनसत्ताकाभावप्रतियोगि यद्यत्तत्प्रतियोगिक-भेदवत्वम्, अभावे स्वान्यूनसत्ताकत्वविशेषणात् ब्रह्मणि जडानुयोगिकभेदप्रतियोगित्व-सत्त्वेऽपि नासम्भवः। ब्रह्मान्यूनसत्ताकभेदाप्रसिद्धेः। तथाच स्वान्यूनसत्ताकाभाव-प्रतियोगित्वरूपपरिछिन्नत्वमेव मिथ्यात्वव्याप्यं, तस्य च ब्रह्मण्यसत्त्वान्न मिथ्यात्वापत्तिरिति**

राजहंसः

उमया विद्ययेति । ब्रह्मविद्याधिष्ठातृतया ज्ञानशक्तिरूपतया वा प्रागुक्तनीत्योमाया विद्यात्वम्। प्रणवसमानार्थकतया वोमाशब्देन ब्रह्मविद्यालाभः। उन्मेषदशायाः शक्तितत्त्वे प्राधान्यं ब्रह्मतत्त्वे त्वनुत्तरदशाया इति विशेषद्योतनाय परमुमाशब्दे उकारस्य प्रणवे त्वकारस्य प्राक् प्रयोग इत्यन्यत् । टाबन्तता तु लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति ।

भारती

इत्यादि से । यहाँ श्रुतिषु श्रुत-यह बहुवचन ''तात्पर्य निर्णायक अनेक (सभी) लिङ्गों के द्वारा सभी श्रुतियों का तात्पर्य प्रत्यग्चैतन्याभिन्न अद्वितीयब्रह्म में ही है'' इस भाव को व्यक्त करने के लिए है । जो श्रुतिजन्य निर्विकल्पकशाब्दबोध का विषय है। (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि शाब्दबोध निर्विकल्पक भी होता है, क्योंकि शाब्दत्व में सप्रकारकत्व की व्याप्ति अर्थात् ''शाब्दबोध सप्रकारक ही होता है यह नियम अप्रमाणिक है। अतएव शब्दचिन्तामणि में गंगेशोपाध्याय ने ''अस्तुवा पदादपि निर्विकल्पकम्'' कहते हुए आकाशपद से निष्प्रकारक शाब्दबोध माना है ।)

शारदा

भावः । एवं ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणमभिधाय ''जन्माद्यस्य यत'' इति सूत्रितं तटस्थ-लक्षणमभिधातुं —यदि स्वतःप्रकाशं द्वैतसामान्याभावोपलक्षितवस्तुस्वरूपमेव परमार्थः, तदा विचित्ररचनस्यास्य प्रपञ्चस्य कुतः उपलब्धिरित्याशङ्क्याह ''ईश्वर'' मित्यादि। जगदुत्पत्त्याद्यनुकूलकृत्यादिमत्त्वमीश्वरत्वम् । न **परं = केवलमुमया = विद्ययैवाधिगतं = विषयीकृतमपि तु** अनुमया = **अविद्यया अनादिभावरूपयाऽनिर्वाच्ययाऽऽवरणविक्षेप-शक्तिद्वयवत्याऽप्यधिगतं** तं = **पुरुषमीश्वरम् । एवं चोद्देश्यतावच्छेदकप्रयोज्यत्वभानस्य विधेये व्युत्पत्तिसिद्धत्वेन निरुक्तेश्वरत्वे तादृशाविद्याप्रयोज्यत्वलाभेन तस्य मायिकेन्द्रजालादिवन्मिथ्यात्वप्रतीत्या तादृशेश्वररचितप्रपञ्चस्यापि तथात्वावश्यम्भावात् जिहासास्पदत्वेन स्वग्रन्थाध्ययनाधिकारितावच्छेदकत्वं जिहासायां सूचितम् । तादृशाविद्याबलादेव च प्रपञ्चभानमपि समर्थितम् । किञ्च न** केवलमुमया = **पार्वत्यैवाधिगतमपि तु** मया = **लक्ष्म्यापि । अत्र पक्षे नुरेवार्थे। अधिगतमेवेति योजना । तथाचैकस्यैव ब्रह्मण औपाधिकं मूर्तिद्वयं शिवविष्ण्वात्मकमिति भेदधीर्मिथ्यैव । किञ्च न केवल**मुमया = **श्रौतबोधेनैव, अपि तु** अनुमया = **अनुमानेन मननपदव्यपदेश्येनाप्यधिगतम्। किञ्च** मया = **श्रीहर्षेणापि। स्वानुभवाधिरूढं हि वस्तु निरूप्यमाणं शिष्यबुद्धिविषयतामालम्बते झगिति सम्यक्तया च ''न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेय धर्म'' इति श्रुतेः। अवरेण = अनधिगततत्त्वेन । तथाचैतेन स्वनिर्मितनिबन्धस्यावश्याध्येतव्यत्वं दर्शितम् । अथवा** तं परमीश्वरं **परमात्मानं विद्ययाऽविद्यया च नाधिगतम् ज्ञानाज्ञाननिरूपितविषयतया**

राजहंसः

नुतिनतिभेदेन मङ्गलस्येव शक्तिशक्तभेदेनोपास्यस्यापि द्वैविध्यं पुंदेवतानां शक्ते स्त्रीदेवतानां च शक्तावन्तर्भावञ्चालोच्यावतारयति **ईशमिति**। ओजस्विचूर्णकमिश्रकेतिगद्यत्रयान्तर्गतं मिश्रकमिदम्। पद्यप्रियत्वे तु चारुचर्यामितिपाठो द्रष्टव्यः । महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे इत्यादिवन्नवाक्षरगाथात्वपरिकल्पनं ह्यगतिकगतिः। **दुरितं भेत्तुमिति**। दृश्यन्ते ह्यप्रसक्तापराधा अपि विनयशीलतया मान्यैरपराधक्षमां कारयन्त इतीत्थमर्थयमानस्यास्य तत्त्वज्ञतयाऽप्रसक्तपाप्मनोऽपि विनयातिशयो व्यज्यते ।

यत्तु जिज्ञासासूत्रभामत्यादावभ्यधायि – सांसारिक इव शब्दावगतब्रह्मतत्त्वोऽपि प्रत्यवैति, तस्य मात्रयाऽनुवर्तमाने मनुष्याद्यभिमाने श्रद्धाराहित्येन विधिशास्त्रेण श्राद्धाधिकारिणाऽनधिक्रिय-माणत्वेऽपि श्रद्धामनपेक्षमाणेन निषेधशास्त्रेणाधिक्रियमाणत्वात् तदधिकारितावच्छेदकतायाः श्रद्धायामप्युपगमे

भारती

अथवा जो विकल्प अर्थात् वृत्त्यात्मक बोध का अविषय है । अथवा–विकल्प = तर्क का अविषय है । अथवा स्वतःसिद्ध होने से विकल्प = संशय का अविषय है। द्वैसामान्यशून्य है कूटस्थ अर्थात् अधिष्ठान ज्ञान से भी अबाधित है, एवं परिपूर्ण परिच्छेदत्रयशून्य है, तथा जो जगन्निर्माता ईश्वर विद्या का ही विषय नहीं है, अपितु अविद्या का भी विषय है, अथवा जो उमा के द्वारा ही प्राप्त नहीं है, अपितु रमा के द्वारा या मेरे द्वारा भी प्राप्त है ऐसे उस परमेश्वर का स्तवन करता हूँ । अथवा मैं श्रीहर्ष उसे नमस्कार करता हूँ। (यहाँ ''अविकल्पविषय'' एवं श्लोक के उत्तरार्द्ध के अन्य भी अनेक अर्थ होते हैं, जिन्हें शारदा से अवगत किया जा सकता है ।) ॥१॥

मानापनोदनविनोदनते गिरीशे भासेव सङ्कुचितयोरुचितं तदिन्दोः।
भेत्तुं भवानिशचितं दुरितं भवानि नम्रीभवानि घनमङ्घ्रिसरोजयोस्ते ।। २।।

शारदा

वस्तुतः शून्यमिति यावत् , तथाचोत्तरार्द्धमपि शुद्धपरमेव । वन्दे = **स्तवीमि। वदि अभिवादनस्तुत्योरितिस्मरणेऽपि स्तुतिरेवात्रार्थः, नत्वभिवादनम् । तस्य नामग्रहणनियतत्वेन नामग्रहणं विनाऽसम्भवात् । स्तुतिश्च गुणवत्त्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापाररूपा, तथाचेश्वरनिष्ठगुणतत्त्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापारवानहमिति बोधः । ईश्वरे तादृशबोधश्च मायावृत्तिरूप इति । ईशं स्तुत्वैवमीशानीं चारुचरितां नमस्यति। यतो दुरितदारित्वं नुतिवत्स्यान्नतेरपि।** मानेति । **घनं यथा स्यात्तथा ते चरणकमलयोर्नम्रीभवानि । कीदृशयोः? माननिवृत्त्यनुकूलविनोदार्थं नते सति गिरीशे** तदिन्दोः = **गिरीशमस्तकन्यस्तेन्दोर्भासेव सङ्कुचितयोः। लज्जाहेतुकचरणसङ्कोचे इन्दुसन्निधिहेतुकत्वमुत्प्रेक्षितम् । संसारानिशचितं दुरितं भेत्तुमिति नम्रीभवनप्रयोजनम् । भवानीतिसम्बोधनम् । भव प्रभवेति वार्थः । अत्र गिरीशस्य नतत्वोक्त्या भवान्या महिमातिशयो व्यक्तीकृतः । भवानीविषयक-**

राजहंसः

तु नास्तिकस्याश्रद्दधानस्य निषेधलङ्घिनः प्रत्यवायानुत्पत्तिप्रसङ्गादिति, तत्रेदं वक्तव्यम् - अनया रीत्या परोक्षब्रह्मतत्त्वस्येवापरोक्षब्रह्मतत्त्वस्यापि प्रत्यवायाभ्युपगमापातः, न चेष्टापत्तिः, "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" 'तस्यैव स्यात्पदवित् तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेन', 'सर्वज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि', यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते । हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते 'मतिर्गलदहङ्कारापतितापि न लिप्यते इति श्रुतिस्मृतिशतव्याकोपात्। च न चापरोक्ष ब्रह्मतत्त्वस्य निषिद्धे प्रवृत्तिरेव न प्रसज्यते' बुद्धिपूर्विका वा तदपूर्विका वा, नाद्यःकल्पः, इतिहासपुराणादौ ब्रह्मविन्मान्यानामपि महीयसः साहसिक्यस्योपनिबद्धत्वात् इदानीन्तनानामपि रजस्तमसोरुद्रेकस्यादृष्टविशेषवशादवश्यं सम्भाव्यत्वाच्च, यज्जगदुर्जगदगुरवः- 'प्रकाशं च प्रवृत्तिञ्च मोहमेव च पाण्डव। न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति' इति 'ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छती'ति च । अत एव न द्वितीयोऽपि । नहि सर्वदा ब्रह्मापरोक्षदर्शिनोऽपि

भारती

हे भवानि ! संसार में निरन्तर संचित दुरित अर्थात् पापों के विनाश हेतु मैं आपके श्री चरणारविन्द जो मान (कुलाङ्गनाकर्तृक हठविशेष) के निवृत्ति के लिए विनोदपूर्वक भगवान श्रीशिव के नत हो जाने पर उनके मस्तक पर न्यस्त चन्द्र की कान्ति से संकुचित से प्रतीयमान हो रहे हैं मैं घनीभूत (जैसे एक अबोध बालक अपनी माता के चरणों में लिपट जाता है उस प्रकार) नमन करता हूँ। यहाँ गिरीशशब्द से विद्वान् एवं इन्दु शब्द से विद्वान् के मन का ग्रहण कर अर्थान्तर भी किया जाता है- हे भवानि! आपके अनुग्रह से प्राप्त ज्ञान के द्वारा अज्ञान के निवृत्त होने पर उत्पन्न उल्लास के द्वारा कृतज्ञता प्रकट करने हेतु विद्वान् के नत होने पर उसके मनोवृत्ति से संकुचित से प्रतीयमान आपके श्रीचरणों में मैं नमन करता हूँ। (अवशिष्ट अंश का अर्थ पूर्ववत् है) ।।२।।

शारदा

कविनिष्ठरतिभावस्य ध्वनिः। विप्रलम्भशृङ्गारो रसः। अत्रेन्द्रवरुणभवेत्यादिसूत्र-निष्पन्नभवपत्न्यर्थकभवानीशब्देन देवीं सम्बोध्य गिरीशपदाभिधेये तत्पादनतत्वोक्तिरनुचिता, ''उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति चे''त्यत्र रक्त एवास्तमेतीतिरचनामनुचितां मन्य-मानैः शब्दस्यापि स्वजन्यशाब्दबोधविषयत्वोपगमात् भवगिरीशशब्दयोर-र्थान्तरताप्रतीतेरावश्यकत्वात् 'गिरीशस्योपपतित्वव्यक्तेर्भावापकर्षधीजनकत्वेन विरुद्धमतिकृद्दोषावहत्वादिति कवित्वपरिपाटीपटवः। ब्रह्माणीशब्दवत् भवं = प्रपञ्चमानयति = जीवयतीत्यर्थे भवानीशब्दव्युत्पादने तु प्रसिद्ध्यतिक्रमः। केचित्पुनर्घटशाब्दानन्तरं घटपदं शाब्दयामीत्यनुव्यवसायविरहात् काव्यपथमपलपन्त्येवेति ध्येयम्। अत्रार्थान्तरमपि ज्ञेयम्—मानेन= **प्रमाणेनापनोदनमज्ञानस्येत्यर्थाल्लभ्यते, अज्ञानस्यैव ज्ञाननिवर्त्यत्वात्। तस्मिन् सति** विनोदः = **उल्लासः। देवताऽनुग्रहेणोत्पन्नज्ञानेनाज्ञाननिवृत्या विद्वन्मानसे उल्लासस्यावश्यकत्वात्। तदनन्तरं कृतज्ञताप्रकाशार्थं नते सति गिरीशे = विदूषि तदिन्दोः**

राजहंसः

समाधिः, जीवन्मुक्तभूमिकास्वप्युत्तरभूमिकामधिरूढस्यापि भाग्यविशेषवशादधरभूमिकायामव-रोहणसम्भवाच्च। तथाहि-उन्मीलनसमाधिमधिकृत्य तावदेवम्– यदा कदाचिद्व्यवहरन्नपि परेषु गतागते कुर्वत्स्वपि महाभागतया ब्रह्मानुसन्धानं न जहाति, तत्कालावच्छेदेनैवासौ सप्तमभूमिकाभाक्, ब्रह्मानुसंधानं पुनर्व्यवहारार्हविषयमादाय समूहालम्बनं वा ज्ञानद्वययौगपद्योपगमे पृथग्वेत्यन्यत्। यदा पुनरसावेवैकाकी व्यावहारिके कार्ये नियुक्तमतिरात्ममतिमत्यजन्नपि कस्याञ्चिद् व्यक्तावागतायां तन्मयतामिवापद्य ब्राह्मीं धियं धुनोतीव तदाऽसौ षष्ठभूमिकोत्तीर्णः। यदा त्वसावेकाक्यपि कियन्तंचित्कालं व्यवहारदशायां स्वरूपमनुसन्धाय स्वयमेव बहिर्मुखतामाश्रयति तदा पञ्चमीं भुवमधिरूढवान्। एवं निमीलनसमाधिमधिकृत्यापि, केवले ब्रह्मण्यैव लीनमना जनान्तरागमनादिना कदाचिद्व्युत्थानमभजन् सप्तमभूमिमनुभूय तादृशनिमित्तेन कदाचिद्व्युत्तिष्ठन् षष्ठभूमिमधिगत्य स्वयमेव पुनर्निमित्तविशेषेण व्युत्थितः पञ्चमदशाधिशासी प्रवर्तते यथाऽदृष्टं व्यावहारिके पथि।

स्वगततया तां तां प्रवृत्तिं नासौ पश्यतीति चेत्, किमेतावता, कदाचिन्निषिद्धक्रियोन्मुखतामात्रं प्रत्यवायप्रयोजकं तु भवदभिमतमागतमेव। यदि तु क्वचित्कल्पे कश्चिद् ब्रह्मावगतिमवाप्य चिरं जीवन्नपि सुकृतराशिवशादुद्रिक्तसत्त्वमात्रो निमीलनसमाधिमेव सततमादधानस्तिष्ठेत्, न तु तस्य बुद्धिपूर्विका तदपूर्विका वा व्यावहारिकपथपान्थता स्यात् तस्यैव च ब्रह्मावगतिः साक्षात्कारात्मका स्यादित्युच्येत, तदेदृशस्य कस्यचित्सम्भाव्यमानस्यैव कृतेऽध्यात्मशास्त्रप्रपञ्च एतावानिति तन्निर्माणस्य समुचितफलत्वं तन्निर्मातृणां च तन्निर्मातृत्वादेव तादृशदशा-शून्यतयाऽनुमितानां माहात्म्यं साधु व्युत्पादितं स्यात्।

'साक्षात्प्रबोधे देवेशि देहः सद्यो विलीयते', इति माहेश्वरतन्त्रोक्तिस्त्ववस्थाविशेषे व्यक्तिविशेष[१] योगिनां चरमासम्प्रज्ञातस्येव ज्ञानवतां चरमसाक्षात्कारस्य विदेहकैवल्याविनाभूततया सर्वसंस्कारात्यन्ताभिभवकालीनत्वरूपचरमत्वविशिष्टसाक्षात्कारनिरूपणं वोद्दिश्यैव नेतुमुचिता, अन्यथा तु मानान्तरविरोधाविरोधचर्चा तावदास्ताम्, प्रवृत्तौ सत्यामपि निर्लेपत्वसमर्पकवचसां तु परोक्षतत्त्वज्ञानिन्येव योजनीयत्वे तस्यापि न प्रत्यवायभागिता प्रमाणादृता स्यादिति 'सांसारिक इव शब्दावगतब्रह्मतत्त्वोऽपि प्रत्यवैतीति' सूक्तं स्यात्।

१. ''उद्दिश्येत्युपरितनेनान्वयः''।

शब्दार्थनिर्वचनखण्डनया नयन्तः सर्वत्र निर्वचनभावमखर्वगर्वान्।
धीरा ! यथोक्तमपि कीरवदेतदुक्त्वा लोकेषु दिग्विजयकौतुकमातनुध्वम्।।३।।

शारदा

= विद्वन्मनसः ''मनसश्चन्द्रमा अजायते'' तिश्रुतेः कार्यकारणयोरभेदाच्चेन्दुर्मनः तस्य भासा = वृत्त्या संकुचितयोरिव ''तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पमि'' तियोगसूत्रात् ज्ञानस्यापरिमेयत्वेन विषयस्य चाल्पत्वेन प्रतीतेः ध्यान विषययोर्देवताचरणयोरपि संकोच इवेति भावः । शिष्टं पूर्ववदिति ।

स्वग्रन्थस्यावान्तरप्रयोजनमाह दिग्विजयात्मकं शब्देति । शब्दार्थस्य = पदपदार्थात्मकस्य, ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्वप्रपञ्चस्येति यावत्, ब्रह्मणि परमार्थतोऽभिधानाभिधेयभावविरहस्या-भिधास्यमानत्वात् । यद्यपि परमार्थतोऽभिधानाभिधेयभावो 'न क्वापि, न हि स्वरूपतो दुर्निरूपस्य किञ्चिदपि रूपं वास्तवं सम्भावती' त्याचार्योक्तेः, तथापि ब्रह्मातिरिक्तेऽस्ति स स्वसमसत्ताको न तु ब्रह्मणीति भावः । तस्य निर्वचने = निरूक्तिसाधने लक्षणप्रमाणे, तयोः खण्डनेनाखर्वगर्वान् = अनल्पगर्वान् प्रतिभटान् निर्वचनभावं = मूकतां नयन्तः । निर्वचनखण्डनेन निर्वचनभावं नयन्त इति विरोधः । केचित्तु शब्दनिरुक्तिः तत्त्वानुभूतिरित्यादौ तत्त्वपदं यौगिकं वा रूढं वा, अर्थनिरुक्तिः तत्त्वं त्रिकालाबाध्यत्वं कदाचिद्बाध्यत्वं वा तयोः खण्डनेनेत्यर्थमाहुः । अन्ये तु शब्दो लक्षणम् , शब्द्यते इतरव्यावृत्त्या कथ्यते लक्ष्यं येनेति व्युत्पत्त्या, असाधारणधर्मेणैव वस्तुव्यपदेशात् । अर्थो = लक्ष्यम् , लक्षणस्य खण्डनेन तज्जीवातुकस्य लक्ष्यस्यापि खण्डनात् क्वचिच्चानुभूतित्वादेर्जातित्वादिखण्डनेन भेदादिखण्डनेन च लक्ष्यखण्डनं कण्ठरवेणैव कृतमित्याहुः । यथोक्तमिति । एतत्तु

राजहंसः

तस्मात्साहङ्कारतैवादृष्टफलकशास्त्राधिकारितावच्छेदकान्तःपातिनीति नास्तिकस्य साहङ्कारतया प्रत्यवायः गलिताहङ्कारस्य तु निर्मूलितवासनतया चरमजन्मनो विदुषोऽहङ्काराभासो दृश्यमानोऽपि न तादृशशास्त्राधिकारितामानयति, आभासत्वादेव, अतएव तस्य प्रवृत्तिरपि नास्ति किन्तु तदाभासः। तस्यापि तु चिराभ्यस्ततया शिष्टाचाराचरणस्य लोकानुजिघृक्षुतया चौचित्येन, विशुद्धसत्त्वतयाऽऽस्वादितपूर्णानन्दतया च स्वात्मारामतोन्मुखत्वेन च न स्वरसतो निषिद्धाचरणमित्येवोत्सर्गसिद्धमित्येव वक्तुमुचितम् ।

'पापं कृत्वा हि मन्येत नाहमस्मीति पूरुषः । तं वै देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्य चान्तरपूरुषः, (म०भा०) इत्यादिशास्त्रप्रामाण्याच्च परोक्षविदोऽपि नाहमस्मीत्यहङ्काराभावभावनात्मकं परोक्षज्ञानमेव प्रायश्चित्तं सर्वपाप्मनाम् । 'नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्' । 'उपपातकसङ्घेषु पातकेषु महत्सु च । प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्' ॥ इत्यादिवचसां च प्रवृत्तिः परोक्षज्ञानिन्येवोचिता, न पुनरपाकृतसकलकैङ्कर्ये परिपूर्णानन्दापरोक्षजुषि, तस्यापि तु तादृशध्यानमयी वृत्तिः स्वभावत एवेत्यन्यत्।

भारती

हे धैर्यसम्पन्नविद्वद्वृन्द ? शब्दार्थ अर्थात् पदपदार्थात्मक ब्रह्मातिरिक्त समस्त प्रपञ्च के साधक लक्षण प्रमाण के खण्डन द्वारा अत्यन्त गर्विले उद्भट प्रतिवादियों को मूक करते हुए इस खण्डन ग्रन्थ को यथाश्रुत कण्ठस्थ करके भी दिग्विजयरूप कौतुक का विस्तार अर्थात् लाभ करें ॥३॥

शारदा

स्वसमसमयान् प्रति, अन्यथैतद्ग्रन्थानन्तरं लोकोत्तरधीमतां विदुषां परश्शतानां यथाश्रुतखण्डनेनाखण्डनीयानां निबन्धानां चाविर्भावादसङ्गतिः । तस्मादेतद् ग्रन्थाध्ययनभावनापरिपाकलब्धोद्बोधप्रकर्षविशेषशालिनी धीरेव दिग्विजयोपयोगिनीति मन्तव्यम् । विजयः = **पराहङ्कारनिवृत्त्यनुकूलव्यापारविशेषः ।**

राजहंसः

अथास्तामेवं सञ्चितानां साक्षात्कारानन्तरभाविनां च दुरितानामप्रसक्तफलकता, प्रारब्धफलानां तु निवृत्तये दुरितं भेत्तुमिति प्रार्थना स्यात् । न च प्रार्थनमीदृशं दुरितपीडितस्यैव सम्भवति, साक्षात्कृततत्त्वस्तु न तथा, 'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चे' ति पृथग् विभजनादिति-वाच्यम् , एकस्मिन्नपि पुरुषे कालभेदेनार्तिजिज्ञासादिमत्त्वोपपत्त्या तादृशविभागस्योपधेयसङ्करेऽप्युपाधीनामसाङ्कर्यमिति नयेनैवोपपाद्यत्वात्। न चेदृशोऽपि सङ्करो ज्ञानात्पुरैव नतु पश्चादिति वाच्यम्, ज्ञानिनोऽपि भक्तत्वे कोमलिमालिङ्गितचेतस्तया कदाचिदार्तिमनुभवतस्तादृशप्रार्थनोपपत्तेः, विक्षेपहेतुप्रारब्धविशेषस्य ब्रह्मत्तवानुसन्धानराहित्य प्रयोजकस्य कदाचित् सम्भवतः, 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृह' इत्यादिलक्षणानां स्वरूपानुसन्धानकालीनतया ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरमपि जाग्रतोऽपि कालिकाव्याप्यवृत्तित्वात्। न च प्रारब्धरस्य भोगादेव क्षय इति वृथाऽर्थनेति साम्प्रतम् । भगवच्छरणीकारेणापि तत्क्षयसम्भवात्, तदुक्तं त्रिपुरारहस्ये ज्ञानखण्डे- प्रारब्धं नियतिर्वाऽपि महेशविमुखे भवे' दिति चेदस्त्वेवम्, यद्युपपद्यते, प्रकृते तु 'अनिशचि'तमिति विशेषणान्नोद्वेगविशेषजनकस्यैव दुरितस्य क्षयोऽर्थ्यत इति विनयोक्तिरेवेयमिति। **प्रसिद्धव्यतिक्रम इति**। तथा चेन्द्रवरुणभवेत्यादिसूत्ररीत्यैव व्युत्पन्नस्तादृशदोषं प्रतीयादेवेति भाव । **ध्येयमिति** घटपदांशे शाब्दत्वमनुपेत्योपस्थितित्वोपगमे तादृशानुव्यवसायविरहोपपादनसम्भवः, प्रत्यभिज्ञायां स्मृत्वानुभवत्वयोरिवावच्छेदकभेदेन स्मृतित्वशाब्दत्वयोरपि शाब्दे समावेशसम्भवात् ,अनुभवानां शिक्षाकृतवासनानुसारितया तादृशानुव्यवसायविरहे विवादस्यापि सम्भवाच्चेत्यस्वरसबीजमिह।

पदार्थे इव पदेऽपि शब्दार्थतासद्भावेन शब्दस्यार्थ इति समासाभिप्रायेण व्याचष्टे- **पदपदार्थात्मकस्येति। इत्यर्थमाहुरिति**। ईदृशविकल्पानां क्वाचित्कतया नाखिलग्रन्थसाधारणी प्रतिज्ञा स्यात् । योगरूढयोरभ्युपगमेन प्रमालक्षणेऽतिव्याप्त्यादिनिरूपणेनैव तत्खण्डनस्यार्थ- निरुक्तिनिरासे एव पर्यवसानाच्च नायं विभागः समुचितः, ईदृशोऽपि विभागस्य शब्दप्रमाणखण्ड- नान्तर्भावेन परमौचित्यं स्यादित्यस्वरसोऽत्र । कालभेदेन स्फूर्तिवैचित्र्यात्स्वव्याख्यानमेव दर्शयति **अन्य इति** । स्वस्याप्यन्यत्वं कञ्चिदपेक्ष्य भवत्येवेति भावः । स्वरूपस्यापि लक्षणत्वोपगमेन लक्ष्यत्वलक्षणत्वयोः केवलान्वयितया पृथगुपन्यासो मन्दफल इति नात्रापि चेतसो भरः ।

इति खण्डनमङ्गलशारदायां राजहंसः ।

कैश्चिदुच्यते संशयाभावो विचारफलमिति संशयस्वरूपयोग्या विप्र तिरेकसंबन्धिज्ञानविधया संशयरूपप्रतियोगिस्मारिकेति फलज्ञानेन विचारप्रवृत्तावुपयुज्ये, विशेषणज्ञानविधया प्रतियोगिज्ञानस्या- हेतुत्वेऽपि यद्व्यतिरेकज्ञानत्वेन यत्प्रतिबन्धकता तन्निश्चयस्य तद्धेतुतेति संशयाभावज्ञानस्य विचारप्रतिबन्धकतया संशयवत्त्वनिश्चयस्य तद्धेतुतावश्यिकीति तत्र विप्रतिपत्त्युपयोगः, विजयादिमात्रमुद्दिश्य तु न विचारे प्रवृत्तिः विचारणीयविषयकपंस्कारस्य नाशस्य नाशशङ्कया तद्दार्ढ्याय निश्चयस्थलेऽपि प्रवृत्तिरिति तत्र, संशयस्मरणस्य प्रकारान्तरेणापि सम्भवात्, न

अथ सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वखण्डनम् –

अथ कथायां वादिनो नियममेतादृशं मन्यते–'प्रमाणादयः सर्वतन्त्रसिद्धान्ततया सिद्धाः पदार्थाः सन्तीति कथकाभ्यामभ्युपेयम्'।

शारदा

अत्र विचारसामान्यं प्रत्यङ्गतामनश्नुवानापि मध्यस्थसंशयोत्तरजायमानं तदीयसंशयनिवृत्तिफलकविचारं प्रत्येवाङ्गतामासादयन्ती तदीयसंशयज्ञापनफला तेनैव प्रदर्शनीया च विप्रतिपत्तिः 'प्रमाणादयः कथकाभ्यां सत्त्वेनोपगमार्हा न वे'तिविवक्षिता तत्र च निषेधस्य ''तदपरे न क्षमन्ते'' इत्यग्रिमग्रन्थेनैव लाभसम्भवात् कथायां प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमव्याप्यत्वाभिमानिनां तार्किकादीनां, तादृशाभ्युपगमविरहिणोऽद्वैतिनो व्याप्यीभूतकथाया अनुपपत्तेस्तदधीनतत्त्वनिर्णयविजययोरप्यसम्भव इत्यनुशयानानां विधिमादर्शयितुमाह–अथेत्यादिना । अथेति **प्रस्तावे खण्डनमाद्यकृतिविषय इत्यर्थः।** कथायां = **परम्परया कथौपयिकं,** एतादृशं = **वक्ष्यमाणं नियमं = प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमावश्यम्भावम् । प्रमाणादय इत्यादिना प्रमेयसंशयप्रभृतयो ग्राह्याः। सर्वतन्त्रस्वीकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्त इति प्राचीनमतम्, वादिप्रतिवादिभ्यामभ्युपगतोऽर्थः स इति नव्यमतम्। सिद्धाः = निर्णीताः। ननु सर्वतन्त्रसिद्धान्ततया सिद्धा इति विशेषणं हेतुगर्भं वा, उद्देश्यकोट्यन्तःपाति वा, विधेयकोटिप्रविष्टो वा, नाद्यः, अत्र हेतोरभिहितत्वे ''तत्कस्य हेतोरि'' तिवक्ष्यमाणग्रन्थासङ्गतेः, न द्वितीयः सिद्धसाधनापत्तेः, न हि तथासिद्धौ न सत्त्वाभ्युपगमः, निषेधे बाधश्च। न तृतीयः, ''प्रमाणादीनां सत्त्वंयदभ्युपेयं कथकेने'' त्यग्रिमग्रन्थानुसारेण सत्त्वप्रकारकाभ्युपगमार्हत्वस्यैव विधेयत्वात् । मैवम् । द्वितीये पक्षे दोषात् । सिद्धत्वं च सत्त्वासत्त्वाविशेषितरूपेणेति न सिद्धसाधनम्, न वा बाधः, सन्तीत्यस्य**

राजहंसः

चोपायस्योपायान्तरादूषकत्वम्, एवं सति विप्रतिपत्तेः कथामात्रे नियमनानुपपत्तेः, संस्कारनाशसम्भावनानुत्पत्तिस्थलेऽपि दृश्यमानविचारस्य विजयविनोदादिमात्रोद्देश्यकत्वस्यापलपितुमशक्यत्वाच्च । जयपराजयव्यवस्थार्थं तत्तत्कोटिपरिग्रहस्य च तत्तद्वादिनं प्रति मध्यस्थकर्तृकतत्तत्कोटिसमर्पणेनैव सम्भवाच्च, तस्य च विप्रतिपत्तिवाक्यस्थलेऽप्यावश्यकत्वात्। एवं च प्रकृतपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नस्य प्रकृतसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नतदभावयोश्च प्रथममवश्यं बोधनीयत्वेऽपि नवापदघटितवाक्यप्रयोगो न विचारमात्रेऽपि तु तद्विशेष एवेत्याशयेनाह –

अत्र विचारेत्यादि । मध्यस्थसंशयस्त्वानाहार्य इवाहार्योऽपि सम्भवति । आहार्यस्य प्रतिबन्धः पुनः प्रयोजनसिद्धाविच्छाविच्छेदादेव । आहार्यसंशयस्य च विचारप्रवर्तनौपयिकताऽनुभवादिबलात् सम्यक्त्वखण्डने मूल एवं व्यक्ता ।

भारती

सत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम के कथाङ्गत्व का खण्डन

अथशब्द प्रस्ताव अर्थ में है, अर्थात् प्रकृत खण्डन ग्रन्थ प्रस्तुत किया जाता है। वादीवृन्द नैयायिकादि कथारम्भ के लिए यह नियम मानते हैं कि प्रमाणादि शोडष

शारदा

पारमार्थिकसत्त्वपरतया व्याख्येयत्वात् । इदन्तु बोध्यम्, उद्देश्यकोटावपीदमुपरञ्जकमेव, पक्षतावच्छेदकतायास्तत्र निष्प्रयोजनत्वात् । पक्षतावच्छेदकं चात्र प्रमाणत्वप्रमेयत्वादिकं प्रत्येकमेव रूपम्, प्रमाणादित्वस्याननुगतत्वात्, अनुगतधर्मं विनाऽऽदिशब्दाप्रवृत्तेश्च, पदार्थत्वस्याप्यननुगतत्वात्, नहि तत्पदजन्यबोधविषयत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितेच्छीयविशेष्यत्वमेकम् अर्थविशेषनियन्त्रितपदत्वस्याननुगतत्वेन पदविशेषस्यैव निवेशनीयत्वात् । न वा जन्यत्वविषयत्वयोरप्यनुगमः, कपालजन्ये तन्तुजन्यत्वस्य घटविषयकज्ञाने पटविषयकत्वस्य चापत्तेः, निरूपकविशेषनियन्त्रितयोरपि तयोरतिरिक्तानतिरिक्तत्वविकल्पाभ्यां कथं नाननुगमातिप्रसङ्गावहत्वम् । न च प्रमाणाद्यन्यतमत्वमेव पक्षतावच्छेदकम्, भेदकूटावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वरूपस्य तस्यासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वात्, अनुयोगिप्रतियोगिविधया सकलप्रपञ्चघटितत्वात्, भेदग्रहे च विशिष्यैवानुयोगिताप्रतियोगितावच्छेदकधर्मज्ञानस्य हेतुताया वक्ष्यमाणत्वात् । प्रमाणत्वादेः प्रत्येकमेव पक्षतावच्छेदकत्वेऽपि घटत्ववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नघटत्वप्रकारकत्ववदनुभवकरणत्वादेरेव पक्षतावच्छेदकत्वम् । प्रमात्वादेर्विषयभेदभिन्नमूर्तिकत्वात् । कथाङ्गत्वेन प्रमाणादेः पक्षत्वमिति तु न युक्तम् । कथायास्तत्त्वनिर्णयविजयान्यतरस्वरूपयोग्यपुरुषद्वयप्रवक्तृकवचनसमुदायात्मकत्वात् तत्त्वनिर्णस्य च प्रमितकोटिनिश्चयरूपस्य साध्यवत्ताज्ञाने प्रमात्वनिश्चयरूपस्य वाऽननुगतप्रमात्वघटितत्वेनाननुगमतादवस्थ्यादिति। सन्तीति । अत्र सत्त्वं त्रिकालाबाध्यत्वं प्रविष्टम् । अस्तीतिधीविषयत्वरूपसत्त्वे कस्याप्यविवादात्, सत्ताजातेश्च सर्वत्र तार्किकेणाप्यनङ्गीकारात्। कथकाभ्यामिति। वादजल्पादिकथाकुशलाभ्याम् । अभ्युपेयमिति। अभ्युपगमोऽत्रानाहार्यनिश्चयः, तेनाहार्यनिश्चयमादाय न सिद्धसाधनम् । प्रमाणं कथकाभ्यां त्रिकालाबाध्यत्वेनाभ्युपगन्तुमर्हं न वेत्यत्र निषेधो यद्यपि सांवृतसत्त्वाभ्युपगन्तृमाध्यमिकस्य "नाप्रत्यक्षं प्रमाणमिति" ब्रुवतश्चार्वाकस्य च सम्भवति। नहि सांवृतसतस्त्रिकालाबाध्यत्वसम्भवः, येन माध्यमिको निषेधं नाश्रयेत् । न वा प्रत्यक्षमात्रेण त्रिकालाबाध्यत्वग्रहसंभवः, येन चार्वाको निषेधं नालम्बेत, अत एव व्यवहारसिद्धस्यैव तन्मते क्वचिदङ्गता, अतएव तन्मते ईश्वरोऽपि व्यवहारसिद्ध एवेति कुसुमाञ्जलावुक्तम् । नचैवं तन्मते त्रिकालाबाध्यत्वं साध्यघटकमपि न संभवति, अप्रामाणिकत्वादितिवाच्यम्, माध्यमिकवत्तेनाप्यसत्ख्यातिस्वीकारात्, तदुपनीतस्य तस्य साध्यघटकत्वसंभवात् । अतएव "तस्य (चार्वाकस्य) असत्ख्यातिवादिनः सांव्यवहारिकस्य सापेक्षत्वस्य (कारणजन्यत्वस्य)

राजहंसः

एतेनाहार्यसंशयवदाहार्यपरामर्शस्यापि हेतुत्वप्रसङ्गो न देशनीयः,प्रमाणसदसद्भावाभ्यां वैषम्यात्। न च निश्चिततत्त्वस्य नवापदघटितवाक्यप्रयोगमात्रं न त्वाहार्योऽपि संशयः, वाक्यप्रयोगमूलतया तस्यावश्यमुपासनीयत्वात् । उक्तप्रसङ्गे आपादकस्याभावाच्च, न च आहार्यत्वं यद्यनुमितिजनकज्ञानवृत्ति स्यादनुमितिजनकपरामर्शवृत्ति स्याज्ज्ञानत्ववदित्यापाद्यम्, संशयत्वस्य तु पक्षसमत्वात्र तत्र व्यभिचार इति वाच्यम्, अप्रयोजकताग्रस्ततयाऽऽपाद्यापादकयोर्व्याप्तिनिश्चियानुपपत्तेः ।

शारदा

स्वीकारादि'' ति वर्द्धमानोपाध्यायैः कुसुमाञ्जलिप्रकाशेऽभ्यधायि । अतएव च ''चार्वाकैरनुमित्यनुपगमेऽप्यसत्ख्यातिस्वीकर्त्तृणां तेषां मते अलीके एव पदानां शक्तिः, न तु पारमार्थिके, सदसत्संबन्धाभावेन तत्र पदप्रवृत्तिनिमित्तानुगताकारासम्बन्धात् । अनुगताकारस्य गोत्वादेरतद्व्यावृत्त्यात्मकत्वेनाभावरूपतयाऽलीकत्वादसतोऽप्यनुमितिकरणत्वावच्छिन्नस्य तन्मतेऽनुमानुपदार्थतेति'' ''तन्मतेऽनुगतधर्मस्यालीकतया सर्वत्राव्यवहितपूर्वापरीभावापन्नतत्तद्व्यक्तयोरेव हेतुहेतुमद्भावसम्भव'' इति चानुमानगादाधर्यामुक्तम् । एवं च प्रत्यक्षमपि चार्वाकमते व्यावहारिकमेव न तु त्रिकालाबाध्यम्, तथाच प्रमाणसामान्ये एवं त्रिकालाबाध्यत्वानभ्युपगमस्तन्मते। एतेनैवानुशयेन ''तदनभ्युपगच्छतोऽपि चार्वाकमाध्यमिकादेर्वाग्विस्तराणां प्रतीयमानत्वादि'' ति मूले चार्वाकपदमुपात्तम् । तथा च तत्र चार्वाकपदमनुमानाद्यनभ्युपगमाभिप्रायेण व्याचक्षाणाः प्राञ्चोऽवधीरणीयाः। अत एव प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमः कथाङ्गं न वा, कथाङ्गत्वं तादृशाभ्युपगमवृत्ति न वेत्याद्युदक्षरविप्रतिपत्त्यन्तरेऽपि निषेधस्य चार्वाकीयत्वोपपत्तिर्बोध्या, तेन विधेरनभ्युपगमादेव। न च तस्य सामान्यतः कारणतायामेव विप्रतिपत्तेः कथाङ्गत्वघटितविप्रतिपत्तेरनवसर इति वाच्यम् दत्तोत्तरत्वात्, तन्मते व्यापकत्वस्य दुर्ग्रहत्वेन तद्घटितकारणताया विप्रतिपत्तिगोचरत्वेऽपि सांव्यवहारिककार्यकारणताया व्यक्तयोरुपगमात् । वादिप्रतिवाद्युभयानुमताङ्गत्वस्य विप्रतिपत्तिघटकतौचित्येऽपि तार्किकाभिमताङ्गत्वस्य निवेश एव युक्तः, तस्यासत्ख्यात्युपनीतस्य चावकिणाप्यनुरोद्धव्यत्वात्। चार्वाकमाध्यमिकवद्योगाचारस्य निषेधालम्बित्वं तु नाशङ्कनीयम्, तेनान्तः प्रमाणादेः सत्त्वोपगमेन विधेरेवालम्बनीयत्वात् एतदेवाभिसन्धाय मूले उपरिष्टात्तस्योल्लेखो न विहितः, अपि तु चार्वाकमाध्यमिकवेदान्तिनामेव । तथापि सिद्धान्तभूतनिषेधकोटेरद्वैतिनैव ग्रन्थकारेणाश्रयितुमुचितत्वात् एकदैकेनैव विचारस्य साम्प्रदायिकत्वाच्च प्रकृते निषेधोऽद्वैतिन एव, एवं च विधिरात्मनि, निषेधश्च कथाविशेषानङ्गभूते घटविशेषादौ प्रसिद्धः। तुच्छे निषेधप्रसिद्धिस्तुनादर्तव्या, तस्य निषेधानधिकरणत्वात् अन्यथाऽलीकत्वव्याघातात् ''व्यावर्त्याभाववत्तैव भाविकी हि विशेष्यते'' त्युदयनाचार्योक्तेः। व्यावर्त्यः = प्रतियोगी । तुच्छवृत्तिधर्मस्य तुच्छत्वमेवाधिकरणस्वरूपत्वादिति तु मन्दम् निस्स्वरूपस्य स्वरूपानुपपत्तेः, अत एव खपुष्पमित्यादिविकल्पस्य निर्विषयकत्वमेवेति केचिदाचार्याः। असत्ख्यातिमादाय तुच्छे प्रसिद्धिसम्भवेऽपि तस्यास्तार्किकैरद्वैतिभिश्चानभ्युपगमात् । त्रिकालाबाध्यत्वं तु न कालनिष्ठान्योन्या भावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वम् तस्य सर्वस्मिन् प्रमाणादौ तार्किकेणाप्यनुपगमात्, नापि कालत्वव्यापकीभूतस्य स्वप्रकारकधीविशेष्यनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावस्याधिकरणत्वम्, अन्यथाख्यातिमते क्वचित् प्रमाणादेर्भ्रान्त्यनन्तरभाविबाधग्रहमादाय तादृशविशेष्यत्वस्यैव सत्त्वात् अनिर्वचनीयख्यातिमतेऽभेदभ्रमविषयीभूतस्य व्यक्तिविशेषस्य स्वप्रकारकधीविशेष्यनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वसत्त्वेऽपि तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्व-

तदपरे न क्षमन्ते । तथा हि – प्रमाणादीनां सत्त्वं यदभ्युपेयं कथकेन तत्कस्य हेतोः? किं तदनभ्युपगच्छद्भ्यां वादिप्रतिवादिभ्यां तदभ्युपगमसाहित्यनियतस्य वाग्व्यवहारस्य प्रवर्तयितुमशक्यत्वात् । उत कथकाभ्यां प्रवर्तनीयवाग्व्यवहारं प्रति हेतुत्वात् । उत लोकसिद्धत्वात् ।

शारदा

प्रकारकप्रमाविशेष्यत्वस्यासत्त्वेन त्रिकालाबाध्यत्वापाताच्च, संयोगादिना भ्रमगोचरस्यापि तादृशविशेष्यत्वाभावसम्भवेन तादृशविशेष्यत्वयोग्यत्वविरहाधिकरणताया एव विवक्षणीयत्वेन योग्यतावच्छेदकनिरूपणं विनाऽनिस्ताराच्च, नचात्मभिन्नत्वमेव योग्यतावच्छेदकं तथा सति त्रिकालाबाध्यत्वस्यात्मत्वात्मकतापर्यवसानेन विवादाभावप्रसङ्गात्, नहि प्रमाणे आत्मत्वेनाभ्युपगमतार्किकस्येष्टः । तस्माद्देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वाभाव एव त्रिकालाबाध्यत्वम् । तादृशप्रतियोगित्वरूपप्रतियोगिप्रसिद्धिश्च भ्रमस्यानिवर्चनीयविषयकत्वं प्रसाध्यैव करणीया । न च तादृशप्रतियोगित्वस्य तुच्छत्वरूपतया तुच्छत्वाभावप्रकारकाभ्युपगमानर्हत्वसाधने बाधः, तदर्हत्वसाधने च सिद्धसाधनम्: तुच्छस्यानङ्गीकारपराहतत्वात् गगनादौ तु न तादृशप्रतियोगित्वं, तस्य कालवृत्तित्वादिति दिक्। तथाहि = **एवं विप्रतिपत्तौ सत्यां यथा विधिकोटिसमर्थनखण्डने भवतस्तथा जानीहि।** यद्यपि **विप्रतिपत्त्यनन्तरं विधिकोटिमालम्बमानेन स्वपक्षः साधनीयः, न तु प्रतिवादिनैव तथाहीत्यादिना वक्तुमुचितम्, न चैषा न प्रतिवाद्युक्तिः, तत्कस्येति प्रश्नदर्शनात् नहि मध्यस्थेनैतद्वक्तुं**

राजहंसः

विशेष्यत्वस्यासत्त्वेनेति। प्रकारतावच्छेदकीभूततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्यात्यन्ताभावेऽप्रसिद्धेरिति भावः। अभेदभ्रमातिरिक्तस्थले तथानिर्वचनादरेऽत्यन्ताभावत्वमनादृत्य प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमात्रविवक्षणे वाऽप्याह- **संयोगादिनेति सम्भवेनेति**। भूतले नास्ति घट इत्यादिप्रतियोगित्वाप्रकारकबाधग्रहस्थल इति भावः।

कालवृत्तित्वादिति। इदानीं गगनमित्यादिधीबलादिति भावः। दिगर्थस्तु यं धर्मं धर्मितावच्छेदकीकृत्य तादृशाभावो ज्ञातव्यः, स चेदयमेव धर्मस्तदात्माश्रयः, अन्यश्चेत्तदा तस्यैतस्मिन् धर्मितावच्छेदकतोपगमेऽन्योन्याश्रयः, एवञ्चक्रकादिकमपि, तादृशप्रतियोगितात्वस्यानुगमे

भारती

पदार्थ सर्वतन्त्र (शास्त्र) सिद्धान्त सिद्ध होने से पारमार्थिक सत् है। इनकी पारमार्थिकसत्ता वादि प्रतिवादि दोनों को माननी चाहिए। किन्तु इस नियम को अद्वैतवादी खाण्डनिक स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि प्रमाणादि के सत्यत्वेन स्वीकर्तव्यता में क्या हेतु है? अर्थात् प्रमाणादयः सत्यत्वप्रकारकअभ्युपगमार्हाः इस प्रकार प्रमाणादि पक्षक सत्यत्वप्रकारक-अभ्युपगमार्हत्वसाध्यक अनुमान में हेतु क्या है। क्योंकि प्रतिज्ञामात्र से साध्यसिद्धि नहीं होती, अतः हेतु वक्तव्य है। क्या प्रमाणादि की सत्ता स्वीकार किये विना वादिप्रतिवादी वाग्व्यवहार (शास्त्रार्थ) ही नहीं कर सकते, क्योंकि वाग्व्यवहार प्रमाणादिसत्यत्व से नियत है, अतः

अथवा तदनभ्युपगमस्य तत्त्वनिर्णयविजयफलातिप्रसञ्जकत्वात् । न

शारदा

युक्तम् विप्रतिपत्तिनियमबन्धादेरेव तेन करणीयत्वात्, न चाग्रे विकल्पचतुष्टयेन विमतिरेवाभिधित्सिता, कस्य हेतोरिति हेतुप्रश्नात् न चैतद्ग्रन्थान्न कथारम्भ एव, ''कीदृशीं मर्यादामालम्ब्य प्रवृत्तायां भवतेदं दूषणमुक्तमि'' ति मूलानुसारेणेत एव कथारम्भात्, नहि–ननु यदि प्रमाणादीनी''त्याद्यग्रिमग्रन्थादेव कथारम्भ इति वक्तुं साम्प्रतम्, सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमबाधनं विना बाधकाभिधानस्य परेणानौचित्यात्। तथाप्येषा **विकल्पचतुष्टयपर्यन्ता ग्रन्थकृदुक्तिर्विधिकोटिवादिमतबोधफला विधिवादिपक्षोक्तावेव पर्यवस्यति। प्रमाणादीनां सत्त्वं** यदभ्युपेयम् । **यदिति क्रियाविशेषणम् । प्रमाणादयः सत्त्वेन यदभ्युपेयम् । इत्यर्थः। यथाश्रुतं त्वसङ्गतम्, प्रमाणादिनिष्ठसत्त्वस्य पक्षत्वे सिद्ध्यसिद्धिव्याघातात्, त्रिकालाबाध्यत्वं हि सत्त्वं यदि प्रमाणादौ सिद्धं तदा तदभ्युपगमोऽपि स्यादेव, यद्यसिद्धं तदा पक्षाप्रसिद्धिः, न च तार्किकप्रसिद्धिमात्रेण निस्तारः पक्षप्रसिद्धेरुभाभ्यामेवानुरोद्धव्यत्वात्** । कथकेनेति। **तार्किकादेस्तादृशाभ्युपगम-सत्त्वादेकवचनम्** । तदनभ्युपगच्छद्भ्याम् = **प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्यु-पगमाभाववद्भ्याम्। एवं चोद्देश्यतावच्छेदकप्रयोज्यत्वस्य विधेये भानेन कथाप्रवर्तनाभावे निरुक्ताभावप्रयोज्यत्वं लब्धम्।** साहित्यनियतस्य = **साहित्येन व्याप्यस्य । साहित्यं नियतं = व्यापकं यत्रेति समासे नियतशब्दस्य पूर्वप्रयोगौचित्यापत्तेः। तथा च समवायसम्बन्धावच्छिन्नाया निरुक्ताभ्युपगमनिष्ठव्यापकताया लाभाय साहित्यपदम्। व्याप्यता तु स्वानुकूलकृतिमत्त्वसम्बन्धेन, न तु समवायेन, तेन वाग्व्यवहारस्य गगने एव वृत्तेः।** प्रवर्तयितुं = **कर्तुं । यद्यपि यथाश्रुतमिदं व्यधिकरणम् अशक्यत्वस्य कथानिष्ठत्वात् प्रामाणादेश्च पक्षत्वात्, तथापि कथाऽभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिसत्यत्व-**

राजहंसः

स्मृत्यन्यत्वखण्डनशारदावतारः, प्रत्यक्षत्वजातिखण्डने निर्वर्णितानुगतधर्ममात्रखण्डनभागिता च। तस्याननुगमे त्वभावकूटे पर्यवसानेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयतेति कथमस्य क्वचित्साधनसम्भवः। न च वेदान्तिनामपीयं बोधेति भणनीयम्, तैरिह साक्षितया निर्धर्मकतत्त्वस्यार्थिकसिद्धेरेवोपगमादिति द्रष्टव्यः। **पूर्वप्रयोगौचित्यापत्तेरिति** । आहिताग्न्यादित्वकल्पने गौरवात् । किञ्च नियतिर्हि व्याप्तिरेवेति नियतशब्दस्य व्याप्तापरपर्यायव्याप्यपरतैव स्वरससिद्धा । व्याप्यव्यापकभावस्य सम्बन्धतया द्विष्ठतां कामयमानस्याखण्डतापदचुम्बिताध्रौव्याभिप्रायेण तु तदर्थकतां नियतिपदस्योपगम्य नियम्यनियामक-पदयोरव्यवस्थयैव प्रयोगः, न चासावभिप्रायो युक्तः, अखण्डताया अनुभवपराहतत्वात् । एतेन

भारती

उन्हें सत्य मानना चाहिए ? अथवा वादी प्रतिवादी के द्वारा प्रवर्तनीय वाग्व्यवहार के प्रति प्रमाणादि हेतु होने से, अथवा प्रमाणादि के लोकव्यवहार द्वारा सिद्ध होने से, अथवा प्रमाणादि की पारमार्थिक सत्ता न मानने पर तत्त्वनिर्णय एवं विजयरूप फल की अतिप्रसक्ति होने से ? यहाँ यह ज्ञातव्य है कि – मूलस्थ ''तादृशवाग्व्यवहारस्य प्रवर्तयितुमशक्यत्व'' रूप प्रथम हेतु वाग् व्यवहारनिष्ठ

तावदाद्यः, तदनभ्युपगच्छतोऽपि चार्वाकमाध्यमिकादेर्वाग्विस्तराणां प्रतीयमानत्वात्; तस्यैव वाऽनिष्पत्तौ भवतस्तन्निरासप्रयासानुपपत्ते।

शारदा

प्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वादिति हेतुर्विवक्षितः । प्रतियोगित्वान्तमप्रयोजकतानिवृत्त्यै । प्रतियोगित्वान्तस्यासिद्धिं 'परिहर्तुं' च नियतस्येत्यन्तम् । तार्किकादिकथासु तादृशनैयत्यस्य निर्णयः, तार्किकादेरेव तादृशाभ्युपगममादाय च पक्षे हेतुसमन्वयः । तादृशोपगमोऽस्तु कस्यापि तद्विशेष्यत्वस्य पक्षे निराबाधत्वात् । दृष्टान्तश्चात्मा वा व्यतिरेकी वा गवेषणीयः । एवमग्रेऽपि । न च सर्वस्यापि कदाचित्पक्षदृष्टान्तादिविधया कथाङ्गत्वात् नात्र दृष्टान्तत्वसम्भवः, कथात्वाननुगमस्योक्तत्वेन कथाविशेषस्यैव हेतुघटकत्वात् तदनङ्गानामदौर्भिक्ष्यात् । कथां प्रति हेतुत्वात्, लोकसिद्धत्वादिति हेतुद्वयं प्रमाणादिरूपपक्षेऽस्त्येव—यत्र प्रमाणादिविशेषे वचनविशेषनिचयात्मककथां प्रति हेतुत्वं बाधितं तत्र प्रयोजकत्वमेव हेतुरस्तु । न चाद्येऽप्रयोजकत्वम् , परमते कारणत्वस्य पारमार्थिकत्वव्याप्यत्वात्, अन्यथा शुक्तिरजतेनापि कटकादिनिर्माणप्रसङ्गात् , कारणत्वान्यथानुपपत्त्या पारमार्थिकत्वावश्यम्भावे च प्रमाणादौ तेन रूपेणाभ्युपगमस्याप्यवश्यम्भावात् नहि पारमार्थिकोऽपि नोपगमार्हः । न च द्वितीयेऽप्रयोजकता, लोकसिद्धत्वं हि लोकव्यवहारविषयत्वं व्यावहारिकत्वशब्देन प्रसिद्धम् । तार्किकमते च व्यावहारिकत्वपारमार्थिकत्वयोः समनैयत्यात् व्यावहारिकत्ववति पारमार्थिकत्वप्रकारकाभ्युपगमयोग्यताया शक्यसाधनत्वात् , सप्तमत्वं रसे न व्यावहारिकं नापि कथकेन पारमार्थिकत्वेनाभ्युपगमार्हमिति व्यतिरेकिता । तदनभ्युपगमस्य = **प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमाभावस्य । अत्रापि वैयधिकरण्यभङ्गाय**

राजहंसः

प्रयोज्यप्रयोजकपदयोरपि व्याप्यव्यापकयोरव्यवस्थ्यैव प्रयोगस्य सतत्त्वमुपवर्णितम्। ज्ञाप्यज्ञापकपरतापि लक्षणयैवाद्रियमाणैतयोरिव नियम्यनियामकपदयोरपि समानेति । **दृष्टान्तश्चात्मेति।** साध्यप्रसिद्धेः कथाङ्गभूताया आत्मन्येवादृतत्वेन तद्विशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमे प्रतियोगित्वान्तदलमपि निराबाधमिति भावः ।

भारती

होने से प्रमाणादिरूप पक्षवृत्ति नहीं है, अतः साध्य - हेतु के वैयधिकरण्य के वारणार्थ उक्तहेतु दल के स्थान में "कथाभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगम-विशेष्यत्वात् हेतु विवक्षित है । एवं इसी प्रकार वैयधिकरण्य वारणार्थ चतुर्थ हेतुदल के स्थान में भी "तत्त्वनिर्णयविजयरूपफलातिप्रसञ्जकीभूताभावप्रतियोगिसत्त्वप्रकारकाभ्युपगम-विशेष्यत्वात्" हेतु विवक्षित है। तथा च प्रतिवादि (द्वैतवादि) की दृष्टि से यहाँ—

१— प्रमाणादयः सत्यत्वेनाभ्युपगमार्हाः कथाभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिसत्यत्व-प्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वात् आत्मवत्, व्यतिरेकेण शुक्तिरजतवद् वा" २— प्रमाणादयः सत्यत्वेनाभ्युपगमार्हाः कथकाभ्यां प्रवर्तनीयवाग्व्यवहारं प्रति हेतुत्वात् आत्मवत्, व्यतिरेकेण

शारदा

तत्वनिर्णयविजयरूपफलातिप्रसञ्जकीभूताभावप्रतियोगिसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वादिति हेतुर्विवक्षणीयः । अप्रयोजकत्ववारणायाभ्युपगमे प्रतियोगित्वान्तम् । तत्त्वनिर्णयो वादस्य फलम्, विजयस्तु जल्पवितण्डयोः, फलयोस्तयोरतिप्रसञ्जकत्वं च प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्व-प्रकारकाभ्युपगमविरहिण्यापादकत्वम् । तत्त्वनिर्णयविजयौ यदि निरुक्ताभ्युपगमाधीनौ न स्यातां तदा निरुक्ताभ्युपगमविरहवतोऽपि स्यातामित्यापादनसम्भवात् । न चेष्टापत्तिस्तथासत्युन्मत्तप्रलापैस्तौ को वारयिता, न च दृष्टान्ताभावः, सामान्यव्याप्त्याश्रयणे तत्सौलभ्यात् । यद्यप्येवं तादृशाभ्युपगमाधीनत्वाभावस्यातिप्रञ्जकत्वं, न तु तादृशाभ्युपगमाभावस्य मूले च तस्यैवातिप्रसञ्जकत्वमुक्तम् न चास्तु तस्यैव, तथासत्यापाद्यापादकयोरैक्यपर्यवसानात्। तथापि तत्त्वनिर्णयविजयौ यदि जन्यतासम्बन्धेन तादृशाभ्युपगमवन्तौ न स्याताम् समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतादृशा-भ्युपगमविरहवत्यपि स्यातामित्येवमापादने न दोषः । कथाऽभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगि-सत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वहेतौ तादृशप्रतियोगित्वमभ्युपगमविशेषणमप्रसिद्धम्, न च कथायाः प्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमव्याप्यत्वात् तत्सिद्धिः, तादृशव्याप्यत्वस्यैव व्यभिचारग्रहेणासिद्धेरित्याह तदनभ्युपेति । **त्रिकालाबाध्यत्वरूपसत्त्वेन प्रमाणादिसामान्यमनभ्युपगच्छतोऽपीत्यर्थः । माध्यमिकादेरित्यादिना वेदान्ती ग्राह्यः । चार्वाकत्वं देहात्मवादित्वम् । केचित्तु-शरीरपात एव विदेहमोक्षः, स्वातन्त्र्यमेव जीवन्मोक्षः, कण्टकादिसम्पर्कजन्यं दुःखमेव नरकः शब्दाद्युपभोगजन्यं सुखमेव स्वर्ग इति चतुष्टयीभ्युपगन्तृत्वं चार्वाकत्वमाहुः । माध्यमिकत्वं तु सर्वशून्यवादित्वम् । शून्यत्वं च**

राजहंसः

चार्वाकत्वमाहुरिति। उक्तचतुष्टये चार्वाकस्वरूपपरिचायकत्वोपपत्तावपि लक्षणत्वे व्यर्थतेत्यस्वरसः। **यथार्थज्ञानवतेति** । तथागतशब्दस्य स्वारस्यप्रदर्शनमात्रपरमिदं व्याख्यानम्। तेन दीर्घनिकायादिबौद्धग्रन्थेषु ब्राह्मणानां चापलमात्रमात्मनः शाश्वतत्वाभिधानमिति सुगताभिहिततया वर्णनेऽपि न क्षतिः । एवं सति प्रायस्तज्ज्ञानानां याथार्थ्यं न तु सर्वांशे सर्वेषामिति भूम्नि मतुप्प्रयुक्त इति तत्त्वम्। यथा पूर्वे बुद्धा आचरितवन्तस्तथैवायमप्याचरितवानित्यपि तथागतशब्दार्थमाहः। **मध्यमाशब्देन शून्यतोच्यत** इति।

भारती

शुक्तिरुप्यवद् वा । ३- प्रमाणादयः सत्यत्वेनाभ्युपगमार्हाः लोकसिद्धत्वात् आत्मवत् । ४- प्रमाणादयः सत्यत्वेनाभ्युपगमार्हाः तत्त्वनिर्णयविजयरूपफलातिप्रसञ्जकीभूताभाव-प्रतियोगिसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वाद् आत्मवत्, व्यतिरेकेण-शुक्तिरजतवद्वा'' यह चतुर्विध अनुमान सम्पन्न होते हैं ।

इसमें प्रथम विकल्प उचित नहीं है, क्योंकि प्रमाणादि की सत्ता न मानने वाले चार्वाक माध्यमिकादि का भी वाग् व्यवहार देखा जाता है। (यहाँ ज्ञातव्य है, कि यद्यपि चार्वाक के मत में प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध प्रमाणादि की सत्ता स्वीकृत है तथापि यहाँ सत्ताशब्द से पारमार्थिक सत्ताविवक्षित है, न कि व्यावहारिक सत्ता, चूँकि अस्ति इत्याकारकज्ञानविषयत्वरूप व्यावहारिकसत्ता में नैयायिकादि किसी का भी विवाद नहीं है । वेदान्ती भी उसे स्वीकार करते

सोऽयमपूर्वः प्रमाणादिसत्तानभ्युपगमात्मा वाक्स्तम्भनमन्त्रो भवताऽभ्यूहितो नूनं यस्य प्रभावाद्भगवता सुरगुरूणा लोकायतकानि सूत्राणि न प्रणीतानि, तथागतेन वा मध्यमागमा नोपदिष्टाः, भगवत्पादेन वा बादरायणीयेषु सूत्रेषु भाष्यं नाभाषि। प्रमाणाद्यनभ्युपगम्यापि

शारदा

न खपुष्पवदिति वक्ष्यते । तस्यैव = चार्वाकादिकर्तृकवाग्व्यवहारस्यैव । उपहसति सोऽयमिति । **लोकायतकानि = लोके बहवोऽनुगन्तारो येषां तानि चार्वाकमतसूत्राणि। तथागतेन = यथार्थज्ञानवता बुद्धेन । आद्यन्तकोटिविनिर्मुक्तत्वान्मध्यमाशब्देन शून्यतोच्यते बौद्धभाषया, तत्प्रतिपादका आगमा मध्यमागमाः । ''भगवत्पादाभिधां बिभ्रते'' इति साम्प्रदायिकोक्तेः 'भगवत्पाद' इति श्रीशङ्कराचार्यचरणानां सञ्ज्ञा । ननु पूर्ववदत्रापि 'बादरायणेन प्रपञ्चमिथ्यात्वपराणि सूत्राणि कुतो न प्रणीतानी'त्येव कुतो नाभाणि; न च प्रपञ्चमिथ्यात्वे बादरायणतात्पर्यस्य नैकविधभाष्यदर्शनेन निर्णेतुमशक्यत्वात्तथोक्तमिति वाच्यम् प्रतिज्ञाऽहानिरित्यादिसूत्रपरिशीलनेनान्यत्र प्रपञ्चमिथ्यात्वे बादरायणतात्पर्यस्य निर्णीतत्वादिति चेत्सत्यम् ; बादरायणभगवत्पादयोरुभयोरेवानया वाचोभङ्ग्योपादानात्**

राजहंसः

अस्तित्वं ये तु पश्यन्ति नास्तित्वं चाल्पबुद्धयः ।
भावानां, ते न पश्यन्ति द्रष्टव्योपशमं शिवम् ॥

इत्युक्त्याऽऽद्यन्तकोटिद्वयमस्तित्वनास्तित्वात्मकं पदार्थानाम् , तद्विनिर्मुक्तत्वं च शून्यत्वम्। तथात्वञ्च सकलजगदन्तर्गतत्वेनानिर्वचनीयतया शून्यत्वस्यापि । बुद्धैरात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितः । इत्युक्त्या त्वात्मत्वानात्मत्वे आद्यन्तकोटी, तद्रहितत्वं च सर्वत्र । दर्शितं चाधिकं दर्शनसर्वस्वे । नैवाग्रं नावरं यस्य तस्य मध्यं कुतो भवेत् । इति सौगतोक्त्या तु जन्मप्राक्काले नाशकाले चाविद्यमानतया मध्यकालमात्रवृत्तित्वेनैव घटादेर्मध्यमावस्थाभाक्त्वम्, तस्याः सांवृतत्वेन

भारती

ही है । जिस पारमार्थिक सत्ता में अद्वैतवादी के साथ द्वैतवादी नैयायिकादियों का विवाद है वह पारमार्थिकसत्ता त्रिकालाबाध्यत्वरूप है, जिसे अनुमानादिप्रमाण के न मानने से चार्वाक स्वीकार नहीं करता) । यह नहीं कह सकते, कि चार्वाकादि कर्तृक वाग्व्यवहार ही नहीं होता, क्योंकि वाग्व्यवहार के न होने पर उसे निरस्त करने हेतु आपका प्रयास व्यर्थ हो जायेगा । (खण्डनकार प्रतिवादी का उपहास करते हैं– चार्वाकादि के द्वारा प्रमाणादि की सत्ता का न मानना ही आपको एक अपूर्व वाग्स्तम्भनमन्त्र मिल गया है । निश्चय ही जिसके प्रभाव से भगवान् सुरगुरु वृहस्पति ने चार्वाक्सूत्रों की रचना नहीं की । तत्त्ववेत्ता भगवान् बुद्ध ने शून्यता के प्रतिपादक आगमों का उपदेश नहीं दिया एवं भगवत्पाद भगवान् शङ्कराचार्य ने बादरायण के सूत्रों पर भाष्य की रचना नहीं की । (अर्थात् इन आचार्यों ने सूत्रादि की रचना की है अतः आपका यह वाग्स्तम्भनमन्त्र व्यर्थ है) । यहाँ भगवत्पाद शब्द से बादरायण और भगवत्पाद

प्रवर्तयन्तु नाम ते वाचो भङ्गीः, तास्तु साधनबाधनक्षमा न भवन्ति तावतेति ब्रूम इति चेन्न; प्रमाणाद्यनभ्युपगम्य प्रवर्तितत्वं तदीयसाधन-बाधनाक्षमतायां न नियामकं, किन्तु सद्वचनाभासलक्षणयोगित्व-मित्यवश्याभ्युपेयं भवता; येनाभ्युपगम्यापि प्रमाणादीनि प्रवर्तिता

शारदा

भगवत्पादभाष्यस्यैव सूत्रानुसारिताया ध्वननाच्चेति । उक्तव्यभिचारमुद्धर्तुमाशङ्कते प्रमाणादीति। **सत्यत्वेनेत्यादिः । एवमग्रेऽपि । तावता = वाक्यत्वमात्रेण, प्रमाणाद्यनभ्यु-पगमपूर्वकवाक्यत्वेनेतियावत् । साधनबाधनक्षमाः = स्वपक्षोपपादन-परपक्षनिराकरणयोग्याः, तत्त्वावच्छेदकं च प्रमाणाद्यभ्युपगमपूर्वकत्वमित्यभिमानः। तथाच चार्वाकादिकथास्तादृशयोग्यताविरहवत्यः प्रमाणाद्यभ्युपगमपूर्वकत्वाभावादित्यनुमानसम्भवेन तादृशयोग्यत्वविशिष्टकथायाः प्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमव्याप्यत्वसम्भवः, चार्वाकादिकथायां तादृशयोग्यत्वविरहेण व्यभिचारशङ्कानुदयात् । सति चैवं कथाऽ-भावप्रयोजकीभूतेत्यादिहेतावपि कथाशब्देन तादृशयोग्यताविशिष्टकथैव विवक्षणीयेति न तत्र विशेषणासिद्धिरित्याशयः । कश्चित्तु साधनबाधनाक्षमत्वमपार्थकत्वं तच्चाभिमतप्रमितिजनकत्वाभाववद्वाक्यत्वमित्याह स्म।** तदीयेति । **वाग्व्यवहारनिष्ठेत्यर्थः। न नियामकम् = न समनियतम् । व्यापकाभावेनैव व्याप्याभावसाधनसम्भवेन पूर्वपक्षे व्यापकतायाः सूचितत्वात् । येनेत्याद्युत्तरग्रन्थे च प्रमाणाद्यभ्युपगमपूर्वकत्वस्य तादृशयोग्यताभाववद्वृत्तित्वप्रदर्शनेन व्याप्यताया निरसनात् ययोः समनैयत्यं तदभावयोरपि**

राजहंसः

तु निषेधमभिप्रेत्य ''तस्य मध्यं कुतो भवे''दित्युच्यते । एतदुपपादनं त्वनुमानखण्डनशारदा-तद्राजहंसयोर्द्रष्टव्यम्। सौगतानामाचारमार्गे तु नात्यन्तं क्लेशप्रदतपसो नापि च भूरिभोगस्यादरोऽपि तु मध्यमदशाश्रयणमित्येवमपि मध्यममार्गमामनन्तीत्यन्यत् । भगवत्पाद इतीति। सुरगुरूः स्वयं मूले भगवत्पदेनाभिहितः, तथागतोऽपि भगवानिति प्रथित एव, श्रीशङ्कराचार्यचरणानां तु पादौ भगवन्तौ = ऐश्वर्यादिमन्ताविति निरतिशयोत्कर्षव्यक्तिः । किञ्च भगवतेति सुरगुरोर्विशेषणं मूले तथागतभागवत्पादयोरप्यनुवर्तनीयम्, न च तथागतशब्दपर्यायतया भगवच्छब्दस्य नामानुशासने प्रसिद्धेर्भगवता तथागतेनेति सामानाधिकरण्यानुपपत्तिः, भगवच्छब्दस्यावयवार्थमात्रविवक्षायां तदुपपत्तेः । किञ्च भगवत्तायाः पूज्यत्वसामानाधिकरण्यनैयत्येऽपि पद्यते इति पाद इत्येवं व्युत्पादितपादपदोपादानेन निरतिशयविश्वैकसमर्हणार्हत्वं गम्यतेऽन्वर्थसञ्ज्ञातः ।

इत्याह स्मेति । अत्र प्रमात्वस्य विषयविशेषनियन्त्रितत्वेनाभिमतपदं निष्प्रयोजनम्, वाक्यघटकपदार्थोपस्थित्या शाब्दबोधानन्तरं परामर्शेन प्रतिवादिन्यनुमितेरुत्पत्तयाऽति-व्यवहितत्वेनानपार्थकवाक्येऽपि तादृशजनकत्वाभावसद्भावेनातिव्याप्तिश्च, प्रमाप्रयोजकपरामर्शा-

भारती

इन दोनों का ग्रहण समझना चाहिए । इससे ''वादरायण आचार्य ने प्रपंच मिथ्यात्व पर सूत्रों का निर्माण क्यों नहीं किया'' इस प्रकार ग्रन्थकार को कहना चाहिए था, यह शंका भी निर्दलित हो जाती है ।

शारदा

तथात्वात् । सद्वचनं = समीचीनो न्यायः, उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिसमुदायात्मकन्याये समीचीनत्वं च व्याप्तिपक्षधर्मत्वाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वविशिष्टहेतुधीप्रयोजकत्वम्, प्रमित्युपधायकपरामर्शप्रयोजकत्वमिति वा, एतदेव तादृशयोग्यतावच्छेदकम् । एतादृशसद्वचनवदाभासमानः सद्वचनाभासः, तस्य लक्षणं निरुक्तहेतुज्ञानाप्रयोजकत्वं प्रमित्युपधायकपरामर्शाप्रयोजकत्वं वा, तद्योगित्वं च तादृशयोग्यताविरहसमनियतमेव। यद्यपि योग्यताविरहसाध्यकहेतौ सद्वचनाभासलक्षणस्योपाधेरत्राभिधित्सितत्वेन साध्यव्यापकत्वमेव तस्यापेक्षितम् , तावतैव साध्याभावोन्नायकाभावप्रतियोगित्वस्य दूषकतौपयिकस्य तत्र सम्भवादिति समनैयत्यमकिञ्चित्करम् , तथापि प्रकृते वस्तुतस्सत्त्वात्तदुक्तिः । अथवोपाधिगता व्याप्तिः स्वसविधवर्तिहेतौ चकास्तीति वदतां प्राचीनानां मते समनियतस्यैवोपाधित्वोपाधित्वादिदमुक्तम् । यदि तु वाक्ये एव सद्वचनाभासत्वव्यवहारमनुरुध्य तत्र विशेष्यतया वाक्यत्वमपि प्रवेश्यते तदा साधनबाधनयोग्यताविरहस्यावाक्येऽपि सम्भवेन नोपाधेः साध्यव्यापकत्वसम्भवो यद्यपि

राजहंसः

प्रयोजकवाक्यत्वस्य प्रमात्मकपरामर्शाप्रयोजकवाक्यत्वस्य वोक्तौ तु सद्वचनाभास-लक्षणयोगित्वस्याप्येतद्रूपतायां पर्यवसानस्य वक्तव्यत्वेन तस्मिन् साधनबाधनाक्षमता-नियामकत्वबोधकोत्तरग्रन्थासङ्गतिः, येनेत्यादिना च तयोर्भेदस्य स्फुटं प्रतीतेः, उक्तव्याख्याने तु योग्यतायाः शक्तिविशेषरूपतया तयोर्भेदसम्भव इत्यस्वरसबीजं द्रष्टव्यम् ।

प्रमित्युपधायकेति । अथ प्रतिबन्धकविशेषवशादनुमितेरनुत्पत्तावपि सद्वचनाभासत्वसम्भवेन योग्यत्वं कुतो न निवेशितमिति चेत् , प्रत्यक्ष इवानुमितावपि सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वात् । किञ्च कस्यचित्प्रथमान्तमुख्यविशेष्यकः शाब्दबोधोऽपरस्य धात्वर्थव्यापारविशेष्यकः सोऽनुभूयमानो भासत इत्येतादृशानन्तवैमत्यमूलालोचने वस्तुतोऽनुभवो निर्विशेषोऽपि चिन्तामणिवद् यथावासनमेव प्रथत इत्येव हस्तगतः सिद्धान्तः सम्पद्यते । एवं चैकशेषस्य कर्तुमयुक्तत्वेन समानविषयकज्ञानद्वय सामग्रीसंवलवेलायां तत्तद्धर्मावच्छिन्नमेकमेव ज्ञानमुत्पद्यमानं न कस्यचिदनुभवविरोधेन भीषयितुं शक्यते । त्रिपुटीप्रत्यक्षवादिना प्राभाकरेण चात्मानुमितेरात्मरूपैकविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वमनुमितित्वं चादरणीयमेव । पल्लीप्रभृतिजन्तूनां सहसा निकृत्तकलेवरांशस्य कियन्तंचित्कालं

भारती

(तात्पर्य यह है कि प्रथमविवक्षितहेतुदल में प्रविष्ट सत्यत्वप्रकारकअभ्युपगम का कथाभावप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्वरूप विशेषण के असिद्ध होने से उक्त प्रथम अनुमान में 'विशेषणासिद्धि दोष है । यदि कहा जाय कि कथा के प्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगम का व्याप्य होने से अर्थात् या या कथा सा प्रमाणादिविशेष्यकाभ्युपगमपूर्विका इस प्रकार व्याप्यव्यापकभाव होने से व्यापकाभावात् व्याप्याभावः नियम के अनुसार तादृशाभ्युपगम में तादृश प्रतियोगित्व की सिद्धि हो जायेगी, तो यह कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि चार्वाकादि कथा में कथात्व के रहते हुए भी तादृशाभ्युपगमपूर्वकत्व के न रहने से व्यभिचार है । अतः पूर्वोक्त व्याप्यव्यापकभाव ही नहीं है । तस्मात् मूलभूतानुमान विशेषणासिद्धि दोष से दुष्ट है ।

शारदा

तथापि वाक्यत्वावच्छिन्नस्य साध्यस्य व्यापकत्वं सम्भवत्येवोपाधाविति भावः । येन = प्रमित्युपधायकपरामर्शप्रयोजकत्वाभाववद्वाक्यत्वेनैव। तृतीयार्थस्य प्रयोज्यत्वस्य साधनबाधनयोग्यताविरहविशिष्टरूपा तथाभूतपदार्थैकदेशे तादृशविरहेऽन्वयः, पदार्थः पदार्थेनान्वेतीति व्युत्पत्तेरभेदान्वयमात्रविषयत्वात् । अभ्युपगम्येति। **परमार्थिकत्वेनेत्यादिः। प्रमाणादिविशेष्यकपारमार्थिकत्व प्रकारकाभ्युपगमपूर्वकत्वं न साधनबाधनयोग्यता-व्याप्यमिति सूचयितुं प्रवर्तिता इत्यन्तम् । अभ्युपगतप्रमाणादिसत्त्वैः = प्रमाणादि-विशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमवद्भिः। एतच्च तादृशाभ्यु । पगमविरहिणामप्युपलक्षणम्।**

राजहंसः

स्पन्दविशेषोलब्ध्याऽध्यात्मप्राणस्येव तत्समनियतमनसः शरीरप्रसृत्वरताया एव यौक्तिकत्वेन युगपन्नानाज्ञानजनकताया अपि सम्भवाच्च । विभिन्नविषयकनानाज्ञानसामग्रीसंवलने तु तत्तद्विषयकत्वावच्छेदेनैव तत्तद्वैजात्यानामेकत्र ज्ञाने समावेशः ।

एतेन-बुभुत्सिते एकत्रार्थे विजातीयानुभवसामग्र्योः सन्निपाते कस्मिंश्चिदप्यनुभवे जायमाने बुभुत्सितार्थावगतिसाकल्यसम्पत्तेः पुनरवगतेरसम्पाद्यत्वमिति यत्सामग्र्या लघुत्वं तस्या एव फलजनकत्वम् । बुभुत्सितार्थद्वये विजातीयानुभवसामग्र्योः सन्निपाते कयाप्येकयैवार्थावगत्या भवितव्यम्, जातिसाङ्कर्यज्ञानयौगपद्यानुपगमादिति बुभुत्सितार्थावगतिसाकल्यासम्पत्तेः पुनरवगतिः सम्पादनीया, सा च सामग्र्यधीना, तत्र गुरुसामग्र्यपेक्षया लघुसामग्रीसम्पादनं युक्तमिति यत्सामग्र्याः गुरुत्वं तस्या एव प्रथमतः फलजनकत्वमित्यनुभवसिद्धम् । तथा चानुमितिसामग्रीतः शाब्दसामग्र्याः, शाब्दसामग्रीतश्च प्रत्यक्षसामग्र्याः लघुभूताया अनतिरिक्तविषयिकायामनुमितौ शाब्दमतौ च प्रतिबन्धकत्वम्, विभिन्नविषयके शाब्दबोधे चानुमितिसामग्र्यास्तादृशे प्रत्यक्षे च शाब्दसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वमिति व्युत्पत्तिवादतत्त्वालोकोक्तं निरस्तम् । सामग्री तावद्गौरवलाघवे नालोचयति, अचेतनत्वात्, नापि जनः, अबुभुत्सितार्थेऽपि ज्ञानद्वयसामग्रीसंवलनात् । न चैकत्र निर्णीतोऽर्थोऽपरत्रापि

भारती

प्रतिवादी – प्रमाणादि की सत्ता न मानकर भी वाग्व्यवहार होता है तो होता रहे, हमारा कथन तो इतना ही है कि वह वाग्व्यवहार किसी के साधन-बाधन में समर्थ नहीं होता। (यहाँ पूर्वपक्षग्रन्थ का आशय यह है कि हम केवल कथा को प्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगम का व्याप्य नहीं कहते, जिससे कि चार्वाकादिकथा में व्यभिचार प्राप्त हो, अपितु साधन बाधन-योग्य (स्वपक्ष साधन परपक्ष निराकरण योग्य) कथा को व्याप्य कहते हैं । ऐसी स्थिति में - चार्वाकादिकथास्तादृशयोग्यताविरहवत्यः प्रमाणाद्यभ्युपगमपूर्वकत्वाभावात् इस प्रकार अनुमान के बल से चार्वाकादिकथा के तादृशयोग्य न होने से व्यभिचार नहीं है। अतः विशेषणासिद्धि दोष भी नहीं है ।)

खण्डन – वाग्व्यवहार में साधन-बाधन की अक्षमता का नियामक (कारण) ''प्रमाणादि की सत्ता न मानकर वाग्व्यवहार का किया जाना'' नहीं है अपितु उस वाग्व्यवहार का सद्वचनाभास होना ही है । अर्थात् जो वाग्व्यवहार सद्वचनरूप नहीं है अपितु सद्वचन के

मतान्तरानुसारिभिर्व्यवहारा अभ्युपगतप्रमाणादिसत्त्वैर्मतान्तरव्यवहारिभिरपरैरतथाभूता इति कथ्यन्ते। यदि त्वस्मद्वचसि सद्वचनाभासलक्षणं न भवान् दर्शयितुमीष्टे, तदा अनभ्युपगम्य प्रमाणादीनि भवता प्रवर्तितोऽयं व्यवहारं इति शतकृत्वस्त्वयोच्यमानेऽपिनास्माकमादरः।

शारदा

सर्वैरपि प्रमित्युपधायकपरामर्शाप्रयोजकवाक्यत्वेनैव साधनबाधनाक्षमत्वोपगमात्। अतथाभूता इत्यपि सावधारणम्। एवं च साधनबाधनयोग्यताविरहस्य व्यापकतालाभः। येनेत्यस्य सावधारणत्वेन च निरुक्तवाक्यत्वस्य तल्लाभ इति समनैयत्यमुक्तं भवति। वेदान्तिकथाविशेषे निरुक्तवाक्यत्वस्याशक्योपदर्शनत्वे च साधनाव्यापकत्वमपि तस्य निश्चितमिति तद्विरहेण तद्वाप्यीभूतस्य वाक्यत्वावच्छिन्नसाध्यस्याभावसिद्धौ साधनबाधनयोग्यत्ववद्वेदान्तिकथानिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात्प्रमाणाद्यभ्युपगमपूर्वकत्वस्य तादृशयोग्यत्वव्यापकत्वानुपपत्तिरिति न तद्विरहेण तादृशयोग्यत्वविरहानुमानसम्भव इत्यनुशयान आह–यदि त्विति। **एतेन पूर्वपक्ष्यभिप्रेतव्यापकत्वनिरासाभावनिबन्धना न्यूनतेति परिहृतम्।** दर्शयितुमिति। **निरुक्तवाक्यत्वस्य कथायामनुद्भावनेऽपि हेत्वाभासोद्भावनेनैव तत्प्रदर्शनसम्भव इति भावः। यद्यपि हेत्वाभासमुद्भाव्य साधनाक्षमत्वमेवानुमीयते, एतदेव चासाधकताशब्देन तार्किकनिबन्धेषु प्रसिद्धम्, तथापि परपक्षं निराकर्तुं प्रयुक्तस्य हेतोर्दुष्टतया ज्ञाने**

राजहंसः

सञ्चार्यत इति बुभुत्सितार्थे कथितप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावनिर्णयेऽन्यत्रापि तथाकल्पनमिति वाँच्यम्, बुभुत्सितार्थेऽपि पामराणामपि गौरवागौरवालोचनचातुर्यचुम्बितचेतनानां बोधद्वयहेतुनिवहसंवलनबलेन बोधोद्भवेन तथाकल्पनानुपपत्तेः। विचारकैरपि व्यवहर्तृतादशामधिशयानैर्गौरवाद्यवगतौ मनोऽनर्पणाच्च। तस्मादीदृशशिक्षानुसारिवासनामात्रमूलककार्यकारणभावप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावावधूननायैव निष्प्रयोजनतया सहनानर्हं जनकतावच्छेदकधर्मवत्त्वरूपयोग्यतानिवेशे गौरवं समीक्ष्य वैशिष्ट्यात्मकोपधायकतानिवेशश्चुम्बत्यौचित्यम्। शक्तिविशेषरूपयोग्यतानिवेशस्तु लघुभूतो नोक्तप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावादिवदस्पृश्यपङ्क्तौ प्रवेश्यो येन परामर्शाव्यवहितोत्तरक्षणे क्वचिन्मूर्च्छादिसम्भावनयाऽव्यापितसम्भावनाऽपि भवेत्। न च प्रमात्मकपरामर्शप्रयोजकत्वमेव लाघवान्नाभ्यधायि कुत इति शङ्कनीयम्, वस्तुतः साध्यवति धर्मिणि भ्रमात्मकपरामर्शेनापि प्रमोत्पादनेन तत्प्रयोजकवाक्यस्य समीचीनत्वोपगमपक्षे तथानिवेशासम्भवात्, तत्पक्षस्य सर्वथैवानादरणीयत्वेऽपि परामर्शस्य फलीभूतप्रमाविषयाधिकविषयकत्वेन

भारती

समान आभासमान ही है वह किसी के साधन-बाधन में समर्थ नहीं है, इसे आप (तार्किक) को भी स्वीकार करना ही होगा। क्योंकि प्रमाणादि की सत्ता को मानने वाले आप तार्किक ही प्रमाणादि की सत्ता को मानकर किये जाने वाले मीमासंकों के वाग्व्यवहार को साधन-बाधन में असमर्थ कहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि आप (तार्किक) हमारे वचन में सद्वचनाभासत्व दिखाने में समर्थ नहीं हैं तो "आप (खाण्डनिक) का वाग्व्यवहार प्रमाणादि की सत्ता न मानकर प्रवृत्त हैं इस लिए साधन-बाधन में अक्षम हैं" इस प्रकार आपके सौ बार कहने पर भी उसमें (तादृश कथन में) हमारी (खाण्डनिक) आस्था (प्रामाण्यबुद्धि) नहीं है और

अन्यथाऽभ्युपगम्य प्रमाणादीनि भवता प्रवर्तितोऽयं व्यवहार इत्येतावता भवदीयो व्यवहाराभास इत्यस्माभिरपि वक्तुं शक्यते एव। ननु यदि प्रमाणादीनि न सन्ति तदा व्यवहार एव धर्मी कथं सिद्ध्येत्, दूषणादिव्यवस्था वा कथं स्यात् सर्वविधिनिषेधानां प्रमाणाधीनत्वात्। मैवम्। न ब्रूमो वयं न सन्ति प्रमाणादीनीति स्वीकृत्य कथारभ्येति, किं नाम, सन्ति न सन्ति वा प्रमाणादीनीत्यस्यां चिन्तायामुदासीनैर्यथा स्वीकृत्य तानि भवता व्यवह्रियते तथा व्यवहारिभिरेव। कथा प्रवर्त्यतामिति, अन्यथा 'न सन्ति प्रमाणादीनी'ति मतमस्माकमारोप्य

शारदा

बाधनाक्षमत्वानुमानमपि न दण्डवारितम्, वितण्डायां स्वपक्षसाधनायाप्रयोगात् फलतस्तु तयोरैक्यमिति तत्त्वं, तथाच निरुक्तवाक्यत्वव्यापकं साधनबाधनायोग्यत्वशब्देनानभिधायाभिमतप्रमित्ययोग्यत्वशब्देनेवाभिधीयताम्। हेतुप्रयोगस्तु वाक्यत्वांशमपास्यैव, अन्यथा वैयर्थ्यादिति भावः। व्यवहार **इति। तस्मान्न साधनक्षम इति शेषः।** आदर **इति। निर्णीतव्याप्तिकेन बिना प्रसङ्गानुपपत्तेरिति भावः। अन्यथा = अनिर्णीतव्याप्तिकेन प्रसङ्गोपगमे। तदेवं कथाऽभावप्रयोजकीभूतेत्यादिहेतौ कथायां साधनबाधनयोग्यत्वविशेषणदानेऽपि प्रतियोगित्वान्तविशेषणस्याप्रसिद्धिस्तदवस्थेति स्थितम्। अथान्यथाख्यातिवादिनामस्तीतिधीविषयस्यैव पारमार्थिकत्वात् सत्ताविभागस्य पारमार्थिकव्यावहारिकादिरूपस्य "तस्माद्यन्नास्ति नास्त्येव यत्त्वस्ति परमार्थतः। तत्सत्यमन्यन्मिथ्येति न सत्यद्वयकल्पने" ति वदद्भिस्तैरनङ्गीकारात् पारमार्थिकत्वेन प्रमाणादिकमनभ्युपगच्छता प्रमाणाद्यस्तित्वमेवानभ्युपगतमिति तेषां भ्रमसम्भवः,**

राजहंसः

तदीयसर्वांशप्रमात्वस्य फलीभूतमितिनिष्ठप्रमात्वापेक्षयाऽतिगुरुतया निवेशानर्हत्वात्। किञ्चोद्बुद्धव्याप्तिसंस्कारगृह्यमाणव्याप्यतावच्छेदकधर्मप्रकारकज्ञान, व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानानामेकशक्तिमत्त्वेन कारणतालाभाय फलीभूतप्रमानुकूलशक्तिमत्त्वेन परामर्शप्रवेशं सूचयितुमपीत्थमेव वक्तुमुचितमिति।

भारती

यदि नियम विरुद्ध भी आप (तार्किक) का पूर्वोक्त कथन आस्थेय मान लिया जाय, तो हम भी यह कह सकते हैं कि "प्रमाणादि की सत्ता मानकर आप (तार्किक) का यह वाग्व्यवहार प्रवर्तित है इसलिए व्यवहाराभास अर्थात् स्वपक्ष साधन परपक्ष के निराकरण में असमर्थ है"।

शङ्का- यदि प्रमाणादि की सत्ता न मानी जाय तो व्यवहाररूप धर्मी ही सिद्ध न होगा, एवं सद्वचनाभासत्वादि दूषणादि की व्यवस्था भी कैसे होगी, क्योंकि सभी विधि तथा निषेध प्रमाण-सत्ता स्वीकार के अधीन है।

समाधान-"प्रमाणादि की सत्ता अर्थात् व्यावहारिक सत्ता भी नहीं है ऐसा स्वीकार कर कथा आरम्भ करनी चाहिए।" यह हमारा कथन नहीं है, अपितु प्रमाणादि सत् है या असत्

यदिदं भवता दूषणमुक्तम्, तदपि न वक्तुं शक्यम् । कीदृशीं मर्यादामालम्ब्य प्रवृत्तायां कथायामिदं भवता दूषणमुक्तम् ; किं प्रमाणादीनां सत्त्वमभ्युपगम्योभाभ्यां वादिभ्यां प्रवर्तितायां कथायाम्? उतासत्त्वमभ्युपेत्य? अथैकेन सत्त्वमपरेण चासत्त्वमङ्गीकृत्य? नाद्यः, अभ्युपगतप्रमाणादिसत्त्वं प्रत्येतादृशपर्यनुयोगानवकाशात् । द्वितीये च स्वतोऽप्यापत्तेः। न तृतीयः, तथैव कथान्तरस्यापि प्रसक्तेः, उभयाभ्युपगमानुरोधित्वाच्च कथानियमस्य, अन्यथा स्वाभिप्रायमालम्ब्य

शारदा

एतादृशभ्रममूलैव चाशङ्का-नन्वित्यादिना। धर्मी = **प्रमाणादीनामङ्गी**। व्यवहारिभिरिति। **एतेन व्यावहारिकात्मना प्रमाणादेः स्वीकारो ध्वनितः। यथाच प्रमाणादौ पारमार्थिकत्वस्य दुर्निरूपत्वात् व्यवहारौपयिकी पारमार्थिकत्वातिरिक्तैव सत्ताऽवश्योपेया तथोपरिष्टाद्व्यक्ती भविष्यति**। अन्यथा = **उक्तचिन्तायामुदासीनैः कथाप्रवर्तनानङ्गीकारे**। न सन्ति = **व्यावहारिकरूपेणापि न सन्ति**। प्रमाणादीनां सत्त्वं = **सत्त्वेन प्रमाणादीनीत्यर्थः**। असत्त्वं = **असत्त्वेन प्रमाणादीनीत्यर्थः**। एकेन = **तार्किकादिना**। अपरेण = **वैतण्डिकेन**। एतादृशेति। **ननु व्यवहार एव धर्मीत्याद्युक्तेरित्यर्थः**। स्वतोऽपि = **तवापि** । आपत्तेः= **व्यवहाराद्यसिद्धत्वापत्तेः**। तथैव = **प्रचलत्कथावत्** । कथान्तरस्य = **भाविकथायाः**। **कथात्वस्य कथकद्वयकर्तृकप्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमपूर्वकत्व-व्यभिचारित्वात्तदभावेऽपि भाविकथाव्यक्तेः कथात्वाव्याघातात् । अभ्युपेत्यैतदुक्तं, वस्तुतस्तु तृतीयकल्पस्यासम्भव एवेत्याह** उभयाभ्युपगमेति। कथानियमस्य = **कथासिद्ध्यौपयिकसमयबन्धस्य । न चैवं नैयायिकादेश्चार्वाकादिना कथालोपप्रसङ्गः, उभयोः सत्त्वेनासत्त्वेन वा प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथमप्यसम्भवादिति वाच्यम्; एवं सति**

भारती

इस प्रकार के विचार में उदासीन (तटस्थ) होकर व्यावहारिक लोग जैसे प्रमाणादि को मानकर व्यवहार सम्पन्न करते हैं, वैसे ही आप भी तादृश चिन्ता में उदासीन होकर व्यवहार सम्पन्न कीजिए। (यहाँ तात्पर्य यह कि व्यवहार सम्पत्ति के लिए प्रमाणादि की व्यावहारिक सत्ता ही अपेक्षित है जिसे हम भी स्वीकार करते हैं)

(ज्ञातव्य है कि खण्डनकार प्रमाणादि की पारमार्थिक सत्ता का ही निराकरण करते हैं, जिसे मानने से अद्वैत की हानि होती है। व्यावहारिक सत्ता का निराकरण नहीं करते, क्योंकि उसे तो वेदान्ती भी मानते ही हैं। अत: उसके मानने में कोई विरोध ही नहीं है। यह बात भिन्न है, कि तार्किक के मत में अस्तीतिधीविषयत्वरूप व्यावहारिक सत्ता ही पारमार्थिक सत्ता है। उनके मत में सत्तात्रय का विभाग नहीं मानते हैं ।)

यदि व्यावहारिक रूप से भी प्रमाणादि को न माना जाय तो – प्रमाणादि के न मानने का हमारे पर आरोप कर जो आप दोष (व्यवहाररूप धर्मी ही सिद्ध न होगा) दे रहे हैं, वह भी नहीं दे सकेंगे। क्योंकि कथा (शास्त्रार्थरूप वाग्व्यवहार) में ही दोष उपस्थापित करना होगा, वह कथा किस मर्यादा (नियम) का अवलम्बन

तेनापि त्वद्वचसि यत्किञ्चिद्वागात्मनि दूषणेऽभिहिते कस्य जयो व्यवतिष्ठताम् , प्रमाणाद्यभ्युपगन्तुरेव यावन्नियमभरयन्त्रणा महती स्यात् । तस्मात्प्रमाणादिसत्त्वासत्त्वाभ्युपगमौदासीन्येन व्यवहारनियमेन समयं बद्ध्वा प्रवर्तितायां कथायां भवतेदं दूषणमुक्तमित्युचितमेव तथासति

शारदा

सत्त्वासत्वचिन्तौदासीनताया एव नैयायिकादेश्चार्वाकादिना कथाप्रवर्तनोपपादकत्वमिति सिद्धं समीहितम् । वस्तुतस्तु भवान् प्रमाणादिकं सत्त्वेनानभ्युपगत्यैव विचारं प्रवर्तयत्विति सम्मतिश्चार्वाकादिकं प्रति यदि तार्किकादिना दीयते तदा तृतीयपक्षेऽपि न दोषः, तदेतदप्युक्तमुभयाभ्युपगमेत्यादिना, अभ्युपगमः = **सम्मतिः।** अन्यथा = **समयबन्धस्योभयाभ्युपगमानुरोधित्वानङ्गीकारे ।** तेनापि = **प्रतिवादिनापि ।** वागात्मनि दूषणेऽभिहिते = **उभयसम्मतदोषाभाववतोऽपि हेत्वादेः स्वसम्मतदोषवत्त्वेनाभिधाने।** व्यवतिष्ठतामिति। **तस्मात्समयबन्ध उभयाभ्युपगमानुसारेणावश्योपादेयः। सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्याप्यावश्यकत्वोपगमे तु गौरवमेव, अवश्यानुष्ठेसमयबन्धेनैव निर्वाहादित्याह** प्रमाणादीति। **सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाहेतुत्वोपगन्तुरित्यर्थः।** यावतो नियमस्य= **कथौपयिकसमयस्य वक्ष्यमाणस्य भरेण = भूयस्त्वेन** यन्त्रणा = **पीड़ा अधिकनियमरक्षणस्य क्लेशप्रदत्वमित्याशयः,** महती = **अधिका, गौरवावहेति यावत्। मन्मते तु सा सत्यपि न गौरवावहा, सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वोपगमविनिर्मुक्तत्वादिति भावः। यत्तु - यद्युभयाननुमतोऽपि दोषस्तदा प्रमाणाद्यभ्युपगन्तुस्तव प्रामाणिकदोषनुसरणव्यग्रता, उद्भावितदोषस्य प्रामाणिकत्वव्यवस्थापनप्रयासश्चस्यादस्माकं तु नेयं व्यापृतिरिति व्याख्यानम् ; तदसत् , सांवृतसतोऽपि प्रमाणादेः प्रमाणादित्वस्य वक्ष्यमाणत्वात् तादृशव्यापृतेरद्वैतिनोऽप्यावश्यकत्वात् ।** तस्मात् तथासति = **सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाहेतुतोपगमे गौरवात् तस्याहेतुत्वे सति ।** व्यवहारनियमेन = **फलेन, जयपराजयव्यवस्थाऽनतिप्रसञ्जकव्यवहारसिद्ध्यर्थमिति यावत् । फलहेतौ तृतीया ।**

भारती

कर प्रवृत होगी – क्या वादि प्रतिवादि दोनों के द्वारा प्रमाणादि की सत्ता मानकर प्रवर्तित कथा में दोष देंगे, अथवा दोनों के द्वारा प्रमाणादि की असत्ता मानकर की जाने वाली कथा में, या एक (तार्किकादि) के द्वारा सत्ता और दूसरे (वैतण्डिक) के द्वारा असत्ता स्वीकारकर दोनों के द्वारा प्रवर्तित कथा में। इनमें प्रथम प्रकार की कथा में दोष नहीं दे सकते, क्योंकि प्रमाणादि की सत्ता को स्वीकार करने वाले के प्रति व्यवहार की अनुपपत्ति रूप आक्षेप नहीं किया जा सकता है। दूसरे प्रकार की कथा में भी दोष नहीं दे सकते, क्योंकि तादृश प्रकार की कथा मानी जाने पर आप (तार्किक) पर भी व्यवहार आदि के असिद्धत्व की आपत्ति होगी। तृतीय प्रकार की कथा में भी नहीं कह सकते,

स्यात् । योऽयं भवान् स्वाभिप्रायमपि नावधारयितुं शक्नोति दूरतस्तस्मिन् पराभिसन्धानावधारणप्रत्याशा । अथ वादीकृत्यदुर्वैतण्डिकं तस्मिन्नुपाधौ बाधोऽभिधीयते इत्येव नेष्यते, शिष्यादयस्तु तस्य कथानधिकारं ज्ञाप्यन्ते, अत एव भाष्यकारः "स प्रयोजनमनुयुक्तो यदि प्रतिपद्यते"

शारदा

प्रवर्तितायाम् । **मध्यस्थेनेत्यादिः, तेन समयबन्धकथाप्रवर्तनयोः समानकर्तृकत्वेन क्त्वोपपत्तिः।** इदम् = **वाग्व्यवहारासिद्ध्यादि।** इत्युचितमेव स्यात् = **इत्येवोचितं स्यात् । तथा सत्येवेति वाऽन्वयः। इदमुपलक्षणम् वस्तुतस्त्वित्याद्युक्तरीत्यापि कथायां दूषणाभिधानोपपत्तेः। उपहसति** योऽयमिति। अभिप्रायमिति। **कर्मव्युत्पत्त्याऽभिप्रेतमित्यर्थकम् । कीदृशाभ्युपगमनिबन्धनप्रवृत्तिकायां कथायां मया दूषणमभाणीत्यत्र विषये स्वाभिप्रेतस्यावधारणे हि वाग्व्यवहारासिद्ध्यादिदूषणाभिधानमेव तव न स्यात् । तस्मात्तदभिधानेनैव स्वाभिप्रेतानवधारणमनुमीयते। अवधारणं हि धीमतस्तव तृतीयपक्षविषयकं सत्त्वासत्त्वाभ्युपगमौदासीन्यविषयकमेव वा स्यात् तत्र चोक्तदोषस्यानवसर एवेति भावः। वस्तुतस्तु स्वाभिप्रायानवधारणं = स्वीयाभ्युपगमे स्वीयदूषणाभिधानव्याघातकारित्वस्यानिश्चयः, तदेव ह्याशङ्क्यत यस्मिन्नाशङ्क्यमान स्वक्रियाव्याघातादयो दोषा नावतरन्ति; प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमः कथाङ्गमिति भवदीयाभ्युपगमरूपा क्रिया तु भवदीय दूषणाभिधानरूपां क्रियां व्याहन्ति, कथामन्तरेण दूषणाभिधानानुपपत्तेः। दूषणाभिधानरूपक्रिया च तादृशाभ्युपगमरूपक्रियां व्याहन्ति। एतेन स्वेन गृहीते एव स्वाभिप्रेतत्वसम्भवात् , सन्दिग्धे च स्वेच्छाविषयत्वरूपस्वाभिप्रेतत्ववति निश्चयस्यैवाप्रसङ्गाद्यथाश्रुतमसङ्गतमिति निरस्तम् । सत्यत्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगमेऽपि सांवृतसत्त्वमात्रेण कथोपपत्तिरिति पराभिसन्धानम् ।** वादीकृत्य = **कथायां सम्बोध्यं कृत्वेति यावत्। नैयायिकादिवैतण्डिकव्यावृत्तये** दुरिति। **दुष्टत्वं च सत्यत्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगन्तृत्वम् ।** तस्मिन्नुपाधौ बाधः = **सत्यत्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगमनिमित्तको**

राजहंसः

फलहेतौ तृतीयेति । अभेदाभिधानस्य निष्प्रयोजनत्वात् समयबन्धान्वय्यभेदस्तृतीयार्थो नात्रादृतः।

भारती

क्योंकि जिस प्रकार यह प्रचलित कथा सत्त्वेन प्रमाणादि के माने विना ही हो रही है, वैसे ही सत्त्वेन प्रमाणादि के विना भावि कथान्तर भी सम्पन्न हो जायेगा। वस्तुतस्तु तृतीय प्रकार की कथा या तो सम्भव ही नहीं है, और यदि सम्भव है, तो तार्किकादि की सम्मति पर निर्भर है, क्योंकि कथा के नियम वादि प्रतिवादि उभय सम्मत होता है। अन्यथा (कथानियमों के उभय सम्मत न होने पर) प्रतिवादी भी आपके वाग्व्यवहार में स्वसम्मत दोष देगा, ऐसी स्थिति में जय किसका माना जायेगा। अर्थात् जय पराजय की व्यवस्था न हो सकेगी । (अतः

इत्याह स्म न तु ''प्रतिपद्यसे'' इति। मैवम् ; शिष्यादीन्प्रत्यपि

शारदा

वाग्व्यवहारानुपपत्त्यादिरूपो दोषः। तस्य = **दुर्वैतण्डिकस्य ।** कथानधिकारमिति। **कथानुपपत्त्यापादकतादृशानभ्युपगमवतश्चार्वाकादेः कथाऽधिकारासम्भव इत्याशयः।** अतएव = **चार्वाकादेरसम्बोध्यत्वेन वादित्वाभावादेव।** भाष्यकारो **वात्स्यायनः ।** प्रतिपद्यसे **इति। त्वं प्रयोजनमनुयुक्त इत्यस्याप्युपलक्षणम् । प्रमाणप्रमेयादिसूत्रे पदार्थान्तरवद्वितण्डाया अपि सप्रयोजनत्वप्रतिपिपादयिषया वितण्डा निष्प्रयोजनेति केषाञ्चिन्मतमपहस्तितम् । तथाहि, यदि सा निष्प्रयोजना तदा प्रयोजनं पृष्टो वैतण्डिकः तत् स्वीकुर्वन् निष्प्रयोजनत्वघटितलक्षणां वितण्डां जह्यादेव, तदस्वीकुर्वंस्तून्मत्तवदुपेक्षणीयः स्यादिति निष्प्रयोजनतापक्षे वितण्डा न भवेदेव, तस्मात् सप्रयोजनैव सेति श्रीवाचस्पतिमतानुसारेण भाष्याशयः। केचित्तु तद्भाष्यं चार्वाकादेः कथानधिकारप्रतिपादनपरतया योजयन्ति। उभयथाऽपि**

राजहंसः

प्रमाणाद्यनभ्युपगमनिमित्तक इति। 'व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते' इति भवभूतिप्रयोगादावुपाधिपदस्य बहुलं निमित्ते प्रयोगदर्शनादत्रापि तन्निमित्तपरतया व्याख्यातम् । **कथाधिकारासम्भव** इति। उक्तञ्च सर्वथा सदुपायानां वादमार्गः

भारती

कथारम्भ के लिए समयबन्धादि नियम ही उभय सम्मततया अवश्य उपादेय है, न कि सत्त्वेन प्रमाणादि) और यदि सत्त्वेन प्रमाणादि को तदर्थ उपादेय मानेंगे, तो सत्त्वेन को कथाङ्ग मानने वाले आप (तार्किक) को ही सत्त्वेन प्रमाणादिरूप अधिक नियम मानने की महती यन्त्रणा सहनी पड़ेगी। यहाँ यन्त्रणा शब्द से ग्रन्थकार ने यह व्यक्त किया है कि - यन्त्रणा अर्थात् स्वसिद्धांत के उपपादनार्थ तार्किक के द्वारा स्वीकार कथाङ्गतया सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमरूप अधिक नियमों के पालन की वेदनाकेवल वेदना मात्र ही है, इसके द्वारा स्वसिद्धान्त का उपपादन आप (तार्किक) नहीं कर सकते। तस्मात् प्रमाणादि के सत्त्वासत्त्व में उदासीन मध्यस्थ के द्वारा समयबन्धादिरूप व्यवहार नियमों से प्रचलित कथा में ही आप उक्त (व्यवहाररूप धर्मी की असिद्धि) दोष देते, तभी उचित होता। एवञ्च स्वाभिप्राय के अनभिज्ञ आप में अन्य के अभिप्राय को समझने की आशा करना व्यर्थ है।

प्रतिवादी - हम आप दुर्वैताण्डिक को लक्ष्य कर सत्त्वेन प्रमाणादि के अस्वीकारनिमित्तक व्यवहार की अनुपपत्तिरूप दोष नहीं देते, अपितु अपने शिष्यों के प्रति उस (सत्त्वेन प्रमाणादि अस्वीकर्ता) के कथा (शास्त्रचर्चा) में अनधिकार को बोधित करते हैं। अत एव भाष्यकार वात्स्यायन ने ''स प्रयोजनमनुयुक्तो यदि प्रतिपद्यते'' (वह वैतण्डिक वितण्डा का प्रयोजन पूछे जाने पर यदि किञ्चित् प्रयोजन स्वीकार करता है, तो उस प्रयोजन के स्वीकार करने मात्र से ही उसके अपने वैतण्डिकत्व का परित्याग हो जायेगा।) कहा है, न कि प्रतिपद्य से । (तात्पर्य यह है कि यदि भाष्यकार वैतण्डिक को लक्ष्य कर उपर्युक्त वचन कहते, तो उस

''चार्वाकादेर्दोषोऽयमित्येवाभिधातव्यम् कथं च तथा स्यात्, तस्य कथाप्रवेशन प्रवेशनयोस्तद्बाधाक्षमत्वात्। कथायामेव हि निग्रहः।

शारदा

चार्वाकादेरसम्बोध्यत्वं प्रथमपुरुषप्रयोगलिङ्गेन गम्यते इति भावः । कथं च तथा स्यात् = **कथं च तादृशाभिधानं सफलं स्यात्** । तस्य = **चार्वाकादेः** । तद्बाधाक्षमत्वात् = **कथाद्यनुपपत्तिरूपं बाधं = दोषं प्रत्ययोग्यत्वात्। चार्वाकादेः कथाप्रवेशाङ्गीकारे सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गतोपगमप्रयुक्तकथाद्यनुपपत्तिरूपदोषदानं तं प्रत्यनुचितम्। कथाया उपपन्नत्वादेव । कथाप्रवेशानङ्गीकारे तु कं प्रति तादृशदोषाभिधानम्, कथकं प्रत्येव दोषस्याभिधेयत्वात् । तथा च कथायां यदि कदाचिदपि नासौ सावसरः, तदा तदीय निग्रहविषयकोपदेशोऽपि भावत्को न फलेग्रहिरिति न सत्यत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमः कथौपयिक इत्याशयः** । निग्रहः = **प्रतिवादिन्यग्भावाय दोषाभिधानम् । एवं प्रथमानुमानं निरस्य 'प्रमाणादयः कथकाभ्यां सत्त्वेनाभ्युपगन्तुमर्हाः कथाहेतुत्वादि'ति द्वितीयानुमानं**

राजहंसः

प्रवर्तते। अधिकारोऽनुपायत्वान्न शून्यवादिनः'। इति श्लोकवार्तिककृतापि। **प्रथमपुरुषप्रयोग-लिङ्गेनेति**। प्रतिवादिदशातोऽवतीर्य ग्रन्थकर्तृरूपतयाऽभिधाने मध्यमपुरुषप्रयोगाप्रसङ्गेऽपि कथञ्चिदुपष्टम्भमात्रं पूर्वपक्षे मूले वात्स्यायनवचनव्यक्तिरूपन्यस्ताऽवगन्तव्येति भावः। **कथकं प्रत्येवेति** । कुतो मे कथायां नाधिकार इति ब्रुवता चार्वाकादिना सहाधिकाराभावसाधनाय कथाया आवश्यकत्वात्, अन्यथा भवत एव पराजयप्रसङ्गादिति भावः ।

भारती

वाक्य में कर्त्ता के लिए युस्मत् शब्द का एवं क्रिया के स्थान में मध्यम पुरुष की क्रिया का प्रयोग करना चाहिए था। किन्तु उन्होंने ऐसा न कर प्रथम पुरुष का ही प्रयोग किया है इससे सिद्ध है कि उनका लक्ष्य वैतण्डिक नहीं है अपितु अपने शिष्य हैं।)

खाण्डनिक—अपने शिष्यों के प्रति भी तो आप (तार्किक) को यही कहना होगा, कि ''प्रमाणादि अनभ्युपगन्ता चार्वाकादि का यह (वाग्व्यवहारानुपपत्ति) दोष है।'' किन्तु यह कथन सफल कैसे होगा, क्योंकि यदि सत्त्वेन प्रमाणादि अनभ्युपगन्ता का कथा में प्रवेश मानते हैं, तो उससे की जाने वाली कथा (शास्त्रार्थ) सम्पन्न हो ही गई, पुनः उसके प्रति कथा की अनुपपत्ति दोष देना, एवं उसका कथा में अनधिकार ज्ञापन करना अनुचित ही है। और यदि उसका कथा में प्रवेश ही नहीं मानते, तो आपका कथन व्यर्थ है क्योंकि शास्त्रार्थ में चार्वाकादि का निग्रह करने के लिए ही तो शिष्यों को तादृश उपदेश दिया जाता है, वह सम्भव ही नहीं है। क्योंकि चार्वाकादि के साथ शास्त्रार्थ का अवसर ही नहीं है,

नापि द्वितीयः; तथाहि—स्यादप्येवं, यदि कथकप्रवर्तनीयवाग्व्यवहारं प्रति हेतुता तत्सत्त्वानभ्युपगमे निवर्तेत, नत्वेवं सम्भवति, तथासति तत्सत्त्वानभ्युपगन्तॄणां वाग्व्यवहारस्वरूपमेव न निष्पद्येत, हेत्वनुपपत्तेः। उक्तश्चायमर्थो यन्माध्यमिकादिवाग्व्यवहाराणां स्वरूपापलापो न शक्यते

शारदा

निराचष्टे नापीति । एवम् = **प्रमाणादिषु कथकाभ्यां सत्त्वेनाभ्युपगमार्हत्वम्** । हेतुता तत्सत्त्वानभ्युपगमे निवर्तेतेति । **सत्त्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगमे प्रमाणादेः कथाहेतुता निवर्तेतेत्यन्वयः। तथा च साध्यं विनाऽपि हेतोरुपपत्तेरनुकूलतर्कविरहादप्रयोजकत्वमिति भावः** । एवं = **प्रकृतसाध्यं विना प्रकृतहेत्वभावः। कथाहेतुत्वे कथकाभ्यां सत्यत्वेनाभ्युपगमनीयत्वव्याप्यत्वोपगमे बाधकमाह** तथा सतीति । तत्सत्त्वानभ्युपगन्तॄणां = **सत्त्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगन्तॄणां** । हेत्वनुपपत्तेरिति । **कारणाभावादित्यर्थः । सत्यत्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगमे प्रमाणादावुक्तव्यापकस्याप्यभावपर्यवसानेन कथाहेतुत्वस्याप्यसम्भवात् सत्यत्वेनानभ्युपगतेनाहेतुभूतेन प्रमाणादिना कथानिष्पत्त्यनुपपत्तेरिति भावः । कथकवाग्व्यवहारं प्रतीति स्वरूपोत्कीर्तनमात्रं न तु हेतुघटकं, वैयर्थ्यात्, हेतुत्वेनैव सत्त्वसाधनसम्भवात् । न च यद्यन्निरूपितहेतुतावत् तत्तदव्यवहितप्राक्क्षणे सदितिव्याप्तिविशेषलाभाय तत्, सत्त्वं च वृत्तिमत्त्वम्, हेतुत्वस्य नियमानन्यथासिद्धिघटितत्वाच्च न हेतुसाध्ययोरविशेष इति वाच्यम्; विवादपर्यवसानापत्तेः । यत्त्वादेरननुगतत्वेन व्यक्तिविशेषयोः कार्यकारणभावं स्वीकुर्वता चार्वाकेणापि व्यक्तिविशेषाव्यवहितप्राक्क्षणवृत्तित्वस्य**

भारती

पुनः निग्रह कैसे किया जायेगा । शास्त्रार्थ में ही निग्रह किया जाता है ।

प्रमाणादयः सत्त्वेन अभ्युपगमार्हाः कथाहेतुत्वात् यह द्वितीयानुमान भी समीचीन नहीं है । प्रमाणादि सत्यत्वेन अभ्युपगमार्ह (स्वीकारार्ह) तब हो सकते थे यदि सद्रूप से प्रमाणादि अर्थात् प्रमाणादिसत्ता के न माने जाने पर-प्रमाणादिगत वाग्व्यवहार की हेतुता भी निवृत्त हो जाती, (तात्पर्य यह है कि व्यापक (साध्य) का अभाव होने पर व्याप्य (हेतु) का भी अभाव यदि होता हो तो उस व्याप्य के द्वारा व्यापक का साधन किया जा सकता है ।) किन्तु यहाँ ऐसा है नहीं, और यदि यहाँ साध्य के अभाव में साधन का भी अभाव मान लें, तो प्रमाणादि की सत्ता न मानने वाले चार्वाकादि का वाग्व्यवहार ही सम्पन्न न हो सकेगा। क्योंकि वाग्व्यवहार का कारण (सत्यत्वेन प्रमाणादि का अभ्युपगम) ही नहीं है । कारण के अभाव में कार्य का होना सम्भव नहीं है । किन्तु यह पूर्व में कहा जा चुका है कि माध्यमिकादि के वाग्व्यवहारों के स्वरूप का अपलाप नहीं किया जा सकता (तात्पर्य यह है कि चार्वाकादि की कथा में प्रकृतसाध्य का अभाव होने पर भी प्रकृत हेतु उपपन्न है । अतः हेतुरस्तु साध्यं मास्तु इस प्रकार व्यभिचारशङ्का-निवर्तक अनुकूल तर्क के न होने से प्रकृत हेतु अप्रयोजक है, अर्थात् व्यभिचारशङ्कानिवर्तक तर्क शून्य है ।)

इति। अथ मन्यसे कथकवाग्व्यवहारं प्रति हेतुत्वात् प्रमाणादीनां सत्त्वं, सत्त्वाच्चाभ्युपगमः यत्सत्तदभ्युपगम्यते इति स्थितेरिति, मैवम् । कयापि नियमस्थित्या प्रवृत्तायां कथायां कथकवाग्व्यवहारं प्रति हेतुत्वात्

शारदा

व्यक्तिविशेषेऽभ्युपगमात्, नितरां त्वद्वैतवादिना, चार्वाकादिमते पुनर्हेतुसाध्ययोरविशेषोऽपि, व्याप्तिग्रहोपायं निराकुर्वता तेन नैयत्यघटितहेतुत्वस्यानभ्युपगमात् । अस्तु वा कथञ्चित्, तथापि पारमार्थिकत्वमेव हेतुत्वेन हेतुना प्रमाणादौ सिषाधयिषितमद्वैतवादिनं प्रति । अपारमार्थिकशुक्तिरूप्यादौ हेतुत्वस्यादृष्टत्वात्प्रवृत्त्यादिकं च प्रति तज्ज्ञानस्यैव हेतुत्वादिति भावः । ब्रह्म तु न दृष्टान्तः, पारमार्थिके तत्र हेतुतानुपगमात् । सत्त्वाच्चेति । **एतेन साध्यात्मकयोग्यतावच्छेदकं न पक्षतावच्छेदकम् प्रमाणात्वादेः स्वीकारेऽपि तादृशयोग्यत्वस्य परेणानङ्गीकारात् अपि तु सत्त्वमेव, तथा च तत्साधनं विनोक्तयोग्यतासाधनमनुपपन्नमित्यपि निरस्तम् । अभ्युपगमः = सत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमार्हत्वम् । अभ्युपगम्यते = तदृशाभ्युपगमार्हम् । इतिस्थितेः = इति वाक्यप्रदर्शितव्याप्तेः । यद्यपि पूर्वपक्षोत्तरपक्षौ सविस्तरमुपरिष्टाद्वर्णनीयौ, तथापीदानीमपारमार्थिके हेतुत्वसाधनं विनापि कथाऽरम्भोऽद्वैतिना शक्योपपाद इत्यनुशयेन प्राह** कयापीति । **नियमस्थित्या = नियमानां कथौपयिकानां समयबन्धेन । कथायां प्रसाध्य इत्यन्वयः । प्रवृत्तायामित्यन्तं प्रकृतकथायां कथकाभ्यां प्रमाणादिकं सत्त्वेनाभ्युपगम्य प्रवर्तितत्वाभावसूचनार्थम्, अन्यथा प्रकृतकथाया अपि सत्त्वप्रकारकप्रमाणाद्यभ्युपगमेन प्रवृत्तौ तत्र तादृशाभ्युपगमसाधनवैयर्थ्यात् । तथा च कथासामान्यस्य प्रमाणादिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकाभ्युपगमजन्यत्वं व्यभिचारान्न सम्भवति, तादृशाभ्युपगमार्हत्वं प्रसाध्य प्रकृतकथारम्भे, प्रकृतकथामारभ्य च तादृशाभ्युपगमार्हत्व-**

राजहंसः

अविशेषोऽपीति । व्यापकांशस्य व्याप्यकुक्षिनिक्षिप्तत्वेन सिद्धसाधनन्तु स्पष्टमेव । हेतुतावदित्यस्य स्थाने हेतुतया व्यवहार्यतावदित्युक्तौ नोक्ताविशेषो न वा सिद्धसाधनमित्यत आह **अस्तु वेति । साध्यात्मकयोग्यतेति ।** प्रकृतानुमानचतुष्टये सत्त्वप्रकारकाभ्युपगमयोग्यतायाः साध्यतया तदवच्छेदकं जिज्ञास्यत इति भावः ।

भारती

यदि कहें कि—"कथकवागव्यवहार के प्रति हेतुत्वरूप हेतु से प्रमाणादि का सत्त्व, एवं सत्त्वरूप हेतु से अभ्युपगमार्हत्व सिद्ध करेंगे, क्योंकि जो सत् होता है, वह अभ्युपगमार्ह (स्वीकार के योग्य) होता है, ऐसा नियम है । (तात्पर्य यह है यत् यत् सत् तत् अभ्युपगमार्हम् इस व्याप्ति के बल से पहले—प्रमाणादयः सन्ति हेतुत्वात् इस अनुमान से प्रमाणादि में सत्त्व (पारमार्थिकत्व) सिद्ध करेंगे फिर प्रमाणादयः अभ्युपगमार्हाः सत्त्वात् इस अनुमान से प्रमाणादि पक्ष में अभ्युपगमार्हत्व को सिद्ध करेंगे) तो यह आपका कथन उचित नहीं है, क्योंकि समयबन्धादि कथानियमों से प्रवृत्त किसी कथा में ही आपको "कथकवागव्यवहार के प्रति हेतुत्व" रूप हेतु से प्रमाणादि का सत्त्व एवं

प्रमाणादीनां सत्त्वं, सत्त्वाच्चाभ्युपगमो भवता प्रसाध्यः । कथातः पूर्वं तत्त्वावधारणं वा परपराजयं वाऽभिलषद्भ्यां कथकाभ्यां यावता विना तदभिलषितं न पर्यवस्यति तावदनुरोद्धव्यम्, तच्च व्यवहारनियमसमयबन्धादेव द्वाभ्यामपि ताभ्यां सम्भाव्यते इति व्यवहारनियमसमयमेव बध्नीतः । स च, ''प्रमाणेन तर्केण च

शारदा

प्रसाधनेऽन्योन्याश्रयापत्तेः, पूर्वपूर्वकथायां प्रसाधिततादृशाभ्युपगमार्हत्वेनोत्तरोत्तर-कथारम्भोपपादने चानवस्थानापत्तेरिति । तादृशाभ्युपगमाव्यवहितोत्तरजायमानकथां प्रति तादृशाभ्युपगमस्य हेतुत्वे तु चार्वाकादिना तार्किकादेःकथायां न काप्यनुपपत्तिः । समयबन्धस्य तु कथासामान्यं प्रत्येव हेतुत्वम् अव्यभिचारात् न तु सत्त्वेन प्रमाणाद्यनभ्युपगमपूर्वक-कथायामेवेत्याशयेन सफलं समयबन्धमाह कथात **इति । कथकाभ्यामनुरोद्धव्यमित्यन्वयः।** अनुरोद्धव्यम् = **उपेयम् । तच्च = अभिलषितञ्च** । व्यवहारनियमेति । **कथौपयिकनियमानां समयस्य करणादित्यर्थः । अथवे 'त्थमेव व्यवहर्तव्यमि'त्यादिव्यवहारविषयकनियमो यस्तद्विषयकसमयबन्धादित्यर्थः । तत्त्वनिर्णयविजयान्यतरप्रयोजनव्याप्तं कथासामान्यं, तादृशप्रयोजनं च समयबन्धेन व्याप्तमिति समयबन्धनिवृत्या प्रयोजननिवृत्तौ कथाऽपि निवर्तेत, व्यापकाभावस्य व्याप्याभावव्याप्यत्वादिति सिद्धा कथासामान्यं प्रति समयबन्धस्य हेतुतेति भावः । स च = समयबन्धश्च, इत्यादिरूप इति परेणान्वयः।** तर्केणेति

राजहंसः

पञ्चमीघटिततया तत्त्वनिर्णयादेः समयबन्धस्य च कार्यकारणभावसमर्पणपरे मूलवाक्ये तत्त्वनिर्णयादिजनकत्वेन समयबन्धोपादानमनुचितम्, नहि घटदण्डयोः कार्यकारणभावावगमार्थं घटजनकदण्डाद् घट इति प्रयोगो नारमणीयः, दण्डाद् घट इत्यस्यैव पर्याप्तत्वात्, तथा च व्यवहारनियमरूपफलार्थः = तत्त्वनिर्णयाद्यनतिप्रसक्तिप्रयोजको यः समयबन्धस्तस्मादिति प्राग्दर्शितापि व्याख्याप्रणाली नात्रादर्तव्येत्येत्याशयानोऽन्यथा व्याचष्टे—

कथौपयिकनियमानामिति । नियमपदस्य व्याप्तिमात्रार्थस्य कार्यकारणभावपरत्वे लक्षणैव स्यादिति तामसहमान आह **अथवेति** । व्यवहारविषयकनियमः = कथारूपव्यवहारनिष्ठव्याप्तिः।

भारती

सत्त्व रूप हेतु से अभ्युपगमार्हत्व सिद्ध करना होगा । (जिस कथा में यह सिद्ध करेंगे, वह कथा प्रमाणादि के सत्त्वेन अभ्युपगम के विना ही प्रवर्तित है, यह भी मानना होगा, अन्यथा तादृश अभ्युपगम का साधन व्यर्थ हो जायेगा, एवं परस्पर कारण मानने पर अन्योन्याश्रयादि दोष भी होगा । अतः इसी कथा में व्यभिचार होने से कथा सामान्य के प्रति सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम को कारण नहीं मान सकते ।) अतः तत्त्वनिर्णय एवं परपराजय की अभिलाषा (कामना) वाले वादिप्रतिवादी को चाहिए कि जितने के बिना अभिलषित की सिद्धि न हो सके, कथा के पूर्व उतने ही कारण स्वीकार करें । और वह अभिलषित वादिप्रतिवादि दोनों के द्वारा स्वीकृत व्यवहारविषयकनियम

व्यवहर्तव्यं वादिना, प्रतिवादिनाऽपि कथाङ्गतत्त्वज्ञानविपर्ययलिङ्ग-प्रतिज्ञाहान्याद्यन्यतमनिग्रहस्थानं तस्य दर्शनीयम्, तद्व्युत्पादने प्रथमस्य

शारदा

आत्माश्रयादिरूपस्तर्क एकः, तदन्यश्च व्याप्तिग्राहको विषयपरिशोधकश्चेति द्विविधः, 'धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्याद्वह्निजन्यो न स्यादि'त्याद्यः, पर्वतो यदि निर्वह्निः स्यात् निर्धूमः स्यादिति द्वितीयः परामर्शग्राह्याभावापादकः, गौरवलाघवानौचित्यादिरूपश्चापरोमूल-कृत्सम्मतश्चतुर्थपरिच्छेदे व्युत्पादितस्तेन सर्वेणेत्यर्थः। एवं विचारस्य प्रथमां कक्ष्यामभिधाय द्वितीयां तामाह प्रतिवादिनापीति । **अपिस्त्वर्थे ।** प्रतिज्ञेति । **पर्यनुयोज्योपेक्षणभिन्नेत्यादिः। प्रतिज्ञाहान्यादयो द्वाविंशतिनिग्रहस्थानानि, तेष्वप्युक्तिविरहमात्रेण प्रत्येतव्यान्यनुक्तग्राह्यतया प्रसिद्धानि त्रीणि, अज्ञानाननुभाषणाप्रतिभाः। प्रतिवाद्युक्तिसमये एव प्रत्येतुं शक्यानि चोच्यमानग्राह्यतया प्रसिद्धानि निरर्थकापार्थकार्थान्तराप्राप्तकालानि चत्वारि, परिशिष्टानि प्रतिज्ञाहान्यादीनि पञ्चदशोक्तग्राह्यसंज्ञकानि । जातेरपि निरनुयोज्यानुयोगेऽन्तर्भावः । पर्यनुयोज्योपेक्षणं विहाय चैतदन्यतमं प्रतिवादिना दर्शनीयम् । पर्यनुयोज्योपेक्षणं तु मध्यस्थेनैव दर्श्यते, न खलु वादी 'त्वया मदीयं' पर्यनुयोज्योपेक्षणं नोदभावी' ति प्रतिवादिनमभिधाय स्वस्य न्यग्भावं स्वयमेव पकटीकर्तुमुत्सहते न वा प्रतिवादी 'मया त्वदीयं पर्यनुयोज्योपेक्षणं 'नोद्भावी'ति स्वीययोग्यसमयस्फूर्तिविरहितां दर्शयितुमर्हति। तत्र चायं तार्किकसमयः निग्रहस्थानेषु सति सम्भवे हेत्वाभासातिरिक्ता एव प्रथममुद्भाव्याः, तदभावे तदस्फूर्तौ वा हेत्वाभासा उद्भाव्या इति । कथाङ्गतत्त्वज्ञानविपर्ययलिङ्गत्वं तु तदीयं लक्षणं मूले उपन्यस्तम्। कथाङ्गं यत्तत्त्वज्ञानं प्रमाणादिस्वरूपविषयकं निग्रहस्थानादिविषयकं च हेयोपादेयविषयकत्वेन द्विविधं तद्विपर्ययस्य = तदभावस्य लिङ्गत्वं ज्ञापकत्वमिति तदर्थः। दृष्टे हि प्रतिज्ञाहान्यादौ 'अयं कथानुगुणतत्त्वज्ञानशून्यः प्रतिज्ञाहान्यादिमत्त्वादिति शक्यमनुमातुम् । अतएव निग्रहस्थानशब्दस्यापि न्यग्भावज्ञापकत्वमर्थः । यद्यपि तत्त्वज्ञानाभावस्यैवाज्ञानविपरीतज्ञानरूपस्य निग्रहस्थानत्वं ''विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानमिति'' सूत्र उक्तम्, तथाप्यज्ञानविपरीतज्ञानयोः परनिष्ठयोरनुमायोद्भावने तत्र 'कुत' इति परकीयजिज्ञासाया आवश्यकत्वेन तल्लिङ्गानां प्रथममुद्भावनौचित्यात् निग्रहस्थानत्वं युक्तम्, तथाच सूत्रे विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्तिशब्दौ तल्लिङ्गपरौ।**

राजहंसः

पर्यनुयोज्योपेक्षणं नोद्भावीति । वादिप्रतिवादिनोरीदृशाभिधानद्वये पर्यनुयोज्योपेक्षणपदं स्वार्थघटकपर्यनुयोगविषयनिग्रहविशेषग्रस्तत्वपरम् । एवञ्चाहं पर्यनुयोज्योऽपि त्वयोपेक्षितः, त्वं पर्यनुयोज्योऽपि मयोपेक्षित इत्यभिधाने स्पष्टे उपलक्षणार्हे इहेति ।

भारती

समयबन्धादि से ही सिद्ध होता है । अत: कथा से पूर्व व्यवहार के नियम समयबन्धादि ही कर्तव्य है । और वे समयबन्धादि ये हैं—१. वादि को प्रमाण एवं तर्क के द्वारा व्यवहार (अपने पक्ष का स्थापन) करना चाहिए । २. प्रतिवादी को चाहिए कि वादि के व्यवहार में कथा के अंगभूत तत्त्वज्ञान के विपर्यय (अभाव) का ज्ञापक प्रतिज्ञाहान्यादि बाईस निग्रह स्थानों में से अन्यतम (कोई एक) निग्रह स्थान दिखावे । ३. (''मेरे

भङ्गोव्यवहर्तव्यः, अन्यथा तु द्वितीयस्यैव, तादृशेतरौ च जेतृतया व्यवहर्तव्यौ प्रामाणिकः पक्षस्तात्त्विकतया व्यवहर्तव्य'' इत्यादिरूपः।

शारदा

तस्य = वादिनः, अस्य निग्रहस्थानमिति पूर्वेणान्वयः । तद्व्युत्पादने = प्रतिवादिना स्वोद्भावितनिग्रहस्थानस्य लक्षणयोजनेन समर्थने। भङ्ग = निवृत्ताहङ्कारता । अत्र हेतौ हेत्वाभासविशेषलक्षणयोगेनानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयतावच्छेदक-रूपवत्त्वात्मकस्यासाधकत्वस्याप्यनुमानं दूषकतौपयिकं तार्किकसम्मतमिति ध्येयम् । अन्यथा तु = उद्भावितनिग्रहस्थानासमर्थने तु । द्वितीयस्य = उद्भावयितुः । तस्योद्भावितदोषासमर्थने निरनुयोज्यानुयोगेन निग्रहादिति भावः । तात्त्विकतया = अबाधिततया । तादृशेतरौ = शक्यसमर्थननिग्रहविरही, स्वोद्भावितनिग्रहस्थानसमर्थको वा । तेनैकस्यां कथायां द्वयोर्जेतृत्वासम्भवेऽपि न क्षतिः। इत्यादिरूप इत्यादिपदेन त्वयाऽयं पक्षः साधनीयः, अनेनायं पक्षो दूषणीयः, स्वस्याज्ञानादिनिरासाय द्वाभ्यां परस्परोक्तमनुवदनीयम्, प्रतिज्ञादयोऽवयवा एतावन्तः प्रयोक्तव्याः, प्रथमं साधकेन वाच्यम्, पश्चाद्दूषकेण, प्रतिज्ञाहान्यादौ सति कथाविरामः, हेतोर्दृष्टान्तस्य चोभयसम्मतत्वं प्रतिबोधनीयमात्रसम्मतत्वं वेत्यादि ग्राह्यम् । इदमत्र ध्येयम् – यद्यपि निग्रहस्थानान्तर्गतहेत्वाभासोद्भावनस्य विपरीतकोटिसाधकहेतौ मध्यस्थादीनां सद्धेतुत्वग्रहविघटकतया व्यवस्थापनीयकोटेः समीचीनत्वनिश्चयफलकतया तत्त्वनिर्णयौपयिकत्वमुद्भावयितुर्विजयप्रयोजकत्वं च सम्भवति, प्रतिज्ञाहान्याद्युद्भावनस्य तु कथाङ्गतत्त्वज्ञानशून्यत्वानुमापकत्वेऽपि न विपरीतकोटिसाधकत्वेनोपन्यस्तप्रमाणे प्रामाण्यग्रहविघटनद्वारा व्यवस्थापनीयकोटेः समीचीनत्वनिश्चयफलकतया तत्त्वनिर्णयाद्यौपयिकत्वम्, विपरीतकोटिसाधकत्वाभिमते प्रामाण्यसत्त्वेऽपि कथकदोषात् प्रतिज्ञाहान्याद्युपपत्तेः । तथापि तदुद्भावनेन कथानुगुणतत्त्वज्ञानविरहानुमितौ प्रतिवादिनः कथानधिकारनिश्चयेन तदुद्भावयितृविजयप्रयोजकत्वं निराबाधमेव, तत्त्वनिर्णयौपयिकत्वं तु नापसिद्धान्तहेत्वाभासातिरिक्तनिग्रहस्थानोद्भावनस्येति । अतएवेति **वक्ष्यमाणाद्धेतोरित्यर्थः। अनवकाशमित्यग्रिमेणान्वयः । समयबन्धेऽपि = समयबन्धस्य कथाहेतुत्वेऽपीत्यर्थः ।**

राजहंसः

असाधकत्वस्याप्यनुमानमिति । व्युत्पन्नस्य प्रतिवाद्यादेर्व्यभिचाराद्युद्भावनमात्रेणैवा-साधकताबोधसम्भवेन तदीयं परार्थानुमानं नातिप्रयोजनकमित्यरुचेराह **ध्येयमिति** ।

भारती

वाग्व्यवहार में यह निग्रह—स्थान कैसे लगा'' इस प्रकार वादि के द्वारा पूछे जाने पर) प्रतिवादि यदि स्वोद्भावित (स्वयं के द्वारा दिये गये) निग्रह स्थान का लक्षणादि के द्वारा समर्थन कर देता है, तो प्रथम अर्थात् वादि का पराजय मानना चाहिए । अन्यथा (यदि वह प्रतिवादी निग्रह स्थान का समर्थन नहीं कर पाया तो) द्वितीय अर्थात् उसी प्रतिवादी का ही पराजय मानना चाहिए । ४. उन दोनों में एक (अर्थात् शक्य है

अतएव 'व्यवहारनियमसमयबन्धेऽपि हेतुर्वक्तव्यः, तथा च सोऽपि हेतुः कथायां प्रवृत्तायामभिधातुं युक्त' इति प्रमाणसत्त्वाभ्युपगम-हेत्वभिधानवत् प्रत्यवस्थानमनवकाशम्, द्वाभ्यामपि वादिभ्यां विचारप्रवृत्त्याऽभिलष्यमाणतत्त्वव्यवस्थाजयमूलत्वेन व्यवहारनियमस्य

शारदा

युक्त इति प्रत्यवस्थानमित्यन्वयः । प्रमाणसत्त्वाभ्युपगमहेत्वभिधानवदिति व्यतिरेकी दृष्टान्तः । सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वे हेत्वभिधानानुयोगः सावकाशः, हेतोः कथाविशेषे एवाभिधेयत्वात् । तस्य च तादृशाभ्युपगमं विनैव वाच्यत्वात् व्यभिचारेण तादृशाभ्युपगमस्य कथाहेतुत्वासिद्धेरित्युक्तत्वात् अयम्भावः—कथासामान्यं प्रति समयबन्धस्यापि हेतुता कस्याञ्चित् कथायामेव साधनीया, साधनं विनैव तस्य तद्धेतुत्वे तादृशाभ्युपगमस्यापि तद्धेतुत्वापातात् । तथाच तस्याः कथायाः समयबन्धं विनैवोपगन्तव्यत्वाद् अन्यथान्योन्याश्रयाद्यापत्तेरिति व्यभिचारान्न समयबन्धस्यापि कथासामान्यहेतुतेति । विचारप्रवृत्त्याऽभिलष्यमाणौ = विचारसाध्यतयेष्टौ तत्त्वनिर्णयविजयौ तदौपयिकत्वेन व्यवहारविषयकनियमसमयबन्धस्येत्यर्थः । तथाच फलेच्छया स्वीकृते वादिनोर्विप्रतिपत्तेरेवाभावात् कथायां न समयबन्धस्य हेतुत्वसाधनावश्यकतेति तस्य कथासामान्यं प्रत्येव हेतुता, व्यभिचारविरहादिति भावः । एतेन च समयबन्धस्य हेतुत्वमन-युपगच्छता सह कथा नास्त्येवेत्यप्युक्तप्रायम्। एवं=समयबन्धस्य कथाहेतुत्वे प्रमाणानभिधाने।

भारती

समर्थन जिसका ऐसे निग्रह स्थान से शून्य व्यवहारकर्ता वादी अथवा स्वोद्भावित निग्रहस्थान का लक्षणादि के द्वारा समर्थन करने वाला प्रतिवादी) विजेता माना जायेगा ।
५. प्रमाण के द्वारा सिद्ध पक्ष तात्त्विक (यथार्थ) माना जायेगा इत्यादि ।

ये व्यवहारविषयकनियम समयबन्धादि विचारप्रवृत्ति के द्वारा अभिलषित तत्त्वनिर्णय एवं जय का मूलभूत (कारण) होने से वादिप्रतिवादि दोनों के द्वारा स्वेच्छा से ही स्वीकृत हैं।

अतएव यहाँ इस प्रश्न का अवसर ही नहीं है कि—"सत्त्वेनप्रमाणाद्यभ्युपगमगतकथा हेतुता के समान "कथा सामान्य के प्रति व्यवहारनियमसमयबन्धगतहेतुता भी किसी कथा में ही सिद्ध करनी होगी, (अर्थात् यदि साधन के बिना ही कथा के प्रति समयबन्ध को हेतु मानें तो प्रमाणाद्यभ्युपगम को भी कथा के प्रति हेतु मानना होगा, अतः प्रमाणाद्यभ्युपगम के समान " समयबन्ध को भी कथा के प्रति सिद्ध किये विना हेतु नहीं मान सकते, और सिद्ध तो किसी कथा में ही करना होगा । अतः उस कथा को समयबन्ध के विना ही मानना पड़ेगा, अन्यथा अन्योन्याश्रयादिदोष प्रसक्त होंगे, ऐसी स्थिति में कथा सामान्य के प्रति समयबन्ध को भी हेतु नहीं मान सकते ।"—क्योंकि समयबन्धगत हेतु स्वेच्छा से ही परिगृहीत है । वहाँ हेतुता के द्वारा साधन की आवश्यकता ही नहीं है । व्यभिचार के न होने से उसमें विचारसाध्य तत्त्व-निर्णय विजय का प्रयोजकत्व स्वतःसिद्ध है । तथा च फलेच्छा से स्वीकृत व्यवहार नियम में वादियों की विप्रतिपत्ति ही नहीं है ।

स्वेच्छयैव परिगृहीतत्वात् । न चैवं प्रमाणानुपज्ञस्वेच्छामात्रपरिगृहीतमूलत्वात् मूलापरिशुद्धिसम्भवेन सर्वविचारविचार्यफलविप्लवापत्तिः स्यात्। अविद्यमानादिपारम्पर्यायातस्य लोकव्युत्पत्तिगृहीतसंवादस्य च

शारदा

प्रमाणेति । **विचारस्येत्यादिः । प्रमाणानुपज्ञं = प्रमाणामूलकं कथकाभ्यां स्वेच्छामात्रेण समयबन्धे स्वीकृतं मूलं = मूलत्वं यस्य = यन्निरूपितं तथात्वात् मात्रशब्देन प्रमाणव्यावृत्तिः। अत्र समयबन्धस्य प्रमाणसिद्धत्वात् तन्निष्ठहेतुतायामेव प्रमाणामूलकत्वं विवक्षितम् । एवञ्चाप्रमितस्य प्रतीतस्य भ्रान्तिविषयतापर्यवसानेन स्वनिरूपितहेतुताप्रकारकभ्रान्तिविषयोत्तरोत्पत्तिकत्वमपरिशुद्धमूलकत्वे स्वोपधानायोग्योत्तरोत्पत्तिकत्वरूपे हेतुः, स्वं विचारः स्वेच्छामात्रपरिगृहीतेति स्वरूपोत्कीर्तनमात्रम् । मूलस्य = मूलत्वेनाभिमतस्या-परिशुद्धिर्दुष्टत्वं विचारात्मकफलोपधानायोग्यत्वमिति यावत्, तस्य सम्भवेन = आवश्यकत्वेन, अन्यथा विचारनिरूपितहेतुत्वप्रकारकभ्रान्त्यनिर्वाहात् । एवञ्चानया वाचोभङ्ग्या विचारे समयबन्धाकारणकत्वस्यैव लाभात् 'विचारो यदि समयबन्धासमवहिताजन्यत्वे सति समयबन्धसमवहिताजन्यः स्यादजन्यः स्यादित्यापादानसम्भवः । विचारानुत्पत्तौ च तदधीनत्वस्यापि क्वचिदसम्भवेन तत्त्वनिर्णयविजयौ यदि विचारासमवहितानधीनत्वे सति विचारसमवहितानधीनौ स्यातामजन्यौ स्यातामित्यप्यापादनमुपपन्नम् । सर्वेति** विचारादित्रयेऽन्वेति । **विचारस्य विप्लवापत्तिः = अनुत्पत्त्यापत्तिः । विचार्यविप्लवापत्तिः = विचार्यतत्त्वनिर्णयानुत्पत्त्यापत्तिः । फलपदेन विजयमात्रं ग्राह्यं, तदनुत्पत्त्यापत्तिश्चेत्यर्थः। अथवा विचार्यविप्लवो विचार्यस्यानिवृत्तभ्रमसंशयकत्वं तदापादनं चोक्तरीत्या विचारानुत्पत्तौ विचार्यविशेषं पक्षीकृत्याविचारितत्वेन हेतुना, तथाच फलपदेन तत्त्वनिर्णयविजयोभयग्रहणेऽपि न क्षतिः । समाधत्ते**ऽविद्येति । **तस्य = समयबन्धस्य स्वतः सिद्ध्यभिन्नपरिशुद्धिमत्त्वात्, वृत्तिं विनैव संशयाद्यविषयत्वरूपां ब्रह्मागतां स्वतःसिद्धिं व्यावर्तयितुमाह** अन्यथाभावासम्भाव्यतालक्षणेति । **अन्यथा = समयबन्धं विना तत्त्वनिर्णयविजयफलकविचारस्य भावः = उत्पत्तिस्तदसम्भाव्यता = तदनुपपत्तिस्तल्लक्षणेत्यर्थः ।**

भारती

प्रश्न—समयबन्धगत कथा हेतुता में प्रमाण न देने पर—तादृश कथा हेतुता प्रमाणविषयक आद्य ज्ञान के विना ही वादिप्रतिवादि के द्वारा स्वेच्छामात्र से ही परिगृहीत होने से अपरिशुद्धि (विचारात्मक फल की उत्पादन में अयोग्यत्व रूप) दोष से दुष्ट हो सकती है ऐसी स्थिति में समस्त विचार (शास्त्र चर्चा) विचार्य = तत्त्वनिर्णय एवं फल विजयादि अनुपपन्न हो जायेंगे।

समाधान—यह व्यवहार नियम समयबन्धादि अनादि परम्परा से प्राप्त एवं कथक व्यवहार के द्वारा अनुमोदित है । अन्यथाभाव (समयबन्ध के विना) विचार की उत्पत्ति की असम्भाव्यता (अनुपपत्ति) (अर्थात् समयबन्ध के विना विचार की प्रवृत्ति का न होना) रूप

तस्यान्यथाभावासम्भाव्यतालक्षणस्वतःसिद्धिपरिशुद्धत्वात् । न च प्रमाणादीनां सत्तापीत्थमुभाभ्यामङ्गीकर्तुमुचिता; तादृशव्यवहारनियम-मात्रेणैव कथाप्रवृत्त्युपपत्तेः । प्रमाणादिसत्त्वाभ्युपगमेऽपि

शारदा

एतेन विचारे समयबन्धकारणकत्वमुक्तम् । समयबन्धो नानुष्ठेय इति सम्भावनाविरहलक्षणेत्यर्थ इत्यपि केचित् । उक्तपरिशुद्धौ हेतुमभिधातुमाह लोकेति। लोकव्युत्पत्त्या = कथकव्यवहारेण नियतसमयबन्धापेक्षेण गृहीतः संवाद = साफल्यं यस्य तथाभूतस्येत्यर्थः । तथाचान्वयव्यतिरेकावेव विचारेण समयबन्धस्य कार्यकारणभावे मानम् । समयबन्धं विना विचारापर्यवसानात् । साफल्यमेव समयबन्धस्य द्रढयितुं विशेषणान्तरमाह अविद्यमानादिपारम्पर्यायातस्येति । **अनादिपरम्पराप्राप्तस्येत्यर्थः । क्वचिदविद्याविद्यमानानादीतिपाठः, तत्राविद्यकत्वाभिधानं सन्दर्भाशुद्धमपि पारम्पर्यस्य स्वरूपोत्कीर्तनमात्रपरतया नेयम् । यद्वा समयबन्धस्य कथाहेतुत्वे तत्सत्त्वापत्तिरिति शङ्कैव तेन वार्यतामिति । एवं समयबन्धस्य विचारकारणत्वसिद्धौ समयबन्धसमवहितजन्यत्वस्यैव विचारे सत्त्वेन नोक्तरीत्या विचारानुत्पत्यापत्त्या तत्त्वनिर्णयाद्यनुत्पत्तिप्रसक्तिरितिभावः । यत्तु तस्येत्यनेन न समयबन्धस्य परामर्शः, किन्तु विचारस्यैव, तस्यैव सम्भावितदोषसमयबन्धमूलकत्वेन दुष्टत्वस्योक्तत्वात्, न वा संवादः समयबन्धे सम्भवी, किन्तु विचारे एव, तस्यैव प्रमित्युत्पादकत्वेन प्रवृत्तिसंवादित्वादिति; तन्न; मूलदोषप्रयुक्तदोषस्य मूलदोषनिराकरणेनैव निराकरणीयत्वात् तत्त्वनिर्णयविजयान्यतरफलवत्कथानिष्पत्तेरेव समयबन्धसंवादत्वाच्च तस्येत्यनेन समयबन्धस्यैव परामर्शौचित्यात् । न हि प्रमाणानुपज्ञत्वस्य समयबन्धहेतुत्वे सत्त्वमात्रेण समयबन्धस्य दुष्टता, येन विचारस्य दुष्टता शङ्कितुरभिप्रेता स्यात्, तस्मात्समयबन्धस्याकारणत्वापत्तिरेव पूर्ववादिसम्मता सैव चोत्तरवादिना निरास्येति। नन्वत्र च्छलेन समयबन्धस्य विचाराङ्गतायां प्रमाणं प्रकृतकथायामेव त्वयोपन्यासि, तथा च सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य विचाराङ्गतायामपि प्रमाणोपन्यासो न ममाप्यनुपपन्न इत्यनुशयमूलामाशङ्कां निराचष्टे** नच प्रमाणादीनामिति । **प्रमाणादीनां सत्तापि = प्रमाणादयोऽपि सत्त्वेन । इत्थमेव = अन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव । प्रमाणादिसत्त्वाभ्युपगमेऽपि=**

राजहंसः

इत्यपि केचिदिति । अक्षरास्वारस्यं स्फुटं कारणत्वालाभश्चेत्यस्वरसबीजमिह ।

भारती

स्वतःसिद्धि से परिशुद्ध (प्रामाणिक) है । (यहाँ समयबन्धाभाव प्रयुक्त विचाराभाव कहकर व्यतिरेक के द्वारा समयबन्ध में विचार की कारणता कही गई है ।) यदि कहें कि इसी प्रकार अन्वय-व्यतिरेक द्वारा सत्वेन प्रमाणादि में भी विचार की कारणता मान लेनी चाहिये, तो यह आपका कहना उचित नहीं है, क्योंकि (सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम के बिना भी) तादृशव्यवहारनियममात्र से ही कथा (वाग् व्यवहार) की प्रवृत्ति हो जाती है । (अतः विचार प्रवृत्ति के साथ सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम का अन्वयव्यतिरेक ही नहीं है) सत्त्वेन

तथाविधव्यवहारनियमव्यतिरेके तत्त्वनिर्णयस्य जयस्य चाऽभिलषितस्य कथकयोरपर्यवसानात् । नापि तृतीयः, लोकव्यवहारो हि प्रमाणव्यवहारो वा स्यात् पामरादिसाधारणव्यवहारो वा, नाद्यः, विचारप्रवृत्तिमन्तरेण तस्य दुर्निरूपत्वात्, तदर्थमेव च पूर्वनियमस्य गवेषणात् । नापि द्वितीयः, शरीरात्मत्वादीनामपि तथासति भवता स्वीकर्तव्यतापातात् ।

शारदा

प्रमाणादिविशेष्यकसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमेऽपि । व्यतिरेक इति । **तदतिरिक्त-सकलकारणसमवधाने तदभावप्रयुक्तो यदि कार्याभावस्तदैव तस्य कारणत्वम्, नच तादृशाभ्युपगमातिरिक्तसमयबन्धादिरूपसकलकारणसमवधाने तादृशाभ्युपगमाभावप्रयुक्तः कार्याभावः चार्वाकादेर्विचारदर्शनात्, अस्ति तु समयबन्धातिरिक्तसकलकारणसमवधाने समयबन्धाभावप्रयुक्तः कार्याभावस्तस्मात्समयबन्धस्यैव विचारकारणत्वमिति भावः । प्रमाणादयः कथकाभ्यां सत्त्वेनाभ्युपेया लोकसिद्धत्वादिति तृतीयहेतुं दूषयति** नापीति । **लोकशब्द उक्तहेतौ लोकव्यवहारपर इत्याशयेनाह** लोकव्यवहार इति । **प्रमाणव्यवहारः = प्रमामूलकोव्यवहारः । तस्य = प्रमाणमूलकव्यवहारस्य, व्यवहारे प्रमाणमूलकत्वस्येति यावत् । तदर्थमेव = विचारप्रवृत्त्यर्थमेव । पूर्वं = विचारात्पूर्वं । नियमस्य = विचारहेतोः ।** गवेषणादिति । **तथाच सति विचारे व्यवहारे प्रमाणमूलकत्वसिद्धिस्तत्सिद्धौ च प्रमाणमूलकव्यवहारसिद्धत्वेन हेतुना सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमसिद्धिस्ततश्च विचारसिद्धिरिति चक्रकमितिभावः । एवं च तादृशाभ्युपगमं विनैव विचारोऽभ्युपेय इत्युक्तं भवति । तथासति = पामरादिव्यवहारसिद्धत्वस्यापि सत्त्वेनाभ्युपगमव्याप्यत्वे सति । भवता =**

राजहंसः

नाभ्युपेयत इत्यन्वय इति । पश्चादित्यस्य देह आत्मत्वग्रहानन्तरमित्यर्थे तु विचार एवान्वयः। मूले नियतवाग्व्यवहारक्रियेति ह्रस्वान्तपाठादरे बहुव्रीहिपरताया व्याख्यामुपन्यस्यति—

भारती

प्रमाणाद्यभ्युपगम के रहने पर भी पूर्वोक्त व्यवहारनियमों के न रहने पर वादिप्रतिवादि के द्वारा अभिलषित तत्त्वनिर्णय एवं विजय रूप फल की निष्पत्ति नहीं देखी जाती।

लोकसिद्धत्वात् यह तृतीय हेतु भी परिशुद्ध नहीं है । (इस हेतु में लोक शब्द लोक व्यवहारपरक है । तथा च प्रमाणादयः कथकाभ्यां सत्त्वेनाभ्युपेया लोकसिद्धत्वात् (लोकव्यवहारसिद्धत्वात्) यह अनुमान पर्यवसित है । किन्तु यह हेतु भी निर्दुष्ट नहीं है । यहाँ लोकव्यवहारशब्द से प्रमाणमूलकव्यवहार विवक्षित है या पामरादि साधारण व्यवहार, प्रथम कल्प नहीं कह सकते, क्योंकि विचार, प्रवृत्ति के बिना प्रमाणमूलकव्यवहार अर्थात् व्यवहार में प्रमाणमूलकत्व ही सिद्ध नहीं हो सकता । विचार की प्रवृत्ति के लिए ही तो विचारारम्भ के पूर्व नियमों की गवेषणा की जा रही है । द्वितीय कल्प भी ठीक नहीं है । पामरादिसाधारण-व्यवहारसिद्ध होने से यदि प्रमाणादि को सत्य मानें, तो उसी व्यवहार के द्वारा सिद्ध शरीरात्मवाद भी आपको स्वीकार करना चाहिए ।

पश्चात्तद्विचारबाध्यतया नाभ्युपेयते इति चेत्; तर्हि प्रमाणादयोऽपि यदि विचारबाध्या भविष्यन्ति तदा नाभ्युपेया एव, अन्यथा तूपगन्तव्या इति लोकव्यवहारसिद्धतया सत्त्वमभ्युपगम्यते इति तावन्न भवति।

शारदा

तादृशवाप्यत्वमभ्युपगच्छता । प्रमाणमूलकव्यवहारसिद्धत्वमेव तादृशाभ्युपगमनीयत्वव्याप्यमित्याशयेनाशङ्कते पश्चादिति। **देहे आत्मत्वविरहग्रहानन्तरमित्यर्थः । नाभ्युपेयते इत्यन्वयः । तत् = शरीरात्मत्वादिकम्।** विचारेति। **देहस्यात्मत्वे तस्य प्रतिदिनमन्यत्वेन प्राचीनदिनानुभूतस्मरणानुपपत्तिः, सद्योजातबालस्येष्टानिष्टसाधनताबोधाधीनेष्टानिष्टेक्षणजन्यहर्षशोकानुपपत्तिः, स्तन्यपानादिप्रवृत्त्यनुपपत्तिः, कृतहान्याद्यापत्तिः, रूपादिवदात्मविशेषगुणत्वे चैतन्यस्य यावद्देहभावित्वापत्तिः, स्वप्नादिदशायां जाग्रद्देहभेदप्रतीतावपि स्वात्माभेदप्रतीत्यनुपपत्तिश्चेत्यादिविचारेत्यर्थः । बाध्यतया = प्रमिताभावप्रतियोगितया ।** विचारेति । **प्रमाणादीनां सत्यत्वे दृश्यत्वाद्यनुपपत्तिः, वक्ष्यमाणात्माश्रयादिग्रासानुपपत्तिश्चेत्यादिविचारेत्यर्थः ।** नेति **सत्त्वेनेत्यादिः । अन्यथा = सत्यत्वेऽपि दृश्यत्वाद्युपपादने । प्रमाणादयः कथकाभ्यां सत्त्वेनाभ्युपेया अतिप्रसञ्जकीभूताभावप्रतियोगिसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वादिति**

भारती

प्रश्न—शरीरात्मवाद के पामरसाधाणव्यवहारसिद्ध होने पर भी पश्चात् विचारों (देह को आत्मा मानने पर-देह के प्रतिदिन भिन्न-भिन्न होने से पूर्वदिनानुभूत पदार्थ की स्मृति न हो सकेगी, सद्योजात बालक की स्तन्यपान में प्रवृत्त्यनुपत्ति होगी, कृतहानि अकृताभ्यागम की आपत्ति होगी इत्यादि विचारों) से बाधित होने से उसे सत्यतया स्वीकार नहीं कर सकते ।

समाधान—इससे यह ही सिद्ध हुआ कि यदि प्रमाणादि भी विचार से बाधित होंगे, तो सत्यतया स्वीकर्तव्य नहीं होंगे, अन्यथा (विचार से बाधित न होने पर) सत्यतया स्वीकर्तव्य होंगे, न कि लोकव्यवहारसिद्ध होने से प्रमाणादि की सत्यतया स्वीकर्तव्यता । अर्थात् लोकव्यवहारसिद्ध होने से प्रमाणादि सत्यतया स्वीकर्तव्य है यह तो सिद्ध नहीं हुआ। तथा च लोकव्यवहारसिद्धत्व सत्यत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम का प्रयोजक (हेतु) नहीं है (प्रकृत में प्रमाणादि का सत्यत्व भी दृश्यत्वाद्यनुपपत्ति आदि विचारों से बाधित है । अतः प्रमाणादि भी सत्यत्वेन अभ्युपगमार्ह नहीं है । इस तृतीय अनुमान में प्रमाणमूलकव्यवहारसिद्धत्व हेतु चक्रक (विचार सम्पन्न होने पर व्यवहार में प्रमाणमूलकत्व की सिद्धि होगी, व्यवहार में प्रमाणमूलकत्व की सिद्धि होने पर प्रमाणमूलकव्यवहारसिद्धत्व हेतु से सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम की सिद्धि होगी, एवं सत्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम की सिद्धि होने पर विचार की सिद्धि होगी इस प्रकार चक्रक दोष) होने से उक्त हेतु स्वभिन्न स्वग्रहसापेक्षग्रहसापेक्षग्रहकत्वात् इस प्रकार पर्यवसित होने से वह हेतु बाध दोष से दुष्ट है और पामरसाधारण व्यवहार सिद्धत्व हेतु तो शरीरात्मवाद में व्यभिचरित है, तस्मात् यह हेतु प्रमाणादि के सत्वेन अभ्युपेयत्व का साधक नहीं है।)

नापि चतुर्थः, यादृशो भवता प्रमाणादीन्यभ्युपगम्य व्यवहारनियमः कथायामालम्ब्यते, तस्यैव प्रमाणादिसत्त्वासत्त्वानुसरणोदासीनैरस्माभिरप्यवलम्बनात्, तस्य यदि मां प्रति फलातिप्रसञ्जकत्वं तदा त्वां प्रत्यपि समानः प्रसङ्गः। स्यादेतत्, नियतवाग्व्यवहारक्रियासमयबन्धेन कथां प्रवर्तयतापि व्यवहारसत्ताऽभ्युपगन्तव्या, नहि सत्तामनभ्युपगम्य व्यवहारक्रियाऽभिधातुं शक्या, क्रिया हि निष्पादना, असतः सद्रूपताप्रापणमिति यावत्, प्रमाणैर्व्यवहर्तव्यमिति नियमबन्धनं

शारदा

चतुर्थहेतुमवहेलयति नापीति । **तस्य = समयबन्धस्य** । त्वां प्रत्यपीति । **त्वयापि समयबन्धस्वीकारात् । तथाच सत्त्वप्रकारकप्रमाणादिविशेष्यकाभ्युपगमे तत्त्वनिर्णयादिफलातिप्रसञ्जकीभूताभावप्रतियोगित्वस्यैवाभावात्स्वरूपासिद्धिः, फलातिप्रसङ्गभङ्गश्च समयबन्धेनैवेति निरुक्ताभ्युपगमो व्यर्थ इति भावः** । नियतेति । **नियता = व्याप्या वाग्व्यवहारस्य क्रिया = उत्पादना येन तादृशेन समयबन्धेन, वाग्व्यवहारकारणेनेति यावत् । कथां प्रवर्तयता = कथाप्रवृत्तिं स्वीकुर्वता । व्यवहारसत्ता = वाग्व्यवहारस्य कार्यस्य सत्ता = कालसम्बन्धः अभिधातुं = समर्थयितुं । निष्पादना = उत्पादना असतः = प्रागभावप्रतियोगिनः सद्रूपताप्राप्तिः = कालसम्बन्धस्तदनुकूलो व्यापारः, यादृशकाले यत्प्रागभावनिवृत्तिस्तादृशकालसम्बन्धस्तस्योत्पत्तिस्तदनुकूलव्यापार उत्पादना अत्र प्रागभावनिवृत्तेर्द्वितीयादिक्षणेऽपि सत्त्वात् तदुत्पत्तेर्निवेश्यत्वे उत्पत्तिलक्षणे उत्पत्तिप्रवेशापत्त्या स्वसमानकालीना ये पदार्थास्तत्प्रतियोगिकध्वंसानाधारसमयसम्बन्धरूपाद्यक्षण सम्बन्ध एव स्वोत्पत्तिर्विवक्षणीया, द्वितीयादिक्षणानां तादृशध्वंसाधारत्वाद्व्यावृत्तिः । समयपदेन कालिकसम्बन्धलाभाच्च प्रागभावक्षणानां व्यावृत्तिः, वर्तमानयोरेव कालिकसम्बन्धात्, आद्यक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिनस्तु न स्वसमानकालीना इति । अयम्भावः—त्वयाऽनात्मनि देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं ह्यसत्त्वमुच्यते, तच्च न समयबन्धादिजन्यत्वेनाभिमते वाग्व्यवहारे घटते कालसम्बन्धं विना तदुत्पत्तेरसम्भवात् तदभावस्य कालत्वाव्यापकत्वादिति । इदमुपलक्षणम्, कालासम्बन्धिनः कारणत्वस्याप्यसम्भवात्**

राजहंसः

नियता व्याप्येत्यादिनेति । दीर्घान्तपाठानुरोधे तु प्रमाणादिनैव वाग्व्यवहारः कर्तव्य इत्येवं प्रमाणादिनैयत्येन वाग्व्यवहारनिष्पादनस्य समयबन्धेनेत्यर्थः । **प्रागभावक्षणानां व्यावृत्तिरिति** । नहि घटप्रागभावक्षणेषु घटस्य कालिकः सम्बन्ध इति भावः ।

भारती

चतुर्थ हेतु भी निर्दुष्ट नहीं है । सत्त्वेनप्रमाणादि के स्वीकर्ता आप जिस प्रकार के व्यवहारनियमों को कथा के लिए स्वीकार करते हैं उन्हीं व्यवहारनियमसमयबन्धादि को प्रमाणादि के सत्त्वासत्त्व में उदासीन हम (खाण्डनिक) भी स्वीकार करते हैं । वे समयबन्धादि यदि मेरे प्रति तत्त्वनिर्णय एवं विजय रूप फल के अतिप्रसञ्जक हैं तो आपके प्रति भी

प्रमाणकारणभावस्य नियमान्तर्भावात् नियतपूर्वसत्त्वं कारणत्वं प्रमाणानामनादाय न पर्यवस्यति । दूषणानां चास्तित्वेन भङ्गारधावणनियमबन्धने, साधनाङ्गव्याप्त्यादीनां सत्त्वेन तद्विषयस्य तत्त्वरूपताव्यवहारनियमनादौ च कण्ठोक्तमेव तस्य तस्य सत्त्वमङ्गीकृतमितिरिक्तमिदमुच्यते—'प्रमाणादीनां सत्तामनभ्युपगम्य कथारम्भः शक्यते' इति । मैवम् । एभिरपि बाधकैः कथायामार-

शारदा

समयबन्धस्य कारणत्वे निरुक्तासत्त्वाभावापत्तिस्तत्रापि द्रष्टव्या । एवं प्रमाणादिकारणता-मादायापि तादृशापत्तिमाह प्रमाणैरिति । **तर्कैरित्यपि द्रष्टव्यम् । नियमबन्धनं न पर्यवस्यतीत्यन्वयः ।** भावादिति । **अन्यथा करणतृतीयानुपपत्तेरिति भावः । सत्त्वं = सत्त्वघटितम् । यद्यपि नियतपूर्वसत्त्वं कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्या-धिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वरूपमेव तच्च न कालसम्बन्धघटितं तथापि तदपि कालसम्बन्धं विना नोपपद्यते इति भावः ।** अस्तित्वेनेति **प्रयोज्यत्वं तृतीयार्थोऽवधारणेऽन्वेति । अस्तित्वं च कालसम्बन्ध इत्याशयः ।** साधनाङ्गेति । **अनुमितिजनकज्ञानविषयीभूतेत्यर्थः । आदिना पक्षधर्मतापरिग्रहः । अथवा साधनाङ्गेत्यस्य परम्परयाऽनुमित्यौपयिकसद्धेतुताप्रयोजकरूपेत्यर्थः । तथाचादिपदेनाबाधितत्त्वा-सत्प्रतिपक्षितत्त्वयोरपि ग्रहणान्न बहुवचनासङ्गतिः ।** सत्त्वेनेति । **व्यवहारान्वयि प्रयुक्तत्वं तृतीयार्थः । तद्विषयस्य = अनुमितिविषयस्य । तत्त्वरूपता = प्रमितत्वम् । तस्य तस्य = दूषणव्याप्त्यादेः । प्रमाणादीनां सत्ताम् = देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वा-भाववत्त्वेन प्रमाणादीनीत्यर्थः । अभिमतस्य = सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगमे कथाङ्गत्वस्य**

भारती

फलातिप्रसञ्जक होंगे ही, क्योंकि फलातिप्रसक्ति के हेतु उभयत्र समान है । (तात्पर्य यह है कि इस कल्प में प्रमाणादयः सत्त्वेन अभ्युपेया तत्त्वनिर्णयविजय रूपफलातिप्रसञ्जकीभूता-भावप्रतियोगिसत्त्वप्रकारकाभ्युपगमविशेष्यत्वात् यह अनुमान प्रसक्त होता है । किन्तु इसमें प्रयुक्त हेतु स्वरूपासिद्ध है क्योंकि सत्त्वप्रकारक-अभ्युपगम में तत्त्वनिर्णया-दिफलातिप्रसञ्जकीभूताभावप्रतियोगित्व ही अप्रसिद्ध है । अतः उक्त फलातिप्रसक्ति का वारण तो समयबन्धादि से ही सम्भव है । उसके लिए तादृश अभ्युपगम का मानना व्यर्थ है।)

प्रश्न—वाग्व्यवहार की उत्पत्ति के प्रति हेतुतया निश्चित समयबन्ध के द्वारा कथा की प्रवृत्ति को स्वीकार करने वाले आप (खाण्डनिक) को भी वाग्व्यवहाररूप कार्य की सत्ता तो माननी होगी, क्योंकि सत्ता के माने विना व्यवहार क्रिया का समर्थन ही नहीं किया जा सकता। क्रिया नाम उत्पत्ति का है और उत्पत्ति तो असत्पदार्थ (प्रागभावप्रतियोगी) की सद्रूपताप्राप्ति अर्थात् कालसम्बन्धानुकूलव्यापार ही है । प्रमाणैर्व्यवहर्तव्यम् (वादि को प्रमाणपुरःसर व्यवहार करना चाहिए) इत्यादि नियमबन्धन प्रमाणादि की सत्ता माने विना सम्पन्न नहीं हो सकता,

ब्धायामेवाभिमतस्य प्रसाधनीयत्वे पूर्वोक्तबाधाया अनिस्तारात् । न च व्यवहारनियमस्य स्वेच्छास्वीकृतस्यैव प्रमाणादिसत्तास्वीकारपर्यवसायितया नायं दोषः स्यात्। यतः सत्ताज्ञानस्य तत्राङ्गत्वं न तु सत्तायाः, तत्र किं

शारदा

बाधाया इति । यस्यां कथायां तादृशाभ्युपगमे कथाङ्गत्वसाधन तत्रैव व्यभिचारान्न तस्य कथाङ्गत्वं प्रतिवादिनस्तादृशाभ्युपगमस्य कथा प्राक्काले विरहात् । ननु न मया कथायां तादृशाभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वं साध्यते, अपि तु समयबन्धस्य हेतुतां स्वीकुर्वता त्वयोक्तरीत्या तादृशाभ्युपगमोऽपि कथाङ्गतया स्वीकृत इत्येवोच्यते इत्याशङ्कां निराचष्टे न चेति । स्यादित्यनेनान्वयः । तत्र = कथायाम् । सत्ताज्ञानं बाधकालीनं ममास्त्येव, अनाहार्यनिश्चयात्मकस्वीकारस्तु न मम, स च न कथाङ्गमिति भावः । नतु सत्ताया इति । सत्ताभ्युपगमस्य वेति शेषः, तेन सत्त्वाभ्युपगमस्य कथाङ्गता पूर्ववादिनोक्तेति सैव निषेद्धुमुचितेति निरस्तम्, सत्ताया अपि कथाकारणत्वोपपादकतया कथाङ्गत्वेन पूर्ववादिसम्मतत्वात् । सत्ताज्ञानस्येत्युक्त्याऽधिष्ठानगतसत्त्वस्य प्रपञ्चे भानं सूचितम्, अतएव च तत्र कालसम्बन्धोऽपि, अन्यथा देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्ववति ज्ञानविषयत्वस्यैवासम्भवेन सत्ताप्रकारकज्ञानविषयत्वस्य दूरोत्सारितत्वात्, नह्यलीकोऽपि कश्चित्पदार्थ इत्युक्तम् । प्रमाणवत्त्वादायातः प्रवाहः केन वार्यते' इतिन्यायेन चोक्ताभावप्रतियोगिन्यपि प्रपञ्चे कालसम्बन्धोऽवश्योपेयः, न हि घटादौ तेन विना 'घटं सन्तं पश्यामीति' प्रतीतिरुपपद्यते, न वा निरुक्ताभावप्रतियोगित्वं विना द्वैतावच्छेदकदेशकालावच्छेदेन द्वैताभावं समर्पयन्ती ''नेह नानास्ती''स्यादिश्रुतिः सङ्गच्छते। उपशाम्यतु वा भावाभावयोर्न्यूनाधिकसत्ताकल्पनादिना विरोधः।

राजहंसः

न्यूनाधिकसत्ताकल्पनादिनेति। आदिना पारमार्थिकत्वरूपव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावोपगमोऽवगन्तव्यः।

भारती

क्योंकि व्यवहार के प्रति प्रमाणादिगत कारणता नियम के अन्तर्गत है और कारणता तो नियतपूर्वसत्त्व रूप है । (तस्मात् नियमबन्धनस्वीकर्ता को प्रमाणादि की सत्ता माननी ही होगी।) इसी प्रकार भंग अर्थात् पराजय के निश्चायक नियमबन्धनों के अन्तर्गत दूषणों का अस्तित्व आता है क्योंकि दूषणों के अस्तित्व के द्वारा ही परपराजय का निश्चय किया जाता है । एवं साधन का अंग अर्थात् अनुमितिजनकज्ञान का विषय व्याप्ति-पक्षधर्मता के सत्त्व के द्वारा अनुमिति के विषय में यथार्थत्व का व्यवहार होता है'' इत्यादि नियमों के मानने पर आपने साक्षात् ही तत्तत् दूषण व्याप्ति आदि पदार्थों की सत्ता मान ही ली । ऐसी स्थिति में आपका यह कहना कि ''प्रमाणादि की सत्ता माने विना ही कथा का आरम्भ किया जा सकता है'' सर्वथा अप्रामाणिक है ।

समाधान—इन बाधकों के द्वारा भी आपको अपने अभिमत (सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम में कथाङ्गत्व) का साधन किसी आरब्ध कथा में ही करना होगा । अर्थात् कथा के बिना आप सिद्ध नहीं कर सकते ।) अतः पूर्वोक्त बाधादोष यथावत् है । (अर्थात् जिस कथा में इन बाधकों से तत् तत् पदार्थों की सत्ता सिद्ध करेंगे, उस कथा को तत् तत् पदार्थों की सत्ता माने विना ही आरब्ध माननी होगी, अन्यथा अन्योन्याश्रयादि दोष आ जायेगा । अतः प्रचलित कथा

शारदा

अथैवं माध्यमिकमतात्सदधिष्ठानातिरिक्तांशे को विशेष इति चेत्, प्रक्रियाभेदमवधूय न कश्चित्। चतुर्थपरिच्छेदे मूले ''परेण विकल्पः सर्वथा वस्त्वनुल्लेखी केवलमलीकमुल्लिखन्न-सत्ख्यात्यात्मा स्वीक्रियते'' इत्युक्तिस्तु माध्यमिकमते खपुष्पादिविषयकविकल्पाभिप्रायेणैव, तन्मते तत्र कालासम्बन्धिनोऽपि भानात्। निरुक्ताभावप्रतियोगित्वं तन्मतेऽलीकसाधारणमपि घटादौ सांवृतसत्त्वसमानाधिकरणमेव। उपगन्तव्यश्च 'घटः सन्नि'त्यादि प्रतीतिविषयं जनकत्वापरपर्यायार्थक्रियाकारित्वरूपं सत्त्वं योगाचारादिना पारमार्थिकं स्वीकृतमपि सांवृतसति स्वीकुर्वता माध्यमिकेन तत्र कालसम्बन्धोऽपि, अन्यथा जन्यजनकभावासङ्गतेः, तथा च गगनकुसुमा-यमानत्वं प्रपञ्चस्य नोभयमतेऽपि, उक्तं ह्यद्वयवज्रसङ्ग्रहे बौद्धैः–''प्रतीत्य सम्भवादेव गन्धर्वपुरवत्स्फुटं। न स्वभावस्थितं विश्वं नाकाशाम्भोजसन्निभमिति''।। प्रतीत्य सम्भवात् = प्रतीत्य समुत्पादात्। अतएव व्यावहारिकस्याबाध्यत्वस्य शून्यत्वभावनानिवर्त्यस्य माध्यमिकमते स्वीकारश्चन्द्रिकायामुक्तः। तत्रैव चागमबाधोद्धारप्रकरणे 'योगाचारमते ज्ञानभिन्नस्यालीकत्वं न तु मिथ्यात्वं, शून्यवादे तु ज्ञानज्ञेयप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वमिति' कण्ठरवेणोक्तम्। एवं च प्रातीतिकं व्यावहारिकं वा सत्त्वामादाय समयबन्धादेर्हेतुत्वोपपत्ति-रिति भावः। ननु 'सत्ताज्ञानस्ये'त्यत्र 'बाध्यसत्त्वस्ये'त्येव कुतो नोक्तं, कारणत्वघटकं हि सत्त्वं न तु तज्ज्ञानम्, आवश्यकश्चानिर्वचनीयस्योत्पत्त्याद्यभ्युपगमे तत्र बाध्यसत्त्वमिति चेत्सत्यम्, अतएव 'व्यावहारिकीं प्रमाणादिसत्तामादाये' त्युपसंहरिष्यति। अत्र 'सत्ताज्ञानस्ये' त्युक्तिस्तु सत्ताज्ञानं विना प्रातीतिकत्वादेरनिर्वाहात्तस्योपजीव्यत्वाभिप्रायेण, युज्यतेतमां चैतद्दृष्टिसृष्टिवादे, अतएव 'सत्तावगमान्तरस्यैव शरणत्वादि' त्युपरितनपङ्क्तिरपि सङ्गच्छतेतराम्। किञ्च वस्तुतः स्वरूपासिद्धादिनापि हेतुना कदाचिद्विजयफलककथोपपत्तेः सत्ताप्रतीतेरेव कारणत्वं वाच्यम्, व्यावहारिकस्यैव कारणत्वेन प्रातीतिकस्य क्वाप्यकारणत्वात्, अन्यथा प्रातीतिकरजतेनापि

भारती

के समान कथान्तर भी प्रमाणादि की सत्ता माने विना ही सम्पन्न हो जायेगा। कथा सामान्य के प्रति सत्त्वेन प्रमाणाद्यभ्युपगम को कारण नहीं मान सकते।

यदि कहें कि हम कथा सामान्य के प्रति प्रमाणाद्यभ्युपगम में कारणता सिद्ध नहीं करते, अपितु व्यवहारनियम समयबन्धादि के स्वेच्छासे स्वीकृत होने से ही तदन्तर्गततया प्रमाणादि की सत्ता भी स्वेच्छा से स्वीकृत हो ही गई। अतः उपर्युक्त दोष नहीं है। तो आपका यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि इससे कथा में प्रमाणादि की सत्ता का ज्ञान कारण सिद्ध हुआ, न कि उनकी सत्ता (और सत्ता ज्ञान तो बाधकालीन मुझे भी इष्ट है केवल अनाहार्य निश्चयात्मक सत्ता ज्ञान को मैं कथा का अंग नहीं मानता।)।

प्रश्न– (प्रमाणादि सत्ता ज्ञान को कथाङ्ग मानने पर तो उस ज्ञान के विषय प्रमाणादि-सत्ता (सत्त्वेन प्रमाणादि) के भी कथाङ्ग मानना ही होगा। क्योंकि ज्ञान के विषयसत्ता नियत होने से विषय की सत्ता के विना ज्ञान नहीं हो सकता। अतः ज्ञान के होने पर विषय (प्रमाणादि) की सत्ता का मानना आवश्यक है।

सत्त्वावगममात्रात् सत्ताऽभ्युपगम्येति मन्यसे, अबाधितात्तदवगमाद्वा। न तावदाद्यः, मरुमरीचिकादौ जलरूपतासद्भावाभ्युपगमप्रसङ्गात्।

शारदा

कटकादिनिर्माणप्रसङ्गात् , अतएव ''प्रतीतिकं न कुत्रापि कारणं किन्तु तज्ज्ञानं चिद्रूपमिति'' चन्द्रिकायामुक्तम् । व्यक्तीकरणीयं चेदं परत इति। अवगमविषयत्वं विषयत्वं वा सत्यत्वव्याप्यं न वेतिविप्रतिपत्तिं निराचष्टे मरुमरीचिकादाविति। जलेति। पिपासोपशमनसमर्थेत्यादिः। तेन तत्र प्रातीतिकजलसद्भावेऽपि न क्षतिः। व्यावहारिके इव प्रातीतिकेऽपि जलत्वप्रकारकप्रातीतिसद्भावादेव प्रातीतिकेऽपि जलत्वम्, अतएव ''अध्यस्तं तोयं परमार्थतोयमिवेति'' भामती सङ्गच्छते, अन्यथा तोयत्वातिरिक्तरूपेण साजात्यासम्भवादिवासङ्गतेः, प्रत्यक्षप्रतीतिकृतसादृश्यस्य विषयसादृश्याविनाभूतत्वात्, अतएव ''पूर्वदृष्टावभास'' इतिभाष्यस्य, पूर्वदर्शनविषयतावच्छेदकधर्मप्रकारकावभास इत्यर्थः। अन्यथाऽन्यथाख्यात्यापत्तेः। किञ्च प्रतिवादिना तार्किकेण प्रातीतिकजलसत्त्वमेव नोपेयते इति व्यावहारिकजलसत्त्वमेवापादयितुमुचितम् । नचैवं व्यावहारिकस्य जलस्य क्वापि सत्त्वात् तार्किकस्येष्टापत्तिः, अतिप्रसङ्गभङ्गाय यद्विशेष्यकावगमविषयत्वं यत्र, तत्रैव तत्सत्त्वमित्यस्यावश्योपेयत्वात् मरुमरीचिकादावपि प्रसङ्गसम्भवादिष्टापत्त्यनवकाशात् । अवगमशब्देन प्रमाविवक्षणे तु द्वितीयकल्पेऽन्तर्भाव इति ध्येयम् । यद्यपि त्रिकालाबाध्यत्वरूपसत्त्वस्यैव विवादास्पदत्वात् तदेवापादनार्हम् तच्च न पिपासोपशमकजलेऽपि, तथापि परेण तत्र त्रिकालाबाध्यत्वस्यैवोपगमेन मरुमरीचिकादावेवापत्तिर्दत्तेति। यत्तु केनचित् मरुमरीचिकादावपि जलमनिर्वाच्यमुत्पद्यते इतीष्टापत्तिमाशङ्क्यानिर्वाच्योत्पत्तिर्निरस्ता, तन्मन्दम्, तदुत्पत्तेः प्रामाणिकत्वात्, नहि ''न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति, अथ सृजत'' इति स्वरसत एव स्वाप्नपदार्थोत्पत्ति, ''सत्यं चानृतं चाभवदिति'' सत्यशब्देन व्यावहारिकोत्पत्तिमभिधायानृतशब्देन प्रातिभासिकोत्पत्तिं चाभिदधाना श्रुतिरन्यथोपपद्यते, न वा रजतं पश्यामीतिधीर्मनागपि व्यावहारिकरजतधियोऽपरोक्षत्वे भिदामनासादयन्ती प्रातिभासिकोत्पत्तिं विना निर्वोढुमीष्टे ''विषयशूराणी हि ज्ञानानीति'' न्यायात् । विषयोत्पत्तिं विनाऽपरोक्षज्ञानोत्पत्त्यैव सा धीर्निर्वाह्यतामिति चेद्घटादिष्वप्येवमेवास्त्विति त्यक्तव्यास्तेऽपि, घटं पश्यामीत्यादिप्रतीतेरपरोक्षज्ञानोत्पत्त्यैव निर्वाहात् । इष्टापत्तिरेवेतिचेन्नूनमान्तरमेवापरोक्षावभासे

राजहंसः

तोयत्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वेन सादृश्यमाशङ्क्याह **प्रत्यक्षप्रतीतिकृतेति। व्यावहारिकरजतधिय इति।** व्यावहारिकरजतस्थलीय 'रजतं पश्यामी'ति धिय इत्यर्थः। **अपरोक्षत्वे इति** । विषयगतापरोक्षतासमर्पणे विषयगतापरोक्षत्वे वेत्यर्थः।

भारती

समाधान— प्रमाणादि विषयक सत्ताज्ञान मात्र से प्रमाणादि की सत्ता माननी चाहिए, अथवा प्रमाणादिविषयक अबाधितसत्ताज्ञान होने से प्रमाणादि की सत्ता माननी चाहिए, आपका क्या अभिप्राय है । प्रथम तो कह नहीं सकते, क्योंकि यदि ज्ञानमात्र से विषयसत्ता

शारदा

नयने निमील्यैवास्थातुं समीहसे। कपालस्याप्यान्तरत्वात् तदवच्छिन्नचिद्रूपाधिष्ठानप्रतीत्यर्थमपि नयनव्यापारानपेक्षणात् । 'आरोपे सति निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोप' इति न्यायेन न नयनोन्मीलनाभावे स्वप्ने इव घटादिप्रत्यक्षापत्तियुक्तेतिचेन्नन्वनुभवोपपत्तये निमित्तमेव कल्पयितुमुचितम् अन्यथाऽदृष्टादेरपि त्यागापातात् , तदभावे सम्भाव्यमानापत्तेस्त्वदुक्तन्यायेनैव वारणसम्भवात् स्यादेवावैचित्र्यमदृष्टाभावरूपकारणात् यदि नास्ति तदा वयं किं कुर्मः, नहि निमित्तमस्तीत्यारोप इति हि शक्यते वक्तुम् । तस्मात्सेव्यतां शून्यत्वकारागारमुपपाद्यतां वाऽनुभवसिद्धं परीक्षकैस्तृतीया तु नास्ति सरणिः। वस्तुतस्तु येन केनचित्कारणेन न कार्यं शक्यापादनं किन्तु सामग्र्यैवेत्येवोक्तन्यायाशय इति व्यक्तं व्याप्तिग्रहजागदीश्याम् तथाच कारणान्तरसत्त्वे नयनादिसन्निकर्षाभावस्यैव सामग्रीविघटकतेति तत्सन्निकर्षस्यापेक्षणीयत्वे बाह्यं स्वीकार्यमेवेति नोक्तन्यायेन शक्यं प्रत्यवस्थातुमपि। रजताद्युत्पतौ गौरवमिति चेद्गौरवनुरोधानुभवानुरोधयोः कतरः श्रेयानिति विचारे आस्तां भवत एव मध्यस्थता ।

किञ्च ''प्रकर्षनिकर्षवत्ता कारणभेदानुविधायिनी सर्वत्रोपलब्धेति'' न्यायेन कुसुमाञ्जल्युक्तेन यदुत्कर्षापकर्षौ यदुत्कर्षापकर्षानुविधायिनौ तस्य तत्कार्यत्वात् इन्धनोत्कर्षेण हुताशनोत्कर्षदर्शनान्निमित्तोत्कर्षस्यापि कार्योत्कर्षकत्वादुपादानोत्कर्षस्यैव कार्योत्कर्षहेतुत्वमित्यस्य नियन्तुमशक्यत्वात् शङ्खपीतिमोत्कर्षयोश्च पित्तोत्कर्षाप्रकर्षानुविधायित्वात् शङ्खपीतिम्नः पित्तजन्यत्वे वाच्ये तुल्यन्यायात्सिद्धान्यत्रापि प्रातिभासिकोत्पत्तिः। नच तत्र शङ्खपीतिमज्ञानोत्कर्षो नतु विषयोत्कर्ष इति वाच्यम्; साकारवादप्रसङ्गेन बहिर्विषयापलापापत्त्या ज्ञाने विषयोत्कर्षं विनोत्कर्षस्य वक्तुमशक्यत्वात्।

राजहंसः

साकारवादप्रसङ्गेनेति । साकारवादस्योपपादनं निराकरणञ्च मया दर्शितं दर्शनसर्वस्वे कणेहत्य दर्शनीयम् । ननु व्यावहारिकस्थले ज्ञानसाकारता सर्वथैवानुभूतिपथं नावतरतीति सत्यम् , प्रातिभासिकस्थले तु बाह्यार्थ एवानुभूत्या न स्पृश्यत इति वैपरीत्यमेवेति किमिह श्रुतियुक्त्युपन्यासः करिष्यति, एवञ्च प्रातिभासिकस्थले स्वीकृतापि ज्ञानसाकारता व्यावहारिके प्रसरन्त्यनुभूत्यैवापाकरिष्यत इति चेदत्रोच्यते, स्वप्नादावनुभूयमानो हस्तपादाद्यात्माऽऽकारो न तार्किकरीत्याऽमूर्तस्य ज्ञानस्य सम्भवति, योगाचाररीत्या तु स्यात्, स्याद्यदि ज्ञानस्य द्रव्यत्वम्, किन्तु जन्यद्रव्यस्य लोके परिणाम्युपादानसापेक्षताया दृष्टाया अवधीरयितुमनुचितत्वेन समनन्तरप्रत्ययस्य च क्षणिकतया निरन्वयनाशितया मात्रयाऽपि स्वोत्तरप्रत्ययेऽनुवर्तितुमनर्हत उपादानत्वासम्भवेन कथं कस्यचित्प्रत्ययस्य जन्यद्रव्यत्वम् । न च योगिनः सङ्कल्पमात्रप्रसूते वस्तुनि व्यभिचारेण न भावकार्यस्य सोपादानत्वनियतिरिति वाच्यम् , तत्रापि प्रकृत्याऽऽपूरन्यायेन सोपादानताया अत्यागात् । वेदान्तिरीत्या तु यद्यपि साक्षिणो निराकारस्य नासावाकारः शक्यवचनः तथापि वृत्त्यात्मकज्ञानस्य द्रव्यतया तदीयोऽसावाकार सम्भाव्येत, तत्रापि तु मनोवृत्तेर्ज्ञानात्मिकायाः प्रमाणायत्ताया एवाभ्युपगमेन

शारदा

नच जपाकुसुमसान्निध्ये स्फटिके लौहित्यान्यथाख्यातिस्वीकारवच्चक्षुर्द्वारा शङ्खसंलग्नपित्तगतपीतिम्नः सन्निहितस्यारोपाभ्युपगमोऽस्तु किं तदुत्पत्तिस्वीकारेणेति वाच्यम्; दृष्टान्तस्यैवासिद्धेः, सर्वस्यापि शङ्खसंयुक्तेन्द्रियजनस्य पीतत्वेन शङ्खप्रतीत्यापत्तेश्च। उत्पत्तिस्वीकारे तु यस्याविद्यावृत्तिसहितं यदुत्पन्नं तस्यैव प्रतीतिगोचरस्तदिति नियमात् ज्ञानार्थयोर्युगपदध्यासमूलकान्नातिप्रसङ्गः । नच देवदत्तपित्तपीतिम्नोऽन्यं प्रत्यतीन्द्रियत्वनियमं

राजहंसः

स्वप्नादावविद्याया एवासौ स्यात् । प्रक्रियाऽऽग्रहिलतात्यागेन मनोवृत्तिर्ज्ञानात्मिका प्रमाणायत्तेवेत्यनुपगमेऽपि शक्तिविशेषस्यैवासौ चमत्कार इति निर्णयो मानसं स्पृशत्येव, शक्तिश्चासौ स्वरूपतिरोधायकतयाऽविद्याशब्देनोच्यतां शब्दान्तरेण वेत्यत्र नाग्रहः। न च तत्र चमत्कारद्वयमनुभूयते येन वृत्तिस्तत्र पृथगुरीक्रियेत, मूर्तिमती वृत्तिरेवाकार इति तु स्वपरिभाषयाऽभिधीयमानं न नो दुनोति। ज्ञानमेव तत्रोत्पद्यते न तु विषय इति मतापहस्तनं हस्ताद्याकारस्तत्र नैवास्तीति भ्रमापगमायैव। मूर्तिस्तु प्रतिभासमात्रप्राणैवेति तस्याः प्रतिघातजनकत्वं न देशनीयम् , व्यावहारिक्या एव हि तत् । एवञ्च शक्तेः स्वरूपतिरोधायकतामादायाविद्याशब्दव्यपदेश्यत्वे तदाकारो न ज्ञानाकार इति वक्तव्यः। एवमेव प्रतिभासशक्तिरिति मायेति च व्यपदेशोऽपि। प्रतिभासानुकूला हि सा, न तु प्रतिभासात्मैव। न चैवं यदनुकूला सा, तस्य प्रतिभासस्याप्युत्पत्तिरिह वक्तव्येति साम्प्रतम्, प्रतिभासानुकूलत्वस्य साक्ष्यात्मकप्रतिभासे कल्पिततत्तद्विषयितानुकूलतायामेव पर्यवसन्नत्वात् । अथ लौकिकप्रयोगैर्मायाशब्दस्यासम्भावितविचित्रार्थप्रदर्शकशक्तिविशेषार्थकत्वे स्यादेवम्, 'माया वयुनं ज्ञान' मित्यभिधानादरे तु प्रकृते ज्ञानाकारोऽपि व्यवह्रियतामिति चेत्क्वचिज्ज्ञाने मायाशब्दप्रयोगेऽपि शक्तौ निरुक्तज्ञानानुकूलताया एव वक्तव्यत्वात्, कारणान्तरकल्पनापत्तेस्तत्र जन्यज्ञानत्वासम्भवात् , नित्यज्ञानतायाश्च ब्रह्मण्येव क्लृप्तत्वात् । एवञ्चागन्तुकदोषसचिवाविद्यया साक्ष्येवेदं शैवं वपुरिति स्वप्नेऽवभासते, तादृशाविद्यैव वा साक्षिणा तदाकारेण भास्यत इत्युभयत्रार्थाविशेष एव, भासत इत्यस्य हि तार्किकरीत्या विषयताश्रयत्वं नार्थः, अपि तु भानाभिन्नत्वम् भानस्फुरणप्रकाशभासनादिशब्दानां चैतन्यबोधकत्वात् । न च स्वप्ने जाग्रतीव कश्चिच्छुक्त्यादिरधिष्ठानतावच्छेदकोर्थो येन सादृश्यात् तदाकारग्राहितैव वृत्तेः प्रातिभासिकाकारग्राहिता न तु प्रातिभासिकाकारः पृथगिति शङ्कितुमपि शक्येत, स्वप्न आगन्तुकचमत्कारविशेषसिद्धौ तु जाग्रत्यपि तथा कल्पनमौचित्यानीतम् , अन्यथाख्यात्युपगमस्यानुभवैकशरणैस्तिरस्कृतत्वात् सर्वथापि प्रसिद्धो ज्ञानसाकारतापक्षो नात्र पुरस्कर्तव्य इति।

शङ्खप्रतीत्यापत्तेश्चेति । यदि तु नीलपीताद्युपनेत्रस्थलीयानुभवमनुसृत्य पित्तस्थलेऽपि नयनरश्मावेव कश्चिद्विशेषो जायते व्यावहारिकः, अथवोपनेत्रगतमेव नेत्रपटलगतपित्तगतमेव च रूपमन्यनिष्ठत्वेन गृह्यते, न तु विषयसंलग्नं वस्तुतः किञ्चित् न वाऽऽलोक एव तत्र कश्चिदतिशयः, येन परस्यापि तद्ग्रहणमापद्येतेति निगद्यते, तदापि विषयनिष्ठत्वेन प्रतीतेः को विषयः? नहि तदलीकं प्रत्यक्षानुभवगोचरत्वात्, किन्तु मिथ्यैवेति तत्संसृष्टस्यापि तथात्वम्। व्यावहारिकस्यापि

शारदा

परिकल्प्यातिप्रसङ्गो निरास्य इति वाच्यम्, पुरुषमात्रं प्रत्यतीन्द्रियत्वकल्पनाया लघुत्वात्, अतीन्द्रियत्वप्रयोजकस्य समानत्वाच्च नहि देवदत्तधर्माधर्मादिकं तदन्यं प्रत्येवातीन्द्रियम् ईश्वरयोग्यतिरिक्तत्वनिवेशस्त्वावयोः समानः। प्रातीतिकविषयोत्पत्तिस्वीकारे तस्य सत्त्वेन निर्वाच्यत्वं तु नापादनीयम्, पारमार्थिकसत्त्वेनैवानिर्वाच्यत्वोपगमात्। एतेन-अस्तु रजताभासादिकं किञ्चिद्, तथापि तन्नोत्पद्यते, अपरोक्षप्रतीतिबलात्तस्य शशशृङ्गादिवैलक्षण्यमात्रस्योपगमात् पुरोवर्त्यधिष्ठानतावच्छेदकेन्द्रियसन्निकर्षसंस्कारदोषादिघटितसामग्रीबलाच्च तद्भानमित्यपि निरस्तम्। दोषोत्कर्षापकर्षानुविधाय्युत्कर्षापकर्षशालिनस्तस्योत्पत्यावश्यकत्वात्। किंच तत्पुरोवर्तिन्यविद्यमानं वा विद्यमानं वा, विद्यमानत्वेऽपि सादि वा, अनादि वा, अनादित्वेऽपि सावयवं वा निरवयवं वा निरवयवत्वेऽपि गुणादिकं वा द्रव्यं वा, नाद्यः, अविद्यमानत्वाविशेषादन्यत्रापि भानापत्तेः, अन्यथाख्यातेरेव युक्तत्वापत्तेश्च। अथ रजतं पश्यामीत्यादिप्रतीत्या रजते लौकिकविषयतावगाहनात् ज्ञानात्मकसन्निकर्षस्यालौकिकविषयतानियामकस्यानङ्गीकार इति चेत्, तर्हि लौकिकविषयताशालिरजतप्रत्यक्षं प्रतीन्द्रियसन्निकर्षत्वेन कारणतायाः क्लृप्तत्वात् नाविद्यमानभानस्य दोषबलादप्युपपादनसम्भवः। दोषकार्यताया रजतज्ञानत्वावच्छिन्नत्वकल्पनापेक्षया रजतत्वावच्छिन्नत्वकल्पनायां लाघवाच्च, न चाविद्यावृत्तेरपि दोषकार्यत्वं

राजहंसः

प्रातिभासिकः संसर्गश्चेदनुमन्यते तदापि तावन्मात्रस्योत्पत्तिरावश्यिकेति। **नाविद्यमानभानस्य दोषबलादप्युपपादनसम्भव इति।** इन्द्रियसन्निकर्षरूपसामान्यकारणमपास्य दोषरूपविशेषकारणस्य न फलार्जकत्वसम्भवः, अन्यथाऽन्यत्रापि सामान्यसामग्रीं विना विशेषसामग्रीं सम्पादयेत्कार्यम्। ननु कार्यकारणभावानामननुगमेन यत्र यथोचितं तत्र तथा स्वीक्रियताम्, प्रकृते तु पुरोवर्तितादात्म्यापन्नतयैव रजतस्य भानेन पुरोवर्तिसन्निकर्ष एवेन्द्रियस्यासन्निहितरजतभासने दोषसहकार्यस्तु, न च तथापि रजतसंसर्गस्यानलीकताध्रौव्येणानुपदोक्तरीत्योत्पत्तिरावश्यिकीति प्रतिकूलप्रसङ्ग इति वाच्यम्, संसर्गमात्रोत्पत्तेरुपगमे हानेरभावात् दुराग्रहाणां त्याज्यत्वात्, स्वप्ने तु संसृष्टानामप्यनुपदोक्तरीत्योत्पत्तिरस्तु, जाग्रत्यपि संसृष्टोत्पत्तिपक्षेऽपि रजतं पश्यामीति प्रत्ययस्य प्रमात्वं न कदापि त्याज्यमितीदंतादात्म्यविशिष्टतया प्रथमानरजते चाक्षुषत्वमिदमर्थेन्द्रियसन्निकर्षादेव वक्तुमुचितम्, कार्यकारणभावानां फलबलकल्प्यत्वात्, एवञ्च रजतसंसर्गमात्रोत्पत्तावपि रजतं पश्यामीति प्रतीतिरित्थमेवोपपाद्या, दोषशक्तिस्तु संसर्गोत्पादनेनैव चरितार्थेति चेन्न, स्वप्ने व्यावहारिकाधिष्ठानतावच्छेदकाभावेनोक्तरीत्या संसर्गस्येव संसर्गिणोऽप्युत्पत्तिसिद्धौ पश्यामीति प्रतीतेरुक्तरीत्योपपादनासम्भवेन प्रकारान्तरेणावश्यमुपपादनीयत्वे जाग्रति रजतं पश्यामीत्यस्यापि तथैवोपपादनौचित्येन तादृशप्रतीतिमहिम्ना रजतोत्पत्तेर्दुर्निवारत्वात्। किं तत्प्रकारान्तरमिति चेत्, चक्षुरिन्द्रियजन्यबोधे इव साक्ष्यात्मकान्तरबोधेऽपि दोषसचिवे पश्यामीति प्रतीतिविषयतावच्छेदकधर्मसद्भाव इत्येव, कोऽसौ धर्म इति चेद् विषयिताविशेष एव, चाक्षुषत्वादेरपि विषयिताविशेषात्मकताया एव नव्यैरूपगमात्।

राजहंसः

ननु मानसे बोध एवायं धर्मः स्वीक्रियताम् , स्वप्ने दृश्यमाना चमत्कृतिः परिणतिर्मनस एवास्तु, न हि ज्ञानात्मा मानसी परिणतिरज्ञाननिवर्तनैकनियता प्रमात्मैवेति भगवतो भवस्य नियतिर्येन ज्ञातैकसति वस्तुनि सा तिरस्क्रियार्हैव स्यात्, एवञ्च ज्ञानसाकारताप्यत्र सूपपन्नैवेति चेदुक्तमत्रैकैव चमत्कृतिरनुभूयत इति । एवञ्च यदि मनसो दृश्याकारधारितैव तदोक्तधर्मस्य कथं तत्र सद्भावः, न च मनसः स्वभावतो ज्ञानात्मता येन तदाकारो ज्ञानाकारः स्यात्, न चानुभवाभावेऽपि मनसो वृत्तिस्तत्र प्रयोजनविशेषस्यान्यथाप्युपपत्तौ शक्या कल्पयितुम्, अज्ञानस्य निवृत्तिस्तावत्तत्र प्रयोजनमेव न, तस्याप्रसक्तत्वात्, नापि स्मृतिस्तत्र समाधेर्वक्ष्यमाणत्वात् । शक्तिविशेषस्य तत्तच्चमत्काराणां मनसाऽसम्भाव्यानामपि कृतेऽवश्यं क्लृप्तत्वाच्च । यादृशनिद्रादिदोषबलान्मनसा तत्रोत्सहनीयम्, तस्यापि शक्तिविशेषीयावस्थाविशेषत्वाच्च । मनसोऽपि तथात्वाच्च । एवञ्च संस्कारद्वारा स्वाप्नसंसारोपकर्तुश्चेतसोऽहमर्थघटकतयोक्तधर्मावच्छिन्नस्वप्नबोधनधुरन्धर-साक्षितादात्म्यस्य पश्यामीतिप्रतीत्याऽर्पितस्याश्रयकोटिनिक्षिप्तता न तु तादृशधर्मावच्छिन्नतेति। किमुक्तं भवति, अविद्या जननी मनसे पुत्राय चित्राण्युत्पाद्य दर्शयति साक्षिद्वारा, मनस्त्व-हमर्थपुच्छलग्नतयेव पश्यतीति । एतावता– दोषबलादेवापरोक्षज्ञानोत्पत्तिस्तु तेन पश्यामीतिमतेः प्रमात्वं सूपपादमिति शङ्का दूरापास्ता, हस्तपादाद्याकृतेरेवानुभवसिद्धत्वात्, तदनुभवस्य च नित्यस्यानुत्पत्तेः, विषयितास्थानीयतादात्म्यसम्बन्धेन तादृशाकृतिविशिष्टतयैव तदुत्पत्तेश्च प्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायेन संसर्गसमेततादृशाकृत्युत्पत्तावेव पर्यवसायित्वादिति। ननु स्मृतिस्थलेऽपि दृश्यत एवाकृतिः, अस्फुटेत्यन्यत् , एवञ्च तत्रापि तदुत्पत्तिस्वीकारापत्तिः, स्फुटत्वस्याप्रयोजकत्वात्, स्वप्नश्च स्फुटावभासा स्मृतिरेवास्तु, अत एव न तत्र स्मरामीत्यनुभवप्रसङ्गः, अस्फुटावभासस्मरण एव तथानुभवात्, अप्रसिद्धविशिष्टविषयक-स्वाप्नदर्शनस्यापि खण्डशः संस्कारैरेव निर्वाहसम्भवः, भ्रमत्वं तु देशकालादिसंसर्गांशे, एवञ्च स्मृतिरेव दशाविशेषे साक्षात्कारित्वमालम्बत इति मतं रमणीयमेवेति चेन्न, स्मरामीत्यनुभवाभावेऽपि स्फुटावभासस्य साक्षात्कारित्वाख्यविषयिताविशेषात्मकस्य स्मृतावभ्युपगमे प्रमाणाभावात्, संस्कारजन्यत्वमात्रेण स्मृतित्वपरिभाषाया अप्रयोजकतापराकृतत्वात्, स्मृतिरेव दशाविशेषे साक्षात्कारिणीत्यस्य तु रागादिना निरन्तरस्मरणधारायामुत्पाद्यमानायामन्ते साक्षात्कारात्मको भ्रमो जायते इत्यर्थो न तु स्मृतावेव कदाचित्साक्षात्कारित्वम् पूर्वस्मृतेर्नष्टत्वात्। स्मृतावप्यस्फुटाकृत्युत्पत्त्युपगमे तु न कामपीदानीं हानिं जानीमो विना निभालयामीत्यनुभवाभावम्। तादृशानुभव एव च जीवातुरनिर्वचनीयोत्पत्तिवादस्य ।

ननु साक्षिणोऽनुव्यवसायस्थानीयतया पश्यामीत्यनुभवः साक्षी नतु तद्विषय इति कथमुच्यते तद्विषयतावच्छेदकधर्मसद्भावः साक्षिणीति, एवं ह्येकत्र विषयविषयिभाव उपगतः स्यादिति चेद् रूपभेदेनैकत्र तदुपगमे का क्षतिः, आकारनिरूपिततादृशविषयिताविशेषविशिष्टतया विषयत्वम् अविद्यावच्छिन्नचित्त्वेन न विषयित्वम् अन्यथा[१]ऽऽकारदर्शनस्येवाकारदर्शनदर्शनस्यापि भ्रमत्वं वाच्यं स्यात् । नन्वेतदपेक्षायाऽविद्यावृत्तावेव तादृशधर्मोऽस्तु, तदवगाहिता तु साक्षिणि, एवञ्च वृथेदमवाचि चमत्कृतिद्वयी नानुभूति परिचेतेति, द्वितीयचमत्कृतेः पश्यामीतिमत्यैवानीतत्त्वदिति चेन्नूनमनूनं नोक्तम्, अन्यदपि वक्तव्यमासीदिह, तथाहि साक्षिण्येव दोषसचिवेऽसन्निहितरजत-विषयिताऽस्तु, तस्या रजततादात्म्यस्य चोत्पत्त्यैवानिर्वाच्यख्यातिरत्रानुपप्लुता, स्वप्ने पुनः सर्वथैव

१. उक्तरीत्या न मनोवृत्तिवक्तव्यरीत्या च नाविद्यावृत्तिः प्रातिभासिकदर्शनमिति साक्ष्यपि न चेत्तथा, तदा प्रातिभासिकदर्शनाभाव एव पर्यवसन्न इत्याशयेनाह अन्यथेति ।

शारदा

त्वया वाच्यमिति वाच्यम्, अविद्यावृत्तिं विनापि साक्षिभास्यत्वेन निर्वाहसम्भवात् । नच साक्षिणी नित्यत्वात् नाशानुपपत्तौ रजतविषयकसंस्कारानुपपत्तिः, रजततादात्म्यापन्नेदमाकारवृत्तिनाशे तदवच्छिन्नसाक्षिनाशादेवोपपत्तेः । नापि विद्यमानत्वे सति सादि,

राजहंसः

विजृम्भतां सा, बाह्यस्थले हि पुरोवर्तितादात्म्येनासन्निहितस्य तत्समानाकृतेः साक्षिणा पुरोवर्त्याकारवृत्तिद्वाराऽवगाहने बाधकाभावात्, इदं रजतमित्यनुभवस्य रजतमात्रविषयितायाः पुरोवर्तिमात्रविषयिताया वाऽभावेनावश्यकस्याश्चिद्वृत्तेरुभयविषयितायावक्तव्यत्वात् रजतस्योत्पत्तिपक्षे तत्संसृष्टतया पुरोवर्तिनोऽपि प्रातीतिकत्वेनाविद्यावृत्तिविषयत्वमित्यभिधानं हि न हृदयङ्गमी भवति, प्राप्ताप्राप्तविवेकेन रजततत्संसर्गयोरेव प्रातीतिकत्वात्, अन्यथा व्यावहारिकपुरोवर्तिसंसृष्टतया रजतस्यापि व्यावहारिकत्वेन मनोवृत्तिविषयत्वमित्येव किन्नोच्यते, न चासन्निहितरजतभाने भ्रमबाधयोर्भिन्नविषयकत्वरूपवैयधिकरण्यप्रसङ्गः, भ्रमविषयस्यैव निषेध्यतया बाधविषयत्वौचित्यात्। बाधौ हि नेदं रजतमिति तादात्म्याभावावगाही वा, नात्र रजतमित्यन्ताभावावगाही वा, आद्ये नाप्रसक्तप्रतिषेधः, तादात्म्यस्य पुरोवर्तिरजतयोर्भातत्वात्, नापि द्वितीये सः, भूतलादौ रजततादात्म्यापन्नपुरोवर्तिप्रसक्तेरेव रजतप्रसक्तित्वात् तत्र तन्निषेधसम्भवात्, नहि शुक्तावेव रजतनिषेधो बाधेनावगाह्यते न तु भूतले इति सशपथं वक्तुं शक्यते, नचेदं रजतं जानामीति पुरोवर्त्यवच्छिन्नचित्तादात्म्यविशिष्टरजतनिष्ठतया ज्ञायमानविषयत्वस्याश्रयान्तरासम्भवेन रजतोत्पत्तिसिद्धिरिति वाच्यम्, अतीतानागतयोरपि विषयतानुभवेन साम्यात्, तयोर्यदि केनचिद्रूपेणेदानीं सत्तया विषयताश्रयत्वसम्भवस्तदाऽसन्निहितरजतस्यापि क्वचित्सत्तया तथात्वसम्भव इति तुल्यम्, असन्निहितमपि हि रजतं पुरोवर्त्यवच्छिन्नचित्तादात्म्येन प्रातिभासिकेन विशिष्टं सम्भवत्येव । ज्ञानस्य विषयशूरता च नैतावता विशीर्णा । संसर्गः संसर्गिद्वयं चेति सकलस्यैव विषयस्य सद्भावात् । न च पुरोवर्तिचित्तादात्म्यरूपविषयतावच्छिन्नं यद्रजतचित्तादात्म्यरूपविषयत्वं तदाश्रयत्वमसन्निहितरजते न सम्भवति, शुक्त्याद्यवच्छिन्नचिति जातरजतस्यैव हि चित्तादात्म्यं शुक्तिचित्तादात्म्येनावच्छिद्यते, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात्,एवञ्चेदृशयुक्त्या परोक्षभ्रमेऽपि विषयोत्पत्तिः प्राप्यत इति वाच्यम्; ईदृशनियमकल्पनाया वासनामात्रमूलकत्वात्, यदवच्छिन्नचिति यज्जायते यदवच्छिन्नचित्तादात्म्यरूपविषयतावद्यद्भवतीति यावत्, तदवच्छेदेन चिति तत्संसर्गो जायते, एतावतैव चिति तद्द्वयतादात्म्ययोरवच्छेद्यावच्छेदकभावोऽप्यनुभूयत इत्यस्यापि सुवचत्वात् । न चैवं परोक्षभ्रमे संसर्गभिन्नविषयोत्पत्तिर्न सिद्ध्येत्, मा सैत्सीत्, न वयं व्यसनिनस्तदुत्पत्तिसाधने, यावत्प्रमाणबलं यत्र क्वचिद्यत्किञ्चिदुत्पद्यत इत्येवाचक्ष्महे इति ।

ननु सुन्दरमेवैतदिति काऽत्रानुपपत्तिः । ननु बीजमपि किमिह । अन्यथैव कथञ्चिन्निर्वाहे गौरवपराहता रजतोत्पत्तिरित्येवेति चेन्ननु कथञ्चिदन्यथैव निर्वाहेऽविद्यावृत्तिरपि गौरवपरहतेति तुल्यम् । तत्किं त्यक्तैव रजतोत्पत्तिः । न नः किञ्चिदपचीयते तत्त्यागे, जाग्रद्दर्शनान्तराणां स्वाप्नबोधानां चाननुरोध एवं तु परं दूषणमिहेति ।

रजततादात्म्यापन्नेदमाकारवृत्तिनाशे इति । रजततादात्म्यापन्नेदमाकारसंस्कारलाभलोभेन रजतस्य तत्तादात्म्यस्य च नाशे तदवच्छिन्नसाक्षिनाशोक्तिर्नादृता, इदंतादात्म्यापन्नरजतस्य नाशेतदवच्छिन्नसाक्षिनाशोक्तिस्तु स्यात् तादृशसंस्कारलाभात् । परन्तु वृत्तेरपि स्मरणेन

राजहंसः

तद्विषयसंस्कारस्याप्युपार्जनीयतया तदवच्छिन्नसाक्षिनाशपर्यन्तमवश्यं धावनीयम्, विषयविशेषितवृत्तिसंस्कारस्य विषयात्मकविशेषणगोचरत्वं चोचितमेवेति वृत्त्यंशे संस्कारप्रमोषस्थले केवलविषयस्यापि स्मरणं निरुपप्लवम् । न च रजततादात्म्यापन्नेदमाकारवृत्ते रजततादात्म्यगोचरत्वे स्यादप्येवं रजततादात्म्यापन्नेदमाकारसंस्कारलाभः, इदम्मात्रसंस्पर्शितायां तु कथमेवमिति वाच्यम्, अनुपदं प्रतिविधास्यमानत्वात् । रजतसंसृष्टतयेदमर्थस्यापि प्रातीतिकत्वेन तन्नाशोक्तिस्तु नैवादर्तव्या, तस्या रजततत्संसर्गयोः प्रातीतिकत्वं तयोरेव च नाश इत्यतोऽधिकार्थासमर्पकत्वात् । वस्तुतस्त्वेवं विवेके क्रियमाणे विषयावच्छिन्नसाक्षिनाशोऽपि विषयनाशे एव न न पर्यवस्यति । एवञ्च ज्ञाननाशस्येव विषयनाशस्यापि संस्कारकारणत्वमित्यपूर्वकल्पनामपास्याविद्यावृत्तिरेव कुतो नोपेयते, नच— तस्या रजतमात्रगोचरतया 'इदं रजत'मितिज्ञानाकारो न स्यात्, रजतसंसृष्टतयेदमर्थस्यापि प्रातीतिकत्वास्याप्रामाणिकत्वेन तद्विषयकत्वस्याविद्यावृत्तावसम्भवात्, इदमाकारवृत्तौ तु मानस्यां रजतविषयकत्वमशङ्कनीयमेव, तस्या अज्ञातगोचरत्वात्, इदमिति रजतमिति वृत्तिद्वये त्विदन्त्वावच्छिन्नविषयितानिरूपितरजतत्वावच्छिन्नविषयिताशालिसंस्कारार्पकत्वं न सम्भवत्येव, ज्ञानद्वयीयविषयितयोर्निरूप्यनिरूपकभावासम्भवादिति—वाच्यम्, यदि हि बलवता प्रमाणेन मनावृत्तेर्जानात्यर्थभूताया अज्ञातमात्रगोचरत्वं निर्णीयते तदेदृशस्थले प्राभाकरवज्ज्ञानद्वयीयविषयितयोरपि निरूप्यनिरूपकभावमभ्युपेत्य तादृशसंस्कारसमर्थनमर्थ्यताम्, प्राभाकरेणैवं किञ्चित्साम्येऽपि रजततत्संसर्गाविद्यावृत्तीनामुत्पत्त्युपगमेनैव तन्मतप्रवेशासम्भवात् । तस्मात् किमिह तत्त्वमिति ? उक्तमत्र मनोवृत्तेर्ज्ञानात्मनोऽज्ञातमात्रगोचरत्वं प्रमात्वं चेति नियतौ न सन्तोषवहं मानमिति तयैवेदं रजतमित्याकारधारिण्याऽभीष्टसंस्कारोत्पत्तिरिति। तादृशनियतौ सन्तुष्टं प्रत्यपि किञ्चिद्वाच्यमेवेति चेदुक्तप्रायमत्र यत्प्रतिभासमात्रप्राणतया तत्समशीलत्वमेव प्रातिभासिकतया प्रथितचमत्कृतेरिति व्यावहारिकविषयनाशस्य संस्कारकारणत्वाभावेऽपि तन्नाशस्य तथात्वसम्भव इति ।

अतएव तस्याः सर्वथैव ज्ञानात्मकतामपि केचिद्भ्रान्त्या प्रतिपेदिरे, हस्तपादाद्याकारमनुरुन्धानैः परमस्माभिः किञ्चिदमूर्तज्ञानवैलक्षण्यमपि तत्रादृतम् न च विषयत्वं किञ्चिदनुगतमनतिप्रसक्त येन तदवच्छेदेन संस्काराजनकत्वं निर्धारितमपि स्यात्, वृत्तेरपि साक्षिविषयत्वेन तन्नाशस्यापि संस्काराजनकत्वप्रसङ्गात्, वृत्तिभिन्नत्वविवक्षया तु प्रोक्तचमत्कृतिभिन्नत्वविवक्षा स्पर्धते, तस्मात्स्वभाव एवात्र भगवान् शरणं यद्विषयोऽपि कश्चित्संस्कारमाधत्ते कश्चिन्नेति । अवश्यं चैवमनुमन्तव्यम्, कथमन्यथावृत्तिविषयकसंस्कारसिद्धिः, तद्भासकस्य शाश्वतत्वात्, वृत्तिविशिष्टतन्नाशस्य च विशिष्टे विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामत इति न्यायेन वृत्तिनाशे एव पर्यवसन्नत्वात्, कथञ्चिद्वृत्तेः स्वविषयत्वस्य स्वभावविशेषस्य वोपगमेन समाधानं तु मूर्तज्ञानात्मकरजततत्संसर्गयोरपि समम् । एवञ्चैतद्द्वयस्येदमर्थस्य च खण्डशः संस्कारैरेव विशिष्टस्मृतिप्रसवः। अपि वाऽत्रापि पक्षे नानाज्ञानीयानां विषयितानां संस्कारीयाणाञ्च निरूप्यनिरूपकता प्राग्वदेवोपासनीया । किञ्च मूर्तज्ञानस्यास्य व्यावहारिकेदमर्थसंस्पर्शोऽपि वक्तव्य एवानुभवबलात् । अतिरिक्ताविद्यावृत्तिकल्पेऽति वृथाऽऽग्रहं परित्यज्य केनापि रूपेण चेदमर्थस्य प्रातीतिकत्वमनादृत्य तद्विषयकत्वं तस्यामनुभवादेव माननीयं मन्यामहे । न हि केवलेदमर्थस्याविद्यावृत्त्यविषयत्वे प्रातिभासिकविशिष्टतयाऽपि तस्य तथात्वं शिवशासनाऽऽनीतम् । इदमर्थाज्ञानस्य चाविद्यावृत्त्यनाश्यत्वेऽपि प्रागधिष्ठानज्ञानविधयाऽपेक्षणीयेदमाकारमनोवृत्त्यैव नष्टत्वान्न काचित्क्षतिः। नानाज्ञानैस्तु निर्वाहोऽगतिकगतिरेवेति ।

राजहंसः

तदेवं रजताद्याकारसंस्कारकारणतावच्छेदकं तज्ज्ञानत्वं तदीयासत्त्वापादकाज्ञान-विरोधिविशिष्टचित्त्वरूपं रजतादिविशिष्टचिति निरुपद्रवम् , विषयतया विषयतावच्छेदकतया वाऽज्ञानं प्रति रजतादेः स्वयमेव सुखादिवत्तादात्म्येन विरोधित्वात् , न च घटादावज्ञातसति तादृशविरोधित्वं प्रमाणाऽऽघ्रातं येन तत्रापि वृत्तिस्वीकारतिरस्कारप्रसञ्जनेन प्रत्यवस्थेयं स्यात् ।

एतेन—वृत्तिसंस्कारस्यानुमित्यादिरूपवृत्तिजन्यसंस्कारसाधारणेनाकाराख्यगौणविषयिता-सम्बन्धेन नव्यवेदान्तिसम्मतेन व्यावहारिकरजतादिविशिष्टसंस्कारत्वेन रूपेण स्मृतिकारणतायाः क्लृप्ततया तयैव प्रातिभासिकरजतादिस्मृतिरपि निर्वाहयितव्या, अन्यथा रजतावच्छिन्नचित्त्वेन चितः सूक्ष्मावस्थारूपसंस्कारसम्भवेऽपि तस्यां रजतादितादात्म्यरूपरजतादिविषयकत्वसम्बन्धेन कारणताकल्पने गौरवात्, न चोक्तसूक्ष्मावस्थारूपसंस्कारकाले रजतादेरभावेन तादात्म्यासम्भवमेव न भणसि कुतः ? रजतादितादात्म्यापन्नचित्परिणामरूपोक्तावस्थायां रजतादिनाशात्मकसूक्ष्मावस्था-यास्तादात्म्यस्यैव रजतादितादात्म्यत्वव्यपदेशात्, अवस्थातद्वतोरत्यन्तभेदाभावात् , तथा च गौरवमेवेति—नाशङ्कनीयम् । रजतावच्छिन्नचितोऽपि चित्त्वेन नित्यतया तदीयसंस्कार-स्थानीयसूक्ष्मावस्थाया रजतनाशात्मकसूक्ष्मावस्थायामेव पर्यवसायितयाऽचिदात्मकत्वेन रजततादात्म्याभाजनतया तादृशविषयत्वेन कारणताकल्पनानुपपत्तेर्मूर्तज्ञानात्मक-रजतनाशरूपसूक्ष्मावस्थाव्यपदेशपात्रसंस्कारेषु गौणाकाराख्यविषयितयैव रजतादिवैशिष्ट्यस्य वक्तव्यत्वात्। अन्यत्र घटविषयकज्ञानीयसंस्कारेषु घटाकारत्वदर्शनेनात्र कथं रजताविषयकमूर्तज्ञानात्मकरजतीयसंस्कारेषु रजताकारत्वमिति तु वृत्तिविषयकसंस्कारचर्चयाऽनुपदं निरुक्तोत्तरम् ।

अत्र चित आध्यासिकतादात्म्योपगमावश्यकत्वेऽपि रजताकारा वृत्तिरितिवद्रजताकारा चितिरिति व्यवहारबलादाकाराख्यसम्बन्धोऽपि कुतो नोपेयताम् , तत्तदाकारेण चैतन्यमेव प्रथते माययेत्यादिव्यवहारस्याप्रामाणिकत्वोक्तेरप्रामाणिकत्वात् । न चैवं सर्वत्रैव वृत्तिवैयर्थ्यम् अज्ञाननिवृत्त्यर्थं तस्या आवश्यकत्वात् । न च घटाकारा चितिरित्यादौ तादात्म्यमेव चितेर्भासत इति भाषणीयम्, सम्बन्धान्तरपरतया कथञ्चिद्व्याख्यानस्य घटाकारा वृत्तिरित्यादावपि शक्यत्वात् अनिर्वचनीयो हि वृत्तेराकाराख्यः सम्बन्धो घटादावुपगतो न तु चितिव्यावृत्तलक्षणकः, लक्षणानां दुर्निरूपत्वात्, अनिर्वाच्यश्चासौ न चितेरपि न सम्भवतीति तु वचनीयतां नार्हति । चित्तादात्म्यस्यावश्यकत्वेन चिदाकारतायास्तदतिरिक्ताया अप्रामाणिकत्वात्, तत्तदाकारेण भासते चितिरित्यादौ तत्तद्रूपेण तत्तत्तादात्म्येनेत्येव प्रतीतेः प्रमात्वात्, चितेराकारान्तरानुपपत्तेः, वृत्तेस्तु परोक्षापरोक्षसाधारण्या आकाराख्यः सम्बन्धः संयोगाद्यात्मकतामवाप्तुमप्रभविष्णुतयाऽतिरिक्तोऽनिर्वचनीयो यः कोऽपि भवतु नाम, वृत्तितादात्म्यस्य घटादावप्रामाणिकत्वात्तु न स तदात्मापीति ।

तस्मात्पक्षपातेनेवाविद्यावृत्तिमपि विदूरीकृत्य साक्षिणा स्वोत्सङ्कमिवानीय दर्शितेयं प्रातिभासिकी चमत्कृतिर्विचारकैश्चेतसाऽऽस्वाद्यतामिति। नन्वेवं साक्षिण एव तत्प्रतिभासतया प्रतिभासनिरूपित-कालिकसमव्याप्तिमादाय तस्याः प्रातिभासिकत्वं न स्यात्, नाप्यागन्तुकदोषप्रयुक्तभानत्वमादाय, भानस्य नित्यसाक्षिरूपतया दोषाप्रयुक्तत्वादिति चेन्न, मूर्तप्रतिभासात्मकतया प्रातिभासिकत्वोक्तेरुक्तप्रायत्वात् । तादृशदोषजन्यत्वं तादृशदोषजन्यविषयिताकत्वं निर्विशेषब्रह्मबोधातिरिक्तबाध्यत्वं चादायापि तत्सम्भव इति ।

शारदा

उत्पत्तिवादापत्तेः । नापि विद्यमानानादिसावयवम् सावयवत्वे घटादिवदुत्पत्तिध्रौव्यादनादित्वानुपपत्तेः। अथ विद्यमानानादिनिरवयवम्, तदा सावयवत्वेनानुभवापलापापत्तिः, एतेन गुणत्वद्रव्यत्वपक्षौ निरस्तौ । अनादित्वनिरवयवत्वद्रव्यत्वाद्यनेकधर्मकल्पनापेक्षया धर्म्युत्पत्तिकल्पनायां लाघवाच्च, धर्माणां व्यावहारिकाणामेव प्रातिभासिकं भानोपगमात् । ज्ञानसमकालसत्त्वकल्पनयैवोप-

राजहंसः

अत्र साकारवादप्रसङ्गेनेति प्रतीकस्थराजहंसादारभ्य पुनः पुनरुत्पतन्त्या अविद्यावृत्तेर्निराकृतिरियं समूर्तप्रतिभासात्मचमत्कृतिः प्रसिद्धप्रक्रियाविक्षेपकतया किञ्चिदुच्छृङ्खलापि महाभाष्योक्तं महतो वंशस्तम्बाल्लट्वानुकर्षणन्यायमनुहरन्त्यपि विचारधाराधाराधरायमाणतया सुधियाधियाऽनुराधनीयैवेति।

धर्माणां व्यावहारिकाणामेव प्रातिभासिके भानोपगमादिति। अन्यथा व्यावहारिकरजतत्वप्रकारकेच्छाधीनप्रवृत्त्यनुपपत्तेः, रजतादिशब्दानां प्रातीतिके प्रयोगानुपपत्तेश्च। अथ व्यावहारिकस्योभयानुगतधर्मस्यागन्तुकदोषजन्यतावच्छेदकत्वासम्भवः, न च सामानाधिकरण्यकालीकाभ्यां दोषविशिष्टत्वस्यैव तथात्वम्, कालिकनिवेशाच्च न नित्यसाधारण्यम्, नित्यस्य महाकालवत् स्वभावतोऽपि, नित्यमहाकालं प्रति नित्यतया व्यावर्तकत्वानुपपत्त्या च कालोपाधिविधयाऽपि, कालत्वानाक्रान्ततया कालानुयोगिकत्वनियतकालिकसम्बन्धविशेषानुयोगित्वानुपपत्तेरिति वाच्यम्, उक्तसम्बन्धद्वयेन दोषविशिष्टत्वस्य वा कालिकेन घटत्वविशिष्टं सामानाधिकरण्येन च दोषविशिष्टं यत्तत्त्वस्य वा तथात्वमित्यत्र विनिगमकाभावात्, दोषस्येव घटत्वस्याप्युक्तयुक्त्या नित्येषु कालिकेनासम्भवेनेदृशनिवेशेनापि नित्यवारणसम्भवादितिचेन्न, घटत्वस्थाने पटत्वादेरपि प्रत्येकं निवेशप्रसङ्गेनानन्त्यप्रसङ्गदौःस्थ्याद्दोषस्योपस्थिततत्वाद् द्वितीयसम्बन्धे क्लृप्तत्वाच्च कालिकेनापि तद्विशिष्टताया एव निवेशनीयत्वात् । न च कालिकसम्बन्धवृत्तित्वविशिष्टं यत्सामानाधिकरण्यसम्बन्धवृत्तित्वं तद्विशिष्टोभयत्वं वा विशेषणविशेष्यभावे कामचारेण विपरीतविशिष्टघटितं वोभयत्वं सम्बन्धतावच्छेदकमिति कार्यताया अवच्छेदकभेदेन भेदापत्त्या रजतत्वस्यैव लाघवादवच्छेदकत्वमिति प्रातीतिकमात्रवृत्तिधर्मसिद्धिरिति वाच्यम्, अपूर्वरजतत्वकल्पनापेक्षया क्लृप्तोक्तोभयत्वप्रयुक्तगौरवस्य सोढव्यत्वात् । वस्तुतस्तु सामानाधिकरण्येनैव दोषविशिष्टत्वं कार्यतावच्छेदकमस्तु नित्यसाधारण्येऽप्यवच्छेदकस्यातिप्रसङ्गाभावात् 'न किञ्चिदेकमेकस्मात्सामग्र्याः सर्वसम्भव इति न्यायेन कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नत्वमात्रापराधेनोत्पत्तिप्रसङ्गदानानौचित्यात् । न च प्रमाणव्यापारं विना प्रातीतिकनिष्ठतया व्यावहारिकधर्मस्य भानानुपपत्तिः, व्यावहारिकस्यापि धर्मस्य प्रातीतिकसंसृष्टतया तद्भासकभास्यत्वे बाधकानाकलनात् , एवञ्च प्रातीतिकमात्रे व्यावहारिकमात्रे वा वर्तमानं रजतत्वं न स्वीक्रियामर्हति, अपि तूभयानुगतं व्यावहारिकमेव। न च प्रातीतिकसाधारणस्यैव रजतत्वस्य कटकादिकारणतावच्छेदकत्वेऽतिप्रसङ्गः, व्यावहारिकवृत्तित्वविशिष्टस्यैव तस्य तथात्वात्। उभयानुगतं कार्यं तु प्रति शुद्धस्यापि कारणतावच्छेदकत्वे नातिप्रसङ्गः । न चोभयानुगतरजतत्वस्य व्यावहारिकत्वमेव किमिति, प्रातीतिकत्वमेव कुतो नेति शङ्केथाः, बह्वनुग्रहस्यैव न्यायसिद्धत्वात् प्रायो व्यावहारिकमूलको हि प्रातीतिकाध्यास इति क्लृप्ततापि तथात्वनियन्त्री। एवञ्च नात्र रजतमित्यादौ धर्मिमात्रस्य बाधो न तु धर्मस्यापीति शम् ।

शारदा

पत्तौ ज्ञानात्पूर्वं सत्त्वकल्पनाया अप्रामाणिकत्वाच्च । अथ सर्वैर्धर्मैरनिर्वाच्यमेव तदिति चेत्तथाप्यनुभवोपपत्तये उत्पत्तिकल्पनाया औचित्यात् सर्वथैवानिर्वाच्यत्वे मौनालम्बनापाताच्च, अनिर्वाच्यताया अप्रतिसमाधेयव्याधिमात्रस्य चिकित्सात्वाच्च । एतेन रजतादेर्बुद्धिसत्त्वपक्षोऽपि व्युदस्तः, बाह्यप्रपञ्चापलापापत्तेः । दृष्टिसृष्टिवादेऽपि ज्ञातसत्ताकबाह्यप्रपञ्चोपगमान्न तेन प्रत्यवस्थानमपि । रजतं पश्यामीतिधीस्तु क्षणत्रयपर्यन्तं भ्रमानुवृत्तौ प्रमैव, द्वितीयक्षणे सन्निकर्षबलात्तृतीयक्षणे रजते चाक्षुषविषयतोपपत्तेः। आद्यक्षणे च साक्षिभास्यत्वान्नाज्ञातसत्त्वापत्तिः। क्षणत्रयपर्यन्तं भ्रमाननुवृत्तौ तु शक्तिगतचाक्षुषत्वस्यैव रजतेऽवगाहनात् तादृशधियो भ्रमत्वमेव। इदन्तु बोध्यम्–स्वप्ने सृष्टिवचनस्य भाष्ये भाक्तत्वकथनं व्यावहारिकसृष्टिनिराकरणाभिप्रायेणैव, अतएव ''नास्य रथादिग्रहणाय चक्षुरादीनि सन्ति रथादिनिर्वर्तने वा कुतो निमेषमात्रेण सामर्थ्यं, दारूणि च न सन्ति तस्मान्मायामात्रं स्वप्नदर्शनमिति'' भाष्ये व्यावहारिकसामग्र्येव निराकृता, मायामात्रमिति कथनेन च प्रातिभासिकपदार्थोत्पत्तिः सूचिता । ''सृष्टि वाक्यानि नोत्पत्त्यादिपराणि किन्त्वैकात्म्यावगमपराणीति'' भाष्यादपि सृष्ट्यभावः प्रतीयत इति तु न भ्रमितव्यम् , द्वैतप्रतिपादकागमानामद्वैतवाक्यशेषत्वे एव तत्तात्पर्यात् । ''प्रभवः सर्वभावानामिति'' माण्डूक्यकारिकाभाष्ये रज्ज्वां सर्पोत्पत्तेः स्फुटमुक्तत्वाच्च। एवं ग्रन्थान्तरेष्वपि सृष्टौ पारमार्थिकत्वनिराकरणे एव तात्पर्यम् , नतु सृष्टिनिराकरणे, अतएव ''कुरुते सृष्टिमविद्या सर्वात्मा स्पृश्यते तया नात्मेति'' परमार्थसारोक्तिः सङ्गच्छते। अत्र सृष्टिपदस्य भ्रमाद्यर्थकत्वकल्पना तु कुसृष्टिकल्पनैवेति दिक्, विस्तरस्तु ख्यातिवादे द्रष्टव्यः।

राजहंसः

ननु ज्ञातैकसति सन्निकर्षस्यासम्भवेन तदायत्तविषयतामर्पयन्त्या रजतं पश्यामीति मितेर्भ्रमत्वापत्तिरत आह **रजतं पश्यामीति धीस्त्विति।**

तादृशधियोभ्रमत्वमेवेति । न चेदृशस्थले त्वयेव मया सर्वत्र तादृशधियो भ्रमत्वस्य सम्भवदुक्तिकत्वेन न तद्बलात्साधयितुमिष्टेन सन्निकर्षेण स्वाश्रयतयेह रजतसिद्धिसम्भव इति देश्यम्, अज्ञाननिवर्तकप्रत्यक्षस्येन्द्रियसन्निकर्षजन्यतायाः क्लृप्ततयाऽत्र तत्त्यागेऽज्ञाननिवर्तकप्रत्यक्षत्वेन स्थातुं तावन्नोत्सहनीयम् , स्मरामीत्यप्रत्ययेन स्मृतित्वस्य व्याप्त्यादिप्रतिसन्धानासमवधानेनानुमिनोमीत्याद्यननुभवेन चानुमितित्वादेश्चेहाशङ्कट्यतया यावद्विशेषबाधे सामान्यस्य ज्ञानत्वस्यापि स्पर्शमनर्हन्ती रजत धीरे-धीरेवावधृता स्यात् । न चालौकिकसन्निकर्षजन्यतयैवाज्ञाननिवर्तकप्रत्यक्षता तत्रास्तामिति साम्प्रतम्, सौरभं स्मरामीत्येव प्रत्ययेन तादृशसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षतानुपपादकत्वात्। अनिर्वाच्यवादे तु सा धीरज्ञाननिवर्तकप्रत्यक्षतामक्षममाणापि तदनिवर्तकप्रत्यक्षतयैवाऽऽलिङ्गिता साक्षितामक्षतामेवेक्षितुमीष्टे स्वस्मिन्, ज्ञातैकसत्त्वस्य स्वीकृतौ चेत्थं वक्तुं पार्यते नान्यथेति भावः । प्रागुदीरितरीत्या पश्यामीतिप्रतीतिविषयतावच्छेदकविषयिताविशेषस्याविद्यावृत्तौ दोषसचिवे साक्षिणि वाऽभ्युपगमे तु तादृशधियो भ्रमत्वं न क्वापि प्रसज्यत इत्यनुसन्धातव्यम्। **ख्यातिवाद इति।**

नैतच्चित्रं यदेकस्य पुंसः कृतिपरम्परा ॥
अप्रशस्ता प्रशस्ता च कालभेदेन जायते ॥ ८॥

द्वितीयेऽपि किं वादिप्रतिवादिमध्यस्थमात्रस्य, तस्यापि कथाकालमात्रे एव बाधितावगमाभावात्, अथवा कस्यचिदपि कालान्तरेऽपि च बाधितबोधविरहात्। नाद्योऽतिप्रसङ्गात्, पुरुषत्रयावगतस्याप्येकक्षणा-वगतस्य च पुरुषान्तरेण तेनापि क्षणान्तरे बहुलं बाध्यत्वदर्शनात्; न चासावर्थोऽसत्योऽपि द्वित्रादिपुरुषमात्रपूर्वजाततत्प्रतीत्यनुरोधाद्बाधदर्शने सञ्जातेऽपि तथैव सन्नित्यभ्युपगम्यते, तस्माद्द्वितीयः पक्षः परिशिष्यते—यत्र सर्वप्रकारेण बाधितत्वं नास्ति तत्सदित्यभ्युपगन्तव्यम् ।

शारदा

प्रमाविषयत्त्वं सत्यत्वव्याप्यमिति द्वितीये कल्पे व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वरूपं व्यावहारिकप्रमात्वं विवक्षितमुत त्रिकालाबाध्यविषयकत्वरूपं तात्त्विकप्रमात्वमिति मनसि निधाय विकल्पयति द्वितीयेऽपीति । **मात्रस्य बाधितावगमाभावादित्यन्वयः । स्वप्रकारकधी-विशेष्यनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रकारककथाकालीनवाद्याद्यवगमाविशेष्यस्यावगमात् सत्यत्वाभ्युपगम इत्यर्थः । अन्यथा साधकाभावे बाधभावमात्रेण वस्त्वसिद्धेरसङ्गतेः ।** कस्यचिदपीति । **निरुक्तप्रतियोगित्वप्रकारकावगमविशेष्यतासामान्यरहितस्यावगमादित्यर्थः। पुरुषत्रयेणावगतस्यापि पुरुषान्तरेण बहुलं बाध्यत्वदर्शनात् = निरुक्तप्रतियोगित्वप्रकारिका या पुरुषान्तरनिष्ठा प्रमा तद्विषयत्वदर्शनात्, तेनापि पुरुषेणैकक्षणावगतस्य च क्षणान्तरे बहुलं बाध्यत्वदर्शनादिति योजना । असत्योऽपि = निरुक्तप्रतियोगिताश्रयोऽपि ।** तत्प्रतीतीति **असत्यार्थविषयकप्रतीतीत्यर्थः । तथैव = भ्रमसमयवत् । अयंभावः—व्यवहारः प्रतीतिर्वाप्रवृत्तिर्वा, आद्ये प्रतीतिकालाबाध्यविषयकप्रतीतिबलात् प्रातीतिकमेव सत्यत्वं सिद्ध्यतु नतु पारमार्थिकं, द्वितीयेऽपि प्रवृत्तिकालाबाध्यविषयकप्रतीतिबलाद् व्यावहारिकमेव सत्यत्वं सिद्ध्यतु नतु पारमार्थिकम् । यत्र सर्वप्रकारेण बाधितत्वं नास्ति यत्र कालानवच्छिन्नं बाधकज्ञानाविषयत्वं तात्त्विकप्रमात्ववद्विषयत्वमिति यावत् तत् परमार्थसत्यत्वेनाभ्युपेयम्।**

राजहंसः

हीनोत्तमाः प्रजाः कुर्वन्नीश्वरोऽपि युगद्वये ।
कालवीर्यानुमोद्येव किं पुनः प्राकृतो जनः ॥ ९॥

तत्त्वं तूदीरितमेवानुपदम् । **सर्वसाक्षितया ब्रह्मण्येवेति** । विषयिता सप्तम्यर्थः; तथा च ब्रह्मविषयकग्रहे इति लभ्यते ।

भारती

मानी जाय तो मरुमरीचिका में जल की सत्ता भी माननी चाहिए । एवं द्वितीय पक्ष में भी अबाधित सत्ताज्ञान किसका-क्या वादि-प्रतिवादि एवं मध्यस्थ मात्र के एवं उन तीनों के भी कथा काल मात्र में ही अबाधित सत्ताज्ञान होने से विषय की सत्ता माननी चाहिए, या किसी भी काल में किसी भी पुरुष को बाधित सत्ताज्ञान के न होने से अर्थात् अबाधित ज्ञान होने से विषयसत्ता माननी चाहिए? इसमें भी प्रथम कल्प ठीक नहीं है, क्योंकि कथा काल मात्र में वादि प्रतिवादि मध्यस्थ पुरुषत्रय के द्वारा अबाधिततया अवगत पदार्थ भी पुरुषान्तर के द्वारा अथवा उन्हीं तीनों के द्वारा भी कालान्तर में बाधित होते अनेकत्र देखे जाते हैं। जो पदार्थ वस्तुतः असत्य है वह दो-तीन पुरुषों के द्वारा कथा काल मात्र में अबाधितप्रतीति के

तदित्थं, यदि नाम वादिप्रतिवादिमध्यस्थमात्रस्य दूषणादिसत्तावगमः कथाकालमात्रे तैरबाध्यमानः कथाङ्गत्वेनाभ्युपेयते तदा किमायातं सर्वप्रकाराबाधिततत्सत्त्वावगमायत्ततत्सत्त्वाभ्युपगमकथाङ्गतानङ्गिकारस्य। कतिपयप्रतिपत्तृकतिपयकालतथात्वावगमादेव प्रायेण लौकिको व्यवहारः प्रतीयते, तादृशश्चायं सत्त्वावगमः कथाङ्गम्। एतत्तदुच्यते ''व्यावहारिकीं प्रमाणादिसत्तामादाय विचारारम्भ'' इति। तस्मात् 'यादृग्व्यवहारनियम :

शारदा

इदन्तु बोध्यम्—तात्त्विकप्रमात्वं यदि कालानवच्छिन्नबाधकज्ञानाविषयविषयकत्वं तदा बाधकज्ञानस्य विपरीतप्रमारूपत्वेनात्माश्रयादिः, तस्माद्देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभाव-प्रतियोगित्वाभाववद्विषयकत्वमेव तत्, नचैतत्प्रमाणादिग्रहेऽधिगन्तुं शक्यते, व्याप्तिग्रहोपाय-खण्डने वक्तव्यरीत्या प्रत्यक्षादेस्तत्राप्रसरात्, सर्वसाक्षितया तु ब्रह्मण्येव पर्यवस्यति अन्यथा शून्यतापत्तेरिति तदेव परमार्थसदिति भावः।

इत्थं = प्रमाणादौ सत्त्वस्य ग्रहीतुमशक्यत्वे। दूषणादिसत्तावगमः = भङ्गावधारणाद्युपयोगी दूषणादिविशेष्यकसत्ताप्रकारकावगमः। तैरबाध्यमानः = वादिप्रभृतिगतविपरीतप्रमाविषयताशून्यः, व्यवहारानौपयिकविषयकत्वग्रहानास्कन्दित इति यावत्। तेन वेदान्त्यादेः प्रतिवादिनः कालानवच्छिन्नस्य बाधकज्ञानविषयत्वाभावस्य दूषणादिसत्त्वे ग्रहासम्भवेऽपि न क्षतिः। कथाकालमात्रे **इति व्यवहारकालस्योपलक्षणम्। सर्वप्रकारेणाबाधितः = कालानवच्छिन्नेन बाधकज्ञानानास्कन्दितत्वेन विशिष्टः यो दूषणादिसत्त्वावगमस्तदधीनो यो दूषणादिसत्त्वस्याभ्युपगमोऽनाहार्यनिश्चयः तस्य कथाङ्गताऽनङ्गीकारस्य मन्निष्ठस्य किमायातम्, परमार्थसत्त्वाभ्युपगमो न कथौपयिक इति मम मतं नच्छिन्नमिति भावः।** तथात्वेति। **सत्त्वेत्यर्थः। तादृशः = व्यवहारकालाबाध्यः। एतत्तदुच्यते तदिदमुच्यते व्यावहारिकीं = व्यवहारकालाबाध्याम्। आदाय = अभ्युपगत्य एवं वस्तुसत्त्वस्यानपेक्षणीयत्वव्यवस्थितौ समयबन्धोऽपि तत्तत्सत्त्वावगमघटितो न तु वस्तुसत्त्वघटित इत्यनुशयमुपसंहारव्याजेनोद्घाटयति** तस्मादिति। **तस्यावगमः =**

भारती

अनुरोध (बल) से बाधज्ञान काल में भी भ्रमकाल के समान सत्य नहीं माना जाता। तस्मात् जिस पदार्थ में किसी भी प्रकार से बाधितत्त्वबुद्धि न हो, वह सत् है, अर्थात् उसे सत्य मानना चाहिए यह द्वितीय पक्ष ही स्थिर होता है।

तस्मात् पूर्वोक्त प्रकार से प्रमाणादि की सत्ता (पारमार्थिक सत्ता) नहीं मानी जा सकती है और यदि वादि प्रतिवादि मध्यस्थ मात्र के दूषणादि के अवगम जो उन्हीं (पुरुषत्रय) द्वारा कथाकाल मात्र में अबाध्यमान है को कथा का अङ्ग मान भी लिया जाय तो "सभी प्रकार से अबाधित सत्ता ज्ञान के अधीन प्रमाणादि का सत्ताभ्युपगम कथा का अङ्ग (कारण) नहीं है" इस हमारे सिद्धान्त की हानि नहीं है। क्योंकि कतिपय प्रतिपत्ताओं (व्यावहारिकों) के कतिपय काल (व्यवहार काल) में सद्रूप से जायमान ज्ञान के द्वारा ही प्राय: लौकिक व्यवहार सम्पन्न होते देखे जाते हैं और वैसा ही सत्ता का ज्ञान कथा का अङ्ग (कारण) भी है। इसीलिए यह कहा जाता है—"व्यावहारिकीं प्रमाणादिसत्तामादाय विचारारम्भः"। (प्रमाणादिक व्यावहारिक सत्ता स्वीकार कर विचार (शास्त्रार्थ) का आरम्भ करना चाहिए।)

कृतस्तन्मर्यादाऽनेन नोल्लङ्घिता' इति यद्वादिवाग्व्यवहारे मध्यस्थावगमः, स विजयते यस्य तु वचसि नैवं तस्यावगमस्तस्य पराजयः, यत्र वाद्युक्तनिग्रहसत्त्वावगमः स निगृहीतः तदितरस्तु न तथेत्यादिनियम एव कथारम्भाय ग्राह्यः । 'अनेन नियमेन वक्तव्य'मित्यस्याप्ययमर्थः— 'अनेन नियमेनोक्तमनेनेति मध्यस्थावगमस्य विषयीभवितव्यमिति। न च वाच्यमन्ततस्तदवगमस्यापि सत्ताभ्युपेयेति; तस्यापि सत्ताचिन्तायां तत्सत्तावगमान्तरस्यैव शरणत्वात् । न चैवमनवस्था तदनुसरणा-वश्यम्भावानङ्गीकारात्, ''एवं त्रिचतुरज्ञानजन्मनो नाधिका मति''रिति न्यायात् । इति प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वखण्डनम् ।।

शारदा

मध्यस्थावगमः । तथा = निगृहीतः । यादृग्व्यवहारनियमः कृतस्तन्मर्यादाऽनेन नोल्लङ्घितेत्यत्र नियमस्य वास्तवत्वे पुनरप्यनिष्टप्रसङ्ग इत्याशङ्क्याह अनेनेति । **अर्थः = तात्पर्यार्थः । प्रतीतिर्वा प्रातीतिकं व्यावहारिकं वा सत्त्वं वाऽपेक्षणीयमित्यत्र नादरः । वस्तुतस्तु प्रातीतिकं व्यावहारिकं वा सत्त्वं सत्त्वेन प्रतीतिमात्रमेवेत्यत्रैव निर्भरः, याचितमण्डनन्यायेनैव प्रातीतिकादेः सत्त्वेन प्रतीतेः । तदवगमस्य = अनेन नियमेनोक्तमनेनेत्याकारावगमस्य । सत्ता पारमार्थिकी।** अभ्युपेयेति । **अवगमस्यासत्यत्वे तस्य जयपराजयव्यवस्थानौपयिकत्व-प्रसङ्गादिति भावः। अवगमविषयकावगमान्तरेणैव निर्वाहसंभवेऽवगमस्य सत्ताभ्युपगमो गौरवपराहतः, अवगमविषयकावगमस्य तत्सत्तावादिनाप्यनुमन्तव्यत्वात् अन्यथा तत्सत्त्वानिर्वाहादित्याशयेनाह** तस्यापीति । तदनुसरणेति । **अवगमान्तरधारापेक्षणेत्यर्थः, अत्रावगमो वृत्तिरूपो न तु चिद्रूपः, अन्यथाऽनवस्थाशङ्काऽनुदयापातात्, न च चिद्रूपावगममादायैव समाधानं कुतो न कृतमिति शङ्क्यम्, तथासति शून्यताया उत्सर्गेण निरूपणस्य चिकीर्षितस्यानुपपत्तेः । न च तादृशनिरूपणनैष्फल्यम्, शून्यतानिरूपणं**

भारती

तस्मात् जिस प्रकार व्यवहार के नियम कथा के लिए स्वीकृत किये गये हैं, उनकी मर्यादा का उल्लङ्घन इसने नहीं किया'' इस प्रकार जिस वादि के वाग्व्यवहार में मध्यस्थ को ज्ञान होगा, उसी वादी का विजय माना जायेगा । और जिस वादि के वाग्व्यवहार में मध्यस्थ को उक्त प्रकार का ज्ञान नहीं हुआ (अपितु व्यवहार नियमों की मर्यादा का उल्लङ्घन इसने किया है इस प्रकार विपरीत ज्ञान हो गया) तो वह वादि पराजित माना जायेगा । जिस वादि के वाग्व्यवहार में मध्यस्थ को निग्रह का ज्ञान होगा, वह वादि निगृहीत माना जायेगा। जिस वादि के वाग्व्यवहार में निग्रह स्थान का ज्ञान नहीं हुआ, वह वादि निगृहीत नहीं माना जायेगा'' इत्यादि नियम ही कथा (शास्त्रचर्चा) के आरम्भ के लिए ग्राह्य है ।

''अनेन नियमेन वक्तव्यम्'' (इस नियम से वक्तव्य है) इसका भी यह तात्पर्य है कि ''इस नियम के अनुसार इस वादि ने वाग्व्यवहार किया है'' इस प्रकार से मध्यस्थ के ज्ञान का विषय वादि को होना चाहिए ।

शारदा

विना तदपवादरूपायास्तत्साक्षितया चैतन्यसिद्धेरनिर्वाहादित्यवधेयम् । इदञ्चापरमवश्यावसेयम्—षडनादिभिन्नज्ञातैकसत्त्ववादे चैतन्यस्य ज्ञानत्वेन तद्घटकत्वे तस्य नित्यत्वेन पदार्थानां समेषां सार्वदिकत्वप्रसङ्गभङ्गाय वृत्त्युपहितचैतन्यस्यैव ज्ञानत्वे वाच्ये वृत्तेरपि वृत्त्यन्तराधीनसत्ताकत्वापत्तौ सम्भवत्यनवस्थाशङ्का, त्रिचतुरज्ञानाधिकज्ञानास्वीकारोऽपि समानः । अन्तिमासत्त्वे पूर्वप्रवाहासत्त्वापत्तिरप्यग्रे एष्टव्यत्वेन वक्ष्यमाणा समाना, असत्त्वं चेदं सांवृतसत्त्वपर्यवसायीति नानौचित्यम्, वृत्तेःस्वयमेव स्वसत्तार्थं चैतन्योपाधित्वं त्वात्माश्रयं नातिक्रामतीति सांवृतसत्त्वमेवोपोद्बलयति एवमिति । **प्राथ्यंते तावतैवैकं स्वतः प्रामाण्यमश्नुते इत्युत्तरार्द्धम्, ज्ञानानां स्वतः प्रामाण्यमित्युत्सर्गः, नहि दोषादिसम्भावनां विना प्रामाण्ये सन्देहो दृष्टचरः, प्रायशश्च प्रमाणान्येव ज्ञानानि, अतएव मूले चतुर्थपरिच्छेदे उत्सर्गाख्यतर्केण प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वं निरूपयिष्यते यत्र तु दूरत्वादिदोषादप्रामाण्यशङ्कासमुन्मेषः, तत्र समीपगमनादिना तथैवार्थप्रतीतौ न प्रामाण्यज्ञानधारापेक्षा, द्वितीयेनैव ज्ञानेन प्रथमज्ञानविशेष्यकाप्रामाण्यकोटिताकसन्देहस्य विधूननात्, तत्रापि दोषसम्भावनायां तु शरणीकरणीयं ज्ञानान्तरम्, एवं यस्य प्रामाण्यमुत्तरज्ञानेन समर्थितम्, तस्य नापोदितं स्वाभाविकं प्रामाण्यम्, अपोदितं तु दोषादिज्ञानेन निश्चिताप्रामाण्यकस्य तत् । तदिदमुक्तमेवमित्यादिना भट्टपादैः। त्रिचतुरज्ञानोत्पत्तौ सत्यामधिकज्ञानोत्पत्तिर्नापेक्ष्यते इत्यर्थः । त्रिचतुरेति अनुभवसिद्धज्ञानसङ्ख्योपलक्षणमात्रं न तु नियमः । प्रकृतेऽपि त्रिचतुरज्ञानेन निर्वहि नानवस्थेति भावः।। इति खण्डनशारदायां प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वखण्डनम् ।।**

राजहंसः

षडनादिभिन्नज्ञातैकसत्त्ववादे इति । ब्रह्मणि दृष्टिसृष्टिस्वीकारे शून्यवादप्रसङ्गस्य जीवेशविभागादौ तदुपगमे च सुषुप्त्यादावप्रतीतत्वेन तस्याविद्यमानतया पुनर्जागरितादौ मुक्तपुनरावृत्त्यादिप्रसङ्गस्य च दुर्वारत्वापाताद् भि न्तम् ।

वेदान्तप्रक्रियाग्रन्थेषु प्रथितो दृष्टिसृष्टिवादक्रमो यस्मै न रोचते, तत्प्रतिबोधनाय तदीयं

भारती

यदि कहें कि अन्ततोगत्वा आपको "अनेन नियमेनोक्तमनेन" इत्याकारक ज्ञान की सत्ता (पारमार्थिक सत्ता) तो माननी पड़ी, तो यह कथन उचित नहीं है, क्योंकि वह ज्ञान भी सत् या असत्, इस प्रकार सत्ता चिन्ता (प्रश्न) होने पर-उस ज्ञान के सत्ताज्ञान का ही हम अनुसरण करेंगे । यदि कहें कि इस प्रकार प्रथम ज्ञान की सत्ताचिन्ता में द्वितीय सत्ताज्ञान पुनः द्वितीयसत्ता ज्ञान की सत्ताचिन्ता में तृतीय सत्ताज्ञान की कल्पना करने में अनवस्था दोष आपातित होगा, तो कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार ज्ञानान्तर की धारा अनुसरण करते रहना हम आवश्यक नहीं मानते । क्योंकि भट्टपाद ने कहा है - त्रिचतुर ज्ञानजन्मनो नन्नाधिका मतिः" (तीन चार ज्ञानों की ही उत्पत्ति का अनुसरण किया जाता है उसके आगे तद्विषयिणी जिज्ञासा नहीं होती ।)

इति प्रमाणाद्यभ्युपगम - कथाङ्गत्वखण्डन-भाषानुवाद ।

राजहंसः

प्रकारान्तरमुदीर्यते, प्रतिभासिकत्वेन प्रसिद्धे प्रपञ्चे तावदस्मदादेर्दृष्टिसृष्टिवादः, व्यावहारिकत्वेन प्रसिद्धे तु भगवतः सत्यसङ्कल्पतया तदीयेक्षणात्मकदृष्टिसमनन्तरमेव सृष्टिरिति तद्दृष्ट्यैव दृष्टिसृष्टिवादः, तदीयसृज्यमानजगदन्तर्गतास्मदादिसंघातदृष्ट्या तु सृष्टिदृष्टिवादः, कतिपयतदीयसृष्ट्यनन्तरमेवास्मदादिदृष्टेरुद्गमात्, तदीयकल्पनोपनीतैव कालशक्तिरिति तद्दृष्ट्या क्षणमात्रेऽपि कालेऽस्मदादेः पूर्वापरीभावस्फूर्त्या व्यावहारिककार्यकारणभावानां युगसहस्राद्यात्मककालानां चोन्मेषः, अत एवास्मदादेः पृथग्जनस्य दृष्ट्या जगति सत्यता, तद्दृष्ट्या तु काल्पनिकत्वमेव, कल्पनयैव स एकमपि क्षणमगणितयुगत्मनाऽगणितयुगानि चैकक्षणात्मना सूचीमात्रांश्च देशाननन्तयोजनात्मनाऽनन्तानि योजनानि च सूचीमात्रात्मना दर्शयति, अतएव तद्दृष्ट्यास्माकं भ्रान्तता, संकल्पानुरूपप्रदर्शनशक्तत्वमेव च तत्र सत्यसङ्कल्पत्वं न तु त्रिकालबाध्यवस्तूद्भावकत्वम्, स्वयमेव हि तस्य ब्रह्मात्मना त्रिकालाबाध्यता, नत्वन्यस्य, तदीयैश्वर्ये च कालत्वव्यापकत्वरूपं नित्यत्वम्, मायिके काले मायिकैश्वर्यस्य कदाप्यसम्भवाभावात्, तत्र कालानवच्छिन्नत्वरूपं नित्यत्वं तु नास्त्यौपनिषदप्रसिद्धरीत्या, वक्तव्यान्तरं त्वस्मिन् विषये वयमवोचाम **सङ्क्षिण दर्शनसर्वस्वे तदीये राजहंसे** च, विस्तरस्य तु नायमवसर इति । निर्विशेषब्रह्मदृष्ट्या तु सर्वथैवाजातवाद इति । तदेवं वादत्रयस्यास्य समुच्चय एव न तु मतभेदेनोपन्यसनीयता । तत्राप्याद्यद्वये दृष्टिभेदेन व्यवस्थितेऽपि पराकृतप्राकृतपरमतिः पुरुषोत्तमः पुरुषोत्तमस्य भगवतो दृष्टिसृष्टि स्वस्यैव पश्यतीत्यव्यवस्थयैव दृष्टिसृष्टिवर्णनं वेदान्तनिबन्धेषु, इममभिप्रायमनवगत्य च तन्निराकरणे प्रयतन्ते पर इति मननशीलैः शीलनीयम् ।

दोषादिसम्भावनामिति । आदिना बाधग्रहो ग्राह्यः ।

इति खण्डनशारदायां प्रमाणाद्यभ्युपगमस्य कथाङ्गत्वखण्डने राजहंसः ।

अथ शून्यतोत्सर्गः

न चान्तिमासत्त्वे पूर्वप्रवाहासत्त्वापत्तिः तथाचावगममादायापि व्यवहरतो न निस्तार इति वाच्यम् । अस्त्वेवं हि, तथापि त्रिचतुरज्ञानकक्षागवेषण-

---

शारदा

ननूत्सृष्टं प्रामाण्यं वस्तुसदिति ज्ञानपरम्परा विनैवावतिष्ठेतेति युज्यते, भवन्मते त्ववगमानां वस्तुसत्त्वानभ्युपगमात् स्वविषयकावगममात्रजीवातुकानां तेषामसत्त्वमेव स्यादवगमपरम्परां विना, न च सैष्टव्या, सुषुप्त्यादिविलोपापातादित्याशङ्क्य निराचष्टे न चेति। असत्त्वे इति । **ज्ञानाविषयत्वेनेति हेतुः** । व्यवहरतः = **व्यवहारमुपपादयतः** । **निस्तार = स्वपक्षसिद्धिः** । अस्त्वेवं हि = **एवमेवास्त्वित्यर्थः** । शून्यतालिङ्गितं सर्वमुत्सर्गेण निरूप्यते। ब्रह्मतत्त्वेऽपवादाय तर्कैः कर्कशतां गतैः ॥ **सांवृतसत्त्ववादे हि क्षणिकानिर्वाच्याया भ्रान्तेरेव संवृतिरूपत्वात् तन्नियतस्य सत्त्वस्य तदभावेऽभावध्रौव्यादिष्टापत्त्यतिरिक्ताया गतेरभावात्, न च शून्यत्वमप्रामाणिकम्, ज्ञेयं विषयो वा देशकालत्वव्यापकीभूता-भावप्रतियोगिताश्रयः सत्त्वादिनाऽनिर्वाच्यत्वात् मरीच्युदकवदित्यनुमानस्य मानत्वात् । ज्ञेयत्वावच्छेदेन च साध्यमनुमित्सितम्, न चात्मनि बाधः, त्रिकालाबाध्यत्वस्यासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वेन सत्त्वादिना तस्याप्यनिर्वाच्यत्वात्, को हि लक्षणप्रमाणाभ्यामात्मानात्मनोरनिर्वाच्यत्वे विशेषः, येनैकस्य सत्त्वमपरस्य चासत्त्वं स्यात्, अन्यथाकरिष्यमाणस्य लक्षणप्रमाणनिर्वचनखण्डन-स्योन्मत्तप्रलापत्वापत्तेः । एतेन निरधिष्ठानकबाधायोग इत्यपि निरस्तम् आत्मनि निरधिष्ठानकबाधस्य प्रमाणपथप्राप्तत्वात् । न चासर्वज्ञेन ग्रहीतुमशक्यत्वं नानि-र्वाच्यत्वप्रयोजकम्, सकलबाधकप्रमाविरहरूपयोग्याताया:शब्दमणौ तथैव निरस्तत्वात्**

भारती

अथ शून्यतोत्सर्ग

यहाँ ज्ञातव्य है कि - "भूतं प्रेतेन योजयेत्" अथवा "कण्टकेन कण्टकोद्धार" न्याय के अनुसार प्रमाणप्रमेयादि जागतिक षोडश पदार्थों में तार्किकाभिमत सत्पक्ष के निराकरण हेतु उत्सर्गेण शून्यवाद का आरम्भ किया जाता है । उत्सर्ग का तात्पर्य है कि यावत्पर्यन्त वेदान्त के द्वारा बाधक उपस्थित नहीं किया जा रहा है तावत्पर्यन्त शून्यवाद का सिद्धान्त ही स्थिर सा दिखाई देगा । अपवाद के आते ही शून्यता का उत्सर्जन त्याग कर दिया जायेगा ।

व्यवहार की उपपत्ति के लिए प्रमाणादि पदार्थों की पारमार्थिकसत्ता माननी चाहिए यह तार्किक मत है; इस पर वेदान्ती का कहना है कि प्रमाणादि पदार्थों के सत्ता ज्ञान से ही व्यवहार की उपपत्ति हो जाती है तदर्थ प्रमाणादि पदार्थों की पारमार्थिक सत्ता मानने की आवश्यकता नहीं है अन्ततोगत्त्वा वह ज्ञान भी वृत्ति रूप ज्ञान होने से उसकी भी पारमार्थिक सत्ता नहीं है, उसका व्यवहार भी तद्विषयक सत्ताज्ञान से ही सम्भव है ।

ज्ञान एवं ज्ञानविषय प्रमाणादि दोनों की ही पारमार्थिक सत्ता नहीं है अपितु दोनों ही सांवृत सत् है यह शून्यवादी का मत है अत: यहाँ खण्डन पक्ष (उत्तरपक्ष) शून्यवाद को प्राप्त है और समर्थन पक्ष (पूर्वपक्ष) तार्किक का है ।

मात्रविश्रान्तेन विचारेण ततः परमननुसरणरमणीयेनैव च समयं बद्ध्वा कथायां मिथः सम्प्रतिपत्त्या प्रवर्तनात्, अन्यथा प्रमाणादिसत्त्वाभ्युपगमेऽपि ज्ञानानवस्थाया दुष्परिहरत्वात् । न च

शारदा

विषयस्यानिर्वाच्यत्वे च निर्विषयकज्ञानाभावात् ज्ञानस्य विषयसमानयोगक्षेमत्वान्न तत्रापि बाधः, न चैवं खपुष्पसमत्वं तथाच ''न सन्नासन्न सदसदिति'' ग्रन्थविरोधः, प्रतीतिविशेषविषयत्वेन कालसम्बन्धित्वस्यापि साधनात्, निरुक्तसाध्ये एव तस्य विशेषणीयत्वाद्वा । न चैवं सदसत्त्वं, त्रिकालाबाध्यत्वाप्रवेशात् । नच कालसम्बन्धित्वेनासद्विलक्षणत्वे तादृशप्रतियोगित्वेन च सद्विलक्षणत्वे लब्धे ''नचानुभयतत्त्वक''मित्युक्तिविरोधः, कालसम्बन्धित्वादिनापि तात्त्विकत्वेन निर्वचनानर्हत्वात्, न च दृष्टान्तासिद्धिः, अन्यथाख्यात्यादेरप्रामाणिकताया अन्यत्र निवेदितत्वेन सांवृतसत एव मरीच्युदकस्य प्रतीत्यनुरोधादुपगन्तव्यत्वेन तत्र निरुक्तप्रतियोगित्वस्यावश्यकत्वात् अन्यथा तस्य पिपासोपशमकत्वापत्तेः । असदेव जलमभादित्यनुभवबलाच्च निरुक्तासत्त्वं तत्रोपगन्तव्यम्। किञ्च शून्यताया पुरुषार्थत्वादपि स्वीकार आवश्यकः तथाहि तदभावे स्वसत्त्वमनुमन्यमानानां प्राणिनां सुखादीच्छया कर्मणि प्रवृत्त्यावश्यकत्वात् जन्मादिसन्तानापत्तौ मोक्षानुपपत्तेः, शून्यत्वनिश्चये तु न सुखादीच्छेति प्रवृत्त्यभावे मोक्षसम्भवः, तदुक्तं सौगतैः— ''सर्वेषामपि तीर्थ्यानामहङ्कारनिवर्तनात् । मुक्तिरिष्टात्मसत्त्वे च नाहङ्कारो निवर्तते । अद्वितीयशिवद्वारमतो नैरात्म्यदर्शनमिति'' ।। ''तथाचावगममादायापि व्यवहरतो न निस्तार'' इति यदुक्तं तत्राह तथापीति । **वस्तुतः पूर्वप्रवाहासत्त्वेऽपीत्यर्थः । त्रिचतुरज्ञानानां कक्षा = परम्परा तस्या गवेषणमात्रेण = अभ्युपगमनीयत्वेन साधनमात्रेण विश्रान्तेन = उचितसमाप्तिकेन विचारेण 'व्यवहारोऽवगममात्रेण निर्वाह्यो नवे'त्यतद्विषयकेण, अधीनत्वं बद्ध्वेत्यत्र**

भारती

प्रश्न—जिस अन्तिम ज्ञान का साधक ज्ञानान्तर नहीं होगा, उस अन्तिम ज्ञान के असत् होने पर अन्तिमज्ञान के अधीन पूर्व प्रवाह भी असत् ही हो जायेगा । ऐसी स्थिति में ज्ञान मानकर भी व्यवहार की उपपत्ति आप नहीं कर सकते ।

खण्डन—पूर्व प्रवाह को असत् ही मान लिया जाय । (यदि कहें कि—पूर्व प्रवाह के असत् होने पर अवगम से भी व्यवहार की उपपत्ति कैसे होगी तो इसका समाधान करते हैं— तथापि (वस्तुतः पूर्व प्रवाह के असत् होने पर भी) तीन-चार ज्ञानों की परस्पर मानने मात्र से अबाधितया सम्पन्न एवं त्रिचतुर ज्ञान से अधिक ज्ञान के न मानने से अनवस्था आदि दोषों से शून्य विचारों के द्वारा समयबन्धन कर तत्त्वनिर्णयेच्छु वादिप्रतिवादिमध्यस्थादि कथकों की सर्वसम्मति से ही कथा (वाग्व्यवहार) की प्रवृत्ति की जा सकती है । यदि पूर्वोक्तरीत्या विचार पूर्वक तादृश समयबन्ध के द्वारा कथारम्भ स्वीकार न करें तो प्रमाणादि के सत्त्वाभ्युपगम पक्ष में भी ज्ञानानवस्था प्रसक्त होगी ।

वाच्यं मत्पक्षे स्वरूपसता ज्ञानेन व्यवहारस्य चरितार्थयितुं शक्यत्वात् तज्ज्ञानपरम्परानुसरणमुचितम्, नत्वेवं त्वत्पक्षे स्वरूपसता ज्ञानेन व्यवहारस्य चरितार्थता, ज्ञाने स्वरूपसत्त्वाङ्गीकारप्रसङ्गादिति; स्वरूपसत्त्वमादायापि परिहरतोऽनवस्थाप्रसङ्गस्य स्वप्रकाशप्रस्तावे वक्तव्यत्वात्। यथा च त्वत्पक्षे स्वरूपसत्त्वाविशेषेऽपि विज्ञानस्वरूपसत्तैव परं व्यवहारोपपादिका, न घटादिसत्ता, एवमेवासत्त्वाविशेषेऽपि

शारदा

बन्धनान्वयि तृतीयार्थः । ततः परमननुसरणरमणीयेन = **त्रिचतुरज्ञानाधिकज्ञानानामभ्युपगमनीयत्वेन साधनं विनैव अनवस्थानापादकत्वरूपरमणीयतावता समयं बद्ध्वा प्रवर्तनादित्यन्वयः**, कथायां प्रवर्तनात् = **प्रवृत्त्यौचित्यात्**, मिथःसम्प्रतिपत्त्या = **ऐकमत्येन तत्त्वनिर्णयादीच्छुतयेति यावत्। त्रिचतुरज्ञानैरेव व्यवहारनिर्वाह इति विचारपूर्वकमनुमत्य समयबन्धपुरस्सर कथारम्भणीयेति भावः । यदि चासतोऽसाधकत्वमभिमत्य ज्ञानानवस्था भवताऽऽपाद्यते तदा मयाऽपि त्वन्मते साऽऽपादयितुं शक्येति त्रिचतुरज्ञानाधिकज्ञानाभ्युपगमसाधनफलो विचारोऽनवस्थापादक एव स्यादित्याह** अन्यथेति । **त्रिचतुरज्ञानाधिकज्ञानाभ्युपगमसाधने इत्यर्थः** । अनवस्थाया इति । **प्रमाणादिज्ञानेन तत्सत्त्वं ज्ञानज्ञानेन च ज्ञानसत्त्वमित्यनवस्थाया इत्यर्थः** । न च वाच्यमिति । **प्रसङ्गादित्यन्तेन सम्बन्धः । मत्पक्षे = स्वरूपसत्त्वोपगन्तृपक्षे** । स्वरूपसता = **अज्ञातेन चरितार्थयितुं = उपपादयितुं। चरितार्थता = सम्भवः** । वक्तव्यत्वादिति । **तद्विषयकप्रमाणं विनैव तत्सत्त्वोपगमेऽतिप्रसङ्गादिति भावः।**

अथासत्त्ववादे बाधकं निराचिकीर्षुणाऽसतः साधकत्वं सतश्चासाधकत्वमुपपादनीयम् तत्र तावदवगमस्यावगमान्तरप्रवाहानभ्युपगमादसत्त्वेऽपि साधकतामुपपादयति यथेत्यादिना। स्वरूपेति । **ज्ञानज्ञेययोरित्यादिः, परं = केवलं, व्यवहारस्याभिलापादिरूपस्य जनिका, घटविषयकव्यवहारं प्रति घटविषयकज्ञानस्य जनकत्वात् घटे विषयितासम्बन्धावच्छिन्नं**

भारती

प्रश्न – मेरे अर्थात् स्वरूप सत्त्व स्वीकर्ता (तार्किक) के पक्ष में ज्ञान की स्वरूप सत्ता मानी जाती है । उस स्वरूप सत् ज्ञान के द्वारा ही व्यवहार की उपपत्ति की जा सकती है । तदर्थ ज्ञान परम्परा मानना आवश्यक नहीं है अतः अनवस्था दोष प्राप्त न होगा, किन्तु आप (खाण्डनिक) के पक्ष में स्वरूप सत् ज्ञान के द्वारा व्यवहार सम्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वरूपसत् ज्ञान के द्वारा व्यवहारोपपत्ति मानने पर—ज्ञान की स्वरूप सत्ता भी माननी होगी (जो सिद्धान्त विरुद्ध होने से आप मान नहीं सकते ।)

समाधान – ज्ञान की स्वरूप सत्ता मानकर अनवस्था दोष का परिहार करने वाले के मत में भी अनवस्था दोष प्राप्त होता ही है, उसका परिहार करना सम्भव नहीं है, यह स्वप्रकाश प्रकरण में ''यतस्तस्यां प्रमाणानुपन्यासे स्वरूपसत्तापि कृतः''इत्यादि वक्ष्यमाण है ।

जैसे आप (तार्किक) के मत में ज्ञान ज्ञेय दोनों के स्वरूप सत् होने पर भी केवल स्वरूपसत् ज्ञानके द्वारा ही घटादि विषयक व्यवहार की उपपत्ति मानी जाती है न कि स्वरूपसत्

ज्ञानमेवासद्व्यवहारोपपादकं नान्यत् । असच्चोपपादकञ्चेति व्याहतमिति चेन्न; सदुपपादकमिति कुतो न व्याहतम्, न हि सदुपपादकमसन्नेति क्वचिदावयोः सिद्धम् । ननु तदसत्त्वाविशेषात्कार्यस्यान्यदापि जन्मप्रसङ्गः,

शारदा

जनकतावच्छेदकत्वमेव, नतु जनकत्वम्, विशिष्टे कारणताग्राहकमानेनासत्येव बाधके विशेषणे कारणताग्रहात् व्यवहारस्य त्वतीतादिघटविषयकस्यापि सत्त्वेनातीतादिघटस्य तत्र जनकत्वबाधादित्याशयेनैवकारः । नान्यदिति । **ज्ञानं यदि परमार्थसन्न स्यात् व्यवहारजनकं न स्यादिति तवापादनं ज्ञानं यद्यसन्न स्यात् व्यवहारजनकं न स्यादित्यापादनेन तुल्यम्, तव मतेऽसतीव मन्मते सत्यपि कारणत्वस्यादृष्टचरत्वादि भावः । व्याहतम् = अनुपपन्नम्, कारणताया नियतप्राक्सत्त्वघटितत्वात् सत्वव्याप्यत्वात् सत्त्वं विना नावस्थानसम्भवः, यद्यपि व्यवहारकालाबाध्यत्वापेक्षया त्रिकालाबाध्यत्वरूपपरमार्थसत्त्वस्य कारणताघटकत्वे गौरवम्, त्रैकाल्यघटितत्वेन दुर्ग्रहत्वञ्च, निष्प्रयोजनत्वञ्च, तथापि देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपासत्त्ववति व्यवहारकालाबाध्यत्वस्याप्यसम्भव एवेत्यभिमानः । प्रतिबन्धापरिहरति** सदिति । कुत इति **कारणतायां सांवृतमात्रवृत्तौ परमार्थसत्त्वघटितत्वस्याप्रामाणिकत्वेन परमार्थसति कारणत्वानुपपत्तेरित्याशयः। क्वचित् कथायाम् । तदिति। कारणेत्यर्थः। अन्यदा = कारणध्वंसादिसमये। घटानुत्पत्तिक्षणो यदि घटसामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणः स्याद्घटोत्पत्तिमान् स्यात् घटोत्पत्तिक्षणवदित्यापादनम्। निरुक्ताभावप्रतियोगिवस्तुनो यदि कदापि सत्त्वं तर्हि सर्वतैवेति न घटानुत्पत्तिक्षणे। घटसामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वस्यघटसामग्र्यधिकरणत्वघटितस्याप्रसिद्धिः, तदव्यवहितोत्तरत्वस्य तदधिकरण क्षणध्वंसाधिकरण क्षणध्वंसाधिकरणाकृत्तित्वे सति तदधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षण**

भारती

घटादि के द्वारा, उसी प्रकार मेरे (खाण्डनिक) मत में भी ज्ञान ज्ञेय दोनों के समान रूप से असत् होने पर भी असत् विज्ञान ही घटादि विषयक व्यवहार का उपपादक माना जाता है, न कि असत् घटादि । यदि कहें कि असत् को उपपादक कहना व्याहत है। तो हम भी कहेंगे- सत् को उपपादक कहना व्याहत क्यों नहीं है क्योंकि "सत् ही उपपादक होता है और असत् उपपादक नहीं होता" यह हम दोनों के मध्य सिद्ध नहीं हुआ है। कारणता सांवृतमात्र वृत्ति मानने से परमार्थ सत्वघटितत्व अप्रमाणिक है तथा च परमार्थ सत् में कारणता अनुपपन्न है।

(तात्पर्य यह है उपपादकता घटक जनकता के नियत प्राक्सत्त्व घटित होने से असत् उपपादक नहीं हो सकता, इस अभिप्राय से पूर्वपक्षी (तार्किक) "ज्ञानं यदि परमार्थसन्नस्यात् व्यवहारजनकं स्यात् " ऐसा आपादन कर विपर्ययपर्यवसान बलात् परमार्थसत्त्व सिद्ध करना चाहता है किन्तु खाण्डनिक के द्वारा किये गये - "ज्ञानं यदि असन्न स्यात् व्यवहारोपपादकं न स्यात् " इस आपादन से पूर्वोक्त आपादन निरस्त होने से सत्त्व सिद्ध नहीं किया जा सकता है। क्योंकि दोनों के मध्य में एकतर तो सिद्ध हुआ नहीं ।

प्रश्न- असत् कारण के सर्वदा विद्यमान होने से कार्योत्पत्ति (घटाद्युत्पत्ति) अनन्तर के अर्थात् कारणध्वंसादि काल में भी पुनः उसी कार्य की उत्पत्ति होने चाहिए (क्योंकि कारण विद्यमान है।)

न, कार्यस्याद्यसत्ताक्षणे इवान्यदापि सामग्र्यसत्त्वाविशेषात् तवापि किन्नान्यदा कार्यजन्म। अथ न मम तदानीन्तनं सामग्र्यसत्त्वं

शारदा

वृत्तित्वरूपत्वात्। शक्यं ह्यापादयितुं यदि दण्डादि निरुक्ताभावप्रतियोगि स्यात्, अकारणकं स्यात् यदि दण्डादिकमकारणकं स्यात्, सार्वदिकं स्यात् खपुष्पन्तु पक्षसमम्, प्रागभावस्त्वप्रामाणिक इति न तत्र व्यभिचारः। अत्रेदं चिन्त्यम् देशत्वकालत्वव्यापकी-भूताभावप्रतियोगित्वमात्रं नासत्त्वम् अपितु कालसम्बन्धघटितम् "न सन्नासन्न सदसन्न चानुभयतत्त्वकम्, विमतं तर्कपीड्यत्वान्मरीचिषु यथोदकमिति" माध्यमिकमतप्रतिपादककारिकाव्याख्यानावसरे प्रामाणिकैरसत्त्वाभावे कालसम्बन्धस्यैव हेतुताया अभिहितत्वात् तस्य माध्यमिकासम्मतत्वे हेतुत्वासङ्गतेः। स च कालसम्बन्धोऽनुभवमनतिक्रम्यैवाभ्युपगन्तव्य इति न सार्वदिकत्वमिति सामग्र्यधिकरणक्षणोऽपि न सर्वः, नवा घटानुत्पत्तिक्षणः सामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षण इति क्वापादनसम्भवः, उक्तप्रतियोगित्वस्य सार्वदिकत्वेन धर्मिणः सार्वदिकत्वापादने तु नित्यसमजात्यापत्तेः, "धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः। धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गो नित्यसमो भवेदि" त्युक्तेरिति। इदमुपलक्षणम् विज्ञानं वा दण्डादिकं वा यदि निरुक्तप्रतियोगितावत्स्यात् कालासम्बन्धि स्यात्, यदि कालासम्बन्धि स्यादजनकं स्यात्, तथाचासतो विज्ञानस्य व्यवहारोपपादकत्वमित्ययुक्तमिति। आद्येति। **घटद्वितीयक्षणो**

राजहंसः

भावाभावयोर्विरोधे तादृशाभावप्रतियोगिनो दण्डादेर्न कादाचित्कत्वमपि सम्भवति, अत एवेदमुपलक्षणमित्यादिनाऽनुपदं तर्कान्तरं वक्ष्यति, तयोरविरोधे तु सार्वदिकत्वमपि न वार्यत इति तत्त्वम्।

खपुष्पं तु पक्षसममिति। खपुष्पे सार्वदिकत्वाभ्युपगमेऽनुभवविरोध एव, स च दण्डादौ तादृशप्रतियोगित्वोपगमेऽपि तुल्यः, तदवधीरणे च खपुष्पेऽपि सार्वदिकत्वमुपेयतामिति कथं त्वया व्यभिचारः शक्य उद्भावयितुमिति भावः।

प्रागभावस्त्वप्रामाणिक इति। वस्तुगतिर्गदितेयम्, तस्य प्रामाणिकत्वेऽपि भावत्वस्यापादककोटौ प्रवेशेनैव व्यभिचारोद्धारात्।

भारती

समाधान - जैसे आपको घट के आद्यसत्ताक्षण (घटोत्पत्तिक्षण) में सामग्री की असत्ता माननी पड़ती है और सामग्री के असत्त्व होने पर भी उस क्षण में घटोत्पत्ति होती है उसी प्रकार घट के द्वितीयादिक्षण में भी सामग्री की असत्ता होने पर भी तुम्हारे मत में भी कार्य (घट) की उत्पत्ति क्यों नहीं होती अर्थात् आप के मत में घटद्वितीयादिक्षण में पुनः घटोत्पत्ति होनी चाहिए। (इस प्रकार सामग्री के असत् पक्ष को लेकर दी गई आपत्ति मेरे समान आपके मत में आती है। इस अनुपपत्तिसाम्य को ही प्रतिबन्दी कहते हैं।) (यहाँ- "घटद्वितीयक्षण यदि घट सामग्री का अव्यवहितोत्तरक्षण हो तो घटोत्पत्तिमान् होना चाहिए" इस आपादन के बल पर घटद्वितीयक्षण घटोत्पत्तिमान् नहीं है, अतः घट सामग्री का अव्यवहितोत्तर क्षण भी नहीं है इस प्रकार विपर्यय में पर्यवसान होने पर घटोत्पत्तिक्षण में तार्किक को भी घट सामग्री की असत्ता ही माननी पड़ती है।)

तदानीन्तनस्य कार्यजन्मनो नियामकम् , किन्तु ततः प्राक्सामग्रीसत्त्वं तथा दर्शनात्। तर्हि ममापि कालान्तरस्थमपि तदसत्त्वं तदातनकार्यजन्मनो नियामकम्, तथादर्शनादेव ।

मम तु तदव्यवहितोत्तरत्वं तदा कार्यजन्मनो नियामकमिति चेन्न, समसमयत्वादागन्तुकत्वाच्चाविशेषेण नियम्यनियामकव्यवस्थानुपपत्तेः।

शारदा

यदि घटसामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणः स्यात् घटोत्पत्तिमान् स्यादित्यापत्तिभियाऽऽद्यक्षणे घटसामग्र्यभावो वाच्यः, स च प्रागभावाभावप्रयुक्तो वा घटरूपप्रतिबन्धकसत्त्वप्रयुक्तो वेत्यन्यदेतत् । तथाचाद्यक्षणे इव द्वितीयादिक्षणेऽपि घटसामग्र्यभावोऽन्यथानुपपन्नो घटोत्पत्तिमाक्षिपेत् । अन्यथाऽऽद्योऽपि क्षणो घटोत्पत्तिमान्न स्यादिति भावः। नियामकं = **व्याप्यम् ।** तथादर्शनादिति। **यद्यपि सामग्र्या अतीन्द्रियत्वात् तदव्यवहितोत्तरक्षणे कार्योत्पत्तिरिति न प्रत्यक्षगम्यम् क्षणोत्पत्त्योरप्यतीन्द्रियत्वाच्च तथापि घटसामग्र्यभावस्य घटप्रयोजकत्वेऽतिप्रसङ्गात् घटोत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षणे घटसामग्रीसत्त्वं कल्प्यते, एवं च द्वितीयादिक्षणस्य घटसामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वाभावान्न घटोत्पत्तिमत्त्वापत्तिः घटसामग्र्या एव स्वाव्यवहितोत्तरक्षणावच्छिन्नघटोत्पत्तिव्याप्यत्वं न तु घटसामग्र्यभावस्येति भावः ।** तदसत्त्वं **= सामग्र्यसत्त्वं** कालान्तरस्थमपि **= सार्वदिकमपि कार्याव्यवहितपूर्वक्षणवृत्ति सदेव स्वाव्यवहितोत्तरक्षणवृत्तिकार्योत्पत्तिव्याप्यम् ।** तथादर्शनादेव **= फलबलेन तथा कल्पनादेव। एवं चानुत्पत्तिक्षणेषूत्पत्त्यापत्तिर्न युज्यते ।**

तदव्यवहितेति। **सामग्र्यव्यवहितेत्यर्थः।** तदा **= सामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणे।** नियामकं **= व्याप्यम् । यदि पूर्वक्षणावच्छिन्नसामग्र्याः कार्योत्पत्तिनियामकत्वं मयोच्येत तदा तथैव त्वयापि पूर्वक्षणावच्छिन्नस्य सामग्र्यसत्त्वस्य तन्नियामकत्वं परिकल्प्यातिप्रसङ्गो निवार्येत, मया सामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणत्वस्य कार्योत्पत्तिव्याप्यत्वोपगमे तु तवातिप्रसङ्गस्तदवस्थः, असत्सामग्र्यव्यहितोत्तरक्षणत्वस्य सर्वत्र विद्यमानत्वात् , सत्सामग्र्यास्तु क्षणिकत्वान्नातिप्रसङ्ग इति भावः। अत्र यद्यपि त्वयोक्तरीत्या कल्पनेऽपि मया पूर्वक्षणावच्छिन्नस्य सामग्र्यसत्त्वस्य कार्योत्पादप्रयोजकत्वोपगमे बाधकाभावः , ममकल्पनस्य त्वत्कल्पनाननुरोधित्वात्**

भारती

प्रश्न - हम (तार्किक) घटोत्पत्ति क्षण में रहने वाले सामग्री के असत्त्व अर्थात् असत् सामग्री को उस क्षण में जायमान घटोत्पत्ति के प्रति कारण नहीं मानते, अपितु घटोत्पत्ति के अव्यवहित प्राक्क्षण में सामग्री की सत्ता को अर्थात् सत् सामग्री को उस घटोत्पत्ति के प्रति कारण मानते हैं। क्योंकि प्राक् कालवर्ति सामग्री के द्वारा ही घटोत्पत्ति देखी जाती है।

समाधान- तभी तो मेरे (खाण्डनिक) मत में असत् सामग्री के सार्वदिक होते हुए भी कालान्तरस्थ अर्थात् कार्याव्यवहित प्राक्कालवर्ति सामग्री की असता ही अर्थात् असत् सामग्री को ही घटोत्पत्तिक्षण में जायमान घटाद्युत्पत्ति के प्रति नियामक (व्याप्य = कारण) मानेंगे। क्योंकि कार्याव्यवहित प्राक्कालवर्ति सामग्री के असत्त्व (असत् सामग्री) के द्वारा ही घटोत्पत्ति

शारदा

असत्सामग्र्या अपि पूर्वक्षणावच्छिन्नाया एव फलबलात्कार्योत्पादप्रयोजकत्वोपगमसम्भवाच्च, किञ्च सामग्र्याः क्षणिकत्वोपगमे परिशुद्धिप्रकाशोक्तरीत्याऽपसिद्धान्तापातात् , अर्थक्रियोपधायकस्य क्षणिकत्वेतन्न्यायेनान्यत्रापि क्षणिकत्वापत्तेः, सामग्र्यन्तःपातिघटादेरपि कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छिन्नत्वेनार्थक्रियोपधायकत्वात् अतएवान्तिमशब्दस्यापि क्षणिकत्वानभ्युपगमो बौद्धाधिकारटिप्पण्यामुक्तः, स्थिरत्वे तु सामग्र्याः पूर्वक्षणावच्छिन्नाया एव कार्योत्पादप्रयोजकत्वोपगमस्यातिप्रसङ्गवारणायावश्यकत्वात् न मन्मताद्विशेषः, दुर्वचत्वाच्च सामग्र्या असत्त्वमेवोपगन्तुं युक्तम् , तथाहि– प्रागभावेतरकादाचित्कयावत्कारण-प्रागभावानाधारः कार्यप्रागभावाधारः क्षणः सामग्रीति न युक्तम्, एकक्षणवर्तिनी सामग्रीति-व्यवहारापलापापातात्, प्रागभावत्वादेर्दुर्वचतायाश्चतुर्थपरिच्छेदशारदायां सविस्तरमुपपा-दितत्वाच्च, नाप्येकाधिकरणे एक क्षणावच्छिन्नवृत्तिताकः कारणतावच्छेदकावच्छिन्नस्तोमः सामग्री, स्वर्गादिसामग्र्यामव्याप्तेः, स्वर्गकामो यजेतेति श्रुत्या यागस्यापि स्वर्गकारणत्वबोधनात् तस्य च ध्वस्तत्वेन स्वर्गाव्यवहितप्राक्क्षणेऽवृत्तेः। न च व्यापारद्वारा तस्यापि तदा वृत्तिः, कुलाले मृते तस्य स्वजन्यघटवत्त्वसम्बन्धेन भूतलवृत्तिमत्त्वेनाप्रतीतेः। स्वस्वव्यापारान्यतर-निष्ठनियतपूर्ववर्तितावच्छेदकावच्छिन्नस्तोमोक्तावपि, अन्यथासिद्ध्यभावकूटस्यापि निवेश्यत्वेन दुर्ज्ञेयत्वम् , किञ्च यथाश्रुते एकत्वस्याव्यावर्तकत्वेन तत्कारणाधिकरणक्षणवृत्तित्वविशिष्टापर-कारणेत्यादिरीत्या निवेशे विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहेणैककार्यस्याप्यनेकसामग्री-कत्वापत्तिस्तत्तादिघटितत्वेनाननुगमश्चेत्यादि वक्तुं शक्यते तथापि समाधिसौकर्यादाह समेति। **सामग्र्य-व्यवहितोत्तरक्षणत्वोत्पत्त्योरेककालीनत्वादित्यर्थः। यद्यप्येककालीनयोरपि रसरूपयोर्व्याप्य-व्यापकभावो दृष्टस्तथापि ''इदमस्मान्नियतप्राक्सदिदमस्मान्नियतोत्तरसदिति'' प्रतीतिसाक्षिक एव**

राजहंसः

कादाचित्कयावत्कारणेति। न च कार्योत्पत्तेः पुरैव कारणविशेषध्वंसे तत्क्षणेऽतिव्याप्तिः, कारणत्वं हि नेह स्वरूपयोग्यत्वं प्रविष्टम्, तस्य भाव्यनन्तव्यक्तिगत्वेन सृष्टौ यावत्कारणप्रागभावानाधार समयस्यैवाप्रसिद्ध्यापातात् अपि तु स्वाव्यवहितपूर्वत्वसम्बन्धेन फलविशिष्टत्वम् , उक्तकारणविशेष-ध्वंसस्थले तु फलस्यैवाप्रसिद्ध्या तद्विशिष्टत्वं दूरोत्सारितमिति।

व्यवहारापलापापातादिति । अत्र दूषणान्तराण्यपि क्रिययाऽयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धित्वरूपकरणत्वखण्डनशारदायामनुसन्धेयानि । **उपपादितत्वाच्चेति** । उपपादने बौद्धं भूतत्वं विवक्षित्वेदम् । किञ्चेयं पङ्क्तिश्चचुर्थपरिच्छेदटीकोपनिबन्धनानन्तरमिह योजिता ।

अनेकसामग्रीकत्वापत्तिरिति। ननु दर्शनसर्वस्वे विज्ञानवादे त्वदुदितानुभविकरीत्या विशेषणविशेष्यभावकामचारप्रयुक्तविलक्षणसमुदायव्यवहारे बुद्धावेव कश्चिद्विशेषो न तु विषये,

भारती

क्षण में घटोत्पत्ति देखी जाती है ।

प्रश्न– हम (तार्किक) घटोत्पत्तिक्षण में वर्तमान घटसामग्र्यव्यवहितोत्तरत्व को कार्य (घट) की उत्पत्ति के प्रति नियामक (कारण) मानते हैं।

समाधान – आप ऐसा नहीं मान सकते, क्योंकि घट सामग्री-अव्यवहितोत्तरक्षणत्व एवं घटोत्पत्ति दोनों के एक कालीन होने से उन दोनों का नियम्यनियामकभाव (कार्यकारणभाव)

तस्मादन्यदास्थाया एव सामग्र्यास्तदा कार्यजन्मनियमोऽभ्युपेयः, तथा दर्शनादित्येव वाच्यम्, तथा च समः समाधिः। तथापि

शारदा

नियम्यनियामकभावः कार्यकारणभावपदाभिषिक्तः प्रकृतविचारगोचरस्त्वया क्वचिद्वाच्य इत्याशयः। व्याप्यव्यापकभावसाधारणं दूषणमाह आगन्तुकत्वाच्चेति। **अव्यवस्थितत्वादित्यर्थः। सामाग्र्यव्यवहितोत्तरत्वं कार्याद्यक्षणे एव नान्यत्रेत्यत्र व्यवस्थापकान्तरोक्तावनवस्था व्यवस्था अप्रामाणिकत्वमिति यावत्** । अविशेषेण = **असमासमयत्वव्यवस्थितत्वाभ्यां नियम्यनियामकभावप्रयोजकरूपाभ्यां शून्यत्वेन।** नियम्यनियामकव्यवस्था = **नियम्यनियामकभावप्रमा ।**

अन्यदास्थायाः = **पूर्वक्षणावच्छिन्नायाः।** तदा = **अव्यवहितोत्तरक्षणे।** सम इति। **पूर्वक्षणावच्छिन्नसामग्र्यसत्त्वस्य कार्योत्पादप्रयोजकताया ममापि सम्भवादिति भावः।**

राजहंसः

तावन्त एव हि पदार्थाः स्वतन्त्रप्रतिपत्तिसमर्पितेन विलक्षणविज्ञानमात्रप्राणेन विशेषणविशेष्यभावेन भूषिताः, तथा च सामग्रीत्वानां बुद्धिविशेषात्मकतया नानात्वेऽपि सामग्र्येकैवेति चेन्न, बहवो हि पदार्थाः कथमेकतां गता इति सामग्र्यपि विलक्षणधीरेवेति तुल्यम् । किञ्च विषयतया बुद्धिविशेषो वा तद्विषयत्वमेव वा यदि समुदायत्वम् , तदा विषयात्मकसमुदायस्य ताद्रूप्ये तदपि कथमन्यादृग्जायते। विशेषणविशेष्यभावरूपविषयभेदादिति चेदेवं तर्हि तद्विशिष्टरूपेण समुदायस्यापि भेद एव, अभेदस्याप्युपगमे च विरोधः, एकतरमिथ्यात्वे चापसिद्धान्त इत्यादिकं तत्र तत्र शारदायां मृग्यमित्याशयेनाग्रे आदिपदम् ।

व्यवस्थापकान्तरोक्तावनवस्थेति। कार्यतत्सामग्र्योः कार्यकारणभावातिरिक्तव्यवस्थापकमत्र ग्राह्यम् , कार्यकारणभावस्य व्यवस्थापकत्वे तु 'तस्मादन्यदास्थाया' इति मूले वक्ष्यमाणार्थे पर्यवसानम् । यद्यपि कार्यकारणभावेऽपि सम्भवत्यनवस्था, तथापि दूषणतया न प्रक्रियादशायां तदादरः, अपि तु मुख्यसिद्धान्तदशायाम् , अतएव स्वप्रकाशप्रस्तावे घटं सामग्रीपरम्पराविच्छेदरहितं वक्ष्यति, एवञ्चानवस्थयेह प्रत्यवस्थाय पुनरनवस्थापराहतोपगमो मूलकृतोऽनुचितः सन्दर्भासङ्गतेरिति न शङ्कनीयम् । एवञ्च सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वस्य कार्योत्पत्तेश्च व्याप्यव्यापकभावः कार्यतत्सामग्रीगतेन व्याप्यव्यापकभावेन प्रयुक्ततयाऽऽगन्तुको न तु स्वाभाविक इत्यागन्तुकत्वं स्वभावेनाव्यवस्थितत्वपरतया व्याख्यातम्, कार्यकारणभावरूपप्रयोजकेनाऽऽनीतं चेदिह व्यवस्थितत्वं तदा कार्यकारणभाव एवासमसमयत्वनियत इहोपास्यतामित्यवेत्य तस्मादित्यादि वक्ष्यति। अन्यदा तिष्ठतीत्यर्थे सुपिस्थ इति कप्रत्यये टाबित्याशयेन व्याचष्टे अन्यदास्थायाः पूर्वक्षणावच्छिन्नाया इति। अन्यस्मिन्नास्था यस्येति व्युत्पत्त्या 'अन्यस्य दुगाशी' रित्यादिना दुगागने साधुता तु नादर्तव्या, आस्थाशब्दस्य स्वीकाराद्यर्थकस्यात्राविवक्षितत्वात् ।

भारती

ही नहीं हो सकता। (इदम् अस्मात् नियतप्राक् सत् - इदम् अस्मात् नियतोत्तरसत् '' एतादृश प्रतीतिसाक्षिक ही नियम्यनियामकभाव (कार्यकारणभाव) देखा जाता है । प्रकृत में कार्य कारण उभय के एककालीन होने से उक्त प्रतीति के विषय न होने से कार्यकारणभाव सम्भव नहीं है यह भाव है।) दूसरी बात यह है कि सामग्री अव्यवहितोत्तरत्व कार्य के आद्यक्षण में ही रहता

कार्यजन्मकालस्य को विशेषः ? कार्यजन्मैव । अन्यथा यद्विशेषान्तरं तदपि विशेषान्तरवतः कालस्येत्यपर्यवसानमेव पर्यवस्येत् । तथापि

शारदा

तथापि = **उक्तसमाधिसमत्वेऽपि** । को विशेष इति। **विशेषस्तावदानुभविकः कार्योत्पत्त्यनुत्पत्तिकालयोर्नापलप्यः, न चासत्त्ववादे स सम्भवति, असत उत्पत्तेरेवासम्भवात्, असत्सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वस्य तु सामग्र्यामसत्त्वव्याहत्या विशेषत्वानुपपत्तेरिति भावः। अनिर्वाच्यत्वबलादसत्त्वेनावश्याभ्युपगमनीयघटादेरुत्पत्तिरप्यानुभविकी न त्यज्यते इत्याशयेन परिहरति** कार्यजन्मैवेति । **एतेन कालसम्बन्धोपगमोऽसत्त्ववादे स्फुटमुक्तः आद्यक्षणसम्बन्धस्यैव जन्मपदार्थत्वात्** । अन्यथा = **तद्विशिष्टकाले तदतिरिक्तस्यैव विशेषस्य स्वीकारे।** विशेषान्तरं = **सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वम्** । **सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वेन विशिष्टे काले तदतिरिक्तविशेषापेक्षायामनवस्थानादित्यर्थः** । तथापि = **कार्योत्पत्तेर्विशेषत्वसम्भवेऽपि** । **तत्कालस्य** = **उत्पत्तिकालस्य। अयम्भावः, कीदृशः कार्योत्पत्तिकाल इति प्रश्ने कार्योत्पत्तिमानित्युत्तरं को घट इति प्रश्ने घट एव घट इत्युत्तरमनुकरोति, तस्मात्कालगतं कार्योत्पत्त्यधिकरणतावच्छेदकं रूपं वाच्यम्, तच्च मन्मते सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वं सम्भवति, न तु त्वन्मते, असत्त्वे सामग्रीत्वानुपपत्तेः । अथ गोत्वाधिकरणतावच्छेदकं यथा गोत्वमेव न तु सास्नादिमत्त्वमननुगतत्वात् न चात्माश्रयः, गोत्वोपहितस्यैवाधिकरणत्वात् , तथा कार्योत्पत्तिरेव कार्योत्पत्त्यधिकरणतावच्छेदिकोपाधितयास्तु ; न; गोत्ववत्कार्योत्पत्तेरननुगमात्; स्वसमानकालीनपदार्थप्रतियोगिकध्वंसानाधारसमयसम्बन्धरूपाया उत्पत्तेरननुगतस्वत्वादिघटितत्वात् सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वं**

भारती

है; इसमें कोई प्रमाण भी नहीं है । अतः कार्याव्यवहित पूर्णक्षण में वर्तमान सामग्री को ही स्वाव्यवहितोत्तर क्षण में कार्योत्पत्ति के प्रति नियामक मानना चाहिए, क्योंकि वैसा ही देखा जाता है एवं इस प्रकार के नियम को हम (शून्यवादी या खाण्डनिक) भी मानते हैं । अतः असत् कार्य-कारण का भी कार्यकारणभाव बन सकता है ।

प्रश्न - उक्त समाधान के सम होने पर भी आप के मत में कार्यानुत्पत्ति काल की अपेक्षा कार्योत्पत्ति काल की क्या विशेषता होगी । (तात्पर्य है कि कार्योत्पत्तिकाल एवं कार्यानुत्पत्तिकाल दोनों का वैलक्षण्य अनुभवसिद्ध होने से अपलाप नहीं किया जा सकता, किन्तु वह असत्ववाद में नहीं बन सकता, क्योंकि असतपदार्थ की उत्पत्ति ही नहीं होती ।)

समाधान – कार्य का जन्म यानि उत्पत्ति ही उस काल की विशेषता है । (क्योंकि असत्त्वेन स्वीकृत घटादि की अनुभवसिद्ध उत्पत्ति हम भी मानते हैं । (शून्यवाद सिद्धान्त में असत्प्रकाशनसामर्थ्यमविद्या कहकर अविद्या के द्वारा असत् पदार्थ की उत्पत्त्यादि भी मानते हैं। अतएव वह अनिर्वाच्य भी कहा जाता है ।) और यदि कार्योत्पत्ति-विशिष्ट काल की विशेषता कार्योत्पत्ति के अतिरिक्त ही मानना आवश्यक मानें तो जो विशेषान्तर (सामग्री-अव्यवहितोत्तरत्व) आप मानेंगे तादृशविशेषान्तरविशिष्ट काल का भी तदतिरिक्त कोई विशेषान्तर मानना होगा ऐसी स्थिति में अनवस्था दोष में ही विश्रान्ति होगी ।

तत्कालस्यानुगतं किं रूपमिति चेन्न, रूपान्तरवतोऽपि किं तदित्यस्यापि पर्यनुयोगस्यापत्तेः ।

अथासतः कारणत्वोपपत्तिः

किञ्च– अन्तर्भावितसत्त्वं चेत्कारणं तदसत्ततः ।
नान्तर्भावितसत्त्वं चेत्कारणं तदसत्ततः ।।

शारदा

त्वनुगतमित्यभिमानः । यद्यपि "नह्यसन्घटादिर्न घटादि" रितिवक्ष्यमाणरीत्याऽसत्यपि सामग्रीत्वसम्भव इति सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वस्य मन्मतेऽपि नावच्छेदकतानुपपत्तिः । यद्यपि च सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वमपि नानुगतम्, पुरोदीरितरीत्याऽननुगततत्तादिघटितत्वात्, न वा रूपान्तरमपि शक्यमनुगन्तुं, न वा वृत्तिमतोऽननुगमे तदवच्छेदकाननुगमस्यादोषत्वे कार्योत्पत्तेरवच्छेदकत्वासम्भवोऽपि, तथाप्युपस्थितत्वादुदितदिशैव समाधत्ते रूपान्तरवतोऽपीति। तद् = अनुगतं रूपम् । सामग्र्यव्यवहितोत्तरत्वाधिकरणतावच्छेदकस्यापि जन्मकाले रूपान्तरस्य वक्तव्यत्वापत्तावनवस्था स्यात्, ततश्च कार्यजन्मन एव वरमुपाधितया स्वाधिकरणतावच्छेदकत्वमिति भावः । यत्तु-केचिदनवस्थामपि क्वचित् प्रामाणिकीं मन्यमानास्तस्या अदूषणतामाहुस्तदयुक्तम्, क्वचित्परिहर्तुमशक्यत्वेन तस्या अदूषणत्वेऽतिप्रसङ्गात्, शक्यते हि येन केनचिद्वादिना स्वेनासम्भवपरिहारस्यादूषणत्वोपगमः को वाऽप्रतीयमानानि विशेषकाणि रूपाण्यधिकरणतावच्छेदकानि चानन्तानि श्रद्दधीत, अतएव "किञ्चिद्धि वस्तु स्वतो व्यावृत्तमिति" न्यायमालम्ब्य घटत्वादौ व्यावर्तकं धर्मान्तरं नानुमन्यन्ते प्राभाकराः । तार्किकैरेव वाऽनवस्थाया जातिबाधकता, अन्त्यविशेषाणां च स्वतोव्यावृत्तता किमित्युपेयते, वक्ष्यते चाधिकम्, तस्मात्–"अनवस्थादयो दोषाः सत्तां निघ्नन्ति वस्तुनः । अद्वैतिनां ते सुहृदः प्रपञ्चे तत्प्रसञ्जका" इति मूलकृद्गाथैव युक्ता ।

अस्ति तावत्कारणत्वं तच्च सति न सम्भवतीति परिशेषादसत्येवोपगन्तव्येत्याशयेनाह किञ्चेति । **सत्ताविशिष्टं यदि कारणं** ततः = **तर्हि असत् = सत्तानाश्रयस्तत् = कारणमिति सिद्धम्, सत्ताविशिष्टस्यासत्त्वात् सत्तानाश्रयत्वादिति यावत्, अन्यथा सत्ताविशिष्टं यदि**

राजहंसः

तत्प्रञ्जका इति । सत्ताविरहप्रतिपादका इत्यर्थः । **मूलकृद्गाथेति** । यद्यपि प्रकृतमूलग्रन्थे श्लोको नायमुपलभ्यते तथापि लघुचन्द्रिकायां खण्डनकारीयत्वेनोद्धृततया तामनुसृत्यात्रेत्थमुक्तम्, एवञ्च प्रकृतग्रन्थे एवायं विलुप्तः श्लोको ग्रन्थान्तरे वा प्रकृतमूलकारीय इति को वेत्ति ।

भारती

प्रश्न— तथापि (कार्योत्पत्ति रूप विशेषता मानने पर भी) कार्योत्पत्ति विशिष्ट काल का अनुगत रूप क्या है ?

समाधान— कार्योत्पत्ति (कार्य का आद्यक्षण सम्बन्ध) ही उस काल का अनुगत रूप है; अन्यथा (उसके अतिरिक्त की कल्पना करें तो) रूपान्तर विशिष्ट काल का भी पुनः अनुगत रूप क्या है ? इस प्रकार उत्तरोत्तर जिज्ञासा जागरुक होने से अनवस्था दोष की निवृत्ति न हो सकेगी ।

शारदा

सत्ताश्रयः, तदा सत्तायां सत्ताश्रयत्वापत्तावात्माश्रयः । प्रकृतविधेयान्वयिन एव विशेषणत्वात्, तादृशे एव विदुषां विशेषणताव्यवहारात्, तथाहि—''नहि व्यापारवन्तं व्यापार आश्रयते आत्माश्रयत्वादिति'' कुसुमाञ्जलावुदयनाचार्याः ''यद्व्यावर्तकं विशेष्यान्वयिनाऽन्वीयते तद्विशेषणमिति'' प्रत्यक्षखण्डे मणिकाराः किरणावलिप्रकाशादौ वर्धमानोपाध्यायाश्च । विशिष्टे कारणताग्राहकमानेन विशेषणेऽपि कारणताग्रहमाश्रित्य लिङ्गपरामर्शस्य कारणत्वे लिङ्गस्यापि कारणत्वमित्युदयनाचार्यमतोपपादकतया परामर्शमणावुक्तम् । ''प्रयत्नवदात्मसंयोगस्य चेष्टाद्वारा घटहेतुतया तद्विशेषणतया प्रयत्नस्येवात्मनोऽपि हेतुत्वादिति'' तर्कताण्डवे माध्वाः। अतएव गन्धसमवायिसंयोगस्य गन्धप्रत्यक्षहेतुत्वे हि यदि गन्धसमवायस्य विशेषणता, तदा स हेतुरेवेति प्रत्यक्षमणिः। अतएव च, घटादन्य इत्यादिवाक्याद्घट-प्रतियोगिताकान्यत्वादिप्रकारेण निरवच्छिन्नविशेष्यताकबोधः, अतएव च, घट इत्यादावपि निरवच्छिन्नैव विशेष्यता, अन्यथाऽन्यत्वघटत्वविशिष्टादावन्यत्वघटत्वादेर्वृत्तौ क्वापि तदवच्छिन्नविशेष्यताकतत्प्रकारताकबोधः प्रमात्वमालिङ्गेत् । अतएव स्मृत्यजनकज्ञानान्यनिश्चयत्वेन स्मृतिजनकत्वं स्वस्य स्वावच्छेदकत्वापत्त्या गदाधरैरनुमितिग्रन्थे निरस्तम्, अन्यथा स्मृत्यजनकान्यत्वस्य स्मृतिजनकत्वरूपत्वेऽपि तादृशनिश्चयविशेषणत्वेन विशेष्यान्वयिनानन्वयित्वे स्वस्य स्वावच्छेदकत्वप्रसङ्गानवकाशादिति कृतं विस्तरेण ।

राजहंसः

प्रमात्वमालिङ्गेदिति । घटत्वोपहितव्यक्तिमात्रे हि घटत्वान्वये तस्य घट इत्यनेनैवावगततयाऽऽकाङ्क्षादिविरहेण घटो घट इति बोधो नोपगम्येत, घटत्वविशिष्टे तदन्वये तु घट इत्यनेन तथाऽऽवगमाभावेनाऽऽकाङ्क्षासत्तया घटो घट इत्यपि स्यादेव, परन्त्वेवं घटत्वस्यापि घटत्वेऽन्वयप्रसङ्गेन भ्रमत्वमेव स्यात्, धर्मिणस्तादात्म्येन भाने धर्मस्य भेदसम्बन्धेन समवायादिना भानात् । एतच्च न परं शाब्दसामग्रीदशायामपि तु प्रत्यक्षादिसामग्रीसमवधानस्थलेऽपीत्याशयेन क्वापीत्युक्तम् ।

तादृशनिश्चयविशेषणत्वेनेति। स्मृतिजनकत्वस्य स्वरूपसम्बन्धेन तादृशनिश्चयविशेषणत्वे सामानाधिकरण्यसम्बधेन तादृशनिश्चयत्वेऽपि विशेषणतया विधेयीभूतजनकतायां तादृशनिश्चयत्वस्येव स्मृतिजनकत्वस्यापि स्वावच्छिन्नत्वसम्बन्धेनान्वयः, एकजातीयसम्बन्धेन विशेष्यविशेषणयो-

भारती

(पूर्वप्रघट्टक के द्वारा—''असत् भी कारण हो सकता है'' सिद्ध किया गया है । इस प्रकरण में-अनुभवसिद्ध कारणता सत् में हो ही नहीं सकती, अत: पारिशेष्यात् असत् में ही कारणता माननी उचित है'') सिद्ध करेंगे ।

सत् कारणवादी सत्ता विशिष्ट को कारण कहेंगे या सत्तारहित को, यदि अन्तर्गवित सत्त्व (अन्तर्भूत है = स्वरूप में प्रविष्ट है सत्ता जिसके ऐसे पदार्थ) को कारण कहें, तो असत् (सत्ता के अनाश्रय) को ही कारण मानना होगा । (क्योंकि सत्ताविशिष्ट सत्ता का आश्रय हो नहीं सकता । यदि सत्ताविशिष्ट को सत्ता का आश्रय मानेंगे तो विशेषणीभूत सत्ता एवं आधेय सत्ता के एक होने पर आत्माश्रय दोष होगा । यदि उन सत्ताओं को दो भिन्न-भिन्न मानेंगे तो

शारदा

एतेन विषयविशिष्टभ्रमस्य मिथ्यात्वे विषयस्यापि मिथ्यात्वमिति चन्द्रिकाकृदुक्तौ ''असति बाधके विशिष्टधर्मिकप्रतीतेर्विशेषणेऽपि प्रकारावगाहित्वमिति'' व्याख्यानं निरस्तम्, सति बाधके विशेषणतां विहायोपलक्षणत्वादेरेवोपगन्तव्यत्वात्, अतएव दण्डिनं भोजयेत्यत्र भोजने दण्डस्यानन्वयान्न विशेषणत्वमित्यद्वैतरत्नादावुक्तम् । एतेन स्वकालनियत-व्यावृत्तिधीजनकत्वं वा प्रत्याय्यव्यावृत्त्यधिकरणतावच्छेदकत्वे सति व्यवच्छेदकत्वं वा विशेषणत्वमितिनिरस्तम् उक्तस्थले दण्ड उपलक्षणे श्रोत्रोपाधौ चातिव्याप्तेः, जनकतावच्छेदकं विना दुर्ग्रहत्वं च । तस्मात्सत्ताविशिष्टस्य कारणत्वे सत्ताश्रयो न कारणमिति युक्तम्, व्याघाताद्भये तु स्वीकार्यमुपाधित्वादिकमेव सत्ताया इति भावः । परे तु—सत्ताविशिष्टस्य कारणत्वे सत्ताया अपि कारणत्वेन तत्र च सत्ताया वक्ष्यमाणरीत्याऽभावेनासदपि कारणमागतमेवेति—व्याकुर्वते । अन्तर्भावितसत्त्वं न कारणं चेत् = **सत्ता न कारणमपि तु तदुपलक्षितमेवेति यावत् तदापि कारणत्वमसतः सिद्धम्, घटो ध्वस्त इति धीविषयस्यापि घटस्य सत्तोपलक्षितत्वात्त्वन्मते चासत्त्वात्कारणत्वापत्तेः । वस्तुतस्तु सत्तोपलक्षितस्य कारणत्वे उपलक्ष्यतावच्छेदकस्य कस्यचिदपेक्षणीयत्वादनुगतस्य च तस्यासम्भवात्तत्तदसाधारणरूपमेव**

राजहंसः

र्विधेयान्वयितायामेव विशेष्यविशेषणभावौचित्यात् । भिन्नजातीयसम्बन्धेन तूपाधेरपि विधेयान्वयः सम्भवत्येव, एवञ्च तादृशनिश्चयस्याधेयतासम्बन्धेन स्मृतिजनकतायामन्वये तस्याः स्वावच्छिन्नत्वसम्बन्धेनैव स्वस्मिन्नन्वय इति तस्या निश्चय उपाधित्वेऽपि नासंगतिः, उपाधिसाधारणविशेषणतावत एकजातीयेन भिन्नजातीयेन वा विशेष्यान्वयिनाऽन्वयित्वस्यैव निश्चयस्य विशेष्यतापक्षे लाभेऽपि निश्चयत्वस्योक्तरीत्या विशेष्यत्वे उपाधिव्यावृत्तविशेषणताया अपि लाभादिति। **एतेन स्वकालेत्यादि । अत्र प्रथमे** स्वकालनियतेति द्वितीये च सत्यन्तमुपलक्षणं व्यावर्तयति। व्यवच्छेदकत्वं तु व्यावृत्तिमतिजनकत्वम् ।

दुर्ग्रहत्वञ्चेति । विशिष्टबुद्धेरेव व्यावृत्तिधीजनकत्वेन विशेषणे तदभावेनासम्भववारणाय प्रकृतविधेयान्वयित्वन्यायेन विशेषणे तदुपगमेऽस्मन्मतप्रवेशः, जनकतावच्छेदकविषयताश्रयत्वोक्तौ च विशिष्टेऽतिव्याप्तिः, विशेषणगतधर्मावच्छिन्नत्वेन तादृशविषयतानिवेशे च विशेषणगतोऽनुगतस्तादृशधर्मो दुर्निरूपः दण्डत्वादेरुपलक्षणसाधारण्यात्, प्रकृतविधेया-न्वयित्वघटितात्मना तादृशविषयताश्रयनिवेशे तु सिद्धं नः समीहितमितिभावः ।

उपाधित्वादिकमिति । आदिना सम्भवस्थलाभिप्रायेणोपलक्षणत्वं ग्राह्यम् ।

व्याकुर्वत इति । अद्वैतसिद्धिचन्द्रिकोक्तव्याख्यानेऽस्मिन्नयमस्वरसः—सत्ताविशिष्टस्य कारणत्वे सत्ताया अपि कारणत्वमित्युक्त्या प्रकृतविधेयान्वयित्वनियमो विशेषणे तावत्स्वीकृत एवेति सत्ताविशिष्टस्य सत्तानाश्रयत्वेनासदेव कारणमित्येव वक्तव्यं न त्वसदपीति । सत्ताया असत्त्वे च तदाश्रयस्य सुतरामसत्त्वमित्येवमपि नाऽपि प्रयोक्तव्य इति ।

त्वन्मत इति । सत्कार्यवादं व्यावर्तयतीदम् ।

उपलक्ष्यीभूतव्यक्तेर्विद्यमानतादशामपास्य नोपलक्षितत्वव्यवहार इति ध्वस्तस्य घटस्य

शारदा

तद्वाच्यमिति तदवच्छिन्नस्यैव कारणत्वं युक्तं तच्च मन्मतेऽपि सम्भवति, सत्तानवच्छिन्नकारणतोपगमात् । न च सत्ताया उपाधित्वं तदवच्छिन्नस्य च कारणत्वम् कारणता सत्ताव्याप्येति यावत्, व्याप्तिश्च दैशिकी कालिकी चेति वाच्यम् व्यापकीभूता सत्ता यदि द्रव्यादित्रयसाधारणी तदा सामान्यादेः स्वविषयकप्रत्यक्षादौ कारणत्वाभावापत्तिः, अथ भावत्वं सत्ता, तदाऽभावस्याकारणत्वापत्तिः, अथास्तीतिधीविषयत्वयोग्यत्वं सा, तदा सा मन्मतेऽपि सम्भवत्येव अनिर्वाच्यस्वरूपसत्त्वस्य मयोपगमात् त्रिकालाबाध्यत्वरूपा सत्ता न कारणताकुक्ष्यनुप्रवेशिनीत्येवास्माभिरुच्यमानत्वात्, तस्याश्च त्वयाऽपि कारणताघटकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्, अन्यथा दण्डादौ तस्या दुर्ग्रहत्वेन कारणतां प्रतीत्य कारणसङ्ग्रहार्थप्रवृत्त्यभावापत्तेः, प्रतीतिकालसत्त्वापेक्षया गौरवाच्च, कारणत्वानुभवेन तस्या अनुल्लेखाच्च, अतएव दण्डः सन्निति प्रत्यक्षे तस्या न भानम्, तामजानानानामपि तादृशप्रत्ययोदयादिति भावः । अन्ये तुसत्तोपहितस्य कारणत्वेऽपि सद्रूपादन्यदेव कारणं स्वीकृतम् नहि सत्तोपहितदण्डादि सद्रूपम्, प्रत्येकं सत्स्वभावताकल्पने गौरवादेकस्य ब्रह्मण एव सद्रूपत्वोपगमौचित्यात्, नैकजातीयसम्बन्धेन सत्तायास्तत्र तत्र वृत्तिसम्भवेऽपि विलक्षणसम्बन्धेनैकाकारप्रतीत्यनुपपत्तेः, नेह नानेत्यादिश्रुतिविरोधाच्च दण्डादेः सद्रूपत्वकल्पनानवकाशादिति व्याचक्षते ।

राजहंसः

कथमुपलक्षितत्वम्, किञ्च भवन्मते पारमार्थिकसत्तया कदाप्यसंस्पृष्टस्य घटादेस्तदुपलक्ष्यत्वासम्भवेन नाभीष्टं सिद्ध्येदित्यरुचेराह **वस्तुतस्त्विति ।**

गौरवाच्चे त्यनेनैतदपि सूचितम्—घटकतया व्यापकतामपास्य वस्तुतः सत्तायास्त्रिकालाबाध्यत्वरूपाया व्यापकत्वाभिधानमप्रयोजकताबाधितम्, स्वरूपास्तितामात्रेणैव कारणतोपपत्तेरिति।

व्याचक्षत इति । प्रकरणस्यास्य शून्यवादसाधारण्येन व्याचिख्यासिततयाऽद्वैतसिद्धिचन्द्रिकायामाचार्यैरुचितोक्तस्याप्यस्य भावस्य नात्रादरः ।

भारती

विशेषणीभूत सत्ता के आश्रय को सत्ता विशिष्ट बनाने के लिए सत्ता अपेक्षित होने से उन दोनों सत्ताओं के परस्पर (आश्रय में सम्बद्ध होने के लिए) सापेक्ष होने से अन्योन्याश्रयदोष होगा। यदि अन्योन्याश्रय दोष परिहारार्थ (उन दोनों सत्ताओं के बैठने के पूर्व आश्रय को विशिष्ट बनाने के निमित्त) विशेषण रूप से तृतीय सत्ता की कल्पना करेंगे तो पुनरपि उन तीनों सत्ताओं में भी पूर्वोक्त प्रकार से परस्पर सापेक्ष होने से चक्रक दोष आपतित होगा । यदि चक्रक दोष परिहार के लिए चतुर्थ पञ्चम आदि सत्ताओं की कल्पना करेंगे तो अनवस्था दोष हो जायेगा। इस प्रकार सत्ताविशिष्ट को कारण मानने में दोष चतुष्टय आपतित होने से पारिशेष्यात् असत् को ही कारण मानना होगा ।)

यदि नान्तर्भावितसत्त्व (नहीं है अन्तर्भूत अर्थात् स्वरूप में प्रविष्ट सत्ता जिसके ऐसे) को कारण कहें तो सुतरां सत्ता से रहित होने से कारण को असत् ही मानना होगा ।

तथाहि–अन्तर्भूतसत्त्वं यदि कारणत्वं तदा स्वविशिष्टे स्ववृत्तिरंशतः स्वाश्रयत्वमापादयति। विशिष्टस्यार्थान्तरत्वेऽपि च स्वस्मिन्स्ववृत्तिव्यतिरेकवत्स्वविशिष्टे स्ववृत्तिव्यतिरेकनियमदर्शनात् न सैव सत्ता तस्मिन्नित्यन्यस्याविशिष्टवृत्त्यभ्युपगमे तामनिवेश्यकारणत्वमभ्युपगन्तुः सर्वथैवासत्कारणं पर्यवस्यति, अपरापरसत्तानिवेशने चापर्यवसानमेव । न च सत्ताभेदानन्त्यमस्त्येवेत्यपि पादप्रसारिका निस्ताराय; सत्ताभेदे

शारदा

अन्तर्भूतसत्त्वं = **विशेषणतया अवच्छेदकीभूतं सत्त्वं यस्य तादृशम्, सत्ताविशिष्टनिष्ठमिति यावत्,** अंशत इति । **विशेषणरूपमंशमादायेत्यर्थः । स्वविषयकप्रत्यक्षं प्रति सत्तायाःकारणतोपपत्तये तत्र तदुपगमे तु सर्वांशे एव स्वाश्रयत्वमिति भावः । ननु घटभूतलसंयोगा इत्यत्र विशिष्टव्यवहारात् । विषयकृतवैलक्षण्यं विनाविषयप्रतीतिवैलक्षण्यस्य साकारवापत्त्यसम्भवेन च विशिष्टविषयक प्रतीतितो विशेषणादिविषयक प्रतीतेर्वैलक्षण्यस्यावश्यं वक्तव्यत्वाद्विशेषणादिव्यतिरिक्तमेव विशिष्टम्, तथाच सत्तायाः स्वविशिष्टे वृत्तावपि स्वस्मिन्वृत्त्यप्रसक्त्या नात्माश्रय इत्यत आह** विशिष्टस्येति । **घटवद्भूतलं न भूतलमिति केवलभेदावगाहिधीस्तु भेदाभेदोपगमेन वारणीयेति भावः ।** व्यतिरेकवत् = **व्यतिरेकनियमवत् । यथा स्वनिष्ठं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नं स्वनिष्ठाधिकरणतानिरूपितानिरूपकताऽभावव्याप्यत्वं तथा स्वविशिष्टनिष्ठाधिकरणतानिरूपितनिरूपकताऽभावव्याप्यत्वमपीत्यर्थः । स्वविशिष्टवृत्तीत्युचितः पाठः, स्वविशिष्टे स्ववृत्तीतिपाठे तु स्ववृत्तीत्यस्य स्वनिष्ठवृत्तितानिरूपिताधिकरणतेत्यर्थः । स्वविशिष्टे इत्यस्य च नियमेऽन्वयः, वृत्तावन्वयस्याप्रसिद्ध्याऽसम्भवात्, स्वविशिष्टे स्वनिरूपितवृत्तित्वनिषेधस्य च सन्दर्भ विरुद्धत्वात् ।** विशिष्टवृत्तीति। **इदमुपलक्षणम्**

भारती

(यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि सत्तोपलक्षित को भी कारण नहीं कह सकते, क्योंकि अनुगत उपलक्ष्यतावच्छेदक न होने से असाधारण घटत्वादिधर्म को ही उपलक्ष्यतावच्छेदक मानना होगा, ऐसी स्थिति में घटत्वावच्छिन्न को ही कारण होने से अर्थात् सत्तानवच्छिन्न को ही कारण मानने से असत्कारणवाद ही सिद्ध होता है । इसी प्रकार उपाधिपक्ष का निरास भी शारदा में द्रष्टव्य है ।)

("तथाहि" से उक्त कारिका के अर्थ का ही कथन किया गया है) अन्तर्भूत है सत्ता जिसके ऐसे को कारण कहें तो सत्ता विशिष्ट में सत्ता के रहने से अंशतः स्ववृत्तित्वरूप आत्माश्रय दोष होगा । यदि विशिष्ट को अर्थान्तर अर्थात् विशेषण-विशेष्यसम्बन्ध से अतिरिक्त मानकर आत्माश्रय का वारण करना चाहें तो वह भी सम्भव नहीं है क्योंकि स्व में स्ववृत्तित्व के अभाव के समान स्वविशिष्ट में भी स्ववृत्तित्व का अभाव ही नियम से देखा जाता है ।

यदि कहें कि स्वविशिष्ट में वही विशेषणीभूत सत्ता नहीं रहती, किन्तु अन्य सत्ता रहती है अतः आत्माश्रय दोष नहीं है तो यह आप नहीं कह सकते, क्योंकि अन्य सत्ता को विशिष्टवृत्ति मानने पर—प्रथम सत्ता को विशिष्ट वृत्ति न मानने से आपको सर्वथा असत्

हि सद्बुद्धिव्यवहारानुगमसमर्थनलङ्घिनः प्रथमापि सत्ता न स्यादिति वृद्धिमिच्छतो मूलमपि ते नष्टमिति हा ! कष्टतरम्। न च स्वरूपसत्तोपगमाय स्वस्ति । भिन्नानप्यनुगतबुद्ध्याद्याधानपदेऽभिषिञ्चता त्वया हि जातिमात्राय

शारदा

स्वविषयकप्रत्यक्षादिकं प्रति सत्तायाः कारणत्वोपपत्तये तत्र तदुपगमेऽप्यनवस्था द्रष्टव्या। सद्बुद्धीति । **सदाकारबुद्धिव्यवहारयोरनुगमः = एकविषयकत्वं तस्य समर्थनं चैकविषयोपगमेन, तदुल्लङ्घनं तु नानाविषयोपगमेन ।** प्रथमेति । **सदाकारानुगतप्रतीत्यादिबलादेव हि प्रथमसत्ताजातिसिद्धिः, तादृशप्रतीत्यादेरननुगतविषयेणोपपादनसम्भवे तु न प्रथमसत्ताया अपि सिद्धिरिति भावः ।** वृद्धिं = **सत्ताऽऽनन्त्यं,** मूलं = **प्रथमा सत्ता,** न चेति । **स्वरूपसत्तोपगमो जातिवादिनो हितावहो नेत्यर्थः । सत्तानिष्ठासु सत्ताविशिष्टनिष्ठासु वा सत्तासु स्वरूपसत्त्वात्मकत्वोपगमे, विशिष्टघटकीभूतसत्तायाः स्वरूपसत्त्वात्मकत्वोपगमे वा स्वरूपेणैव निर्वाहात्र सत्ताजात्यानन्त्यप्रसङ्गः, न वाऽसतः कारणत्वमित्यप्ययुक्तमिति**

राजहंसः

मूले पादप्रसारिकेति धात्वर्थनिर्देशेण्वुल् । सत्ताविशेषानन्त्यप्रसक्ताविशिष्टीकरणमिति तात्पर्यार्थः। कष्टतरमित्यत्र ते इत्यनुषज्यते । वृद्धिमनिच्छतो मूलनाशे कष्टम्, तामिच्छतस्तु तन्नाशे कष्टातिशय इति भावेन तरप्प्रयोगः ।

मूले स्वरूपसत्तोपगमाय स्वस्तीत्यत्र स्वरूपसत्तेति प्रथमान्तं वा, उपगमशब्देन षष्ठीसमस्तं वा, उपगन्तृगतं हितमुपगमे आरोप्य जातिस्वीकारोपपादकत्वरूपं हितमुपगमे विवक्षित्वा वोपगमशब्दे उपपदविभक्तिरादृतेत्याशयेन व्याचष्टे **स्वरूपसत्तोपगम इति ।**

स्वरूपसत्तात्मकत्वोपगम इति । स्वरूपसतः कारणत्वे वि शेषणविधया सत्ताया अप्रवेशेन

भारती

कारण ही मानना होगा और यदि उसके आगे भी तृतीय चतुर्थ आदि सत्ताओं की कल्पना करें तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा । इस प्रकार सत्ताविशिष्ट में अपरापर अनन्त सत्ता मानकर भी आप अपना निस्तार (स्वपक्षसिद्धि) नहीं कर सकते, क्योंकि सत्ता का आनन्त्य मानने पर - "इदं सत्" इत्याकारक सद्बुद्धि एवं सद्व्यवहार के अनुगम के लिए स्वीकृत एक सत्तावाद का उल्लंघन करने वाले आपके मत में प्रथम सत्ता भी सिद्ध न हो सकेगी । (भाव यँह है कि "सन् घट सन् पट" इत्यादि अनुगत प्रतीति की अन्यथानुपपत्ति प्रमाण से ही सत्ता जाति की सिद्धि की जाती है । यदि वह प्रतीति अननुगत विषय (अनन्त सत्ता) के द्वारा ही सम्पन्न हो जायेगी तो प्रमाण के न होने से सत्ता जाति की सिद्धि नहीं हो सकेगी ।) अतः महान् खेद है कि जिस प्रकार वृद्धि (ब्याज) की कामना वाले पुरुष का मूलधन भी नष्ट हो जाय । उसी प्रकार अनन्त सत्ता की कामना वाले आपके मत में प्रथम सत्ता भी नष्ट हो गई । अर्थात् सिद्ध न हो सकी।

प्रश्न—हम (तार्किक) स्वरूप सत्ता अर्थात् घटादि को स्वरूप से ही सत् मानकर उसी के द्वारा सद्बुद्धि एवं सद् व्यवहार की उपपत्ति मानेंगे । अतः अनवस्था दोष प्रसक्त न होगा ।

जलाञ्जलिर्वितीर्येत । मा भूदनुगतिः स्वरूपसत्त्वस्येति च वदन् तद्गर्भिणीं कारणतां कथमनुगमयितासीति ।

शारदा

भावः । तत्र हेतुमाह भिन्नानिति । **बुद्ध्यादीत्यादिनाऽभिलापादिरूपो व्यवहारो ग्राह्यः तदाधानपदे = तज्जनकतापदेऽभिषिञ्चता तज्जनकत्वेन स्वीकुर्वतेति यावत्** । जातिमात्रायेति। **अननुगतैः स्वरूपसत्त्वैस्तावदनुगतधीरेवाशक्योपपादा, कथञ्चित्तदुपपादने वा गवाद्याकारानुगतधीव्यवहारयोरपि स्वरूपेणैवाननुगतेनोपपादनसम्भवाद्गोत्वादिकमपि त्यक्तव्यमेव, क्लृप्तस्वरूपेणोपपत्तावक्लृप्तकल्पनायां गौरवादिति भावः । ननु सत्तां द्रव्यादित्रयसाधारणीं स्वीकुर्वता साऽनुगतप्रतीत्यादिबलान्न साध्यते, अन्यथा जात्यादावपि सदाकारप्रतीतिसत्त्वात्तत्रापि तदुपगमापातात् किन्तु जन्यसत्त्वावच्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेन हेतुतया कार्यतावच्छेदकघटकतया तत्सिद्धिः, तथा च तत्प्रतिबन्धा न जातिमात्रखण्डनसम्भवः, किन्तु कारणतायाः सत्ताचातिशून्येऽपि सत्त्वात्तद्घटकत्वमननुगतस्वरूपसत्त्वस्यैव युक्तम्, तावतापि कारणतायाः सन्मात्रवृत्तित्वनिर्वाहादित्याशङ्क्य जात्यदावपि सद्व्यवहारसत्त्वे सप्तपदार्थीसाधारणस्य तादृशव्यवहारनियामकस्य सत्त्वस्यानुपगमे गवादावपि व्यभिचारित्वादनुगतव्यवहारस्यानुगतधर्मसाधकत्वासम्भवसत्त्वे एव दूषणान्तरमाह** माभूदिति। तद्गर्भिणीं = **स्वरूपसत्त्वघटिताम्, अननुगतत्वरूपनिन्दासूचनाय तद्गर्भामिति नोक्तम् तेन "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकर" इति वचनविरोधो न** । कथमिति। **न च कारणताननुगमे का क्षतिरिति वाच्यम्, प्रवृत्तिसामान्यनिष्ठकार्यतानिरूपिता या कारणताज्ञाननिष्ठकारणता तस्यां व्यभिचाररूपस्य प्रवृत्त्यननुगमस्यापत्तेः दण्डकारणताग्रहं विनाऽपि तन्तुषु प्रवृत्तेः, तन्तुकपालादौ कारणत्वांशेऽनुगतव्यवहारस्य घटकारणेषु च घटकारणमित्यनुगतव्यवहारस्यापलापापत्तेश्च, तत्तद्व्यक्तिषु कारणपदस्यानन्त्यव्यभिचाराभ्यां शक्तिग्रहानुपपत्तेश्च। कार्यं**

राजहंसः

नात्माश्रयादिचोदनेति भावः । कथञ्चिदिति । शब्दमात्रानुगमो नत्वर्थानुगम इत्यभिमानेनेत्यर्थः ।

जन्यसत्त्वावच्छिन्नं प्रतीति । यद्यपि जन्यसत्त्वं यदि कार्यतावच्छेदकं तदा

भारती

समाधान—किन्तु स्वरूप सत्ता का मानना भी जातिवादी के लिए हितकर नहीं है क्योंकि अनुगतबुद्धि-व्यवहार की जनकता अननुगत स्वरूप सत्ता में मानकर अपने जातिमात्र को जलाञ्जलि दे दिया । (अर्थात् ऐसी स्थिति में गौ इत्यादि व्यवहार भी प्रतिव्यक्तिविश्रान्त गौ के स्वरूप से सम्पन्न हो जायेगा, गोत्वादि जाति का भी आपको परित्याग ही करना होगा।)

यदि आप कहें कि स्वरूप सत्ता मानने से अनुगम न हो तो, न सही, सत्कारणवाद तो सिद्ध हो जायेगा, तो यह आप नहीं कह सकते, क्योंकि स्वरूपसत्ता के प्रतिव्यक्तिविश्रान्त होने से तद्घटित कारणता का भी अनुगम कैसे कर सकेंगे ।

शारदा

सकारणकं कादाचित्कत्वादिति सामान्यतः कारणसाधकानुमानविलोपप्रसङ्ग इत्यपि कश्चित्। केचित्तु—अस्तु कारणताऽननुगता, सत्त्वं न कारणतावच्छेदकमित्यस्मदीयाभिलपितस्य तावतापि निर्वाहात्, कारणतावच्छेदकस्य कार्यतावच्छेदकस्य च भेदाद्धि तद्भेदः, न चाननुगतकारणतायां सत्त्वस्यावच्छेदकत्वम्, अतिप्रसक्तत्वात्, किन्तु सत्त्वासत्त्वोदासीनदण्डत्वादेरेव, यद्वक्ष्यति "हेतुतत्त्वबहिर्भूतसत्त्वासत्त्वकथा वृथेति" वदन्ति।

इदन्त्ववधेयम्, अन्यथासिद्ध्यभावकूटस्य दुर्ज्ञेयत्वेनानन्यथासिद्धनियतपूर्वसत्त्वस्य कारणतानात्मकत्वेन स्वरूपसम्बन्धविशेष एव कारणत्वमिति परामर्शग्रन्थे गदाधरोक्ताया वा, कार्यभेदादवच्छेदकभेदाच्च भिन्नमूर्तिकस्य कारणत्वत्वेनाखण्डोपाधिनाऽनुगतस्य कारणपदशक्यतावच्छेदकस्य कारणत्वस्य पदार्थान्तरत्वमेवेति शिरोमण्युक्ताया वा, कारणतावच्छेदकरूपमेव कारणत्वमिति तार्किकान्तरोक्ताया वा रीतेरनुसरणे कारणत्वस्य सत्त्वघटितत्वशङ्काऽनुदयात् पुरोदीरितरीत्या स्वरूपसत्त्वव्याप्यत्वमेव कारणतायां वाच्यम्, स्वरूपसत्त्वस्य च न मन्मतेऽप्यसम्भव इति व्यर्थो विवादः, नियतपूर्वसत्त्वघटितमपि यदि कारणत्वं तदापि पूर्वसत्त्वं पूर्ववृत्तित्वमेवेति नानुपपत्तिरिति। एतदेवाभिसन्धायाह—

राजहंसः

नित्यसाधारणसत्त्वस्यासिद्धिरेव, प्रमाणान्तराभावात्, तत्सिद्धिं विनैव च तद्व्यावृत्तये तार्किकाणां विशेषणोपादानमुपहास्यतां याति, तथापि सत्त्वमात्रस्यैव कार्यतावच्छेदकत्वमस्तु अतिप्रसक्तस्यापि तथात्वे क्षत्यभावादिति पूर्वपक्षाभासः। वस्तुतस्तु द्रव्यत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यता येन धर्मेणावच्छिद्यते स धर्मो जन्यगत एव प्राक्प्रतीतो न सहसैव नित्याऽऽलिङ्गनस्य प्रभवति, साधकं विना बाधकाभावस्यापातत उपन्यासेन हि किं क्रियेत। द्रव्यत्वादिना जन्यात्मकस्वाश्रयसाजात्येन तत्पादप्रसारिकाया अप्रयोजकत्वपराहतत्वादिति दूषणमेवैतदिति। गुणत्वेन च रूपादिसाजात्यमपि नास्तीति तु चतुर्थे शारदायां द्रष्टव्यम्।

सप्तपदार्थीसाधारणस्येति। न च पदार्थत्वप्रमेयत्वादिकमेव सर्वानुगतं सत्त्वम्; तस्य घटः सन्नित्यादिचाक्षुषप्रतीत्यविषयत्वात्, सर्वत्रोपनयस्याप्यसम्भवात्, अननुगतशक्तिप्रमात्वादिघटिततयाऽनुगमासम्भवाच्च, विषयतात्वादिनाऽनुगमस्य च घटः सन्नित्यादौ स्वरूपतः सत्त्वभानेन निष्फलत्वादिति भावः। **इत्यपि कश्चिदिति**। अत्रानुगतकारणत्वावच्छिन्नसाधने कार्यतानुगताऽपेक्षितेति द्वयोरनुगमस्य परस्परानुगमायत्तत्वेऽन्योन्याश्रयः। प्रकारान्तरेण कार्यताऽनुगमसमर्थनेऽपि कार्यतावच्छिन्नं प्रति कारणतावच्छिन्नस्य कारणताया इह विवक्षितत्वे कार्यतायाः कारणतायाश्च स्वस्वावच्छिन्नत्वप्रसङ्गेनात्माश्रयो दुर्वारः, कार्यतायां कारणतानिरूपितत्वमात्रस्यात्र तात्पर्यतः सिषाधयिषितत्वे सनिरूपकपदार्थानां तुल्यवित्तिवेद्यतया कार्यतात्वावच्छिन्नविषयकवित्त्यैव कारणताया निरूपकतयाऽवगाहनेन सिद्धसाधनम्, कादाचित्कत्वं च स्ववृत्तित्वस्वेतरावृत्तित्वाभ्यां किञ्चित्कालविशिष्टत्वं नानुगतमिति भागासिद्धिः वाङ्मात्रेण किञ्चित्कालस्यानुगमोपगमेऽपि तद्वृत्तित्वस्यैवाप्रसिद्ध्यैव हेत्वप्रसिद्धिरिति दोषजातं भूषामणिव्याख्यानेऽत्रास्वरसबीजम्।

इति वदन्तीति। कारणतानुगमस्यौचित्यमनुमत्य तदननुमोपगमे नादर इत्यस्वरसोऽत्राद्वैतसिद्धिकारीयमते। वस्तुतस्तु नाननुगम इवानुगमोऽपि सङ्गत इति चतुर्थे शारदायां द्रष्टव्यम्।

किञ्च स्वरूपसत्त्वं घटाद्यात्मनो नाधिकम्, असतोऽपि स्वरूपं स्वरूपमेव, नह्यसन् घटादिर्न घटादिः, तथा सति घटादिर्नेत्यपि न स्यात्, असतोऽघटादित्वात् ।

शारदा

किञ्चेति । नाधिकमिति । **नचैवं तादात्म्येन घटस्य कारणताव्यापकत्वे पटादौ सा न स्यादिति वाच्यम्; कारणतानानात्वपक्षेणैवास्य ग्रन्थस्य प्रवृत्तेः । अयम्भावः, अस्तीतिप्रमाविषयत्वस्य सत्त्वरूपत्वे घटःसन्नित्यादिस्वरूपसत्त्वावगाहिप्रतीतेरचाक्षुषत्वप्रसङ्गात् तद्योग्यत्वस्य तथात्वे च योग्यतावच्छेदकस्य निरूपणीयत्वापातात्, अर्थक्रियाकारित्वस्य तथात्वे च कारणताव्याप्यत्वस्यैव कारणतायां पर्यवसानात्, मिथ्यात्वविरोधिनश्च सत्त्वस्य स्वरूपसत्त्वावगाहिघटः सन्नित्यादिप्रतीत्यानुलेख्यत्वात्तदनात्मकत्वात्, वर्तमानत्वमेव स्वरूपसत्त्वं वाच्यम्, तच्च वर्तते इति प्रतीतिसाक्षिककालविशेषानुयोगिकसम्बन्धप्रतियोगित्वमेव प्रतियोगित्वस्य च स्वरूपातिरिक्तस्य दुर्वचत्वात् स्वरूपसत्त्वस्य घटात्मकत्वमेव पर्यवस्यति। अथैवं घटः सन्निति सामानाधिकरण्यानुपपत्तिः सत्त्वाधारत्वस्य तत्र घटे भानात्, तादात्म्येन धर्मिणः प्रकारत्वे धर्मस्याप्याश्रयतया प्रकारत्वात् । अभेदे चाधाराधेयभावस्यादर्शनात्, घटाभावे घटो नास्तीत्यादावपि घटाभावस्यैकत्वविशिष्टस्यैवाधारत्वादिति चेत्प्रकृतेऽपि तथैव कल्पनसम्भवात् कारणत्वादेः स्वरूपसम्बन्धविशेषत्वेपि रूपभेदेनैव कथञ्चिदाधाराधेयभावस्योपपाद्यत्वादिति । असतः = सांवृतसतः ।**

तथासति = सांवृतस्य घटादित्वानङ्गीकारे । न स्यादिति । **निषेधप्रतियोगित्वस्य**

राजहंसः

एकत्वविशिष्टस्यैवाधारत्वादिति । घटप्रतियोगिकत्वस्योपाधित्वविशेषणत्वाभ्यामाधाराधेयतावच्छेदकत्वोपगमस्याप्युलक्षणमिदम् । तेन घटाभावे घटाभावोऽस्तीत्यादिसाधारण्यमपि। **निषेधप्रतियोगित्वस्येति ।** परमार्थवृत्तित्वं निषेधे विवक्षणीयम्, तेन जडानुयोगिकभेदप्रतियोगित्वेऽपि

भारती

किञ्च स्वरूपसत्ता घटादि के स्वरूप से अतिरिक्त न होने से असत् घट का स्वरूप भी स्वरूप ही है । घट को असत् कहने का तात्पर्य यह तो है नहीं, कि असत् घट घट ही नहीं है । यदि असत् (सांवृत) घट का स्वरूप ही न हो तो "घटादिर्न" इस प्रकार निषेध भी किसका होगा क्योंकि आपके मत में असत्वेन (सांवृतत्वेन) अभिप्रेत घट तो है ही नहीं, अर्थात् स्वरूप से भी वह नहीं है । तस्माद् "यन्नास्ति नास्त्येव यत्वस्ति परमार्थतः तत्सत्यमन्यन्मिथ्येति न सत्यद्वयकल्पना" यह तार्किकों का सिद्धान्त है । (स्वरूप से विद्यमान वस्तु का ही निषेध किया जाता है, अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभाव तार्किक मत में नहीं माना जाता ।) अतः घटादि स्वरूप से विद्यमान रहते हुए ही असत् है । इसी प्रकार कारण रहते हुए भी असत् ही है । क्योंकि वह सांवृत (अविद्या के द्वारा कल्पित) है । पारमार्थिक न होने से उसे असत् कहते हैं । तार्किक इसे नहीं मानते, क्योंकि उनके मत में एक ही सत्ता (पारमार्थिक सत्ता) मानी जाती है ।)

शारदा

पारमार्थिकेऽसम्भवात् तस्याभावचतुष्टयाप्रतियोगित्वरूपापरिच्छेदवत्त्वात् । अघटादित्वात् = भवता घटादित्वेनानङ्गीकारात् । किञ्च घटादिध्वंससमये घटादिर्नास्तीति प्रतीतिर्जायते, स च घटादिः कालविशेषावच्छिन्नस्य सर्वदेशनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्याश्रयत्वादसन् उक्तप्रतीतिरपि तादृशप्रतियोगित्वरूपासत्त्वमेव घटेऽवगाहते । अतएव तदा घटोऽसन्नित्यपि सामानाधिकरण्यधीरुदेति, एवं च निरुक्तासत्त्ववतो घटादित्वानङ्गीकारे उक्तप्रतीतिद्वयं न स्यात् । न च मन्मते कालविशेषे घटस्य सत्त्वात् सम्भवस्तादृशप्रतीतेः भवन्मते तु कालानवच्छिन्नस्य तादृशप्रतियोगित्वस्यासत्त्वरूपत्वात् तादृशप्रतियोगित्ववतो न घटादित्वमिति वाच्यम् ; अन्यकालीनसत्त्वानुपयोगिताया अभिधास्यमानत्वात् । एवञ्च कालविशेषावच्छिन्नतादृशप्रतियोगित्वपक्षे यथा घटादित्वम् , तथा कालानवच्छिन्नतादृशप्रतियोगित्वपक्षेऽपीत्यर्थः। अत्र कल्पे मूलेऽसच्छब्दस्य कालविशेषावच्छिन्नतादृशप्रतियोगित्वमर्थः। घटादिर्नेति च घटादिर्ध्वस्त इत्यादेरप्युपलक्षणम्। ध्वंसप्रतियोगिन्यप्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वोपगमान्नानुपपत्तिः। एतेन चैतदप्युक्तम्—ध्वंसप्रागभावप्रतियोगित्वादेरनाधारत्ववारणायापि कालविशेषावच्छिन्नसर्वदेशवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्ववतो घटादित्वं वाच्यम्, अन्यथा घटादौ ध्वंसादिप्रतियोगित्वाद्यनुभवापलापापत्तिः, न हि ध्वंसप्रागभावप्रतियोगिता अन्यदेशनिष्ठघटादिनिष्ठा, तयोस्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वात् । तथा चासतो घटादित्वं सिद्धम् । किञ्च समवायेन भूतले घटो नास्तीति प्रतीतिविषयस्य देशविशेषसम्बन्धविशेषावच्छिन्नस्य सर्वकालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्याश्रयीभूतस्यापि घटादित्वं यथानुभवबलात्तथा देशविशेषाद्यनवच्छिन्नतादृशप्रतियोगित्वरूपासत्त्ववतोऽपि घटादित्वं किन्न स्यादनुभवसाम्यात् । सम्बन्धान्तरेण भूतले समवायेन वा देशान्तरे घटादिसत्त्वस्यानुपयोगिताया वक्ष्यमाणत्वात् । किञ्च देशकालान्तरस्थघटादेः प्रतियोगिप्रतीतावुपयोगः, त्वन्मते तु स नेत्येव त्वया वाच्यम्; तच्च न, प्रतीतेर्मयाप्यनपलापात्। एतेन प्रतियोगिप्रसक्त्यर्थं तदुपयोग इत्यपि निरस्तम् ; आरोपात्मकप्रसक्तेरभावधीहेतुत्वस्यानुभवविरोधेनाप्रामाणिकत्वाच्च, अभावशाब्दबोधे स्फुटं व्यभिचाराच्च । किञ्च "सर्वं हि वस्तु सदसदात्मना द्विविधम् , तद्यथा, यत्र सद्रूपेण वर्तते घटादि तत्तदा तत्र प्रत्यक्षादिभिरस्तीति प्रतीयते यत्र त्वसद्रूपेण वर्तते सद्रूपेण बोधकानां प्रत्यक्षादीनामभावेन तत्प्रमीयते" इति शास्त्रदीपिकोक्तेऽभावस्य विरोधभावान्तररूपत्वमते घटादिर्नासन्नित्यतोऽसदभिन्नभेदा-

राजहंसः

ब्रह्मणो न क्षतिः। परमार्थसदवृत्तिस्वरूपसम्बन्धेन वा वर्तमानस्य निषेधप्रतियोगित्वस्य परिच्छेदवत्त्वव्यवहार प्रयोजकत्वम् । निरूपितं चैतद्वाग्भङ्गीभेदेनाद्यपद्यप्रमेयोपपादने पुरा ।

किन्न स्यादनुभवसाम्यादिति । अस्माभिरपि निषेधमवगाहमानायां प्रतीतौ प्रतियोगितया घटादेरेवावगाहनस्यादर्तव्यत्वात् , अन्यथा घटादावसत्त्वसिद्धेरिति भावः।

विरोधिभावान्तरेति । अत्र विरोधित्वं प्रतियोगिनिरूपितम् । भेदस्थले च तादात्म्येन

अथ सदपि सत्तामनन्तर्भाव्य कारणम् , तदानीमसदपि तत्तथास्तु, सत्त्वासत्त्वयोः कारणकोट्यप्रवेशाविशेषात् । अथ न सत्ता

शारदा

भिन्नघटादिप्रतीतौ घटादेरसद्रूपस्य सिद्धिः, नीलो घट इत्यादौ विभक्तीनामभेदार्थकत्वस्य क्लृप्तत्वेन नञ्समभिव्याहारस्थलेऽपि तासां तथात्वात् , अतएव घटो न पट इत्यत्र पटाभिन्नघटसिद्धिरित्यद्वैतवादिनो वदन्ति। एवञ्चात्र कल्पे मूले घटादिर्नेत्येतत् घटादिरसन्नेत्यतत्परम् असत्त्वं च कालाद्यनवच्छिन्नेनात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन घटितम् ।

यत्तु-असन् घटादिर्न घटादिरित्यभिधानेनोद्देश्यतयाऽसद्घटसिद्धिः अनुद्देश्यकविधेयासम्भवात् , असति घटादित्वस्य घटादौ वाऽसत्त्वस्य निषेधेप्युद्देश्यत्वनिषेध्यत्वाभ्यां तत्सिद्धिरिति व्याख्यानम्; तदयुक्तम् घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावो देशत्वकालत्वव्यापकत्वाभाववानित्यादिरीत्यपि फलतो घटादावसत्त्वनिषेधोपपत्तेः, असत्त्वस्याखण्डस्याभावादिति दिक्। घटानधिकरणे घटप्रतीत्यनन्तरं 'असन्नेवाभाद्घट' इति बोधोदयादप्यसद्घटसिद्धिरित्यपि द्रष्टव्यम्, अनुभवस्य व्याख्यातुमनौचित्याच्च नान्यथा नयनमिति ।

''तामनिवेश्ये'' त्यादिग्रन्थेनासत एव कारणत्वमुक्तम् इदानीं त्वसतोऽपि कारणत्वसम्भवेन 'सत एव कारणत्वमि' त्यत्र साधकाभाव इत्यभिधातुमाह अथेति। **स्वरूपसदपि दण्डादिकं सत्तामनवच्छेदकीकृत्य दण्डत्वादिनैव कारणं भवति । तथा =**

राजहंसः

विरोधित्वमक्षतम् । अत्यन्ताभावस्थले चाभावाधिकरणरूपस्य भावान्तरपदार्थस्य प्रतियोगिविरोधित्वं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणत्वे पर्यवस्यति। प्रतियोगिरूपतालाभार्थं तु विरोधित्वमभावनिरूपितमपि विवक्षणीयम् । अभावस्य प्रतियोग्यनुयोगिभ्यां भेदाभेदयोर्भाट्टादिसम्मतत्वात् । अन्तरपदं तु स्वरूपोत्कीर्तनमात्रपरम् । न च तथापि वैयर्थ्यम् ; विरोधिरूपत्वमते भावान्तररूपत्वमते चेत्यर्थसम्भवात् । अत्र च क्रमेण प्रतियोगिरूपत्वमधिकरणरूपत्वं च लभ्यते, प्रतियोगिराहित्यलाभार्थं चान्तरपदम् । न चाभावस्य प्रतियोग्यात्मकत्वे विरोध एव कथमिति शङ्क्यम् । अभावत्वेन घटत्वादिना च विरोधात् ।

असदभिन्नभेदाभिन्नघटादीति। अत्राधिकं 'अभेदं नोल्लिखन्ती'तिकारिकाशारदायां परतो व्यक्तम् । ननु भवतु भेदस्यानुयोग्यभिन्नत्वम् , नात्राग्रहः, तत्त्वेन प्रतीति पुनर्न मृष्यामहे, प्रतियोग्यभिन्नत्वेन तु सुतराम् असत्प्रतियोगिकभेदानुयोगित्वेनैवोक्तधिया घटादिसमर्पणादिति चेन्न; प्रतियोग्यनुयोगिभावादेस्तावत्स्वरूपसम्बन्धरूपताऽऽवश्यिकी, अखण्डोपाधितावादस्य भेदभङ्गशारदादौ निरस्तत्वात्, स्वरूपसम्बन्धश्चाभेद एव पर्यवस्यतीति तत्रैवोपपादितं 'सम्बन्ध्यन्तरस्य तत्स्वभावप्रवेशा'दिति पङ्क्तिमधिकृत्य, एवं च मोद्रा[१]त्सार्वजनीना मतिरसदभिन्नभेदाभिन्नघटादिकमवगाहमाना, युक्तिप्रतिसन्धानाधीना तु धीरवगाहेतैव तमिति तावतैवाभीष्टाभ्युपपत्तिः ।

असतोऽपि कारणत्वसम्भवेनेति । अत्रापिना मिथ्यात्वविरुद्धसत्यत्ववतो न समुच्चयः,

भारती

यदि कहें कि कारण के स्वरूप सत् होने पर भी दण्डादिरूप कारण के स्वरूप में सत्ता का प्रवेश नहीं है अर्थात् सत्ता रहित ही वह दण्डत्वादिरूप से कारण पदवाच्य है। तो यह

१. उदितामास्तु -

कारणकोटिनिविष्टा, किन्तु कारणत्वं सत्त्वं नियतपूर्वसत्तां हि कारणतां मन्ये इति मन्यसे; तर्हि मत्पक्षेऽपि सैव कारणतास्तु । तर्हि कारणस्य सत्तामभ्युपगतवानसीतिघट्टकुट्यां प्रभातमिति चेन्न; भावानवबोधात् । सत्तामसतीमभ्युपगच्छतापि सत्ता मयाऽभ्युपगतैव,

शारदा

असत्तामनवच्छेदकीकृत्य दण्डत्वादिनैव तदस्तु = **कारणमस्तु, कारणकोट्यप्रवेशाविशेषात्= कारणतानवच्छेदकत्वाविशेषात् सत्त्वासत्त्वयोः कारणतानवच्छेदकत्वसाम्येऽपि सत एव कारणत्वं मन्तव्यमित्याशयेनाशङ्कते** अथ नेति । **सत्त्वेन दण्डादेः कारणत्वोपगमे कारणतावच्छेदकीभूतसत्ताया उपलक्षणत्वादिविषयकविकल्पावकाशात् कथितदिशाऽनवस्थादिकं स्यात्, अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यव्यापकतावच्छेदकीभूता यदवृत्तित्वविशिष्टा सत्ता तन्निष्ठा सा कारणतेत्युच्यमाने तु स्वस्य स्वानवच्छेदकत्वेन न सत्ता कारणतावच्छेदिका, तस्याश्च सामानाधिकरण्यादिसम्बन्धेन जात्यादावपि वृत्तेर्न तस्य कारणत्वानुपपत्तिः, एवञ्च सदेव कारणमिति स्थितम् । यद्यपि निरुक्तसत्त्वस्य कारणतात्मकत्वेऽपि घटत्वादाविव स्वविशिष्टादिवृत्तिविकल्पः सावकाशः, तथाप्येवमसतः कारणतामुपपादयतस्तन्निरासोऽप्रस्तुतचिन्तैव स्यात्, तादृशविकल्पस्य कारणतानिरासे एव पर्यवसानात्, अतएव निरुक्तकारणतामभ्युपेत्यैवाह** तर्हीति । घट्टेति । **शुल्कदानभिया सन्तमसानुसारिणि समये विहाय राजवर्त्म परिभ्राम्यतोऽपथेन प्रभाते राजवर्त्मगतशुल्कशालावाप्तिर्यथा, तथा सतः कारणतामपलपितुमीहमानस्यान्ते भवतोऽपि तस्या एवावाप्तिरित्यर्थः** । अन्यथेति । **विधेयताया उद्देश्यतानिरूपितत्वनियमात्सांवृतसत्त्वसमनियतासत्त्वनिष्ठविधेयताकोद्देश्यताश्रयतया सत्तोपगम आवश्यक इत्यर्थः । यद्यपि माध्यमिकमतेऽसत्ख्यात्युपनीतस्यापि सम्भवत्युद्देश्यता, वेदान्तिमतेऽपि परमतसिद्धस्याप्रामाणिकस्यापि**

राजहंसः

सिद्धान्ते मिथ्याभूतस्यैव कारणत्वात्, किन्तु परमतसिद्ध सत्तयोपलक्षितस्य, स एव चेह प्रतिबन्दिमाश्रित्यासत्तोपलक्षिततयोच्यमानोऽपि वस्तुतो मिथ्यैवेति ।

भारती

कथन युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में जैसे सत्ता को अनवच्छेदक (कारण के स्वरूप में विशेषणरूप से प्रविष्ट न) मानकर ही कारण मानते हैं वैसे असत्ता को भी अनवच्छेदक (कारण के स्वरूप में अप्रविष्ट) मानकर दण्डत्वादिरूप से ही कारण मान लीजिए, क्योंकि कारण के स्वरूप में सत्ता एवं असत्ता दोनों का ही प्रवेश नहीं है । यहाँ इस पूर्वोक्त पक्ष का यह निश्च्योत है कि - यदि कहें कि कारणकोटि (कारण के स्वरूप) में अवच्छेदक रूप से सत्ता का प्रवेश न होने पर भी हम कारण को सत् कहेंगे तो हम भी कारण कोटि में असत्ता का प्रवेश न होने पर भी कारण को असत् ही कहेंगे । क्योंकि कारण कोटि में सत्ता असत्ता दोनों का अप्रवेश समान है ।

भारती

(यहाँ यह अवश्य ध्यातव्य है कि अनन्यथासिद्धनियतपूर्वसत्त्व रूप कारणता नहीं मानी जा सकती, क्योंकि उसमें अनन्यथासिद्ध शब्द से अन्यथासिद्ध्यभावकूट प्रविष्ट है जो असर्वज्ञ दुर्ज्ञेय है । अत: तादृशकारणता न मानकर स्वरूपसम्बन्धविशेष ही कारणता है ।'' इस परामर्शग्रन्थगतगदाधरोक्ति का, अथवा-कारणपद का शक्यतावच्छेदक कारणत्व एक पदार्थान्तर ही है और वह कार्यभेद से या अवच्छेदकभेद से भिन्न-भिन्न होने पर भी कारणत्वत्वरूप अखण्डोपाधि के द्वारा अनुगत होता है । इत्यादि शिरोमणि के कथन का, अथवा ''कारणतावच्छेदकरूप ही कारणता है'' इत्यादि अन्य तार्किकों की उक्ति का यदि अनुसरण करें तो कारणत्व के सत्त्व घटित होने की शङ्का ही उदित नहीं होती । अत: पूर्वोक्तरीति से स्वरूपसत्त्वव्याप्यत्व ही कारणता में कहना होगा, और वह स्वरूपसत्त्व तो मेरे (खाण्डनिक के) मत में भी मानना सुलभ है । ऐसी स्थिति में विवाद का अवसर ही नहीं है । और यदि नियतपूर्वसत्त्वघटित कारणता भी मानें तो वह पूर्वसत्त्व पूर्ववृत्तित्व स्वरूप ही है।

इसी प्रकार विचार करने पर स्वरूपसत्त्व को भी घट रूप ही मानना होगा । क्योंकि यदि अस्तीतिप्रमाविषयत्वरूप स्वरूपसत् मानेंगे तो ''घट: सन्'' यह स्वरूपसत्त्वावगाहि प्रतीति चाक्षुष न होगी । यदि तादृशविषयत्वयोग्यत्वरूप कहें तो योग्यतावच्छेदक का निरूपण करना होगा, जो सम्भव नहीं है । यदि अर्थक्रियाकारित्वरूप मानें तो कारणता को ही कारणता का व्याप्य मानना होगा । इस स्वरूप सत्त्व को मिथ्यात्वविरोधिसत्त्वरूप भी नहीं कह सकते क्योंकि जिसका स्वरूपसत्त्वावगम ही घट सन् इत्यादि प्रत्यक्ष के द्वारा उल्लेख नहीं है । तस्मात् वर्तमानत्व रूप ही स्वरूपसत्त्व मानना होगा और वह तो ''वर्तते'' इति प्रतीतिसाक्षिक कालविशेषानुयोगिक सम्बन्धप्रतियोगित्वरूप ही होगा, उसमें भी प्रतियोगित्व के स्वरूपातिरिक्त दुर्वच होने से स्वरूपसत्त्व को घटरूप ही मानना होगा । जिसे भी हम मानते ही हैं ।)

यदि आप यह मानें कि-''सत्ता कारण के स्वरूप में प्रविष्ट नहीं है किन्तु- (सत्ता असत्ता दोनों के कारणतानवच्छेदक होने पर भी) हम कारण को सत् कहेंगे, क्योंकि कारणता सत्ता रूपा ही है । नियतपूर्वसत्ता (कार्य के अव्यवहित पूर्वकाल में नियम से विद्यमानता) को ही हम कारणता मानते हैं'' । तो उसी प्रकार की कारणता हमें भी स्वीकृत है । यदि कहें इस प्रकार (नियतपूर्वसत्तारूपकारणता) स्वीकार करने पर घट्टकुट्टी प्रभातन्याय आपतित होगा । अर्थात् राजकर (चुंगी) के भय से रात्रि में छिपने वाले मनुष्य का अदृष्टवशात् शुल्क गृह के सामने प्रभात होने से जैसे छिपना व्यर्थ है उसी प्रकार यहाँ सत्ता मान लेने से आप के द्वारा पूर्वकृतसत्तानिरास व्यर्थ है । तो यह आपका कथन युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि आपने हमारे भाव को नहीं समझा । भाव यह है कि सत्ता को असती मानते हुए भी हम सत्ता मानते ही हैं अन्यथा अर्थात् यदि हम सत्ता को सर्वथा न मानें तो असत् भी किसे

अन्यथा कासावसतीति, त्वमपि किं सत्तां तत्सत्तामन्तर्भाव्य कारणत्वमिच्छसि नत्वेवम् पूर्ववत्क्वापि सत्तात्यागो वा, अनवस्थायां वा पर्यवसानं स्यात् ।

असत्त्वाविशेषात्कारणनियमः कथं स्यादिति चेन्न, सत्त्वाविशेषेऽपि

शारदा

निषेधप्रतियोगित्ववदुद्देश्यतोपपत्तिस्तथापि सांवृतसत्तास्वीकारे न किमपि बाधकमिति भावः। ननु मदभिमता सत्ता सती कारणतारूपा, तादृशीञ्च तामुद्दिश्यासत्त्वविधाने व्याघात इत्याशङ्क्याह त्वमपीति । सत्तात्याग इति । **सत्ताविशिष्टसत्तायाः कारणतास्वरूपत्वे विशेषणीभूतसत्तायां सत्तान्तरधारायाः क्वचित्समाप्तौ मूलपर्यन्तमसत्त्वापत्तिः, अन्यथात्वनवस्था, स्वस्मिन्स्ववृत्तावात्माश्रयः, स्वरूपसत्त्वोपगमे इष्टापत्तिः, सांवृतस्य निःस्वरूपतानङ्गीकारादिति सत्स्वरूपां सत्तामुद्दिश्यासत्त्वविधाने बाधकाभावः, असत्त्वस्य कालसम्बन्धघटितत्वस्य बहुशो निवेदितत्वादिति भावः । वा पर्यवसानं = पर्यवसानं वा।**

कारणस्य सर्वदाऽसत्त्वाविशेषात्कार्यस्यान्यदापि जन्मप्रसङ्गः पूर्वं परिहृतः, इदानीं तु कारणस्य तत्त्वस्य च सर्वत्रासत्त्वाविशेषात्कार्यस्य सर्वत्रोत्पत्तिप्रसङ्गं परिहर्तुमसत्त्वस्यालीकत्वरूपताभिमानिमुखेनाशङ्कते असत्त्वेति । **कारणत्वं यद्यसद्वृत्ति स्यान्निरूपकविशेषनियन्त्रितं न स्यादलीकत्वमिति प्रसङ्गः, तथा च घटेच्छुस्तन्तूनप्युपादद्यात्। इदमुपलक्षणम्, कपालं यदि घटप्रतियोगिकत्रैकालिकात्यन्ताभाववत् स्यात् घटसमवायि**

राजहंसः

पर्यवसानं वेति । विकल्प्यमानार्थसमर्पकपदोत्तरं वाकारप्रयोगौचित्यं मत्वा विपर्यास आदृतः, अन्यथा सत्तात्यागे इति सप्तम्यन्तपाठोऽनुरोद्धव्यः स्यात्, तादृशपदयोर्हि समानविभक्तिकत्वमपेक्षितमिति भावः । **अप्रत्यक्षतापत्तिरिति ।** तयोरिति सम्बध्यते । सत्ताविशिष्टनिष्ठत्व इति । अन्वयस्येति भावप्रधानमिति भावः ।

भारती

कहेंगे ? (तात्पर्य है कि–असत्त्व के विधान के लिए उद्देश्य अवश्य मानना होगा, क्योंकि विधेयता किञ्चिन्निष्ठ उद्देश्यता निरूपित ही होती है अतः असत्त्वनिष्ठ विधेयता मानने से उद्देश्यता का आश्रय तथा सत्ता भी अवश्य मन्तव्य है ।)

(यदि कहें कि तार्किकाभिमत कारणता रूपा सत्ता तो सती है अतः उसे उद्देश्य बना कर असत्त्व का विधान करने पर आप को व्याघात दोष प्राप्त होगा तो यह कथन उचित नहीं है क्योंकि आप उस नियतपूर्वसत्तारूप कारणता को सती कह नहीं सकते कारण कि) आप भी यदि नियतपूर्वसत्ता को सत्ता का अन्तर्भाव कर कारणता मानें तो सत्ताविशिष्ट सत्ता को कारणतारूप मानने पर विशेषणीभूतसत्ता में सत्तान्तर धारा मानना होगा, धारा के कहीं विश्रान्त मानने पर मूलपर्यन्त की असत्ता प्राप्त होगी, और यदि धारा को कहीं विश्रान्त न मानें तो अनवस्था दोष आयेगा यदि स्वयं में स्वयं की वृत्तिता मानें तो आत्माश्रय दोष होगा ।

प्रश्न– यदि कारण असत् है तो असत्त्व के सर्वत्र समान होने से "घट के प्रति

तुल्यत्वात्, सत्त्वेऽस्त्यन्वयव्यतिरेकानुविधानं तस्य तज्जातीयस्य वा, त्वत्पक्षे त्वसत्त्वाविशेषाद्व्यतिरेकः, परं सोऽप्यनियतः, यदा कारणाभावस्तदा कार्याभावानभ्युपगमात्, नित्यासतः कारणस्यासत्त्वे एव कदाचित्कार्योत्पादाद् अन्वयस्तु न क्वचिदपीति चेन्न; तुल्यत्वात्,

शारदा

न स्यात् तन्तुवदिति प्रसङ्गोऽपि द्रष्टव्यः । तुल्यत्वादिति । **कारणत्वं यदि सद्वृत्ति स्यान्निरूपकविशेषनियन्त्रितं न स्यादात्मत्वादिवत् सप्रतियोगिकमात्रस्य पक्षसमत्वान्न व्यभिचार इति भावः । कपालपक्षकातिप्रसङ्गस्तु प्रागभावात्यन्ताभावयोर्विरोधस्याप्रामाणिकत्वादुभयोरप्येकत्र प्रत्यक्षेण मिथ्यात्वसाधकप्रमाणेन चोपहरणादनुपपन्नः, स्वरूपसत्त्वस्य प्रामाणिकत्वादिति बोध्यम् । कारणस्य सत्त्वे तत्र प्रत्यक्षसिद्धान्वयव्यतिरेकबलान्निरूपकविशेषनियन्त्रितत्वं प्राप्तं न निषेद्धुं शक्यमित्याशङ्कते** सत्त्वे इति **व्यक्तिविशेषयोः कार्यकारणभावग्रहाय** तस्येति, **सामान्यधर्मावच्छिन्नकार्यकारणभावग्रहाय** तज्जातीयस्येति । व्यतिरेकः= **उपादानकारणाभावसमानाधिकरणः कार्याभावः ।** अनियतः = **उपादानकारणाभावनिष्ठव्याप्त्यनिरूपकः। अनियतत्वे हेतुमाह** यदेति। **नित्यासतः = त्रैकालिकात्यन्ताभावप्रतियोगिनः।** असत्त्वे इति। **कार्याव्यवहितप्राक्क्षणे इत्यादिः ।** कदाचित् = **सामग्रीसमवधानदशायाम्।** कार्योत्पादादिति। **यद्यपि कारणवत्कार्यस्याप्यसत्त्वाद्व्यतिरेकः स्फुटः, कार्यस्य स्वरूपसत्त्वे च कारणस्यापि**

भारती

कपाल कारण है'' पट के प्रति तन्तु कारण है'' इत्यादि कारण का नियम कैसे होगा । (यहाँ प्रश्नकर्ता को असत्त्व में अलीकत्वरूपता का भ्रम है)

समाधान– कारण के सत्त्वपक्ष में भी यह आपत्ति समान ही है । अर्थात् सत्त्वपक्ष में भी घट के प्रति कपाल ही कारण है रासभादि नहीं यह नियम कैसे बनेगा । क्योंकि सत्त्व तो सर्वत्र समान है ।

(यहाँ सत्कारणवादि शून्यवादि के प्रति ''कारणत्वं यदि असद् वृत्तिः स्यान्निरूपकविशेषनियन्त्रितं न स्यादलीकत्ववत्'' ऐसा यदि आपादन करता है तो शून्यवादि भी तार्किक के प्रति–''कारणत्वं यदि सद्वृत्तिः स्यात् निरूपकविशेषनियन्त्रितं न स्याद् आत्मवत्'' इस प्रकार आपादन कर सकता है । अतः आपत्ति के उभयमततुल्य होने से सत्त्वासत्त्व से तटस्थ ही कारणता माननां चाहिए ।)

प्रश्न–सत्त्वपक्ष में दण्डादि या दण्डत्वादिजातीय पदार्थ में कारणता का निश्चायक अन्वय–व्यतिरेक (कपाल सत्वे घटसत्त्वं, कपालाभावे घटाभावः) है । आप के असत्त्व पक्ष में तो असत्त्व के सर्वत्र सम होने से कथञ्चित् केवल व्यतिरेक ही बन सकता है किन्तु वह भी नियत (निश्चित) नहीं है, क्योंकि ''यदा कारणाभावस्तदा कार्याभावः'' (जब उपादान कारण का अभाव हो तब कार्य का भी अभाव हो) ऐसा आप नहीं मान सकते । आप के मत में नित्य असत् अर्थात् त्रैकालिकात्यन्ताभावप्रतियोगि स्वरूप कारण के असत्त्व करते हुए ही कदाचित् (सामग्री समवधानदशा में) घटादि कार्य

अन्वयो नास्तीत्यभ्युपगच्छताप्यन्वयोपगमाद् अन्वयस्यापि सत्तान्तर्भावने कथितदोषापत्तेः ।

शारदा

तत्तुल्यम्, तथापि कार्यासत्त्वं विस्मृत्येयं शङ्का । नेति । **सर्वदेशकालगतात्यन्ताभावप्रतियोगिनः सत्त्वव्याघातादित्यभिमानः ।** तुल्यत्वादिति । **कारणवत्कार्यस्याप्यसत्त्वाविशेषाद्व्यतिरेकसम्भव इत्यर्थः । न चैवं तयोर्व्यतिरेकस्य सार्वदिकत्वादप्रत्यक्षतापत्तिः, तुल्यत्वात् तवमते कार्यकारणयोरुभयोरपि परमार्थत्वेन सार्वदिकत्वापत्त्या सर्वदैव प्रत्यक्षापत्तिर्व्यतिरेकानुपपत्तिश्च, परमार्थस्यात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वात् । स्वरूपसत्त्वमेव परमार्थत्वमभिमतं न तु त्रिकालाबाध्यत्वमविनाशित्वनियतं भवन्मतसिद्धमिति चेत्स्वरूपसत्त्वस्य ममापि तुल्यत्वादन्वयव्यतिरेकयोः प्रत्यक्षस्य च तुल्यत्वात्, अत एवासत्त्वाविशेषात्सर्वकार्य-कारित्वप्रसङ्गोऽपि निरस्तः, दृष्टानुसारेणैव कारणत्वकल्पनात्, अन्यथा पटादेः कपालादिजत्वापत्तिस्तवापि तुल्या, सत्त्वतौल्यात् । कथितदिशा च तवापि कारणस्यासत एव पर्यवसानादूक्तशङ्कासमाधेस्तवापि तुल्यत्वात् । त्वन्मुखेनैव चान्वयः सिद्ध इत्याहान्वय** इति । **अप्रसिद्धप्रतियोगिकाभावस्य त्वयाऽनङ्गीकारादिति भावः । अन्वय इति नियतव्यतिरेकस्याप्युपलक्षणम् । ननु मन्मते प्रसिद्धः सदन्वयो मया तव मते निषिद्ध्यत इति नाप्रसिद्ध प्रतियोगिकत्वम्, भवता त्वन्वयेऽसत्त्वमुपेयते इत्यत आहान्व**यस्येति सत्तान्तर्भावने = **सत्ताविशिष्ठनिष्ठत्वे** । कथितेति । **अन्तर्भावितसत्त्वं चेदितिकारिकोक्तेत्यर्थः ।**

भारती

उत्पन्न हो जाते हैं। अन्वय तो कदापि नहीं मान सकते। (क्योंकि कारण की सत्ता होना ही नहीं है। (यहाँ यद्यपि कारण के समान कार्य भी असत् ही है अत: व्यतिरेक स्पष्ट है और यदि कार्य की स्वरूपसत्ता मानी जाय तो कारण की भी स्वरूपसत्ता मानी जा सकती, ऐसी स्थिति में अन्वय व्यतिरेक बन सकता है। तथापि कार्य के असत्त्व का विस्मरण प्रयुक्त यह पूर्वपक्ष है।)

समाधान– कारण के समान कार्य का असत्त्व भी सर्वत्र सम ही है व्यतिरेक बनने में कोई आपत्ति नहीं है एवं "अन्वय नहीं है" इस प्रकार कहने वाले को अन्वय भी मानना ही होगा (अन्यथा उसका निषेध नहीं बनेगा) (यदि कहें कि मेरे (तार्किक) मत में सदन्वय प्रसिद्ध है उसका आप के मत में निषेध करता हूँ। अत: निषेध किया जा सकता है तो आपका कथन युक्ति विरुद्ध है क्योंकि) अन्वय के स्वरूप में सत्ता का प्रवेश करने पर अर्थात् सत्ताविशिष्ट अन्वय को सत् कहने पर–"अन्तर्भावितसत्त्वं चेत्" इत्यादि कारिकोक्तदोष आपतित है। (सत्ताविशिष्ट अन्वय को सत् कहने पर– सत्ता के एक होने पर आत्माश्रय, दो होने पर अन्योन्याश्रय, तीन होने पर चक्रक, चार होने पर अनवस्था प्राप्त है एवं सत्तारहित अन्वय को सत् कहने पर व्याघात है।)

एतेन– ''आशामोदकतृप्ता ये, ये चोपार्जितमोदकाः ।
रसवीर्यविपाकादि तुल्यं तेषां प्रसज्यते ।।''

इत्यस्यापि बाधकत्वमाशामोदकायते । सत्तान्तर्भावानन्तर्भावाभ्यां प्रत्यादेशात्, आशामोदकादिनाऽपि च रसवीर्यविपाकादिजननात्।

शारदा

एतेन = **वक्ष्यमाणेन**। उपार्जितमोदका: = **जीर्णीकृतमोदकाः**। रस: = **स्वादः**, विपाको = **बलम्** । प्रसज्यते इति । **असतः कारणत्वोपगमे इत्यादिः । यदि कारणत्वमसन्मात्रवृत्ति स्यात् आशामोदकवृत्ति स्यात्, असत्त्ववत् रसादिकारणत्वं यदि मोदकपदव्यवहार्य्यमात्रवृत्ति स्यादाशामोदकवृत्ति स्यात्, मोदकपदव्यवहार्यत्ववदिति भावः**। बाधकत्वमिति । **असतः कारणत्वोपगमे इत्यादिः** । आशामोदकायते इति। **अप्रामाणिकमित्यर्थः। प्रामाणिकत्वञ्चात्र मनोवृत्तिविशेषविषयत्वम्, आशामोदके साक्षिभास्ये तदभावात् क्यर्थसादृश्योपपत्तिः। अकिञ्चित्करत्वेन सादृश्यं तु सन्दर्भविरुद्धम् आशामोदकस्य साधकताया ग्रन्थकृताऽङ्गीकारात्**। सत्तेति। **कारणत्वं सत्ताविशिष्टे सत्तोपलक्षिते सत्तोपहिते वा वर्तते इति विकल्प्य सतः कारणत्वस्य प्रत्यादेशात्, तथाचोक्ततर्कस्य विपर्ययापर्यवसानादाभासत्वम् । इष्टापत्त्यापि तमाभासयति** आशेति । **मानसशक्तिविशेषशालिनो जनस्य भावनाविशेषसहकृतेनेत्यादिः। व्यावहारिकमोदकादेरपि मन्दाग्नित्वाभावादिरूपसहकारिविशेषसापेक्षत्वं तुल्यमिति भावः। स्वाप्निकमोदकादिना**

राजहंसः

रसः स्वादः[१] सारश्चेति । किट्टाख्यासारभागभिन्नो भुक्ताहारस्य साराख्यो भागो लोहितादिहेतुः प्रसिद्धश्चरकादौ । माधुर्याद्यनुभवात्मकारस्वादस्तत्प्रयुक्तानन्दश्च मोदकजीर्णीकारस्य यद्यपि न फलम्, तथापि रसनेन्द्रियसम्प्रयोगद्वारैव सम्भवता जीर्णीकारेण तादृशसम्प्रयोगोऽप्याक्षिप्यत एवेति रसशब्देन स्वादोक्तिरपि नासङ्गता ।

क्यर्थसादृश्येति । आशामोदककर्तृकाचारतुल्याचारस्य क्यङन्तलभ्यतया सादृश्यस्य तद्घटकतया क्यङर्थत्वम् । 'कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः' 'बलेषु हस्तिबलादीनि' (योगदर्शने) 'अमृतत्वं विषं याति सदैवामृतवेदनात् । शत्रुर्मित्रत्वमायाति मित्रसंवित्तिवेदनात् । (योगवासिष्ठे– उत्पत्ति० सर्ग ६०) इत्यादिपारमर्षपरामर्शान् निदर्शनतां गमयन्नाह **मानसशक्तिविशेषशालिन इति।**

भारती

इन्हीं दूषणों के कारण आप का यह बाधक भी है कि–''यदि असत् ही कारण हो तो कल्पना के मोदक से तृप्त एवं व्यावहारिकमोदक से तृप्त दोनों का रस (आस्वाद) वीर्य एवं बल तुल्य उत्पन्न होने चाहिए'' आशामोदक (अप्रामाणिक) ही है । क्योंकि सत्तान्तर्भाव एवं सत्तानन्तर्भाव के द्वारा सत्कारणता का हम खण्डन कर चुके हैं ।

किञ्च मानसशक्तिविशेषसम्पन्न मानव के भावनाविशेषादि से सहकृत कल्पनामोदकादि के द्वारा भी रसवीर्य बलादि की उत्पत्ति होती ही है । एवं जाग्रत् मोदक के समान स्वाप्निकमोदक से भी स्वप्न में रसादि की उत्पत्ति होती ही है ।

[यहाँ तात्पर्य यह है कि सत्कारणवादि असत्करणवादि के प्रति – यदि कारणत्वम् सन्मात्रवृत्तिः स्यात् आशामोदकवृत्तिः स्यात् असत्त्ववत् (यदि कारणता असत्मात्रवृत्ति हो

१. टीकायां रसः स्वाद इत्यत्र रसःस्वादः सारश्चेति पाठो द्रष्टव्यः ।

शारदा

स्वप्ने रसादिजननात् तस्य जाग्रदवस्थायामननुवृत्तिस्तु व्यावहारिकमोदकाद्यधीनरसादेः स्वप्नेऽननुवृत्त्या तुल्या, अन्यथा स्वप्ने दौर्बल्याद्यननुभवापत्तेः, स्वाप्नानुभववज्जाग्रदनुभवेऽपि भ्रमत्वं तुल्यम् स्वप्नार्थस्य दृश्यमानस्य शुभादिधीजनकत्वं च दृष्टमित्यादिकमपि द्रष्टव्यम्। अत्रेदम्बोध्यम् – यद्यपि मोदकाशादेरेव सत्यस्य रसादिहेतुत्वं वक्तुं शक्यम्–तथापि विषयतया जनकतावच्छेदकत्वरूपं प्रयोजकत्वं मोदकादौ निराबाधम् । मतद्वयं चात्र वेदान्तिनाम्, अद्वैतसिद्धिकारपर्यन्ता हि ज्ञानस्य कारणत्वे तत्र विषयस्यापि विशेषणत्वेन कारणत्वमाहुः, असति बाधक उपलक्षणत्वकल्पनापेक्षया विषयस्य विशेषणताया अभ्यर्हितत्वेन कल्पयितुमुचितत्वात्, अतएव परामर्शचिन्तामणौ श्रीमदुदयनाचार्यमतोपपादनावसरे 'अनुमितिं प्रति लिङ्गपरामर्शस्य हेतुत्वे लिङ्गमपि हेतुः, विशिष्टकारणताग्राहकमानेन बाधकं विना विशेषणस्यापि कारणताग्रहात्, न च लिङ्गं परामर्शपरिचायकत्वेनान्यथासिद्धम्, परिचेये विशेषणान्तराभावेन लिङ्गमेव विशेषणम्, तथाचानन्यथासिद्ध-त्वात्तदपि हेतुः, अन्यथा परिचायकतया संयोगेनान्यथासिद्धमिन्द्रियमपि प्रत्यक्षकारणं न स्यादि' त्युक्तम्, यद्यपि ज्ञानत्वस्यानुगतत्वेन तत्तज्ज्ञानव्यावर्तकत्वासम्भवेऽपि तत्तद्व्यक्तित्वस्य तत्तद्विषयकत्वरूपस्य व्यावर्तकत्वसम्भवात्तद्व्यावृत्तस्यैव ज्ञानस्य हेतुतासम्भवः, तथापि तत्तद्व्यक्तित्वस्या-साधारणधर्मरूपत्वेन तत्तद्विषयकत्वव्यावर्तकतत्तद्विषयरूपत्वस्यापि सम्भव इति सिद्धं विषयस्य कारणत्वम् । रज्जुसर्पादिविषयकत्वेनापि ज्ञानस्य कारणत्वे च तेन रूपेण तस्य मिथ्यात्वात् सिद्धं मिथ्याभूतस्य कारणत्वम्, एवञ्चैतन्मते कालसम्बन्धित्वरूपं तुच्छवैलक्षण्यमेव कारणताव्यापकं, कारणतावच्छेदकं तु कपालत्वादिकमेवेति नालीकस्य कारणत्वप्रसङ्गः, न वा तन्तूनां घटकारणत्वप्रसङ्गः । लघुचन्द्रिकाकारप्रभृतयस्तु प्रातीतिकस्य कारणत्वे व्यावहारिकरजतत्वरूपकारणतावच्छेदकवतस्तुच्छविलक्षणस्य च शुक्तिरजतस्यापि कटकादिकारणत्वापत्त्या व्यवहारकालाबाध्यत्वविशिष्टस्यैव रजतस्य कारणताया

राजहंसः

आहुरिति । अत्रमतेऽस्वरसबीजं त्वनुपदं चन्द्रिकाकारमतोपन्यासे व्यक्तम् । **विशेषणताया अभ्यर्हितत्वेनेति** । प्रकृतविधेयान्वयित्वनिबन्धनमभ्यर्हितत्वम् ।

भारती

तो आशामोदकवृत्ति भी होनी चाहिए) इस प्रकार विरुद्धतर्करूप बाधक दिया था ।

तर्कस्थल में जो व्याप्य दल होता है वह आपादक होता है और व्यापकदल आपाद्य होता है; जैसे निर्वह्निः "स्यात् निर्धूमः स्यात्" यहाँ पर निर्वह्नि अर्थात् वह्न्यभाव व्याप्य है अतएव वह आपादक है । निर्धूम अर्थात् धूमाभाव व्यापक है अतएव वह आपाद्य है । व्यापकाभावात् व्याप्याभाव नियमानुसार आपाद्यव्यतिरेक निश्चय से आपादकाभाव का निश्चय होता है उदाहरण स्थल में धूमाभावाभाव = (धूम) निश्चय से वह्न्यभावाभाव (वह्नि) का निश्चय होता है । इसी प्रकार प्रकृत तर्क में पूर्वपक्षी–कारणता में आशामोदकवृत्तित्वाभावरूप आपाद्यव्यतिरेक निश्चय के द्वारा असन्मात्रवृत्तित्वाभाव का निश्चय करना चाहते थे । किन्तु वह सम्भव न हो सका । कारण कि विपर्ययापर्यवसान तर्क का एक दोष है, जिसे खाण्डनिक

तदसत्कथं कार्यं स्यादिति चेन्न; सत्तामन्तर्भाव्य कार्यत्वोपगमे कारणवत्कार्येऽप्युक्तदोषस्य, अनन्तर्भावे वाऽविशेषस्य पूर्ववदावृत्तेः,

शारदा

वाच्यतया, क्लृप्तत्वात् व्यवहारकालाबाध्यत्वमेव कारणताव्यापकम् एवं सति प्रातीतिकविषयकत्वेन ज्ञानस्यापि प्रातीतिकत्वात् तेन रूपेण न तस्य कारणत्वसम्भवः, अपि तु रजतत्वादिप्रकारताकत्वेनैव, रजतत्वस्य प्रातीतिकस्याभावात् तादृशरूपावच्छिन्ने कारणताव्यापकस्योक्तरूपस्य सत्त्वात्, यद्यपि ज्ञानस्य प्रातीतिकत्वे एव विषयस्य प्रातीतिकत्वं ज्ञानस्य व्यावहारिकत्वे एव च विषयस्य व्यावहारिकत्वम् , ज्ञानानुसारित्वाद्विषयस्य, तथाच रजतत्वप्रकारताकस्य रजतमिति ज्ञानस्यापि प्रातीतिकत्वमिति कथं व्यावहारिकस्यैव कारणत्वम्, तथापि वृत्तिरूपज्ञानस्यैव प्रातीतिकत्वं न तु रजतत्वप्रकारताकस्य चिद्रूपज्ञानस्येति तस्यैव व्यावहारिकस्य कारणत्वमित्याहुः। तद् = सद्भिन्नस्य कारणत्वसम्भवेऽपीत्यर्थः। कथमिति। **''अध्यस्तक्षणयोगस्य क्षणयोगो जनिर्मते''त्युक्तेरुत्पत्तेः समयसम्बन्धघटित-**

राजहंसः

प्रातीतिकविषयकत्वेनेति । अविद्यावृत्तेस्तावत्स्वरूपत एव प्रातीतिकत्वम् , नितरां तु प्रातीतिकविषयकत्वेन, चिद्रूपज्ञानस्यापि तु तथात्वेन प्रातीतिकत्वमेवेति भावः ।

प्रातीतिकस्याभावादिति । व्यावहारिकरजतत्वप्रकारकेच्छाधीनप्रवृत्त्युपपत्तये तद्भानस्य प्रातिभासिके अवश्योपेयत्वे प्रातीतिकमात्रवृत्तिरजतत्वकल्पने मानाभावः। अधिकं तु प्रागुक्तमेव।

इत्याहुरिति। एवं चात्र मते आशामोदकस्थलेऽपि मोदकत्वप्रकारकचिद्रूपज्ञानेनैवाभीष्टसिद्धेर्न प्रकृतमूलासङ्गतिरिति । प्राहुरिति तु नोक्तम् , तत्तद्रजतसर्पादिनिष्ठविशेष्यतायाः कारणतावच्छेदकानन्तर्भावे विजातीयसुखभयकम्पादिकं नोपपद्येत, नहि विजातीयपरिमाणादि विशिष्टरजतसर्पादिदर्शनैरेकजातीयमेव सुखभयादिकं जन्यते, उक्तविशेष्यतायाः कारणतावच्छेदकान्तर्भावे तु न चिद्रूपज्ञानस्यापि तेन रूपेण व्यावहारिकत्वं नियन्तुं शक्यत इत्यस्वरससद्भावात् । एवं च यथानुभवं विशिष्यैव कार्यकारणभावोऽभ्युपगन्तुमुचित इति तत्त्वम् ।

अध्यस्तक्षणयोगस्येति । स्वाधारसमयध्वंसानाधारः स्वाधारश्च यः समयस्तद्योग इति फलतो लब्धव्यम् ।

भारती

पूर्वपक्षप्रदर्शित तर्क में - आशामोदकादि के द्वारा भी रसवीर्यविपाकादि की उत्पत्ति का कथन कर दिखाया है । इससे उक्त तर्क आभास होने से कारणता में असन्मात्रवृत्तित्वाभाव अर्थात् सत्कारणतावाद का साधक नहीं है । अतएव उस तर्क में असत्कारणतावाद के प्रति बाधकत्व भी अप्रामाणिक है ।

प्रश्न– कारण के असत् होने पर भी कार्य असत् कैसे हो सकता है । क्योंकि कार्य कृतिजन्य होता है और जनि (उत्पत्ति) आद्यक्षणसम्बन्धरूप है। अतः असत् (सर्वदेशकाल-वृत्तिअत्यन्ताभावप्रतियोगि) का कालसम्बन्ध सम्भव नहीं है, अतः वह कार्य कैसे होगा ।

समाधान– यदि सत्ता का अन्तर्भाव कर कार्यता स्वीकार करें तो कारण के समान कार्य को सत् मानने में पूर्वप्रदर्शित आत्माश्रयादि दोष प्राप्त होंगे और यदि कार्यता

तस्मात् -

पूर्वसम्बन्धनियमे हेतुत्वे तुल्य एव नौ।
हेतुतत्त्वबहिर्भूतसत्त्वासत्त्वकथा वृथा ।।५।।

शारदा

त्वात्सर्वदेशकालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगिनश्च समयसम्बन्धासम्भवात्कथं कार्यत्वमिति भावः। अनिर्वाच्यत्वान्यथानुपपत्त्या त्वयापि कार्ये तादृश-प्रतियोगित्वं, प्रत्यक्षबलाच्च समयसम्बन्धोऽपि स्वीकार्य इत्यनुशयेनाह सत्तामिति । अन्तर्भाव्य = **विशेषणीकृत्य** । उक्तदोषस्य = **आत्माश्रयानवस्थादेः।** अनन्तर्भावे = **सत्तोपलक्षिते कार्यत्वोपगमे** । अविशेषस्य = **आवयोरसत्कार्यतावादिताया अविशेषस्य । उपाधिपक्षोऽपि कथितदिशैव निरास्यः।** तस्मात् = **कारणताव्यापकस्य स्वरूपसत्त्वस्य व्यवहारकालाबाध्यत्वस्य वोभयमतेऽप्यविशिष्टत्वात्** । पूर्वसम्बन्धनियमे हेतुत्वे = **अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यव्यापकत्वरूपे कारणत्वे आवयोस्तुल्ये सति** हेतुतत्त्वबहिर्भूतयोः = **कारणत्वाघटकयोः सत्त्वासत्त्वयोः कथा वृथा, यद्यपि देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगिनि कार्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नत्वरूपं कार्यव्यापकत्वं नोपपद्यते, न च भेदघटितं व्यापकत्वं निर्वाच्यम् तदत्यन्ताभाववति तद्वद्भेदस्यापि ध्रौव्यात्, तथापि प्रतियोगिविरोध्यत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिसमसत्ताकात्यन्ताभावस्य**

राजहंसः

कारणताव्यापकस्य स्वरूपसत्त्वस्येति। कालसम्बन्धितारूपतया प्रागभिहितस्य ।

प्रतियोगिविरोध्यत्यन्ताभावस्येति। ईदृशाभावघटितव्यापकता दण्डादौ प्रतियोग्यन्यूनसत्ताकात्यन्ताभावघटितमिथ्यात्वपक्षेऽपि सम्भवति, परन्तु व्यावहारिकाभावस्यापि मिथ्यात्वार्थं व्यावहारिकाभावान्तरोपगमेऽनन्ताभावस्वीकारप्रसङ्गेन प्रथमस्यैव ब्रह्मरूपतया तात्त्विकत्वमुररीकार्यमित्याशयेन प्रतियोग्यधिकसत्ताकात्यन्ताभावघटितमिथ्यात्वादरं दर्शयितुं व्यापकतागर्भे प्रतियोगिसमसत्ताकाभावनिवेशः। यद्यप्येवमपि प्रतियोगिविरोध्यत्यन्ताभावघटितव्यापकतैवादरणीया, उभयविधमिथ्यात्वपक्षे दण्डादौ सङ्गमात् लाघवाच्च, न च प्रतियोगिविरोधित्वस्य प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यात्मनः प्रतियोगिसमसत्ताकत्वं व्यवहारकालाबाध्यत्वादिघटितमूर्तिकमपेक्ष्य लघुत्वं भवतु, प्रतियोगिसत्तापहारकत्वापरपर्यायप्रतियोगिविशेष्यकसत्यत्वप्रकारकमतिप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयितानिरूपकतावच्छेदकधर्मवत्त्वात्मनस्तु तदपेक्ष्य

भारती

के स्वरूप में सत्ता का अन्तर्भाव न कर कार्यता स्वीकार करें तो सुतरां कारण के समान कार्य भी असत् ही सिद्ध होगा। (अनिर्वाच्यत्व की अन्यथानुपपत्ति से कार्य में तादृशप्रतियोगित्व एवं प्रत्यक्ष होने से समयसम्बन्ध दोनों आप (तार्किक) को भी मानना होगा।) तस्मात् (व्यवहारकाल में अबाधित होने मात्र से ही कारणत्वादि व्यवहार के उभयसम्मत होने से (यही निर्णय है कि–)

पूर्व सम्बन्धनियम हेतुता अर्थात् अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन विद्यमानतारूप कारणता उभयसम्मत (आप एवं मेरे दोनों के मत में स्वीकृत) होने से कारणता के स्वरूप से बहिर्भूत सत्त्व एवं असत्त्व का विचार करना व्यर्थ है।

आस्तां प्रतिबन्दिग्रहाग्रहः, कथं पुनरसतः कारणत्वमवसेयम्, प्राक्सत्त्वनियमस्य विशेषस्यानभ्युपगमात्, असत्त्वस्य चाविशेषादिति चेन्न; ''इदमस्मान्नियतप्राक्सदिति'' बुद्ध्या विशेषात् ।

शारदा

वाऽप्रतियोगित्वं व्यापकत्वे निवेश्यम्, आदृतश्चाव्याप्यवृत्तेर्व्यापकत्वोपपत्तये तार्किकैरपि प्रतियोगिविरोधित्वस्य निवेशः। मिथ्यात्वप्रयोजकाभावस्य तु प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेन तदविरोधित्वात् प्रतियोग्यधिकसत्ताकत्वाद्वा न व्यापकत्वहानिकरत्वम् । पारमार्थिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य मिथ्यात्वघटकत्वे तु कपालत्वादेरनवच्छेदकत्वात्तदवच्छिन्ने व्यापकता यथाश्रुतेऽपि सम्भवतीति बोध्यम् ।

बहिर्भूतत्वं वृथात्वे हेतुः, कारणस्य सत्तायाः पारमार्थिक्या अनपेक्षणीयत्वात् मिथ्याभूतायाश्चापेक्षणीयाया ममापि सम्भवादिति भावः।

आस्तामिति। **प्रतिबन्दिस्वीकारे** आग्रहस्त्यज्यतामित्यर्थः। प्राक्सत्त्वनियमस्य = अनन्यथासिद्धत्वसमानाधिकरणं कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यव्यापकतावच्छेदकं यद्वृत्तित्वविशिष्टसत्त्वं तत्त्वस्य सत्त्वं च पारमार्थिकम् । अनभ्युपगमादिति **'पूर्वसम्बन्धनियमे'** इत्यनेन पारमार्थिकसत्त्वघटितकारणतायास्त्वयाऽनभिधानादन्यथाऽपसिद्धान्तात् । अविशेषात् = सर्वदा सर्वासत्त्वविशेषात् कस्य कं प्रति कारणत्वमित्यत्र नियामकाभावात्, मन्मते च यदव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेनानन्यथासिद्धस्य यस्य नियमेन सत्त्वं तं प्रत्येव तस्य कारणत्वमिति शक्यं नियन्तुम् । न च ममापि स्वरूपसत्त्वमादाय नियमसम्भव इति वाच्यम्; अपारमार्थिकस्य स्वरूपसत्त्वस्याप्रामाणिकत्वात्, अन्यथा तुच्छेऽपि स्वरूपसत्ताङ्गीकारप्रसङ्गादित्यभिमानः। यद्यपि कथितदिशा स्वरूपसम्बन्धादिरूपमेव

राजहंसः

गुरुत्वमेव दण्डादौ व्यापकत्वानिर्वाहकत्वं च, मिथ्यात्वघटकीभूताभावस्योक्तविरोधित्वाक्रान्तस्य प्रतियोगित्वादेव दण्डादेरिति वाच्यम् अग्रे स्वयं प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यात्मन एव प्रतियोगिविरोधित्वस्याभिहितत्वात्, तथापि प्रतियोगिसमसत्ताकात्यन्ताभावस्य वाऽप्रतियोगित्वमित्यत्र वाकारस्यनास्थायां व्याख्याने न कश्चिद्दोष इति ।

भारती

प्रश्न – प्रतिबन्दि (अनुपपत्ति साम्य) के द्वारा उत्तर देने के आग्रह (हठ) का परित्याग करें । यह बतावें कि असत् में कारणता का ज्ञान कैसे होगा। क्योंकि असत् में कारणता का ग्राहक कोई प्रमाण नहीं है । प्राक्सत्त्वनियम अर्थात् अनन्यथासिद्धत्वसमाधिकरणकार्याव्यवहित प्राक्क्षणावच्छेदेन सत्त्व (पारमार्थिक) रूप विशेष को आपने स्वीकार नहीं किया और असत्त्व तो सभी असत् पदार्थों में समान है अतः कौन किसके प्रति कारण है इसका नियामक नहीं है ।

समाधान – "इदम् अस्मात् नियत प्राक् सत् (यह कपालादि अनन्यथासिद्ध होते हुए इस (घटादि) से नियम से पूर्व में सत् (विद्यमान) है") इत्याकारक बुद्धि ही नियामक है। (अर्थात् इस प्रकार की बुद्धि जिसके विषय में होगी वही उसके प्रति कारण है इस प्रकार कारणता का निश्चय हो जायेगा ।

भ्रान्तैवम्बुद्धिगोचरेऽतिप्रसङ्ग इति चेन्न; यादृश्या हि धिया त्रिचतुरकक्षाबाधानवबोधविश्रान्तया वस्तुसत्त्वनिश्चयस्ते, तादृश्यैव

शारदा

कारणत्वं वाच्यम् तच्चोक्ताभिमानस्य निराकृतत्वात् मन्मतेऽपि सम्भवतीति वक्तुं शक्यते तथाप्यभ्युपेत्यवादेनाह इदमस्मादिति। नियतेति। **अनन्यथासिद्धेत्यादिः। तथा च तादृशबुद्धिमुख्यविशेष्यत्वं कारणत्वम् । यद्यपि परमार्थसत्त्वं क्वापि कारणे नास्ति ब्रह्मणोऽकारणत्वात् ब्रह्मगतसत्त्वं च कारणे दण्डादौ न प्रत्यक्षीभवितुमलम् , त्रैकाल्यघटितत्वात् योगजधर्मातिरिक्तालौकिकसन्निकर्षानभ्युपगमात् कारणताप्रत्यक्षात्पूर्वं नियमेन त्रैकाल्योपनये मानाभावाच्च, तथापि सत्त्वमखण्डमेव तादृशधीविषयः, घटः सन्नित्यादावपि तथैव, तच्चाद्वैतमते ब्रह्मरूपमेव पर्यवस्यतीत्यन्यदेतत् , यदाहुः ''सा जातिः सा महासत्ता तामाहुस्त्वतलादय'' इति, सति चैवं सत्तादात्म्यवति कारणत्वसिद्धावपि त्रिकालाबाध्यत्वरूपपारमार्थिकत्ववति न तत्सेद्धुमलमिति निगर्वः। न चैवमपि तादृशबुद्धिघटितत्वात्तदग्रहे कारणताव्यवहारानुपपत्तिः, सर्वत्र व्यवहारात्प्राक्तद्ग्रहणस्य शपथैकनिर्णेयत्वात् , तादृशधीमुख्यविशेष्यतायोग्यतानिवेशे चावश्योपेक्षणीययोग्यतावच्छेदकस्यैव कारणतौपयिकत्वमुचितमिति वाच्यम् ; व्यवहारकालाबाध्यत्वस्यैव योग्यतावच्छेदकत्वात्तस्यैव कारणतौपयिकत्वे तात्पर्यात् । तात्पर्यमिदमजानानः शङ्कते** भ्रान्तेति। **भ्रान्त्यात्मिका या तादृशी बुद्धिस्तद्विषये घटकारणे रासभादावित्यर्थः। विचारस्य त्रिचतुरकक्षासु व्यवहारकाले इति यावत् बाधानवबोधः अकारणत्वाग्रहः, तेन विश्रान्तया = अग्रहीताप्रामाण्यया धिया। रासभे घटाकारणताधीस्तु**

राजहंसः

ब्रह्मगतसत्त्वं चेति। त्रिकालाबाध्यत्वस्य कालानवच्छिन्नबाधकज्ञानाविषयत्वरूपतायां कालत्वव्यापकबाधकज्ञानाविषयत्वरूपतायां वा दण्डादौ दुर्ग्रहत्वं स्पष्टमेवेति प्रागुक्तम् , यथाश्रुते त्वाह **त्रैकाल्यघटितत्वादिति**। बाधस्य प्रमात्वघटिततया न सर्वत्रासुलभमुपनयमनुपास्य प्रत्यक्षता सम्भाव्येत्यपि द्रष्टव्यम् ।

न तत्सेद्धुमलमिति । विरुद्धस्वभावयोरभेदरूपतादात्म्यस्यासम्भवेनाध्यासिकमेव तत्सम्भवत्र प्रपञ्चे पारमार्थिकत्वसमानासनासीनतामास्वादयितुमलमिति भावः।

तात्पर्यादिति । विशिष्य व्यवहारकालाबाध्यत्वसमानाधिकरणकपालत्वादेर्योग्यतावच्छेदकत्वेऽपि सामान्यतो व्यवहारकालाबाध्यत्वस्यैव तथात्वमुचितमुक्तम् , कारणतौपयिकत्वं तु कारणताव्यवहारमुपधायकत्वं च प्रति प्रयोजकत्वम् । एवं च तादृशबुद्धिमुख्यविशेष्यत्वमेव

भारती

प्रश्न - यदि किसी को किसी अकारण (रासभादि) में भी इस प्रकार से भ्रमात्मक बुद्धि हो जायेगी तो उस (रासभादि) में भी कारणता का निश्चय होने लगेगा।

समाधान- तीन-चार कक्षापर्यन्त अर्थात् व्यवहारकाल में जिस वस्तु का यह ''वस्तु नहीं है'' इस प्रकार बाधज्ञान (अभावज्ञान) नहीं होता है तादृश वस्तु-विषयक ज्ञान के द्वारा जैसे आप (तार्किक) के मत में वस्तु की सत्ता का निश्चय किया जाता है । वैसे ही तीन-चार

विषयीकृतस्य ममापि कारणतानिश्चयः, केवलं ततः परास्वपि कक्षासु बाधात्पूर्वभ्रान्तिसम्भवेन न तावता सत्त्वावधारणं वयं मन्यामह इति विशेषः ।

शारदा

व्यवहारकालीनबाधग्रहेण गृहीताप्रमाण्येति भावः। यद्यपि व्यवहारकालो यदि प्रतीतिकालस्तदातिप्रसङ्गस्तदवस्थः, प्रवृत्तिकालस्तु प्रवृत्त्यभावस्थलेऽव्याप्तिसम्पादकः, ब्रह्मचरमधीतः प्राक्कालस्तु परस्य तादृशधियोऽप्रसिद्ध्याऽप्रसिद्धः, तथापि प्रामाणिकानां यत्र यन्निरूपितकारणताव्यवहारस्तस्य तं प्रति कारणत्वं मन्तव्यम् स्वीक्रियते च तार्किकैरपीत्थमेव, अन्यथाऽन्यथासिद्ध्यभावकूटस्य दुर्ज्ञेयत्वात्, तादृशकारणताकाल एव च व्यवहारकालः, एतत्सूचनायैव मूले यादृश्येति पदमुपात्तमिति न कश्चिद्दोषः। बाधात् = स्वप्रकारकधीविशेष्यताव्यापकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रकारकप्रमातः, तादृशप्रमाविषयत्वमेव बाध्यत्वम्, तादृशप्रमा च मिथ्यात्वेन स्वयं बाध्याऽपि बाधिका स्वाप्नबाधग्रहेण जाग्रद्बाध्येन बाध्यस्य स्वप्नपदार्थस्य तात्त्विकत्वादर्शनाच्च न तात्त्विकत्वापत्तिः। नन्वेवं व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वरूपं व्यावहारिकप्रामाण्यं कारणताबुद्धौ तवाभिमतम्, तथा च बाध्यत्वस्य प्रमात्वघटितत्वादात्माश्रय इति चेन्न; प्रमात्वस्य व्यवहारविशेषसाक्षिकजातिरूपत्वात्, भ्रमत्वमपि तथैव, साङ्कर्यञ्च न जातिबाधकम्। ज्ञातसत्ताकविषयिणी या धीः, याच चिन्मात्रविषयिणी धीस्तदन्यज्ञानत्वं व्यावहारिकप्रमात्वमित्यपि पारिभाषिकं प्रमात्वं निर्वक्तुं शक्यते, विकल्पस्तु न ज्ञानमिति बोध्यम् । पूर्वभ्रान्तिसम्भवेन = **पूर्वग्रहस्य भ्रान्तित्वसम्भवेन** । सत्त्वावधारणम् = **परमार्थसत्त्वावधारणम्** । **युक्तिमिति शेषः।**

राजहंसः

कारणत्वमितिपक्षस्त्यक्तः, अतएव 'तादृश्यैव विषयीकृतस्ये' त्यादिमूलेन तयोर्भेदो ध्वनितः। अग्रे टीकायां 'तादृशमुख्यविशेष्यतायाः कारणतारूपायाः' इत्युक्तिस्तु शङ्कितुरभिमानेनेतिभावः।

जातिरूपत्वादिति । धर्मिण्यनागन्तुकानुगताखण्डधर्ममात्रस्य जातिपदव्यवहार्यतोचिता तार्किकसरणिमनादृत्यैवेति तत्त्वम् । प्रकर्षघटिततया प्रमात्वस्याखण्डतायामनुभवविरोधो यदि कस्यचित्स्यात्तदा सद्विषयकज्ञानत्वं प्रमात्वमिति प्रमात्वखण्डनशेषे शारदायामुपपादितः पक्षः पुरस्कर्तव्यः।

भारती

विचारकक्षापर्यन्त अर्थात् व्यवहारकाल में जिस (कपालादि) वस्तु में कारणत्वाभाव का ज्ञान नहीं होता, तादृशवस्तु (कपालादि) विषयक — उक्तज्ञान (यह कपालादि इस घटादि से नियत पूर्व सत् है) के द्वारा ही मेरे (खाण्डनिक) मत में भी कारणता का निश्चय हो जाता है। केवल अन्तर इतना ही है कि आप (तार्किक) तावन्मात्र (व्यवहारकाल में अबाधित ज्ञानमात्र) के द्वारा ही वस्तु की पारमार्थिक सत्ता मान लेते हैं, और हम (खाण्डनिक) व्यवहारकाल से अग्रिमकाल (तत्त्वज्ञानकाल) में बाधज्ञान (स्वप्रकारकधीविशेष्यनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रकारकप्रमा) होने से पूर्वज्ञान में भ्रान्तित्व का निश्चय करते हैं । इसलिए तावन्मात्र (व्यवहार काल में अबाधितज्ञानमात्र) से तद् विषय वस्तु की पारमार्थिक सत्ता का निश्चय नहीं करते ।

परदर्शनसिद्धान्तस्य भूरिकक्षाधाविनोऽपि ततः परकक्षा-बाध्यमानत्वेनातथाभावोपगमात् । अन्यथैकदर्शनपरिशेषः स्यात् । एतेन—असत्त्वाविशेषेऽपि कथं कस्यचित्पक्षस्य त्रिचतुरकक्षाधावित्वमास्ताम्—इत्यपि निरस्तम् ।

शारदा

त्रिचतुरविचारकक्षास्वबाध्यमानस्याग्रेऽपि कथं बाध इत्याशङ्क्याह परदर्शनेति। **परो बौद्धादिः। दर्शनम् = आध्यात्मिकशास्त्रम्** सिद्धान्तस्य = **सन्मात्रे क्षणिकत्वादेः। धाविनः = अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितस्य। झटित्येव तन्मतबाधे बौद्धाधिकारादिनिबन्ध-प्रणयनप्रयासविफलतापत्तेः।** बाध्यमानत्वेन = **अप्रामाण्यप्रकारकप्रमास्कन्दितत्वेन।** अतथाभावोपगमात् = **अतात्त्विकत्वोपगमात् , नैयायिकादिनेति शेषः** । अन्यथा = **विचारीयभूरिकक्षास्वबाधमात्रेण तात्त्विकत्वोपगमे** । स्यादिति । **सर्वदर्शनसिद्धान्तानां कासुचित्कक्षासु बाधाग्रहात्तात्त्विकत्वप्रतीतौ कस्यापि तत्र विवादासम्भवात्सर्वैः स्वीकार्यत्वेन सर्वसम्मतमेकमेव दर्शनं स्यादिति भावः।** एतेनेति । **घटादौ क्षणिकत्वग्रहस्य शुक्तौ रजतत्वग्रहस्य चासत्यत्वाविशेषेऽपि नैयायिकादिनाऽऽद्ये त्रिचतुरकक्षासु बाधविरहस्य, द्वितीयस्मिंश्च तासु बाधस्य स्वीकारेण मन्मतेऽपि दर्शनान्तरीयसिद्धान्तानामसत्यत्वाविशेषेऽपि**

राजहंसः

व्यावहारिकप्रमात्वमिति। सुखादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिस्तु न चोदनीया, अज्ञाननिवर्तकबोधे एव प्रमात्वव्यवहारेण तत्राप्रमात्वस्येष्टत्वात् । अखण्डसत्ताश्रयविषयकज्ञानत्वरूपं प्रमात्वं तु वक्ष्यमाणं तत्साधारणमेव। प्रकृतलक्षणे सुखाद्यविषयकज्ञातसत्ताकविषयकधीभिन्नत्वनिवेशेन तु न निर्वाहसम्भावना, तस्य पुरुषान्तरे सुखादिभ्रमेऽतिव्याप्तिग्रस्तत्वात् ।

युक्तमिति शेष इति। अन्यथा मूले 'न तावता सत्त्वं वयं मन्यामह' इति 'न तावता सत्त्वं वयमवधारयाम' इति वा वक्तव्यं स्यात् । अत्र वयमिति शब्दो विचारकौशलरूपविशेषवति सङ्क्रान्त इति तद्व्यर्थता नाशङ्कनीया ।

भारती

यदि जिज्ञासा हो कि - त्रिचतुरकक्षा पर्यन्त अबाधित का पश्चात् बाध कैसे हो सकता है तो आपके यहाँ बौद्धाधिकार में - बौद्धदर्शन के सन्मात्रक्षणिकत्वसिद्धान्त में त्रिचतुरकक्षापर्यन्त बाधग्रह (अप्रामाण्यज्ञान) न होने पर भी अग्रिम कक्षा में बाधग्रह (अप्रामाण्यप्रमा) हो जाने से आपने उसे अतात्त्विक ही माना है। अन्यथा (यदि त्रिचतुरकक्षा में अबाधित होने मात्र से तात्त्विक मान लिया जाय तो) सभी दर्शनों के सिद्धान्त कतिपयकक्षा में अबाधित होने से उनके तात्त्विकत्वप्रतीति में किसी का भी विवाद न ही होना चाहिए । तथा च सर्वसम्मत एक ही दर्शन सिद्ध हो जायेगा ।

इससे आप का यह प्रश्न भी निरस्त हो गया कि- "असत्त्व के सर्वत्र सम होने पर भी किसी का त्रिचतुरकक्षापर्यन्त बाधग्रह नहीं होता है और किसी का उन्हीं कक्षाओं में बाधग्रह होता है" यह वैलक्षण्य कैसे होगा? क्योंकि घटादि में क्षणिकत्वग्रह एवं शुक्ति में रजतत्वग्रह दोनों के असत्य होने पर भी आप (नैयायिक) ने ही घटादि में क्षणिकत्वग्रह को त्रिचतुरकक्षा में अबाधित तथा शुक्ति में प्रतीत रजत को सद्यबाधित माना है ।

अनेवम्बुद्धिविषयतादशायां को विशेष इति चेत् ; यदा कदाचित्तादृशबुद्धिविषयतैव अन्यथा कथय कथमन्यदातनतादृशबुद्धिविषयतयाऽन्यदा सत्त्वं स्यात् । तदा सत्त्वमन्यदास्थेन गृह्यते इति चेत् ; अन्यकालिकमेव तर्हि तत् तदातनकारणत्वोपयोगीति समानम्।

शारदा

कस्यचित्सिद्धान्तस्य तासु बाधस्य, कस्यचिच्च तद्विरहस्य सम्भवेनेत्यर्थः। अनेवम्बुद्धिविषयतादशायां = **इदमस्मान्नियतप्राक्सदितिबुद्धिमुख्यविशेष्यतायाः कारणतारूपाया विरहदशायां कारणेऽकारणात्को विशेषः, तादृशबुद्ध्यभावदशायां कारणत्वं न स्यादिति भावः। निरुक्तविशेष्यतायोग्यताविवक्षणीयेत्याशयेनाह** यदेति। **अत्र तात्पर्यमुक्तमेव।** अन्यथा = **योग्यतानिवेशानादरे।** अन्यदातनतादृशबुद्धिविषयतया = **उत्तरकालिकसत्त्वप्रकारकबुद्धिविषयतया अन्यदा = पूर्वकालिकं ।** स्यादिति। **सुषुप्तौ सत्त्वज्ञानाभावेन तव मते पदार्थमात्रासत्त्वप्रसङ्गादिति भावः।** तदा सत्त्वं = **कस्याश्चित्सत्त्वबुद्धेर्विरहकालिकं सत्त्वम्।** अन्यदास्थेन = **अन्यकालिकेन सत्त्वबुद्धिविशेषेण।** गृह्यते = **विषयीक्रियते । इदमुपलक्षणम्, तदातनपुरुषान्तरीयबुद्ध्या गृह्यते इत्यपि द्रष्टव्यम् । तव मते तु कालान्तरेऽसत्त्वादेव कथं तत्र कारणत्वधीविषयतेति भावः। इदानीमसत्त्ववत्यपि यथा मन्मते कारणत्वधीस्तथाकालान्तरेऽपि तादृशे तादृशेधीरित्याह** अन्येति । **तत् = कारणत्वधीविषयत्वम् ।** तदातनेति । **तादृशज्ञानाभावकालिकेत्यर्थः।**

राजहंसः

उत्तरकालिकसत्त्वप्रकारकबुद्धीति । सत्त्वमस्तित्वसाधारणमिह प्रविष्टमित्याशयेनोत्तरत्वपूर्वत्वे विवक्षिते, इदानीन्तनास्तित्वप्रत्यक्षप्राक्क्षणेऽस्तित्वाभावे सन्निकर्षाभावेन घटादौ प्रत्यक्षविषयत्वस्याप्यभावापत्तेः। मिथ्यात्वविरुद्धसत्त्वविवक्षणे तूत्तरत्वपूर्वत्वयोः परस्परोपलक्षणत्वमपि द्रष्टव्यम् । **उत्तरकालिकेति ।** शब्दसिद्धिप्रकारस्त्वनुपलब्धिखण्डनशारदाराजहंसे द्रष्टव्यः ।

भारती

प्रश्न– "इदम् अस्मात् नियत प्राक् सत् " इस प्रकार की बुद्धि के अभावदशा के कारणता का ग्राहक कौन होगा।

समाधान– यदा कदाचित् तादृशबुद्धि (इदं अस्मात् नियतप्राक् सत्) विषयता की योग्यता ही कारणता की ग्राहिका है । अन्यथा (अन्यकालिक तादृशबुद्धिविषयता की योग्यता को कारणताग्राहक न मानें तो) आप (तार्किक) के मत में भी उत्तरकालिक "इदम् अस्मात् नियत प्राक् सद् आसीत् " ईदृशबुद्धिविषयता के द्वारा पूर्वकालिक सत्त्व का निश्चय कैसे मानेंगे ।

यदि कहें कि किसी तादृशबुद्धि की विरहदशा में भी अन्यकालिक अथवा तत्कालीन पुरुषान्तरीय तादृशबुद्धि विषयता के द्वारा सत्त्व का ग्रहण हो जायेगा। तो आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि इसी प्रकार अन्यकालिक कारणताबुद्धिविषयता ही अन्यकालिक कारणताग्रह की उपयोगी सिद्ध हो जायेगी ।

तदेतत्संवृतिसत्त्वमिति गीयते । असती सा न विशेषिका, सती सा नेष्टेत्यभिसन्धानेन संवृतिरपि सती न वेति पृच्छन् प्रतिवक्तव्यः, विज्ञानं तावद्व्यवहारोपपादकतया द्वाभ्यामप्यनुमतं, तस्यापि जिज्ञासायां त्रिचतुरकक्षाविश्रान्तगवेषणस्य यदि सत्तोपपन्ना भविष्यति, तदा सता

शारदा

तदेतत् = **व्यावहारिकप्रमात्ववद्विषयत्वम् व्यवहारकालाबाध्यत्वमिति यावत्।** संवृतिः = **अविद्या भ्रमरूपा तत्सिद्धं सत्त्वम्** । गीयते इति । **बौद्धैरिति शेषः । यद्यपि तन्मते मरीच्युदकस्य व्यवहारकाले बाध्यस्यापि संवृतिसत्त्वम्, तेनैव दृष्टान्तेन घटादौ तत्साधनात् अलीकत्वं तु खपुष्पादेरेव, तथापि तन्मतसाधारण्याय कालसम्बन्धित्वं संवृतिसत्त्वं बोध्यम्। वस्तुतस्तु तदेतदित्यस्य तदेतदपीत्यर्थः** । सा = **संवृतिः** । न विशेषिका = **न व्यवहारौपयिकी।** नेष्टेति । **तस्या सत्त्वे माध्यमिकस्य सर्वशून्यत्वभङ्गः अद्वैतिनश्चाद्वैतभङ्गः; यदाह–"माया सती चेद् द्वयतत्त्वसिद्धिरथासती हन्त कुतः प्रपञ्चः । मायैव चेदर्थसहा च तत्किं माता च बन्ध्या च भवत्परेषामिति"** । जिज्ञासायां = **सत्त्वासत्त्वजिज्ञासायां** । त्रिचतुरेति । **त्रिचतुरज्ञानबलेनैव निवृत्ततादृशजिज्ञासस्येत्यर्थः । विज्ञानसत्ताया अपि संवृतिसत्त्ववादे विज्ञानान्तराधीनत्वादनवस्थितविज्ञानप्रवाहोपगमे च सुषुप्त्याद्यभावापत्त्या विज्ञाने सत्त्वासत्त्वजिज्ञासा कतिपयविज्ञानैरेव स्वपूर्वपूर्वविज्ञानविषयकैर्निर्वर्तनीयेति भावः ।**

राजहंसः

तादृशज्ञानाभावकालिकेत्यर्थ इति । एवं च योग्यतानिवेशादर उभाभ्यामपि कार्यो बुद्धिविरहकालीनसत्त्वकारणत्वसाधारण्यायेतिभावः । कालसम्बन्धित्वस्येह संवृतिसत्त्वरूपत्वे मूले प्रस्तुतस्य बुद्धिविशेषविषयत्वस्य सर्वथा तिरस्क्रिया स्यादित्यस्वरसादाह **वस्तुतस्त्विति ।**

भवत्परेषामिति । स्याद्वादमञ्जर्यां जिनं प्रस्तुत्येदम्, तथा च जिनभिन्नानामित्यर्थः । वेदान्तिनामिति तात्पर्यम् ।

भारती

इस प्रकार व्यावहारिक प्रमा के द्वारा सिद्ध होने वाले व्यवहारकालाबाध्यत्वरूप सत्त्व को ही बौद्ध लोग संवृत्तिसत्त्व (आविद्यकसत्त्व) कहते हैं ।

वह संवृत्ति (अविद्या) अनिर्वचनीया है, क्योंकि यदि उसे असत् (अलीक) माना जाय तो वह व्यवहार की उपपादक न होगी । (क्योंकि अलीकपदार्थ के द्वारा व्यवहार की उपपत्ति नहीं देखी जाती) और उसे (अविद्या) सती मानना भी हमें इष्ट नहीं है । (क्योंकि उसे सत्य मानने पर हमारे (माध्यमिक) सर्वशून्यत्ववाद का भङ्ग हो जायेगा, और अद्वैतवादि के अद्वैत की हानि हो जायेगी" । अनुसन्धाता के द्वारा "संवृत्ति भी सती (सत्य) है या नहीं" इस प्रकार पूछे जाने पर उसे समझाना चाहिये कि—"विज्ञान व्यवहार का उपपादक है" यह हम दोनों को स्वीकृत है । उस (विज्ञान) की भी यदि सत्त्वासत्त्वविषयिणी जिज्ञासा हो तो—त्रिचतुरकक्षा पर्यन्त विचार के द्वारा विश्रान्त सत्त्वासत्त्वविषयिणी गवेषणा वाले पुरुष को यदि उस विज्ञान की सत्ता सिद्ध हो जाय, तो उस सत् विज्ञान के द्वारा उसके व्यवहार की उपपत्ति हो जायेगी,

तेनेदमुपपादितं भविष्यति, अथासत्ता तस्य पर्यवसास्यति तदाऽसतैव तेनेदमुपपाद्यते इति स्वीकर्तव्यम्, भ्रमविषयेणेव भ्रमे विशिष्टताव्यवहारः।

शारदा

नन्वेवमन्तिमविज्ञानासत्त्वे मूलपर्यन्तमसत्त्वापत्तिरत आहाथेति। **इदन्तु बोध्यम्, एवं व्याख्याने विज्ञानसत्तोपपत्तेः सम्भावनाया एवासम्भवात् 'यदि सत्तोपपन्ना भविष्यतीति' ग्रन्थासङ्गतिः, तस्माद्विज्ञानं सद् जनकत्वादित्यादि परेण वाच्यम्, विज्ञानं न सद् बाधयोग्यत्वादित्यादि च खाण्डनिकेनेत्येवं त्रिचतुरविचारकक्षासु यदि सत्त्वसिद्धिस्तदा सत्त्वं मत्त्वैव विचार आरब्धव्यः, अन्यथा विज्ञानसत्त्वासत्त्वविचारे एव समययापनेऽभीष्टविचारो न स्यात्। विश्रान्तगवेषणस्य = निवर्तनोचितसत्त्वासत्त्वजिज्ञासस्येत्येव व्याख्येयम्** । तेन = **विज्ञानेन** । इदम् = **व्यवहारादि** । स्वीकर्तव्यमिति। **विज्ञानसत्त्वासत्त्वविचारस्य प्रारिप्सितकथानौपयिकत्वेन तत्रौदासीन्यस्यैवोचितत्वादिति भावः। भ्रमविषयेण = असत्संसर्गेण । प्राचीनतार्किकैः शुक्तिरजतसंसर्गस्यासत्त्वोपगमादिदमुक्तम्, युक्तं चैतत्, संसगस्य सत्त्वे भ्रमत्वानुपपत्तेः, विशेष्यताव्यधिकरणप्रकारकत्वस्यापि विषयसम्बन्धसापेक्षत्वात्, अन्यथेदम्विषयतारजत-विषयतयोर्निरूप्यनिरूपकभावासङ्गतेः, यदाहुस्तर्कप्रकरणे गदाधराः "नहि ययोः सम्बन्धो न भासते तद्विषयतयोर्निरूप्यनिरूपकभावो दृष्टचर" इति, सम्बन्धस्य सम्बन्धिभिन्नत्वनियमात् तद्रूपत्वं त्वप्रामाणिकम् , एवञ्च संसर्गासत्त्वस्वीकारे क्लृप्तत्वादन्यांशेऽप्यसत एव भानं युक्तम्, अन्यदेशस्थरजतभानकल्पनस्य कुसृष्टित्वात्, अपरोक्षत्वान्यथानुपपत्त्याऽनिर्वाच्यविषयकत्वं वा कल्पनीयमिति सद्भिन्नविषयकत्वमेव भ्रमस्येति भावः** । विशिष्टताव्यवहारः = **पुरोवर्तिनि रजततादात्म्यविषयकं ज्ञानं घटादिज्ञानाद्भिन्नमिति व्यावृत्तिव्यवहारः । तथाच व्यावृत्तिग्रहजनकग्रहविषयत्वरूपं व्यावृत्तिप्रयोजकत्वमसति तवापि सम्मतम्, किन्तु तवालीकेऽपि संसर्गे यदि तत् तदा**

राजहंसः

नन्विदमर्थरजतयोस्तादात्म्यमिह प्रथते, तच्च नातिरिक्तम्, तथा च तद्द्वयमात्रभानं नापराध्यति, तत्राह सम्बन्धस्य सम्बन्धिभिन्नत्वेत्यादि । **अप्रामाणिकमिति** । अन्यथा तटस्थयोरपि विशिष्टबुद्धिविषयतापत्तेः, सम्बन्धस्य सम्बन्धिभिन्नत्वे च तदीयसम्बन्धस्यापि प्रतियोग्यनुयोगिभावात्मनो भाने तस्य सत्त्वे प्रमात्वस्यासत्त्वे त्वसत्ख्यातेरापत्तेः, एतच्च वितत्य परतो 'न तु रजतत्वमात्रेऽप्रामाण्य'मिति प्रत्यक्षखण्डनपङ्क्तिशारदायां सामान्यनिरुक्तिनिरासशारदायां च वाच्यमिति नेहायस्तम् ।

भारती

और यदि तादृश पुरुष को उस (विज्ञान) की असत्ता सिद्ध हो जाय, तो असत् उस विज्ञान के द्वारा ही व्यवहार की निष्पत्ति हो जायेगी'' यही मानना चाहिए । जैसे भ्रमस्थल में तार्किक भी भ्रम के विषय (असत्संसर्ग) के द्वारा विशिष्ट व्यवहार की उपपत्ति स्वीकार करते हैं । (वैसे ही असत् ज्ञान के द्वारा भी व्यवहार की उपपत्ति हो जायेगी ।

अविचार्यैव तावत्तस्य सदसत्त्वं विचार आरब्धव्यः, अन्यथा प्रथममेव मतिकर्दमे कथारम्भणमशक्यमापद्येत, स्वीकृतं च भवतापि भविष्यदादिविषये विज्ञाने विशिष्टव्यवहारनिदानत्वमसतो विषयस्य,

---

शारदा

मम सांवृतेऽपि तत्किं पाणिपिहितम्, न हि सदुपरागस्यासति सम्भवः। ननु विज्ञानशब्देनात्र संवृतिरेव ग्राह्या, तस्या एव व्यवहारोपपादकत्वाक्षेपात्, न चैवं द्वाभ्यामित्यसङ्गतम् अद्वैतिसम्प्रदायसिद्धभावरूपानाद्यनिर्वाच्याविद्यायाः परेणानुपगमेऽपि भ्रमरूपसंवृतेरुपगमात्, तादृशाविद्याया अपि भ्रमद्वारैव व्यवहारोपपादकत्वाच्च, किन्तु भ्रमस्य विसंवादिव्यवहारजनकतायाः परमतसिद्धत्वेऽपि संवादिव्यवहारस्य प्रमाधीनत्वोपगमात्कथं तादृशव्यवहारस्य संवृत्या द्वाभ्यामुपगमः सङ्गच्छते इति चेत्सत्यम्, अतएव संवृतिशब्दमपहाय विज्ञानशब्दः प्रयुक्तः, संवादे विसंवादे वा सर्वोऽपि व्यवहारो विज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताक इत्यस्य निर्विवादत्वात्, तच्च विज्ञानं भ्रमो वा प्रमा वेत्यन्यदेतत्, संवृतिसत्त्ववादे पुनर्व्यवहारजनकज्ञानमात्रस्य भ्रमात्मकत्वात् संवृतेरेवासत्या व्यवहारजनकत्वं पर्यवस्यति विज्ञानमात्रासत्त्वसिद्धाविति भावः। असच्छब्देन मूले परमार्थसद्भिन्नं सर्वत्र विवक्षितम्, नत्वलीकमिति न विस्मरणीयम्। सदसद्भिन्नत्वरूपा तृतीया कोटिस्तु साधयिष्यते इति न सत्त्वासत्त्वान्यतरनिबन्धनो दोष इति। तस्य = **विज्ञानस्य।** सदसत्त्वमविचार्यैव = **असत्त्वं सिद्धमिव कृत्वेति यावत्, खण्डनयुक्तिभिर्ब्रह्मातिरिक्तस्य सांवृततायाःसेत्स्यमानत्वात्, असतः साधकतोपपादनस्यैवेदानीं विवक्षितत्वात्।** विचारः = **प्रमाणादेरसत्त्ववादिना सह कथा। अन्यथा कथां प्रति विज्ञानसदसत्त्वान्यतरसिद्धेर्हेतुत्वे।** मतिकर्दमे = **कथां विना विज्ञाने सत्त्वादिसाधने मतेः कुण्ठतत्वे। अन्योन्याश्रयादिति भावः। यदि विज्ञानं सन्न स्यादसाधकं स्यादित्यत्र व्यभिचारं वदन्नेवासतः साधकतामुपपादयति** स्वीकृतमिति। **आदिनाऽतीतं ग्राह्यम्।** विज्ञाने विशिष्टव्यवहारनिदानत्वं = **विज्ञानविषयकमितरव्यावृत्तिव्यवहारं प्रति प्रयोजकत्वं तादृशव्यावृत्तिग्रहजनकग्रहविषयत्वमिति यावत्, अज्ञातस्याव्यावर्तकत्वात्।**

राजहंसः

सिद्धमिव कृत्वेति। मूले भ्रमविषयेणेवेतिदृष्टान्तेनासतोऽपि साधकता सम्भाविता, नत्वसत एवेति निर्धारिता, अन्तर्भावितसत्त्वं चेदित्यादिदिशापि सत्ताविशिष्टस्य कारणत्वपक्षेऽसत्त्वं न तूपाधिपक्षे, तथा च साधकतया निश्चितेऽपि ज्ञाने नासत्त्वनिश्चयसम्भव इत्याशयेनात्रेवकारप्रयोगः। टीकोक्तप्रकारेण तु कारणीभूतज्ञानेऽसत्त्वं निश्चितमेव, पारमार्थिके कारणताया निरस्तत्वात्।

भारती

एवञ्च उस विज्ञान के सत्त्वासत्त्व का विचार न करके ही प्रमाणादिअसत्त्ववादि के साथ विचार का आरम्भ करना चाहिए। अन्यथा (यदि उस विज्ञान के सत्त्वासत्त्व का निर्णय कर विचार का आरम्भ करना चाहें, अर्थात् विचारारम्भ के प्रति विज्ञान के सत्त्वासत्त्वान्यतरसिद्धि को यदि हेतु मानें तो) विचारारम्भ ही न हो सकेगा, क्योंकि अन्योन्याश्रय दोष के कारण विचारारम्भ के पूर्व ही विज्ञान के सत्त्वादिसाधन में आपकी मति कुण्ठित हो जायेगी और आप (तार्किक) ने भी "घट होगा पट था" इत्यादि

कारणशक्तेश्च विशेषकमसदेव कार्यम् । न च कालान्तरसम्बन्धिनी सत्ता तस्यैकत्र, अन्यत्र नान्यदापीति वैधर्म्यमेतयोरपीति वक्तव्यम्;

शारदा

असतः = व्यवहारकालेऽसतोऽतीतादेः । कारणशक्तेः = अतिरिक्तपदार्थस्य कारणत्वस्य वा । विशेषकं = व्यावर्तकं असदेव प्रागभावप्रतियोग्येव । यद्यप्येवमसद्विषयकज्ञानस्य सत एव व्यावृत्तिधीजनकत्वमायाति विषयस्य तु जनकतावच्छेदकत्वमेव विषयितासम्बन्धावच्छिन्नं तथापि ज्ञानस्याप्यसद्विशेषितरूपेणासत्त्वमेव वाच्यम्, तथाचासत एव जनकत्वम् । किञ्च प्रतियोगिता ज्ञानीयविषयता वा यथाऽसति तथा जनकताऽपि स्यात् , जनकता यदि सत्येव दृष्टा तदा विषयत्वादिकमपि तथैवेति तुल्यम् , घटो ध्वस्तः, घट उत्पत्स्यते इत्यादिप्रतीतिबलादसत्येव यदि प्रतियोगित्वादिकं तथा प्रमाणबलात्सिद्धमिथ्यात्वेपि कारणता प्रतीतिबलादेवेति तुल्यम् , ध्वस्तस्यापि केनचिद्रूपेण यदि सत्त्वं तदा प्रपञ्चास्याप्याधिष्ठानात्मना सत्त्वमिति तुल्यम्, माध्यमिकेनापि प्रतीतेरनपलापात्प्रतीयमानरूपेण सत्त्वं तन्मतेऽपि तुल्यम् , एतेन विषयत्वस्य सम्बन्धिस्वरूपात्मकतया सम्बन्धिस्वरूपयोरभावे ज्ञानमप्यसतोऽसम्भवीति निरस्तम्; ध्वस्तादेस्तवापि ज्ञानाभावप्रसङ्गात्, ध्वंसकालावच्छिन्नाश्रयत्वस्य विषयतायामुपपत्त्यर्थं केनचिद्रूपेण सत्त्वोपगमे तु ममापि स समानः । तस्य = अतीतादेः । एकत्र = मन्मते । अन्यत्र = तव मते । त्रैकालिकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य ज्ञानादौ त्वयोपगमादिति

राजहंसः

तथाचासत एव जनकत्वमिति । ननु शब्दच्छलमेतत्, मिथ्यात्वं यद्यसत्त्वं तदा तदाश्रयविशेषितरूपेण ज्ञानस्यापि तदाश्रयत्वं स्यात्, तस्य स्वरूपसत्त्वाविरुद्धत्वात्, मिथ्यासंसृष्टताया अपि मिथ्यात्वप्रयोजकत्वसम्भवाच्च, परमते तु भविष्यदादिविषये ध्वंसप्रागभावकालावृत्तित्वमसत्त्वम्, तत्कथं ज्ञानेऽपि तदाश्रयविशेषितरूपेण विश्वसनीयं स्यात्, सुतरां तु व्यावृत्तिधीरूप-कार्यप्राक्कालावच्छेदेन, तथा च कथमिदानीमसतो जनकत्वम्, कादाचित्कासत्त्वं च स्वरूपतोऽप्यस्त्येव ज्ञाने इति विषयविशेषविशेषितरूपेण तत्प्रार्थनमनर्थकम्, न चेहोपयुक्तमपि तत्, व्यावृत्तिग्रहरूपप्रयोजनोपयुक्तकाले ज्ञानस्य सद्भावादित्यरुचेर्मूलग्रन्थं परित्यजन्निवाह—

किञ्च प्रतियोगितेत्यादि । प्रमाणबलात्सिद्धमिथ्यात्वेऽपि कारणतेति । कारणताग्रहो हि नेदानीं मिथ्यात्वबोधं प्रतिबद्धुमीष्टे, पारमार्थिके कारणतायाः सर्वथैव तिरस्कृतत्वेन परिशेषान्मिथ्याभूत एव तस्या वक्तव्यत्वादितिभावः ।

भारती

भविष्यदादिविषयकविज्ञान के विशिष्टव्यवहार (इतरव्यावृति) का कारण अतीतादि असत् पदार्थ को माना है । एवं असत (भावी) कार्य ही अपने पूर्ववर्ति पदार्थ में कारणता का निश्चायक माना जाता है ।

यदि आप कहें कि— मेरे (तार्किक) मत में तो अतीत अनागत घटादि की कालान्तर में सत्ता है, किन्तु आप के मत में तो उस (घट) की कालान्तर में भी सत्ता नहीं है अतः अतीतादिरूप असत्त्व और आप (खाण्डनिक) के मत से सिद्ध असत्त्व दोनों

विशिष्टव्यवहारप्रवृत्तिसमये द्वयोरप्यसत्त्वाविशेषात् । प्रयोजनानुपयुक्ते काले तस्य स्वरूपतोऽवस्थानं पाटच्चरलुण्ठिते वेश्मनि यामिकजागरणवृत्तान्तमनुहरति ।

तथापि कालान्तरस्थित्या घटादिकं स्वरूपतो विशेषणतश्च व्यवच्छिन्नं तद्विज्ञानेन स्वभावबलात् स्वविशेषणत्वेनोपादीयते, न त्वेवमत्यन्तासद्भवितुमर्हति, तस्य स्वरूपतो विशेषणतश्च व्यवच्छिन्नतयाऽनङ्गीकारात् कुत्र स्वभावतो विज्ञानं सम्बन्धि निरूप्येत। न । उक्तमत्रासतोऽपि हि तदेव स्वरूपम्, तस्य नियतस्वरूपस्यैव नियतविशेषणस्यैवासत्त्वात् , अन्यथाऽतिप्रसङ्गात्, भ्रान्तिविषयेण दत्तोत्तरत्वाच्चेत्यलमतिप्रपञ्चेन ।

इति खण्डनेऽसतः कारणतोपपत्तिः शून्यवादश्च ।

शारदा

भावः । एतयोरिति । **अतीतादिरूपासतस्त्वन्मतसिद्धासतश्चेत्यर्थः** । विशिष्टेति । **व्यावृत्तिव्यवहारोत्पत्त्यव्यवहितप्राक्समये इत्यर्थः** । तस्य = **अतीतादेः** । पाटच्चरलुण्ठिते = **चौरापहृतधने** । यामिकः = **रक्षकः पुरुषः** । **प्रयोजनानुपयुक्ते इत्यादि प्रयोजनानुपयुक्तरूपेणावस्थानस्याप्युपलक्षणम्** ।

''नह्यसन् घटादिर्न घटादिरिति'' विस्मृत्य शङ्कते तथापीति । **प्रयोजन-समयेऽतीतादेरसत्त्वेऽपीत्यर्थः** । तद्विज्ञानेन = **घटादिविज्ञानेन** । स्वभावबलात् = **विषयतारूपस्वरूपसम्बन्धविशेषेण** । **स्वभावतइत्यस्याप्ययमेवार्थः** । **कुत्र सम्बन्धि निरूप्येतेत्यन्वयः** । **विषयतया कस्य सम्बन्धि ज्ञायेत, असति विषयता न सम्भवति निस्स्वरूपत्वादित्यर्थः** । **उक्तं स्मारयति** उक्तमिति । **नियतशब्दो व्यावृत्तपरः** । असत्त्वात् = **कालसम्बन्धित्वे सति देशत्वकालत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वात्** । **सत्यन्तं नियतस्वरूपस्येत्यादिना लब्धम्** । **अन्यथा घटादेः खपुष्पायमाणत्वे।**अतिप्रसङ्गात् = **प्रत्यक्षाद्यपलापप्रसङ्गात्** । **''तथासति घटादिर्नेत्यपि न स्यादि'तिपङ्क्त्युक्तार्थोऽत्र स्मरणीयः। 'प्रयोजनानुपयुक्ते' इत्यादिग्रन्थश्चात्रापि सञ्चारणीयः, तथाहि समानकालीनयोरेव**

भारती

विलक्षण है, तो आप का यह कथन व्यर्थ है, क्योंकि विशिष्टव्यवहार के प्रवृत्तिकाल (व्यावृत्ति व्यवहार की उत्पत्ति से अव्यवहित प्राक्काल) में दोनों का असत्त्व समान ही है । प्रयोजन (व्यवहार) के अभावकाल में सत्त्व का होना तो उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे चोरों के द्वारा धन चुरा लिये जाने के बाद घर में पहरेदारों का जागना ।

प्रश्न—प्रयोजनविरहकाल में अतीतादिघट के असत् होने पर भी कालान्तर में सत् होने से मेरे (तार्किक) मत में वर्तमानकालिकघटविषयकविज्ञान स्वरूप से एवं घटत्वादिविशेषण के द्वारा पटादिव्यावृत्तघट को विषयताख्यस्वरूपसम्बन्ध से विषय करता है । घटादि उक्तसम्बन्ध से ज्ञान के विशेषण बनकर ज्ञान के परिचायक होते हैं। किन्तु आपके मत में असत् घटादि ज्ञान के विशेषणतया परिचायक नहीं हो सकते,

शारदा

सम्बन्धित्वस्य संयोगस्थले दृष्टत्वात्कालान्तरसतोऽपि ज्ञानसमानकालीनत्वाभावान्न विषयतया ज्ञानसम्बन्धित्वसम्भवः, समाधानं च समानमित्युक्तम् । भ्रान्तीति । **मिथ्याभूतस्यापि भ्रान्तिविषयस्य स्वाप्नकामिन्यादेः सुखादिजनकताया व्यावर्तकताया विषयतायाश्च दर्शनात्, स्वाप्नज्ञानं मिथ्येत्यनुभवबलात्तज्ज्ञानस्यापि मिथ्यात्वाच्चेति भावः । मिथ्यात्मनि न हेतुत्वमिति केचिदजूघुषन् । सिद्धये तादृशे तस्य कृतिस्तेषां पराकृतौ । इति खण्डनशारदायामसतः कारणत्वं, शून्यवादश्च ।।**

राजहंसः

स्वाप्नज्ञानं मिथ्येत्यनुभवबलादिति । न चायमनुभवो बाध्यविषयकत्वं ज्ञानेऽवगाहते न तु तस्यापि मिथ्यात्वम्, तथासति तस्य सत्यत्वे बाध्यविषयेण सम्बन्धानुपपत्तेः । सम्बन्धस्य मिथ्यात्वे च प्राचीनसरणेरनुसरणे तत्संसृष्टतया ज्ञानस्यापि मिथ्यात्वं प्रसज्यत एवेति नानुभवान्यथानयनमनुमन्यामहे । तदननुसरणे तु मूर्तप्रतिभासात्मकतापक्षः पुरेरितोऽत्रानुसन्धेयः। तत्रापि तत्साक्षिण एव जनकत्वाऽग्रहे तु जाग्रत्यपि मूर्तकामिन्यादेः क्वचिज्जनकता न स्यात् । विषयस्य स्वप्नादावविद्यमानत्वाभिमानेन हि तत्रत्यकार्यविशेषो ज्ञानमात्रशरणः कल्प्यते, तस्य तत्रोक्तरीत्या विद्यमानत्वाऽऽनयने तु नेदृक्कल्पना कमनीया । लघुचन्द्रिकाकृतां मते तु व्यावहारिकस्यैव कारणतेति प्रागुदीरितमेव । इति शून्यवादे राजहंसः ॥

भारती

क्योंकि वह (घटादि) स्वरूप से एवं विशेषतया व्यावृत्त नहीं माने जा सकते । अतः विषयतासम्बन्ध से ज्ञान को अपना सम्बन्धी कौन बतायेगा । ("विषयनिरूप्यं ज्ञानम्" इस नियम के अनुसार विषय ज्ञान का निरूपक अर्थात् 'मदीयमेतज्ज्ञानम्' इस प्रकार से ज्ञानका परिचायक होता है, वह असत्त्ववाद में सम्भव नहीं है; यह पूर्वपक्ष का आशय है ।)

समाधान—इसका उत्तर हम "नह्यसन् घटादिर्नघटादिः" इत्यादि के द्वारा दे चुके हैं । असत् घटादि का भी स्वरूप वही है, क्योंकि वह निश्चितस्वरूप (पृथुबुध्नोदराद्याकृतिविशेषरूपवाला) एवं नियतविशेषणविशिष्ट (घटत्वादिविशेषण विशिष्ट) होकर ही असत् माना गया है । अन्यथा (घटादि को तादृश न मान कर स्वरूप से ही असत् मानें तो) घटादि के प्रत्यक्षादिव्यवहार का भी अपलाप होने लगेगा । किञ्च व्यवहार उपपत्ति तो स्वाप्निक पदार्थ के समान भ्रान्ति के विषय के द्वारा ही हो जाती है । यह उत्तर भी हम दे चुके हैं । अतः इस विषय में विस्तार करना अनुपयुक्त है ।

अथ शून्यवादापवादः स्वप्रकाशवादः

अपरे पुनश्चेतसोऽपि शून्यताङ्गीकारे मनःप्रत्ययमनासादयन्तः 'सर्वमिदमसदेव विश्वमि'त्यभिधातुं सहसैवानुत्सहमाना मन्यन्ते—

शारदा

चितौ शून्यतामपवदितुमाहापरे इति । नन्वपरपदार्थो योगाचारो वा, वेदान्ती वा प्राभाकरो वाऽन्यो वा कश्चित्स्वप्रकाशवादी, नाद्यः तेन विज्ञानेऽर्थक्रियाकारित्व-रूपसत्त्वस्यैवोपगमात् तस्य च माध्यमिकेनाप्यनिराकरणात्तयोरविवादात् । न द्वितीयः, तेन स्वविषयत्वरूपस्य वक्ष्यमाणस्वप्रकाशत्वस्यानङ्गीकारात् । न तृतीयः, तेन विज्ञानस्य स्वविषयत्वोपगमेऽपि तदतिरिक्तस्याप्यशून्यत्वोपगमात्, चेतसोऽपीत्यादि ग्रन्थेन च तस्य शून्यताध्वननात् । अतएव न चतुर्थोऽपीति चेन्न; आद्यद्वितीययोर्ग्रहणेऽदोषात्, तथाहि— विज्ञानस्यार्थक्रियाकारित्वे शून्यविज्ञानवादिनोरविवादेऽपि विज्ञानवादिनाऽर्थक्रियाकारिणि पारमार्थिकत्वोपगमात् शून्यवादिना च सांवृतत्वस्योपगमात् तन्निराकरणेनैव विज्ञानवादिनश्चारितार्थ्यात् । तदुक्तं गुरुचन्द्रिकायामाचार्यैः "अर्थक्रियाकारिण एवाबाध्यस्वरूपत्वनियमस्य माध्यमिकान्यबौद्धैरङ्गीकारादिति" । वेदान्तिसम्मतस्वप्रकाशत्व-स्यापि यथोपरितनग्रन्थेन लाभस्तथा व्याख्यास्यते इति । पुनस्त्वर्थे । चेतसो विज्ञानपदजन्यधीविशेष्यस्य । शून्यता = निरुक्तासत्त्वम् । मनःप्रत्ययम् = विश्वासम् । अनासादयन्त इति । **अयम्भावः— शून्यता सिद्धा नवा, द्वितीये नोपगन्तव्या अप्रामाणिकत्वात्, आद्ये परतो वा स्वतो वा, तत्र परस्याविद्यारूपत्वे पूर्वोक्तदोषः, अविद्याभिन्नत्वेऽपि तस्य पराधीनसिद्धिकत्वे मूलपर्यन्तमसिद्ध्योक्तदोषः, असिद्धस्य साधकत्वे शून्यतेव विश्वमपि तेनैव प्रमीयेत तस्मात्स्वतः सिद्धोऽनुभवस्त्वयाऽपि शून्यतासाधकत्वेनावश्योपेयः, उपेयते च, अतएव स्वविषयत्वं विज्ञानस्य शून्यवादिमते दृश्यत्वहेतूपपत्तौ चन्द्रिकादावुक्तम्,**

राजहंसः

ज्ञानानात्मकतया शून्यतायाः स्वतः सिद्धत्वपक्षापक्षयं स्वतः सिद्धमालोच्याह **तस्मात्स्वतः सिद्ध** इति ।

उपेयते चेति । 'केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः' 'मन्यते बत मध्यमाः कृतधियः स्वस्थां परां संविद' मित्यादौ स्वस्थत्वं स्वविषयत्वमेव विवक्षितम्,

भारती

"सर्वम् (ज्ञानं ज्ञेयञ्च) शून्यम्" यह शून्यवादी बौद्ध का सिद्धान्त है इस पर वेदान्ती का कहना है कि — उक्त वाक्य में सर्वशब्द से ज्ञेय का परिग्रह करना ही उचित है । क्योंकि ज्ञान की शून्यता में कोई प्रमाण नहीं है । एवं ज्ञान को पारमार्थिक मानना अनिवार्य तथा अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा साधक के अभाव में शून्यता भी सिद्ध नहीं हो पायेगी । इस अभिप्राय से शून्यवाद का अपवादभूत स्वप्रकाशवाद का आरम्भ किया जा रहा है ।

शून्यवादी से अतिरिक्त वेदान्ती ज्ञान अर्थात् विज्ञानपदजन्यधीविशेष्य की शून्यता में विश्वास न करते हुए "यह सम्पूर्ण जगत् असत् है" इस प्रकार का उद्घोष प्रमाण

शारदा

किन्तु ''मायोपमं च विज्ञानमुक्तमादित्यबन्धुनेति'' माध्यमिककारिकोक्तदिशा विज्ञानस्यापि सांवृततत्त्वं त्वयानुमन्यते, तच्चायुक्तम्, सांवृतत्त्वे विज्ञानस्यापि कदाचिद्बाधावश्यम्भावेन निस्साक्षिकस्य च बाधस्यासम्भवेनानुभवस्य पारमार्थिकस्यैवोपेयत्वात्, अत एव विज्ञानधारोपगमेऽपि न निस्तारः, सांवृतत्वे तस्या अपि कदाचिद्बाधध्रौव्यात्, अन्यथा प्रपञ्चस्यापि बाधो न स्यात् । नचैवं लक्षणाद्यनिर्वाच्यत्वस्य सत्त्वेऽप्यनुभवस्याबाधे प्रपञ्चबाधस्तवापि न स्यात्, अनिर्वाच्यत्वहेतोर्व्यभिचारित्वादिति वाच्यम्; असङ्गानुभवे हेतोरेवासम्बन्धाद्व्यभिचारानवकाशात् । अतएव तत्र धर्मोपग्रहप्रवर्तिष्णुवाग्व्यवहाराविषयत्वं वक्ष्यति । न च विज्ञानधाराया बाध्यत्वेऽपि कदाप्यसमाप्तेर्न कश्चिद्दोष इति वाच्यम्; तथात्वे समाप्तेरपि साधनीयत्वात् । एतेन बाधस्य बाध्याधिकसत्ताकवस्तु-विषयकत्वरूपसावधिकत्वमपि समर्थितम्, लोके तथा दर्शनात्। न च शून्यवादे शुक्त्यादे रजतादेश्च समसत्ताकत्वाद्बाधे सावधिकत्वव्याप्यत्वमप्रामाणिकमिति

राजहंस:

सर्वोपप्लवशून्यत्वरूपस्वास्थ्यस्य संसारेऽसम्भवात्, निर्विकल्पसमाधावपि वासनात्मना रागाद्युपप्लवसत्त्वात्, तत्कालीनसंविद्दशाया योगाचारादिसाधारण्येन माध्यमिकमते विशिष्य तदुपन्यासानौचित्याच्च, मुक्तौ तु 'प्रदीपस्येव निर्वाणं विमोक्षस्तस्य तायिनः' इत्यादि तदीयनिबन्धोक्त्या संविदभाव एव शून्यवादे इति क्व स्वस्थताऽन्यादृशी । एवं सति कर्तृकर्मविरोधेनैकत्र विषयविषयिभावस्य निराकरणं माध्यमिकवृत्तौ तस्य सांवृतत्वमात्रतात्पर्यकम्। एवमेव बोधिचर्यावतारपञ्जिकायाम्—

'उक्तं च लोकनाथेन चित्तं चित्तं न पश्यति । न छिन्नत्ति यथात्मानमसिधारा तथा मनः ॥
आत्मभानं यथा दीपः सम्प्रकाशयतीति चेत् । नैव प्रकाश्यते दीपो यस्मान्न तमसावृतः ॥
न हि स्फटिकवन्नीलं नीलत्वेऽन्यमपेक्षते । तथा किञ्चित्परापेक्षमनपेक्षं च दृश्यते ॥'

इत्युक्तस्यापि गतिर्द्रष्टव्या, यद्येवं नानुमन्यते तदोक्तस्वस्थताप्रतिपादकवचसामप्रामाण्यमेव वक्तव्यं स्यात्, एतदपेक्षया तु माध्यमिकानां प्रस्थानभेदाभ्युपगमः परमुचितः प्रतीयते, परन्त्वेवं स्वविषयत्वोपगन्तृप्रस्थानस्यैव युक्तता मन्तव्या, अन्यथा घटस्येव तज्ज्ञानस्य स्मरणं न स्यात्, अननुभूतत्वात्, ज्ञानविषयकज्ञानान्तरोपगमस्यानवस्थापास्तत्वात् । न च घटस्मरणे तत्सम्बन्धात्तदनुभवस्यापि स्मरणसम्भवः, 'यदि नास्ति स्वसंवित्तिर्विज्ञानं स्मर्यते कथम् । अन्यानुभूते सम्बन्धात्स्मृति' रिति बोधिचर्यावतारपञ्जिकोक्तेः, अन्यानुभूते इत्यस्यान्यस्मिन् विषयेऽनुभूते इत्यर्थ इति वाच्यम्, ज्ञानस्य संस्कारं विना विषयसम्बन्धमात्रेण स्मरणोक्तेरतितुच्छत्वात्। एतेन प्रागुक्तवचोद्वये योगाचारसम्मताकाराराहित्यमेव स्वास्थ्यं विवक्षणीयमित्यपि नाशङ्कनीयम्, तत्र केवलामिति विशेषणवैयर्थ्यप्रसङ्गाच्च । अधिकं तु दर्शनसर्वस्वेऽदर्शयम् ।

हेतोरेवासम्बन्धादिति । न चानिर्वाच्यत्वस्याभावात्मकतयाऽधिकरणस्वरूपत्वेनासङ्गेऽपि

शारदा

वाच्यम्; अनुभवानुरोधेन तयोर्विषमसत्ताकत्वस्यावश्योपेयत्वात्, यदाहुः ''प्रतियोगिनि दृष्टे च जाग्रद्बोधे मृषा भवेत् । स्वप्नादिदृष्टिरस्माकं तव भेदोऽपि किङ्कृत'' इति । एवमसङ्गानुभवस्य सिद्धौ तस्य निर्विषयकत्वमपि मन्तव्यमेव, अन्यथा तस्य सर्वदा सविषयकत्वे विषयाणामपि शून्यता दुर्लभा स्यात् । एतेन सर्वशून्यत्वस्य पुरुषार्थत्वप्रयुक्तः स्वीकारः परास्तः, अहङ्कारस्यानात्मत्वेन तन्निवृत्तेरिष्टत्वेऽपि पुरुषसत्यतां विना तेनार्थ्यमानत्वस्यासम्भवात् सत्यत्वमात्मन उपगन्तव्यम्, अन्यथाऽऽत्मनिवृत्तिमिच्छतो मैढ्यं स्यात्, निराधाराया अहङ्कारनिवृत्तेरसम्भवाच्च । नच स्वसत्त्वे सुखादीच्छया प्रवृत्तिर्न शक्यवारणेति कथं मोक्ष इति वाच्यम् । आत्मव्यतिरिक्तसुखादौ शून्यत्वग्रहस्यैव तत्र परमकाष्ठापन्नवैराग्योत्पादकत्वेन तत्रेच्छानुत्पत्त्या प्रवृत्त्यनुपपत्तेरिति । विश्वं = जगत् ।

राजहंसः

ब्रह्मणि सम्बन्धः, अभावभूतधर्माणां तत्रोपगमात्, सम्बन्धितावच्छेदकं ह्यभावत्वं ब्रह्मण्येवेति वाच्यम्, हेतुतावच्छेदकसम्बन्धो हि स्वरूपं वाऽभेदो वा, आद्येऽभेदसम्बन्धेन ब्रह्मणि हेतुसद्भावेऽपि न क्षतिः । द्वितीये त्वभावत्वेन रूपेण ब्रह्मणि हेतोः सत्त्वेन तेन रूपेण बाध्यतासद्भावोऽपि तत्रेति क्व व्यभिचारः। न च स्वरूपसम्बन्धेनापि हेत्वधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्ने ब्रह्मणि न मिथ्यात्वमिति प्रथमेऽपि क्व स इति ।

प्रतियोगिनि दृष्टे चेति । प्रतियोगित्वं विरोधित्वम्, दृष्टत्वं तूत्पन्नत्वं वा प्रमात्वस्वतस्त्वस्वीकारप्रयुक्तं निश्चितप्रमात्वकत्वं वा, प्रमात्वपरतस्त्वपक्षेऽप्यगृहीताप्रामाण्यकस्य प्रतिबन्धकत्वे निश्चितप्रामाण्यकस्य तत्सुतराम्, न च जाग्रद्बोधे संवादिप्रवृत्त्यादिना न तन्निश्चितमिति भावः ।

तव भेदोऽपीति । सर्वस्य ज्ञानाकारत्वं सांवृतत्वं वोपगन्तुर्नये जाग्रत्स्वप्नबोधयोर्वैचित्र्यमित्यर्थः । एतच्च व्यावहारिकसत्तोपगमपक्षे । यदि तु प्रसिद्धदृष्टिसृष्टिवादानुसारेण शुक्तिरजतादेः समसत्ताकत्वमिष्टमेव, स्वाप्नबोधस्य स्वाप्नबोधान्तरबाधकत्ववज्जाग्रद्बोधस्यापि जाग्रद्बोधान्तरबाधकत्वसम्भवः, अनादिवासनावशंवदतया तु शुक्त्यादावधिकसत्ताकत्वाभिमानोऽविचारचतुराणामित्युच्यते, तदापि चरमबाधस्य निरुक्तसावधिकत्वमावश्यकम्, अन्यथा प्राचीनबोधानामिव तस्यापि बाध्यमात्रविषयकत्वेऽविश्वसनीयता प्रेक्षावच्चित्तविश्रान्तिधामत्वानुपपत्तेः, अधिकं तु दर्शनसर्वस्वे वर्णितम् । अत्रैव प्रागुक्तदृष्टिसृष्टिवादादरे तु न काचिच्चिन्तापीति सर्वं चतुरस्रम् ।

अत्र यद्यपि 'तेने' त्यादिग्रन्थस्य निगमनकार्यकारिताभानेन 'विज्ञानं तावत्स्वप्रकाश'मिति प्रतिज्ञावाक्यम्, 'न खलु विज्ञाने' इति तु हेतुं पक्षेऽर्पयदुपनयस्थानीयम्, स्वातन्त्र्येण हेतुप्रयोगस्तु कुत इति जिज्ञासाया उक्तवाक्येनैव शमनान्नातिप्रयोजनक इति नादृतः, निगमनस्थानीयोक्तवाक्ये एव 'स्वव्यापक' मित्युक्त्या व्याप्तिप्रदर्शनेन चोदाहरणवाक्यमपि नेह न चरितार्थमिति ग्रन्थस्वरसः प्रतीयते, तथापि वेदान्तिसम्मतसाक्षिणोऽद्याप्यसिद्धतयाऽनेनानुमानेनैव वक्तव्यरीत्या तस्य सिषाधयिषिततया न प्रथममेव विशिष्य तस्य पक्षतासम्भवः, घटादिज्ञाने एव योगाचाररीत्या स्वप्रकाशत्वसाधने तु वेदान्तमतासमर्पणेन महती न्यूनतेत्यालोच्य प्रतिज्ञारूपतया भासमानं वाक्यं लक्षणप्रदर्शनपरतया योजयति—

विज्ञानं तावत्स्वप्रकाशं, स्वत एव सिद्धस्वरूपम्, न खलु विज्ञाने सति

शारदा

स्वप्रकाशत्वं निर्वक्ति स्वतएवेति। **एकस्मिन् विषयविषयिभावोपगन्तुमते लाघवात्स्वविषयत्वस्यैव स्वप्रकाशतारूपतौचित्यात् व्युत्क्रमेणैवकारयोजनं युक्तम्, स्वतः सिद्धस्वरूपमेवेति, वेदान्तिमते तु स्वत एव = स्वभावत एव, स्वातिरिक्तमनपेक्ष्य च सिद्धस्वरूपं = संशयाद्यविषयस्वरूपमित्यर्थः तेन ग्रन्थकृन्मते निश्चयविषयत्वरूपसिद्धत्वस्य चित्यसम्भवेऽपि न क्षतिः, एवञ्च स्वप्रकाशत्वं संशयाद्यविषयस्वभावत्वमित्येकम् यद्यप्येतद्वृत्तिज्ञानादावपि तार्किकादीनामपि साधारणम्, तदुक्तं प्रामाण्यवादमणौ "नह्यजानन् जानामीति प्रत्येति न वा घटज्ञाने पटं जानामीति," तथापि वक्तव्यदिशा स्वप्रकाशसाक्षिनिर्वाह्यमेवैतदिति न वेदान्तिनो हानिकरम्। द्वितीयं तु वृत्यादिव्यावृत्तं स्वातिरिक्तसंविदपेक्षव्यवहारविषयान्यत्वकूटवत्वम्, सिद्धशब्दस्य सिद्धिप्रयुक्तव्यवहारविषयतार्थकत्वात्। स्वातिरिक्तवृत्तिसापेक्षत्वमादायासम्भवव्युदासाय संविदिति। अतिरिक्तशब्देन चात्यन्तभेदोविवक्षणीयः, तेनासत्त्वापादकाज्ञानाभावोपहितचितो व्यवहारमात्रेऽपेक्षणीयत्वेऽपि नासम्भवः, तस्याः शुद्धचिद्भिन्नाभिन्नत्त्वात्। ब्रह्मणि विषयतानुपगमपक्षे तु स्वातिरिक्तापेक्षव्यवहारविषयो योयस्तदन्यत्वम् वस्तुतस्त्वत्र कल्पे विषयत्वात्यन्ताभावोपलक्षितस्वरूपत्वमेव स्वप्रकाशत्वम्, अलीकेऽतिव्याप्तिवारणाय**

राजहंसः

स्वप्रकाशत्वं निर्वक्तीति। अत्र हि घटादिज्ञाने इव तत्साक्षिण्यपि सिद्धवत्कृते स्वप्रकाशत्वं लक्षणीभवितुमलम्। एवं चात्र विज्ञानमितिपदेन विज्ञानपदजन्यधीविशेष्यतया साधारणोऽर्थो विवक्षितः। न चैतेन रूपेण साक्षिणोऽपि मानान्तरसिद्धस्य पक्षताप्यस्तु, तद्गतस्वप्रकाशताया अन्यत्राप्रसिद्धतया प्रकृतेनान्वयिनाऽनुमानेन साक्षात्साधनासम्भवात्, कुटिलिकया तु यथा सिद्ध्यति घटादिज्ञानपक्षकेणानेनैवानुमानेन तथाग्रे शारदायामुदितम्। यथाश्रुतग्रन्थेन हि प्रमितत्वं साध्यते, न च साक्षिणि तत्स्वप्रकाशत्वं, स्वात्मकप्रमाविषयतायास्तत्रानङ्गीकारात्, अन्यप्रमाविषयत्वस्य च स्वप्रकाशतापदार्थत्वविरहादिति निगूढाभिप्रायः।

चित्यसम्भवेऽपि न क्षतिरिति। निश्चयविषयत्वस्य स्वोपहितचिति सत्त्वे उपाधेर्भास्यकोटावप्रवेशेनोपाधिकालीनमेव ज्ञानस्य शुद्धाकारत्वम्, अत्र च वृत्तिविषयतोपगन्तृणामप्यविवाद एव, अत एवाग्रे आनन्दत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानां ज्ञानाज्ञानान्यतरोपाधिकालीनत्वादित्युक्त्याऽयमेवार्थो ध्वनित इति तत्त्वम्।

नह्यजानन्निति। एतेन जानन् न जानामीति जानामि न वेति न प्रत्येतीति त्वर्थाक्षिप्तम्। अनुभवसाक्षिकं चैतत्।

व्यवहारमात्रेऽपेक्षणीयत्वेऽपीति। व्यवहार इहान्तःकरणप्रयुक्तो द्रष्टव्यः, तेन घटं न जानामीत्यादिसाक्षिरूपव्यवहारस्याज्ञानासत्त्वाप्रयुक्तत्वेऽपि न क्षतिः, अत्र हि प्रमयाऽसंस्पृष्टस्यापि घटस्याज्ञानावच्छेदकतयैव साक्षिविषयता।

भारती

के न होने से नहीं करते। वे (वेदान्ती) मानते हैं कि विज्ञान स्वयंप्रकाश है। वह स्वतः = स्वभाव से अर्थात् स्वातिरिक्त की अपेक्षा न करते हुए ही सिद्धस्वरूप (संशयादि का अविषय)

जिज्ञासोरपि कस्यचिद् 'जानामि न वेति' संशयो 'न जानामीति' वा विपर्ययो व्यतिरेकप्रमा वा। तेन

शारदा

स्वरूपत्वं पूर्वत्रापि द्रष्टव्यम् अतएव मूले स्वरूपपदं सफलम् आनन्दत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानां ज्ञानाज्ञानान्यतरोपाधिकालीनत्वादनुपहिते उक्त लक्षणसत्त्वात्। भेदकूटस्यासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वे तु जडत्वात्यन्ताभावोपलक्षितस्वरूपत्वलाभार्थमेव स्वत एवेत्यादिकम्, जडत्वञ्च 'घटो जड' इत्याद्यनुगतप्रतीतिव्यवहारसिद्धो जातिविशेषो वोपाधिर्वेत्यन्यत्, न तु स्वप्रकाशत्वघटितम्। तेनेत्यादिना स्वप्रकाशत्वे संशयाद्यविषयत्वलिङ्गकमनुमानं मानं वक्ष्यति, तादृशलिङ्गस्य स्वरूपासिद्धिपरिहाराय तावदाह न खल्विति। **विज्ञाने = घटादिज्ञाने।**

अत्र कालिकव्याप्तिविवक्षया कृष्णीयघटज्ञानं यदि कृष्णीयस्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वाभाववत्स्यात् कृष्णीयसंशयादिविषयतान्यतमवत् स्यादिति परतो 'अन्यथे' त्यादिना विवक्षणीयमापादनम् ईश्वरीयज्ञानमादाय स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वस्य घटज्ञाने सत्त्वात् विपर्यये इष्टापत्तिवारणाय पुरुषविशेषो निवेशितः। तत्रोपेक्षणीयेषु व्यभिचारवारणाय जिज्ञासोरिति। **तथाच जिज्ञास्यत्वं व्याप्यदलप्रविष्टमिति न व्यभिचारः, तेषु जिज्ञास्यत्वसत्त्वे संशयादिविषयताया अप्यापत्तेः, तदसत्त्वे च विशेषणाभावप्रयुक्तस्य**

राजहंसः

जातिविशेष इति। द्रव्यादित्रिकवृत्तिर्जातिरिति तार्किकसमयमनादृत्येदम्, अभावादावपि जडत्वप्रत्ययात्, तथाचानुगताखण्डधर्म इत्यर्थः। अनागन्तुकेदृशधर्ममात्रे जातिपदव्यवहार्यताहि स्वरससिद्धा। सखण्डत्वाभिप्रायेणाऽऽह–

उपाधिर्वेति। अत्राश्रयत्वतादात्म्यान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकज्ञानाभाववत्त्वं जडत्वम्, अन्यतरत्वेन च सम्बन्धिता न तु प्रत्येकरूपेण, अन्यथा ज्ञाने तदाश्रये च चालनीन्यायेन ज्ञानाभावमादाय जडत्वं स्यादिति न विवक्षणीयम्, तथा सति स्वप्रकाशताया ज्ञानात्मकतायां ज्ञानाश्रयत्वे वा पर्यवसानेनार्थान्तरप्रसङ्गात्, अपि तु परप्रकाश्यत्वं' जडत्वम्, एवं च स्वप्रकाशत्वं प्रकाश्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्वातिरिक्ताभाववत्त्वं पर्यवस्यति, तेन स्वातिरिक्तप्रकाश्यान्यत्वकूटस्यासर्वज्ञाज्ञेयत्वेन पूर्वकल्पाविशेषो न देशनीयः। परमतसिद्धे ज्ञाने तदाश्रये च परप्रकाश्ये जडत्वव्यवहारस्त्विष्ट एव।

मानं वक्ष्यतीति। व्याप्तिविशिष्टतया लिङ्गप्रदर्शनमनुमापयतीत्यर्थकमानयतीत्यभिधानं च 'तेने' त्यादिनैव हि कृतमिति भावः। साक्षिणोऽद्याप्यसिद्धत्वात् तस्य सार्वदिकत्वेन 'विज्ञाने सती' त्यस्यासङ्गतेश्च व्याचष्टे–

विज्ञाने घटादिज्ञाने इति। निष्प्रयोजन इति। आपादककोटौ जिज्ञासितत्वनिवेशेनैव व्यभिचाराप्रसक्तेरिति भावः।

भारती

है। क्योंकि घटादिज्ञान के होने पर किसी भी जिज्ञासु को "जानामि न वा" इत्याकारक संशय, "न जानामि" इत्याकारक ज्ञानाभावविषयक अनाहार्य भ्रम, एवं ज्ञानवद्भिन्नोऽहं इत्याकारक भेदनिश्चय नहीं होता है। (यहाँ पर यह विमर्श किया

शारदा

विशिष्टापादकाभावस्यापि सत्त्वात् । अनुमानीयव्याप्यदले जिज्ञास्यत्वनिवेशस्तु निष्प्रयोजनः। अथवा पक्षे जिज्ञास्यत्वस्य विशेषणता वक्ष्यते तल्लाभायैवात्र जिज्ञासेरिति पदम् । युक्तं चैतत्, पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षमनभिधाय हेतौ पक्षधर्मताभिधानस्यानुचितत्वात् । तर्कव्याप्यदले तु जिज्ञासितत्वनिवेशोऽन्यथेत्यादिना करणीयः। अत्र हि संशयादिविषयत्वसामान्याभावात् जिज्ञास्यत्वविशिष्टस्य स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वाभावस्याभाव इति विपर्ययपर्यवसानं विशेष्याभावमादाय, जिज्ञास्यत्वस्य तत्र सत्त्वात् , विपर्ययानुमाने जिज्ञास्यत्वस्य पक्षे विशेषणाच्च, कृष्णजिज्ञास्यं कृष्णीयघटज्ञानं कृष्णजिज्ञास्यत्वविशिष्टस्य कृष्णीयस्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वाभावस्याभाववत्, कृष्णीयसंशयाद्यविषयत्वात्, अजिज्ञासितघटादिवत् । इच्छादेश्च ज्ञानसमानयोगक्षेमतेति न व्यभिचारः। अत्र च स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वस्थाने स्वसत्ताव्यापकप्रमाविषयत्वनिवेशोऽपि शक्यः। स्वरूपसत्ताया अनतिरिक्तत्वात् स्वप्रमाव्याप्यत्वं वा स्वव्यापकप्रमाविषयत्वं वा निवेश्यम् । एवं च पक्षधर्मताबलात् स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वसिद्धिः। तत्र योगाचारमते ज्ञानस्यैकक्षणमात्रवृत्तित्वेन स्वोत्तरोत्पत्तिकस्वातिरिक्तप्रमाऽऽदानेतन्निरूपितकालिकव्याप्तेर्घटज्ञानादिसत्तायामसम्भवात् स्वात्मकप्रमैव स्वपदेन ग्राह्येति स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्वसिद्धिः, वेदान्तिना तु विषयविषयीभावस्यैकत्रानङ्गीकारात् स्वाविषयत्वस्य पक्षे विशेषणीयत्वात् पक्षीभूतज्ञानस्य स्वप्रमापदेन धर्तुमशक्यत्वात् पक्षीभूतज्ञानातिरिक्तैव प्रमा ग्राह्या, सा च लाघवादेका नित्या च सिद्ध्यति, सकर्तृकत्वानुमाने ईश्वरवत् । सैव च साक्षिशब्दाभिधेया ।

यद्यपि साक्षिण एवं सिद्धिर्नतु तत्स्वप्रकाशत्वस्य, तथापि साक्षिणोऽन्यभास्यत्वोपगमे ''विषयनिरूप्यं हि ज्ञानं तेन ज्ञानवित्तिवेद्यो विषय'' इति न्यायेन साक्षिविषयीभूतघटज्ञानविषयकत्वस्यापि साक्षिविषयकज्ञानान्तरे आवश्यकत्वात् घटज्ञानविषयकप्रमायां द्वित्वाद्यापत्तौ लाघवबलात्सिद्धमेकत्वं बाध्येत् अन्तिमासिद्धौ घटज्ञानपर्यन्तं वक्ष्यमाणरीत्या संशयविषयतापत्तौ संशयाद्यविषयत्वस्य हेतोः पक्षधर्मतानुपपत्तिश्च, अनवस्थापत्तिश्चेत्यादितर्कप्रतिसन्धानसहकृतं पुनरनुसन्धीयमान-मुक्तानुमानमेव प्रमायामविषयत्वान्यानपेक्षव्यवहारकत्वादिरूपस्वप्रकाशत्वसाधनायालम् अत एव ''देवदत्तो जीवनमरणान्यतरप्रतियोगी प्राणित्वादिति मानस्यैव पुनरनुसन्धीयमानस्य लाघवसहकृतस्य जीवित्वसाधकत्वम्, सहकारिवैचित्र्येणैकस्यापि विचित्रफल-जनकत्वादित्यादिक'' मर्थापत्तिमणावुक्तम् । व्यापकतावच्छेदकरूपेणैव साध्यानुमितिरित्यस्याप्रमाणिकत्वात्, एवं च साक्षी यदि स्वसत्ताव्यापकप्रमाविषयो न स्यात् संशयादिविषयः स्यादिति न शक्यमापादयितुम् विपर्ययपर्यवसानस्य धर्मिग्राहकमानबाधेनासम्भवात् ।

राजहंसः

लाघवसहकृतस्य जीवित्वसाधकत्वमिति। अभावरूपमरणापेक्षया भावरूपजीवित्वस्य शरीरे लाघवम्, किञ्च मरणसाधने 'शतवर्षजीवीदेवदत्त' इति 'शतवर्षजीवी गृहे एवेति' निश्चयद्वयस्य बाधनीयतया गृहस्थितिनियममात्रबाधेन निर्वहति जीवित्वसाधने लाघवमविकलं विलोक्यते ।

शारदा

ननु ज्ञानस्य जिज्ञास्यत्वे न तत्र स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वम्, तत्सत्त्वे वा न जिज्ञास्यत्वम्, ज्ञाते जिज्ञासाऽनवकाशात्; नच सामान्यतो ज्ञाते विशिष्य जिज्ञासा स्यादिति वाच्यम्; एवं हि विशिष्य जिज्ञास्ये तत्र विशिष्य संशयादिविषयतापि स्यादिति दुर्लभं विपर्ययपर्यवसानम्; मैवम्; प्रमितेऽपि पुत्रादौ प्रमित्सादर्शनात् समीहितसाधनताज्ञानाधीनाया जिज्ञासायास्तद्वदत्रापि कस्यचित् कदाचित्सम्भवात् । अतएव–पूर्व संशयस्ततो दुःखं, ततो द्वेषः, ततस्तद्ध्वंसेच्छा, ततो निर्णिनीषेतिक्रमेण संशयाद्यधीना जिज्ञासा संशयाद्यविषये कथं स्यादिति, सिद्धत्वज्ञानाभावोऽपि जिज्ञासाकारणमिति तदभावे सा कथं स्यादिति च–निरस्तम् । निविशतां वा जिज्ञास्यत्वस्थाने उपेक्ष्यतावच्छेदकधर्मशून्यत्वम् । किञ्च तेन रूपेण ज्ञाते तेन रूपेण जिज्ञासा नास्तीत्युत्सर्गे बीजं तावच्चिन्त्यताम्, धनसिद्धावपि तदसिद्धत्वज्ञाने धनेच्छोपलम्भेनेच्छाविषयत्वस्यासिद्धत्वव्याप्यत्वाभावात् सिद्धेऽपि घटत्वेन घटज्ञाने तेन रूपेण तदिच्छा कुतो न स्यात् । असिद्धत्वज्ञानस्याभावादिति चेत्तदपि कुतो न स्यात् । धनादिविलक्षणो ज्ञानस्य स्वभावविशेष एवायमितिचेन्ननु स्वभावविशेष एवायं स्वप्रकाशतां विना न निर्वहतीति वाचोभङ्ग्यन्तरेण त्वया सा स्वीकृता, एकत्र विषयविषयिभावः परं त्वया नोपेयते, स च वेदान्तिनापि नानुमन्यते तथाहि घटादिज्ञाने जिज्ञास्यत्वादिविरहप्रयोजकं यदि न स्वविषयत्वं, तदा ज्ञानत्वस्यैव स्वभावविशेषशब्दितस्य तथात्वं वाच्यम्, किन्तु ज्ञानवदिच्छासुखदावपि सति जिज्ञास्यत्वसंशयादिविषयात्वा दर्शनादिच्छात्वसुखत्वादिप्रयोज्यताऽपि तत्र वाच्येति महद्गौरवम्, तस्माल्लाघवमिच्छता नित्यसाक्षिविषयत्वस्यैकस्यैव तत्प्रयोजकता वक्तुमुचितेति जितं वेदान्तिना । तस्माज्जिज्ञास्यत्वस्य ज्ञाने विरहोऽपि स्वप्रकाशत्वसाधक इति ध्येयम् ।

ननु तार्किकं प्रति संशयाद्यापादनं ज्ञानाद्यक्षणे न सम्भवति, ज्ञानयौगपद्यानङ्गीकारात्, पूर्वं संशयादिसामग्रीविरहाच्च । नापि द्वितीयक्षणे, योगाचारमते तदा ज्ञानाभावेऽपि तार्किकमते तदाज्ञानसत्त्वात् 'विज्ञाने सती' तिमूलासङ्गतिविरहेऽपि द्वितीयक्षणस्यानुव्यवसायाधिकरणत्वे संशयाद्यनुपपत्तेः, तदनधिकरणत्वेऽपि प्रथमक्षणे साधारणासाधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानादिरूपसंशयकारणस्य, प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानरूपस्याभावधीकारणस्य चासत्त्वात् । अतएव न तृतीयक्षणेऽपि, 'विज्ञाने सती'तिमूलस्य विज्ञानान्तरीयार्थकतामुपगम्य तद्विरोधपरिहारेऽपि पूर्वं संशयादिकारणानुपपत्तेः, नहि द्वितीयक्षणे धर्म्यादिज्ञानमनुमित्यादिरूपम्, तस्य ज्ञानकरणकत्वेनाद्यक्षणे ज्ञानयौगपद्यापत्तेः, तस्य 'मयि घटज्ञानम्, 'घटज्ञानवानहमि' त्याद्यनुव्यवसायरूपत्वे तेनैव प्रतिबन्धात् घटं जानामि नवे'त्यादिसंशयानुपपत्तेरितिचेन्न; यत्र द्वितीयक्षणस्थज्ञानस्य कदाचित् सामग्रीवशाद्धर्मिज्ञानाद्यात्मकता तत्र तृतीयक्षणे आपत्तिसम्भवात्, अस्तु वा चतुर्थादिक्षणे आपत्तिः, तदानुव्यवसायस्य प्रतिबन्धकस्याभावात्, जानामि नवेत्यादिमूलं तु 'अज्ञासिषं नवे' त्यादिपरम्, अतएव "न च कश्चिदमुमद्राक्षीन्नो वा भवानिति पृष्टोऽनन्तरक्षणे सन्दिग्धे विपर्यस्यति संविदभावं वा प्रमिणोति, किन्तु निश्चिनोत्येव अमुमहमद्राक्षमिति" तत्त्वप्रदीपिकादौ भूतप्रयोगः कृतः।

शारदा

द्वितीयक्षणेऽनुव्यवसायविरहदशायां प्रथमक्षणस्थज्ञानस्य धर्म्यादिज्ञानात्मकतायां तु यथाश्रुतमेव सम्यक् । पक्षता च तादृशज्ञानस्यैव । नच व्यवसायजनकमनोयोगान्य-मनोयोगजन्यस्य संशयादेर्द्वितीयक्षणस्थत्वासम्भवः, पूर्वं क्रिया ततो विभाग इत्यादिप्रक्रिययाऽनेकक्षणविलम्बादिति वाच्यम्; व्यवसायजनकमनोयोगजनक-क्रियाऽव्यवहितोत्तरक्षणोत्पत्तिकक्रियया विभागादिक्रमेण व्यवसायाव्यवहितोत्तरक्षणे संशयादिसम्भवात्, एकस्य कर्मणः कर्मान्तरप्रतिबध्यताया अप्रामाणिकत्वात् । अन्यथा नैयायिकमते द्वितीयक्षणेऽनुव्यवसायो न कदापि स्यात् । किञ्चाद्यानुव्यवसायसत्त्वेऽप्यापत्तेः सम्भवः, तथाहि—आद्योऽनुव्यवसायो न 'घटमहं जानामीत्याकारकः, तत्र ज्ञानस्य विशेषणत्वात् ज्ञानज्ञानं विना तदनुत्पत्तेः, अपि तु मयि घटज्ञानमित्याकारकः, स च 'जानामी नवेति' संशयं 'न जानामी' त्यभावबुद्धिं वा प्रति न प्रतिबन्धकः, असमानाकारकत्वात्, तत्सम्बन्धावच्छिन्नतद्धर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिततद्धर्मावच्छिन्न-विशेष्यताकं ज्ञानं प्रति तत्सम्बन्धावच्छिन्नतद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रकार-कतद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यताकग्रहस्यैव प्रतिबन्धकताया नव्यैः स्वीकारात् ।

वस्तुतस्तु घटत्वप्रकारकज्ञानात् पटाभावबुद्धेर्वारणाय विशिष्यैव फलबलेन

राजहंसः

अप्रामाणिकत्वादिति । एककर्मसद्भावे कर्मान्तरानुत्पादेऽपि कर्मान्तरोत्पत्तये पूर्वक्षणे पूर्वकर्मनाशो नापेक्ष्यत इत्यर्थः ।

अत्रेदमाकुतम्—पूर्वं क्रिया, ततो विभागः, ततःपूर्वसंयोगनाशः, तत उत्तरदेशसंयोगः ततः क्रियानाश इति प्रक्रिया न रमणीया, अप्रसक्तसंयोगस्थले विभागस्य संयोगनाशरूपताया वक्तुमशक्यत्वेऽपि प्रसक्तसंयोगस्थले तस्य तद्रूपतैव, कथञ्चिद्धठात्तयोस्तत्र भेदोपगमपक्षेऽपि पूर्वापरीभावस्तयोः सर्वथैवानुभवेनासंस्पृष्टः शतशोऽपि प्रोच्यमानो न श्रद्धेयः, वस्तुतस्त्वप्रसक्तसंयोगयोरपि विभक्तत्वप्रत्ययो विभिन्नदेशस्थत्वनिबन्धनो न तु गुणान्तरनिबन्धः। एवं च विभागनाश एव संयोगोऽस्त्विति न देशनीयम्, देशविशेष एवोत्पन्ननष्टमात्रयूकादेरङ्कुरादेश्च विभागाप्रसिद्धिदशायामपि संयुक्तत्वप्रत्ययाच्च, एवं च पूर्वं मनसि क्रिया ततःसंयोगनाशरूपो विभागः, तदनन्तरमुत्तरदेशसंयोगपूर्वकर्मनाशकर्मान्तराणामुत्पत्तिस्ततो व्यवसायः पूर्वसंयोगनाशरूपो विभागश्च, पश्चादुत्तरदेशसंयोगः, तदनन्तरं संशयादिरितिरीत्या तृतीयक्षणे व्यवसायविषयक-संशयादेःसम्भवः, एवमनुव्यसायस्यापि, अत्र कल्पे टीकायामव्यवहितोत्तरत्वं तृतीयक्षणसाधारणम्। यदि त्वात्मनो विभुत्वेन मनसस्तेनासंयुक्तत्वं न कदापि मन्यते, पूर्वसंयोगनाशक्षणे एवोत्तरसंयोगस्यात्ममनसोरुत्पत्तेःसम्भवात्, तदा मनसि क्रिया द्वितीयक्षण एव तन्नाशपूर्वसंयोगना-शात्मकविभागोत्तरप्रदेशसंयोगक्रियान्तराणामुत्पत्त्या व्यवसायद्वितीयक्षण एव तद्विषयज्ञानान्तरसम्भवः। भवतु वैकस्यैव संयोगस्य व्यवसायतद्विषयकज्ञानयोर्जनकत्वम्, कार्यभेदेन व्यापारभेदनियमे मानाभावात्, सहकारिविलम्बेनैकस्यैव क्रमेण नानाकार्यकारित्वोपपत्तेः, प्राग्व्यवसायरूपकारणाभावेन च न व्यवसायतद्विषयकज्ञानयोर्यौगपद्यप्रसङ्ग इति तत्त्वम् । वेदान्तिनां तु मनसः सावयवत्वेन प्रदेशभेदेन क्रियायौगपद्यं स्पष्टमेव । तैः पुनरियं प्रक्रियैव नाद्रियत इत्यन्यत् ।

शारदा

क्वचित्तादृशकार्यकारणभावानां कल्पनीयत्वात् प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्व-धर्मिज्ञानत्वादिना प्रतियोगिविशेषिताभावज्ञानत्वसंशयत्वादिना च कार्यकारणभावानाम-प्रामाणिकत्वान्न तानादाय शक्यं प्रत्यवस्थातुमपि । न च प्रकृतेऽपि विशिष्य कार्यकारणभावः कल्प्यतामन्यथाऽतिप्रसङ्गादिति वाच्यम्; 'तद्धेतोरेवास्तु हेतुत्वं किं तेनेति' न्यायेन प्रतियोगिता-वच्छेदकप्रकारकज्ञानादिसामग्रीणामेव प्रतियोगिविशेषताभावज्ञानादिकं प्रति नियामकताया वक्तुं शक्यत्वात् । अनन्यथासिद्धत्वमात्रकल्पनेन लाघवात् । एतेन धर्मिज्ञानं च संशयहेतुः, अन्यथा संशये धर्मिनियमः कोट्युत्कटत्वञ्च न स्यादिति निरस्तम्; धर्मिज्ञानजनकस्यैव नियामकत्वसम्भवात्, कोट्युत्कटत्वस्य च कोटिविशेषसहचरितभूयोधर्म-विशिष्टधर्मिविषय-कत्वरूपस्य तादृशधर्मिविषयकत्वेन नियन्तुमशक्यत्वादन्यथाऽऽत्माश्रया-पत्तेरिति । न च व्यवसायनाशसमये संशयाद्यापत्तिकल्पे संस्कारप्रतिबन्धके कालविशेषव्यवधानाद्यु-पनिपातेऽध्ययनावसरेऽपि पङ्क्त्यर्थममुमहमवेदिषं न वेतिसंशयादिदर्शनादिष्टापत्तिः, विपर्यये स्वरूपासिद्धिश्चेति वाच्यम्, तादृशोपनिपाताभाव-स्थलीयज्ञानस्यैव पक्षत्वात् । जानामीति। **घटमित्यादिः । संशयविपर्ययावनाहार्यौ विवक्षितौ।** व्यतिरेकप्रमेति । **नन्विदमयुक्तम्, ज्ञानसत्त्वे तदभावग्रहस्य प्रमात्वानुपपत्तेः, तदसत्त्वेऽपि तथैव, तथाहि—तदा 'न जानामीति' व्यतिरेकप्रमापादने इष्टापत्तेः, ज्ञानस्यावर्तमानत्वात्, नाज्ञासिषमित्यस्यापादने च तस्य भ्रमत्वमेव, पूर्वं ज्ञानस्य जातत्वात्, अन्यथा त्विष्टापत्तिरेव। अथ न नैयायिकं प्रति तृतीयापत्तिः, अपि तु माध्यमिकं प्रति, तन्मते ज्ञानस्य सांवृतसतोऽपि त्रैकालिकसार्वदैशिकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् तदभावज्ञानस्य तदधिकरणेऽपि प्रमात्वसम्भवात्, युक्तश्चैतत्, योगाचारादिना ज्ञाने पारमार्थिकत्वस्यापि साधनीयत्वात् । तथाच घटज्ञानं यदि तादृशप्रतियोगितावत्स्यात्, तादृशप्रतियोगित्वप्रकारकप्रमाविशेष्यं स्यादित्यापादनीयम्। नचैवं माध्यमिकस्य व्यतिरेकप्रमायामिष्टापत्तिः, घटज्ञानं तादृशप्रतियोगितावदितिधीर्यदि प्रमा स्याद-प्रमात्वप्रकारकप्रामाणिकव्यवहारविषयो न स्यादित्यत्र मूलतात्पर्यसम्भवादिति चेन्न; अर्थक्रियाकारित्वरूपसत्त्वग्रहस्य प्रतिबन्धकत्वेनाप्रमात्वप्रकारकव्यवहारविषयत्वस्य हेतोरुपपत्तेर्विपर्ययेऽप्रयोजकत्वात्, घटधर्मिकतादृशधियः पक्षीकरणे वेदान्तिनाऽपि तथैव**

राजहंसः

धर्मिज्ञानजनकस्यैवेति । अत्राधिकं प्रमात्वनिरासशेषे शारदायां द्रष्टव्यम् ।

भारती

जा रहा है कि — व्यतिरेक प्रमाशब्द का तात्पर्यविषयीभूत अर्थ क्या है ? क्योंकि यदि ज्ञान विद्यमान है तो इसका अभावग्रह प्रमात्मक कैसे होगा, यदि ज्ञान नहीं है तो "ज्ञानाभावप्रमा के आपादन में इष्टापत्ति ही होगी । इसी प्रकार "नाज्ञासिषम्" भी नहीं होगा, पूर्व ज्ञान है तो आपादन भ्रमात्मक होगा, यदि ज्ञान पूर्व में नहीं है तो इष्टापत्ति होगी । अतः व्यतिरेक प्रमापद से ज्ञानवद्भिन्नोऽहम् इत्यात्मकभेदनिश्चय ही लेना है, और न जानामि इत्यात्मक विपर्यय अत्यन्ताभाव विषयक है । अतः

जिज्ञासितस्यातत्त्वज्ञानव्यतिरेकप्रमाणामभावसमुदायः स्वव्यापकं जिज्ञासितस्य प्रमितत्वमानयति, अन्यथाहि जिज्ञासितप्रमितत्वव्यतिरेक

शारदा

समाधेयत्वात्, घटज्ञानस्यापि विशिष्टस्य मिथ्यात्वेनोक्तपक्षकस्थलेऽपि वेदान्तिना तथैव समाधेयत्वाच्चेति चेन्न; अगत्या व्यतिरेकप्रमापदस्य ज्ञानवद्भिन्नोऽहमिति भेदनिश्चयपरताया वक्तव्यत्वात्, प्रमात्वस्याविवक्षणीयत्वात्, 'न जानामीति' विपर्ययस्यात्यन्ताभाव-विषयकत्वेनापौनरुक्त्यादिति परमार्थः । एवं च भेदनिश्चयोऽप्यनाहार्यो वक्तव्यः ।

तेन विज्ञाने संशयाद्यविषयत्वस्य हेतोः सत्त्वेन । जिज्ञासितस्येति । **इदं पक्षे जिज्ञासितत्वस्य विशेषणतालाभाय, समुदायान्वयि निष्ठत्वं षष्ठ्यर्थः, अतत्त्वज्ञाने = संशयविपर्यया व्यतिरेकप्रमा = भेदनिर्णयः, अस्याप्यतत्त्वज्ञानपदेन लाभसम्भवेऽपि पार्थक्येनोपादानमुक्तिवैचित्र्यमात्रम्, एतत्त्रयविषयतासामान्याभाव इत्यर्थः । यथाश्रुतं तु विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतादृशज्ञानत्रयाभावस्य हेतुत्वाभिप्रायेण । जिज्ञासितस्य प्रमितत्वम् = जिज्ञास्यत्वविशिष्टस्य स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकाभावस्य स्वसत्ता-व्यापकप्रमाविषयत्वाभावस्य वाऽभावम्, यथाश्रुतं तु जिज्ञासिते पक्षे पक्षधर्मताबललभ्य-साध्याभिप्रायेण, प्रमितत्वस्य स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वपर्यवसायित्वस्यावश्यकत्वात्। यद्यपि वेदान्तिमते साक्षिणो भ्रमप्रमासाधारण्यं, तथापि घटादिज्ञानांशे प्रमात्वं निराबाधम् । तदंशे प्रमात्वस्याप्रामाण्यग्रहानास्कन्दिततत्त्वस्य च सूचनायैव ज्ञातत्वमनुक्त्वा मूले प्रमितत्वाभिधानम्, योगाचारमते तु स्वांशे तस्य सूचनायेति विवेकः । आनयति = अनुमापयति । विपक्षवृत्तित्वशङ्काबाधकं तर्कमा**हान्यथेति ।

राजहंसः

उक्तिवैचित्र्यमात्रमिति । तृणोलपन्यायेन सामान्याद्विशेषस्य पृथगुपादानसम्भव इति भावः ।

हेतुत्वाभिप्रायेणेति । तथा च वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वमते यथाश्रुतत्याग इति भावः । **आवश्यकत्वादिति** । अन्यथा दर्शितदिशा घटादिज्ञाने स्वविषयत्वस्य साक्षिसिद्ध्यौपयिकज्ञातैकसत्त्वस्य च लाभासम्भवादिति भावः ।

निराबाधमिति । न च व्यावहारिकज्ञानांशे साक्षिणि प्रमात्वसम्भवेऽपि शुक्तिरूप्याद्यंशे इव तदाकाराविद्यावृत्त्यंशेऽप्यागन्तुकदोषजन्ये व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वघटितप्रमात्व-मसम्भवदुक्तिकमिति वाच्यम्, शुक्तौ रूप्यं नासीत्, तज्ज्ञानं तु समजनीत्यनुभवमनुरुध्येत्थमभिधानात्। प्रातिभासिकविषयानुत्पत्तिपक्षे प्रमात्वस्य तद्वति तत्प्रकारकत्वरूपतायां त्वित्थमेवाभिधानं शोभतेतराम्।

भारती

पौनरुक्त्य नहीं है । यहाँ भेदनिश्चय भी अनाहार्य ही लेना है । अतः विज्ञान के संशयादि का अविषय होने से जिज्ञासास्पदविज्ञान में स्थित संशयविपर्यय एवं तादृश भेदनिश्चयका अभावसमुदाय अपने व्यापक जिज्ञासित विज्ञान के प्रमितत्व को सिद्ध करता है । (यहाँ "प्रमित्वमानयति" का अर्थ — "प्रमितत्वम् अनुमापयति" है अतः जिज्ञासितं घटादिज्ञानं प्रमितं अतत्त्व-ज्ञानव्यतिरेकप्रमाणामभावसमुदायवत्त्वात्" इस प्रकार अनुमान का आकार है ।

व्यापकं जिज्ञासितव्यतिरेकोल्लेखि ज्ञानमविघ्नितजिज्ञासस्य स्यात्, अतः सर्वजनस्वात्मसंवेदनसिद्धमेवास्य बोधस्य स्वरूपम् ।

शारदा

जिज्ञासितप्रमितत्वव्यतिरेकव्यापकम् सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन जिज्ञास्यत्वविशिष्टस्य स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वाभावस्य व्यापकं जिज्ञासितस्य पक्षीभूतज्ञानस्य व्यतिरेकोल्लेखि = अभावविषयकं ज्ञानं = उक्तसंशयादिकं, व्यापकता विषयतासम्बन्धावच्छिन्ना बोध्या। जिज्ञासोत्तरं निद्रादिरूपप्रतिबन्धकोत्पत्तौ कारणाभावेन संशयादिविषयतापादनासम्भवादाह- विघ्नितजिज्ञासस्येति । स्वाव्यवहितोत्तरानुत्पत्तिकं तत्तत्प्रतिबन्धकं यस्या जिज्ञासायास्तादृशजिज्ञासाविशिष्टस्येत्यर्थः । तथाच पक्षतावच्छेदकादौ तादृशजिज्ञासाया एव घटकतेति भावः। अत्रेदम्बोध्यम् , एकत्र विषयविषयिभावोपगमपक्षे 'घटमहं जानामीति' बुद्धेरपि ज्ञानविषयिकाया नानाज्ञानकल्पने गौरवात् लाघवसहकारेण स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्वसाधकत्वम् । स्वप्रकाशत्वं निगमयति अत इति। **सार्वदिकस्य संशयादिविषयतासामान्याभावस्याश्रयत्वादित्यर्थः। स्वात्मकं यत्संवेदनं सर्वजनानां तत्सिद्धं = तद्विषयीभूतं तत्प्रयुक्तसंशयाद्यविषयताश्रयो वेत्यर्थः। अथवा वस्तुगतिमनुरुध्या**हात इति। **स्वप्रकाशत्वव्यवस्थितावित्यर्थः। स्वात्मकसंवेदन मानान्तरमनपेक्ष्यैव सिद्धं संशयादिविषयताशून्यमित्यर्थः। सर्वसाधकस्य तस्य साधकान्तरनिरपेक्षत्वमिति भावः।**

राजहंसः

सार्वदिकस्येति। घटादिज्ञानानन्तरं यावति समये संशयाद्यनुपलम्भोऽनुभवसिद्धस्तावतः समयस्योपलक्षणमिदम्, अतएव संस्कारप्रतिबन्धककालविशेषव्यवधानाद्यनुपनिपातस्थलीयज्ञानस्य पक्षत्वमिति प्रागुक्तम् ।

भारती

हेतु दल में अतत्त्वज्ञान शब्द संशय-विपर्यय एवं व्यतिरेक-प्रमाशब्द भेदनिर्णय का वाचक है। संशय विपर्यय एवं व्यतिरेक प्रमा एतत् त्रितयविषयतासामान्याभाव ही हेतु रूप से विवक्षित है।) प्रकृत अनुमान में विपक्षवृत्तित्व (व्यभिचार) शंका निवर्तक तर्क देते हैं– अन्यथा इत्यादि से, ज्ञानं यदि प्रमितं (स्वप्रकाशं) न स्यात् संशयादिविषयः स्यात् (ज्ञान यदि प्रमित अर्थात् स्वप्रकाश न हो तो संशयादिका विषय होना चाहिए'' यह तर्क का आकार है।) अन्यथा अर्थात् यदि उक्तविज्ञान को प्रमित न माना जाय तो जिज्ञासित ज्ञान के प्रमितत्वाभाव का व्यापक एवं जिज्ञासितविज्ञान के अभाव को विषय करने वाला ज्ञान (संशयादि) जिज्ञासु को होना चाहिए। (यहाँ उक्त तर्क के विपर्ययपर्यवसान से सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु को ज्ञान होने पर संशयादि नहीं होते हैं अतः उसमें प्रमितत्व का अभाव नहीं है अपितु प्रमितत्व (स्वप्रकाशत्व) ही है। [यहाँ पर यह ज्ञातव्य है– प्रमितत्व शब्द से जिज्ञास्यत्वविशिष्ट जो स्वप्रमाव्याप्यसत्ताकत्वाभाव उसका अभाव लेना है। योगाचार के मत में ज्ञान एकक्षणमात्रवृत्ति होने से स्वोत्तरोत्पत्तिक स्वातिरिक्त प्रमा लेने पर तन्निरूपितकालिकव्याप्ति घटादिज्ञानसत्ता में संभव नहीं है। अतः स्वात्मक प्रमा ही प्रमापद से लेना होगा, अतः स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्व सिद्ध होता है और वेदान्ति मत में तो एकत्र विषयविषयिभाव न मानने से

व्यवसायस्यानुव्यवसायनियमान्न तत्र संशयादिरिति चेन्न; यत्रैवानुव्यवसाये ज्ञेयता नोपेया, तत्र जिज्ञासायामात्मधर्मिकं

शारदा

संशयाद्यविषयत्वरूपहेतोरन्यथाप्युपपत्तिं शङ्कते व्यवसायस्येति । **ज्ञेयता = अनुव्यवसाय-विषयता।** नोपेयेति । **अनवस्थाविषयान्तरसञ्चाराभावादिभयादिति भावः।** जिज्ञासायामिति । **अनुपेक्षणीयतायामित्यर्थः तथा चोक्तरीत्यैवानुव्यवसायाविषयीभूतं ज्ञानं पक्षीकृत्य संशयादिविषयता-पादनसम्भवात् तस्य स्वप्रकाशताया वाच्यते ''प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः किन्निबन्धन'' इति न्यायेन पूर्वस्यापि स्वप्रकाशत्वमस्तु, योगाचारादिमते 'अयं घट' इति ज्ञानापलापापत्त्या स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशतानौचित्येऽपि 'अयं घट' इत्येतद्व्यतिरिक्तस्य 'घटमहं जानामीति' ग्रहस्य स्वप्रकाशताया वेदान्तिसम्मताया अदुष्टत्वादिति भावः।**आत्मधर्मिकमिति। **घटज्ञानज्ञानमहं प्रमिणोमि**

राजहंसः

यत्संवेदनमिति । व्यवसायो वा साक्षी वा मतभेदेन। परमते व्यवसायस्यैव स्वविषयकस्यात्मरूपत्वात् ।

तद्विषयीभूतमिति। साक्ष्यात्मकसंवेदनविषयताया घटादिज्ञाने सत्त्वेऽपि तद्विषयताभिधानं निष्फलप्रायमित्यतो व्याचष्टे । **तत्प्रयुक्तेत्यादि।** सर्वरूपोपपन्नहेतुज्ञाप्यत्वबोधस्य निगमफलस्य 'तेने'त्यादिप्रागुक्त्यैव लाभान्निगमनपरतया 'अत' इत्यादिवाक्यावतारणं परित्यजन्नाह **अथवेति। स्वप्रकाशत्वव्यवस्थिताविति।** फलीभूतस्वप्रकाशताश्रयस्य मतभेदेन घटादिज्ञानस्य तत्साक्षिणो वेत्यादिः ।

प्रमिणोमीति। स्वप्रकाशे विषयीभूतबोधनिष्ठप्रमात्वस्याभाने तत्राप्रमात्वज्ञानसम्भवेन तत्प्रयुक्तविषयसन्देहे इष्टापत्तिपरिहारसूचनाय प्रमिणोमीत्युक्तम् , तेन स्वप्रकाशे प्रमात्वभानलाभः,

भारती

स्वाविषयत्व पक्ष में विशेषणीय है, अतः स्वप्रमाशब्द से पक्षीभूतज्ञानातिरिक्त ही प्रमा लेना उचित है, वह साक्षीरूप है, वह स्वप्रकाश है, इत्यादि शारदा में ज्ञातव्य है । तथा च जिज्ञासितं घटज्ञानं स्वप्रकाशं संशयादिरहितत्वात् यह अनुमान स्थिर है । अविघ्नित जिज्ञासस्य का तात्पर्य है जिसकी जिज्ञासा में कोई विघ्न न हो । अन्यथा ज्ञान के स्वप्रकाश के बिना भी जिज्ञासा के विघ्न (प्रतिबन्धक) निद्रादि के उपस्थित होने पर संशयादिराहित्य भी रह जायेगा। अतः निर्विघ्न जिज्ञासावान् जिज्ञासु होने चाहिए । ज्ञान के होने पर संशयादि नहीं होते हैं; अतः (संशयाद्यविषय होने से) ज्ञान का स्वरूप सर्वजन स्वानुभव सिद्ध (प्रमाणान्तरनिक्षेप स्वतः सिद्ध) मानना ही युक्तिसङ्गत है ।

प्रश्न– व्यवसायात्मक ज्ञान के अनन्तर अनुव्यवसायात्मक ज्ञान नियम से होता है। अतः ज्ञान को स्वप्रकाश माने बिना भी उक्त ज्ञान के अनुव्यवसाय वेद्य होने से तद्विषयक संशयादि नहीं होते ।

समाधान– जिस अनुव्यवसाय में अनुव्यवसाय वेद्यता नहीं मानेंगे । तात्पर्य यह है कि – ''आप (तार्किक) के मत में अनुव्यवसाय को भी परप्रकाश्य ही मानते हैं, इस लिए अनुव्यवसाय का अनुव्यवसाय पुनः उसका भी अनुव्यवसाय इस प्रकार

तत्संशयमारभ्य व्यवसायविषयपर्यन्तं संशयाक्रान्तेर्दुष्परिहरत्वात्। विषयिसद्भावसंशये तद्विषयेऽपि संशयस्य सम्भवात् । एवं त्रिचतुरसंवेदनकक्षाध्रौव्यनियमाभ्युपगमेऽपीति । स्वप्रकाशे तु

शारदा

न वेत्यहम्पदार्थविशेष्यकमित्यर्थः। तत्तत्कोटिविषयकत्वावच्छेदेन संशयत्ववति ज्ञाने धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन निश्चयत्वस्य वृत्तेरनिश्चितज्ञानस्य धर्मित्वासम्भवादिति भावः। संशयादिविषयतापादने इष्टापत्तिं परिहरन्नाह व्यवसायेति । **संशयाक्रान्तेः=संशयविषयतापत्तेः।** सम्भवादिति। **ज्ञानस्य निश्चयेऽप्यप्रामाण्यसंशयाहितसंशयस्य विषये सम्भवो यदा, तदा**

राजहंसः

प्रमात्वभानं पुनः घटत्वेनेमं घटं जानामीत्यादिरीत्यापि सम्भवतीत्याकारे नात्राग्रहः । स्वविषयत्वमते च घटत्ववति घटत्वप्रकारकत्वादिरूपं प्रामाण्यं स्वतो ग्राह्यमनुभवबलात् । न तु तादृशप्रकारकत्ववति तादृशप्रकारकत्वप्रकारकत्वादिरूपमपि, विषयापर्यवसानेनानुभवविरोधात्। अत एव वेदान्तिमतेऽपि विषयीभूतज्ञानगतप्रामाण्यं साक्षिग्राह्यम् , न तु तादृशप्रामाण्यवति तादृशप्रामाण्यप्रकारकत्वं स्वगतमपि, तादृशप्रामाण्यवत्तया साक्षिणोऽपि तत्र प्रवेशेन स्वाविषयकस्य तस्य स्वनिष्ठप्रामाण्यग्राहकताया असम्भाव्यत्वाच्च । अत एव ज्ञानांशे प्रमात्वस्याप्रामाण्य-ग्रहानास्कन्दितत्वस्य च सूचनाय मूले ज्ञातत्वमनुक्त्वा प्रमित्वाभिधानमिति टीकायां प्रागुक्तम्, न तु ज्ञानांशे यत्प्रमात्वं स्वनिष्ठं तद्विषयकत्वसूचनायेति । एतेन स्वप्रकाशे स्वनिष्ठप्रामाण्याग्राहिणि तस्य सन्देहसम्भवेन विषयपर्यन्तं सन्देहसम्भवो भवतोऽपि समान इति नाशङ्कनीयम्; स्वप्रकाशस्य ज्ञानांशेऽगृहीताप्रामाण्यकत्वस्वभावतायाः फलबलेन वक्तव्यत्वात्। न चैवं स्वप्रकाशतो-पगमोऽकिञ्चित्करः, घटादिबोधेऽपि स्वभावस्यैवासन्दिग्धत्वादिप्रयोजकतायाः सुवचत्वादिति वाच्यम्, ज्ञानत्वेच्छात्वाद्यनेकधर्माणां तथात्वकल्पनप्रसङ्गेन शारदायां दत्तोत्तरवात्। कदाचिदज्ञाततया कदाचिच्च ज्ञाततया स्वनिष्ठप्रामाण्यस्यापि साक्षिणा ग्रहणसम्भवाच्च । एतद्ग्रहणसाफल्योपपादकमपि स्वप्रकाशत्वमेव, अन्यथाऽत्रापि सन्देहादेरनवस्थानस्य वा प्रसङ्गात् । सर्वमहं स्वात्मतया वेदान्ताद्वेद्मीत्यनुभवेन साक्षिणोऽपि ज्ञाततादिना स्वविषयकत्वस्यानपलपनीयत्वादिति ।

भारती

अनुव्यवसाय की धारा मानने में अनवस्था आदि दोष आपतित होंगे, तद्वारणार्थ किसी अनुव्यवसाय में तादृशधीधारा की विश्रान्ति माननी होगी । अतः जिस अनुव्यवसाय के आगे अनुव्यवसाय नहीं मानेंगे ।) उस अनुव्यवसाय में जिज्ञासा होने पर तद्धर्मिक संशय से आरम्भ कर व्यवस्थात्मक ज्ञान के विषय पर्यन्त संशय का आक्रमण होगा। क्योंकि जिस ज्ञान के सद्भाव (सत्ता) में संशय होता है उसके विषय में संशयादि का होना स्वाभाविक है। एवं "अयं घट" "घटं जानामि" "घटज्ञानं जानामि" इस प्रकार तीन-चार कक्षा मानने पर भी कहीं विश्रान्ति मानने पर व्यवसायविषयपर्यन्त संशयाक्रान्ति होगी। आत्मधर्मिक यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि "घटज्ञानज्ञानमहं प्रमिणोमि न वा इत्याकारक अहं पदार्थ विशेष्यक संशय लेना चाहिए, क्योंकि तत्तत् कोटिविषयत्वावच्छेदेन संशयत्वविशिष्ट ज्ञान में धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन निश्चयत्व रहता है अनिश्चित ज्ञानधर्मी नहीं हो सकता ।

मानमेयभावव्यवस्थाया अभावादेव तदाश्रया दोषा निरवकाशाः।

शारदा

तज्ज्ञानसामान्यस्वरूपसंशयाहितसंशयस्य तत्र नितरां सम्भवः, प्रमाणसन्देहः प्रमेयसन्देहमाधत्ते इति न्यायादिति भावः। त्रिचतुरेति। **'अयं घट' इत्येका कक्षा, 'घटमहं जानामीति' द्वितीया, 'घटज्ञानमहं जानामीति' तृतीयेत्येवं त्रिचतुरकक्षाणां ध्रौव्यनियमस्य=अवश्यम्भावस्याभ्युपगमेऽप्युक्तरीत्यैव व्यवसायविषयपर्यन्तं संशयविषयतापत्तिरनिश्चितानुव्यवसायसंदेहाहितेत्यर्थः। ननुविषयविषयिभावस्य सम्बन्धत्वेनैकत्रासम्भवः, तत्प्रतियोगिकसम्बन्धस्य तत्प्रतियोगिकभेदव्याप्तेः संयोगादिस्थलेऽवधारणात् अत एव तादात्म्यस्यापि भेदगर्भता, तथा च कथं स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्वस्य सङ्गतिः, स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षानाश्रयत्वेन स्वाविषयत्वानुमानाच्च, किञ्चैवं स्वप्रकाशानुभवस्यापि दृश्यत्वेन मिथ्यात्वापत्तिः, अयं घट इति ज्ञानापलापापत्तिश्चेत्यतो वेदान्तिमतेनाह** स्वप्रकाशे इति । **मानमेयभावव्यवस्थायाः = विषयविषयिभावसम्बन्धस्य। एकस्मिन्निति शेषः। तदाश्रयाः = एकस्मिन् विषयविषयिभावोपगमनिबन्धनाः ।**

राजहंसः

तज्ज्ञानसामान्यस्वरूपसंशयेति । ज्ञानसद्भावसन्देहे विषयसन्देहसम्भावनाया द्रढिम्ने सामान्यपदमुपात्तम्, यदा तद्विषयकयत्किञ्चिज्ज्ञानसत्तासन्देहेऽपि तद्विषयकज्ञानान्तरानिश्चयदशायां तदस्तित्वसन्देहः सम्भवत्येव, तदा तद्विषयकज्ञानसामान्यसद्भावसन्देहदशायां स सुतराम्, क्वचिन्निश्चितस्यैव चापरत्र सन्देहो न तु निश्चितनिश्चयकस्येति निश्चयस्य सन्देहे तद्विषये कथं संशय इति नापाततः शङ्कनीयम् ।

अयं घट इति ज्ञानापलापापत्तिश्चेति । जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तस्य न स्वरूपतो भानमित्यस्याप्रामाणिकत्वेनायं घट इत्यत्र स्वरूपतो ज्ञानभानेन नोक्तज्ञानापलाप इत्यावेदितं दर्शनसर्वस्वे, एवं च पूर्वदूषणेष्वेव निर्भर इति ।

एकस्मिन्विषयविषयिभावोपगमनिबन्धना इति । नन्विहैकत्र विषयविषयिभावत्यागे 'न हि स्वमन्तर्भाव्य कयाचि' दित्यादिना परतो मूले स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्वापादनम्, एकत्र क्रियाकर्मभावासम्भवमाशङ्क्य कथञ्चित्कर्मव्यवहारोपपादनम् , कर्मत्वखण्डनम्, विषयविषयिभावस्यैकत्रासम्भवमाशङ्क्य तदुपपादनं चेति सर्वमसमञ्जसं स्यात् तस्माद्विषयविषयिभावत्यागो अथवा

भारती

प्रश्न– ज्ञान को स्वप्रकाश मानने में भी दोष है– एक ही ज्ञान में स्व के साथ ज्ञान का विषयविषयिभाव मानना होगा, जो कि सम्भव नहीं है, क्योंकि विषयविषयिभाव के सम्बन्धरूप होने के कारण भेद व्याप्त होने से, भेद के बिना विषयविषयिभाव सम्बन्ध नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्व भी कैसे होगा ।

समाधान– बौद्धदर्शनाभिमत स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्व वेदान्ती नहीं मानता । अतः वेदान्ती के मत में स्वीकृत स्वप्रकाशत्व में मानमेयभाव व्यवस्था अर्थात् स्व में विषयविषयिभाव के न होने से तन्निमित्तक पूर्वोक्त दोषों का अवसर ही नहीं है ।

अन्यथा तु बोधस्वरूपमेव न सिद्ध्येत् । यदि हि विज्ञानं परतः सिद्ध्येत्तदाऽनवस्था स्यात् । न च वाच्यमवश्यवेद्यता वित्तेर्नाभ्युपेयते,

शारदा

अन्यथा = स्वप्रकाशत्वानङ्गीकारे। न सिद्ध्येदिति। **परप्रकाश्यत्वस्यानवस्थापादकत्वेनासम्भवात् स्वप्रकाशत्वस्य चानङ्गीकारादिति भावः। अनवस्था स्यादिति। ज्ञानं नाप्रत्यक्षं योग्यात्मगुणत्वादिच्छादिवत् न चाप्रयोजकत्वम् अनौपाधिकत्वस्यैव प्रयोजकत्वात् तथा च ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वनियमे ज्ञानधारायाः क्वचिद्विश्रामस्य वक्तुमशक्यत्वात् कथं न परप्रकाश्यत्वेऽनवस्था, अतएव ज्ञानान्तरसामग्र्याः, प्रतिबन्धोऽपि न वक्तुं शक्यते, अन्यथाऽवश्यप्रत्यक्षत्वहानेः, न चेश्वरप्रत्यक्षमादाय सिद्धसाधनम्, स्वसमानाधिकरणप्रत्यक्षस्यैव साध्यघटत्वात् । न चैवं ज्ञानयौगपद्यम् , इष्टत्वात् समूहालम्बनसम्भवाच्च,**

राजहंसः

स्वात्मना सहे'त्यादिना ग्रन्थेनैव कर्तव्यो न तु ततः पूर्वमिति प्रकृतपङ्क्तिः कथञ्चिदन्यथैव व्याख्यायतामिति चेन्न, तादृशग्रन्थानन्तरमपि 'तथाऽन्यज्ज्ञानमन्यज्ज्ञेयमिति जानामीतिव्यवहारान्यथानुपपत्त्या त्याज्य' मित्यत्रैकत्र विषयविषयिभावसमर्थनेन सन्दर्भाशुद्धितादवस्थ्यात् , तत्रत्यशारदोक्तरीत्या तस्य दृष्टान्तपरताया अपि सम्भवेऽपि स्वप्रकाशे विषयविषयिभावमपरित्यज्यात्र मानमेयभावाश्रितदोषसामान्यभावाभिधानमसङ्गतं स्यात्, तदपरित्यागपक्षे हि व्यवसायस्येव स्वप्रकाशस्यापि प्रमाणाधीनसिद्धिकत्वेनानवस्थादिना प्रमाणखण्डनावतारभागितेत्याशङ्क्य तस्य स्वतः सिद्धत्वेन न प्रमाणापेक्षेत्यभिप्रायेण 'स्वप्रकाशे तु मानमेयभावे' त्यादिग्रन्थप्रवृत्तिरित्येव वक्तव्यं स्यात्, परन्तु माऽस्तु परापेक्षा, स्वापेक्षाऽपि त्वात्माश्रयं नातिक्रामति । न चोत्पत्तिस्थित्योस्तावन्नात्माश्रयः नापि ज्ञप्तौ, स्वविषयकं स्वमुच्यते न तु स्वज्ञप्त्यधीनज्ञप्तिकं स्वमिति वाच्यम्, एतत्पङ्क्त्यवतरणशारदोक्तदोषाणां तथापि सद्भावात् । तत्र यद्यपि 'अयं घट' इत्यनुभवापलापापातः परिहृतोऽनुपदम् , स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षानाश्रयत्वेन स्वाविषयत्वानुमानं तु 'शेषं चेश्वराभिसन्धा' विति पङ्क्तिशारदायां प्रतिविधास्यते, तथापि दूषणद्वयं पृष्ठारूढमेव, तत्राद्यमात्माश्रयविधयोपन्यस्यतामन्यथा वेति न कश्चिद् विशेषः, स्वं यदि स्वज्ञप्त्यधीनज्ञप्तिकं स्यात्स्वभिन्न स्यादितिवत् स्वं यदि स्वविषयकं स्यात्, स्वसम्बन्धि स्यादिति वा तदा स्वभिन्नं स्यादित्यापादनस्य निरङ्कुशत्वात् ।

विषयविषयिभावश्च भेदाभेदपक्षसाधारण्येनैव महता प्रबन्धेन चतुर्थे मूलतच्छारदयोर्विशीर्णीकृतः । अतएव परविषयत्वमेव मिथ्यात्वव्याप्यमस्तु न तु स्वविषयत्वमिति न मनसि कर्त्तव्यम्। अमूदृशदोषराशेराशयानधिशायित्वे 'अथवा स्वात्मना सहे' इत्युत्तरग्रन्थेनापि विषयविषयिभावस्यैकत्रानुपगमस्य निर्निमित्तत्वापाताच्च ।

भारती

अन्यथा (स्वप्रकाशत्व न मानने पर अनवस्था आदि के भय से परप्रकाश्य भी नहीं मान सकते, ऐसी स्थिति में) बोध का स्वरूप ही सिद्ध न हो सकेगा । यदि विज्ञान को अन्यविज्ञान (अनुव्यवसाय) के द्वारा सिद्ध (प्रकाशित) मानें तो अनवस्था दोष होगा ।

यदि कहें कि ज्ञान को अनुव्यवसायादि के द्वारा अवश्य वेद्य नहीं मानते । (आप

स्वार्थेव्यवहारस्तु स्वरूपसत्तया प्रसूयते इति क्वानवस्थेति। यतस्तस्यां प्रमाणानुपन्यासे स्वरूपसत्तापि कुतः, यया व्यवहारोपपत्तिः, को ब्रूते सती सा वित्तिः ? असत्येव न कुतः। सामान्यतो वित्तेस्तथात्वविधावपेक्षितसिद्ध्या यत्र विशेषरूपायां प्रमाणाप्रवृत्तिस्तदा

शारदा

संशयत्वनिश्चयत्ववदेकत्र ज्ञाने मानसत्वचाक्षुषत्वादेरप्येष्टव्यत्वाच्चेति भावः। अत्र पराधीनापरोक्षत्वनिराकरणेन परिशेषानुमानेन व्यतिरेक्याख्येन स्वप्रकाशत्वसिद्धिः सूचिता तच्च योगाचारमते ज्ञानत्वम् , वेदान्तिमते तु नित्यज्ञानत्वम् , नित्यज्ञानस्य साधितत्वात्, एवं घटः स्फुरतीतिप्रतीतिसाक्षिकस्फुरणस्फुरणत्वयोरपि पक्षताहेतुते सम्भवत इति ध्येयम्। योग्यात्मगुणत्वस्याप्रयोजकत्वाभिमानेनाशङ्कते नचेति । **वित्तेः= वित्तिसामान्यस्य । वित्तिसामान्यस्यावश्यवेद्यतानङ्गीकारे चरमवित्तेरप्रामाणिकतापत्तिरित्याह** यत इति । **अनुपन्यासे = अप्रतीतौ को ब्रूते = किमत्र प्रमाणम् ?** न कुत इति । **यदि चरमवित्तिरप्रामाणिकी स्यान्नैव स्यादित्यर्थः। चरमवित्तेः स्वकाले प्रमाणाविषयत्वेऽपि कालान्तरीयव्यवहारादिलिङ्गकानुमित्यादिविषयत्वान्नाप्रामाणिकतेति नासत्त्वापत्तिरित्याशङ्कते** सामान्यत इति। **सामान्यतो वित्तेः = सत्त्वासत्त्वान्यतरधर्मप्रकारकनिश्चयाविशेष्यवित्त्युत्पत्तिसामर्थ्यात् तथात्वविधौ = विषयसत्त्वव्यवस्थितौ अपेक्षितस्य = तत्तज्ज्ञानाधीनव्यवहारस्य सिद्ध्या यत्र = यस्यां वित्तौ विशेषरूपायां प्रमाणाप्रवृत्तिः = यद्वित्तिविशेष्यिकायाः सत्त्वप्रकारकप्रमायाः प्रमाणेन तदधिकरणक्षणावच्छेदेनानुपधानम्, तदा = स्वाधिकरणक्षणावच्छेदेन तत्र = चरमवित्तौ सत्त्वसाधनासत्त्वेपि =**

राजहंसः

परतोऽनुपदं 'स्वप्रकाशत्वाङ्गीकारादेवानुभवस्य सर्वदोषहाने' रिति पङ्क्तेरपि स्वारस्याच्च न विषयविषयिभावसंस्पर्शोऽत्र । तस्मात्स्फूर्तिवैचित्र्येणात्र त्यक्तस्यापि पुनः क्वचिदशे समर्थनसम्भवेन, तार्किकादिं प्रति स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्वस्य वेदान्तोदितस्वप्रकाशत्वपूर्वभूमिरुपस्यपादानेनाप्यभीष्टस्य सम्भाव्यत्वेन, पाठक्रमापेक्षयाऽर्थक्रमस्य बलीयस्त्वेन च यथास्थितव्याख्या निकषपरीक्षितैवेति ।

तत्पुरुषीयज्ञाने तत्पुरुषीयसंशयादिविषयतापत्तिपरिहाराय तत्पुरुषीयनिश्चयस्यैव तदीयज्ञानविषयकस्यापेक्षेति काऽपेक्षा तत्र परं प्रति प्रतिपादनात्मन उपन्यासस्येत्याशयेन प्रतिपत्तिमात्रपरतया व्याचष्टे **अनुपन्यास अप्रतीताविति** । एतेनाग्रे 'घटसत्तां हि व्यवहरते' त्युत्तरसन्दर्भस्य साक्षात्प्रकृतानुपयोगितामालोच्य दृष्टान्तपरतया योजनस्यौचित्यमपि समर्थितम्।

भारती

(खाण्डनिक) कहेंगे कि जिस ज्ञान को वेद्य नहीं मानेंगे तद्विषयक व्यवहार कैसे होगा, तो हम (तार्किक) ज्ञान की स्वरूपसत्ता मानते हैं, अतः) स्वार्थविषयक व्यवहार की उपपत्ति स्वरूपसत् ज्ञान के द्वारा ही हो जायेगी । ऐसी स्थिति में अनवस्था दोष नहीं होगा । तो आप (तार्किक) का कथन युक्ति सङ्गत नहीं है क्योंकि जिस ज्ञान में प्रमाण का उपन्यास (प्रतीति) न होगा उसकी स्वरूपसत्ता भी कैसे सिद्ध होगी जिससे कि व्यवहार की उपपत्ति हो । कौन प्रमाण कहेगा कि वह ज्ञान सत् है । उसे असत् ही क्यों न मान लिया जाय ।

तत्र सत्त्वसाधनासत्त्वेऽपि जिज्ञासायां सत्यां पश्चाद्व्यवहारसत्तैव वाऽन्यद्वा प्रमाणमस्त्येवेति चेन्न; तस्यापि कथं सत्त्वमित्यनवस्था वा स्यात्, शेषासिद्ध्या सर्वासिद्धिर्वा प्रसज्येतेत्यर्थासिद्धिपर्यन्तस्य व्यवसनस्य दुरुत्तरत्वात् । सेयं ''अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिद्ध्यतीति''।

शारदा

सत्त्वप्रकारकप्रमीयविशेष्यत्वासम्भवेऽपि । व्यवहारसत्तेति । **तद्विषयकव्यवहारस्य तज्ज्ञानव्याप्यत्वादिति भावः। अन्यत् = इच्छाकृतिस्मृत्यादि । प्रमाणं = लिङ्गम् । तस्य = व्यवहारादेः । व्यवहारादिज्ञानस्याप्रकाशे व्यवहारादेः सन्दिह्यमानत्वं निष्प्रमाणकत्वेनासत्त्वं वा स्यादिति न लिङ्गत्वसम्भवः, प्रमाणान्तरमादाय सन्दिह्यमानत्वनिष्प्रामाणिकत्वयोरपाकरणेऽनवस्था। विश्रान्तौ त्वाह** शेषासिद्ध्येति । **चरमवित्तिसत्त्वानिश्चयेनेत्यर्थः। सर्वासिद्धिः = सर्वानिश्चयः। चरमवित्तिसामान्यसत्त्वसन्देहप्रयुक्तो मूलपर्यन्तसन्देह इति यावत् । व्यसनस्य = आपत्तेः।** सेयमिति । **उक्तार्थासिद्धिरेव 'अप्रत्यक्षोपलम्भस्येत्यादि' वाक्येन धर्मकीर्तिनोक्तेत्यर्थः। अप्रत्यक्षोपलम्भस्य = स्वतोऽप्रकाशमानप्रकाशोपगन्तुर्मते अर्थदृष्टिः = अर्थसिद्धिः न प्रसिद्ध्यति = न सम्भवति। अत्र पुरोदीरितदिशा ज्ञानविशेषं पक्षीकृत्य सन्देहविषयत्वमापादनीयम् , तत्र चेष्टापत्तौ विमतं यदि सन्दिह्यमानसत्ताकं ज्ञानं स्यात् सन्दिह्यमानविषयकं स्यादित्यापाद्यम् , एवं घटादिकं यदि सन्दिह्यमानज्ञानकं स्यात् सन्दिह्यमानं स्यादिति । आपत्तौ च बाधोऽनुगुण एवेति तर्कविदां सरणिः, अन्यथाऽबाधितार्थापादने इष्टापत्त्या तर्कस्याभासतापातात् । एतेनसर्वासिद्धिः प्रसञ्जनमनुपपन्नम् , यत्पक्षीकृत्यासिद्धिरापाद्या तत्सिद्धौ बाधः, तदसिद्धावाश्रयासिद्धिः, शेषासिद्धेश्चापादकत्वेनाभिमताया असिद्धिः, शेषस्य चरमज्ञानस्य सिद्धौ तत्पूर्वज्ञानस्यासिद्धि, रिति विशिष्टापादने त्वद्वचनादेव तयोस्तदैव सिद्धौ सुतरामापाद्यापादाकयोरसिद्धिरिति निरस्तम् ।**

राजहंसः

आपादकत्वेनाभिमताया असिद्धिरिति । शेषासिद्धिविशेषणीभूतशेषस्यासिद्धेः, तत्सिद्धौ च शेषत्वव्याघातादिति भावः।

भारती

प्रश्न– सामान्यतः ज्ञान (सत्त्वासत्त्वप्रकारक निश्चय का अविषय) के द्वारा विषयसत्ता को व्यवस्थित (सिद्ध) करने में अपेक्षित व्यवहार (तत्तत् ज्ञानाधीन व्यवहार) की सिद्धि होती है। अतः उस व्यवहार का कारण होने से सामान्यतः ज्ञान भी सिद्ध ही है। किन्तु जिस ज्ञान के विशेषरूप (सत्त्वप्रकारक प्रमा) में प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं है, उस ज्ञान (अन्तिम ज्ञान) के सत्त्व का साधक न होने पर भी जिज्ञासा होने पर व्यवहार सत्ता ही अथवा अन्य (इच्छा कृति स्मृति) ही उस ज्ञान में प्रमाण (अनुमापक) हो जायेंगे। (तात्पर्य है अन्तिम ज्ञान स्वकालीन प्रमाण का विषय न होने पर भी कालान्तरीय व्यवहारादिलिङ्गक अनुमान का विषय होने से अप्रामाणिक भी नहीं है और न उसकी असत्त्वापत्ति ही है ।)

घटसत्तां हि व्यवहरता प्रामाणिकेन तत्र प्रमाणसद्भावो वाच्यः। यदि प्रमाणमनुपन्यस्य साऽस्तीत्येवमङ्गीक्रियते तदा वैपरीत्यमेव किन्न स्यात्। ततश्च घटसत्तायां प्रमाणसत्ता दर्शनीया, तथा च प्रमाणसत्तापि तत्प्रमाणसत्तामन्तरेण प्रामाणिकस्य नाङ्गीकारार्हा, सर्वप्रमाण-सत्तानिवृत्तेर्वस्तुसत्तानिवृत्तिनियतत्वात्, अन्यथा सप्तमरसादेरप्यापत्तेरिति व्यक्तमनवस्थादौस्थ्यमस्वप्रकाशवादिनः स्यात्। यदि हि विनैव प्रमाणसत्तां प्रमाणसत्तां परोऽङ्गीकारयेत्तदा घटसत्तामपि तथैवाङ्गीकारयतामिति घटेऽपि वृथा प्रमाणोपन्यासायासः। अथ

शारदा

प्रमाणसन्देहस्य प्रमेयसन्देहाधायकत्वं स्फुटयितुं 'यथा प्रमाणनिश्चायनेन प्रमेयं परोऽङ्गीकार्यते। तथा स्वयमपि प्रमाणनिश्चयेनैव प्रमेयोऽङ्गीकर्तुमुचित' इत्याह घटसत्तामिति। **प्रमाणशब्दः प्रमापरः, तेन न सन्दर्भासङ्गतिः।** अथवा **परार्थे प्रमाणनिश्चयावश्यम्भाव-वत्प्रमानिश्चयोऽपि सेत्स्यतीत्याशयेन करणपर एव।** प्रामाणिकत्वनिश्चयोऽपि **प्रमानिश्चय-पर्यवसाय्येव। वाच्यः = निश्चेयः।** अनुपन्यस्य = अनिश्चित्य। **तेन अङ्गीक्रियते इत्यस्य नासङ्गतिः। अस्य 'अङ्गीकार्यते' इत्येतत्परत्वे तु यथा श्रुतमेव सम्यक्। वैपरीत्यं = घटाभावः।** सत्तायां प्रमाणेति। **सत्ताविषयकप्रमाणेत्यर्थः। प्रमाणसत्तां = तद्दर्शनम्।** सर्वप्रमाणेति। **यस्य तत्र प्रमाणसामान्याविषयत्वं तस्य तत्रासत्त्वम्, यथा षड्सव्यतिरिक्ते रसत्वमित्यर्थः। नियतत्वात् = व्याप्यत्वात्। एवञ्च प्रमाणसामान्याविषयत्वनिरासाय यत्किञ्चित्प्रमाणं ग्राह्यमिति तद्ग्रहमादायैवानवस्थेत्याह** व्यक्तमिति। यास इति।

भारती

समाधान – जिस व्यवहारादिलिङ्ग के द्वारा ज्ञान को सिद्ध करना चाहते हैं ज्ञान के अभाव में उस व्यवहार की सत्ता भी कैसे सिद्ध हुई। तदर्थ प्रमाणान्तर की अपेक्षा होने से अनवस्था दोष आपतित होगा और क्वचिद् विश्रान्ती मानने पर उस अन्तिम ज्ञान के असिद्ध होने से पूर्ववर्ती सभी पदार्थों की असिद्धि होगी, ऐसी स्थिति में व्यवसाय के विषय घटादिपदार्थ पर्यन्त की असिद्धि, दुष्परिहर होगी। जिसके विषय में धर्मकीर्ति ने कहा है – स्वतः प्रकाशमान प्रकाश को न मानने वाले के मत में अर्थदृष्टि अर्थात् घटादि अर्थ की सिद्धि होना भी सम्भव नहीं है"। (यहाँ ज्ञान यदि संदिह्यमानसत्ताक हो तो संदिह्यमानविषयक होना चाहिए; घटादि यदि संदिग्धज्ञान के विषय हों तो स्वयं भी संदेह के विषय होने चाहिए, इत्यादि तर्क उपस्थित होते हैं।)

घट के अस्तित्व का व्यवहार (घटोऽस्ति) (घट है) कर्ता प्रमाणवादि को घटविषयक प्रमाण (प्रमा) का सद्भाव मानना होगा। यदि प्रमाण के अभाव में भी घट का अस्तित्व मान लिया जाय, तो (प्रमाणरूप नियामक के न रहने से) घट का अभाव ही क्यों न माना जाय। अतः घट के अस्तित्व में प्रमाण की सत्ता दिखानी चाहिए। तथाच इसी नियम के अनुसार प्रमाणका अस्तित्व भी तद्विषयक प्रमाण के विना प्रमाणवादि स्वीकार नहीं कर सकता,

शारदा

तथा चाङ्गीकर्तृत्वमपि प्रमाणनिश्चयसापेक्षं पर्यवसन्नम् युक्तश्चैवं विषयनिश्चयः प्रमानिश्चयसापेक्ष इति प्रमायाः स्वविषयत्वं साक्षिविषयत्वं वाऽनङ्गीकृत्य न निस्तारः, अन्यथा घटप्रमा एव घटनिश्चयरूपत्वेऽपि घटप्रमासन्देहाधीनो घटे सन्देहः स्यात् । एवञ्च परेण प्रत्याय्यतास्थले प्रमाणनिश्चयप्रमानिश्चयोभयस्यैव प्रमेयनिश्चयापेक्षणीयता प्रमेयसन्देहविघटकता व स्वयमेव प्रमितौ तु प्रमानिश्चयस्यैव, सर्वत्रैव वा प्रमाणनिश्चयस्यासार्वत्रिकत्वादन्यथासिद्धत्वाच्च । अन्यथा प्रमाणनिश्चयस्य स्वविषयत्वे साक्षिविषयत्वेऽपि वा स्वप्रमाणाविषयकत्वात्प्रमाणान्तरनिश्चयापेक्षायामनवस्थापत्तेरिति भावः। ननु स्वप्रकाशत्वेऽपि प्रमाणापेक्षायामनवस्था, स्वप्रकाशत्वस्यास्वप्रकाशत्वात् प्रमाणान्त-रापेक्षत्वादितिचेदेकत्रविषयविषयिभावोपगन्तृमते स्वप्रकाशत्वसाधकानुमित्यादिकं स्वमिव स्वविषयत्वमपि विषयीकरोत्येवेति तत्तज्ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वं तत्तद्विषय एवेति केचित् । वस्तुतस्तु प्रमेयसन्देहविघटनाय प्रमानिश्चयस्यावश्यकत्वेऽपि तद्गतस्वप्रकाशत्वनिश्चयस्या-नुपयुक्तत्वात् प्रमाणानामपि ज्ञाततया साक्षाद्वा ग्रहणाच्च नानवस्थाशङ्कापीति ध्येयम् ।

राजहंसः

प्रमाणनिश्चयस्यासार्वत्रिकत्वादिति । इन्द्रियस्यज्ञातस्यैव करणत्वात् । **अन्यथासिद्धत्वाच्चेति** । प्रमाणनिश्चयस्य प्रमानिश्चयपर्यवसायिताया उक्तत्वात् । **अन्यथेति** । प्रमाणनिश्चयस्यावश्यापेक्षणीयत्वोपगमे इत्यर्थः ।

इति केचिदिति। स्वविषयत्वनिश्चयस्य प्रतिज्ञानमपेक्षणीयत्वोपगमे घटं जानामीत्यत्र घटविषयकत्ववज्ज्ञानविषयकत्वस्याभानेनानुभवविरोधः, स्वरूपतस्तद्भानोपगमेऽपि च तत्र विवादाभावप्रसङ्ग इतिमत्या केचिदित्युक्तम् । 'व्यवसायस्यानुव्यवसायनियमा' दित्यनेनाऽऽशङ्कितामव्यवहितधारां 'न च वाच्यमवश्यवेद्यते' त्यनेनाशङ्कितं ज्ञानधारासामान्यविरहं च निराकृत्य व्यवहितज्ञानधारां निराकर्तुमाशङ्का 'अथ नाव्यवधानलग्नवित्ती'त्यादिना मूले इति सन्दर्भशुद्धिः ।

भारती

क्योंकि प्रमाण सामान्य का अभाव वस्तु के अभाव का व्याप्य (नियामक) है । अन्यथा (प्रमाण के विना भी वस्तु रह जाय तो) षट् रस के अतिरिक्त सप्तम रस का भी अस्तित्व होना चाहिए । (अतः वस्तु के अस्तित्व के लिए प्रमाण सत्ता के समान, प्रमाण के अस्तित्व के लिए भी पुनः तद्विषयक प्रमाण की सत्ता माननी आवश्यक है) इस प्रकार स्पष्ट है कि अस्वप्रकाशवादि (तार्किक) के मत में अनवस्थादोषरूप दुर्दशा होनी ही है ।

और यदि आप (तार्किक) प्रमाण के विना ही प्रमाण की सत्ता (अस्तित्व) अन्य (स्वप्रकाशवादि) को स्वीकार करावें, तो घट की सत्ता (अस्तित्व) भी प्रमाण के बिना ही स्वीकार क्यों न करा दें, उसके लिए भी प्रमाण के उपन्यास का प्रयास (निश्चय का प्रदर्शन) करना व्यर्थ है ।

नाव्यवधानलग्नवित्तितद्वित्तिधाराऽभ्युपगम्यते, किन्नाम कदाचित्कुतश्चित्काचिद्वित्तिः प्रमीयते इति सर्वा वित्तिः प्रमाणसिद्धैवेत्यभ्युपेयते इति चेन्न; स्यादप्येवं यदि 'घट' इति 'घटं'

शारदा

अव्यवधानलग्नत्वं वित्तितद्वित्तिविशेषणम्, वित्त्यव्यवहितोत्तरत्वविशिष्टतद्वित्त्यव्यवहितोत्तरत्वविशिष्टतद्वित्तीत्येवमव्यवहितपूर्वापरभावापन्नत्वं तदर्थः। कुतश्चित् = व्यवहारस्मरणलिङ्गादिना। घटविषयकवित्तेरेवं प्रमाणसिद्धत्वसम्भवेऽपि वित्तिविषयकवित्तेर्न तथात्वसम्भवः, अनुभवस्य तद्विषयकत्वादर्शनादित्याह स्यादिति। **विषयभावेन प्रविष्टया = विषयीभूतया। विषयशतान्वय्यभेदस्तृतीयार्थः। एवञ्चोर्ध्वमुखधाराऽभिन्नत्वमधोमुखधारायामुक्तम्, तादृग्विषयशतभारेण = पूर्वपूर्वज्ञानीयानन्तविषयविषयकत्वप्रयुक्तं यन्मन्थरत्वं = अधिककालापेक्षाभिलापविषयत्वं तद्विशिष्टा। अयम्भावः 'विषयनिरूप्यं हि ज्ञानं तेन ज्ञानवित्तिवेद्यो विषय' इति न्यायात् घटज्ञानज्ञानज्ञानादेः पूर्वपूर्वज्ञानविषयविषयकत्वस्यापि वक्तव्यत्वादनन्तविषयकत्वमपि स्यादनुभवविषयोऽभिलप्येत वा विलम्बेन तादृशं ज्ञानं नत्वेवमिति न वित्तिसामान्यग्रहसम्भवः। ननु—अनुव्यवसायो विषयमात्रनिरूप्यो न तु तद्विषयपरम्परानिरूप्यो गौरवात्, तथा च ज्ञानज्ञानत्वेन सर्वा वित्तिरनुभूयते एवेति चेन्न; विषयीभूतज्ञानघटितप्रत्यासत्तेस्तौल्यात् यावद्विषयग्रहणसम्भवात् अतएव व्यवसायोल्लिखितयावत्प्रकारविशिष्टो धर्मी ज्ञानग्रहविषय इति स्वतः प्रामाण्यवादिनो वदन्ति, प्रमात्वव्युदस्तिप्रस्तुतिशेषे वक्ष्यते। अनुमाननिराकरणप्रकरणे सामान्यलक्षणाया निराकरिष्यमाणत्वेन ज्ञानज्ञानत्वेन ज्ञानस्य सर्ववित्तिविषयकत्वानुपपत्तेश्चेति। एवञ्च सर्वासां वित्तीनां तुल्याकारत्वमनुपपन्नमेव। यत्तु— घटत्वप्रकारकमाद्यं ज्ञानं तदनुव्यवसायस्तु घटत्वप्रकारकज्ञानज्ञानम् एवं तदनुव्यवसायादेरपि घटत्वप्रकारकज्ञानज्ञानतेति शेषपर्यन्तमेवानुव्यवसायसम्भवः, वस्तुतस्तु घटत्वप्रकारकत्वप्रकारकत्वप्रकारकमपि ज्ञानं जायते एव, नियमस्तु नास्तीति; तत्तु नानुभवैकशरणैर्मन्तुं युक्तमिति। योगजधर्मबलात्तादृशवित्त्युपत्तिमाशङ्क्याह** यदीति।

राजहंसः

ज्ञानज्ञानत्वेन सर्वावित्तिरनुभूयत इति। ज्ञानं जानामीत्येतावन्मात्रानुभवाभावेन ज्ञानज्ञानत्वेनेत्यत्र प्रथमज्ञानपदेनायं घट इत्यतो विप्रकृष्टं किञ्चिद्विषयकत्वविशिष्टं ज्ञानं यदि गृह्येत तदाह विषयीभूतेति। अयं घट इति ज्ञानस्यैव तेन विवक्षणेऽपि यावज्ज्ञानभानं घटज्ञानं जानामीत्यत्र न लौकिकसन्निकर्षसाध्यम्, एवं प्रथमपक्षेऽपीत्याशयेनाह **अनुमाननिराकरणेति**। घटं जानामीत्यत्रापि घटज्ञानत्वेन न निखिलतज्ज्ञानभानसम्भवः, सर्वेषामवर्तमानतया वर्तमानतया सर्वावगाहिन्यास्तस्याः प्रतीतेरप्रमात्वापातात्, एवं घटज्ञानं जानामीत्यस्या अपीत्यपि द्रष्टव्यम्।

भारती

प्रश्न– घटविषयक प्रमा, घटविषयकप्रमाविषयक प्रमा, पुनः तद्विषयक प्रमा इस प्रकार व्यवधानरहित पूर्वापरभावापन्न प्रमाओं की धारा हम (तार्किक) नहीं मानते, (जिससे अनवस्था दोष आपतित हो) किन्तु कदाचित् (जिज्ञासा होने पर) किसी व्यवहारादिलिङ्ग रूप प्रमाण के द्वारा कोई वित्ति (प्रमा) प्रमित हो जाती है। इस प्रकार सभी प्रमा को प्रमाण सिद्ध ही मानते हैं।

जानामी' त्यतोऽधिका घटवित्तितद्वित्तिधारया विषयभावेन प्रविष्टया तादृग्विषयशतभारमन्थरा वित्तिरस्मदादेरुत्पद्यमानाऽनुभूयेत। यद्यस्मदादिविलक्षणजन्मनि सा सम्भाव्यते तदापि यस्या वित्तेस्तावद्विषयगर्भिता धीर्विषयः साप्यन्यया कयाचिदुल्लेख्येत्यत्र प्रमाणाभावश्चानिर्मोक्षापत्तिश्च । नहि स्वमन्तर्भाव्य कयाचिद्धिया स प्रवाहो ग्राह्यः, तथा सति स्वप्रकाशतासिद्धेः । अत एव चान्योन्यविषयता निरस्ता, सविषयकान्योन्यग्रहे स्वग्रहापत्तेः । न च पुरुषान्तरेण सा

शारदा

गर्भिता = विषयिणी। उल्लेख्या = विषयीकरणीया । तादृशवित्तिसिद्ध्यर्थं ज्ञानान्तरानुसरणे आहानिर्मोक्षेति । **अशेषविशेषगुणोच्छेदो हि मोक्षो न सति ज्ञाने सम्भवति** । अन्तर्भाव्येति। **विषयीकृत्येति पर्यवसितार्थः। स्वप्रकाशतेति। स्वविषयत्वरूपेत्यादिः।** अन्योन्येति। **अन्त्योपान्त्यबुद्ध्योरित्यादिः।** सविषयकेति। **अन्योन्यविषयकेत्यर्थः। यद्यपि तार्किकैर्योगजधर्माधीनज्ञानस्य, ज्ञानं प्रमेयमेवेति। व्याप्तिज्ञानस्य, अहेतुकत्वेन सर्वविषयकस्येश्वरज्ञानस्य च स्वविषयकत्वलक्षणं स्वप्रकाशत्वमभ्युपेयते एव, तथाऽप्यन्यत्रापि तत्त्यागे न बीजमिति भावः। स्वप्रकाशवादे निश्चितस्वरूपप्रामाण्योभयस्यैव ज्ञानस्य विषयनिश्चयरूपतेति स्फोरयितुमाह** न चेति।

राजहंसः

विषयीकृत्येति पर्यवसितार्थ इति। ल्यप्प्रयोगोऽत्र मुखं व्यादाय स्वपितीतिवत् । न च तत्र मुखव्यादानोत्तरकालेऽपि स्वापो न चेह तथा, शब्दबुद्धिकर्मणां विरम्य व्यापाराभावादितिवाच्यम्, मुखव्यादानकालिकत्वविवक्षयापि लक्षणया तादृशप्रयोगस्यापलपितुमशक्यत्वात् । लक्षणायाश्च प्रकृतेऽपि सम्भवात् ।

भारती

समाधान – इस प्रकार सभी ज्ञानों को प्रमाणसिद्ध आप (तार्किक) तब कह सकते हैं यदि "घटः घटंजानामि" इन दो ज्ञानों से अतिरिक्त ज्ञान जिसके विषय कोटि में घटज्ञान पुनः उसका ज्ञान इस प्रकार शतशः ज्ञानों की धारा विषय रूप से प्रविष्ट हो, उत्पन्न होते हुए हमारे अनुभव में आता हो । किन्तु इस प्रकार का ज्ञान हमारे (कथकों) अनुभव में नहीं आता, अतः सब ज्ञानों को प्रमाणसिद्ध नहीं कर सकते ।

यदि कहें कि भले ही हमारे सदृश कथकों के अनुभव में तादृशज्ञान न आता हो किन्तु हम से विलक्षण योग-सामर्थ्य सम्पन्न योगीजनों के अनुभव में तादृशज्ञान का आना सम्भव है । तो यह आपका कथन समुचित नहीं है, क्योंकि जिस अन्तिम ज्ञान के विषयकोटि में पूर्ववर्तिव्यवसाय एवं अनुव्यवसाय रूप अनन्त ज्ञानों की धारा विषयरूप से प्रविष्ट है, उस अन्तिम ज्ञान को भी किसी अन्य ज्ञान के द्वारा उल्लेख्य

प्रमास्यते न तु तदभाव इति प्रमा तेऽस्ति, तदर्थमपि प्रमाणान्तर-सद्भावपरम्परापत्तेः । न चैवं घटसामग्रीतत्सामग्रीगवेषणेऽप्यनवस्था

शारदा

सा = चरमवित्तिः । एवं = अनवस्थाभिया ज्ञाने ज्ञानान्तरवेद्यत्वनियमपरित्यागवत्। अनवस्या स्यात् = अनवस्थाभिया सामग्र्याः सामग्र्यन्तरजन्यत्वनियमपरित्यागोऽपि स्यात् । तथा च घटादेः कादाचित्कत्वं भज्येतेति भावः बीजाङ्कुरवत् प्रामाणिक्यनवस्था

राजहंसः

बीजाङ्कुरवदिति । सृष्टिप्रलयवादममनसिकृत्य तत्सिद्धेःपुरेति यावद् दार्शनिकैः प्रवर्तितोऽयमनवस्थाभासदृष्टान्तः, अन्यथा सर्गाद्यकाले ईश्वरेच्छादिवशाद्बीजस्याङ्कुरस्य वा प्रथममुत्पत्तौ क्वानवस्था । 'उद्भिद्वृश्चिकवद्वर्णौ' इतिकुसुमाञ्जल्युक्तनयश्चात्रानुसन्धेयः । बीजपदमङ्कुरसामग्रीपरमिति तु निष्कर्षः, तस्याः प्राक्सम्पादितादृष्टघटितत्वावश्यम्भावेन प्रवाहानादित्वोपपत्तेः, एवमङ्कुरस्य प्रथमं

भारती

(प्रकाशित) मानना होगा । उस अन्य ज्ञान के न मानने पर अन्तिम ज्ञान की सत्ता में कोई प्रमाण नहीं है अर्थात् प्रमाण के अभाव होने से अन्तिम ज्ञान की सिद्धि ही नहीं होगी और यदि अन्तिम ज्ञान की सिद्धि के लिए अन्य ज्ञान का अनुसरण करते हैं तो अनिर्मोक्षापत्ति होगी। (क्योंकि ज्ञान के रहते ''अशेषविशेषगुणोच्छेद रूप मोक्ष हो नहीं सकता) । यह भी नहीं कहा जा सकता है कि ''कोई अन्तिम ज्ञान अपने आप (स्वयं) को प्रकाशित करते हुए पूर्ववर्ति ज्ञानप्रवाह (धारा) को प्रकाशित करता है'' क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर तो स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्व सिद्ध मान ही लिया गया । अतएव-अन्तिमज्ञान एवं अन्तिम का पूर्ववर्ति ज्ञान इन दोनों में परस्पर विषयता अर्थात् ये दोनों ज्ञान परस्पर में एक दूसरे को प्रकाशित करते हैं । इससे अनवस्था दोष भी नहीं है, एवं स्वप्रकाशतापत्ति भी नहीं है । यह कथन भी निरस्त हो गया । क्योंकि इस प्रकार सविषयक (विषय के सहित) एक ज्ञान दूसरे ज्ञान का विषय मानना होगा, ऐसी स्थिति में विषय कोटि में प्रविष्ट स्व का भी प्रकाश स्वयं ज्ञान के द्वारा होने से पुनः स्वप्रकाशतापत्ति होगी ।

प्रश्न—एक पुरुष के जिस अन्तिम ज्ञान के आगे अनवस्थादि के भय से ज्ञानान्तर नहीं मानेंगे उसका प्रकाश पुरुषान्तर के ज्ञान (प्रमा) के द्वारा हो जायेगा । इस प्रकार से अनवस्था दोष भी न होगा एवं ज्ञान में संशय न होने से व्यवसाय विषय पर्यन्त संशयाक्रान्ति भी न होगी ।

समाधान—आपका यह कथन अयुक्त है क्योंकि पुरुषान्तर का ज्ञान उस चरम धी (अन्त्यज्ञान) को ही प्रमित (प्रकाशित) करता है न कि उस (अन्त्यज्ञान) के अभाव को, इस विषय में आप (तार्किक) को प्रमात्मक ज्ञान नहीं है । यदि उसे प्रमा मानेंगे तो तदर्थ भी प्रमाणान्तर की परम्परा माननी होगी, अतः अनवस्था दोष आ ही जायेगा ।

प्रश्न — जैसे अनवस्था के भय से ज्ञान में ज्ञानान्तरवेद्यत्व के नियम का आप

स्यात् । वैषम्यात्, यदि हि घटसामग्रीतत्सामग्रीधारा कुत्रचिद्विच्छिद्येत तदा घटः सदातनः स्यादित्यर्थापत्त्यैव घटः सामग्रीपरम्पराविच्छेदरहित

शारदा

न दोषावहेति तार्किकमतेन समाधत्ते वैषम्यादित्यादिना । सदातन इति । **यद्यपि निस्सामग्रीकस्यापि प्रागभावस्य न सदातनत्वं, भावत्वे सति निस्सामग्रीकत्वमपि वेदान्त्यभिमतमायादौ व्यभिचारि,** तस्य सान्तत्वेनासदातनत्वात्, **तथापि तार्किकमते भावत्वे सति निस्सामग्रीकत्वं सदातनत्वव्याप्यं सम्भवति । वस्तुतस्तु सदातनशब्दोऽनादित्वपर एव युक्तः । तथा च घटसामग्री यदि निस्सामग्रीका स्यात्, अनादिः स्यात्, अनादित्वालीकत्वान्यतरवती वा स्यात् आत्मवत् खपुष्पवद्वा । तत्रालीकत्वे नेष्टापत्तिः, घटतत्सामग्र्योरप्यलीकत्वापत्तेः ।**

राजहंसः

भगवतोत्पादने तत्सामग्रीमादाय प्रवाह इति । 'बीजाङ्कुराख्यदृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि स' इति श्रीगौडपादाचार्योक्तिमनुसृत्याह **तार्किकमतेनेति** । न त्वनिर्वचनीयवादिमतेन । बीजाङ्कुरव्यक्त्योः सादित्वेन प्रवाहस्य प्रवाह्यतिरेके प्रमाणमलभमानस्यानादित्वानुपपत्तेः । स्वसजातीयध्वंसव्याप्यप्रागभावप्रतियोगित्वरूपमनादित्वं तु तदा स्यात्, यदि प्रत्यक्षव्यक्तिसजातीयव्यक्तिः प्रमाणपद्धतिमवतीर्णा स्यात्, अन्यथा तद्ध्वंसस्याप्रमितेः, न च सामान्यकार्यकारणभावस्य प्रामाणिकत्वं विना तादृशव्यक्तिप्रसिद्धिः, न चेमां विना तस्य प्रामाणिकत्वम्, व्यभिचारसन्देहात्, लाघवज्ञानस्योत्तेजकतायां मानाभावात्, अन्यथा चार्वाकादेरपि व्याप्यव्यापकभावबोधोदयप्रसङ्गादिति दुरुत्तरान्योन्याश्रयादिना शारदायां सामान्यकार्यकारणतायास्तुरीये निरासेन न प्रवाहानादिता प्रमाणपथगामिनीत्यनवस्था दोषावहैव, प्रमाणामूलकत्वात् । समन्वयसूत्रभामत्यां व्यक्तिभेदेनानवस्थाया अदूषणत्वमत्रैव तुरीये चान्योन्याश्रयादेर्व्यक्तिभेदेनाभासत्वं यदुक्तम्, तत्तु प्रक्रियादशायां न त्वनिर्वचनीयताचरणरेणुशिरोधारणोद्धुरीकारदशायाम् । तस्मादादावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथेत्यत्रैव शान्तिरिति ।

तार्किकमते भावत्वे सतीत्यादि । अत्र तार्किकपदं प्रसिद्धतार्किकपरम्, प्राचीनैः कैश्चित्पार्थिवपरमाणुश्यामताया अनादिभावरूपतामुपेत्यापि सदातनत्वानुपगमात् । **सर्वान्तर्गतत्वानङ्गीकारेऽनवस्थेति** । सर्वं ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यमिति ज्ञानस्य सर्वान्तर्गतत्वमनुपेत्य

भारती

(खाण्डनिक) ने परित्याग कर दिया, उसी प्रकार घटसामग्री पुनः घटसामग्री की सामग्री, पुनः उसकी भी सामग्री इस प्रकार सामग्री में सामग्र्यन्तरजन्यत्व का नियम मानने से भी अनवस्था दोष आयेगा अतः वहाँ भी अनवस्था के भय से सामग्री में सामग्र्यन्तरजन्यत्व के नियम का भी आप (खाण्डनिक) को परित्याग करना होगा, ऐसी स्थिति में घट में कादाचित्कत्व (अनित्यत्व) भी समाप्त हो जायेगा ।

समाधान—यहाँ दृष्टान्त (घटसामग्री) एवं दार्ष्टान्तिक (ज्ञान) दोनों में वैषम्य है । (वैषम्य दिखा रहे हैं–घटसामग्री एवं घटसामग्री की सामग्री इस प्रकार घटसामग्रीधारा यदि कहीं विच्छिन्न (समाप्त) हो जाय तो घट सदातन (नित्य) हो जायेगा । घट सान्त

एव प्रमीयते । यदि तु ज्ञानेऽप्येवं स्यात्, तदा स्वस्य प्रवेशात्स्वप्रकाशतापत्तिः, अप्रवेशादनवस्था, अवेदने शेषासिद्ध्या सर्वासिद्धिरिति व्यसनं दुरुत्तरमेव । ये च मानमेयभावश्रया दोषाः

शारदा

अनादित्वेऽपि नेष्टापत्तिः, घटसामग्री यद्यनादिसामग्रीका स्यात्, अनादिः स्यात्, वेदान्तिमते जीवादिवत्, व्यतिरेके घटादिवद्वा । अनादिसामग्रीकत्वञ्च नानादिसामग्रीजन्यत्वम्, अपि त्वपेक्षणीययावदनादिकत्वम्, अपेक्षणीयत्वं च क्षैमिकसाधारणमिति नापाद्यापादकयोर्विरोधः। न चात्रापीष्टापत्तिः, घटो यद्यपेक्षणीययावदनादिकः स्यात्, अनादिः स्यात् तथा च प्रत्यक्षविरोधः । कुसुमाञ्जलिस्थवर्धमानोक्तरीत्या तु एतदुत्तरकालानुत्पत्तिका घटसामग्रीसामग्री यद्येतदुत्तरकालानुत्पत्तिकत्वे सत्येतदव्यहितपूर्वकालोत्पत्तिकानपेक्षा स्यात् एतत्पूर्वकालवृत्तिः स्यात्, चिरतरपूर्वसमयोत्पन्नघटादित्यापादनीयम् । अत्र पक्षधर्मताबलान्नैयायिकमते सदातनत्वे पर्यवसानम् । अर्थापत्त्यैव = सदातनत्वाभावस्यानादित्वाभावस्य वाऽन्यथानुप-पत्त्यैव। ज्ञाने = सर्वस्मिन् ज्ञाने । एवं स्यात् = ज्ञानान्तरवेद्यत्वनियमः स्यात् । तदाऽप्रवेशात् = 'सर्व ज्ञानं ज्ञानान्तर वेद्य' मित्याकारकज्ञानस्य सर्वान्तर्गतत्वानङ्गीकारेऽनवस्था, तथा च सुषुप्तिमोक्षयोरभावप्रसङ्गः, स्वस्य = तादृशज्ञानस्य प्रवेशात् = सर्वान्तर्गतत्वोपगमे तु तस्य स्वविषयकत्वेन स्वप्रकाशतासिद्धिः, अनवस्था च अवेदने = तादृशज्ञानस्य न सर्वान्तिर्भावो नापि ज्ञानान्तरज्ञेयतेत्युपगमे शेषस्य = स्वातिरिक्तसर्वज्ञानग्राहकत्वेनाभिमतस्य

राजहंसः

स्वविषयकत्वानुपगमे ज्ञानान्तरवेद्यताव्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नशून्यतया च ज्ञानान्तर-विषयत्वस्याप्यनुपगमे सर्वथैवावेद्यत्वेनाप्रामाणिकत्वमेव प्रसज्येतेति पृथगेव तस्य ज्ञानान्तरवेद्यतानियतेरुपश्लेषिताया वाच्यत्वेऽनवस्थेति भावः ।

भारती

होने से सदातन (नित्य) नहीं है । अतः घटगत सदातनत्वाभाव की अन्यथानुपपत्ति रूप अर्थापत्ति प्रमाण से घटसामग्री परम्परा विच्छेदरहित ही प्रमित होती है । (बीजाङ्कुर के समान प्रामाणिक अनवस्था दोष नहीं होती, इस तार्किक मत के अनुसार उक्त अर्थापत्ति प्रमाण होने से घटसामग्रीगत अनवस्था प्रामाणिक होने से दोष नहीं है । अतः वह अनवस्था सोढव्य है। किन्तु ज्ञानगत अनवस्था में प्रमाण नहीं है, क्योंकि ज्ञानपरम्परा का विच्छेद मानने पर भी स्वप्रकाशत्व मानने मात्र से ज्ञान की सिद्धि हो जाती है ।) और यदि ज्ञान को सिद्ध करने के लिए समस्त ज्ञानों में भी ज्ञानान्तरवेद्यत्व के नियम को ही मानेंगे तो स्व का प्रवेश मानने पर अर्थात् "सर्वं ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यम्" (सभी ज्ञान ज्ञानान्तरवेद्य ही है) इत्याकारकज्ञान को सर्वान्तर्गत मानने पर स्वयं ज्ञान के स्वविषयक होने से स्वप्रकाशता की सिद्धि हो जायेगी और यदि स्व (ज्ञान) का अप्रवेश अर्थात् उक्त ज्ञान को सर्वान्तर्गत नहीं मानेंगे तो ज्ञानान्तर मानना आवश्यक होने से अनवस्था दोष हो जायेगा । (जो प्रमाणविहीन होने से दोष है ।) यदि अवेदन मानें अर्थात् उक्त ज्ञान को न सर्वान्तर्गत मानें और न उसमें ज्ञानान्तरवेद्यता मानें तो उक्त ज्ञान के असिद्ध होने से सब ज्ञानों में ज्ञानान्तरवेद्यत्व की सिद्धि भी नहीं होगी ।

कीर्तनीयास्तेऽपि प्रसज्येरन् । न च तैर्दोषैर्नास्त्येव ज्ञानमित्यास्थेयम्। स्वतः सर्वसिद्धस्य दुरपह्नवत्वात् । स्वप्रकाशत्वाङ्गीकारादेव चानुभवस्य सर्वदोषहानेर्वक्ष्यमाणत्वात् । प्रकाशात्मतामात्रस्यैव स्वतः सिद्धिसम्भवे

शारदा

तादृशज्ञानस्यासिद्ध्या = अनिश्चितत्वेन सर्वासिद्धिः = न सर्वस्मिन् ज्ञाने ज्ञानान्तरवेद्यत्वस्य सिद्धिः । अथवा स्वस्य प्रवेशात् = ज्ञानान्तरवेद्यत्वनियममूलकज्ञानपरम्परायां स्वग्राहकतया स्वस्य चरमस्य विश्रान्तिस्थानस्य प्रवेशे स्वप्रकाशत्वम्, अप्रवेशे तु ज्ञानानवस्था, अन्यथात्वन्तिमासिद्ध्या मूलपर्यन्तासिद्धिरिति व्याख्येयम् । स्वतः सिद्धत्वपक्षे परस्यानपेक्षणीयत्वान्न कश्चिद्दोषः, घटादिवत्परतः सिद्धत्वे तु परेण सम्बन्धस्य चतुर्थपरिच्छेदे वक्तव्यदिशा दुर्निरूपत्वादनिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः, प्रमाणाधीनसिद्धिकत्वेन प्रमाणखण्डनावतारश्चेत्याह ये चेति **मानमेयभावो = विषयविषयिभावः नास्त्येव = अनिर्वाच्यमेव । दुरपह्नवत्वात् = अनिर्वाच्यताया वक्तुमशक्यत्वात्, अन्यथाऽनिर्वाच्यत्वं न क्वापि सिद्ध्येदिति भावः ।**

दोषहानिमेवाह प्रकाशात्मतेति । **अभानापादकाज्ञानविरोधिचित एव प्रकाशात्मतापदेनाभिधानम्, तथा च 'स्वतः सिद्धिसम्भवे' इत्यस्य नासङ्गतिः ।**

राजहंसः

दोषहानिमेवाहेति । यद्यपीदृशस्थले भाविकालिकताया दोषाभावाभिधानेऽबाधेऽपि वक्ष्यमाणत्वादिति प्रयोगो न ग्रन्थकृतां शैलीसिद्धः, तथापि वक्ष्यमाणत्वादिति लेखनानन्तरं कारणविशेषादीषद्विरामे विरामाभावेऽपि वा तदैव वक्तुमौचित्यमवेत्य दोषहानिनिरूपणे प्रवृत्तिसम्भवेन न वक्ष्यमाणत्वादिति

भारती

(अथवा स्वस्य प्रवेशात् इत्यादि का प्रकारान्तर से अर्थ करते हैं । स्व का प्रवेश मानें अर्थात् ज्ञानान्तर वेद्यत्व को सिद्ध करने हेतु स्वीकृत ज्ञानपरम्परा में अन्तिम ज्ञान का यदि प्रवेश मानें तो उस अन्त्य ज्ञान के स्वविषयक होने से स्वप्रकाशत्वापत्ति होगी, और यदि उस परम्परा में स्व = चरमज्ञान का प्रवेश न मानें तो उस (चरम ज्ञान) को सिद्ध करने के लिए पुनः ज्ञानान्तर मानना आवश्यक होने से अनवस्थापत्ति होगी और यदि ज्ञानान्तर भी न मानें तो चरमज्ञान के असिद्ध (संशयास्पद) होने से पूर्ववर्ती (व्यवसाय-विषयपर्यन्त) की असिद्धि (संशयाक्रान्ति) हो जायेगी । किञ्च विषयविषयिभावनिमित्तक चतुर्थपरिच्छेदोक्तदिशा दोष भी यहाँ ज्ञान के अप्रकाशत्व पक्ष में प्राप्त होंगे । यदि कहें कि इन पूर्वोक्त एवं वक्ष्यमाण अनेक दोष होने से ''ज्ञान की सत्ता (पारमार्थिक सत्ता) ही नहीं है'' अर्थात् ज्ञान को भी अनिर्वाच्य ही मान लें तो; आप का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि जो स्वतः सर्वजनस्वात्मसंवेदन सिद्ध है उसका अपलाप नहीं कर सकते । (तात्पर्य है कि यदि ज्ञान की भी पारमार्थिक सत्ता न मानी जाय तो अनिर्वचनीयत्व कहीं भी सिद्ध न होगा क्योंकि सत्य अधिष्ठान के विना अध्यास भी नहीं हो सकता । अतः ज्ञान की पारमार्थिक सत्ता माननी ही होगी ।) उस अनुभव को स्वप्रकाश मानने मात्र से ही अनवस्था आदि समस्त दोष

जडात्मनां धर्माणां केषामपि तदन्तर्भावानुपपत्तिः । अत एव

शारदा

जडात्मकधर्मप्रतिद्वन्द्विता सूचनाय तु तलन्तप्रयोग औपचारिकधर्मतामादाय । अनानन्दापादकाज्ञानविरोधिचित एवानन्दत्वम्, असत्त्वापादकाज्ञानविरोधिचित एव सत्तात्त्वमित्याशयेन मात्रपदम् । स्वतः सिद्धिसम्भवे = **स्वान्यसंविदपेक्षव्यवहारविषयान्यत्वसम्भवात् । जडानां तु तादृशविषयत्वमेव । पूर्णानन्दांशस्य सर्वदाऽपरोक्षत्वविरहेऽपि संविदस्तदनन्यत्वात्तस्य तादृशविषयान्यत्वमक्षतमेवेति भावः । जडात्मनां = निरुक्तविषयत्ववतामज्ञानान्तःकरणादीनां धर्माणां = आध्यासिकसम्बन्धेन चिदाश्रितानां तदन्तर्भावानुपपत्तेः = प्रकाशाभेदानुपपत्तेः, प्रकाशाभेदे हि तेषां जडत्वमेव न स्यात्, प्रकाशत्वमेव वा प्रकाशस्य न स्यात्, तथा च तस्य स्वतः सिद्धत्वविरहे स्यादेञ खण्डनयुक्तिबाध्यता, नत्वेवमित्यर्थः । एवञ्च धर्मिणो भिन्नाभिन्नस्य तत्समसत्ताकस्यैव च धर्मत्वात् प्रकाशत्वादेर्न चिद्धर्मत्वम्, नाप्यन्यस्य, चित्समसत्ताकत्वाभावात् तदभेदाभावाच्चेति निर्धर्मकत्वं चित्युक्तप्रायम् । एतेनैवानुशयेना**हात एवेति । **चिता निर्धर्मकत्वादेवेत्यर्थः । धर्मोपग्रहप्रवर्तिष्णुः = धर्मनिमित्तकप्रवृत्तिकः किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नशक्यताक इति यावत्, वाग्व्यवहारः = शब्दः, तदविषयत्वं = तदवाच्यत्वं तदबोध्यत्वमित्येव वा, विषयतासामान्यस्यैव तत्र निषेधौचित्यात्, विषयतोपहिते एव विषयतायाः सत्त्वेनानुपहिते तदभावात् । तथा चोपहितस्यापि न शुद्धात्मकतेति तस्य**

राजहंसः

प्रयोगे पर्यनुयोगयोग्यता, 'आचार्याः कृत्वा न निवर्तन्ते' इति पतञ्जल्युक्तेः पश्चात्परिवर्तनानादरसम्भवाच्च । न चात्रोत्तरत्रापि दोषहानिरुक्ता विलोक्यत इत्याशयेन प्रकाशात्मतामात्रस्येत्यादिग्रन्थस्यैव तन्निवेदनपरतयोपवर्णनमादृतम् । नासङ्गतिरिति । तादृशज्ञानाक्रान्तचितोऽभातत्वेन स्वतःसिद्धत्वस्य दूरोत्सारितत्वादिति भावः ।

मात्रपदमिति । विशिष्टरूपेणोक्तचितोर्व्यावृत्तावपि चिदात्मनाऽस्ति सङ्ग्रह इति मात्रपदोपादाने तयोर्व्यावृत्त्या परतः सिद्धत्वेन मिथ्यात्वं नाशङ्कनीयमितिभावः । एवकारस्तु मात्रपदस्येतरव्यावृत्तिपरतां पुष्णाति । अथवोक्तचितोरेव विशिष्टरूपेण व्यावृत्तये मात्रपदम्, एवकारस्तु जडात्मनां धर्माणामिति विभजनीयम् ।

न शुद्धात्मकतेति । न शुद्धात्यन्ताभेद इत्यर्थः ।

भारती

की निवृत्ति ''प्रकाशात्मतामात्र'' इत्यादि अग्रिम पंक्ति से वक्ष्यमाण है । अभानापादक अज्ञान का विरोधी ज्ञान ही स्वतःसिद्ध अर्थात् स्वभान में स्वातिरिक्त संविद् अनपेक्ष हो सकता है । अज्ञानाक्रान्तता दशा में तो स्वतःसिद्धत्व संभव ही नहीं है । आध्यासिक सम्बन्ध से उस संविद् के आश्रित अज्ञान अन्तःकरण आदि जड़रूप धर्मों के साथ प्रकाश (चैतन्य) का अभेद होना कथमपि सम्भव नहीं है । (अन्तःकरणादि जड़ धर्मों के प्रकाशाभिन्न होने पर उन धर्मों का जड़त्व ही समाप्त हो जायेगा, अथवा प्रकाश का प्रकाशत्व ही समाप्त हो जायेगा, अतः उस विज्ञान के स्वरूप में जड़ धर्म का प्रवेश नहीं है, अर्थात् स्वरूप से वह विज्ञान निर्धर्मक ही है ।) अतएव धर्म को निमित्त

धर्मोपग्रहप्रवर्तिष्णुवाग्व्यवहाराविषयत्वम्, कालानवच्छेदमादाय च नित्यतोपचारः, देशानवच्छेदमादाय च विभुत्वव्यपदेशः, प्रकारावच्छेदविरहनिबन्धनश्च सर्वात्मत्वाद्वैतादिव्यवहारः,

---

शारदा

पराधीनसिद्धिकत्वेन खण्डनयुक्तिबाध्यत्वेऽपि न क्षतिः । एवं नित्यत्वादिधर्माणामप्याभाररूपत्वेनाधिकरणात्मकतया ब्रह्मणि तद्वत्त्वासम्भवात् तद्वतो बाध्यत्वेऽपि न हानिः, निर्धर्मकत्वादेव च न ब्रह्मणोऽनित्यत्वादिप्रसङ्गोऽपीत्याशयेनाह कालानवच्छेदमादायेति । **कालानवच्छेदनिबन्धन इत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । कालानवच्छेदः = प्रागभावध्वंसाप्रतियोगित्वम् । उपचारः = गौणव्यवहारः, नित्यत्वस्य तत्स्वरूपत्वे तन्निष्ठतया नित्यत्वाभिधानस्य मुख्यत्वासम्भवादिति भावः । एवमग्रे व्यपदेशव्यवहारशब्दयोरपि बोध्यम् । देशानवच्छेदः = अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम् । प्रकारावच्छेदविरहः = भेदकधर्मवैशिष्ट्याभावः, तथा च तादृशधर्मं विना तत्प्रतियोगिकभेदासम्भवात् भेदाप्रतियोगित्वं पर्यवसन्नम्, तच्च स्वान्यूनसत्ताकभेदप्रतियोगित्वात्यन्ताभावः, तादृशप्रतियोगित्वञ्च घटादौ न तु ब्रह्मणि, तत्र कल्पितभेदप्रतियोगित्वस्यैव सत्त्वात्। प्रकारशब्देन च परप्रकाश्यत्वमिथ्यात्वादेरपि धर्मस्य लाभात् तद्विरहनिबन्धनत्वं स्वप्रकाशत्वसत्यत्वादिव्यवहारे लब्धं भवति, अतएवाग्र आदिपदमुपात्तम् । द्वितासम्बन्धि द्वैतं भेदः, द्वित्वभेदयोः परस्परनान्तरीयकत्वात्, प्रतियोगितासम्बन्धेन तदभावत्वोपलक्षितमद्वैतमित्याशयेन भेदाप्रतियोगिन्यद्वैतशब्दप्रयोगः । सौगतमतेऽभावस्य तुच्छत्वादेव न भावरूपाधिकरणातिरेकः । प्रभाकरमतेऽपि ''अभावश्च केवलाधिकरणं तत्कालसम्बन्धो वा स्वप्रकाशरूपं तज्ज्ञानं वेति'' चिन्तामण्युक्तदिशा**

राजहंसः

अभावस्य तुच्छत्वादेवेति । अधिकरणभिन्नत्वेन रूपेणेदं द्रष्टव्यम् ।

केवलाधिकरणमिति । कैवल्यस्यातिरेके सिद्धोऽभावातिरेक, अनतिरेके तु घटतदभाववद्भूतलयोरविशेषप्रसङ्ग इत्यत आह **तत्कालसम्बन्ध इति** । कालं प्रति परिचायकतयाऽभावत्वप्रकारकप्रतीतेरेवोपादाने तस्या एवाभावरूपत्वमुचितमित्यनुशयेनाह **स्वप्रकाशरूपमिति।**

भारती

होने वाले व्यवहार का वह विषय नहीं होगा । अनित्य पदार्थों में कालावच्छिन्नत्व (काल से सीमित होना) ही अनित्यत्व है । विज्ञान में कालावच्छिन्नत्व का अभाव होने से औपचारिक (आरोपित) नित्यत्वव्यवहार होता है । देशावच्छिन्नत्व का अभाव होने से विभुत्वव्यवहार होता है । प्रकारावच्छेद (भेदकधर्मकृतपरिच्छिन्नत्व) अर्थात् वस्तु परिच्छिन्नत्व का अभाव होने से सर्वात्मत्व अद्वैतत्व स्वप्रकाशत्व सत्यत्व आदि व्यवहार भी कर लिये जाते हैं ।

यदि कहें कि अन्ततोगत्वा अभाव रूप धर्म के रहने से ही अद्वैत की हानि होगी, तो यह कथन उचित नहीं है, क्योंकि जैसे बौद्धमत में अभावमात्र के तुच्छ

सौगतप्राभाकरवद्भावे, नैयायिकवच्चाभावे, अभावानतिरेकस्वीकारादेव चाद्वैताव्याघातः । भ्रमविषयनिषेधवच्च प्रतियोगिनः सर्वथैवासिद्ध्यापि न काचित्क्षतिः ।

शारदा

भावरूप एव । तार्किकैश्चाभावत्वप्रकारकप्रतीतेः प्रमात्वरक्षार्थं भावाधिकरणकाभावस्यातिरिक्तितोपगमेऽपि नाभावाधिकरणकाभावस्यातिरेक उपगम्यते, लाघवात्, तादृशप्रतीतेः प्रमात्वोपपत्तेश्च, यदाह शिरोमणिः–''सर्वस्यैवाभावस्य स्वसमानाधिकरणाभावान्तरभिन्नत्वात् तद्भेदस्यानवस्थाभयेन स्वस्वरूपानतिरिक्ततयेति'' । अभेदेप्याधाराधेयभावश्च 'घटाभावे घटो नास्ती' त्यादौ बौद्धाधिकारे शिरोमणिभिरुक्त इति । ननु प्रपञ्चस्य सत्यत्वे तदनुयोगिक भेदस्यापि ब्रह्मान्यूनसत्ताकत्वसम्भवात् कथं तादृशभेदप्रतियोगित्वाभावो ब्रह्मणि, न च प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वम्, सत्ये प्रपञ्चे सत्येव प्रपञ्चान्तरे मिथ्यात्वसम्भवात्, न हि हट्टस्थरजतं विना रजतं मिथ्येत्यत आह भ्रमेति । **अनिर्वचनीयख्यातेः साधितत्वेन भ्रमविषयस्यासत्यत्वात् नेदं रजतमित्याद्यनुभूयमाननिषेधप्रतियोगित्वाच्च प्रतीतेरेव निषेधप्रतियोगितायां तन्त्रत्वम्, न तु तद्गतप्रमात्वस्यापि, न च प्रपञ्चप्रतीतिरेव क्वचित्तत्प्रमां विना न सम्भवतीति वाच्यम्; संसारानादितायाः सर्वसम्मतत्वेन पूर्वपूर्वप्रतीत्यैव संस्कारादिद्वारोत्तरोत्तरप्रतीत्युपपत्तेः प्रमाधीनसंस्कारस्यैव भ्रमहेतुत्वमितिकल्पनाया गौरवपराहतत्वात् प्रत्युत सत्यरजतमज्ञातवतो भ्रान्तवाक्यादिना शुक्तावेव रजतत्वप्रकारकज्ञानवतः पुनः शुक्तौ रजतभ्रमानुपपत्तिप्रसङ्गाच्चेति भावः । प्रतियोगिनः = प्रपञ्चस्य । सर्वथैवासिद्ध्यापि = क्वचिदपि पारमार्थिकत्वाभावेऽपि। न क्षतिः = न निषेधानुपपत्तिः ।**

राजहंसः

नेदं रजतमित्याद्यनुभूयमाननिषेधेति । प्रातीतिके व्यावहारिकतादात्म्यारोपोपगमपक्षे एतद्भेदप्रतियोगित्वस्य व्यावहारिके भानेऽपि प्रातीतिकव्यावहारिकसाधारणरजतत्वेन भ्रमे रजतभानोपगमपक्षेऽत्यन्ताभावप्रतियोगित्वेनेव भेदप्रतियोगित्वेनापि प्रातीतिकस्य भानसम्भवः। नात्र रजतमिति प्रतीत्युपादानं तु मतद्वयसाधारणम् ।

भ्रमविषयनिषेधवदितिमूले षष्ठीसमर्थाद्वतिः, तथा च भ्रमविषयनिषेधस्येव प्रकृतनिषेधस्यापि प्रतियोगिनः सर्वथैवासिद्धत्वेऽपि नानुपपत्तिरित्यक्षरार्थः । तत्र प्रतियोगिपदस्योभयनिषेधप्रतियोगिसाधारणत्वेऽपि प्रकृतनिषेधे ग्राह्यं प्रतियोगिनमाह **प्रतियोगिनः प्रपञ्चस्येति ।**

भारती

होने से अभाव की सत्ता नहीं मानी, प्रभाकर मीमांसक के मत में भावरूप अधिकरण में रहने वाले अभाव को भावरूप ही माना है अतिरिक्त नहीं, एवं नैयायिक मत में भावाधिकरणक अभाव के अतिरिक्त होने पर भी अभावाधिकरणक अभाव को अधिकरण रूप ही माना है अतिरिक्त नहीं, उसी प्रकार (खाण्डनिक) भी कालावच्छिन्नत्वादि के अभाव को विज्ञान रूप ही मानते हैं अतिरिक्त नहीं, अतः अद्वैत का व्याघात (अनुपपत्ति) नहीं है ।

तदेतत्तु श्रुत्या प्रमाणेनोपलक्षणन्यायात् तात्पर्यतः प्रकाश्यते; तेन

शारदा

शुद्धे शब्दविषयतानिषेधे तदप्रामाणिकत्वमाशङ्क्याह तदेतदिति । **अद्वैतमित्यर्थः । श्रुत्यभिन्नप्रमाणेनेत्यर्थः । उपलक्षणन्यायादिति । शाखयाऽसम्बद्धोऽपि चन्द्रो यथा तया बोध्यते तथा वस्तुतो ब्रह्मासम्बद्धैरेव तत्तद्धर्मैरुपलक्षिततया तद्बोध्यते इत्यर्थः । तात्पर्यतः = शुद्धेतरपरत्वाभावेन, ''नेती'' त्यादिवाक्यबोधितब्रह्मेतरनिषेधस्यानुपपत्तेः ''केवलो निर्गुण'' इत्यादिश्रुत्यसङ्गत्यापत्तेश्च न श्रुतेर्ब्रह्मेतरपरत्वमित्यन्यनिषेधमुखेनैव तद्बोधः, सत्यादिपदैरपि मिथ्याव्यावृत्तिफलकमवान्तरबोधं विशिष्टविषयकमुत्पाद्य शुद्धं बोध्यते, एवञ्च ''सकलवाङ्मनसातिगता चितिः सकलवाङ्मनसव्यवहारभागिति'' न्यायेन स्वन्यूनसत्ताकवाग्व्यवहारविषयताश्रयत्वेऽपि स्वसमसत्ताकवाग्व्यवहारविषयतावद्भिन्नत्वाद्वाग्व्यवहाराविषयत्वोक्तिः, स्वसमसत्ताकप्रवृत्तिनिमित्तवद्भिन्नत्वेनैव चावाच्यत्वव्यवहारो, लक्ष्यताव्यवहारश्च । स्वन्यूनसत्ताकप्रवृत्तिनिमित्तवत्तामादाय वाच्यताव्यवहारस्तु गौण एवेति न हानिकर इति भावः । यत्तु ब्रह्मणोऽपि विशिष्टात्मना वाच्यत्वात् वाच्यत्वे लक्ष्यत्वव्यापकत्वस्याबाधकत्वेऽपि तेन रूपेण वाच्यत्वनिरूपितव्याप्तेस्तेन रूपेण लक्ष्यतायां दर्शनात् शुद्धात्मना लक्ष्यस्य तेन रूपेण वाच्यत्वमप्यापततीति, तन्न, तेन**

राजहंसः

अवान्तरबोधं विशिष्टविषयकमिति । सत्यादिपदानां गगनादिसाधारणेन ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वादिनाऽबाध्यत्वादिना वा धर्मेण विशिष्टे शक्तिरिति मतेनेदम् । व्यावहारिकसाधारणतयैव चायं धर्मो न ब्रह्मरूप इत्यवेत्य स्वन्यूनसत्ताकप्रवृत्तिनिमित्ताभिधानं ब्रह्मण्यग्रे । तेषां व्यक्तिमात्रशक्ततापक्षे तु प्रथममेव निर्विकल्पमतिप्रसव इत्युपपादितं पुरा । किञ्चिद्रूपावच्छिन्नलक्ष्य**त्वस्याभावेनेति** । न च लक्ष्यताया ब्रह्मनिष्ठायाः किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्वमपि लक्ष्यतात्वेन साधनीयम्; अप्रयोजकत्वात्, तात्पर्यमात्रप्राणिताया लक्षणाया अनवच्छिन्नाया अपि सम्भवात् ।

भारती

शङ्का—प्रपञ्च के सत्य होने से प्रपञ्चानुयोगिक भेद भी सत्य ही होगा, ऐसी स्थिति में उस भेद के ब्रह्मान्यूनसत्ताक होने से स्वान्यूनसत्ताकभेदप्रतियोगित्व ही ब्रह्म (विज्ञान) में है, न कि स्वान्यूनसत्ताकभेदप्रतियोगित्वात्यन्ताभाव (वस्तुपरिच्छिन्नत्वाभाव), यदि कहा जाय कि प्रपञ्च मिथ्या है सत्य नहीं, तो यह आप नहीं कह सकते क्योंकि किसी एक प्रपञ्च के सत्य होने पर ही प्रपञ्चान्तर को मिथ्या कह सकते हैं, जैसे कि हट्टस्थ रजत के सत्य होने पर ही शुक्ति में रजत को मिथ्या कहा जाता है । अतः प्रपञ्च का स्वाश्रय में निषेध नहीं कर सकते।

समाधान—अनिर्वच**नीयख्याति** के पूर्व सिद्ध होने से जैसे भ्रम का विषय रजतादि असत्य (मिथ्या) होते हैं और नेदं रजतम् इत्यादि निषेध के प्रतियोगी भी होते हैं। उसी प्रकार प्रपञ्च के सर्वथा असिद्ध (मिथ्या) होने पर भी अर्थात् प्रपञ्च की **पारमा**र्थिक सत्ता न होने पर भी उसका निषेध किया जा सकता है । (अतः समस्त प्रपञ्च का निषेध होने पर अद्वैत ही अवशिष्ट रहता है) यदि कहें कि अद्वैत में प्रमाण नहीं

परमार्थतोऽभिधानाभिधेयभावविरहे तात्पर्यतः श्रुतिस्तस्मिन्नविद्यादशायां पराभ्युपगमरीत्या प्रमाणमित्युच्यते । वस्तुतस्तु स्वात्मसिद्धमेव चिद्रूपम्।

शारदा

रूपेण लक्ष्यत्वमित्यस्य तद्रूपावच्छिन्नलक्ष्यत्वमित्यर्थकत्वात् शुद्धे च किञ्चिद्रूपावच्छिन्न-लक्ष्यत्वस्याभावेन स्वरूपासिद्धेः, स्वन्यूनसत्ताकधर्मावच्छिन्नवाच्यत्वसाधने सिद्धसाधनात्, स्वसमसत्ताकधर्मावच्छिन्नवाच्यत्वसाधने च क्वचिदपि धर्मे ब्रह्मसत्ताकत्वस्यैवासिद्धेर्बाधा-च्चेति। अविद्यादशायामिति । **अविद्याविरहे प्रमाणप्रमेयभावस्यैवाभावादिति भावः ।** पराभ्युपगमेति । **मानाधीना मेयसिद्धिरिति पराभ्युपगमात् ब्रह्मणोऽवस्तुत्वशङ्कानिवृत्त्यै श्रुतिस्तत्र प्रमाणतयोपन्यस्यते, मन्मते तु स्वतः सिद्धमेव वस्तु, अन्यत्तु मानशतैरप्यविद्याधूलीधूसरैः सिद्ध्यदप्यवस्त्वेव, तत्तन्मानोपहितस्य ब्रह्मणोऽपि मिथ्यात्वान्न शुद्धे मानविषयत्वम्, उपहितानुपहितयोस्तादात्म्यात्तु 'शुद्धं पूर्णानन्दात्मक' मित्यादिवाक्यैर्वस्तु-गत्या स्वजन्यमित्युपहिते तत्तद्धर्मविधायिभिरेव शुद्धत्वावच्छिन्नविशेष्यताकमपि पूर्णानन्दात्मत्वाभावविषयकसंशयादिकं पूर्णानन्दविषयकमज्ञानं च निवार्यते इति फलबलेन कल्प्यते इति नोद्भाव्योऽतिप्रसङ्गः, यदाहुः-"प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रमितिस्तथा । यत्प्रसादात् प्रसिद्ध्यन्ति तत्सिद्धौ किमपेक्ष्यते" ।। इति, वस्तुतस्तु तादृशसंशयाज्ञानादिकमपि स्वस्वोपहिते एव । तदेतदभिसन्धायाह** वस्तुत इति । **स्वात्मसिद्धमेव = मानमनपेक्ष्यैव सच्चिदंशे संशयाद्यविषयः ।**

राजहंस

बाधाच्चेति । वेदान्तिप्रभृतिभिरप्रसिद्धप्रतियोगिकाभावस्याभ्युपेतत्वेनेदम्, अन्यथा तु साध्याप्रसिद्धिरेव दूषणं द्रष्टव्यं ।

स्वप्रकाशे च मानमेयभावव्यवस्थाया अभावादेवेत्यादिना विषयविषयिभावस्य त्यक्तत्वेऽपि

भारती

है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि "एकमेवाद्वितीयम्" "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि श्रुतिरूपप्रमाण उपलक्षणन्याय से अपने तात्पर्य के द्वारा अद्वैत का प्रकाश करता है । उपलक्षण न्याय का तात्पर्य यह है कि जैसे शाखा में असम्बद्ध चन्द्र भी शाखा के द्वारा बोधित किया जाता है । उसी प्रकार वस्तुतः ब्रह्म (विज्ञान) से असम्बद्ध भी तत्तद् धर्म (अद्वितीयत्वादि) शाखा के समान उपलक्षण (तटस्थ) होकर भी श्रुतिवाक्यों के ब्रह्मेतर में तात्पर्य न होने से ब्रह्म नित्यविज्ञान का बोध कराते हैं । इससे परमार्थतः ब्रह्म (नित्यविज्ञान) में वाच्यवाचक भाव के न होने पर भी तात्पर्य की दृष्टि से "मानाधीना मेयसिद्धिः" इस तार्किक रीति का अनुसरण कर अविद्यादशा में श्रुति को अद्वैत में प्रमाण कह दिया जाता है। वस्तुतस्तु वेदान्तसिद्धान्त की रीति से वह (ब्रह्म) स्वात्मसिद्ध ही है । अर्थात् प्रमाण की अपेक्षा न करते हुए ही सत् और चिद् अंश में संशयादि का अविषय है ।

ननु स्वप्रकाशत्वं ज्ञानस्येत्यनुपपन्नमिदम् , क्रियाकर्मभावस्य भेदव्यतिरेकेणानुपपत्तेः, कार्या क्रिया हि कर्मणो भवति, कर्म च क्रियायाः, न च स्वेनैव स्वनिष्पादनं शक्यम् , पूर्वापरभावविशेषष्य हेतुहेतुमद्भावरूपत्वात्, न च तस्मादेव तदेव पूर्वमपरं च सम्भवति, तदनवच्छिन्नकालविशेषस्य तत्पूर्वशब्दर्थत्वात्, तदा च तस्य सद्भावस्वीकारे स एव कालस्तदवच्छिन्नस्तदनवच्छिन्नश्चेति विरोधात्।

शारदा

क्रियेति । **धात्वर्थत्वेन विषयित्वेन क्रियात्वं विषयत्वेन च कर्मत्वमेकत्रासम्भवि । कर्मणः कार्या = कर्मजन्या, क्रियाजनकत्वं कारकत्वमिति सिद्धान्तात् । एकत्र विषयविषयिभावाङ्गीकर्तृयोगाचारादिमते ज्ञानस्य नित्यत्वानङ्गीकारादिति भावः । निष्पादनं = जननम् । पूर्वापरभावमात्रस्य रासभघटसाधारण्यात्** विशेषस्येति । **विशेषो नैयत्यमनन्यथासिद्धिश्च । तदव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन तत्समानाधिकरणभेदप्रतियोगितान-वच्छेदकत्वे सति तन्निरूपितान्यथासिद्धिराहित्यं तत्कारणत्वं न तदभिन्ने सम्भवति । तदनवच्छिन्नः कालस्तद्ध्वंसकालोऽपीत्यत उक्तं** विशेषस्येति । **तथा च तत्प्रागभावाश्रयकालस्तत्पूर्वकालः । तदा = तत्प्रागभावकाले । स एव = एक एव । एकावच्छेदेनेति शेषः, अवच्छेदकश्च ज्ञानोत्पत्त्यवच्छेदकः प्रदेशः । अवच्छिन्नः = आश्रयः । तथाच स्वं यदि स्वजनकं स्यात् स्वभिन्नं स्यादिति ज्ञानस्वरूपमेव विशीर्णम्,**

राजहंसः

'अथवा स्वात्मना सहे' त्येतत्पर्यन्तमभ्युपेत्यवादेन तं समर्थयितुमाशङ्कते मूले ननु स्वप्रकाशत्वमित्यादिना ।

भारती

क्रियाकर्मभावविरोध परिहार ।

शङ्का—ज्ञान को स्वप्रकाश मानना अयुक्त है । क्योंकि ज्ञान को स्वप्रकाश मानने में क्रियाकर्म भाव का विरोध होता है । कारण कि क्रिया-कर्म भाव भेद के विना नहीं होता । क्रिया कर्म के द्वारा की जाती है । अतः कर्म क्रिया का कारण है । (ज्ञान के स्वप्रकाशत्वपक्ष में ज्ञान क्रिया ही कर्म हो जाता है, अतः क्रिया कर्म के एक (अभिन्न) होने से कार्यकारणभाव सम्बन्ध नहीं बन सकता ।) स्व से स्व की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि पूर्वापरभावविशेष ही कार्यकारणभाव होता है, जो पूर्व अर्थात् पूर्वक्षण वृत्ति होता है वह कारण कहलाता है, एवं जो अपर अर्थात् उत्तरक्षणवृत्ति होता है वह कार्य कहलाता है । ज्ञान के एक होने से वह ज्ञान ही अपने से पूर्व एवं अपर नहीं हो सकता । कारण कि उस (ज्ञान) से अनवच्छिन्न (रहित) काल ही तत्पूर्व (ज्ञान का पूर्व) शब्द का अर्थ है । यदि ज्ञान के प्रागभाव काल में भी ज्ञान का सद्भाव माना जाय तो वह एक ही काल उसी (ज्ञान) से अवच्छिन्न (सहित) एवं अनवच्छिन्न (रहित) विरोध होने से नहीं माना जा सकता है ।

मैवम् । क्रियायाः कर्मजन्यतानियमानङ्गीकारात् । सर्वथैवानागतविषयकविज्ञाने तदसम्भवात् क्वचिज्जनकतामादाय च कर्मणि कारकत्वव्यपदेशात् । करणव्यापारविषयत्वाद्वा परसमवेतक्रियाफलभागित्वाद्वा कर्मलक्षणात् विनापि क्रियाजनकत्वेन कर्मव्यवहारोपपत्तेः ।

शारदा

स्वप्रकाशत्वं तु दूरे इति भावः । क्रियायाः = सकर्मकक्रियायाः । तेनाकर्मकक्रियायां कर्मजन्यत्वव्याप्तिसम्भावनानारोहेऽपि न क्षतिः । अनागतेति अतीतस्याप्युपलक्षणम् । येन रूपेणातीतानागतयोर्ज्ञानं परोक्षम्, तेन रूपेण तयोः सत्कार्यवादेऽप्यसत्त्वात् ज्ञानजनकत्वासम्भवात्, रूपान्तरेण सत्त्वस्यानुपयोगित्वात् । वर्तमानविषयकपरोक्षं प्रति केनचिद्विषयस्य कारणता सम्भाव्येतापीत्याशयेन सर्वथैवेति । **तदसम्भवात् = कर्मजन्यत्वासम्भवात् । यद्यपि प्रत्यक्षं प्रति विषयस्य कारणत्वात् ज्ञानमात्रस्य च स्वांशे प्रत्यक्षत्वात् प्रत्यक्षत्वेन रूपेण विषयजन्यतानियमस्य स्वप्रकाशत्वविरोधित्वं वक्तुं शक्यते, ईश्वरप्रत्यक्षे व्यभिचारे तु जन्यप्रत्यक्षत्वावच्छेदेनैव विषयजन्यत्वमस्तु, तथापि यत्किञ्चिद्विषयजन्यत्वेनैव प्रत्यक्षत्वोपपत्तौ यदंशे यस्य जन्यज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वं लौकिकप्रत्यक्षत्वं वा तदंश तस्य तज्जन्यत्वमिति नियमे न मानम्, स्वप्रकाशत्वं विना बोधासिद्धेरुक्तत्वात्**

भारती

समाधान– सकर्मक क्रिया कर्म से जन्य होती है । इस नियम को हम नहीं मानते, क्योंकि ''घटं करिष्यति'' ''घटं ज्ञास्यति'' इत्यादि सर्वथा अतीत अनागत (भविष्यत्) विषयक विज्ञान में उक्त नियम का व्यभिचार होने से सकर्मक क्रिया कर्मजन्य नहीं हो सकती । यदि कहें कि कर्म के क्रिया जनक न होने पर उस (कर्म) में कारकत्व व्यवहार कैसे होगा, तो घटादि में प्रत्यक्षज्ञान की एवं ग्रामादि में गमनक्रिया की जनकता मानकर कर्म में कारकत्व व्यवहार हो सकता है । एवं कर्म में क्रिया जनकत्व के विना भी करण**व्यापारविषय**त्वं कर्म (करण के व्यापार का विषय कर्म होता है ।) करणव्यापारजन्यफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्य-विशेष्यताश्रयत्व ही कर्मत्व है यदि कहो कि संयोगरूपफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यता चैत्र में भी है तब चैत्रश्चैत्रं गच्छति'' भी होना चाहिए, अतः कर्म का लक्षणान्तर करते हैं— परसमवेतक्रियाफलभागित्वं कर्म (परसमवेत–कर्तागत जो गमनादिक्रिया **तज्जन्य फल** (उत्तर देश ग्रामादि का संयोग) का आश्रय कर्म होता है इन कर्म लक्षणों के द्वारा ही कर्म व्यवहार हो सकता है ।

किञ्च तत्कर्मत्वं यत्स्वं प्रति विरुद्ध्यते । परसमवेतक्रियाफला भागित्वमिति

शारदा

स्वविषयकत्वावच्छेदेन तादृशनियमस्य सङ्कोच्यत्वात्, अन्यथा जन्यत्वमपि किमित्युपादीयते, प्रमाणबलाज्ज्ञाने नित्यत्वसिद्धिरिति तु स्वप्रकाशत्वसिद्धावपि तुल्यम्, अतिप्रसङ्गस्याभेदस्य स्वांशे प्रत्यक्षतानियामकतामुपेत्य वारणसम्भवात्, कर्मकारकता त्वतीतानागतयोरिव स्वांशे नास्त्येव, ज्ञानार्थकधातुसमभिव्याहारे विषयिताया एव द्वितीयार्थत्वस्य तार्किकसम्मतत्वादिति भावः । क्वचित् = घटादिविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वाश्रये, गमनादिक्रियायां वा । निरूपितत्वं सप्तम्यर्थो जनकतान्वयी । करणव्यापारविषयत्वात् = करणव्यापारजन्यफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यताश्रयत्वात् । संयोगरूपफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यतायाश्चैत्रेऽपि सत्त्वात् चैत्रश्चैत्रं गच्छतीति प्रयोगप्रसङ्ग इत्यतो लक्षणान्तरमाह परसमवेतेति । **प्रकृतधात्वर्थव्यापारानाश्रयत्वे सति प्रकृतधात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वादित्यर्थः । चैत्रे सत्यन्ताभावान्नोक्तप्रसङ्गः । न च काशीं गच्छन् पथि मृत इति प्रयोगानुपपत्तिः, काश्याः संयोगरूपफलानाश्रयत्वादिति वाच्यम्, तादृशफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यताश्रयत्वस्य विवक्षितत्वात् । ज्ञाततावच्छिन्नज्ञानस्य** जानात्यर्थत्वमते **फलपदेन ज्ञाततामादाय, ज्ञानानुकूलव्यापारस्यात्ममनोयोगादिरूपस्य** जानात्यर्थत्वमते **ज्ञानरूपफलमादाय लक्षणसमन्वयः, ज्ञानस्य विषयतया विषयसम्बद्धत्वात् । अज्ञानाविषयत्वावच्छिन्नज्ञानस्य तदर्थत्वे तु विषयेऽज्ञानाविषयत्वमादाय लक्षणसमन्वयः । प्रतीतिबलाद्वा सत्कार्यवादमाश्रित्य वाऽतीतादेरपि विषयताऽज्ञानाविषयतयोराश्रयत्वोपगमात् । ज्ञानत्वस्यैव जानात्यर्थतावच्छेदकत्वमिति तार्किकमते तु ज्ञानस्थले नोक्तरूपं कर्मत्वम्, अपि तु ज्ञानविषयत्वमेवेति ध्येयम् ।**

राजहंसः

यद्यपि तत्प्रागभाववति काले तस्य सामान्यत एवासम्भवः, तथापि तत्प्रागभावाधिकरणे तदत्यन्ताभावस्याप्युपगतत्वेनात्यन्ताभावस्य च काले प्रदेशभेदेन प्रतियोगिना समावेशसम्भवेनाह **एकावच्छेदेनेति शेष इति ।**

भारती

किञ्च वह कर्मत्व क्या है, जिसका स्व के साथ विरोध होता है । तात्पर्य यह है कि लक्षण के द्वारा कर्म की भी पारमार्थिक सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती, जिससे कि ज्ञान क्रिया के साथ स्वयं ज्ञान रूप कर्म का विरोध हो सके ।

प्रश्न—परसमवेतक्रियाफलभागि अर्थात् पर कर्त्ता में समवेत जो क्रिया तज्जन्य फल का आश्रय कर्म होता है । (इस लक्षण में पर शब्द से कर्मत्वेन अभिमत पदार्थ से भिन्न लेना है ।)

चेन्न, अपादानस्यापि व्याप्तेः । अपादानं कर्मापीति चेन्न, वृक्षात्पतति

शारदा

यथाश्रुतेऽपादानेऽतिव्याप्तिमाह अपादानस्येति । **व्याप्तिः कर्मत्वेन, तथा च कर्मत्वापत्तिरित्यर्थः । तत्क्रियानाश्रयस्य तत्क्रियाजन्यविभागवत एवापादानत्वात् पर्णसमवेतपतनक्रियाजन्यविभागरूपफलवत्त्वं वृक्षस्यापीति भावः । विवक्षात इत्यादिग्रन्थेनोद्‌घाटनीयाभिसन्धिमूलके शङ्कासमाधाने अपादानमित्यादिना । न च धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वविवक्षायां नेदं दूषणम्, अधः संयोगस्यैव पतधात्वर्थतावच्छेदकत्वेन वृक्षस्य तदनाश्रयत्वात् तदाश्रयभूमेः कर्मत्वं त्वेष्टव्यम्, अधिकरणानवच्छिन्नत्वं वा फले विशेषणीयम्, नरकं पतित इति प्रयोगस्तु 'पतितोऽयं ब्राह्मण' इत्यादाविव पतधातोरर्थान्तर लक्षणयासमर्थनीयः, न हि तत्राधःसंयोगावच्छिन्नस्पन्दप्रतीतिः, उक्तं हि दुःख विशेषवाचकनरकपदसमभिव्याहारे पतधातोर्भोगानुकूलपातित्यार्थकत्वं शब्दशक्तिप्रकाशिकायाम्, व्युत्पत्तिवादतत्त्वालोके च।**

राजहंसः

परसमवेतेति यथाश्रुतमव्यावर्तकम्, परत्वस्य केवलान्वयित्वात् , यदि तु शब्दस्वाभाव्यात्स्वातिरिक्तसमवेता या क्रिया तज्जन्यफलशालित्वं स्वनिष्ठं सदेव कर्मत्वम्, चैत्रनिष्ठसंयोगजनकक्रियायां तु चैत्रातिरिक्तसमवेतत्वं नास्तीत्यदोष इत्युच्यते तदापि स्वत्वावच्छिन्नान्यत्वस्य स्वत्वानुगमेऽप्रसिद्धिः, तदननुगमे तु नैकधातुस्थलीयकर्मणामप्युपग्रह इत्याशयेन क्रियायां कर्मत्वाभिमतातिरिक्तसमवेतत्वोक्त्या कर्मत्वाभिमते क्रियाया अनाश्रयतां लब्ध्वा कर्तारं प्रकारान्तरेण व्यावर्तयति—**प्रकृतधात्वर्थेत्यादि** । फले क्रियाजन्यत्वं त्यक्त्वा प्रकृतधात्वर्थतावच्छेदकत्वोपादानं त्वपादानादावतिव्याप्तिवारणफलकमित्यग्रे तत्र तत्र टीकायां व्यक्तम् ।

विषयेऽज्ञानाविषयत्वमादायेति । अत्र विषयपदं घटादिविषयपरम्, न तु ज्ञानपरमपि, तस्य ज्ञातैकसत्त्वेनाज्ञानाप्रसक्तेस्तद्विषयताभङ्गस्याप्यनाश्रयत्वात् । ज्ञानं ज्ञातमितिमितेः स्वरसतोऽनुत्पत्त्या ज्ञातताया अस्वप्रकाशवादिनैवाभ्युपगत्या च द्वितीयपक्ष एव ज्ञानसाधारण्यं द्रष्टव्यम् । मूलं त्वापाततो व्यवहाररूपफलमादाय योजनीयम्, न तु वस्तुगतिरेषा, धात्वर्थतावच्छेदकताया अग्रे वर्णितरीत्या फलेऽवश्यं वाच्यत्वात्, न च प्रसक्तप्रकाशतया ब्रह्मण एवाज्ञानविषयत्वेन तदवच्छेदके घटादावपि कथमज्ञानविषयताभङ्गरूपफलप्रसिद्धिः, अज्ञानविषयतावच्छेदकेऽपि घटादाववच्छेदकत्वरूपविषयताया आवश्यकत्वात्, न हि

भारती

समाधान—यथाश्रुत यह लक्षण अपादान में अतिव्याप्त है । (वृक्षात्पर्णं पतति यहाँ पर–पर यानि पर्ण समवेत पतन क्रियाजन्य विभाग रूप फल का आश्रय वृक्ष (अपादान) भी है, अतः अतिव्याप्ति है ।) यदि कहें कि अपादान कर्म भी है तो यह नहीं कह सकते–क्योंकि कर्म होने पर वृक्षात् पर्णं पतति के समान वृक्षं पर्णं पतति'' प्रयोग भी प्रामाणिक होना चाहिए।

पर्णमितिवत् वृक्षं पर्णपततीत्यपि स्यात् । विवक्षातः कारकाणि भवन्तीति तदविवक्षया नैवमिति चेन्न; वस्तुतः सतस्ताद्रूप्यस्य यदि विवक्षा स्यात् तदा तदपि स्यात् । अपादानस्य कर्मत्वं न विवक्ष्यते इति शाब्दिकसम्प्रदायोऽयमिति चेत्, तर्हि तत्र निवृत्तसर्वकर्मव्यवहारेऽपि

शारदा

एवञ्च तत्र भोगान्वितविषयत्वमेव द्वितीयार्थ इति वाच्यम्; काशीं गच्छन् पथि मृत इत्यत्र तथाऽव्याप्तेरिति भावः । निरुक्तरीत्येच्छाघटितमेवलक्षणमादरणीयमित्याशयेनाशङ्कते विवक्षात इति । **कारकाणि = कारकविभक्तयः । तदविवक्षया = अपादाने कर्मत्वाविवक्षया नैवम् = वृक्षं पततीति प्रयोगो न । इच्छाघटितलक्षणकरणेन काशीं गच्छन्नित्यत्राव्याप्त्युद्धारेऽपि पर्णं वृक्षं पततीति प्रयोगापत्तिरस्त्येव, तादृशफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यताया वृक्षेऽपि सम्भवात्, न हि कस्यचिदिच्छा वृक्षेऽधः संयोगाश्रयत्वसम्भवमनुरुन्धे, सर्वस्यापि किञ्चिदपेक्षयाऽधस्त्वेन संयोगेऽधस्त्वस्याव्यावर्तकत्वाच्च, अपादानापेक्षाधस्त्वविवक्षायां चापादनत्वस्य तत्क्रियानाश्रयत्वसमानाधिकरण तज्जन्यविभागाश्रयत्वात्मकत्वेन**

राजहंसः

विशेष्यतावच्छेदकं न विषयः । यदि त्वज्ञानस्याश्रय एव विषयः, मन्दिरावच्छेदेनाकाशे शब्द इव च घटाद्यवच्छेदेन ब्रह्मण्यज्ञानमिति घटादाववच्छेदकतैव नत्वाश्रयत्वनियताज्ञानविषयता, अन्यथा मन्दिरस्यापि शब्दाश्रयत्वापातादित्यागृह्यते, तदा घटादौ कर्मत्वव्यवहारोपपत्तयेऽज्ञानविषयत्वतदवच्छेदकत्वान्यतराभावस्यैव फलत्वं वक्तव्यम् । यदि

भारती

प्रश्न—"विवक्षातः कारकाणि भवन्ति" (विवक्षा से कारक विभक्तियाँ होती हैं ।) इस नियम के अनुसार अपादान में कर्मत्व की विवक्षा न होने से वृक्षं पर्णं पतति प्रयोग नहीं होता।

समाधान (खण्डन) – वस्तुतः यदि अपादान (वृक्षादि) में परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयत्वरूप कर्मत्व वर्तमान है तो उसकी विवक्षा अर्थात् तादृश कर्मत्वप्रकारक इच्छा भी होगी, (यहाँ प्रकृत्यर्थ विवक्षित नहीं है) और उस काल में वृक्ष में कर्मत्व भी रहेगा तथा च वृक्ष पर्णं पतति प्रयोग भी होना चाहिए ।

प्रश्न—अपादान में कर्मत्व की विवक्षा नहीं होती है यह शाब्दिकों (वैयाकरणों) का सम्प्रदाय है ।

(तात्पर्य यह है कि "परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयत्वप्रकारक इच्छीये मुख्यविशेष्यताश्रयत्व ही कर्मत्व है" इस लक्षण में–इच्छा में शाब्दिकनिष्ठत्व विशेषण देने से अपादान में अतिव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि शाब्दिक (वैयाकरण) की धात्वर्थतावच्छेदफलाश्रयत्वप्रकारक इच्छा कर्म में ही होती है, उस (कर्म) से अतिरिक्त में तादृश इच्छा के न होने से उक्त इच्छीय मुख्यविशेष्यता-श्रयत्व अपादान में नहीं है ।

स्वकृतकर्मलक्षणानुरोधेन कर्मत्वमभ्युपगच्छता वस्तुमात्रं कर्मेत्याद्यपि लक्षणं सावकाशितं स्यात् ।

शारदा

तत्तादिघटितत्वेनाननुगतत्वेन पतधातोः सङ्केतग्रहानुपपत्तिः, कथमन्यथा आनन्त्यव्यभिचाराभ्यां व्यक्तौ शक्तित्यागः सङ्गच्छेत; एवमुदासीनघटादावप्यतिव्याप्तिरित्याशयेनाह वस्तुत इति। **सतस्ताद्रूप्यस्य = वृक्षे वर्तमानस्य परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयत्वरूपकर्मत्वस्य, सन्नर्थान्वयि प्रकारत्वं षष्ठ्यर्थः ।** विवक्षेति । **प्रकृत्यर्थोऽविवक्षितः। वृक्षविशेष्यकेच्छेत्यर्थः। तदपि = वृक्षे कर्मत्वमपि । उक्तलक्षणे शाब्दिकनिष्ठत्वमिच्छायां विशेषणीयमिति नोक्तातिव्याप्तिः, शाब्दिकस्य धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छायाः कर्मातिरिक्तेऽसम्भवादिति मनसि निधायाह** अपादानस्येति । **तर्हीति । अयम्भावः– शाब्दिकस्य तादृशेच्छीयविशेष्यताशून्येऽशाब्दिकस्य तादृशेच्छीयविशेष्यतावति व्यक्तिविशेषेऽव्याप्तिः, अन्यत्र जिगमिषोर्भ्रमाद्वा यदृच्छया वाऽपरदेशगमने तस्य कर्मत्वानुपपत्तिः तादृशेच्छीयविशेष्यतानाश्रयत्वात्, तथाचेच्छाऽघटितं परसमवेतक्रियाफलशालित्वादिकं लक्षणं वाच्यमेव, तच्चापादानमप्यनुगच्छतीति शाब्दिकैः सर्वैः कर्मत्वेनाव्यवह्रियमाणेऽप्यपादाने स्वप्रणीतस्य तादृशकर्मलक्षणस्यानुरोधेन कर्मत्वाभ्युपगमो नोचितः, लक्ष्यव्यवस्थाया लौकिकव्यवहारानुरोधित्वात्, अन्यथा परसमवेतपदमपि निष्फलं वस्तुत्वादिकमेव च लाघवात् कर्मत्वमस्तु, तथाचैतस्यैतन्निरूपितकर्मतेति व्यवहारलोपापत्तिः। एतेन लक्षणानामतिप्रसक्तत्वेऽपि सञ्ज्ञानां बाध्यबाधकभावमादाय तत्र तत्र प्रयोगातिप्रसङ्गं परिहरन्तोऽपास्ताः। ननु लक्षणद्वयं वाच्यम्, प्रकृतधात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वमित्येकं, तादृशफलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्य-विशेष्यताश्रयत्वमिति चापरं, न चाननुगमः, अन्यतरत्वेनानुगमसम्भवात् । मैवम्, अन्यतरत्वं तावन्नाखण्डम्, तस्य प्रतीतिविशेषमादायैव परं प्रति प्रत्याय्यत्वात्**

भारती

समाधान (खण्डन)– जिस में कर्मत्व के समस्त व्यवहार निवृत्त हो चुके हैं उस में भी स्वकृतकर्मलक्षण के अनुरोध से कर्मत्व की विवक्षा करने वाले आप को तो ''वस्तुमात्रं कर्म'' (वस्तुमात्र ही कर्म है) ऐसा ही कर्म का लक्षण बनाना चाहिए था ।

भाव यह है कि उक्त कर्म लक्षण घटक इच्छा में शाब्दिक निष्ठत्व विशेषण देने पर शाब्दिक की तादृश इच्छा का अविषय एवं अशाब्दिक की तादृश इच्छीय विशेष्यता का आश्रय व्यक्तिविशेष में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि वह व्यक्तिविशेष शाब्दिक की तादृश इच्छीय विशेष्यता का आश्रय नहीं है ।

अपि च – जहाँ अन्यत्र गमनेच्छु व्यक्ति भ्रमवशात् अथवा यदृच्छा से अपरदेश में चला जाता है । वहाँ अपरदेश कर्म नहीं होना चाहिए । अर्थात् वहाँ कर्म लक्षण अव्याप्त हो जायेगा । क्योंकि वहाँ अपरदेश तादृश इच्छा के विशेष्यता का आश्रय नहीं है) तथा च 'परसमवेतक्रियाफलशालित्वं कर्म यह इच्छा से अघटित लक्षण करना होगा । और वह लक्षण तो अपादान में भी जाता है; अतः वैयाकरणों को स्वकृत कर्म लक्षण के अनुरोध से ''वस्तुमात्रं कर्म'' यह कहना चाहिए ।

शारदा

प्रतीतिविषययोः परस्पराधीननिरूपणकतयाऽन्योन्याश्रयापत्तेः । तादृशफलाश्रयभिन्नं सत् यत्तादृशविशेष्यताश्रयभिन्नं तदन्यत्वं कर्मत्वमित्येवमन्यतरत्वनिरुक्तिस्त्वसर्वज्ञदुर्ग्रहा, प्रतियोगितावच्छेदिकाभूतभेदद्वयस्यानुगतधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वाभावेनानन्त्ये एव पर्यवसन्नत्वात् । तादृशभेदद्वयानुयोगितावच्छेदकतायास्तादृशभेदद्वयातिरिक्ते एव वक्तुमौचित्येन विशिष्यानन्तानुयोगितावच्छेदकग्रहस्यापेक्षणीयत्वापाताच्च । स्वाश्रयत्वस्वनिष्ठतादृशेच्छीयप्रकारतानिरूपितविशेष्यताश्रयत्वान्यतरसम्बन्धेन प्रकृतधात्वर्थतावच्छेदकफलवत्ताऽभिधानं तु नोचितम्, परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकत्वस्य केवलान्वयिप्रकरणेऽनुमितिप्रकरणे च गदाधरैरेवोक्तत्वात् । किञ्चैवमपि 'काशीं गच्छति न प्रयागमित्यत्र' प्रयागस्य कर्मतानुपपत्तिः, फलाश्रयत्वस्य तादृशेच्छीयविशेष्यत्वस्य वा तत्राभावात्; योग्यतां तु निवेश्य तु न निस्तारः, योग्यतावच्छेदकस्यैव निरूपणीयत्वापातात्, तन्निरूपणे तु तस्यैव लक्षणत्वमस्तु, अवश्योपस्थितिकत्वात्, अन्यथा वैयर्थ्याच्च । प्रकृतक्रियानिरूपितकर्मताविरहिण्यपि तादृशयोग्यतासम्भवेन प्रयोगातिप्रसङ्गाच्च, तद्व्यावृत्ता योग्यता तु दुरवधारणैव । एतेन प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वं कर्मत्वमित्यपि निरस्तम्; फलाश्रयत्वेनोद्देश्यतायाः फलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयमुख्यविशेष्यताश्रयत्वरूपत्वेनोदीरितसकलदोषोन्मेषादिति ।

राजहंसः

त्वज्ञानविषयतेव ज्ञानविषयतापि ब्रह्मण्येव, ज्ञानाज्ञानयोः समानविषयत्वौचित्यात्, घटादौ तु ज्ञानविषयतावच्छेदकतैवेति कश्चिद्ब्रूयात्तदा घटादौ ज्ञानकर्मताव्यवहारो गौणो जानात्यर्थतावच्छेदकाज्ञानविषयत्वा भावरूपफलावच्छेदकतयैव समर्थनीयः ।

घटादावप्यतिव्याप्तिरिति । कर्मत्वव्यवहारातिव्याप्तिर्नतु प्रयोगातिव्याप्तिः । वृक्षे कर्मत्वमपीति । वृक्षेकर्मत्वव्यवहारोऽपीत्यर्थ **एतेनेति** लक्षणानां दुर्निरूपत्वे कस्य कर्मसञ्ज्ञा, कस्य चापादानसञ्ज्ञेति दुरवधारणत्वेन 'वस्तु कर्म' 'वस्त्वपादान' मिति वा 'कर्म' 'अपादान' मित्येवमेव वा सञ्ज्ञासूत्राणां प्रणयनप्रसक्त्या तद्घटकलक्षणांशानां वैयर्थ्यप्रसङ्गेन व्यवहारातिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वेन चेत्यर्थः । परस्पराधीननिरूपणकतयेति । प्रमात्वसत्यत्वयोरित्यादिः । प्रतीतेः प्रमात्वं विषयसत्यतायामायतते विषयसत्यता च प्रतीतेः प्रमात्वे इतिभावः ।

अन्यतरत्वनिरुक्तिस्त्विति । अत्रेदमप्यवगन्तव्यम्— घटं पटं वाऽऽनय घटपटान्यतरमानयेत्यनयो घटं पटं कटं वाऽऽनय घटपटकटान्यतममानयेत्यनयोश्च व्यवहारयोः परस्परव्यवच्छेदरूपविकल्पविषयकत्वे न विशेष इति सार्वजनीनम्, न हि तथा नियुक्तः कदाचिद्द्वयं त्रयं वाऽऽनयति, भेदद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वभेदकूटावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वयोस्त्वनुगतत्वात् तथा नियुक्तस्य द्वयोस्त्रयाणां चानयनप्रसङ्गो निरुपप्लवः। न हि तादृशभेदवत्त्वं यदैकस्यां व्यक्तौ वर्तते न तदाऽन्यत्रेत्यत्र नियामकमस्ति । तस्मान्नेदृशदिशाऽन्यतरत्वान्यतमत्वनिरुक्तिः प्रामाणिकी । एतेन घटपटमात्रमुख्यविशेष्यकधीमुख्यविशेष्यत्वं घटपटान्यतरत्वम्, घटपटकटमात्रमुख्यविशेष्यकधी मुख्यविशेष्यत्वं तत्त्रितयान्यतमत्वमिति निरुक्तिरपि निराकृता, द्वयाद्यानयनप्रसङ्गात् । विशेष्यताया विशेष्यतात्वेन निवेशमनादृत्य प्रातिस्विकरूपेण निवेशे च शब्दैक्यं परं न त्वर्थैक्यमिति नानुगमवार्तापीति ।

कथं च लोकोत्तरप्रज्ञेन निवृत्तसर्वकर्मव्यवहारेऽपि स्वकृतकर्मत्व-मस्तीत्यधिगतम् । अपादानेतरदीदृशं कर्मेति चेन्न, तत्रापि 'नदी वर्द्धते' इत्यादौ तद्वृद्धेरप्राप्ततीरभागप्राप्तिफलायाः सकर्मकत्वापत्तेः।

शारदा

कृतं = प्रणीतं । कर्मत्वं = कर्मलक्षणं । इदृशं = परसमवेतक्रियाफलशालि । यद्यप्यपादानसामान्यभेदो न निवेशयितुं शक्यः, प्रकृतकर्मणोऽपि क्वचिदपादानत्वेनाव्याप्तेः अतएव परसमवेतक्रियाफलशालित्वापादानत्वाभावयोर्देशकालोभयघटितसामानाधिक-रण्यविवक्षयापि न निस्तारः, तादृशफलशालित्वदशायामेव क्रियान्तरं प्रत्यपादानत्वसम्भवात्, प्रकृतक्रियापादानभेदनिवेशे तु पुनात्यादिक्रियाकर्मण्यव्याप्तिः, प्रकृतक्रियाऽपादानाप्रसिद्धेः, तथापि यादृशक्रियायामपादानप्रसिद्धिस्तत्कर्मण्येवापादानभेदो निवेश्य इति भावः । सति चैवमग्रे समर्थनीयदूषणभावस्याननुगमस्य सत्त्वे एवाह तत्रापीति । **उक्तनिवेशेऽपीत्यर्थः। तद्वृद्धेः = नदीवृद्धेः । अप्राप्तस्य तीरभागस्य प्राप्तिः = तीरभागसंयोगः । तादृशफलाश्रयत्वं तीरस्येति नदी तीरं वर्द्धते इति प्रयोगस्य प्रामाणिकत्वापत्तिः । नद्याः परपदेनोपादानसम्भवात्। यद्यपि धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वविवक्षायां नेदं दूषणम्, अवयवोपचयरूपफलावच्छिन्नव्यापारस्य वर्धत्यर्थत्वेन तादृशफलस्य तीरेऽवृत्तेः ।**

राजहंसः

प्रयोगातिप्रसङ्गाच्चेति । न प्रयागमित्युक्तस्थले एव प्रयागमितिप्रयोगो मैत्रगमनकर्म प्रयाग इति व्यवहारो वा स्यादिति भावः ।

प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतेत्यादि । अग्नेर्माणवकं वारयतीत्यत्र संयोगाद्यनुकूलव्यापारा-भावप्रयोजकव्यापारार्थकवारयतेः कर्मताऽग्नेर्मा भूत्, माणवकस्यैव तु भवेदित्येतदर्थं कर्तुर्व्यापारलाभाय प्रधानीभूतेति । गां पयोदोग्धीत्यत्रविभागानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारार्थकदुहेः कर्मता पयसः स्यादिति भावेन जयत्वमपास्य प्रयोज्यत्वमुक्तम्, माषेष्वश्वं बध्नातीत्यत्र माषाणां कर्मतावारणाय फले प्रकृतधात्वर्थत्वमुक्तम्, बन्धनप्रयोज्यफलस्य भक्षणस्य माषेषु सत्त्वेऽपि न तस्य प्रकृतधात्वर्थत्वम्। **निरस्तमिति** । अत्र चैत्रश्चैत्रं गच्छतीत्यतिप्रसङ्गस्य चैत्रः स्वकर्तृकगमनकर्मेति व्यवहारातिप्रसङ्गस्य वा भङ्गाय विवक्षणीयस्य प्रकृतधात्वर्थव्यापारानाश्रयत्वस्य विशेषाभावरूपस्यातिप्रसक्ततया सामान्याभावरूपताया एव वक्तव्यत्वेन वक्ष्यमाण-स्मृतिसामान्यान्योन्याभावनिरासरीत्यवतारः, एवं विशेष्यतावच्छेदकेषु प्रत्येकमिलित-विकल्पानुपपत्तिरित्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । वादिना कर्मलक्षणं नेदानीमुत्पादितं किन्तु प्रोक्तमेवेत्याशयेन व्याचष्टे **कृतं प्रगीतमिति** । लक्षणस्य तुच्छताध्वननाय प्रोक्तत्वमनभिधाय प्रगीतत्वोक्तिः ।

भारती

किञ्च अपादानादि में कर्मत्व के सम्प्रदाय सिद्ध न होने पर निवृत्तसर्वकर्मव्यवहार वस्तु में भी स्वप्रणीत कर्मलक्षण है, यह लोकोत्तर प्रज्ञा (बुद्धि) वाले आपने कैसे जान लिया । क्योंकि लौकिक व्यवहार विरुद्ध है ।

प्रश्न—अपादान से भिन्न परसमवेतक्रियाजन्यफल का आश्रय कर्म होता है यही लक्षण मानेंगे । (इससे अपादान में पूर्वोक्त प्रकार से अतिव्याप्ति नहीं होगी ।

खण्डन– इस प्रकार लक्षण करने पर भी "नदी वर्द्धते" यहाँ पर "नदीं तीरं वर्द्धते" यह प्रयोग प्रामाणिक होना चाहिए, कारण कि वहाँ पर नदी वृद्धिरूपक्रिया से जन्य

अपादानेतरदिति स्थाने क्रियानाशकेतिकरणेऽप्यस्य दोषस्य तादवस्थ्यात्। विनाशलक्षणायां वृद्धौ तदसम्भवाच्च। वृक्षं

शारदा

अप्राप्तदेशप्राप्त्युपहितावयवोपचयस्य तदर्थत्वेऽपि फले आश्रयानवच्छिन्नत्वस्य विशेषणीयतया न दोषः, तथापि लक्षणस्यास्यापि निरस्तत्वान्न दोषः। इति स्थाने = इत्येतद्विशेषणसाध्यव्यावृत्तिसिद्धये, तेन फलस्यैव धात्वर्थक्रियानाशकत्वेन तस्य फले एव विशेषणीयत्वेऽपि न क्षतिः। अपादाननिष्ठस्य विभागस्य तु पतनक्रियानाशकत्वाभावान्नातिप्रसङ्गः, अधः संयोगस्यैव तन्नाशकत्वात्। अस्य = तीरे वृद्धि कर्मत्वप्रसङ्गस्य। तादवस्थ्यादिति। **तीराश्रितसंयोगस्य वृद्ध्यर्थव्यापारनाशकत्वात्, एवञ्च क्रियानाशकत्वनिवेशः पूर्वोक्तापादनसामान्यभेदादिविकल्पनिबन्धनदोषपरिजिहीर्षयेति भावः। वृद्धाविति। वृधुछेदने भौवादिक आत्मनेपदी सेट्चेति सुधायां नामानुशासनव्याख्यायां भानुजिदीक्षितः, तस्यैवैतद्रूपम्, वर्ध छेदनपूरणयोरिति चौरादिकस्तु न ग्राह्यः, वृद्धाविति प्रयोगासङ्गतेः। यद्यपि छेदनं न विनाशोऽपि तु द्वैधीभावानुकूलो व्यापारः, द्वैधीभावोऽप्यवयविविनाशफलो नत्ववयविविनाशः तथापि विनाशाभिप्रायेणैव वृक्षं वर्धते इति प्रयोगस्थले वृक्षेऽव्याप्तिः, एवं चेदं विनाशपरसकर्मकधातुमात्रोपलक्षणम् विनाशस्यानन्तत्वेन तन्नाशकाप्रसिद्धेरिति। ननु क्रियानाशकत्वं हि न प्रकृतधात्वर्थमात्रनाशकत्वं येनोक्तदोषः स्यात्, अपि तु प्रकृतधात्वर्थव्यापारनाशकत्वम्, विनाशानुकूलव्यापारस्तु**

राजहंस

आश्रयानवच्छिन्नत्वस्य **विशेषणीयतयेति**। संयोगानुकूलव्यापारार्थकगमिकर्मण्यव्याप्तिस्तु नास्ति, संयोगस्याप्राप्तप्राप्तिरूपत्वेऽपि संयोगत्वेनाखण्डेनैव गम्यर्थतावच्छेदकतयाऽऽश्रयस्य तत्रानवच्छेदकत्वात्। **सुधायामिति**। वर्धकपदव्याख्यान इति शेषः। नामानुशासनममरकोषः।

भारती

अप्राप्ततीरभागप्राप्ति अर्थात् नदी के संयोग रूप फल का आश्रय तीर हो रहा है, अतः वह कर्म हो जायेगा, तथा च अकर्मक वृद्धि धातु भी सकर्मक हो जायेगी।

यदि कहें कि "अपादानेतर" इसके स्थान पर "क्रिया नाशक" इत्याकारक विशेषण फल में लगायेंगे, फलतः "क्रियानाशकपरसमवेतक्रियाजन्यफल का आश्रय कर्म है" लक्षण बनेगा। अपादान (वृक्ष) निष्ठ विभाग रूप फल तो पतन क्रिया का नाशक नहीं है अपितु अधःसंयोग ही उसका (पतन क्रिया) नाशक होता है; तो इस प्रकार विशेषण देने पर भी तीर में वृद्धिकर्मत्वापत्ति रूप दोष तदवस्थ है, क्योंकि तीराश्रितजलसंयोग वृद्ध्यर्थव्यापार का नाशक है।

किञ्च विनाशार्थक "वृधुछेदने" भौवादिक धातु के वृक्षं वर्धते प्रयोगस्थल में वृक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि वहाँ विनाश (ध्वंस) के अनन्त होने से उसका नाशक फल ही अप्रसिद्ध है। यदि कहें कि क्रियानाशकत्व प्रकृतधात्वर्थमात्र नाशकत्व नहीं है किन्तु प्रकृतधात्वर्थव्यापार नाशकत्व है। विनाशानुकूल व्यापार तो वर्द्धकी में रहने

त्यजतीत्यादावकर्मत्वप्रसङ्गाच्च । आत्मानं जानामीत्यत्र परत्वाभावादव्याप्तेः। तत्राप्युपाधिकभेदात्परत्वं, कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्युपहितस्यैवात्मनो ज्ञेयत्वाभ्युपगमादिति चेन्न; यतोऽस्तु तावद्यथाकथञ्चिदेवं, तथाप्यध्यात्मविदो निरुपाधिमात्मानं जानतो ज्ञानं नात्मकर्मकं स्यात् । पच्यते फलं स्वयमेवेत्यादौ च कर्मकर्तरि का

शारदा

वर्धकिनिष्ठो विनश्यत्येव सति फले विनाशे इत्यतो दोषान्तरमाह वृक्षमिति । **विभागानुकूलस्पन्दविशेषो हि त्यजत्यर्थः, न च वृक्षाद्विभागे सति खगस्य स्पन्दो विनश्यतीति वृक्षेऽव्याप्तिरित्यर्थः । ननु विभागानुकूलः स्पन्दो विनष्ट एव सति विभागे, पुनस्तु खगे स्पन्दान्तरमुत्पद्यते इति यदि कश्चिद्ब्रूयात्तदाप्याह** आत्मानमिति । **अज्ञानाविषयत्वादिरूपफलाश्रयस्यैव तदनुकूलज्ञानाद्यात्मकक्रियाश्रयत्वादित्यर्थः** । कर्तृत्वेति । **विशेषगुणोपहितस्यैवात्मनो ग्रहणम्, अतएव सुषुप्तौ नाहमर्थस्य ग्रहणम्, गुणिग्रहणस्य विशेषगुणग्रहणव्याप्तत्वात्, ज्ञातृत्वं तु मनोविशिष्टत्वेनेति भावः** । यथाकथञ्चिदिति । **उपाधिभेदेनोपहितभेदस्य सर्वैरनङ्गीकारादिति भावः । नन्वद्वैतं निश्चितवत आत्मविषयकं ज्ञानमुपाध्यविषयकमप्युपहितविषयकमेव, वृत्त्यात्मकज्ञानस्यैव तदोपाधेः सत्त्वात् मनसोऽपि तदा सत्त्वेन तदुपहिते ज्ञातृत्वस्यापि सम्भवात्, न हि कर्मणः स्वभिन्नत्वेन ज्ञानं कर्तुरपेक्षितुं येन तत्र कर्मलक्षणाव्याप्तिः स्यादित्यत आह** पच्यते इति । केति ।

राजहंसः

स्वभिन्नत्वेन ज्ञानमिति । प्रयोगार्थं विदुषस्तादृशज्ञानापेक्षायामपि नाहार्यं तद्दुर्लभमित्यपि द्रष्टव्यम् ।

भारती

वाले फल का विनाश होने पर विनष्ट हो ही जाता है । अतः अव्याप्ति नहीं है, तो इस प्रकार मानने पर वृक्षं त्यजति खग इत्यादि में वृक्ष कर्म नहीं होगा, कारण कि विभाग रूप फल खगगत स्पन्दरूपादिक्रिया का नाशक नहीं है । यदि कहें कि खग में स्पन्दान्तर उत्पन्न होता है, पूर्वस्पन्द तो नष्ट हो ही गया, तथापि आत्मानं जानामि इत्यादि प्रयोगों में आत्मरूप कर्म में परत्वाभाव होने से परसमवेत इत्यादि लक्षण आत्मा में अव्याप्त है । यदि कहा जाय कि आत्मानं जानामि यहाँ भी उपाधिकृत भेद मानकर आत्मा में परत्व माना जा सकता है मनोविशिष्ट आत्मा ज्ञाता (ज्ञानकर्ता) एवं कर्त्तव्यभोक्तृत्वादि उपाधिविशिष्ट आत्मा ही ज्ञान का कर्म माना जाता है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यद्यपि उपाधि के भेद से उपहित का भेद सर्वसम्मत नहीं है तथापि यदि कथञ्चित् भेद मान भी लिया जाय तो जहाँ निरूपाधिक आत्मा के ज्ञाता अध्यात्मवेत्ताओं के ज्ञान के अभिप्राय से आत्मानं जानाति प्रयोग किया जाता है, वहाँ आत्मा उनके ज्ञान का कर्म नहीं हो पायेगा । यदि कहें कि तत्त्ववेत्ता का आत्मविषयक ज्ञान उपाध्यविषयक होते हुये भी उपहित विषयक होता है क्योंकि आत्मा वृत्तिरूप उपाधि से उपहित है, एवं मन रूप उपाधि के रहने से तदुपहित में ज्ञातृत्व

गतिः स्यात् । सर्वज्ञमीश्वरं मन्यमानेन च नित्यज्ञाने तस्मिन् भगवति फलनाशकत्वस्यानभ्युपगमात् तं प्रत्येतल्लक्षणासिद्धेः। करणव्यापारविषयः कर्मेति चेन्न; हस्तेन रामेण शरेणेत्यादावतिप्रसङ्गात्। तस्माद्व्याकरणकारैः शब्दसिद्ध्यर्थं नदी वृद्ध्यादिवत् कर्मापि परिभाषितमित्यलं तदनुगतलक्षणगवेषणया । लक्षणं विनापि,

शारदा

कर्मकत्रेरिकत्वेन विवक्षितत्वादिति भावः ।

ननु कारकविभक्तेर्विवक्षाधीनत्वेऽपि कर्मलक्षणे परत्वं न वैवक्षिकं, येनैकत्वाविवक्षया तद्बाधेन कर्मकर्तर्यव्याप्तिः स्यात्, अपि तु वास्तवम्, तथा च देवदत्तादिसमवेतक्रियाजन्य-विक्लित्यादिफलाश्रयत्वान्नाव्याप्तिरित्याशङ्क्य, एवं सति प्रकृतलक्षणस्य प्रयोगानौपयिकत्वेन तदौपयिकलक्षणान्तरस्यावश्यवाच्यत्वात् , इच्छाघटितस्य च तस्य निरस्तत्वात् , अस्य च वैयर्थ्यमेव स्यादित्यादिदोषसत्त्वे एवाह सर्वज्ञमिति । भगवतीति । भगवद्वृत्तिनित्यज्ञाननिरूपितफलनिष्ठनाशकत्वस्यानभ्युपगमादित्यर्थः। यद्यपि नित्यज्ञानवदीश्वरवादिनाऽज्ञानाविषयत्वज्ञाततादेर्ज्ञानफलत्वं नोपेयते जानात्यर्थत्वं च ज्ञानत्वावच्छिन्नस्यैवेति फलस्यैवाप्रसिद्धिः, इच्छाकृत्योरीश्वरे नित्यत्वेन ज्ञानफलत्वासम्भवात् तथापि ज्ञानस्य निष्फलत्वपरिहाराय जगत्सर्जनादिकं तत्फलं जानात्यर्थतानवच्छेदकमप्यवश्यं वक्तव्यम्; यथाश्रुतलक्षणे धात्वर्थतावच्छेदकत्वस्य फलेऽविशेषितत्वात् तथाच तन्नाश्यत्वस्य नित्यज्ञानेऽभावाज्जगति कर्मत्वानुपपत्तिरित्यर्थः। करणव्यापारविषयत्वं यदि प्रकृतक्रियाकरणव्यापारजन्यफलाश्रयत्वं तदा दूषयति हस्तेनेति। हतो बालिरिति शेषः। हस्तव्यापारजन्यस्य धनुरारोपणरूपफलस्य शरेऽपि सत्त्वात्तस्य कर्मत्वापत्तिः, प्रकृतधात्वर्थतावच्छेदकफलवत्त्वविवक्षायां यद्यपि नायं दोषः, धनुरारोपणस्य हन्त्यर्थतानवच्छेदकत्वात् यथापि तदसाङ्गत्यमपि निवेदितमेव । शब्दसिद्ध्यर्थम् =

भारती

भी संभव है । अतः उक्त स्थल में अव्याप्ति नहीं है तो इस प्रकार मानने पर भी– जहाँ कर्म ही कर्त्ता रूप से विवक्षित है – 'पच्यते फलं स्वमेव' इत्यादि प्रयोगों में पर के न होने से कर्म के लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी। किञ्च सर्वज्ञ ईश्वर को मानने वालों के मत में ईश्वरगत सर्वविषयक ज्ञान के नित्य होने से उसके फलनाश्य न होने से (ईश्वरः सर्वं जानाति) इत्यादि प्रयोगों में सर्वरूप कर्म में इस लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न–करण के व्यापार का विषय (करणव्यापार विषयत्वं कर्मत्वम्) कर्म है यही कर्म लक्षण मानेंगे ।

समाधान–"हस्तेन रामेण शरेण हतो वाली" इत्यादि प्रयोगों में शरके हस्तव्यापार जन्य धनुष आरोपणरूप फल का आश्रय होने से शर में कर्मत्वापत्ति अर्थात् कर्म लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । तस्मात् निर्दुष्ट कर्मलक्षण के न होने पर भी ग्रामम् इत्यादि

क्रियाजनकत्वे सति व्यापारोद्देश्यत्वेन कर्मव्यवहारोपपत्तेः। शेषं

शारदा

ग्राममित्यादिप्रयोगोपपत्तये। आदिना गुणटिघुप्रभृतयो ग्राह्याः। लक्षणम् अव्याप्त्यादिदोषशून्यं लक्षणम् । व्यापारोद्देश्यत्वं फलवत्त्वेन बोध्यम् तच्च प्रकृतधात्वर्थव्यापारजन्य-फलवत्त्वेनेच्छीयमुख्यविशेष्यत्वमेव, एवञ्चैतेनैवाकारकव्यावृत्तेरपि सिद्धौ तदर्थं सत्यन्तमनुपादेयमेव, तस्योक्तार्थे एव कथञ्चित्तात्पर्यग्राहकत्वात् । शेषमिति। तद्धीजन्यव्यवहारभागित्वमेव तद्धीकर्मत्वम्, तच्च घटादाविव स्वस्मिन्नपि सम्भवति, ज्ञानविषयत्वमेव वा ज्ञानकर्मत्वं, विषयत्वञ्चाभेदेऽपि। न च स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षानाश्रयत्वेन स्वस्य स्वाविषयत्वं साधनीयम् विषयत्वनियामकेन्द्रियसन्निकर्षादिरभावे स्वविषयत्वानुपपत्तेरिति वाच्यम् ; सन्निकर्षवज्ज्ञानाभेदस्यापि विषयतानियामकत्वात् सन्निकर्षत्वस्य षोढासाधारणस्य दुर्वचत्वेन स्वत्वस्य चाननुगतत्वेनाननुगमस्यावयोः समानत्वात् । अथप्रत्यक्षाजनकस्य प्रत्यक्षविषयतानुपपत्तिः, अनागतविषयकसाक्षात्कारहेतुप्रत्यासत्त्यनाश्रयनिष्ठप्रत्यक्षविषयताया जनकत्वव्याप्तत्वात्; विद्यामानत्वसामान्यप्रत्यासत्त्यधीनप्रत्यक्षविषये व्यभिचारस्तु न, अजनकविषयकसाक्षात्कारान्यसाक्षात्कारविषयताया एव जनकत्वव्याप्ततया विवक्षितत्वात् न चैवं ज्ञानस्य स्वांशेऽजनकविषयकत्वेनोक्तव्याप्तिर्न क्षतिकरीति वाच्यम् ; अलौकिकसाक्षात्कारान्यसाक्षात्कारविषयताया विवक्षितत्वात्, न च तथापीश्वरज्ञानस्य विषये व्यभिचारः तस्य तदजनकत्वादिति वाच्यम्: द्वितीयसाक्षात्कारे जन्यत्वस्यापि निवेशनीयत्वादिति चेन्न; अन्यथानुपपत्तिबलात्स्वप्रकाशत्वस्यावश्योपेयत्वे तादृशसाक्षात्कारीयविषयताया ज्ञानान्यनिष्ठाया एव जनकत्वव्याप्ततया वाच्यत्वात्, अन्यथा त्वप्रयोजकत्वात् अतिप्रसङ्गस्याभेदनियामकत्वमुपगत्य वारणात् । स्वप्रकाशत्वं विना बोधासिद्धेरुक्तत्वेन धर्मिग्राहकमानबाधाच्च। एतेन—चाक्षुषं ज्ञानं च चक्षुर्जन्यज्ञानविषयः,

राजहंसः

ईश्वराभिसन्धेरद्यत्वेऽनुपलम्भेऽपि वक्तव्यशेषमौचित्यप्राप्तं प्राह **तद्धीजन्येत्यादि**। उपेक्षणीये व्यवहाराभावेनाव्याप्तिमाशङ्क्याह **ज्ञानविषयत्वमेव** वेति ।

प्रत्यक्षत्वस्येन्द्रिययोग्यता**वच्छेदकत्वेति**। प्रत्यक्षविषयत्वस्येन्द्रियग्राह्यतावच्छेदकत्वेत्यर्थः।

भारती

प्रयोगसिद्धि के लिए वैयाकरणों के द्वारा कल्पित नदी वृद्धि गुण घु आदि संज्ञाओं के समान कर्म भी एक परिभाषित (स्वशास्त्रीय संकेतित) संज्ञा मान ली गई है । अत: इस (कर्म) के अनुगत लक्षण की गवेषणा करना व्यर्थ है । अव्याप्त्यादिदोष शून्य कर्म लक्षण के विना भी क्रियाजनकत्वे सति व्यापारोद्देश्यत्वं कर्मत्वम् (क्रिया का जनक होते हुए व्यापार का उद्देश्य ही कर्म है) इस प्रकार क्रिया जनक एवं व्यापार का उद्देश्य मान कर कर्मव्यवहार की उपपत्ति हो सकती है। अवशिष्ट ईश्वराभिसन्धि ग्रन्थ के स्वप्रकाशवाद में कहेंगे ।

चेश्वराभिसन्धौ स्वप्रकाशवादे निर्वक्ष्यामः।

ननु चाभेदे विषयविषयिभावस्यासङ्गतत्वं, विषयित्वं हि विषयसम्बन्धिता, सम्बन्धश्च भेदमन्तरेणासम्भवदवस्थितिः सम्बन्धमितेः सम्बन्धिस्वरूपभेदमितिव्यतिरेके वैपरीत्यावधारणात् । मैवम् । विषयविषयिभावो हि सम्बन्धो न सम्बन्धिस्वरूपाद्भिन्नः, तथा भूतत्वेऽपि चान्ततस्तत्सम्बन्धस्यापि स्वाश्रयात्मकत्वमभ्युपगम्यम् अनवस्थाभयात्,

शारदा

चक्षुरसन्निकृष्टत्वात् असन्निकृष्टघटवदित्यादिकं – निरस्तम् ; स्वजन्यज्ञानतादात्म्यसम्बन्धेन चक्षुषश्चाक्षुषज्ञाने सन्निकृष्टत्वेन स्वरूपासिद्धेश्च, संयोगादिसन्निकर्षापेक्षाया अप्रयोजकत्वात्। एतेन– इच्छात्वादीनामननुगमेन लाघवानुगमाभ्यां प्रत्यक्षत्वस्येन्द्रिययोग्यतावच्छेदकतावस्थितौ ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेनेन्द्रियसन्निकर्षाश्रयत्वम्, मनःसन्निकर्षजन्यत्वेन च मानसत्वमितिनिरस्तमिति भावः।

तत्सम्बन्धस्य तद्भेदव्याप्यत्वं वाच्यम् , अन्यथा संयोगेन तद्व्यक्तिस्तद्व्यक्तिमतीति धियः प्रमात्वापत्तिरित्याशयेनाशङ्कते नन्विति। **अभेदे विषयविषयिभावस्य = स्वस्मिन् स्वनिष्ठविषयत्वनिरूपितविषयित्वस्य। वैपरीत्यम् = अभावः।** न भिन्न इति। **यदाह शिरोमणिः''सामान्यतो विषयता ज्ञानमेव, घटादिविषयता तु घटादिसम्बन्धितत्तद्धीस्वरूपा, सम्बन्धसम्बन्धिनोश्चाभेदो न दोषाय, सर्वत्र स्वरूपसम्बन्धस्थले तथा कल्पनादिति।'' एवञ्च स्वरूपातिरिक्तसम्बन्धस्यैव भेदव्याप्यत्वं वाच्यम् , अन्यथा विषयविषयिभावस्य सम्बन्धिभेदे सम्बन्धस्यासम्बद्धस्य सम्बन्धत्वादर्शनात् सम्बन्धान्तरापेक्षायामनवस्थापत्तिः। क्वचित्सम्बन्धस्य सम्बन्धिस्वरूपतोपगमे तु न्यायसाम्यात् प्रथमस्यैव तथात्वमित्याशयेनाह**

भारती

स्वप्रकाशवाद में विषयविषयिभाव विरोध खण्डन

प्रश्न–ज्ञानको स्वयंप्रकाश मानने पर अभेद में विषयविषयिभाव सम्बन्ध असङ्गत है। क्योंकि ज्ञाननिष्ठ विषयित्व विषय की सम्बन्धिता है (प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारीभूतो भावः इस नियम के अनुसार सम्बन्धिता शब्द सम्बन्ध को कहता है) और सम्बन्ध का अस्तित्व तो सम्बन्धियों के भेद विना हो नहीं सकता। सम्बन्धिस्वरूप के भेदज्ञान का अभाव होने पर सम्बन्धज्ञान का भी अभाव हो जाता है (तात्पर्य यह है यत्र यत्र सम्बन्ध ज्ञानं तत्र तत्र सम्बन्धि स्वरूप भेद ज्ञानम् इस प्रकार सम्बन्ध ज्ञान एवं सम्बन्धिस्वरूप भेद ज्ञान का व्याप्यव्यापकभाव निश्चित है और व्यापकाभावाद् व्याप्याभाव नियम के अनुसार व्यापक सम्बन्धि स्वरूप भेद ज्ञान के न रहने पर व्याप्य सम्बन्ध ज्ञान का भी अभाव हो जाता है । स्वप्रकाशत्व पक्ष में एक ज्ञान ही विषय एवं विषयि दोनों होने से स्व-ज्ञान में विषयविषयिभाव सम्बन्ध हो नहीं सकता । अतः ज्ञान को स्वप्रकाश मानना अनुपपन्न है ।

तथा सति च सैव यथा सम्बन्धमितिः सम्बन्धस्वरूपात्सम्बन्धिनोर्भेदमनादायैव पर्यवस्यतीत्यभ्युपगन्तव्यम्, स्वभावसम्बन्धस्येतरसम्बन्धमर्यादातिशायित्वात् तथा विनापि सम्बन्धिभेदं विषयविषयिभावात्माऽयं सम्बन्धः पर्यवसास्यति, तदवगमोऽपि

शारदा

तथाभूतत्वेऽपीति। **सम्बन्धिस्वरूपाद्भिन्नत्वेऽपीत्यर्थः । सैव = अन्तिमा । इतरसम्बन्धानां मर्यादा = स्वसम्बन्धिभेदव्याप्यत्वम् । तदवगमः = विषयविषयिभावावगमः। तथावगमव्यतिरेकेण = सम्बन्धिभेदावगमं विना । विरोधः = अनुपपत्तिः, अतीतानागतयोरपि**

राजहंसः

मूले तथा विनापि **सम्बन्धिभेदमिति** । न च सम्बन्धसम्बन्धिनोः परस्परं क्वचिदभेदेऽपि सम्बन्धिनोः परस्परं भेदः सार्वत्रिकः, घटसमवायस्थले स्वरूपसम्बन्धस्यानतिरेकेऽपि समवायकपालयोर्द्वैतादिति वाच्यम्, समवायप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्धे समवायात्मके समवायप्रतियोगिकत्वरूपसम्बन्धस्य सत्त्वेन तदीयसम्बन्धिभेदाभावात्, अत एवोक्तं टीकायां एवं च स्वरूपातिरिक्तसम्बन्धस्यैव भेदव्याप्यत्वमिति । तादृशप्रतियोगिकत्वादेरपि स्वरूपसम्बन्धात्मकतया स्वरूपातिरिक्तत्वनिवेशेन वारणात् । एवं च विनापि सम्बन्धिभेदमित्यस्य विषयविषयिभावरूपसम्बन्धस्य सम्बन्धिनोः प्रकृते भेदं विनैवेत्येकोऽर्थः, ज्ञानस्य स्वनिरूपितविषयत्वविषयित्ववत ऐक्यात् , विषयविषयिभावात्मकसम्बन्धस्य सम्बन्धिनः सकाशाद्भेदं विनैवेत्यपरोऽर्थः, तस्य सम्बन्धिरूपतयैवाग्रे पारमार्थिकत्वाभिधानसङ्गतेरिति ।

भारती

समाधान– विषयविषयिभाव सम्बन्ध सम्बन्धियों के स्वरूप से भिन्न नहीं है, और उसे (विषयविषयिभाव) यदि सम्बन्धियों के स्वरूप से भिन्न मान भी लिया जाय तो भी अन्ततोगत्वा (अन्त में) उस (विषयविषयिभाव) के सम्बन्ध को स्वाश्रय रूप ही मानना होगा। क्योंकि उसे स्वाश्रय से भिन्न मानने पर (सम्बन्ध का सम्बन्ध पुनः उसका भी सम्बन्ध इस प्रकार से) अनवस्था हो जायेगी । ऐसी स्थिति में जैसे वह अन्तिम सम्बन्ध का ज्ञान सम्बन्धस्वरूप से सम्बन्धियों के भेद के विना ही सिद्ध है; यह मानना पड़ता है, क्योंकि स्वरूपसम्बन्ध संयोगादि अन्य सम्बन्धों के स्वसम्बन्धिभेदव्याप्यत्व नियम से विलक्षण है तात्पर्य यह है कि संयोगादि सम्बन्धों में स्वसम्बन्धिभेद व्याप्यत्व होने से वे स्वसम्बन्धियों के भेद के बिना नहीं रहते, किन्तु अन्तिम स्वरूपसम्बन्ध में स्वसम्बन्धिभेदव्याप्यत्व का व्यभिचार होने से वह सम्बन्धियों के भेद के विना ही रह जाता है । ऐसा तार्किक सम्प्रदाय में माना गया है । उसी प्रकार स्वप्रकाशत्व पक्ष में भी विषयविषयिभाव सम्बन्ध सम्बन्धियों के भेद के विना ही रह जायेगा, एवं उस (विषयविषयिभाव) का ज्ञान भी सम्बन्धियों के भेदज्ञान के विना ही हो जायेगा, अतः विरोध ही नहीं है ।

तथावगमव्यतिरेकेणैव भविष्यति को विरोधः। न चैवं घटतज्ज्ञानयोर्यादृग्विषयविषयिभावस्ततो मात्रयापि स्वप्रकाशे विषयविषयिभावान्यत्वे बाध्यतैकत्र स्यात् । अस्त्येव ह्यविद्याविद्यमाने घटतज्ज्ञाने बाध्यत्वम्, परमार्थसति तु स्वप्रकाशे पारमार्थिकत्वमिति द्वयोरननुगमेऽपि न दोषः।

शारदा

ज्ञानविषयत्वदर्शनेन विषयविषयिभावस्य द्विष्ठत्वमनुभवानुसारिणा वक्तुमशक्यमिति भावः। यादृग् = भेदनियतः। अन्यत्वे = विलक्षणत्वे । यद्यपि वेदान्तिनाऽभेदे विषयविषयिभावो नोपेयते, तथाप्यभ्युपगमवादेन तन्मतेन परिहरति अस्त्येवेति। **योगाचारादिमते तु घटज्ञाने आविद्यकत्वं वक्तुमशक्यम् , तस्यैव स्वप्रकाशत्वेन परमार्थसत्त्वादिति बोध्यम् । घटतज्ज्ञाने इति समाहारद्वन्द्वः। बाध्यत्वं पारमार्थिकत्वं च विषयविषयिभावस्यैवोक्तम् , सम्बन्धिस्वरूपस्य तस्य तत्समसताकत्वस्योचितत्वादिति भावः। अननुगमो = वैलक्षण्यम्।**

एतावता योगाचारस्य नव्यप्राभाकरस्य च मते स्वकर्मत्वरूपं स्वविषयत्वरूपं वा स्वप्रकाशत्वं निर्वाहितम्, अभेदे विषयविषयिभावानुपगन्तुः प्राचीनप्राभाकरस्य तदनुगन्तुर्वेदान्तिनश्च स्वप्रकाशत्वमिदानीं दृष्टान्तद्वयेनाह अथवेति । **अयम्भावः—**

भारती

यदि कहें कि संवित् स्वप्रकाशत्व पक्ष में स्वीकृत विषयविषयिभाव के घट एवं घटज्ञान में होने वाले विषयविषयिभाव से लेश भी विलक्षण होने पर दोनों में से किसी भी एक को बाधित मानना होगा, तो यह आक्षेप उचित नहीं है । क्योंकि अविद्या से विद्यमान अर्थात् अविद्यकसत्तायुक्त घट एवं घटज्ञान में स्वीकृत विषयविषयिभाव को बाधित और पारमार्थिकसत्तावान् स्वप्रकाश में स्वीकृत विषयविषयिभाव को पारमार्थिक हम मानते ही हैं। अतः दोनों के विलक्षण होने पर भी कोई दोष नहीं है ।

यद्यपि वेदान्त मत में अभेद में विषयविषयिभाव नहीं माना जाता है। यथापि उपर्युक्त समाधान अभ्युपगमवाद के द्वारा परमत से किया गया है । आगे दृष्टान्त द्वय के द्वारा वेदान्तमतेन समाधान किया जा रहा है अथवा इत्यादि से तात्पर्य यह है कि संयोगादि स्थल में क्लृप्त तत्सम्बन्ध में भेद व्याप्यत्व ताज्य नहीं है किन्तु स्वरूप तो सम्बन्ध नहीं हो सकता क्योंकि घट घटीय नहीं होता, रूपभेद से तदीयत्व का उपपादन करें तो यदि तादृश रूप अतिरिक्त है तो रूपवान् भी अतिरिक्त ही है– सम्बन्ध का सम्बन्धान्तरापेक्षत्व में अनवस्था का तो तार्किकगण अनवस्था को प्रामाणिक मान कर समाधान करते हैं । वेदान्तीगण तो उसको अनिर्वचनीय स्वीकार करके, इस रीति से पूर्वोक्त का समाधान करें तो भी अथवा कल्प में स्व प्रकाशत्व पक्ष में कोई दोष नहीं है ।

अथवा– विज्ञान का स्वयं के साथ क्रिया कर्मभाव होना, या विषयविषयिभाव होना स्वप्रकाश का अर्थ नहीं है अर्थात् हम स्वप्रकाशत्वपक्ष में विज्ञान का स्वयं के साथ न क्रिया-

अथवा स्वात्मना सह क्रियाकर्मभावो विषयविषयिभावो वा स्वप्रकाशार्थ इति नाभ्युपेयमेव, यथा तु भवतां सत्तासम्बन्धादितरत्र सद्व्यवहारव्यवस्था, सत्ता तु स्वयमेव सद्रूपा, न चैतावता स्वात्माश्रयता तस्याः, तथा

शारदा

संयोगादिस्थले क्लृप्तं तत्सम्बन्धे तद्भेदव्याप्यत्वं न त्याज्यम् , स्वरूपस्य क्वाप्यसम्बन्धत्वात्, घटस्य घटीयत्वानुपपत्तेः, रूपभेदेन तस्य तदीयत्वोपपादने तु तादृशरूपस्यातिरिक्तत्वे रूपवतोऽपि तथात्वमस्तु, न्यायसाम्यात् , अनतिरिक्तत्वे तु न तद्बलादपि तस्य तदीयत्वोपपत्तिः, अतिरिक्तानतिरिक्ततापि च तस्य किं विषयतया न समाना, अतएव शिरोमण्यादिभिरपि विषयताया अतिरिक्तत्वमेव सिद्धान्तितम्, सम्बन्धस्य सम्बन्धान्तरापेक्षत्वेनानवस्था तु तार्किकैस्तस्याः प्रामाणिकत्वेनादूषणत्वमुपगम्य समाधेया, वेदान्तिभिस्त्वनिर्वचनीयतामुपगम्य, तस्मात्तादात्म्येन स्वस्यैव स्वव्यवहारप्रयोजकतामुपगम्य स्वातिरिक्तसंविदपेक्षव्यवहार-विषयान्यत्वमेव स्वप्रकाशत्वं वक्तव्यम् , स्वाविषयत्वेऽपि स्वव्यवहारजनकतोपपत्तौ स्वविषयत्वकल्पनाया अनौचित्यात्, अतएव ''न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येः'', ''येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयादिति'' श्रुतिरपि स्वरसतः सङ्गच्छते इति भावः। भवतामिति। **तार्किकाणामित्यर्थः। प्राभाकरणां तु ज्ञानविषयत्वमेव सर्वत्र सत्ता, गुणादौ जात्यनङ्गीकारात्, वेदान्तिनां तु ब्रह्मरूपैव सा सर्वत्र तादात्म्येन भासते इति भावः। सम्बन्धात् = समवायात् सामानाधिकरण्याद्वा ।** स्वयमेव सद्रूपेति । **सत्त्वप्रकारकस्वविशेष्यकव्यवहारे स्वातिरिक्तसत्तापेक्षं यत्तदन्येत्यर्थः। स्वतएव सिद्धस्वरूपं = स्वातिरिक्तसंविदन-पेक्षव्यवहारकम् ।**

राजहंसः

रूपभेदेनेति। तत्तद्व्यक्तित्वज्ञानत्वात्मकरूपभेदः प्रकृते । किं विषयतया न **समानेति।** तत्तद्व्यक्तित्वस्य ज्ञानभिन्नाभिन्नत्वे तादृशरूपवतः स्वरूपसम्बन्धात्मकतयाऽभ्युपगतविषयत्वस्य ज्ञानभिन्नाभिन्नत्वानभ्युपगमो निर्निमित्तः, विरोधस्योभयत्र समानत्वात् , भेदाभेदयोरेकस्य मिथ्यात्वोपगमेन तत्समाधानस्यापि समानत्वाच्चेतिभावः ।

भारती

कर्मभाव मानते हैं ''और न विषयविषयिभाव, अपितु जैसे आप तार्किकों के मत में सत्ता के समवाय सम्बन्ध से द्रव्यादि में एवं सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से सामान्यादि में सद्व्यवहार होता है किन्तु सत्ता स्वयं ही सद्रूप है; अतः सत्ता में सद्व्यवहार स्वतः ही हो जाता है अर्थात् सत्ता में सद्व्यवहार के लिए स्वातिरिक्त किसी सत्ता की अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञान भी स्वतः ही सिद्धस्वरूप है अर्थात् ज्ञान के स्वव्यवहार में स्वातिरिक्त किसी ज्ञान की अपेक्षा नहीं है ।

यदि कहें कि तद्विषयक ज्ञान ही तद्विषयक व्यवहार का साधक देखा जाता है । तथाच ज्ञान यदि स्वविषयकव्यवहार का साधक है तो स्वविषयक भी होना चाहिए, अन्यथा स्वविषयकव्यवहार का साधक भी नहीं होगा, तो फिर प्रोक्त स्वप्रकाशत्व का निर्वाह कैसे होगा तो इसका समाधान अथवा से करते हैं– अथवा जैसे लम्बकर्णमानय,

ज्ञानमपि स्वत एव सिद्धस्वरूपम् । अथवा यथा बहुव्रीहिसमासे तद्गुण-संविज्ञाने गुणमादायैव प्रधानस्यान्यपदार्थस्य बहुव्रीहिसिद्धपदप्रतिपाद्यता तथा विज्ञानस्याविषयमपि स्वत्मानमादायैव स्वविषये व्यवहारप्रवर्तनं

शारदा

ननु तद्विषयकज्ञानस्यैव तद्विषयकव्यवहारसाधकत्वदर्शनात् ज्ञानं यदि स्वविषयकव्यवहारसाधकं स्यात् स्वविषयकमपि स्यात्, अन्यथा स्वविषयक-व्यवहारसाधकमपि न स्यादिति कथमुक्तस्वप्रकाशत्वनिर्वाह इत्यत आह अथवेति **।** **तद्गुणसंविज्ञाने इति । तस्य प्रधानस्यान्यपदार्थस्य ''अनेकमन्यपदार्थे'' इत्यनुशासनबलात् बहुव्रीहिपरिनिष्ठितपदप्रतिपाद्यस्य गुणाः = उपसर्जनीभूता बहुव्रीहिघटकपदार्था विधेयान्वयितया विधेयकालसन्निहिततया वा यदधीनविज्ञानविषया भवन्ति तत्र बहुव्रीहिसमासे लम्बकर्णमानय, शुक्लवाससं भोजयेत्यादावित्यर्थः। गुणमादायैव = अशक्यगुणसहितस्यैव।** विज्ञानस्येति । **निष्ठत्वं षष्ठ्यर्थः प्रवर्तनान्वयी । अविषयमपि स्वात्मानमादायैव = स्वाविषयीभूतस्वसहिते एव। स्वविषये इति सप्तम्यर्थो विषयित्वं व्यवहारेऽन्वेति, व्यवहारेति संस्कारस्याप्युपलक्षणम् । प्रवर्तनं = जनकत्वम् । तथाच तद्विषयकव्यवहारसाधकज्ञानत्वस्य तद्विषयकत्वव्याप्यत्वमप्रयोजकत्वादसम्भवि, अशक्ये बहुव्रीहेरिव स्वाविषयेऽपि स्वात्मनि ज्ञानस्य व्यवहारजनकत्वोपपत्तेः, अन्यथा सत्ता यदि सत्ताप्रकारकव्यवहारविशेष्या स्यात्, सत्तासमवायवती स्यात् घटादिवदिति मयाऽपि शक्यते वक्तुम् । अथ सत्ताप्रकारकव्यवहार-विशेष्यता सत्तासम्बद्धत्वस्यैव व्याप्या, तच्च तादात्म्येन सत्तायामपि, सत्ताप्रतियोगिकसमवाय-वत्त्वव्याप्यत्वं त्वप्रयोजकत्वान्नेति ब्रूषे, तर्हि तद्विषयकव्यवहारसाधकज्ञानत्वं तत्सम्बद्धत्वस्यैव व्याप्यम् , तच्च तादात्म्येन ज्ञानेऽपीति ममापि तुल्यम् । ज्ञाने च व्यवहारदर्शनादेव स्वाविषयकत्वेऽपि स्वव्यवहारजनकत्वं स्वीकृतमिति नान्यत्र स्वाविषयकत्वस्वाभेदयोः सत्त्वमात्रेण व्यवहारोऽतिप्रसञ्जनीयः, अन्यथा तवापि सत्तादेर्विलोपापातादिति भावः। अन्यमते ज्ञानत्वस्य सविषयकत्वव्याप्यत्वं अतएव प्राभाकरादय आत्मनो ज्ञानरूपतां नानुमन्यन्ते, अन्यथा सुषुप्त्यादौ ज्ञानस्यात्मरूपस्य सत्त्वेन तस्य निर्विषयकत्वोपगमापातात् , किन्तु तादृशव्याप्यत्वमपि स्वविषयकत्वव्याप्यत्वमिवाप्रामाणिकमिति स्वमतेनाह** सोऽयमिति ।

भारती

शुक्लवाससं भोजय इत्यादि तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहिसमास में समस्तपद का अवाच्य लम्बायमानकर्णादिरूप गुण उपसर्जनीभूत पदार्थ के सहित ही प्रधानअन्यपदार्थ पुरुष का वाचक होता है । उसी प्रकार ज्ञान भी स्व के अविषयीभूत स्वयं (ज्ञान) के सहित ही स्वविषयघटादि के व्यवहार का जनक होता है तथाच तद्विषयक व्यवहारसाधक ज्ञानत्व में तद्विषयकत्वव्याप्यत्व भी अप्रयोजक होने से असंभव है ।

यह गुरु प्रभाकर का सविषयक विज्ञानस्वप्रकाशतापक्ष वेदान्तियों का ब्रह्मस्वप्रकाशता पक्ष नहीं है क्योंकि (प्रभाकर का विज्ञानस्वप्रकाशत्व स्वविषयत्व रूप होने से ज्ञानत्व

समर्थ्यताम् । सोऽयं गुरूणां सविषयकविज्ञानस्वप्रकाशतापक्षो न ब्रह्मस्वप्रकाशतापक्षः, तत्र विषयाभावात् । एतावन्मात्रेण तु स्यात्—यथा स्वाविषयेऽपि कुटादौ बहुव्रीहिवाक्यं व्यवहारं प्रवर्तयति,

शारदा

गुरूणां = प्रभाकराणां । विषयाभावादिति । **विषयाणां मिथ्यात्वेनासार्वदिकत्वात् मुक्तचितौ तत्सम्बन्धानुपपत्तेः, तथाच कालिकव्याप्तेरसम्भवेऽपि दैशिकव्याप्तिर्नास्माकं क्षतिकरी, अविद्यादशामादाय तदुपपत्तेः, इयांस्तु विशेषः, यन्मम मते सविषयकत्वमप्याविद्यकमेव, तदुक्तमुदयनाचार्यैः, ''परमार्थतो नानुभवस्य विषयेण सम्बन्धः, संवृत्या तु गगनगन्धर्वनगरयोरिवास्त्येवेति'' भावः। स्यात् = गुरुब्रह्मवादिपक्षयोः साम्यं स्यात् ।** स्वाविषये इति । **अन्यपदार्थात्मकौत्सर्गिक विषयादन्यस्मिन्नित्यर्थः । एतेन – गुणीभूतस्यापि बहुव्रीहिप्रतिपाद्यताया अनुपदमुक्तत्वात्तद्विरोध इति, चैत्रशालीया आनीयन्तामित्यत्र चैत्रत्वेनोपलक्षणस्यापि चैत्रस्वशालास्थत्वेन चैत्रशालीयपदविषयत्ववत् ''गाङ्कुटादिभ्य'' इत्यत्र कुटत्वेंनोपलक्षणस्यापि कुटस्य पुटादेरिव कुटादिगणपठितत्वेन कुटादीतिबहुव्रीहिविषयत्वमिति च– निरस्तम् । औत्सर्गिकविषयत्वस्यैव निषेधात् । कुटादावित्यादिना सर्वादीनीत्यादिकं ग्राह्यम् । व्यवहारं प्रवर्तयति = प्रत्ययविशेषस्य**

राजहंसः

कालिकव्याप्तेरसम्भवेऽपीति । इदमार्जवेनोक्तम् , वस्तुतस्तु यदा ज्ञानत्वं तदा सविषयकत्वमितिव्याप्तिरपि सम्भवन्ती न प्रतिकूला, मायाचित्सम्बन्धात्मककालस्यापि सविषयकत्ववन्मायातीतावस्थायामभावेन व्यभिचाराभावात् । अत्रार्जवं किमितिचेत् , चितावेव कालत्वाभ्युगमवाद इतिगृहाण । तथासति मुक्तिकालमन्तर्भाव्य व्यभिचारावश्यम्भावात् ।

गुरुब्रह्मवादिपक्षयोरिति। गुरुरिह प्राचीनः प्राभाकरः, तन्मत एवाभेदे विषयविषयिभावानुपगमस्य प्रत्यक्षचिन्तामणौ निरूपणात् । समुदायत्वेन कुटस्य **ज्ञानादिति**। न च तत्तद्धातुवृत्तिकुटत्वादिविशेषधर्मस्यैवोद्देश्यतावच्छेदकतया समुदायत्वेन बोधेन कथं निर्वाह इति वाच्यम् , तादृशबोधानन्तरं प्रत्येकपरिसमाप्तबोधस्यापि गणपाठसहकारेण

भारती

स्वविषयकत्व के समान सविषयकत्व का भी व्याप्य है किन्तु वेदान्तियों का विज्ञान स्वप्रकाशत्व स्वविषयत्व रूप न होने से ज्ञानत्व स्वविषयकत्व व्याप्यत्व के समान सविषयकत्व व्याप्यत्व भी अप्रमाणिक है) वेदान्त मत में मुक्तचैतन्य में विषय का अभाव है ।

(यहाँ तात्पर्य यह है कि अन्य मत में ज्ञानत्व को सविषयकत्व का व्याप्य माना गया है । अत एव प्रभाकरादि के मत में आत्मा ज्ञानरूप नहीं माना जाता । अन्यथा सुषुप्त्यादि अवस्था में आत्मरूप ज्ञान के रहने से उसे निर्विषयक ही मानना पड़ेगा, किन्तु ज्ञानत्व को स्वविषयकत्व का व्याप्य मानना जैसे अप्रामाणिक है वैसे ही उसे सविषयकत्व का व्याप्य मानना भी अप्रामाणिक ही है, क्योंकि विषयों के मिथ्या होने से मुक्त चैतन्य में विषय का सम्बन्ध होना अनुपपन्न है, यही सोऽयम् इत्यादि के द्वारा व्यक्त किया गया है।)

तथा ज्ञानमविषयेऽप्यात्मन्यविद्यादशायामिति ।

शारदा

ङित्त्वादिकं विधत्ते । अविषये = स्वाविषये । आत्मनि = स्वस्मिन् । आचार्यास्तु– स्वाविषये इत्यस्य कुटादिघटितसमुदायत्वेन रूपेण बहुव्रीहिविषयेऽपि समुदायिताप्रयोजकेन कुटत्वेन रूपेण तदविषये इत्यर्थः । तथा च यथा कुटत्वेनाज्ञानेऽपि धीविशेषविषयत्व-रूपसमुदायत्वेन कुटस्य ज्ञानात् ङित्त्वकार्यम्, तथा शुद्धचिद्रूपेणाज्ञानेऽपि प्रमातृत्वादिरूपेण ज्ञानात्, प्रमात्रादाविव शुद्धचितावपि व्यवहारादिः, शुद्धमात्रस्याव्यवहार्यत्वात् विशिष्टघटक-तयैव तस्य व्यवहार्यताया वक्तव्यत्वात् अहं ब्रह्मेति शुद्धव्यवहारकाले तु तद्विषयकवृत्तेरपि सत्त्वात् न बहुव्रीहेर्दृष्टान्ततेति लघुचन्द्रिकायां प्राहुः । अत्र पक्षे "एतावन्मात्रेण तु स्यादित्यत्र दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभावः स्यादित्यर्थः । यद्वा विशिष्टान्वय एवौत्सर्गिको न तूपलक्षितान्वयः, विशिष्टग्रहणे बहुव्रीहिघटकपदाप्रतिपाद्यस्यान्यपदार्थस्यापि ग्रहणात् न 'अनेकमन्यपदार्थे' इति सूत्रासङ्गतिः, तावतैव तत्पुरुषाद्बहुव्रीहेर्विषयविभागसिद्धेः । एवञ्च स्वाविषये इत्यस्यातद्गुणसंविज्ञानलभ्यार्थभिन्ने इत्यर्थः । न चैवं विशिष्टान्वयलाभहेतुत्वेन तद्गुणसंविज्ञान-स्यैव मुख्यत्वात् बहुव्रीहिविषयतायाः कुटेऽपि सत्त्वात् तादृशभिन्नत्वकथनं व्यर्थमिति वाच्यम्; यथा बहुव्रीहेः स्वघटककुटपदार्थकुटज्ञानोत्तरपाठविशेषजन्यज्ञानविषयत्वरूपात् स्वपदार्थसम्बन्धात् स्वघटकपदार्थव्यतिरिक्तपुटादिपरप्रत्यये ङित्त्वविधानम्, तथा स्वघटकपदार्थकुटपरप्रत्ययेऽपि ङित्त्वविधानम्, कुटज्ञानोत्तरपाठविशेषजन्यज्ञानविषयत्वरूपेण कुटावृत्तिना कुटस्याबोधेऽपि कुटत्वेन रूपेण तस्य विशेषणतया बोधात् । न च– कुटसाधारणैकज्ञानविषयत्वेन कुटस्यापि ग्रहणसम्भवेन कुटव्यावृत्तोक्तरूपेण बोधोक्तिरत्युक्तेतिवाच्याम्; अतद्गुणसंविज्ञानस्थले कुटव्यावृत्तरूपेणैव बोधस्य वाच्यत्वात् तद्गुणसंविज्ञानस्थलेऽपि तदौचित्यात्, न ह्युक्तस्थलयोर्भिन्नरूपाभ्यामन्यपदार्थधीकृतो विशेषः, किन्तु कुटस्योपलक्षणत्वविशेषणत्वकृतः, अत एव "तद्गुणसंविज्ञाने तद्विशिष्टस्येतरान्वयः, अन्यत्र तदुपलक्षितस्येति" सर्वादिसूत्रकैयटोद्योतेऽप्युक्तम् एवं प्रकृतेऽपि यथा विज्ञानं स्वसम्बन्धादन्यत्र व्यवहारं प्रवर्तयति तथा स्वस्मिन्नप्यविद्यादशायामित्यर्थ इत्यपि वदन्ति।

अन्यत्र दृष्टं = स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षाश्रयस्यैव स्वविषयत्वं तद्विषयकव्यवहार-

राजहंसः

पुनरनुसन्धीयमानापेक्षितप्रकृतसूत्रैकदेशेन जननीयत्वात् । लघुचन्द्रिकोक्तमेव पक्षान्तरं पोषयन् विशदीकृत्याह यद्वा विशिष्टान्वय इत्यादिना ।

भारती

प्रभाकर एवं ब्रह्मवादिपक्ष का इतना साम्य अवश्य हो सकता है कि जैसे बहुव्रीहिसमास सिद्धकूटादि पद अपने अविषय कूटादि के व्यवहार के प्रवर्तक होते हैं उसी प्रकार ज्ञान भी स्व के अविषय स्वयं के व्यवहार का भी प्रवर्तक अविद्यादशा में हो जाता है ।

तस्मात् इससे यह सिद्ध है कि अन्यत्र देखे गये जिस-जिस नियम का विरोध

तदेवं यद्यदन्यत्र दृष्टवैधर्म्यं स्वप्रकाशे पर्यवसास्यति तत्सर्वमन्यथानुपपत्तिरेव स्वप्रकाशसाधकतया प्रदर्शिता स्वीकारयिष्यति । तद्यथा–अन्यो ज्ञाताऽन्यश्च ज्ञेय इत्यन्यत्र दृष्टमहमिति व्यवहारान्यथानुपपत्त्या त्याज्यम्; तथाऽन्यज्ज्ञान-मन्यज्ज्ञेयमिति 'जानामीति' व्यवहारान्यथानुपपत्त्या

शारदा

हेतोर्ज्ञानस्य तद्भिन्नत्वं, तद्विषयकत्वं च तस्य वैधर्म्यं = विरहः । अन्यथाऽनुपपत्तिः = संशयाद्यविषयत्वस्य ज्ञाने स्वसत्ताव्यापकस्वज्ञानकत्वं विनाऽनुपपत्तिः । स्वीकारयिष्यतीति। **उपपाद्येन सर्वमपि स्वोपपादकमाक्षिप्यते इति भावः । उपाधिभेदेऽप्युपहितस्यैकत्वात् 'अहमिति' ज्ञानस्याश्रयविषययोरैक्यम्, अत एव प्रत्यक्षमण्यालोके परसमवेतेत्यादिकर्मलक्षणस्य 'मामहं जानामी' त्यत्राव्याप्तिरिति भावः। तथेति दृष्टान्तसमुच्चये । अन्यज्ज्ञेयमिति त्याज्यमित्यनेनान्वयः । अन्यत् = ज्ञानत्वानाश्रयः । तेन 'जानामी' त्यत्र परमते व्यवसायानुव्यवसाययोर्भेदेऽपि नासङ्गतिः। वस्तुतस्तु स्वविषयत्ववादिमते तथेत्यादेर्दार्ष्टान्तिकपरत्वमपि सम्भवत्येव, लाघवसहकारेण जानामीत्यादिप्रतीतेरेव स्वविषये प्रमाणतया मणावुक्तत्वात् निरूपितश्चैतत्पूर्वम् । सर्वत इत्यादि । उक्तमेतन्मणावपि । यद्यपि वेदान्तिभिः श्रुतेरेव सर्वतो बलवत्त्वमुच्यते यदाहुरद्वैतरत्नकाराः "श्रुतेरन्यस्य बलवतः प्रमाणस्याभावात्, सर्वतो बलवती हि श्रुतिरिति।" अतएव 'द्वा सुपर्णेत्यत्र' द्वित्वान्यथानुपपत्त्या प्रतीयमानोऽपि भेदोऽभेदश्रुत्या बाध्यते इति सिद्धान्तः ।**

राजहंसः

स्वयंज्योतिष्ट्वश्रुतिमूलकत्वान्न **दोष इति ।** उक्तभेदस्य श्रौतद्वित्वान्यथानुपपत्तिमूलकत्वे परम्परया श्रुतिमूलकत्वमपि यद्यप्यापतति, तथापि तत्राभेदश्रुतिरिव स्वयंज्योतिष्ट्वे न बाधिका काचिच्छ्रुतिरितिविशेष इति भावः । तदिदमुक्तं **प्रकृताया इति ।** श्रुत्यन्तराबाधितायाः श्रुतिमूलाया इति भावः ।

भारती

(वैलक्षण्य / अभाव) संविद् के स्वप्रकाशत्व पक्ष में आपतित होगा, उनका निराकरण स्वप्रकाशत्व की साधकतया प्रदर्शित अन्यथानुपपत्ति अर्थात् अर्थापत्ति (ज्ञान के स्वप्रकाशत्व के विना ज्ञान में संशयाद्यविषयत्व की अनुपपत्तिरूप अर्थापत्ति) ही कर देगी । जैसे अन्यत्र यह देखा जाता है कि ज्ञाता देवदत्तादि ज्ञान का आश्रय भिन्न है और ज्ञेय ज्ञान का विषय घटादि भिन्न है किंतु अहम् इत्याकारक व्यवहार की अन्यथानुपपत्ति (ज्ञाता रूप आश्रय एवं ज्ञेय की एकता के विना अहम् इस व्यवहार की अनुपपत्ति) से उक्त नियम का परित्याग करना पड़ता है, इसी प्रकार ज्ञान भिन्न होता है और ज्ञेय भिन्न होता है यह नियम भी "जानामि" इत्याकारक व्यवहार की अन्यथानुपपत्ति से परित्याज्य है । क्योंकि अन्यथानुपपत्ति (अर्थापत्ति) प्रमाण सभी अन्य प्रमाणों की अपेक्षा बलवान् है । अतः दृष्टतामात्र के बल का अवलम्बन कर अर्थात्

त्याज्यम्; सर्वतो बलवती ह्यन्यथानुपपत्तिस्तथादृष्टतामात्रबलमवलम्ब्य प्रवृत्तं तर्कशतमपि बाधते । तदिदमाहुः- "प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि

शारदा

तथापि स्वप्रकाशत्वसाधकान्यथानुपपत्तेः स्वयंज्योतिष्ट्वश्रुतिमूलकत्वान्न दोषः, अन्यथानुपपत्तिशब्देन प्रकृताया एव ग्राह्यत्वात् । सर्वशब्दस्य श्रुत्यतिरिक्तपरत्वं वा वक्तव्यम् । अयन्तु परमार्थः – अन्यथानुपपत्तिः = अन्यथानुपपद्यमानं प्रमाणमात्रम्। तच्च श्रुतिर्वाऽनुमानं वाऽन्यद्वासर्वतो बलवदेव अत एव व्यावहारिकत्वेनोपपद्यमान-भेदविषयकप्रत्यक्षादेरन्यथानुपपद्यमानाभेदविषयकश्रुत्या बाधः, अभेदस्य प्रातिभासिकत्वेन व्यावहारिकत्वेन वाऽनुपपत्तेः । अतएव यजमानः प्रस्तर इत्यादिश्रुतेरपि यजमानप्रस्तरभेद-ग्राहिप्रत्यक्षेण बाधः । प्रकृते च संशयाद्यविषयत्वस्य बोधसिद्धेश्चाऽन्यथा-नुपपत्तेरन्यथानुपपद्यमानं प्रमाणमर्थापत्तिर्वाऽनुमानं वा स्वेतरबाधकमिति भावः । तथा दृष्टतामात्रबलमवलम्ब्य प्रवृत्तं = स्वविषयादौ स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षाश्रय-त्वादिदर्शनमात्राधीनप्रवृत्तिकं प्रवृत्तिः = प्रतीत्युपधानम् । मात्रपदेन व्याप्तिव्यवच्छेदः । वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ पक्षव्यतिरिक्ते व्याप्तिभङ्गाभावेऽपि बाधोन्नीतपक्षेतरत्वरूपो-पाधिनैवानौपाधिकत्वरूपव्याप्तिभङ्गो यथा, तथा प्रकृतेऽपीति भावः । तर्कशतमिति। **ज्ञानं यदि स्वविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षं स्यात् स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षाश्रयः स्यात् यदि स्वातिरिक्तवेद्यं न स्यात् वस्तुत्वं जह्यात्, यदि ज्ञानत्वे सति स्वव्यवहारहेतुः स्यात् स्वभिन्नं स्यात् । स्वविषयकत्वानङ्गीकारपक्षे तु ज्ञानं यदि स्वविषयकव्यवहारप्रयोजकं स्यात् स्वविषयकं स्यादित्यादितर्का द्रष्टव्याः ।** बाधते इति । **तादृशतर्काधीनविपर्यया-नुमितावप्रामाण्यग्रहमाधत्ते इत्यर्थः । प्रतीत्युत्पत्तिप्रतिबन्धस्तु सिद्धान्तविरुद्ध एवेति भावः । प्रमाणवन्ति = प्रमाणधीनधीविषयाः । अदृष्टानि = प्रत्यक्षाविषयाः। कल्प्यानि**

भारती

"स्व (ज्ञान) जनक इन्द्रिय सन्निकर्ष का आश्रय ही स्वविषय होता है" "तद् (घटादि) विषयक व्यवहार का हेतु ज्ञान तद् (घट) से भिन्न होता है और तद्विषयक होता है" इत्यादि लोक में देखे गये नियमों के बल पर प्रवृत्त होने वाले शतशः तर्कों का भी उक्त अर्थापत्ति से बाध हो जाता है । अर्थात् तादृशतर्काधीन विपर्ययानुमिति में अप्रमाण्य ग्रह का आधान कर देती है । तात्पर्य यह है कि – अन्यथानुपपत्ति अर्थात् अन्यथानुपपद्यमान प्रमाणमात्र ही चाहे वह श्रुति हो या अनुमान हो या अन्य हो । अन्य की अपेक्षा सर्वतः बलवान् होता है । अभेद व्यावहारिक अथवा प्रातिभासिक नहीं माना जा सकता (अत एव प्रकृत में व्यावहारिकत्वेन उपपद्य भेद विषयक प्रत्यक्षादि का अन्यथानुपपद्यमान अभेद (अद्वैत) विषयक श्रुति के द्वारा बाध हो जाता है ।

अतएव यह कहा है– कि "प्रमाण के रहने पर बहुत सी अदृष्ट वस्तुओं की कल्पना (स्वीकार) भी की जा सकती है । (प्रमाण के विना तो अदृष्ट वस्तुओं के शतांशवे भाग की भी कल्पना (स्वीकार) नहीं की जा सकती है । तस्मात्

सुबहून्यपीति'' तस्मात् –

अन्यथानुपपत्तिश्चेदस्ति वस्तुप्रसाधिका ।
पिनष्टि दृष्टवैमत्यं सैव सर्वबलाधिका ।। ६।।
वाच्यान्यथोपपत्तिर्वा त्याज्यो वा दृष्टताऽऽग्रहः।
नह्येकत्र समावेशश्छायातपवदेतयोः ।। ७।। इति।

तदित्थं त्वदङ्गाकृतसद्विचारलक्षणापपन्नैरेवंविधैर्विचारैः स्वप्रकाशता भवता सुप्रतिपदा; अस्माभिस्तु संवेदनबलादेव स्वतः सिद्धरूपं विज्ञानमास्थीयते इति । इति खण्डनखण्ड-खाद्ये स्वप्रकाशवादः।।

शारदा

= वस्तुत्वप्रकारकनिश्चयीयविशेष्यतायोग्यानि। योग्यतावच्छेदकं च प्रमितिविषयत्वं प्रमाणवन्तीत्यनेनोक्तम् । ''अदृष्टशतभागोऽपि न कल्प्यो ह्यप्रमाणक'' इति तन्त्रवार्तिकोत्तरार्द्धम्। अन्यथानुपपत्तिः = कल्पकस्य कल्प्यं विनाऽनुपपत्तिज्ञानम् । दृष्टवैमत्यं पिनष्टि= अन्यथा-दर्शनप्रयुक्तविवादविरहप्रयोजिका । सर्वबलाधिका = सर्वस्माद्बलेऽधिका = इतरापेक्षया भूयोबलवती । बलं च कल्पकस्य वस्तुतो यदुपपादकं तद्विषयकत्वम्, कल्प्यं विना कल्पकानुपपत्तिविषयकत्वावच्छेदेन कल्पकविषयकत्वावच्छेदेन च प्रमात्वम् । अन्यथोपपत्तिः = संशयाद्यविषयत्वस्य बोधसिद्धेश्च स्वप्रकाशत्वं विनापि विनैन वा सम्भवः । दृष्टताग्रहः = व्यवहारविशेष्यकव्यवहर्तव्यभिन्नज्ञानसाध्यत्वप्रकारकदर्शनादिविशेष्यकप्रमाणत्व-प्रकारकाभिनिवेशः । एतयोः = अन्यथानुपपत्ति-तादृशदर्शनसाध्यस्वप्रकाशत्व-परप्रकाश्यत्वयोरेकत्र वृत्तिर्नहि, येनोभयबलादुभयमप्यनुरोद्धव्यं स्यादिति भावः।

सद्विचारलक्षणोपपन्नैः = प्रमित्युपधायकस्य परामर्शस्य, अर्थापत्तिकरणस्य वा

राजहंसः

प्रमित्युपधायकस्य परामर्शस्येति । अत्र यद्वक्तव्यम्, तदुपक्रमे एव सद्वचनाभास-लक्षणयोगित्वपदार्थनिरूपणप्रवृत्तशारदाया राजहंसे द्रष्टव्यम् । इति स्वप्रकाशवादे राजहंसः ।

भारती

यह पर्यवसित हुआ कि अन्यथानुपपत्ति (कल्पक = पीनत्वादि की कल्प्य = रात्रिभोजनादि के बिना अनुपपत्ति ज्ञान) यदि वस्तु का साधक है तो वही अन्य की अपेक्षा सर्वतोभावेन बलवती होती हुई दृष्ट के वैमत्य (अन्यथादर्शन प्रयुक्तविवाद) को निरस्त कर देती है । अतः या तो स्वप्रकाशत्व के माने विना ही ज्ञान में संशयादि के अविषयत्व का तथा बोध सिद्धि का मार्ग बतलाना चाहिए या दृष्टता (व्यवहार में पूर्वोक्त नियम देखे जाते हैं) का आग्रह (हठ) छोड़ देना चाहिए। क्योंकि छाया और आतप के समान ये दोनों विरुद्ध है; अतः इन दोनों एकत्र मानना सम्भव नहीं है, जिससे उभय का अनुरोध माना जा सके । इस प्रकार आप (तार्किक) के द्वारा कृत सद्‌विचार लक्षणों से युक्त पूर्वोक्त विचारों (कथा) के द्वारा मानाधीनामेयसिद्धि मानने वाले आप (तार्किक) भी स्वप्रकाशत्व का ज्ञान सुगमता से कर सकते हैं और ज्ञान में 'पराधीनसिद्धिकत्व को मृषा मानने वाले हम वेदान्ती तो ज्ञानान्तर की अपेक्षा न करते हुए ही स्वतः सिद्ध रूप ही विज्ञान को स्वीकार करते हैं । इति खण्डन भाषानुवादे स्वप्रकाशवादः।

अथानिर्वाच्यत्वनिरुक्तिः

एवं च सति सौगतब्रह्मवादिनोरयं विशेषो यदादिमः सर्वमेवानिर्वचनीयं

शारदा

प्रयोजकैर्विचारैः कथात्मकैः। भवता = मेयसिद्धौ मानाधीनत्ववादिना। सुप्रतिपदा= सुग्रहा। अस्माभिः = पराधीनसिद्धिकस्य मृषात्ववादिभिः। संवेदनबलादेव = संविदतिरिक्तमनपेक्ष्यैवास्थीयते = विप्रतिपत्तिविषयतां नासाद्यते इति। यत्तु – स्वप्रकाशस्यैवं सिद्धौ तद्विषयत्वेनैव प्रपञ्चस्य सत्यत्वमपि सिद्ध्यतीति स्वप्रकाशसाधनं परानुकूलमिति– तत्र, अन्यथाख्यातिवादिनाऽपि संसर्गस्यासत एव वक्तव्यत्वात् सर्वज्ञभगवज्ज्ञानस्य भवन्मते स्वप्रकाशस्य तद्विषयकत्वावश्यकत्वात्तत्रैव व्यभिचारात्, अनिर्वचनीयशुक्तिरूप्याद्यंशे साक्षिणोऽपि भ्रमत्वेन भ्रमप्रमासाधारणस्वप्रकाशविषयत्वस्य सत्यत्वसाधनेऽप्रयोजकत्वाच्च, अनिर्वचनीयख्यातेः साधितत्वात् शुक्तिरूप्यादौ मिथ्यात्वेन गृहीतव्याप्तिकस्य स्वप्रकाशविषयत्वस्य सत्यत्वसाधने विरुद्धत्वाच्च, आत्मनि स्वविषयताऽनङ्गीकारेण सत्यत्वनिरूपितव्याप्तिग्रहस्थलस्यैवाभावाच्च, भवन्मते ईश्वरीयस्वप्रकाशज्ञानविषयता-विरहस्य क्वाप्यभावेन व्यतिरेकिणोऽप्यसम्भवाच्चेति।

तस्मात्सुसाधितेऽमुष्मिन् स्वप्रकाशैकचेतने।
कल्पितत्वात्प्रपञ्चोऽयं नाभ्युपेयः सुधीधनैः।।
प्रकाशपाशबद्धस्य मृषाभूतस्य सत्यता।
व्यवहारे न हेयेति नो विरोधी मनागपि।।

इति खण्डनशारदायां शून्यवादापवादः स्वप्रकाशवादः।।

एवं च सति = स्वप्रकाशस्य शून्यत्वासम्भवे सति। सौगतोऽत्र माध्यमिको न तु योगाचारादिः, तेन ज्ञानस्यानिर्वाच्यतानङ्गीकारात्। तदतिरिक्तस्य चानिर्वाच्यत्वमनङ्गी-कृत्यालीकताया ज्ञानात्मना सत्यताया वाऽङ्गीकारात्। सर्वमेवेति। दृग्दृश्योभयमेवेत्यर्थः। दृग्दृश्ययोरभेदासम्भवात् भेदे च सम्बन्धस्यासम्बद्धस्य सम्बन्धत्वानुपपत्त्या सम्बन्धा-न्तरापेक्षायामनवस्थादुष्टस्यानिर्वाच्यत्वात् तादृशसम्बन्धानुयोगिप्रतियोगिनोरपि तथात्वम्। किञ्च "विषयनिरूप्यं हि ज्ञानमिति" वदद्भिस्तार्किकैर्ज्ञानस्य विषयनिरूपणाधीन-निरूपणकत्वं तावत्स्वीकृतम्, विषयाणां च विषयत्वानुयोगित्वप्रतियोगित्व-तत्तेदन्तापर्याप्त्यवच्छेदकत्वादीनां प्रतीतिविशेषसाक्षिकत्वेन निर्वचनं कुर्वद्भिर्नव्य-तार्किकैर्ज्ञाननिरूपणाधीननिरूपणकत्वं स्फुटमुररीकृतम्, उक्तातिरिक्तविषयाणामपि खण्डनोक्तरीत्या निरासेऽवश्यम्भाविनि तु तेषामपि प्रतीतिविशेषसाक्षिकत्वेनैव निर्वचनं कर्तुं युक्तम् गत्यन्तराभावात् तथा च ज्ञेयसामान्यस्यैव ज्ञाननिरूपणाधीननिरूपण-कत्वमित्यवश्योपेयं धीमता, सति चैवं ज्ञानज्ञेययोरुभयोरपि परस्पराश्रितत्वात्कथं

राजहंसः

एतत्प्रकरणसम्बद्धमुपनिबद्धमधिकमनुसन्धेयं दर्शनसर्वस्वे शून्यवादविवर्तवादयोः।

भारती

अथ अनिर्वाच्यत्वनिरुक्ति

पूर्वोक्त प्रकार से स्वप्रकाश विज्ञान के शून्यरूप न होने से शून्यवादी बौद्ध

वर्णयति। तदुक्तं भगवता लङ्कावतारे – ''बुद्ध्या विविच्यमानानां स्वभावो नावधार्यति। अतो निरभिलप्यास्ते निस्स्वभावाश्च देशिता'' इति ।। विज्ञानव्यतिरिक्तं पुनरिदं विश्वं सदसद्भ्यां विलक्षणं ब्रह्मवादिनः सङ्गिरन्ते । तथाहि – नेदं सद्भवितुमर्हति, वक्ष्यमाणदूषणग्रस्तत्वात्, नाप्यसदेव, तथा सति लौकिक-विचारकाणां सर्वव्यवहारव्याहत्यापत्तेः।

शारदा

नानिर्वाच्यतेति परमार्थः। अनिर्वचनीयमिति। **तत्त्वं च चतुष्कोटिविनिर्मुक्तत्वम् ''न सन्ना सन्नसदसन्न चानुभयतत्त्वकम् । विमतं तर्कपीड्यत्वान्मरीचिषु यथोदकम् ''।। इत्यद्वयवज्रसङ्-ग्रहादावुक्तत्वात् । भगवता = बुद्धेन निरभिलप्याः = सत्त्वादिचतुष्कोटिभिरनिर्वाच्याः। निस्स्वभावाः = परमार्थस्वभावरहिताः सांवृतसत्त्ववन्त इति यावत् ।** विज्ञानव्यतिरिक्तमिति। **ययोर्ज्ञानज्ञेययोर्निरूपणे परस्परापेक्षत्वमस्तु तयोरनिर्वाच्यत्वम्, अस्तु च दृग्दृश्य-सम्बन्धानुयोगित्वेन रूपेण दृशोऽपि तथात्वम्, शुद्धात्मना त्वसङ्गत्वात्साक्षित्वाच्च न तस्यास्तथात्वसम्भव इति भावः। वृत्त्यादौ जडे विज्ञानपदस्यामुख्यत्वात् विज्ञानव्यतिरिक्तत्वं वृत्त्यादावपि निराबाधम् । इदम् = सत्त्वेन प्रतीयमानं सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-विशिष्टतादात्म्यविशिष्टमिति यावत्, एतच्चालीकस्य व्यावृत्तये अन्यथा तस्य अनिर्वाच्यत्वा-नुपगमादसङ्गतेः। अलीकस्येदमा निर्देशानुपपत्तेस्तत्सामर्थ्यादलीकभिन्नत्वस्य धर्मितावच्छे-दकत्वोक्तौ तु 'नाप्यसदेवे' त्याग्रिमग्रन्थासङ्गतिः। अलीकभेदावच्छिन्नोद्देश्यताया अलीक-भेदत्वपर्याप्तावच्छेदकताकविधेयताकत्वासम्भवात्, तस्माद्विज्ञानेऽपि तादृशतादात्म्य-वैशिष्ट्याभावादुक्तरूपेणैव धर्मिता । सदसद्भ्यां विलक्षणम् = सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका-सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसदसदुभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत् । उभयात्मकतापक्षे सद्भेदासद्भेदयोः सत्त्वात्तृतीयभेदनिवेशः, एवञ्च कोटित्रयविनिर्मुक्तत्वमुक्तं भवतीति सौगत-मताद्विशेषः। वस्तुतस्तु तात्त्विकत्वेन सद्भेदासद्भेदाभ्यां निर्वचनासम्भवादेव सौगतैश्चतुर्थ-कोटेस्त्यागात्, ''न हि स्वरूपतो दुर्निरूपस्य किञ्चिदपि रूपं वास्तवं सम्भवतीति'' वदद्भिरद्वैतिभिरपि चतुर्थकोटेरनिर्वाच्यत्वोपगमाच्च फलतो न कश्चिद्विशेषः, अतएव प्रतियोगि-**

भारती

एवं ब्रह्मवादी वेदान्ती का यह अन्तर (भेद) सिद्ध है कि माध्यमिक बौद्ध सभी वस्तुओं (ज्ञान एवं ज्ञेय) को अनिर्वचनीय कहते हैं । भगवान् बुद्ध ने लङ्कावतार ग्रन्थ में कहा है– ''बुद्धि के द्वारा वस्तु के स्वरूप का विवेचन करने पर वस्तु के स्वरूप का निश्चय नहीं होता है– वह सत् है या असत्, सदसत् है या अनुभय, अत: सभी वस्तु वास्तविक स्वभाव से शून्य एवं अनिर्वचनीय है'' किंतु ब्रह्मवादी (वेदान्ती) विज्ञान से अतिरिक्त सभी परिदृश्यमान विश्व को सद्असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय कहते हैं। जो इस प्रकार है– यह परिदृश्यमान जगत् सत् नहीं हो सकता, क्योंकि सत् मानने पर वक्ष्यमाण दोषों से ग्रस्त है एवं असत् भी नहीं हो सकता क्योंकि असत् (अलीक) होने पर लौकिक (शास्त्राध्ययन संस्कृत बुद्धिरहित)

यदपि निर्वक्तुमसामर्थ्ये गुरव उपास्यन्ताम्, येभ्यो निरुक्तयः शिक्ष्यन्ते इत्युपालम्भवचनं तत्तदा शोभेत यदि मेयस्वभावानुगामिनीय-

शारदा

दुर्निरूपताप्रकटनायैव सदादिभेदोक्तिरित्यद्वैतसिद्ध्यादावुक्तम् । इदन्तु बोध्यम्– सर्वशून्यत्ववादे शून्यत्वस्यापि सर्वान्तर्गतत्वात् सद्रूपत्वानुपपत्तिः, क्वचिच्छून्यतायाः पारमार्थिकत्वोक्तिस्तु शून्यत्वं व्यवस्थापयता शून्यत्वस्यैव पारमार्थिकत्वमवश्योपेयम्, अन्यथा प्रपञ्चस्याशून्यत्वापत्तेरित्याशयेनैव, एवञ्चैतदाक्षेपभीरुणा केनचित्सौगतेन चित्राद्वैतवादिनाऽन्येन वौपनिषदगुप्तचरेण शून्यतायाः सद्रूपत्वस्य चिदादिरूपत्वस्य चोपगमे तस्यैवौपनिषदत्वापत्तिर्युज्यते सर्व शून्यमिति स्वसिद्धान्तत्यागात् नत्वौपनिषदानां सौगतत्वापत्तिः, स्वसिद्धान्तात्यागादिति । सद् = त्रिकालाबाध्यम् । वक्ष्यमाणेति। **बाधयोग्यत्वादित्यर्थः । असत् = अलीकम् । लौकिकाः= शास्त्राध्ययनसंस्कृतमतिविरहिणः, विचारकाः= तादृशमतिमन्तः।** पत्तेरिति । **यद्यसत्स्यात् व्यवहारविशेषविषयो न स्यात्, तद्विषयत्वासत्त्वन्नेत्यर्थः। सदसदुभयात्मकत्वं तु विरोधादेव न सम्भवतीति भावः। एतेन– यथा सत्त्वाविशेषेऽपि किञ्चित्प्रत्यक्षं किञ्चिन्न, तथा श्रुत्यवगतासत्त्वमपि किञ्चित्प्रत्यक्षं किञ्चिन्नेत्यस्तु, असद्विलक्षणत्वं तु श्रुतिबाध्यत्वान्न मन्तुमुचितम्, जगति खपुष्पवैलक्षण्य-सद्भावेऽपि नासत्त्वहानिः, असद्विशेषत्वादेव, न ह्यसतोरपि खपुष्पशशशृङ्गयोरेकाकारा धीः समुन्मिषति, तथा सति शब्दविशेषान्वयव्यतिरेकयोरभावप्रसङ्गात्, जनकत्वस्य चासत्यप्युपपादितत्वात्, तस्मादनिर्वचनीयतोक्तिरियमापातत एव बालानां सन्तोषायेति– परास्तम्; शाब्दबोधे शब्दस्यापि भानेन खपुष्पादिशाब्दबुद्धेर्विचित्राकारतोपपत्तावलीकानां परस्परविशेषवत्तोपगमस्याप्रामाणिकत्वात्, अन्यथाऽलीकत्वव्याहतेः, सत्तादात्म्याना-पन्नत्वरूपासत्त्वस्यालीकगतस्य प्रपञ्चव्यावृत्तत्वेन सत्तादात्म्यापन्नत्वरूपासत्त्वस्य प्रपञ्च-गतस्यालीकव्यावृत्तत्वेन च खपुष्पप्रपञ्चोभयानुगतासत्त्वस्य सर्वदेशकालवृत्त्यत्यन्ताभाव-प्रतियोगित्वातिरिक्तस्य विशेषस्य च कालसम्बन्धित्वासम्बन्धित्वातिरिक्तस्य दुर्वचतया वाचोभङ्ग्यन्तरेण सदसद्विलक्षणत्वस्य तवापि पर्यवसानाच्च, न हि तादृशप्रतियोगित्ववतो न सद्वैलक्षण्यं, कालसम्बन्धित्ववतश्च नासद्वैलक्षण्यमिति ।**

मेयस्वभावानुगामिनी = मेयत्ववैशिष्ट्यसमनियता । उक्तं हि सौगतैः - "इदं

राजहंसः

चित्राद्वैतवादिनेति । सच्चिदुभयात्मकतया चित्रत्वम् ।

सत्तादात्म्यापन्नत्वरूपासत्त्वस्येति । अत्र तादात्म्यमाध्यासिकमलीकव्यावृत्तम्, सन् घट इतिवत्सदलीकमित्यनध्यासात् । एवं चासत्त्वमत्र मिथ्यात्वम् ।

भारती

एवं विचार को (तादृश बुद्धिशील) के सभी व्यवहारों का लोप होने लगेगा । यह जो किसी का उपालम्भ (उलाहना) है कि "यदि आपको पदार्थों के निर्वचन = लक्षण करने का सामर्थ्य नहीं है तो गुरुओं की उपासना करें, जिनसे निर्वचन करने की शिक्षा ली जाती है"।

मनिर्वचनीयतेति न ब्रूयुः, वक्तृदोषादिति च वदेयुः। यस्तु निरुक्ताभिमानं धत्ते स निर्वक्तुं न तु शक्ष्यति, वक्तव्यदोषात्। न च ते दोषाः स्वकमपि घ्नन्तो जातयः कथं न स्युरिति वाच्यम्; यतो निर्वचनीयत्वं बाध्यते।

शारदा

वस्तुबलायातं यद्वदन्ति विपश्चिताः। यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथेति।।'' ''यथा यथा विचार्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथा। यदेतत्स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयमिति'' च।। स्वकमपि घ्नन्तः = स्वविरहस्यापि ज्ञापकाः, प्रपञ्चान्तर्गतत्वात्। जातयः = स्ववक्त्रोपगतस्य व्याघातकान्यसदुत्तराणि। यथा धूमवत्त्वमस्तु वह्निमत्त्वं मास्त्वित्युत्तरं स्ववक्त्रोपगतधूमवत्त्वविरहप्रसञ्जकत्वेन व्याघातकत्वादसदुत्तरम्, एवं विषय-विषयिभावसम्बन्धखण्डनेऽनिर्वाच्यत्वादिविषयकज्ञानस्यापि स्वविषयेण सम्बन्धानुपपत्त्या त्वदभ्युपगतानिर्वाच्यत्वादेरप्यसिद्धिः, भेदो भिन्ने निविशतेऽभिन्ने वेति विकल्प्य भेदखण्डने चऽभेदस्यापि तथाखण्डनसम्भवेन त्वदभ्युपगताभेदासिद्धिः, एवं प्रमात्वादिखण्डनेन त्वदभ्युपगतप्रपञ्चमिथ्यात्वादेरसम्भवः, तद्विषयकप्रतीतेः प्रमात्वाद्यनुपपत्तेरिति भावः। अनिर्वचनीयस्यापि साधकताया उपपादितत्वादनिर्वचनीयविषयविषयिभाव-मादायैवानिर्वाच्यत्वादिसिद्धिः, व्यावहारिकप्रमात्वादिस्वीकाराच्च नाभीष्टानिर्वाहः, अभेदस्य स्वरूपात्मकत्वान्नोक्तविकल्पविषयता, भेदस्य स्वरूपात्मकता तु न

भारती

किन्तु यह आप (तार्किक) का उपालम्भ वचन तभी सुशोभित (सार्थक) होता, यदि इस अनिर्वचनीयता को मेयस्वभावानुगामिनी (पदार्थ का स्वभाव अर्थात् पदार्थ का ही स्वकीय धर्म) न कहते, अपितु वक्ता के दोष (निर्वचन करने के असामर्थ्य) से पदार्थ में अनिर्वचनीयता आई है ऐसा कहते। एवं जो वादी ''मैं पदार्थ का निर्वचन कर सकता हूँ'' इस प्रकार निर्वचन करने के सामर्थ्य का अभिमान रखते हैं (उनका वह अभिमान करना व्यर्थ है क्योंकि) वे निर्वचन नहीं कर सकेंगे, क्योंकि यह अनिर्वचनीयता वक्तव्य (पदार्थ) का ही दोष है।

प्रश्न – जिन दोषों से आप (खाण्डनिक) निर्वचन (लक्षणादि से पदार्थ का व्युत्पादन) का निराकरण करते हैं; वे दोष अपने निर्वचन के भी निराकर्त्ता होने से स्व के व्याघातक होने से उन दोषों से किया गया खण्डन जाति-उत्तर हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि स्ववक्त्रोपगत (स्वयं वक्ता के द्वारा स्वीकृत) का व्याघातक असत् उत्तर को जाति कहते हैं। जैसे धूमवत्त्वमस्तु (धूम रहे) वह्निमत्त्वं मास्तु (वह्नि न रहे) यह उत्तर स्वयं के द्वारा स्वीकृत धूमाभाव का आपादक होने से स्वव्याघातक होने से असत् उत्तर है। उसी प्रकार आप (खाण्डनिक) के द्वारा विषयविषयिभाव सम्बन्ध का खण्डन किये जाने पर अनिर्वाच्यत्वादिविषयक ज्ञान को भी अपने विषय के साथ सम्बन्ध अनुपपन्न होने से आप (खाण्डनिक) के द्वारा स्वीकृत अनिर्वाच्यत्व की भी असिद्धि हो जायेगा। भेद भिन्न में रहता है या अभिन्न में, इस प्रकार भेदखण्डन करने पर इसी प्रकार अभेद के भी खण्डित हो जाने से आप (खाण्डनिक) का अभिप्रेत अभेद भी असिद्ध हो जायेगा। एवं प्रमात्वादि का खण्डन करने

तैर्दोषैः स्वयमप्यनिर्वचनीयैरेव, अनिर्वचनीयैरेव च तैर्व्यवह्रियते एवेति कुतोऽस्मान् प्रति व्याघातः स्यात् । तज्जातित्वस्य च निरुच्य योजयितुमशक्यत्वात् ।

शारदा

सम्भवतीति वक्ष्यते इत्याशयेनाह यत इति। अस्मान् प्रतीति। **एतेन वक्तुरभिमतव्याघातकत्वमेव जातेर्दूषकताबीजमिति सूचितम् । अत्र-वैतण्डिकतामाश्रित्य वदतो मम स्थापनीयाभावेन मां प्रति जातेर्व्याघातकत्वाभावः, सर्वदृश्यानां त्वया मया वाऽभ्युपगतानां खण्डनयुक्तिभिर्बाधस्य मदिष्टत्वात् , 'अभीष्टसिद्धावपी' त्यादिवक्ष्यमाणत्वात् ब्रह्मणश्च बाधासम्भवस्य निवेदितत्वादित्यपि वदन्ति। इदन्तु बोध्यम्– दूष्यतावच्छेदकावच्छिन्नं दूषयतां खण्डनानां न जात्युत्तरत्वशङ्काऽपि, दूष्यतावच्छेदकस्य स्वपरसाधारणत्वात् । दूषणासमर्थोत्तरत्वस्यैव च जातिलक्षणत्वात् ''अनुमानमात्रोच्छेदकतया जातित्वान्न पक्षेतर उपाधिरित्यपास्तम् दूषणसमर्थत्वेन जातित्वाभावादिति'' वदता चिन्तामणिकारेण, तत्पङ्क्तिव्याख्यातृभिर्जगदीशगदाधरमथुरानाथैश्च तथैव जातिलक्षणाभिधानात् । दूष्यतावच्छेदकावच्छिन्नादूषकत्वस्यैव जातेर्दुष्टिबीजत्वात्, खण्डनेषु दूषकतौपयिकरूपस्या-निरासाच्च, नहि निर्वाच्यत्वमपि तत्तद्दोषलक्षणघटकमिति ।** तज्जातित्वस्येति । **मदुक्तदोषेषु**

राजहंसः

इत्यपि वदन्तीति । अद्वैतसिद्धेश्चन्द्रिकाकृतामभिप्रायेणेदं मतं स्वयमेवोक्तम् , युक्तोऽयमर्थः स्वयमेवाग्रे तत्र तत्र मूले टीकायाञ्चादरणीयो यद्यपि, तथापि सुहृद्भावेन जल्परीत्यपि समाधानोपन्याससम्भवे नात्रातीव तदादरः कृतो वदन्तीत्युक्त्या । खण्डनेषु जातित्वमभ्युपेत्य समाधानं तु नैवोचितमित्याह इदन्तु बोध्यमित्यादिना ।

भारती

से प्रपञ्चमिथ्यात्व भी सिद्ध न हो पायेगा, क्योंकि प्रपञ्चमिथ्यात्वविषयक प्रतीति का भी प्रमात्व खण्डित हो जायेगा ।

समाधान– हमारे (खाण्डनिक) द्वारा प्रदर्शित दोष स्वयं अनिर्वचनीय होते हुए भी निर्वचनीयत्व के बाधक होते हैं । अनिर्वचनीय दोषों के द्वारा भी व्यवहार किया जाता है । ऐसी स्थिति में हमारे (खाण्डनिक) प्रति व्याघात कैसे हो सकता है । (खाण्डनिक का तात्पर्य यह है अनिर्वचनीय पदार्थ भी साधक एवं व्यवहार के उपपादक होते हैं । यह हम पहले कह चुके हैं अतः अनिर्वचनीय विषयविषयिभाव सम्बन्ध को स्वीकार करके ही अनिर्वाच्यत्वादि की सिद्धि हो जायेगी । प्रपञ्चमिथ्यात्व विषयक प्रतीति का व्यावहारिक प्रमात्व स्वीकार करने से प्रपञ्चमिथ्यात्व की सिद्धि भी सम्भव है, एवं अभेद को अधिकरण स्वरूप मानने से भेद के समान विकल्प कर अभेद का निराकरण करना भी सम्भव नहीं है ।

अपि च मेरे (खाण्डनिक) द्वारा उक्त दोषों में जातित्व का निर्वचन कर (लक्षण बनाकर) योजना भी आप (तार्किक) नहीं कर सकते अर्थात् जाति-उत्तर का भी लक्षण बनाना सम्भव न होने से वह भी अनिर्वचनीय ही है ।

ननु सदसत्पक्षयोर्दोषदर्शनादनिर्वचनीयतेति ब्रुवाणस्य किं सदसत्त्वसंशयः, किं वा सदसत्त्वपक्षवहिर्भावाभ्युपगमः? आद्ये भवितव्यं

शारदा

जातित्वस्येत्यर्थः। अयम्भावः, स्वाभ्युपगतव्याघातकोत्तरत्वं तावन्न जातित्वम्, महाविद्यानुमानेषु त्वया जातित्वेनाभ्युपगतेष्वव्याप्तेः, तेषामनुत्तरत्वात्, उत्तरत्वस्य दूषकतानौपयिकत्वेन वैयर्थ्याच्च, स्वत्वस्य चानुगतत्वे मदभ्युपगतव्याघातकस्य त्वदुक्तदूषणस्यापि जातित्वापत्तेः अननुगतत्वे तु प्रातिस्विकरूपेणानन्तव्यक्तिग्रहणानुपपत्तेर्दुर्ज्ञेयतापत्तेः, व्याघातकत्वस्य च विरहप्रसक्तिजनकत्वरूपत्वे विरहव्याप्यत्वरूपत्वे वा जनकताव्याप्यतावच्छेदकरूपनिरूपणं विना न निस्तारः, तन्निरूपणे वा तस्यैव लक्षणत्वमुचितम्, अन्यथा वैयर्थ्यात्, न वा तदप्यनुगतं सम्भवति। एतेन दूषणासमर्थमुत्तरमित्यपि निरस्तम्; त्वत्पक्षदूषणासमर्थस्य त्वदुत्तरस्य जातित्वापत्तिवारणाय यत्पुरुषीयदूष्यत्वप्रकारकेच्छीयविशेष्यताशालि यत्, तद्दूषणासमर्थस्य तत्पुरुषीयोत्तरस्य तत्र जातित्वमित्येवं वाच्यत्वे स्वत्ववद्यत्त्वादेरनुगमाननुगमाभ्यामुक्तदोषात्; नह्यनुगमपक्षे यद्व्यक्तेः पूर्वेण यदादिपदेन ग्रहणं तस्या एवोत्तरेण तेनेति नियमः सम्भवति व्यक्तं चैतत्सिद्धान्तलक्षणतत्त्वालोके, अत्रैव द्वितीयपरिच्छेदे च एवं दूषणसामर्थ्यस्य दूषणयोग्यतारूपत्वेन तदवच्छेदकस्यावश्यनिरूपणीयत्वेन तस्य चैकस्यासम्भवेनाननुगतधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेनानन्ताभावानां लक्षणघटकत्वापत्तावसर्वज्ञदुर्ग्रहत्वापत्तिरिति। संशय इति। **सत्त्वासत्त्वकोटिताकसंशयीयविशेष्यत्वमनिर्वाच्यत्वमित्यर्थः।**

राजहंसः

महाविद्यानुमानेष्विति । महाविद्याविडम्बनकारो ब्रूते केवलान्वयिनि व्यापके प्रवर्तमानो हेतुः पक्षे व्यापकप्रतीत्यपर्यवसानादन्वयव्यतिरेकिसाध्यविशेषं वाद्यभिमतं साधयन् महाविद्येत्युच्यते, तस्य च महाविद्यात्वमसिद्धत्वादिसकलदोषविरहः, प्रमेयत्वादीनां निर्णीतपक्षवृत्तित्वेन पक्षधर्मत्वासिद्धेरसम्भवादित्यादि । शिवादित्यमिश्रोऽपि प्रोक्तग्रन्थ 'एव' पक्षतद्भिन्नवृत्तित्वरहितत्वानुषञ्जितः। धर्मः साध्यवतः साध्यो मेयत्वात्प्रतिभाक्षये'। इत्यभ्यधात्। अनेनैव नयेन 'वेद्यत्वं स्वस्वेतरवृत्तित्वानधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिवृत्तिधर्माधिकरणं मेयत्वा' दिति तत्त्वप्रदीपिकाटीकोट्टङ्कितमनुमानं योजनीयम् । पक्षे प्रकारान्तरेण साध्योपसंहारशालित्वे सति दृष्टान्ते प्रकारान्तरेण साध्योपसंहारशालित्वमिति लक्षणं तु क्षितिः सकर्तृका कार्यत्वादघटवदिति पक्षधर्मताबललभ्यविशेषमादाय पर्यवसायिसद्धेतुमात्रसाधारणमिति न जातिविशेषतया समर्थनीयमहाविद्यानुमानलक्षणतयाऽनुमन्तुमुचितम् ।

जातित्वेनाभ्युपगतेष्विति । साध्यमिव तदभावं प्रत्यपि भणितिभङ्गीभेदेन प्रमेयत्वादेः साधकतयोपन्याससम्भवात् । तादृशप्रयोगकौशलं पुनर्महाविद्याविडम्बनपरिशीलनशिक्षणीयम्।

भारती

प्रश्न– "सत् असत् उभय पक्ष में दोष होने से अनिर्वचनीय कहा जाता है । ऐसा कहने वाले आप (खाण्डनिक) का क्या तात्पर्य है क्या सत्व और असत्व का संशय ही अनिर्वचनीयत्व है । अथवा सत्त्व असत्त्व एवं सदसत्त्व इन तीनों पक्षों से बहिर्भूत होना अर्थात् सत्त्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्रयवत्त्व ही अनिर्वचनीयत्व है । यदि प्रथम

तावत्सदसत्त्वयोरन्यतरेणेत्येकपक्षदोषस्याभासत्वम्, तच्च सत्त्वपक्षदोषस्यैवाभ्युपेयम् आवश्यकत्वात्। यदि तावत्सत्त्वपक्षस्तदा सत्त्वपक्षदोषः कथं सङ्गच्छेत, अथासत्त्वपक्षस्तदा सर्वासत्त्वे तद्दोषः कथं सद्भाववान् भवितुं प्रभवेत्। द्वितीयस्तु व्याघातादेवासम्भवी "परस्परविरोधे हि

शारदा

बहिर्भवेति। **सत्त्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्रयवत्त्वमनिर्वाच्यत्वमित्यर्थः।** अन्यतरेणेति। **भावाभावयोस्तृतीयप्रकारासम्भवादित्यभिमानः। आवश्यकत्वमेव स्फोरयति** यदीति। सत्त्वपक्ष इति। **प्रमित इति शेषः। एवमसत्त्वपक्ष इत्यत्रापि। सङ्गच्छेत = अनाभासः स्यात्।** सर्वेति। **विज्ञानातिरिक्तसर्वेत्यर्थः। सद्भाववान् = परमार्थः। दोषस्योक्तसर्वान्तः-पातित्वादिति भावः। व्याघातात् = परस्परविरहरूपयोरेकनिषेधेऽपरसत्त्वावश्यम्भावेन तृतीयप्रकारानुपपत्तिरूपप्रतिकूलतर्कात्। प्रसञ्जनं तु सद्भिन्नत्वेनासत्त्वस्यासद्भिन्नत्वेन च सत्त्वस्य करणीयमिति भावः।** परस्परेति। **द्वयोः परस्परविरहात्मकत्वे तदन्यप्रकारानुपपत्ति-रित्युदयनाचार्योक्तेरर्थः।**

राजहंसः

न चानुकूलतर्कावतारदशायां जातित्वाभ्युपगमो नादरणीय इति वाच्यम्। तथासति तर्कमूलभूत-व्याप्त्यनुसारेणैवानुमानप्रयोगौचित्येनाजागलस्तनानुकारीदृशप्रयोगाणां प्रहेलिकामप्युपह-सतामवहेलनाया एव रमणीयत्वादिति भावः। तत्त्वप्रदीपिकादौ तु तत्कालप्रचलितप्रणालीमवलम्ब्य तादृशप्रयोगादरो यक्षानुरूपो बलिरिति न्यायेनैवेति द्रष्टव्यम्। एवं च त्वयेत्युक्तिः कदाचित्स्फूर्ति-वैचित्र्येणानुकूलतर्कावतारेऽप्युपायस्योपायान्तरादूषकतया तादृशप्रयोगविशेषेणाप्यभिमतानुमानसम्भवेन जातित्वानभ्युपगन्तुरपेक्षयैवेति।

तेषामनुत्तरत्वादिति। परार्थे स्थापनाविधया प्रयुक्तानां स्थापनाहेतुप्रयोगानन्तरप्रयोगविषय-त्वरूपोत्तरत्वस्यासम्भवात्। स्वार्थस्थले तु सर्वथैव तदसम्भवादित्यर्थः। यदि तु स्थापनाहेतुप्रयोगानन्तर

भारती

पक्ष मानें तो सदसत्त्व दोनों में से किसी एक पक्ष का दोष आभास (भ्रम) होना चाहिए, उस में सत्त्व पक्ष के दोष को ही आभास कहना होगा, क्योंकि वह (सत्त्वपक्ष मानना) आवश्यक है, यदि सत्त्वपक्ष प्रमित है तो सत्त्वपक्ष में दोष यथार्थ कैसे हो सकता है, और यदि असत्त्वपक्ष (समस्त प्रपञ्च असत् है) प्रमित है तो विज्ञानातिरिक्त समस्त प्रपञ्च के असत् होने पर तद्गत दोष भी असत् ही होगा, परमार्थतः सत् कैसे हो सकता है ? (क्योंकि वह दोष भी समस्त प्रपञ्चान्तःपाती है।) एवं द्वितीय पक्ष (सत्त्वादित्रयव्यतिरिक्तत्व) तो व्याघात-अर्थात् परस्पर विरहरूप दो पदार्थों में एक का निषेध अपर के सत्त्व का आपादक होने से तृतीय प्रकार की अनुपपत्ति रूप तर्क के द्वारा ही असम्भव है। उदयनाचार्य ने कहा है- "परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः" (दो पदार्थों के परस्पर विरह रूप होने से एक के निषेध करने पर दूसरे की सत्ता ही माननी होगी, उन दोनों से भिन्न तृतीय प्रकार नहीं हो सकता।

न प्रकारान्तरस्थिति'' रिति । तदेतदनाकलितपराभिसन्धेः प्रत्यवस्थानम्, यो हि सर्वमनिर्वचनीयसदसत्त्वं ब्रूते स कथमनिर्वचनीयतासत्त्वव्यवस्थितौ पर्यनुयुज्येत, साऽपि हि कृत्स्नप्रपञ्चपरसर्वशब्दाभिधेयमध्यनिविष्टैव । परस्य व्यवस्थयैवं पर्यवस्यति–निर्वचनप्रतिक्षेपादनिर्वचनीयत्वम्, विधिनिषेधयोरेकतर-

शारदा

सर्वं = दृश्यमात्रम् । अनिर्वचनीयसदसत्त्वम् = सत्त्वासत्त्वप्रकारकनिरुक्तिविषयताऽनर्हम् । सत्त्वव्यवस्थितौ = सत्त्वोपपादनाय । प्रपञ्चपरेति । **प्रपञ्चप्रतीतीच्छयोच्चरितेत्यर्थः । परस्य = तार्किकस्य । परकीयव्यवस्थामाह** विधीति । **इतरपर्यवसायितायाः = इतरात्मकतायाः । परकीयरीत्या = भावाभावयोः परस्परविरहात्मतानियममुपेत्य । यद्यपि सत्त्वस्य त्रिकालाबाध्यत्वरूपत्वेऽसत्त्वस्य च सत्तादात्म्यानापन्नत्वरूपत्वे न ''परस्परविरोधे हीति'' न्यायावतारशङ्कापि, ब्रह्मण्युभयोरपि रूप्यादौ चोभयाभावस्यैव सत्त्वात् व्याघातानुपपत्तेः, तथापि परस्परविरहरूपतामुपेत्यैव समाहितम् । तत्र चानिर्वचनीयताया अनिर्वचनीयत्वोक्त्या परस्परविरहरूपयोरेकत्र विरहद्वयस्यातात्त्विकत्वं सूचितम्, किन्तु तादृशप्रतियोगिकाभावयोरेकत्र वृत्तेर्विरुद्धाया उपगमे तत्प्रतियोगिनोरप्येकत्र वृत्तेरतात्त्विक्या अनुपगमे न बीजम्, न्यायतौल्यात् । इदन्त्ववश्यावधातव्यम्–यथा परस्परविरहरूपयोरपि द्वित्वतद्वद्भेदयोर्घटत्वावच्छेदेन निषेधसमुच्चयो व्युत्पत्तिवादे गदाधरभट्टाचार्यैरुक्तः कस्यापि द्वित्वस्य घटत्वावच्छेदेनावृत्तेः, द्वित्ववद्भेदस्यापि तदवच्छेदेन वृत्तौ चैकत्वाविवक्षादशायां घटो न द्वाविति प्रयोगस्य प्रामाणिकत्वप्रसङ्गः, यथा वा ''एकदेशवृत्तेर्व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकाभावानङ्गीकारादि''त्यवयवप्रकरणे गदाधरोक्तरीत्या घटपटोभयत्वावच्छेदेन न घटत्वतदभावौ नापि घटाभेदतद्भेदौ, तथा च तृतीयैव कोटिः, अन्यथा घटेऽपि घटत्वाभावस्य**

राजहंसः

प्रयोगो वाक्यविशेषात्मैवोत्तरशब्दार्थः स्वरससिद्धो न तु तादृशप्रयोगार्थ इति स्वीक्रियते, तदा कथं शब्दानात्मकेषु हेतुषूत्तरत्वसम्भावनापीति । अत्र पक्षे च विरोधहेत्वाभासखण्डने सर्वमसज्ज्ञेयत्वादित्याद्यजातिजातिसाधारणस्येति पङ्क्तौ जातिशब्देन ज्ञेयत्वहेतुरेव स्थापनानन्तरं प्रयुज्यमानतादशायां न ग्राह्योऽपि तु स्थापनानन्तरं तत्प्रयोगः, 'यदा तु सर्वं सज्ज्ञेयत्वादिति स्थापनाहेतुप्रयोगानन्तरं तथा प्रयोगस्तदा तस्य जातित्वमिति' तत्र शारदावाक्ये तु तस्येत्यनेन प्रयुज्यमानस्य हेतोरिव तत्प्रयोगस्यापि परामर्शसम्भवः ।

तथाच तृतीयैव कोटिरिति । घटाभावे न घटो नापि घटाभावः, घटाभावे घटो

भारती

समाधान-- परकीय (खाण्डनिक) तात्पर्य के अनभिज्ञ का यह पूर्वपक्ष है क्योंकि जो (खाण्डनिक) दृश्यमात्र को सत्त्वेन असत्त्वेन विचारानर्ह मानता है उसके प्रति अनिर्वचनीयता की सत्ता के उपपादनार्थ आक्षेप (प्रश्न) कैसे किया जा सकता है । क्योंकि वह अनिर्वचनीयता भी समस्त प्रपञ्च के बोधक सर्वशब्द के वाच्यार्थ के अन्तर्गत ही है । (अतः अनिर्वचनीयता

निरासस्येतरपर्यवसायितायास्तेनाभ्युपगमात् । ततः परकीयरीत्येदमुच्यते– अनिर्वचनीयत्वं विश्वस्य पर्यवस्यतीति ।। इति खण्डनेऽनिर्वाच्यत्वनिरुक्तिः ।।

अथ परीत्या परमतनिरासोपपत्तिः

वस्तुतस्तु वयं सर्वप्रपञ्चसत्त्वासत्त्वव्यवस्थापनविनिवृत्ताः स्वतः सिद्धे

शारदा

घटभेदस्य च पटेऽपि घटत्वस्य घटाभेदस्य चापत्तौ पूर्णाद्वैतसाम्राज्यापत्तिः, एवं प्रकृतेऽपि तृतीयैव कोटिः, प्रमाणस्य तवेव ममापि सत्त्वात्, विधिनिषेधयोरेकतरनिरासस्येतरपर्यवसायितायास्त्वयैव त्यागादिति । यत्तु प्रकृतमूलमुद्धृत्य सदसदुभयख्यातिरेव श्रीहर्षस्य सम्मतेति नागेशभट्टेनोक्तम् तदनवबोधविजृम्भितम्, सदसद्भ्यां विलक्षणं विश्वमित्यनुपदमेव मूले उक्तत्वात् । प्रमात्वानिरासप्रस्तावे च ''मम ह्येवं दर्शनम्, प्रतीतिसिद्धत्वादत्यन्तासद्विलक्षणं भवदपि जगत्तथा सत्त्वोपगमेऽपि बाध्यमानत्वादनिर्वचनीयमिति'' वक्ष्यमाणत्वात् सदसद्विलक्षणत्वस्य स्वासम्मतत्वे ममेत्यस्यासङ्गतेः । तस्मात् 'परस्य व्यवस्थयेति' सन्दर्भानुसारेण परकीयरीत्येत्यस्यास्मदुक्त एवार्थो युक्तः, न तु 'कस्यचिद्वेदान्तिनोरीत्येत्यर्थ' इति ।। इति खण्डनशारदायामनिर्वाच्यत्वनिरुक्तिः ।।

सत्त्वासत्त्वेति । **सत्त्वासत्त्वान्यतरस्य तदुभयस्य वा युक्त्यधीनप्रतिपत्त्यनुकूलव्यापारविरहिण इत्यर्थः । स्वतः सिद्धे = परप्रकाश्यत्वाभावत्वोपलक्षिते । ब्रह्मतत्त्वे =**

राजहंसः

नास्तीतिप्रतीतेः प्रमात्वेऽविश्वासात्, रूपभेदेनाधाराधेयभावस्य न हि दण्ड्यपि देवदत्तः कुण्डलिनं स्वमारोहतीति न्यायेनापमानितत्वात्, तथा च तृतीयैव कोटिरित्यप्युदाहरणमिहाहरणीयम् । **पूर्णाद्वैतेति** । व्यवहारेऽप्यद्वैतेत्यर्थः । साम्राज्यं त्वगृहीताप्रामाण्यकग्रहविषयत्वमिह पर्यवस्यति। घटे घटत्वाभावस्य घटभेदस्य चापत्तिस्त्वत्र भावद्वैतशून्यतापत्तिपर्यवसन्ना ।

अनुपदमेवेति । यद्यपि तत्र ब्रह्मवादिनः सङ्गिरन्त इत्येवोक्तम् । तथापि नैषधाध्ययनेनात्रैवाग्रे मुमुक्षोपदेशप्रकरणनिरीक्षणेन चरमपद्ये 'यःसाक्षात्कुरुते' इत्याद्यभिधानालोचनेन च स्वस्यापि ब्रह्मवादित्वं निर्विवादमिति भावः । इति खण्डनशारदायामनिर्वाच्यनिरुक्तौ राजहंसः ।

भारती

भी अनिर्वचनीय ही है ।) दृश्यमात्र में अनिर्वचनीयता का व्यवहार भी हम (खाण्डनिक) तार्किक की व्यवस्था के अनुरोध से ही करते हैं, क्योंकि तार्किक की यह व्यवस्था है कि विधि एवं निषेध में एकतर का निरास इतरात्मकता में पर्यवसित होता है । अतः तार्किक स्वीकृत भावाभाव के परस्परविरहात्मता के नियम को मान कर हम (खाण्डनिक) कहते हैं कि निर्वचन क्रे निषेध से अनिर्वचनीयता आती है । अतः दृश्यमात्र अनिर्वचनीय सिद्ध होता है ।

पर-रीति से परमत के निरास की उपपत्ति :-

वस्तुतः हम (खाण्डनिक) तो समस्त प्रपञ्च की सत्त्वासत्त्व व्यवस्था में उदासीन

चिदात्मनि ब्रह्मतत्त्वे केवले भरमवलम्ब्य चरितार्थाः सुखमास्महे । ये तु स्वपरिकल्पितसाधनदूषणव्यवस्थया विचारमवतार्य तत्त्वं निर्णेतुमिच्छन्ति तान् प्रति ब्रूमः-न साध्वीयं भवतां विचारव्यवस्था, भवत्कल्पितव्यवस्थयैव व्याहतत्वात् । अतएवास्मदुपन्यस्यमानदूषणस्थितिविषयाः पर्यनुयोगा निरवकाशाः, त्वद्व्यवस्थयैव त्वद्व्यवस्थाया व्याहत्युपन्यासात् । न

शारदा

परिच्छेदसामान्याभावत्वोपलक्षिते । केवले = द्वैतसामान्यभावत्वोपलक्षिते । चिदात्मनीति विशेष्यपदम् । श्रद्धान्वयिविषयित्वं सप्तम्यर्थः । भरं = निर्भरं श्रद्धाख्यचेतोवृत्तिविशेषमिति यावत् ।अवलम्ब्य = द्वैतदुःखनिवृत्तये सम्पाद्य । चरितार्थाः = जीवन्मुक्ताः । एतादृशब्रह्म-निष्ठेन भवता विचारद्वारा परः कथं प्रतिपाद्यते इत्याशङ्क्य निष्कम्पानुकम्पापरवशतयैवेत्या-शयेनाह ये त्विति । **साधनदूषणव्यवस्थया = स्वपक्षसत्यत्वपरपक्षासत्यत्वविषयकप्रमित्या-त्मकव्यवस्थाप्रयोजकप्रमाणतर्कतदाभासैः । एवमग्रेऽपि व्यवस्थाशब्दार्थो बोध्यः । अधीनत्वं तृतीयार्थो विचारान्वयी । विचारस्तत्त्वनिर्णयादिफलो वचननिचयः । अवतार्य = कृत्वा । तत्त्वं = अबाधितार्थम् । विचारव्यवस्था = विचारौपयिकनिरुक्तव्यवस्था-प्रयोजकाः । व्याहतत्वादिति । बाधितत्वात् । भवदुक्तप्रमाणतर्कतदाभासैर्भवदुक्तप्रमाणा-दीनामेव वक्ष्यमाणरीत्या खण्डने क्वतैःकस्यचित्पक्षस्य सत्यत्वासत्यत्वान्यतरावधारणमिति भावः । अतएव = भवदुक्तप्रमाणादेर्भवदुक्तप्रमाणादिनैव बाधादेव । दूषणस्थितिः = आत्माश्रयादेः सत्यत्वम् । असत्यस्यादूषकत्वात्सत्यत्वोपगमापत्तिरित्यभिमानः । व्याहत्युपन्यासात् = बाधकथनात् । सत्यत्वमस्तु मा वा, त्वदुपगतैस्तैरस्माभिर्व्यवहर्तुं**

भारती

(तटस्थ) रहते हुए केवल अर्थात् द्वैतसामान्याभावत्वोपलक्षित स्वत:सिद्ध = परप्रकाश्यत्वा-भावत्वोपलक्षित ब्रह्मतत्त्वरूप अर्थात् परिच्छेदसामान्याभावत्वोपलक्षित चिदात्मा में भर-निर्भर अर्थात् श्रद्धाख्यचेतोवृत्तिविशेष को द्वैतदु:खनिवृत्ति के लिए स्थित करके कृतकृत्य होकर सुखासीन हैं । यदि आप ईदृश ब्रह्मनिष्ठ हैं, तो विचार द्वारा दूसरे को क्यों समझाते हैं यह आप का कथन सत्य है । किन्तु जो विवेचक तार्किकादि स्वकल्पित साधन दूषण व्यवस्था अर्थात् स्वपक्षसत्यत्व एवं परपक्ष असत्यत्व के साधक प्रमाण, तर्क तथा तर्कभासों के द्वारा कथा आरम्भ कर तत्त्वनिर्णय करना चाहते हैं, उनसे हम अकारण अनुकम्पा परवश होकर कहते हैं कि "आप की यह विचार-व्यवस्था ठीक (निर्दुष्ट) नहीं हैं क्योंकि आप के द्वारा कल्पित व्यवस्था प्रमाण-तर्क तर्काभासों से ही आप की उक्त व्यवस्थाप्रमाणादि बाधित है । अतएव हमारे (खाण्डनिक) द्वारा उपस्थापित आत्माश्रयादि दूषणों की सत्ता के विषय में आप (तार्किक) का यह आक्षेप कि- "असत्यदोष दूषक नहीं हो सकते इसलिए परपक्ष को दूषित करने हेतु दोषों की पारमार्थिक सत्ता माननी होगी" सर्वथा निरवकाश ही है । क्योंकि आप (तार्किक) की व्यवस्था (प्रक्रिया-प्रमाणादि) से ही आप की व्यवस्था (प्रक्रिया प्रमाणादि) के बाध का हमने उपस्थापन किया है ।

चोपन्यास एव निर्बन्धकारणम्, विचारोपन्यासस्य सदसत्त्वोपगमाद्युदासीनैर्विचार्यमित्युपेत्यैव परं विचारप्रवर्तनायाः शक्यत्वमित्यावेदितत्वात् । यदि तु विचारस्य सत्त्वमनभ्युपेत्य न विचारयितुं शक्यमित्युच्यते, तदा प्रमाणमव्यापार्य न तदीयसत्त्वाभ्युपगमोऽपि शक्यते, अतिप्रसङ्गादिति विचारस्यापि विचार्य ग्रहणेऽनवस्थया विचारारम्भ एवाशक्यः स्यात् । न च पूर्वपूर्वसिद्धत्वाद्विचारे विचारान्तरमिदानीमगवेषणीयम् । विचारस्य पूर्वसिद्धत्वे, विचार्यरूपस्वविषयव्यवस्थिततत्वात्तस्य विचार्यमपि

शारदा

शक्यते एवेति भावः । निर्बन्धकारणम् = स्वसत्यत्वाभ्युपगमापादकम् । विचारोपन्यासस्येत्यत्र कर्मधारयः । षष्ठ्यर्थो विशेष्यत्वमुपगमान्वयि । प्रमाणमव्यापार्यप्रमाणाधीनविचारमकृत्वा। तदीयेति । **विचारीयेत्यर्थः । विचार्येति ल्यबन्तम्। ग्रहणे = अभ्युपगमेऽनाहार्यनिश्चयात्मके ।** पूर्वपूर्वेति । **प्रवाहानादित्वात्पूर्वपूर्वविचारेणोत्तरोत्तरविचारस्य निश्चितत्वादित्यर्थः । पूर्वसिद्धत्वे विचार्यमपि पूर्वमेव विचारितमिति योजना । तत्र हेतुः विचार्यरूपेत्यादि । व्यवस्थितत्वात् = तादात्म्येन व्याप्यत्वात् ।**

भारती

यदि कहें कि सत्यतया स्वीकृत का ही विचार (कथन) किया जाता है अतः उक्त दूषण विषयक आप का कथन ही उक्त दोषों के सत्यतया स्वीकृति का प्रमापक है । तो यह आप (तार्किक) का कथन उचित नहीं है । क्योंकि ''विचार रूप उपन्यास के सदसत्त्वस्वीकार में उदासीन होकर ही विचार करना चाहिए'' केवल इस नियम को मानने से ही विचार की प्रवृत्ति की जा सकती है यह हम खाण्डनिक पूर्व में कह चुके हैं और यदि कहें कि विचार (कथा) की सत्ता (पारमार्थिकत्व) के माने विना विचार (कथा) का आरम्भ ही नहीं हो सकता; तो विचार की सत्ता भी प्रमाणाधीनविचार किये विना सिद्ध नहीं हो सकती, यदि प्रमाण के विना (प्रमाणाधीन विचार किये विना) विचार की सत्ता मानें तो शश-शृङ्ग की सत्ता भी मानी जानी चाहिए । अतः विचार की सत्ता प्रमाणाधीनविचार करके ही स्वीकार की जा सकती है । ऐसी स्थिति में अनवस्था दोष होने से विचार (कथा) का आरम्भ ही नहीं होगा। (तात्पर्य यह है कि विचार (कथा) की सत्ता को सिद्ध करने हेतु प्रमाण सत्ता माननी होगी, और प्रमाणसत्ता भी पुनः तद्विषयक विचार (कथा) द्वारा ही सिद्ध होने से तद्विषयक विचार की सत्ता माननी होगी, पुनः उस विचार की सत्ता सिद्ध करने के लिए भी प्रमाण सत्ता अपेक्षित होगी इस प्रकार अनवस्था दोष आपतित होने से प्रथम विचार का आरम्भ न हो पायेगा ।

यदि कहें कि प्रवाह के अनादि होने से पूर्व पूर्व विचार के द्वारा उत्तरोत्तर विचार की सिद्धि हो जायेगी, पूर्वविचार की सत्ता सिद्ध करने हेतु प्रमाणाधीन विचारान्तर की आवश्यकता नहीं होगी, अतः अनवस्था दोष नहीं है; तो विचार के पूर्वसिद्ध होने पर विचार्य (विचार का

पूर्वमेव विचारितमित्यनारम्भ एव विचारस्य । अथ विचार्यविशेषस्य पूर्वमसिद्धत्वात्तदर्थं विचारारम्भः, तर्हि विचारविशेषस्यापि तद्विषयकस्य पूर्वमसिद्धिरेवेति वृथा शुष्कचर्वणम् ।

यदि च त्वद्दर्शनरीत्याऽभिधीयमानमस्माभिर्बाधं बाधसे तदा स्वाभ्युपगतरीतिबाधाभिधायितैव ते स्यात् । अस्माभिर्निर्वाह्यमानस्य त्वया खण्डनयुक्त्यैव बाधेऽस्माकमेव जेतृता, खण्डनयुक्तयो बाधिकाः,

शारदा

तस्य = विचारस्य । व्यापकता विषयितया । विचार्यविशेषस्य = अद्वैतादिरूपस्य । तर्हीति । **तथाच विचारविशेषस्य विचारपूर्वकाभ्युपगमेऽनवस्थेति भावः । विचारत्वेन रूपेण विचारसामान्यस्य सत्यत्वाभ्युपगमोऽपि न विचाराङ्गम्, तस्यापि विचाराधीनत्वेन व्यभिचाराद्विचारसामान्याङ्गताया वक्तुमशक्यादित्याशयेनाह वृथेति । श्वकर्तृकशुष्कास्थिचर्वणमिव त्वच्छङ्काजातं निष्फलमित्यर्थः ।**

बाधं = दूषणम् । निर्वाह्यमानस्य = उपपाद्यमानस्य प्रक्रियाजातस्य । ब्रह्मणो बाधस्तावन्न केनापि शक्य इत्युक्तम् । तदन्यस्य बाधस्तु त्वया वा मया वा क्रियतां, मत्पक्षस्य प्रपञ्चमिथ्यात्वस्योपोद्बलक एव, खण्डनयुक्तिभिः सत्त्वाभावसिद्धौ

भारती

विषय) भी पूर्व ही सिद्ध हो गया फिर उसे सिद्ध करने हेतु विचार का आरम्भ भी न होगा, क्योंकि विचार विचार्यरूपस्वविषय का व्याप्य है । (तात्पर्य यह है कि जैसे धूमरूप व्याप्य वह्निरूप व्यापक के विना नहीं रह सकता, अत: धूम के सिद्ध होने पर वह्नि भी सिद्ध ही होती है उसी प्रकार विचार रूप व्याप्य भी अपने व्यापक विचार्य (स्व विषयरूप फल) के विना नहीं रह सकता, अत: विचार के पूर्व सिद्ध होने पर उसका विषय विचार्यरूप फल भी पूर्व सिद्ध हो ही गया, अत: निष्फल होने से तदर्थ विचार का आरम्भ नहीं होगा ।

यदि कहें कि अद्वैतादिरूप विचार्यविशेष के पूर्व में असिद्ध होने से तदर्थ विचार का आरम्भ करना आवश्यक है । तो अद्वैतादिरूपविचार्यविशेषविषयक विचारविशेष भी पूर्व में असिद्ध ही है । तथा च उस विचारविशेष को भी विचार पूर्वक ही मानना होगा ऐसी स्थिति में अनवस्था दोष आपतित होता है । अत: श्वान (कुत्ता) कर्तृक शुष्क अस्थिके चर्वण के समान आप के द्वारा की जाने वाली शङ्काएँ भी निष्फल हैं ।

यदि आप (तार्किकादि) के दर्शन की रीति से हमारे (खाण्डनिक) द्वारा उपस्थापित दोषों को आप (तार्किक) बाधित (दूषित) करते हैं तो आप के द्वारा अपनी रीति का ही बाध सम्पन्न किया गया । अर्थात् आपने अपनी रीति-प्रक्रिया का ही बाध किया । हमारे (खाण्डनिक) द्वारा उपपादनीय प्रक्रिया का आपने खण्डनयुक्ति से ही बाध किया, अत: हमारा (खाण्डनिक) ही विजय हुआ । क्योंकि "खण्डनग्रन्थोक्त युक्तियाँ बाधक है और निर्वाह्यपक्ष (दृश्यसत्यत्व)

निर्वाह्यपक्षश्च बाध्य' इत्यस्यास्मदुक्तपक्षस्य त्वयैव निर्वाहात् । तस्मात्त्वया निर्वाह्यमस्माभिस्तु खण्डनीयमितीदृश्यामेव परं कथायां त्वन्निर्वाह्यनिर्वाहे तव जयो नान्यथेति । तदेवं भेदप्रपञ्चोऽनिर्वचनीयः, ब्रह्मैव परमार्थसदद्वितीयमिति स्थितम् । इति खण्डने पररीत्या परमतनिरासोपपत्तिः ।

अथाद्वैते प्रमाणप्रश्नखण्डनम्

नन्वद्वैते किं प्रमाणम् ? प्रश्न एव तावदद्वैतमनङ्गीकुर्वतो नोपपद्यते।

शारदा

प्रतीयमानत्वेनानलीके मिथ्यात्वस्यैव पर्यवसानात् । बाधिकाः = दृश्याभावज्ञापिकाः । निर्वाह्यपक्षः = दृश्यसत्यत्वं तस्मात् = त्वया खण्डने तव स्वाभ्युपगतरीतिबाधा-भिधायितापातात् । इतीदृश्यमेवेति । **इत्येतत्समयबन्धाधीनायामित्यर्थः । चिद्रूपत्वेन ब्रह्मणः स्वतः सिद्धत्वेन तदन्यस्य च मया साधयितुमनिष्यमाणत्वेन विधिकोटेर्मयाऽनालम्बनीयत्वात् खण्डनकोटिरेव मयाऽलम्बनीया मध्यस्थस्यापि तादृशकोट्यालम्बने एव मह्यमाज्ञादानमुचितम् अन्यथा तन्मौढ्यं स्यात् द्वैताभावादिप्रतिपादककोटेर्विधिकोटिपूर्वकत्वाच्चेति भावः ।** भेदप्रपञ्च इति । **स्वसमसत्ताकभेदप्रतियोगितानुयोगिताऽन्यतरवानित्यर्थः, भेदत्वावच्छिन्न इत्येव वार्थः, सर्वं ब्रह्माभिन्नमिति मूलकाराभिप्रायस्याग्रे वर्णनीयत्वात् । इति खण्डनशारदायां पररीत्या परमतनिरासोपपत्तिः ।**

अद्वैते =ब्रह्मपदार्थोपलक्षणीभूतात्यन्ताभावत्ववन्निरूपितप्रतियोगिताया भेदप्रपञ्चनिष्ठत्वे, अद्वैतत्वेनाभिमते वा । अद्वैतमिति । **अद्वैतप्रमाणमित्यपि द्रष्टव्यम् । अनङ्गीकुर्वतः =**

राजहंसः

परमतेऽप्रसिद्धतयाद्वैतस्याव्यवहार्यत्वेन खण्डशः प्रसिद्ध्यभिप्रायेण व्याचष्टे अद्वैते

भारती

बाध्य है'' हमारे द्वारा स्वीकृत इस पक्ष का ही आपने निर्वाह किया । तस्मात् आप तार्किक के द्वारा निर्वाह्य हो एवं मेरे द्वारा खण्डनीय हो इस प्रकार से समय बन्धाधीन प्रवृत्त कथा में ही आप यदि अपने निर्वाह्य (प्रपञ्चसत्यत्व) का निर्वाह (समर्थन) कर सकें, तभी आप का विजय माना जा सकता है अन्यथा नहीं । (जो कि कथमपि सम्भव नहीं है) अतः यही सिद्ध होता है कि भेदप्रपञ्च अर्थात् ब्रह्मभिन्न निखिल प्रपञ्च अनिर्वचनीय है और ब्रह्म ही एक परमार्थसत् अद्वितीय है ।

अद्वैत-प्रमाणप्रश्न खण्डन

प्रश्न – अद्वैत में क्या प्रमाण है ?

उत्तर – जो अद्वैत को स्वीकार नहीं करते, वे ''अद्वैत में क्या प्रमाण है'' इस प्रकार प्रश्न ही नहीं कर सकते। कारण कि आप (तार्किक) जिस अद्वैत में प्रमाण

प्रमाणं यत्राद्वैते पृच्छ्यते तस्याप्रतीतौ कथमेवंभूतः प्रश्नः सङ्गच्छेत, न हि प्रमाणमात्रं भवता पृच्छ्यते किन्नाम विषयविशेषनियनम्, तच्च तदोपपद्यते यदि तादृशं ते प्रतीतिमारोहेत् , प्रश्नस्य वाग्व्यवहारविशेषत्वात्,व्यवहारस्य च स्वजनकज्ञानविषयनियतत्वात्। अन्यथा व्यवहाराणां विषयनियमप्रयोजकस्यान्यस्यासम्भवेन व्यवहारविषयपारिप्लवापत्तेः ।

शारदा

अप्रतीतवतः। अद्वैतप्रतीतिसिद्धौ प्रमाणसिद्धिरग्रे वक्ष्यते। पृच्छ्यते इति। **येन विषयविशेषस्याद्वैतस्य ते प्रतीतिर्न स्यादिति शेषः। विषयविशेषनियतम् = अद्वैतविषयकप्रमितिकरणम् । तच्च = तादृशप्रमाणविषयकप्रश्नकरणं च । तादृशं = अद्वैतविषयकप्रमितिकरणत्वविशिष्टम् । प्रतीतिमारोहेत् = प्रतीतिविषयः स्यात् । खाण्डनिको मदीयामद्वैतप्रमाणविषयकजिज्ञासां जानात्वित्याकारकेच्छाधीनशब्दविशेषप्रयोगो हि प्रकृतप्रश्नः, स च व्यवहारविशेषः, तद्विषयकव्यवहारत्वेन तद्विषयकज्ञानत्वेन च कार्यकारणभावात् स्वजनकज्ञानसमानविषयकत्वं व्यवहारस्य नियतम् तथाचाद्वैतविषयकप्रतीतिरपि तद्घटितनिरुक्तकरणत्वविशिष्टं प्रतीतवत आवश्यकी, विशिष्टविषयकप्रतीते- र्विशेषणविषयकत्वनियमादित्याह** प्रश्नस्येत्यादिना । **विषयनियतत्वात् = विषय- विषयकत्वनियमात् । विषयनियमप्रयोजकस्य = अयमेवास्य व्यवहारस्य विषयो नान्य इति व्यवस्थाप्रयोजकस्य । अन्यस्य = स्वजनकज्ञानातिरिक्तस्य । पारिप्लवः= अव्यवस्था।**

राजहंसः

ब्रह्मपदार्थेत्यादि । लाघवं विशेष्यविशेषणभावव्यत्यासेनाद्वैतपदार्थान्तरसाधारण्यं चानुरुध्याभिदधाति अद्वैतत्वेनाभिमत इति ।

अनङ्गीकुर्वत इति । अङ्गीकारस्यानाहार्यनिश्चयरूपतया व्यवहर्तव्याङ्गीकारत्वेन गौरवेण व्यवहारं प्रति । कारणत्वाभावाज्ज्ञानत्वावच्छिन्नजन्यस्य तस्य ज्ञानमात्राक्षेपकत्वमेवेत्या- शयेनाह **अप्रतीतवत इति** । सन्मात्रात्मनाऽद्वैतस्यापि प्रत्यक्षविषयत्वमुपेत्य प्रत्यक्षविषयीभूतवस्त्वन्तरप्रमाणप्रश्नेऽपि खण्डनं सञ्चारयितुमाह **प्रत्यक्षविषयत्वेऽपि वेति ।** आक्षेपानयनकथन शब्दानां पौनरुक्त्यं परिहर्तुं व्याचष्टे **स्वविषयान्यथेत्यादि ।**

भारती

पूछते हैं' उस (अद्वैत) के अज्ञात होने पर तद्विषयक (उस अद्वैत के विषय में) प्रमाण का प्रश्न कैसे होगा । क्योंकि आप प्रमाण-मात्र तो पूछते नहीं? विषयविशेषनियत अर्थात् अद्वैत रूप विषय विशेष में प्रमाण (प्रमिति का करण) पूछते हैं । और तादृश प्रमाणविषयक प्रश्न करना तभी सम्भव है जब आप अद्वैत को जानते हों, क्योंकि प्रश्न वाग्व्यवहारविशेषरूप है और व्यवहार स्वजनकज्ञान के विषय से नियत (व्यापक) है, तद्विषयक व्यवहार के प्रति तद्विषयक ज्ञान करण होता है। अन्यथा (यदि व्यवहार स्वजनक ज्ञान के विषय अर्थात् व्यवहर्तव्य विषय का अतिक्रमण करे तो) ''यही (घट) इस व्यवहार का विषय है अन्य (पट) नहीं '' इत्याकारक व्यवस्था नहीं हो सकेगी, कारण कि विषयनियमप्रयोजक अर्थात् उक्तव्यवस्था

यदि चाद्वैतं प्रश्नविषयः प्रतीतमुच्यते तदा तत्प्रतीतिस्ते प्रमा वा स्यादप्रमा वा। आद्ये यदेव तस्याः प्रमायाः करणं तदेवाद्वैते प्रमाणं तवापि सम्प्रतिपन्नमिति वृथा तस्य प्रश्नः । न च वाच्यं सामान्यतोऽद्वैतप्रमाणसिद्धौ भूतायामपि विशेषतः प्रमाणप्रश्नः; यतः सामान्यसिद्धावेवाद्वैतसिद्धौ विशेषविचारः काकदन्तपरीक्षावत्स्यात् । सामान्यसिद्धिरेव च विशेषमप्याक्षिप्यानयन्ती विशेषमपि ते कथितवती किमत्र प्रश्नेन।

शारदा

घटज्ञानस्यापि पटव्यवहारहेतुतापत्तिरित्यर्थः । एवमद्वैतप्रतीतिं प्रसाध्य तत्फलमाह यदीति। तवेति। **अद्वैतस्य प्रत्यक्षाविषयत्वेन मानान्तरस्य च ज्ञायमानत्वेन करणत्वात् ज्ञानात्मकत्वाद्वा न जिज्ञास्यत्वम्, प्रत्यक्षविषयत्वेऽपि वा स्वयमेव घटप्रत्यक्षादेरिव तत्करणस्य त्वया सुग्रहत्वमिति न प्रश्नावकाशः, स्ववृत्तिज्ञानगतप्रमात्वज्ञाने तद्गतप्रमाणजन्यत्वज्ञानस्यापि सम्भवाच्चेति भावः ।** सामान्यत इति । **प्रश्नेनोपपाद्येन स्वोपपादकं सामान्यज्ञानमेवाक्षिप्यते न तु स्वानुपपादकं विशेषज्ञानमपि, तस्मिन् सति जिज्ञासानिवृत्तौ तज्ज्ञानोदेश्यकशब्दप्रयोगात्मकप्रश्नानुपपत्तेरिति, एवमद्वैतप्रमाया ममोत्पत्तावपि वायोरभावस्य च प्रमाया इव करणविशेषजन्यत्वसन्देहात्प्रश्नोपपत्तिः, विवदन्ते हि वायोः प्रत्यक्षत्वानुमेयत्वयोरभावस्य चानुपलब्धत्वप्रत्यक्षत्वयोरिति भावः।** सामान्येति। **प्रमाणत्वेनेत्यर्थः। अद्वैतसिद्धौ = अद्वैतस्य प्रामाणिकत्वोपपत्तौ । स्यात् = निष्फलः स्यात् । अद्वैतप्रामाणिकत्वस्यैवाभीष्टत्वादिति भावः। ननु सामान्यस्य निर्विशेषस्यानुपपत्तेः विशेषाभावस्य निश्चये सामान्यनिश्चये बाधितत्वग्रहो मा भूदिति विशेषोऽवश्यं निश्चेय इत्यत आह** सामान्यसिद्धिरिति । **आक्षिप्यानयन्ती = स्वविषयान्यथानुपपत्तिज्ञानाधीनविशेषविषयकप्रमायोग्या सती । विशेषं ते कथितवती = विशेषविषयकत्वसमवेतप्रमया स्वाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वसम्बन्धेन विशिष्टाऽऽभूत् । तथाचागृहीताप्रामाण्यकसिद्धिविषयीभूतसामान्यस्य विशेषं विनाऽनुपपत्तेर्ग्रहात् तादृशसामान्यसिद्ध्या विशेषविषयकप्रमोपधाने विशेषाभावनिश्चयस्यासम्भवेन न सामान्यनिश्चये बाध्यत्वग्रहो न वा विशेषस्य जिज्ञास्यत्वमिति तद्विषयकप्रश्नो वृथैव। न च**

भारती

का प्रयोजक स्वजनक ज्ञान से अन्य सम्भव न होने से (व्यवहार को स्वजनक ज्ञान के विषय से नियत न मानने पर) व्यवहार के विषय की अव्यवस्था हो जायेगी । अर्थात् घट ज्ञान भी पट व्यवहार का हेतु होने लगेगा ।

यदि कहें कि प्रश्न का विषय अद्वैत ज्ञात है तो आप की वह अद्वैत विषयक प्रतीति (ज्ञान) प्रमा है या अप्रमा, यदि आप उसे प्रमा कहें, तो उस प्रमा का करण अर्थात् जो असाधारण कारण है वही अद्वैत में प्रमाण है आप को भी ज्ञात ही है, ऐसी स्थिति में तद्विषयक प्रश्न करना व्यर्थ है ।

परिगणितेषु हि प्रमाणप्रकारेषु मध्ये यत्रैव दोषं न प्रमिणोषि तत्रैव विशेषे सामान्यस्य विश्रान्तेः। यदि च परिचितचरेषु प्रमाणप्रकारेषु

शारदा

विशेषस्यापि विशेषत्वेनैव प्रमितिर्न तु विशिष्येति वाच्यम् ; विशेषत्वस्य तद्व्यक्तित्वातिरिक्तस्य दुर्वचत्वात् अन्यथा रूपहानेर्जातिबाधकतानुपपत्तेः, तद्व्यक्तित्वस्यासाधारणधर्मस्य निश्चये तु न जिज्ञासा सावसरेति भावः।

प्रमाणप्रकारेषु = प्रत्यक्षादिरूपप्रमाणविशेषेषु । दोषं = अद्वैतावगाहिधीजनन-योग्यताविरहं सामान्यस्य = अद्वैतविषयकप्रमानिरूपितकरणत्वस्य तत्रैव विशेषे विश्रान्तेः=

भारती

यदि कहें कि सामान्यत: अर्थात् प्रमाणत्वेन (अस्ति किञ्चत् प्रमाणम्) अद्वैत विषयक प्रमाण के सिद्ध होने पर भी विशेषत: अर्थात् प्रत्यक्षत्वादिरूप से अद्वैत में प्रमाण निश्चित नहीं है, अत: "अद्वैते किं प्रमाणम् " यह प्रश्न किया जा सकता है, तो यह आपका कहना ठीक नहीं, क्योंकि सामान्यत: प्रमाण के सिद्ध (निश्चित) होने मात्र से ही अद्वैत में प्रामाणिकत्व जो कि अभीष्ट है सिद्ध हो ही गया, पुन: तद्विषय में प्रश्न करना काकदन्त परीक्षा के समान व्यर्थ है ।

(यदि कहें कि निर्विशेषं न सामान्यम् अर्थात् विशेष के विना सामान्य नहीं रहता, यह नियम है, अत: विशेषाभाव के निश्चय होने पर सामान्यनिश्चय बाधित न हो जाय इसलिए विशेष का निश्चय आवश्यक है, अत: विशेषविषयक प्रश्न किया जा सकता है, तो यह आप का कथन ठीक नहीं है, क्योंकि निर्विशेषं न सामान्यम् इस नियम के आधार पर अद्वैत में प्रमाण सामान्य का निश्चय (जिसे आप स्वीकार कर रहे हैं) अद्वैत विषयक प्रमाणविशेष के बिना अनुपपन्न होकर अद्वैत विषयक प्रमाणविशेष का आपेक्ष करके आप को निश्चय करा ही देगा, पुन: तद् विषयक प्रश्न करना व्यर्थ ही है । (तात्पर्य यह है कि जैसे दिन में भोजन न करने वाले व्यक्ति का पीनत्व रात्रिभोजन के विना नहीं हो सकता, अत: व्यक्ति के पीन (स्थूल) होने पर तत्कर्तृक रात्रि भोजन मानना ही पड़ता है; उसी प्रकार आप को यदि प्रमाण सामान्य का निश्चय है तो वह प्रमाणविशेष के निश्चय के विना हो नहीं सकता, अत: प्रमाण विशेष का ज्ञान भी आपको हो ही गया। ऐसी स्थिति में उसके विषय में प्रश्न करना व्यर्थ है) यदि कहें कि वह प्रमाणविशेष कौन है? तो परिगणित प्रत्यक्षादिरूप प्रमाण विशेषों में से जिस प्रमाण विशेष में आप को दोष न दिखाई दे अर्थात् दोष विषयक प्रमात्मक ज्ञान न हो, उसी प्रमाणविशेष में आप के उस सामान्य ज्ञान की विश्रान्ति हो जायेगी । और यदि सभी प्रमाण के प्रकारों में अर्थात् प्रत्यक्षादि परिगणित प्रमाणों में से सभी प्रमाणों में आप को दोष (दोष प्रमा) दिखाई देता है अर्थात् यदि आप (तार्किक) यह मानें कि अद्वैत प्रमिति में इन्द्रिय तो करण हो नहीं सकता, क्योंकि वेदान्ती के अभिमत द्वैताभावत्वोपलक्षित तत्त्व का इन्द्रिय से

सर्वेष्वेव दोषं प्रमिणोषि तदा प्रमाणान्तरमाक्षिप्यापि सामान्येन विश्रमणीयमेव । यदि च 'का' प्रमाणव्यक्तिरसौ' इति प्रश्नार्थः परिशिष्यते; तदा न सर्वा व्यक्तिर्विशेषतो निर्देष्टुं शक्यते इति तदनिर्देशेऽपि न नः किञ्चिदपचीयते । यदि च द्वितीयः, तदानीमद्वैतप्रतीतिमप्रमां मन्यमानस्य तव 'अप्रमाविषये किं प्रमाणमिति' कथं न प्रश्नो व्याहन्यते।

शारदा

तादृशविशेषमात्रविशेष्यकार्थापत्त्यात्मकप्रमाप्रकारत्वात् । प्रमिणोषीत्यत्र णत्वमपाणिनीयं मन्यन्ते । नन्वद्वैतप्रमितौ नेन्द्रियं करणम् सद्रूपस्य सत्ताकालादिवद्बहिरिन्द्रियग्राह्यत्वसम्भवेऽपि त्वदाभिमतस्य द्वैताभावत्वोपलक्षितस्य तेन ग्रहणासम्भवात् अन्यथाऽद्वैते विप्रतिपत्तिविरहापत्तेः, भेदधिक्कारादौ "अप्रमाणं मनोऽसक्तमि" त्यादिवदद्भिस्त्वदीयैर्मनसः प्रमाणताया एवानभ्युपगमात्, सुखादेः साक्षिणैव ग्राह्यत्वात् आत्मनश्च स्वतः सिद्धत्वात्,

राजहंसः

अपाणिनीयमिति । 'हिनुमीना' (अष्टा० ८-४-१५) इत्यत्र 'हिनुमिनुमीना' इत्येव पाणिनिना सूत्रणीयमासीदिति तु तत्त्वम् । **असक्तमिति** । असन्निकृष्टमित्यर्थः । मनो न भेदादौ प्रमाणं तदसन्निकृष्टत्वात्, नाप्यन्यत्र प्रमाणसहकारित्वात् कालादिवदित्यादि भेदधिक्कार उक्तम् । असन्निकर्षः पुनः कथञ्चित्समर्थनीय इत्यन्यत् । **साक्षिणैवेति** । ज्ञानसुखादेः संशयाद्यविषयत्वान्यथानुपपत्त्यैव साक्षिसिद्धेः स्वप्रकाशवाद उदीरितत्वात्, स्वभावविशेषेण ज्ञानान्तरेण वा तादृशविषयत्वोपपादनस्यापि तत्र निरस्तत्वाच्च, अज्ञानादिसाधकतयाऽपि च सिद्धेन साक्षिणैव सुखादिभानस्योपपाद्यत्वाच्चेत्याशयः ।

भारती

ग्रहण नहीं हो सकता, अन्यथा अद्वैत में विप्रतिपत्ति ही नहीं होगी । और "अप्राणं मनः" इस भेदधिक्कारादि की उक्ति से मन को प्रमाण ही नहीं माना है । सुखादि तो साक्षी से ग्राह्य है आत्मा तो स्वतःसिद्ध है । अनुमान अद्वैतप्रमिति में प्रमाण नहीं है क्योंकि अनुमान पक्ष साध्यसंसर्ग विषयक धी का ही जनक होता है । निर्विकल्पकधीमात्रग्राह्य उक्त अद्वैतविषयकधी का जनक नहीं हो सकता । उपमान भी उसमें प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वह सादृश्य विषयक प्रमिति का जनक है । अथवा पदवाच्यत्व विषयक प्रमिति का जनक है । अतः अद्वैत प्रमिति का जनक नहीं हो सकता । शब्द भी उसमें प्रमाण नहीं है क्योंकि ब्रह्म निर्धर्मक है। निर्धर्मक में शक्ति या लक्षणा अदृष्टचर है । दूसरी बात यह है कि शाब्दबोधस्थल में साक्षात्करोमि ऐसा अनुव्यवसाय नहीं होता है । यदि अद्वैतबोध को साक्षात्कार रूप नहीं मानें, तो द्वैतविषयक अपरोक्ष भ्रम का निर्वतक नहीं होगा । अर्थापत्ति तो अनुमान के समान योगक्षेम है । अनुपलब्धि अभावमात्र विषयक है तथा च अद्वैत में प्रमाणविशेषाभावकूट के विनिश्चय से प्रमाण सामान्याभाव का निश्चय हो गया । तस्मात् अद्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती ।

अथाप्रमा सा मम मते त्वन्मते तु प्रमैवेति तत्करणं प्रमाणं पृच्छ्यते इति ब्रूषे, नैतदप्युपपद्यते, तवाद्वैते ज्ञानं यदुत्पद्यते तत्करणं मया प्रमाणरूपं

शारदा

प्रमाकरणत्वेनाक्लृप्तस्य मनसो नाद्वैतेऽपि प्रमाणत्वसम्भवः, द्वैतात्यन्ताभावस्य प्रागप्रतीतेश्च। नाप्यनुमानम्, तस्य पक्षसाध्यसंसर्गविषयकधीजनकत्वेन निर्विकल्पकमात्रग्राह्योक्ताद्वैतविषयकधीजनकत्वानुपपत्तेः, तद्घटस्तद्घटवानिति प्रतीतेः प्रमात्ववारणानुरोधेन भेदसमानाधिकरणस्यैव संसर्गस्य विशिष्टधीविषयताया लघुचन्द्रिकादौ व्यवस्थापितत्वेनाद्वैते तत्संसर्गविषयकानुमितेरप्यसम्भवाच्च, नाप्युपमानम्, तस्य सादृश्यविषयकप्रमितेः पदवाच्यत्वविषयप्रमितेर्वा जनकस्याद्वैतप्रमितिजनकत्वानुपपत्तेः। नापि शब्दः निर्धर्मके शक्तेर्लक्षणाया वा क्वाप्यदृष्टचरत्वात्, निर्धर्मकत्वेन शक्यत्वलक्ष्यत्वयोरभावसाधने श्रुतिबाधस्य तत्प्रयुक्तोपाधेर्वा श्रुतेस्तत्र प्रामाण्योपपादनं विनाऽसम्भवात् , शाब्दबोधस्थले 'साक्षात्करोमी' त्यनुव्यवसायस्य कदाप्यनुदयेनाद्वैतबोधस्य साक्षात्कारताया अनुपपन्नत्वे

राजहंसः

तत्संसर्गविषयकानुमितेरिति । भेदसमानाधिकरणपक्षसाध्यसंसर्गविषयकानुमितेरित्यर्थः ।

भारती

तो यह आपका मानना युक्ति सङ्गत नहीं है, क्योंकि ऐसी स्थिति में उन सभी प्रमाणों से अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण का आक्षेप करके आपके सामान्य ज्ञान को विश्रान्त करना चाहिए क्योंकि उस विशेष के विना सामान्य ज्ञान रह ही नहीं सकता ।

यदि आप का प्रश्न प्रमाण व्यक्ति के विषय में है– कि ''वह (अद्वैतसाधक) प्रमाणव्यक्ति कौन है'' ? तो तत्तत् प्रमाण व्यक्तियों के अनन्त होने से सम्पूर्ण प्रमाण व्यक्ति को विशेषरूप (प्रत्येक रूप) से निर्देश नहीं किया जा सकता है ऐसी स्थिति में उनका कथन न करने पर भी हमारी कोई हानि नहीं है ।

यदि आप द्वितीय पक्ष (प्रश्न के विषय अद्वैत की प्रतीति अप्रमा है) स्वीकार करें तो वह भी युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि अद्वैत प्रतीति को अप्रमा मानने वाले आप (तार्किक) का यह प्रश्न कि ''अप्रमा के विषय में क्या प्रमाण है?'' व्याघात दोष से युक्त है । (तात्पर्य यह है कि अप्रमा की उत्पत्ति दोष से होती है न कि प्रमाण से, प्रमाणजन्य ज्ञान (प्रमा) से तो अप्रमा की निवृत्ति होती है । अतः प्रमाण के साथ तो अप्रमा का बाध्यबाधकभाव विरोध है ऐसी स्थिति में अप्रमा को उत्पन्न करने हेतु प्रमाण (प्रमा के कारण) का प्रश्न करना विरुद्ध है ।)

प्रश्न– अद्वैत विषयक प्रतीति मेरे (तार्किक) मत में अप्रमा (अप्रमात्वेन स्वीकृत) है किन्तु आप (खाण्डनिक) के मत में तो वह प्रमा (प्रमात्वेन स्वीकृत) ही है । अतः मैं आप से पूछता हूँ कि आप के द्वारा प्रमात्वेन स्वीकृत मेरी अद्वैत प्रतीति का कारण क्या है ।

समाधान– इस प्रकार से भी आपका प्रश्न करना उपपन्न (युक्ति संगत) नहीं होता, क्योंकि आप को जो अद्वैत विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है, उसका कारण प्रमाण रूप से मुझे कहना ही चाहिए'' यह मेरा नियम नहीं है । अर्थात् मेरी इस प्रकार की प्रतिज्ञा

शारदा

द्वैतापरोक्षभ्रमनिवर्तकत्वानुपपत्तेश्च । नाप्यर्थापत्तिः – तस्या अनुमानसमानयोगक्षेमत्वेन निरुक्तदोषात् । अद्वैतं विना व्यवहारे कस्याश्चिदनुपपत्तेरभावेन, श्रुत्यनुपपत्तेश्च श्रुतेस्तत्र प्रामाण्यव्यवस्थापनं विनाऽसम्भवेनार्थापत्तेरुदेतुमसामार्थ्याच्च । नाप्यनुपलब्धिः, तस्या अभावमात्रविषयकत्वात्, भावस्यैवाभावाभावत्वेन धीजनने तु सप्रकारकबोधस्याद्वैतविषयस्य 'तमेव विदित्वे' त्यादिश्रुतिविरोधेन मुक्त्यानौपयिकत्वप्रसङ्गात्, अद्वैते भावत्वस्याप्रामाणिकत्वप्रसङ्गाच्च, तत्र मानान्तरप्रसरविरहस्योदीरितत्वात्, अभावत्वे तु सप्रतियोगिकत्वेन मिथ्यात्वप्रसङ्गाच्च बौद्धमतमनुसृत्याभावस्य तुच्छताया एव समर्थनीयत्वाच्च। एवं च प्रमाणविशेषाभावकूटनिश्चये प्रमाणसामान्याभावसिद्ध्याऽद्वैतं खपुष्पायितमेवेत्यत आह यदीति । **प्रमाणान्तरमित्यादेः स्वप्रकारकप्रमाणान्तरविशेष्यकार्थापत्त्यात्मकाक्षेपोत्तरकालीन एव प्रयोजकतासम्बन्धेन सामान्यनिष्ठः स्वोपपादकजिज्ञासाविरहरूपो विश्रम इत्यर्थः। शब्देऽद्वैतावगाहिधीजनकत्वविरहग्रहस्य वक्तव्यरीत्या प्रमात्वाभावेन यदीत्युक्तम्।** तदेति । **प्रतिस्वं तत्तत्प्रमाणव्यक्तीनामानन्त्यात् प्रदर्शयितुमशक्यत्वात्, अशक्यप्रदर्शनाप्रदर्शनस्य च न्यग्भावानाधायकत्वात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गादिति भावः। प्रमाणत्वस्य सामान्यस्य प्रत्यक्षत्वादिना पर्यवसानवत् प्रत्यक्षत्वादेरपि व्यक्तिविशेषमादाय पर्यवसानसम्भवः व्यक्तिविशेषं पृच्छतस्तज्ज्ञानमप्यावश्यकमिति प्रश्नो वृथेत्यपि द्रष्टव्यम् । अप्रमाविषये = अद्वैतत्वप्रकारकभ्रान्तिविषयेऽद्वैतत्वप्रकारकप्रमितिकरणं किम् । अद्वैतत्व-प्रकारकभ्रान्तिविषयस्य तादृशप्रमितिविषयत्वं न तव मते कदापीति व्याघातः । इदमुपलक्षणम्– अन्यथाख्यातिवादिनयेऽद्वैतत्वस्य क्वाप्यप्रमितौ तत्प्रकारकभ्रमस्यासम्भवः,**

राजहंसः

तुच्छताया एवेति। भावानामभवनमात्रं ह्यभावपदार्थः, न त्वसौ सन् , अनुभवविरोधात्, भूतले कियन्ति वस्तूनीति प्रश्ने भावानामेव गणनयोत्तरदर्शनात्, अन्यथाऽनन्ताभावानां सर्वत्र सत्तया. तादृशोत्तरस्याप्रामाणिकत्वापातात्, घटाभावोऽस्तीतिप्रतीतेश्च विकल्पमात्रताया अपि सम्भवाच्च, अन्यथा घटाभावस्यापि सद्भावः, तत्सद्भावस्यापि सद्भाव इत्यनवस्थाप्रसञ्जनात् । घटादिसद्भावेऽपि तथा प्रसञ्जने तु द्वैतशून्यताया एव नमस्कार्यत्वात्, अधिकरणा-तिरिक्ततयानुपलभ्यमानत्वेनाभावस्य घटादिभ्यो विशेषाच्च, न चाधिकरणातिरिक्तताऽपि तावदभाव एव; अधिकरणातिरिक्ततया घटाद्युपलम्भेन तस्या घटाद्यात्मकत्वात् । न चाधिकरणा-तिरिक्तताप्र ाकारकोपलम्भाभावस्य विशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याधिकरणं तावदभाव इति नाभावापलाप इति वाच्यम् , विषयतामात्रस्य तुरीये शारदायां निरस्तात्वेन घटादिसंयोगादिवदाधाराधेयभावस्याङ्गुलिद्वयसंयोगवच्च सम्बद्धत्वमात्रस्यापि स्वरसतो ज्ञानवान् घट इति मत्वर्थव्यवहाराभावेनानियामके सम्बन्धतायाः स्वप्नमनोरथमात्रजीवातुकत्वेन च तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य शशविषाणसब्रह्मचारित्वादित्यभिप्रायः । कालीन एवेति । मूले एवकारार्थकापिशब्देन तादृशाक्षेपप्रयोज्यत्वं विश्रमे प्रतीयते, उत्तरकालीनत्वमेव वा प्रयोज्यत्वे पर्यवसाययितव्यमिति भावः ।

वक्तव्यमित्यत्र ममानियमात् । यदि नाम मया सदद्वैतमभ्युपेयते तावता किं तावकीनस्य तज्ज्ञानस्य करणमवश्यं प्रमाणं स्यात् । वस्तुतो वह्निमत्यपि पर्वते यदि कश्चिद्वाष्पं धूमं प्रतीत्य ततो वह्निमनुमिनोत्येतावता किं बाष्पविषयं धूमज्ञानं करणं प्रमाणमेष्टव्यमिति। इत्यद्वैते प्रमाणप्रश्नखण्डनम् ।

शारदा

अन्यमतेऽपि प्रतिवादिवचसो वाऽन्यतो वा यद्यद्वैतत्वप्रकारिका प्रतीतिस्तदा बाधकं विना तस्यापि प्रमाणत्वात्तच्च प्रष्ट्रा प्रतिपन्नमेव, तस्याविश्वसनीयत्वे तु बाधकस्यैव तत्राभिधानमुचितं प्रश्नस्तु वृथैवेत्यपि बोध्यम् ।

अप्रमा = अप्रमात्वेन स्वीकृता । प्रमा = प्रमात्वेन स्वीकृता । तेन वस्तुनि विरुद्धैरुप्यासम्भवेऽपि न क्षतिः। मन्निष्ठायास्त्वया प्रमात्वेन स्वीकृताया अद्वैतप्रतीतेः किं करणमिति प्रश्न इत्यर्थः । अनियमादिति। **भ्रमस्य प्रमाणत्वाव्यवहारानुरोधेन ज्ञाननिष्ठं प्रमाकरणत्वं प्रमात्वे सति प्रमोपधायकव्यापारवत्त्वं, न तु प्रमोपधायकव्यापारवत्त्वमात्रम्, प्रमात्वं च सर्वांशे विवक्षितम् । सत्यन्तस्थाने दोषासमवनितत्वोक्तिस्तु ज्ञानभिन्नप्रमाणस्यापि साधारण्यमावहति । तथाच दैवाद्यत्र प्रमैव भ्रमात्मकतयाऽप्रमाणभूतेन व्याप्तिज्ञानेन जन्यते तत्र व्यभिचारेण प्रमायाः प्रमाणजन्यत्वनियमस्यासम्भवेन मया प्रमात्वेनोपगताया अप्यद्वैतप्रतीतेस्त्वन्निष्ठायाः करणस्याप्रमाणस्यापि सम्भवेन न मम तत्र प्रमाणाभिधाननियन्त्रणेत्यभिप्रायः। सत् = तात्त्विकम् । वैज्ञानिकवह्निमत्त्वव्यावृत्तये वस्तुत इति । ततः = वाष्पे धूमत्वावगाहिव्याप्तिज्ञानात् ।**

राजहंसः

विजयोद्देश्यककथायामिति। ईदृश्यामपि कथायां न प्रश्नखण्डनेनैव प्रत्यवस्थानं नियन्त्रितम्, स्फूर्तिवैचित्र्येण खण्डनान्तराणामपि सावकाशोद्भावनत्वादिति तु विभावनीयम् । इत्यद्वैते प्रमाणप्रश्नखण्डनशारदायां राजहंसः ।

भारती

नहीं है । दूसरी बात यह है कि हम अद्वैत को तात्त्विक मानते हैं तो क्या हमारे तात्त्विक मानने मात्र से तुम्हारे (तार्किक) अद्वैत के ज्ञान का कारण अवश्य प्रमाण ही होगा? (किन्तु यह मानना सम्भव नहीं है) कारण कि भ्रमात्मक करण के द्वारा भी प्रमा ज्ञान की उत्पत्ति देखी जाती है । यदि भ्रमात्मक करण के द्वारा प्रमा की उत्पत्ति न मानी जाय तो जहाँ वस्तुतः वह्निमान् पर्वत में यदि कोई सज्जन पर्वत में उठे हुए वाष्प (कोहरा) को ही धूम मान कर उससे "पर्वतो वह्निमान्" इस प्रकार वह्नि का अनुमान करता है तो वहाँ वह्निमान के प्रमा होने पर भी क्या वाष्प का धूम रूप से ज्ञान जो कि वह्निज्ञान का करण है प्रमाण माना जायेगा। (अर्थात् वह प्रमाण नहीं माना जाता है । अतः प्रमा का करण प्रमाण ही हो यह नियम नहीं है ।) तथा च मेरे द्वारा प्रमात्वेन स्वीकृत भी तुम्हारे में रहने वाली अद्वैत प्रतीति का करण अप्रमाण भी संभव है; अतः मत्कर्तृक प्रमाणाभिधान आवश्यक नहीं है ।

शारदा

वह्निमनुमिनोति = वह्निविधेयताकानुमितिमान् । प्रमाणमिति । वाष्पस्य वह्निव्याप्तत्वधूमत्वविरहितत्वेन तदंशे व्याप्तिज्ञानस्य भ्रमत्वेन दोषसमवहितत्वेन चाप्रमाणत्वादिति भावः। यदि तु—प्रमोपधायकव्यापरवत्त्वमेव प्रमाणत्वम् , अतएवानुमितिकरणस्यापि परस्परोपश्लिष्टतया व्याप्त्यादिघटकतत्तत्पदार्थावगाहिनिश्चयरूपतैव, न तु वस्तुसद्व्याप्तिविशिष्टविषयकत्वमपि तत्रापेक्षणीयम् , तथा च स्वतो भ्रमस्यापि प्रमाणत्वमव्याहतम् एवञ्चादुष्टत्वमपि न प्रामाण्यप्रयोजकमिति कथं मूलसङ्गतिः। दोषजन्यज्ञानत्वमप्रमात्वसमनियतमिति मीमांसकमतेऽपि कथं सा, अदुष्टस्यैव प्रमाणत्वेन तन्मते वाष्पे धूमत्वं वह्निव्याप्यत्वं चावगाहमानस्य ज्ञानस्य प्रमाणत्वाभावेऽपि तज्जन्यानुमितेरपि विशेष्यावृत्तिव्यक्तिप्रकारकत्वमुपगम्य तेनाप्रमात्वोपगमात्, मूले च तत्प्रमात्वस्यैव विवक्षितत्वात्, अन्यथा सन्दर्भविरोधादित्युच्यते तदाप्यसत्ख्यातिमनुपगम्य परमतमात्रसिद्धपदार्थविषयकप्रश्नो नैवोपपद्यते, न वा साऽपि प्रामाणिकी, शून्यवादापादकत्वात् । अतएव ब्रह्मपदार्थनिष्ठात्यन्ताभावस्य यत्किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावस्य वा प्रपञ्चसामान्यप्रतियोगिकत्वे भेदत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वे वा, तादृशात्यन्ताभावीयप्रतियोगितायाः प्रपञ्चसामान्यगतत्वे, दृश्यत्वव्यापकीभूतप्रतियोगितायाः किञ्चिद्वृत्त्यन्ताभावनिरूपितत्वे वा किं प्रमाणमित्यादिरपि प्रश्नोऽनुपपन्न एव। तादृशात्यन्ताभावप्रपञ्चप्रतियोगिकत्वाद्योः संसर्गस्य सत्त्वेनावधारणे तावतैवाभीष्टसिद्धेः प्रमाणस्यानभिधेयत्वात् , असत्त्वेनावधारणे च तत्र प्रमाणप्रश्नानौचित्यात् संसर्गानतिरेकितावादस्य च बहुशो निरस्तत्वात् । अतएव शशशृङ्गादिप्रमाणप्रश्ना अपि न सचेतसाम् । यदि तु – प्रमाया गुणजन्यत्वेन तार्किकमते भ्रमजन्यमितेः कथं प्रमान्तर्भावः, तस्या यथार्थत्वे भगवतो लिङ्गज्ञानस्यैव तत्र गुणत्वकल्पनसम्भवेऽपि स्वतस्त्वमतेन प्रमाखण्डने वक्ष्यमाणरीत्या प्रमायां गुणजन्यत्वस्याप्रामाणिकत्वेन दोषाभावप्रयोज्यताया एव वक्तव्यत्वेन दोषसमवहितजज्ञानस्य कथं प्रमान्तर्भाव इति तत्करणस्य कथं प्रमाणत्वम्; न चैवमुक्तरीत्या मीमांसकमतेन तस्याऽयथार्थताया एव स्वीकार्यत्वेन मूलसन्दर्भविरोध इति वाच्यम् ; अबाधितप्रत्यभिज्ञानबलेन पर्वतवृत्तिवह्नेरेवोक्तानुमितिविषयत्वस्य वाच्यत्वेन यथार्थत्वस्यावश्यकत्वात् तस्येच्छादिसाधारण्यात्, क्लृप्तप्रमास्वन्तर्भावासम्भवापराधेनैव तत्र प्रमात्वस्य दुर्वचतायास्तत्वानुभवत्वखण्डनान्ते वक्ष्यमाणत्वात् , द्रष्टव्यञ्चाधिकं तत्रैव, अनुमिनोमीत्युक्तिस्तु व्याप्तिज्ञानजन्यत्वेनैव । एवञ्चाद्वैतप्रतीतेर्यथार्थत्वेऽपि तत्र प्रमाणं नाभिधानीयमितीक्ष्यते तदा यथाश्रुतं मूलं समीचीनतापरिचितमेवेत्यवधेयम् । प्रश्नखण्डनस्य च परस्य गलितगर्वतैव प्रयोजनमिति प्रश्नमात्रेण वस्तुसिद्धिरिति न भ्रमितव्यम् । न चैवं प्रश्नखण्डने कथासम्प्रदायोच्छेदः विजयोद्देश्यककथायामेव तत्खण्डनात् ।। इति खण्डनशारदायामद्वैते प्रमाणप्रश्नखण्डनम् ।।

अद्वैतस्य प्रामाणिकत्वम्

अस्तु वा प्रश्नोऽयं यथा तथा, श्रुतिरेवाद्वैते प्रमाणमिति ब्रूमः। श्रूयते खलु ''एकमेवाद्वितीयं नेह नानास्ति किञ्चने''त्यादि । श्रुतिप्रामाण्यं

शारदा

अथ तादृशसंसर्गस्य द्वैताभावत्वोपलक्षितब्रह्मणो वा प्रतीतिमात्रमेव प्रश्नौपयिकम्, सदसत्त्वावधारणं तु नापेक्षणीयम् , तादृशप्रतीतेर्भ्रमत्वप्रमात्वान्यतरवत्त्वं तु प्रमाणतदभावान्यतरनिर्णयेनैव निर्णेयमिति ब्रूषे, तर्हि प्रतीतिमात्रस्य व्यवहारहेतुतां ब्रुवाणस्यानिर्वचनीयवादिता, न त्वन्यथाख्यातिवादितेति स्यात्, तन्मतेऽप्रमितस्याव्यवहार्यत्वात्, एवं तादृशप्रतीतेर्भ्रमत्वप्रमात्वे सन्दिहानस्य प्रश्न इति तत्त्वबुभुत्सुतैव प्रष्टुरिति स्यात्, तथा चैतादृशं प्रति वक्तव्यमेवोत्तरमित्याशयेनाह अस्तु वेति । **श्रुतिरेवेति । मानान्तरानपेक्षेत्यादिः, तेनानुमानादेः श्रुतिमूलकस्य मानान्तरस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः । अयम्भावः – एकमेवाद्वितीयमितिवाक्यादद्वितीयविषयकशाब्दबोधस्तावदानुभविकः, परन्तु प्रकारान्तरस्य ब्रह्मणि प्रमितावद्वितीयत्वस्य तत्र श्रुत्या प्रमितस्य व्याघातो माभूदिति श्रुतिप्रामाण्यवादिना वस्तुतो निर्धर्मकस्यैव बोधोऽभ्युपेयः, फलबलाच्च तत्र वृत्तिरपि कल्पनीया, सा च विशिष्टस्य शक्यत्वे विशेष्यस्यापि तथात्वमिति मते शक्तिरेव, मतान्तरे तु लक्षणैवेत्यत्र नादरः, वृत्तिं विनापि वा बोधः कुतो नोपपाद्यताम् , सर्वतो हि बलवत्यन्यथानुपपत्तिरित्यस्य सर्वसम्मतत्वात् । यदाहुः – ''अगृहीत्वैव सम्बन्धमभिधानाभिधेययोः। हित्वा निद्रां प्रबुद्ध्यन्ते सुषुप्ते बोधिताः परैरिति''। न च वृत्तिं विना शाब्दोपगमेऽतिप्रसङ्गात् तत्पदजन्यशाब्दबोधं प्रति तत्पदवृत्तिज्ञानाधीनोपस्थितेर्हेतुताया वक्तव्यत्वात्कथं वृत्तिं विना**

राजहंसः

निर्धर्मकस्यैव बोध इति । अत्राधिकमुपक्रम एव राजहंसे वस्तुतस्त्वित्यादिनोदीरितम् । दर्शनसर्वस्वेऽपि च द्रष्टव्यम् । अतिप्रसङ्गवारकत्वादिति । एतावता ''अगृहीत्वैव सम्बन्ध'' मिति प्राचां सरणिरुपपादिता । यदि तु गुणस्य द्रव्यानुपादानत्वाच्छब्दतन्मात्रादेराकाशाद्युपादानस्य, द्रव्यत्वमावश्यकम्, सुतरां त्वस्मदाद्यनुभूयमानस्य स्थूलशब्दादेः, अव्यापकत्वेन च मूर्तत्वमपि,

भारती

अद्वैत का प्रामाणिकत्व

अथवा अद्वैतविषयक आपके प्रश्न को किसी प्रकार से उपपन्न (युक्तिसंगत) मान लें तो ''श्रुति ही अद्वैत में प्रमाण है'' यही हम (खाण्डनिक) कहते हैं । क्योंकि श्रुतियों (वेदों) में सुना जाता है – ''एकमेवाद्वितीयम् नेह नानास्ति किञ्चन'' इत्यादि । (ब्रह्मतत्त्व एक ही अद्वितीय है अर्थात् ब्रह्मतत्त्व द्वैतसामान्याभावोपलक्षित रूप है ।) इह = द्वैततादात्म्यापन्न ब्रह्म में ब्रह्मभिन्नवस्तुसामान्य का अभाव है ।

सिद्धार्थप्रामाण्यं चेश्वराभिसन्धौ साधयिष्यते। सिद्धार्थानां श्रुतीनामन्यपरत्वमपि यदि स्यात्, तथापि पदसमन्वयबलेन तासु प्रतीयमानमर्थमबाधितमादायैव तासामन्यपरीभवनात्, धियां स्वतः प्रामाण्यस्य बाधकैकापोद्यत्वात् । इत्यद्वैतस्य प्रामाणिकत्वम् ।।

शारदा

बोधः, एवं च सुषुप्त्यव्यवहितोत्तरक्षणेऽपि वृत्तिज्ञानं कल्पनीयम्, तदधीनपदार्थोपस्थितिश्चेति वाच्यम्; तत्तादिघटितत्वेनोक्तकार्यकारणभावस्यानुगतस्याभावात्तमादाय प्रत्यवस्थानस्याशक्यत्वात् अतएव सुषुप्त्यव्यवहितोत्तरक्षणे उक्तोपस्थित्यादेरनुभवासिद्धस्य कल्पनमप्यप्रामाणिकम्, तादृशोपस्थित्यनपेक्षणे च तदा स्वरूपसत्यपि वृत्तिर्निष्फलैव, वृत्तिं तज्ज्ञानादिकं वा विना शाब्दस्य स्थलविशेषे एवोपगमाच्चनातिप्रसङ्गः, त्वदुक्तानन्तकार्यकारणभावानामेव चातिप्रसङ्गवारकत्वात् । न चैतादृशकल्पनामपेक्ष्याद्वितीयश्रुतिरेव किमिति न सङ्कोच्यते इति वाच्यम्; तत्सङ्कोचस्याग्रे निरसनीयत्वात् एवं च ब्रह्म न शक्यं लक्ष्यं वा निर्धर्मकत्वादित्यत्र सिद्धसाधनम्, शक्यत्वादेः स्वीकारपक्षेऽपि तस्य मिथ्यात्वोपगमेन ब्रह्मवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वात्सिद्धसाधनं दुर्वारम् । न च प्रतिपत्तिविषयताया एव विरहः साधनीयः, इष्टापत्तेः, तस्या अपि मिथ्यात्वात्, धर्मिग्राहकमानबाधाच्च, निर्धर्मकस्य कस्यचिदभावे स्वरूपासिद्धेश्च, न ह्यलीकमेव तादृशम् तस्य निस्स्वरूपस्य

राजहंसः

अतएव कठोरध्वनिना बाधिर्यमपि कदाचिज्जायते, एवं च वेगविशेषवशात्कर्णरन्ध्रद्वाराऽप्रतिरुद्धस्वभावतयाऽन्तःप्रविश्य मानसमाहन्ति शब्दः, सति चैवं शब्दविशेषश्रावणप्रत्यक्षमेव तादृशस्थले आद्यं जागरणम्, न तु तदीयवृत्तिज्ञानं तदधीनोपस्थितिर्वा शाब्दबोधो वा, द्वितीयादिक्षणेषुत्वेतेषां सद्भावो भवतु , मा वा, किं तेन, अतएव शङ्खमृदङ्गादिध्वनिनापि भवत्येवोत्थानम्, तदीयश्रावणप्रत्यक्षस्य तदा सम्भवात् ।

भारती

श्रुतियों का प्रामाण्य एवं सिद्धार्थबोधक श्रुतिवाक्यों का प्रामाण्य ईश्वराभिसन्धि नामक ग्रन्थ में सिद्ध करेंगे । सिद्धार्थबोधक श्रुतियों को यदि अन्य अर्थात् कर्म-उपासना परक मान भी लें, तो भी पदसमन्वय (तत्तत्पदसमभिव्याहार की अन्यथानुपपत्ति) के बल से उन श्रुतिवाक्यों में प्रतीयमान उपनिषद् प्रतिपादित अबाधित अर्थ को लेकर ही उन्हें (श्रुतिवाक्यों को) अन्य परक कह सकते हैं । क्योंकि श्रुतिवाक्यजन्य प्रतिपत्तियों का स्वतः प्रामाण्य बाधक द्वारा ही निरस्त किया जा सकता है, और प्रकृत में बाधक के निरसनीय होने से श्रुतिवाक्यों का अबाधितार्थविषयकत्वरूप प्रामाण्य सुस्थिर ही है ।

शारदा

धर्माभावाधिकरणताया धर्माभावस्वरूपताया वाऽसम्भवात् । साक्ष्यभिन्नविषयकत्वेन च तादृशब्रह्मज्ञानस्यापरोक्षत्वम् साक्षात्करोमीति प्रतीतिश्चेति नापरोक्षभ्रमानिवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तर इति । एकमिति । पदत्रय स्वारस्याद्द्वैतसामान्याभावोपलक्षितमित्यर्थः, प्रतिज्ञाऽहानिरितिन्यायेन ब्रह्मातिरिक्तस्य श्रुतितात्पर्यविषयत्वासम्भवादेकादिशब्दस्य प्राधान्याद्यर्थकत्वं न युक्तम् , अत एवाहुः– ''भेदसत्यपरस्तर्को भेदमायापरोऽपरः। भेदसत्यपरस्तर्कोह्यसन् वेदविरोधतः । एकविज्ञाननिगमात्रेहनानेति च श्रुतेरिति''।। द्वैताभावत्वोपलक्षितवस्तुमात्रप्रतीतावपि न द्वैतसत्यत्वबुद्धेः प्रतिबन्धः, न वा ''ननु नाद्वैतश्रुतीना'' मित्यग्रिमग्रन्थोत्थानसम्भव इति तु न व्यपदेश्यम्; द्वैताभावप्रकारकद्वैतवद्ब्रह्म-विशेष्यकस्यावान्तरबोधस्याप्युक्तश्रुत्या जननात्, सदेवेदमित्युपक्रान्तवाक्येन द्वैतवद्ब्रह्मणः समर्पणात् , देशकालरूपावच्छेदकवाचकपदसमभिव्याहाराभावसहकृतत्वेन द्वैताभावांशेऽनवच्छिन्नवृत्तिकत्वस्यापि तादृशबोधेनावगाहनात्तस्य मिथ्यात्वविषयकत्वादित्यन्यत्र विस्तरः। इह = द्वैततादात्म्यापन्ने ब्रह्मणि नाना = ब्रह्मभिन्नं किञ्चन नास्ति। एतद्वाक्याधीनबोधस्यापि निरुक्तरीत्यैव मिथ्यात्वविषयकत्वमिति न सन्दर्भासङ्गतिः । वस्तुतस्तु भेदसामान्याभाववद्ब्रह्मैवोक्तश्रुत्योरर्थो मूलकृत्सम्मत इत्यनुपदं व्यक्ती भविष्यति। श्रुतिप्रामाण्यमिति। आकाङ्क्षादिमता शब्देन यथार्थबोधजननात् शाब्दयामीत्यनुभवेन चानुमानाद्यनन्तर्भावाच्छब्दस्य प्रमाणत्वसिद्धौ श्रुतिरपि तादृशी प्रमाणम्; न हि तस्या ज्ञानानुत्पादकत्वसंशयजनकत्वे, न वा दुष्टत्वम्, अनाप्ताप्रणीतत्वात् तद्धि पौरुषेयत्वाभावे आप्तप्रणीतत्वे वोभयथाऽपि सम्भवति, अतएव न बाधितार्थकत्वमपि, ज्ञानसामान्यसामग्री हि प्रमामेव जनयतीत्युत्सर्गः, दोषसहकारात्तु भ्रममेव, न चात्र दोषसम्भावनेति कथं नाबाधितार्थकत्वम् । अतएव दृष्टफलेषु क्वचित्फलासिद्धौ साधनवैगुण्यमेव कल्प्यते । अदृष्टफलेषु तु बाधस्य ग्रहीतुमशक्यत्वमेवेति भावः। सिद्धार्थप्रामाण्यमिति । कार्यतावाचकलिङ्गाद्यघटितवाक्यप्रामाण्यमित्यर्थः । यद्यपि– कार्यान्विते व्यवहारदर्शनात्तत्रैव

राजंहसः

शक्तिग्रहादेश्चोत्थानेऽनुपयोगात् । एवं च वृत्तिज्ञानं विनैव शाब्दबोधस्य नेदमाद्यं जागरणमुदाहरणम्। तार्किकमतेऽपि जीवस्याचैतन्यदशायामकर्तृत्वेन जागराद्यज्ञानं शब्दायत्तमन्यादृशं वाऽदृष्टद्वारा भगवतैव जीवे आधेयमिति नोपयोगो वृत्तिज्ञानानधीनशाब्दबोधस्येति निगद्यते, ब्रह्मणि वेदान्तशब्दश्रवणमात्रेण च न स्थितिः, अपि त्वर्थज्ञानद्वारैव, अन्यथा मन्त्रविशेषादिव विषादिनिवृत्तिराचार्यप्रयुक्ताद् वाक्यविशेषादज्ञाननिवृत्तिः स्वीकृता स्यादिति वेदान्ततात्पर्यावधारणात्मकश्रवणस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गः, यद्यपि क्वचिदयमिष्ट एव, पुरुषधौरेयविमर्शविशेषेणाज्ञाननिवृत्तिर्हि सुचरितपरिपाके कस्यचित्सम्भवत्येव, वरप्रदानेषु तथा दर्शनात् , तथापि नाज्ञातार्थावगमं विना, न च रीतिरियं सर्वत्रेति च यद्युच्यते, तदा बोधस्येव तन्नियामकः शब्दस्यापि कश्चिदनिर्वचनीयः सम्बन्धो ब्रह्मण्युपगम्यमान उचितश्चकास्ति । यदि तूदाहरणानादरेण विशिष्य ब्रह्मण्येव सम्बन्धं विना शब्देन बोध आधीयत इत्युच्येत, तदा ब्रह्मणि ज्ञानाज्ञानयोरपि न कश्चित्सम्बन्धः स्वीकर्तुमुचित इति गताऽधरोत्तरतां सकलापि

शारदा

तदधीना शक्तिः पदानां युक्ता, अतएव प्राथमिकव्युत्पत्त्यनुरोधेन कार्यपदाश्रुतावपि तदध्याहारः, न च क्वचित्सिद्धार्थेऽन्वयप्रतीतिदर्शनेन पश्चादन्वयमात्रे शक्तिर्वक्तव्या, बाधनीयं च प्राचीनं कार्यान्विते शक्तिज्ञानमिति वाच्यम्; अध्याहारादिनैवोत्तरज्ञानानामुपपत्तेः प्राचीनज्ञानाप्रामाण्या-साधकत्वात्, तथापि–अनन्यलभ्यो हि शब्दार्थ इति न्यायात् कार्यान्वितेऽन्वितस्यापि प्रविष्टत्वेन लाघवाच्च कार्यांशे गृहीतामपि शक्तिं परित्यज्यान्वितांशे एव शक्तिग्रहोऽनुरोद्धव्यः। न चोत्तरज्ञानेन पूर्वज्ञानबाधो न युक्त इति वाच्यम्; लाघवाख्यतर्केणानन्यलभ्यत्वन्यायेन च सहकृतस्योत्तरज्ञानस्य बलवत्त्वात्, अन्यथा 'नेदं रजतमि'त्यपेक्ष्य 'इदं रजतमि'त्यस्यैव प्राबल्यं स्यात् । एवञ्चान्वयांशेऽपि शक्तिस्वीकारोऽप्रामाणिकः गौरवात्, आकाङ्क्षा-बललभ्यत्वाच्च । अतएव–अन्वयः शक्यो लक्षणाग्रहाजन्यशक्तिभ्रमाजन्यशाब्द-धीविषयत्वादिति निरस्तम्, आकाङ्क्षयैवान्वयप्रतीत्युपपत्तावप्रयोजकत्वात्, एतेनैवानुशयेनाहुः

राजहंसः

वेदान्तप्रक्रिया । अथ प्रतिपत्तिद्वारक एव शब्दस्य ब्रह्मणि सम्बन्धः, तदासौ ब्रह्मविषयकप्रतिपत्तिजनकत्वमुपधायकत्वरूपं योग्यतारूपं वा स्यात्, नाद्यः, प्रतिपत्तेः पुरा तदसम्भवात्, तस्या एवोपपादनस्य विचारास्पदत्वात्, न द्वितीयः, ब्रह्मविषयकप्रतिपत्तियोग्यता ब्रह्मादिशब्दे एव न तु घटादिशब्दे इत्यत्र नियामकस्य गवेषणीयत्वात् । स्वभाव एवासावितिचेदसावैव शक्त्यादिशब्दैः परैरुच्यत इत्यलमतिवेलं प्रच्छादनेन । वस्तुतस्तु घटविषयकप्रतिपत्तियोग्यता कुतो घटादिशब्दे इत्यत्र घटादौ घटादिशब्दशक्तिवशादित्युक्तौ शक्तावपि तथाजिज्ञासायामन्ततः स्वभावविशेषस्यैव शरणीकरणीयतया किं प्रथममपि घटादौ घटादिशब्दसम्बन्धस्वीकारेणेति सर्वत्रैव शब्दार्थयोः सम्बन्धविलोपे निरङ्कुशं निर्धर्मकं ब्रह्मावगम्यतां श्रुत्या, फलबलेनैव तादृशस्वभावस्य वक्तव्यत्वादतिप्रसङ्गानवकाशात्, न चाग्न्यादौ ज्वलनस्वभावस्येवास्यापि स्वरूपसत एव कार्यकारित्वे कृतं कोषव्याकरणादिनेति शङ्कनीयम्, स्वभावोऽपि कश्चिदज्ञातः कश्चिच्च ज्ञातः कार्यं कुरुत इति स्वीकारसम्भवात् । यदि च स्वभावविशेषोऽपि स्वीकार्य एव हठादापतन्, तत्सिद्धः शक्तिविशेषोऽपि नावहेलनीयः, स एव च व्याकरणादिनाऽगम्यत इतीदृश्येव वासना सती, तदाऽपि प्रागुक्तमेवेति ।

स्वरूपासिद्धेश्चेति । हेतुस्वरूपस्य पक्षेऽन्यत्र चाप्रमितेरित्यर्थः । ब्रह्म यदि निर्धर्मकं स्याच्छक्यं लक्ष्यं वा न स्यादिति तर्के तु पक्षे निर्धर्मकत्वासिद्धिर्न दोषः, तस्यापादकारोपमात्रेण प्रवृत्तेः, आपादकस्य क्वचिदपि प्रसिद्ध्यभावस्तु तत्रापि दोष एव, व्याप्त्यनवगमात्, विपर्ययानुमितौ च धर्मिग्राहकमानबाधोऽपि, श्रुत्या निर्धर्मकत्वेनैव ब्रह्मप्रमितेः । **अलीकमेव तादृशमिति** । तथा च न व्याप्तिग्रह इति तर्केऽनुमाने च साधारणम्, ब्रह्मापि च भवत्वलीकं निर्धर्मकं यदि, तेनानुमानपक्षे पक्षधर्मताविरहोऽपि न दोषः । 'नेश्वरो जन्मिनां हेतुरुत्पत्तिविकलत्वतः । गगनाम्भोजवत्सर्वमन्यथा युगपद्भवेत्' (तत्त्वसंग्रहे) इति सौगतानुमानवदसत्ख्यात्या प्रकृते ब्रह्मणोऽलीकस्यापि पक्षता स्यादिति भावः। **असम्भवादिति**। असत्ख्यातेरप्रमात्वेन पक्षविशेष्य-कसाध्यप्रकारिका प्रमा न सम्भवति । सदसदुपरागासम्भवेन चासत्ख्यातिरश्लाघनीयैवेति भावः।

शारदा

''एकपदार्थे चापरपदार्थस्य संसर्गः संसर्गमर्यादया भासते'' इति । तद्विषयकशाब्दबोधे वृत्तिज्ञानाधीनतद्विषयकोपस्थितेर्हेतुतेति पक्षकक्षीकरणेऽपि लक्षणयैव निर्वाह-सम्भवाच्छक्तिकल्पनानौचित्यादुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वात् । एवञ्च 'तात्पर्याधीना वृत्तिर्न तु वृत्त्यधीनं तात्पर्यमिति' तार्किकमर्यादया सिद्धार्थे तात्पर्यावगमे तत्र प्रामाण्य-त्यागस्याप्रामाणिकत्वमिति सिद्धेऽपि ब्रह्मणि श्रुतिप्रामाण्यसम्भव इत्यन्यत्र विस्तरः। सिद्धार्थकश्रुतीनां दूरस्थत्वेन कर्मोपासनाशेषत्वासम्भवेऽप्यभ्युपेत्यवादमवलम्ब्याह सिद्धार्थानामिति । **अन्यपरत्वं = कर्मोपासनापरत्वम् । ''सर्वत्रैव हि विज्ञानं संस्कारत्वेन**

राजहंसः

समभिव्याहाराभावसहकृतत्वेनेति । सहकारितायां योग्यतातात्पर्यज्ञाने अप्युपलक्षणीये । लक्षणयैव निर्वाहसम्भवादिति । एतेन भाट्टाभिमताभिहितान्वयवादाऽऽसूत्रणम्, तन्मतेऽभिधानं पदजन्यानुभवः पदार्थमात्रविषयको न तु तार्किकाणामिव पदार्थस्मृतिः, हस्तिहस्तिपकादाविव स्मृतिप्रयोजकस्य मूलसम्बन्धस्यानङ्गीकारात्, स्मृतिसमं ज्ञानान्तरं वाऽभिधानम्, न हि तस्य स्मृतित्वम्, उक्तहेतोः, तत्तोल्लेखविरहाच्च, नाप्यनुभवत्वम्, अज्ञातविषयकत्वाभावात्, एवं च प्रमाणबलात्स्मृत्यनुभवातिरिक्तं ज्ञानमुपेतव्यम् । अन्वयविनिर्मुक्तपदार्थानामुक्ताभिधानविषयाणां लक्षणयाऽन्वितत‌या तु शाब्दी मतिः । प्राभाकरमते तु स्वरूपसत्येवोपज्यमाना कुब्जशक्तिरुच्यतेऽन्वयांशे, अभिधानं चान्वयानुभवजननसामर्थ्यं शक्तिरेव, पदार्थोपस्थितिस्तु स्मृतिरूपा, उक्तसामर्थस्यैव मूलसम्बन्धतया स्मृतौ बाधकाभावात्, विलक्षणज्ञानकल्पनापेक्षया तत्ताप्रमोषकल्पनाया एवौचित्यात्। कार्यान्विते शक्तिरिति तु प्राचीनप्राभाकरमतमिति । वेदान्तिषु तु तत्त्वप्रदीपिकाकृदादीनामभिहितान्वयवादो भद्रकरोऽभात् । अद्वैतासिद्धिकृदादयस्तु वेदान्तप्रक्रियाया अभिहितान्वयवादे इव नव्यप्राभाकरीयान्विताभिधानवादेऽपि निर्वाहसम्भवेन न क्वचिदपि पक्षे आग्रहिलतामाललम्बिरे, निर्विकल्पबोधस्थलेषु लक्षणयाऽन्वयविनिर्मुक्तप्रथोपपत्तेः । सत्यादिपदस्थले विशिष्टघटकतया विशेष्यस्य शक्यस्यैव शाब्दबोधोद्भवेन च लाक्षणिकं नानुभावकमित्यस्याप्रतिकूलत्वात्, शक्याघटके लाक्षणिकस्यैवाननुभावकत्वात्, तात्पर्यगोचरांशत्यागे लक्षणाव्यवहारस्य त्याज्यत्वाद्वा । तार्किकाणां तु नाद्यपक्षे प्रवेशः, शक्तिरूपमूलसम्बन्धेन प्रथमं पदार्थस्मृतेरेवोपगमात्, नापि द्वितीये, अन्वयांशेऽन्यलभ्ये शक्तौ मानाभावादिति तृतीयैव सरणिः । अभिधानपदेन स्मृतिमात्रविवक्षयाऽऽकाङ्क्षया चान्वयलाभमलोच्य तु तार्किकाणामभिहितान्वयवादिता स्वातन्त्र्येण परमुच्येत, न तु भाट्टमतप्रसिद्धिमाश्रित्य । वस्तुतस्तु पदजन्योऽनुभवो वा स्मृतिसमो बोधो वा न पदेषु सामर्थ्यविशेषमस्वीकृत्य शक्योपपादः स च निरस्तः शब्दखण्डनशारदायाम्, अत एवान्विताभिधानवादोऽपि न युज्यते, तार्किकसम्मतशक्तिरपि तत्र निराकृतैवेति प्रक्रियामात्रमापातत एवेदं रुचिवैचित्र्येण, केनचित्परमाद्रियेत ।

दूरस्थत्वेनेति । तादृशश्रुतिप्रतिपाद्यस्याव्यभिचरितक्रतुसम्बन्धाभावमप्युपलक्षयत्येतत्, अन्यथा यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न स पापश्लोकं शृणोतीति विहितपलाशात्मकपर्णमयतावत् क्रत्वङ्गत्वं दूरस्थस्यापि सम्भाव्येत, अतएव 'न स पुनरावर्तते' इत्यपुनरावृत्त्यात्मकपरमात्म-प्राप्त्यवस्थाफलवचनमधिकृत्य व्याकरणाधिकरणे 'अप्रकरणगतत्वेनानैकान्तिकक्रतुसम्बन्धासम्भवाच्च नाञ्जनखादिरस्रुववाक्यादि फलश्रुतिवदर्थवादत्व'मिति भट्टैरप्युररीकृतम् ।

शारदा

गम्यते । पराङ्गं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधारणात् ।। आत्मज्ञानं हि संयोगपृथक्त्वन्यायेन क्रत्वर्थपुरुषार्थत्वेन ज्ञायते तेन विना कर्मसु प्रवृत्तिनिवृत्त्यसम्भवात्'' इति व्याकरणाधिकरणे भट्टपादोक्तदिशाऽन्यपरत्वेऽप्युपनिषदामद्वैतात्मपरत्वसम्भवः । अतएव मीमांसाकौस्तुभेऽप्यर्थवादाधिकरणे ''विनाशिदेहादिव्यतिरिक्तनित्यकर्तृभोक्तृ । रूपात्मप्रतिपादिकानामुपनिषदां परलोककर्मविध्यपेक्षितोक्तरूपात्मपरत्वमेव । उक्तविधात्मज्ञानस्य चानारभ्याधीतस्यापि सामर्थ्यात्, ''यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति'' वाक्याद्वा क्रत्वङ्गत्वाविरोधः । असंसारिसगुणनिर्गुणात्मप्रतिपादिकानां तूभयविधोपासनाविध्यपेक्षितत्वेन स्वार्थपराणामेवाभ्युदयनिश्श्रेयसहेतुत्वमि'' त्युक्तम् । एवाञ्चार्थवादाधिकरणे भट्टपादानामुपनिषदामर्थवादत्वोक्तिर्न तासां स्वार्थपरत्वाभावाभिप्रायेण, अपि तु स्वार्थपरत्वेऽपि विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थवादरूपवेदविभागेषु विध्यादावन्तर्भावासम्भवेनार्थवादान्तर्भावाभिप्रायेणैवेति व्यक्तमन्यत्र । अर्थवादत्वेऽपि प्राप्तिबाधयोरभावेनानुवादत्वगुणवादत्वयोरसम्भवेन भूतार्थवादत्वस्यैव वक्तव्यत्वात् देवताधिकरणन्यायेन ''वज्रहस्तः पुरन्दर'' इत्यादिभूतार्थवादबलाद्देवताविग्रहस्येव ''एकमेवे'' त्यादि भूतार्थवादबलादद्वितीयब्रह्मणोऽपि सिद्धिरिति भावः । पदसमन्वयबलेन = तत्तत्पदसमभिव्याहारान्यथानुपपत्त्या । तासु प्रतीयमानं = उपनिषदधीनप्रतीतिविषयम् । आदयैव = अभ्युपेत्यैव । अन्यपरीभवनात् = अन्यपरत्वस्य वक्तव्यत्वात् । तेन न ल्यपोऽसङ्गतिः । अन्यपरीति च्व्यन्तम्, ह्रस्वपाठस्तु सन्दर्भविरुद्धः । अथवा बलेनेत्यस्यादायेत्यनेनान्वयः, प्रतीयमानमित्यस्य तत्तत्पदबोध्यत्वेनेत्यादि, घटकत्वं सप्तम्यर्थः, आदाय = बोधयित्वा, तथा च स्वघटकतत्तत्पदबोध्यत्वेन प्रतीयमानाबाधितार्थविषयकप्रतीतिमुक्तसमभिव्यारान्यथानुपपत्त्योत्पाद्यैवोपनिषदामन्यपरताप्राप्तेरित्यर्थः । ईदृशस्थले विरम्यव्यापारादेर्दोषतानङ्गीकारात्, मुख्यतात्पर्यस्य पर्यवसितप्रतीतेश्चैक्यात्, कथमन्यथा देवताधिकरणन्यायोऽर्थापत्तिमणावेकस्यैव मानस्य मितिद्वयजनकत्वोक्तिश्च सङ्गच्छेतेति भावः । उपनिषदधीनप्रतिपत्तेरबाधितविषयकत्वं कुतस्तत्राह धियामिति । **स्वतःप्रामाण्यस्य = ज्ञानसामान्यसामग्र्यधीनत्वेनौत्सर्गिकप्रामाण्यस्य।** बाधकैकापोद्यत्वादिति। **अत्र तु बाधकस्य निरसनीयत्वेनाबाधितार्थविषयकत्वरूपं प्रामाण्यं सुस्थमिति भावः । इति खण्डनशारदायामद्वैतस्य प्रामाणिकत्वम् ।।**

राजहंसः

स्वार्थपराणामेवेति । अत्र व्याकरणाधिकरणे 'न च विधिप्रतिषेधविषयेणैव शास्त्रेण भवितव्यं न प्रमेयस्वरूपज्ञापनार्थेनेत्येतदीश्वराज्ञासिद्धम्, न हि 'अविनाशी वा अरे अयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा' इत्यादिशास्त्रगतानामर्थतत्त्वप्रतिपादनपरत्वं न लभ्यते । अथापि विधिप्रतिषेधात्मकेनैव शास्त्रेण भवितव्यमिति काचित्परिभाषा, तथाप्येवंविधाः साधुशब्दाः प्रत्येतव्या इतीदृशो विधिः सम्भवत्येवे'ति भट्टपादोक्तमप्यनुसन्धेयम् । अत्र परिभाषापदोपादानेन क्रियामात्रपरत्वपक्षस्योपहासास्पदत्वं व्यज्यते। वक्तव्यत्वादित्यर्थलाभे क्लेशमसहमान आह अथवेति । च्व्यन्तता तु नात्रापि त्यक्तव्या । इति खण्डनेऽद्वैतप्रामाणिकत्वशारदायां राजहंसः ।

अथ प्रत्यक्षादिबाधोद्धारः

ननु नाद्वैतश्रुतीनामृजावर्थे प्रामाण्यं सम्भवति, प्रत्यक्षादिबाधात्; ततश्चान्यत्रैव क्वचित्तात्पर्यं कल्प्यम् । मैवम् । यदद्वैतश्रुतेर्बाधकं प्रत्यक्षादि

शारदा

ऋजौ = यथाश्रुतेऽद्वैते । प्रत्यक्षादिबाधात् = प्रत्यक्षादिबोध्याभावप्रतियोगिविषयक-धीजनकत्वात्, प्रत्यक्षादिज्ञाप्याप्रामाण्यकधीजनकत्वाद्वा बोधोत्पत्तिप्रतिबन्धस्तु बाधकज्ञानेन न क्वापीष्टः । ततश्च = बाधितार्थत्वेन गुणवादत्वाद्देवताधिकरणन्यायावतारासम्भवे च । अन्यत्रैव = उपासनादावेव । एतेन स्वार्थपरत्वव्यवच्छेदः । न च प्रमाणत्वाविशेषा-त्प्रत्यक्षादिभिरेव कुतः श्रुतेर्बाधश्चोदितः, तेषां तयैव स कुतो न स्यादिति वाच्यम्; प्रत्यक्षस्य सर्वप्रमाणोपजीव्यत्वेन प्राबल्यम् अतएव तदनुरोधेनैव ''आदित्यो यूप'' इत्यादेरन्यथानयनम्, एवञ्च प्रत्यक्षसंवाद्यनुमानादेरपि श्रुत्यपेक्षया प्राबल्यादादिपदमपि सङ्गतमिति । नियते = यत्किञ्चित्प्रतियोग्यनुयोगिके । अत्रेदं द्रष्टव्यम् – वेदान्तिनां मतद्वयमत्र, केचिद्धि नेह नानेतिश्रुतिरेकमेवेति श्रुतिश्चोक्तरीत्या प्रपञ्चमिथ्यात्वमाहतुरित्याहुः । परे तु-नेह नानेति भेदसामान्याभावं बोधयति, नानापदस्य भेदार्थकत्वात्, अद्वितीयमिति श्रुतिरपि भावप्रधानतया द्वितीयत्वस्य भेदव्यापकस्याभावबोधनद्वारा भेदसामान्याभाववद्-ब्रह्मेत्यर्थे पर्यवस्यति, अभावस्याधिकरणस्वरूपत्वात्तु भेदाभावत्वमपि ब्रह्मणि, अतएव घटपटादीनामभेदोऽपि ब्रह्मैव, भेदाभावत्वविशिष्टं तदपि मिथ्या, तदुपलक्षितं तु तत् सत्यमिति 'पारमार्थिकमभेदमिच्छन्तोऽपी'ति पङ्क्तिव्याख्यानावसरे व्युत्पादनीयमित्याहुः। तत्राद्यमते प्रपञ्चसामान्यस्य मिथ्यात्वबोधनेऽधिष्ठानमेकमेव तदीयसत्त्वमित्यर्थाल्लभ्यते तच्च घटपटादेर्भेदसत्त्वेऽनुपपन्नम् , भिन्नानामेकसदात्मकत्वस्यानुपपत्तेरित्याशयेन नन्वित्यादिनाऽद्वैतश्रुतेर्बाधशङ्का तत्परिहारश्च । द्वितीयमते तु भेदसामान्यभावस्य ब्रह्मणि लोके वा श्रुत्या बोधनं घटपटादेर्भेदसत्त्वे नोपपद्यते इति स्फुट एव शङ्कासमाधानयोरवकाशः,

राजहंस:

—स्वयं मण्डनवाचस्पतिश्रीहर्षेति त्रयमनुसरन्नाह **परे त्विति** ।

—**व्युत्पादनीयमिति** । इदं शारदां मनसि निधाय न तु टीकान्तरम् । मानसज्ञानविषय

भारती

अथ प्रत्यक्षादिबाधोद्धार

प्रश्न—'एकमेवाद्वितीयं नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि अद्वैत प्रतिपादकतया अभिमत श्रुतियों का ऋजु-सरल अर्थात् यथाश्रुत अद्वैत रूप अर्थ में प्रामाण्य नहीं हो सकता क्योंकि अद्वैत रूप अर्थ में उक्त श्रुतियाँ द्वैतप्रत्यक्षादि से बाधित हैं । अत: उक्त श्रुतियों का तात्पर्य अन्यत्र उपासनादि में ही मानना चाहिए ।

समाधान—जिन प्रत्यक्षादि को आप अद्वैत श्रुतियों का बाधक मानते हैं, वे (प्रत्यक्षादि)

मन्यसे तदात्मीये विषये घटपटादेर्भेदे नियते एवोत्पद्यते, न तु प्रत्यक्षादिकं भूतभाविवर्तमानसकलव्यक्तिभेदग्राहि जायमानमावयोः सम्प्रतिपन्नमस्ति, तादृशेन ज्ञानेन चोत्पद्यमानेन सर्वज्ञतां तदा तव श्रद्दध्यां यदि जानासि मम चेतसि किं वर्तते इति । यदि च प्रत्यक्षादि किञ्चिन्मात्रविषयं तदा तद्विषयादन्यत्रापि प्रवर्तमानाऽद्वैतश्रुतिस्तेन न बाधितुं शक्यते, स्वविषयमात्रे प्रमया विपरीतविषयज्ञानबाधनात् ;

शारदा

एवञ्च स्वरसतो द्वितीयमतमेव मूलकृदभिमतम्, अन्यथा श्रुत्या मिथ्यात्वबोधने घटः सन्नित्यादिसत्यत्वग्राहिप्रत्यक्षादिबाधशङ्कासमाधानयोरेवौचित्येन भेदग्राहिप्रत्यक्षादिबाध-शङ्कादेरयुक्तत्वापत्तेः । तथा च घटपटयोर्भेदसत्त्वे तयोर्ब्रह्माभेदो न स्यात्, ब्रह्मण एव तु द्वैरूप्य स्यादिति तयोर्भेदो बाधनीयः । सर्वं ब्रह्माभिन्नमित्यस्य च सर्वं ब्रह्मातिरिक्तसत्ता-शून्यमिति नार्थः, तादृशसत्तासिद्ध्यसिद्धिव्याघातात्, अपि तु तत्तद्विशेषधर्मावच्छेदेनाविद्या-दशायां प्रसिद्धस्य ब्रह्मभेदस्याभाववत्तत्तद्विशेषधर्मावच्छिन्नमित्यर्थः, एवञ्च ब्रह्मातिरिक्तस्य पारमार्थिकत्वे सर्वस्मिन् ब्रह्माभिन्नत्वं बाधितं स्यादिति तस्यापारमार्थिकत्वमर्थादायाति, एतेन सर्वस्य ब्रह्माभिन्नत्वे सत्यत्वापत्तिः, ब्रह्मणो वा मिथ्यात्वापत्तिर्नाशङ्कनीया । तादृशेनेति। **अभेदस्तृतीयार्थ; सर्वज्ञघटकज्ञानान्वयी । चेतसि वर्तते = मानसज्ञानविषयः । प्रमेयत्वादिसामान्यलक्षणाधीनग्रहस्य तु तादृशभेदप्रत्यक्षानुपयोगः, विशिष्यैव प्रतियोग्यनुयोगिग्रहस्य तदर्थमपेक्षणीयत्वादिति भावः । अन्यत्रापि प्रवर्तमाना = अन्यस्याप्यभेदं विषयीकुर्वती । श्रौतधियो वस्तुतो सर्वाभेदविषयकत्वमेवेति सूचयितुमपि शब्दः । श्रुत्या घटपटयोर्ब्रह्माभेदबोधनेनैव घटपटयोरभेदबोधनं, भिन्नयोरेकात्मतानुपपत्तेरिति भावः ।** स्वविषयेति । **समानविशेष्यताप्रत्यासत्त्यैव तत्प्रकारकतदभावप्रकारकधियोः**

राजहंसः

इति । बहिरिन्द्रियाजन्यज्ञानमात्रमिह ग्राह्यम्, न तु मानसप्रत्यक्षमात्रम् । चाक्षुषादिज्ञानस्य परकीयस्यापि नयनोन्मीलनादिदर्शनेनोन्नयनसम्भवाद्बहिरिन्द्रियाजयेति ।

भारती

अपने घट पटादि के भेद रूप नियत यत्किञ्चित्प्रतियोगिक अनु विषय में ही उत्पन्न होते हैं। क्योंकि अद्यावधि हम दोनों (आप और हम) के मध्य ऐसे प्रत्यक्षादि सिद्ध नहीं हैं जो भूत, भावी एवं वर्तमान समस्त व्यक्तियों के भेद का ग्रहण कर सकें। (यदि कहें कि सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) से जन्य प्रत्यक्षादि सकल भेद ग्राही हो सकता है तो यह कथन उचित नहीं है क्योंकि सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) से जन्य ज्ञान के सर्वविषयक होने से आप सर्वज्ञ हो जायेंगे, और आप की सर्वज्ञता तभी श्रद्धेय हो सकती है, यदि आप बतला दें कि मेरे चित्त में (मानसज्ञान का विषय) क्या है ? और यदि प्रत्यक्षादि किञ्चिन्मात्र विषयक होते हैं तो उन (प्रत्यक्षादि) विषय से अन्यत्र भी प्रवृत्त अद्वैतश्रुति उस (प्रत्यक्षादि)

अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । मा हि भूदग्नीषोमीयपश्वालम्भनविधिना सर्वभूताहिंसाश्रुतेर्वैयर्थ्यम् ।

यदा चैवं, तदा बाधिकायाः प्रत्यक्षधियो बाध्यायाश्चाद्वैतबोधने श्रुतिनिराबाधा सती तयोरैक्यं बोधयतीति तत्प्रत्यक्षादि कथं स्वात्मानमेव

शारदा

प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावादिति भावः । अगृहीताप्रामाण्यकबुद्धेः, स्वतःप्रामाण्यमते गृहीतप्रामाण्यकबुद्धेर्वा प्रतिबन्धकतालाभाय ज्ञानेनेत्यनुक्त्वा प्रमयेत्युक्तम्, विरोधिग्रहभ्रमत्व-प्रमापकत्वं प्रमायामेवेत्याशयेन वा । समानविशेष्यताप्रत्यासत्त्य बाध्यबाधक-भावानुपगमेऽग्नीषोमीयपशुहिंसनविशेष्यकेष्टसाधनत्वप्रकारकज्ञानस्य ''अग्नीषोमीयं पशुमालभेते''ति श्रुतिजन्यस्य सर्वभूतहिंसनविशेष्यकबलवदनिष्टाजनकत्वविशिष्टेसाधनत्वा-भावप्रकारकज्ञानं ''न हिंस्यात् सर्वा भूतानीति'' श्रुतिजन्यं प्रत्यग्नीषोमीयपश्वतिरिक्तांशेऽपि बाधकत्वप्रसङ्ग इत्याह मा हि भूदिति । सामान्यशास्त्रस्य विशेषशास्त्रेण स्वविषये बाधस्य सङ्कोचात्मकतया प्रसिद्धस्येष्टत्वाद्बाध इत्यनभिधाय वैयर्थमित्यभिहितम् ।

बाधिकायाः = बाधकत्वेनाभिमतायाः । बाध्यायाः = बाध्यत्वेनाभिमताया ऐक्यधियः। अद्वैतबोधने निराबाधा = अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दिताभेदबोधप्रतिबन्ध-कासमवहिता, भेदाभेदधियोर्भेदग्राहिबुद्ध्यन्तराभावस्थले इदं द्रष्टव्यम् । तयोः = भेदाभेदियोः। ऐक्यं बोधयति = ऐक्यविषयकाप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितबोधं जनयति ऐक्यविषयकत्वावच्छेदेनाप्रामाण्यग्रहानास्कन्दिता भवतीति यावत् ।

भारती

से बाधित नहीं हो सकती । क्योंकि प्रमा स्वविषय में ही स्वविषय से विपरीत विषयक ज्ञान की बाधक होती है । (समानाविशेष्यता सम्बन्ध से तत्प्रकारक ज्ञान एवं तदभाव प्रकारक ज्ञान का प्रतिबध्यप्रतिबन्धक भाव होता है ।) यदि अन्यत्र अर्थात् स्वविषयातिरिक्त विषयक ज्ञान का भी बोध करें तो अतिप्रसङ्ग अर्थात् सामान्यशास्त्र का विशेषशास्त्र के द्वारा ही सर्वथा बाध होना चाहिए । तथाच अग्निषोमीयपशुमालभेत इस विशेष श्रुति रूप बाधक के रहने से 'न हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस सामान्य श्रुति का वैयर्थ्य होना चाहिए । (किन्तु वैयर्थ्य नही होता अपितु अग्निषोमीयपशुमालभेत इस श्रुति के 'न हिंस्यात् सर्वाभूतानि' इस श्रुति का अपने विषय अग्निषोमीय भाग में याग में संकोच ही होता है । अर्थात् अग्निषोमीययागातिरिक्त स्वरूप संकोच का बोधन करती है । तादृश यागातिरिक्तांश बोधकत्व है ।

जब ऐसी स्थिति है अर्थात् प्रत्यक्षादि यत्किञ्चित् विषयक ही होता है तो बाधक (बाधकतया अभिमत) प्रत्यक्षज्ञान एवं बाध्य (बाध्यतया अभिमत) अद्वैत ज्ञान दोनों के अद्वैत बोधन में बाधरहित अद्वैतश्रुति उन दोनों (भेदबुद्धि अभेदबुद्धि) के ऐक्य (अभेद) का बोध करा देगा । इस प्रकार अद्वैत बोध के साथ अभिन्न हुआ वह द्वैत प्रत्यक्ष अपने आप का बाध कैसे कर सकता है ।

बाधेत । घटेन पटेन तद्भेदेन च स्वविषयेण सह तस्या एव धियःश्रुत्या सर्वस्याद्वैतं गोचरयन्त्या कथं नाभेदे प्रामाण्यमासादयितव्यम्, तत्राबाध्यमानत्वात्; न हि तस्या धियः स्वात्मा वा स्वात्मना सह

शारदा

नन्वभेदबुद्धेर्भेदबुद्ध्यात्मकत्वं वा भेदबुद्धेरभेदबुद्ध्या अभिन्नविषयकत्वं वैक्यं विवक्षितम्, नान्त्यः, तस्याद्याप्यसिद्धेः। न द्वितीयः, अभेदबुद्धेः, परिशेषे विनिगमकाभावात् तस्या भेदविषयकत्वमेव किन्न स्यात्, नाद्यः, भेदबुद्धेः परिशेषेऽभीष्टासिद्धेरित्याशङ्क्याह तत्प्रत्यक्षादीति । **अभेदबुद्ध्यभिन्नतया ज्ञातं भेदप्रत्यक्षादि कथं स्वात्मानमेव बाधेत = कथं स्वात्मकाभेदबुद्धिबाधकतया ज्ञातुं शक्येत; स्वस्य स्वाप्रामाण्यग्रहासञ्जन-रूपस्वबाधकताग्रहानुदयेन बाध्यबाधकभावज्ञानस्य तद्भेदग्रहाधीनत्वकल्पनात्; तथाच भेदाभेदबुद्ध्योरैक्यविषयकत्वावच्छेदेनाप्रामाण्यग्रहानुत्पत्तौ तवाभिमता भेदबुद्धेर्बाधकता न सम्भवतीत्येव ममाशय इति घटपटाभेदाविषयकत्वावच्छेदेनापि श्रुतिजाद्वैतबुद्धौ नाप्रामाण्यग्रहसम्भव इति, ऐक्यं च ब्रह्मरूपमेवेति वक्ष्यते इति तस्यैव परिशेषो न तु कस्याश्चिद्धिय इति । अद्वैतश्रुतेः सञ्चारस्थलान्तरमाह** घटेनेति । **तस्याः = घटपटभेदधियः। अभेदे इत्यनेनान्वयः । श्रुत्या = श्रौतबुद्ध्या । भेदबुद्धितद्विषययोरभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकग्रहविशेष्यता कथं नाश्रयितव्येत्यर्थः। तादृशाभेदांशेऽप्रामाण्यग्रहविघटने तादृशविशेष्यताश्रयत्वस्य श्रुतिजन्यबुद्धौ सम्भव इति भावः । तत्राबाध्यमानत्वात् = तादृशाभेदविषयकत्वावच्छेदेनाप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वात् । अयम्भावः - भेदबुद्धेः स्वविषयेणाभेदज्ञाने भेदज्ञानासम्भवेन तस्या भेदविषयकत्वं तद्घटितप्रमात्वं वा न ज्ञातुं शक्यम्, एकत्र विषयविषयिभावोपगमपक्षेऽपि ज्ञानत्वेनैव भेदविषयकत्वं ज्ञातुं शक्यते, न तु भेदत्वेन भेदविषयकत्वम्, अभेदबुद्धेः प्रतिबन्धकत्वात्, तथाच न भेदधियाऽभेदबुद्धावप्रामाण्यग्रहास्कन्दनसम्भव इति । न चैवमभेदबुद्धेरपि प्रमात्वं न सुग्रहम्, स्वविषयस्य स्वस्मिन्नभेदस्यापि तद्विषयत्वादिति वाच्यम्; सर्वाभेद-सिद्धेरेवाभिलषितत्वेन प्रमात्वाग्रहस्याकिञ्चित्करत्वात्, ममाविद्यकभेदेनापि**

भारती

इसी प्रकार सबके अद्वैत (अभेद) को विषय करती हुई श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि ''घटपटा भिन्नौ'' इत्याकारक घट पट भेद विषयक प्रत्यक्षबुद्धि का अपने घट-पट एवं उनके भेदरूप विषय के साथ अभेद बोध कराने में प्रामाण्य क्यों नहीं प्राप्त कर सकती ? क्योंकि उस घट-पट भेद बुद्धि का अपने विषय के साथ अभेद बोध कराने में अद्वैत श्रुति का बाधक नहीं है, अत: वह अबाधित है। घटो न पट इत्याकारक बुद्धिकाल में घटो न पट इत्याकारक बुद्धि का न वह स्वयं बुद्धि ही विषय है, और न उस बुद्धि का घट-पट एवं उन दोनों का भेदरूप स्वविषय के साथ स्व (घटो न पट इत्याकारक बुद्धि) का जो भेद है वही विषय है। क्योंकि

घटपटादेर्भेदोऽपि वा विषयः; 'घटपटौ भिन्नावि'त्येवमाकारा हि सा जायते न तु 'अहं घटात्पटाच्च भिन्ना मत्तो वा तौ भिन्ना'विति। स्वप्रकाशताऽपि स्वमात्रे साक्षिणी, न तु यतो यतः प्रकाशो भिद्यते ततस्ततस्तस्य भेदेऽपि । अन्यथा तत्तदपि स्वप्रकाशकुक्षौ निक्षिपन्ती

शारदा

निर्वाहाच्चेति भावः । घटो न पट इतिधीसमये तस्याः स्वविषयभेदग्राहकाभावं स्फुटयति नहीति । **आदिना भेदो ग्राह्यः । अहं घटपटभेदधीः । मत्तः = तादृशधियः । पटाच्चेति ताविति च भेदस्याप्युपलक्षणम्, तस्यापि विषयत्वात् । स्वप्रकाशत्वपक्षे घटादिवत्स्वस्यापि स्वविषयत्वात् स्वस्य घटादितो भेदग्रहस्य स्वेनैव सम्भवेन न तत्र श्रुतिः सावकाशेत्यत आह** स्वप्रकाशतापीति । **स्वस्य स्वविषयकत्वमपीत्यर्थः । स्वमात्रे साक्षिणी = स्वज्ञानत्वेतराविषयकत्वनियतम्, स्वात्मानं तद्वति तत्प्रकारकज्ञानत्वं च विषयीकुर्वाणमपि ज्ञानं तदितराविषयकत्वात् स्वस्य स्वविषयभेदं विषयीकर्तुमक्षममित्यर्थः । अन्यथा = स्वस्मिन् स्वविषयभेदस्यापि विषयीकरणे । तत्तदपि स्वप्रकाशकुक्षौ निक्षिपन्ती =**

राजहंसः

स्वज्ञानत्वेतराविषयकत्वनियतमिति । नियतत्वं नात्र व्याप्तत्वं ग्राह्यम् । स्वप्रकाशे घटादेरपि भानेन व्यभिचारात्, किन्तु प्रयोजकत्वम् । तथा च स्वज्ञानत्वेतरविषयकत्वं प्रति स्वप्रकाशत्वमप्रयोजकमिति तात्पर्यम् ।

तदितराविषयकत्वादिति । स्वप्रकाशत्वबलादित्यादिः प्रकृतत्वलभ्यः । तथा च तदितरविषयकत्वं स्वप्रकाशत्वप्रयुक्तं न भवतीत्युक्त एव तात्पर्यार्थः सम्पद्यते । एवं च ज्ञाने स्वज्ञानत्वेतराहमर्थघटादिभानेऽपि न क्षतिरिति प्रोक्तमेव ।

भारती

घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक ही वह प्रत्यक्षबुद्धि है न कि—अहंघटपटौ भिन्नौ इत्याकारकबुद्धि घटात् पटाच्च भिन्ना इत्याकारक बुद्धि । अथवा मत्तः घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक बुद्धि से तौ घट एवं पट रूप स्वविषय भिन्नौ इत्याकारक बुद्धि नहीं है । (यहाँ ग्रन्थकार ने घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक बुद्धि के विषयरूप से घट पट रूप दो विषयों का ही उल्लेख किया है । घटपट के भेदरूप तृतीय विषय का उल्लेख नहीं किया, अतएव तौ यह द्विवचन प्रयोग दिया है, किन्तु अध्येता को उक्त प्रयोग को तृतीय भेदरूपविषय का भी उपलक्षण मानना चाहिए ।

यदि कहें कि स्वप्रकाशत्व पक्ष में घटादि के समान स्व भी स्व का विषय होने से घटादिरूपस्वविषय के साथ स्व (घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक) बुद्धि के भेद का ज्ञान भी स्वयं (घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक ज्ञान) के द्वारा ही सम्पन्न हो जायेगा । अतः (१) घट (२) पट (३) भेद रूप स्वविषय के साथ स्व (घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक बुद्धि भेद रूप विषय में भी अद्वैत श्रुति सावकाश नहीं है, तो यह आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि) विज्ञान की स्वप्रकाशता अर्थात् स्व में स्वविषयकत्व भी विज्ञान मात्र में साक्षी (प्रकाशन) है न कि जिस जिस से वह प्रकाश (विज्ञान) भिन्न होता है उस के साथ में स्व (विज्ञान) के भेद में

न कथमद्वैते एव पर्यवस्यति । न च तया धिया स्वस्य स्वविषयस्य च स्वरूपावगाहने स्वरूपलक्षणो भेदः प्रकाशित एव स्यादिति वाच्यम्; 'पुरोवर्ति रजतमि'ति भ्रान्तौ पुरोवर्त्यात्मनो रजतात्मनश्च प्रकाशे भेदग्रहापत्तेः । धर्मविशेषमन्तर्भाव्य स्वरूपस्य भेदत्वे धियोऽपि तथा स्यादिति सैव धीर्न तत्प्रकाशः, तस्मिन्सन्निकर्षापेक्षायां धियः प्राक्तदसम्भवात् । आत्मवदात्मधर्मेऽपि सन्निकर्षानपेक्षा सेति चेन्न; ग्रहणत्वस्मृतित्वप्रमात्वादावपि तथैव स्यादिति तदेवं सा बुद्धिः श्रुत्या घटपटात्मतया व्यवसथाव्यमाना कथमात्मनः स्वस्मादेव भेदे प्रमाणीभवितुं प्रभरतीति बाधिकायां बुदौ घटपटयोर्भेदे प्रमात्वाभावमासादयन्त्यां श्रुतिस्तत्र तत्राप्रतिद्वन्द्वित्वासङ्कुचितस्वतःप्रमाण्यबललब्धतत्तदर्थैक्यान्यथानुपपत्तिसहायसम्पदजय्या तयोरप्यभेदं बोधयन्ती न

शारदा

ज्ञानान्तर्भावेनैव तत्तन्निष्ठविषयताया निरूपिका । घटाद्भिन्नं पटं जानामीत्याकारैव स्वप्रकाशधीर्वाच्या, तत्र चाश्रयतया आत्मन एव विषयविधया च घटपटतद्भेदानामेव ज्ञानात्मना च स्वस्यैवोल्लेखात्स्वानुयोगिकस्वविषयप्रतियोगिक भेदस्य तत्र भानार्थमुक्तत्रये क्वचिदन्तर्भावो वाच्यः, स च ज्ञाने एव युक्तः, तस्यानुयोगित्वात्, भेदस्यानुयोगिस्वरूपतायाश्चान्यत्र क्लृप्तत्वात् । तथाच घटपटतद्भेदप्रतियोगिकभेदस्य ज्ञानत्वे प्रतियोगिनामपि तत्त्वमित्यद्वैतप्रसङ्गः, भेदस्य सप्रतियोगिकस्वरूपत्वात्, उपलक्षणत्वे प्रतियोगिनां तद्विनिर्मुक्तस्यापि भेदस्य भेदत्वेन प्रत्यक्षप्रसङ्गात् । ज्ञाने एवान्तर्भाव इत्यस्याविनिगम्यत्वे वा घटाद्यन्यतमरूपत्वेऽपि तादृशभेदस्य घटपटतद्भेदानामपि घटाद्यन्यतमाभेदप्रसङ्ग इति भावः । एवमन्यान्यविषयकबुद्धीरादाय सर्वाद्वैतलाभः, तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वध्रौव्येण चैकात्मतामापन्नानां परस्पराभेदबोधसम्भव इति द्रष्टव्यम्।

भारती

भी। (तात्पर्य यह है कि विज्ञान में स्वविषयकत्व स्वज्ञानत्वेतराविषयकत्व से नियत है। अतः स्व को एवं स्वनिष्ठ प्रमात्व को विषय करता हुआ भी वह ज्ञान स्वप्रकाशत्व के बल से स्वेतराविषयक होने से स्व के साथ स्वविषय के भेद का प्रकाशक नहीं है।) नियतत्व के विषय में यह समझना चाहिए कि नियतत्व यहाँ व्याप्तत्व नहीं है। स्वप्रकाश में घटादि का भी ज्ञान होने पर व्यभिचार होगा। किन्तु प्रयोजकत्व रूप है तब निष्कर्ष यह निकला कि स्वज्ञानत्वेतराविषयकत्व के प्रति स्वप्रकाशत्व प्रयोजक नहीं है। अतः स्व में भेद का प्रकाशक नहीं होगा, और यदि वह स्व में स्वविषय के भेद का प्रकाशक हो जाय तो उस भेद को ज्ञान में अन्तर्भाव करके अर्थात् ज्ञान रूप मान करके ही प्रकाशित करेगा, ऐसी स्थिति में ज्ञानातिरिक्त के न रहने से अद्वैतबोधकतया ही उसका (विज्ञान) पर्यवसान हुआ, अर्थात्

शारदा

स्वस्य स्वविषयस्य चेति । अनुयोगिप्रतियोगिस्वरूपद्वयं भेद इत्याशयेनेदम्, परस्पराभावत्वानुरोधात्, अन्यथाऽनुयोगिस्वरूपावगाहनस्यैव प्रकृतोपयोगितया वक्तव्यत्वापातात् । अनुयोगिमात्रास्वरूपत्वेऽपि बुद्धौ विषयभेदस्य, विषये च बुद्धिभेदस्य प्रतीतत्वप्रदर्शनार्थमिदमुक्तमिति तु युक्तम्, अन्यथैकभेदग्रहेऽप्यपरभेदस्यागृहीतत्वात् श्रुतिर्लब्धपदा स्यादिति ध्येयम् । भ्रान्तौ = भेदाग्रहनिबन्धनव्यवहारप्राक्क्षणे, व्यवहारश्चाभिलापादिरूपो न तु ज्ञानरूपो तेन ज्ञानाविषयकस्य रजतमित्याद्याकारकज्ञानस्य तन्मतेऽप्रसिद्धावपि न क्षतिः । भेदग्रहापत्तेरिति । तथाच भेदाग्रहनिबन्धनव्यवहाराभावप्रसङ्गो मा भूदिति स्वरूपस्य भेदत्वमयुक्तमिति भावः । उक्तप्रसङ्गपरिहाराय वैधर्म्यालिङ्गितस्वरूपस्यैव भेदत्वमुपेयम्, तज्ज्ञाने च भेदग्रह इष्ट एवेत्यत आह धर्मेति । अन्तर्भाव्य = स्वरूपे विशेषणीकृत्य भेदत्वे = भेदत्वोपगमे । तेन न ल्यपोऽसङ्गतिः । तथा स्यात् = वैधर्म्यालिङ्गितमेव स्वरूपं भेदः स्यात् । सैव धी = घटपटभेदधी । न तत्प्रकाशः = न वैधर्म्यविषयिणी । यद्यपि ज्ञानत्वं वैधर्म्यं प्रभाकरमते ज्ञानमात्रविषय एव, तथापि तस्याग्रे दूषणीयत्वाभिप्रायेणेदमुक्तम् । अतएवाह तस्मिन्निति । ज्ञानत्वरूपवैधर्म्ये इत्यर्थः । सन्निकर्षान्वय्यनुयोगित्वं सप्तम्यर्थः । स्वसंयुक्तसमवेतसमवायलक्षणो मनसः सन्निकर्षो ज्ञानत्वस्य मानसप्रत्यक्षोपपत्तये वक्तव्यः, अन्यथा प्रकारान्तरेण भेदधीविषयतायास्तदंशेऽसम्भवात्; किन्तु बुद्ध्युत्पत्तेः पुर बुद्धिनिष्ठसमवेतत्वघटितोक्तसन्निकर्षस्याप्यसम्भव एवेति कथं तदंशे भेदधियो मानसत्वमपीत्यर्थः । ज्ञानस्य ज्ञानत्वेनैव स्वविषयत्वं न तु ज्ञानत्वांशे मानसत्वमित्याशयेनाह आत्मवदिति । आत्मशब्दः स्वपरः । ज्ञानस्य जिज्ञासितग्राह्यात्मधर्मत्वे संस्कारवदमानसत्वम् अजिज्ञासितग्राह्यत्वे ज्ञानपरम्परानुपरमापत्तिरिति न मानसत्वमिति न मनः सन्निकर्षापेक्षेति भावः । आत्मधर्मे ज्ञानत्वे प्रत्यक्षत्वार्थमिति शेषः । ग्रहणत्वं = अनुभवत्वम् स्मरणान्यज्ञानत्वमिति यावत् । प्रमात्वं = विशेष्यावृत्त्यप्रकारकज्ञानत्वं, तेन तद्वति तत्प्रकारकज्ञानत्वस्य प्रभाकरमते

भारती

अद्वैत का ही वह साधक है, न कि द्वैत का (तात्पर्य यह है कि 'घटाद्भिन्नं पट जानामि' इत्याकारक स्वप्रकाशधी को कहना होगा उस धी में अज्ञेयतया आत्मा का और विषय विधया घट पट तदभेदों का और ज्ञानात्मना स्व का ही उल्लेख होने से स्वानुयोगिक स्वविषय प्रतियोगिक भेद का उस धीमे भान के लिए प्रोक्तत्रय में कहीं पर अन्तर्भाव कहना होगा, ऐसी स्थिति में ज्ञान में ही अन्तर्भाव करना युक्त है । क्योंकि ज्ञान अनुयोगी है और भेद को अनुयोगी स्वरूप अन्यत्र माना भी है तथा घट पट तदभेद प्रतियोगिक भेद को यदि ज्ञान स्वरूप मान लिया तो सभी प्रतियोगी विज्ञान रूप हो गये तब अद्वैत आ ही गया, क्योंकि भेद तो सप्रतियोगिक स्वरूप है ।

यदि कहें कि घट पटौ भिन्नौ इत्याकारक उस बुद्धि के द्वारा स्व (घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक बुद्धि) एवं स्वविषय (घट-पट) के स्वरूप को आवगाहन (विषय) करने पर

शारदा

ज्ञानमात्रविषयत्वेऽपि न क्षतिः । आदिना अगृहीतासंसर्गकधर्मधर्मिविषयकैकज्ञानत्वस्य सङ्ग्रहः । तथैव स्यात् = सन्निकर्षमनपेक्ष्यैव बुद्धेरनुभवत्वादिविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षता स्यात् तथा च पुरोवर्तिविषयकरजतविषयकज्ञानयोरनुभवत्वस्मृतित्वाभ्यामगृहीतभेदयोः प्रवर्तकत्वमिति तव सिद्धान्तो व्याहन्येत, निरुक्तप्रमात्वादेर्ज्ञानविशेषे विप्रतिपत्तिश्च न स्यादित्यर्थः । यदि तु- 'जानामी' त्युल्लेखमहिम्ना ज्ञानत्वेनैव ज्ञानस्य स्वविषयत्वम्, तत्ताप्रमोषहेतुदोषबलादेव 'रजतं स्मरामी' त्येवं न स्मृतित्वोल्लेखः, स्मरणान्यत्वविशेष्यावृत्त्य-प्रकारकत्वादिविशेषणस्य प्रागनुपस्थितेस्तु स्मरणान्यत्वविशिष्टज्ञानत्वादेर्न भानप्रसङ्गः, सामग्रीसत्वासत्त्वाभ्यां विशेषात्, तथा च ज्ञानत्वालिङ्गितस्वरूपस्य भेदात्मकस्य ग्रहे न बाधकमित्युच्यते, तदा मूलमित्थं व्याख्येयम्–तस्मिन् = तादृशस्वरूपस्य भेदत्वेन रूपेण ग्रहार्थम् । सन्निकर्षापेक्षायां = प्रतियोग्यादिज्ञानविधया कारणीभूताया विषयतद्बुद्धोर्बुद्धेरपेक्षायां 'घटाद्भिन्नं पटं जानामी' तिधियः प्राक् तादृशबुद्धेरभावेन नोक्तधियः स्वस्य स्वविषयस्य च भेदविषयकत्वसम्भवः । कार्यताकारणतावच्छेदकयोः प्रतियोग्यादिबुद्धित्वभेदबुद्धित्वयोरेकत्रानुपपत्तेः । आत्मवत् = स्वविषयितायामिव आत्मधर्मेऽपि = ज्ञानत्वविशिष्टस्य भेदत्वावच्छिन्नविषयितायामपि सन्निकर्षानपेक्षा = अन्यत्र क्लृप्तकारणानपेक्षा सा धीरपरोक्षा । यथाहि घटमहं जानामीति बुद्धिं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया क्लृप्तकारणताकं घटविषयकज्ञानत्वप्रकारज्ञानं विनैव तादृशबुद्धि; स्वविषया स्वप्रकाशवादिनोपेयते तथा भेदत्वेन रूपेण स्वरूपापरोक्षताऽपि प्रतियोग्यादिज्ञानं तत्सामग्रीं वा विनैव स्यादित्यभिमानः । एवं सति विशेषणोपस्थितेस्तत्सामग्र्या वा विरहेऽपि स्मरणान्यज्ञानत्वादेर्भानं स्यादिति वदन्नभिमानं निराकरोति ग्रहणत्वेति । **घटाद्भिन्नं पटं जानामीति बुद्धौ घटपटयोर्भेदस्य भेदत्वेनोल्लेखवज्ज्ञानतद्विषययोर्भेदो न तेन रूपेणोल्लिख्यते इति तस्य तादृशबुद्धिविषयतोपगमेऽनुभवविरोधोऽपि द्रष्टव्यः, एवं स्वविषयत्वपक्षे घटाद्भिन्नः पट इति प्रतीतेरनुभूयमानाया अपलापसङ्गश्चेति ।**

राजहंसः

—प्रागनुपस्थितेस्त्विति । इदमुपस्थितिसामग्रीविरहस्याप्युपलक्षणम्, तेन विशेषणज्ञानजनकानामेव विशिष्टबुद्धौ विशेषणविषयकत्वनियामकत्वोपगमेऽपि न क्षतिः, अतएवाग्रे स्वयमेव प्रतियोग्यादिज्ञानसामग्र्यपि पृथगुपात्ता । एकत्रानुपपत्तेरिति । भेदबुद्धौ प्रतियोग्यादिबुद्धित्वसत्त्वेऽपि स्वातन्त्र्येण प्रतियोग्यादिबुद्धित्वं कारणतावच्छेदकमिति मतेनेदम्, तथानुपगमेऽपि कार्यकारणधियोर्भेदस्यावश्यकत्वात् प्रकृते न काचित्क्षतिः ।

भारती

अनुयोगिप्रतियोगिस्वरूपात्मक भेद भी प्रकाशित हो ही गया । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अनुयोगिक प्रतियोगीरूप भेद का प्रकाश मानने पर ''इदं रजतम्'' इस भ्रान्ति स्थल में पुरोवर्ति इदं पदार्थ एवं रजत का प्रकाश होने पर इदं रूप एवं रजत रूप अनुयोगिप्रतियोगि

शारदा

घटेति भेदस्याप्युपलक्षणम् । बुद्धिः = घटपटभेदबुद्धिः । आत्मनः = स्वस्य । प्रमाणीभवितुं प्रभवति = प्रमाणतया ज्ञातुं शक्यते । घटपटयोर्बुद्ध्यात्मकत्वप्रतीतेरिदानीम-प्रामाण्यप्रकारकग्रहाविषयत्वेन प्रामाण्यप्रकारकग्रहविषयत्वसम्भवात् घटपटभेदबुद्धेर्भेदांशे-प्रामाण्यग्रहानुपपत्तेरिति भावः । इति = उक्तरीत्या बुद्धिघटाद्योरभेदविषयकत्वावच्छेदेनाद्वैत-बुद्धेः प्रामाण्यग्रहास्कन्दितत्वेन भेदबुद्धेर्घटपटभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकग्राह-विषयत्वासम्भवात् । बाधिकायं = बाधकत्वेनाभिमतायाम् । प्रमात्वाभावमासादयत्यां = अप्रामाण्यग्रहास्कन्दितायं । विरुद्धार्थयोरेकतरस्य प्रामाण्यग्रहास्कन्दितत्वेऽपरस्या-प्रामाण्यग्रहास्कन्दितत्वसम्भवात् । श्रुतिः = श्रौतधीः । तत्र तत्र = बाध्य-बाधकत्वाभिमतबुद्ध्योः बाधकत्वाभिमतबुद्धितद्विषययोश्चाभेदव्यवस्थापने । अप्रतिद्वन्द्वित्वेन = विरोधिमानान्तरशून्यत्वेन । अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितभेदधिय एव विरोधत्वसम्भवादिति भावः । असङ्कुचितम् = अनपोदितम्, स्वप्रकारकप्रतीतिविशेष्येऽभावप्रतियोगित्वेनाप्रतीतमिति यावत् स्वं = प्रामाण्यम् । प्रामाण्ये स्वाश्रयज्ञानविषयकग्रहविषयत्वव्याप्यताया एव तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नया ज्ञप्तिस्वतस्त्वात् स्वप्रकारकप्रतीतिविशेष्यताया अभेदबुद्धावावश्यकत्वात् । उत्पत्तिस्वतस्त्वस्य तु सङ्कोचो निवृत्तिरूप एव स्यात् किन्तु स न विरोधिमानान्तरप्रयोज्यः, दोषासमवहितज्ञानसामान्यसामग्र्याः प्रामाण्यस्योत्पन्नत्वेन तदपसारणानुपपत्तेरिति भावः। स्वतः प्रामाण्यमेव बलं तेन लब्धं = तदाश्रयीभूतश्रौतधिया विषयीकृतं तत्तदर्थैक्यं = बाध्यबाधकयोर्बाधकतद्विषययोश्चैक्यं तस्यान्यथानुपपत्तिः = बाध्यबाधकभावाभावं विषयाणां परस्पराभेदं विना चानुपपत्तिः, बाध्यबाधक-भावासम्भवस्यापि फलतो विषयैक्ये एव पर्यवसानं विषयाणां भेदे ह्येकबाधकबुद्धेस्तदैक्या

राजहंसः

प्रामाण्यस्योत्पन्नत्वेनेति । अतएव प्रामाण्यानुत्पत्तिरूपः सङ्कोचोऽपि न प्रसज्यते, 'अबाधात्तु प्रमामत्रे'त्यादिवक्ष्यमाणत्वात् ।

भारती

स्वरूप भेद का भी प्रकाश होने से अभेदभ्रान्ति न हो पायेगी। (क्योंकि भेदग्रह अभेदग्रह का प्रतिबन्धक है।) तथा च भेदाग्रहनिमित्तक ''इदं रजतम्'' इत्याकारक व्यवहार का अभाव प्रसक्त न हो जाय, इसके लिए स्वरूपात्मक भेद नहीं मान सकते, यह तात्पर्य है।

यदि उपयुक्त दोष के वारणार्थ धर्मविशेष (घटत्वादि) को स्वरूप में विशेषण मानकर तादृश विशेषण विशिष्ट स्वरूप (अनुयोगि प्रतियोगी स्वरूप) को ही भेद मानें तो बुद्धि (ज्ञान) का भी केवल स्वरूप भेद नहीं है अपितु वैधर्म्य (ज्ञानत्व) से मुक्त स्वरूप को ही भेद मानना होगा, ऐसी स्थिति में (ज्ञान के स्वप्रकाशत्व पक्ष में भी) वही ज्ञान घटपटौ भिन्नौ वैधर्म्य (ज्ञान) को विषय (प्रकाशित) नहीं कर सकता, क्योंकि सन्निकर्ष के विना ज्ञानत्व रूप वैधर्म्य का भान हो नहीं सकता।

प्रतिहन्तुं शक्येति न क्वचिदपि प्रतिहतप्रसरा सती सर्वाद्वैतप्रमापिकेति।

भेदप्रमान्यथानुपपत्त्या च वैपरीत्यमशक्यम्, तत्राद्वैतश्रुत्या

शारदा

सम्भवेन घटपटभेदविषयकत्वेन तस्या प्रमात्वेन ग्रहीतुं शक्यतया अभेदबुद्ध्यभिन्नतया ग्रहीतुमशक्यत्वात् बाध्यबाधकभावोपपत्तिः। तादृशानुपपत्तिरेव सहायसम्पत्=अनुग्राहिका, तत्त्वं च प्रकृते श्रुतेः सर्वाभेदांशे प्रामाण्यनिश्चायकतयैव, सर्वाभेदबोधस्य श्रुत्यैव सिद्धत्वात्। तत्प्रयुक्तं यद्भेदबुद्ध्यबाध्यत्वरूपमजय्यत्वं तद्वती तयोः=घटपटयोरप्यभेदं बोधयन्ती=विषयीकुर्वाणा न प्रतिहन्तुं शक्या=घटपटाभेदविषयकत्वावच्छेदेनाप्य प्रमात्वेन ग्रहीतुमशक्या। बुद्धितद्विषयाद्यभेदविषयकत्वावच्छेदेन तु न पूर्वमप्य-प्रमात्वेन गृहीतेत्याशयेनापि शब्दः। उपसंहरति न क्वचिदपीति। **न सतीति योजना। किञ्चिदभेदविषयकत्वावच्छेदेनापि भ्रमत्वेन न गृहीता सर्वाद्वैतप्रमापिका= सर्वाभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्ववती। ''अत्यन्तासत्यपी'' ति वक्ष्यमाणन्यायेन सर्वाभेदबोधस्य प्रागुत्पन्नत्वेन भेदधीप्रयुक्तस्य तत्तदंशेऽप्रमात्वग्रहस्य विघटनद्वारा सर्वाभेदबोधे प्रमात्वस्यैव व्यवस्थापनीयत्वात्। अतएव - चैत्रस्य घटपटभेदज्ञानं, मैत्रस्य कटकुटभेदज्ञानं, देवदत्तस्य नटविटभेदज्ञानमिति तत्तदन्यसर्वाद्वैतार्थत्वे श्रुतेर्वाक्यभेद इति-निरस्तम्। नच-सर्वाभेदेऽद्वैतग्रहस्य द्वैतोपमर्दकत्वं कथं, तेन द्वैतस्यापि स्वविषयाभिन्नतया विषयीकरणादिति-वाच्यम्, अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दिताद्वैतग्रहस्यैव द्वैतोपमर्दरूपत्वात्; तस्यचोक्तरीत्या सम्भवादिति भावः।**

भारती

वैधर्म्यालिङ्गि घट पर भेदज्ञान से वैधर्म्य (ज्ञानत्व) का भान नहीं हो सकता, अतः ज्ञानत्व रूप वैधर्म्य के मानस प्रत्यक्षत्व की उपपत्ति के लिए ज्ञानत्व के साथ मनःसंयुक्तसमवेतसमवाय (मनः से संयुक्त आत्मा, आत्मा में समवेत ज्ञान, ज्ञान का समवाय ज्ञानत्व में) सन्निकर्ष ही कहना होगा। किन्तु उस सन्निकर्ष के ज्ञान घटित होने से ज्ञान अर्थात् बुद्धि की उत्पत्ति के पूर्व वह सन्निकर्ष नहीं हो सकता। अतः घटपटभेदबुद्धि के द्वारा ज्ञानत्व के वैधर्म्यविशिष्टस्वरूपात्मक भेद प्रकाशित नहीं हो सकता।

प्रश्न - जैसे ज्ञान के प्रत्यक्ष के लिए मनःसन्निकर्ष की अपेक्षा नहीं है, ज्ञान ज्ञानत्वरूप से ही स्व को विषय करता है। उसी प्रकार ज्ञानगत ज्ञानत्वरूपधर्म के प्रत्यक्ष के लिए भी मनःसन्निकर्ष की अपेक्षा नहीं है। भाव यह है कि ज्ञान को जिज्ञासित-ग्राह्य मानकर आत्मधर्म मानें, तो जैसे संस्कार के जिज्ञासित न होने से उसमें जिज्ञासितत्वविशिष्ट के ग्राह्यत्व न होने से आत्मधर्म होते हुए भी संस्कार में मानसत्व नहीं है वैसे ही ज्ञान में भी मानसत्व नहीं है।

समाधान – ज्ञान के समान ज्ञानगत ज्ञानत्वधर्म का प्रत्यक्ष भी सन्निकर्ष के बिना ही मानें, तो ज्ञानगत ज्ञानत्व धर्म के समान ज्ञानगत अनुभवत्व स्मृतित्व प्रमात्व आदि धर्मों का भी प्रत्यक्ष सन्निकर्ष के बिना ही हो जायेगा।

सन्दिह्यमानस्य प्रमात्वस्यैवासिद्धेः; भेदधीमात्रस्य च

शारदा

अथ बुद्धितद्विषयाद्यभेदांशे प्रमात्वान्यथानुपपत्तिसहकारेण यथा घटपटाद्यभेदांशेऽपि श्रौतबोधस्य प्रमात्वंत्वयोक्तम्, तथा घटपटभेदप्रतीतेः प्रमात्वान्यथानुपपत्त्या बुद्धित-द्विषयादिभेदोऽपि कल्प्यताम्, अन्यथा तदभिन्नाभिन्नेति न्यायेन घटपटयोरप्यभेदापत्त्या तद्भेदप्रतीतेः प्रमात्वं न स्यात्, नचेष्टापत्तिः , श्रुतिप्राबल्यस्यानिर्णीतत्वेन मानान्तरस्य चाभेदासाधकत्वेन बाधविरहाद्भेदप्रतीतेः प्रमात्वस्यावश्योपेयत्वादित्यत आह भेदप्रमेति। **भेद-प्रतीतेः प्रमात्वेत्यर्थः । वैपरीत्यं = घटपटयोरभेदबाधनम् । तत्र = भेदप्रतीतौ । असिद्धेः=**

भारती

(ऐसी स्थिति में प्रभाकर के मत में इदं रजतम् स्थल में इदं विषयक एवं रजतविषयक ज्ञानद्वय अनुभवत्व एवं स्मृतित्वरूप में अगृहीत भेद होकर प्रवर्तक न हो पायेगा तथा ज्ञान के होने पर ज्ञान विशेष में प्रमात्व आदि धर्म विषयक विप्रतिपत्ति (संशय) नहीं होनी चाहिए ।)

तस्मात् उक्त प्रकार अद्वैत श्रुति के द्वारा घटपट तथा उन दोनों के भेद रूप स्वविषय के साथ अभिन्नतया व्यवस्थित वह (घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक प्रत्यक्ष भेदबुद्धि) अपने आप के साथ स्वयं के भेद को सिद्ध करने में प्रमाण कैसे हो सकती है ।

इस पूर्वोक्त प्रकार से बाधक (बाधकतया अभिमत) घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक प्रत्यक्षबुद्धि के घट पट-भेद रूप स्वविषय में प्रमात्वाभाव अर्थात् ''इदं ज्ञानमप्रमाणम्' इत्याकारक अप्रामाण्य ज्ञान का विषय होने पर वह श्रुतिजन्य अद्वैत बुद्धि-बाध्य (बाध्यतया अभिमत अद्वैतबुद्धि) एवं बाधक (बाधकतया अभिमत प्रत्यक्षबुद्धि) तथा उन दोनों विषयों के अभेदव्यवस्थापन में विरोधी प्रमाणान्तर के न होने से असंकुचित स्वतःप्रामाण्यरूप बल के द्वारा प्राप्त-तत्तदर्थों (उक्त बाध्य बाधक बुद्धिद्वय तथा उन दोनों के विषयों) की एकता की अन्यथानुपपत्ति (उक्त बाध्यबाधकभाव के अभाव के बिना एवं उनके विषयों के परस्पर अभेद के बिना अनुपपत्ति) रूप सहायक सम्पत्ति से अजय होकर घटपट के भी अभेद बोध करने में किसी भी प्रमाण के द्वारा प्रतिहत (अवरुद्ध अर्थात् बाधित) नहीं की जा सकती । अतः अद्वैत बुद्धि कहीं भी (यत्किञ्चित् अभेद रूप विषय में) बाधित न होती हुई सभी वस्तुओं के अद्वैत को प्रमित करती है। (अर्थात् अद्वैतबुद्धि यत्किञ्चित् अभेदविषयकत्वावच्छेदेन बाधित न होने से सर्वाभेदविषयकत्वाच्छेदेन प्रमात्व को प्राप्त करती है) निश्च्योत यह है कि अत्यन्तासत्यपीतिन्याय से सर्वाभेदबोध तो पहले ही उत्पन्न हो चुका है । अतः भेदधीप्रयुक्त तत्तदंश में प्रमात्वग्रह विघटन द्वारा सर्वाभेदबोध में प्रमात्व को ही व्यवस्थित करना है ।

प्रश्न - घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक भेद प्रतीति के प्रमात्व की अन्यथानुपपत्ति

द्विचन्द्रादिबोधवदन्यथाप्युपपत्तेः। एकमित्युपादाय यदेवकारप्युपादत्ते

शारदा

अनिश्चयात् । अभेदप्रतीतावपि भेदप्रतीत्या प्रमात्वं संदिग्धमेवेति विनिगमना-विरहमाशङ्क्याह भेदधीमात्रस्येति **। मात्रशब्देन निर्णीतप्रमात्वकधियोव्यवच्छेदः । साकल्यार्थको वासः। चस्त्वर्थः । तथाचान्यत्र क्लृप्ताप्रमात्वकसजातीयत्वेन घटपटादिभेदबोधस्यैवाप्रमात्वं कल्पयितुमुचितम् नतु श्रौतबोधस्य, तज्जातीयस्य क्लृप्ताप्रमात्वकत्वाभावेन कल्पनागौरवात्, न च-कस्यचिच्छ्रौतबोधस्य सर्वथाऽप्रमात्वस्याक्लृप्तत्वेऽपि स्वार्थेऽप्रमात्वेनान्यपरत्वं ''आदित्यो यूप'' इत्यादौ क्लृप्तमेवेति प्रकृतेऽपि तथास्त्वितिवाच्यम्; अद्वैतश्रुतावन्यपरताप्रयोजकरूपविरहात्, अनन्यप्रकरणस्थत्वात्, षड्विधलिङ्गैरद्वैतेऽवधृततात्पर्यकत्वात्, अन्यथा नेतुमशक्य-त्वात् । ''आदित्यो यूप'' इत्यादिश्रुतिर्हि कर्मप्रकरणस्था व्यवहारदशायामेव परीक्षित-प्रत्यक्षविरुद्धेत्यन्यथैव नेतुमर्हा । स्तुतिद्वाराऽन्यशेषतामासादयन्ती हि सा नाभेदप्रमा-माधत्ते, प्रत्यक्षाविरुद्धैरेव गुणैः स्तुतिसम्भवेन तदर्थं प्रत्यक्षविरुद्धार्थकल्पना-नौचित्यात् । प्रातिभासिकप्रामाण्यस्यऽप्रमाणवृत्तित्वात् व्यावहारिकप्रामाण्यस्य चाद्वैतस्य व्यवहारविषयत्वेनाद्वैतश्रुतावसम्भवेन परिशेषात्तात्त्विकप्रामाण्यस्यैव वाच्यत्वात् । भेदबुद्धेस्तु भेदस्य व्यवहारविषयत्वेन व्यवहारिकप्रामाण्येनैवोपपत्ति-**रित्यद्वैतसिद्ध्यादौ **विस्तरः । न च-घटपटभेदाधीर्भ्रमो भेदधीत्वात् चन्द्रभेदधीवदिति मूलाभिप्रेतानुमाने गृहीतबाधत्वमुपाधिरिति–वाच्यम्; अद्वैतश्रुतेरन्यथानयनासम्भवेन पक्षेऽपिश्रुत्या बाधग्रहात्, भ्रमत्ववद्गृहीतबाधताया अपि साधनसम्भवाच्च, नहि केनापि न बाधो गृहीत इत्यर्वाग्दृशा प्रत्येतुं शक्यते इति । यत्तु सर्वाभिन्नत्वस्य श्रुतिबोधितस्य स्वस्मात्सर्वाभेदमादायाप्युपपत्तिः, ''नेहनाने''ति श्रुतेरपि किञ्चिदपि न नाना किन्तु प्रत्येकमेकमेवेत्यर्थकतयोपपत्तिः, प्रमेयत्वादिनाऽभेद एव वा श्रुत्यर्थोऽस्तु 'तानेवत्तित्तरीनि'त्यादाविव रूपान्तरेण साजात्यमादाय वा सोऽस्तु, तथा**

राजहंसः

अभेदप्रतीतावपीति । प्रमात्वं सदिग्धमेवेत्यन्वयः ।

भारती

(भेदरूपविषय के सत्यत्व के बिना तज्ज्ञान में प्रमात्व की अनुपपत्ति) से भेद को सत्य मानकर उस भेद प्रतीति के द्वारा घटपट के अभेद का ही बाध क्यों न मान लिया जाय ।

समाधान – इस प्रकार वैपरीत्य (घटपट के अभेद का बाध) नहीं किया जा सकता, क्योंकि अद्वैतश्रुति के द्वारा भेदप्रतीति का प्रमात्व संदिग्ध ही है । अतः प्रमात्व के निश्चित न होने से भेदबुद्धि अभेदबुद्धि का बाध नहीं कर सकती । (यदि कहें कि भेद प्रतीति के उपस्थित रहने से अभेद प्रतीति में भी प्रमात्व संदिग्ध ही है, अतः विनिगमना (एकतरपक्षपातिनियुक्ति) न रहने से अभेदबुद्धि को भी भेदबुद्धि का बाधक कैसे मानेंगे। तो यह आपका कथन युक्त नहीं है, क्योंकि द्विचन्द्रादिबोध

श्रुतिः ''एकमेवेदमि'' तिरूपा, तदैकान्तिकमैक्यं बोधयतीति भेदा भेदेनाप्यशक्यसमर्थनं घटपटादिभेदग्राहिप्रत्यक्षादिप्रामाण्यमिति।

शारदा

च श्रुतेरन्यथानयनासम्भवो नेति, तत्तुच्छम्, सप्रयोजनानधिगताबाधितार्थकतायामेव श्रुतेः प्रामाण्यसम्भवेन निष्प्रयोजनाधिगतार्थपरत्वे प्रामाण्यानुपपत्तेः, स्वाध्यायाध्ययन-विध्यधीनग्रहणानुपपत्तेश्च नहि प्रामाण्यविघटनमेव प्रमाणस्यान्यथानयनम्। एतेन-एक एव नरपति' रित्यादाविव सजातीयमात्रनिषेधकत्व ''मेकमेवेति'' श्रुतेः, ब्रह्ममात्राव-शेषस्य विवक्षितत्वे ''ब्रह्मैवैकमिति'' वचनव्यक्तेरापत्तेरिति–निरस्तम्, एकशब्दादेक वचनबलादेव वा सजातीयनिषेधबोधसम्भवेन एकमेवाद्वितीयमिति पदत्रयवैयर्थ्य प्रसङ्गात्, सजातीयविजातीयस्वगतभेदनिषेधकतयैव तत्साफल्यात् । अतएव 'ब्रह्मैवैकमिति' वचनव्यक्त्यभावेऽपि न क्षतिः। एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाश्रुतेश्च ब्रह्ममात्रावशेषतां विनानुपपत्तेस्तत्रैव श्रुतितात्पर्यावधारणात् । एतेन-तात्पर्याधीनं श्रुतिप्रामाण्यमतः कुत्रार्थे तात्पर्यमित्यनिश्चयात्, दुर्बलायाः श्रुतेरेव सर्वत्रप्रत्यक्षेण बाध इति-निरस्तम्; तात्पर्यस्य निश्चेतुमशक्यत्वे मीमांसावैफल्यप्रसङ्गाच्च । तस्मात् वेदसिंहभयोद्विग्ना भेदबुद्धिमृगीततिः। मोहारण्येऽपि विश्वासं कथमासादयिष्यति ।। अन्यचिन्ताञ्च सा त्यक्त्वा मीमांसामानमानिनी। लप्स्यते विमलानन्दं श्रुतिरात्मपरापरा ।। उपादाय = स्वघटकीकृत्य एकमितिपद-घटिता सतीति यावत् । उपादत्ते = स्वघटकी करोति, एवकारघटिता भवतीति यावत्। ऐकान्तिकम् = भेदासमानाधिकरणम् । भेदाभेदेन = भेदाभेदौ स्वीकृत्य । किञ्चैकत्र भेदाभेदौ विरुद्धावित्यपि द्रष्टव्यम् । तथाचैकतरस्य मिथ्यात्वे द्वैतवादो

राजहंस:

आत्मपरापरेति । अद्वैतात्मपरतयै श्रुतिः काचित्परा । चतुष्टयवाद इति । सम्बन्धस्य पार्थक्यविवक्षायाम् तु पञ्चकवादः ।

भारती

के समान भेदज्ञानमात्र की उपपत्ति प्रमात्व के बिना भी हो सकती है । (अर्थात् जैसे चन्द्र के वस्तुत: एक होने पर भी अपने नेत्र के पुतली के ऊपरी भाग को अङ्गुली से दबाकर देखने पर एक चन्द्र में ''द्वौचन्द्रौ'' इस प्रकार दो चन्द्रों का भान्तिरूप ज्ञान प्रमात्व के बिना ही हो जाता है उसी प्रकार भेदज्ञान भी प्रमात्व के बिना ही हो सकता है ।) तात्पर्य यह है अद्वैत के व्यवहार का विषय न होने से अद्वैतश्रुति का व्यावहारिक प्रामाण्य नहीं माना जा सकता, और प्रातिभासिक प्रामाण्य प्रमाणवृत्ति नहीं होता, अत: पारिशेष्यात् अद्वैतश्रुति का तात्त्विक प्रामाण्य ही मानना होगा । किन्तु भेद तो व्यवहार का विषय है अत: व्यावहारिक प्रामाण्य मानकर ही भेदबुद्धि की उपपत्ति की जा सकती है । अत: वह भेदबुद्धि पारमार्थिकप्रामाण्य विशिष्ट (प्रामाणिकतया निश्चित) श्रुतिजन्य अद्वैतनिश्चय के द्वारा बाधित ही है ।

''एकमेवाद्वितीयम्'' यह श्रुति ''एक'' कहकर एवकार (एव) का भी कथन करती है, अत: ऐकान्तिक = भेदासमानाधिकरण (सर्वथा) ऐक्य (अभेद) का ही कथन

बुद्धेर्विरम्य व्यापाराभावात्कथमित्थमिति चेन्न; श्रुतितो द्रागेव

शारदा

वाऽद्वैतवादो वा, द्वैताद्वैतवादस्य तु क्वावकाशः । नच रूपभेदेनाविरोधः, रूपयो रूपिभ्यां भेदाभेदौ विना रूपभेदेन विरोधस्य परिहर्तुमशक्यत्वात् अन्यथाऽन्यभेदेनापरभेदोपगमेऽतिप्रसङ्गात् । नचास्तु रूपयोः स्वस्वाश्रयेण भेदाभेदः; एवं सति तयोरपि रूपान्तरेणैव भेदाभेदयोरविरोधस्योपपादनीयत्वे कथन्नानवस्था स्वरूपेणैव वा क्वचिद्भेदाभेदे कथं न विरोधस्तत्रैव दत्तपदः । नचेष्टव्यैवानवस्था, अननुभूयमानरूपपरम्परोपगमानुपपत्तेः, किञ्चिद्धि वस्तु स्वतो व्यावृत्तमिति न्यायात् । न च भेदाभेदयोः सामानाधिकरण्यान्यथानुपपत्त्यारूपपरम्परा कल्पनीया, भेदस्याविद्यकत्वकल्पनयैवोपपत्तेरन्यथानुपपत्त्यप्रसरात्, अननुभूयमानानन्तरूपकल्पनापेक्षयाऽनुभूयमानभेदे एवाविद्यकत्वकल्पनायां लाघवात् नचानवस्थाभियैकावच्छेदेनैव तावुपगन्तव्यौ गुणगुण्यादिस्थले इवेति वाच्यम्; गुणगुण्यादिस्थलेऽप्यवच्छेदकभेदेनैव तयोर्वक्ष्यमाणत्वात् । एकावच्छेदेन तत्र तयोरुपगमेऽपि सामानाधिकरण्यप्रतीतेराविद्यकभेदमादायैवोपपत्तेः सत्ययोस्तयोर्विरुद्धयोः सामानाधिकरण्यकल्पनानवकाशात् । अतएव ''विरुद्धमिति नः क्व प्रत्ययो यत्प्रमाणविपर्ययेण वर्तते'' इति न्यायावतारोऽपि न । एतेन–''द्वासुपर्णे''त्यादिभेदश्रुतीनामपि दर्शनात् ''तुल्यं तु साम्प्रदायिकमि'' ति न्यायेन तासामान्यथानयनानौचित्यात् चिदचिदात्मकशरीरविशिष्टस्य ब्रह्मण ऐक्यमेव ''एकमेवाद्वितीयमिति'' श्रुतिप्रतिपाद्यम्, देहदेहिनोर्भेद विवक्षया 'ममेदं शरीर'मितिवद्भेदश्रुतेः अभेदविवक्षया 'चाहं गच्छामि' तिवदभेदश्रुतेरुपपत्तेः, तथाच विशिष्टाद्वैतात् जीवजडयोरपरिशेषो नेति–निरस्तम्; तथाहि-विशिष्टस्य चिदचिद्ब्रह्मभिर्व्यतिरेको वाऽव्यतिरेको वा, आद्ये चतुष्टयवादो नत्वद्वैतवाद इति कथमेकमेवाद्वितीयमिति श्रुतिसङ्गतिः । द्वितीयेऽपि त्रितयवाद एवेति कथमुक्तश्रुतिसङ्गतिः। व्यतिरेकाव्यतिरेकपक्षस्तु त्वयाऽनुपगतः, उक्तरीत्यैव निरसनीयश्च। दुर्वचश्च शरीरशरीरिभावः। तस्मादौपाधिकभेदायत्तद्वित्वमेवोक्तश्रुत्यानूद्यते इति युक्तम् । एवं शुद्धाद्वैतवादोऽप्यसङ्गतः, ब्रह्मणः परिणामित्वोपगमेन शून्यवादापत्तेः । नच ''श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वादिति'' न्यायेन ब्रह्मणः परिणामित्वं नित्यत्वं चोभयमपि श्रुतिसामार्थ्यादास्थेयमिति वाच्यम्; ब्रह्मणः परिणामित्वस्य श्रुत्यसिद्धत्वात् ''सच्च त्यच्चाभवदि'' त्यादिवचसां विवर्तवादमादायैवोपपत्तेर्युक्तिविरुद्धार्थमादायोपपादनानौचित्यात्, नहि प्रमाणान्तरविरोधपरिहारेण सङ्गमयितुं शक्योऽर्थस्तद्विरोधेन सङ्गमनार्हः, सर्वमीमांसोपमर्दापत्तेरिति भावः ।

राजहंसः

दुवर्चश्च शरीरशरीरिभाव इति इदं दर्शनसर्वस्वे प्रपञ्चितम् ।

भारती

श्रीश्रुति करती है अत: ज्ञान ज्ञेय का भेदाभेद मानकर भी ''घटपटौ भिन्नौ'' इत्याकारक प्रत्यक्ष के प्रामाण्य का समर्थन नहीं किया जा सकता है ।

जातायाः सर्वविषयाया अद्वैतधियोऽस्मद्बुद्ध्य एवंविधविचार-सोपानपरम्परामारोहन्त्यो नानाविषयेषु तत्प्रामाण्यविषयाः क्रमेण परिनितिष्ठन्तीत्युच्यमानत्वात् । ननु यदि नाम प्रत्यक्षवित्त्या तया घटपटभेदोल्लेखिन्या स्वात्मना सह घटपटयोर्भेदो न गोचरीक्रियते

शारदा

बुद्धेरिति । **क्षणिकत्वादिति शेषः । अतएवोक्तं भट्टपादैः - ''तस्माज्जन्मैव विषयेबुद्धेर्व्यापारइष्यते''। इति । इत्थं = क्रमेणद्वैतबोधनम् ।प्रामाण्यग्रहक्रमो यद्यप्युक्तस्तथाप्यद्वैतबोधक्रमोक्तिभ्रमेणेयमाशङ्का। भ्रमं निराकरोति** श्रुतित इति। **द्रागेव = सकृदेव । सर्वविषयाया अद्वैतधियः = सवद्वैतधियः, विषयत्वं विचारान्वयि षष्ठ्यर्थः। सोपानपरम्परा = कक्ष्याक्रमः । तदारोहणं तदधीनक्रमिकोत्पत्तिकत्वम् । नानाविषयेषु =तत्तदभेदविषयकत्वावच्छेदेन** । तत्प्रामाण्येति। **अद्वैतधीप्रामाण्येत्यर्थः। परिनितिष्ठन्ति=**

राजहंसः

क्षणिकत्वादिति । क्षणिकत्वमत्र क्षणद्वयसाधारणम् , घटविषयकतयोत्पन्नमतेः किञ्चिद्विरम्यपटादिविषयकत्वोपगमे क्षणद्वयवृत्तित्वस्यापि भङ्गो भवत्येव । न चपटादिविषयकत्वनियामकस्याद्यक्षणे उपनिपाते द्वितीयक्षणे पटादिविषयकत्वमास्तामिति वाच्यम, करण-व्यापारभेदे क्रियाभेदस्यावश्यकत्वेन सन्निकर्षादिरूपतादृशनियामकस्य ज्ञानान्तरोत्पादकताया एवौचियात् । अन्यथा त्रिचतुरादिक्षणस्थायित्वस्यापि ज्ञाने स्वीकारप्रसङ्गात्। ऐतेन विषयान्तरविषयकज्ञानानुदयपर्यन्तमेकमेव ज्ञानं धारावहनस्थल इति मतमनादेयम, तावत्पर्यन्तं स्थितस्यापि ज्ञानश्च पश्चात् पटादिविषयकत्वप्रसंङ्गात्, नहि पश्चात्करणव्यापारा-न्तरोद्गमः पूर्व तु तावत्पर्यन्तमैक्यमेव करणव्यापारस्येति वक्तुं शक्यं, धारावहनदशायामपि नेत्रस्पन्दस्यानुभविकत्वात् । त्राटकस्थले परं नेत्रव्यापारैक्यं सम्भाव्यते, विषयान्तरे तु तत्रापि व्यापारान्तरम् , परन्तु तत्रापि चेतसि चपलतां पालयति ज्ञाननानात्वं न त्याज्यम्, तस्मिन्नेकाग्रतां गते तु तत्र ज्ञानैक्यं वा तत्प्रवाहो वेत्यत्र माध्यस्थ्यमेवोचितम्, अन्यत्र ज्ञानस्वभाव्यस्य क्षणद्वयस्थितावेव निर्णये तु क्लृप्तकल्पनादरादत्रापि ज्ञाननानात्वं रोचयन्ते केचित्, विरम्य व्यापाराभावस्तूभयत्रापि पक्षे समान एव, उत्तरोत्तरविषयितावेलायांपूर्वपूर्व विषयिता ह्यतएव नानुवर्तमानाऽनुभूयते । प्रथमावगाहने हि कारणविशेषजन्यत्वस्य नियामकत्वे द्वितीयावगाहनेऽपि तत्तत्कारणजन्यतातिरिक्तं नियामकं नोचितम्, अन्यथा पूर्वमपि तादृशजन्यताया

भारती

प्रश्न – बुद्धि (ज्ञान) के क्षणिक् होने से उस (बुद्धि) का विरम्य (क्रमिक) व्यापार नहीं होता, ऐसी स्थिति में यह क्रमिक (पहले श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि का घटपटभेद बुद्धि के साथ, तदनु प्रत्यक्ष भेदबुद्धि का अपने विषय (घट-पट-भेदरूप) के साथ, तदनु घट-पट का अभेद सिद्ध होता है) अभेद (अद्वैत) बोध कैसे होगा ।

समाधान – श्रुति के द्वारा सर्वविषयक अद्वैतबुद्धि एक काल में ही होती है, किन्तु अद्वैतबुद्धि विषयक पूर्वदर्शिता परम्परा के अधीन क्रम से उत्पद्यमान हमारी बुद्धि तत्तद् अभेद रूप विषयों (तत्तदभेदविषयकत्वावच्छेदेन) में उस अद्वैतबुद्धि के प्रामाण्य को क्रम से ही ग्रहण करती है यह हमारा कहना है ।

तावता कथं तस्याः स्वविषयेण सहाद्वैते श्रुतिः प्रामाण्यमासादयितुमिष्टे, बुद्ध्यन्तरेण तया सार्द्धं घटपटयोरपि भेदमुल्लिखता तत्राद्वैतश्रुतेर्बाधादेव। मैवम्। तर्हि तस्या अपि विषयमापाततः परित्यज्य ययैवापरया बुद्ध्या घटपटभेदबुद्धेर्घटाच्च पटाच्च भेदो विषयीक्रियते तस्याः स्वविषयेण सहाद्वैते श्रुतिः प्रामाण्यमवलम्ब्य लब्धपदा घटपटतद्भेदबुद्धिभिः सह द्वितीयाया बुद्धेरभेदे पर्यवस्यन्ती सर्वेषामेव तेषामभेदे विश्राम्यति। एवञ्च सति यत्रैव गत्वा बाधबुद्धिपरम्पराविच्छेदो विषयान्तरसञ्चारोच्छेदभयादनवस्था-

शारदा

अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दिताद्वैतबोधौपयिकताश्रयाः । बुद्ध्यन्तरेणेति उल्लिखतेत्यन्वयः विषयीकुर्वतेत्यर्थः। तया = घटपटभेदधिया सार्द्धं = तदनुयोगिकं । तत्र = भेदधीतोद्विषयाभेदविषयकत्वावच्छेदेन । बाधात् = अप्रामाण्यज्ञापनात्। तस्या अपि विषयमापाततः परित्यज्य = भेदधियो विषयेण सह योऽभेदेस्तद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकग्रहविशेष्यतामनासाद्य । यया = घटपटभेदधीः स्वविषयाद्भिन्नेत्याकारया। बुद्धेरिति **भेदान्वय्यनुयोगित्वं षष्ठ्यर्थः । अद्वैते = अद्वैतविषयकत्वावच्छेदेन श्रुतिः = श्रौतधीः। प्रामाण्यमवलम्ब्याभेदे पर्यवस्यन्तीत्यन्वयः । अप्रामाण्यप्रकारग्रहविशेष्यतानाश्रयताप्रयुक्तं यद्द्वितीयबुद्धितद्विषयाभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकग्रहविशेष्यतारूपं पर्यवसानं तद्वतीत्यर्थः। प्रतिबन्धकस्याप्रामाण्यप्रकारकग्रहस्याभावे प्रामाण्यप्रकारकग्रहस्य सम्भवात्तस्य च सर्वाभेदे प्रामाणिकत्वसन्देहविघटनार्थमावश्यकत्वादिति भावः। लब्धपदा = द्वितीयधीतद्विषयाभेदांशे प्रमात्वान्यथानुपपत्यात्मकसहकारिरूपं यत्पदं तद्विशिष्टेत्यर्थः। सर्वेषामेव तेषां घटपटादीनां विषयाणां परस्परमभेदे विश्राम्यति = निरुक्तपर्यवसानाश्रयः । अनेकेषामेकात्मतायाः परस्परैकतां विनाऽनुपपत्तिः भेदविषयकत्वेन ज्ञातुमशक्या विषयैर्ज्ञाताभेदा धीर्नाभेदधीप्रतिबन्धिकेत्यादिकं पूर्वोक्तं स्मरणीयम् ।** अथवा **प्रमात्वस्वतस्त्ववादे प्रामाण्यमवलम्ब्येति औत्सर्गिकप्रमात्वप्रकारक-**

राजहंसः

नियामकत्वस्यानुपगमनीयत्वेन ज्ञाने नित्यत्वसर्वविषयकत्वयोः प्रसक्तिर्दुर्निवारैवस्यात्, 'चलं हि गुणवृत्तं' 'सर्वेक्षणपरिणामिनो भावा ऋते चितिशक्तेः' इति नयः परमेकक्षणवृत्तित्वेएवानुकूलः। ज्ञानं यावतिष्ठति तावानेव कालः क्षण इति मते तु विरम्य व्यापाराभावःसुस्पष्ट एव, अभेद्यकालस्यैव क्षणत्वात्, स्ववृत्तिध्वंसप्रतियोग्यनाधारत्वादिरूपतल्लक्षणानां तावत्येव समयेसमन्वेतभ्यत्वात् । क्षणस्यातिरिक्तपदार्थतापक्षेऽपि तथैवोचितम् । न चपूर्ववर्ति विभुविषगुणानामुत्तरवर्तिविभुविशेषगुणनाश्यतया ज्ञानस्य क्षणद्वयसंस्पशिता प्रसक्तैव, ज्ञानस्य मनःपरिणामतामतेऽप्यनुभववैशम्यायोगेनेत्थमेव कल्पना रमणीयेति साम्प्रतम् अन्तिम शब्दे मुक्त यव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिज्ञाने च व्यभिचारात्तादृशनियमस्यप्रयोजकत्वात् ।

भारती

प्रश्न - यह घटपट के भेद को विषयक करने वाली घटपटौ भिन्नौ इत्याकारक वह प्रत्यक्षबुद्धि यदि अपने साथ घटपट भेद रूप अपने विषयों के भेद को विषय नहीं

भयाच्चाभ्युपेयस्तस्यामेव बुद्धौ पदमारोप्याऽद्वैतश्रुतिः सर्वतत्तद्विषयविषयिप्रवाहमद्वैते स्थापयन्ती न केनापि प्रमाणेन क्वचिदपि विषये बाधितुं शक्या। तस्मात् --

सुदूरधावनश्रान्ता बाधबुद्धिपरम्परा ।

शारदा

निश्चयविशेष्यताभिप्रायम् । लब्धपदत्वं चाप्रामाण्यज्ञापकासमवहितत्वम् । पर्यवसानं चाबाधितप्रामाण्यकत्वम् । विश्रान्तिस्तु निरुक्तान्यथानुपपत्तिप्रयुक्तप्रामाण्यप्रकारक-निश्चयविशेष्यत्वम् । एवं च सति = अप्रामाण्यग्रहविघटनौपयिकोक्तरीतेर्जाग-रूकत्वे सति । सञ्चारो मनसो ज्ञानजनकत्वम् । तस्यामेव बुद्धौ पदमारोप्य = तद्बुद्धितद्विषयाभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकनिश्चयविशेष्यतामाश्रित्य। अग्रिमाश्रयणे उत्तरकालीनत्वस्य ल्यबर्थस्यान्वयः। प्रवाहमद्वैते स्थापयन्ती = प्रवाहा-द्वैतविषयकत्वावच्छेदेनोक्तनिश्चयविशेष्यताश्रयः । शक्येति । अद्वैतबोधे तादृश-निश्चयदशायां कस्यापि भेदग्राहिप्रमाणस्याप्रामाण्यप्रकारकग्रहानास्कन्दितत्वविरहादिति

भारती

भी करती, तो भी उस प्रत्यक्षबुद्धि का उन स्व विषयों के साथ अद्वैत (अभेद) रूप विषय में अद्वैतबुद्धि प्रमाणभूत कैसे हो सकती है, क्योंकि वहाँ (भेदविषयकप्रत्यक्षबुद्धि का स्वविषयों के साथ अभेद रूप विषय में) भी प्रत्यक्षबुद्धि के साथ स्वविषयों (घट-पट-भेद) के भेद को भी विषय (प्रकाशित) करने वाले ''घटपटौ भिन्नौ इति भेदबुद्धिः घट-पट-भेद रूप स्वविषयभ्यो भिन्ना'' इत्याकारक बुद्ध्यन्तर (अन्यबुद्धि) के द्वारा श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि का बाध हो जायेगा ।

समाधान – ऐसी परिस्थिति में उस (बुद्ध्यन्तर) के विषय (घट-पट-भेदबुद्धि का स्वविषयों के साथ भेदरूपविषय) को आपाततः छोड़ कर अर्थात् घटपटभेदबुद्धि का स्वविषयों के साथ अभेद सिद्ध करने में प्रमाण न होती हुई श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि जिस बुद्ध्यन्तर के द्वारा घटपटभेदबुद्धि का घटपट रूप स्वविषयों के साथ भेद विषय (सिद्ध) किया जा रहा है उस (अन्यबुद्धि = 'घटपटौ भिन्नौ इति भेदबुद्धिः स्वविषयेभ्यो भिन्ना'' इत्याकारक बुद्धि) का ही अपने विषयों के साथ अद्वैत (अभेद) बोध (अन्याबुद्धिः स्वविषयेभ्योऽभिन्ना इत्याकारक) कराने में वह श्रोत बुद्धि प्रामाण्य का लाभकर अर्थात् तद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रमाणभूत बनकर द्वितीयबुद्धि एवं उसके विषयों के अभेदांश में दत्तपदा (प्रमात्व की अन्यथानुपपत्तिरूप सहकारि से विशिष्ट) होकर द्वितीयबुद्धि और उस विषयों के साथ अभेदरूप अंश में ही प्रमाणतया पर्यवसित होती है ।

यदि आप कहें कि द्वितीय बुद्धि का भेद तृतीय बुद्धि के द्वारा और उसका भेद चतुर्थ बुद्धि के द्वारा इस प्रकार उत्तरोत्तर बुद्धि के द्वारा भेद की सिद्धि हो जायेगी, तो यह कथन उचित नहीं है क्योंकि विषयान्तर सञ्चार (मानसज्ञानोत्पत्ति) के उच्छेद के भय से एवं अनवस्था के भय से जिस बुद्धि में बाधबुद्धि (भेदसाधक

निवृत्तावद्वयाम्नायैः पार्ष्णिग्राहैर्विजीयते।। ८ ।।

न च यत्र तस्य प्रतिपत्तुर्बुद्धिधाराविश्रान्तिस्तत्र पुरुषान्तरबुद्धिर्भेदे प्रमाणं स्यात् । तथापि पुरुषान्तरेण भिन्नतया सा प्रतीयते इत्यत्र प्रमाणं त्वया वाच्यम्। नहि तदपि पुरुषान्तरेणैव, नच सम्भाव्यमानम्,

शारदा

शेषः। सुदूरं = चरमभेदधीव्यतिरिक्तेषु विषयेषु धावनेन = तत्तद्भेदविषयीकरणेन श्रान्ता = सुषुप्त्यादिजनकादृष्टप्रतिबद्धा भेदधीधारा स्वनिवृत्तौ = चरमभेदधीतद्विषययोरगृहीतभेदकत्वप्रयुक्तबाधकत्वायोग्यत्वदशायां पार्ष्णिग्राहैः = पृष्ठतोवर्तिवैरिरूपेणाध्यवसितैर्विरुद्धविषयकत्वरूपविरोधितावच्छेदकरूपविशिष्टैरद्वयाम्नायैः = तज्जन्यबोधैः विजीयते बाध्यते = अप्रमाणतया ज्ञाप्यते । नच चरमबुद्धिज्ञाने चरमत्वव्याघातः, तदज्ञाने च कुत्र श्रुतेः पदारोपणम्, श्रुतिप्रवृत्त्यर्थं त्वयैव तदुपस्थापने पुनश्चरमत्वव्याघातः तदैव तयापि समं भेदग्रहश्चेतिवाच्यम्; शब्देन वा धीधारा क्वचिदुच्छिद्यते प्रवाहत्वादित्यनुमानेन वा चरमधियः प्रतीतावपि तस्या इदानीमुत्पत्त्यभावेन चरमत्वोपपत्तेः, तद्विषयकप्रत्यक्षस्य तवेदानीमनुत्पन्नत्वात्, तथाच तदनुयोगिकभेदस्त्वया न प्रत्यक्षीकर्तुं शक्यः, अनुयोगिप्रत्यक्षं विना भेद प्रत्यक्षासम्भवात्, अनुमानं तु स्यात् तच्चानुपदं मूले निरसनीयमिति भावः। तवेदानीं भेदग्रहस्येव ममाभेदग्रहस्यापि जातत्वात् तयोः परस्परविरोधिताया अपि समत्वाच्चेत्यपि कश्चिदाह स्म।

पुरुषान्तरेति । **चरमत्वोक्तिस्तु स्वसामानाधिकरण्यस्वपूर्ववृत्तित्वोभयसम्बन्धेन ज्ञानविशिष्टज्ञानान्यत्वाभिप्रायेणेति भावः। भेदे प्रमाणं = चरमधीतद्विषयादिभेदविषयिणी**

राजहंस

ज्ञानविशिष्टज्ञानान्यत्वाभिप्रायेणेति । यद्यपिव्यवहारदशायांज्ञानविशिष्टत्वमेवोक्तसम्बन्धाभ्यां ज्ञानानामायाति, सुषुप्तिमरणादिव्यवधानेऽपि ज्ञानपूर्ववृत्तित्त्वाक्षतेः । तथापि मुक्त्यव्यवहित प्राग्वर्तिज्ञाने एवता दृशान्यप्रसिद्धाय श्रुतेरन्ततस्तत्रैव सावकाशता दुर्वारा।

भारती

बुद्धि) की परम्परा का उच्छेद मानेंगे उसी बुद्धि को लक्ष्य कर श्रौत बुद्धि समस्त तत्तद्बुद्धि का विषय एवं विषयी (ज्ञान) के प्रवाह (परम्परा) को अद्वैत तत्त्व में स्थापन करती हुई किसी भी प्रमाण के द्वारा किसी भी विषय में (भेदादिविषयकत्वावच्छेदेन) बाधित नहीं हो सकती ।

तस्मात् - अन्तिम भेदबुद्धि से व्यतिरिक्त विषयों में तत्तद्भेद को विषय करने से श्रान्त अर्थात् सुषुप्त्यादिजनक अदृष्ट के द्वारा प्रतिबद्ध होकर यह बाधबुद्धि (भेदधी) की धारा जब निवृत्त अर्थात् चरमबुद्धि के भेद को सिद्ध करने में अयोग्य हो जाती है, तब पार्ष्णिग्राही (पृष्टगामिनी) श्रौतअद्वैतबुद्धि के द्वारा जीत ली जाती है अर्थात् बाधित हो जाती है ।

यदि कहें कि जहाँ उस पुरुष की बुद्धिधारा विश्रान्त (अप्रमाणतया ज्ञापित) हो जाती है वहाँ पुरुषान्तर की बुद्धि ही चरम बुद्धि के भेद में प्रमाण हो जायेगी,

श्रौतेन निश्चयेन तन्निवर्तनात्; तथाप्यनवस्थानादिति । अथ ब्रूषे यदा कियद्दूरं बुद्धिपरम्परया सा बाधिता भवत्यद्वैत-श्रुतिः तदा तन्न्यायात् याऽपि बुद्धिः शेषं गत्वा नानुव्यवसीयते

शारदा

भिन्नतया = स्वविषयज्ञानान्तरादिभिन्नतया । सा = चरमधीः। प्रमाणमिति । **तथाच तत्रैवानुमानादौ प्रमाणे श्रौताभेदबोधस्य नाप्रामाण्यग्रहास्कन्दनम् । साक्षिणापि मानान्तरसापेक्षेणैव स्वस्मिन् स्वभिन्नभेदग्रहः, अन्यथाऽन्तःकरणादिनऽभेदभ्रमानुपपत्तेरिति भावः तदपि = उक्तार्थे प्रमाणमपि । वाच्यमित्यनुषज्यते । त्वयैव सह कथाप्रस्तावात् पुरुषान्तरधीधाराया अपि क्वचिद्विश्रान्त्यावश्यकत्वाच्चेति भावः।** सम्भाव्यमानमिति। **भेदग्रहणमभेदग्रहाप्रामाण्यग्राहकं स्यादिति शेषः। एवं सति चरमधियः स्वविषयादितो भेदस्य सम्भावनैवाभेदनिश्चय यस्य प्रतिबन्धिकेत्युक्तं स्यात् , तच्चासङ्गतमित्याह** श्रौतेनेति। निश्चयेनेति । **नवादिपदघटितविप्रतिपत्त्यादिवाक्यादाहत्य संशयस्य सत्प्रतिपक्षदी-धित्यादावुक्तत्वेऽपि शब्दान्तरस्य निश्चयजनकत्वमेवेति भावः। तन्निवर्तनात् = भेदसम्भावना-प्रतिबन्धात् । भेदसम्भावना जातापि श्रौताभेदनिश्चयेऽप्रामाण्यग्रहमाधातुमशक्तेति तु तत्त्वम्। अतएव दीधित्यादौ विशिष्टपरामर्शस्यानुमितिकारणत्वे गौरवसम्भावनायाः प्रतिबन्धकत्वमाशङ्क्य ''सम्भाव्यते नतु सम्भावनं प्रतिबन्धकमि'' त्यक्तुम्। अन्यथा**

राजहंस

स्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वस्य द्वितीयसम्बन्धत्वे स्वविषयत्वस्य वा तृतीयसम्बन्धस्य निवेशे त्विदानिमपि तादृशान्यत्वस्य ज्ञानेषु प्रसिद्धिसम्भव इति भावः ।

गौरवसम्भवनाया इति । यद्यप्यनुमितित्वेन विशिष्टपरामर्शत्वेन च कार्यकारणभावनिर्णयं विना 'वह्निव्यापो धूमः' 'धूमवान् पर्वत्' इति ज्ञानद्वयसम्प्रतिपत्तिस्थले विशिष्टपरामर्शस्य निर्णयासम्भवेन गौरवनिणयो न सम्भवति, तथापि तादृशस्थलेऽपि विशिष्टपरामर्शस्य कल्पनाप्र-सङ्गेन गौरवसम्भावनाऽस्तीति सा कथितसामान्यकार्यकारणभावनिर्णयं प्रतिबध्नीयादितिभावः ।

भारती

तो यह कथन युक्ति सङ्गत नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर भी ''वह चरमबुद्धि उस पुरुषान्तर के द्वारा भी भिन्नतया ही प्रतीत होती है'' इस में आप को प्रमाण कहना होगा यदि अनुमानादि प्रमाण कहेंगे तो वहीं श्रोतअभेद बोध दत्तपद होगा । यदि कहें कि उसमें भी पुरुषान्तर की भेद बुद्धि ही प्रमाण हो जायेगी तो यह कहना सम्भव नहीं है (क्योंकि तुम्हारे ही साथ कथा प्रस्तुत है, न कि अन्य के साथ । एवं उस पुरुषान्तर की धीधारा की भी कहीं विश्रान्ति माननी होगी, जहाँ विश्रान्ति मानेंगे वहीं दत्तपदा अद्वैतश्रुति अद्वैत सिद्ध कर देगी) अतएव भेदबुद्धि अभेदबुद्धि के प्रामाण्य की साधिका है यह सम्भावना भी नहीं कर सकते क्योंकि धीधारा के विश्रान्ति स्थल में श्रुतिजन्य अद्वैत निश्चय द्वारा भेद निश्चय की सम्भावना का भी प्रतिबन्ध हो जायेगा और सम्भावना हो तब भी वह श्रोत अभेदबोध की प्रतिबन्धक नहीं हो सकती । अत एव नैयायिकों नें अनुमानप्रकरण दीधित्यादि में सम्भावना को प्रतिबन्धक

तत्रापि तद्बाधोऽवगम्यते यत्र सा बाध्यते तत्तुल्यन्यायत्वादन्तिमबुद्धेरपीति। मैवम्। किं कियतीषु बुद्धिषु व्याप्यव्यापकौ कावप्यवलम्ब्य

शारदा

घटत्वदण्डत्वादिसामान्यरूपेण कार्यकारणभावनिर्णयस्य विलोपापातादिति भावः। व्यभिचारशङ्कायां तर्कान्तरस्येवोत्कटैककोटिकसंशयरूपसंभावनायामपि तर्कस्यानवस्थाख्यस्यावतार्यमाणस्य विघटकत्वसम्भव इत्याशयेनाह तथापीति। **सम्भावनायाः स्वविषयेण भेदस्यावगाहनं बुद्ध्यन्तरेणैव वाच्यमिति भावः । यत्तु-भेदसम्भावनामनुपनयतोऽद्वैतिनः श्रुतिविषयानुपन्यासः, उपनयतश्च यथा भेदसम्भावनायमनवस्था, तथा तत्रतत्राऽभेदबोधनेऽपीति-तन्मन्दम् । श्रुतिघटककिञ्चनपदेनैवबोधनीयाभेदकस्योपस्थितत्वादद्वैतबोधस्य सर्वत्रोत्पन्नत्वात् । त्वया तत्राप्रामाण्यग्राहकतयोद्भाव्यमानस्य भेदसम्भावनस्यैवेदानीमनवस्थापादनेन विघटनीयत्वात् । अन्यथा मदीयशङ्कायामिव तवोत्तरेऽप्यनवस्थेति ब्रुवाणश्चार्वाको वराकस्त्वयापुरुषायुषैरपि जेतुमशक्यः स्यात् । कियद्दूरं = चरमबुद्धिव्यतिरिक्ते। बाधिता = अप्रामाण्यग्रहास्कन्दिता, तन्न्यायात्**

राजहंसः

विलोपापातादिति । दण्डादिरूपकारणस्य कार्यपूर्वमसम्प्रतिपत्तिस्थलेऽपि कल्पनीयता प्रसक्त्या सामान्यकार्यकारणभाववादिनो गौरवं सम्भाव्यत इत्युक्तरीत्यैव द्रष्टव्यम्, न तु तस्य निश्चयः, सामान्यकार्यकारणभावनिर्णयं विनोक्तस्थले कारणनिश्चयस्यासम्भवात्, तन्निश्चये तु गौरवनिश्चयस्याकिञ्चित्करतैव, सामान्यकार्यकारणभावनिश्चयस्य सम्पन्नत्वात् ।

किञ्चनपदेनैवेति । किंपदस्य सर्वनामतया विशिष्य तत्तदर्थसमर्पकत्वेऽपि चनशब्द समभिव्याहारेण किमपि नास्तीत्यादाविव प्रकृते निखिलप्रतियोगिकाभावबोध एवेत्यानुभविकः पन्था न त्याज्यः, निखिलप्रतियोगिकत्वं च विशेषधर्मावच्छिन्ना भावकूटेष्विह प्रतीतेषु वाऽनुगतधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकेऽभावे वेति त्वन्यदिति भावः ।

मदीयशङ्कायामिवेति । क्वचिद्व्यभिचारशङ्कायास्तर्केण निरासे तन्मूलभूतव्याप्तावपि व्यभिचारशङ्कायामनवस्था ।

भारती

नहीं माना है अन्यथा घटत्व दण्डत्व सामान्यरूपेण कार्यकारण भाव का विलोप हो जायेगा, और यदि भेद सम्भावना का प्रतिबन्ध न भी मानें तो उस भेद सम्भावना का भी स्वविषय के साथ भेद सिद्धि के लिए प्रमाणान्तर मानने में अनवस्था दोष आपतित होगा । अर्थात् व्यभिचार शंका में तर्कान्तर के सदृश उत्कटैककोटिक संशयरूप संभावना का भी अवतार्यमाण अनवस्थाख्य तर्क विघटक होगा ।

प्रश्न - जब कुछ दूर तक अर्थात् चरम बुद्धि से पूर्ववर्ती कुछ बुद्धियों में वह अद्वैतबुद्धि भेदबुद्धि की परम्परा से बाधित हो जाती है तब उसी दृष्टान्त (पूर्ववर्ती बुद्धि) में गृहीत व्याप्ति (या या बुद्धिः सा-सा स्वविषयेभ्यो भिन्ना इत्याकारक) के द्वारा ही – जिस बुद्धि के आगे सुषुप्तिभंगादि के भय से अनुव्यवसाय नहीं हो रहा

व्याप्तिग्रहरूपयैव धिया शेषबुद्धौ बाधं व्युत्पादयसीत्थमद्वैतश्रुतेः? किं वा बुद्ध्यन्तरदृष्टव्याप्तिसनाथया पक्षधर्महेतुमुल्लिखन्त्या

शारदा

= चरमधीव्यतिरिक्तधीरूपदृष्टान्तावगतव्याप्तेः। सा च बुद्धित्वे विषयभेदनिरूपिता। अधीनत्वं पञ्चम्यर्थोऽवगम्यते इत्यत्रावगमे, अग्रेऽध्याह्रियमाणभेदग्रहे चान्वेति। शेषं गत्वा = सुषुप्त्याद्यव्यवहितपूर्वक्षणोत्पत्तिकतामासाद्य । तत्रापि तद्बाधः= चरमबुद्धिनिष्ठमभेदधीबाधकत्वमप्रामाण्यज्ञापकत्वरूपम्। अवगम्यते इति। भेदग्रहद्वारेति शेषः । तेनात्रोक्तव्याप्तिग्रहरूपाया अनुमितिरूपाया वा धियोऽग्रे बाधात्मताभिधानस्य नासङ्गतिः, नहि बाधकताविषयग्रहस्य बाधरूपत्वमपि तु भेदविषयकस्यैव। दृष्टान्तपक्षसाध्यान्यभिधाय हेतुमभिधातुमाह यत्रेति। तत्तुल्यन्यायत्वात् = बुद्धित्वाविशेषात्। तथाच चरमबुद्धेरपि बुद्धित्वाद्बुद्ध्यन्तरवत्स्वविषयाभिन्नत्वात् सम्भवत्यभेदग्रहाप्रामाण्यज्ञापकत्वमिति भावः । व्याप्यव्यापकौ बुद्धित्वस्वविषयभिन्नत्वरूपौ । अवलम्ब्य = गृहीत्वा । व्याप्तिग्रहरूपया धियेति । बुद्धित्वव्यापकस्वविषयभिन्नत्वसमानाधिकरणं बुद्धित्वमिति धियेत्यर्थः । अत्र व्यापकतागर्भेऽधिकरणत्वेन रूपेण चरमबुद्धेरपि प्रविष्टत्वात् तेन रूपेण तत्रापि स्वविषयभिन्नत्वस्यात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वग्रहात् तादृशव्याप्तिधियस्तत्रापि तेन रूपेण स्वविषयाभेदग्रहप्रतिबन्धकत्वसम्भवः, अभेदस्य भेदाभावरूपत्वात् । बुद्धित्वावच्छेदेनैव च स्वविषयाभेदग्रहस्य मया विघटनीयत्वात् । किञ्च 'चरमधीः स्वविषयभेदभाववतीति' बुद्धौ स्वविषयभेदव्यभिचारो बुद्धित्वे भासते, तत्र चरमधीत्वसामानाधिकरण्यस्य तादृशभेदाभावे भाने उक्तव्यभिचारभानस्यानिवार्यत्वात् । अतएव धर्मितावच्छेदकसामानाधिकरण्येनाभावविशिष्टबुद्धेर्धर्मितावच्छेदके प्रतियोगिव्यभिचारावगाहित्वं परामर्शगादाधर्यामुक्तम्। तथाच व्यभिचारबुद्धेर्व्यापकताग्रहप्रतिबध्यतायाः पक्षधरमिश्रादिभिः स्वीकारादस्मदभीष्टनिर्वाहः। किञ्चोक्तचरमधीविशेष्यकबुद्धेर्व्यभिचारधीरूपत्वे मूलस्थव्याप्तिग्रहपदेन स्वविषय-

भारती

है उस अन्तिम बुद्धि में भी स्वविषयभेद निश्चय हो जायेगा और उसी भेदग्रह के द्वारा श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि का बाध भी हो जायेगा क्योंकि जिस बुद्धित्व हेतु के द्वारा पूर्ववर्ती बुद्धियों में स्वविषयभेद सिद्ध हुआ था वह बुद्धित्वहेतु चरमबुद्धि में भी विद्यमान है। (तथा च - चरमबुद्धिः स्वविषयेभ्यो भिन्ना बुद्धित्वात् पूर्वबुद्धिवत् इस रीति से चरमबुद्धि में भी अनुमितिरूपभेद निश्चय के द्वारा श्रोतअद्वैतबुद्धि का बाध हो जायेगा। अतः चरमबुद्धि में भी श्रोतबुद्धि को अद्वैत सिद्ध अर्थात् स्व में अद्वैतविषयकतया प्रामाण्य ज्ञापन करने का अवसर नहीं है।

समाधान - क्या कुछ पूर्वबुद्धियों में बुद्धित्व और स्वविषयभिन्नत्व रूप व्याप्य व्यापक का ग्रहण कर जायमान व्याप्तिग्रह रूप बुद्धित्वव्यापकस्वविषयभिन्नत्वसमानाधिकरणं बुद्धित्वम् " इत्याकारक बुद्धि के द्वारा ही चरमबुद्धि अद्वैत श्रुति का

बुद्ध्याऽन्तिमबुद्धिविषयया? नाद्यः व्याप्तिबुद्धिर्यदि विषयविशेषेऽपि स्वातन्त्र्येण बाधात्मिकोपेयते तदा सैव विशेषबुद्धिरपि स्यादिति गतमनुमानकथया। अथानुमितिमभ्युपैषि, तदा सा नात्मानमपि

शारदा

भिन्नत्वव्याप्यं बुद्धित्वमिति ग्रहोऽपि शक्यग्रहः। तस्य तादृशबुद्धिबाधकताया निर्विवादत्वात्। किञ्च बुद्धिः स्वविषयभिन्नेत्यवच्छेदकधर्मदर्शनस्यापि संसर्गतया व्यापकताविषयकत्वेन तादृशबुद्धिप्रतिबन्धकतासम्भव इति भावः। द्वितीयकल्पे वक्ष्यमाणस्य दोषस्यात्रकल्पे न सम्भवः, व्यापकतादिविषयकबुद्धौ स्वविषयाभेदग्रहस्यापि तादृशव्यापकतादिबुद्धिबाध्यत्वादिति द्रष्टव्यम्। श्रुतेरिति। **निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थो बाधान्वयी। व्याप्तिसनाथया = व्याप्तिग्रहजनितया व्याप्तिविषयिकया वा। पक्षधर्महेतुमुल्लिखन्त्या = हेतोः पक्षवृत्तिताविषयिकया। स्वविषयभिन्नत्वव्याप्यबुद्धित्ववती चरमबुद्धिः स्वविषयभिन्नत्ववतीत्यनुमित्येत्यर्थः। चरमबुद्धिस्तादृशभिन्नत्ववतीति धियैव प्रकृतनिर्वाहेऽपि विधेये उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्वभानस्य व्युत्पत्तिसिद्धतामुपेत्य हेतुकालीनसाध्यस्यानुमितौ भानार्थमुदयनाचार्यैः स्वीकृतस्यानुमितौ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्योपगमेनैवोक्ताकारानुमितेरुक्तिः। नचैवं व्याप्तिसनाथशब्देन व्याप्तिविषयकत्वाभिधानमयुक्तम् हेतुमात्रस्योद्देश्यतावच्छेदकत्वेनैवतत्कालीनत्वस्य साध्ये भानसम्भवादिति वाच्यम्; पूर्वं साध्यव्याप्यत्वेन हेतोरुपस्थितत्वात् सामग्रीसत्त्वेन तेन रूपेणैव हेतोरनुमितावपि भानादित्याशयात्। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्याप्रामाणिकत्वे तु** बुद्ध्येत्यन्तेन **परामर्श एवोक्तः जन्यत्वं तृतीयार्थः। तथाच तादृशपरामर्शजन्ययान्तिमबुद्धिविशेष्यकस्वविषयभेदसाध्यकानुमित्येत्यर्थः। चरमधीः स्वविषयाभिन्नेतिधीनिर्वाह्यस्य बुद्धित्वव्यापकत्वग्रहेण निर्वाहवत्, पर्वतो वह्निमानित्यनुमित्या निर्वाह्यस्यापि धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति परामर्शेनैव निर्वाहोऽस्त्विति तत्रातिरिक्तानुमितिमुपगम्य पर्वतो वह्निमान्नवेत्यादिसंशयविघटनोपगमो न स्यात् अनुमिनोमीत्यनुव्यवसायविषयतायास्तादृशपरामर्शे एव कल्पनसम्भवादित्याह** व्याप्तिबुद्धिरिति।

राजहंसः

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्याप्रामाणिकत्वे त्विति। व्याप्तिघटकसामानाधिकरण्ये कालभानेनैव धूमकालिकवह्निभानसम्भवात्। न च धूमालोकादितत्तल्लिङ्गकपरामर्शानां व्यभिचारवारणायाव्यवहितोत्तरत्वघटितकार्यकारणभावाकल्पनेन लाघवमेव मानम्, तस्य तर्कतया प्रमाणसहकारित्वसम्भवेऽपि स्वयमप्रमाणत्वात्, तदनुग्राह्यस्य प्रमाणस्य च

भारती

बाध अर्थात् अप्रामाण्यज्ञापन करते हो, अथवा पूर्वबुद्धियों में गृहीत व्याप्तिग्रह जन्य पक्षधर्महेतु में पक्षवृत्तिता का उल्लेख (विषय) करने वाली एवं अन्तिम बुद्धिविषयक (पक्षक) स्वविषयभिन्नत्व व्याप्य बुद्धित्ववतीचरमबुद्धिः स्वविषयभिन्नत्व- वती इत्याकारक अनुमितिरूपा बुद्धि के द्वारा। इनमें प्रथम पक्ष युक्त नहीं है, क्योंकि यदि व्याप्तिज्ञान को ही विषयविशेष (अद्वैतबुद्धि) में स्वतन्त्रता से ही अर्थात् अनुमिति उत्पन्न

धर्मीकृत्य प्रवर्तते इति तत्रैव दत्तपदा सर्वामद्वैतश्रुतिः परम्परामालम्बते इत्युक्तमावर्तते।

अथ सर्वा विवादाध्यासिता बुद्धयः स्वविषयेभ्यो भिन्ना

शारदा

विषयविशेषे = तद्विशेष्यकतत्प्रकारकज्ञानप्रतिबध्ये तद्विशेष्यकतदभावप्रकारज्ञाने । स्वातन्त्र्येण=तद्विशेष्यकतत्प्रकारकानुमितिमनुत्पाद्यैव बाधात्मिका = बाधिका । विशेषबुद्धिः =पक्षेसाध्यविषयिणी। अनुमानकथया = परामर्शोत्तरानुमितिस्वीकारेण। अयम्भावः— मणिमन्त्रादिन्यायेन व्यभिचारग्रहप्रतिबन्धकताया व्यापकताबुद्धावप्रामाणिकत्वेन विरुद्धविषयकत्वस्य च विरहेण चरमधीः स्वविषयभेदाभाववतीति बुद्धिं प्रति न बुद्धित्वव्यापकत्वेन स्वविषयभेदग्रहस्य प्रतिबन्धकतासम्भवः । समानाकारकतायामेव प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावात् । अतएव स्वविषयभेदव्याप्यं बुद्धित्वमितिधियोऽपि न तत्प्रतिबन्धकता तत्र भेदाभावसमानाधिकरणताया बुद्धित्वे संसर्गतया भानात्, व्याप्तिबुद्धौ च भेदावद्वृत्तित्वस्य प्रकारतया भानात् । किञ्च, हेतुघटितपक्षतावच्छेदकस्थले सर्वत्रैव त्वदुक्तरीतेर्वक्तुं शक्यत्वेनोदाहरणस्योपनयस्यैव वा प्रयोगः स्यात् नतूद्देश्यीभूतानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दजनकप्रतिज्ञायाः, तदन्यस्य वा तदिदमप्युक्तंगतमनुमानकथयेति । **प्रतिज्ञादिघटितन्यायप्रयोगेण गतमित्यर्थः । अनुमितिमात्रोच्छेदस्तु न, व्याप्तिव्यापकत्वयोरतीन्द्रियत्वेनानुमितिं विना प्रायो व्याप्त्यादिबुद्धेरेवासम्भवात्, तस्या एवानुमितित्वापादनस्य विवक्षितत्वाच्च । विषयित्वस्य स्वविषयभिन्नत्वव्याप्यत्वविवक्षायामपि चरमधीः स्वविषयाभिन्नेत्यत्र धीत्ववद्विषयित्वस्यापि बुद्धौ भानात्**

राजहंसः

लिङ्गोपहितलिङ्गिभानेऽ भावादितिभाव ननु व्याप्तिधीरपि सामानाधिकरण्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकं साध्यभावस्याभावमवगाहमनेह विवक्षणीयेत्यरुचेराह किञ्चेति । व्याप्तिव्यापकत्वयोरतिन्द्रियत्वेनेति इदमुपपादितम नुमानखण्डनशारदायाम् । शब्देन क्वचित्तयोर्ग्रहमादृत्याह प्राय इति ।

भारती

न करके ही बाधक मान लें तो वही (व्याप्तिज्ञान) विशेषबुद्धि (पक्ष में साध्य विषयिणी) भी मानी जा सकती है ऐसी स्थिति में अनुमिति मानना ही व्यर्थ हो जायेगा । तात्पर्य यह है—ग्राह्याभावगाहि ज्ञान ही प्रतिबन्धक होता है । अतः चरम बुद्धि विशेष्यक स्वविषयभिन्नत्वाभाववत्त्वप्रकारक ज्ञान के प्रति प्रतिबन्धकतया ही चरमबुद्धि-विशेष्यक स्वविषयभिन्नत्वाभाववत्त्व प्रकारका ज्ञान के प्रति प्रतिबन्धकतया ही चरमबुद्धि विशेष्यक स्वविषयभिन्नत्वप्रकारक अनुमिति आप मानते हैं । वहाँ यदि व्याप्तिज्ञान के द्वारा ही उक्त अभाववत्वप्रकारक ज्ञान का प्रतिबन्ध मान लें तो तदर्थ उक्त अनुमिति ज्ञान मानना व्यर्थ है) और यदि आप अनुमिति को ही बाधक मानते हैं, तो वह अनुमिति अपने आप को पक्ष बनाकर स्वविषय भेद की साधक नहीं हो सकती । अतः उसी (अनुमिति रूप बुद्धि) में दत्तपदा होकर (पक्ष बनाकर) अद्वैत श्रुति समस्त विषयविषयी प्रवाह में अद्वैत (अभेद) को सिद्ध कर देगी, इस उक्त युक्ति का ही आवर्तन किया जाता है ।

बुद्धित्वाद् घटपटबुद्धिवदिति सामान्याकारेणात्मानमपि धर्मीकृत्यात्मनोऽपि स्वविषयाद्भेदं साधयिष्यत्यनुमेति मन्यसे; मैवम्, एवमपि विषयिणो विषयस्याभेदं बोधयन्ती श्रुतिरनुमान-

---

शारदा

स्वविषयेत्यस्य स्वनिष्ठविषयिताकेत्यर्थकत्वात् निरुक्तशङ्कासमाधानयोस्तुल्यत्वात्। अन्यत्तु बुद्धित्वाघटितं स्वविषयभिन्नत्वव्याप्यं दुर्वचम्, निर्विषयकसाधारणस्य स्वविषयाप्रसिद्ध्या व्यभिचारित्वात्। बुद्धिःस्वविषयभिन्नेति बुद्धित्वावच्छेदेन स्वविषयभेदग्रहे तु बुद्धित्वेन गृह्यमाणचरमबुद्धौ स्वविषयभेदग्रह अवश्यम्भावी, तत्सामग्रीसत्त्वात् । अतएवावच्छेदकधर्मदर्शनस्य न क्वापि प्रतिबन्धकत्वं युक्तिसहम्, विशिष्टबुद्धेस्तत्रा-वश्यकत्वात् । कथमन्यथोद्बुद्धसंस्कारस्य नानुमितिहेतुत्वं तत्सत्त्वे स्मृतेरावश्यकत्वादिति तार्किकोक्तिः सङ्गच्छेतेति । तथा च चरमबुद्धिः स्वविषयभिन्नेत्यत्र श्रुतिपादारोपणं बाध्यबाधकयोरैक्ये चेति । कथयेत्यनेन चेदं सुचितम्—**बुद्धित्वे स्वविषयभिन्नत्व-व्याप्तिरेवानुपपन्ना, स्वपदस्य बुद्धिसामान्यपरत्वे बुद्धेरपि बुद्ध्यन्तरविषयत्वेन स्वस्मादपि स्वभेदप्रसङ्गात्, एकत्रविषयविषयिभावोपगमपक्षे सुतराम् । एवं यत्किञ्चिद्बुद्धिपरत्वेऽपि व्यभिचारः। तथाच धीविशेषस्यैव स्वविषयभिन्नत्वनियमो वाच्य इत्यनुगतव्याप्तेरभावे क्व तद्बलाच्चरमबुद्धौ भेदसाधनमिति ।**

विवादेत्यादि सिद्धसाधनपरिहाराय दृष्टान्तबुद्धिं पक्षेऽनन्तर्भावयितुम् । सामान्याकारेण = बुद्धित्वेन । आत्मशब्दोऽत्र सन्दर्भे स्वपरः । उक्तस्वत्वघटिततत्वनिबन्धनदूषणसत्वे

राजहंसः

तत्सामग्रीत्त्वादिति । विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिपरामर्शस्यासम्पत्तिस्तु न कामपि हानिमानयति, तस्यैव कारणतेतिमतस्यानुमानमानभङ्गे भग्नीकृतत्वात् ।

विशिष्टबुद्धेस्तत्रावश्यकत्वादिति । बाधनिश्चयोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्धिवारणाय तत्सामग्र्या अपि प्रतिबन्धकत्वमावश्यकमिति तु न वाच्यम् , बाधनिश्चयाभावस्य कार्यसहवर्तितया कारणत्वकल्पनसम्भवात् । न चैवं सिद्ध्यभावस्याप्यनुमितौ तथैव हेतुता स्यादिति विनाऽनुमित्सामनुमिति र्न कदापि स्यादनुमितिरूपसिद्धेः सत्त्वादिति वाच्यम्, प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावानुगमाभावेनैकत्रैवमित्यन्यत्रापि तथा स्यादित्यस्यावाच्यत्वात्, सिद्धेरप्रतिबन्धकताया अनुमामानशारदायामुक्तत्वाच्च ।

पक्षेऽनन्तर्भावयितुमिति । एवं च नेयमनुमितिःसर्वपदोपादानेऽप्यवच्छेद कावच्छेदेन, सर्वपदं तु दृष्टान्तबुद्धिभिन्नयावद्बुद्धिलाभायेतिभावः ।

भारती

प्रश्न – सर्वा विवादाध्यासिता बुद्धयः स्वविषयभ्यो भिन्नाः बुद्धित्वात् घटपटबुद्धिवत् (विवादास्पद सभी बुद्धियाँ स्व स्वविषय से भिन्न है बुद्धि होने से घटपटबुद्धि के समान) इत्याकारकासामान्याकार (बुद्धित्वरूप) से अनुमिति (सर्वशब्द के अन्तर्गत होने से) अपने आप को भी पक्ष बनाकर स्वविषयों से भेद को सिद्ध कर देगी । (तस्मात् अद्वैत साधन का अवसर नहीं है ।)

मप्यनवकाशयति। विषयिविषययोर्मिथोभेदेपि साध्येऽस्तु हेत्वनुयोगः। परबुद्धीस्तद्विषयांश्च प्रति निराबाधा सती श्रुतिरेकस्या बुद्धेर्विषयादपराम्परस्याश्च विषयात्परामभेदबोधाय धावन्ती सवद्विते

शारदा

एवाह-एवमिति। **विषयिणः=विषयिप्रतियोगिकं विषयानुयोगिकमभेदम्। उक्तानुमित्या तु विषयप्रतियोगिक एव भेदो गृह्यते। अभेदं बोधयन्ती=अभेदांशेऽगृहीताप्रामाण्यिका।** अनुमानमिति। **विषयप्रतियोगिकभेदस्य विषयिणि सिद्धौ तदन्यथानुपपत्त्या विषयिप्रतियोगिकभेदस्यापि विषये सिद्धिर्यद्यपि सम्भवति, तथापि साऽर्थापत्तिरेव स्यात् नत्वनुमितिः, सा च परतो निरसनीयेति भावः।** हेत्वनुयोग इति। **विषयो विषयिणो भिन्न इत्यत्र विषयत्वं न हेतुः, ज्ञेयत्वस्य त्वन्मते केवलान्वयित्वेन विषयिणोऽपि विषयत्वाद्व्यभिचारात्। विषयिभिन्नत्वस्य हेतौ निवेशस्तु साध्यसिद्धिमपेक्षते। विषयविषयिणौ मिथो भिन्नौ विषयत्वविषयित्वान्यतरवत्त्वात्, विषयत्वाद्वेति तु बालालापः । विषयो विषयिणो विषयी च विषयाद्भिन्न इत्यतोऽतिरिक्तस्य प्रतिज्ञार्थस्याभावेन साध्यपक्षैक्याभावादनुमित्यैक्यानुपपत्तेः, नहि शब्दानुगमेनार्थानुगमः । अतएव शब्दमणिमाथुर्यां परस्परत्वस्याननुगत्वमवाचि । स्वत्वाननुगमेन यत्किञ्चिद्बुद्धेरेवयत्किञ्चिद्विषयाद्भेदस्य साधयितुं शक्यत्वेनापरबुद्धितद्विषयैः सहबुद्ध्यन्तरादेरभेदबोधने श्रुतेः प्रामाण्यविघटको न किञ्चिदित्याह**-परबुद्धीरिति। **परबुद्धितद्विषयैः सहान्यबुद्ध्यादेरभेदविषयकत्वावच्छेदेनाप्रामाण्यज्ञापकविरहिता सतीत्यर्थः । अपराम्परां बुद्धिं धावन्तीत्यन्वयः। अभेदबोधाय**

राजहंसः

अभेदांशेऽगृहीताप्रामाण्यिकेति । उक्तानुमिते 'र्विषयो विषयिभिन्नत्वाभाववान्' इतिमितिसमानाकारवाभावात् ।

भारती

समाधान – इस अनुमिति से बुद्धि (ज्ञान) में विषय का अर्थात् विषयप्रतियोगिक भेद ही सिद्ध किया गया है न कि विषय में बुद्धि का अर्थात् बुद्धिरूप विषयीप्रतियोगिक । अतः विषय में विषयि (ज्ञान) के अभेदसाधन में बाधक न होने से सावसर अद्वैतश्रुति अद्वैत (अभेद) सिद्ध करती हुई अनुमान को अनवकाशित कर देगी । यहां यह भी ज्ञातव्य है - यद्यपि विषयप्रतियोगिक भेद विषयि में सिद्ध होने पर तदन्यथानुपपत्त्या विषयिप्रतियोगिक भेद भी विषय में सिद्ध हो ही जायेगा तथापि वह अर्थापत्ति ही होगी । न कि अनुमिति, और अर्थापत्ति का निरास तो आगे किया जायेगा ।

प्रश्न– विषयि और विषय के परस्पर में भेद सिद्ध करने के लिए भी ''विषयविषयिणौ मिथो भिन्नौ विषयत्वविषयित्वान्यतरवत्वात्'' इत्याकारक अनुमान करेंगे ।

समाधान – इस अनुमिति के द्वारा-विषय विषयि से एवं विषयि विषय से भिन्न है यही सिद्ध होता है इस के अतिरिक्त प्रतिज्ञात अर्थ के न होने से साध्य पक्ष के ऐक्य न होने से एक अनुमिति होना सम्भव नहीं है । इस शंका समाधानात्मक प्रघट्ट का यह तात्पर्य है –

एव पर्यवस्यतीति। न च शक्यमनुमातुं सर्वस्या बुद्धेर्विषयात्सर्वा बुद्धिर्भिन्नेति, माभूदन्यबुद्धिविषयादात्मनोऽपि बुद्धिर्भिन्नेति। न चात्मव्यतिरिक्तादित्युक्ते निस्तारः स्यात् । अद्वैतवादिनः

शारदा

=अभेदप्रकारकबोधोद्देशेन धावन्ती=विषयीकुर्वती । अत्रैव विषयादिति पञ्चम्यन्तद्वयार्थस्य विषयावगाहनपूर्वकत्वस्यान्वयः। विषयपदं च बुद्धेरप्युपलक्षणम्। एकबुद्धितद्विषयस्यापरबुद्धितद्विषयस्य च योऽभेदस्तद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यप्रकारकग्रहविशेष्यतावतीति तु निष्कृष्टार्थः। किञ्चनपदबलात्सर्वस्य सकृदेव विषयीकृतत्वात्, अभेदबोधस्य पूर्वमुत्पन्नत्वादनुद्देश्यत्वात् प्रामाण्यप्रकारकग्रहविशेष्यताविशिष्टस्योद्देश्यत्वे तु तादृशविशेष्यतायामेव तथात्वपर्यवसानात् । श्रुतेःसविषयकत्वं च तज्जन्यज्ञानानुबन्धि। सर्वाद्वैत इति। **घटादेस्तद्बुद्धेश्च पटादितद्बुद्धिभ्यां सहाभेदे श्रुतिप्रमाण्यत्वस्य घटपटाद्यभेदे तत्प्रमाणत्वं विनानुपपत्तेः।** अनुमातुमिति। **बुद्धित्वेन हेतुनेति शेषः।** भिन्नेति। **तथा च नोक्तरीत्यापि श्रुतिः सावसरेति भावः । निस्तारः = उक्तदोषाभावः । स्वव्यतिरिक्तत्वं**

भारती

यदि कहें कि विषयिविषय का परस्पर भेद भी साध्य किया जा सकता है । अस्तु इसका भी क्या तात्पर्य है क्या विषय विषयि से भिन्न है ऐसा मानें तो हेतु क्या होगा यदि विषयत्वात् हेतु कहें तो विषयि भी विषय है क्योंकि ज्ञेयत्व हमारे मत में केवलान्वयी है तथा च विषयत्व विषयी में भी रह गया अथ च विषयिभेद न रहने से व्यभिचार हो गया, यदि कहें कि विषयिभिन्नत्व हेतु में निवेश करेंगे तो पूर्वसाध्यसिद्धि अपेक्षित है । यदि कहें कि विषयविषयिणौ मिथोभिन्नौ विषयत्व विषयित्वान्यतरवत्वात् - विषयत्वाद्वा तब इससे यही आता है । विषय विषयि से और विषयि विषय से भिन्न है - इससे अतिरिक्त प्रतिज्ञा विषयी भूत अर्थ है ही नहीं और शब्द के अनुगम से अर्थ का अनुगम तो होता नहीं, अतः साध्य पक्ष के ऐक्य न होने से अनुमिति एक कैसी होगी, तथा प्रत्येक अनुमिति में दोष दे ही दिया है । एवं स्वत्व के अननुगत होने से यत्किञ्चित् बुद्धि का ही यत्किञ्चित् विषय से भेद सिद्ध मानना होगा । अतः पर बुद्धि और उस बुद्धि के विषय के साथ अन्यबुद्धि और उस बुद्धि के विषयों का अभेद सिद्ध करने में निर्बाध (अप्रामाण्य ज्ञापक से रहित) होती हुई एवं एक बुद्धि के विषय से अन्य बुद्धि का और अन्य बुद्धि के विषय से एक बुद्धि का अभेद बोध करती हुई अद्वैतश्रुति सर्वाद्वैत (सभी पदार्थों के अभेद) सिद्ध करने में ही पर्यवसित (विश्रान्त) होगी ।

यदि कहें कि बुद्धित्व हेतु के द्वारा सभी बुद्धियों के विषयों से सभी बुद्धियों का भेद सिद्ध करेङ्गे (सर्वा बुद्धयः सर्वस्या बुद्धेर्विषयाद्भिन्नाः बुद्धित्वात्) इति । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार - मानने पर अन्यबुद्धि का विषयभूत-स्वयं बुद्धि अपने आप के साथ भी भिन्न सिद्ध होने लगेगी । यदि कहें कि साध्य

सर्वाभेदमिच्छतः क्वचिदपि तदसिद्ध्या विशेषणाप्रसिद्धेरिति। एतेन 'सर्वं भिन्न'मितिवाक्येन, विना बाधं स्वतः प्रमाणेन, सत्प्रतिशब्दा सेयमद्वैतश्रुतिरित्यप्यनवकाशं प्रत्यवस्थानं मन्तव्यम्। यस्मात्कस्मादपि भेदे मिथ्यातः सत्यभेदोपगमेन सिद्धसाधनात्। सर्वस्मादिति स्वतोऽप्यापत्तेः, स्वव्यतिरिक्तादिति चाद्वैतवादिन्यव्यवच्छेदकम्। तदेवम् -

हेत्वाद्यभावसार्वज्ञ्ये सर्वं पक्षयताऽऽस्थिते ।

शारदा

पारमार्थिकं मन्नयेऽप्रसिद्धम्, आविद्यकं तु तवापसिद्धान्तापादकमिति न तन्निवेशसम्भवः। न च सामान्यतोऽपि तन्निवेशः, आविद्यकभेदस्य मयोपगमेऽपि तदभावस्यापि मयोद्भावनीयत्वात्, अन्यथा मिथ्यत्वानुपपत्तिरित्याशयेनाह-अद्वैतवादिन इति। विनेति। **धियामौत्सर्गिकप्रमात्वे तार्किकाणामप्यविवादात् , उक्तं ह्येतत्परामर्शगादाधर्यामिति भावः। सत्प्रतिशब्दा = सन् = विद्यमानो विरोधी शब्दो यस्याः सा।**

एतेनेत्यस्यातिदेश्यमाह यस्मादिति । भेदे इति **प्रतिपिपादयिषिते इति शेषः।** मिथ्यात-इत्यादि । **मिथ्याप्रतियोगिकस्य तदनुयोगिकस्य वा ब्रह्मानुयोगिकस्य तत्प्रतियोगिकस्य वा भेदस्याविद्यकस्योपगमेनेत्यर्थः। मिथ्याभूतयोरप्याविद्यकपरस्परभेदस्येदमुपलक्षणम्। तथाच व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वेन व्यावहारिकं प्रामाण्यमस्तु तादृशवाक्यस्येति भावः। सर्वस्मादित्येवं प्रतियोगिनोऽभिधाने इत्यर्थः। एवमग्रेऽपि। अत्र कल्पे सिद्धसाधनासम्भव इति भावः।** स्वत इत्यादि । **स्वस्मिन् स्वप्रतियोगिक-भेदस्याप्यापत्तेरित्यर्थः। तथाच बाधकसत्त्वान्न तद्वाक्यस्य प्रामाण्यसम्भव इति भावः।**

भारती

में स्वव्यतिरिक्तत्वविशेषण देकर सर्वाबुद्धयः स्वव्यतिरिक्तात् सर्वबुद्धिविषयाद् भिन्ना बुद्धित्वात् ऐसे अनुमान करने से पूर्वोक्त दोष नहीं आयेगा । तो यह कथन भी असंगत है, क्योंकि समस्त पदार्थों के अभेद (अद्वैत) मानने वाले अद्वैतवादी के मत में स्वव्यतिरिक्तत्व विशेषण के कहीं भी सिद्ध न होने से उक्त अनुमान में विशेषणाप्रसिद्धि दोष आ जायेगा ।

इससे यह कहने का भी अवसर नहीं है कि ''सर्वं भिन्नम् (सभी पदार्थ भिन्न है) यह वाक्य बाधक के न होने से स्वतः प्रमाण माना जाता है इसी वाक्यजन्य ज्ञान से अद्वैतश्रुति (श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि) का बाध हो जायेगा''। क्योंकि इस वाक्य के द्वारा जिस किसी का अर्थात् यत्किञ्चित् अनुयोगिक यत्किञ्चित् प्रतियोगिक भेदसिद्ध करना ही यदि विवक्षित हो तो मिथ्या से सत्य का अर्थात् मिथ्याप्रतियोगिकब्रह्मनुयोगिक अथवा ब्रह्मप्रतियोगिक मिथ्यानुयोगिक आविद्यक भेद तो हम मानते ही हैं अतः उक्त वाक्य ने सिद्ध (निश्चित) का ही कथन किया इसलिए सिद्धसाधन हैं अर्थात् अज्ञात ज्ञापकत्व रूप प्रामाण्य नहीं है । (व्यवहारकाल में अबाधित होने से व्यावहारिक प्रामाण्य

किञ्चित्तु त्यजता दत्ता सैव द्वारद्वयश्रुतेः ।। ९ ।।
अतएव च - आद्यधीवेद्यभेदीयाऽप्यन्यथानुपपन्नता ।

शारदा

अद्वैतवादिनि = तन्मते । अव्यवच्छेदकमिति। **तथा च यतः कुतश्चिदेव भेदस्य त्वया साधनीयत्वात् तदप्रतियोगिनोऽभेदांशे श्रुतेर्नाप्रामाण्यग्रहसम्भव इति भावः**। हेत्वादीति। **सर्वस्य पक्षीकरणे हेतोरपरिशेषः पक्षैकदेशस्य हेतुत्वे स्वस्मिन् स्वावृत्तेर्भागासिद्धिः। तद्भिन्नत्वस्य पक्षतावच्छेदकघटकत्वं त्वद्वैतिनोऽनाविद्यकभेदाप्रसिद्ध्याऽसम्भवि। एवं साध्यदृष्टान्तयोरपि पक्षैक्यात् बाधो दृष्टान्तासिद्धिश्च । भेदप्रतियोग्यनुयोगिनोर्विशिष्यैव तत्तद्रूपेण पक्षसाध्यकुक्षिनिक्षेप्यत्वात् सार्वज्ञ्यापत्तिः । अन्यथा पटस्य घटेन द्रव्यत्वादिना भेदाभावात्तेन रूपेण भेदसिद्धावनिष्ठप्रसङ्गोऽर्थान्तरञ्च स्यात्। आस्थिते=स्वीकृते, सर्वं पक्षयतस्तवापन्ने इति यावत् । एतदापत्तिभिया कस्यचित्पक्षबहिर्भावे तु तत्र भेदासिद्ध्याऽप्रतिबद्धा श्रुतिरुक्तरीत्या सर्वाभेदे प्रामाण्यमासादयति । सा = पक्षबहिष्कृतव्यक्तिरूपा द्वाः = सर्वाभेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यग्रहविशेष्यतौपयिक-**

भारती

उक्त वाक्य का मानते ही हैं ।) और यदि सभी से सब का भेद करना विवक्षित है तो स्वयं भी स्वयं से भिन्न होने लगेगा अर्थात् स्व में भी स्वप्रतियोगिक भेद की आपत्ति हो जायेगी । यदि स्वव्यतिरिक्त विशेषण देंगे तो अद्वैतवादी के मत में पारमार्थिक स्वव्यतिरिक्तत्व के कहीं भी सिद्ध न होने से अव्यावर्तक विशेषण हो जायेगा। यदि आविद्यकस्वव्यतिरिक्तत्व मानें तो आपका अपसिद्धान्त हो जायेगा । तस्मात् उक्त वाक्य के द्वारा भी अद्वैतश्रुति का बाध नहीं हो सकता । अपितु भेद सिद्ध करने में अद्वैत श्रुति रूप बाधक के विद्यमान होने से भेद रूप अर्थ में उक्तवाक्य का प्रामाण्य मानना संभव नहीं है । तदेवम् उक्तप्रकार से -

सर्वं सर्वस्मात् भिन्नम् (सभी पदार्थ सब से भिन्न है) इत्याकारक प्रतिज्ञा वाक्य में सर्व को पक्ष रूप से स्वीकार करने पर सर्वरूपपक्ष के अतिरिक्त हेत्वादि (हेतु साध्य दृष्टान्त) का अभाव हो जायेगा । (यदि पक्ष के एक देश को हेतु मानें तो स्व (पक्ष) में स्व (हेतु) अवृत्ति होने से भागासिद्धिदोष हो जायेगा । यदि पक्ष में हेतुभिन्नत्वविशेषण देंगे तो अद्वैतवादी के मत मे भेद (पारमार्थिक भेद) के अप्रसिद्ध होने से असम्भव हो जायेगा। एवं साध्य-दृष्टान्त के सर्वरूपपक्ष से अभिन्न होने से बाध तथा दृष्टान्तासिद्धि दोष हो जायेगी । किञ्च भेद के प्रतियोगी अनुयोगी को तत्तद् (भिन्न) रूप से पक्ष साध्य के अन्तर्गत मानेंगे तो सर्वज्ञता के बिना सर्व का प्रातिस्विक रूप से ज्ञान हो नहीं सकता, अतः सर्वज्ञतापत्ति हो जायेगी ।) सर्वरूप पक्ष का ज्ञान भी असर्वज्ञ के द्वारा दुर्विज्ञेय अतः सर्वपक्षक के अनुमिति मानने से कुछ भी पक्ष से बहिर्भूत (भिन्न)

स्वज्ञानापेक्षणादन्ते बाधते नाद्वयश्रुतिम् ।। १० ।।

नच संस्कारारूढदृढान्वयव्यतिरेकान्वयव्यतिरेकान्वयप्रतिपत्त्युत्पत्ति-प्रतिबन्धः शक्यशङ्कः। यतः—

शारदा

प्रामाण्यग्रहविशेष्यतावच्छेदकं यदभेदविषयकत्वं तादृशीत्यर्थः । ननु घटपटभेदप्रत्यक्षं यद्यद्वैतज्ञानस्वविषयाभ्यां भिन्नं न स्यात् भेदविषयकमेव न स्यात् , अद्वैतज्ञानात्मकत्वेऽद्वैतविषयकत्वस्यैव तत्रौचित्यात् , विषययोः स्वज्ञानभिन्नत्वाभावे तदभिन्नाभिन्नस्येतिन्यायेनाभेदावश्यम्भावात् । तथाच भेदविषयकत्वान्यथानुपपत्त्या भेदधियः स्वविषयादद्वैतज्ञानाच्च भेदः सिद्ध्यतीत्याशङ्कां पूर्वं निरस्तामपि प्रकारान्तरेण निरसितुमाह अतएवेति । श्रुतेर्द्वारलाभादेवेत्यर्थः । घटो न पट इत्याद्यधीस्तद्विषयीभूतस्य भेदस्यान्यथानुपपन्नता = आद्यधियः स्वविषयादद्वैतबोधाच्च भेदं विनाऽनुपपत्तिज्ञानम्। अन्ते=धीधाराविश्रान्तौ । स्वज्ञानापेक्षणादिति । स्वं=उक्तानुपपत्तिज्ञानं तस्मिन्नद्वैतज्ञान-घटादिभेदज्ञानापेक्षणात् । तादृशभेदज्ञानाभावे तत्रैव श्रुतेर्लब्धपदत्वेन सर्वाद्वैते प्रामाण्यासादनम् । यदि चोक्तानुपपत्तिज्ञानस्यापि भेदविषयकत्वमद्वैतज्ञानादिभेदवत्तां विनाऽनुपपन्नमिति ज्ञानान्तरेण प्रथमानुपपत्तिज्ञानेऽद्वैतज्ञानादिभेदसिद्धिस्तदापि तादृश-ज्ञानान्तरस्य स्वविषयाभेदे श्रुतेः प्रामाण्यं विघटयितुमनुपपत्तिज्ञानान्तरापेक्षायामनवस्था मा भूदित्यन्तिमानुपपत्तिज्ञानस्य वक्तव्यत्वात्सैव श्रुतेर्द्वाः, सर्वभिन्नत्वं विनाऽनुपपत्तिज्ञानं तु घटपटभेदसाधकं न वक्तुं शक्यम् , स्वस्मादपि स्वभेदप्रसङ्गादिना दत्तोत्तरत्वात् , अपि तु पृथक्पृथगेवानुपपत्तिज्ञानमिति सावकाशा श्रुतिरिति भावः।

भारती

मानेङ्गे तो उसमें भेद के सिद्ध न होने से वही (पक्षबहिर्भूत व्यक्ति ही) अद्वैतश्रुति के लिए अद्वैत सिद्ध करने हेतु द्वार (उपाय) दिया जायेगा । अर्थात् वहीं दत्तपदा श्रुति अद्वैत सिद्ध कर देगी । और इसलिए (उक्तप्रकार से अद्वैतश्रुति को अद्वैत सिद्ध करने हेतु मार्ग मिल जाने से ही) घटो न पट इत्याकारक आद्यज्ञान के विषयभूतभेद की अन्यथा अनुपपन्नता(आद्य ज्ञान का स्व विषय तथा अद्वैत बोध के साथ भेद के बिना अनुपपत्ति ज्ञान) भी अद्वैत श्रुति की आधिका नहीं है क्योंकि धीधारा की विश्रान्ति होने पर उसे (उक्तअनुपपत्ति ज्ञान) भी अपने में अद्वैत ज्ञान और घटादि के भेदज्ञान की अपेक्षा है। (और वह भेदज्ञान स्वयं के द्वारा हो नहीं सकता, अतः वहीं दत्तपदा (प्राप्तावसरा) होकर अद्वैतश्रुति सर्वाद्वैत की प्रमापिका हो जायेगी ।) यहाँ यह तात्पर्य है - यदि उक्तानुपपत्तिज्ञान में भेदविषयकत्व भी अद्वैत ज्ञानादि भेदवत्ता के बिना अनुपपन्न है, इसलिए ज्ञानान्तर से प्रथमानुपपत्ति ज्ञान में अद्वैत ज्ञानादि के भेद की सिद्धि हो जायेगी, तो भी तादृश ज्ञानान्तर का स्वविषय के साथ अभेद में श्रुतिके प्रामाण्य का विघटन करने के लिए अनुपपत्ति ज्ञानान्तर की अपेक्षा होने से अनवस्था होगी, अतः क्वचित् विश्रान्ति मानने पर अद्वैत साधक श्रुति का वही द्वार हो जायेगा ।

अत्यन्तासत्यपि ज्ञानमर्थे शब्दः करोति हि ।
अबाधात्तु प्रमामत्र स्वतः प्रामाण्यनिश्चलाम् ।। ११ ।।
असंसर्गाग्रहस्यापि मन्ता शंसत्यबाधिते ।
अत्यन्तासदसंसर्गाग्रहं संसर्गलग्नकम् ।। १२ ।।
अनौचित्यापि तर्केण दुर्बाधैवाद्वयश्रुतिः।

शारदा

अद्वैतज्ञानस्योत्पत्तावेवोक्तदिशा प्रामाण्यं शक्यं निश्चेतुम्, अयोग्यताया एव तत्र ग्रहे तु क्व तदुत्पत्तिरपीति शङ्का निरस्यति नचेति। **संस्कारारूढः = घटःपटभिन्न एवेति ज्ञानजन्यसंस्कारविषयः, अतएव दृढान्वयः = दृढस्थितिकः सत्यत्वेन निश्चित इति यावत् । व्यतिरेको = भेदः तस्यान्वयव्यतिरेकौ = घटत्वं पटादिभेदव्याप्यमिति, घटत्वं पटादिभेदाभावव्यापकीभूताभाव प्रतियोगीति च ज्ञाने ताभ्यामनुमित्युत्पादनद्वारा तदधीनानुमित्येति यावत्, तद्विषयकविशेषदर्शनेन, विशेषदर्शनोत्तरभेदप्रत्यक्षेण चेत्यपि बोध्यम् । निश्चितप्रमात्वकत्वस्याप्रमात्वसम्भावनाविरहस्य वा लाभायेत्थमभिधानम्, तत्र तद्व्याप्यवत्वस्य ग्रहे तत्र तद्ग्रहेऽप्रमात्वग्रहानुपपत्तेः। तृतीयार्थप्रयोज्यत्वस्यानुत्पादेऽन्वयः । अद्वैतविषयिकाया अन्वयप्रतिपत्तेः = शाब्दबोधस्य उत्पत्तिप्रतिबन्धः = अनुत्पादः शङ्कितुं न शक्य इत्यर्थः । अद्वैतसविकल्पकबोधस्यान्वयविषयकत्वादन्वयप्रतिपत्तिशब्देनाभिधानम्, एवमग्रे संसर्गलग्नकमित्यत्रापि द्रष्टव्यम् ।** अत्यन्तेत्यादि । **स्वप्रकारकधीविशेष्यनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिनीत्यर्थः । कलहादौ मिथ्याऽभिशापादिदानस्थले सत्यपि बाधरूपायोग्यतानिश्चये शाब्दोत्पत्तिरानुभविकी, अन्यथा क्रोधाद्यनुत्पत्त्यापत्तेः, मुखं चन्द्र इत्यादिरूपकस्थलेऽपि**

भारती

यदि कहा जाय कि ''घटःपटाद् भिन्न एव'' (घट पट से भिन्न ही है) इत्याकारक ज्ञान से जन्यसंस्कार का विषय होने से दृढ़स्थितिक अर्थात् सत्यत्वेन निश्चित जो भेद, तद्विषयक जो घटत्वं पटादिभेदव्याप्यम् (घटत्व पटादि भेद का व्याप्य है) घटत्वंपटादिभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगि (घटत्व पटादिभेदाभावव्यापकी भूताभाव का प्रतियोगी है) इत्याकारक अन्वय और व्यतिरेक, उनके द्वारा (उक्त अन्वयव्यतिरेक के द्वारा) जायमान - पटादिभेदव्याप्यघटत्ववान् घट इत्याकारक अनुमितिरूप विशेषदर्शन के द्वारा अथवा उक्तप्रकार प्रत्यक्षात्मकव्याप्यदर्शन एवं विशेषदर्शनोत्तर जायमानाभेदप्रत्यक्ष के द्वारा अद्वैतविषयअन्वयप्रतिपत्ति अर्थात् अद्वैतविषयकशाब्दबोध का प्रतिबन्ध (अनुत्पाद) हो जायेगा। (तस्मात् और श्रुति का अवसर नहीं है ।) यहाँ ज्ञातव्य है यदि लिङ्गोपहित लैङ्गिक भान मानें तो अनुमित्यात्मकविशेषदर्शन हो सकता है यदि न मानें तो अनुमिति एवं विशेषदर्शन तदुत्तरप्रत्यक्ष ऐसा समझना चाहिए । तो यह आपका कथन युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि-

शब्द अत्यन्तअसत्पदार्थविषयक ज्ञान को भी उत्पन्न करता है । अन्तर यही है कि बाधक के उपस्थित होने पर शब्दजन्य ज्ञान अप्रमा हो जाता है । एवं बाधक

शारदा

सत्यपि बाधनिश्चये बोधोदयाच्चेति भावः। हिशब्दस्तादृशज्ञानस्यानुभविकत्वलाभाय। शब्द इति। **बाधितार्थविषयकज्ञानजनकज्ञानविषयताश्रयः ज्ञान शब्द इत्यर्थः। शाब्दान्यविशिष्टबुद्धिं प्रत्येव बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वादिति भावः। केचित्तु- अत्यल्पमिदमुच्यते, न परं शाब्दे एव, वस्तुतस्तु बाधज्ञानं न क्वापि प्रतिबन्धकम्, तस्मिन् सत्यपि स्वस्वसामग्रीवशादुत्पन्नयोर्यत्र ज्ञाने सदोषसामग्रीजन्यत्वग्रहस्तत्राप्रामाण्यग्रहमात्रमित्याहुः। बाधितस्थले न शाब्दोत्पत्तिः, अपितु तत्तत्पदात्तत्तत्पदार्थोपस्थितौ मानसो विशिष्टसाक्षात्कार एवेति तु मतमनुभवविरुद्धम्, तत्र शृणोमि, शाब्दयामिती धीसत्त्वात्। एवं बाधनिश्चयस्याप्रतिबन्धकत्वस्थितौ बाधाभावज्ञानमपि न हेतुः, अन्यथोक्तस्थले शाब्दानुत्पत्त्यापत्तेः, नचाहार्ययोग्यताज्ञानात्तदुत्पत्तिः निश्चिताप्रामाण्यकस्यापि योग्यताज्ञानस्य हेतुत्वात्, एकरूपावच्छिन्नेऽपररूपावच्छिन्नस्यान्वयितावच्छेदकसंसर्गस्य योग्यतारूपत्वादिति वाच्यम्; अनाहार्ययोग्यताज्ञानं विनेवाहार्ययोग्यताज्ञानं विनाऽपि तदितरकारणसम्पत्तौ शाब्दबोधोदयेन योग्यताज्ञानसामान्यस्यापि कारणताया अप्रामाणिकत्वात्। आहार्ययोग्यताज्ञानस्य प्रकृतेऽपि सम्भवाच्च। नचैवमद्वैतबोधस्याहार्यतापत्तिः, इष्टापत्तेः। बाधनिश्चयस्य भ्रमत्वेन मननादिना तन्निवृत्तावद्वैतस्याप्रामाणिकत्वानुपपत्तेः। स्वविरुद्धधर्मधर्मितावच्छेदककत्वघटितमाहार्यत्वं तु भेदवति भेदाभावबोधोपगमे एव शङ्कितुं शक्यम् , नवा तत्रापि, मिथ्यात्वपक्षे भेदतदभावयोर्विरोधस्यैवाभावात्। स्वप्रकारकग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतानिरूपितविषयितासम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतावद्धर्मस्य स्वविरुद्धधर्मपदेन विवक्षितत्वेऽपि द्वैताद्वैतप्रमाणानां**

राजहंसः

घटितमाहार्यत्वमिति। स्वप्रकारकत्वं विशेष्यदलम्। विषयितासम्बन्धावच्छिन्नेति। किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रकारतानिरूपितनिरूपकतापरपर्यायप्रकारितासम्बन्धावच्छिन्नेत्यर्थः।

भारती

के न होने पर वह स्वत: प्राण होता है। प्रकृत में सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादि श्रुतिवाक्य किसी बाधक (अप्रामाण्य ज्ञापक) के न होने से एवं स्वत:प्रमाण होने से अप्रामाण्यग्रह से अनाक्रान्त प्रमाज्ञान को उत्पन्न करता है। यहाँ प्रस्तुत उदाहरण केवल बाधकाभाव होने से श्रुति का स्वत: सिद्ध प्रामाण्य है इसी अंश में है। न कि असद्विषयकबोधजनकत्वांश में है। (तात्पर्य यह है कलह काल में परस्पर मिथ्याभूत अभिशाप देते समय बाधरूप अयोग्यतानिश्चय के रहते हुए भी शाब्दबोध की उत्पत्ति देखी जाती है अन्यथा अभिशाप को सुनकर क्रोध नहीं आना चाहिए। इसी प्रकार मुखं चन्द्र इत्यादि रूपक स्थल में भी बाध निश्चय के रहते हुए भी शाब्दबोध देखा जाता है। अत: शाब्दबोध से अतिरिक्त विशिष्ट बुद्धि के प्रति ही बाधनिश्चय (अयोग्यता निश्चय) प्रतिबन्धक होता है न कि शाब्दबोध के प्रति। अत: प्रकृत में श्रुतिजन्य शाब्दप्रमा हो ही जायेगी।)

अनारोपितमूलत्वाद्बलवत्त्वादतादृशा ।। १३ ।
प्रवृत्तेनाप्यनौचित्यमूलं येन न लूयते ।

शारदा

विषयव्यवस्थितिविधाने द्वैतस्य मिथ्यात्वग्रहे प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावसम्भवान्न काचित् क्षतिरिति भावः। तदिदमाह अबाधादिति। **अप्रामाण्यज्ञापकाभावादित्यर्थः। अत्र= अद्वैतविषयिकां प्रमां करोति=तादृशप्रमानिरूपितजनकत्ववज्ज्ञानविषयः शब्द इत्यर्थः। स्वतः प्रामाण्यनिश्चलां=प्रमात्वस्वतस्त्वप्रयुक्तेनाप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वेन विशिष्टाम्।**

नन्वसंसर्गग्रहस्य भ्रमप्रतिबन्धकत्वेन तदभावस्य भ्रमार्थमवश्यापेक्षणीयत्वेन तद्धेतोरेवेति न्यायेन तेनैव व्यवहारोपपत्तौ बाधितस्थले संसर्गबोधोक्तिरयुक्तेत्यत आह असंसर्गाग्रहस्येति। **मन्ता = विसंवादिप्रवृत्त्यौपयिकत्वेन स्वीकर्ता। अबाधितस्थले अत्यन्ताऽसतोसंसर्गस्याग्रहं संसर्गलग्नकं=स्वाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वसम्बन्धेन संसर्गग्रहविशिष्टं शंसति =कथयति। इदं रजतमिति प्रमास्थले रजतत्वसमवायसंसर्गस्य सत्त्वादसंसर्गस्यात्यन्तासत्त्वमेवात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपमिति नासौ गृहीतः। बाधितस्थले तु रजतत्वासंसर्गः सन्नपि दोषबलादगृहीत इत्युभयत्राप्यसंसर्गाग्रहस्यैव सत्त्वात्। प्रवृत्तिसामान्यं प्रति यद्यपि तन्मते कारणत्वमिष्टतावच्छेदकधर्मिणोरसंसर्गाग्रहस्यैव, तथापि संवादिप्रवृत्तिं प्रति तयोः संसर्गग्रहस्यापि कारणत्वमिति नाबाधितस्थले संसर्गप्रमानुपपत्तिः। अन्यथा विशिष्टग्रहाप्रसिद्धावसंसर्गाग्रहस्याप्यप्रसिद्धेः ।**

राजहंसः

विषयव्यवस्थितिविधाने इति । अद्वैत श्रुतेः प्रातिभासिकं प्रामाण्यं चेदप्रामाण्यप्रसङ्गः, व्यावहारिकं चेत्तदां व्यवहारेऽप्यद्वैतप्रसङ्गः, तस्मात्पारमार्थिकाद्वैतविषयकत्वेनैव तस्याः प्रामाण्यम्, द्वैतप्रमाणानां तु व्यावहारिकद्वैतविषयकत्वेन तत्सम्भवतीत्युक्तं प्राक्।

भारती

यदि कहें कि असंसर्गग्रह भ्रम का प्रतिबन्धक है इसलिए असंसर्गाग्रह के भ्रमार्थ अपेक्षणीय होने से तद्धेतुरेवेतिन्याय से सर्वत्र असंसर्गाग्रह से ही व्यवहार की उत्पत्ति हो जायेगी, बाधितस्थल में संसर्गबोध क्यों मानना- इसका समाधान करते हैं, इदं रजतम् इत्यादि बाधितस्थल में असंसर्गाग्रह को कारण मानने वाले प्रभाकरादि मीमांसक भी अबाधितस्थल में अत्यन्त असत् असंसर्गाग्रह को संसर्गलग्नक अर्थात् संसर्ग ज्ञान से सम्बद्ध कहते हैं । (भाव यह है कि इदं रजतम् इत्यादि प्रमास्थल में रजतत्व का समवाय सम्बन्ध होने से असंसर्ग अत्यन्त असत् है अर्थात् असंसर्ग है ही नहीं, यदि होता तो गृहीत होता, न होने से यह भी अगृहीत है । अतः प्रमास्थल में भी असंसर्ग का अग्रह विद्यमान है । और बाधितस्थल में तो रजतत्व का असंसर्ग रहते हुए भी दोषवशात् अगृहीत है, अतः भ्रम प्रमा उभयत्र ही असंसर्गाग्रह के विद्यमान होने से प्रभाकर के मत में प्रवृत्ति सामान्य के प्रति असंसर्गाग्रह को ही कारण मानते हैं तथापि संवादिप्रवृत्ति के प्रति संसर्गज्ञान को भी कारण मानते ही हैं अन्यथा विशिष्ट ग्रह के अप्रसिद्ध होने से असंसर्गाग्रह भी प्रसिद्ध न होगा - (अतः अबाधितस्थल में

शारदा

विशेषकार्यकारणभावश्चायं तन्मते लघुचन्द्रिकायामुक्तः । परामर्शप्रकरणे गदाधरैस्तु- ''यद्यपि तन्मते विशिष्टज्ञानस्थलेऽप्यसंसर्गाग्रह एव विशिष्टव्यवहारहेतुर्नतु विशिष्टज्ञानं, तथापि विशिष्टज्ञानस्यापि विशिष्टविषयकत्वमपुरस्कृत्य तत्तत्पदार्थविषयकत्वेनासंसर्गाग्रहनिष्ठकारणतायामवच्छेदकत्वात् व्यवहारप्रयोजकत्वं नतु कारणत्व''मित्युक्तम् । प्रकृते तु नोभयथापि विरोधः। चतुर्थे एकादशतर्कान् वक्ष्यति तत्रानौचितीं प्रामाणिकाव्यवहार्यत्वरूपां द्वैताभावे निराकर्तुमाह अनौचित्येति। **तर्केण = प्रमाणजन्यधीजनकप्रतिसन्धानविषयेण। तेनापत्तित्वापरपर्यायतर्कत्वस्य 'आपादयामिति' प्रतीतिसाक्षिकमानसत्वव्याप्यजातिविशेषतायास्तर्कप्रकरणे जगदीशोक्त-दिशा तार्किकसम्मतत्वेनात्माश्रयदिपञ्चकस्यैवापत्तिरूपस्य मुख्यतर्कतासत्त्वात् कथमनौ-चित्या अप्रसङ्गात्मिकायास्तर्कत्वमिति नाशङ्कनीयम्। अतएव प्रमाणसहकारित्वेन लाघवादौ तर्कताव्यवहार इत्युक्तं न्यायसूत्रवृत्ताविति। वस्तुतस्तु- आत्माश्रयाद्यापादककप्रसङ्गस्य यथाऽत्माश्रयादिशब्देन व्यवहारः, घटो यद्यात्माश्रितः स्यात् स्वभिन्नः स्यादित्यादिप्रसङ्गे आत्माश्रयादेरेवापादकत्वात्, स्वयं चाप्रसङ्गत्वात् , तथाऽनौचित्यापाद्यकप्रसङ्गस्या-नौचितीशब्देन व्यवहारे न काचित्क्षतिः, द्वैतं यदि मिथ्या स्यात् प्रामाणिकाव्यवहार्यं स्यादित्यापादनस्य सम्भवात्। किञ्च, लाघवादौ तर्कताभिधानस्य चिन्तामण्यादौ बहुशो दृष्टत्वेन मुख्यस्य च तस्य सम्भवे कथञ्चित्तत्समर्थनस्यानौचित्येन निरुक्तप्रतिसन्धान-**

राजहंस

तत्तपदार्थविषयकत्वेनेति । जनकस्येव जनकतावछेदकस्यापि भ्रमस्थलसाधारणतोचितेत्याशयः ।

निरुक्तप्रतिसन्धानविषयतावेति । आपादकस्यात्माश्रयादित्वाभिप्रायेणेदम् । प्रसङ्गस्य सङ्ग्राह्यत्वे

भारती

अत्यन्त असत् असंसर्ग ग्रह को संसर्ग ग्रह से विशिष्ट अर्थात् स्वाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्व सम्बन्ध से युक्त (स्वं = संसर्गग्रहः (शाब्दबोध) उससे अव्यवहितपूर्वपक्षणवृत्तित्व असंसर्गाग्रह में) मानते हैं ।

यदि तार्किकादि कहें कि अद्वैत (द्वैताभाव) प्रामाणिकों के व्यवहार का विषय न होने से अद्वैत प्रतिपादिका श्रुति प्रामाणिकाव्यवहार्यत्वरूप अनौचितिनामक तर्क के द्वारा ही बाधित हो जायेगी, तो यह कथन भी युक्तिविरुद्ध है क्योंकि- द्वैतं यदि मिथ्या स्यात् प्रामाणिकाव्यवहार्यं स्यात् (द्वैत यदि मिथ्या हो तो प्रामाणिकों के द्वारा किये जाने व्यवहार का विषय न हो) इत्याकारक अनौचित्य तर्क के द्वारा भी अद्वैत श्रुति का बाध (अप्रामाण्य ज्ञापन) नहीं हो सकता, क्योंकि वह (अद्वैत श्रुतिज बोध) अबाधितविषयक होने से भेदग्राहीप्रमाणों का बाधक है । अतः बाधितवस्तुविषयक उक्त प्रत्यक्षादि के द्वारा उसका बाध नहीं हो सकता ।

शारदा

विषयत्वस्यैव तर्कतामुख्यव्यवहारनियामकत्वं युक्तम् । किञ्च, व्याप्यारोपेण व्यापकारोपात्मकप्रसङ्गस्य साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकव्याप्त्यादिघटितत्वेनाननुगतत्वात्, जातेरपि नियतव्यञ्जकसापेक्षताया: परतो वक्ष्यमाणत्वेन तद्घटितलक्षणस्याप्यसम्भवात् हेत्वाभासादेरिवान्यतमत्वघटितलक्षणस्यैव वक्तव्यत्वाद्व्यवहारानुरोधाल्लाघवादेरपि तर्कत्वसम्भव:,- लाघवादिबलादित्थं तर्कयामीतिप्रतीते: तर्कपञ्चकातिरिक्तस्थलेऽपि सम्भवाच्चेति लाघवादेस्तर्कतास्वीकर्तुर्मूलकर्तुराशय:। तथाचानौचित्यनुगृहीतभेदग्राहि-प्रत्यक्षादिनेति तृतीयान्तार्थ:। **तर्कमात्रस्य बाधकत्वशङ्कानुदयात् । दुर्बाधा = अप्रमाणत्वेन ज्ञापयितुमशक्या। अनारोपितमूलत्वात् बलवत्त्वात् = अबाधितवस्तुविषयकत्वेन भेदग्राहिप्रमाणबाधकत्वात्। अतादृशा=बाधितवस्तुविषयकेनोक्तप्रत्यक्षादिना । भेदस्यानुपदं खण्डनेन बाधितत्वस्य निवेदनीयत्वात्परिशेषादभेदस्याबाध्यत्वमायाति, अन्यथा शून्यतापत्ते:, भेदस्य मिथ्यात्वेऽप्यलीकत्वाभावाद्व्यवहार्यत्वसम्भव:, सत्यत्वेन तस्य व्यवतॄणां तु प्रामाणिकत्वे एव न सम्प्रतिपत्तिरिति भाव:। अद्वयश्रुतेरबाध्यत्वे युक्त्यन्तरमाह** प्रवृत्तेनापीति। **स्वाव्यवहितप्राक्क्षणवृत्तित्वसम्बन्धेन प्रमाविशिष्टेनापीत्यर्थ:। येन प्रमाणेनानौचित्यमूलं=अनौचित्यकल्पनामूलं विरोधिमानान्तरं न लूयते= स्वविषयाति-रिक्तविषये न व्यवस्थाप्यते मिथ्यात्वेन न बोध्यते इति वा। अत्र=अद्वैतश्रुतौ।** वैपरीत्या-दिति। **अद्वैतश्रुते: पारमार्थिकविषयकत्वेन द्वैतग्राहिप्रमाणस्य च व्यावहारिकविषयकत्वेन विषयविरोधपरिहारात् , प्रपञ्चान्तरस्येव द्वैतग्राहिप्रमाणस्यापि तया मिथ्यात्वबोधनाच्च, सर्वकल्पनामूलस्याज्ञानस्यापि तया निवर्तनाच्च न तस्या बाध्यत्वसम्भव इति भाव:।**

राजहंस

तु तादृशप्रतिसन्धानस्यैव विषयतातादात्म्यान्यतरसम्बन्धेन तर्कताव्यवहाप्रयोजकत्वं मन्तव्यम्।

तद्घटितलक्षणस्याप्यसम्भवादिति । व्यञ्जकसद्भावे तेनैव निर्वाहेण किं जात्या, तद्भावे तु व्यापकं विना न वायमिति कथं जातिसद्भावोऽनुमन्यते । यदि तु व्यञ्जकस्यानुगमे एव तेन जातेरन्यथासिद्धिर्नत्वननुगमे, न चास्ति तदनुगम इति कथं व्यङ्ग्यान्यथासिद्धिरित्युच्येत,तदापि नानुगतधर्ममात्रस्य सिद्धिसम्भव इति प्रत्यक्षखण्डनशारदायामावेदितम्। मूलकर्तुराशय इति।

भारती

अद्वैत बोध के बाध न होने में एक कारण यह भी है कि जहाँ प्रवृत्त अर्थात् प्रतीति का जनक प्रमाण के द्वारा अनौचित्यतर्क का मूल विरोधीप्रमाणान्तर बाधित नहीं किया जाता है वहीं अनौचित्यतर्क का साम्राज्य अर्थात् प्रवृत्ति होती है । किन्तु अद्वैत श्रुति में तो विपरीत है अर्थात् अद्वैत श्रुति पारमार्थिकविषयक है और द्वैतग्राहिप्रमाण व्यावहारिकविषयक है अत: विषय में विरोध न होने से प्रपञ्चान्तर के समान द्वैतग्राही प्रमाण में भी अद्वैतश्रुति मिथ्यात्व सिद्ध कर सर्वकल्पना के मूलभूत अज्ञान को भी निवृत्त कर देती है । अत: अद्वैतश्रुति का बाध नहीं हो सकता ।

तत्रानौचित्यसाम्राज्यं वैपरीत्यात्तु नात्र तत् ।। १४ ।।

ननु यद्यदेवोदाह्रियते त्वया-नेत इतोऽस्य भेदो गृहीत इति ततोऽस्याद्वैताम्नायैरभेदबोधने तद्द्वारा सर्वाभेदे पर्यवसातव्यमिति; ततस्ततस्तस्य भेदस्तदैव गृह्यते मया, तस्मादुदाह्रियमाणतायामनुदाह्रियमाणतायाञ्च कस्यचिदेतत्प्रत्यवस्थानमस्थाने इति। मैवम् । अन्तिमबुद्धेरद्वैतश्रुतिजबुद्ध्यादितो भेदो न त्वया प्रमित इति मयोच्यमाने यस्तदीयस्ततो भेदः प्रमातव्यः, स न तावत्प्रत्यक्षेण, तत्कालमन्तिमबुद्धेरनुपस्थितेः ।

शारदा

उदाह्रियते प्रतियोग्यनुयोगिविधया । **इत इतः = अभेदबुद्ध्यादितः** । **अस्य = अन्तिमबुद्ध्यादेः**। **तदैव = उदाहरणोत्तरक्षणे** । कस्यचिदिति । **कस्यचिदनुयोगिनः प्रतियोगिनश्चोदाहरणे मया भेदस्य ग्रहणाच्छ्रुतावप्रामाण्यग्रहः, अनुदाहरणे तु श्रुतेः प्रामाण्यग्रहस्थलानिरूपमणमिति भावः। एतत्प्रत्यवस्थानं = त्वदुक्तं श्रुतेः प्रामाण्यासादनं। अस्थाने =अनुपपन्नम्। अनुपस्थितेः = अप्रत्यक्षात्। भेदप्रत्यक्षेऽनुयोगिप्रत्यक्षस्यापेक्षितत्वादिति**

राजहंस

ईदृशस्थले स्वाशये एव मूलकारीयत्वारोपः। अथवा मूलकारस्येदृशश्चेदाशयस्तदा समीचीनोऽन्यथा त्वसमीचीन इत्यर्थः । यद्वा मूलकर्तुराशयसमर्थनानुकूलोऽस्मदीय आशय इत्यर्थः। एवमन्यत्रापि विचारोपबृंहणपरे ग्रन्थे द्रष्टव्यम् ।

प्रमाविशिष्टेनापीति । प्रमापदं प्रमात्वेनाभिमतपरम् । प्रमाणेन=प्रमाणत्वेनाभिमतेन । एवं चानौचित्यबाधिते वस्तुतः प्रमाणत्वस्य तत्फले च प्रमात्वस्यासम्भवेऽपि न क्षतिः ।

भारती

प्रश्न-घटपटौ भिन्नौ इस बुद्धि का अथवा अन्तिम बुद्धि का स्वविषय के साथ भेद किसी प्रमाण से गृहीत नहीं है अतः वहीं पर दत्तपदा (प्राप्तावसरा) अद्वैत श्रुति अद्वैत का बोधन करती हुई सर्वाद्वैत की प्रमापिका हो जायेगी। इस प्रकार कहते हुए आप अनुयोगी प्रतियोगी रूप से जिस जिस का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि-इस इस (स्वविषय एवं अभेदबुद्धि) से इस (अन्तिमबुद्धि) का भेद गृहीत नहीं है इसलिए यही दत्तपदा अद्वैतश्रुति उस (स्वविषय एवं श्रुतिजन्य अभेद बोध) से इस (अन्तिम बुद्धि) का अभेद बोधन करते हुए सर्वाद्वैत में पर्यवसित (प्रमाणभूत) हो जायेगी। तो उसी समय (उदाहरण के द्वितीय क्षण में) उस उस (स्वविषय एवं अभेद बुद्धि) से उस (अन्तिम बुद्धि) का भेद भी हमें ज्ञात हो जाता है । तस्मात् किसी अनुयोगी प्रतियोगी का उदाहरण देने पर उसी से मुझे भेद ज्ञान होने से श्रुति में अप्रामाण्यग्रह हो जायेगा, और उदाहरण के न देने पर श्रुति के प्रामाण्यग्रहस्थल के अभाव में प्रामाण्यग्रह नहीं हो पायेगा, ऐसी स्थिति में उभयथा भवदुक्त श्रुति का प्रामाण्य अनुपपन्न है।

समाधान- अन्तिम बुद्धि का अद्वैतश्रुतिजन्यबुद्ध्यादि से जो भेद है, वह आपको प्रमित (ज्ञात) नहीं है इस प्रकार मेरे कहने पर जो अन्तिम बुद्धि का अद्वैतबुद्ध्यादि के साथ भेद आपको ज्ञातव्य है वह प्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात) तो हो नहीं सकता, कारण कि तत्काल में अन्तिम बुद्धि के अनुपस्थित होने से उस का (भेद

यदि च केनचिद्धेतुना वा कयाचिदनुपपत्त्या वा तथा स्यात् तदानीमद्वैतवादिनं प्रति हेतोः साध्याविशिष्टतया, अनुपपत्तेश्च येन विना सा तदविशिष्टतया ततः कथमाभासात्प्रमोदयः स्यात् ।

शारदा

भावः । हेतुनेति। **अद्वैतधीकालावृत्तित्वेनेत्यर्थः। पक्षीभूतान्तिमधीविशेषस्येदानीम-प्रत्यक्षत्वेन तत्रोक्तहेतोर्ग्रहः। बुद्धित्वं तु न हेतुः, अद्वैतबुद्धौ व्यभिचारात्। तद्भेदस्य साध्यत्वात्। भिन्नसामग्रीकत्वमपि न हेतुः, कार्यभेदासिद्धौ तदसिद्धेः। अपुनरुक्तशब्दवाच्य-त्वमपि न, अर्थभेदासिद्धौ शब्दयोरपुनरुक्तताया वक्तुमशक्यत्वात्। स्वविषयभेदमात्रे साध्ये तु बुद्धित्वस्य हेतुता सम्भवत्येवेति।** अनुपपत्त्येति **उक्तहेतोर्वा घटो न पट इतिधीविषयीभूत-भेदस्य वाऽनुपपत्त्येत्यर्थः । तथा स्यात् = अद्वैतबुद्ध्यादिप्रतियोगिकभेदप्रमितिः स्यात्।** साध्याविशिष्टतयेति। **अद्वैतिनो हेतुसाध्ययोरद्वैतग्रहे साध्यवद्धेतोरप्यसिद्धत्व-ग्रहेणेत्यर्थः । अनुपपत्तेश्च तदविशिष्टतयेत्यन्वयः । अनुपपत्तिरुपपाद्यस्याप्युपलक्षणम् । येन = उपपादकतयाऽभिमतेन । सा=अनुपपत्तिः। तथाचानुपपत्त्यादेरुपपादकेना-द्वैतग्रहे उपपादकवत्तस्याप्यसिद्धत्वग्रहेणत्यर्थः। उभयत्राप्यविशिष्टत्वमभेदग्रह एव वा। ततः = उक्तहेतुरुक्तानुपपत्तेर्वा । आभासात् = अनुमितेरर्थापत्तेर्वा**

राजहंस

सम्भवत्येवेति। कथयेत्यनेन चेदं सूचितमित्यादिना प्रागुदितदोषसद्भावेऽप्यद्वैतबुद्धिमतर्भाव्यानुपदोपवर्णितव्यभिचाराभावमात्रेणेदं द्रष्टव्यम्।

साध्यवद्धेतोरप्यसिद्धत्वाग्रहेणेति। न च हेतुसाध्ययोरविशेषग्रहे हेतुसिद्ध्या साध्यस्यापि सिद्धिः किमिति नोक्तेति वाच्यम्, पक्षहेत्वोरप्यभेदग्रहेण हेतोरपि पक्षेऽसिद्धेरित्याशयात्। इदं चाग्रे 'असिद्ध्यादि' रितिप्रतीकव्याख्याने सूचितम्।

भारती

का) प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। (भेद प्रत्यक्ष के प्रति अनुयोगीप्रत्यक्ष (अन्तिम बुद्धि का प्रत्यक्ष) अपेक्षित है।)

यदि कहें कि अन्तिमबुद्धिः स्वविषयश्रौतबुद्धिभ्यो भिन्ना अद्वैतधीकालावृत्तित्वात् घटादिवत् (अन्तिम बुद्धि स्वविषय एवं श्रुतिजन्य अद्वैतबुद्धि से भिन्न है अद्वैतधीकाल में **अवृत्ति** होने से जैसे घटादि) इत्यादि अनुमान से अथवा किसी अनुपपत्ति अर्थात् अर्थापत्ति (उक्त हेतु=अद्वैतधीकालावृत्तित्व की अनुपपत्तिरूप अर्थापत्ति) से अथवा घटो न पट इत्यादि बुद्धि का विषयभेद की अनुपपत्तिरूप अर्थापत्ति से-अन्तिम बुद्धि के साथ अद्वैतबुद्ध्यादि के भेद की प्रमा हो जायेगी। तो यह आपका कथन असङ्गत है क्योंकि अद्वैतबुद्धि होने पर अद्वैतवादि के मत में उक्त हेतु साध्य से अभिन्न होने से साध्य के समान हेतु भी असिद्ध है, अथवा जिस के विना (अद्वैतबुद्ध्यादि के भेद के विना) अनुपपत्ति (उक्त हेतु की अनुपपत्ति अथवा घटपटभेद की अनुपपत्ति) वह अनुपपत्ति उससे (अद्वैतबुद्ध्यादि के भेद से) अभिन्न होने से-अनुपपत्ति का उपपादक के साथ अद्वैतग्रह होने से उपपादक के समान अनुपपत्ति भी असिद्ध है ।

नच वाच्यं, स्वयं मया स भेदो ज्ञायते इति नास्ति पाक्षिकोऽपि मां प्रत्यसिद्ध्यादिरिति; यतोऽस्य त्वद्वचनस्य वैयर्थ्यापत्तिः, वचनस्य परार्थत्वात्। मौनमवलम्ब्यावतिष्ठानश्च भवानप्रतिभातो न मुच्यते। न च-स्वयं मया प्रमितो भेदः परं प्रति वचसा केवलं बोध्यते इति-वाच्यम्; त्वद्वचसि परस्याप्रत्ययात्। विजिगीषुं परं प्रति विजिगीष्वन्तरवचनं हि तत्रार्थे तज्जिज्ञासोत्पादनद्वारेण तस्य

शारदा

प्रतिबन्धकीभूतं यज्ज्ञानं तद्विषयीभूतात्। आविद्यकभेदमुपेत्य तु भेदसत्यत्ववादिना व्यवहर्तुमशक्यम् तदुक्तं भट्टपादैः - ''योऽपि तावत्परासिद्धः स्वतः सिद्धोभिधीयते। भवेत्तत्र प्रतीकारः स्वतोऽसिद्धे तु का क्रिये''ति भावः। पाक्षिकोऽपीति । **वेदान्तिमतमादाय शक्योद्भावनोऽपीत्यर्थः। परार्थानुमाने एवासिद्ध्यादेरुद्भावनीयत्वात्, वस्तुतश्च त्वन्मतेऽसिद्ध्यादिसत्त्वेऽपि ममानुमित्यप्रतिबन्धादिति भावः। एतादृशपाक्षिकत्वं चाद्वैतवादिनं प्रतीति वदता पूर्वं सूचितम्। असिद्ध्यादिः = स्वरूपासिद्धिदृष्टान्तासिद्धिबाधाः। दृष्टान्तादेरपि पक्षाभिन्नतया प्रतीतत्वात्। परार्थत्वात्=परप्रतिपिपादयिषाधीनप्रयोगविषयत्वात् । त्वया तु प्रतिपन्नोऽपि भेदो मां न प्रतिपादयितुं शक्यः, मयाऽसिद्ध्यादेरुद्भावनीयत्वात्। अप्रतिभातः=उत्तराप्रतिपत्तिलक्षणनिग्रहस्थानात्। अप्रत्ययात् = अविश्वासात्। वक्तृगतदोषावगमेनैवौत्सृष्टप्रामाण्यापवाद इति न परतः प्रामाण्यापात इति । तत्रार्थे = विजिगीष्वन्तरवचनप्रतिपाद्येर्थे । तच्छब्दद्वयेन परविजिगीषुपरामर्शः।** जिज्ञासेति । **विप्रतिपत्तिवाक्याधीनसाध्यतदभावसंशयाधीनैकतरकोटिजिज्ञासाव्यतिरिक्तैव वादिप्रयुक्तन्यायाधीना 'वाद्युपन्यस्तप्रमाणेनानुमियामिति'**

भारती

अतः उक्त अनुमानाभास से अथवा अर्थापत्त्याभास से भेद प्रमा का उदय कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ।

यदि कहें कि मैं (तार्किक) स्वयं उस भेद को जानता हूँ। अर्थात् मुझे भेदविषयक प्रमा है। अतः मेरे प्रति वेदान्ति के मत का आश्रय कर असिद्धि आदि (स्वरूपासिद्धि-दृष्टान्तासिद्धि--बाध) दोषों का उद्भावन नहीं कर सकते, (परार्थानुमान में ही असिद्ध्यादि दोषों का उद्भावन किया जाता है न कि स्वार्थानुमान में। वस्तुतः वेदान्ती के मत में असिद्ध्यादि रहते हुए मेरी अनुमिति के प्रतिबन्धक नहीं है।) तो आप का यह कथन युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि स्वार्थानुमान मानने पर मैं स्वयं भेद को जानता हूँ यह कथन ही व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि वचन (प्रतिज्ञादिपञ्चावयववचन) तो परार्थ (दूसरे को ज्ञान कराने के लिए) होते हैं । (अतः यदि आप को भेद ज्ञात भी है तो मेरे (वेदान्ती) प्रति उसे कह नहीं सकते। कारण कि आप कथन (अनुमिति) में मेरी दृष्टि से असिद्ध्यादिदोष विद्यमान है।) और यदि आप मौन रहते हैं तो उत्तराप्रतिपत्ति (उत्तर का भान न होना) रूप अप्रतिभात नामक निग्रहस्थान से निगृहीत हो जाते हैं।

स्वतस्तदर्थप्रमित्युत्पादनपर्यवसायितयोपयुक्तम्, नचाद्वैतवादिनं प्रति तथा कर्तुं शक्यते, तं प्रत्यन्यतरासिद्धेरुक्तत्वात् ।

न च वाच्यं मम वचनात्सन्देहेनापि श्रुत्या तत्र सन्दिग्धबाधितभावया नाभेदप्रतिपादनं ते घटते इति; यस्मादद्वैतं मन्यमानेन भेदासिद्ध्या सर्वत्र साध्याविशेषादिदोषप्रतिसन्धायिना संशयस्याप्यनवकाशीकरणमेव स्यात् । तस्मात् -

शारदा

जिज्ञासाऽत्रोक्तेति द्रष्टव्यम्। स्वतः=स्वस्य, निष्ठत्वं षष्ठ्यर्थः प्रमितावन्वेति। स्वस्मै इति वार्थः। स्वनिष्ठसंशयनिवृत्त्यादिप्रयोजनकेति यावत्। तदर्थप्रमित्युत्पादनपर्यवसायितयोपयुक्तम् = उक्तवचनार्थविषयकप्रमित्युपधायकपरामर्शोत्पत्तिरूपफलवत्। तथा कर्तुं = भेदजिज्ञासोत्पादनद्वारा भेदप्रमित्युपधायकपरामर्शोत्पादनमद्वैतवादिनि न शक्यते। तं प्रति = तन्मतमादाय तन्मताभ्युपगमाधीनेति यावत्, एवच्चासिद्धावन्वेति। तथाच तन्मते एवासिद्धिरुक्ता भवति। अन्यतरशब्दस्य वादिप्रतिवाद्यन्यतरपरत्वात्। हेत्वादेरुभयसिद्धस्यैव परसिद्धस्यैव वा परं प्रति वक्तव्यत्वादिति भावः।

वचनात् = भेदप्रतिपादकवचनात्। तत्र=अन्तिमबुद्ध्यभेदबुद्ध्याद्यभेदविषयकत्वावच्छेदेन। नाभेदेति। तार्किकैरपि कैश्चिद् यद्यपि बाधनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकतोच्यते, नतु तत्सन्देहस्य, यदाह कुसुमाञ्जलिप्रकाशे वर्धमानः– "योग्यतायाश्च लाघवात् संशयादिसाधारणं ज्ञानमात्रं हेतुः, बाधसंशयस्य ज्ञानाप्रतिबन्धकत्वात्, अन्यथा प्रमामात्रोच्छेदप्रसङ्गादि"ति । प्रतिवादिवचनाधीनभेदबोधे चाप्रामाण्यसन्देहे तदाहितसन्देहस्य तद्विषये भेदे सम्भवेन भेदनिश्चयस्यासम्भावितत्वात्, तथाप्युपेत्यैवाह यस्मादिति। त्वद्वचनाधीनभेदविषयकबोधे ममाप्रामाण्यनिश्चय एव नतु तत्संशयो येन भेदसंशयोऽपि स्यात्। भेदग्रहिमानमात्रविषये श्रुतेः प्रवृत्तत्वात्, भेदग्राहिमानानामबाधितविषयकत्वाभावात्,

भारती

यह भी नहीं कह सकते कि मुझे (तार्किकादि) प्रमित भेद को वचन के द्वारा दूसरे के प्रति कथन करता हूँ क्योंकि आपके वचन में दूसरे को विश्वास ही (प्रामाण्यग्रह) नहीं है। एक विजिगीषु के प्रति अन्य विजिगीषु का वचन स्वप्रतिपाद्य अर्थ विषयक जिज्ञासा उत्पादन द्वारा उसे तद्विषयक प्रमिति के उत्पादन में उपयुक्त होता है। किन्तु अद्वैतवादि के प्रति भेदविषयक आप का वचन न तो अद्वैतवादि की भेदविषयक जिज्ञासा ही उत्पन्न कर सकता है और न भेदविषयक प्रमा ही, क्योंकि अद्वैतवादि के मतानुसार असिद्ध्यादिदोष दिया जा चुका है।

यदि कहें कि मेरे भेद प्रतिपादक वचन से अद्वैतवादी को श्रुतिप्रतिपादित अभेद (अन्तिम बुद्धि का अभेदबुद्धि के साथ अभेद) रूप विषय में सन्देह उत्पन्न अवश्य होगा, और उसी सन्देह के कारण उसे (अद्वैतवादि को) संदिग्धबाधितभाव अर्थात् संदिग्ध है बाधितत्त्व जिस में ऐसी श्रुति के द्वारा अभेदविषयक बोध नहीं हो पायेगा ।

एकं ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतः क्वचित् ।
आस्ते न धीरवीरस्य भङ्गः सङ्गरकेलिषु ।। १५ ।।

अपि च प्रतीयते तावदिदं सामान्यतो, यन्नाम किञ्चित्परश्चेतसा चिन्तयन्नस्तीति, किञ्चिद्वा विवक्षुरित्यादि, तत्र परस्य बुद्धिविषयो विवक्षाविषयो वा विशेषतो विनिगमनं विना नैव प्रतीयते,

शारदा

व्यावहारिकविषयकत्वेनैवोपपत्तेश्चेति भावः। वस्तुतस्तु बाधितभावोऽप्रामाण्यम्, तुल्यबलत्वेन प्रतिसन्धीयमानविरुद्धार्थग्राहकमानद्वयोपनिपाते विषयसन्देहस्यान्यतरत्वेनाप्रामाण्यसन्देहस्य चौचित्यावर्जितत्वात्, अतएव संशयकरणिकामर्थापत्तिं केचित्सत्प्रतिपक्षस्थले संशयात्मानुमितिञ्चाम्नन्तीत्याशयेनैवाशङ्का। तुल्यबलत्वेन प्रतिसन्धानमेव नास्तीत्याशयेन च समाधानमिति द्रष्टव्यम्। ब्रह्मेति। वृत्त्यभिव्यक्तीभूय सर्वप्रपञ्चबाधकत्वमेव ब्रह्मणोऽस्त्रत्वम्। आदाय=पारमार्थिकत्वेन निश्चित्य । क्वचित्=क्वापि, सदधिकरणमात्रे इति यावत्, अन्यं=ब्रह्मभिन्नं न गणयतः, सत्त्वव्यापकतावच्छेदकानुयोगिताविशेषनिरूपितप्रतियोगितानिरूपितावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरधर्मावछिन्नत्वनिष्ठप्रकारताकब्रह्मातिरिक्तविशेष्यताकनिश्चयवत इति निर्गलितार्थः। धीरवीरस्य=अचञ्चलचेतस्त्वे सति ब्रह्मचर्यादिजनितशक्तिविशेषवतः। सङ्गरकेलिषु = वाग्युद्धक्रीडासु। विनिगमनं विनेति । परकीयमुखमालिन्यादेरगणितहेतुकत्वेन सामान्यस्य गृहीतस्यापि विशेषे

राजहंसः

सत्त्वव्यापकतावच्छेदकेत्यादि। अनुयोगिताविशेषो मिथ्यात्वघटकमत्यन्ताभावत्वम्। यावत्सन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपप्रसिद्धमिथ्यात्वं हि मनसिकृत्यैवं परिष्कृतम्।

भारती

तो यह कहना असङ्गत है क्योंकि श्रुति के बल पर भेदसाधक अनुमानादि में साध्य हेतु पक्ष आदि सभी के अभेद के अनुसन्धाता एवं अद्वैत को मानने वाले अभेदवादि की दृष्टि में भेद ही सिद्ध नहीं है । ऐसी स्थिति में भेदविषयक संदेह होने का भी अवसर नहीं है । तस्मात्

एक (अद्वैत) ब्रह्म रूप अस्त्र को ग्रहण कर अर्थात् पारमार्थिकरूप से निश्चय कर कहीं (सदधिकरण मात्र में) भी ब्रह्मभिन्न निखिल प्रपञ्च की गणना न करने वाले अर्थात् मिथ्या मानने वाले धीरवीर (अचञ्चलचित्त और ब्रह्मचर्यादिजनित शक्तिविशेष विशिष्ट) का किसी भी वाग्युद्धक्रीडा में पराजय नहीं हो सकता। अद्वैतब्रह्म अखण्डाकारा वृत्ति में अभिव्यक्त होकर समस्त प्रपञ्च का बाधक होता है अतः उसे अस्त्र कहा गया है ।

किञ्च जहाँ यह सामान्यतः प्रतीति होती है कि यह परपुरुष चित्त में कुछ चिन्तन करता है अथवा कुछ कहना चाहता है वहाँ उस परपुरुष के बुद्धि अर्थात् चिन्ता का विषय अथवा विवक्षा का विषय विनिगमक प्रमाण विशेष के बिना विशेष

ततोऽन्तिमबुद्ध्यादिभेदो न भवता शक्यप्रमः, परेण तच्चिन्तनादेरपि सम्भवात् । स्वस्मात्स्वस्य भेदाभावात् । ततस्तत्र लब्धपदा कथमद्वैतश्रुतिर्विश्वाभेदे पर्यवस्यन्ती त्वया शक्यबाधा स्यात् । तस्मात्–

कथं सामान्यतो ज्ञाते नैव ज्ञाते विशेषतः ।
पदरोधस्त्वया कर्तुं शक्यः स्यादद्वयश्रुतेः ।। १६ ।।

ननु भेदमनङ्गीकुर्वतो भवतः कथं तत्तत्पदपदार्थवैचित्रीव्यवहारो न

शारदा

पर्यवसानमसम्भवीति भावः। ततः=परकीयबुद्धिविषयात् परकीयविवक्षाविषयाच्च। तच्चिन्तनादेः=अन्तिमबुद्ध्यादिविषयकचिन्तनादेः। तथाचान्तिमबुद्धिर्देवदत्तीयबुद्धिविषयभिन्ना बुद्धित्वादित्याद्यनुमानं न सम्भवति, अनुयोगिभूतान्तिमबुद्धेरेव देवदत्तीयबुद्धिविषयत्वे तस्या एव स्वनिष्ठभेदप्रतियोगित्वापत्तेरिति । तदिदमाह स्वस्मादिति । तत्र= परकीयबुद्धिविषयान्तिमबुद्ध्याद्यभेदविषयकत्वावच्छेदेन। लब्धपदेत्यादिकमुक्तार्थकम्। सामान्यत इति। परकीयबुद्ध्यादिविषये इत्यादिः। सामान्यधर्मप्रकारकज्ञान-विशेष्यविशेषधर्मप्रकारकज्ञानाविशेष्यपरकीयबुद्ध्यादिविषयनिष्ठो योऽन्तिमबुद्ध्याद्यभेदस्त-द्विषयकत्वावच्छेदेनाद्वैतश्रुतेरप्रामाण्यग्रहात्मकः पदरोधस्त्वया कर्तुं न शक्य इत्यर्थः । नच परचिन्त्यमानत्वावच्छेदेनान्तिमधीभेदो ग्राह्यः, अन्तिमबुद्धेरपि तादृशावच्छेदकवत्त्वसन्देहे तदवच्छेदेनान्तिमभेदस्य निश्चयासम्भवात्, भेदस्य पारस्परिकत्वेनानुयोग्यवृत्तिधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्ववत्प्रतियोग्यवृत्तिधर्मस्यैवानुयोगितावच्छेकत्वात्, व्यापकधर्मा-वच्छिन्नानुयोगिताकव्याप्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्याप्रामाणिकत्वात्, अतएव द्रव्यं घटान्यदित्यस्याप्रामाणिकत्वं व्याप्तिवादे जगदीशेनोक्तम्। यद्यपि कदाचित्कथ-ञ्चित्परकीयबुद्धिविषयं प्रतीत्य ततोऽन्तिमबुद्ध्यादिभेदग्रहः स्यात्, तथापि श्रुतेरवकाशोऽसर्वज्ञं प्रति सुवच एव सर्वदा सर्वत्र तेन भेदाग्रहात् स्थलानामदौर्भिक्ष्यात् , श्रुतेः सर्वविषयकत्वात् । सर्वज्ञेन तु भेदो गृह्यते इत्यस्याप्रामाणिकत्वम् , तवासर्वज्ञत्वादिति भावः। अनङ्गीकुर्वतः= अप्रतीतवतः। वैचित्रीव्यवहारः= भेद प्रतिपत्त्यधीनव्यवहारः। पदान्तरं परित्यज्य तत्तत्पदस्यैव

भारती

रूप से ज्ञात नहीं होता । अतः उस सामान्यत ज्ञात वस्तु के साथ अन्तिम बुद्धि के भेद की प्रमा आप को अशक्य है अर्थात् नहीं हो सकती। क्योंकि सम्भव है कि वह परपुरुष अन्तिम बुद्धि का ही चिन्तन करता हो, और अन्तिम बुद्धि का स्वयं के साथ स्वयं का भेद नहीं हो सकता। इसलिए वहीं अर्थात् सामान्यतः चिन्तित से अन्तिमबुद्धि के अभेदबोधन में दत्तपदा (प्राप्तावसरा) अद्वैतश्रुति सर्वाद्वैत सिद्ध करने में पर्यवसित (प्रमाणभूत) हो जायेगी। अतः आप उसे (अद्वैत श्रुति) बाधित नहीं कर सकते।

तस्मात् - विशेषरूप से अज्ञात एवं सामान्यतः ज्ञात वस्तु में अद्वैत साधक अद्वैत श्रुति के प्रामाण्य का विघात (निराकरण) आप नहीं कर सकते ।

व्याहन्यते; कथं व्याहन्यते, प्रतिवक्ष्यते हि तत्। किञ्च, योऽयं त्वया व्याघात आपादनीयः, सोऽपि कस्माच्चिदापादकात्, न चापाद्यापादकमभिद्यमानमापत्त्यै प्रभवेदिति। तस्मात् -

नानात्वमवलम्ब्यापि वदत्यद्वैतवादिनि ।
असिद्धभेदाद्व्याघातः पतेदापादकात्कुतः ।। १७ ।।

शारदा

प्रयोगो भेदस्यैव खण्डनार्थं नत्वभेदस्येति भेदप्रतिपत्तिमन्तरेण न घटनां प्राञ्चति, एवं द्वैतवादिनं स्वभिन्नतया प्रतीत्यैव तेन सह कथायाः सम्भवः। यदि चात्र भेदज्ञानं नापेक्षणीयमपित्वभेदज्ञानविरह, एव तदाऽभेदज्ञानस्यैव व्यवहारविरहापादकतायां तात्पर्यं द्रष्टव्यम् । पदविशेषाद्यर्थं तु भेदज्ञानमपेक्षणीयमेव। प्रतिवक्ष्यते इति। **अद्वैतज्ञानेन द्वैतज्ञानस्य भ्रमत्वग्रहेऽपि प्रारब्धकर्माधीनभोगौपयिकस्य तस्यानिवृत्तेर्व्यवहारसम्भवः, व्यवहारस्याविद्यकद्वैतज्ञानेनैवोपपत्तौ पारमार्थिकत्वेन द्वैतज्ञानानाक्षेपकत्वादिति भावः। व्याघातः=व्यवहाराभावः । यदि भवान् भेदज्ञानवान् न स्यात् व्यवहारवान् न स्यादिति प्रसङ्गः। आपाद्यापादकमिति समाहारः। अभिद्यमानं=अभिन्नतया निश्चितम् । अवलम्ब्य= प्रतीत्य । तथाचापादकमेव नास्ति। परमार्थभेदघटितमापादकं त्वप्रसिद्धमप्रयोजकञ्च। यदि च पारमार्थिकत्वेन भेदनिश्चयोऽपेक्षणीयस्तदा मामुद्दिश्य व्यवहाराभावापत्तिरेव न त्वया दातुं शक्या, अपाद्यापादकभेदस्य पारमार्थिकत्वेन ममानिश्चयादापाद्याषादक-भावासम्भवस्यैव मयोद्भावनीयत्वादित्याह** असिद्धभेदादिति । **पारमार्थिकत्वेनानिश्चित आपाद्यप्रतियोगिको भेदो यस्य तस्मादापादकादित्यर्थः ।**

भारती

प्रश्न-भेद को न मानने वाले अर्थात् भेदज्ञानशून्य आप भेदज्ञान के द्वारा सम्पन्न होने वाले तत्तद् वस्तु के विचित्र (विभिन्न) व्यवहार भी नहीं कर सकेङ्गे।

समाधान-क्यों नहीं कर सकेङ्गें । क्योंकि उक्त प्रश्न का समाधान किया जा सकता है। (तात्पर्य यह है कि अद्वैत ज्ञान के द्वारा द्वैतज्ञान में भ्रमत्व का निश्चय होने पर भी प्रारब्धकर्माधीन भोगोपयिक भेद सर्वथा निवृत्त नहीं होता, अतः व्यवहार व्याहत नहीं होता। किञ्च व्यवहार की उपपत्ति आविद्यक द्वैत ज्ञान से ही हो जाती है अतः उस (व्यवहार की उपपत्ति) के लिए पारमार्थिकत्वेन द्वैतज्ञान की अपेक्षा ही नहीं है।) किञ्च आप जिस व्याघात (व्यवहाराभाव) का आपादन करते हैं वह भी (व्यवहाराभाव रूप आपाद्य भी) किसी आपादक के द्वारा ही कहना होगा, किन्तु आपाद्य और आपादक अभिन्नतया निश्चित होने पर व्याघातरूप आपत्ति देने में समर्थ कैसे हो सकते हैं। (तात्पर्य यह है कि - यदि भवान् भेदज्ञानवान् न स्यात् व्यवहारवान् न स्यात् इस प्रकार ही आपाद्य-आपादक भाव मानना होगा, किन्तु अद्वैतवादि के मत में आपाद्य आपादक वे अभिन्नतया निश्चित हो जाने से आपाद्य से भिन्न आपादक ही नहीं रह गया, ऐसी स्थिति व्याघात का आपादान कैसे कर सकते हैं।) तस्मात् नानात्व अर्थात् व्यावहारिक भेद को स्वीकार कर व्यवहार करने वाले अद्वैतवादी के प्रति व्याघात का अपादान कैसे कर सकते हैं क्योंकि उस

इदमपि च विचारमर्हति, यदद्वैतश्रुतीनां बाधकमुपन्यस्यते प्रत्यक्षादि घटपटप्रभृतिभेदग्राहि, तदपि कीदृश्यर्थे पर्यवस्यति। तथाहि–प्रत्यक्षेण योऽसौ भेदो गृह्यते स किं स्वरूपभेदः, किमन्योन्याभावः, किं

शारदा

येषामुक्तिः समलोऽय खण्डनं मण्ड्यते मया।
ब्रह्मानन्दाभिधाचार्यान् वन्दे तांश्चन्द्रिकाकृतः।।

भेदग्राहीति। **घटाद्भिन्नः पट इति धीरेव विवक्षिता।** कीदृशीत्यादि। **घटप्रतियोगिकतया किंविषयिकेत्यर्थः। प्रत्यक्षेण=प्रत्यक्षादिना। एवमग्रेऽपि।** किमिति। **उक्तधीर्घटप्रतियोगिकतया पटस्वरूपविषयिणी न वेत्यादिरीत्या स्वरूपस्थानेऽन्योन्याभावादिकं निवेश्य विप्रतिपत्तिरूह्या। स्वरूपभेदः=भिद्यमानं स्वरूपं अनुयोगिस्वरूपमिति यावत्। वैधर्म्यालिङ्गितमनुयोगिस्वरूपं वा। क्लृप्तेनाधिकरणेनैवोपपत्तावतिरिक्तभेदकल्पनायां मानाभावात्, रूपभेदेन चाधाराधेयभावोपपत्तेः, भावरूपाणामधिकरणानां निष्प्रतियोगिकत्वेऽपि भेदत्वादिना सप्रतियोगिकत्वोपपत्तेः, घटत्वेन निष्प्रतियोगिकस्यापि घटस्य घटाभावाभावत्वेन सप्रतियोगिकत्ववत्, रीतिश्चेयं न परं भेदे, अपि त्वभावमात्रे, यदाहुः प्राभाकराः– ''दृष्टस्तावदयं घटोत्र च पतन् दृष्टस्तथा मुद्गरो, दृष्टा खर्परसंहतिः परमितोऽभाव न दृष्टोऽपरः। तेनाभाव इति श्रुतिः क्व निहिता किञ्चात्र तत्कारणम् स्वाधीना कलशस्य केवलमियं दृष्टा कपालावलि''रिति। प्रकृतेऽपि प्रतियोग्यनुयोग्यतिरिक्तं नोपलभ्यते इति भावः।** अन्योन्याभाव इति। **अनुयोग्यतिरिक्तो भेदत्वाख्याखण्डोपाध्याश्रय इत्यर्थः। अभावत्वप्रकारकप्रतीतेः प्रमात्वरक्षार्थमतिरिक्तताया एवौचित्यात् निष्प्रतियोगिकस्य**

राजहंस

धीरेवेति। न तु तत्करणम्। तत्करणस्यापि तद्द्वारैव बाधकताव्यवहारात्।

नोपलभ्यत इतिभाव इति। न च केवलाधिकरणस्यैवाभावरूपताया वक्तव्यत्वेन कैवल्यस्यातिरेकानतिरेकाभ्यां दोष इति देश्यम्, प्रतियोगिशून्यत्वप्रकारकप्रतीतिविषयत्वस्यैव कैवल्यरूपत्वात्, अभावानतिरेकेऽप्यभावत्वधर्मस्यातिरिक्तस्यातिरस्कारात्। प्रमात्वरक्षार्थमिति। न चाभावस्यानतिरिक्तत्वेऽप्यभावत्वमतिरिच्यताम्, वर्ततां च भावे, तावतैव च तत्प्रकारकप्रतीतेः प्रमात्वमिति किमित्यतिरिक्ताभावाभ्युपगम इति वाच्यम्, एवं सत्यभावत्वविशिष्टस्या प्यतिक्तिताया औचित्योपनीतत्वात्, अन्थाभावत्वातिरिक्ततोक्तेः परिभाषामात्रत्वात्। अनन्ताधिकरणेष्वभावत्वसंसर्गकल्पनापेक्षयाऽतिरिक्ताभावकल्पनाया एवार्चनीयत्वाच्च। अत एव विरुद्धधर्माध्यासेन वस्तुभेदापादनमपि सुन्दरम्।

भारती

(अद्वैतवादी) की दृष्टि से आपाद्य आपादक का भेद ही असिद्ध है। अतः पारमार्थिकत्वेन अनिश्चित है आपाद्यप्रतियोगिक भेद जिस में ऐसे आपादक के द्वारा आपत्ति नहीं दी जा सकती है।

भेदखण्डन

यहाँ यह भी विचार करना चाहिए कि घट पट आदि के भेदग्राही जिन प्रत्यक्ष आदि को आप अद्वैत श्रुतियों का बाधक कहते हैं, वे प्रत्यक्ष आदि भी किस प्रकार

वैधर्म्यम्, किमन्यदेव वा, यदि तावत्स्वरूपं भेदः, स नाम घटपटयोर्हि स्वरूपं यत्परस्परस्माद्भेदः, तत्परस्परमनन्तर्भाव्य न सम्भवति, भेदो

शारदा

सप्रततियोगिकत्वे विरुद्धधर्माध्यासेन वस्तुभेदापत्तेः, अतएव घटाभावाभावोऽप्यतिरिच्यते एवेति भावः। वैधर्म्यमिति। **तदभावव्याप्यो धर्मस्तदाश्रयात्स्वाश्रयस्य भेद इत्यर्थः। घटत्वाभावव्याप्यस्य पटत्वस्यैव घटात्पटभेदत्वम्। अन्योन्याभावस्याप्येतदधीनत्वादस्यावश्योपगन्तव्यत्वात्, भेदत्वप्रकारकप्रतीतेरेतद्विषयकत्वेनैव प्रमात्वसम्भवात्। भेदत्वेन सप्रतियोगिकत्वसिद्धौ च निष्प्रतियोगिकत्वसप्रतियोगिकत्वयोरसामानाधिकरण्यरूपविरोधस्यैवामन्तव्यत्वात्, नचैवं स्वरूपमेव भेदोऽस्तु, आधाराधेयभावानुभवापलापापत्तेः, रूपभेदेनाधाराधेयभावस्य च ''नहि दण्ड्यपि देवदत्तः कुण्डलिनं स्वमारोहती'' तिन्यायेनानुपपत्तेरिति भावः।** इदन्तु बोध्यम् - **मतभेदेन कल्पत्रयं व्याख्यातम्, भेदशब्दस्य कर्मभावकरणव्युत्पत्त्या स्वरूपान्योन्याभाववैधर्म्यपरत्वे तु कल्पत्रयमपि नैयायिकादिना शक्यावलम्बनम्, कथमन्यथा भेदसिद्धिबौद्धाधिकारादौ त्रयाणामेव समर्थनं सङ्गच्छेतेति ।** अन्यदेवेति। **पृथक्त्वं, विभागो, घटाद्यभिन्नत्वे सति घटादिप्रतियोगिकविशेषवत्त्वञ्चेत्यर्थः। तत्राद्यो घटादन्यः पट इति प्रतीतिसाक्षिकः, अन्यत्वस्य पृथक्त्वरूपत्वात्, अन्योन्याभावस्य तद्रूपत्वे तु घटात्पटो नेत्यपि प्रयोगापत्तेः। अन्योन्याभावस्तु घटो न पट इत्येव भासते इति तर्कामृते जगदीशः। केचित्तु पृथक्त्वस्य वैशेषिकमते भेदरूपतामाहुः, तदसत्, वैशेषिकोपस्कारादौ तयोर्भेदेन स्फुटं साधितत्वादिति।**

राजहंसः

प्रमात्वसम्भवादिति। न चात्रापि भेदत्वविशिष्टस्यातिरिक्ततापर्यवसानमितिवाच्यम्, भेदाभेदाभ्युपगमसम्भवात् । एवं च प्रथमोऽत्यन्ताभेदस्य पक्षः, द्वितीयोऽत्यन्तभेदस्य तृतीयस्तु भेदाभेदस्येति। घटाद्यभिन्नत्वे सतीति। घटादिपदमनुयोगिपरम् ।

भारती

के भेद को विषय करते हैं। तथाहि- प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जो भेद गृहीत होता है वह क्या स्वरूपभेद अथवा अन्योन्याभावरूप है । या वैधर्म्यरूप है या इन से अन्य ही पृथक्त्व विभाग एवं घटादि से अभिन्न होता हुआ घटादिप्रतियोगिक विशेषत्व । तात्पर्य यह है कि दार्शनिकों का भेद के विषय में बहुत मतभेद है – यथा स्वरूपभेद- यहाँ भेद शब्द कर्मव्युत्पत्या प्रयुक्त है अर्थात् भिद्यते यत् वही भेद पदार्थ है भिद्य मानस्वरूप = अनुयोगिस्वरूप वैधर्म्यालिङ्गित अनुयोगि स्वरूप भी कह सकते हैं – यह प्रभाकर का मत है – इनके मत में संक्षेप से साधक युक्तियाँ यह है – क्लृप्त अधिकरण से ही भेद व्यवहार उपपन्न हो सकता है तदतिरिक्त भेद की कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है । आधाराधेयभाव भी रूप भेद से बन सकता है भाव रूप अधिकरण का निष्प्रतियोगिकत्व होने पर भी भेदत्वेन सप्रतियोगिकत्व भी संभव है। नैयायिक कहते हैं कि – अभावत्वप्रकारकप्रतीति के प्रमात्वरक्षार्थ भेद को अतिरिक्त ही मानना उचित है । वैधर्म्य का तात्पर्य है घटत्वाभावव्याप्यपटत्व ही घट से पट का भेद है ।

हि भवन् कस्मादपि भवति, अन्यथा 'स्वरूपं भेद' इति पारिभाषिकं नाम स्यात्, यदा च घटाद्भेदः पटस्येत्येतावानेवार्थः पटादेः स्वरूपं प्रत्यक्षेण गृह्यते, तदा घटोऽपि पटात्मन्येव प्रविष्ट इति पटघटयोरैकात्म्यमेव भेदग्राहिणा प्रत्यक्षेणावगाहितमिति विपरीतमापद्यते ।

शारदा

द्वितीयस्य भेदत्वं तु भेदसिद्धौ व्यवहृतम्, ''य इह नानेव पश्यती'' त्यत्र विभागलक्षणभेदो निन्द्यते इति तत्रोक्तत्वात् । तृतीयस्तु माध्वसम्मतः, ''भेदहीने त्वपर्यायशब्दान्तरनियामकः। विशेषो नाम कथितः सोऽस्ति वस्तुष्वशेषत'' इति भेदजयश्रीग्रन्थे तैरुक्तत्वात्। घटभेदयोरभेदेऽपि घटपदभेदपदयोरपर्यायत्वनियामको विशेष इत्यर्थः। स्वरूपं भेदः= भेदपदार्थः स्वरूपम्, घटप्रतियोगिकत्वविशिष्टं वस्त्वनुयोगिस्वरूपमेवेति यावत्। घटपटयोः स्थलभेदेनानुयोगिनोः। यत्परस्परस्मात् = यस्मात्परस्परस्मात् भेदत्वेन प्रतीयमानं तत्परस्परमनन्तर्भाव्य = अविशेषणीकृत्य घटपटयोः स्वरूपं न सम्भवतीत्यन्वयः। विशेषणतया औत्सर्गिकत्वेन भेदत्वेन प्रतीयमाने प्रतियोगिनो विशेषणत्वे विधेयान्वयित्वावश्यम्भावात् घटस्याप्यनुयोग्यात्मतापत्तिरित्यर्थः। एतदेव विवृणोति भेद इति । **कस्मादपि =किञ्चित्प्रतियोगिक एव । पारिभाषिकं = लोकव्यवहारमननुरुन्धानम् ।** पटस्येति **दृष्टान्तार्थम्। यथा पटस्येति प्रतीयमानं पटस्य स्वरूपं तथा घटाद्भेद** इत्यपीत्यर्थः । **विपरीतं=भेदविरुद्धम्। नच-घटभेदः पटात्मक इत्यत्र घटस्य भेदे विशेषणत्वेऽपि भेदीयविधेयान्वयिता-वच्छेदकसम्बन्धातिरिक्तेन स्वप्रतियोगिकभेदीयस्वरूपसम्बन्धविशेषेणैव विधेयान्वयित्वं, तावतैव विशेषणतोपपत्तेरिति वाच्यम् ; प्रकृतविधेये विशेष्यान्वयितावच्छेदक-सम्बन्धेनान्वयितायामेव विशेषणताव्यवहारस्य दण्डिनं पश्येत्यादौ दर्शनेन तदतिरिक्तसम्बन्धेनान्वये उपाधितासम्भवेऽपि विशेषणत्वासम्भवात्। अन्यथा शब्दोऽनित्य इत्यत्र शब्दत्वस्य स्वाश्रयद्वारकसम्बन्धेनानित्यत्वान्वयसम्भवात् तस्योपाधित्वव्यवहारो न स्यात्, वस्तुतस्तु क्वापि विशेषणतोपाधिताव्यवस्था न स्यादिति भावः।**

भारती

यह सब स्व स्व व्युत्पत्यनुसारि मतभेद है । कर्मव्युत्पत्यनुसार स्वरूपभेद, भाव व्युत्पत्यनुसार अन्योन्याभाव करणव्युत्पत्यनुसार वैधर्म्यरूप भेद कहा गया है ।

यदि स्वरूप को भेद (भेदपदार्थ) कहें तो यह घटाद् भिन्नः पटः, पटाद्भिन्नो घट इस प्रकार घटपट का परस्पर में भेद घटपट का स्वरूप ही होगा, और यह स्वरूपात्मक भेद परस्पर में (घट पट को) अन्तर्भाव अर्थात् विशेषण किये बिना नहीं हो सकता, क्योंकि भेद तो किसी का किसी के साथ ही होता है अर्थात् किञ्चित् प्रतियोगिक और किञ्चिद् अनुयोगिक होता है । अतः घटाद्भिन्नः पंटः कहने पर घट प्रतियोगिकत्वविशिष्ट पटरूप अनुयोगि का स्वरूप ही भेद कहना होगा। अन्यथा अर्थात् प्रतियोगि के बिना ही यदि केवल स्वरूप भेद माना जाय तो वह पारिभाषिक (व्यवहार का अनुपयोगी) हो जायेगा । इसलिए जब घटाद् भिन्नः पट कहकर घटप्रतियोगिकत्व विशिष्ट पट का स्वरूप

ननु यथेयं प्रतीतिरभेदोल्लेखितया व्याख्यायते, तथा भेदोल्लेखित्वेऽपि दीयतामस्यां दृष्टिः, अभेदे हि घट इत्येव पट इत्येव वा बुद्धिः स्यात्, न तु घटाद्भिनः पट इति चेत्; स्यादप्येष पर्यनुयोगो यद्यविद्याविद्यमानभावं भेदं पारमार्थिकमभेदमिच्छन्तोऽपि प्रत्यादिशामः। तस्मात्–

अभेदं नोल्लिखन्ती धी र्न भेदोल्लेखनक्षमा ।
तथा चाद्ये प्रमा सा स्यान्नान्त्ये स्वापेक्ष्यवैशसात्।।

शारदा

अभेदोल्लेखितया= अभेदप्रतिपादकशब्दाभिलप्यमानविषयकतया। अविद्येति। **एतेनोत्पत्तिविनाशकल्पनायां गौरवात् भेदस्य नित्यत्वसिद्धौ ब्रह्मवत्पारमार्थिकत्वमस्त्विति निरस्तम् ; वक्ष्यमाणयुक्तिभिर्भेदस्य बाधे तस्य नित्यताया वक्तुमशक्यत्वेनाविद्यकत्वस्य वक्तव्यत्वात् । भेदं प्रत्यादिशाम इति योजना।** पारमार्थिकमभेदमिति। **एतेन घटपटाद्यभेदस्य ब्रह्मात्मकत्वं सूच्यते, अन्यथा ब्रह्मातिरिक्तस्य पारमार्थिकत्वेऽद्वैतव्याघात्, अतएव घटपटादीनामकल्पितस्वरूपमपि ब्रह्मैव, अन्यथा घटाद्यस्वरूपत्वे ब्रह्मणो घटादिस्वरूपभूताभेदस्वरूपत्वोक्त्यसङ्गतेः ।** अभेदमिति **स्वरूपभेदपक्षे इत्यादिः। निरुक्ताभिलप्यमानाविषयिकेत्यर्थः। आद्ये=अभेदविषयकत्वावच्छेदेन। अन्त्ये= भेदविषयकत्वावच्छेदेन प्रमा न स्यात्, अन्यथा स्वापेक्ष्यवैशसात्=भेदोपजीव्यस्याभेदस्य बाधप्रसङ्गात्। ननु प्रतियोगिनो विशेषणत्वे उक्तरीत्याऽभेदविषयकत्वस्य भेदप्रतीतावापत्तावपि भेदस्यानुयोगिस्वरूपत्वेनाभेदस्य च तदभावरूपत्वेन विपरीत एवोपजीव्योपजीवकभाव इति भेदविषयकत्वावच्छेदेनैव तस्याः प्रमात्वमुचितमिति चेन्न, भेद स्वरूपत्वेऽपि**

राजहंसः

घटपटाद्यभेदस्य ब्रह्मात्मकत्वमिति । एतच्च समन्वयसूत्रभामत्यां 'अभेदोपादानैव भेदकल्पने' ति वाचोयुक्त्या सूचितम् । प्रपञ्चितं चैतद्दर्शनसर्वस्वे ।

भारती

भेद प्रत्यक्षप्रमाण से सिद्ध होता है तो विशेषणीभूत घट भी पट के स्वरूप में प्रविष्ट हो गया, ऐसी स्थिति में भेदग्राहि प्रत्यक्ष के द्वारा घट पट की एकता ही सिद्ध की गई। तथाच प्रत्यक्ष के द्वारा भेद विरुद्ध (एकत्व) ही सिद्ध हुआ न कि भेद ।

प्रश्न – आपने घटाद्भिन्नः पटः इस प्रतीति को जैसे अभेदविषयक कहा, वैसे ही इस प्रतीति के भेदविषयकत्व पर भी दृष्टि दीजिए। क्योंकि अभेदविषयक होने पर घटः अथवा पटः इत्याकारक ही बुद्धि होनी चाहिए, न कि घटाद्भिन्नः पट इत्याकारक बुद्धि ।

समाधान – यह आक्षेप तब हो सकता था, यदि हम पारमार्थिक अभेद मानते हुए अविद्या से विद्यमानसत्ताक अर्थात् आविद्यक भेद का भी प्रत्याख्यान कर देते। (किन्तु ऐसा है नहीं, हम आविद्यक भेद मानते हैं अतः उसी के द्वारा घटाद्भिन्नः पटः इत्याकारक प्रतीति का निर्वाह हो जायेगा। तदर्थ पारमार्थिक भेद मानना आवश्यक नहीं है।) (यहाँ अभेद को पारमार्थिक कह कर ग्रन्थकार श्री श्रीहर्ष ने यह स्पष्ट

शारदा

भेदत्वेन सप्रतियोगिकत्वं तस्यावश्यं वाच्यम्, अन्यथा घटाद्भिन्न पट इति बुद्ध्यनुपपत्तेः तत्प्रतियोगित्वं चाभेदस्वरूपघटादेरिति कथं नाभेदस्य भेदोपजीव्यत्वम् , न ह्येकं विनाऽनेकमित्यस्य निर्विवादत्वात् । तथाचाभेदविषयकत्वावच्छेदेनैव प्रतीतेः प्रमात्वम् भेदाभावत्वेन त्वभेदस्यापि भेदोपजीवकत्वेन मिथ्यात्वमेव, शून्यतापत्तिभिया तु भेदाभावत्वोपलक्षितस्वरूपस्य सत्यत्वमावयोः समानम् । न चैवं भेदत्वोपलक्षितस्वरूपस्यापि सत्यत्वमस्त्विति देश्यम् , एवं सति भेदत्वविशिष्टस्य त्वया मिथ्यात्वं स्वीकृतमेव, तदुपलक्षितमपि किं ब्रह्म वा घटादिस्वरूपभूतभेदो वा आद्यो ब्रह्मणः सर्वाभेदात्मतावादेऽनृतभेदात्मतायास्तत्रासम्भवेन भेदत्वोपलक्षितत्वस्य तत्रासम्भवात्, भेदस्यापि सर्वान्तर्गतत्वेन तदभेदस्य ब्रह्मात्मकत्वे तदीयमकल्पितस्वरूपमपि ब्रह्मैव यद्यपि तथाप्येवं भेदभेदाभावत्वोपलक्षितत्वमेव ब्रह्मणः भेदभेदाभावत्यस्य भेदत्वरूपत्वेऽपि कल्पितेन तेनोपलक्षितस्य ब्रह्मणः सत्यत्वे का क्षतिः, कल्पितत्वं तु तस्य वक्तव्यदिशा दुर्निरूपतया। द्वितीये तु ''नात्र काचन भिदास्ती''त्यादिश्रुतिविरोधः। वक्ष्यमाणदूषणगणग्रासश्चेति भावः। अनया च कारिकया 'प्रतियोगिनो भेदे उपाधित्वमिति' पक्षोऽपि निरस्त इति न्यूनता नाशङ्कनीया, तथाहि-धीः=**घटो न पट इति समानविभक्त्यन्तपदाभिलप्यमानविषयिका धीरभेदं घटपटयोरविषयीकृत्य तयोर्भेदं विषयीकर्तुमक्षमा । नीलो घट इत्यादाविव घटो न पट इत्यत्रापि विभक्तिनामभेदार्थकतायाः संसर्गतयाऽभेदभानस्य वोचितत्वात् , प्रतियोगित्वानुयोगित्वयोर्विभक्त्यर्थताकल्पेन गौरवात्, नच तयोः संसर्गतया भानान्न गौरवम्, अभेदस्यैव संसर्गतया क्लृप्तस्य प्रतियोग्यनुयोगिनोरभावीयसंसर्गतासम्भवे प्रतियोगितानुयोगितयोरतिरिक्तयोः संसर्गताकल्पते गौरवात्। अतएव नामार्थयोरभेदान्वयबोधनियमस्यापि नात्र सङ्कोचः। भेदाभेदरूपतादात्म्यस्य सामानाधिकरण्यप्रतीतिप्रयोजकत्वपक्षेऽपि भेदस्याविद्यकत्वकल्पनयैव विरोधः समाधेयः, अनुपलब्धिप्रकरणस्थभट्टपादवार्तिकाद्युक्तरीत्या प्रतियोग्यनुयोगि-**

भारती

किया है कि श्रुति से सिद्ध घटपट का अभेद भी ब्रह्म रूप ही है न कि ब्रह्म से अतिरिक्त, अतः द्वैतापत्ति का अवकाश नहीं है ।)

तस्मात् - स्वरूपभेदपक्ष में अभेद को विषय न करने वाली बुद्धि भेद को भी विषय अर्थात् प्रकाशित करने में समर्थ नहीं हो सकती । तात्पर्य यह है घटाद् भिन्नः पटः यह बुद्धि पहले घटरूप प्रतियोगी, पटरूप अनुयोगी जो कि एक एक होने से अभेद रूप है विषय करती है पश्चात् उन दोनों के भेद को विषय करती है। अतः बुद्धिगत भेदविषयकत्व के प्रति अभेदविषयकत्व उपजीव्य है। अन्तर इतना ही है कि वह बुद्धि आद्य अर्थात् अभेदविषयकत्वावच्छेदेन (अभेदरूपविषय में) प्रमा रूप है और अन्त्य अर्थात् भेदविषयकत्वावच्छेदेन (भेदरूपविषय में) वही बुद्धि अप्रमा है, क्योंकि भेदविषयकत्वावच्छेदेन उसे प्रमा मानने में भेद के उपजीव्य अभेद का बाध होने लगेगा ।

शारदा

भ्यामभावस्य भेदाभेदोपगन्तृमीमांसकमतेऽपि तथैव वक्तुं युक्तम् , तथाच तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वेन घटाभिन्नाभेदाभिन्नत्वेन घटे घटाभेदवत् पटाभिन्नभेदाभिन्नत्वात् घटे पटाभेदः, भेदभानस्यापि स्वीकाराच्च नानुभवविरोधः, किन्तूक्तरीत्यैकत्वस्योपजीव्यत्वेन तद्विषयकात्वावछेदेनैव धियः प्रमात्वं नतु भेदविषयकत्वावच्छेदेन, अन्यथोपजीव्य-व्याघातादिति भावः। सिद्धे चैवमनुयोगिप्रतियोगिभेदानामभेदे यदि भेदांशेऽपि तादृशधियः प्रमात्वं तर्हि घटो न घट इत्यस्या अपि तदंशे प्रमात्वं स्यादिति शून्यतापत्तिरित्यपि द्रष्टव्यम् । एतच्चान्योन्याभावादिसाधारणम् । भेदत्वनिर्वचनभङ्गेन चोपाधितापक्षो व्युदास्यः। केचित्तु-**यदि** पूर्वमभेदमुल्लिखन्ती धीर्न **जायते, तदा तदनन्तरोत्पन्ना** धीर्भेदोल्लेखनक्षमा **न सम्भवतीति भेदस्याभेदोपजीवकत्वेनाभेदविषयकत्वावच्छेदेनैव धियः प्रमात्वम् । नहि तादात्म्याभावो न भेद इति वक्ष्यते नवाऽऽरोपं विनाऽभावलौकिकप्रत्यक्षमिति भेदत्वेन भेदलौकिकप्रत्यक्षार्थं घटपटयोस्तादात्म्यमारोपणीयम् । तथाच पूर्वोत्तरज्ञानयोः किं प्रमाणमिति सन्देहे उपजीव्यत्वेन पूर्वमेव, उत्तरं तु द्विचन्द्रादिज्ञानमिव भ्रमः, पूर्वात्परबलीयस्त्वं तु निरपेक्षविषयम् । नचैवं शुक्तो 'इदं रजतमिति' ज्ञानस्यैव प्रमात्वं स्यात् नतु 'नेदं रजतमि'त्यस्येति वाच्यम् ; वस्तुतस्तस्य प्रमात्वेऽपि सर्वाभेदनिश्चयाभावेन व्यावहारिकप्रमात्वविशिष्टं नेदं रजतमिति ज्ञानमपेक्ष्य भ्रमत्वव्यवहारात् , रजते रजतत्वाभावावगाहिग्रहस्य तत्र मिथ्यात्वनिश्चयात्पूर्वं भ्रमत्वव्यवहारवदिति** व्याकुर्वते।

राजहंसः

घटे पटाभेद इति। व्युत्पत्त्यनुसारिणी हि भेदस्येवाभेदस्यापि स्यान्मतिरुक्तरीत्या व्युत्पादिते जने, एवं प्रतियोग्यनुयोगिभावादे स्वभावसम्बन्धमात्रस्याभेदे पर्यवसानस्यानुपदमुपपादनीय-स्यानुशीलनोल्लसितया मत्याऽपि पटघटयोरभेदः समर्पणीय इति भावः।

भेदभानस्यापि स्वीकाराच्चेति । न चैवमाहार्यतया घटो न पट इत्यादिधियामिच्छा-घटितसामग्रीमन्तरानुत्पत्तिरापद्येतेति वाच्यम् , सामाधिकरण्यप्रतीतिप्रयोजकतया भेदाभेदभानं हि तावन्नाहार्यत्वप्रसञ्जकम् भेदसामानाधिकरण्योपलक्षिताभेदभानेन भेदाधिकरणताया अनवच्छि-न्नाया एव भानोपगमात्, समानधर्मावच्छेदेन विरूद्धधर्मयोर्भानस्यैव चाहार्यत्वापादकत्वात्। भेदे मिथ्यात्वं प्रतीतवतस्तु विरोधप्रतिसन्धानस्यैवाभावेन नाहार्यत्वशङ्कापि। अतएव समानविभक्त्यन्तत्वमहिम्नाऽभेदस्य नञ्समभिव्याहारमहिम्ना च भेदस्य भानेऽप्याहार्यत्वं न प्रसञ्जनीयम्, नच तयोर्विरोधप्रतिसन्धायिन इच्छां विना तथा बोधानुपपत्तिः; बाधबुद्धोर्विशिष्ट-बुद्धि प्रतिबन्धकत्वे ह्युत्तेजकविधया स्यादिच्छापेक्षा, सामग्रीद्वयवशाद्बोधद्वयोत्पत्तौ यत्र दोषघटितसामग्रीजत्वग्रहस्तत्राप्रामाण्यभानमात्रं नतु बोधोद्भवप्रतिबन्धइति रमणीयमतानुमतौ तु कथमिच्छापेक्षा स्यात् । अप्रमाण्यग्रहः परं द्वैताभिनिवेशिनोऽभेदविषयकत्वावच्छेदेन पवित्रितचेतसस्तु सर्वत्र परिपूर्णां ब्रह्मैव पश्यतो भेदविषयकत्वा वच्छेदेनेति भावः। अद्वैतरत्नरक्षणकारेक्षितं पक्षं पुष्टिकुर्वन्नाह केचित्त्विति।

अथ भेद इत्येतावन्मात्रं पटस्य स्वरूपम् , घटादिति च तद्घटेनप्रतियोगिनाऽन्येनैव निरूप्यते; तदपि नोपपद्यते निष्प्रतियोगिकस्य भेदस्य प्रमाणागोचरत्वात् । नित्यं प्रतियोगिघटिते एव तस्मिन्

शारदा

ननु घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमनुगमकमेवोपलक्षणतया, स्वरूपं तु भेदमात्रमिति न विशेषणपक्षोक्तदोष इत्याशङ्कते अथेति । घटादिति **च = घटादित्यभिलप्यमानघटप्रतियोगिकत्वेन तु। तत्=पटस्वरूपं। प्रतियोगिनेति वस्तुगत्या अन्येनेत्युक्त्यैव निर्वाहात्। तृतीयार्थः प्रयोज्यत्वं ज्ञानजन्यत्वरूपं प्रतीतावन्वेति। निरूप्यते=प्रतीयते। तथाच पटात्मकभेदनिष्ठं। घटप्रतियोगिकत्वप्रकारकज्ञान-विषयत्वं घटज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वप्रयुक्तमेव पटस्वरूपस्यापि भेदत्वेन ज्ञानस्य प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यत्वात् तद्विषयकसाक्षात्कारजन-कज्ञानविषयस्य च तद्विषयकसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वनियमादिति भावः। यदि नियममिममाश्रित्य भवता भेदप्रत्यक्षस्य प्रतियोगिविषयकत्वमुप-पाद्यते, तदा प्रतियोगिनः प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वस्य वोपलक्षणता न वक्तुं शक्या, उपलक्ष्यविषयकप्रतीतेः कदाचिदुपलक्षणा-विषयिकाया अपि दर्शनेन प्रतियोगिन उपलक्षणत्वे तस्य भेदत्वाव-च्छिन्नविषयकसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं न स्यादित्याशयेनोपलक्ष-णपक्षस्यासम्भवदुक्तिकतामुपाधिपक्षोक्तदूषणसत्त्वे एवाह** निष्प्रतियोगिकस्येति।

राजहंसः

तस्य प्रमात्वेऽपीति। सर्वाभेदस्याद्वैतपदार्थत्वपक्षेऽपीदमर्थरजतादेर्मिथ्यात्वेन तदभेदविषयकज्ञानस्य केवलब्रह्मात्मकाभेदविषयकत्वाच्छेदेनैव प्रमात्वम् , नतु विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेनेति तु द्रष्टव्यम्। अत्राध्याहारापेक्षामुदिक्ष्य प्रकर्षसूचना नादृता व्याकुर्वतइत्युक्त्या। तत्र यद्यपि रजतमिदमित्यस्योक्तरीत्या प्राबल्यमाशङ्क्याधिष्ठानज्ञानस्यैव तन्निरपेक्षस्य तद्बाधकत्वं नतु रजतान्योन्याभावज्ञानस्येति समाहितम् , तथापि शुक्तिरजतयोर्भेदमगृहीतवत इयं शुक्तिरीतिज्ञानेऽपि रजतमिदमिति बुद्धेः सम्भवन्त्या नेदं रजतमिति धियैव बाधनीयत्वात् , अन्यादृशपुरुषमपेक्ष्यापि व्यवहारदशायां नेदं रजतमित्यपेक्षया रजतमिदिमित्यस्य दौर्बल्यंवश्यं समर्थनीयमिति न्यूनत्वाच्चेति मत्या तादृशसमाधानं नादृतम्।

भारती

प्रश्न – भेदमात्र ही घट का स्वरूप है घटात् कहने से घटप्रतियोगिकत्व जो पट रूप भेद में भासित होता है वह विशेषण नहीं है अपितु उपलक्षण है अतः सर्वथा अन्य अर्थात् तटस्थ घटरूप प्रतियोगि के द्वारा ही वह पटरूप भेद निरूपित होता है ।

समाधान – यह आपका कथन युक्तिविरुद्ध है क्योंकि प्रतियोगि से रहित (प्रतियोगि अविषयक प्रत्यक्ष का विषय) भेद किसी प्रमाण का विषय नहीं होता । नियमतः प्रतियोगिविशिष्ट भेद ही प्रमाण का विषय होता है । अर्थात् प्रयोगिकविषयक प्रत्यक्ष का विषय ही भेद होता है । (तात्पर्य यह है कि भेदत्वेन भेदज्ञान के प्रति प्रतियोगितावच्छेदक प्रकारकज्ञान कारण माना जाता है, पटस्वरूप के भी भेदत्वेन प्रत्यक्ष के लिए

प्रमाणप्रसरात् । का चेयं वाचोयुक्तिर्यदन्यासाकाङ्क्षं पटस्य स्वरूपमन्येन प्रतियोगिना निरूप्यमाणं ततो भेदो भवतीति । नहि यत्स्वरूपेणैव नीलं, तत्पीतेन निरूप्यमाणं नीलं भवति ।

शारदा

प्रतियोग्यविषयकप्रत्यक्षविषयस्येत्यर्थः। प्रतियोगिघटिते = प्रतियोगिविषयकप्रत्यक्षविषये। उक्त नियमे एव तात्पर्यम् । अतएवाभावस्य सविकल्पकैकवेद्यत्वमिति तार्किकाः। तथा च कदाचिद्भेदस्य प्रतियोग्यविषयकप्रत्यक्षविषयतायामिष्टापत्तिरशक्येति भावः। एतावता स्वरूपभेदपक्षेऽद्वैतप्रसङ्गमभिधाय सप्रतियोगिकत्वानुपपत्तिं दूषणान्तरमाह का चेति। अन्यासाकाङ्क्षम् = घटादिविषयिताव्याप्यसाक्षात्कारीयविषयिताया अनिरूपकम्। अन्येन निरूप्यमाणं = घटादिविषयकज्ञानजन्यज्ञानविषयताश्रयीभवत् । ततो भेदः= घटादिप्रतियोगिकोभेदः। नीलं भवति = पीतप्रतियोगिकं नीलं भवति यथा नीलस्वरूपस्य वस्तुनः कदाचित्पीतज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वेऽपि स्वनीलभावस्य पीतप्रतियोगिकत्वे तादृशज्ञानविषयत्वमप्रयोजकम्, तथा पटस्वरूपस्य घटादिविषयकज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वेऽपि घटादिप्रतियोगिकत्वे न तत्प्रयोजकम्, पट इत्याकारकसाक्षात्कारस्यापि सत्त्वेन पटस्वरूपस्य घटादिविषयिताव्याप्यसाक्षात्कारीयविषयित्वानिरूपकत्वात्, तादृशविषयित्व-निरूपकत्वस्यैव च घटादिप्रतियोगिकत्वप्रयोजकत्वात् । नच पटत्वेन तादृशविषयित्वानिरूपकत्वेऽपि भेदत्वेन तन्निरूपकत्वात् घटादिप्रतियोगिकत्वं स्यादिति वाच्यम्; एवं हि पटभेदयोरभेदेपि पटत्वभेदत्वाभ्यां भेद इत्यायातम्, तथासति भेदाभेदवादो नतु स्वरूपमेव भेद इति, नचासावपि युक्तः, भेदस्यैव निरूप्यमाणत्वात्। भिन्नाभ्यां हि रूपाभ्यां भेद इति तयोरपि भेदनिरूपणप्रसङ्गे रूपान्तराणामननुभूयमानानां प्रसङ्गको वारयिता। किञ्च भेदत्वमपि पटात्मकं चेत्, तर्हि पटस्य स्वरूपेणैव सप्रतियोगिकत्वनिष्प्रतियेगिकत्वयोरापत्तिरिति विरोधो भेदपदानुयोगिवाचकपदयोः पर्यायतापत्तिश्च माभूदिति भेदत्वस्य पटातिरिक्तत्वमेव वाच्यम्, किन्तु भेदस्यातिरिक्त-त्वकल्पनयाप्युक्तविरोधादिपरिहारोपपत्तौ भेदत्वस्यैवातिरेके विनिगमकं दुर्लभम्, प्रत्युत तदतिरेके तस्यापि रूपान्तरमुक्तरीत्या वक्तव्यमित्यनवस्था । यदि च भेदातिरेकपक्षेऽपिभेदे भेदान्तरस्योपगन्तव्यत्वेनानवस्था समानैव, तदापि रूपभेदनाप्यधाराधेय-भावासम्भवस्योक्तत्वेन भेदातिरिक्ततैव युक्ता । किञ्च भेदत्वेन

भारती

प्रतियोगितावच्छेदक प्रकारक ज्ञान मानना होगा, ऐसी स्थिति में घट प्रतियोगिकत्व को विशेषण ही मानना पड़ेगा उपलक्षण नहीं मान सकते। अतएव तार्किक सम्प्रदाय में अभाव सविकल्पकैकवे माना जाता है।)

यह कौन सी वाचोयुक्ति है कि जो अन्य से निराकाङ्क्ष पट का स्वरूप है वह अन्य प्रतियोगि से निरूपित होकर घट का भेद अर्थात् घटप्रतियोगिक भेद हो जाता है। ऐसा नहीं होता है कि जो स्वरूप से ही नील है वह पीत से निरूप्यमाण (निरूपित) हो कर

यदपि चोक्तं, प्रतियोगिना घटेन निरूप्यमाणं पटस्य स्वरूपं भेद इति, तत्रापि पटं प्रति प्रतियोगित्वं घटस्य किं स्वरूपं, किं वा धर्मः कश्चित्। यदि प्रथमः, तदा पटं प्रति प्रतियोगित्वमित्येतावानेवार्थो घटस्य स्वरूपं भवदात्मन्येव पटमपि प्रक्षिपतीति कथं नाद्वैतमेव पर्यवस्यति। तत्रापि यदि प्रतियोगित्वमात्रं घटस्यात्मा, पटं प्रतीति च पटापेक्षित्वमन्यदेव। तदप्यनुपपन्नम्। अकिञ्चिदपेक्षस्य प्रतियोगित्वस्य प्रमाणाविषयत्वात्।

शारदा

सप्रतियोगिकत्वं पटस्येत्यनेन भेदत्वसप्रतियोगिकत्वमेव पटस्य सप्रतियोगिकत्वं तज्जन्य वा तज्ज्ञाप्यं वा तदिति त्रयमप्यभिप्रेतं न सम्भवति, भेदत्वं घटप्रतियोगिकं पटः घटप्रतियोगिक इति प्रतीत्यनुदयेन भेदत्वपटयोः सप्रतियोगिकत्वाभावात्। नापि भेदत्वावच्छिन्नं पटनिष्ठं सप्रतियोगिकत्वमित्यभिप्रेतं युक्तम्; पटे भेदत्वनिरूपणं विना तदवच्छिन्नसप्रतियोगिकत्वस्य तत्र वक्तुमशक्यत्वात्, तथाचान्योन्याश्रयः। दुर्वचं च भेदत्वमिति वक्ष्यते इति भावः।

प्रकारान्तरेणाद्वैतमापादयितुमाह यदपीति। **पटं प्रति=पटात्मकभेदनिरूपितं। आत्मनि=स्वाभिन्नघटे। स्वं पटनिरूपितत्वविशिष्टं निरूपितत्वसम्बन्धेन पटविशिष्टं वा प्रतियोगित्वं। पटं** प्रक्षिपतीति। **पटाभेदप्रयोजकीभवतीति यावत्। विशिष्टस्य घटाभेदे पटस्य विशेषणस्यापि तदावश्यकत्वात् तत्प्रयोजकत्वस्य विशिष्टे सम्भवः। पटनिरूपितत्वस्य पटस्य वा प्रतियोगितायामुपलक्षणत्वे पटनिरूपितप्रतियोगितायाः कदाचित्पटनिरूपितत्वाविषयसाक्षात्कारविषयत्वप्रसङ्गः, नचेष्टापत्तिः, सनिरूपकपदार्थमात्रस्य स्वनिरूपकनिरूपितविषयिताव्याप्यसाक्षात्कारीयविषयितानिरूपकतायाः क्लृप्तत्वादित्याह** आकिञ्चिदपेक्षस्येति। **तादृशविषयित्वानिरूपकस्येत्यर्थः। अत्राप्युपाधित्वविवक्षायां तु पुरोदीरितरीत्यैव**

भारती

पीतप्रतियोगिक नील होता हो। और यह जो आपने कहा कि – घटरूप प्रतियोगि के द्वारा निरूपित पट का स्वरूप भेद है। इसका भी विचार करें, उसमें भी पट के प्रति अर्थात् पटात्मक भेद से निरूपित प्रतियोगित्व क्या घट का स्वरूप है, या कोई धर्म?

यदि प्रथम पक्ष मानें तो पट के प्रति प्रतियोगित्व (पटात्मक भेदनिरूपितत्वविशिष्ट प्रतियोगित्व) घट का स्वरूप कहना होगा, ऐसी स्थिति में वह प्रतियोगित्व घट का स्वरूप होता हुआ स्वाभिन्न घट में स्वविशेषणीभूत पट को भी समाविष्ट करता है अर्थात् प्रतियोगित्व के समान प्रतियोगित्व में विशेषणीभूत पट भी घटस्वरूप (घट से अभिन्न) हो गया। तथा च भेदप्रत्यक्ष का पर्यवसान अद्वैत में ही अर्थात् अद्वैत साधकतया ही क्यों न माना जाय।

यदि कहें कि वहाँ भी प्रतियोगित्वमात्र ही घट का स्वरूप है। पटं प्रति यह अर्थात् पटात्मक भेदनिरूपितत्व अथवा निरूपितत्व सम्बन्ध से पट तो उपलक्षण है, अतः घट से अन्य होकर ही पटापेक्षित्व मात्र है। तो यह आपका कथन अनुपपन्न

'पटं प्रती'त्यत्रापि च स्वरूपतदन्यविकल्पे दोष एव। नापि द्वितीयः,

शारदा

यो यदभेदेन प्रतीयमाननिरूपकः स तदभिन्न इति व्याप्तिमाश्रित्य 'पटनिरूपितं प्रतियोगित्व' मित्यत्र निरूपिताभेदेन प्रतीयमानप्रतियोगित्वनिरूपकः पट इति स निरूपिताभिन्नः, अनुपदं वक्ष्यमाणरीत्या पटप्रतियोगित्वयोरपि स्वभावसम्बन्धस्यैव वक्तयत्वाद्वा स निरूपिताभिन्न इति निरूपिताभिन्नप्रतियोगित्वाभिन्नघटाभिन्नोऽपीत्यद्वैतं प्रसञ्जनीयम् । घटो न पट इति धियमादाय त्वद्वैतमुक्तमेव । पटं प्रतीति । **पटनिरूपिता घटात्मकप्रतियोगितेत्यत्र पटविशिष्टनिरूपितत्वस्य घटस्वरूपत्वेऽद्वैतम् , पटस्योपलक्षणत्वञ्चोक्तरीत्याऽसम्भवदुक्तिकम् । उपाधित्वेऽप्युक्तरीत्याऽद्वैतम् । तादृशनिरूपितत्वस्य घटधर्मत्वे तु धर्मधर्मिसम्बन्धस्यातिरेके तस्यापि सम्बन्धान्तरं वाच्यमिति सम्बन्धानन्त्यम्, अनतिरेके च धर्मधर्मिणोरप्यद्वैते एव पर्यवसानमित्यर्थः ।**

राजहंसः

यो यदभेदेनेत्यादि। घटो द्रव्यमित्यादौ द्रव्यपदोपात्तो घटो घटाभेदेन प्रतीयमानस्य विभक्त्यर्थस्याभेदस्य घटानतिरिक्तस्य निरूपक इति द्रव्यपदोपात्ते घटे घटपदोपात्तघटस्याभेदो दृष्ट इति भावः। ननु प्रतीयमाननिरूपक इत्यत्र निरूपकता संसर्गविधया विवक्षणीया,पटनिरूपितं प्रतियोगित्वमित्यत्र तु प्रतियोगितानिरूपकता न तादृशीत्याशङ्क्याभ्युपेत्यवादेनाह अनुपदं वक्ष्यमाणेत्यादि। संसर्गप्रकारयोरीदृशं वैलक्षण्यं शिक्षाजनितवासनामात्रजीवितं नतु स्वारसिकानुभवमानितमिति रीत्या तु शक्यतेऽत्र प्रत्यवस्थातुम् , अत एवाग्रे पुनरपिदृशस्थले व्याप्तिरियमाहूता । घटो न पट इत्यत्र तु निरूपकतया संसर्गतया विवक्षणेऽपि भातुं प्रभवत्यभेद इत्युक्तमेव ।

भारती

है । क्योंकि निरूपक से रहित केवल प्रतियोगिता किसी प्रमाण का विषय नहीं होती । (तात्पर्य यह है कि - यदि पटनिरूपितत्व अथवा निरूपितत्व सम्बन्धेन पट को प्रतियोगिता में उपलक्षण मानें तो पट निरूपित प्रतियोगिता कदाचित् पटनिरूपितत्व को विषय न करने वाले साक्षात्कार का विषय होना चाहिए । ऐसा नहीं होता, अतः उपलक्षण नहीं मान सकते।

इसी प्रकार पटनिरूपितत्व के विषय में भी अर्थात् पटनिरूपिता घटरूपप्रतियोगिता यहाँ भी पटविशिष्टनिरूपितत्व को घटरूप मानेंगे या घट से भिन्न यह विकल्प होगा । (यदि घटस्वरूप मानेङ्गें तो पूर्वोक्तरीति से पट के उपलक्षण न हो सकने से विशेषणीभूत पट भी घटरूप सिद्ध होने से अद्वैत सिद्ध हो जायेगा और यदि घट से भिन्न अर्थात् घट का धर्म मानेङ्गे तो धर्मधर्मि का सम्बन्ध मानना होगा वह सम्बन्ध यदि सम्बन्धियों से भिन्न मानेंगे तो उस सम्बन्ध का सम्बन्धान्तर मानना होगा इस प्रकार अनन्त सम्बन्ध की कल्पना होने से अनवस्था दोष होगा । यदि वह सम्बन्ध सम्बन्धिरूप है तो धर्मधर्मि रूप सम्बन्ध भी अभिन्न होकर अद्वैत में ही पर्यवसित हो जायेगा ।)

योऽसौ धर्मः पटं प्रति प्रतियोगित्वं तस्यात्मनि पटोऽपि प्रविशतीति तेन सह पटस्याद्वैतं स्यात् । यदा च पटो घटस्य धर्मतामापन्नस्तदा घटोऽपि पटस्य धर्मतामनेनैव न्यायेन गच्छेत् । नहि पटप्रतियोगित्वस्य घटेन प्रतियोगिना निरूप्यमाणत्वे घटस्यान्या गतिरस्तीति परस्परमाश्रितत्वमाश्रयत्वं च स्यात् । न च कस्यचित् प्रमाणस्य विषयो घटारूढः पटस्तत्पटारूढश्च स एव घट इति।

शारदा

प्रविशति = विशेषणीभवति । तेन = प्रतियोगित्वेन । स्यादिति । **धर्मधर्मिणोरभेदातिरिक्तसम्बन्धस्यानवस्थापादकत्वात् यो यदभेदेनेति व्याप्तिसत्त्वाच्चेति भावः। तथाच पटप्रतियोगितयोरैक्ये सति प्रतियोगिताया इव पटस्यापि घटधर्मत्वमायातमित्याशयेनाह** यदेति। **न्यायमेव स्फोरयितुमाह** नहीति । **पटनिरूपितप्रतियोगित्वस्य भेदप्रतियोगिघटनिरूप्यत्वमप्यस्ति, घटस्य तदाश्रयत्वात् , तथाच धर्मधर्मिणोरभेदेन घटप्रतियोगितयोरैक्ये प्रतियोगितानिरूपकत्वमिव घटनिरूपकत्वमपि पटे स्यात् , निरूपकतासम्बन्धेन घटधर्मित्वं पटे स्यादिति यावत् । अथवा घटः पटो नेति प्रतीतिमादायेदं द्रष्टव्यम् – पटप्रतियोगित्वस्य = पटनिष्ठप्रतियोगित्वस्य । प्रतियोगिना = उक्त प्रतियोगितानिरूपकेण । घटस्यानुयोगितया भेदत्वात् तन्निरूपकत्वध्रौव्यात् । तथाच घटतन्निरूपितप्रतियोगितयोः स्वभावसम्बन्धाद्वा, उक्तव्याप्तेर्वाऽभेदे सति प्रतियोगितावद्घटस्यापि पटधर्मत्वं स्यादिति भावः। परस्परधर्मधर्मिभावप्रसङ्गमुपसंहरति** इति परस्परमिति । **स्यादित्यन्वयः । आश्रितत्वेनान्वये त्वाश्रयत्वस्य पृथगभिधानमसङ्गतं स्यात् ।** स्यादिति । **घटो वा पटो वा यदि स्वाश्रयाश्रयः स्यात् स्वभिन्नः स्यादिति । अतएव प्रमेयत्वामिधेयत्वयोरपि न परस्पराश्रयत्वम्, प्रमेयत्वादिव्यक्तीनां नानात्वात्, केवलान्वयित्वं तु प्रमेयत्वत्वादिनैवे ति भावः ।**

भारती

''पटात्मकभेदनिरूपित प्रतियोगित्व घट का धर्म है'' यह द्वितीय कल्प भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि जो यह पटं प्रति प्रतियोगित्व अर्थात् , पटात्मकभेदनिरूपितप्रतियोगित्व धर्म है उसके स्वरूप में पट भी विशेषण है अतः उस प्रतियोगित्व के साथ पट का अद्वैत (अभेद) हो जायेगा । (तात्पर्य यह है कि अनवस्थापत्ति के भय से धर्मधर्मि का अभेदातिरिक्त सम्बन्ध नहीं मान सकते, अतः पट के साथ प्रतियोगित्व धर्म का अभेद ही मानना होगा ।) तथा च पट प्रतियोगिता दोनों एक होने से प्रतियोगिता के समान पट भी घट का धर्म हो गया ।

एवं जिस प्रकार पटः घटो न इस प्रतीति में पट घट का धर्म हो गया, उसी प्रकार उक्त न्याय के अनुसार घटः पटो न इस प्रतीति में घट भी पट की धर्मता को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् घट भी पट का धर्म हो जायेगा । क्योंकि पट प्रतियोगित्व घट रूप प्रतियोगि के द्वारा निरूपित होने पर घट की अन्य कोई गति नहीं है अर्थात् उसे (घट) पट का धर्म ही कहना होगा ऐसी स्थिति में पट घट में घट पट में दोनों परस्पर एक दूसरे के आश्रित हो जायेंगे,

किञ्च धर्मस्य तस्य धर्मिणा सममसम्बन्धेऽतिप्रसङ्ग, सम्बन्धानन्त्येऽनवस्था, प्रथमतोऽन्ततोगत्वा वा स्वभावसम्बन्धाभ्युपगमे सम्बन्ध्यतरस्यापि तत्स्वभावप्रवेशादभेदे एव पर्ववसानं स्यादिति।

शारदा

न परं घटपटयोरेव धर्मधर्मिभावेनाभेदः, अपि तु धर्मधर्मिमात्रस्येत्याशयेनाह किञ्चेति। **तस्य= पटनिरूपितप्रतियोगित्वादेः। धर्मिणा = घटादिना । अतिप्रसङ्गः = असम्बद्धयोरपि धर्मधर्मिभावप्रसङ्गः। सम्बन्धिभ्यामतिरिक्तो यदि सम्बन्धः, तदाऽसम्बद्धस्य सम्बन्धत्वासम्भवात् तस्य सम्बन्धान्तरमेव स्यादेवमग्रेऽपीत्यनवस्थेत्याह** सम्बन्धानन्त्ये इति । **अथेष्टमानन्त्यम् , प्रामाणिकत्वात् , नच पूर्वपूर्वकार्यस्योत्तरोत्तरेणैव निर्वाहात् पूर्वपूर्वसम्बन्धवैयर्थ्यम्; पूर्वस्य सम्बन्धत्वप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्या कल्पितेन तदुत्सारणा-योगात् उपजीव्यव्याघातानौचित्यादिति चेन्न; सम्बन्धिनोर्योग्यत्वे सम्बन्धस्य योग्यत्वाव-श्यकत्वेनाद्यसम्बन्धवत्सम्बन्धान्तराणामपि कदाचित्प्रत्यक्षापत्तेः। अतएवार्थापत्त्याऽपि न तेषां सिद्धिः, अनिर्वाच्यतयैवोपपत्तेस्तदप्रसराच्चेति भावः। तत्स्वभावप्रवेशात् = सम्बन्धस्वभावत्वप्रसङ्गात् । अभेदे एव पर्यवसानं स्यात् = अभेदस्यैव सिद्धिः स्यात् ।**

भारती

तथा एक दूसरे का आश्रय भी, जो कि सर्वथा अनुभव विरुद्ध है । क्योंकि घटारूढ पट, एवं पटारूप वही घट है यह किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है ।

किञ्च– धर्मधर्मिभाव के द्वारा केवल घटपट का ही अभेद नहीं होता, अपितु जिस जिस का भी धर्मधर्मिभाव होता है उन सभी धर्मधर्मिमात्र का अभेद सिद्ध होता है ।

किञ्च पटनिरूपित प्रतियोगित्व रूप धर्म का घटरूप धर्मि के साथ कोई सम्बन्ध है या नहीं ? यदि सम्बन्ध नहीं है, तो सम्बन्ध के बिना ही धर्मधर्मिभाव मानना होगा, ऐसी स्थिति में सर्वत्र ही सम्बन्ध के बिना ही असम्बद्धों का भी धर्मधर्मिभाव होने लगेगा। और यदि सम्बन्ध है तो उस सम्बन्ध के सम्बन्धियों से भिन्न होने पर उस (सम्बन्ध) के लिए भी सम्बन्धान्तर अपेक्षित होगा, क्योंकि असम्बद्ध सम्बन्ध नहीं होता । पुनः उस सम्बन्धान्तर के लिए भी अन्य सम्बन्ध मानना होगा, इस प्रकार अनन्त सम्बन्धों की अप्रामाणिक कल्पना करनी होगी, अतः अनवस्था हो जायेगी । एतद्दोष परिहारार्थ आरम्भ में या अन्त में जाकर अर्थात् अन्तिमबुद्धि में यदि स्वरूप सम्बन्ध मानें तो एक सम्बन्धी के स्वरूपसम्बन्ध में अन्य सम्बन्धी का प्रवेश होने से उन दोनों सम्बन्धियों के अभेद में ही पर्यवसान होगा । (तात्पर्य यह है कि स्वरूप सम्बन्ध मानने पर दो सम्बन्धियों में अन्यतर का स्वरूप सम्बन्ध है । या दोनों का ही स्वरूप सम्बन्ध है। प्रथम पक्ष उचित नहीं है क्योंकि अन्यतर के स्वरूप को सम्बन्ध मानने में कोई विनिगमक नहीं है। द्वयोः सम्बन्धः इस व्यवहार का विरोध भी है। स्वं

एवमन्यस्मिन्नपि धर्मे विकल्प इति । तस्मात्स्वरूपभेदे प्रमाणं

शारदा

अयम्भाव:-सम्बन्धिनोरन्यतरस्य स्वभाव: सम्बन्ध:, उत द्वयोरेव, नाद्य:, विनिगमनाभावात् द्वयो: सम्बन्ध इति व्यवहारविरोधाच्च, स्वं न स्वीयमित्यनुभवबाधाच्च, रूपभेदं परिकल्प्य स्वस्मिन् स्वीयत्वोपपादनस्य 'नहि दण्ड्यपि देवदत्त: कुण्डलिनं स्वमारोहती' ति न्यायेनासम्भवाच्च । नापि द्वितीय: तथाहि-द्वौ स्वभावौ सम्बन्धौ वा सम्बन्धो वा, नाद्य:, द्वयोरेक: सम्बन्ध इति व्यवहारविरोधात्; उक्तानुभवबाधाच्च; असम्बद्धयोरपि द्वयो: स्वभावसत्त्वेन सम्बद्धत्वधीप्रसङ्गाच्च । द्वितीये त्वद्वैतप्रसङ्ग:, द्वयोरैक्यं विनैकसम्बन्धात्मकत्वासम्भवात् । अतिप्रसङ्गेन द्वाभ्यामेकसम्बन्धात्मकतामनापद्यैकसम्बन्धत्वव्यवहारोपपादनासम्भवात्, अतिरिक्तसम्बन्धस्यानवस्थया निरस्तत्वादिति । नच सम्बन्धित्वमाश्रित्याभेदसाधने उपजीव्यविरोध:, अभेदे सति द्वयो: परस्परसम्बन्धित्वानुपपत्तेरिति वाच्यम्; आविद्यकभेदमादायैवाविद्यकपरस्परसम्बन्धित्वोपपत्तेरिति । धर्मे इति । **घटत्वादेर्घटादिना समवाय: सम्बन्ध:, तस्य च स्वरूपमेवेति समवायघटयो: स्वरूपद्वयं सम्बन्ध:, अन्यतरस्वरूपं वेत्यादिकमुक्तरीत्या विकल्पनीयमित्यर्थ: । धर्मविकल्प इति समस्तपाठे तु धर्मधर्मिभावस्य विकल्पो**

राजहंस:

सम्बन्ध्यन्तरविशिष्टसम्बन्धस्य यत्स्वभावत्वं सम्बन्ध्यन्तरस्यापि विशेषणतया तत्सभावत्वमितिस्वरसत: प्रतीयमानोऽप्यर्थ: सम्बन्ध्यन्तरस्य परिचायकत्वोपगमे न सङ्गच्छत इत्यतोऽन्यथा **व्याचष्टे** अयम्भाव इति। **भ्रान्तिरित्यर्थ** इति। इदमुपलक्षणम् अन्यस्मिन्नपि धर्मिणि धर्मस्य भिन्नाभिन्नत्वविकल्प इत्यर्थस्यापि सम्भवात् ।

भारती

न स्वीयम् इस अनुभव का बाध भी होगा । यदि किसी रूप(धर्म) भेद की कल्पना कर स्व में स्वकीयत्व की उपपत्ति करें तो वह भी ''नहि दण्ड्यपि देवदत्त: कुण्डलिनं स्वमारोहति (दण्डी देवदत्त स्वयं कुण्डली पर आरोहण नहीं कर सकता) इस न्याय के अनुसार असम्भव है । दोनों सम्बन्धियों का स्वरूप सम्बन्ध है यह द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि दो सम्बन्धियों का भिन्न-भिन्न दो स्वरूप सम्बन्ध है या दोनों का एक ही स्वरूप सम्बन्ध है ? प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, क्योंकि द्वयोरेक: सम्बन्ध: इस व्यवहार का बाध हो जायेगा । स्वं न स्वीयम् इस अनुभव का भी बाध हो जायेगा । असम्बद्ध दो पदार्थों के स्वरूप के विद्यमान होने से सम्बद्धत्व व्यवहार होना चाहिये । तस्मात् इसमें भी दूसरा पक्ष अर्थात् दो सम्बन्धियों का एक ही स्वरूप सम्बन्ध है, यह मानना होगा । ऐसी स्थिति में अद्वैत ही सिद्ध होगा । क्योंकि सम्बन्धियों के एकता के बिना सम्बन्ध की एकता नहीं हो सकती, अत: सम्बन्धियों की भी एकता (अद्वैत) ही माननी होगी तथा च अद्वैत ही सिद्ध है । इसी प्रकार अन्यधर्म (घटत्वादि) में भी विकल्प होता है । (भाव यह है कि घटत्वादि धर्मों का घटादि के साथ समवाय सम्बन्ध मानते हैं । किन्तु वह समवाय भी सम्बन्धियों (घटघटत्व) से भिन्न होने के कारण असम्बद्ध सम्बन्ध नहीं हो

भवत्प्रत्यक्षमद्वैते एव प्रमाणं भवति । ननु घटादिकमेव यदाऽन्यानपेक्षं वीक्ष्यते तदा घटादिकमित्येव प्रतीयते, यदा पुनः पटादिना निरूप्यते तदा ततो भेद इति प्रतीयते । मैवम् । 'घटादिक'-मित्येवंभूतप्रतीतेस्तावद्भेदप्रतीतिर्विलक्षणा; सा च न घटादिमात्रेण स्वविषयेणान्यथाकारा भवितुमर्हति । न च पटादिकमधिकं तदा प्रकाशते इति विशेषः स्यात्; घटपटविषयप्रतीतितोऽपि वैलक्षण्यात्,

शारदा

भ्रान्तिरित्यर्थः । ननु स्वरूपभेदस्य निष्प्रतियोगिकत्वेन त्वदुक्तरीत्या वस्तुतः सप्रतियोगिकत्वं मास्तु, तथापि सप्रतियोगिकत्वेन प्रतीतिस्तु स्यादित्याशयेनाशङ्कते नन्विति । अन्यानपेक्षं वीक्ष्यते इति। **स्वात्मकभेदीयप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकत्वशून्यज्ञानीयविषयताश्रय इत्यर्थः। तादृशभेदप्रतियोग्यविषयकज्ञानविषयताश्रय इत्यर्थस्तु न सम्भवति घट इति प्रतीतावपि घटानुयोगिकभेदप्रतियोगिनो घटत्वस्य स्वरूपेण भानात् तत्प्रतियोगिकत्वेन भेदभानापत्तेः । प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकधर्मप्रकारकज्ञानसत्त्वे तु सप्रतियोगिकत्वेन भेदात्मनो घटस्य भानं भवत्येवेति भावः । विषयवैलक्षण्यं विना प्रतीतिवैलक्षण्योपगमे साकारवादापातात् 'घटात्पटो भिन्न' इति 'घटपटौ' इति प्रतीत्यो वैलक्षण्यस्य सप्रतियोगिकं कञ्चिपदार्थमनुपेत्योपपादनानुपपत्तेः सप्रतियोगिकः कश्चित्पदार्थोऽवश्योपेयः, स च न पट इत्युक्तमेवेत्यतिरिक्तो भेदः स्वीकार्य इत्याशयेनाह** घटादिकमिति । एवम्भूतेति । **एवमाकारेत्यर्थः । भेदप्रतीतिः=भेदत्वप्रकारिका प्रतीतिः । सा=उक्तभेदप्रतीतिः । अन्यथाकारा=घटादिकमित्याकारकप्रतीतिविलक्षणाकारा । तदा=तत्र, उक्तभेदप्रतीताविति**

भारती

सकता । अत: उस समवाय का भी स्वरूप सम्बन्ध मानते हैं । वहाँ वह स्वरूप समवाय और घट उभय रूप है या अन्यतररूप, इत्यादि पूर्वोक्त प्रकार से विकल्प कर विचार करने पर समवाय घट का एवं घटघटत्व का अभेद (अद्वैत = ऐक्य) ही सिद्ध होता है । "धर्मविकल्प" शब्द मूल में समस्त हो तो धर्म अर्थात् धर्मधर्मिभाव का विकल्प अर्थात् भ्रान्ति ही है , ऐसा अर्थ है। तस्मात् स्वरूप भेद में दिया गया प्रत्यक्ष प्रमाण अद्वैत में ही प्रमाण अर्थात् अद्वैत का ही साधक हो गया ।

प्रश्न- जब घटादि अन्यनिरपेक्ष (अन्य से अनिरूपित) देखे जाते हैं तब घटादि की ही प्रतीति होती है। किन्तु जब पटादि से निरूपित (पटादि सापेक्ष) होकर देखें जातें हैं, तो उस (पटादि) से उस (घट) के भेद की भी प्रतीति होती है । तथा च घटात्मक भेद सिद्ध होता है ।

समाधान (खण्डन)-"घटादिकम्" इत्याकारक घटादिविषयक प्रतीति से पटाद् भिन्न: घट इत्याकारकभेदविषयक प्रतीति विलक्षण होती है । वह भेदप्रतीति स्वविषय घटादिमात्र के द्वारा अन्यथाकारा (घटादिकमित्याकारकप्रतीति से विलक्षण आकार वाली) नहीं हो सकती (भाव यह है कि विषयवैलक्षण्य के विना प्रतीति वैलक्षण्य मानने पर साकारवाद की आपत्ति होती है । अत: पटाद् भिन्नो घट: "घटघटौ" इन दोनों

नहि 'घटः पटश्चे'ति 'घटात्पटो भिन्न इति प्रतीत्योरेकार्थकत्वं कश्चित्प्रत्येति, तत्कस्य हेतोः ? पञ्चम्या प्रथमया च वैकल्पिकं निर्देशमसहमानयैव प्रतीतिकलहनिरासात्, नहि घटः पटश्चे'ति प्रत्येतव्ये कश्चिद् 'घटात्पटो भिन्न' इति प्रत्येति । तस्माद्घटस्य न स्वरूपनिरूपणे पटप्रतीत्यपेक्षा ।

शारदा

यावत् । वैलक्षण्यादिति । उक्तभेदप्रतीतेरित्यादिः । एकार्थकत्वं=चकारार्थातिरिक्तांशे समानविषयकत्वम् । प्रत्येतीति । एतेनेदमपि सूचितम्, प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकविषयकत्वे न सप्रतियोगिकत्वेनानुयोगिविषयकत्वनियमः, अन्यथा घटः पटश्चेति प्रतीत्यपलापापत्तेः । न च प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकयोः परस्परभेदत्वेन ग्रहणानन्तरं सप्रतियोगिकत्वेनानुयोगिभाननियम इति वाच्यम्, एवं सति प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकयोः परस्परभेदत्वेन ज्ञानार्थं रूपान्तरयोस्तन्निष्ठयोर्भेदत्वेन ग्रहोऽपेक्षणीय इत्यनवस्थापत्तेः। वस्तुगत्या परस्परभेदरूपयोः प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकयोर्ज्ञानस्यानुयोगिनः सप्रतियोगिकत्वेन भाननियामकत्वे द्रव्यत्वघटत्वयोर्ज्ञानानन्तरं घटो द्रव्यं नेति प्रतीत्यापत्तेः, एकस्मिन्नानात्वभ्रमानुपपत्तेश्च । एतेन-वस्तुतोव्यधिकरणयोर्धर्मयोरुक्तभाननियामकत्वं-निरस्तम्; व्यधिकरणत्वेन तयोर्ज्ञानस्योक्तभाननियामकत्वमुपेत्योक्तानुपपत्तिवारणे तु व्यधिकरणत्वस्य तद्वद्वृत्तिभिन्नत्वादिरूपत्वेऽनवस्था, तद्वद्वृत्तित्वाभाववत्त्वादिरूपत्वे त्वभावत्वस्य भावभिन्नत्वरूपत्वेनोक्तदोषः अभावत्वस्याखण्डोपाधित्वे तु प्रतीतिविशेषसाक्षिकतयैव तस्य निरूप्यत्वात्प्रतीतिविषययोः परस्परनिरूपणे-नान्योन्याश्रयापत्तेः । असहमानयेति । पञ्चम्याः प्रतियोगित्वार्थकत्वेन प्रथमायाश्च धर्मिमात्रबोधकत्वेन तयोः समानार्थकत्वनियतविकल्पानुपपत्तेरित्यर्थः । प्रतीतिकलहनिरासात् = उक्तप्रतीत्योः समानविषयकत्वविवादनिरासात् । इदमुपलक्षणम्-भिन्न इत्यंशमादायापि समानविषयकत्वाभावो द्रष्टव्यः, अनुयोगिनो भेदाधारत्वेन प्रतीत्यसम्भवस्य स्वरूपभेदपक्षेऽभिहितत्वात् । प्रत्येतव्ये = प्रत्याययितव्ये । प्रत्येति = प्रयुङ्क्ते । अभिलापजन्यप्रतीतितुल्यत्वादभिलप्यमानप्रतीतेरिति भावः ।

राजहंसः

वस्तुतो व्याधिकरणयोर्धर्मस्योरुक्तभाननियामकत्वे घटो द्रव्यं नेति प्रतीत्यापत्तेरभावेन दोषान्तरमुक्तमेकस्मिन्नित्यादिनो। एतदेव प्रकटयति एतेनेति ।

भारती

प्रतीतियों का वैलक्षण्य किसी सप्रतियोगिक पदार्थ माने विना नहीं हो सकता । अतः किसी सप्रतियोगिक पदार्थ को मानना आवश्यक है और वह घट एवं पट तो हो नहीं सकता । अतः स्वरूप से अतिरिक्त ही भेद कहना होगा । तथाच स्वरूप भेद पक्ष में अनुभूयमान उक्त प्रतीतियों का वैलक्षण्य नहीं बन सकता । अतः स्वरूपात्मक भेद नहीं

नच यत्प्रतीतिर्यत्प्रतीतेः कारणं स्यात्, तत्र तस्याः कारणभूतायाः प्रतीतेर्योऽर्थः, तस्मादयमिति कृत्वा कार्यभूतायाः प्रतीतेरर्थः प्रतीयते;

शारदा

धूमाद्वह्निरित्यत्र पञ्चमीसमभिव्याहारेण ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वं वह्नौ भासते, तच्चावयवदीधित्युक्तरीत्या लक्षणया पञ्चम्यर्थ इति वा, धूमपदं स्वार्थज्ञाने वह्निपदं च स्वार्थज्ञानविषये लाक्षणिकं पञ्चमी तु हेत्वर्थैवेति मतान्तरेण तादृशपदचयप्रतिपाद्यं वेत्यन्यदेतत्। एवञ्च प्रकृतेऽपि पटस्य भेदात्मना घट ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वात् 'घटात्पटो भिन्न' इति वाक्याभिलप्यप्रतीतिरतिरिक्तसप्रतियोगिकपदार्थोपगमं विनैव निर्वाहमासादयन्ती न तादृशपदार्थसाधनायालमित्यत आह नचेति । **योऽर्थः स 'तस्मा'दिति कृत्वा, कार्यभूतायाः प्रतीतेरर्थस्तु 'अय'मिति कृत्वा प्रतीयते इत्यन्वयः । यथायोगं पञ्चम्यन्तप्रथमान्तपदाभिलप्यप्रतीतिविषयताश्रय इत्यर्थः । यद्यपि घटात्पट' इति न प्रतीतिरपितु घटाद्भिन्नःपट इति, तथाच भेदत्वेनैव घट ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वं पटस्य**

भारती

मान सकते ।) यदि कहें कि भेद प्रतीति में पट अधिक भासित होता है इसी को लेकर वैलक्षण्य बन जायेगा, तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि घटपटौ इत्याकारक पटविषयक-प्रतीति से भी भेद प्रतीति विलक्षण ही होती है । कोई भी विद्वान् ''घटः पटश्च'' एवं ''घटात्पटो भिन्नः'' इन दोनों प्रतीतियों का एकार्थत्व (एकविषय) नहीं मानता । क्यों नहीं मानता- तो इसका कारण यह है कि वैकल्पिक निर्देश (समानविषयकत्व) को स्वीकार न करने वाली प्रतीयोगित्वार्थक पञ्चमी विभक्ति एवं धर्मिमात्रबोधक प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही समानविषयकत्व के विवाद का निरास हो चुका है । 'घटः पटश्च' इस वाक्य से जन्य ज्ञान कराने हेतु 'घटात्पटो भिन्नः' इस प्रकार के वाक्य का प्रयोग कोई भी नहीं करता । अतः घट के स्वरूप के निरूपण में पट प्रतीति की अपेक्षा ही नहीं है ।

प्रश्न-जहाँ एक प्रतीति अन्य प्रतीति के प्रति कारण होती है वहाँ कारण भूत प्रतीति का विषयभूत पदार्थ पञ्चमीविभक्त्यन्त ''तस्मात्'' इस प्रकार के शब्द के द्वारा अभिलप्यमान होकर भासित होता है । और कार्यभूता प्रतीति का विषय प्रथमाविभक्त्यन्त ''अयम् '' इस प्रकार के शब्द से अभिलप्यमान होकर भासित होता है । (जैसे धूमाद्वह्निः'' यहाँ पर कारणभूत धूमप्रतीति का विषय धूम पञ्चम्यन्तपदाभिलप्य होकर भासित होता है और कार्यभूत वह्निप्रतीति का विषय वह्नि प्रथमान्तपदाभिलप्य होकर भासता है । वहाँ पर धूमपदोत्तर पञ्चमीविभक्ति के द्वारा ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्व वह्नि में भासता है उसी प्रकार प्रकृत में भी घटात्पटो भिन्नः यहाँ पर कारणभूत घटप्रतीति का विषय घट पञ्चम्यान्तपदाभिलप्य होकर भासित होता है और कार्यभूत भेदात्मक पट प्रतीति का विषय पट प्रथमान्तपदाभिलप्य होकर भासित होता है । अतःघट पदोत्तर पञ्चमीविभक्ति के द्वारा पट में घटज्ञानजन्यज्ञानविषयत्व भासित होता है । तथा च घटस्वरूप निरूपण में पटप्रतीति की अपेक्षा है । तस्मात् स्वरूपभेदपक्ष में उक्त प्रतीति का निर्वाह हो सकता है । उसके लिए सप्रतियोगिक अतिरिक्त पदार्थ मानने की आवश्यकता नहीं है ।)

मा भून्निर्विकल्पकार्थादेवं सविकल्पकार्थस्य प्रतीतिः; मा च सादृश्यादेरेवं स्मर्यमाणादेः स्यात्। तस्मात् 'पटो घटाद्भिन्न'

शारदा

वाच्यम्, तच्चायुक्तं, भेदत्वस्य पटे निरस्तत्वात्तथापि दूषणान्तरमाह मा भूदिति । निर्विकल्पकार्थात्= गोत्वादितः एवं=अयमिति कृत्वा प्रतीतिः। तथाच गोत्वादिविषयक-निर्विकल्पकजन्यज्ञानविषयीभूतगवादेः 'गोत्वाद्गौ'रि त्याकारा प्रतीतिःस्यात्। ननु व्याप्यव्यापकभावप्रतिसन्धानदशायामिष्टात्पत्तिः, यदिचोक्तप्रतिसन्धानस्याभाव-दशायामुक्तप्रतीतिरापाद्यते, तद्दशायामपि च 'गोत्वाद्गौ' रिति प्रतीतौ गोत्वत्वेनैव गोत्वस्य भानात् तेन रूपेण च तस्य निर्विकल्पकाविषयत्वात्, निर्विकल्पकविषयीभूतरूपेणैव च पञ्चम्यन्तपदाभिलप्यविषयताकप्रतीतेरापद्यत्वान्नेष्टापत्तिः, अतएव गोगौरित्यत्रापि न सा, गोत्वविशिष्टस्य निर्विकल्पकाविषयस्यैव तत्र पञ्चम्यन्तपदेनाभिलाम्पादित्युच्यते, तदाऽपि जनकीभूतसविकल्पकज्ञानविषयस्य तथा भाने न बाधकम्, भेदधीजनकज्ञानस्य प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकत्वेन सविकल्पकत्वादित्यत आह मा चेति। सादृश्यादेः = आह्लादकत्वदिरूपसादृश्यादितः। तथा च चन्द्रमुखयोराह्लादकत्वं सादृश्यं गृहीतवतस्तयोरेकतरस्याह्लादकत्वेन ज्ञानेऽपरांशे प्रथमान्तपदाभिलष्यविषयिका आह्लादकत्वांशे च पञ्चम्यन्तपदाभिलप्यविषयिका प्रत्यक्षात्मिका प्रतीतिःस्यात्, एवं दण्डादिज्ञानजन्यधियोऽपि दण्डाद्यंशे पञ्चम्यन्तपदबोध्यविषयकत्वं स्यात् यदि तद्विषयकप्रतीतिजन्यप्रतीतेस्तंदंशे तादृशपदबोध्यविषयकत्वनियमस्यादित्यर्थः । धूमाद्वह्निरित्यादिशाब्दबोधे एवोक्ता सरणिर्नत्वन्यत्र, अत एव परार्थानुमानाधीनानुमितेरपि न धूमादिति पञ्चम्यन्तपदबोध्यविषयकत्वं ज्ञायमानविशेषणजन्यत्वेन विशेषणकालवृत्तितया विशेष्यभाननैयत्यपक्षेऽपि धूमवान् पर्वतो वह्निमानित्येवानुमितिः, घटाद्भिन्नः पट इत्यादिप्रतीतेस्तु प्रत्यक्षाद्यात्मिकाया अपि जायमानत्वात् कथं पञ्चम्या ज्ञानजन्यज्ञाननिविषयत्वाभिलापः, घटप्रतियोगिकत्वस्यैव तत्र भेदेऽनुभवादिति भाव ।

राजहंसः

अतएव गोगौरित्यत्रापि **न सेति**। अस्यां प्रतीतावापादनीयत्वस्यैभावेन क्वेष्टापत्तिरित्यर्थः। निर्विकल्पकस्योल्लेखासम्भवेनापादनीयप्रतीतेराकारस्तु नोच्यते। तत्र भेदेऽनुभवादिति। एवं च शाब्देऽपि घटाद्भिन्न इत्यत्र घटप्रातियोगिकत्वस्यैव भानम्, अभिलाप-जन्यप्रतीतितुल्यत्वादभिलप्यमानप्रतीतेरिति भावः ।

भारती

समाधान (खण्डन)—निर्विकल्पक ज्ञान सविकल्पक ज्ञान के प्रति एवं सादृश्य ज्ञान स्मरण ज्ञान के प्रति कारण होता है, अतः वहाँ भी निर्विकल्पकार्थात् अर्थात् गोत्वात्, एवं=अयं (गौः) ऐसी प्रतीति होनी चाहिए । एवं "सादृश्यात् स्मरणम्" ऐसी भी प्रतीति होनी चाहिए । (किन्तु गोत्वादिविषयक निर्विकल्पकज्ञानजन्यज्ञान के विषय गवादि की "गोत्वाद्गौः" इस प्रकार प्रतीति नहीं होती, एवं आह्लादकत्वादि सादृश्य में भी पञ्चम्यन्तपदाभिलप्यविषयक तथा तत्कार्यभूत स्मरणात्मक प्रतीति के विषय का प्रथमान्तपदाभिलप्य विषयिणी प्रतीति नहीं होती।) तस्मात् "पटो घटाद् भिन्नः" इत्याकारक पटानुयोगिक भेद-भेद का अवधि अर्थात् प्रतियोगी घट से विशिष्ट अर्थात्

इत्याद्याकारेण पटादेर्भेद एव भेदावधिभूतघटादिसङ्घटितःस्फुटं सर्वलोकसाक्षिकः प्रतीयमानो नैकप्रतीतेरन्यप्रतीत्यपेक्षामात्रेण समर्थयितुं शक्योऽतिप्रसङ्गादिति ।

शारदा

पटादेरिति। **पटाद्यनुयोगिक इत्यर्थः। अवधिः = प्रतियोगी । सङ्घटितः = विशिष्टः प्रतियोगितानिरूपकानुयोगिताविशेषेण वैशिष्ट्यलाभाय भूतान्तम्** । अतिप्रसङ्गादिति। **सप्रतियोगिकपदार्थापलापप्रसङ्गादित्यर्थः। गोबुद्धिजन्या या बुद्धिः सदृशपदप्रयोगो वा तद्विषयत्वमेव गवयस्य गोसादृश्यम्, घटबुद्धिजन्या या बुद्धिः शक्तिपदप्रयोगो वा तद्विषयत्वमेव दण्डादेर्घटशक्तत्व मित्याद्यापत्तेरिति भावः । अत्र स्वरूपभेदपक्षे संशयाद्यनुत्वपत्तिं दूषणान्तरमपि वक्ष्यतीति दृष्टव्यम् । एवं कपालप्रतियोगिकभेदस्य घटानुयोगिकस्य घटात्मकतया कपालवृत्तित्वात् कपालं न कपालमितिधियः प्रमात्वापत्तिरित्यपि दूषणमाहुः। ननु कपालभेदात्मकघटत्वावच्छिन्नाधिकरणतायाः कपाले स्वीकारेऽपि कपालभेदत्वावच्छिन्नाधिकरणताया अनङ्गीकारान्नोक्तापत्तिः, गुणे विशिष्टसत्तात्मकसत्ताधिकरणताया अङ्गीकारेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकता-निरूपिताधिकरणतानङ्गीकारवदितिचेन्न; विशिष्टसत्तात्वेन शुद्धसत्वेन च भेदो वा, अभेदो वा, भेदाभेदौ वा। नाद्यः, विशिष्टसत्ता न सत्तेति प्रतीतेः प्रमात्वापत्तेः, एवं कपालभेदो न घट इत्यस्यापि प्रमात्वापत्तौ स्वरूपभेदपक्षच्युतिः। न द्वितीयः, तथा सति विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणतायाः सत्तात्वावच्छिन्ननिरूपक-तानिरूपिताधिकरणतायाश्च भेदस्य युक्त्या कटाक्षेणाप्यवीक्षणात् गुणो विशिष्टसत्तावानिति धियः प्रमात्वापत्तिः। एवं प्रकृतेऽपि कपालभेदत्वघटत्वाभ्यामभेदे कपालं न कपालमित्यस्याः प्रमात्वापत्तिः। न च गुणो विशिष्टसत्तावानितिधियो भ्रमत्वान्यथानुपपत्त्यैव विशिष्ट-सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणताया अतिरिक्तत्वसिद्धिः, विशिष्टशुद्धसत्तयोर्भेदेनापि तद्भ्रमत्वोपपत्तौ तदन्यथानुपपत्त्यप्रसरात्, प्रत्युत यावत उपपादकस्यार्थापत्तिविषयत्वात् विशिष्टसत्तात्व-सत्तात्वाभ्यामभेदे तादृशाधिकरणतातिरिक्तताया अप्यनुपपत्तेस्ताभ्यामपि भेदस्य तयाऽव-श्योपेयत्वात् । एतेन-विशिष्टाधिकरणतायाः क्लृप्ताधि-करणस्वरूपत्वेनाप्युपपत्तौ विशिष्टातिरिक्तत्वं गौरवग्रस्तमिति-निरस्तम्; आधाराधेयभावानुपपत्त्या तस्या अधिकरण-**

भारती

घट प्रतियोगिक होकर भी सर्वानुभवसिद्ध एवं स्पष्टतया प्रतीयमान है । अतः उस (तादृश भेद) का समर्थन एक प्रतीति में अन्य प्रतीति की अपेक्षा होने मात्र से नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस प्रकार मानने पर सप्रतियोगिक पदार्थ मात्र का अपलाप हो जायेगा । अतएव आपका यह कहना कि - ''अन्योन्याभावरूप भेद ही ''घटपटौ भिन्नौ'' इत्याकारक प्रत्यक्ष का विषय है और इदृशभेदावगाही प्रत्यक्ष के द्वारा ही अद्वैत श्रुति का बाध हो जायेगा'' निरस्त हो जाता है । क्योंकि प्रतियोगी से रहित अन्योन्याभाव के अप्रमाणिक (किसी भी प्रमाण का विषय न होने से) होने से प्रतियोगिविशिष्ट अन्योन्याभाव अनुयोगी वृत्ति होगा ।

अतएवान्योन्याभावं भेदमवगाहमानं प्रत्यक्षमद्वैतश्रुतिबाधकमित्यपि निरस्तम्; अन्योन्याभावोऽपि यस्माद्भेद एष्टव्यस्तमात्मन्येवान्तर्भावयेदुक्तयुक्तिभिः ।

शारदा

स्वरूपताया वक्तुमशक्यत्वाच्च, तद्वच्छुद्धाधिकरणताया अप्यधिकरणस्वरूपताया एवं वक्तव्यत्वेन तदभिन्नाभिन्नस्येति न्यायेन विशिष्टशुद्धाधिकरणतयोरप्यभेदस्य दुर्वारत्वाच्च। रूपभेदेनैकत्रा-धाराधेयभावोपगमस्य भेदाभेदवादनिवेशित्वाच्च । एतेन-विशिष्टशुद्धयोरभेदेन 'गुणे गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ते' ति प्रतीतेः प्रमात्वमिति-परास्तम्; आधारत्वाधेयत्वयोस्तुल्यवित्तिवेद्यत्वेनाधेयत्वस्य विशिष्टसत्तायामिव तदाधारत्वस्यापि गुणे तयाऽवश्यावगाह्यत्वात् तद्वत् 'गुणो विशिष्टसत्तावा'नित्यस्यापि प्रमात्वापत्तेः । न चैवं विशिष्टस्यातिरेके विशिष्टसत्ता न सत्तेत्यस्याः प्रमात्वापत्तिः, एवं सति भेदस्याभेदसमानाधिकरणस्यैवोपगन्तव्यत्वेन तृतीयकल्पे विश्रान्तिः। नञा भेदस्याभेदविरुद्धस्यैव बोधनात् । अतएव-द्रव्यं विशिष्टसत्तावदिति निर्णयदशायां द्रव्यं न सत्ता वदिति निर्णयवारणाय प्रतिबन्धकतान्तरकल्पने, विशेषणविशेष्योभयग्राहकसामग्रीविरहेऽपि विशिष्टग्रहप्रसङ्गवारणायतदुभयग्राहकसामग्र्याः कारणतान्तरकल्पने च गौरवमितिनिरस्तम्। उक्तरीत्याऽधिकरणताभेदस्य कल्पयितुमशक्यत्वात्तवापि समानत्वाच्च । प्रतिबध्यप्रतिबन्धकादिभावानां विशिष्यैव विश्रान्तेरवश्यम्भावस्य निवेदितत्वाच्च । एवञ्च प्रकृतेऽपि कपालभेदत्वेन घटत्वेन च भेदाभेदयोरुपगमे स्वरूपमेव भेद इति पक्षस्यासम्भव एव, भेदस्य घटेन भेदोऽतिरिक्तोऽनतिरिक्तो वेति विकल्पेऽनवस्थात्माश्रयादिकञ्चेति भावः।

नन्वस्त्वन्योन्याभाव एव भेदः तस्याधिकरणातिरिक्तत्वादाधाराधेयभावानुपपत्तेः संशयाद्यनुपपत्तेः कपालं न कपालमित्यादिधियः प्रमात्वापत्तेश्चायोगादित्यत आह अत एवैति । प्रतियोगिविशिष्टस्यानुयोगिवृत्तित्वे प्रतियोगिनोऽप्यनुयोगिधर्मत्वापत्त्याद्वैतापतिः, धर्मधर्मिणोरभेदस्याभिहितत्वात् । उपाधित्वे तु प्रतियोगिनः घटो न पट इति समानविभक्त्यन्तपदाभिलप्यधीविषयत्वादनुयोगिनैक्यापत्तिः। उक्तरीत्या भेदस्य घटपटाभ्यां स्वभावसम्बन्धस्यैव वक्तव्यत्वादन्यथानवस्थानादिति 'तदभिन्नाभिन्ने' ति न्यायेन घटपटयोर-

राजहंसः

विशिष्टशुद्धाधिकरणतयोरप्यभेदस्य दुर्वारत्वाच्चेति। न च द्रव्यान्तर्भावेनैव तयोरभेद इति गुणे शुद्धाधिकरणतैवेति साम्प्रतम्। सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणताया अनुगताया एवानुभवादिति भाव:। मूले अन्योन्याभावोऽपि यस्माद् भेद द्रष्टव्य इति । अन्योन्याभावोऽपि् यत्प्रतियोगिकभेदत्वेनष्टव्य इति, अन्योयाभावात्मको भेदपदार्थोऽपि यत्प्रतियोगिकत्वेनैष्टव्य इति वार्थ ।

भारती

ऐसी स्थिति में प्रतियोगी भी अनुयोगी का धर्म हो जाने से अद्वैत ही सिद्ध होगा । कारण कि धर्मधर्मि का अभेद माना जाता है । किञ्च यदि अन्योन्याभाव को अनुयोगीरूप माने तो वह (अन्योन्याभाव) प्रतियोगीविशिष्ट होकर ही अनुयोगीरूप

शारदा

प्यैक्यापत्तिः। भेदस्य स्वाधिकरणेन भेदान्तरस्य वाच्यत्वेऽनन्तभेदमालानुभवापत्तिः। अर्थापत्तिबलादपि नानन्तभेदसाधनसम्भवोअनन्तसम्बन्धसाधनवत्। भेदस्य स्वरूपेणैवाधिकरणभिन्नत्वे घटादेरपि तथात्वापत्तिः, आधाराधेयभावानुपपत्तिश्च । वस्तुगत्या व्यधिकरणरूपाभ्यां प्रतियोग्यनुयोगिग्रहस्य भेदप्रत्यक्षहेतुत्वे 'इदं न तदि' ति भेदभ्रमस्य प्रत्यक्षात्मकस्यानुपपत्तिः, व्यधिकरणत्वेन ज्ञातरूपाभ्यां तादृशग्रहस्य भेदप्रत्यक्षहेतुत्वेऽन्योन्याश्रयापत्तिः, व्यधिकरणत्वस्य तद्वद्भिन्नाधिकरणकत्वरूपत्वात् तेन रूपेण घटत्वपटत्वयोर्ज्ञानस्य घटो न पट इति ज्ञानं विनाऽसम्भवात्, तस्य तद्वद्वृत्तिभिन्नत्वरूपत्वेऽपि घटत्वपटत्वयोर्भेदज्ञानस्यैव कारणतापर्यवसानेन घटो न पट इत्यस्यैव स्वरूपतो घटत्वादिविषयकस्य घटत्वपटत्वयोर्भेदविषयकत्वमुपगम्य कारणतोपगमे आत्माश्रयापत्तिः। घटत्वं न पटत्वमिति ज्ञानस्य कारणत्वे तु साकल्यादिघटितघटत्वत्वाद्युपस्थित्यपेक्षापत्तिः तदनुपस्थितिदशायामपि घटो न पट इति भेदप्रत्यक्षोदयेनानुभवविरोधापत्तिश्च, घटत्वत्वपटत्वत्वयोरपि भेदग्रहस्योक्तरीत्यैवापेक्षणीयत्वापत्त्यऽनवस्थापत्तिश्च। व्यधिकरणत्वस्यात्यन्ताभावघटितत्वेऽपि घटपटभेदाभावसंशयनिश्चययोः सत्त्वे घटत्वपटत्वयोर्व्यधिकरणताग्रहस्यानुभवपराहतत्वेन भेदनिश्चयस्य तत्र हेतुताया ध्रौव्येणान्योन्याश्रयापत्तिः । यद्व्यतिरेकसंशयनिश्चययोर्यत्प्रतिबन्धकत्वं तन्निश्चयस्य तद्धेतुतायाः प्रामाण्यवादमण्यादावुक्तत्वात् । भेदाभावज्ञानाभावत्वेन कारणतायां भेदनिश्चयत्वेन कारणतामपेक्ष्य गौरवात्, निश्चयत्वस्य केवलान्वयिप्रकरणे गदाधरोक्तरीत्या संशयत्वस्येव जातित्वमेव, नत्वेकत्रधर्मिणि विरुद्धकोटिद्वयावगाहिज्ञानान्यज्ञानत्वात्मतेति न विपरीतं गौरवम् । यद्यद्धर्माविच्छिन्नानुयोगिताप्रतियोगिताकभेदः प्रामाणिकस्तत्तद्धर्मप्रकारकज्ञानस्य तादृशभेदप्रत्यक्षप्रमां प्रत्येव कारणत्वं न तु प्रत्यक्षभ्रमसाधारणमिति नोक्तभेदभ्रमानुपपत्तिरित्युक्तौ तु भेदप्रत्यक्षत्वस्यानुगतप्रतीतिबलादनुगतस्याकस्मिकत्वापत्तिः, उक्तभेदभ्रमस्थले भेदस्याभावेन तत् सन्निकर्षजन्यत्वस्य भेदप्रत्यक्षत्वनियामकत्वासम्भवात्, अलौकिकसन्निकर्षस्य भेदे सत्त्वेऽपि लौकिकालौकिकसाधारणसन्निकर्षत्वस्य तार्किकैरप्यनुपगमात्, भेदे विप्रतिपद्यमानं प्रति तत्प्रामाणिकत्वोक्त्ययुक्तिश्चेत्याद्या-पत्तिपरम्परापत्तेरवेत्यर्थः। अधिकं तु चतुर्थे वक्ष्यते । लघुचन्द्रिकायामाचार्यैस्तु-नेत्याकारकाभावप्रत्यक्षवारणाय भेदत्वाभावत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नविषयतानिरूपितप्रतियोगित्वविषयताकधीत्वावच्छिन्नं किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नविषयतानिरूपितानुयोगिताविषयता कधीत्वावच्छिन्नं च कारणमुपेयम्, भेदे प्रतियोगितानिरूपकताविरहनिश्चयस्य भेदत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षप्रतिबन्धकत्वात्तु तदभावस्य सहकारिताप्यनुमन्तव्यैव तथा च प्रतियोगित्वानुयोगित्वयोर्ग्रहस्य भेदबुद्धिसापेक्षस्य तत्कारणत्वमित्यादिप्रकारान्तरमन्योन्याश्रयेऽवाचीति ध्येयम् । तमात्मन्येवान्तर्भावयेदिति ।

किञ्च घटपटयोस्तद्वदन्ययोश्च तादात्म्यमन्योन्याभावस्य प्रतियोगि मन्तव्यम् , तद्यदि सर्वथा नेष्यते, तदा तद्विशिष्टस्तदुपलक्षितो वाऽन्योन्याभावोऽपि न प्रमाणेन प्रत्येतुं शक्यः; नहि शशविषाण-विशिष्टस्तदुपलक्षितो वा कश्चित्प्रामाणिको भवितुमर्हति । तत्कस्य हेतोः? तस्मिंस्तद्विशिष्टरूपेऽर्थे तादृशि चोपलक्षणव्यवच्छिद्यमानात्मनि प्रमाणं निविशमानं विशेषणमपि तदीयं तदुपलक्षणमपि वा नानुल्लि-

शारदा

तत्सहित एवानुयोग्यात्मको भवेदित्यर्थः। घटपटयोरिति। **सर्वाभेदमुपपादयतापि पारमार्थिकभेदासम्भवे व्यावहारिकभेदमादायैव एकपदार्थतावच्छेदक-विशिष्टापर्याप्तविषयताश्रयत्वस्यापरपदार्थतावच्छेदकविशिष्टे उपपाद्यत्वान्न द्वन्द्वप्रयोगसङ्गतिरिति भावः। तद्वत् = घटपटयोरिव।** तादात्म्यमिति। **प्रतियोग्यनुयोगितादात्म्यातिरिक्ते भेदीयप्रतियोगिताया निरसिष्यमाणत्वादिति भावः।** तदुपलक्षित इति। **इदमभ्युपेत्यवादेन, प्रतियोगिन उपलक्षणताया निरस्तत्वात् । तदुपहित इति वार्थः। प्रामाणिकः- प्रमाणसिद्धः पदार्थः। तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यताकत्वं तद्विषयकत्वव्याप्यमिति भावः। तदाह** तस्मिन्नित्यादिना। **तस्मिन्निति तादृशीति च पदद्वयं**

भारती

होगा, ऐसी स्थिति में प्रतियोगी अनुयोगी घट-पट का अभेद ही सिद्ध होगा । तथा च अन्योन्याभावरूप भेद का साधकतया प्रदर्शित प्रत्यक्ष प्रमाण भी अद्वैत का ही साधक है।

किञ्च - घटपट के एवं घट-पट के समान अन्य अनुयोगी प्रतियोगी के तादात्म्य को ही अन्योन्याभाव का प्रतियोगी मानेङ्गें । यदि वह (घटपट तादात्म्य) सर्वथा ही नहीं माना जाता है अर्थात् असत् है तो तादृश असत् प्रतियोगी से विशिष्ट या उपलक्षित अन्योन्याभाव भी असत् होने से किसी प्रमाण का विषय (सिद्ध) नहीं हो सकेगा । शशविषाण से विशिष्ट या शशविषाण से उपलक्षित कोई भी पदार्थ किसी भी प्रमाण का विषय नहीं होता है । यदि पूछें कि किस कारण से वह (शशविषाणविशिष्ट या शशविषाण से उपलक्षित) प्रमाण सिद्ध नहीं है ? तो सुनो, शशविषाणविशिष्ट या शशविषाणोपलक्षित को विषय करने वाला प्रमाण - शशविषाण रूप विशेषण या उपलक्षण को विषय किये बिना शशविशाणविशिष्टविषयकं या शशविशाणोपलक्षितविषयक नहीं हो सकता । इसी प्रकार घट-पटतादात्म्यविशिष्ट या घटपटतादात्म्योपलक्षित भेद का साधक प्रमाण घटपटतादात्म्य रूप विशेषण या उपलक्षण को विषय किये बिना घटपटतादाम्यविशिष्ट या घटपटतादात्म्य से उपलक्षित को विषय नहीं कर सकता । अतः घटपटौ भिन्नौ इत्याकारकभेद विषयक प्रत्यक्षबुद्धि के घटपटतादात्म्यरूप असत् प्रतियोगीविशिष्टभेद विषयक होने पर तादृशबुद्धि के प्रामाण्य का समर्थन करना भी अशक्य है ।

खद्भवितुं प्रभवति, तस्मिंश्चात्यन्तमसत्येवावलम्बने न तत्प्रामाण्यं शक्यसमर्थनम् । न च वाच्यं पटप्रतियोगिको घटमाश्रितोऽसावभावोऽभ्युपगम्यमानो नात्यन्तासत्प्रतियोगिकतादोषमावहति; तथा सति संसर्गाभावादन्योन्याभावस्य को विशेषः स्यात् ?।

शारदा

तद्विशिष्टतदुपलक्षितयोस्तन्निष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वरूपैकरूप्यलाभाय। अर्थे निविशमानं = अर्थनिष्ठनिरूपकतनिरूपितविषयितावत् । प्रमाणं = ज्ञानं । अनुल्लिखत् = अविषयीकुर्वत्। तस्मिन् = घटपटतादात्म्यरूपे । अवलम्बने = विषये। तत्प्रामाण्यं = प्रतियोगिविशेषितभेदबुद्धेः प्रामाण्यम् । न शक्यसमर्थनम् । असत्ख्यातेस्त्वयानङ्गीकारादप्रसिद्धप्रतियोगिकाभावस्याभ्युपगन्तुमशक्यत्वात्, तदुक्तं बौद्धाधिकारशिरोमणौ- ''प्रमाणेनासदंशस्यानुल्लेखेऽसत्ख्यातित्वासिद्धेः, उल्लेखे तु प्रमाणस्याप्रमाणताया असतो वा सत्त्वस्य प्रसङ्गादि'' ति । अनिर्वाच्यव्यातिपक्षेऽपि घटपटतादात्म्यस्य पारमार्थिकस्य निषेधस्त्वया वक्तुमशक्यः, तस्य तवाप्रसिद्धेः, पारमार्थिकस्य निषेद्धुमशक्यत्वाच्च । नापि व्यावहारिकस्य; घटपटयोस्तादात्म्ये व्यवहारिकत्वाभावात् । नापि प्रातिभासिकस्य; तस्य प्रतीतिं विनाऽसम्भवेन भेदग्रहात्पूर्वं नियमेन तत्प्रतीतेरपेक्षणीयत्वापातात् । न च घटेपटतादात्म्यमारोप्य निषिध्यते इति वर्धमानाद्युक्तः पक्षो यौक्तिकः, यदाह नव्वादे शिरोमणिः – ''साधीयानयं मन्त्रपाठो यद्वलाज्जलह्रदे वह्निर्नास्ती'' त्यादौ शाब्दबोधेऽपि परमप्रयत्नेन तत्र वह्निप्रसक्तिरुपादीयते'' इति । भेदलौकिकप्रत्यक्षं प्रति कथञ्चित्तादात्म्यारोपस्य हेतुतोपगमेऽपि तस्य प्रमात्वमेव स्यादुपजीव्यत्वादित्यादिकं पूर्वमुक्तमेव । अथासत्ख्यातिमुपेत्य कश्चिद्ब्रूयात्- अलीकस्यैव भेदप्रतियोगित्वमस्तु, नचैवं भेदग्रहस्याप्रमात्वं वा अलीकस्यानलीकत्वं वा स्यादिति वाच्यम् ; निषेध्यतयाऽलीकावगाहित्वेऽपि प्रमातोपपत्तेः, अनिषेध्यतया तदवगाहन एवाप्रमात्वात् । अनिषेध्यतयाऽनवगाह्यमानत्वाच्चालीकस्य नानलीकत्वमिति; तदपेशलम्; भेदस्यानलीकत्वे तेनालीकस्य प्रतियोगिनः संसर्गानुपपत्तेः, सतोरेव संसर्गस्य सम्भवात् प्रतियोगिताश्रयत्वेऽलीकत्वव्याघाताच्च । अतएव घटो ध्वस्त इत्याद्यविद्यमानघटादिनिष्ठध्वंसप्रतियोगित्वावगाह्यनुभवोपपत्तये घटस्य सूक्ष्मरूपेण ध्वंसदशायामप्यवस्थानमावश्यकम् । तस्माद्घटपटतादात्म्यस्य प्रामाणिकत्वं वाऽप्रामाणिकत्वं वा, उभयथाऽपि न भेदस्य प्रामाणिकत्वम् । नच घटे घटतादत्म्यं प्रसिद्धं पटे निषिध्यते इति वाच्यम्; एवं सति 'घटतादात्म्यं पटे नास्तीति' प्रतीतिसाक्षिकात्यन्ताभावाद्भेदस्य

भारती

यदि कहें कि घटपटतादात्म्य अन्योन्याभाव का प्रतियोगी नहीं है अपितु घट के आश्रित अन्योन्याभाव का प्रतियोगी पट एवं पट के आश्रित अन्योन्याभाव का प्रतियोगी घट है। अत: अत्यन्त असत्प्रतियोगिकत्व दोष नहीं है तो यह कथन युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि इस प्रकार मानने पर संसर्गाभाव से अन्योन्याभाव की क्या विशेषता रहेगी । अर्थात् दोनों अभावों में परस्पर कोई विशेष (भेद) नहीं रहेगा । कारण कि घटे पटो नास्ति

शारदा

पार्थक्यानुपपत्तेः । संसर्गविधया तादात्म्यनिषेधस्य भेदत्वे तु पटो न घटतादात्म्यमिति भेदेऽव्याप्त्यापत्तेः। घटतादात्म्यस्यापि तादात्म्यान्तरोपगमस्वनवस्थापराहतः। प्रतियोगिन एव प्रतियोगितावच्छेदकसंसर्गत्वं त्वात्माश्रयदुष्टम् । वक्तव्यं चाधिकममनुपदम् । अत्यन्तासत्प्रयोगिकतादोषं = प्रतियोग्यप्रमाणिकत्वप्रयुक्त तद्विशेषितरूपेणाप्रामाणिकत्वम्। को विशेष इति। घटे पटो नास्तीत्यत्यन्ताभावस्यापि पटप्रतियोगिकत्वाविशेषात् । ननु प्रतियोग्यैक्यं नाभावैक्यप्रयोजकं, घटप्रतियोगिकाभावचतुष्टयस्यैक्यापातात्, अपि तु प्रतियोगितावच्छेदकस्यैक्यमेव, तच्चात्यन्ताभावे संयोगादिः, ध्वंसे पूर्वकालीनतद्व्यक्तित्वं, प्रागभावे उत्तरकालीनतद्व्यक्तित्वमन्योन्याभावे तु तादात्म्यम् , तथा च तादात्म्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं भेदत्वं तादात्म्यं चाखण्डमेव, न तु स्वप्रतियोगिवृत्तित्वस्वानुयोगिवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन भेदविशिष्टान्यो धर्मः, येनान्योन्याश्रयो विषयतानवस्था वा स्यात् । अतएव उक्तलक्षणस्य संयोग्यत्यन्ताभावे संयोगितादात्म्यरूपसंयोगावच्छिन्नप्रतियोगिताकेऽतिव्याप्तिः, सम्बन्धविधया तादात्म्यस्यावच्छेदकत्वाभिधानेऽपि गुणे संयोगेन संयोगी नास्तीत्यत्यन्ता भावेऽतिव्याप्तिरिति निरस्तम् । अभावत्वमपि न भावभिन्नत्वं येनान्योन्याश्रयः स्यात्, अपि त्वखण्डमेवेति चेन्न; संयोगेन घटो नास्तीतिवत् तादात्म्येन नायं घट इत्यप्रयोगात्तादात्म्ये प्रतियोगितावच्छेदकताया अप्रामाणिकत्वस्य नञ्वादगादाधर्यादौव्यक्तत्वात् । तस्याखण्डत्वेऽपि घटे पटतादात्म्यवान्नास्तीत्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिवारणाय सम्बन्धविधयैवावच्छेदकताया वक्तव्यत्वेनासम्भवापत्तेश्च । नहि सम्बन्धत्वमत्यन्ताभेदे प्रमाणिकम् द्विष्ठस्यैव सम्बन्धत्वात्, विशिष्टधीमात्रस्य भेदसमानधिकरणसंसर्गावगाहित्वात्

राजहंस

आत्माश्रयदुष्टमिति । संयोगेन संयोगो नास्तीति प्रतीत्या तु न प्रत्यवस्थानम्, तादृशाभावानामप्रामाणिकताया अनुमाननिरासे शारदायामुदितत्वात् । किञ्च, आत्मा-श्रयप्रसङ्गोऽप्युक्ताभावस्याप्रामाणिकत्वे हेतुः। अत एवेति। तादात्म्यस्याखण्डत्वादेवेत्यर्थः। संयोग्यत्यन्ताभाव इति । न च घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावे एव कुतो नातिव्याप्तिरुपन्यस्ता, घटतादाम्यस्यापि घटत्वरूपतायाः संयोगितादात्म्यस्य संयोगरूपतान्यायेनोपपत्तेरितिवाच्यम्, संयोगविशेषस्यानुयोगित्वेन प्रतिव्यक्तिविश्रान्ततया व्यक्तिविशेषतादात्म्यरूपतोपपत्तिः, न तु घटत्वस्यानेकव्यक्ति-साधारणस्य, न च तादात्म्यं सर्वेषां घटानां येन घटत्वस्य ताद्रूप्यं स्यात् । 'एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्वभावाः' इति मतेऽनुमाननिरासशारदायां दर्शनीये तु घटत्वस्य सर्वघटाभेदरूप-तोपगमेन तदवच्छिन्नात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिरुपलक्षणीयैव । तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कसंसर्गाभावे त्वतिव्याप्तिः संयोग्यत्यन्ताभावातिव्याप्त्या तुल्ययोगक्षेमैव । सम्बन्धात्मकत्वस्य तादात्म्ये विवक्षणे पुनः संयोग्यत्यन्ताभावादावेव वक्तुमुचिताऽतिव्याप्तिः।

नहि यथा 'घटाभावः पटसंसर्गी ' ति घटसंसर्गाभावं पटे समर्थयसे

शारदा

अतएवावच्छेदकत्वप्रतियोगित्वयोरुक्तलक्षणवटकयोर्भेदाघटितत्वेऽपि भेदव्यतिरेकग्रहस्यावच्छेद्यावच्छेदकभावप्रतियोग्यनुयोगिभावग्रहप्रतिबन्धकत्वेन भेदनिश्चयस्य तन्निश्चयहेतुताया वाच्यत्वे भेदनिश्चयस्योक्तभेदलक्षणनिश्चयायापेक्षणीयतापत्तिः। एतेन सम्बन्धानवच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावत्वं भेदत्वमिति निरस्तम् । ध्वंसप्रागभावीयप्रतियोगितायाः सम्बन्धावच्छिन्नत्वे मानाभावेन तत्रातिव्याप्तेश्च। नच नित्यत्वविशेषणेन तद्वारणम्, तद्धिकालत्वव्यापकत्वं वा प्रागभावध्वंसप्रतियोगि यद्यत्तदन्यत्वं वा, आद्येऽपि व्यापकत्वं भेदगर्भं वाऽत्यन्ताभावगर्भं वा, नाद्यः, अन्योन्याश्रयापत्तेः। न द्वितीयः नित्यत्वे सति भेदभिन्नाभावत्वस्यैवात्यन्ताभावत्वरूपत्वादन्योन्याश्रयापत्तेः। संसर्गाभावत्ववदत्यन्ताभावत्वस्याप्यखण्डताया अननुभवेनाप्रामाणिकत्वात्, तस्याखण्डत्वे वा भेदत्वस्याखण्डतानभ्युपगमस्य निर्बीजत्वात्। नापि द्वितीयः, भेदकूटस्य निवेश्यत्वेनासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वापत्तेः। नहि प्रागभावप्रतियोगित्वं ध्वंसप्रतियोगिवं च न नाना, येनसामान्यधर्मावच्छिन्नाभावनिवेशेन निस्तारः स्यात्, नवा प्रागभावत्वादिकं गन्धानाधारसमयावृत्यभावत्वाद्यात्मकं भेदाघटितं येनान्योन्याश्रयो न स्यात्, अनाधारशब्देनाधारभेदमविवक्षित्वाऽऽधारत्वात्यन्ताभावविवक्षणेऽप्युक्त एव दोषः। अत्यन्ताभावत्वस्य भेदघटितत्वात् । नच भेदत्वमखण्डोपाधिः, विषयतादीनामप्यखण्डोपाधीनां सत्त्वेन तद्व्यावृत्ततया भेदत्वप्रत्यायनस्य प्रतीतिविशेषे एवायतमानस्य कथन्नान्योन्याश्रयावहत्वम्, नहि प्रतीतिविशेषमवधूय भेदत्वं पृच्छ्यते, तथाच प्रतीतिविशेषस्य विषयो निर्वक्तुं पृष्टस्तेनैव निरुच्यते इत्यहो वैदग्ध्यम् , नवा प्रतीतिनिरूपणं विषयनिरूपणे नायतते । किञ्च भेदत्वस्यालीकत्वं मा प्रसाङ्क्षीदिति तल्लक्षणं निरूप्यम् , लक्षणं विना वस्त्वसिद्धेः, नह्यखण्डत्वमित्येतावता लक्षणनिवृत्तिः ; न च प्रतीतिविशेषविषयत्वं तत्; चक्षुराद्ययोग्यतापत्तेः, न च सकलभेदवृत्तित्वे सति भेदेतरावृत्तित्वं तत्; तत्र भेदत्वस्यानुप्रवेशात् न चाखण्डं तत्; तत्राप्युदीरितविचारसञ्चारात् । अतएव-भेदपदवाच्यत्वं, वाच्यतासम्बन्धेन भेदपदवत्त्वं वा भेदत्वमिति-निरस्तम् भेदपदमवेत्य तद्वाच्यं च किञ्चित्साधुपदत्वेनानुमाय विशिष्य भेदपदवाच्यं प्रष्टुर्भेदपदवाच्यत्वेनैवोत्तरदानस्यानौचित्यात्, अन्यथा प्रतीतिविषययोरिव

राजहंसः

निष्प्रयोजनतया पदत्वमपास्य तत्स्थाने शब्दत्वमेवोपास्यमित्युक्तावप्याह— भेदपदवाच्यताया एवेति ।

भारती

इत्याकारक अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी पट होता है और अन्योन्याभाव का भी प्रतियोगी आपने पट ही मान लिया है । अतः पटप्रतियोगिकत्व उभयत्र समान है । ऐसी स्थिति में जैसे आप "घट संसर्गाभावः पटवृत्तिः" इत्याकारक प्रतीति के बल से पट में घट संसर्गाभाव का समर्थन करते हैं वैसे "घटभेदः पटात्मक इत्याकारक प्रतीति के बल से घटतादात्म्याभाव में पटस्वरूपता का समर्थन नहीं कर पायेङ्गे । (क्योंकि भावाधिकरणक एवं भाव प्रतियोगिक अभाव को आप अतिरिक्त मानते हैं । इसलिए घटभेद को पटात्मक मानने पर आप का अपसिद्धान्त हो जायेगा । एवं पूर्वोक्त घटपटादि की ऐक्यापत्तिरूप दोष भी हो जायेगा ।) तस्मात् तादात्म्य और संसर्ग का प्रतियोगी

तथा 'घटाभावः पटात्मक' इति तत्तादात्म्याभावं पटस्य स्वीकरिष्यसि । तस्मात्तादात्म्यं संसर्गं च प्रतियोगिकोटावन्तर्भाव्यान्योन्याभावसंसर्गाभावयोर्वैलक्षण्यमभ्युपेयम्, तथा सति चात्यन्तासत्प्रतियोगिकता दुर्वारैव । न च वाच्यं 'घटे पटत्वं नास्ति', पटे च घटत्वं नास्ती त्येतावन्मात्रपर्यवसितैवान्योन्याभावस्य व्यवस्था मन्तव्येति; यतस्तथा सति घटत्वे पटत्वे च न कश्चित्तादृशो धर्मोऽभ्युपगम्यते योऽन्योऽन्यस्मिन्निषेद्धुं योग्य

शारदा

पदपदार्थयोरपि परस्परनिरूपणेऽन्योन्याश्रयापत्तेः । नहि भेदपदत्वं शक्त्या भेदत्वप्रकारकप्रतीतिजनकत्वादन्यत् । भेदपदवाच्यताया एव भेदपदवाच्यतावच्छेदकत्वे आत्माश्रयापत्तेश्च, भेदत्वभेदयोः परस्परनिरूपितवृत्तिताया आवश्यकत्वेनान्योन्याश्रयापत्तेश्च, अन्यथाऽनवस्थानाच्च । लक्षणान्तरासम्भवस्तु भेदसंसर्गाभाववैधर्म्यखण्डनप्रकरणे परता वक्ष्यते। संसर्गाभावस्याधिकरणवृत्तित्ववृत्तित्वमन्योन्याभावस्य त्वधिकरणात्मकत्वमिति विशेषमाशङ्क्याह नहीति । **घटाभावः = घटसंसर्गाभावः । पटसंसर्गीति = पटवृत्तिरिति प्रतीतिबलात्। घटाभावः = घटभेदः। इति = इति प्रतीतिबलात्।** पटस्येति। **स्वरूपमिति शेषः । अन्यथा पटात्मकत्वाभिधानविरोधात् ।** स्वीकरिष्यासीति । **भावाधिकरणकाभावस्य भावप्रतियोगिकस्य त्वयातिरिक्ततोपगमात् घटभेदस्य पटात्मकत्वोपगमेऽपसिद्धान्तापातादुक्तदोषाच्चेति भावः। संसर्ग = तादात्म्यभिन्नसंसर्गं, वस्तुतस्तु तादात्म्ये संसर्गत्वस्याप्रामाणिकत्वोपगम एव प्राचीनानामीदृशव्यवहारबलादवसीयते । अतएव संसर्गारोपजन्यप्रतीतिविषयाभावत्वमित्यादिलक्षणेषु प्राचीनैस्तादात्म्यस्य संसर्गशब्देनैव व्यावृत्तिमभिप्रेत्य तद्भिन्नत्वं न संसर्गे विशेषणीक्रियते इति द्रष्टव्यम् । प्रतियोगिकोटावन्तर्भाव्य = प्रतियोगितया तदवच्छेदकतया वा स्वीकृत्य । इत्येतावन्मात्रपर्यवसितैव = इत्येतादृशप्रतीतिसमानविषयिकैव। व्यवस्था=प्रतीतिः ।** मन्तव्येति। **तथाच न प्रतियोगिविशेषितरूपेण भेदस्याप्रामाणिकत्वमिति भावः ।** न कश्चिदिति । **अन्यथाऽनवस्थाया अनुभवविरुद्धाया आपत्तेरिति भावः । घटत्वपटत्वयोः स्वरूपेणैव व्यावृत्तिं तु निरसिष्यति। यद्यपि घटो न पट इति**

भारती

दल में प्रतियोगी रूप से या अवच्छेदक रूप से अन्तर्भाव (प्रवेश) करके ही अन्योन्याभाव तथा संसर्गाभाव का परस्पर में वैलक्षण्य (भेद) स्वीकार करना होगा । ऐसी स्थिति में अन्योन्याभाव में अत्यन्त असत् प्रतियोगिकत्व रूप दोष दुर्वारही है । यदि कहें कि ''घटे पटत्वं नास्ति'' ''पटे च घटत्वं नास्ति'' (घट में पटत्व का तथा पट में घटत्व का अभाव ही अन्योन्याभाव है) इसप्रकार की प्रतीति के समान ही सर्वत्र अन्योन्याभाव की प्रतीति हो जायेगी । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योकि इसप्रकार स्वीकार करने पर घटत्व और पटत्व में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसका निषेध (अभाव) घटत्व पटत्व में परस्पर में माना जाय, अतः घटत्व पटत्व दोनों में तादात्म्य (ऐक्य) होने पर घट में पटत्व एवं पट

इति तयोस्तादात्म्यापत्तौ सत्यां घटे पटत्वं पटे च घटत्वं निषेधत्प्रमाणं घटत्वपटत्वशून्यं द्वयमप्यावेदयतीति वैधर्म्यस्य स्वरूपभेदस्य चासम्भवेन किं प्रतियोगिनं, किं वाऽऽलम्बनं विधाय पटघटान्योन्याभावः प्रमाणपथमवतरेदिति। अतएव न वैधर्म्यमपि भेदमावेदयत्प्रत्यक्षमद्वैतश्रुतिबाधकमुपपद्यते । वैधर्म्येऽपि हि घटत्वपटत्वादौ वैधर्म्यमन्यदस्तीत्यभ्युपगमे वैधर्म्ये वैधर्म्यविश्रान्त्यनवस्थयोरेकमननुभवश्च कथं प्रत्युत्तरणीयः।

शारदा

समानविभक्त्यन्तपदाभिलप्यप्रतीतेः सप्तम्यन्तानुयोगिबोधकपदाभिलप्यप्रतीतिसमानविषयकत्वमसम्भवदुक्तिकमेव, अनुभवविरोधात्, 'पटे घटत्वं नास्ती' त्यत्र घटत्वत्वेन घटत्वस्य भानेन तेन रूपेण तदभावस्यातीन्द्रियत्वात् 'घटो न पट' इत्यत्र च घटत्वस्य स्वरूपतो भानेन तेन रूपेण घटस्य प्रत्यक्षत्वात् भेदस्यात्यन्ताभावाविशेषप्रसङ्गाच्च, तथापि स्फुटत्वादेतदुपेक्ष्य भेदाप्रमाणिकत्वमेव दूषणं स्थापयितुमाह यत इति । वैधर्म्यस्येत्यादि। **घटत्वपटत्वयोस्तादात्म्यापत्तौ तयोः परस्पराभावव्याप्यत्वासम्भवेन न घटपटयोर्विरुद्धधर्मवत्त्वसम्भवः, तदसम्भवे च तयोः स्वरूपभेदस्याप्यसम्भवः, तस्य तादृशधर्मवत्वव्याप्यत्वात् अन्यथा स्वस्मिन्नपि स्वभेदापत्तेरिति न भेदस्य प्रामाणिकत्वमिति भावः । किं प्रतियोगिनं विधाय = किं वस्तु प्रतियोगी कृत्य । आलम्बनं = अनुयोगिनं ।** विधायेति । **प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य स्वरूपभेदव्याप्यत्वादिति भावः । प्रमाणपथमवतरेत् = प्रमाविषयः स्यात् ।** वैधर्म्यविश्रान्तीति । **वैधर्म्यविश्रान्तेर्घटपटयोरभेदापादनद्वारा दोषत्वं बोध्यम् ।** अननुभवश्चेति । **यद्यपि भावप्रत्ययान्तताबललभ्यं घटेतरत्वव्यापकभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वसमानाधिकरणं घटत्वव्यापकभेदप्रतियोगितानवच्छेकत्वं 'घटत्व'मित्यादिप्रतीतिविषयः कथञ्चित् स्यात् , तथापि नाग्रे कश्चिद्धर्मोऽनुभूयते इति भावः। यद्यपि परामर्शमण्यादौ गोत्वादौ गोत्वत्वाद्यङ्गीकारेऽनवस्थामाशङ्क्य प्रामाणिकत्वात्सा**

भारती

में घटत्व का निषेध करता हुआ (घटपट में घटत्व पटत्व दोनों के अभाव को विषय करने वाला) प्रमाण घटपट दोनों को ही घटत्व पटत्व से शून्य सिद्ध कर देगा । इसलिए घट तथा पट में वैधर्म्य तथा स्वरूप भेद के न होने से अन्योन्याभाव किस वस्तु को प्रतियोगी या अनुयोगी मानकर प्रमाण का विषय होगा ।

प्रश्न-घटत्व पटत्व रूप वैधर्म्य ही घटपट का भेद है । तथा च घटत्व पटत्व रूप वैधर्म्यरूप भेदावगाही "घटपटौ भिन्नौ" इत्याकारक प्रत्यक्ष प्रमाण ही अद्वैत श्रुति का बाधक हो जायेगा ।

समाधान-वैधर्म्यात्मक भेदावगाही प्रत्यक्ष भी अद्वैत श्रुति का बाधक नहीं हो सकता। क्योकि घटत्व पटत्वादि रूप वैधर्म्य में वैधर्म्यान्तर है या नहीं, यदि है तो उस वैधर्म्यान्तर में भी पुनः वैधर्म्यान्तर मानना होगा, इस प्रकार यह वैधर्म्य वैधर्म्यान्तर की धारा

वैधर्म्ये च वैधर्म्यास्वीकारे वैधर्म्ययोरैक्यापत्त्या कथमात्माश्रयभेदत्वेन तयोः पर्यवसानं स्यात् ।
किञ्च, ये ते वैधर्म्ये भेदौ ते किं घटादितो भिन्ने धर्मिणि निविशेते?

शारदा

न दोषावहेत्याशयेन तदितरावृत्तित्वे सति तद्वृत्तित्वस्यानुभवेनापलापासम्भवादित्युक्तम् तथाप्यत्रानुभूतिकलहे साक्षिता सचेतसामेवोचिता । अनन्तवैधर्म्याणामप्रत्यक्षताया निर्विवादत्वेनार्थापत्त्यैव कल्प्यत्वात्तस्याश्चोत्थानासम्भवात्, स्वरूपणैव व्यावृत्तेरनिर्वाच्यताया वोपगमेनोपपत्तेः, अन्यथा सत्तादावपि सत्ताद्यन्तरस्वीकारप्रसङ्गात् , अतएव किञ्चिद्धि वस्तु स्वत एव व्यावृत्तमन्यथाऽनवस्थानादिति प्राभाकरमतं शब्दमणावुक्तमित्याशयः । नच गोरेव गोत्वभेदत्वमस्तु, अतएव प्रभाकरमते 'गौत्व' मिति बुद्धौ समवेतत्वसम्बन्धेन गोः प्रकारत्वं मण्यादौ, यत्किञ्चिदगोव्यक्तेरेव गोत्वत्वरूपत्वं चाद्वैतसिद्धाादावुक्तमिति-वाच्यम् गोत्वस्य गोवृत्तित्वेन 'गौर्भिन्ने' ति भेदाश्रयत्वप्रतीतेर्गोत्वस्य गोभेदत्वे सम्भवेऽपि 'गोत्वं भिन्न' मिति भेदाश्रात्वप्रतीतेर्गोभेदत्वमुपगम्याशक्योपपादत्वात्, समवेतत्वसम्बन्धसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वादिति भावः । वैधर्म्यविश्रान्तेर्दुषकत्वमाह वैधर्म्येचेति । **आत्माश्रयो वैधर्म्यस्य घटत्वादेराश्रयस्तस्य ।** भेदत्वेनेति । **वैधर्म्यमेव भेद इति पक्षस्योपक्रान्तत्वात्। व्यावृत्तिधीजनकत्वेनेति वार्थः । तार्किका हि-'अन्योन्याभावसम्भवे स्वरूपवैधर्म्ययोर्भेदत्वकल्पतमन्याय्यम् , भिद्यते=व्यावृत्ततया प्रत्याय्यतेऽयमनेनेति व्युत्पत्त्या धर्मिवैधर्म्ययोर्भेदव्यवहारसम्भवादि'त्याहुः।**

वैधर्म्ये इति । **इदं स्वरूपातिरिक्तभेदमात्रस्योपलक्षणम् । घटादिप्रयिोगिको भेदः घटादिप्रतियोगिकभेदवति वा स्वसम्बन्धप्राकक्षणावच्छेदेन तादृशभेदाभाववति वा वर्तते इति विकल्पार्थः। एतेन-भेदाभावविरोधितावच्छेदकरूपेण धर्मिणो भेदस्योपस्थितत्वेन तत्र भेदाभाववदवृत्तित्वय सम्भावनाया एवासम्भवाद्द्वितीयविकल्पोऽनुचित इति-निरस्तम्;**

भारती

क्वचित् विश्रान्त होने पर जिन चरम धर्मों में विश्रान्त होगी, उनदोनों वैधर्म्यो के अभेद (एकत्व) सम्पादन द्वारा घटपट पर्यन्त सभी के अभेद की साधक हो जायेगी, ऐसी स्थिति में वैधर्म्यरूपभेदावगाहि प्रत्यक्ष भी अद्वैत श्रुति का बाधक कैसे होगा और यदि वह वैधर्म्य वैधर्म्यधारा क्वचित् विश्रान्त न होगी तो अनवस्था दोष हो जायेगा। (विषयान्तर सञ्चारभङ्गभयात् सुषुप्तिभङ्गभयात् अनवस्था में इष्टापत्ति भी नहीं कर सकते।) किञ्च वैधर्म्यों की अनन्त धारा किसी अनुभव का विषय न होने से अननुभव (अप्रामाणिकत्व) रूप दोष भी हो जायेगा। और यदि वैधर्म्य में वैधर्म्यान्तर स्वीकार न करें तो उन घटत्व पटत्व रूप वैधर्म्यों की ही एकता हो जाने से वे परस्पर में अभिन्न घटत्व पटत्व अपने आश्रय घटपट के भेद रूप से कैसे सिद्ध होङ्गे ।

किञ्च जो घटत्व पटत्वादि वैधर्म्य भेद हैं वे क्या घटादि भिन्न धर्मि पटादि में रहते हैं या अभिन्न धर्मि में। (तात्पर्य यह है कि घटादि प्रतियोगिक भेद - क्या घटादिप्रतियोगिक

किमभिन्ने? परस्परविरुद्धयोरनयोः पृथग्भूतस्य प्रकारस्यासम्भवात्। आद्ये येन भेदेन भिन्नत्वं वैधर्म्याश्रययोर्मन्तव्यं तत्रापि पर्यनुयोग इत्यनवस्थायां पर्यवसानं स्यात् । सन्त्वनन्ता एव भेदा इति चेन्नः; क्रमेण तेषामाश्रयसम्बन्धे, सावधिसत्त्वे वस्तुनि तदन्वयासङ्गतिरेव।

शारदा

प्रथमकल्पगतबाधकानां विरहं कालभेदेन विरोधविरहं च प्रतिसन्धाय द्वितीयकल्पस्य सम्भावनारोहात् । भेदनित्यत्वस्य विप्रतिपत्तिदशायामनिश्चयात् । नच भेदस्य भिन्न-भिन्नवृत्तित्वविकल्पेन घटादेर्धर्मिणो भेदवैशिष्ट्यभङ्गस्यत्वया सम्पादनेन नित्यसमा जातिः स्यात्, ''धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः । धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गो नित्यसमो भवेदि'' ति तल्लक्षणादिति वाच्यम्; वैतण्डिकस्य व्यवस्थापनीयाभावेन तं प्रति व्याघातकत्वाभावेन दत्तोत्तरत्वात् । प्रकारस्येति । **कल्पद्वयगतदोषरहितस्येति शेषः । तेन भेदाभेदवादिमीमांसकादिमतेऽन्यत्र भेदाभेदस्य दृष्टत्वेनात्र सम्भावनया विकल्पयितुं शक्यत्वेऽपि न क्षतिः, तत्रापि वक्ष्यमाणप्राग्लोपादिदोषाणामावश्यकत्वात् भेदाभेदघटकी-भूतभेदस्याधिकरणाभेदोपगमेऽपि सोऽभेदो भेदसहिष्णुरेव मीमांसकादिभिर्वाच्यः ''नह्यत्यन्तमभेदोऽस्ति रूपादिवादिहापि ने'' त्युक्तेरिति तद्वृत्तित्वविकल्पसम्भव इति भावः । तत्राद्ये भेदनिष्ठाधेयतानिरूपिताधारतावच्छेदकीभूतो भेदो विशेषणं वोपाधिर्वोपलक्षंण वेति कल्पत्रयम् ; अत्राप्याद्ये आधेयीभूतभेदस्याधारतावच्छेदकीभूतभेदेन भेदो वाऽभेदो वेति कल्पद्वयम् ; अत्राप्याद्येऽयोन्यनिष्ठनिरूपकतानिरूपिताधारतावच्छेदक-त्वमन्योन्यस्मित् वा, तृतीयमन्तर्भाव्य वा, तृतीयस्यापि प्रथम द्वितीयान्यतरावच्छिन्नाधारता-निरूपितनिरूपकत्वं वा चतुर्थावच्छिन्नाधारतानिरूपितनिरूपकत्वं वेति कल्पचतुष्टयं; तत्र विशेषणकल्पावान्तरकल्पेषु यथायथमात्माश्रयोऽन्योन्याश्रयश्चक्रञ्च, चरमे त्वाह आद्ये इति। येनेत्यादि। येद्भेदाभिन्नभेदवत्त्वमित्यर्थः। अनवस्थायामिति। सर्वेषामपि योग्यानुयोगिप्रतियोगिकत्वेन कदाचित्प्रत्यक्षतापत्त्या नेष्टापत्तिः कर्तुं शक्यते इति भावः। इष्टापत्तिं प्रकारान्तरेण निराकर्तुमाह क्रमेणेति। पूर्वोऽवधिः प्रागभावः, उत्तरोवधिध्वंसः, तत्प्रतियोगि सत्त्वं = स्वरूपं यस्य तस्मिन्नित्यर्थः । अनन्तानां क्रमिकसम्बन्धस्य नित्य**

भारती

भेदवान् में रहता है या स्व (भेद) सम्बन्धप्राक्क्षणावच्छेदेन घटप्रतियोगिक भेदाभाववान् में रहता है।) क्योंकि परस्पर विरूद्ध इन दो (भिन्न-अभिन्न) प्रकारों से पृथक् (उक्तकल्पद्वयगत दोष से रहित) कोई प्रकार नहीं हो सकता। यदि भिन्न धर्मि में भेद मानें तो जिस भेद के द्वारा वैधर्म्य और आश्रय भिन्न माने गये उस भेद में यह पर्यनुयोग (आक्षेप) अर्थात् विकल्प होगा कि - वह भी भिन्न में या अभिन्न में । यदि उसे (भेद) भी भिन्न में मानेङ्गें तो उत्तरोत्तर अनन्त भेदों की परम्परा मानने पर अनवस्था दोष हो जायेगा ।

प्रश्न- मानलिया जाये कि एकधर्मी में अनन्त भेदों की परम्परा है ।

समाधान — अनन्त भेद पक्ष में उन अनन्त भेदों का आश्रय (धर्मी) के साथ क्रम से सम्बन्ध मानने पर पूर्वापर अवधियुक्त वस्तु में अनन्त भेदों का सम्बन्ध ही होना असम्भव है ।

अथ जायमानं वस्तु युगपदेव ते भेदा परिरभन्ते, तदा किंभेदविशेषिते किं भेदव्यवस्थितिरिरिति किं विनिगमकं? विशेषाभावादन्योन्यकलहं तेषां कः समाधातुमीष्टे,

शारदा

एव सम्भवादनित्ये भेदाभावापत्तिः ध्वंसस्यानन्तत्वेऽपि जन्यत्वात्स्वोत्पत्तेः पूर्वं भेदानाश्रयत्वात् न भेदावच्छिन्ने ध्वंसे आद्यक्षणे कस्यचिद्वृत्तित्वसम्भवः, वस्तुतस्त्वेवं नित्येऽपि क्रमिकान्वयो न सम्भवति, भेदानां नित्यताया उपगमे यावद्वस्तुसत्त्वं तत्र वृत्तेः, नहि पूर्वं कुतश्चिदभिन्नं पश्चात्ततो भिन्नं भवतीति भावः। परिरभन्ते = आश्रयन्ते। किं विनिगमकमिति। **युगपदेकत्र सम्बन्धमवाप्तवतोरेकतरनिष्ठाधेयतानिरूपिताधारतावच्छेदकत्वमन्यतरस्मिन्नप्रामाणिकं युगपदुत्पन्नयोराधाराधेयभाववत्, अन्यथा द्वयोरेव विनिगमकाभावेन परस्पराधारतावच्छेदकत्वे परस्पराश्रयत्वस्य दुर्वारत्वात् , अतएव-यथा घटत्वावच्छिन्ने पृथिवीत्वं पृथिवीत्वावच्छिन्ने च घटत्वं वर्तते, अवच्छेदकता च स्वरूपसम्बन्धविशेषो नत्वनतिरिक्तवृत्तित्वं पृथिवीत्वेऽसम्भवात्, तथा प्रकृतेऽप्येकावच्छिन्नेऽपरस्य वृत्तिरस्तु, शृङ्गग्राहिकयाऽनन्तेषु भेदेष्वेतदवच्छिन्नेऽस्य वृत्तिरिति वक्तुमशक्यत्वेऽपि न काचित्क्षतिः, घटभेदो घटभिन्ने वर्तते इत्येतावन्मात्रस्यैव निर्वाह्यत्वादिति-निरस्तम् । विशेषणस्यैवाधारतावच्छेदकतयोपक्रान्तत्वात्परस्परविशिष्टे परस्परवृत्त्यसम्भवात्, अनन्तभेदाभ्युपगमस्य वैयर्थ्यापाताच्च, तद्भेदविशिष्टे एवायं वर्तते इत्यत्र तद्भेदस्यैतद्वृत्तौ प्रयोजकताप्रतीत्या युगपदेकत्रसम्बद्धयोरन्यतरस्यापरवृत्तिप्रयोजकताया अनुभवैकशरणेन वक्तुमशक्यत्वाच्च, व्यापकताया अपि नियामकान्तरसापेक्षत्वाच्चेति भावः। विशेषाभावात् = पूर्वापरकालवृत्तित्वरूपविशेषस्याभावात् । तेषामन्योन्यकलहं = कस्य वृत्तिः केन**

राजहंस

'तद्भेदविशिष्टे एवायं वर्तते' इत्यत्र तद्भेदे व्यापकतावगाहनोपगमे आह-**व्यापकताया अपीति** । अत्राधिकं परतो व्यक्तम् ।

भारती

(पूर्व अवधि प्रागभाव, अपर अवधि ध्वंस इन दोनों से युक्त है सत्त्व=सत्ता जिसकी ऐसी वस्तु है प्रागभाव एवं ध्वंस का प्रतियोगी घटादि तथा च सावधिसत्त्व वस्तु का अर्थ है उत्पाद विनाश शालिवस्तु) (भाव यह है कि अनन्त भेदों का क्रमिक सम्बन्ध नित्य पदार्थ में कथञ्चित् सम्भव है अनित्य पदार्थ में तो हो ही नहीं सकता, ऐसी स्थिति में अनित्य वस्तु में भेद का अभाव हो जायेगा ।)

यदि कहें कि जायमान (उत्पद्यमान) वस्तु में एक साथ (एक काल में) ही वे अनन्त भेद आश्रित होते हैं । तो इस प्रकार मानने पर किस भेद से विशिष्ट में कौन सा भेद रहता है- इसमें क्या विनिगमक (एकतरपक्षपातिनीयुक्ति) है । अमुक भेद विशिष्ट में अमुक भेद रहता है । इसमें किसी विशेष प्रमाण के न होने से उन भेदों के परस्पर कलह का समाधान (व्यवस्था) कौन करेगा । (भिन्न में ही भेद को रहना है । अत: किसी भेद के द्वारा वह आश्रय भिन्न बने जिससे कि अन्य भेद का सम्बन्ध उस आश्रय में हो यह भेदों का परस्पर कलह

चरमचरमस्वीकार्येण च भेदेन प्रथमप्रथमस्वीकृतभेदोपयोगसिद्धेरग्रे धावन् पश्चाल्लुप्यमानो विस्मरणशीलश्रुतवत् स भेदप्रवाहः किमालम्बेत। एवमेवंविधे विषयेऽन्यत्रापि –

शारदा

प्रयोज्येति विवादं । चरमेति। **प्रथमप्रथमस्वीकृतभेदनिर्वाहकतयेत्यादिः। वस्तुगत्या युगपत्सम्बन्धेऽपि निर्वाह्यं प्रतीत्यैव निर्वाहकस्य कल्पनेति भावः। यद्वा चरमचरमस्वीकार्येण = निर्वाहकतया स्वीकार्येण** । प्रथमप्रथमस्वीकृतेति । **निर्वाह्यतया स्वीकृतेत्यर्थः निर्वाहकत्वं निर्वाह्यत्वं च स्वरूपसम्बन्धविशेष एव। भेदोपयोगसिद्धेः = भेदाधीनस्य यथार्थस्येतरव्यावृत्तिव्यवहारस्य सिद्धेः। अग्रे धावन् = निर्वाहकभेदाविनाभूतः। पश्चाल्लुप्यमानः = निर्वाह्यभेदांशे वैयर्थ्यमापद्यमानः स भेद प्रवाहः किं स्वरूपमालम्बेत, निर्वाह्यभेदानां वैयर्थ्यप्रतीतौ 'तदभ्युपगमोऽनुचितः उचितस्त्वेकस्यैव भेदस्य लाघवात् स्वपरनिर्वाहकत्वाभ्युपगम' इति बुद्ध्युदयेन तत्त्यागावश्यम्भाव इति नैकभेदस्य प्रवाहत्वसम्भवः । एतेन-पूर्वपूर्वभेदप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्या कल्पितेनोत्तरोत्तरेण पूर्वपूर्वापसारणायोगः, उपजीव्यविरोधापत्तेरितिनिरस्तम् ; वैयर्थ्यप्रतीत्याऽनन्तभेद-कल्पनायामयुक्तत्वग्रहेण तदनभ्युपगमस्यौचित्यावर्जितत्वात्, अतएव सामान्यधर्मावच्छिन्नवत्ताप्रत्ययस्य सामान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्नाधिकरणता-कूटादेवोपपादनसम्भवेन शुद्धसामान्यधर्मावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताप्रतीतापि त्यज्यते तार्किकैरिति। विस्मरणशीलेन जनेन श्रुतः शास्त्रादिर्यथोत्तरोत्तरबुद्धिविषय-तामासादयन्पूर्वपूर्वबुद्ध्यधीनसंस्कारविषयताञ्च त्यजन्सप्रयोजनतां नालम्बते इति** दृष्टान्तार्थः। **वैधर्म्ये वैधर्म्यान्तराभ्युपगमेऽनवस्थासत्त्वेऽपि न प्राग्लोपाविनिगमदोषावित्याशयेनाह** एवं विधे इति। **एकत्र धर्मिणि सजातीयानन्तधर्मप्रसङ्गो यत्र, तादृशे इत्यर्थः। यथा घटत्ववति घटत्वाभाववति वा घटत्वाभ्युपगमे। एतेन-भवदुक्तं दूषणं सदूषणे वा निर्दूषणे वेति विकल्प्य तदपि निरसनीयमिति-निरस्तम् । दूषणानामनिर्वाच्यत्वादिष्टापत्तेः। एवमपि यथा न जात्युत्तरत्वं तथा पूर्वं निवेदितम् ।**

भारती

अर्थात् विवाद है।) यदि प्रथम प्रथम स्वीकृत भेद के निर्वाहक रूप से चरमचरम = उत्तरोत्तर भेद मानें तो निर्वाहकतया स्वीकृत चरम चरम भेद के द्वारा ही निर्वाह्यतया स्वीकृत प्रथम प्रथम भेद का उपयोग (भेदाधीन यथार्थ इतरव्यावृत्ति और व्यवहार) सिद्ध हो ही जायेगा, अतः विस्मरणशील के श्रुत के समान अर्थात् विस्मरणशील छात्र जैसे उत्तरोत्तर अध्ययन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करता हुआ पूर्व पूर्व अधीत को विस्मृत कर देता है अतएव उसका वह अध्ययन निष्प्रयोजन हो जाता है । उसी प्रकार वह पूर्व पूर्व भेद मानना व्यर्थ हो जायेगा । अर्थात् निर्वाहक भेदाविनाभूत निर्वाह्य भेद निष्प्रयोजन होने से व्यर्थ होता हुआ किस स्वरूप का आलम्बन करेगा । अतः व्यर्थ भेद प्रवाह का त्याग ही उचित है । ऐसी स्थिति में वह भेद प्रवाह किस को विषय करेगा ।

प्राग्लोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमैर्भवेत्
अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्या त्रिदोषता ।।१९।।

शारदा

प्राग्लोपेत्यादि । **अवश्यस्वीकार्येणोपपत्तौ तदन्यस्याभ्युपगमासम्भवः** प्राग्लोपः। **युगपत्सम्बद्धानां निर्वाह्यनिर्वाहकभावस्य दुरवधारणत्वम**विनिगम्यत्वम् । **एकस्मिन्नेव स्वपरनिर्वाहकताया अनिर्वाच्यताया चोपगमेनोपपत्तावनन्तानां कल्पनाया अप्रामाणिकत्वं** प्रमाणापगमः। **अभेदस्तृतीयार्थो दोषत्रयान्वयी। अन्यत्रापि भोजनादिव्यवस्थाऽतिवर्तिनोऽचिकित्स्यवातादित्रयसन्निपातापातो दृष्टः। त्रिदोषतेत्यत्र बहुव्रीहेस्तल् । अत्र प्रतीतावप्यवनस्था द्रष्टव्या, स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नभेदत्वावच्छिन्नप्रकारताकपटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकबुद्धेर्भेदपटयोर्भेदग्रहाधीनत्वात् , एवं तादृशभेदग्रहस्यापि भेदग्रहान्तराधीनत्वम् । तयोर्भेदव्यतिरेकग्रहे तादृशबुद्ध्यनुत्पत्तेः। यद्व्यतिरेकज्ञानत्वावच्छिन्नस्य यत्प्रतिबन्धकत्वं तन्निश्चयस्य तद्धेतुत्वात् अतएव प्रामाण्यनिश्चयाधीनैव प्रवृत्तिरिति स्वतः प्रामाण्यवादिनः। एतेन भेदाधारतावच्छेदकीभूतभेदस्योपाधित्वोपलक्षणत्वपक्षावपि निरस्तौ। किञ्च घटभेदोपहिते घटभेदवृत्तिस्वीकारे स्वस्मिन् स्ववृत्तिविरहेणात्माश्रयाभावेऽपि स्वस्थितौ स्वापेक्षित्वनिबन्धनात्माश्रयस्य दुर्वारत्वात्, घटभेदस्य स्वस्थितौ स्वानपेक्षित्वे घटेऽपि वृत्त्यापत्तेः। नच घटभेदव्याप्यो घटभेद इत्येवोपाधिपक्षनिगर्व इति वाच्यम् ; घटभेदव्याप्यत्वस्य घटभेदाभाववदवृत्तित्वरूपस्य गगनादिवद्भेदस्य सर्वथैवावृत्तित्वेऽप्युपपत्तेः 'घटभेदः क्व वर्तते' इति प्रश्ने तदुक्तेरनाकाङ्क्षिताभिधानत्वात्, तादृशप्रश्ने 'घटभेदः सर्वथैवावृत्ति' रिति, घटभेदवद्वृत्तिरिति, 'पटादिवृत्ति' रित्येतदतिरिक्तोत्तरस्यासम्भवात् । तत्राद्यो**

भारती

इसप्रकार के अन्य विषयों में भी (एक धर्मि में सजातीय अनन्त धर्मों की जहाँ प्राप्ति हो वहाँ) जैसे घटत्व घटत्वान् में रहता है या घटत्वाभाववान् में, इसप्रकार विकल्प कर उभयथा दोष होने से अनिर्वचनीयत्व सिद्ध करना चाहिए ।) (यदि द्वैती कहे कि - आप अद्वैती के द्वारा दिये दोषों में भी उक्त प्रकार से विकल्प हो सकता है जैसे सदोष में दोष रहते हैं या निर्दोष में दोष'' इत्यादि । तो इस पर अद्वैती इष्टापत्ति करेगा, क्योंकि दोष भी अनिर्वचनीय ही माने गये हैं ।)

तस्मात् - अनवस्था स्वीकर्त्ता के मत में - प्राग्लोप अविनिगम्यत्व, एवं प्रमाणापगम - ये तीन दोष अनिवार्य है । आवश्यक स्वीकर्तव्य उत्तरोत्तर के द्वारा ही प्रयोजन के सिद्ध हो जाने से उससे भिन्न पूर्व पूर्व का मानना व्यर्थ है - यह प्राग्लोप है । एकधर्मि में युगपत प्राप्त अनेक निर्वाह्य एवं निर्वाहक धर्मों में विनिगमक न होना - अविनिगम्यत्व है । एवं एक धर्म को ही स्व पर निवाहक मानने से अथवा अनिर्वचनीय मानने से प्रयोजन (व्यवहारादि) सिद्ध हो सकते है । तदर्थ अनन्त धर्मों की कल्पना करने में प्रमाण न होना अर्थात् अप्रामाणिकत्व प्रमाणापगम है ।

यदि च क्वचिद्गत्वा स्वरूपमेवान्योन्यं व्यावर्तमानं भेद इष्यते, तदा ययोः स्वरूपं तथैष्टव्यं तयोर्निस्स्वरूपतापत्तिः। अथ न

शारदा

भेदाधारतानुभवविरुद्धः, द्वितीये स्वस्थितौ स्वापेक्षित्वं दुर्वारमित्यनुभूतिपादपातिना मन्तव्यम्। तृतीयेऽसङ्कुचितेनादिपदेन घटग्रहणं माभूदिति घटभेदस्यैवानुगमकताया वक्तव्यत्वाद्द्वितीय-पक्षेऽन्तर्भावः। 'घटभेदो घटत्वात्यन्ताभाववति वर्तते' इति तु 'घटादिभेदो घटादिभेदवति वर्ततेऽन्यत्र वेति विकल्पेऽनुत्तरम्, उत्तरत्वे वा समनियतत्वेन घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदानतिरिक्तत्वमेवेति द्वितीयपक्ष एव। अतिरिक्तत्वेऽपि वा वस्तुतो घटभेदवद्वृत्तितैवेति। एतेन यत्र प्रतीयते तत्रैव वर्तते इत्युत्तरमनवकाशम् ; यत्पदार्थस्यैव पृच्छाविषयत्वात्, एतेन गोत्वादेर्गोत्वाद्युपहितवृत्तितापि निराकृता। उपलक्षणत्वं त्वसम्भवदुक्तिकमेव, उपलक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सति तत्समानाधिकरणत्यन्ताभावप्रतियोगिन एव तथात्वात्, घटभेदगोत्वादेश्च तादृशप्रतियोगित्वशून्यत्वादिति भावः।

ननु वैधर्म्ये वैधर्म्यान्तराभ्युपगमनिबन्धना, भेदस्य भेदान्तरवद्वृत्तित्वाभ्युपगमनिबन्धना चानवस्था घटत्वपटत्वयोः भेदतदाश्रययोश्च स्वरूपस्यैव भेदत्वाभ्युपगेन परिहरणी येत्याशङ्क्य, तथासति घटपटयोरेव स्वरूपस्य भेदत्वमुचितम्, स्वरूपभेदपक्षोदितदोषोन्मेषश्च यद्यपि, तथापि तत्सत्त्वे एव दोषान्तरमाह यदीति। **अन्योन्यं व्यावर्तमानं=अन्योन्यभिन्नं। तथा = भेदत्वेन ।** तयोरिति । **अयम्भावः, वैधर्म्यालिङ्गितघटत्वादिस्वरूपस्य भेदत्वं नेदानीं वक्तुमर्हम्, वैधर्म्यान्तराभ्युपगमापत्तावनस्थातादवस्थ्यापत्तेः, अतएवान्योन्यभिन्नं स्वरूपं भेद इत्यप्यनवकाशम्, वैधर्म्यं विनाऽन्योन्यभिन्नत्वस्यैवानुपपत्तेः यदाहुः ''अयमेव हि भेदो भेदहेतुर्वा यद्विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्चे''ति । एवं च स्वरूपसामान्यमेव भेद इत्यायातम्, तथाच व्यावर्तकं विनैव व्यावृत्तिरुपगम्यमाना स्वस्मादपि स्वभेदमापादयन्ती निस्स्वरूपतां कथं नोपाहरेत् । एवमनुगतधीव्यवहारानुरोधेन स्वरूपत्वस्यानुगतत्वे तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य घटत्वादावन्योन्यव्यावर्तमानत्वघटकत्वोपगमेऽपि**

राजहंस

उपलक्ष्यतवच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सतीत्यादि। जटाभिस्तापस इत्यादौ जटादिरूपो-पलक्षणसाधारणमिदम्। **शून्यत्वादिति**। अविद्यमानत्वे सति व्यावर्तकत्वरूपमुपलक्षणत्वमपीह न शक्यशङ्कम्, घटभेदादेर्विद्यमानत्वादेवेति भावः।

भारती

यदि कहें कि उक्त अनवस्था आदि दोष के परिहारार्थ परस्पर व्यावृत्त घटत्व पटत्व के या भेद भेदाश्रय के स्वरूप को ही भेद मानेगें। तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिन दो अनुयोगी प्रतियोगी के स्वरूप को भेद रूप से स्वीकार करेंगे वे दोनों नि:स्वरूप हो जायेंगे। (भाव यह कि अनवस्थापत्ति के भय से वैधर्म्य में वैधर्म्यान्तर स्वीकार कर वैधर्म्य युक्त घटत्वादि के स्वरूप को भेद नहीं मान सकते, अतएव-अन्योन्यभिन्न स्वरूप ही भेद है यह नहीं कह सकते, क्योंकि वैधर्म्य के विना अन्योन्य भेद होना ही सम्भव नहीं है अत: स्वरूप सामान्य को ही भेद मानना होगा। तथा च (ऐसी स्थिति में) व्यावर्तक (भेदक) के विना ही

स्वरूपमात्रं मिथो व्यावर्तते, किन्नाम स्वरूपविशेष इत्युच्यते, तर्हि स्वरूपविशेषमात्रव्यावृत्त्या स्वरूपमात्रं तयोः स्यादित्येकत्वापत्तिः। अथवा वक्तव्योऽसौ स्वरूपमात्रादन्यो विशेषार्थः। अथ-न स्वरूपं नाम किञ्चिदनुगतमिष्यते मया,

शारदा

निस्स्वरूपतापत्तिरिति । स्वरूपविशेष इति। **अस्य स्वरूपमेव विशेष इति नार्थः, तथासति स्वरूपसामान्यस्य व्यावृत्तिरनिवारिता स्यात् ; किन्तु स्वरूपस्य विशेष इति, सच विशेषो वैधर्म्यं वाऽन्यद्वा, आद्ये तदवस्थानवस्था, द्वितीयं त्वभ्युपगमवादेन निराकरोति** तर्हीति । **स्वरूपगतविशेषयोर्मिथोव्यावृत्त्युपगमेऽपि घटत्वपटत्वयोर्वैधर्म्यस्य स्वरूपव्यावृत्तेश्चानुपगमे तयोरेकत्वं दुर्वारमिति भावः। स्वरूपमात्रं तयोः स्यात् = तयोः स्वरूपं साधारणमेव नतु व्यावृत्त्या वैधर्म्येण वाऽऽश्लिष्टम् । वस्तुतस्तु घटत्वादिस्वरूपगतो विशेषो वैधर्म्यातिरिक्तोऽनुभवपराहतः, तद्व्यक्तित्वादेरपि वैधर्म्यरूपत्वात् वैधर्म्यं चानवस्थाभीरुणा त्वया नाद्रियते इत्याशयेनोक्ताभ्युपगमं त्यजति** अथवेति । **ननु 'स्वरूपविशेषो मिथो व्यावर्तते' इति मदुक्तेरयमर्थः-स्वरूपं विशेष एव, स्वरूपपदार्थस्तत्तद्व्यक्तिरूप इति यावत्। सच घटत्वपटत्वयोर्व्यावृत्तः, नहि घटत्वव्यक्तिरेव पटत्वव्यक्तिः, नच-वैधर्म्याभ्युपगमं विना तयोर्भेदाभ्युपगमोऽनुचितः अन्यथा स्वस्मादपि स्वभेदप्रसङ्गादितिवाच्यम्; फलबलेन स्वतो व्यावृत्तत्वस्य वैधर्म्यान्तरमनपेक्ष्यैव स्वानुयोगिकस्वेतरप्रतियोगिकभेदधीज-ननयोग्यत्वरूपस्य घटत्वपटत्वयोरुपगमात् , घटो न पट इति हि धीः, नतु घटो न घट इति, येन स्वानुयोगिकस्व-प्रतियोगिकभेदधीजननयोग्यत्वमपि कल्प्येतेत्याशङ्कते** अथेति । **स्वरूपं = स्वरूपत्वं । स्वरूपत्वस्यानुगतस्याभावे तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदमादाय वैधर्म्यानालिङ्गितस्वरूप-**

भारती

व्यावृत्ति (भेद) मानने पर स्व के साथ भी स्व की व्यावृत्ति (भेद) माननी होगी। तस्मात् स्व स्वरूप से भिन्न होने से निःस्वरूप हो जायेगा ।)

प्रश्न-स्वरूप मात्र (स्वरूप सामान्य) परस्पर व्यावृत्त नहीं होता, किन्तु स्वरूपगत विशेष ही परस्पर व्यावृत्त होता है ।

समाधान- उस स्वरूपगत विशेष को अनवस्थापत्ति के भय से वैधर्म्य आदि से अतिरिक्त कहना होगा, ऐसी स्थिति में उस स्वरूपगत विशेष के व्यावृत्त होने पर भी घटत्व पटत्व के वैधर्म्य एवं स्वरूप के व्यावृत्त न होने से उनका स्वरूप साधारण ही रह जायेगा, तथा च उन दोनों (घटत्व पटत्व) की एकता हो जायेगी । अथवा स्वरूप सामान्य से अतिरिक्त स्वरूपगत विशेष कौन है यह बताना होगा, अर्थात् घटत्वादिस्वरूपगत विशेष का वैधर्म्य से अतिरिक्त होना भी अनुभव पराहत (अनुभवविरुद्ध) है ।

यदि आप कहे कि हम घटादिपदार्थों के स्वरूपों में स्वरूपत्व नामक अनुगत धर्म नहीं मानते, किन्तु स्वरूप पदार्थ घटपटत्वादि तत्तद् व्यक्ति रूप ही है (और घटत्वव्यक्ति पटत्व

विशेषरूपासु व्यक्तिष्वेव स्वरूपशब्दो नानार्थः सन्निविशते-इत्यभिधत्से; तर्हि गतमनेनैव न्यायेन गोत्वादिसिद्धिप्रत्याशया। न च प्रतिव्यक्ति स्वरूपपदसमयग्रहोपपत्तिः। यदि च स्वरूपं भेदः स्यात्, तदा धर्मिणि दृष्टे स्वरूपं दृष्टमिति क्वचिन्न सन्देहः स्यादिति।

शारदा

भेदमादाय च निस्स्वरूपतापत्तिर्नेति भावः । नानार्थ इति । **तद्व्यक्तित्वस्याखण्डत्वे वा तद्व्यक्तिरूपत्वे वा स्वप्रतियोगिवृत्तित्वस्वानुयोगिवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन भेदविशिष्टान्यत्वरूपा-साधारण्याश्रयत्वान्नानुगतत्वं , येनैकधर्मावच्छिन्नशक्यताकत्वेन शक्त्यैक्यं भवेत्, वस्तुतस्तु यत्किञ्चिद्भेदविशिष्टान्यत्वमादायातिप्रसङ्गभङ्गाय तादृशसम्बन्धेन भेदविशिष्टं यद्यत्तदन्यत्व-विवक्षायामसर्वज्ञदुर्ग्रहत्वमेवेति न शक्यतावच्छेदकतावच्छेदकानुगमेनापि शक्यैक्यं शक्यसमर्थनम्, तादृशभेदवैशिष्ट्यस्यैकस्यासम्भवादिति भावः । व्यक्तिष्वेव सन्निविशते = शक्त्या व्यक्तिमात्रविषयकबोधजनकताश्रयः। एतेन तद्व्यक्तित्वस्य तद्व्यक्तिरूपत्वे एव निर्भरः सूचितः। घटस्वरूपं पटस्वरूपमित्यादिप्रतीतीनां स्वरूपांशेऽनुगताकारतासत्त्वेऽपि स्वरूपत्वस्यानुगतस्यानङ्गीकारे जातिमात्रस्यानुगताकारधीमात्रजीवनस्योच्छेदप्रसङ्ग इत्याह** तर्हीति । नचेति । **नवेत्यर्थः। एवं तद्व्यक्तिर्न तद्व्यक्तिरिति व्यवहाराभावादपि तद्व्यक्तित्व-स्यानुगतत्व वाच्यम् , अन्यथा व्यक्तिभेदमादाय तदापत्तेः, निरुक्तयोग्यत्वरूपस्व-तोव्यावृत्तत्वस्यावच्छेदकनिरूपणापत्तेः, नच-निरुक्तयोग्यत्वस्य स्वरूपान्नातिरेक इति तदवच्छेदकं घटत्वादिकमिति-युक्तम् ; स्वस्मात्स्वभेदापत्तेः। आधारधेयभावानुपपत्तेश्च ।**

राजहंस

स्वस्मात्स्वभेदापत्तेरिति। योग्यतायां नियामकान्तराभावेन स्वरूपमात्रस्य च परं प्रतीव स्वं प्रत्यप्यविशिष्टत्वेन स्वेतरभेदधीजननयोग्यत्वमिव स्वस्मिन् स्वभेदधीजननयोग्यत्वमपि किन्न स्यादित्याशयेनेदम् ।

भारती

व्यक्तिरूप नहीं है, अपितु परस्पर भिन्न है अतः स्वरूपपद तत्तद् व्यक्ति मात्र वाचक होने से नानार्थक है ।) तो यह आपका कथन उचित नहीं है क्योंकि जैसे आप ने स्वरूपत्व को अनुगत धर्म (जाति) नहीं माना उसी प्रकार गोत्वादि जाति भी सिद्ध न हो सकेगी। (स्वरूपपद के समान गो आदि पद भी तत्तद् गो व्यक्ति का वाचक होने से नानार्थक हो जायेगा । और स्वरूप पद को नानार्थक मान भी नहीं सकते । क्योंकि स्वरूप व्यक्तियों के अनन्त होने से प्रतिव्यक्ति में स्वरूप पद का शक्तिग्रह नहीं हो सकता और यदि स्वरूप (अनुयोगीप्रतियोगी का रूप) ही भेद है तो घटादिधर्मि के प्रत्यक्ष होने पर स्वरूप का भी प्रत्यक्ष हो ही गया । अतः कहीं भी ''इदं तद्वा नवा'' (यह वस्तु है या नहीं) ''इदं तदैव'' (स्थाणु में- ''यह पुरूषात्मक वस्तु ही है) इत्यादि संशय एवं भ्रम नहीं होना चाहिए ।

यदि चाभिन्ने भेदो निविशेत तदा याप्येका व्यक्तिः प्रतीयते घटादिः, साऽपि तेनैव भेदेनानेका स्यादित्येकाभावे नानेकमपि व्यवतिष्ठते ।

शारदा

तादृशयोग्यतात्वादिरूपभेदमुपगम्य तदुपपादने योग्यतातिरिक्तत्वस्यानपराधित्वात् । नच-तदभिन्नत्वेनाप्रतीयमानत्वे सति प्रतीयमानत्वं वा तदभिन्नत्व प्रमाविषयत्वाभाव एव वा तद्व्यावृत्तत्वमितिवाच्यम् ; घटत्वभेदानिरुक्तौ तदभिन्नत्वस्य दुर्निरूपत्वात् , प्रतीतिघटितत्वेनाचाक्षुषत्वप्रसङ्गात् , प्रतीत्यभावकाले तद्भेदत्वाभावप्रसङ्गश्चाद्ये, सर्वाभेदवादिमते द्वितीयेऽप्यसम्भवश्च, तदभिन्नत्वप्रमाविषयत्व-स्यैव सत्त्वात्, एकधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकभेदस्यानेकानुयोगिकत्वेन नानात्वापत्त्या भेदांशे प्रतीतीनामनुगतत्वानुपपत्तेश्चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । यदि चेति । सन्देह इति । **विपर्ययस्याप्युपलक्षणम् ! 'इदं तद्वा नवेति' 'इदं तदेवेति' संशयविपर्यययोरभावापत्तिः। नच घटादिस्वरूपग्रहेऽपि तद्भेदत्वाग्रहात्सा नेति वाच्यम्; तद्भेदत्वस्य घटादेः सप्रतियोगिकत्वनिरासेनाधाराधेयभावानुपपत्त्यापादनेन च निरस्तत्वात् एतेनेतरव्यावृत्तधर्म-विशिष्टस्वरूपं भेदस्तदज्ञानाच्च संशयादिरिति निरस्तम्; तादृशस्वरूपात्मकभेदज्ञानं विनेतरव्यावृत्तत्वेन धर्मज्ञानासम्भवेनेतरेतराश्रयात्, वस्तुगत्येतरव्यावृत्तो यो धर्मस्तद्वैशिष्ट्य-विवक्षायामिदन्त्वादेरपि वस्तुगत्या तथात्वादुक्तसंशयाद्यनुपपत्तेः, घटत्वादिधर्मविवक्षायामपि 'अयंघटः स नवेतिसंशयाद्यनुपपत्तेः एतद्घटत्वस्य तत्पदार्थव्यावृत्तत्वात् । यदि च तद्भेदत्वं घटादौ तद्विद्यमानत्वं तर्हि भेदस्यातिरिक्तस्य स्वीकारावश्यकत्वेन स्वरूपभेदस्याप्रामाणिक-त्वमेवेति भावः। अधिकं तु चतुर्थपरिच्छेदे वक्ष्यते ।**

घटभेदो घटाभिन्नवृत्तिरिति पक्षमपहस्तयति यदीति । **अनेका स्यात् =एका न स्यात्, न स्यादेवेति यावत् । घटो यदि स्वभिन्नः स्यात् सर्वदेशकालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगी स्यादिति भावः।** एकाभावे इति । **घटो यदि तादृशाभावप्रतियोगी स्यात्तदेत्यर्थः । नानेकमपि व्यवतिष्ठते = अनेकत्वाव्यवस्थापकः स्यात् स्वाधीनानेकत्वस्य सत्यत्वेन व्यवस्थापको न स्यात् , तादृशाभावप्रतियोगित्वाभाववद्विषयकप्रमितिप्रयोजको न स्यादिति यावत् ।**

भारती

यदि कहें कि अभिन्न में भेद रहता है तो यह कहना भी आपका ठीक नहीं है । क्योंकि अभिन्न में भेद को मानने पर जो घटादि व्यक्ति एक प्रतीत होता है वह भी उसी भेद से भिन्न अर्थात् अनेक हो जायेगा । अर्थात् कोई भी व्यक्ति एक न रहेगा । और जब एक का ही अभाव हो जायेगा तब अनेक भी व्यवस्थित कैसे होंगे । अर्थात् नहीं होंगे । (यहाँ तात्पर्य यह है कि जब घट रूप एक अभिन्न व्यक्ति में भी घट का भेद मानेगे तो - घटो यदि स्वभिन्नः स्यात् सर्वदेशकालवृत्तिअत्यन्ताभाव प्रतियोगी स्यात् । (घट यदि स्व से भिन्न होगा तो सर्वदेशकालवृत्ति अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी अर्थात् अलीक हो जायेगा) इस आपादान के अनुसार घट के अलीक हो जाने से - घटो यदि अलीकः स्यात् स्वाधीनानेकत्वस्य सत्यत्वेन व्यवस्थापको न स्यात् '' (घट यदि अलीक हो तो स्वयं के द्वारा संपादित होने वाले अनेकत्व का वह सत्यत्वरूप से व्यवस्थापक नहीं होगा ।) यह आपादान किया जायेगा, ऐसी स्थिति में अनेकत्व भी व्यवस्थित कैसे रहेगा ।)

एतेन-न भेदावच्छिन्ने नाप्यभेदावच्छिन्ने भेदो विनिविशते किन्तूदासीने इत्यपि-निरस्तम् । अतएव च भेदो नाम स्वरूपान्योन्याभाववैधर्म्यानात्मको धर्मान्तरं पृथक्त्वा-परनामकमित्यपि परास्तम् ; सोऽपि हि स्वाश्रये भिन्ने विनिविशेत अभिन्ने वेत्यादियथोक्तदोषलङ्घनाजङ्घाल एव स्यात् ; स्वाश्रयेण

शारदा

तादृशप्रतियोगित्ववद्घटनिरूप्यत्वविशिष्टानेकत्वस्यापि तादृशप्रतियोगित्वमेव नतु तदभाव-रूपं सत्यत्वमिति भावः । अनेका स्यादित्यनेनैकत्वाभावं वाऽऽपाद्य एकत्वं यद्येकवृत्तिधर्मावच्छेदेनैकत्वत्वावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नात्यन्ताभावप्रतियोगितावत्स्यात् सत्यत्वेनानेकत्वाव्यवस्थापकं स्यात् = सर्वदेशकालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वा-भाववद्विषयकप्रमितिप्रयोजकं न स्यादित्युत्तरग्रन्थेनापादनीयम् । अयं देशः कालो वा यद्येकवान्न स्यादनेकवानपि न स्यादिति तु स्थवीयः । एतेनेति । वस्तुतो घटभेदवतोऽपि पटादेर्यदि घटभेदाभेदोदासीनत्वं तदा घटाभेदवतोऽपि तत्स्यादिति घटेऽपि घटभेदप्रसङ्गेनेत्यर्थः । उदासीने इति । उदासीनत्वं न घटभेदानवच्छिन्नत्वे सति घटाभेदानवच्छिन्नत्वम् , असम्भवात्, नापि घटभेदाभेदाभ्यामप्रतीयमानत्वम्, वस्तुगत्या घटभेदवद्वृत्ति त्वप्रयुक्तदोषाणमनुद्धारात्, घटभेदवत्ताप्रतीत्यर्थं घटभेदवत्त्वेन प्रतीत्यवश्यम्भावस्याप्युक्तत्वाच्च, नापि पटत्वाद्यवच्छिन्नत्वं, वस्तुतो घटभेदवत्तामादाय दोषसत्त्वात् । तस्मादसम्भवदुक्तिकत्वमेवास्य कल्पस्येति द्रष्टव्यम्। पृथेक्त्वेति विभागादेरप्युपलक्षणम् । दोषलङ्घनाजङ्घालः = दोषराहित्यायोग्यः । अत्र 'अन्योन्याभावादेव पृथक्त्वव्यवहारोपपत्तेः पृथक्त्वं नातिरिच्यते तत्प्रतीतेः सावधित्वावलम्बनत्वे मानाभावेन न सावधित्वेन हेतुना तस्याभावत्वाभावसाधनसम्भवः घटात्पटः पृथक्

राजहंस

स्थवीय इति। कस्यचिदेकस्य सर्वत्र सुलभत्वेन व्याप्तिग्रहासम्भवात्। अनेकस्याप्येकव्याप्यताऽव्यवस्थिता, घटपटरूपानेकसत्त्वेऽपि कटरूपैकाभावात् । तथा च विशिष्यैव

भारती

इससे यह कथन भी निरस्त हो जाता है कि -''भेद न भेद विशिष्ट में रहता है और न अभेद विशिष्ट में, अपितु भेद अभेद इन दोनों से उदासीन घट में ही भेद रहता है ।'' क्योंकि शारदोक्तरीति से घट में उदासीनत्व का निर्वचन होना असंभव है और वस्तुतः घटभेदवान् पटादि भी यदि घटभेदाभेद से उदासीन कहा जाय तो घट अभेद वाला भी उदासीन हो जायेगा, तथाच घट में भी घटभेद आ जायेगा । अतः घट को भेद अभेद से उदासीन कह नहीं सकते।

यदि कहें कि स्वरूप अन्योन्याभाव एवं वैधर्म्य रूप भेद नहीं है अपितु पृथक्त्व नामक धर्मान्तर अथवा विभाग ही भेद है । तो यह कहना भी युक्ति संङ्गत नहीं है । क्योंकि- वह पृथक्त्वादि भेद भी ''भिन्न आश्रय में रहता है या अभिन्न आश्रय में'', इत्यादि विकल्पों के द्वारा पूर्वोक्त दोषों के लङ्घन (राहित्य) में असमर्थ (अयोग्य) ही है ।

च स्वस्मिन्नभेदभयाद्यदि स एव भेदो निविशते तदात्माश्रयः, अन्यश्चेत्तस्मिन्नेवं, तस्मिन्नप्यन्य इत्यनवस्था, क्वचिदपि गत्वा भेदभेदाश्रययोर्भेदस्यास्वीकारे च तदैक्यद्वारिका मूलपर्यन्तमेकता धावेत् ।

शारदा

इतरोऽन्यो - भिन्नोऽर्थान्तरमित्यादौ तत्तच्छब्दविशेषप्रयोगे पञ्चम्यनुशासनसिद्धैवेति' पदार्थतत्त्वनिरूपणादौ शिरोमण्याद्युक्तमपि द्रष्टव्यम् । विभागे भेदव्यवहारस्तु गौण एव, अन्यथा गुणादौ संयुक्तयोश्च भेदव्यवहारानुपपत्तेः । घटाद्यभिन्नत्वे सति घटादिकप्रतियोगिकविशेषवत्त्वं घटादिभेदत्वं तु नानुगतम् , विशेषवत्त्वस्य विशेषान्तरं भेदान्तरं वा विनानुपपत्त्याऽनवस्था च स्वपरनिर्वाहकत्वे चात्माश्रयः, तादृशविशेषस्याप्रामाणिकत्वं च, अपर्यायत्वनियमनस्य भेदोपगमेनैवोपपत्तेरिति भावः। अतिरिक्तभेदपक्षेषु दोषान्तरमाह स्वाश्रयेणेति । **स्वं भेदः। यदि स एव भेदो निविशते = स्वाश्रयप्रतियोगिकस्वानुयोगिकभेदो यदि स्वयमेव तदा स्थितावात्माश्रयः** । तदैक्येति । **स्वरूपभेदस्य निरस्तत्वेन तेनानिवार्हादिति भावः । मूलपर्यन्तमेकता धावेत् = घटपटयोरप्येकता स्यात् , भेदस्यातिरिक्तस्याभावात् । तत् = तस्मात् । प्रत्यक्षतो बाधः= भेदप्रत्यक्षाधीनोऽप्रामाण्यग्रहः । तं = अद्वैतश्रुतिविशेष्यकाप्रामाण्यप्रकारकग्रहं।**

राजहंस

पर्यवसानमुपासनीयमितिभावः। **घटादिभेदत्वं त्विति**। घटाद्यनुयोगिकभेदत्वं त्वित्यर्थः।

भारती

किञ्च भेद के आश्रय के साथ यदि भेद का भेद न मानें तो स्वाश्रय के साथ भेद का अभेद हो जायेगा अत: अभेदापत्ति वारणार्थ यदि भेदाश्रय के साथ भेद का भेद मानेंगे तो उन दोनों भेदों के एक होने से वही भेद स्व के आश्रित हो जायेगा अत: आत्माश्रय दोष हो जायेगा । और यदि वे दोनों भेद भिन्न हैं तो उन दोनों भेदों से आश्रय को भिन्न बनाने हेतु तृतीय भेद की कल्पना करनी होगी, फिर तृतीय के लिए भी चतुर्थ भेद की कल्पना करना पड़ेगा । अत: अप्रमाणिक अनन्त भेद होने से अनवस्था दोष हो जायेगा । यदि इस दोष के परिहारार्थ भेद एवं भेदाश्रय का भेद न मानें तो भेद भेदाश्रय की एकता हो जाने से मूल घट पट की भी एकता (अभेद) सिद्ध हो जायेगी ।

तस्मात् भेद पदार्थ का निर्वचन न हो सकने से भेद ग्राही प्रत्यक्ष के द्वारा अद्वैत श्रुति का बाध (अप्रमाण्य ग्रह) नहीं हो सकता अर्थात् निरस्त कर दिया गया । अनुमानादि तो आगम की अपेक्षा दुर्बल है अत: अनुमानादि के द्वारा अद्वैत श्रुति का बाध (अप्रामाण्य ग्रह) तो आप (तार्किक) के मत में भी नहीं हो सकता । (हेत्वाभासचिन्तामणि में तार्किकों ने भी ''मेरू: पाषाणमय: पर्वतत्वात्'' इत्यादि अनुमानों का बाध आगम के द्वारा माना है अत: आगम की अपेक्षा अनुमान का दौर्बल्य तार्किक को भी स्वीकृत है ।)

तदद्वैतश्रुतेस्तावद्बाधः प्रत्यक्षतः क्षतः ।
नानुमानादि तं कर्तुं तवापि क्षमते मते ।।२०।।

शारदा

अनुमानस्यागमापेक्षया दुर्बलत्वादेव मेरुः पाषाणमयः पर्वतत्वात्, नरशिरः कपालं शुचि प्राण्यङ्गत्वात् , राजसूयं ब्राह्मणानुष्ठेयं स्वर्गसाधनत्वादित्याद्यनुमानानामागमबाध्यत्वं हेत्वाभासमणावुक्तम् । यद्यपि धर्म्यादिग्राहकत्वेनैवात्रागमस्य प्राबल्यम्, नचाद्वैतश्रुतेस्तथात्वं, तेन च न परमागमस्यैव प्राबल्यं अपितु वह्निरनुष्णः कृतकत्वात् , मनो विभु ज्ञानासमवाय्याधारत्वादित्यादौ प्रत्यक्षानुमानादेरपि, निश्चितप्रामाण्यकत्वेनैव प्राबल्यपक्षेऽपि नानुमानादित्वादिनैवागमापेक्षया दौबर्ल्यम् , अपि तु गृहीताप्रामाण्यकत्वेनैव ; तथाप्यन्यत्रागमस्य प्रत्यक्षेणेवानुमानादिना बाध्यत्वं न क्वापि क्लृप्तमित्येतावन्मात्राभिप्रायेणेदमुक्तम् ; आगमैकदेशप्रतिपाद्यस्य मेर्वादिर्मन्ता तत्र सुवर्णमयत्वादिप्रतिपादकांशस्य चामन्ता पुनरागमस्य प्राबल्यमनुमानापेक्षयाऽव्यवस्थाप्य प्रतिपादयितुमशक्य एवेति वाऽऽशयो द्रष्टव्यः। आदिपदेन तर्को ग्राह्यः स चाप्रमाणत्वादेवागमाद्दुर्बल इति केचित्। यदिचानुमानपदेन घटः पटभिन्नो घटत्वादित्यादिभेदसाधकमनुमानं गृह्यते तदा भेदविषयकार्थापत्त्यादेरपि ग्रहणे न क्षतिः, सादृश्यस्योपमानग्राह्यत्वमते भेदस्यापि तेन ग्राह्यत्वसम्भवात् सादृश्यस्य भेदघटितत्वात् । यदि त्वाविद्यकभेदमादाय सिद्धसाधनं मा भूदिति भेदो न साधनीयः; अपि तु संवादिव्यवहारक्षमत्व, प्रमितत्व, तुच्छत्वप्रातिभासिकत्वानधिकरणत्वादिना लिङ्गेनार्थापत्त्या वा भेदे प्रतीतिसाक्षिके सत्यत्वमेव, अद्वैतश्रुत्यपेक्षया च सत्यत्वसाधकानुमानस्य प्राबल्यमेवेत्युच्यते, तदा 'तदद्वैते'ति तत्पदस्योक्तपरामर्शकस्योत्तरार्द्धेऽपि हेतुतयाऽन्वयः ; तथाचायमर्थः भेदनिर्वचनखण्डनैरुक्तैर्भेदे सत्यत्वाभावस्यैवोपनीतत्वान्न सत्यत्वसाधनसम्भवः, किञ्च भेदत्वावच्छेदेन सत्यत्वसाधनस्य प्रातिभासिकभेदे बाधेनासम्भवात् घटपटभेदादिकं विशिष्यैव धर्मीकृत्य सत्यत्वं साधनीयमिति भेदसामान्याभावबोधने प्रवृत्ता श्रुतिर्घटपटभेदातिरिक्तांशेऽगृहीताप्रामाण्यकत्वेनोक्तन्यायेन सर्वाभेदे प्रामाण्यमासाद्य भेदे सत्यताधियं प्रतिक्षेप्स्यति, नहिविशेषरूपेण भेदेषु सत्यत्वमसर्वज्ञसुग्रहम् ; अतएवान्यतमत्वमपि न पक्षतावच्छेदकम् ; अतएव न विमतिरपि विशेष्यतासम्बन्धेन तस्याः प्रातिभासिकभेदसाधारण्येन बाधापत्तेः, नच तस्या व्यावहारिकनिष्ठविशेष्यतासम्बन्धेन पक्षतावच्छेदकत्वम्, तथाच भेदभेदिनां सर्वेषां सत्यता सेत्स्यतीति वाच्यम् ; व्यावहारिकत्वस्य ब्रह्मज्ञानेतराबाध्यत्वरूपस्य व्यवहारकालाबाध्यत्वरूपस्य वा ब्रह्मसाधारण्येन तत्र सिद्धसाधनापत्तेः, व्यावहारिकसामान्यनिष्ठा च विशेष्यता नैका, अधिष्ठानप्रमाप्रयुक्ताभावप्रतियोगित्वादिरूपबाध्यत्वस्याननुगतत्वेन तद्विरहस्यापि तथात्वात्, व्यवहारकालत्वस्याप्यव्यवस्थिततत्वाच्च । एतेन व्यावहारिके ब्रह्मभिन्नत्वनिवेशेऽवच्छेदकावच्छेदेनानुमितेरुपगमेऽपि वा ननिस्तारः ।

राजहंस

त्वन्मते उद्भावितमनुमानादिकमपि बाधं कर्तुं न क्षमत इति योजनामाश्रित्य तात्पर्यार्थमाह- **तथा चायमर्थ** इति।

अद्वैतागमनासीरे साधु सा धुन्वती परान् ।
सेवामेवार्जयत्यर्थापत्तिपत्तिपरम्परा ॥२१॥

शारदा

ज्ञानमात्रस्य ब्रह्मविषयकत्वेन ब्रह्मज्ञानेतरत्वस्यैव ज्ञानेऽप्रसिद्धेश्च, निर्विशेषब्रह्मविवक्षणेऽपि विशेषसामान्यस्य मिथ्यात्वसिद्धिं विना तस्याप्रसिद्धिरेव, सविशेषनिर्विशेषसाधारणनिवेशे तूक्तमेव दुर्वचं चोभयसाधारणं रूपम्; निर्विशेषगतधर्माणामभावरूपतयाऽऽश्रयात्मकत्वेन सविशेषात्मकत्वस्य सविशेषनिष्ठत्वस्य वाऽनुपपत्तेः। नापि वेदान्ततात्पर्यप्रमितिजन्य-ज्ञानान्याबाध्यत्वं मोक्षहेतुज्ञानान्याबाध्यत्वं वा पक्षतावच्छेदकम् ; भेदस्यानुयोगिप्रतियोगिगत-वैधर्म्यनिरूपणं विना प्रतिपत्तुमशक्यत्वेनानुयोगिगतवैधर्म्यस्य निरूपणावश्यकत्वे तदवच्छिन्नाबाध्यत्वस्यैवावच्छेदकत्वौचित्यात्; नवा तन्निरूपणमपि सुशकम्; तात्पर्यप्रमितिश्च न शब्दैक्यमात्रेणानुगता स्यात्, नवा मोक्षपदार्थोऽपि, तथाच तात्पर्यपदार्थस्य मोक्षपदार्थस्य च विवेचने नोभयमतसाधारण्यसम्भवः पक्षतावच्छेकस्य । एतेन प्रातिभासिकभिन्नत्वं तुच्छस्याङ्गीकारे तत्त्वानधिकरणत्वमपि पक्षतावच्छेदकमिति निरस्तम् ; अनुयोगिगतवैधर्म्यस्य निरूपणापत्तेः । अतएवा-लक्ष्यान्यत्वघटितलक्षणमात्रं मूले निरसिष्यति । एतेन प्रातिभासिकभिन्नत्वे सति दृश्यत्वं, सत्तादात्म्यं वा पक्षतावच्छेदकमिति निरस्तम्; दृश्यत्वस्य चिद्विषयत्वादिरूपत्वेऽननुगमः, विषयताया विषयभेदेन भिन्नत्वात्, अन्यथा घटपटाविति समूहालम्बनस्य घटपटनिष्ठविषयताया एकत्वेन भ्रमत्वापत्तेः घटावृत्तिधर्मावच्छिन्नघटनिष्ठ-विषयताशालित्वात्, एतेन सत्तादात्म्यस्यापि चिद्विषयत्वरूपत्वं निरस्तम्; सदध्यस्तत्वादिरूपत्वं तु सत्यत्वं साध्यं न मृष्यते। दुर्वचश्चाध्यस्तत्वं विना वृत्तिनिरूपिताकाराख्यविषय-ताताश्चिन्निरूपितविषयतायामभ्युपेतं वैलक्षण्यम्, नवा विषयतात्वमप्येकं द्वयोः साधारणं येन तेनात्मनापि निवेशः स्यात् । स्वातिरिक्तचिदधीनस्वस्फुरणाकत्वरूपं दृश्यत्वमपि स्वत्वाघ्रातत्वेन नानुगतम् ; एवं प्रकारान्तरेष्वपि द्रष्टव्यमिति दिक् । उक्तहेतूनां दूषणानि त्वद्वैतसिद्ध्यादौ द्रष्टव्यानि । इदं पुनस्तत्त्वम्-आद्यस्य तृतीयस्य च व्यावहारिकसत्त्वेनैवोपपत्तौ पारमार्थिकत्वसाधनेऽप्रयोजकत्वम्, द्वितीयश्चासिद्धमेव, भेदनिर्वचनप्रतिक्षेपादिति। नासीरशब्दस्य सङ्गरार्थकत्वे -अद्वैतागमस्य भेदबोधैः सह नासीरे = बाध्यबाधकभावचिन्तायां

राजहंस

निर्विशेषगतधर्माणामभावरूपतयेति। ज्ञानत्वादेः स्वोपहितचिन्निष्ठत्वेन तत्तादात्म्यस्य शुद्धेऽभावे शुद्धंब्रह्म ज्ञानात्मकमित्यादिव्यवहारानुपपत्तेरुपहितब्रह्मतादात्म्यस्य भावरूपस्य शुद्धे स्वीकार्यतयाऽग्रे वक्ष्यमाणत्वेऽपि तस्य नोपहितसाधारणता, अत्यन्ताभेदे सम्बन्धानुपगमात्। इति खण्डने प्रत्यक्षबाधोद्धारशारदायां राजहंसः।

भारती

एवं अद्वैतागम का भेदबोध के साथ प्रवृत्त इस युद्ध (बाध्यबाधकभावचिन्ता) में पूर्वोक्त अर्थापत्ति (तत्तद् बाधकत्वाभिमत भेद बुद्धि के साथ बाध्यत्वाभिमत अद्वैत बुद्धि और तत्तद्बुद्धियों का स्वविषयों के साथ अभेदरूप विषय में अद्वैतश्रुतिनिष्ठ निश्चित प्रमाणयकत्व की अन्यथानुपपत्ति) रूप पत्ति पदाति अर्थात् सेना की परम्परा तो पर अर्थात् भेद बोधक ज्ञान

नन्वद्वैतश्रुतयो वर्णपदविभक्तितदर्थादिभेदानुपजीव्यार्थं प्रतिपादयन्त्यः स्वोपजीव्याभिर्भेदबुद्धिभिर्न कथं बाध्यन्ताम् , उपजीवकस्योपजीव्याद्

शारदा

सा = पूर्वोक्ता अर्थापत्तिपत्तिपरम्परा = तत्तद्बाधकत्वाभिमतभेदबुद्धिभिर्बाध्यत्वाभिमताद्वैतबुद्धेः स्वविषयैश्च तत्तद्बुद्धेरद्वैतविषयकत्वावच्छेदेन निश्चितप्रामाण्यकत्वान्यथानुपपत्तिबुद्धीनां बाधकत्वाभिमतभेदबुद्धिप्रामाण्यग्रहविघटकतया सेनाविशेषात्मकपत्तिरूपतयाऽध्यवसितानां परम्परा साधु यथा स्यात्तथा परान् धुन्वती = भेदबोधविशेष्यकप्रामाण्यप्रकारकग्रहाभावप्रयोजिका सती सेवामेवार्जयति = अद्वैतबुद्धेः सर्वविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यग्रहौपयिकतामेवासादयतीत्यर्थः। नासीरशब्दस्य सेनाविशेषात्मकपत्तित्रिगुणीभूतसेनामुखार्थकत्वे तु-शुद्धान्तःकरणानां विदुषामद्वैतानुभूतिः, उक्तान्यथानुपपत्त्यात्मिका दृश्यत्वाद्यन्यथानुपपत्त्यात्मिका च युक्तिः, द्वैतमिथ्यत्वानुमितिश्चेति त्रयमेवाद्वैतागमस्य नासीरं तद् घटकीभूता चार्थापत्तिपत्तिपरम्परेति द्रष्टव्यम् ।

वर्णेत्यादि । यद्यपि समुदायघटकवर्णानामानर्थक्यात्तदर्थेत्यसङ्गतम्, तदर्थेत्यस्य द्वन्द्वावयवपदविभक्तिपदार्थमात्रान्वयित्वानुपपत्तेः। वासुदेवादिवाचकाकारादेश्च पदपदेनैव ग्रहणसम्भवः, तथापि पदपदस्य शक्तिमत्परत्वे विभक्तिपदोपादानानर्थक्यात्सुप्तिङन्यतरान्तार्थकत्वात्प्रकृतिमात्रस्याकारादेरिणादिधातोश्च केवलस्याणादिप्रत्ययस्यच वर्णपदेन ग्रहणसम्भवः; अद्वैतश्रुतिपदस्याद्वैतपरवेदमात्रपरत्वेनाद्वैतश्रुतिघटकत्वमपि तेषु । अथवा वर्णपदस्य पदविभक्तितदर्थादीत्यनेनैव समासो द्रष्टव्यः । आदिपदेन चाव्यवहितपूर्वापरीभावघटिताकाङ्क्षादिकं ग्राह्यम् । तथाचाद्वैतश्रुत्यधीनशाब्दबोधप्रयोजकबोधविषयत्वमेवोक्तभेदेष्वद्वैतश्रुत्युपजीव्यत्वम् ; नहि प्रकृतिप्रत्ययभाववाच्यवाचकभावाकाङ्क्षादिप्रत्ययो भेदप्रत्ययमन्तरेण घटते, शब्दस्वरूपस्य पूर्वं नियतप्रतीतिकत्वेनैवालङ्कारिकाद्यभिमतशाब्दबोधविषयत्वस्य तत्रोपपत्त्या तदंशे शाब्दत्वस्य 'घटपदं शाब्दयामी'त्यनुव्यवसायविरहेणाप्रामाणिकत्वेन वाच्यत्वस्याप्यप्रामाणिकत्वाद्वाच्यवाचकभावस्यापि भेदप्रतिपत्त्यधीनप्रतिपत्तिकत्वमेवेति भावः। स्वोपजीव्याभिः = स्वाधीनशाब्दबोधप्रयोजिकाभिः । नहि प्रत्यक्षं प्रत्यक्षमित्येतावतैव प्रबलं, येन जात्या तस्य प्राबल्यमाशङ्क्येतापि, मा भूच्चन्द्रे प्रादेशिकत्वादेः स्वीकारप्रसङ्गः ; नवा तस्य निश्चितप्रामाण्यकत्वं, येन प्रथमोत्पत्तिके तत्रोपक्रमन्यायेन प्राबल्यशङ्काऽवकाशमासादयेत्,

भारती

के प्रामाण्य को निरस्त करती हुई अद्वैत बोध की सेवा ही करती है। अर्थात् अद्वैत बोध के सर्वविषयकत्वावच्छेदेन प्रामाण्यनिश्चय की पोषक ही होती है ।

प्रश्न-वर्ण पद विभक्ति एवं उनके अर्थो के भेद का आश्रय कर के ही अद्वैत श्रुतियाँ अपने प्रतिपाद्य अर्थ (अद्वैत) का प्रतिपादन करती है। अतः अपने उपजीव्य (अद्वैत बोधन में सहायक) उन भेदबुद्धियों के द्वारा अद्वैत श्रुतियों का बाध क्यो नहीं होगा, क्योंकि कारण

दुर्बलत्वात् । मैवम्। न वयं भेदस्य सर्वथैवासत्त्वमभ्युपगच्छामः, किन्नाम, पारमार्थिकं सत्त्वम् । अविद्याविद्यमानत्वं तु तदीयमिष्यत एव, तदेव च कार्यकारणभावोपयोगि। एतेन-'एकमेवे' त्येवकारव्यवच्छेद्येन, 'अद्वितीयमिति', द्वितीयेन, 'न नानेति' नानात्वेन, 'किञ्चने' त्यनेन बहुना विना नोपपद्यमानेन, व्याघात इत्यपि प्रत्यादिष्टम् ;

शारदा

नवा तस्य व्यवहारेऽनवकाशता, अद्वैतश्रुतेश्च सावकाशता, येनानवकाशबलीयस्त्वन्यायोऽत्र सावकाशः स्यात्; नवा शतमप्यन्धानां पश्यति, येन भेदबुद्ध्यन्तरसंवादवतो भेदप्रत्यक्षस्य 'बहूनामनुग्रहो न्याय्य' इति न्यायेनाद्वैतश्रुतिबाधकता स्तात्; नवा तेषां सर्वथैवाननुग्रहोऽपि, व्यवहारे सावसरत्वात् ; तस्मादुपजीव्यत्वेनैव प्राबल्यमाशङ्क्यते। यद्यप्युपजीव्यत्वेनापि प्राबल्ये मानाभावः, अगृहीताप्रामाण्यकत्वेन निश्चितप्रामाण्यकत्वेन वा प्राबल्यात्, उपजीव्यस्यापि क्वचित्प्राबल्ये तदैव प्रयोजकं, अन्यथा नेदं रजतमिति प्रमापेक्षया तत्पूर्वभाविनो रजतभ्रमस्यापि प्राबल्यं स्यात्, न च निश्चितप्रामाण्यकत्वं प्रत्यक्षस्येत्युक्तं पुरा ''भेदधीमात्रस्य च द्विचन्द्रादिबोधवदन्यथाप्युपपत्तेरि'' त्यत्र। तथाप्यभ्युपगमवादेन समाधत्ते न वयमिति। **सर्वथैवासत्त्वं = अलीकत्वं सद्भिन्नत्वे सति कालिकसम्बन्धावच्छिन्ना-धेयतानाश्रयत्वरूपम् , सद्भिन्नोऽपि घटादिस्तादृशाधेयताश्रय एव, तादृशाधेयतानाश्रयोऽपि निर्धर्मकं ब्रह्म न सद्भिन्नम् । पारमार्थिकं सत्त्वं = कालत्वव्यापकं बाधकप्रमित्यविषयत्वं। नाभ्युपगच्छाम इत्यनुषङ्गः ।** तदेवेति । **''पूर्वसम्बन्धनियमे हेतुत्वे तुल्ये एव नावि'' ति प्रघट्टके व्यावहारिके कारणता व्यवस्थापिता, तथाच यद्धर्मावच्छिन्नभेदविषयताकत्वेन बोधस्याद्वैतश्रुत्यधीनशाब्दबोधप्रयोजकता तद्धर्मातिरिक्तरूपेणापि भेदस्य बाधे उपजीव्यव्याघातोक्तेरप्रामाणिकत्वात् तद्धर्मेणैव भेदस्य बाधे तस्याः प्रामाणिकतायाः स्वीकार्यत्वात् भेदत्वस्य व्यावहारिकत्वसमानाधिकरणभेदत्वस्य वा तद्धर्मस्याबाधे तेन रूपेण भेदस्याप्यबाधेन नोपजीव्यव्याघातः एवं भेदबोधस्योपजीव्यत्वेऽपि द्रष्टव्यमिति भावः ।**

भारती

की अपेक्षा कार्य (उपजीवक) दुर्बल होता है ।

समाधान-हम भेद को सर्वथा अलीक नहीं मानते, अपितु उसकी पारमार्थिकसत्ता का ही निराकरण करते हैं। भेद की आविद्यक (अविद्या कल्पित) सत्ता को हम मानते ही हैं। और वही (आविद्यक अर्थात् व्यावहारिक सत्ता युक्त भेद) कार्यकारण भाव का उपपादक है । (तात्पर्य यह है कि श्रुति जन्य शाब्दबोध के प्रति शब्दश्रवण अर्थात् श्रूयमाण शब्द जो कि वर्ण पद विभक्ति एवं तत्तदर्थ भेद से भिन्न-भिन्न है कारण होता है किन्तु शाब्दबोध के प्रति कारण होने में उसकी आविद्यक (व्यावहारिक) सत्ता ही अपेक्षित है न कि पारमार्थिक सत्ता, अतः पारमार्थिक सत्ता न होने पर भी उक्त भेद की व्यावहारिक सत्ता से कार्यकारणभाव उपपन्न हो जाता है, अतः श्रौत बोध में उपजीव्यविरोध नहीं है।) इससे अर्थात् आविद्यक

श्रुतिभिश्चाद्वैतार्थाभिः पारमार्थिकमद्वैतं प्रतिपाद्यते, नच पारमार्थिकमतिरपारमार्थिकधिया शक्यबाधा, मा भूच्छुक्तिरजतधिया परमार्थशुक्तिमतिबाधः। यत्र त्वग्निरनुष्ण इति बुद्धेरुष्णज्ञानोपजीवनादुष्णबोधेनानुष्णबुद्धिबाधस्तत्र द्वयोरप्यविद्याविद्यमानत्वाद्बाधो युक्तः ।

शारदा

एतेन = निषेध्यस्याविद्यकस्योपगमेन । एवकारेति । **कारो बाहुलकात् । एवकारज्ञानाधीन-ज्ञानविषयव्यावृत्तिप्रतियोगिना सजातीयाद्यन्यतमभेदेनेत्यर्थः । इति द्वितीयेन = इत्येतजानाधीनज्ञानविषयव्यावृत्तिप्रतियोगिना द्वितीयत्वेन । ग्रन्थकृन्मते एतच्छुत्याभेदस्यैव निषेधात् । एवमग्रेऽपि । बहुना = बहुत्वेन, सङ्ख्येयपरत्वे बहुवचनापत्तेः, वैपुल्यवाचिनश्च प्रकृतेऽनुपयोगात् । व्याघातः = अद्वैतासम्भवः । चो ह्यर्थे । पारमार्थिकमतिः = अबाधितविषयकधीः । अपारमार्थिकधिया = बाधितविषयकधिया । शक्यबाधा = अप्रामाण्यप्रकारकप्रमाविशेष्यीकर्तुं शक्या ।** परमार्थेति । **व्यावहारिकेत्यर्थः । न परं त्रिकालाबाध्यविषयकज्ञानस्यैव प्राबल्यम् , अपि तु व्यवहारकालबाध्यविषयकज्ञानापेक्षया व्यवहारकालाबाध्यविषयकज्ञानस्यापि, निश्चितव्यावहारिकप्रामाण्यकत्वादित्याशयेनाह** यत्रेति। **उष्णज्ञानोपजीवनात् = उष्णज्ञानस्य प्रतियोगिज्ञानविधयाऽपेक्षणात् । अविद्याविद्यमानत्वात् = आविद्यकविषयकत्वात् । अनौष्ण्यबुद्धेः पारमार्थिकविषयकत्वे हि व्यावहारिकौष्ण्यसत्त्वेपि तद्विषयोपपत्तेरद्वैतश्रुतिवदेवोपजीव्यबाध्यता न स्यात् , तस्या आविद्यकानौष्ण्यविषयकत्वे तु औष्ण्यज्ञानस्योपजीव्यस्याविद्यकविषयकत्वेऽपि निश्चितव्यावहारिकप्रामाण्यकत्वेन प्रातीतिकविषयकत्वासम्भवात् व्यावहारिकानौष्ण्यविषयकत्वमुक्तबुद्धौ सोढुमक्षमत्वात्तस्याः प्रातीतिकविषयकत्वमेव वाच्यमित्यस्त्येवोपजीव्यबाध्यतेति भावः ।**

भारती

(व्यावहारिक) सत्ता मानने से किसीं का यह कहना कि - ''एकमेव'' यहाँ ''एव'' विशेषण विजातीय भेद के विना, अनुपपन्न है, 'अद्वितीयं' यह द्वितीय के विना अनुपपन्न है, ''न नाना'' यह निषेध नानात्व के विना अनुपपन्न है और ''किञ्चन'' यह कथन बहुत्व के विना अनुपपन्न है अतः ''एकमेवाद्वितीयम्'' नेहनानास्ति किञ्चन ''इत्यादि श्रुति वाक्यों से अद्वैतसिद्ध नहीं हो सकता''। - निरस्त हो जाता है क्योंकि अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों के द्वारा पारमार्थिक अद्वैत ही प्रतिपादित होता है । (अतः उक्त स्थलों में एवकारादि विशेषणों की उपपत्ति तो व्यावहारिक सत्ता मानने से हो जाती है, ऐसी स्थिति में परस्पर विरोध ही नहीं है ।) और व्यावहारिक भेद (द्वैत) ज्ञान के द्वारा पारमार्थिक अद्वैत बोध का बाध नहीं हो सकता । अन्यथा (यदि अपारमार्थिक ज्ञान के द्वारा भी पारमार्थिक ज्ञान का बाध माना जाय तो) शुक्ति में कल्पित रजत ज्ञान के द्वारा व्यावहारिक शुक्ति ज्ञान का भी बाध होना चाहिए। जहाँ प्रतियोगिज्ञानविधया अपेक्षित होने से वह्निः उष्ण इस ज्ञान के उपजीवक (कार्य) ''वन्हि अनुष्ण'' इत्याकारक अनुष्णत्व-ज्ञान (अनुमिति) का ''वन्हि उष्ण'' इत्याकारक बुद्धि (प्रत्यक्ष) से बाध होता है । वहाँ देनों ही ज्ञानों के अविद्याविद्यमान (व्यावहारिक होने से)

ननु तत्रापि तर्ह्यनुष्णतापि पारमार्थिक्येव साध्यतामबाधनाय। मैवम् ; अनुष्णताया जलादिदृष्टान्तसजातीयायाः शीताद्यव्यावृत्तस्वरूपायाः प्रसाधनेऽविद्याविद्यमानत्वे एव विश्रामात्; तत्रैवंविधरूपतानङ्गीकारे चाद्वैतस्यैव नामान्तरकरणापत्तेः; ततस्तस्यां ज्ञेयज्ञानादिभेदावश्याभ्युपेयतया जगद्बाधयुक्तिकवलाप्रवेशासम्भवात् ।

शारदा

तत्र = अग्नौ । अबाधनाय = उपजीव्यविरोधपरिहाराय । पारमार्थिकीति किं व्यवहारकालाबाध्या विवक्षिता, आहोस्वित् त्रिकालाबाध्या; आद्ये अनुष्णताया इति । **दृष्टान्तसजातीयायाः = दृष्टान्तगतानुष्णतासजातीयायाः । साजात्यं च शीतानुष्णाशीतस्पर्शस्पर्शाभावान्यतमव्याप्यत्वेनेत्याह** शीतादीति । **शीताद्यभाववदवृत्तिस्वरूपाया इत्यर्थः। द्वितीये** तत्रेति । **अनुष्णतायामित्यर्थः** । अद्वैतस्यैवेति । **औष्ण्याभावस्याव्यावहारिकत्वे पारमार्थिकत्वमेव वाच्यम्, प्रातीतिकत्वे उपजीव्यबाध्यतापत्तेः, तथाचाध्यस्ताभावस्याधिष्ठानात्मकतोपगमात् वह्नावौष्ण्याभावस्यानवच्छिन्नवृत्तिकस्य सिद्धौ तस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेनाध्यस्तप्रतियोगिकत्वाद्ब्रह्मात्मकत्वेनेष्टापत्तिरिति परेणानुष्णताया औष्ण्यापेक्षयाधिकसत्ताकत्वं वक्तुमशक्यमेव । तदपेक्षया न्यूनसत्ताकत्वस्य तत्समसत्ताकत्वस्य वोक्तौ त्वाह** तत इति । ज्ञेयज्ञानादिभेदेति । **ज्ञेयेति भावप्रधानं, तथाच दृग्विषयत्वं मिथ्यात्वव्याप्यं लब्धम्, ज्ञानभेदः = ज्ञानत्वस्य ''सत्यंज्ञानमि''ति श्रुत्या ब्रह्मण्येवोपगमात्तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणत्वमपि मिथ्यात्वव्याप्यम् , तुच्छस्य निस्स्वरूपस्यानधिकरणत्वात्। आदिपदबलादात्मत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणत्वलाभः । अथवानुष्णतायां स्वातिरिक्ततत्तज्ज्ञेयज्ञानादिभेदस्याभिधानेन स्वान्यूनसत्ताकाभावप्रतियोगित्वस्य मिथ्यात्वव्याप्यस्य लाभः । यद्वा भेदशब्दस्य विशेषार्थकतथा ज्ञेयज्ञानभेदः = विषयविषयिभावः आदिपदबलात्प्रतियोग्यनुयोगिभावजन्यजनकभावादेः सम्बन्धस्य लाभः, तथाच शुद्धं ब्रह्मण्युपहितात्मतादात्म्यातिरिक्तस्य भावभूतर्मस्याभावेन ससङ्गत्वस्य**

भारती

उष्णत्व प्रत्यक्ष से अनुष्णत्वानुमिति का बाध होना उचित ही है । भाव यह है कि - अनौष्ण्य बुद्धि को पारमार्थिक विषयक मानें तो व्यावहारिक औष्ण्य के रहने पर भी पारमार्थिक अनौष्ण्य विषयकत्व की उपपत्ति होने से अद्वैत श्रुति के सदृश उपजीव्यबाध्यता न होगी यदि प्रोक्तबुद्धि को आविद्यक अनौष्ण्य विषयकत्व मानें तो उपजीव्य जो औष्ण्य ज्ञान उसके आविद्यक विषयकत्व होने पर भी निश्चित व्यावहारिक प्रामाण्यकत्व होने से उसका प्रातीतिक विषयकत्व मानना संभव नहीं है । तब अनौष्ण्यबुद्धि में व्यावहारिक अनौष्ण्यविषयकत्व तो सहन नहीं किया जा सकता तब प्रतीतिक विषयकत्व ही उसमें मानना होगा । तथा च इसी बुद्धि (औष्ण्य बुद्धि) को औष्ण्यबुद्धि रूप उपजीव्य से बाध्य मानना ही उचित है ।

प्रश्न- वह्नि में अनुष्णता को भी उपजीव्य विरोधपरिहारार्थ पारमार्थिक ही मान लिया जाय ।

समाधान-पारमार्थिक शब्द से क्या व्यवहारकालाबाध्यत्व विवक्षित है या त्रिकालाबाधत्व,

अद्वैते च द्वैताश्रयस्य बाधस्य वास्तवस्यानवकाशादपारमार्थिकत्वसम्भावनापि दूरत एवापसरतीति । ननु किमद्वैतपरमार्थताभ्युपगमेन समाहितम् भवति यत उवजीव्यबाधादद्वैते प्रमां श्रुतिर्जनयितुं न शक्नोतीति ब्रूमः । मैवम् ;

शारदा

तत्तत्सम्बन्धप्रतियोगित्वरूपस्य मिथ्यात्वव्याप्यत्वेनानुष्णातायां च सत्त्वेन तस्या मिथ्यात्वावश्यंभाव इति भावः । जगद्बाधयुक्तीत्यादि । **चतुर्थपरिच्छेदे वक्तव्यदिशा दृग्विषयत्वादिसम्बन्धमात्रस्यानिर्वाच्यत्वेन तदन्यथानुपपत्तिरूपा या प्रपञ्चमिथ्यात्वसाधिका युक्तिः तत्कवलाप्रवेशस्य तत्साध्यमिथ्यात्वानाक्रान्तत्वरूपस्यासम्भवादित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् - औष्ण्याभावस्यौष्ण्यसमसत्ताकत्वोपगमे औष्ण्ये मिथ्यात्वस्य परानिष्टस्यापत्तिरित्यपि द्रष्टव्यम् , प्रतियोग्यन्यूनसत्तकस्यैवाभावस्य मिथ्यात्वघटकताया अन्यत्र निर्णीतत्वादिति । अयम्पुनः सम्बन्धमात्रखण्डनसंक्षेपः-विषयत्वादिः सम्बन्धिभ्यां भिन्नोवाऽभिन्नो वा आद्येऽनवस्था, यथा च नेष्टापत्तिस्तथाऽसकृदावेदितमधस्तात् , द्वितीये आधाराधेयभावस्यानुभूयमानस्यापलापः रूपभेदेनापि स 'नहि दण्ड्यपि देवदत्तः कुण्डलिनं स्वमारोहती'ति न्यायेनासम्भवी, रूपस्य सम्बन्धगतस्यातिरिक्तस्योपगमे वा सम्बन्धस्यातिरिक्ततया किमपराद्धम् , अनवस्थायाः समानत्वात् , 'भेदाभेदपक्षस्तु विरोधादेवासम्भवी, एकस्यानिर्वाच्यत्वमुपगम्य तृतीयपक्षोपगमे च सम्बन्धमात्रस्यानिर्वाच्यत्वमेवेति । विषयत्वादेरनिर्वाच्यत्वेन तत्संसृष्टतया प्रपञ्च वद्ब्रह्मणोऽनिर्वाच्यत्वेऽपि शुद्धरूपेण न तथात्वं प्रपञ्चानां तु शुद्धरूपं नास्त्येव ब्रह्मातिरिक्तमित्याशयेनाह** अद्वैते चेति । **द्वैताश्रयस्य = संसुष्टत्वनिबन्धनस्य । वास्तवस्य = व्यावहारिकप्रमाणसिद्धस्य । तेन 'सर्वं शून्यमि'ति वदतो बाधभ्रमसत्त्वेऽपि न क्षतिः।** जनयितुमिति । **''न च संस्कारारूढे'' त्यादिग्रन्थे विरुद्धविषयकमानान्तरसत्त्वमात्रेणाद्वैतप्रमित्यनुत्पत्तिराशङ्किता, अत्र तु विरुद्धविषयकत्वोपजीव्यत्वोभयविशिष्टमानान्तरसत्त्वेनेति**

भारती

इन में प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि जल आदि दृष्टान्तगत अनुष्णता के सजातीय एवं शीतादि से अव्यावृत्तरूप अनुष्णता का साधन मानें तो वह अविद्याविद्यमान अर्थात् व्यावहारिकता= आविद्यकता में पर्यवसित होगा। (अर्थात् वह व्यावहारिक ही सिद्ध होगी।) और यदि द्वितीय पक्ष मानें अर्थात् उस अनुष्णता का पूर्वोक्त रूप न मानें तो उसे सिद्ध करने पर नामान्तर से अद्वैत ही सिद्ध किया गया। (तात्पर्य यह है कि उपजीव्य के बाध के भय से उस अनुष्णता को प्रातीतिक मान नहीं सकते, ऐसी स्थिति में उस अनुष्णता अर्थात् औष्ण्याभाव को यदि व्यावहारिक भी नहीं मानेंगे तो वह पारमार्थिक ही सिद्ध होगा, कारण कि अध्यस्त का अभाव अधिष्ठान रूप ही माना जाता है। इसलिए वन्हि में अनवच्छिन्न वृत्तिक औष्ण्याभाव के सिद्ध होने पर प्रतियोगिसमानाधिकरण होने से उसे अध्यस्तप्रतियोगिक मानना होगा। अतः उसके ब्रह्मरूप अधिष्ठानात्मक होने से हमारा इष्ट ही सिद्ध होगा।) और

अद्वैतं हि पारमार्थिकमिदं पारमार्थिकेन भेदेन बाध्येत, न त्वविद्याविद्यामानेन; तस्मादविद्याव्यवस्थितं भेदं तद्बोधं चोपजीवन्त्या न परमार्थाद्वैतबुद्धेरुपजीवव्यबाधः । यदि श्रुतिजन्या भवन्त्यप्यद्वैतबुद्धिरविद्याविद्यमाना तथापि तद्विषयस्तावत्परमार्थसदेवाद्वैतम् , विरोधेन च तस्या बाध्यता, स च नास्तीति । तस्मात् –

शारदा

ध्येयम् । विरोधिमानान्तरस्योत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वं नास्त्येवेति प्रागुक्तत्वेऽपीदानीमभ्युपेत्यवादेनाह अद्वैतं हीति । **यदि द्वैताभावः पारमार्थिकप्रतियोगिकः स्यादपारमार्थिकः स्यात्, समसत्ताकयोर्भावाभावयोर्विरोधादित्यर्थः । ननु ब्रह्मातिरिक्तस्य मिथ्यात्वे तद्विषयकबुद्धितत्प्रामाण्यादेरपि मिथ्यात्वेन ब्रह्मापि मिथ्यैव स्यात् ; नहि शुक्तिरूप्यषियबुद्ध्यादेर्मिथ्यात्वे शुक्तिरूप्यं सत्यं दृष्टमित्याशङ्कते** यदीति । **यद्यपीत्यर्थः । शुक्तिरूप्यविषकबुद्धेर्मिथ्यात्वे मिथ्याविषयकत्वं न प्रयोजकं, अपि तु दृश्यत्वमेव, एवं तत्प्रामाण्यादेरपि । मिथ्याविषयकत्वं त्वप्रामाण्यस्यैव प्रयोजकम्, तथाच सर्वबाधकधीविषयस्य ब्रह्मणो मिथ्यात्वासम्भवेन बाध्याधिकसत्ताकवस्तुविषयकधिय एवेतरबाधकत्वेन ब्रह्मबुद्धेर्मिथ्याविषयकत्वाभावेनाप्रामाण्याभावेऽपि दृश्यत्वेन मिथ्यात्वस्य ब्रह्मणश्च सत्यत्वस्य सम्भव इति परिहरति** तथापीति। **विरोधेन=विषयबाधेन । तस्याः=बुद्धेः।**

भारती

यदि औष्ण्यरूप प्रतियोगि की अपेक्षा उसे (अनुष्णता) न्यूनसत्ताक या समसत्ताक मानें तो उसमें ज्ञानज्ञेयभाव अर्थात् विषयविषयीभाव अवश्य ही मानना होगा, ऐसी स्थिति में चतुर्थपरिच्छेदोक्त जगद् बाधक युक्तियों के कवल (ग्रास) में इसका भी प्रवेश होने से पारमार्थिक रूप से अद्वैत ही सिद्ध होगा। अद्वैत में अपारमार्थिकत्व की तो सम्भावना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि (अद्वैत ब्रह्म में मानमेयभाव के न होने से) व्यवहारिक प्रमाण के द्वारा सिद्ध होने वाले द्वैतनिमित्तक बाध (अप्रामाण्यग्रह) का अद्वैत में अवसर ही नहीं है ।

प्रश्न- अद्वैत पारमार्थिक है यह मानने से क्या सिद्ध हुआ, अर्थात् अद्वैत विषयक प्रमा से ही अविद्यानिवृत्ति होती है। किन्तु हम (तार्किक) यह कहते हैं कि विरूद्धविषयक एवं उपजीव्य (कारण) द्वैत प्रत्यक्ष से बाधित होने से श्रुति अद्वैत विषयक प्रमा को उत्पन्न ही नहीं कर सकती । (ऐसी स्थिति में अविधानिवृत्तिरूप फल कैसे होगा ।)

समाधान- यह अद्वैत पारमार्थिक है अतः पारमार्थिक भेद (द्वैत) के साथ ही इसका विरोध है। यदि पारमार्थिक भेद (द्वैत) होता तो उससे अद्वैत का बाध हो सकता था किन्तु पारमार्थिक भेद (द्वैत) तो है ही नहीं । अविद्या से विद्यमान अर्थात् व्यावहारिक भेद (द्वैत) के साथ तो इस अद्वैत का विरोध ही नहीं है अतः उससे अद्वैत का बाध ही नहीं हो सकता। (तात्पर्य यह है कि यदि द्वैताभाव पारमार्थिक प्रतियोगिक होता तो अपारमार्थिक होता, कारण कि समसत्ताक का ही विरोध होता है।) तस्मात् अविद्याकल्पित भेद एवं भेदविषयकबोध की उपजीवक (सापेक्ष) पारमार्थिक अद्वैत बुद्धि अपने उपजीव्य (अपने कारण द्वैत एवं

पारमार्थिकमद्वैतं प्रविश्य शरणं श्रुतिः ।
बाधनादुपजीव्येन बिभेति न मनागपि ।।२।।
श्रुतिरपि तदाह–''द्वितीयाद्वै भयं भवती''ति ।

इति खण्डने प्रत्यक्षादिबाधोद्धारः ।

शारदा

बाध्यता=अप्रामाण्यम् । नास्ति । **अद्वैतबुद्धावित्यादिः** । **ब्रह्मणः शरणत्वं सर्वबाधकधीविषयत्वेन** । **प्रविश्य=प्रतिपाद्य** । **तदाह=अद्वैतं शरणीकुर्वाणस्य भयाभावमर्थादाह** । **द्वितीयाद्वै=मिथ्यात्वप्रकारकग्रहाविशेष्यीभूतादात्मभिन्नत्वप्रकारकग्रहविशेष्यादेव । एवञ्च तादृशविशेष्यत्वे भयप्रयोजकत्वव्यापकत्वलाभादात्मभिन्नत्वप्रकारकग्रहस्य निन्दितत्वप्रतीत्या तद्विषयस्यापि निन्दितत्वमायाति, विषयस्य प्रशस्तत्वे तज्ज्ञानस्याप्राशस्त्यासम्भवात् , एवं द्वैतमिथ्यात्वग्रहे सति भयाभावेन तस्य प्राशस्त्यलाभेन तद्विषयस्य द्वैतमिथ्यात्वस्यापि प्राशस्त्यं प्रतीयते, विषयाप्राशस्त्ये ज्ञानप्राशस्त्यानुपपत्तेरित्यद्वैते एव श्रुतेस्तात्पर्यमिति भावः।** इति खण्डनशारदायां प्रत्यक्षादिबाधोद्धारः ।

भारती

द्वैतविषयक बोध) के द्वारा बाधित नहीं होती ।

(यदि कहें कि ब्रह्मातिरिक्त के मिथ्या होने पर ब्रह्म विषयक बुद्धि एवं उस बुद्धि का प्रमाण्य भी मिथ्या ही होगा, तथा च उस बुद्धि का विषय ब्रह्म भी मिथ्या हो जायगा, क्योंकि शुक्तिरूप्य विषयक बुद्धि के मिथ्या होने पर शुक्तिरूप्य सत्य नहीं देखा जाता। तो यह आपका कथन ठीक नहीं है क्योंकि शुक्तिरूप्य विषय बुद्धि एवं तद्गत प्रामाण्य के मिथ्यात्व में मिथ्याविषयकत्व प्रयोजक नहीं है अपितु दृश्यत्व ही प्रयोजक है। मिथ्याविषयकत्व तो अप्रामाण्यके प्रति प्रयोजक है। तथा च समस्त बाधक धी का विषय ब्रह्म मिथ्या नहीं हो सकता । बाध्य की अपेक्षा अधिक सत्ताक वस्तु विषयक ज्ञान ही अन्य का बाधक होता है। ब्रह्म ज्ञान के मिथ्या विषयक न होने से अप्रामाण्य न होने पर भी दृश्य होने से उस (ब्रह्मज्ञान) में मिथ्यात्व और ब्रह्म में सत्यत्व मानना दोनों ही संभव है ।) यद्यपि श्रुतिजन्य अद्वैत बुद्धि भी स्वरूप से अविद्याविद्यमान (आविद्यक=व्यावहारिक) ही है (अतएव मिथ्या ही है) तथापि उसका विषय अद्वैतब्रह्म पारमार्थसत् ही है। क्योंकि विषय के बाध के द्वारा ही बुद्धि में बाध्यता अर्थात् अप्रामाण्य आता है और प्रकृत में अद्वैत रूप विषय का बाध है नहीं। अतः तत्प्रयुक्त अद्वैत बुद्धि में भी बाध्यता (अप्रामाण्य) नहीं हो सकती । तस्मात् -

अद्वैत श्रुति पारमार्थिक अद्वैत ब्रह्म का निखिलबाधक ज्ञान के विषय रूप से प्रतिपादन करके उपजीव्य के बाध से लेश भी भयभीत नहीं होती। क्योंकि श्रुति स्वयं ही अद्वैत का शरण लेने वाले के भयाभाव का प्रतिपादन करती है - ''द्वितीयाद्वै भयं भवति'' (बृ. १।४।२) अर्थात् द्वितीय (आत्म भिन्नत्व प्रकारकग्रह विशेष्य) से ही भय होता है।

अथाद्वैतस्वरूपनिरूपणम्

तच्चाद्वैतं ''ब्रह्मैवेदं सर्वमि''ति श्रुत्यर्थेन सहैक्यमापन्नं ब्रह्मैव स्यात्। ''विज्ञानमानन्दं ब्रह्मे''ति च श्रुत्या ज्ञानानन्दात्मतया व्यवतिष्ठते। तेन यदिदमद्वैतज्ञानं श्रुत्या जनितं तद्विज्ञानाद्वैतात्मन्येव निविशते।

शारदा

अद्वैतं हि द्वैताभावः, तस्य ब्रह्मातिरिक्तत्वे सत्यत्वं मिथ्यात्वं वोभयथापि सर्वाद्वैतक्षतिः, भावमात्राद्वैतपक्षस्य श्रुतिस्वारस्यविरुद्धत्वादित्याशङ्क्य द्वैताभावत्वोपलक्षित-ब्रह्मणोऽद्वैतपदार्थतामाह तच्चेति। **ब्रह्मैवेदं सर्वं = इदं सर्वं ब्रह्मैव, आविद्यकेदम्पदार्थ-तादात्म्योपलक्षिताधिष्ठानबोधकसमानविभक्तिकपदनिचयत्वेनात्र बाधसामानाधिकरण्यम् एवञ्च श्रुतेर्ब्रह्मातिरिक्तासहमानत्वं स्फुटमेव। सर्वपदाभावे प्रत्यक्षविषयस्यैव ब्रह्माभेदः सम्भाव्येतेत्याशयेन सर्वपदमुपात्तमिति प्रत्यक्षाविषयस्यापि द्वैताभावस्य ब्रह्मभिन्नत्वम्, द्वैतप्रतियोगिकत्वेन रूपेणाद्वैतस्याविद्यकत्वं पूर्वमुक्तमेवेति भावः। अद्वैतस्यान्येच्छानधीनेच्छा-विषयत्वरूपपुरुषार्थत्वोपपत्तये आह** विज्ञानमिति। **ज्ञानानन्दात्मतया ननु ज्ञानानन्दाधारतया, उक्तश्रुत्यादिसिद्धस्याद्वैतस्य व्याघातात्। आनन्दस्यानावृतत्वलाभाय ज्ञानात्मतोक्तिः; तथाच 'सुखं मेऽनावृतं भवत्वि'त्यादीच्छानां मन्निष्ठावरणविषयता-शून्यत्वप्रकारकसुखविशेष्यकत्वेन सुखस्य तादृशविषयताशून्यत्वेनैव पुरुषार्थताया वक्तव्यत्वात्स्वरूपात्मकसुखस्यापि तथात्वोपपत्तिः, सिद्धे इच्छानुदयेन स्वात्मकसुखस्य च सर्वदासिद्धत्वेन 'अहं स्याम्, सुखं वा स्यामित्यादीच्छाया असम्भवेऽपि स्वात्मकसुखनिष्ठानावृतत्वस्यासिद्धत्वेन तद्विषयकेच्छाया सम्भवेन पुरुषार्थतायां स्वातिरिक्तत्वस्याप्रयोजकत्वादिति भावः। व्यवतिष्ठते = प्रमाविषयत्वरूपव्यवस्थाश्रयः।**

राजहंसः

खण्डनेऽद्वैतस्वरूपनिरूपणशारदायां राजहंसः।

अद्वैतस्य व्याघातादिति। ज्ञाने उत्पत्त्यादिप्रत्ययस्योपाधीभूततत्तद्विषयसम्बन्धविषयकत्वा-ल्लाघवादिसहकृतप्रागुपन्य[1]स्तानुमानाच्च नित्यैकत्वस्वप्रकाशत्वसिद्धौ सत्यत्वावश्यम्भावेन तस्यातिरिक्ततायामद्वैतं व्याहन्यत एवेति ब्रह्मात्मकतैव, तस्य गुणत्वे मानाभावेनाश्रयानपेक्षत्वाच्च, प्रत्युतात्मनस्तद्भिन्नत्वे, पराधीनसिद्धिकत्वप्रसङ्गेन जडत्वदृश्यत्वयोरापत्त्या मिथ्यत्वप्रसङ्गः, चतुर्थे शारदायां दर्शितरीत्या दुर्निरूपतया मिथ्याभूतस्य दृश्यत्वस्य मुक्तावनुवर्तनानुपपत्त्याऽस्फुरत आनन्दस्यापुमर्थताप्रसङ्गश्च। तदिदमाह **आनन्दस्यानावृतत्वलाभायेति।** आनन्दस्य नित्यैकत्वे तु वक्ष्यामः।

भारती

अद्वैत स्वरूप निरूपण

''एकमेवाद्वितीयम्'' इस श्रुति से प्रतिपादित वह अद्वैत ''ब्रह्मैवेदं सर्वम्'' इस श्रुति प्रतिपादित अर्थ के साथ एकतापन्न होकर ब्रह्मरूप ही है। अर्थात् द्वैताभावत्वोपलक्षित ब्रह्म ही अद्वैत पदार्थ है और वही अद्वैततत्व ''विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'' इति श्रुति के द्वारा ज्ञान एवं आनन्दरूपतया व्यवस्थित (सिद्ध) होता है। ब्रह्म ज्ञानात्मक है इसलिए अथवा ब्रह्मातिरिक्त के अभाव होने से श्रुति से जनित (जन्य) यह अद्वैत ज्ञान विज्ञानाद्वैत रूप से ही सिद्ध होता है। यहाँ आनन्द को अनावृत्तत्व लाभार्थ ज्ञानात्मकता की उक्ति है।

१. स्वप्रकाशवादोपक्रमशारदायाम्।

ननु कथं तस्य श्रुत्या जन्यत्वमुपपद्यते । सत्यमेवं स्यात्, यदि तस्य पारमार्थिकी श्रुत्या जन्यतापि स्यात्, अविद्याव्यवस्थिता तु तज्जन्यता न पारमार्थिकेनाजन्यत्वेन विरुद्ध्यते; अतएव श्रुत्येदमेकं साध्यते।

शारदा

तेन=ब्रह्मण एव ज्ञानात्मकत्वेन ब्रह्मातिरिक्तस्याभावेन वा । ज्ञानं वृत्त्युपारूढचिदात्मकं । विज्ञानाद्वैतेत्यादि । **विज्ञानाद्वैतात्मानुयोगिकाभेदप्रतियोगिताश्रय इत्यर्थः । मनोवृत्त्यादौ ज्ञानशब्दस्त्वावरणविरोधित्वप्रवृत्तिजनकत्वादिगुणमादायौपचारिक इति भावः । तस्य = नित्याद्वैतात्मकज्ञानस्य । यद्यपि चिद्विशिष्टवृत्तेर्ज्ञानत्वमुपगम्य तस्या ब्रह्मात्मकताभिधाने जन्यत्वं नोपपद्येत, वृत्त्युपारूढचितस्तु ज्ञानत्वे वृत्तेर्जन्यत्वप्रयुक्तमेव तत्र जन्यत्वमित्यौपचारिकत्वात्तस्या नित्यत्वेऽपि तदुपपद्यते एव, तथापि सर्वाभिन्नं ब्रह्मेति मूलकृत्सिद्धान्ते सर्वपदार्थानां स्वरूपं परमार्थं ब्रह्मैवेति घटादौ दृश्यमानापि जन्यता नित्यब्रह्माभेदं मा विरौत्सीदिति तस्याः काल्पनिकत्वेन विरोधः परिहरणीय इति सर्वपक्षसाधारणं मुख्यं समाधानमेवाह** सत्यमित्यादिना । **अतएव = ब्रह्मविषयकज्ञानस्य**

राजहंसः

पुरुषार्थतायां स्वातिरिक्तत्वस्याप्रयोजकत्वादिति। अत्रेदमपि द्रष्टव्यम्–स्वरूपभूतसुखस्य स्वीयत्वाज्ञानेनापुरुषार्थत्वं ब्रुवाणः प्रष्टव्यः, तस्मिन् स्वीयत्वज्ञानं वेदान्ततत्त्वज्ञानात्प्राङ् नास्ति, पश्चाद्वा, नाद्यः, प्राक् तादृशज्ञाने बाधकाभावादिति तावतैव मोक्षमार्गप्रवृत्त्युपपत्तिः, पश्चात्तु तादृशज्ञानस्यापेक्षैव नास्ति, बन्धस्यैव भ्रान्तिमूलकत्वेन काऽपेक्षा मोक्षकथाया इति प्राक्तनेषु स्वबोधेषु स्वयमेव भ्रमत्वावगमेन नाभिप्रेतालाभेन प्रतारणादोषः । एतच्च सुखे स्वीयत्वज्ञानस्येष्यमाणतौपयिकताभ्युपगमेन, वस्तुतस्तु संसारानलातिवेलसन्तप्तस्य स्वीयत्वादिकथायामनादर एव, तदादरे वा न मुमुक्षुतौपयिकसन्तापः । न चैवं दुःखं मे निवर्ततां किं मे सुखेनापीति निर्विण्णजनानुभवेन दुःखाभावस्यैव पुरुषार्थताऽऽस्ताम्, तस्य स्वरूपसत एव पुरुषार्थत्वेन ज्ञानमेव नापेक्ष्यते किं पुनः स्वीयत्वप्रकारकमिति वाच्यम् । लोके दुःखाभावस्थले तारतम्यवत्तयानुभूयमानतया सुखं तावन्नापलपनीम्, न च दुःखसामान्याभावे तारतम्यं मा भूत्, दुःखाभावकूटे तु प्रतियोगिन्यूनाधिक्येन तत्केन वार्यते; विशिष्य तत्तद्दुःखानां प्रतियोगिनां स्मरणाभावेऽपि सुखप्रत्ययात् । तुल्यभारवाहिनोः प्रबलमपेक्ष्य दुर्बले जने भारापगमकाले

भारती

प्रश्न - वह नित्य अद्वैतरूप ज्ञान श्रुतिजन्य कैसे होगा, अर्थात् नित्यत्व और जन्यत्व परस्पर विरुद्ध होने से नित्य अद्वैतात्मकज्ञान की उत्पत्ति कैसे होगी ।

समाधान- यह आपका कथन सत्य (उचित)ही होता, यदि उस नित्य अद्वैतात्मकज्ञान की श्रुतिजन्यता भी पारमार्थिक होती । किन्तु यह श्रुतिजन्यता तो अविद्याकल्पित है अतः अद्वैतात्मक ज्ञान के पारमार्थिक नित्यत्व के साथ उस (अविद्याकल्पितजन्यता) का विरोध ही नहीं है । अतएव (ब्रह्म विषयक ज्ञान के श्रुतिजन्य होने से) श्रुति के द्वारा ब्रह्म अद्वैत रूप से सिद्ध किया जाता है ।

यत्तु तत्र यद्येकता भेदाभावो यदि वैकत्वसंख्या यदि वा ज्ञानात्मकत्वं यदि वाऽन्य एवैकत्वनामा कश्चिदभेदापरपर्यायो धर्मस्तद्वत्त्वं बोध्यते

शारदा

श्रुतिजन्यतोपपत्तेरेव । इदं = ब्रह्म । एकम् = अद्वैतम् । साध्यते = प्रतिपाद्यते । यत्तु तद्वत्त्वं बोध्यते इत्यन्वयः, तत्पदार्थं भेदाभावादिकमाह तत्रेति । ज्ञानात्मेति । **नचानन्दाद्यात्मकत्वेन विनिगमनाविरहः ; कल्पितानन्दत्वज्ञानत्वादिधर्मैरानन्दज्ञानादेर्भेदेऽपि वस्तुत एकत्वात्, क्लृप्तधर्मानतिरेके एव तात्पर्येण ज्ञानत्वमानन्दत्वं सत्त्वं चैकत्वमित्यत्राप्यदोषाच्च ।** अभेदापरेति । **अभेदस्तादात्म्यं तद्व्यक्तित्वपदाभिधेयम् । तच्च = तद्वत्त्वं च ।** अद्वैतव्याघातकत्वादिति । **ननु भावभूतधर्माणामधिकरणातिरिक्तत्वेनैक्यस्य ब्रह्मत्वासम्भवेऽपि भेदाभावत्वपक्षेऽदोषः अभावस्याधिकरणस्वरूपत्वेनाद्वैताव्याघातात्, नच भेदस्यैक्याभावत्वेनान्योन्याश्रयः, भेदत्वस्याखण्डोपाधिताया उक्तत्वात्, एवं ज्ञानत्वादिकल्पितजातेः स्वोपहितचिन्निष्ठत्वात् तत्तादात्म्यापन्नशुद्धचित्यप्येकत्वव्यवहारोपपत्तिरिति तृतीयपक्षेऽप्यदोष एवेति चेत् सत्यम्, अतएव ''अभावानतिरेकस्वीकारादेव चाद्वैताव्याघात इति'' पुरोदीरितम्, तथापि परमार्थतो विचारासहत्वादेव तत्पक्षेऽप्यद्वैतस्याद्वैतासहत्वमधुनोच्यते, नहि भेदाभावत्वोपलिक्षततत्वमपि शुद्धचिति वक्तुं शक्यं नवा ज्ञानत्वोपहिततादात्म्योपलक्षिततत्वमपि, तस्यापि धर्मत्वात्, तस्याप्युपलक्षण-**

राजहंसः

व्यञ्जनीयसुखे एवाधिक्यानुभवस्य वक्तव्यत्वाच्च, तत्र विजातीयदुःखध्वंसे प्रतियोगिगतो विशेषो न त्वास्वादार्हो ध्वंसगतोऽपीति दुःखाभावस्य सुखव्यञ्जकतासिद्धौ 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजाना' दिति श्रुतिसिद्धस्य स्वरूपसुखस्य मुक्तौ दुर्निवारत्वात्, नित्यैकब्रह्मात्मकतयैव च तस्य नित्यत्वैकत्वे । उत्पत्तिविनाशप्रत्ययस्य तारतम्यानुभवस्य चौपाधिकतयाप्युपपत्तेर्लाघवबलस्यानवहेलनीयत्वाच्च । तदेवं वस्तुगत्या दुःखाभावस्य सुखव्यञ्जकतयैव मुख्यपुरुषार्थताया उपेयत्वेऽपि रुचिवैचित्र्येण दुःखाभावमात्रस्य मुख्यतया कदाचित्केनचिदिष्यमाणत्वसम्भवेन तस्यापि मुख्यपुरुषार्थतोपगमेऽपि न काचित्क्षतिः, इच्छाया वस्तुगत्यननुरोधित्वात् ।

भारती

(यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि चिद्विशिष्ट वृत्ति को ज्ञान मानकर उसे ब्रह्म रूप कहने पर जन्यता नहीं बन सकती, किन्तु वृत्यारूढ चैतन्य को ज्ञान मानने पर तो वृत्तिगत जन्यत्व प्रयुक्त जन्यता ब्रह्म में भी मानी जा सकती है । उसके औपचारिक होने से नित्यत्व के साथ भी जन्यता उपपन्न हो सकती है। तथापि सर्वाभिन्नं ब्रह्म (सभी ब्रह्म रूप है) इस मूलकार सिद्धान्त में सभी पदार्थों का स्वरूप परमार्थ ब्रह्म ही माना गया है। इसलिए घटादि में दृश्यमान जन्यता भी नित्य ब्रह्म के अभेद की विरोधी हो एतदर्थ उस जन्यता को अविद्याकल्पित मानकर ही विरोध का परिहार किया गया है।)

''एकमेवाद्वितीयम्'' इस श्रुति के द्वारा सिद्ध ब्रह्म में एकता यदि भेदाभाव रूप है अथवा यदि एकत्व संख्या रूप है या ज्ञानात्मक है या इनसे अन्य अभेदापरपर्याय एकत्व नाम का कोई धर्म है । जिसको लेकर ब्रह्म में तद्वत्ता (तादृशधर्मवत्ता) का बोध होता है।

तच्चाद्वैतव्याघातकत्वान्न सेद्धुं शक्नोति, तदा तदपि निष्पीडनमसहमानं तज्ज्ञानश्रुतिजन्यत्वेन सहैव निवर्तताम् , यत्तु तादृशस्याद्वैतस्य धर्मस्य

शारदा

त्वेऽनवस्थानात्, स्वरूपमात्रत्वे स्वं न स्वीयमित्यनुभवविरोधात्, अतएव तदवृत्तिधर्मानाधारत्वोपलक्षितस्वरूपस्यैकत्वमप्ययुक्तम्, नवा रूपभेदेनाधाराधेयभाव: प्रामाणिक इत्युक्तमित्यभेदे आधाराधेयभावानुपपत्तिरपि । निष्पीडनं = युक्तिं । तज्ज्ञानश्रुतिजन्यत्वेन=अद्वैतज्ञाननिष्ठेन श्रुतिजन्यत्वेन । यथा जन्यताया अपारमार्थिकत्वमुक्तं तथा धर्मान्तरस्यापि द्वैतस्याद्वैतस्य वा ब्रह्मातिरिक्तस्य तथात्वमेव, नह्येतावता सिद्धसाधनमर्थान्तरं वा परैर्वक्तुंशक्यम् , तैर्ब्रह्मातिरिक्तस्य परमार्थताङ्गीकारादिति भाव:। निवर्तताम् = अनवच्छिन्नवृत्तिकात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमालम्बताम् । तादृशात्यन्ताभावस्यापि

राजहंस:

नन्वन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वरूपमनन्यशेषत्वं सुखे प्रसिद्धम् , तस्यात्मरूपत्वे तु सिद्धतया तत्र सम्भवति सिद्धे इच्छानुदयात्; मैवम् आत्मरूपताज्ञानात्पूर्वं सुखी स्यामितीच्छायां बाधकाभावात्, सुखेऽसिद्धत्वग्रहात् । न हि वस्तुगत्या सिद्धेऽपि धनादौ सिद्धत्वाभावग्रहदशायां सिद्धत्वाग्रहदशायां वा नेच्छा दृष्टचरी, तादृशज्ञानानन्तरं तु यदीच्छास्ति तर्हि सुखं मेऽनावृतमस्त्वित्याकारैव, आत्मन: सद्रूपेणानावृतत्वेऽपि सुखरूपेणावरणात् । उक्तं चैतट्टीकायामपि, अतएव-सुखे इच्छाविषयत्वं साध्यतयाऽनुवर्तमानतया च, साध्यता पुनर्व्यञ्जननीयता वोत्पादनीयता वा, आत्मनि तु सिद्धे मा न भूवं भूयासमिति नोक्तद्विविधसाधनीयतयेच्छा, अपि त्वनुवर्तमानतयैवेति वैजात्यात्कथं सुखात्मनो रैक्यं श्रुत्योक्तमप्युररीकर्तव्यम्, एवं च सुखलक्षणयोगादात्मन: सुखरूपत्वमिति मनोराज्यमात्रम्, उक्तरीत्या दु:खाभावेऽपि कस्यचिदन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वरूपानौपाधिकप्रेमास्पदत्वसम्भवे तु सुतरामिति-नाशङ्कनीयम्, अहमर्थसद्रूपताया अनावृतस्वभावतया पूर्वमेव लब्धपदतया च साध्यत्वेनेच्छाविषयत्वानुपपत्तावपि तदीयसुखरूपताया आवृततयैव तथात्वोपपत्तेर्धर्मिभेदकल्पनायां मानाभावत् । नहि कामपि व्यक्तिं भृशमिष्यमाणसङ्गमां पुरतो विलोकयन्नपि सैवेयमित्यप्रत्यभिजानान: पुनरपि तामन्विष्यंस्तस्या भेदं प्रयोजयति जन:, तत्कस्य हेतो:, तस्या: सैवेयमितिप्रत्यभिज्ञातव्यांशस्यावृतत्वेऽपि वस्तुगत्या ताद्रूप्यादेवेति ।

वस्तुतस्तु प्राकृतजनेच्छादिस्वरूपविमर्शेन तान्मात्रशरणैर्न कश्चित्पदार्थो व्यवस्थापनीयो दार्शनिकै:, एवं हि मा न भुवं भूयासमितीच्छादर्शनेनात्मनोऽनित्यत्वमपि मन्तव्यं स्यात्, न हि तस्मिन् नित्यत्वग्रहे द्रढिमानमानीते तादृशीच्छा कस्यचिदुदेति, तस्य सततमनुवर्तमानताया: स्वभावसिद्धत्वादिति प्रमाणानुसारेण प्राकृतजनानुभवदर्शित: पदार्थ: समर्थनीयो बाधनीयो वेति।

भारती

तो वह (तादृशधर्मवत्ता) अद्वैत का व्याघातक होने से सिद्ध नहीं किया जा सकता- ऐसा यदि कहते हैं तो वह (तादृश धर्मान्तर) भी युक्ति को सहन न करने के कारण अद्वैत ज्ञाननिष्ठ श्रुतिजन्यत्व के साथ ही निवृत्त हो जाय, अर्थात् जैसे ब्रह्मज्ञाननिष्ठ श्रुतिजन्यता अपारमार्थिक (मिथ्या) ही है उसी प्रकार धर्मान्तर भी चाहे द्वैत रूप हो या अद्वैत रूप हो ब्रह्मातिरिक्त होने पर अपारमार्थिक (मिथ्या) ही है। जो तादृश (पूर्वोक्त) अद्वैतरूप धर्म

धर्मितया प्रमितं तन्मात्रमबाधादधिगतं परमार्थतो व्यवतिष्ठताम्; नहि परमार्थशुक्ती रजततया प्रतीयते यदा, तदा बाधात्तत्र रजतत्वे व्यावर्तमाने धर्मिव्यक्तिरपि तदपराधान्निवर्तते । इति खण्डनेऽद्वैतस्वरूपनिरूपणम् ।

अथ मुमुक्षूपदेशः ।

सेयमद्वैतबुद्धिर्न तर्कशतमवतार्य प्राज्ञैरपनेया, यदाह श्रुतिः ''नैषा तर्केण मतिरापनेये'' ति; तस्मात् -

---

शारदा

ब्रह्मात्मकताया वक्तुमशक्यत्वात्का गतिरिति तु नाशङ्कनीयम् , अद्वैतश्रुतिबलादेव तस्य ब्रह्मरूपत्वात् , 'द्वैताभाववद्ब्रह्मे' त्यादिधियामाधाराधेयभावांशे भ्रमत्वेन तदुपपादनासम्भवेऽपि क्षत्यभावात् नहि ब्रह्मवादिनां तदतिरिक्तमुपपादनीयम् , नवा श्रौतबोधस्यापि ब्रह्मातिरिक्तांशे तात्त्विकप्रमात्वम् , एवञ्च प्रमाणबलान्नाशजनकसामग्र्यधिकरणक्षणस्य प्रतियोग्यधिकरणकालपूर्वत्वाभावनियमो यथा सर्वैरुच्यते तथा चरमे मनः परिणामे स्वपरिणाम्यज्ञानतत्प्रयुक्तदृश्याधिकरणकालपूर्वत्वाभावनियम एव श्रुत्यन्यथानुपपत्त्या तत्प्रामाण्यवादिभिर्वक्तव्य इति भावः। अधिकं तु ''यः साक्षात्कुरुते समाधिष्वि'' ति चरमपद्यशारदायां वक्ष्यते। अबाधादिति। **अबाधिततयेत्यर्थः** परमार्थेति। **व्यावहारिकेत्यर्थः। तदपराधात् = आरोपितबाधात्, संसृष्टरूपेण तु शुक्तेरिव ब्रह्मणोऽपि बाधो न क्षतिकर इति भावः** । इति खण्डनशारदायामद्वैतस्वरूपनिरूपणम् ।

राजहंसः

तथा चरमे मनः परिणामे इति । चरममनः परिणामोत्तरं दृश्याभावनियमस्तु नोच्यते, परममुक्तौ ध्वंसाद्यभावेन तद्घटितोत्तरत्वासम्भवात् ।

इति खण्डनेऽद्वैतस्वरूपनिरूपणशारदायां राजहंसः ।

खण्डने मुमुक्षूपदेशशारदायां राजहंसः ।

मुमुक्षुकृत्यमधिकृत्य वक्तव्यस्य बहुत्वेऽपि परनिराकरणपरायणतयाऽत्र मूले शारदायां च विस्तरो नादृत इति न्यूनता न देशनीया ।

भारती

के धर्मी (आश्रय अर्थात् अधिष्ठान) रूप से प्रमित होता है वह केवल धर्मी ही अबाधिततया गृहीत होने से पारमार्थिक मान लिया जाता है। क्योंकि जैसे जब पारमार्थिक (व्यावहारिक) शुक्ति रजत रूप से भासित होती है। तो वहाँ बाध होने पर रजतत्त्व निवृत्त होने पर भी आरोपित के बाध के द्वारा धर्मी व्यक्ति शुक्ति की निवृत्ति नहीं होती है उसी प्रकार पूर्वोक्त अद्वैतरूप धर्म के बाध से धर्मी (ब्रह्म) की निवृत्ति नहीं हो सकती ।

मुमुक्षूपदेशः

यह अद्वैत बुद्धि विद्वान् के द्वारा शतशः तर्कों का अवलम्बन कर के भी खण्डनीय नहीं है । जिसे श्रुति स्वयं कहती है - ''नेषा तर्केण मतिरापेनेया'' (यह आत्म मति तर्कों

धीधना ! बाधनायाऽस्यास्तदा प्रज्ञां प्रयच्छथ ।
क्षेप्तुं चिन्तामणिं पाणिलब्धमब्धौ यदीच्छथ ।। २४।।

सेयमद्वैतदृष्टिर्दृष्टार्थापि, यदाहुः - ''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'', तस्मात् -

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना ।
महाभयकृतत्राणा द्वित्राणां यदि जायते ।। २५।।

तस्मात् -

आपाततो यदिदमद्वयवादिनीनाम-
द्वैतमाकलितमर्थतया श्रुतीनाम् ।
तत्स्वप्रकाशपरमार्थचिदेव भूत्वा
निष्पीडितादहह निर्वहते विचारात् ।। २६।।

शारदा

अपनेया एव आपनेया। अस्य धर्मस्य = अद्वैतचिन्तनस्य, द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः, बहुब्रीहौ संख्येयेति डच् । आपातत आकलितम् = पूर्वं पदपदार्थविभागज्ञतयैवोत्पन्नेन भ्रमत्वज्ञानास्कन्दितेन ज्ञानेन विषयीकृतम् । चिदेव भूत्वा = चिदात्मनैव । निष्पीडिताद्विचारात् = मननिदिध्यासनसहकृतात् श्रवणात् । निर्वहते = स्वोपादानाज्ञाननिवर्तनक्षम-भ्रमत्वज्ञानानास्कन्दितापरोक्षमनोवृत्तिविषयताश्रयः भ्रमत्वज्ञानानास्कन्दितापरोक्ष-वृत्तेरेवाज्ञाननिवर्तकत्वम्, नतु परोक्षायाः, अपरोक्षत्वेऽपि भ्रमत्वज्ञानास्कन्दिताया वा, स्वोपादाननिवृत्तिजनकत्वं च वृत्तेर्हुताशनपटसंयोगस्य स्वोपादानपटनिवृत्तिजनकत्ववदुपपद्यते एव, तस्याः स्वोपादाननिवृत्तिरूपत्वमेव वा, पूर्वोक्तोनियमोपगमे तु न कस्यचिच्चोद्यस्यावसरोऽपीति भावः। अहहेति स्वानुभवसिद्धत्वसूचनाय । ब्रह्मणोऽप्रमेयत्वेन श्रुत्यर्थत्वाभिधानं तस्याविद्यादशायामापातत एव, युक्तिपूर्वकविचारेण तु मानमेयभाव-

राजहंसः

अस्य धर्मस्याद्वैतचिन्तनस्येति । यद्यपि गीतायां निष्कामकर्मयोगस्य प्रस्तुतत्वादस्येति सर्वनाम्ना तस्यैव ग्रहणमुचितम्, तथापि तस्यापि महाभयनिवारकत्वं पापापहरणद्वाराऽद्वैतब्रह्मज्ञान-

भारती

के द्वारा खण्डनीय नहीं है) तस्मात् - हे विद्वानों इस आत्ममति के बाध (खण्डन) हेतु अपनी बुद्धि को तब ही लगाना कि यदि हस्तगत चिन्तामणि को समुद्र में फेंकना चाहते हो । अर्थात् जैसे कोई भी बुद्धिमान पुरुष अपने हस्तगत चिन्तामणि को समुद्र में फेंकना नहीं चाहता, उसी प्रकार इस आत्ममति के खण्डनार्थ भी कोई भी बुद्धिमान् अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करेगा । इस अद्वैत बुद्धि का मोक्ष रूप अदृष्टफल के समान जीवन्मुक्तिदशा में दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष (अनुभव योग्य आनन्द शोक निवृत्ति अभय शान्ति आदि) फल भी है। जैसा कि श्रुति कहती है - ''स्वल्पमप्यधर्मस्य त्रायते महतो भयात्'' (इस अद्वैत चिन्तन रूप धर्म का स्वल्प अंश भी महान् भय, शोक, मोह आदि दुःखों से रक्षा करता है ।

राजहंसः

जननेनैव वक्तव्यमिति भावेन प्रकृतखण्डनमूलमनुरुध्येत्थं व्याख्यातम्। 'स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति' इत्यनेन चायमर्थो दृढीक्रियते। अत्र ब्रह्मनिष्ठायाः सूक्ष्मकालसम्पादिताया अपि महाफलोक्तेः। कालस्यान्तः सूक्ष्मांश इति यावत्, नत्वत्र मरणकाले वृद्धावस्थायां वेत्यर्थः, मरणकाले तावत्स्वेच्छापूर्वकप्राणत्यागकुशलेन योगिनैव ब्रह्मनिष्ठा सम्पाद्येतेति सङ्कुचितं व्याख्यानं स्यात्, तादृशरीतिमविदुषोऽपि ब्रह्मविदुषो निर्वृतेः शास्त्रयुक्तिसिद्धत्वात्, ज्ञानेनैव ह्यज्ञाननिवृत्तिद्वारा तन्मूलो बन्धे विधूननीयः। वृद्धावस्थायाञ्चेषत्कालं ब्राह्मीमवस्थामवाप्तवतोऽनन्तरं प्रारब्धविशेषवशाद्व्युत्थितस्यापि निर्वाणभागिताया अज्ञाननिवृत्तिबलादिष्टत्वात्। अतएव यदृच्छंया ब्रह्मानुसन्धानसमये मृत्युप्रसक्त्यभिप्रायेण जितप्राणयोगिभिन्नेऽपि योजना न युज्यते, तथा सति मरणसमयेऽपरोक्षीकृतब्रह्मतत्त्वस्यापि ब्रह्मानुसन्धाने आवश्यकत्वप्रतीतिप्रसङ्गात्, न च घोररोगाद्युपद्रववशाच्चरमसमये स्वरूपस्मृतिवैकल्ये कैवल्यं विलुप्यते। तस्माद् यस्मिन् कस्मिन्नपि वयसि कालसूक्ष्मकलायामपि ब्राह्मी निष्ठा तत्कालविदेहकालयोः परमानन्दरूपकैवल्यप्रदेत्येव स्वारसिकोऽर्थः, स्तुतिप्रकर्षद्योतकत्वात्। तथा च परमार्थसारे–

तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन् देहम्।
ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः॥ इति॥
यदा गुरुवरः सम्यक् कथयेत्तत्र संशयः।
मुक्तस्तेनैव कालेन यन्त्रस्तिष्ठति केवलम्॥
किं पुनश्चैकतानस्तु परे ब्रह्मणि यः सुधीः।
क्षणमात्रस्थितो योगी स मुक्तो मोचयेत्प्रजाः॥
इति च शिवसूत्रविमर्शिन्युदाहृतकुलरत्नमालिकायाम्।
'यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां तु विस्मरेत्। ॥

भारती

तस्मात् - परमेश्वर के अनुग्रह (कृपा) से ही उक्त महाभयों से त्राण करने वाली यह अद्वैत वासना यदि होती है तो दो या तीन मनुष्यों के ही हृदय में प्रादुर्भूत होती है।

तस्मात् - अद्वैत प्रतिपादक श्रुति वाक्यों के अर्थ रूप से आपातत आकलित अर्थात् पहले पद पदार्थ विभागज्ञतया भ्रमत्व ज्ञान से आक्रान्त ज्ञान के विषय रूप से ही उपस्थित जो यह अद्वैत तत्त्व है वही (अद्वैततत्त्व) पश्चात् मनननिदिध्यासन सहकृत वेदान्त श्रवण के द्वारा स्वयं प्रकाश परमार्थ चैतन्यरूप होकर प्रादुर्भूत हो जाता है। यहाँ "अहह" इस आनन्द के अभिनय के सूचक शब्द का प्रयोग - स्वयंप्रकाशपरमार्थ चिदद्वैततत्त्व में स्वानुभवसिद्धत्व सूचित करने के लिए किया गया है। अथवा इस श्लोक का यह भी अर्थ हो सकता है कि - ब्रह्म के अप्रमेय होने से उसे श्रुतिप्रतिपादित अर्थ कहना अविद्यादशा में ही आपातत हो सकता है। युक्तिपूर्वक सूक्ष्म विचार करने से पर तो उस ब्रह्म (अद्वैत) में मानमेयभाव व्यवहार के प्रामाणिक होने से वह अद्वैततत्त्व स्वयं प्रकाश होकर ही सिद्ध होता है।

तदिदमेताभिरात्ममतसिद्धसद्युक्तिलक्षणोपपन्नाभिर्युक्ति-भिरुपनीयमानमद्वैतमविद्याविलासलालसोऽपि श्रद्दधातु तावद्भवान्, तदनु चानयैवोपनिषदर्थश्रद्धयाऽध्यात्मं जिज्ञासमानः परमार्थतत्त्वं

शारदा

व्यवहारस्याप्रामाणिकत्वात् स्वप्रकाशतयैव तत्सिद्धिरित्यपि स्यादर्थः । आत्मेति । **तार्किकेत्यर्थः । अध्यात्मं परमार्थतत्त्वं = प्रत्यगात्मानं । जिज्ञासमानः = मीमांसमानः । वृत्तिव्यावृत्तचेताः = अनात्माकारवृत्तिविधुरीकृतचेताः यदाहुः - अनात्मादर्शनेनैव परात्मानमु-**

राजहंसः

तर्हि स्मराम्यहं भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥'

इति च भारद्वाजसंहितायाम् । ज्ञानिनोऽपि च भक्तेषु गणना गुरुणा त्रिजगन्निर्निमित्तमित्रेण गीतास्वादृतैव ।

किञ्च स्वल्पमप्यस्येति वाक्ये साक्षादपि सर्वनाम्नाऽद्वैतानुसन्धानपरामर्शसंभवः, पूर्वं हि 'एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धि योगें त्विमां शृणु' इति प्रकृतम् , तत्र ज्ञेयतत्त्वं चिद्रूपं साङ्ख्यबुद्धेर्गोचरः, तादृशबुद्धिफलीभूतं सर्वास्ववस्थासु समतयाऽवस्थानं तु योगः, नहि चिन्मात्रतत्तवसाक्षात्कृत्या द्वैतमतिमनपास्य कस्यापि समतयाऽवस्थानं सम्पत्तुं प्रभवति, साधनावस्थायां हि पदे पदे यतमानस्यापि वैषम्योद्भवो दुर्निवारः । समता तु चेतसोऽक्षोभरूपैका, तद्व्यङ्ग्या त्वद्वैतभावात्मिका द्वितीया, 'निर्दोषं हि समं ब्रह्मे'तिगीतायामेवोक्तेः, घटत्वात्मना घटानामिव ब्रह्मरूपमहासत्तात्मना सर्वेषां पदार्थानां समीभावात् । तथा च प्रागुक्तात्मतत्त्वज्ञानाफलीभूतस्य चित्ताक्षोभव्यङ्ग्यस्याद्वैतब्रह्मभावेनावस्थानस्य स्वल्पकालं सम्पत्तिरपि महाभयविध्वंसनीत्यर्थेऽद्वैतदृष्टे-र्दृष्टार्थतया क्रोडीकारः स्पष्ट इति । न चैवं 'ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दने'ति प्रश्नानुपपत्तिः, कर्मनिष्ठायाः पृथगनभिधानादिति वाच्यम्, चित्ताक्षोभव्यङ्ग्याद्वैतब्रह्मभावेना-वस्थितिस्तावत्पुरुषार्थो नतु व्यवहारः, चित्ताक्षोभश्च व्यवहारकालापेक्षया व्यवहाराभावकाले सुसम्पाद इति किं व्यवहारमार्गप्रवेशेनेति प्रश्नसामञ्जस्यात् । व्यवहारमार्गेऽपि तादृशावस्थेत्येका निष्ठा जनकादीनाम् , व्यवहारत्यागमार्गे तादृशावस्थितिस्तु द्वितीया निष्ठा शुकसनत्कुमारप्रभृतीनामिति भावेन च लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठेत्यादिनोत्तरस्य सौष्ठवात् । तत्र देवकार्यानुरोधेन त्वयाऽर्जुनेन व्यवहारमार्गमाश्रित्यैव साऽवस्था सम्पाद्येति मत्वा 'तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचरे'ति वक्ष्यति श्रीनिवासः । 'श्रुतिविप्रतिपन्ना ते' इत्यनेन चोक्तावस्थाफलीभावःस्पष्टीकृत ।

अयं व्याख्यानप्रकारश्च भाष्यकारादिर्भिरनादृतोऽपि योगवाशिष्ठोपदिष्टप्रणालीमूलो न त्याज्यो विदुषा, उपपन्नत्वात् ।

पूर्वोक्तनियमोपगमे त्विति । अनया वचोव्यक्त्या तादृशनियमोपगमेऽनादरो व्यज्यते, तद्बीजं तु चरमपद्यशारदायां दर्शितम् ।

भारती

अतः तार्किक मत सिद्ध सद् युक्तियों के लक्षणों से पुष्ट मेरी इन पूर्वोक्त युक्तियों के द्वारा उपस्थित अद्वैततत्त्व में अविद्या के विलास (कल्पितकार्य) द्वैतवाद में अभिलाषा

क्रमाद्वृत्तिव्यावृत्तचेताः स्वप्रकाशसाक्षिकं माक्षिकरसातिशायि स्वात्मनैव साक्षात्करिष्यति । यथा च परिहृतचापलमात्मतत्त्वामृत-सरसि निमज्य रज्यति निरायासमेव मानसं तथाहमकथयं नैषधच-रितस्य परमपुरुषस्तुतौ सर्गे इत्येषा दिक् । इति खण्डने मुमुक्षूपदेशः ।

शारदा

पास्महे'' । स्वप्रकाशसाक्षिकमिति। **सविषयिकाया एव वृत्तेः साक्षिवेद्यत्वात्तदवच्छेदकतया तद्विषयस्यापि साक्षिवेद्यत्वमिति भावः। स्वप्रकाशचिदतिरिक्ताग्राह्यमिति वार्थः। माक्षिकरसातिशायि = अपकर्षानाश्रयानन्दात्मकमद्वैतं । स्वात्मनैव = स्वस्थेनैव चेतसा, अनात्माकारवृत्तिशून्यचेतसेति यावत् । लौकिकानन्दसाक्षात्कारा-पेक्षणीयबाह्यविषयमनपेक्ष्यैवेति वार्थः । साक्षात्कारस्त्वावरणविषयतासामान्यशून्यत्वम्। निमज्य रज्यति = आत्माकारातिरिक्तवृत्तिशून्यत्वाधीनालौकिकानन्दा-कारनिर्विकल्पकवृत्त्याश्रयः । तादृशवृत्तिदशायामप्यनात्माकारवृत्तिशून्यत्वलाभाय** निरायासमेवेति । सर्गे इति । **जना हि केचिच्छुष्कचेतसः, अपरे पुनर्द्रुतत्वाख्यधर्मविशेषा-लिङ्गितचेतसः, तेष्वपि ये प्राग्भवसम्पादितपुण्यपरिपाकेनाचारुतरविषयेषु चेतःसञ्चारासहिष्णवो ''भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दर''मिति सुमतिचुम्बिता जगदाराध्यदेवचरणामलकमलालिमौलयो ''नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा । पुलकैर्निचितं वपुःकदा तव नामग्रहणे भविष्यती''ति वासनैकनिकेतनचेतनाः, ते भगवच्चारुचरितचिन्तनैकतानतायामेव लोकोत्तरचमत्कारकारिविगलितवेद्यान्तर-संस्पर्शपरिपूर्णानन्दानुभूतिभाजः । शुष्कचेतसस्तु कथमपि भगवदनुग्रहेण द्रुतचेतस्त्वमासाद्य सृत्यन्तरेण वाऽनात्मप्रविलापनप्रभञ्जनायमनादिनेति भावः** दिगर्थस्तु **ज्ञातस्यैव निवृत्त्यर्थं**

राजहंसः

सृत्यन्तरेणेति । परिपूर्णानन्दास्वादेप्सुना विक्षेपावरणयोरवश्यं निवार्यतया शुष्कयोगमात्रस्य च साक्षादभीष्टानभ्युपायतयाऽऽपातज्ञानवतो योगमार्गेण विक्षेपनिवृत्तिपुरस्सरमावरणनिवृत्तिः, विचारधारावैशारद्यं गतस्य तु पूर्वमेवावरणनिवृत्त्याऽसति प्रतिबन्धकविशेषेऽनाया-ससाध्यसत्त्विकोपायैरेवसमाधिलाभेन विक्षेपापाकृतिरिति योगविचारयोः प्राधन्याप्राधान्ये आदाय

भारती

वाले आप (तार्किक) भी प्रथम श्रद्धा करें। तत्पश्चात् इसी उपनिषद् प्रतिपाद्य अर्थ (अद्वैत) विषयक श्रद्धा से आध्यात्मिक परमार्थतत्त्व अर्थात् प्रत्यगात्मा का विचार करते हुए आप क्रम से अनात्माकारवृत्तियों से रहित चित्त वाले होकर स्वयं ही स्वस्थ होकर (अनात्माकरवृत्तिशून्य चित्त के द्वारा) उस स्वप्रकाश रूप से ही सिद्ध मधु से भी अधिक मिष्ट अर्थात् निरतिशय आनन्दरूप अद्वैततत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे । एवं जिस प्रकार अर्थात् जिन साधनों से चपलता (चञ्चलता) शून्य आपका चित्त बिना परिश्रम के ही उस आत्मतत्त्व रूप अमृत सरोवर में निमग्न होकर परमानन्द प्राप्त करेगा, भक्तिज्ञान वैराग्य आदि उन साधनों का मैंने नैषध चरित के परम पुरुष स्तुति नामक सर्ग में प्रतिपादन कर दिया है ।

शारदा

लोकस्य प्रवृत्तिः अतएव शशश्रृङ्गगततमोनाशोद्देश्यिका न कस्यापि प्रवृत्तिः, तस्यालीकस्य ज्ञानाभावात्; तथा घटाज्ञानस्य ज्ञातत्वे एव तन्निवृत्त्यर्थं प्रवृत्तिरुपपद्येतेति तज्ज्ञानस्य प्रमात्मकस्य विरुद्धत्वेनासम्भवात् तद्विलक्षणत्वमेव वाच्यमिति तदेव नित्यं ज्ञानं सुखात्मकं साक्षिपदास्पदं सर्वप्रपञ्चभासकतया मोक्षमाणैरुपास्यमित्यादिराकरेष्ववगन्तव्य इति ।

परमात्मबुद्धिमखिले सखले सजडे तनोषि जडमानस नो ।
जडदर्शनेन जडता जनिता भवितानुतापवितर्विकटा ।।

इति खण्डनशारदायां मुमुक्षूपदेशः ।

राजहंसः

मार्गद्वयविभागो मान्यनिबन्धेषु, नतु सर्वथैव परस्परविनाभूततामभिप्रेत्य, अतएव 'समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत् ।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।। (कठ०)
तं पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ।। (म.भा.शान्ति.)

इत्यादिका श्रुतिस्मृतिवितति: पुरुषविशेषमनादायैवावश्यकतां समाधेर्ध्वनयति, विक्षेपदशायामुक्तानन्दास्वादानुपपत्तेः, अतएव तादृशानन्दसाक्षात्कारपर्यवसायिज्ञानफलकवेदान्तविचारे साधनचतुष्टयसम्पत्तिरुपयुज्यते, तत्तत्पङ्क्त्यर्थ प्रतिपत्त्यनुकूलावधानमात्रस्य शास्त्रान्तरसाधारण्यात्, प्रत्युत नव्यन्याय एव, तस्याधिकमपेक्षणीयत्वात्, कामुकादिप्रकृतीनामपि सूक्ष्मधीसद्भावे वेदान्तविचारे नैपुणीदर्शनेन वैराग्यादेः सर्वथैवानपेक्षणीयत्वप्रसङ्गाच्च । तीव्रशक्तिपातोदाहरणे तु सहजवस्थाऽपरपर्यायात्मविश्रान्तिरनायासेनैव सम्पद्यत इत्येव विशेषः, नत्वेतावतोक्तानन्दास्वादे समाधेर्हेतुताऽवहीयते ।

आत्मप्रबोधो भगवन् सर्वाशातृणपावकः ।
प्रोक्तः समाधिशब्देन नतु तूष्णीमवस्थितिः ।।
बद्धपद्मासनस्यापि कृतब्रह्माञ्जलेरपि ।
अविश्रान्तस्वभावस्य कः समाधिः कथं च वा ।। (योगवासिष्ठे)
प्रसह्य चञ्चलीत्येव योगिनामपि यन्मनः ।
यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत् ।।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः । (स्वच्छन्दतंत्रे)

इत्यादिकं वचनं तु सहजावस्थाया उपादेयतमत्वमवद्योतयति, न तु विजातीयानन्दानुभवेऽपेक्षां समाधेरवधीरयति, प्रत्युत सहजावस्थायामप्यधिकारिवैचित्र्येण समाधेः कारणताऽभिप्रायेण

विगतविषयतृष्णावासने स्वान्तरङ्गे
विमलमुकुरतुल्ये निश्चले स्वात्मनैव ।
तव जननि कलां तां योगिनः प्रेक्षमाणाः

राजहंसः

परमसुखपदस्थास्ते हि धन्या जयन्ति ॥

इति चिरतरकालं त्वत्स्वरूपं विमृश्या-
न्तरभुविदृढभावाः स्युर्निसर्गस्वभावाः ।
तदनु बहिरशेषं त्वत्स्वरूपं विमृशन्त-
स्त्वयि परमविलासास्ते हि योगीन्द्रपूज्याः ॥ (त्रिपुरारहस्ये)

इत्यादिको महात्मनां वचोनिवहः । एतेन–'योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे' इति योगशिखोपनिषदुक्तमपि व्याख्यातम्, विक्षेपनिवर्तकतावच्छेदकावरणनिवर्तकतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नसमवधानाधीनो निस्सीमसुखस्यन्दोऽपुनर्भवश्चेति हि तत्तात्पर्यमुचितं चकास्ति। यस्तु तादृशसुखस्यन्दनानिपुणमपि बोधं ब्रह्मसाक्षात्कारमुररीकाराति, तेन ब्रह्मणस्तादृशसुखात्मकताऽपि त्यक्तव्यैवेत्यलमतिवेलं वचोविलासेन ।

तत्राद्ये योगमार्गे प्राणनिरोधयत्नप्राधान्यमिति प्राणनिरोधयत्नपूर्वको मनोनिरोधः, द्वितीये विचारमार्गे तु मनोनिरोधयत्नप्राधान्यमिति मनोनिरोधयत्नपूर्वकः प्राणनिरोध इति विशेषः । प्रथममार्गेऽपि तु मनसि प्राणानुसरणकारितासम्पत्तयेऽवधानलेशोऽपेक्ष्यत एवेत्यादिकं स्वयनुभूय विवेक्तव्यम् । प्रभञ्जनायमनं = प्राणायामः । **जडदर्शनेन जडता जनितेति** । पूर्वपूर्वजडाध्यासस्योत्तरोत्तरजडाध्यासहेतुत्वादिति भावः

'किं सन्त्याज्यं नित्यं? द्वैतस्मरणं मनश्च तज्जनकम् ।
मननैः समनो द्वैतस्मरणं मरणं मयाऽवगतम् ॥ १० ॥
मूलाधारात्समुत्थाय बिले[1] ब्राह्मे विलासिनी ।
विद्युदन्तस्तमोराशिं धुनोतु नशिशवाङ्गना ॥ ११ ॥
द्वादशान्ते मनः प्राणान् सन्निरुध्यातियत्नतः ।
पूर्णाहम्भावपूर्णानामन्तः संवित्सुखायताम् ॥ १२ ॥
अहङ्कारपिशाचेन दृप्यते यत्र नो मनाक् ।
अवच्छेदविदुरा सा विश्वात्मा वितायताम् ॥ १३ ॥
रोध्यमेव मनो यत्र प्राणो वा नैव लभ्यते ।
लभ्यं किं रोधनोपायैस्तत्पदं समुपास्यताम् ॥ १४ ॥
मूलात्सङ्कल्पमालूय शून्यता यत्र दृश्यते ।
शून्येऽपि पूर्णता यत्र नित्यं तन्मह्यतां महः ॥ १५ ॥
यत्नसाध्यप्रसादत्वान्नेश्वरं बहु मन्महे ।
तत्प्रसादमवाप्तांस्तु मनसा शिरसाऽपि च ॥ १६ ॥
रागद्वेषावपाकृत्य योगेनैकात्म्यदर्शिनाम् ।
व्युत्थाने सावधानानां पादपांसुः पुनातु माम् ॥ १७ ॥
आर्जवं दर्पराहित्यं गौरवं गौरवे रवे ।
त्रयं यस्यास्त्यसौ शक्यो न स्तोतुं कविना विना ॥ १८ ॥

१. ब्रह्मरन्ध्रे

राजहंसः

दृष्ट्वा गुणगणान् क्वापि दोषान् परश्शतानपि ।
नो जहात्येव यस्साम्यं प्रत्यक्षं तं शिवं श्रये ॥ १९॥
निष्किञ्चनत्वं च विवासनत्वं विश्वात्मभावं च समाधिसिद्धम् ।
अप्राप्य सम्पत्तिमिमाममोघां परोपकारः परवञ्चनैव ॥ २०॥
एको योगी न चान्योऽस्ति स एव ज्ञानवानपि ।
कविरेकः स एवेश इति ज्ञाते क्व वासना ॥ २१॥
विश्वात्मताऽवबोधेऽपि किञ्चिदिच्छति यश्शठः ।
पापैराक्रम्य कृत्तोऽसौ दयनीयो महात्मनाम् ॥ २२॥
आलम्बनमवाप्यापि कामपि चरणद्वयीम् ।
लौकिकालम्बनापेक्षी गणे कस्मिन्निपात्यताम् ॥ २३॥
नैव मान्यः स सर्वस्य गुरुत्वं योऽभिमन्यते ।
सर्वशिष्यत्वमाप्तं तु मानयामो वयं मुदा ॥ २४॥
प्रतिष्ठावासनालिप्तं गणयामो न साधुषु ।
तदन्यं तु नमस्यामो बहिरन्तश्च सर्वदा ॥ २५॥
अथवा किमवच्छेदैर्ब्रह्मभूयं गतोऽखिलः ।
इति मत्वा परं साम्यमाश्रये हरिणेरितम्[१] ॥ २६॥
मातस्त्वदीयपदपद्मपरागरागो-
नो रागलेशमपि मे हृदये शिनष्टु ।
त्वत्पाणिपङ्कजगतं कमनीयपाशं
रागं स्वभक्तहृदयापहृतं हि मन्ये ॥ २७॥
इच्छोच्छेदोद्धुरं यद्धुतमननदशं द्वैतदावानलेऽपि
पूर्णोल्लासान् प्रयच्छज्जितमदनजवैर्योगिभिर्भावनीयम् ।
विश्वोत्तीर्णस्य शुष्म[२]द्युम[३]णिशशिदृशो भूरिभर्गस्य वित्त–
मास्तां नित्योदितुं तन्मम मसृणमतावम्बिकापादयुग्मम् ॥ २८॥
शोभा न द्वैत[४] शून्ये परमसुखतया श्रूयमाणेऽपि देवे,
विद्यामाद्यां विना यां सकलसुरनुतां सापि येषां प्रसादे ।
इज्यासाम्राज्यभाजोऽगणितगुणगणंञ्शम्भुभावाद्धुतांस्तान्
श्रीविद्यानन्दनाथान् द्रविडयतिवरान् मन्महे नादरैः कैः ॥ २९॥
इति खण्डने मुमुक्षूपदेशशारदायां राजहंसः ।

१. इहैवतैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः इत्यादिना गीतासु
२. अग्निः
३. सूर्याः
४. भावुकताप्रयुक्तमुक्तिवैचित्र्यमिदं विद्याविशेषे श्रद्धातिशयं व्यनक्ति, न तु वस्तुतोऽपि द्वैते रुचिरिति भ्रमितव्यम् ।

अथ खण्डनयुक्तीनां कथात्रयेऽप्युपयोगः।

अभीष्टसिद्धावपि खण्डनाना-
मखण्डि राज्ञामिव नैवमाज्ञा ।
तत्तानि कस्मान्न यथाभिलाषं
सैद्धान्तिकेऽप्यध्वनि योजयध्वम् ।।२७।।

तदेतादृशीषु सर्वास्वपि दर्शनस्थितिषु काममास्माकीनाः खण्डनयुक्तयः प्रगल्भन्ते यासामीश्वरपरवशां विश्वव्यवस्थामनास्थाय निरसनमशक्यं,

शारदा

विजिगीषोः स्वानभीष्टमतमात्रबाधौपयिकत्वं खण्डनयुक्तीनामाह-अभीष्टसिद्धावपीति। **एवमभीष्टस्य = तार्किकादिमतबाधस्य सिद्ध्युद्देशेनास्माभिरभ्यूहितानामपि खण्डनानामित्यर्थः। यद्वा खण्डनैः परमतबाधद्वारा स्वाभीष्टस्याद्वैतस्य एवं = उक्तरीत्या सिद्धावपि तेषामाज्ञा = सर्वदर्शनाभिमतपदार्थबाधकता राज्ञामिवाज्ञा न निराकृता । तत् = तस्मात् । सैद्धान्तिकोऽप्यध्वनि = अद्वैत्यभिमतप्रक्रियायामपि । ब्रह्मणस्तु साक्षित्वादेव बाधासम्भव इत्युक्तमेवेति भावः । एतादृशीषु = प्रमाणाद्युपाश्रयासु । स्थितिषु = प्रक्रियासु । आस्माकीनाः = अस्माभिरभ्यूहिताः । प्रगल्भन्ते = बाधकतावच्छेदकरूपवत्यः। बाधकत्वञ्चाभावज्ञापकत्वं तदैकदेशेऽभावे सप्तम्यर्थप्रतियोगित्वस्यान्वयः। ईश्वरपरवशां = ब्रह्मगतेश्वरत्वप्रयुक्तां ईश्वरत्वञ्च मायासम्बन्ध इति विश्वस्थितेर्मायिकत्वमनुभ्यपगम्य खण्डनयुक्तीनां निरासासम्भवः तस्य मायिकत्वोपगमे तु युक्तीनामपि विश्वान्तःपातित्वान्मायिकत्वावश्यम्भावादधिष्ठानप्रमानिवर्त्यत्वरूपनिरासस्य**

भारती

खण्डनयुक्तियों का कथा त्रय में उपयोग

तार्किक मत निरासार्थ उक्त इन खण्डनउक्तियों की, अथवा उक्त प्रकार से तार्किक मत निरास द्वारा स्वाभीष्ट अद्वैत के सिद्ध होने पर भी इन खण्डनउक्तियों की आज्ञा अर्थात् समस्त दर्शनाभिमत पदार्थों की बाधकता राजाओं की आज्ञा के समान अखण्डित (अनिराकृत) है। तस्मात् - उन खण्डों का अर्थात् खण्डनउक्तियों का अद्वैत के अभिमत प्रक्रिया में भी यथेच्छ प्रयोग क्यों न किया जाय, अर्थात् अवश्य करें। (तात्पर्य यह है कि अद्वैत वेदान्त सिद्ध प्रक्रिया में भी इन खण्डनयुक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। इन खण्डनयुक्तियों के द्वारा अन्य दर्शनों की प्रक्रिया के समान अद्वैत वेदान्त के प्रक्रिया जाल के खण्डित होने पर भी हमारी (अद्वैतवेदान्ती) कोई क्षति (सिद्धान्तहानि) नहीं है । क्योंकि ''शास्त्रेषु प्रक्रियाजालैरविद्यैवोपवर्ण्यते'' के अनुसार सभी प्रक्रिया जाल अविद्याविलासमात्र ही है अतः उसका खण्डन (मिथ्यात्व) हमें भी इष्ट ही है। वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त तो अद्वैत ब्रह्म ही है और उस (अद्वैतब्रह्म) के सर्वसाक्षी होने से उसका बाध कथमपि संभव नहीं है ।)

तासामेवावतारणार्थमयं प्रावादुकप्रवादोपन्यासः । तथाहि–यदि शून्यवादानिर्वचनीयपक्षयोराश्रयणं, तदा तावदमूषां निराबाधैव सार्वपथीनता । यदि तु प्रमाणादिसत्ताभ्युपगन्तृमतावलम्बनं, तदापि लक्षणखण्डनयुक्तीनां लक्षणविशेषखण्डने, लक्ष्यखण्डन-

शारदा

सम्भव इति भावः । अवतारणार्थं = निरूपणबीजप्रदर्शनार्थम् । अयं = प्राक्कृतः प्रावादुकस्य माध्यमिकादेः प्रवादः शून्यत्वादिविषयकस्तदुपन्यासः । ननु कथं शून्यत्वाद्वैतवादयोः प्रदर्शनस्य खण्डनयुक्त्यवतरणत्वन्तत्राह–तथाहीति । **शून्यवादः सर्वानिर्वचनीयवादः । अनिर्वचनीयपक्षः विज्ञानातिरिक्तानिर्वचनीयवादः । सार्वपथीनता = सर्वाभावज्ञापकत्वरूपा सर्वपथव्यापिता । उक्तवादद्वये समर्थनीयस्य कस्यचिदभावात्, ब्रह्मणः स्वतः सिद्धत्वात्, सर्वमतखण्डनेनैव शून्यत्वसिद्धिसम्भवाच्च तादृशवादिनोर्वितण्डायामुत्तमाधिकारित्वात्** । लक्षणविशेषेति । **अबाधितानधिगतार्थविषयकत्वादिरूपप्रमादिलक्षणेषु नैयायिकैः, व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नविषयत्वानिरूपकत्वादिप्रमादिलक्षणेषु च मीमांसकैः खण्डनयुक्तय उपयोक्तव्या इत्यर्थः** । खण्डने इति **तात्पर्यमिति परेणान्वयः** ।

भारती

तस्मात् इन खण्डन उक्तियों के सर्वत्र अप्रतिहतगति होने से प्रमाणाधीन समस्त दर्शन प्रक्रियाओं में हमारे द्वारा उक्त ये खण्डनयुक्तियाँ बाधकतया (अप्रामाण्य ज्ञापकतया) यथेच्छ समर्थ है। जिन खण्डनयुक्तियों का निरास ईश्वराधीन विश्वव्यवस्था को माने बिना संभव नहीं है। (तात्पर्य यह है कि - ब्रह्मगत ईश्वरत्व प्रयुक्त ही विश्वव्यवस्था है ईश्वरत्व तो माया सम्बन्ध है। अतः विश्वव्यवस्था को मायिक मानना होगा और समस्त विश्व के मायिकत्व सिद्ध होने पर विश्वान्तःपातितया खण्डनयुक्तियों के मायिक होने से अधिष्ठानप्रमानिवर्त्यत्वरूप बाध होना उन (खण्डनयुक्तियों) का सम्भव है जो हमें भी इष्ट हैं।) उन्हीं खण्डनउक्तियों के अवतरणार्थ (निरूपणबीज के प्रदर्शनार्थ) इस पूर्वप्रदर्शित माध्यमिकादि के शून्यवादादि का उपन्यास किया गया है ।

तथाहि - उसका प्रकार यह है कि यदि माध्यमिक के शून्यवाद (सर्वअनिर्वचनीयवाद) एवं वेदान्ती के अनिर्वचनीयवाद (विज्ञानातिरिक्त अनिर्वचनीयवाद) का आश्रयण (स्वीकार) करें। तब तो इन खण्डनयुक्तियों की सर्वाभाव ज्ञापकत्वरूप सर्वत्र व्यापकता निर्बाध ही है। क्योंकि उक्त वादद्वय में स्वसिद्धान्तस्वरूप से समर्थनीय तो कुछ है ही नहीं, कारण कि अद्वैत ब्रह्म स्वतः सिद्ध है। और शून्यत्व तो सर्वमतखण्डन मात्र से ही सिद्ध हो जाता है। अतएव ये दोनों वादी वितण्डाकथा के उत्तमाधिकारी हैं । यदि प्रमाणादि की सत्ता मानने वाले नैयायिक एवं मीमांसक के मत का अवलम्बन करें तो अनधिगत अबाधितार्थ विषयकत्वादिरूप प्रमाविशेषादिलक्षणों में नैयायिक को एवं व्यधिकरण-प्रकारावच्छिन्नविषयत्वानिरूपकत्वादिरूप प्रमाविशेषादिलक्षणों में भी मीमांसक को उक्त लक्षण खण्डन युक्तियों का उपयोग करना चाहिए, और इसी प्रकार-

युक्तीनां च तद्विषयप्रमाणादिविशेषखण्डने, प्रत्येकं तात्पर्यम् । न च सौत्रादिलक्षणखण्डनेऽपसिद्धान्तापत्तिः, तादृश्याः सूत्रादिव्याख्यायाः खण्ड्यमानत्वात् । न च वाच्यं– लक्षणविशेषवस्तुव्यवस्थापकप्रमाणविशेषसूत्रादिव्याख्याविशेष-खण्डनपरत्वेन लक्षणान्तरं, प्रमाणान्तरं, व्याख्यान्तरं च, वाच्यं प्रसज्येत भवतोऽपीतिः वितण्डाकथामालम्ब्य खण्डनानां वक्तव्यत्वात् तत्र च व्यावृत्त्य स्वपक्षनिर्वाहं प्रति पर्यनुयागानवकाशात् ।

शारदा

लक्ष्यखण्डनेति । **सच्चेन्न बाध्येत, असच्चेन्न प्रत्यक्षादिविषयतामालम्बेतेत्यादीनां, 'नात्यापत्त्या प्रमामात्रात्ते तेऽर्थाः स्वीक्रियोचिताः । तद्धियस्तदुरीकारे स्वाश्रयं कश्चिकित्सतु''।। इत्यादीनां च युक्तीनामित्यर्थः । अमूषां च तार्किकाद्यभिमतस्यापि बाधकत्वेऽपि वितण्डायामुद्भावनं न दोषावहम् । ज्ञाने सामान्ये च प्रत्यासत्तित्वस्य, अनुभवत्वे संशयत्वनिश्चयत्वयोश्च जातित्वस्य, स्मृतौ प्रमुष्टतत्ताकत्वस्य, सविकल्पे निर्विकल्पक-पूर्वकत्वस्य, अनुमितौ ज्ञायमानकरणकत्वस्य, उपमाने प्रमाणान्तरत्वस्य, अपसिद्धान्ते दूषणत्वस्य, प्राचीनाभिमततर्कतद्दूषणविभागस्य, स्वरूपाद्यात्मकभेदस्य, शून्यत्वपरप्रका-श्यत्वयोः परमार्थसति कारणत्वस्य, एवमाद्यन्यादृशस्य च खण्डनमत्रैवान्तर्भावनीयम् । तत्तद्विशिष्टलक्ष्यखण्डनपर्यवसायित्वात् ।** प्रमाणादीत्यादिना **स्वानभिमतलक्ष्यादिकं ग्राह्यम्।** प्रत्येकमिति । **उक्तरीत्या विशिष्य, न तु शून्यवादादाविव लक्ष्यलक्षणसामान्यस्य खण्डने इत्यर्थः । विशेषान्तत्रयस्यऽभावबोधनरूपखण्डनैकदेशेऽभावे प्रतियोगितयाऽन्वयः ।**

भारती

''सत् हो तो बाध्य न हो, असत् हो तो प्रत्यक्ष का विषय न हो'' इत्यादि एवं ''नानापत्या'' इत्यादि वक्ष्यमाण लक्ष्यखण्डनयुक्तियों का तत्तद् लक्ष्यविषयकप्रमाणादि विशेष के खण्डन में उपयोग करना चाहिए इस प्रकार प्रत्येक के खण्डन में तात्पर्य है ।

यदि कहें कि इस प्रकार लक्षणादि के खण्डन करने पर सूत्रों में उक्त लक्षणों के भी खण्डन हो जाने से अपसिद्धान्तरूप दोष हो जायेगा । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि तादृशव्याख्या अर्थात् पारमार्थिक सत्ता साधक लक्षण है इस प्रकार की सूत्रादिव्याख्या का खण्डन किया गया है। यदि कहें कि लक्षण विशेष के खण्डनपरत्वेन लक्षणान्तर वस्तु के साधक प्रमाण विशेष के खण्डनपरत्वेन प्रमाणान्तर एवं व्याख्याविशेष के खण्डनपरत्वेन व्याख्यान्तर आप (खाण्डनिक) को भी कहना होगा। तो आप (तार्किक) का यह कहना युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि वितण्डावाद का अवलम्बन कर हम लक्षणादि का खण्डन प्रस्तुत कर रहे हैं । स्वपक्षस्थापनहीन रूप वितण्डाकथा में परमतखण्डन के पश्चात् स्वपक्षस्थापन के लिए आग्रह नहीं किया जाता है। (अन्यथा (तादृश आग्रह करने पर) अपर्यनुयोज्यानुयोग नामक निग्रह से वह स्वयं आग्रहकर्त्ता ही निग्रहीत हो जायेगा।)

एवञ्च सति वादिदर्शनमाश्रित्यापि खण्डनप्रयागो निर्बाध एव, एकदेशिवत्प्रत्यवस्थातुं शक्यत्वात् । वैयाकरणानामिव च शब्दसिद्धिप्रश्नस्य परकीयतत्त्वज्ञाननिरूपणार्थं समान-पक्षस्थित्यापि पर्यनुयोगसांव्यवहारिकतायाः सम्भवात् । वस्तुस्थितिं कुर्वाणेन च विचारकेणावश्यमेता युक्तय उद्धरणीयाः अन्यथा वस्तुस्थितेरशक्यत्वादिति वादेऽपि प्रयोगः सम्भवत्येव खण्डनयुक्तीनाम् । जल्पस्त्वेका कथा न सम्भवत्येवासामयिकी,

शारदा

भवतः = खाण्डनिकस्य । तत्र चेति । **पर्यनुयोगानवकाशादित्यन्वयः । व्यावृत्त्य = खण्डनानन्तरम् । एवं च सति = वितण्डायां स्वपक्षनिर्वाहं प्रति पर्यनुयोगानवकाशे च सति । वैतण्डिकं प्रति तथा पर्यनुयोगे त्वपर्यनुयोज्यानुयोगेन परस्य निग्रह इति भावः। एकदेशिनोंऽशविशेषे प्रत्यवतिष्ठमानस्य तत्रांशे मतभेदोऽप्यस्त्येवेत्यतो मतैक्ये खण्डनोपयोगप्रतिपादनायानुरूपं दृष्टान्तमाह** – वैयाकरणानामिति । शब्देति । **अविप्रतिपन्नस्वरूपेत्यादिः । तेन निर्जरादिशब्देषु वैयाकरणानां मतैक्यविरहेऽपि न क्षतिः। निरूपणार्थं = प्रतिपत्त्यर्थम् । समानपक्षस्थित्यापि = मतैक्येऽपि । वादेऽपि खण्डनोपयोगमाह**—वस्तुस्थितिमिति । **तत्त्वनिर्णयमित्यर्थः । उद्धरणीयाः = निरसनीयतया निरासकतया चोपयोक्तव्याः । अन्यथा = विरोधिकोटिसाधकयुक्तीनां युक्त्यन्तरैरनिरासे। युक्तिभिरेतादृशीभिःकिन्नाम यन्न शक्यनिरासमिति तत्त्वबुभुत्सुशङ्कात्वनिर्वाच्यतया एव तत्त्वस्य निर्णयेन दूरीकरणीयेति भावः । वितण्डायामेकेनैव दूष्यते जल्पे त्वेकेन स्थापनं परेण च दूषणं ततः तेन स्थापनं प्रथमेन च दूषणमिति परमतदूषणदशायां द्वयोरेव वैतण्डिकत्वमित्याशयेनाह**—वितण्डाद्वयेति । **अथ जल्पस्योभयपक्षस्थापनावत्त्वेन वितण्डातो**

भारती

इस प्रकार स्वपक्षस्थापन के आग्रह से रहित होने से वादी के दर्शन का आश्रय कर के भी खण्डनयुक्तियों का प्रयोग निर्बाध ही है। क्योंकि एकदेशी के किसी अंशविशेष में विरुद्ध दूसरे एकदेशी का उस अंशविशेष में तो मतभेद है ही, इसलिए एकदेशी के समान मतैक्य में भी इन खण्डनयुक्तियों का उपयोग किया जा सकता है। अथवा जैसे वैयाकरणों का गौशब्द आदि की सिद्धि में मतैक्य होने पर भी दूसरे को तत्त्व ज्ञान कराने के लिए परस्पर में प्रश्न किया करते हैं । वैसे ही मतैक्य में भी प्रश्न तथा खण्डनयुक्तियों का उपयोग हो ही सकता है ।

तत्त्वनिर्णय करने वाले विचारकों को तो इन खण्डनयुक्तियों का निरसनीयतया एवं निरासकतया उपयोग करना ही होगा । अन्यथा अर्थात् विरोधीतत्त्व के साधक युक्तियों का खण्डनयुक्तियों के द्वारा निरास किये बिना तत्त्वनिर्णय हो ही नहीं सकता। अतः वाद कथा में भी खण्डनयुक्तियों का उपयोग होता ही है ।

वितण्डाद्वयशरीरत्वात् ; अन्यथा जल्पद्वयेनापि किमित्येका कथा न कल्प्यते; अवोचाम च जल्पविचारप्रस्तावे विस्तरेणैतददिति ।

शारदा

भेदः, अन्यथैकेन स्थापितस्य परेण दूषणे एव जल्पः समाप्तिमियात् , न तु तदनन्तरं परोऽपि स्वपक्षं स्थापयेदित्यत आह—असामयिकीति । **समयविशेषबन्धानधीनप्रवृत्तिकेत्यर्थः। वितण्डायाः परपक्षहननमात्रात्मकत्वात्तदनुकूलशक्तिज्ञापनस्य तयोपपत्तावपि स्वपक्षरक्षणपरपक्षहननोभयानुकूलशक्तिविशेषज्ञापनस्य वितण्डाद्वयात्मकजल्पाधीनत्वात् समयबन्धेन वादिनोस्तत्र प्रवृत्तेर्न परपक्षदूषणमात्रेण तत्समाप्तिरित्यर्थः । अन्यथा = कथाद्वयस्य संहत्य कथान्तरत्वोपगमे ।** कल्प्यते इति । **यथा स्वैकपक्षरक्षणपरैकपक्षहननशक्तिजिज्ञासायामेको जल्पः, तथा स्वपक्षद्वयरक्षणपरपक्षद्वयहननशक्तिजिज्ञासाया अपीष्टसाधनताज्ञानाधीनाया अशक्यवारणत्वेन तत्सत्त्वे जल्पद्वयं मिलित्वा कथान्तरतामापद्येत तच्च पक्षद्वयस्यैकेन नैरन्तर्येण स्थापने, परेण च ततो नैरन्तर्येण तद्दूषणे वा, एकस्य पक्षस्यैकेन स्थापने ततः परेण तद्दूषणे इति क्रमेण वेत्यन्यदेतददिति भावः । वादेऽपि क्रमेण स्थापनदूषणयोर्द्वाभ्यां क्रियमाणत्वाद्वितण्डात्वं तु नापादनीयं, तस्य तत्त्वनिर्णयमात्रफलकत्वेन तेनैव पार्थक्यादित्याशयेनाह**—अवोचामेति । **ईश्वराभिसन्धाविति शेष इत्याहुः । जल्पस्यातिरेकाभ्युपगमे तस्य स्थापनासहितत्वेन तत्र खण्डनयुक्तिभिः परमत-**

भारती

समय विशेषबन्ध के अनधीन प्रवृत्त जल्पकथा कोई एक पृथक् कथा ही नहीं है, दो वितण्डाओं को मिलाकर जल्पकथा का स्वरूप बना है, क्योंकि वितण्डा में एक के द्वारा परमत दूषित किया ही जाता है किन्तु जल्प में एक स्वमत का स्थापन करेगा, फिर दूसरे के द्वारा वह दूषित किया जायेगा, यह एक वितण्डा हुई। फिर द्वितीय के द्वारा स्वमत का स्थापन होगा तो प्रथम के द्वारा दूषित किया जायेगा यह दूसरी वितण्डा हुई, इस प्रकार परमत दूषण दशा में दोनों वादी ही वैतण्डिक होते हैं इसलिए वितण्डाद्वय मिल कर जल्पकथा बनती है। अतः वह पृथक् एक कथा ही नहीं है अन्यथा अर्थात् कथाद्वय मिलकर होनेवाली कथा को भी पृथक् एक कथा मानी जाय तो जल्पद्वय को मिलाकर भी एक पृथक् कथा क्यों न मानी जाय । (तात्पर्य यह है कि जल्पकथा में स्वपक्षरक्षण एवं परपक्ष हनन किया जाता है वैसे ही स्वपक्षद्वय का रक्षण और परपक्षद्वय का हनन स्वरूप दो जल्पों को मिलाकर एक चतुर्थ प्रकार की कथा भी माननी चाहिए। किन्तु यह मानना संभव नहीं है यह सब हमने ईश्वराभिसन्धि ग्रन्थ में जल्प विस्तार (विचार) के प्रस्ताव में विस्तार से निरूपण कर दिया है ।

यदि स्वपक्ष स्थापन एवं परपक्ष निराकरण रूप जल्प कथा के अनुभवसिद्ध होने से उसे स्वतन्त्र एक पृथक् कथा मान भी लें तो भी उसमें खण्डनयुक्तियों का अनुपयोग नहीं है । क्योंकि इस प्रकार की जल्प कथा का अवलम्बन कर के कथा का आरम्भ होने पर

जल्पकथयापि चाभिधाने स्वपक्षे व्यावृत्त्य सदोषस्यापि प्रमाणतयाऽभिधानं कृत्वा तद्दोषोद्भावनकारी कामपि खण्डनयुक्तिमवतार्य्य बाधनीय इति जल्पेऽपि नात्यन्तमनवकाशाः खण्डनयुक्तयः । इति खण्डनखण्डखाद्ये खण्डनयुक्तीनां कथात्रयेऽप्युपयोगः ।

शारदा

खण्डने स्वपक्षनिर्वाहार्थं पर्यनुयोगस्य सावकाशत्वेन तासामुपयोगो न सम्भवतीति प्रकारान्तरेण तमाह–जल्पकथयेति । **व्यावृत्त्य = परपक्षखण्डनानन्तरं, स्वपक्षे प्रमाणतयेत्यन्वयः । स्वपक्षविषयकप्रमितिकरणतयेत्यर्थः । अभिधानं च सदोषत्वेन जानतो वाऽजानतो वेत्यन्यदेतत्। नचैवमधर्मोत्पत्तिभयम् ; तदपेक्षया धर्मस्याधिकस्योत्पत्तेः, परप्रतारकैर्दुर्जनैः सहैवेदृशकथायाः शिष्टैरुपदिष्टत्वात्, तदुक्तं ''दुःशिक्षितकुतर्कांशलेशवाचालिताननाः। शक्याः किमन्यथा जेतुं वितण्डादोषमण्डिताः ।। गतानुगतिको लोकः कुमार्गं तत्प्रतारितः। मा गादिति च्छलादीनि प्राह कारुणिको मुनि''रिति ।**

इति खण्डनशारदायां खण्डनयुक्तीनां कथात्रयेप्युपयोगः ।

भारती

भी - जहाँ परपक्ष के खण्डन के अनन्तर स्वपक्ष में सदोष का (चाहे वह दुष्टतया ज्ञात हो या अज्ञात हो) भी प्रमाण रूप से अभिधान (कथन) कर प्रतिवादी के दोष का उद्भावन (उपस्थापन) किया जाता है वहाँ किसी भी खण्डनयुक्ति को उद्धृत (उपस्थापित) कर प्रतिवादी के पक्ष का बाध (अप्रामाण्य निश्चय) किया जा सकता है। इस प्रकार से जल्प कथा में भी इन खण्डनयुक्तियों का अत्यन्त अनकाश नहीं है।

खण्डन का अवतरण भाग समाप्त ।

ॐ

अथ लक्षणसामान्यखण्डनम्

कीदृश्यः पुनस्ताः? उच्यन्ते; तथाहि-लक्षणाधीना तावल्लक्ष्यव्यवस्थितिः लक्षणानि चानुपपन्नानि, ज्ञाताधिकरणादिलक्षणनिरूपणद्वारेण चक्रकाद्यापत्तेः। इति लक्षणसामान्यखण्डनम्।

शारदा

मूलाधारामनाधारामाधाराधेयचेतनाम्।
चेत्यचक्रपरां शान्तां तां परां समुपास्महे ।।

ताः=खण्डनयुक्तयः। लक्षणाधीना= लक्षणज्ञानजन्या। लक्ष्यव्यवस्थितिः=लक्ष्यस्य स्वेतरव्यावृत्तत्वेन प्रमितिः। लक्षणनिरूपणद्वारेणैव लक्ष्याणां परस्परव्यावृत्तेः प्रमापणीयत्वेन तन्निरासोपयोगितया द्वारासम्भवमेवाह लक्षणानीति **अलक्षिते प्रमाणोपन्यासानवकाशात् लक्षणानिरूपणे प्रमाणेनापि लक्ष्यसाधनासम्भवः, प्रमाणमपि च लक्षणाधीनव्यवस्थितिकमेव, यदाहुः-''मानाधीना मेयसिद्धिर्मानसिद्धिश्च लक्षणा'' दिति। तथाच लक्षणखण्डनयुक्तिभिः प्रपञ्चानामभावस्य, व्यवहार्यत्वादिना चासद्विलक्षणत्वस्य समर्पणे सदसद्विलक्षणत्वादिरूपमिथ्यात्वस्य तेषु पर्यवसानमिति भावः। अनुपपन्नानि=अप्रमितानि। अप्रमितत्वसाधकं बाधकमाह** ज्ञातेति। **आदिपदेन तत्तल्लक्ष्यनिष्ठव्यावृत्तिप्रतियोगी ग्राह्यः।**

राजहंसः

यत्राप्रवर्तमानं स्यान्मान[१]वं मानवं वचः ।
निश्चेतव्यं हि तत्केन हेतुना साधुनाऽधुना ।। ३०।।

मूलाधारामिति । बहुव्रीहिणा मूलाधारचक्रवासिनीमित्यर्थः, मूलपदस्य मूलचक्रपरत्वात्। तत्पुरुषेण त्वाधारत्वस्यौपनिषदरीत्या कल्पितत्वाभिप्रायेण मूलाधारवदाचरन्तीमित्यर्थः । क्षित्यादिशिवान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वनिवह स्याश्रितानाश्रितैदेन द्वैविध्यमभिप्रेत्या**धाराधेयेति ।** तयोः प्रकाशिकां परमशिवरूपतयेत्यर्थः । ''आतश्चोपसर्गे'' इत्यङि आधा = आधानं प्रपञ्चानाम्, लक्षणया तत्प्रयोजिका माया, राधेयस्त्वपरिचितात्ममहिमतया कर्णसदृशो जीवः, तयोश्चेतनामित्यप्यर्थः । **चेत्यचक्रपरामिति ।** 'ज्ञाता स्वात्मा भवेज्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं बहिःस्थितम्। श्रीचक्र' पूजनं तेषामेकीरकरणमीरितमिति तन्त्रराजोक्त्या चेत्यं = ज्ञेयं तदेव चक्रं = श्रीचक्रं तत्परं = प्रधानमधिष्ठेयत्वेन यस्यास्तामित्यर्थः । किञ्च चेत्यषट्चक्रोर्ध्ववर्तिनीं चेत्यवर्गोतीर्णां

भारती

ॐ

लक्षण सामान्य खण्डन

प्रश्न- वे खण्डनयुक्तियाँ किस प्रकार हैं? उत्तर - वे खण्डनयुक्तियाँ कही जाती हैं, आप उन (खण्डनयुक्तियों) को इस प्रकार समझें - लक्ष्य का यथार्थ ज्ञान (प्रमा) लक्षण ज्ञान से जन्य होता है और लक्षण मात्र ही अनुपपन्न (युक्तिविरुद्ध) है । क्योंकि ज्ञात अधिकरणादि के द्वारा लक्षण निरूपण में चक्रकादि दोष उपस्थित होते हैं ।

१. मया = प्रमया नवं स्तुतम् , तज्जनकत्वात् ''णु स्तुताविति स्मरणात् , श्रुतिरूपं मानं मूलतया वाति गच्छतीति वा, ईदृशं मनोर्भगवतो वच इत्यर्थः।

शारदा

ज्ञातेनाधिकरणादिना लक्षणनिरूपणं चक्रकाद्यापादकम् , तथाहि-ज्ञातलक्षणं प्रति लक्षणप्रतिपादनस्य निष्फलत्वात्, अज्ञातलक्षणं च प्रति लक्षणवाक्यस्याप्रतिपादकत्वात् ''नच सर्वे व्यामूढा येन प्रतिपाद्यप्रतिपादकव्यवस्था न स्या'' दिति निबन्धोक्तदिशा वस्तुतो लक्षणं जानानोऽपि लक्ष्यविशेषलक्षणत्वेनाजानानो लक्षणवाक्यप्रतिपाद्य इति तार्किकमतम्; तदयुक्तम्, लक्षणवाक्यप्रतिपाद्यस्य लक्षणाधिकरणानभिज्ञत्वे आश्रयासिद्धेर्लक्षणस्यानभिधानीयत्वं मा प्रसाङ्क्षीदिति तदभिज्ञस्यैव लक्षणवाक्यप्रतिपाद्यताया वक्तव्यत्वात् तदभिज्ञानस्य च व्यावृत्तत्वाव्यावृत्तत्वाभ्यामक्षोदक्षमत्वात्, व्यावृत्तत्वेन लक्ष्यस्य पूर्वं ज्ञातत्वे हि लक्षणाभिधानवैयर्थ्यं तावत्स्फुटमेव, तादृशज्ञानस्यापि लक्षणाभिधानपूर्वकत्वे त्वभिधानानवस्थापि प्रसक्तैव, तस्य प्रमाणान्तरमूलकत्वेऽपि वस्त्वनवस्था, लक्षणस्यापि

राजहंस

चेत्यर्थः। **शान्तामिति ।** पार्थिवप्राकृतमायिकशाक्ताण्डेषु क्रमेण तत्तत्तत्त्वानुगतशक्तिविशेषात्मिका निवृत्तिप्रतिष्ठाविद्याशान्ताख्याः कला राजन्ते, तेषु चरमामित्यर्थः । शान्तातीता तु शिवे, परमशिवस्तु कलातीत इति । किञ्च ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मकवामाज्येष्ठारौद्र्याख्यशक्तित्रयसमष्टिरूपेणापि शान्तापदबोध्यत्वं तुरीयशक्तेः । भारतीपृथिवीरुद्राण्याख्यशक्तित्रयसमष्टिरूपा तु तुरीयाऽम्बिकाख्येत्यन्यत् । किञ्च निवृत्तकलाकलनामित्यर्थः, तथा चौत्मनसे पदं स्थिलमित्याशयः किञ्च स्वरूपाच्छादकतादशातिवर्तितया शान्तां शक्तिम् , यदाहुः—

''एवमस्यात्मनः काले कस्मिंश्चिद्योग्यतावशात् ।
शैवी सम्बध्यते शक्तिः शान्ता मुक्तिफलप्रदा।।''

इति श्रीमालिनीविजये। शान्तां सकलक्लेशापगमव्यङ्ग्यपरमानन्दरूपामिति त्वौपनिषदसाधारणम्। **समुपास्मह इति ।** परा, परापरा,ऽपरेति त्रिविधोपासनासु द्वैतस्फूर्तिसामान्याभावकालीनस्वतःस्फूर्तिः, द्वैतप्रविलापनम् , बाह्यार्चनमित्येवंरूपासु नैरन्तर्यसत्कारप्रेमादिरूपोत्कर्षलाभाय समुपसर्गः । कालत्रयेऽपि यः कोऽप्येवमुपास्ते सोऽहमेवेति दृढनिश्चयाद्बहुवचनस्योत्तमपुरुषस्य च प्रयोगो न तु देहविशेषाभिमानेनेति नाविनयः ।

माऽयं परशिवाया भूद्दया याभाजनं जनः ।
मन्यते तु तमात्मानं यस्तथा सुकृतैः कृतः ॥ ३१॥

पर्यवसानमिति भाव इति । आर्थिकमिथ्यात्वनियतब्रह्मसर्वाऽभेदवादेऽपि व्यावर्तकनिरासेनैवाभीष्टसिद्धिः, अतएव 'तन्निरासोपयोगितया द्वारासम्भवमेवाहे' त्यवतारितमनुपदम्। **अप्रमितानीति ।** प्रमाणानामपि लक्षणखण्डनेऽप्रमाणसाधारणतया लक्ष्यव्यवस्थापकत्वेनेव स्वरूपेणापि लक्षणानामप्रमितत्त्वपर्यावसानमित्याशयेनाप्रमितत्वमात्रमर्थ आदृतः । **निबन्धोक्तेति।**

भारती

(तात्पर्य यह है कि तार्किक का मत है कि ज्ञात लक्षण (लक्षण जानने वाले) पुरुष के प्रति लक्षण का प्रतिपादन करना व्यर्थ है और अज्ञात लक्षण पुरुष को लक्षणवाक्य लक्ष्यका ज्ञान ही नहीं करा सकता, क्योंकि लक्षण ज्ञात होकर ही लक्ष्य का ज्ञान कराता है जिसे

शारदा

लक्षणान्तराधीनव्यावृत्तिकत्वात्, असम्भवदुक्तिकं हि क्वचिदपि स्वरूपस्यैव लक्षणत्वं, अस्येदं लक्षणमिति भेदाधीनव्यवहारानुपपादकत्वात् , रूपभेदोपगमे तु तादृशरूपविशिष्टयोरत्यन्ताभेदे कथन्नोक्तदोषः, भेदाभेदे वा कथन्नानिर्वाच्यवादः, अत्यन्तभेदे वा कथन्नानवस्था, नचैष्टन्यैव सा, यतोऽनुभूतिपथातिवर्तिनीमनन्तरूपमालां न संख्यावानुपेतुमुत्सहेत, अन्यथाऽनवस्थाया जातिबाधकता बाध्येत, यथा चार्थापत्तिरपि नात्र सावसरा, तथा बहुशः प्रतिविहितमधस्यात्, युक्ता चानवस्थात्वेनैव दूषकता, अन्यथा क्वचिद्वस्त्वनवस्थाया अपि दूषकत्वोपगमेन ज्ञानानवस्थात्वस्य दूषकतावच्छेदकताया वक्तुमशक्यत्वेन रूपान्तरस्य चानुगतस्याभावेन यत्र यत्रानवस्थायां प्रामाणिकानां दूषकत्वव्यवहारस्तस्या एवं दूषकत्वस्योक्तौ पुरुषगतप्रामाणिकत्वस्य तत्तद्दर्शनभेदेनाव्यवस्थितत्वादनवस्थाया दूषकत्वमव्यवस्थितमेव स्यात् , एवं च सति ज्ञानानवस्थापि, लक्षणमात्रस्योत्तरोत्तरापेक्षया लक्ष्यत्वेन व्यावृत्तत्वेन तत्तज्ज्ञानानामपेक्षणीयत्वात्, व्यवधानलग्नज्ञानधारायामपि दूषकता तार्किकसम्मतैव, अतएव तर्कमणिरहस्ये मथुरानाथैः ''नहि कदाचिदन्तराविच्छेद एवानवस्थापरिहारः, किन्त्वात्यन्तिकविच्छेदे एवेति सकलसम्प्रदायसिद्धमि''त्युक्तम्, अनवस्थात्वमेव दूषकतावच्छेदकमिति तदाशयः । एतदाशयमूलैव च ''अनवस्थादयो दोषाः सत्तां निघ्नन्ति

राजहंसः

निबन्धपदेनोदयनाचार्याणां तात्पर्यपरिशुद्धिर्नैयायिकैर्व्यवह्रियते । **कथन्नानिर्वाच्यवाद इति ।** विरोधेनैकतरस्य मिथ्यात्वावश्यकत्वात् , अभेदस्यापि च भेदप्रतियोगिकत्वेनानिर्वाच्यत्वादिति भावः । **एवं च सतीति ।** वस्त्वनवस्थासाधने च सतीत्यर्थः।

भारती

सास्नादि का ज्ञान नहीं है उस पुरुष को ''सास्नादिमत्त्व'' लक्षण गौ का ज्ञान नहीं करा सकता। यदि कहें कि सभी तो मूर्ख नहीं हैं। जिससे प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव ही न बने, इसलिए यह मानना चाहिए कि - वस्तुतः जो लक्षण को जानते हुए भी ''यह लक्ष्य विशेष (अमुक लक्ष्य) का लक्षण है '' यह न जानता हो उसी पुरुष के प्रति लक्षणवाक्य प्रतिपादक (लक्ष्य का ज्ञापक) है । किन्तु यह तार्किक मत युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि जिस पुरुष के प्रति लक्षण वाक्य प्रयुक्त है वह (पुरुष) यदि लक्षणाधिकरण अर्थात् लक्ष्य का अनभिज्ञ हो तो आश्रयासिद्धि (लक्ष्यपक्षक इतरभेदानुमिति का पक्ष+लक्ष्य ही अप्रसिद्ध) होने से लक्षण असाधक हो जायेगा। अतः मानना होगा कि लक्ष्य के ज्ञाता पुरुष के प्रति ही लक्षणवाक्य लक्ष्य का प्रतिपादक है। अब विचार करें कि - उस लक्षणाधिकरण (लक्ष्य) का ज्ञान उसे (पुरुष को) व्यावृत्ततया (इतरभिन्नतया) है या अव्यावृत्तया, यदि प्रथम पक्ष मानें तो लक्षणाभिधान के पूर्व ही व्यावृत्ततया लक्ष्य के ज्ञात हो जाने से लक्षण का कथन ही व्यर्थ हो जायेगा। कारण कि व्यावृत्ततया लक्ष्य का ज्ञान कराना ही लक्षण का प्रयोजन है और वह लक्षण के कथन के पहले ही सिद्ध हो चुका है ।

शारदा

वस्तुन'' इति मूलकृदुक्तिः । एतेनाव्यावृत्ततया लक्ष्यज्ञानापेक्षापक्षोऽपि विक्षिप्तः; लक्ष्यस्याव्यावृत्ततया ज्ञाने लक्षणस्यापि लक्ष्येतरसाधारण्येन ज्ञानाल्लक्षणाभिधानवैफल्यापत्तेः नहि पृथिवीं जलाव्यावृत्तां बुद्ध्यमानो गन्धवती सेत्युच्यमानो गन्धं न जलवृत्तितया प्रतिपद्येत। नच-प्रत्यक्षादिना जलादौ गन्धाभावं निश्चिन्वानो 'गन्धवती पृथिवी'ति वाक्याज्जलादिव्यावृत्तां तामधिगच्छति, तदुक्तम्–''लक्षणरूपविशेषदर्शनाभावत्प्राक् धर्मिज्ञानस्य व्यामुग्धत्वेऽपि तत्सहकृतधर्मिज्ञानस्यातथात्व''मिति; गन्धवत्त्वावच्छेदेन च न पृथिवीत्वमेव विदध्मो येन गन्धाभाववत्यपि पृथिवीत्वप्रतिपत्तिसम्भवेन निश्चितगन्धाभावे जलादौ पृथिवीत्वबुद्धिं नासौ त्यजेत् किन्तु पृथिवीत्वावच्छेदेन गन्धमपीति गन्धे व्यापकताया अपि प्रतीतौ गन्धाभाववति पृथिवीत्वमवगन्तुं नासौ प्रभवतीति–वाच्यम् ; गन्धे जलादिगतधर्माभेदग्रहे जलाद्यावृत्तित्वग्रहस्यासम्भवेन तदर्थं गन्धे तत्तदितरभेदग्रहस्यावश्यकत्वेन तस्य च लक्षणान्तरं विनाऽसम्भवेनोक्तरीत्यैवानवस्था-नामापत्तेः, प्रवाहस्य त्रयात्मकत्वे तु चक्रकम् , अन्यथा त्वन्योन्याश्रयः, एवं च लक्ष्यव्यावर्तकत्वे तद्व्यवहारे वा लक्षणाभिधानस्योपायताया एवानुपपत्तेः 'उपायस्योपायान्तरादूषकत्व''मिति न्यायानवतारेण प्रमाणान्तरेण जलादौ गन्धाभावस्येव तेनैव गन्धवत्येव पृथिवीत्वस्यापि निश्चयसम्भवेन लक्षणाभिधानं विफलमेव, को हि मन्दो गन्धस्यावृत्तित्वग्रहाभावे, गन्धं, पृथिवीं, जलादौ गन्धाभावं च, प्रतिपद्यमानो गन्धवती पृथिवीति प्रत्येतुं न पारयेत् , तादृशप्रतीतिसामग्र्या वृत्तत्वात् । एतेन–लक्षणमितरव्यावृत्तमवगच्छन्नपि तल्लक्ष्यव्यावर्तकतया यो न जानाति तं प्रति तस्य विपक्षव्यावर्तकत्वं बोध्यते इति–निरस्तम् । एवं पृथिव्यामितरभेदसाधने तत्प्रतियोगि-जलादेरधिगमो यद्यव्यावृत्ततया तदा पृथिव्यपि तस्मान्न व्यावृत्ततया शक्याधिगमेति पुरोदीरितदोषोन्मेषः, यदि व्यावृत्ततया, तदा पृथिव्या इतरव्यावृत्तत्वाधिगमं विना जलादेरपि तादृशाधिगमोऽसम्भवीत्यन्योन्याश्रयः व्यवस्थापितं च पूर्वं भेदग्रहायत्तस्यानुयोगिप्रतियोगि-भावग्रहस्य भेदग्रहकारणत्वम्; तृतीयादेर्भेदग्रहस्यान्तर्भावने तु चक्रकादिकमिति ।

भारती

किञ्च- लक्षणाभिधान के पूर्व सम्पन्न लक्ष्य का व्यावृत्ततया ज्ञान भी यदि लक्षणाभिधानपूर्वक ही मानें तो वह लक्षण इस प्रकृत लक्षण से अन्य ही कहना होगा, फिर उसके लिए भी लक्ष्य ज्ञान आवश्यक होगा, और वह भी लक्षणाभिधानपूर्वक ही होगा इस प्रकार अनवस्था दोष प्रसक्त हो जायेगा ।

इसी प्रकार लक्षण भी इतरव्यावृत्ततया ज्ञात होकर ही लक्ष्य का साधक होगा, वह इतरव्यावृत्ततया लक्षण का ज्ञान भी लक्षणान्तर साध्य है इस प्रकार भी प्रवाह के अनन्त होने पर अनवस्था होगी। प्रवाह के द्वयात्मक होने पर अन्योन्याश्रय, त्रयात्मक होने पर चक्रक, एवं अनन्त होने पर अनवस्था, इस प्रकार यह पक्ष अनेक दोष दुष्ट है।

यदि लक्षणाभिधान के पूर्व लक्ष्य का ज्ञान इतराव्यावृत्ततया (इतर से अभिन्नतया) मानें तो उसका लक्षण इतर साधारण हो जाने से पुनः इतरव्यावृत्तरूप प्रयोजन के असिद्ध होने

शारदा

ज्ञानाधिकरणादीतिपाठे तु प्रयोजनमादिना ग्राह्यम् , लक्षणानां ज्ञानाधिकरणप्रयोजनत्रयस्य लक्षणं = स्वरूपं तन्निरूपणद्वारेण यथासम्भवं चक्रकाद्यपत्ते ; तत्राधिकरणस्य स्वरूपं व्यावृत्तत्वेन गृहीत वाऽव्यावृत्तत्वेन गृहीतं वेतिविकल्प्य निरस्तमेव; प्रयोजनस्य स्वरूपं व्यवहारो वेतरव्यावृत्तिज्ञानं वा, उभयथा लक्ष्यलक्षणयोरितव्यावृत्तत्वेन प्रतीतिं विना तदसम्भवात्पूर्वोक्तखण्डनसञ्चारः ; वक्ष्यति च व्यवहारस्य प्रयोजनत्वासम्भवं प्रत्यक्षखण्डने । लक्षणज्ञानस्य स्वरूपं प्रमात्वं वाऽप्रमात्वं वा, द्वितीये तत्फलस्यापि याथार्थ्यासम्भवः, आद्ये प्रमात्वस्य दुरवधारणत्वमित्याशयेन प्रथमं प्रमात्वमेव निरसिष्यति,लक्ष्येतरावृत्तित्वेन लक्षणज्ञानस्य प्रमात्वे एव च लक्ष्ये इतरव्यावृत्तिग्रहस्य प्रमात्वसमर्थनं स्यात् , तथालक्षणज्ञानस्यैव तु पूर्वोक्तदिशा चक्रकाद्यापत्त्या प्रमात्वासम्भव इति भावः ।

आदिपदेन च लक्षणमात्रेऽतिव्याप्त्यादिप्रकाराः सूचिताः, तथाहि–गन्धस्य तत्समवायस्य वा लक्षणत्वे तस्य कालिकेनानित्यमात्रवृत्तित्वादतिव्याप्तिः, समवायेन गन्धवत्त्वस्य समवायसम्बन्धावच्छिन्नगन्धत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणतारूपस्य

राजहंसः

ज्ञानाधिकरणादीति पाठे इति । यत्त्वस्मिन् पाठे प्राचां व्याख्यानम्—लक्षणमात्रस्यापेक्षणीयं ज्ञानम् , स्वरूपसतोऽव्यावर्तकत्वात् , तच्च किमिति प्रश्ने ज्ञानत्वयोगीति वाच्यम् , इच्छादिकारणतावच्छेदकतया वा स्वरूपतो वा ज्ञानत्वत्वेन वा ज्ञानत्वं ज्ञानस्य लक्षणमित्यन्यत्। ज्ञानत्वं च सुखाद्यवृत्तिरात्मविशेषणगुणवृत्तिर्जातिरिति निर्वाच्यम्, जातिस्त्वनुवृत्तप्रत्ययासाधारणकारणमिति निर्वाच्येति ज्ञानसिद्धौ जातित्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च ज्ञानत्वसिद्धिः तत्सिद्धौच ज्ञानसिद्धिरिति चक्रकम्, परम्परया ज्ञानसिद्धेर्ज्ञानत्वसिद्धिं ज्ञानसिद्धिं चापेक्षमाणतया त्वन्योन्याश्रयात्माश्रयौ। तथा लक्षणानि लक्ष्याधिकरणनिर्वाच्यानि, अधिकरणत्व चेहप्रत्ययविषयत्वम्, प्रत्ययलक्षणं च पूर्ववत् , प्रत्ययत्वमपि तथैवेति तत्रात्मप्रवेशः, आत्मा चात्मत्वाधिकरणम् , अधिकरणं चेहप्रत्ययविषय इति चक्रकम् , आत्माश्रयान्योन्याश्रयावपि प्राग्वत्परम्परयेत्यादि। तत्तु नादृतम् ईदृशरीत्या चक्रकाद्यस्पृष्टलक्षणानामपि सम्भवात् । यद्यपि तान्यपि शारदायां तत्र तत्र निरस्तानि, तथापि लक्षणविशेषमनाश्रित्य लक्षणसामान्यखण्डने प्रथमाया अस्याः पङ्क्तेरुपयोगौचित्यम्, अन्यथा खण्डनान्तरसापेक्षतया वा लक्षणविशेषखण्डनपर्यवसायितया वा नास्याः सदुपयोगः स्यादिति सुधीभिरवधेयम्। एवमन्यत्रापि शारदायां प्राचीनव्याख्यानानि निष्फलगौरवभीरुतयाऽनुपन्यस्यैव नव्यन्यायखण्डनार्थं नव्यरीत्या मूलपरिष्क्रियाऽऽदृता, यया नव्यन्यायविदामनिर्वाच्यवादं रोचयमानानां परितोषः स्यादिति स्वयं तत्र तत्रान्वेषणीयम्। आमूलमामौलि चास्मिन्निबन्धे खण्डनचातुर्विध्यमिति यथायथं तत्र तत्र विवेक्तव्यम्, विशदानुभवविरोधेन पूर्वपक्षावधूननं प्रथमम्, कञ्चिद्दर्शनसिद्धान्तमाश्रित्य प्रत्यवस्थानं द्वितीयम्, परिष्कारप्रणालीमवलम्ब्यैवातिव्याप्तिप्रभृतिदूषणैः परिष्कारपराकरणं तृतीयम् , ऋजुतीनां यत्तु चित्तं नावर्जयति, अतिप्रसक्तमिवावगम्यमानं हि, नापि च पार्यते प्रत्युत्तरीतुम् , तच्चतुर्थं वितण्डामात्राश्रितम् ।

शारदा

लक्षणत्वेऽपि तथैव, यथाहि घटसंयोगस्य भूतले वृत्तावेव संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-घटत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वं तत्रोपेयते, तथा गन्धसमवायस्य जलादौ कथमपि वृत्तौ समवायसम्बन्धावच्छिन्नगन्धत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वमपि तत्र किमिति न स्यात् यदि च गन्धसमवायस्य स्वरूपसम्बन्धेनाधिकरणे एव तादृशाधिकरणतोपगमस्तदापि स्वरूपसम्बन्धस्यानतिरेकात् कालिकेन तस्य जलादौ वृत्तौ कथं नोदितदिशादोष: तादृशाधिकरणत्वस्यापि कालिकेन जलादौ वृत्तेश्च, तादृशाधिकरणतात्वावच्छिन्नस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वस्य प्रवेशे च तस्यापि कालिकेनालक्ष्यवृत्तित्वाद्दोष एवेति तस्यापि स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकता-निरूपिताधिकरणत्वं प्रवेशनीयमित्यनवस्थाचामुण्डोदरप्रवेशमपास्य न निस्तार: । एवं लक्ष्यपरस्वपदघटितलक्षणवाक्यस्थलेऽपि स्वपदेनालक्ष्यमादाय प्रसञ्जनीयम् । कालिकस्वरूपसम्बन्धादीनां वैलक्षण्यस्य प्रतीतिवैलक्षण्यकृतस्यैव वक्तव्यत्वेनान्योन्याश्रयाच्च सम्बन्धविशेषनिवेशानामकिञ्चित्करत्वं द्रष्टव्यम् । किञ्च गन्धवत्त्वं न गन्धत्वावच्छिन्न-निरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वं, सामान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिता-धिकरणतयैव सामान्यधर्मावच्छिन्नवत्ताप्रतीत्युपपत्ते: शुद्धसामान्यधर्मावच्छिन्ननिरूपकता-निरूपिताधिकरणताया मानानालिङ्गितत्वादिति व्यक्तं व्युत्पत्तिवादसिद्धान्तलक्षणादौ । अन्यथा तादृशाधिकरणतायास्तत्रानन्ताधिकरणतात्वादिधर्माणां सम्बन्धस्य च कल्पनापत्त्या गौरवात् । अतएव विशेषाभावकूटेनैवालङ्कर्मीणत्वात्सामान्याभावो नातिरिच्यते इति प्रामाणिका: । नापि गन्धत्वघटितधर्मावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वं तत्

राजहंस:

अलङ्कर्मीणत्वात् = कर्मणे प्रभुत्वात्, कृतकार्यत्वादिति तात्पर्य्यम् । **तादृशधर्माणामसङ्ख्येयत्वादिति** । न च गन्धत्वघटितत्वेन तेषामनुगम:, एकदेशसाधारण-स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वविवक्षया च गन्धत्वावच्छिन्ननिरूपकताऽपि शक्या विवक्षितुमिति वाच्यम्, तादृशनिरूपकताया: स्वरूपसम्बन्धविशेषात्मकतया नानात्वेन तत्रैव प्रत्येकमिलितविकल्पसम्भवात् । निरूपकताया अनुगताखण्डोपधित्वं तथाभूतनिरूपकतात्वेन वाऽनुगतत्वमित्यपि मनोरथमात्रम् , अनुगतधर्ममात्रस्य प्रत्यक्षखण्डनशारदायां निरासात् , प्रतीतिविशेषसाक्षिकतयैवाखण्डोपाधिनिरूपणे च प्रतीतिविषययो: प्रमात्वे सत्यत्वे च परस्पराश्रिततया दौ:स्थ्यस्य तत्र तत्र दर्शितत्वादिति भाव: । **इति लक्षणसामान्यखण्डनशारदायां राजहंस:।**

भारती

से लक्षणाभिधान व्यर्थ हो जायेगा । इस प्रकार लक्षण सामान्य का ही निरास समझना चाहिए । इस विषय में अधिक शारदा में द्रष्टव्य है ।

"ज्ञाताधिकरणादि" यहाँ आदि पद से "लक्षणाभिधान से पूर्व लक्ष्य का इतरभिन्न-तया ज्ञान में लक्ष्यनिष्ठ-इतरभेद के प्रतियोगी इतर का ज्ञान भी आवश्यक है और इतर पदार्थ अनन्त होने से यावज्जीवन में भी इतर का ज्ञान होना सम्भव न होगा ।" इत्यादि

अथ प्रमात्वखण्डनप्रकरणम्

तत्त्वपदार्थखण्डनम्

तेषु तावत्तत्त्वानुभूतिः प्रमेत्ययुक्तम्, तत्त्वशब्दार्थस्य

शारदा

तादृशधर्माणामसङ्ख्येयत्वात् सकलतदवच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वाप्रसिद्धेः। नापि तत्तद्गन्धत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वम्, चालनीन्यायेनाव्याप्तेः। रीतिश्चैषा खाण्डनिकैः प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तिरिति निगद्यते। एवं समवायेन गन्धवत्त्वस्य वैज्ञानिकस्यातिप्रसक्तत्वात् वास्तवस्यैव निवेशनीयत्वात् वास्तवत्वनिर्णयस्य च तत्र तद्वत्त्वज्ञानीयप्रमात्वनिर्णयाधीनत्वात् प्रमात्वस्य च तत्र तद्वत्त्वनिर्णयाधीननिर्णयकत्वाल्लक्षणमात्रेऽन्योन्याश्रयो द्रष्टव्यः। एवं सर्वत्रैव लक्षणेन केवलव्यतिरेकिणेतरभेदसाधने व्यतिरेकव्याप्तावुपाधिसन्देहः, यथा पृथिवीस्वेतरभिन्ना गन्धवत्त्वादित्यत्र 'यत्रेतरभेदाभावस्तत्र गन्धाभाव' इति व्यतिरेकव्याप्तीयसाध्यव्यापकीभूतस्य पाकजरूपाभावस्य स्वाभाववत्पक्षवृत्तित्वेन सन्दिग्धेतरभेदाभावव्यापकत्वेनानिश्चितस्य सन्दिग्धोपाधित्वसम्भवः, यथा च तर्कोऽपि नात्रावतरीतुं क्षमस्तथाऽनुमानापमानवेलायां वक्ष्यते। एवं सर्वत्रैव लक्षणे लक्ष्यवृत्तित्वाभावः शक्यसाधनः, यथा गन्धः पृथिव्यवृत्तिर्गुणत्वात् शैत्यवत् रूपादेः पक्षसमत्वान्न व्यभिचारः, चन्द्रभेदप्रत्यक्षवत्पृथिव्यांगन्धप्रत्यक्षस्याप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितत्वेन प्रमात्वखण्डनस्यावतारणीयत्वेन च न बाधः, अतएव पृथिवी गन्धाभाववती द्रव्यत्वात् जलादिवदितिरीतिरपि क्षोदक्षमा, नच पृथिव्यजन्यत्वगन्धसमवायिकारणत्वाभावयोरुपाधित्वम् उक्तहेतुभ्यामेव तयोरपि पक्षे साधनीयत्वेन साधनाव्यापकत्वस्याशक्यनिश्चयत्वात्, साध्योपाध्योर्व्याप्तावुक्तरीत्यैवोपाधिसन्देहाच्चेति दिक्। इति लक्षणसामान्यखण्डनम् ।

स्मृतिहेतोः प्रमाणान्तरतापत्तिभिया प्रभात्वस्य स्मृतिव्यावृत्तस्यैवोपगमादित्याशयेनानुभूतिरिति । अनुभूतित्वं च विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकतया सिद्धमनुमित्यादिसाधारणं जातिरूपं स्मृतिभिन्नज्ञानत्वं वोभयथापि स्मृतिव्यावृत्तमेवेति भावः। प्रमा = प्रमापदार्थः।

भारती

दोष समझ लेना ।

इसी प्रकार ''चक्रकाद्यापत्तेः'' यहाँ भी आदि पद से लक्षण मात्र में अतिव्याप्त्यादिदोष को सूचित किया है। यह भी शारदा में द्रष्टव्य है ।

प्रमात्वखण्डनप्रकरण

तत्त्व पदार्थ खण्डन

उन लक्षणों में तत्त्वानुभूति प्रमा यह लक्षण युक्त नहीं है। क्योंकि इसके अन्तर्गत तत्त्व शब्द का निर्वचन नहीं किया जा सकता । तत् के भाव (धर्म) को तत्त्व कहते हैं और प्रकृत

निर्वक्तुमशक्यत्वात्; तस्य भावो हि तत्त्वमुच्यते, प्रकृतं च तच्छब्दार्थः, नचात्र प्रकृतं किञ्चिदस्ति यत्तच्छब्देन परामृश्येत। अथानुभूत्या स्वसम्बन्धिविषयआक्षेपाद्बुद्धिस्थः कार्यते, स तच्छब्देन परामृश्यते, वक्तृश्रोतृबुद्धिस्थतायामेव प्रकरण-पदार्थविश्रामात्; तेन यस्यार्थस्य यो भावस्तत्तस्य तत्त्वमुच्यते इति; न, अरजतादेरपि रजताद्यात्मनाऽनुभूतिविषयता-

शारदा

तत्त्वं यदि प्रमितापरपर्यायं विषयतया निविष्टं तदाऽऽत्माश्रयः, यदि च याथार्थ्यापरपर्यायं विषयिणि विशेषणं तदा याथार्थ्यखण्डने प्रतिविधास्यते इत्याशयेन प्रकारान्तरमाक्षिपति तस्य भाव इति। **तद्भेदव्यापकभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वे सति तन्निष्ठभेदप्रतियोगितानवच्छेदको धर्म इत्यर्थः। प्रकृतं = बुद्धिस्थं।** प्रकृतमिति। **नियामकविशेषनियन्त्रितोपस्थितिकं प्रकृतमित्यर्थः। परामृश्येत = उपस्थाप्येत। ज्ञानस्य स्वविषयनिरूप्यत्वमेव स्वविषयोपस्थितिनियामकमित्याह** अथेति। **आक्षेपात् = विषयनिरूप्यत्वान्यथानुपपत्त्या। बुद्धिस्थः = बुद्धिविषयः।** कार्यते इति। **क्रियते तु जनेन।** वक्तृश्रोतृबुद्धीति। **यद्यपि वक्तुस्तात्पर्यस्यैव शाब्दधीहेतुत्वात् सामान्यतो वक्तृबुद्धिस्थत्वमेव प्रकृतत्वं तदादिशक्यतावच्छेदकं सहकारिविशेषाच्च पदार्थविशेषलाभ इति न तदाद्यधीनोपस्थित्या विशेषधर्मप्रकारकसंशयनिवृत्त्यनुपपत्तिः। तथाप्यभिलापजन्यप्रतीतितुल्यत्वाद-भिलप्यमानप्रतीतेः श्रोतृपदमुपात्तम्। प्रकरणपदार्थः प्रकृतत्वं तस्य विश्रामात् = अभेदरूपपर्यवसानात्। शक्यतावच्छेदकस्य शाब्दविषयत्वनियमेन वक्तृबुद्धिस्थत्वस्य शक्यतावच्छेदकत्वे शाब्दविषयतापत्तिपरिहारार्थं वक्तृबुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मस्य तदादिशक्यतावच्छेदकत्वमिति निष्कृष्टमतादरेऽपि शक्यस्य बुद्धिस्थत्वमक्षतमेवेति भावः। रजताद्यात्मना = रजतत्वादिना।**

भारती

(प्रकरण से प्राप्त) अर्थात् बुद्धिस्थ पदार्थ ही तत् शब्द का अर्थ होता है। यहाँ तो कोई प्रकृत है नहीं, जिसका तत् शब्द से परामर्श किया जाय। (तात्पर्य यह है कि यह लक्षण शिवादित्य मिश्र कृत लक्षण माला का प्रथम लक्षण है। इसके पूर्व कोई प्रकृत बुद्धिस्थ पदार्थ नहीं है। जो तत् शब्द से परामृष्ट हो)

प्रश्न- ''विषयनिरूप्यं हि ज्ञानं'' नियम के अनुसार ज्ञान के विषयनियन्त्रित होने से अनुभूति (ज्ञान) ही स्वविषय का आक्षेप कर बुद्धिस्थ करायेगी और वह आक्षिप्त विषय ही तत् शब्द से परामृष्ट हो जायेगा। वक्ता एवं श्रोता की बुद्धि का विषय ही प्रकरण पद का वाच्य अर्थात् प्रकृत कहा जाता है। अतः जिस पदार्थ का जो भाव अर्थात् धर्म है वही उसका तत्त्व कहा जाता है।

समाधान — इस प्रकार मानने पर इदं रजतम् इत्यादि भ्रम ज्ञान में अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि रजत से भिन्न शुक्ति भी रजतत्वेन रूपेण अनुभव का विषय होने से उसकी

सम्भवादसत्यार्थानुभूत्यव्यवच्छेदात् । भवितुरतत्त्वशब्दार्थत्वप्रसङ्गेन धर्म्यंशे विशिष्टे च प्रमाया अप्रमात्वापातात् । अथोच्यते-अवयवार्थचिन्तया दूषणाभिधानमिदं त्यज्यतां, यतोऽयं तत्त्वशब्दः

शारदा

अव्यवच्छेदादिति। **भ्रमे भासमानस्यापि रजतत्वस्य निरुक्तरजतभावत्वाक्षतेरिति भावः। ननु तदीयभावनिष्ठविषयतानिरूपिततन्निष्ठविषयताकानुभूतेस्तद्भावविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्वं वाच्यं, भ्रमीया रजतत्वनिष्ठप्रकारता तु न रजतत्वाश्रयनिष्ठविशेष्यतानिरूपिकेत्यरुचेराह** भवितुरिति। **भावविशिष्टस्य विशेष्यमात्रस्य चेत्यर्थः। अतत्त्वशब्दार्थत्वप्रसङ्गेन = स्वनिष्ठभावत्वासम्भवेन। धर्म्यंशे = विशेष्यविषयकत्वावच्छेदेन। विशिष्टे = विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन। विशिष्टञ्चातिरिक्तमिति भावः। प्रमायाः = प्रमात्वेन व्यवह्रियमाणज्ञानस्य । अप्रमात्वापातात् = अप्रमात्वव्यवहारविषयतापातात् । तत्प्रकारकज्ञानस्यैव तत्प्रमात्वव्यवहारो नतु तद्विशेष्यकज्ञानस्येति तु न युक्तं ''सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्त'' मित्यादिव्यहारदर्शनात् । ननु निरुक्तानुभूतेस्तद्भावांशे इव तदंशेऽपि प्रमात्वं वक्तव्यं, एवं भावनिष्ठवृत्तितावच्छेदकसम्बन्धविशेषं निवेश्य तदंशेऽपि प्रमात्वमिति न तदंशेऽप्यव्याप्तिरिति चेत्तथापि निर्विकल्पकाव्याप्तेः, घटवद्भूतलमिति प्रतीतेर्भूतलघटयोर्वैशिष्ट्यांशे घटनिष्ठप्रकारतानिरूपितभूतलनिष्ठविषयताकत्वावच्छेदेन चाप्रमात्वापत्तेश्च, घटस्य निरुक्तभावत्वानाश्रयत्वात् । अथ भावत्वमविवक्षितं तदीयतत्सम्बन्धनुयोगिनि तदीयत्वेन तत्सम्बन्धावगाह्यनुभवत्वं तत्तत्सम्बन्धांशे प्रमात्वमिति चेन्न; गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इति समवायसंसर्गकज्ञानस्य प्रमात्वापत्तेः । नच तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकतत्सम्बन्धानुयोगिनि तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन तत्सम्बन्धावगाह्यनुभवत्वं प्रमात्वमिति वाच्यम् स्वरूपतो घटत्वविषयकस्य 'अयं घट' इति ज्ञानस्य घटत्वसम्बन्धांशे प्रमात्वाभावापत्तेः ; अनवच्छिन्नप्रतियोगिताकसम्बन्धांशे प्रमात्वान्तरोक्तौ त्वननुगमः, एवमननुगततत्ताघटितत्वेनापि सः, तस्या अनुगतत्वे पूर्वतत्पदेन गृह्यमाणस्यैवोत्तरतत्पदेन ग्रहणे नियामकाभावेनातिप्रसङ्गात् । नच लक्ष्यस्याप्यननुगतत्वेनाननुगमो न दोष इति वाच्यम् , घटप्रमा पटप्रमेत्यादि-प्रतीतिव्यवहाराणां प्रमात्वांशेऽनुगतत्वस्यैवानुभवेन लक्ष्याननुगमस्यासम्भवदुक्तिकत्वात्,**

भारती

व्यावृत्ति नहीं हो पायेगी। किञ्च (उक्त रीति से तत्त्व शब्द के धर्म मात्र का वाचक होने से) केवल धर्मी एवं धर्मविशिष्टधर्मी के तत्त्व पद वाच्य न होने से धर्मी अंश में (धर्मी विषयकत्वावच्छेदेन) एवं विशिष्ट अंश में (विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन) वह ज्ञान अप्रमा हो जायेगा अर्थात् तदंश में उक्त लक्षण अव्याप्त हो जायेगा ।

प्रश्न- तत्त्व शब्द के अवयवार्थ (प्रकृतिप्रत्ययार्थ) के विचार से दोष न दें क्योंकि यह तत्त्व शब्द स्वरूप मात्र का वाचक अर्थात् स्वरूप मात्र में रूढ है। (अतः धर्म धर्मी एवं विशिष्ट सभी के स्वरूप होने से सभी अंशों में उक्त लक्षण की अव्याप्ति न होगी।)

स्वरूपमात्रवचन इति; एतदप्ययुक्तम्, स्वरूपत्वस्य जातेरुपाधेर्वा

शारदा

अन्यथा प्रमात्वस्य जातिताशङ्काया उत्थानस्यैवासम्भवेन, सम्भवे वा तदननुगमाभिधानेनैव तन्निरासस्यौचित्येन प्रकारान्तरेण तन्निरासस्य तार्किकाणामुन्मत्तप्रलापत्वापत्तेः । अन्यत्रापि तत्तल्लक्षणेषु शिरोमण्यादीनामव्याप्त्यभिधानस्यासाङ्गत्यापत्तेश्च, सर्वत्राननुगमस्यैव सरलसरणित्वात्। एवमपि वा सर्वेषां प्रमात्वानां प्रातिस्विकरूपेण लक्षणाशक्तेरसिद्धिरेव। प्रमापदसमयग्रहानुपपत्तिश्च । तस्माच्चालनीन्यायेनाव्याप्तिर्दुवारैव । एतेन– तद्वद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकताशाल्यनुभवस्तत्प्रमा, तद्वत्ता प्रकारिता च प्रमात्वनियामकसम्बन्धेन, तद्वत्ता च तन्निरूपितसम्बन्धिता, नतु तन्निरूपिताधारतामात्रं तेन वृत्त्यनियामकसम्बन्धेन प्रमायां नाव्याप्तिरिति–निरस्तम् गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इत्यत्र प्रमात्ववारणाय तत्सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नतन्निरूपितसम्बन्धितावति तत्सम्बन्धेन तद्धर्मविशिष्टतत्प्रकारकानुभवत्वस्य विवक्षायामयं घट इत्यादौ घटत्वादिप्रमायामव्याप्त्यापत्तेः। तद्धर्मावच्छिन्नत्वानवच्छिन्नत्वोभयाभावस्य प्रकारतायां निवेशेप्यनुपदं वक्ष्यमाणदिशा पाकरक्ते श्यामोऽयमिति धियः प्रमात्वापत्तेः । तत्सम्बन्धित्वादेर्वैज्ञानिकस्य निवेशेऽतिप्रसङ्गेन वास्तवस्यैव निवेशनीयत्वात् तस्य च तत्प्रतीतेः प्रमात्वनिर्णयं विना निर्णेतुमशक्यत्वादन्योन्याश्रयाच्चेति । स्वरूपत्वस्य जातित्वे समवायेनैव तस्य वृत्तिमत्ताया वाच्यत्वात् सामान्यादेर्निस्स्वरूपत्वापातादाहोपाधेर्वेति अखण्डोपाधेरित्यर्थः। स्ववृत्तित्वे आत्माश्रयः, नच केवलान्वयित्वोपगमे तदन्यथानुपपत्त्यैवात्माश्रयो न दोष इति वाच्यम् , आत्माश्रयापत्त्यैव न केवलान्वयित्वोपगमसम्भवः, स्वभिन्नत्वे स्ववृत्तित्वव्याप्यकत्वस्यान्यत्र क्लृप्तत्वात् , प्रमेयत्वादावपि प्रमेयत्वान्तरस्यैव वृत्तेः । न च प्रतियोग्यसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वस्यैव केवलान्वयित्वरूपत्वात् प्रमेयत्वत्वं तादृशधर्ममादायैव प्रमेयत्वादेः केवलान्वयित्वमिति–वाच्यम् , सकलप्रमेयवृत्तित्वादिघटितस्य प्रमेयत्वत्वस्याप्यननुगतत्वादखण्डोपाधित्वेऽपि स्वनिष्ठप्रमेयत्वेऽपि तद्वृत्तेरावश्यकत्वे-

भारती

समाधान- आपका यह कथन भी अयुक्त (अनुचित) है क्योंकि स्वरूपत्व को जाति मानें या उपाधि, स्व में स्व की वृत्तिता (रहना) या अवृत्तिता (न रहना) दोनों ही प्रकार से अनुपपत्ति है। (तात्पर्य यह है कि यदि स्वरूपत्व को जाति मानेंगे तो उसे समवाय सम्बन्ध से ही वृत्ति कहना होगा ऐसी स्थिति सामान्य (जाति) में स्वरूपत्व रूप जाति नहीं रहेगी, अतः जाति मात्र के ज्ञान में अव्याप्ति हो जायेगी, एवं इसी प्रकार स्वरूपत्व में स्वरूपत्व के रहने पर आत्माश्रय दोष होगा, स्वरूपत्व में स्वरूपत्व के न रहने पर स्वरूपत्व विषयक प्रमा में उक्त लक्षण अव्याप्त हो जायेगा । यदि स्वरूपत्व को उपाधि मानें तो उपाधि पक्ष में भी उक्त प्रकार से स्वरूपत्व रूप उपाधि के स्ववृत्ति मानने पर आत्माश्रय होगा । स्ववृत्ति न मानने पर स्वरूपत्व रूप उपाधि विषयक प्रमा में उक्त लक्षण अव्याप्त हो जायेगा, इस प्रकार उभयथापि दोष है ।)

स्वात्मनि वृत्त्यवृत्तिभ्यामनुपपत्तेः स्वरूपशब्दार्थस्यैकस्यासम्भवेन प्रतिविषयव्यावृत्त्या लक्षणस्याव्यापकत्वापातात्; कथं च 'तत्त्वे' ति विपर्यासादेर्निरासः तथाहि–शुक्तौ यो रजतत्वप्रत्ययः सोऽपि स्वरूपबुद्धिर्भवत्येव, नहि धर्मी वा रजतत्वं वा न स्वरूपं, नापि तयोः प्रतिभासमानः सम्बन्धो न स्वरूपमिति युक्तं, समवायो हि तयोः सम्बन्धः प्रतिभाति, स च स्वरूपमेव ।

सत्यं समवायः स्वरूपं, स एव तु शुक्तिव्यक्तौ रजतत्वस्य नास्तीति चेन्मैवम्; तत्र नास्तित्वेऽपि स्वरूपताया अव्यावृत्तेः,

शारदा

नान्योन्याश्रयात्तादृशधर्मतायास्तत्रसम्भवात्, प्रमात्वस्यानुगन्तुमशक्यत्वात्। स्वरूपत्वस्य स्वावृत्तित्वे तु स्वरूपत्वविषयकप्रमायामव्याप्तिरिति भावः । अव्यापकत्वेति। **लक्ष्यमात्रसाधारण्याभावेत्यर्थः।** तत्त्वेतीति । **इतिपदं लुप्ततृतीयान्तम् । आदिना संशयो ग्राह्यः ।**

रजतत्वस्य नास्ति= रजतत्वप्रतियोगिकत्वविशिष्टो नास्ति, तेन समवायस्यैकत्वपक्षेऽपि नासङ्गतिः । नन्वसद्विषयकान्यानुभवत्वमेव तत्त्वानुभवत्वम्, तत्त्वस्य सत्त्वात्मकत्वात्, भ्रमे तु संसर्गस्यालीकस्यैव भानाङ्गीकारात्तद्व्यावृत्तिः, सर्वांशे प्रमाया एव लक्ष्यत्वान्नान्यान्त-वैयर्थ्यमिति चेन्न; सदसतोरूपरागासम्भवेनालीकसंसर्गस्य भ्रमे भानासम्भवात्। सम्बन्धि= सम्बन्धितया । तस्येति **तत्सम्बन्धिदेशकालयोस्तदवगाह्यनुभवस्य तदंशे प्रमात्वमित्यर्थः। प्रतीतिमात्रस्य देशकालविषयत्वमस्त्येव, अयं घट इत्यादौ घटादेरेव स्वतादात्म्यापन्नदेशत्वात्,**

राजहंसः

तत्त्वपदार्थखण्डनशारदायां राजहंसः

ननु वृत्तित्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपतयाऽननुगतत्वेन तद्धटितप्रमेयत्वत्वस्यापि तथात्वेऽपि प्रमात्वस्यैव स्वाश्रयनिरूपितविषयतात्वसम्बन्धेन प्रमेयत्वत्वरूपतायां न दोष इत्यत आह—**प्रमात्वस्यानुगन्तुमशक्यत्वादिति।** इदं सकलप्रमेयवृत्तित्वादिघटितत्वपक्षेऽपि साधारणम्।

भारती

किञ्च प्रत्येक वस्तु का स्वरूप भिन्न होने से स्वरूपशब्दार्थ के एक न होने से प्रत्येक विषय में भिन्न-भिन्न ही लक्षण मानना होगा, ऐसी स्थिति में लक्षण के एकत्र रहने से लक्षण अव्यापक (लक्ष्यमात्रसाधारण नहीं होगा) हो जायेगा ।

किञ्च स्वरूपवाचक तत्त्व शब्द से इदं रजतम् इत्यादि भ्रम का वारण कैसे होगा । क्योंकि शुक्ति में जो रजतत्त्व ज्ञान है वह भी स्वरूप विषयक ज्ञान है । यह नहीं कहा जा सकता कि धर्मी (इदम्) एवं रजतत्त्व स्वरूप नहीं है अथवा उनके मध्य भासित होने वाला सम्बन्ध स्वरूप नहीं है । धर्मधर्मी दोनों का समवायसम्बन्ध ही भासित होता है और वह समवाय भी स्वरूप है ही ।

प्रश्न- सत्य है कि समवाय स्वरूप है किन्तु शुक्ति व्यक्ति में रजत्व का (रजतत्त्व प्रतियोगित्वविशिष्ट) समवाय ही नहीं है ।

नहि गेहे देवदत्तो नास्तीति स्वरूपं न स्यात् । न स्वरूपमात्रं तत्त्वमुच्यते, किन्तु यद्देशकालसम्बन्धि यत्स्वरूपं प्रतीतं तस्य तद्देशकालसम्बन्धि स्वरूपं तत्त्वमुच्यते इति; मैवम्; देशकालसम्बन्धांशे प्रमाया अप्रमात्वापातात् । तयोः स्वरूपमेव तत्त्वशब्दार्थ इति चेन्न, तत्त्वशब्दस्यानेकार्थत्वेन

शारदा

''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते'' इत्यभियुक्तोक्तेश्च, अन्यथा तत्कालीनज्ञानेन तत्कालीनप्रवृत्तिर्न स्यादिति भावः । देशेति । **यद्यपि वृत्त्यनियामकसम्बन्धेन प्रमायामव्याप्तिव्युदासाय सम्बन्धित्वमाधारानाधारसाधारणं विवक्षणीयमिति परमाण्वादेरनधिकरणकस्यापि प्रमायां नाव्याप्तिः, तथापि सम्बन्धमात्रस्य भेदनान्तरीयकत्वादभेदे सम्बन्धिताया अभावादुक्तानुभवस्य देशकालानुयोगिकसम्बन्धप्रतियोग्यंशे प्रमात्वोक्तौ देशरूपानुयोग्यंशे प्रमात्वासम्भवः, एवं च देशात्मकाधारानवगाहिप्रमायामव्याप्तिरपि, रूपभेदेनैकसम्बन्धप्रतियोगित्वानुयोगित्वयोरेकत्रोपगमेऽपि कालरूपानुयोग्यंशे प्रमात्वासम्भव एव । अथ निरुक्तानुभवत्वं स्वविषयसम्बन्धप्रतियोग्यंशे इव तदनुयोग्यंशेऽपि प्रमात्वमिति चेत्तथापि गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इत्यत्रातिव्याप्तिरित्यादिपूर्वोक्तमनुसन्धेयम्।** लक्षणेति।

भारती

समाधान- शुक्ति व्यक्ति में समवाय के न रहने पर भी समवाय का स्वरूप तो समाप्त नहीं हो गया। जैसे कि देवदत्त के गृह (घर) में न रहने पर उस (देवदत्त) का स्वरूप समाप्त नहीं होता। तथा च तत्त्व शब्द से उसका ग्रहण होने से तद् विषयक इदं रजतम् इत्याकारक भ्रम ज्ञान में उक्त प्रमा लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी।

प्रश्न- हम स्वरूप मात्र को तत्त्व शब्द का अर्थ नहीं कहते, किन्तु जिसका जिस देश तथा काल से सम्बन्ध जो स्वरूप प्रतीत होता है उसका उस देश तथा काल से सम्बन्धि उस स्वरूप को तत्त्व कहते हैं ।

समाधान ऐसा मानने पर देश, काल तथा सम्बन्ध विषयक प्रमा अप्रमा हो जायेगी अर्थात् उस प्रमा में उक्त लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी (क्योंकि आत्माश्रय के भय से देश, काल एवं सम्बन्ध देश, काल से सम्बद्ध नहीं होते।) यदि कहें कि - देश तथा काल का स्वरूप भी तत्त्व शब्द का अर्थ है। अतः तत्त्व शब्द से देश, काल, सम्बन्ध के स्वरूप का ग्रहण करने से तद्विषयक प्रमा में उक्त प्रमा लक्षण अव्याप्त न होगा, तो यह कथन उचित नहीं है। क्योंकि ऐसा मानने पर तत्त्व शब्द अनेकार्थ हो जायेगा। कहीं देश, काल सम्बद्ध स्वरूप, और कहीं देश, काल से असम्बद्ध देश, काल का स्वरूप, इस प्रकार अनेकार्थ होने पर उक्त लक्षण चालनीन्यायेन एकत्र समन्वित होगा और अन्यत्र नहीं, अतः अव्याप्ति दोष से ग्रस्त हो जायेगा ।

लक्षणाव्यापकतापत्तेः। अथैवं ब्रूषे-यद्यथाभूतं प्रतीयते तत्तथा परमार्थतो व्यवस्थितं तत्त्वमुच्यते। नैतदपि युक्तम्; यद्यथाभूतं प्रतीयते तद्यदि प्रतीतिसमयमपहाय कालान्तरे तथाभूतं स्यात् तदाप्येवं तत्त्वं स्यादेवेति भाविपाकजरागः कुम्भः श्यामतादशायामपि रक्तपित्तिना रक्ततयोपलभ्यमानस्तत्त्वं स्यादिति तद्बुद्धेः प्रमात्वापातः। यदा तदे'ति विशेषणप्रक्षेपणे च

शारदा

चालनीन्यायेनेत्यादिः । तत्ताघटितत्वेनाप्यव्यापकत्वं द्रष्टव्यम् । तत्सम्बन्धितावति तदवगाह्यनुभवत्वं तत्प्रमात्वं, नच संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटसम्बन्धितावति समवाया-वच्छिन्नघटविषयताकानुभवेऽतिव्याप्तिः, उभयत्रैव सम्बन्धविशेषस्यैव निवेशनीयत्वात्, घटे घटत्वमित्यत्राव्याप्तिवारणाय तद्वतीति नोक्तम् , सम्बन्धिता तु स्वरूपसम्बन्धविशेष इत्याशयेन देशकालावपहायाशङ्कते अथैवमिति । **परमार्थतो = वस्तुतः। व्यवस्थितं = सम्बद्धं । एवं = निरक्तं ।** प्रमात्वापात इति । **नचेष्टापत्तिः, कदाचित्तत्र रक्ततासत्त्वादिति वाच्यम्; प्रतीतिमात्रस्य स्वाधिकरणसमयावच्छिन्नवस्तु विषयकत्वात् श्यामतादशायां 'अयं घटो रक्त' इति बुद्धेः प्रमात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् अतएव प्रत्यक्षमणौ सविकल्पकवादे– ''प्रतीतेः समयविशेषविषयत्वनियमात् अतएव पाकरक्ते 'श्यामोऽय' मितिधियोऽयथार्थत्वव्यवहारो लौकिकानां श्यामत्वस्य वर्तमानत्वेनावगमात्। एतेन–**

राजहंसः

मूले रक्तपित्तिनेति । रक्तयुक्तं वा रक्तवर्णं वा रक्तदूषकं वा पित्तं रक्तपित्तम् । **परमाण्वादेरनधिकरणकस्येति**। समवायेन परमाणुमत्ताप्रतीतेर्भ्रमत्वात्, निरवयवताया परमाणोः परमाण्वन्तरेण संयोगस्य व्याप्यवृत्तितयाऽऽधाराधेयभावानुपपादकत्वात् । वातादौ

भारती

यदि आप यह कहें कि जो वस्तु जिस प्रकार से प्रतीत होती है वह परमार्थतः (वस्तुतः) उसी प्रकार से व्यवस्थित अर्थात् सम्बद्ध हो तो तत्त्व शब्द से कही जाती है। (तात्पर्य यह है कि इदं रजतम् यहाँ पर रजतत्त्वेन रजत इदं पदार्थ से सम्बद्ध प्रतीत तो होता है किन्तु वस्तुतः सम्बद्ध नहीं है, अतः तत्त्व शब्द से उसका ग्रहण न होने से उक्त लक्षण अतिव्याप्त नहीं है ।) तो आपका यह कथन भी सङ्गत नहीं है । क्योंकि ''जो जैसा प्रतीत होता है'' यहाँ पर वह यदि प्रतीति काल से अन्य काल में भी वैसा ही अर्थात् वस्तुतः सम्बद्ध हो तो, वह तत्त्व ही कहा जायेगा । ऐसा यदि मानें तो — जो अपक्व श्यामघट भावी (अग्रिम काल में) पाक जन्य रक्त रूप से रक्त (लाल) होने वाला है। वह भी अपने श्यामता दशा काल में किसी रक्तपित्त रोग ग्रस्त मनुष्य द्वारा रक्ततया प्रतीत हो तो तत्त्व ही कहा जायेगा । अर्थात् तत्त्व शब्द से उसका भी ग्रहण होगा तो तद्विषयक ज्ञान में उक्त प्रमा लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी। (क्योंकि उस काल में वस्तुतः श्याम होने पर भी रक्ततया प्रतीत होता है और भावी काल में वह रक्त होने वाला भी है । अतः उक्त लक्षण अति व्याप्त हो जायेगा।) यदि एतद्दोषपरिहारार्थ लक्षण

कालविशिष्टताप्रतीतेरप्रमात्वापातः, नहि कालवैशिष्ट्येऽपि कालान्तरसम्बन्धः सम्भवी । अन्योपाध्यवच्छिन्नः सोऽन्योपाध्यवच्छिन्नेन सम्भन्त्स्यतीति चेत्; तर्हि दण्ड्यपि देवदत्तः

शारदा

श्यामत्वधीस्तत्र यथार्थैव, घटे कदाचित्तत्सत्त्वात्, 'इदानीमयं श्याम' इति प्रतीतेराकार एव नेत्यपास्तम् ; अतएवातीतानागतवह्न्यगोचरत्वे विद्यमानधूमेन 'पर्वते वह्नि'रित्यनुमितेर्वर्तमानवह्निविषयत्वादिदानीं वह्निनिश्चयेन वह्न्यर्थिप्रवृत्तिः, अन्यथेदानीं तत्सन्देहे प्रवृत्तिर्न स्यात्, 'यदा धूमस्तदा वह्नि'रिति व्याप्तावपि तदज्ञानदशायां प्रवृत्तेरन्यथानुपपत्ते''रित्युक्तम् । तत्सम्बन्धितावद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्सम्बन्धिता-वच्छेदककालावच्छिन्नतदवगाहिताकानुभवत्वं तत्प्रमात्वं तथाच नोक्तदोष इत्याशङ्क्याह यदेत्यादि । **यदा यद्यथाभूतं प्रतीयते तदा तत्तथा परमार्थतो व्यवस्थितं तत्त्वमित्युक्तावित्यर्थः। कालवैशिष्ट्येऽपीत्यपिना काल उपादेयः ।** कालान्तरेति । **कालेत्यर्थः । उक्तलक्षणे तत्पदेन कालस्य धर्तुमशक्यत्वात्तदंशे प्रमात्वव्यवहारो न स्यात्, नच कालः स्वयमेव स्वसम्बन्धितावच्छेदकः, तथात्वे स्वाधारताया अपि स्वस्मिन्नावश्यकत्वेनात्माश्रयात् । तदुक्तं प्रत्यक्षमणावभाववादे–''नच तत्समयविशेषे तत्समयविशेषयोगः, अभेदे सम्बन्धानुपपत्तावाधाराधेयभावाभावा'' दिति । एवं च घटाभावे घटो नास्तीत्यादावप्यनिर्वाच्यतैव गतिरिति भावः ।** अन्योपाध्यवच्छिन्न इति । **क्रियाप्रचयात्मकेन तत्तत्कालमात्रवृत्तिपदार्थविशेषेण वोपाधिनाऽवच्छिन्नो महाकाल एव प्रहरादिव्यवहारभाक्, तथाभूत एव च स 'इदानीं घटोऽत्रे' त्यादिप्रतीतिविषयः, उपाधेरेव प्रहरादिरूपतोक्ति-**

राजहंसः

त्वनवरतपरिस्पन्दमानपरमाण्वनधिकरणतायां यदि कश्चिद्विप्रतिपद्येत तदाप्यादिपदमुपात्तमेव, तेन स्वामित्वादिसंम्बन्धेनानधिकरणकं धनादिकमुपादेयम् । **तथाभूत एव चेति** । तथाभूतकालस्येदानीं घटोऽत्रेतिप्रतीतिविषयता तूपनयमहिम्ना वा मीमांसकवत् कालस्य सर्वेन्द्रियग्राह्यत्वाभ्युपगमेन वेत्यन्यत् ।

भारती

में यदा तदा विशेषण का निवेश कर - जिस समय जो जिस प्रकार प्रतीत होता है उसी समय वह वस्तुतः उसी प्रकार से व्यवस्थित (सम्बद्ध) हो तो तत्त्व कहा जायेगा। ऐसा कहें तो काल एवं काल सम्बद्ध विषयक प्रमा अप्रमा हो जायेगी। अर्थात् उस काल (कालसम्बद्ध विषयक प्रमा) में प्रमात्व व्यवहार न होना चाहिए, क्योंकि काल सम्बन्ध में काल सम्बन्ध नहीं होता, अन्यथा आत्माश्रय हो जायेगा ।

यदि कहें कि वस्तुतः काल के एक होने पर भी उपाधि के भेद से भिन्न होने से एक उपाधि से विशिष्ट काल एवं काल सम्बन्ध में भी अन्य उपाधि से विशिष्ट काल एवं काल सम्बन्ध रह जायेगा। अतः तद्विषयक प्रमा में अव्याप्ति नहीं है तो यह कहना उचित नहीं है क्योंकि यदि उपाधि भेद के द्वारा स्व में स्वयं रह सकता है तो दण्डी (दण्डविशिष्ट) देवदत्त कुण्डली (कुण्डलविशिष्ट) देवदत्त पर आरूढ़ होना चाहिए । किन्तु होता नहीं है,

कुण्डलिनं स्वमारोक्ष्यत्येव । उपाधिभेदेऽप्युपधेयस्यैकत्वा-निवृत्तेर्नैवमिति चेत्तुल्यम् । एतेन कारणं तत्त्वमिति निरस्तम् ;

शारदा

स्त्वौपचारिकीति भावः । दण्ड्यपि देवदत्तः = दण्डी देवदत्तोऽपि । तथा च दिनस्य प्रहर इत्यादि प्रतीतिर्नापलप्यते, अपि तु तस्या अनुपपन्नत्वमेव प्रदर्श्यते इति भावः । उक्तप्रतीतिरुपाध्योरेव सम्बन्धमवगाहते नतु काले कालस्येत्यपि केचित् । लक्षणे उपाधिरूपकालं निवेश्यैव कालांशेऽप्रमात्वं परिहरणीयमिति तु न वाच्यम्; उपाधिमहाकालयोरनुगतकालत्वस्याभावेन कालिकसम्बन्धावच्छिन्नाधारत्वस्य च कालत्वनिरूप्यत्वेन महाकालवैशिष्ट्यावगाहिधियोऽप्रमात्वापातादिति । एतेन घटाभावे घटो नास्तीत्यादावपि रूपभेदेनाधाराधेयभावो निरस्तः । तुल्यमिति । **क्रियाप्रचयाद्यात्मकोपाधिभेदेऽपि कालस्योपहितस्यैकत्वमेवेति भावः । उक्तलक्षणे नित्यविषयकप्रमाया नित्यांशेऽव्याप्तिरपि द्रष्टव्या, तत्सम्बन्धितावच्छेदककालाप्रसिद्धेः। अथ तत्सम्बन्धितानवच्छेदककालानवच्छिन्नत्वमेव निवेश्यम् , तथाच नेयमव्याप्तिः, नापि कालांशे, नापि श्यामतादशायां रक्तताप्रतीतावतिव्याप्तिः, भावितत्कालवृत्तौ घटे तत्कालावृत्तितादशायां तत्कालवृत्तिर्घटोऽयमिति प्रतीतेस्तु यद्यप्रमात्वं तदा तत्कालसम्बन्धितानवच्छेदकातत्कालावच्छिन्नतत्कालविषयताकत्वमेवेति नातिव्याप्तिरिति चेन्न, नित्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वस्य कालेऽप्रसिद्धौ तद्विरहस्यापि प्रसिद्ध्यसम्भवात् , नच देशे एव तत्प्रसिद्धिः देशकालसाधारणावच्छेदकताया असम्भवात्, व्याप्यवृत्तिनित्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वस्य देशेऽप्यप्रसिद्धेश्च, गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इत्यादावतिव्याप्त्यादिपूर्वोक्तदोषाच्चेति भावः ।** एतेनेति । **वक्ष्यमाणेनेत्यर्थः । कारणत्वस्य नियतपूर्वकालवृत्तित्वघटितत्वेन काले तदसम्भवेन कालप्रमाया अनुपग्रहप्रसङ्गेनेति तु नार्थः कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यसमानाधिकात्यन्ताभावप्रतियोगिता-नवच्छेदकावच्छिन्नत्वघटितस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषादिरूपस्य वा कारणत्वस्य काले निराबाधत्वात्** । कारणं तत्त्वमिति । **यद्यपीदमशक्यशङ्कम् , अन्यथाख्यातिमते प्रायो**

राजहंसः

कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेनेति । न च तादृशक्षणावच्छेदेन तादृशक्षयणस्यात्माश्रय-प्रसङ्गभयेनावृत्तित्वोपगमेऽत्यन्ताभावध्रौव्येण तस्य कारणत्वानुपपत्तिः; उपाधितयाऽवच्छेद-कताविवक्षायामदोषात् । तादृशावच्छेदकतापक्षेऽपि भेदखण्डनशारदोदितदिशाऽऽत्माश्रया-पत्त्यनुसन्धानेन तु स्वरूपसम्बन्धविशेषादिरूपस्येत्युक्तम् , स्वं न स्वीयमित्यनुभवेन

भारती

अतः यदि यह मानें कि उपाधि के भेद होने पर भी उपधेय के एक होने से दण्डी देवदत्त कुण्डली देवदत्त स्वयं पर आरूढ़ नहीं होता तो प्रकृत में भी - समाधान तुल्य है प्रकृत में काल के एक होने पर भी उपाधि के भेद को लेकर स्व अर्थात् काल में काल तथा काल सम्बन्ध नहीं रह सकता । क्योंकि क्रिया प्रचयाद्यात्मक उपाधि के भेद होने पर भी उपधेय काल एक ही है ।

सर्वस्य तथात्वे प्रमित्यभावेनात्माश्रयेण च प्रतिक्षणविशिष्ट-

शारदा

भ्रममात्रसङ्ग्राहकत्वात्, धर्म्यंशे प्रमात्वमादायेष्टापत्तौ त्वनुभवत्वमात्रस्य लक्षणत्वसम्भवात्। अख्यातिमतेऽपि प्रमात्वस्यानुभवत्वनियतत्वात्। असत्ख्यातिवादिमते चालीकविषयकविकल्पव्यावर्तकत्वसम्भवेपि भ्रमोपसङ्ग्राहकत्वात् शुक्त्यादौ सांवृतार्थक्रियाकारित्वस्य तन्मतसिद्धत्वात्। बौद्धमतप्रवेशापत्त्यभिधानस्यासाङ्गत्यापत्तेश्च। अतएव न योगाचारादिमतेऽपीदं लक्षणम्, अर्थक्रियाकारित्वस्य तन्मते पारमार्थिकत्वनियतत्वेन तद्विशिष्टविषयकानुभवस्य प्रमात्वेऽपि वक्ष्यमाणापत्त्यसङ्गतेः। इदन्तातिरिक्तांशेऽर्थक्रियाकारिविषयकत्वेनातिव्याप्तिरपि। रजते इदन्ताया एव तन्मतेऽलीकत्वात्। तथापि भ्रमविशेष्यातिरिक्तस्यालीकता, अत एव तस्य नार्थक्रियाकारिता, अपि तु तज्ज्ञानस्यैव, घटादिप्रपञ्चश्च चिरस्थायीत्युपेयुषामर्वाक्तनानां मते लक्षणमिदं शक्यशङ्कमेव, तथा सति बौद्धमतापादनस्यापि सङ्गतेः। न चाधिष्ठानस्यार्थक्रियाकारिणो भ्रान्तिगोचरत्वेनातिव्याप्तिः, कारणसामान्यातिरिक्ताविषयकानुभवत्वस्य लक्षणत्वात्। वस्तुतस्तु **लक्षणस्यैवंरूपताविवक्षायां प्राचीनान्यथाख्यातिमतेऽपि लक्षणमिदं सम्भाव्यते एव, तन्मते संसर्गस्य भ्रमविषयस्यालीकतोपगमेन भ्रममात्रस्य कारणातिरिक्तविषयकत्वात्, नव्यान्यथाख्यातिमते पुनर्भ्रमत्वस्य व्यधिकरणप्रकारकत्वेनैवोपगमात् संसर्गस्य संसर्ग्यनतिरेकोपगम इत्यन्यदेतत्। तथात्वे = कारणत्वे।** प्रमित्यभावेनेति। **तार्किकैस्तावत्पारिमाण्डल्यादेरकारणत्वमुपेयते एव, अन्यस्याप्यनित्यस्यान्ततः स्वध्वंसकारणत्वसम्भवेऽपि नित्यमात्रस्य कारणत्वमनिश्चितमेव, योगिज्ञानस्य विषयाजन्यत्वात्। अव्याप्तिसन्देहेनापि लक्षणासिद्धेरिति भावः। योगिज्ञानस्य वर्तमानविषयजन्यत्वमुपेत्याप्याह**—आत्माश्रयेण चेति। **कारणत्वे कारणत्वोपगमे आत्माश्रयः,**

राजहंसः

स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपताया अपि त्यागे त्वादिपदं पदार्थान्तरताभिप्रायेण। **प्राय इति।** एतत् फलं 'प्रमित्यभावेने'तिप्रतीकस्थटीकायामग्रे व्यञ्जितम्।

भारती

यदि कहें कि कारण ही तत्त्व शब्द का अर्थ है तो यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि तार्किक के मत में भी सभी वस्तु कारण नहीं होती। पारिमाण्डल्यादि को कारण नहीं माना जाता अतः पारिमाण्डल्यादिविषयक ज्ञान में उक्त प्रमा लक्षण अव्याप्त हो जायेगा। (उससे भिन्न वस्तुओं में भी अन्ततोगत्वा अनित्यवस्तु में स्वध्वंस के प्रति कारण मान भी लें तो भी नित्यमात्र की कारणता तो अनिश्चित ही है। अतः नित्य के ज्ञान में अव्याप्ति हो जायेगी। किञ्च कारणत्वविषयकज्ञान में प्रमात्व सम्पत्ति के लिए कारणत्व में कारणत्व को स्वीकार करें तो आत्माश्रय हो जायेगा। यदि कारणत्व में कारणत्व न मानें तो घटकारणं दण्ड इत्याकारक कारणत्व ज्ञान प्रमा नहीं होगी। क्योंकि वह ज्ञान कारण के अतिरिक्त कारणता को विषय करता है और वह घटकारणत्व में है नहीं। (कारणत्व को नाना मान कर एककारणत्व में अन्य कारणत्व के रहने से आत्माश्रय दोष का वारण

विश्वावश्यकारणत्वोपगमे दुरपवादार्थक्रियाकारित्वस्वरूपसत्त्व-लक्षणाङ्गीकारिजैनचरणशरणप्रवेशविडम्बनापादिदोषग्रासेन चेति। इति तत्त्वपदार्थखण्डनम् ।

शारदा

तदनुपगमे तु घटकारणं दण्ड इति ज्ञानं प्रमा न स्यात् कारणातिरिक्तकारणताविषयकत्वात्। न च कारणत्वे कारणत्वान्तरमेवेति नात्माश्रयो नाप्यव्याप्तिरिति वाच्यम्, अनुगतप्रतीतिव्यवहारबलात्तस्यैकस्यैवोपगन्तव्यत्वादन्यथा जातिमात्रोच्छेदापत्तेः, सङ्केतग्रहानुपपत्तेश्च । नच कारणताया नानात्वेऽपि कारणत्वत्वेनाखण्डोपाधिनानुगत-प्रतीत्याद्युपपत्तिरिति वाच्यम् ; पटकारणं घटकारणमित्यादौ कारणत्वस्य स्वरूपत एव भानेन कारणत्वत्वेनानुगतप्रतीत्याद्यनुपपत्तेः । नच कारणताया एकत्वे दण्डनिष्ठकारणता न पटनिरूपिता दण्डत्वावच्छिन्नकारणता न चक्रत्वावच्छिन्नेत्यादिप्रतीत्यनुपपत्तिरिति कार्यभेदेन कारणतावच्छेदकभेदेन च तद्भेद आवश्यक इति वाच्यम् ; वैतण्डिकं प्रत्येवं वक्तुमनौचित्यात्, तस्या एकत्वेपि दण्डवृत्तित्वविशिष्टत्वेन पटानिरूपितत्वस्य, दण्डत्वावच्छिन्नत्वेन चक्रत्वानवच्छिन्नत्वस्योपपत्तेश्चेति भावः । अभ्युपेत्यवादेनाह—प्रतिक्षणेति **। अयम्भाव, कारणत्वं स्वरूपयोग्यत्वं वा विवक्षितं फलोपधायकत्वं वा, आद्यस्य कारणतावच्छेदकधर्मवत्त्वरूपत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मवत्त्वोक्तावननुगमः, यावत्त-द्धर्मवत्त्वोक्तावसम्भव इति प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तिः, सदसतोः संसर्गस्या-प्रामाणिकत्वेनासत्संसर्गभानस्यासम्भवेन स्वरूपयोग्यत्वविशिष्टेतराविषयकत्वेन भ्रमेऽतिव्याप्तिश्च, द्वितीयस्य तु स्वाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वसम्बन्धेन फलवत्तारूपत्वेन तदभावकालीनधियः प्रमात्वव्यवहारानुपपत्तिः । तादृशफलवत्त्वस्योपलक्षणताया उपलक्ष्य-**

राजहंसः

कारणत्वत्वेनानुगतप्रतीत्याद्यनुपपत्तेरिति । उपलक्षणमिदं कारणत्वत्वविषयकधियः कारणातिरिक्तविषयकत्वेनाव्याप्तेरपि, कारणत्वत्वेऽपि कारणत्वोपगमेऽन्योन्याश्रयात् । **यत्किञ्चिद्धर्मवत्त्वोक्तावननुगम इति** । कारणताया अननुगमे तदवच्छेदकत्वस्यापि न सम्भवत्यनुगम इति तेन रूपेण निवेशेन न निस्तार इति भावः । **अवश्यं कारणताया इति।**

भारती

भी नहीं किया जा सकता,क्योंकि अनुगत प्रतीति व्यवहार के अनुरोध से कारणत्व को एक ही मानना होगा अन्यथा जाति मात्र का उच्छेद हो जायेगा और शक्ति ग्रह भी नहीं हो पायेगा।) (यहाँ विशेष शारदा में द्रष्टव्य है।) यदि कथञ्चित् कारणत्व में कारणत्व मान लिया जाय तो - तत्तत्क्षणावच्छिन्नवस्तु विषयक बोध में प्रमात्व व्यवहार की उपपत्ति के लिए प्रतिक्षण विशिष्ट सम्पूर्ण विश्व में कारणता माननी होगी। क्योंकि सर्व क्षणिकम् इस बौद्ध सिद्धान्त के अनुसार घटादि भेद सभी पदार्थ क्षणात्मक हैं और उत्तरोत्तर क्षण के प्रति पूर्वपूर्वक्षण कारण माना जाता है । अतः अवश्य स्वीकार्य अर्थकारिकारित्वरूपसत्व ही कारणत्व है ऐसा स्वीकार करने वाले बौद्धों के चरण शरण में प्रवेश मानना होगा। अर्थात् बौद्ध मत स्वीकार करना होगा। जो कि अपसिद्धान्त होने से तार्किक के लिए सम्भव नहीं है ।

अथानुभवत्वस्य जातित्वखण्डनम् ।

किञ्चेदमनुभूतित्वं नाम ? ज्ञानत्वावान्तरजातिभेदो वा,

शारदा

तावच्छेदकाननुगमेनासम्भवदुक्तिकत्वात् । एवञ्च तत्तत्क्षणावच्छिन्नवस्तुविषयकबोधस्य प्रमात्वव्यवहारोपपत्तये प्रतिक्षणविशिष्टस्य विश्वस्या**वश्यं कारणताया उपगमे दुरपवादस्य= अनिवार्यस्यार्थक्रियाकारित्वस्वरूपसत्त्वलक्षणाङ्गीकारिबौद्धचरणशरणप्रवेशात्मक-विलासस्यापादकेनापसिद्धान्ताख्यदोषेण ग्रासः । अर्थक्रियाकारित्वरूपसत्त्वोपगमस्तु तार्किकस्यासम्भवी, क्षणिकत्वप्रसङ्गात् तादृशसत्त्वव्यापकयोःक्रमयौगपद्ययोः स्थिरे प्रसङ्गविपर्ययाभ्यामसम्भवेन तादृशसत्त्वस्याप्यसम्भवात्तदुपपत्तये क्षणिकतोपगमध्रौव्यात्, अर्थक्रियाकारित्वं हि फलोपधायकत्वमेव, नच स्थिरे तत्सर्वदा दृश्यते इत्यसत्त्वापत्तिव्युदासाय पूर्वपूर्वक्षणस्यैवोत्तरोत्तरक्षणहेतुतोपेया स्यात्, क्षणस्तु घटादेर्नातिरिच्यते ''उत्पादानन्तरास्थायि स्वरूपं यच्च वस्तुनः । तदुच्यते क्षणः सोऽस्ति यस्य तत्क्षणिकं मतमि''ति सौगतोक्तेः। एवं च क्षणिकत्वे युगपदेव स्वोत्पाद्योत्पादनसम्भवः, स्थिरत्वे तु युगपदेव सर्वकरणे स्वध्वंसोऽपि कृतः स्यादिति स्थिरत्वव्याघातः, क्रमेण करणं तु प्रतिक्षणं स्वोत्तरस्वसजातीयोपधानं विना न निर्वहति, करणे विलम्बितक्रमस्तु मध्यक्षणेष्वसत्त्वप्रसञ्जकः। तस्मान्नोक्तार्थक्रियाकारित्वमेव सत्त्वमितिः भावः । कारणताननुगमपक्षे तु कारणताविशेषस्यैव निवेश्यत्वेन न सर्वोपसङ्ग्रह इत्यपि द्रष्टव्यम्।** इति तत्त्वपदार्थखण्डनम् ।

ज्ञानत्वेति । **ज्ञानत्वभिन्नस्तद्व्याप्यो जातिविशेष इत्यर्थः । संशयत्वस्मृतित्वादेर्जातित्वपक्षे तद्व्यावृत्तिफलं विशेषपदम् । स्मृतिलक्षणमिदन्तानवगाहित्वे**

राजहंसः

कारणताया इति । मूलेऽवश्येति शब्दो न मान्तः सन् समस्तः, ''लुम्पेदवश्यमः कृत्ये'' इत्येव नियमात्, अपि तु स्वरान्त एव, अत एव शेखरे 'अवश्यप्राप्ति'विति हल्सन्धौ प्रयुक्तम्, इत्थमेव चावश्यकशब्दोऽपि सिद्ध्यति, मान्तस्य योपधत्वाभावेन वुञोऽसम्भवात् । **प्रसङ्गविषर्ययाभ्यामिति।** कुशूलस्थतादशावच्छिन्नं बीजं यद्यङ्कुरसमर्थं स्यादङ्कुरोपधायकं स्यात्, न चैवं तस्मान्न समर्थमिति क्षेत्रस्थबीजात्समर्थाद्भेदसिद्धौ क्षणिकत्वे पर्यवसानम्, फलोपधायकत्वं हि यदि सत्त्वम्, तदा तदभावे व्योमकुसुमान्तेवासितां गतस्य कथं सामर्थ्यम् । एतेन योग्यतासद्भावेऽपि सहकारिविरहान्न कार्यमिति नात्र सावसरम्, तथा सति फलोधायकत्वस्य सत्त्वरूपतात्यागात्। **इति तत्त्वपदार्थखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

विशेषपदमिति । एतेनैवानुमितित्वादेरपि व्यावृत्तिः, तथाचानुभवामीतिधीसिद्धजातिनिवेशे तात्पर्यम् ।

भारती

यह अनुभूतित्व भी क्या है। क्या ज्ञानत्व से भिन्न ज्ञानत्व की व्याप्य जाति विशेष

स्मृतिव्यतिरिक्तज्ञानत्वं वा स्मृतिलक्षणरहितज्ञानत्वं वा, तदविदूरप्राक्कालोत्पत्तिनियतासाधारणकारणकबुद्धित्वं वा, न तावदाद्यः, तथाहि- अनुभूतित्वं नाम जातिरेकाऽभ्युपगम्येति कुतः ? । अनुभवामीति प्रत्ययानुगमवशादिति चेन्न ; माघमासीयनिशावसाने सितासितसरित्सम्भेदस्नायिनः सत्यपि

शारदा

सति तत्तावगाहिज्ञानत्वम्, स्मरामीति प्रतीतिसिद्धजातिविशेषो वा । प्रमुष्टतत्ताकत्वं तु न स्मृतेरिति वक्ष्यति । तदविदूरेति । **तत्पदेन लिलक्षयिषिता व्यक्तिः । अव्यवहितत्वमदूरत्वं क्षणद्वयसाधारणम् , उत्पत्त्या नियतं नियतोत्पत्तिकमिति यावत्, कदाचित्संस्कारोत्पत्त्यव्यवहितोत्तरक्षणे स्मृतेः सम्भवान्नियतपदम् । नचैवमपि तादृशस्मृतिव्यक्तेरुपग्रह एव; ज्ञानत्वव्याप्ययद्यज्जात्यवच्छेदेन स्वाश्रयाव्यवहितप्राक्क्षणावच्छिन्नोत्पत्तिकयत्किञ्चिदसाधारणकारणकत्वं तत्तज्जातिमत्त्वे तात्पर्यात् , सा च प्रत्यक्षत्वादिका, तादृशकारणं च व्याप्तिज्ञानादिकं सन्निकर्षश्च । शब्दप्रत्यक्षे च शब्दः श्रोत्रमनःसन्निकर्षो वा तथाभूत एव । एका = प्रत्यक्षादिमितिचतुष्टयसाधारणी । प्रत्ययानुगमः = प्रत्ययस्य प्रत्यक्षादिमितिचतुष्टयसाधारण्यम् । साक्षात्त्वमेवानुभवत्वं नत्वनुमित्यादिसाधारणं, अनुभवामीत्यनुव्यवसायस्य प्रत्यक्षे एवोत्पत्तेः, अनुमित्यादौ क्वाचित्कस्यानुभवत्वव्यवहारस्य स्मृत्यन्यज्ञानत्वेनाप्युपपत्तेः, तथाचानुमित्यादावनुभूतित्वजातिघटितप्रमात्वस्याव्याप्तिः, अनुभूतित्वस्यानुमित्यादावभ्युपगमे वाऽनुमित्याद्यात्मकस्य सुखादिनिश्चयस्य सत्त्वेऽप्यनुभवामीति प्रत्ययापत्तिरित्येतत्सर्वमाहं** माघेति । **स्वीकृतश्चैतत्सर्वं शिरोमण्यादिभिः**

भारती

है या स्मृति से भिन्न ज्ञानत्व है अथवा स्मृति लक्षण से रहित ज्ञानत्व अर्थात् तत्ता अविषयक एवं इदन्ता अविषयक ज्ञानत्व है। (स्मृतिलक्षण है- इदन्तानवगाहितत्तावगाहि ज्ञानत्व अथवा स्मरामि इत्याकारक प्रतीति सिद्ध जाति विशेष तद्रहित ज्ञानत्व ही अनुभवत्व है।) अथवा जिस ज्ञान के अव्यवहित पूर्व काल में उत्पत्ति से नियत है असाधारण कारण जिसका ऐसा बुद्धित्व ही अनुभवत्त्व है। (यहाँ बुद्धि शब्द से प्रत्यक्ष अनुमान आदि ज्ञान लेना है। उसके अव्यहित पूर्व असाधारणकारण शब्द से सन्निकर्ष-व्याप्ति ज्ञान आदि लेना है। इस प्रकार प्रत्यक्ष की उत्पत्ति सन्निकर्ष से नियत है। अनुमान (अनुमिति) की उत्पत्ति व्याप्ति ज्ञान से नियत है। शब्द प्रत्यक्ष में शब्द अथवा श्रोत्रमनः संन्निकर्ष है। तन्निष्ठबुद्धित्व प्रत्यक्षत्वादिरूप है। यही अनुभवत्व है। इसप्रकार लक्षण समन्वय है।

यहाँ प्रथम पक्ष- ज्ञानत्व की अवान्तर जाति अर्थात् ज्ञानत्व से भिन्न ज्ञानत्व की व्याप्य जाति ही अनुभूतित्व है यह नहीं कह सकते। क्योंकि प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति एवं शब्दएतच्चतुष्टय साधारणी एक अनुभूतित्व जाति ही क्यों मानी जाय अर्थात् तादृश जाति के होने में कोई प्रमाण नहीं है।

यदि कहें कि प्रत्यक्ष अनुमान उपमान एवं शब्दबोध में इन चतुष्टय में अनुभवामि इत्याकारक अनुगत प्रतीति होती है। वही तादृश अनुभवत्व जाति में प्रमाण है तो यह

शब्दबलाद्भाविस्वकीयस्वर्गसुखसम्प्रत्यये 'सुखमनुभवामी' ति प्रतीत्यनुदयात् , प्रत्युत शीतसम्भेदसम्भूतवेदनासंवेदनादेव, परस्त्रियं सम्भुञ्जानस्यास्तिककामुकस्य शब्दाधीने सत्यपि भाविनरकगमनानुभवनीययातनाधिगमे 'दुःखमनुभवामी' ति मतेरनुत्पत्तेः, प्रत्युत 'अमन्दमानन्दं संविदन् साम्प्रतमस्मी' ति प्रत्ययात्। यदि तु शब्दोपदर्शितव्याप्तिजममनुमानमनुभव एव स्यात् तर्हि सुखं दुःखं चानुभवामीति तयोः प्रत्ययः स्यात् ।

शारदा

पदार्थतत्त्वनिरूपणादाविति द्रष्टव्यम् । एवञ्च तत्र सुखमनुभवामीत्यनुव्यवसाये इष्टापत्तिकरणं मौढ्यमेव । सितासितसरित्सम्भेदः = प्रयागः । शब्दबलात् =''सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ती''तिशास्त्रप्रामाण्यग्रहात् । सम्प्रत्ययान्वय्यधीनत्वं पञ्चम्यर्थः। अतिक्लेशसाध्यादृष्टफलककर्मानुष्ठानाधीनभाविसुखविषयकानुमितेः शस्त्रप्रामाण्यग्रहं विनाऽनुपपत्तेः, तत्र प्रवृत्तेरपि तदधीनतायाः सर्वसम्प्रतिपन्नत्वात् । अत्र स्वर्गशब्दोऽग्रे नरकशब्दश्च न प्रीतिविशेषदुःखविशेषपरौ, सुखयातनापदयोर्वैयर्थ्यापत्तेः अपि तु लोकविशेषपरौ । शीतेति। **शीतजलसम्पर्कजन्यदुःखानुभवस्यैवानुव्यवसायादित्यर्थः।** आस्तिककामुकस्येति । **''आगम्यां न गच्छेत्,'' ''परपत्नीं समारुह्य नारकी स्यान्न संशय'' इत्यादिशास्त्रेऽप्रामाण्यग्रहरहितत्वे सति तीव्ररागवत इत्यर्थः । भावीतियातनान्वयि।** अधिगमे इति। **यदाह कश्चित्–''वेदशास्त्रपुराणानि सत्यानि यदि भामिनि । आवयोः सङ्गमो नूनं कुम्भीपाके भविष्यति'' ।। इति ।** व्याप्तिजमिति । **प्रयागस्नायित्वे भाविसुखनिरूपितव्याप्तेः परदारागामित्वे भाविदुःखनिरूपितव्याप्तेश्च ग्रहेण जन्यमित्यर्थः।**

भारती

नहीं कह सकते, क्योंकि माघमासीय रात्रि के अवसान काल अर्थात् प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में सिता (गङ्गा) असिता (यमुना) के सङ्गम अर्थात् प्रयाग में स्नानकर्त्ता मानव को ''सितासीते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति'' इत्यादिशास्त्र प्रामाण्यनिश्चय से भावि स्वर्ग सुख विषयक अनुमित्यात्मक निश्चय के रहने पर भी उस ज्ञान (अनुमिति) में सुखम् अनुभवामि ऐसी प्रतीति नहीं होती। प्रत्युत शीतजल के सम्पर्क से जायमान वेदना के अनुभव से ''दुःखमनुभवामि'' यही अनुभव (अनुव्यवसाय) होता है । इसी प्रकार-परस्त्री के उपभोगकर्त्ता आस्तिककामुक मानव को ''अगम्यां न गच्छेत्'' ''परपत्निं समारुह्य नारकी स्यान्न संशयः'' इत्यादि शास्त्र प्रामाण्य निश्चय से नरकपतनजन्य भावीयातना (दुःख) विषयक अनुमित्यात्मक निश्चय के रहने पर भी उस ज्ञान (अनुमिति) में दुःखमनुभवामि'' इत्याकारक अनुव्यवसाय नहीं होता, प्रत्युत ''अमन्दमानन्दं संविदन् साम्प्रतमस्मि'' (इस समय मैं पूर्ण आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ) यही अनुव्यवसाय होता है । यदि पूर्वोक्त शब्द (शास्त्र) प्रमाणों से प्रदर्शित - प्रयागस्नायित्वमें भावि सुख निरूपितव्याप्ति (यत्र भाविसुखम् तत्र तत्र प्रयाग स्नायित्वम् इत्याकारकव्याप्ति) एवं

अथ मन्यसे-साक्षात्कारमनुभवार्थमनुरुद्ध्य तयोर्नैवमधिगमव्यवहारौ, शब्दजानुमानापेक्षौ तु विमर्शकस्य स्यातामेव ताविति; तर्हि साक्षात्कारिणि ज्ञानेऽनुभवप्रत्ययध्यवहारौ साक्षात्वनि-

शारदा

अनुमानम् = अनुमितिः । तयोः = उक्तपुरुषयोः । स्यादिति । **कदाचिदपीत्यादिः । एतेन–सुखमनुमिनोमीत्यनुमितित्वोल्लेख्यनुव्यवसायसामग्र्या प्रतिबन्धात् अनुभवत्वोल्लोख्यनुव्यवसायाभाव इति–परास्तम्; सर्वदाऽनुमितित्वोल्लेख्यनुव्यवसायसामग्र्या नियन्तुमशक्यत्वात् । निर्विकल्पकस्यानुभवत्वेऽपि तत्रानुगतमतिभङ्गो न दर्शितः, निर्विकल्पकविषयतानां निरूप्यनिरूपकभावानापन्नत्वात्तदापन्नत्वेनैव विषयतावगाह्यनुव्यवसायविषयत्वस्य निर्विकल्पकेऽसम्भवात् । अनुभवार्थम् = अनुभवत्वविशिष्टम्। अनुरुद्ध्य = प्रतीत्य, तथा च साक्षात्त्वानुभवत्वाभेदग्रहनिबन्धन एवानुमितावनुभवामीतिप्रत्ययव्यवहारविरह इत्यर्थः । विमर्शकस्य तु तौ = तादृशप्रत्ययव्यवहारौ शब्दजानुमानापेक्षौ = शब्दोपदर्शितव्याप्तिग्रहजन्यानुमितिविषयौ स्यातामेव । तर्हि = सार्वजनीनानुभवत्वप्रत्ययव्यवहारयोः प्रत्यक्षे एवोपगमे।** अनुभवेति। **अनुभवत्वप्रकारकेत्यर्थः।**

भारती

परदारागामित्व में भाविदु:ख निरूपित व्याप्ति (यत्र यत्र भाविदु:खं तत्र तत्र परदारागामित्वम् इत्याकारक व्याप्ति) इन दोनों व्याप्ति ज्ञानों से जो क्रमश: - अहं भाविसुखवान् प्रयागस्नादित्वात् ''अहं भाविदु:खवान् परदारागामित्वात्'' इत्याकारक अनुमिति भी अनुभव होती तो उन दोनों मानवों को कभी भी उक्त अनुमितियों का सुखमनुभवामि'' दु:खमनुभवामि'' यह अनुव्यवसाय होना चाहिए था। किन्तु कदापि नहीं होता, अत: अनुमित्यादिचतुष्टय साधारण अनुभूतित्व नहीं है।

(यहाँ ग्रन्थकार का गूढ़ भाव यह है कि साक्षात्व ही अनुभवत्व है। अनुमित्यादि चतुष्टय साधारण अनुभवत्व जाति नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष में ही अनुभवामि यह अनुव्यवसाय देखा जाता है। यदि क्वचित् (कहीं) अनुमित्यादि में अनुभवत्व व्यवहार देखा भी गया तो वह स्मृतिभिन्न ज्ञानत्वेन रूपेण उपपन्न किया जाता है। और यदि अनुमित्यादि में अनुभूतित्व मान लिया जाय तो पूर्वोक्त स्थलों में अनुमित्यात्मक सुखादिनिश्चयों में अनुभवामि अनुव्यवसाय होना चाहिए, नहीं होता, अत: अनभूतित्व के अनुमित्यादिचतुष्टय साधारण जाति होने में कोई प्रमाण नहीं है। तथाच पूर्व प्रदर्शित अनुमित्यादि प्रमा में अनुभूतित्व घटित ''तत्वानुभूति: प्रमा'' इत्याकारक प्रमालक्षण की अव्याप्ति है। अव्याप्ति ग्रस्त होने से वह प्रमा का लक्षण नहीं हो सकता।)

प्रश्न - उक्त स्थल में अनुभवकर्त्ता साक्षात्कार ज्ञान को ही अनुभवार्थ अर्थात् अनुभवत्व विशिष्ट मानते हैं अतएव उनको उक्त अनुमित्यादि में अनुभवामि इत्याकारक अनुभवत्वप्रत्ययव्यवहार नहीं होते, किन्तु विचारक पुरूषों को तो शब्द प्रमाण प्रदर्शित व्याप्तिग्रहजन्य अनुमिति विषयक अनुभवत्वप्रत्ययव्यवहार होता ही है ।

बन्धनाविति तत्रानुभवत्वजातिकल्पनायां न प्रयोजनप्रमाणे इत्यनुभूत्यर्थभेदाल्लक्षणाननुगमो दोषः। अथ स्मृतिव्यावृत्तेन रूपेण यः प्रत्यक्षादिष्वनुभव इत्यनुगतावगमः स साक्षात्कारित्वादनुपपन्नः, ततश्च साक्षात्कार्यसाक्षात्कारिविशेषेषु साधारणमनुभूतित्वमन्यदेष्टव्यमित्युच्यते; तदपि न युक्तम् , पदार्थान्तरव्यावृत्तेन

शारदा

अनुभवत्वजातीति। **साक्षात्त्वभिन्नेत्यादिः। साक्षात्त्वस्य प्रत्यक्षज्ञाने क्लृप्तत्वादिति भावः। वस्तुतस्तु विमर्शकस्याप्यनुमित्यादावनुभवामीतिप्रतीतिरप्रामाणिकीति न तद्बलात्प्रत्यक्षादिसाधारणी जातिरिति साक्षात्त्वरूपानुभवत्वनिवेशेऽनुमित्याद्यसङ्ग्रहः, तद्व्यावृत्तस्य निवेशे च प्रत्यक्षासङ्ग्रह इत्याहा**नुभूत्यर्थभेदादिति। **अनुभवामीत्यनुव्यवसायबलात्प्रत्यक्षादिसाधारणजात्यसिद्धावपि तत्साधारणानुभवव्यवहारबलात्तत्साधारणजातिः सेत्स्यतीत्याशङ्कते** अथेति। **स्मृतिव्यावृत्तेन रूपेणावगमः = स्मृत्यन्यज्ञानत्वसमनियतविषयताको व्यवहारः। तादृशज्ञानत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षादिनिष्ठविषयताकत्वार्थकत्वे तु जातिकल्पनोदेतुमेव नालम्। साक्षात्कारित्वात् = साक्षात्कारित्वं विषयीकृत्य। स्मृत्यन्यज्ञानत्वेनैव प्रत्यक्षादौ सर्वत्रानुभवव्यवहारनिर्वाहेऽतिरिक्तजातिकल्पनायां न मानमिति परिहरति** पदार्थान्तरेति। **तदा पदार्थान्तरं परप्रष्टव्यम्।**

भारती

समाधान - विचारकों को उक्त अनुमित्यादि में अनुभवत्वप्रकारक प्रत्यय व्यवहार होने पर भी सर्वजनीन अनुभवत्व प्रकारक प्रत्ययव्यवहार तो प्रत्यक्ष ज्ञान में ही देखा जाता है। इसलिए यह अनुभवत्व प्रत्यय व्यवहार साक्षात्कारी ज्ञान में यदि साक्षात्त्व को निमित्त मानकर ही होता है तो साक्षात्त्व के द्वारा ही तादृश प्रत्यय व्यवहार के सम्पन्न हो जाने से साक्षात्व के भिन्न अनुभवत्व के जातित्व में (अनुभवत्व जाति में) न कोई प्रयोजन है और न कोई प्रमाण ही। वस्तुतस्तु विचारकों को भी अनुमित्यादि में अनुभवामि इत्याकारक प्रतीति अप्रामाणिक ही है इसलिए तादृश प्रतीति के अनुरोध से प्रत्यक्ष अनुमित्यादिचतुष्टय साधारण अनुभूतित्व जाति सिद्ध नहीं की जा सकती, अतः उक्त प्रमा लक्षण में अनुभूतिपद के अर्थद्वय मानकर - अर्थात् यदि लक्षण में साक्षात्त्वरूप अनुभवत्व निवेश करें तो अनुमित्यादिप्रमा में अव्याप्ति हो जायेगी, और यदि साक्षात्त्व से भिन्न अनुभवत्व का निवेश करें तो प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी। इसप्रकार लक्षण में अननुगम दोष हो जायेगा।

यदि कहें कि प्रत्यक्षादिचतुष्टय में "स्मृतिभिन्नम् ज्ञानम् अनुभव" इत्याकारक स्मृतिभिन्नत्वेन रूपेण अनुगतअनुभवत्वव्यवहार साक्षात्कारित्व को विषय मानने पर उपपन्न नहीं होता, इसलिए साक्षात्कारि (प्रत्यक्ष) असाक्षात्कारि (अनुमियादि) विशेषों में चतुष्टय साधारण साक्षात्व के अतिरिक्त अनुभूतित्व जाति माननी चाहिए। तो यह कहना भी युक्ति युक्त नहीं है। सर्वत्र उक्त अनुगत अनुभवत्व प्रत्यय व्यवहार तो स्मृति

रूपेण यस्तदितरेष्वनुगतप्रत्ययस्तद्व्यवहारो वा तत्र तदेव रूपं निमित्तं न तु जातिः काचित्तदनुरोधात्कल्प्यते तथा सत्यनक्षपदार्थेभ्यो घटादिभ्यो व्यावृत्तेन रूपेण विभीतकादिषु साम्यावगमा-दक्षत्वादिजातिकल्पना प्रसज्येत ।

शारदा

तदेव = स्मृत्यन्यज्ञानत्वादिकं । निमित्तं = विषयतावच्छेदकम् । असति बाधके इति शेषः । ''अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषुपाशके । रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे विभीतकतरावपि। चक्रे कर्षे पुमान् क्लीबं तुत्थे सौवर्चलेन्द्रिये'' इति मेदिन्यभिधानादक्षशब्दो नानार्थ इत्यनक्षपदार्थघटादिभिन्नत्वेन रूपेणाक्षपदार्थानां साम्येऽपि तत्सर्वसाधारणी काचिज्जातिर्नोपेयते, अनन्यथासिद्धसाधकाभावात् , अन्यथैकशक्यतावच्छेदक-सम्भवेनाक्षपदस्य नानार्थत्वमेव भज्येत, नचानक्षभिन्नत्वेनानुगतव्यवहारोपगमे तद्घटकतायाऽक्षत्वं विभीतकादिसाधारणमभ्युपगन्तव्यं स्यादिति – वाच्यम् ; अक्षपदवाच्यत्वस्यैव वाच्यतावच्छेदकभेदभिन्नस्य कथञ्चिद्वाच्यत्वत्वेनानुगतस्य तद्घटकत्वात्। अक्ष इति विधिमुखप्रत्ययोपपत्तिरप्येवमेव । पट इत्यादि-व्यवहारस्यापटव्यावृत्तत्वादिसमनियतविषयताकत्वेऽपि विधिमुखप्रत्ययस्य निषेधेना-निर्वाहात् व्यावृत्तिग्रहस्य विशिष्टबुद्धिफलत्वेऽपि तद्विषयताया व्यावृत्तावप्रामाणिकत्वात्

भारती

भिन्नत्वेन रूपेण (स्मृति भिन्नत्वरूप को निमित्त मानकर) ही हो सकता है। उसके लिए अतिरिक्त अनुभूतित्व जाति कल्पना करने में कोई प्रमाण नहीं है।

क्योंकि स्मृतिभिन्नप्रत्यक्षादिचतुष्टय में स्मृति भिन्न ज्ञानत्वेन रूपेण जायमान उक्त अनुगत अनुभवत्व प्रत्यय व्यवहार तो स्मृति भिन्न ज्ञानत्व को निमित्त मानकर ही सम्पन्न हो सकता है। अतः तदनुरोधेन अनुभूतित्व नामक किसी जाति की कल्पना नहीं की जा सकती है। अन्यथा (तद्भिन्न पदार्थों में तद्भिन्नत्व के द्वारा ही व्यवहार के उपपन्न होने पर भी यदि अतिरिक्त जाति की कल्पना करना आवश्यक मानें तो) अनक्ष घटादि से भिन्न विभीतकादि (वहरे आदि) में अनेकार्थ अक्ष शब्द का अनुगत व्यवहार अनक्षभिन्नत्वेन रूपेण सम्पन्न होने पर भी अक्षत्वजाति की कल्पना भी करनी पड़ेगी।

(तात्पर्य यह है कि - ''अक्षोज्ञानात्मशकटव्यवहारेषुपाशके । रूद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्वे 'विभितकतरावपि। चक्रे कर्षे पुमान् क्लीबं तुत्थे सौवर्चलेन्द्रिये'' इस मेदिनी वाक्य के अनुसार अक्ष शब्द अनेकार्थक है । इन सब का अनक्षघटादिभिन्नत्वेनरूपेण अनुगत व्यवहार मानकर उक्तनेकपदार्थ साधारण कोई अक्षत्व जाति स्वीकार नहीं की गई है क्योंकि उसका अनन्यथासिद्धसाधक प्रमाण नहीं है। यदि अक्षत्व जाति मानेङ्गे तो एकशक्यतावच्छेदक होने से अक्ष पद का नानार्थकत्व भग्न हो जायेगा। तथाच जैसे वहाँ अक्षत्वजाति नहीं मानी जाती उसी प्रकार यहाँ अनुभूतित्व जाति भी नहीं मानी जा सकती ।

शारदा

पटादिपदस्यैकशक्यतावच्छेदककत्वेन पटादिपदवाच्यत्वापेक्षया लाघवेनाखण्डस्य पटत्वस्यैवानुगतव्यवहारनियामकस्य तादृशव्यावृत्तत्वघटकत्वाच्च न पटत्वादेरप्यसिद्धिराशङ्क्येति भावः । यद्वा-अनुभव इत्यनुगतव्यवहारस्य स्मृत्यन्यज्ञानत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षादिनिष्ठविषयताकत्वात् साक्षात्त्वाभेदस्यानुभूतित्वेऽसम्भवात् तद्भिन्नमेवानुभूतित्वं वाच्यमिति शङ्कार्थः। तद्भिन्नमनुभूतित्वं स्मृत्यन्यज्ञानत्वं वा विवक्षितम्, चतुष्टयसाधारणी जातिर्वा, आद्ये चतुष्टयसाधारणजातिनिरसनस्य प्रकृतस्य निर्वाहादिष्टापत्तिः। द्वितीयेऽन्यविषयकज्ञानस्यापरत्र प्रमाणत्वासम्भवः, अन्यथाऽनक्षपदार्थव्यावृत्तत्वावच्छिन्नविषयकज्ञानस्याक्षत्वजातौ प्रमाणत्वप्रसङ्ग इति समाधानार्थः। यदि चाक्षत्वस्य जातित्वे तेजस्त्वादिना साङ्कर्यं बाधकमपि, तदा प्रकृतेऽपि साङ्कर्यं वक्षति । ननु विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकतयाऽनुभूतित्वं चतुष्टयसाधारणी जातिः सिद्ध्यतु, अन्यथा विशेषणज्ञानासत्त्वेऽनुमित्यापत्तेरिति चेन्न; विशेषणज्ञानासत्त्वे परामर्शस्यैवाभावेनापत्त्ययोगात्। नच पृथिव्यामितरभेद इत्यप्रसिद्धसाध्यकानुमित्युत्पादकाले साध्यविशेषणकानुमित्यापत्तिवारणाय विशेषणधीजन्यतावच्छेदकस्यानुमितिसाधारण्यमावश्यकमिति वाच्यम्; पृथिवीतरभिन्नेति साध्यविशेषणकानुमितेर्विशिष्टवैशिष्ट्यविषयकत्वेन विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यत्वेन तेन विनाऽसम्भवात् । नच विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकतयाऽनुमित्यादिसाधारणजातिसिद्धिरिति वाच्यम् ; साध्यतावच्छेदकविशिष्टवैशिष्ट्यविषयकानुमितिं प्रत्यन्वयिपरामर्शस्यैव कारणत्वेन तद्विरहेणाप्रसिद्धसाध्यकस्थले तादृशानुमित्यनापत्तेस्तत्साधारणस्य विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकस्याकल्पनीयत्वात्, प्रत्यक्षानुमितिसाधारणकार्यकारणभावस्यैकस्य द्वयोर्वा कल्पनेऽपि च तेषां शाब्दोपमितिसाधारण्ये मानाभावेन चतुष्टयसाधारणजातिसिद्ध्यसम्भव एव । वस्तुतस्तु–अन्यविशेषणज्ञानेनापरविशिष्टबुद्धिवारणाय, अन्याविशेषणतावच्छेद-कज्ञानेनापरविशिष्टवैशिष्ट्यधीवारणाय च विशिष्यैव कार्यकारणभावोपगमध्रौव्येण सामान्यकार्यकारणभावस्याप्रामाणिकत्वेन न तद्बलात्प्रमामात्रानुगतजातिसिद्धिसम्भावनापीति शिवम् ।

यद्यपि विरुद्धसंस्थानव्यङ्ग्यतुरगत्वविहगत्वादेर्विरुद्धसामग्रीप्रयोज्यनीलत्वपीतत्वादेश्च जातेः सङ्करो नेष्यते, प्रमाणे सति तु सङ्कीर्णजातिरुपेयते एव, यथा शुक्लपीतादिसाधारणमुद्भूतत्वम् , तज्जातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातेस्तज्जातिव्यापकत्वमितिनियमस्याप्रयोजकत्वादिति बौद्धाधिकारशिरोमणिगादाधर्यादावुक्तम्, एवं जातेरांशिकत्वमपि सति प्रमाणे स्वीक्रियते एव, अतएव अयं स्थाणुर्नवेत्यादौ धर्मिविषयकत्वावच्छिन्नकोटिविषयकत्वावच्छेदेन वृत्तिमतः संशयत्वस्य जातित्वं केवलान्वयिगादाधर्यामुक्तम् । एवञ्चानुभवत्वस्येदन्ताविषयकत्वावच्छेदेन स्मृतित्वस्य च तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यभिज्ञायामुपगमे आंशिकत्वं परस्पराभावसमानाधिकरणयोरनुभवत्वस्मृतित्वयोरेकत्र वर्तमानतया साङ्कर्यं च प्राप्तमपि नानुभवत्वस्य जातितायां

इतोऽपि नानुभूतित्वं नाम स्मृतिव्यावृत्ता जातिः, तथाहि- 'घटः स एवाय' मिति तावत्प्रत्यभिज्ञा जायते, सा किं स्मृत्यनुभवरूपं ज्ञानद्वयम् ; एकमेव वा विज्ञानमंशे स्मृतिरंशे चानुभवः, उत स्मृतिरेव; आहोस्विदनुभव एव; आद्ये य एष प्रत्यभिज्ञायां प्रागवस्थाविशिष्टादिदन्ताविशिष्टस्याभेदः प्रकाशते

शारदा

बाधकतामालम्बेत, तथापि प्राचीनैः साङ्कर्यांशिकत्वयोर्जातिबाधकताया उपगतत्वात्तन्मतानुसारेणानुभवत्वे ते आख्यातुमाह इतोऽपीति । ज्ञानद्वयमिति । **संस्कारेन्द्रियरूपसामग्रीभेदात् पारोक्ष्यापरोक्ष्यलक्षणविरुद्धधर्माध्यासाच्च प्रत्यभिज्ञा नैकं ज्ञानम् , अपि तु तत्तेदन्तादिविशिष्टविषयकं ज्ञानद्वयमेव भेदाग्रहसहकृतं विशिष्टव्यवहारनिदानमिति भावः। अंशे = तत्ताविशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन । अंशे = इदन्ताविशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन । प्रत्यभिज्ञायामेकत्वस्य तत्ताविशिष्टेदन्ता-विशिष्टयोरभेदविषयकत्वस्य चानुभविकत्वाज्ज्ञानद्वयात्मकताया असम्भवदुक्तिकत्वात् पारोक्ष्यापरोक्ष्ययोश्चावच्छेदकभेदेन व्यवस्थासम्भवात् इन्द्रियसम्प्रयोगसंस्कारयोः सम्भूयकारित्वेन सामग्रीभेदाभावाच्च प्रत्यभिज्ञाया एकत्वमेव, अन्यथा स्थैर्यमात्रोच्छेदप्रसङ्ग इति भावः ।** स्मृतिरेवेति । **यदीन्द्रियजन्यत्वेनानुभवत्वं प्रत्यभिज्ञायास्तार्किकैरुपेयते तदा संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वमेव किन्न स्यादित्यभिमानः ।** अनुभव एवेति । **संस्कारस्य निर्व्यापारत्वेन करणताया असम्भवात् तत्सहकृतेन्द्रियस्यैव सन्निकर्षव्यापारकस्य प्रत्यभिज्ञायां करणत्वात् 'अनुभवामी'त्यनुव्यवसायाच्च, अनुभवत्वस्य जातित्वेनांशिकत्वस्यासम्भवाच्च प्रत्यभिज्ञायां अनुभवत्वमेवेति केचित्तार्किकाः । तत्तास्मृतिजन्यमेव प्रत्यभिज्ञानं नतु संस्कारजन्यम्, अन्यथा पूर्वानुभवस्यैव संस्काररूपव्यापारद्वारा करणत्वेन प्रत्यभिज्ञाया ज्ञानकरणकत्वापत्त्या परोक्षता स्यात्, अनुमानादौ ज्ञानकरणकत्वस्य परोक्षतानैयत्यावधारणात्, तत्तास्मृतिस्तु कारणमपि निर्व्यापारत्वान्न करणमिति नोक्तदोष इत्यपरे तार्किकाः । सर्वथाऽप्यनुभव एव तन्मते प्रत्यभिज्ञानमिति । प्रागवस्था = अतीतसमयसम्बन्ध-स्तच्छब्देनोल्लिख्यमानः। इदन्ता = वर्तमानसमयसम्बन्धः । प्रत्यभिज्ञायां प्रकाशते =**

राजहंसः

बाधकतामालम्बेतेति । अथात्रापि संस्कारेन्द्रियाद्यात्मकविरुद्धसामग्रीप्रयोज्यतया कथं स्मृतित्वानुभूतित्वयोः साङ्कर्यं न बाधकम् , अन्यथा नीलत्वपीतदेरपि सङ्करः किमिति नेष्यते इति चेन्न तत्तांशे इदन्तांशे च स्मृतित्वस्यानुभूतित्वस्य चेहानुव्यवसीयमानत्वे सामग्रीविरोधस्यैवासिद्धेः, सम्भूयकारित्वसम्भवादिति भावः ।

भारती

किञ्च वक्ष्यमाण सङ्कर दोष के कारण भी स्मृति से भिन्न अनुभवत्व जाति नहीं हो सकती । सङ्करदोष का प्रकार यह है - ''घटः स एवायम्'' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा होती है उसमें यह प्रश्न है कि - क्या वह (प्रत्यभिज्ञा ज्ञान) स्मृति अनुभव रूप ज्ञानद्वय है ? या ज्ञान एक ही है उसी में एक अंश स्मृति और एक अंश में अनुभव है? अथवा स्मृति ही है । अथवा अनुभव ही है ।

स न स्मृतावन्तर्भावयितुं शक्यः अननुभूतचरत्वेन संस्कारानुपनेयत्वात् । अतएव न तृतीयः । नाप्यनुभवेऽन्तर्भावयितुमसौ शक्यः, प्रत्यभिज्ञानकालेऽनुभवेन प्रागवस्थाया असंवेदनात् ; संवेदने वा अनुभव एवेति शेषपक्षेऽन्तर्भावः स्यात् सचाग्रे दूषयिष्यते । अतएव न द्वितीयः। प्रागवस्थाविशिष्टाभिन्नत्वांशेऽनुभवत्वस्वीकारश्चेत् प्रागवस्थावैशिष्ट्यमप्यनुभवविषये एव निविष्टमिति चरमपक्षे

शारदा

प्रत्यभिज्ञानिरूपितविषयताश्रयः । यद्यपि ज्ञानद्वयवादिनं प्रति नैतद्वक्तुं युक्तम्, तथाप्यनुभवानुरोधेनेदमुक्तम् । स्मृतौ = स्मृतिविषये । संस्कारानुपनेयत्वात् = संस्काराविषयत्वात् । उक्ता भेदप्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टस्यैव संस्कारविषयत्वं, नत्वनुयोगितावच्छेदकविशिष्टस्येत्यर्थः। अनुभवे = अनुभवविषये । असौ = निरुक्ताभेदः। असंवेदनादिति । **संस्कारे ज्ञाने वा प्रत्यासत्तित्वस्य निरसिष्यमाणत्वादिति भावः । तदभ्युपगमेनाह** संवेदने वेति । स्यादिति। **प्रागवस्थायां हि स्मृतेरवकाशः, सा चानुभवेनैव गोचरीकृतेति भावः अतएव = आंशिकस्मृतित्वानुभवत्वाभ्यामपि विशिष्टेन निरुक्ताभेदावगाहनासम्भवादेव । ज्ञानप्रत्यासत्त्याऽनुभवस्य तादृशाभेदावगाहितामुपेत्याह**

भारती

इनमें यदि प्रथम पक्ष स्वीकार करें तो - प्रत्यभिज्ञा में जो यह (अनुभवसिद्ध) प्रागवस्थाविशिष्ट (पूर्वकालिक) से इदन्ताविशिष्ट (एतत्कालिक) का अभेद भासित होता है उसका अन्तर्भाव कहाँ करेंगे । उसका अन्तर्भाव स्मृति के विषय में नहीं कर सकते, क्योंकि वह (अभेद) पूर्वकाल में अनुभूत न होने से संस्कार का विषय नहीं है। (संस्कार का विषय ही स्मृति विषय होता है अभेद संस्कार का विषय न होने से स्मृति का विषय भी नहीं हो सकता।) अतएव (पूर्व काल में अननुभूत अभेद संस्कार का विषय न होने से) प्रत्यभिज्ञा स्मृति ही है। यह तृतीय पक्ष भी असङ्गत है। उक्त अभेद का अन्तर्भाव अनुभव के विषय में भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा काल में सन्निकर्ष के न होने से प्रगवस्था (पूर्वकालसम्बन्ध तत् शब्द से उल्लिख्यमान) अनुभव से भासित नहीं होती। और यदि उस अनुभव से भासित मान लिया जाय तो ''प्रत्यभिज्ञा अनुभव ही है'' इस चतुर्थ पक्ष में अन्तर्भाव हो जायेगा, जिसका निरास आगे करेङ्गे।

अतएव (आंशिक स्मृति एवं अनुभव के द्वारा भी उक्त भेद भासित न होने से ही) प्रत्यभिज्ञात्मक एक ही ज्ञान एक अंश में स्मृति एवं दूसरे अंश में अनुभव है यह द्वितीय पक्ष भी युक्ति युक्त नहीं है। क्योंकि यदि प्रागवस्था विशिष्ट के साथ इदन्ताविशिष्ट के अभेद अंशों को अनुभव का विषय मानें तो विशेषणतया प्रविष्ट प्रागवस्था का वैशिष्ट्य भी अनुभव का ही विषय हो जायेगा। अतः उसका अन्तिम पक्ष में ही अर्न्तभाव हो जायेगा।

प्रवेशः। अथ प्रागवस्थाविशिष्टादभिन्नः' इत्ययमर्थोऽप्यनेकांशः, तत्र 'प्रागवस्थाविशिष्टः' इत्यत्रांशे स्मृतित्वम्, 'अभिन्नः' इत्यंशे चानुभवत्वमित्युच्यते; एवं तर्हि 'प्रागवस्थाविशिष्टः सः, इदन्ताविशिष्टोऽभिन्नश्चायमि'ति स्मृत्यनुभूतिभ्यामावेदितं भवति, प्रागवस्थाविशिष्टाश्रयतया त्वभेदः केनापि न प्रकाशित इति 'य एव प्रागवस्थाविशिष्टः स एवायमि'ति प्रत्यभिज्ञायाः शरीरं

शारदा

प्रागवस्थाविशिष्टेति । **चरमपक्षे प्रवेशं वारयितुमाह** अथेति । **इत्ययमर्थोऽप्यनेकांशः = इत्येतद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यभिज्ञायां न स्मृतित्वमात्रं नाप्यनुभवत्वमात्रम्** । अभिन्न इति। **प्रागवस्थाविशिष्टादितिपञ्चम्योल्लिखिता प्रतियोगिता तु संसर्गत्वादनुपस्थितापि स्यादनुभवविषयः, एवमभेदानुयोगित्वयोरपि संसर्गतयाऽनुभवविषयता, संसर्गांशे सन्निकर्षस्याहेतुत्वादिति भावः** । एवमिति । **स एवायं घट इत्यत्र स इत्यंशेन प्रागवस्थाविशिष्टः, अयमित्यंशेन चेदन्ताविशिष्टोऽभिन्न इति स्मृत्यनुभूतिभ्यामांशिकाभ्यामावेदितं भवतीति योजना । तेन स इत्यस्यायमित्यस्य च प्रागवस्थाविशिष्टेदन्ताविशिष्टार्थकत्वेऽपि नासङ्गतिः, नवोपरितनशङ्काग्रन्थासङ्गतिः । प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टस्यानुभवाविषयत्वेऽभेदस्य किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन तद्विषयत्वानुपपत्तेः, न चेष्टापत्तिः, प्रत्यभिज्ञाभिलापविरोधादित्याशयः। विशिष्टाश्रयतया = विशिष्टप्रतियोगिकतया । धर्म्याश्रयताया = धर्म्यनुयोगिकतया ।**

राजहंसः

नासङ्गतिरिति । ननूद्देश्यविधेयभावसामञ्जस्यायायमित्यनेन वर्तमानसमयावच्छिन्नमुद्दिश्य वर्तमानानुभवविषयत्वरूपेदन्तावैशिष्ट्यामभेदश्च विधीयताम्, एव स इत्यनेनातीतसमयावच्छिन्नमुद्दिश्य पूर्वानुभवविषयत्वम्, वैपरीत्येन वोद्देश्यविधेयभावः, इत्यत आह—**नवोपरितनेति** । एवं सति प्रागवस्थाविशिष्टः स इत्यस्य निराकाङ्क्षतया न प्रतियोगिविधयाऽभेदान्वयित्वं स्यात्, अभेदांशस्य साकाङ्क्षत्वमात्रेणान्वयोपगमे त्विदन्ताविशिष्टादभिन्न इदन्ताविशिष्ट इत्येतद्विषयकत्वं कुतो न प्रत्यभिज्ञानस्य स्यात्, इदन्तयोर्भेदस्योक्तत्वेन तथान्वयबाधेऽपि बाधकाभावात्, अंशैक्येन च तत्ताविशिष्टादपि सन्निधानोत्कर्षात् । इदन्त्वत्वस्यैक्येन कथं तथा बोध इति तु न वाच्यम्, तस्य सोऽयमित्यादिप्रत्यभिज्ञानेऽपरिस्फुरणादिति भावः ।

भारती

प्रश्न – "प्रागवस्थाविशिष्ट से अभिन्न है" इस वाक्य के प्रतिपाद्य अर्थ में भी अनेक (दो) अंश हैं । उसमें प्रागवस्थाविशिष्ट" इस अंश में स्मृति है और "अभिन्न" इस अंश में अनुभव है।

समाधान – यदि इस प्रकार मानें तो "प्रागवस्थाविशिष्ट वह है" यह अर्थ स्मृति से प्रकाशित है और "इदन्ताविशिष्ट अभिन्न (अभेदाश्रय) यह है" यह अर्थ अनुभव के द्वारा प्रकाशित होता है । किन्तु प्रागवस्थाविशिष्टप्रतियोगितया अभेद तो किसी के द्वारा भी प्रकाशित नहीं है अर्थात् न स्मृति के द्वारा और न अनुभव के द्वारा ही प्रकाशित है । ऐसी

न स्यात् । अथानुभवेन योऽसावनुभूयमानधर्म्याश्रयतयाऽभेदो बोधितः स कोट्यन्तरमनालम्ब्य न पर्यवस्यतीति केनचित्खलु कस्यचिदभेदो भवति, ततः स्मृत्यंशोपनीतमेव सन्निधानात्कोट्यन्तरं प्रागवस्थाविशिष्टरूपमालम्बते इत्यभेदस्य प्रागवस्थाविशिष्टाश्रयतया सिद्धिरिति। तदेतत्तुच्छतरम् ; कोट्यन्तरमालम्बते इति किं कोट्यन्तराश्रितो भवति ? उत कोट्यन्तराश्रिततया ज्ञायते इति।

शारदा

कोट्यन्तरमनालम्ब्य = कञ्चित्प्रतियोगिनं विना, इति = यतो न पर्यवस्यति = सम्भवति । उपनीतं = विषयीकृतं सन्निधानात् = स्वविषयकज्ञानविषयत्वात् । स्वं = अभेदः । कोट्यन्तरं प्रागवस्थाविशिष्टरूपं = प्रागवस्थाविशिष्टात्मकं कोट्यन्तरम् । सिद्धिरिति। **यद्यप्येवं प्रत्यभिज्ञोत्तरं ज्ञानान्तरमेवाभेदविषयकं स्यात्, तच्चानुपलम्भबाधितम् प्रत्यभिज्ञा च पूर्वं निष्प्रतियोगिकतया अभेदं विषयीकृत्य पुनः सप्रतियोगिकतया तं विषयीकर्तुमक्षमा, विरम्यव्यापाराभावात्, पूर्वमेव तस्यास्तत्ताविशिष्टप्रतियोगिकाभेदविषयकत्वोपगमे चानुभवांशस्य तत्ताविशिष्टत्वविषयकत्वं दुर्वारमिति चरमपक्षे प्रवेशस्तथाप्यापातत एवेयमाशङ्केति द्रष्टव्यम्। भवति = उत्पद्यते । तत्स्मृतौ नान्तर्भावयितुं शक्यम् = तस्यांशिकस्मृतिरूपत्वं वक्तुमशक्यम्। एवमांशिकानुभवरूपत्वमपि । एवं प्रत्यभिज्ञाया अभेदविषयकत्वासम्भवे स्थैर्यमात्रोच्छेदोऽपि द्रष्टव्यः, साङ्कर्यञ्चात्र पक्षे स्पष्टमेवेत्यनुभूतित्वं न जातिः । गुणे जात्यनङ्गीकारेऽपि स्मृत्यन्यज्ञानत्वरूपस्यानुभूतित्वस्य निरसिष्यमाणत्वेनाखण्डोपाधितैव वाच्या, युक्तेस्तौल्यात्तु साङ्कर्यस्य तब्दाधकत्वमपि, अतएव "साङ्कर्यमुपाध्योरपि दोषाय यदि तदा**

भारती

स्थिति में "जो प्रागवस्थाविशिष्ट है वही इदन्ताविशिष्ट है" यह प्रत्यभिज्ञा का स्वरूप नहीं होना चाहिए ।

प्रश्न – अनुभव के द्वारा जो यह अनुभूयमान धर्मि अनुयोगिकतया अभेद बोधित (भासित) होता है, वह किसी प्रतियोगी के बिना रह नहीं सकता, क्योंकि अभेद तो किसी के साथ किसी का ही होता है । इसलिए प्रत्यभिज्ञा ज्ञान के स्मृति रूप अंश से विषयीकृत अभेद सन्निहित होने से अर्थात् स्वविषयक ज्ञान का विषय होने से प्रागवस्थाविशिष्टरूप कोट्यन्तर (विषयान्तर) को ही प्रतियोगिरूप से अवलम्बन करेगा । इस प्रकार प्रागवस्थाविशिष्ट प्रतियोगिकतया अभेद सिद्ध हो जायेगा ।

समाधान – यह आपका कथन भी उत्यन्त निःसार है । कारण कि- कोट्यन्तरमालम्बते (वह अभेद प्रतियोगिरूप से कोट्यन्तरका आलम्बन करता है) इस कथन का क्या अर्थ है – क्या वह अभेद प्रागवस्थाविशिष्टरूप प्रतियोगि के आश्रित होकर उत्पन्न होता है अथवा उसके आश्रित होकर ज्ञात होता है ।

नाद्यः, अभेदस्येदानीं प्रागवस्थाविशिष्टधर्म्याश्रयेणोत्पत्तौ पूर्वं प्रागवस्थाविशिष्टे-दन्ताविशिष्टयोर्भेदः स्यात् । द्वितीये तु यदेव कोट्यन्तराश्रिततया इदन्तावच्छिन्नधर्म्यभेदस्य ज्ञानं तत्स्मृतौ नान्तर्भावयितुं शक्यं नाप्यनुभवांशे इत्युक्त एव दोषः।

किञ्च, यदा प्रत्यभिज्ञानं स इत्यंशे स्मृतिः, अयमित्यंशे चानुभव इत्येकं ज्ञानमभ्युपेयते तदा धर्मिणमादायापि स्मृत्यनुभवसङ्करो दुर्वारः। तथाहि संस्कारेण तत्तामात्रं वोपनीयते तत्ताविशिष्टो वा धर्मी । आद्ये 'स' इतिप्रत्यभिज्ञाया शरीरं न स्यात् , तत्तायाः केवलायाः संस्कारेणोपनीतत्वात् । नापि द्वितीयः,

---

शारदा

तत्राप्याश्रयभेदप्रसङ्ग'' इति खण्डनोक्तिर्मञ्जूषायामुद्धृता, सा चेदानीन्तनपुस्तके नोपलभ्यते इत्यन्यदेतत् ।

ननु तदभावसमानाधिकरणस्य तत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिनस्तत्सामानाधिकरण्यमात्रं न जातितां विरुणद्धि, अपि तु तदवच्छेदकावच्छिन्नतदधिकरणनिरूपितवृत्तित्वमेव, तथाच नानुभूतित्वस्य जातित्वे बाधकमित्याशङ्क्य धर्मिविषयकत्वावच्छेदेनैव प्रत्यभिज्ञायां स्मृतित्वानुभूतित्वे उपपादयति–किञ्चेति। **स इत्यंशे = तत्ताविशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन। एवमग्रेऽपि। इत्येकं= इत्येवमेकं। धर्मिणमादाय = धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन। स्मृत्यनुभवेति भावप्रधानम्, एवमग्रेऽपि। उपनीयते=उपस्थाप्यते। तथा सतीत्यादेरनुभूतित्वनिष्ठायाः प्रत्यभिज्ञानिष्ठाधिकरणतानिरूपितनिरूपकताया अवच्छेदकमिदन्ताविशिष्टात्मक-**

भारती

इनमें कोट्यन्तर के आश्रित होकर अत्पन्न होता है यह प्रथम पक्ष उचित नहीं है क्योंकि यदि वह अभेद इस समय प्रागवस्थाविशिष्ट धर्मी के आश्रय से उत्पन्न होता है तो इससे पूर्व प्रागवस्थाविशिष्ट से इदन्ताविशिष्ट का भेद सिद्ध होगा । यदि कोट्यन्तर प्रतियोगिकतया ज्ञात होता है यह द्वितीय पक्ष मानें तो प्रागवस्थाविशिष्ट के साथ इदन्ताविशिष्ट के अभेद का जो ज्ञान होता है वह पूर्वोक्त प्रकार से स्मृति में या अनुभव में अन्तर्भूत नहीं किया जा सकता है अत: पूर्वोक्त दोष तदवस्थ है ।

किञ्च जब प्रत्यभिज्ञा को 'स:' इस अंश में अर्थात् तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन स्मृति, एवं ''अयम्'' इस अंश में अर्थात् इदन्ताविषयकत्वावच्छेदेन अनुभव मानकर एक ज्ञान मानते हैं तो धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन (धर्मीरूप अंश में) स्मृतित्व और अनुभवत्व दोनों का संकर हो ही जायेगा । उस (सङ्कर) को इस प्रकार समझें-संस्कार के द्वारा क्या तत्तामात्र की उपस्थिति होती है या तत्ताविशिष्ट धर्मी की, प्रथम पक्ष में – 'स:' यह प्रत्यभिज्ञा का आकार नहीं होना चाहिए, क्योंकि संस्कार के द्वारा केवल तत्ता की ही उपस्थिति है । (स: यह आकार तो तत्ताविशिष्ट का है केवल तत्ता का उल्लेखी नहीं ।) संस्कार के द्वारा तत्ताविशिष्ट धर्मी की

तथा सति 'अय' मित्यनुभवांशेऽपि धर्मिप्रकाशो वक्तव्य एव, अन्यथेदन्तामात्रप्रकाशे 'अय'मिति तच्छरीरं न स्यात् । एवञ्च संस्कारस्य चेन्द्रियस्य च धर्मिप्रतीतिहेतोरुभयस्योपनिपाते किं विशेष्यांशे भिन्नाभ्यां ज्ञानाभ्यामुत्पत्तव्यम् ? उत कारणद्वयसम्भेदादभेदमात्रभाजा ज्ञानेन ?। प्रथमे प्रत्यभिज्ञानस्यैकज्ञानव्यक्तिताभ्युपगमव्याघातः, भेदपक्षोक्तदूषणापातश्च । द्वितीये धर्म्यंशे प्रत्यभिज्ञायां स्मृतित्वमप्यनुभवत्वमपीत्यनुभूतिस्मरणसङ्कर इति विषयव्यवस्थयापि नियमो भग्नः।

शारदा

धर्मिविषयकत्वमेव न त्विदन्तामात्रविषयकत्वमिति तात्पर्यार्थः। प्रत्यभिज्ञायामनुभवांशेऽपि = अनुभवत्वावच्छेदकावच्छेदेनापि 'अय'मिति धर्मिप्रकाश इदन्ताविशिष्टविषयकत्वरूप एव वक्तव्य इति योजनया लब्धव्यः। उपनिपाते = समवधाने । सम्भेदात् = समवधानात्। अभेदस्य प्रत्यभिज्ञानाविषयत्वप्रसङ्गो भेदपक्षोक्तदूषणम् । विषयव्यवस्थयापि नियमः = अन्यान्यविषयकत्वावच्छेदेनैवानुभूतित्वस्मृतित्वयोः सामानाधिकरण्यमिति नियमोऽपि । अपिना वैयधिकरण्यनियमः । न चेष्टापत्तिः, विरुद्धधर्मद्वयस्यैकत्रैकावच्छेदेन वृत्त्यभ्युपगमे विरोधमात्रस्य दत्तजलाञ्जलितापत्तेरिति भावः ।

नच–तत्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नविषयतानिरूपकत्वावच्छेदेन स्मृतित्वं, इदन्तावैशिट्यावच्छिन्नविषयतानिरूपकत्वावच्छेदेन चानुभवत्वमिति न साङ्कर्यं, तादृशनिरूपकतयोर्भेदेनैकावच्छेदेन सामानाधिकरण्यविरहादिति–वाच्यम्, तत्तेदन्ताविशिष्टयोरभेदस्य प्रत्यभिज्ञाविषयत्वोपगमे विशेषणयोरपि विधेयान्वयितयाऽभेदप्रसङ्गात्, तस्य च बाधात्, तत्तेदन्तोपहितत्वेनाप्यैक्यासम्भवाच्च तदुपलक्षितयोरैक्यभानस्य प्रत्यभिज्ञायां वक्तव्यत्वात् , तत्तादिवैशिष्ट्यावच्छिन्नविषयताकत्वस्य तत्रासम्भवेन तदवच्छेदेन स्मृतित्वादेर्वृत्तेरशक्यवचनत्वात्, उपलक्षित-

भारती

उपस्थिति होती है यह द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि इस पक्ष में ''अयम्'' इस प्रत्यभिज्ञा के अनुभवांश में भी धर्मी का प्रकाश मानना ही होगा अर्थात् अयम् इस अंश से भी इदन्ताविशिष्ट धर्मी की उपस्थिति माननी पड़ेगी । अन्यथा इदन्तामात्र का प्रकाश मानने पर ''अयम्'' यह प्रत्यभिज्ञा का आकार नहीं होना चाहिए, (क्योंकि अयम् यह आकार इदन्ताविशिष्ट धर्मी का उल्लेखी है केवल इदन्तामात्र का उल्लेखी नहीं ।) एवञ्च (इस प्रकार) धर्मी की प्रतीति का हेतु संस्कार तथा इन्द्रियसन्निकर्ष दोनों के समवहित (सन्निहित) होने पर क्या विशेष्यांश में भिन्न-भिन्न दो ज्ञान (संस्कार से स्मृति एवं इन्द्रियसन्निकर्ष से अनुभव) उत्पन्न होते हैं । अथवा उक्त कारणद्वय के मिश्रित सन्निधान से अभिन्न एक ही ज्ञान उत्पन्न होता है । प्रथम पक्ष मानें तो ''प्रत्यभिज्ञा एक ज्ञान है'' इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा में ज्ञानैकत्व का कथन व्याहत हो जायेगा और अभेद (जो कि प्रत्यभिज्ञाविषयतया अनुभूयमान है) प्रत्यभिज्ञा ज्ञान

अथोच्यते माभूद्विषयोपाधिभेदाद्व्यवस्थानमुपाध्यन्तरात्तु भविष्यति, तद्यथा संस्कारजत्वमादाय

शारदा

धर्मिमात्रभानमुपगम्य स्मृतित्वाद्युपगमे एकावच्छेदेन सामानाधिकरण्यापत्तेरावश्यकत्वात्। स्मृत्यनात्मकनिर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञाऽभ्युपगमवादे तु चित्येवानुभवत्वस्य स्वीकारेण तस्य प्रमामात्रसाधारण्यविरहेणैव तद्घटितलक्षणस्याव्याप्तत्वेन साङ्कर्याभावेऽपि क्षत्यभावात्, स्मृतिव्यावृत्तयेऽज्ञाताज्ञाततावच्छेदकान्यतरविषयकत्वेनैव तन्मते प्रमात्वस्य घटितत्वादिति। किञ्च तत्तेदन्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नयोर्विषययोरभेदे तादृशविषयतानिरूपकत्वयोरपि भेदे मानाभावः, तयोर्भेदे तु प्रत्यभिज्ञायास्तयोरभेदावगाहिन्या भ्रमत्वप्रसङ्गः भेदाभेदे त्वनिर्वचनीयवादस्तदवस्थं च साङ्कर्यमिति । ननु प्रत्यभिज्ञायां स्मृतित्वादेरवच्छेदकं न तत्तद्विषयकत्वं येन धर्मिविषयकत्वावच्छेदेनोभयसत्त्वे साङ्कर्यं स्यात्, अपि तु संस्कारजत्वादिकमेव, तत्र तु तत्ताविशिष्टविषकत्वादिकमवच्छेदकमिति नातिप्रसङ्ग इति देशयति अथोच्यते इत्यादिना। **विषयोपाधिभेदात् = तत्ताविशिष्टविषयकत्वेदन्ताविशिष्टविषयकत्वरूपावच्छेदकभेदात्। व्यवस्थानं=भिन्नावच्छेदेन वृत्तिमत्तानियमो मा भूत्=मा निर्वहतु। अत्र निवहि पञ्चम्यर्थाधीनत्व-**

राजहंसः

अनिर्वचनीयवाद इति । विरुद्धयोरेकतरस्य मिथ्यात्वावश्यम्भावात् । अभेदस्यापि च भेदप्रतियोगिकत्वेन मिथ्यात्वादिति भावः प्रागुक्तः स्मर्तव्यः । **साङ्कर्यमिति** । तादृशनिरूपकत्वयोरनवच्छिन्नवृत्तित्वे विरोधानिवारकत्वादवच्छिन्नवृत्तिकत्वे त्ववच्छेदकस्यानवच्छिन्नवृत्तिकत्वे उक्तदोषात् , अवच्छिन्नवृत्तिकत्वे त्वत्माश्रयान्योन्याश्रयानवस्थान्यतमापातात् , एवमन्यत्रापि विरुद्धसमावेशाभ्युपगम इत्यपि द्रष्टव्यम्।

भारती

का विषय नहीं हो पायेगा'' इत्याकारक भेदपक्षोक्त दोष भी होगा, ऐसी स्थिति में द्वितीय पक्ष मानना होगा । एवं संकार सन्निकर्षात्मक उभय कारण सम्बलन से प्रत्यभिज्ञा एक ही ज्ञान है'' इस द्वितीय पक्ष को मानने पर - धर्मीअंश में अर्थात् धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यभिज्ञा में स्मृतित्व एवम् अनुभूतित्व दोनों का समावेश (सामानाधिकरण्य) होने से अनुभव एवं स्मरण का साङ्कर्य प्रसक्त होगा । अतः विषयव्यवस्था (तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन स्मृति है इदन्ताविषयकत्वावच्छेदेन अनुभव है) के द्वारा अनुभूतित्व एवं स्मृतित्व का सामानाधिकरण्य है यह नियम भी भग्न हो गया । (तथाच अनुभूतित्व को छोड़कर स्मृतित्व ''सा मे माता'' इत्यादि शुद्ध स्मृति में है, और स्मृतित्व को छोड़कर अनुभूतित्व 'अयंघट' इत्यादि शुद्ध अनुभव में है । एवं अनुभूतित्व स्मृतित्व दोनों धर्मों का एकत्र प्रत्यभिज्ञा में सामानाधिकरण्य (समावेश) हो रहा है अतः सांकर्य दोष होने से अनुभूतित्व जाति नहीं हो सकती ।)

प्रश्न – प्रत्यभिज्ञा में स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व के भिन्नावच्छेदेन वृत्तिमत्तानियम का निर्वाह विषयरूप उपाधि के भेद से-अर्थात् तत्ताविशिष्ट विषयकत्व इदन्ताविशिष्ट व्रिषयकत्व रूप अवच्छेदक के भेद से भले ही न हो, किन्तु निमित्तान्तर से ही हो जायेगा । वह इस

स्मृतित्वव्यवस्थितिरिन्द्रियसन्निकर्षजत्वमादाय चानुभवव-त्वव्यवस्थानमिति विरोधपरिहारोऽस्तु; न, प्रमात्वसामान्यानङ्गीकारे प्रमारूपताया विषयव्यवस्थित्यैवोपगमेनोपाध्यन्तरोपन्यासेऽपि स्मृतित्वानुभूतित्वयोरेकस्मिन्नेव धर्मिण्यर्थे निवेशात्

शारदा

स्यान्वयः। उपाध्यन्तरात् = अवच्छेदकान्तरात् भविष्यति = निर्वाहमेष्यति । संस्कारजत्वमादाय स्मृतित्वव्यस्थितिः = संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताकत्वावच्छेदेनैव स्मृतित्वस्य वृत्तिः । एवमग्रेऽपि । विरोधपरिहारः = स्मृतित्वानुभूतित्वयोरेकावच्छेदेन वृत्त्यनुपपत्तिपरिहारः। मुख्यविशेष्यांशे ज्ञानानां प्रमात्वस्य नियमेन व्यवहारात् , तस्य मुख्यविशेष्यकत्वावच्छेदेन वृत्तेरवश्यं वक्तव्यत्वात् तद्घटकानुभूतित्वस्याप्युक्तावच्छेदेन वृत्तिरुपगन्तव्यैव, एवं स्मृतेर्यथार्थत्वेऽपि प्रागधिगतविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्वाभावस्य व्यवहारात् स्मृतित्वस्याप्युक्तावच्छेदेन वृत्तिरुपेया, अन्यथा 'प्रत्यभिज्ञायां तत्तावैशिष्ट्यांशे स्मृतित्वमिदन्तावैशिष्ट्यांशे चानुभवत्व'मिति भवदीयानां व्यवहारो व्याहन्येत, तथाच तदवस्थं साङ्कर्यमित्याशयेन परिहरति–प्रमात्वेत्यादिना। **चाक्षुषत्वादेर्विषयिताविशेषरूपत्वपक्षे तेन सह प्रमात्वजातेः साङ्कर्यस्यावक्तव्यत्वेऽपि विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकतया लाघवात् जात्यात्मकतया सिद्धेन साक्षात्करोमीति धीसाक्षिकलौकिकविषयिताव्यावृत्तेन प्रत्यक्षत्वेन साङ्कर्यं वक्तुं शक्यते, सप्रकारकत्वघटितप्रमात्वस्य गुणजन्यत्वनियतस्य निर्विकल्पके ईश्वरप्रत्यक्षे चावृत्तेः, प्रत्यक्षत्वस्य चानुमित्यादिप्रमायामवृत्तेरिति प्रमात्वस्य न जातित्वं, धर्म्याद्यंशे वृत्तिमत्तया अव्याप्यवृत्तित्वाच्चेति भावः । प्रमारूपतायाः = प्रमात्वस्य । विषयव्यवस्थित्यैव = विशेष्यवृत्तिप्रकारकत्वेनैव । उपगमेन = उपगन्तव्यत्वेन**

राजहंसः

धर्म्याद्यंशे वृत्तिमत्तयेति । समूहालम्बने प्रकारांशेऽप्यांशिकप्रमात्वसम्भवेनादिपदम्।

भारती

प्रकार है- संस्कारजन्यत्वरूप अवच्छेद के द्वारा स्मृतित्व की, तथा इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वरूप अवच्छेद से अनुभूतित्व की व्यवस्था हो जायेगी । (तात्पर्य यह है कि प्रत्यभिज्ञा के जिस अंश में संस्कारजन्यत्व है उस अंश में स्मृतित्व रहेगा, और जिस अंश में इन्द्रियसन्निकर्ष जन्यत्व रहेगा, उस अंश में अनुभूतित्व रहेगा, इस प्रकार तत्तत् कारणताकत्व रूप अवच्छेदक के भेद से व्यवस्था हो जाने से सांकर्य दोष नहीं होगा, और अनुभूतित्व जाति हो सकती है।) एवञ्च स्मृतित्व अनुभूतित्व दोनों के एकाधिकरणवृत्तित्व के विरोध का परिहार भी हो जायेगा।

समाधान – प्रत्यक्षत्व के साथ साङ्कर्य (सप्रकारकत्वघटित एवं सन्निकर्षादिगुणजन्यतानियत प्रमात्व का परित्याग कर प्रत्यक्षत्व निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में तथा ईश्वर प्रत्यक्ष में रहता है । एवं प्रत्यक्षत्व का परित्याग कर प्रमात्व अनुमित्यादि प्रमा में रहता है एवं उभय का सामानाधिकरण्य घट प्रत्यक्ष में है) होने से प्रमात्व को जाति नहीं मान सकते, किन्तु

प्रमात्वाप्रमात्वयोरेकविषयतैव । किञ्च ज्ञानविकल्पानामध्यात्मं

शारदा

स्मृतित्वानुभूतित्वयोरुपाध्यन्तरोपन्यासेऽपि = संस्कारजत्वाद्यवच्छेदकोपन्यासेऽपि । प्रमात्वाप्रमात्वयोरेकस्मिन्नेव धर्मिण्यर्थे निवेशात् = प्रमात्वस्येदन्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नधर्मिविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्वाभावस्य च तत्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नधर्मिविषकत्वावच्छेदेन वर्तमानत्वात् स्मृतित्वानुभूतित्वयोरप्येकविषयतैव = अन्यान्यावच्छेदेन वृत्तिमत्त्वनियमो नेति प्रस्तुतसाङ्कर्यतादवस्थ्यम् । अप्रमात्वशब्देन भ्रमत्वं तु नात्र ग्राह्यम् , तत्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नधर्मिविषयकत्वावच्छेदेनापि यथार्थ्यस्य सत्त्वात् । प्रमात्वाप्रमात्वयोरेकावच्छेदेन वृत्तिमत्त्वरूपैकविषयतायां स्मृतित्वानुभूतित्वयोरेकधर्मिविषयकत्वावच्छिन्नवृत्तिमत्त्वस्योपष्टम्भकत्वं तु न युक्तम् , स्मृतित्वानुभूतित्वयोरेकधर्मिविषयकत्वावछिन्नवृत्तिमत्त्वस्य पूर्ववादिना त्यक्तत्वात् । अनुभवानुरोधेन तदभ्युपगमापादने तु तावतैव स्मृतित्वानुभूतित्वयोः साङ्कर्यस्य प्रकृतस्य निर्वहिण तत्परित्यज्य प्रमात्वाप्रमात्वयोरेकविषयतापादनस्यायुक्तत्वात्। 'तदधीने तत्रैवार्थे प्रमात्वाप्रमात्वापाते सा तेऽस्त्वि'ति भाविग्रन्थैकवाक्यतादुराग्रहे तु निवेशात् = निवेशस्यानुभवानुरोधिनाऽऽदरणीयत्वात् प्रमात्वाप्रमात्वयोः = प्रमात्वाप्रमात्वयोरपीत्यनुक्रमेणैव व्याख्यानं द्रष्टव्यम् । यद्यपि 'प्रमात्वस्य जातिताभ्युपगमेऽपि धर्म्यंशे प्रमात्वं प्रकारांशे च भ्रमत्वमितिव्यवहारात् प्रत्यभिज्ञायामपि तत्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नविषयकत्वेदन्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नविषयकत्वरूपावच्छेदकाभ्यां प्रमात्वतदभावयोर्व्यवहारस्योपपादनीयत्वन्निरुक्तैकविषयता तयोरक्षतैव, तथापि जातेर्व्याप्यवृत्तितानियमोपगन्त्रा प्राचा प्रमात्वस्यावच्छिन्नवृत्तिकत्वादपि जातित्वमनभ्युपगन्तव्यमेवेति भावेन प्रमात्वसामान्यानङ्गीकारे इत्युक्तम् । स्मृतित्वाद्याधारतावच्छेदकत्वं संस्कारजत्वादावभ्युपेत्योक्तम् , इदानीं तदेव

राजहंसः

दुराग्रहे त्विति । भाविग्रन्थेन पौनरुक्त्यप्रसङ्गाद् दुरिति ।

भारती

विषयव्यवस्था अर्थात् विशेष्यवृत्तिप्रकारकत्व को लेकर ही प्रमात्व मानना होगा। ऐसी स्थिति में प्रत्यभिज्ञा में स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व के लिए संस्कारजन्यत्वादि निमित्तान्तर की कल्पना करने पर भी एक ही धर्मी अंश में प्रमात्व एवं अप्रमात्व (इदन्तावैशिष्ट्यावच्छिन्न धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्व, तथा तत्तावैशिष्ट्यावच्छिन्नधर्मिविषयकत्वावच्छेदेन अप्रमात्व (मृतित्व) रहने से स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व दोनों का एक ही विषय (अधिकरण) हो गया अतः साङ्कर्यदोष तदवस्थ होने से अनुभूतित्व जाति नहीं हो सकती। यहाँ वस्तुस्थिति यह है कि- मुख्य विशेष्यांश में ज्ञानो के प्रमात्व का नियम से व्यवहार होता है अतः मुख्य विशेष्यांश में प्रमात्व अवश्य ही रहेगा, तब तद्घटक अनुभूतित्व की वृत्तिता भी अवश्य स्वीकर्तव्य है-एवं स्मृति के यथार्थ होने पर भी उसमें प्रागधिगतविषयांश को लेकर प्रमात्वाभाव का व्यवहार होता है तथाच प्रागधिगत विषयांश को लेकर प्रत्यभिज्ञा में स्मृति की वृत्तिता भी अवश्य माननी होगी, अन्यथा प्रत्यभिज्ञा में तत्तावैशिष्ट्यांश में स्मृतित्व और इदन्तावैशिष्ट्यांश में अनुभवत्व है आपका यह व्यवहार व्याहत हो जायेगा।

भावाभावसंवेदनात् स्मृतित्वानुभूतित्वयोर्द्वयोरपि प्रत्यभिज्ञायां स्वतः प्रतिभासेन विषयनिरूपणव्यवस्थित्यनङ्गीकारे स्मृतित्वादेरिदन्तायामपि स्मृत्यवगमप्रसङ्गात्। यदि च संस्कारजत्वमेव स्मृतित्वं तदा तस्यैव विरोधऽभिधीयमाने स

शारदा

नेत्याशयेनाह–किञ्चेति । **''ज्ञानविकल्पानां भावाभावसंवेदनादध्यात्म''मिति न्यायदर्शनपञ्चमाध्यायस्थसूत्रम् , ज्ञानविकल्पानां = ज्ञानतद्विशेषानुभवत्वादीनां भावाभावयोरध्यात्मं संवेदनात् = बहिरिन्द्रियाजन्यज्ञानविषयत्वात् , तच्च ज्ञानं मानसं वा साक्षिरूपं वेत्यन्यदेतत् । प्रत्यभिज्ञायां स्वतः प्रतिभासेन = संस्कारजत्वादिप्रतीतिं विनैव प्रत्यभिज्ञाविषयकज्ञानविषयत्वेन स्मृतित्वादेर्विषयनिरूपणव्यवस्थित्यनङ्गीकारे = विषयेण निरूपणं यस्यास्तादृशव्यवस्थित्यनङ्गीकारे, तत्तद्विषयकत्वावच्छेदेन ज्ञायमानतानभ्युपगमे इति यावत् इदन्ताविषयकत्वावच्छेदेनापि स्मृतित्वानुभवप्रसङ्गात् , एवं तत्ताविषयकत्वावच्छेदेनानुभवत्वानुभवप्रसङ्गोऽपि, तार्किकवत्त्वयेष्टापत्तेः कर्तुमशक्यत्वात्। तथाच तत्तद्विषयकत्वावच्छेदेन स्मृतित्वादेर्ज्ञायमानताऽभ्युपगमस्यावश्यकत्वे वृत्तिरपि स्मृतित्वादेस्तथैवाभ्युपगन्तव्या, अनुभवानुरोधात् । संस्कारजत्वादेरपि वृत्तेस्तत्तद्विषयकत्वावच्छेदेनाभ्युपगमनीयत्वे चावश्यकत्वात् प्रथमोपस्थितत्वाच्च स्मृतित्वादेरपि वृत्तेस्तथैवौचित्याच्चेति भावः । स्मृतित्वस्य संस्कारजत्वावच्छेदेन वृत्त्यभ्युपगमे आत्माश्रयान्योन्याश्रयावप्याह**–यदीति । **संस्कारजत्वोपस्थितिमन्तरेणापि स्मरामीत्यनुभवसत्त्वात् संस्कारजत्वमेव स्मृतित्वमिति पक्षस्यायुक्ततां सूचयितुं यदीति। संस्कारजत्वं संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताकत्वं तेन संस्कारध्वंसे नातिव्याप्तिः, तत्र**

भारती

किञ्च ''ज्ञानविकल्पानाम् अध्यात्मं भावाभावसंवेदनात् '' इस न्यायदर्शन के पञ्चमाध्यायस्थ सूत्र के अनुसार ज्ञान एवं ज्ञानविशेष अनुभवत्वादि का भाव तथा अभाव अध्यात्मसंवेदन = अर्थात् बहिरिन्द्रिय से अजन्य आन्तर ज्ञान जो कि मानस मानें या साक्षीरूप के विषय होते हैं। ऐसी स्थिति में स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व ये दोनों का भी प्रत्यभिज्ञा में स्वतः ही प्रतिभास (संस्कारजन्यत्वादिप्रतीति के बिना ही प्रत्यभिज्ञाविषयक ज्ञान के विषय) होने से स्मृतित्वादि की व्यवस्था (निरूपण) विषय निरूपण के अंधीन न मानें अर्थात् तत्तद्विषयकत्वावच्छेदेन ज्ञायमानता न मानें तो इदन्ताविषयकत्वावच्छेदेन स्मृतित्व का और तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन अनुभवत्व का भान भी हो जायेगा तथाच पूर्वोक्त रीति से सांकर्य दोष हो जायेगा। किञ्च प्रत्यभिज्ञा में संस्कारजन्यत्व अंश में अर्थात् संस्कारजन्यत्वावच्छेदेन स्मृतित्व रहता है यह मानना भी उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर आत्माश्रय अन्योन्याश्रय दोष भी है। कारण कि यदि संस्कारजन्यत्व ही स्मृतित्व है तो उसी (स्मृतित्व) के विरोध (स्मृतित्व में अनुभूतित्व के साथ एकावच्छेदेन सामानाधिकरण्य की अनुपपत्ति) के उपस्थित होने पर पुनः उसे (स्मृतित्वात्मक संस्कारजन्यत्व) ही उक्त विरोधपरिहारार्थ निमित्त रूप से उपस्थित करना प्रतिवादी की दृष्टि में

एव विरोधसामञ्जस्यायोपाधिरुपन्यस्यते इति नान्यस्य चेतसि निविशते। अथान्यत्स्मृतित्वं नाम तदाप्यनुपपत्तिः, तथाहि संस्कारजत्वं संस्कारादनन्तरं नियमेन भावः, नियतत्वं च नानाव्यक्तिगतमेकं रूपं ग्राहकमक्रोडीकृत्यासम्भवीति स्मृतित्वेनैव

शारदा

प्रतियोगित्वेनैव संस्कारस्य जनकत्वात् । इन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नकारणताकत्वमेवानुभवत्वमितिपक्षस्तु न शङ्कितः, अनुभवत्वस्यानुमित्यादिसाधारणताभ्युपगन्तृपक्षनिरासस्यैव प्रस्तुतत्वात् । तस्य = स्मृतित्वस्य । विरोधे = अनुभूतित्वेन सहैकावच्छेदेन सामानाधिकरण्यानुपपत्तौ । उपाधिः = अवच्छेदकः । अन्यस्य = प्रतिवादिनः। न निविशते = युक्तत्वप्रकारकज्ञानविषयताश्रयो न, स्वावच्छेदेन स्ववृत्तावात्माश्रयात्, जन्यतायाः स्वावच्छिन्नत्वपर्यवसानेनावच्छेदकग्रहाधीनग्रहविषयत्वेन व ज्ञप्तावप्यात्माश्रयाच्च, स्मृतित्वावच्छेदकतया स्मृतित्वस्याभिधानेऽपि तदवच्छेदकजिज्ञासाया अशान्तेस्तस्यानुत्तरत्वाच्चेति भावः । अन्यत् = जातिविशेष उपाधिर्वाऽखण्डः । संस्कारादिति । **संस्कारनिष्ठान्यथासिद्ध्यनिरूपकत्वे सति संस्कारत्वावच्छिन्नव्याप्यत्वं संस्कारजत्वम् । व्याप्तेश्चावच्छिन्नत्वनियमात् तदवच्छेकं स्मृतित्वमेव वक्तव्यम्, प्रातिस्विकरूपेण व्याप्तेर्दुर्ग्रहत्वात् । तादृशव्याप्यत्वं च स्वाव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन संस्कारत्वावच्छिन्नव्यापकताकत्वमिति सूचनायानन्तरपदम्। संस्काराव्यवहितोत्तरक्षणत्वव्याप्यं संस्कारत्वावच्छिन्नान्यथासिद्ध्यनिरूपकस्य यद्रूपावच्छिन्नस्याद्यक्षणत्वं तद्रूपावच्छिन्नत्वं वाऽक्षरार्थः । तद्रूपं च स्मृतित्वमेवति भावः।**

राजहंसः

प्रतियोगित्वेनैव संस्कारस्येति। इदं सामान्यकार्यकारणभावाभिप्रायेण, प्रतियोगितासम्बन्धेन संस्कारनाशं प्रति तादात्म्येन संस्कारत्वेन कारणतोपगमे तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्वं कारणतायां शक्यनिवेशमिति भावः।

भारती

उचित नहीं ठहरेगा । (स्वावच्छेदेन स्ववृत्ति होने पर आत्माश्रय हो जायेगा एवं जन्यता के स्वावच्छिन्न होने से स्वयं (स्मृतित्व) के अवच्छेदग्रहाधीनग्रह का विषय होने से ज्ञप्ति में अन्योन्याश्रय भी है ।

यदि कहें कि स्मृतित्व संस्कारजन्यत्वरूप नहीं है, अपितु संस्कारजन्यत्व से अन्य ही जातिविशेष अथवा अखण्डोपाधि मानेंगे । अतः आत्माश्रयादि दोष नहीं है तो इस प्रकार मानने पर भी अनुपपत्ति विद्यमान ही है । अनुपपत्ति इस प्रकार है- यहाँ संस्कारजत्व संस्कार के अव्यवहित उत्तरकाल में नियम से भाव अर्थात् उत्पत्ति होना ही है । नियम नाम व्याप्ति का है और व्याप्ति तो किञ्चित् अवच्छिन्न ही होती है अतः नियतत्व अर्थात् व्याप्यत्व (व्याप्ति) नाना व्यक्तियों का संग्राहक नानाव्यक्तिगत किसी एक अवच्छेदक (व्याप्यतावच्छेदक) के बिना नहीं हो सकता । अतः वह अवच्छेदक स्मृतित्व ही मानना होगा । ऐसी स्थिति में संस्कारजत्व के ज्ञान में स्मृतित्वरूप अवच्छेदक के ज्ञान की अपेक्षा, क्योंकि अवच्छेदक

संस्कारजत्वं वक्तव्यम् तथाच संस्कारजत्वव्यवस्थितौ स्मृतित्वमुपाधिः, स्मृतित्वव्यवस्थितौ संस्कारजत्वमित्यन्योन्याश्रयः। तस्मात्स्मृत्यनुभवसङ्करो दुर्वार एव।

अपि च, स्मृत्यनुभवयोर्ये कारणसामग्र्यौ ते प्रत्यभिज्ञायां मन्तव्ये न वा ?। नचेत्कथमंशतोऽपि स्मृतित्वमनुभवत्वं च प्रत्यभिज्ञानस्य?। एवमेव तथात्वेऽतिप्रसङ्गात् स्मृत्यनुभूत्योः स एव सङ्करः। प्रथमे तु पृथगेव कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः, प्रत्येकं स्वस्वकार्ये समर्थत्वात् , सामग्रीभेदस्य कार्यभेदहेतुत्वेनावधारितत्वात् ।

शारदा

अत्र कल्पे भावः=आद्यक्षणसम्बन्धः। ग्राहकं=नानाव्यक्तिसङ्ग्राहकं, अनुगतमिति यावत्। अक्रोडीकृत्य=अनवच्छेदकीकृत्य स्मृतित्वेनैवेति तृतीयार्थोऽवच्छिन्नत्वम्। संस्कारजत्व-व्यवस्थितौ = संस्कारजत्वप्रमित्यपेक्षणीयज्ञानकमवच्छेदकं स्मृतित्वं, जन्यताग्रहस्यावच्छेदक ग्रहं विनाऽसम्भवात्, संस्कारजत्वस्य स्मृतित्वव्यञ्जकतोपगमे तु प्रत्यभिज्ञायां स्मृतित्वग्रहार्थं तद्ग्रहस्याप्यपेक्षणीयतेत्यन्योन्याश्रयः। वृत्तौ तु न सः, उपाधितयाऽवच्छेदकताया वक्तुं शक्य-त्वात्, परस्परावच्छिन्नत्वस्य परस्परव्यापकतायामेव पर्यवसानात्, विशेषणतया चावच्छेदकता-विरहेऽपि क्षत्यभावादिति। भेदप्रस्तावोक्तदिशोपाधित्वेऽपि वा परस्परापेक्षत्वं समर्थनीयम्। स्मृत्यनुभवेति। **स्मृतित्वानुभवत्वेत्यर्थः। एवमेव तथात्वे = स्मृतित्वादिप्रयोजकसामव्र्यभावेऽपि स्मृतित्वाद्युपगमे। अतिप्रसङ्गात् = ज्ञानमात्रे स्मृतित्वानुभूतित्वयोरवच्छेदकभेदं विनैव प्रसङ्गात्। हेतुत्वेन = व्याप्यत्वेन। यथा युगपद्नानाज्ञानसामग्रीसमवधाने तार्किकैः समूहालम्बनमेकं**

राजहंसः

अत्र कल्पे इति। पूर्वकल्पे तु व्याप्तिघटकसामानाधिकरण्ये भावपदार्थता पर्यवस्यतीति भावः।

भारती

ज्ञान के बिना जन्यता का ज्ञान नहीं हो सकता और स्मृतित्व के ज्ञान में संस्कारजन्यत्व की अपेक्षा, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा में संस्कारजत्व को ही स्मृतित्व का व्यंजक माना है। इस प्रकार परस्पर सापेक्ष होने से ज्ञप्ति का अन्योन्याश्रय दोष हो जायेगा। तस्मात् स्मृति अनुभूति का संकर दुर्वार ही है।

अपि च स्मृति और अनुभव की जो कारण सामग्रियाँ मानी जाती हैं वे प्रत्यभिज्ञा में हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो अंशतः भी प्रत्यभिज्ञा में स्मृति और अनुभव कैसे होंगे। यदि स्मृतित्वादि की प्रयोजक सामग्री के बिना भी स्मृतित्वादि स्वीकार करें तो अवच्छेद के बिना ही ज्ञान मात्र में स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व मानना पड़ेगा। ऐसी दशा में प्रत्यभिज्ञा में भी स्मृतित्व अनुभूतित्व दोनों के होने से दोनों का साङ्कर्य दोष हो ही जायेगा। यदि प्रत्यभिज्ञा में स्मृति एवं अनुभूति दोनों की कारण सामग्री है ऐसा मानें तो दोनों सामग्रियों से पृथक्-पृथक् दो ज्ञानों की उत्पत्ति माननी होगी, क्योंकि प्रत्येक सामग्री अपने-अपने कार्य करने में समर्थ है। सामग्री का भेद ही कार्य के भेद का हेतु माना गया है।

अथ यत्र ते पृथग्जायेते तत्र पृथगेव कार्यं, प्रत्यभिज्ञायां तु तयोर्युगपज्जातत्वेन सम्भूयजननात् करम्बितकार्योत्पत्तिः। यद्यपि घटपटादिसामग्र्योर्नैवं दृश्यते तथापि तद्विलक्षणस्वभावत्वादनयोरीदृशत्वमुपपद्यते; नह्येकस्य यादृक् पदार्थस्य स्वभावः, तादृगन्यस्यापि सर्वस्य भवति जगद्वैचित्र्यभङ्गप्रसङ्गादिति; नैतदस्ति, यत्र हि मिलितत्वं तयोस्तत्र किं परस्परसहकारित्वमनयोरेष्टव्यं ? नवा?; नचेत्, परस्परमेलनलक्षणविशेषोऽनुपयोगी कार्यजननं प्रति, मिथः सहकारिभावविरहेणाप्रयोजकत्वात् ; ततश्चाविशेषात् पृथगेव

शारदा

ज्ञानमुपेयते ज्ञानयौगपद्यस्यानङ्गीकारात्, यथा वा तुल्यबलविरुद्धोभयसामग्रीभ्यामेकमेव संशयात्मकं ज्ञानं, तथा प्रकृतेऽपि सामग्रीद्वयस्य यौगपद्ये प्रत्यभिज्ञानमेकमेव स्यादिति शङ्कते अथेति। **पृथगेव कार्यं = कार्यद्वयमेव ।** करम्बितेति । **तत्तत्सामग्रीप्रयोज्यधर्मद्वयावच्छिन्नेत्यर्थः । यादृक् स्वभाव इत्यन्वयः । मिलितत्वं = एकक्षणावच्छेदेन सामानाधिकरण्यम् । परस्परसहकारित्वं = परस्परप्रयोज्यप्रयोजकत्वं।**

भारती

प्रश्न – जहाँ पृथक्-पृथक् सामग्री रहती है वहाँ पृथक्-पृथक् दो कार्य ही उत्पन्न होते हैं। प्रत्यभिज्ञा में तो दोनों सामग्रियाँ एक साथ उपस्थित होने से मिलकर कार्य उत्पन्न करती हैं अतः मिश्रित (तत्तत् सामग्री से प्रयोज्य धर्मद्वय से युक्त) कार्य की उत्पत्ति होती है । (पूर्वपक्ष का आशय यह है कि जिस प्रकार एक साथ नाना ज्ञान सामग्री के समवहित (उपस्थित) होने पर तार्किकों ने समूहालम्बन एक ज्ञान की उत्पत्ति मानी है, क्योंकि ज्ञानों का योगपद्य (एक काल में दो ज्ञानों की उत्पत्ति) तार्किक नहीं मानते और जैसे तुल्यबल वाली विरुद्ध सामग्री के उपस्थित होने पर संशयात्मक एक ज्ञान ही उत्पन्न होता है उसी प्रकार प्रकृत में सामग्रीद्वय के युगपत् उपस्थित होने से प्रत्यभिज्ञा रूप एक ही ज्ञान की उत्पत्ति हो जायेगी) यद्यपि घटपटादि की सामग्रियाँ मिलकर करम्बित (मिश्रित) कार्य उत्पन्न करते नहीं देखी जाती, तथापि प्रत्यभिज्ञा की सामग्री घटपटादि सामग्री से विलक्षण स्वभाव वाली होने से मिश्रित (चित्र) कार्य को उत्पन्न कर सकती है । एक पदार्थ का जैसा स्वभाव हो अन्य सभी पदार्थों का वैसा ही स्वभाव हो ऐसा नियम नहीं है । अन्यथा जगत् के वैचित्र्य (नानारूपता) का ही भंग हो जायेगा ।

समाधान – यह कथन युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि जहाँ स्मृति एवं अनुभव की सामग्रीद्वय सम्मिलित अर्थात् एकक्षणावच्छेदेन उपस्थित होती है वहाँ वह सामग्रीद्वय परस्पर सहकारी (परस्पर प्रयोज्य कार्य की प्रयोजक) मानी जाती है या नहीं, यदि परस्पर सहकारी नहीं है तो मिश्रित कार्य की उत्पत्ति में सामग्री का परस्पर सम्मेलन रूप विशेष अनुपयोगी होगा । क्योंकि एक कार्योत्पादक सामानाधिकरण्य से युक्त होकर वह सामाग्री उस कार्य के

कार्यं प्रसज्येत। अथ परस्परसहकारित्वं तयोरिष्यते, तदानुभवांशेऽपि संस्कारस्य व्यापारः, स्मरणांशेऽप्यक्षयेति नियामकत्वाभिमतयोस्तयोरुभयांशे साधारण्यात् स्मृत्यंशेऽप्यनुभूतिरनुभूत्यंशेऽपि स्मरणमिति सुवज्रलेपायितं प्रत्यभिज्ञायामनुभूतित्वस्मृतित्वसङ्करेणेति।

नाप्यनुभव एवेति पक्षः; तथासति तत्तावच्छिन्नस्याभेदाश्रयतायां न संस्कारो नेन्द्रियसन्निकर्षश्चेति तदविषयत्वापातः। न च

शारदा

अप्रयोजकत्वात् = एककार्यजननौपयिकरूपासमानाधिरकरणत्वात्। परस्परमेलनस्य तादृशसहकारित्वसमानाधिकरणस्यैव कार्यजननौपयिकत्वादिति भावः। अनुभवांशेऽपि संस्कारस्य व्यापारः = संस्कारस्य अनुभवत्वावच्छिन्नप्रत्यभिज्ञां प्रत्यपि जनकत्वं प्रत्यभिज्ञानिष्ठानुभवत्वस्यापि प्रयोजकत्वमिति यावत्। एवमक्षस्यापि प्रत्यभिज्ञानिष्ठस्मरणत्वप्रयोजकत्वम्। नियामकत्वेति। **स्मरणत्वानुभवत्वप्रयोजकत्वेत्यर्थः। तयोः = संस्कारेन्द्रिययोः। उभयांशे साधारण्यात् = उभयत्वावच्छिन्नप्रयोजकत्वात्। स्मृत्यंशे = यदवच्छेदेन स्मृतित्वं तदवच्छेदेन। अनुभूतिः = अनुभूतित्वम्। अनुभूत्यंशे = यदवच्छेदेनानुभवत्वं तदवच्छेदेन। स्मरणं = स्मरणत्वम्।** सुवज्रेति। **पूर्वं धर्मिविषयकत्वावच्छेदेनैव साङ्कर्यमिदानीं तु तत्तादिविषयकत्वावच्छेदेनापीत्याशयेन सोः प्रयोगः। यदि तु सन्निकर्षविधया संस्कारस्योपसर्जनीभावः प्राधान्यञ्चाक्षस्येत्येकैव सामग्री, तदाऽक्षानुसारेणैव प्रत्यभिज्ञाया व्यवस्थाप्यत्वादनुभवत्वमेवेति चतुर्थकल्पेऽन्तर्भाव इति भावः।**

अभेदाश्रयतायां = अभेदाश्रयताविषयकत्वे। नेन्द्रियसन्निकर्षश्च = नापीन्द्रियसन्निकर्षः, प्रयोजक इति शेषः। तदविषयत्वापातः = तत्तेदन्तावच्छिन्नाभेदस्य

भारती

प्रति प्रयोजक नहीं है। ऐसी स्थिति में दोनों सामग्री सम होने से पृथक्-पृथक् कार्य की उत्पति ही माननी होगी। यदि वे दोनों सामग्री परस्पर सहकारी है ऐसा मानें तो प्रत्यभिज्ञा के अनुभवांश में भी संस्कार का एवं स्मरणांश में इन्द्रियसन्निकर्ष का व्यापार मानना होगा। ऐसी स्थिति में नियामकतया अभिमत संस्कार इन्द्रियसन्निकर्ष रूप दोनों सामग्रियों के स्मृतिअनुभवरूप उभय कार्य साधारण होने से स्मृति अंश में अनुभूतित्व और अनुभूति अंश में स्मृतित्व के रहने से प्रत्यभिज्ञा में अनुभूतित्व एवं स्मृतित्व का साङ्कर्य दोष वज्रलेपसा स्थिर हो गया। (तस्मात् अनुभूतित्व जाति नहीं हो सकती।) मूल में वज्रलेप शब्द के साथ सुशब्द का प्रयोग इसलिये दिया गया है, कि पूर्व में धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन सांकर्य कहा गया है। और इस समय तत्तादिविषयकत्वावच्छेदेन भी सांकर्य है।

प्रत्यभिज्ञा अनुभव ही है यह चतुर्थ पक्ष भी युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि अनुभव मात्र मानने पर तत्तावच्छिन्न के अभेद प्रतियोगि होने में अर्थात् इदन्तावच्छिन्न में तत्तावच्छिन्न प्रतियोगिक अभेद रूप अंश के भान में न संस्कार ही प्रयोजक है और इन्द्रियसन्निकर्ष ही।

संस्कारद्वारा प्रत्यासत्त्या सम्बद्धविशेषणतया तद्ग्रहः; क्वचित् 'सोऽयं नवे'ति तर्हि संशयो न स्यात्। दोषविशेषात्तत्र तत्प्रकाशो न सम्बद्धविशेषणत्वादिति चेत्; विनापि संस्कारं दोषवशात्तदापत्तेः। वस्तुप्रकाशिनि च दोषत्ववाचोयुक्त्यनिरुक्तेः।

शारदा

प्रत्यभिज्ञानाविषयत्वापातः । अभेदस्य सम्बन्धत्वेनानुपस्थितस्यापि भानमनुभवे तदैव स्याद्यदि तत्प्रतियोगितावच्छेदकीभवत्तत्ताऽनुभवविषयतामासादयेदिति भावः । संस्कारद्वारा = संस्कारघटितया । प्राचीनमते संस्कारस्याप्युपनायकत्वादिदम् । नव्यमते तु तस्यानुपनायकतयोपनयानुरोधेन स्मृतेरेव कल्पनात् तद्घटितैव प्रत्यासत्तिरित्यन्यत् । सम्बद्धेति । **स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतेत्यर्थः, तादृशश्च संस्कार इति तद्विशेषणतैव तत्तायामिन्द्रियस्यालौकिकप्रत्यक्षतानिर्वाहकः सन्निकर्ष इत्यर्थः । तद्ग्रहः = तत्ताग्रहः।** न स्यादिति । **निश्चयजनिकाया उक्तप्रत्यासत्तेस्तत्तायां सत्त्वादिति भावः । तत्र = उक्तसंशये। तत्प्रकाशः = तत्ताविशिष्टाभेदभानम्।** न सम्बद्धविशेषणत्वादिति । **संशयीयतत्ताविषयकत्वस्य नोक्तसंस्कारघटितप्रत्यासत्तिप्रयोज्यत्वम्, अपि तु दोषप्रयोज्यत्वमेवेति भावः । तदापत्तेः= तत्ताविशिष्टाभेदसंशयापत्तेः। अत्र—यथानवीनैर्भ्रमीयलौकिकविषयताया रजतं साक्षात्करोमीत्यनुभवसाक्षिकायाः दोषमात्रप्रयोज्यत्वमुच्यते, नतूपनयप्रयोज्यत्वम्, तत्प्रयोज्यविषयताया अलौकिकत्वात्, तथा संशयीयतत्ताविषयतायाः साक्षात्करोमीत्यनुभवसाक्षिकत्वाभावेन सम्भवदुक्तिकालौकिकताकत्वेन दोषमात्रप्रयोज्यत्वं पूर्ववादिना न वक्तुमुचितम्, अपि तु दोषसहकृतोक्तसंस्कारघटितप्रत्यासत्तिप्रयोज्यत्वमेव, तादृशप्रत्यासत्त्यभावेऽपि च मतान्तरे भ्रमे इव संशयेऽपि संस्कारस्यापेक्षणीयत्वमेव, अन्यथा कोटिद्वयोपस्थित्यसम्भवेन संशयाभावापत्तेरिति नेदं दूषणमित्याशङ्क्याह** वस्तुप्रकाशिनीति। **इमामेवाशङ्कां स्वयमेव ''एतेन संस्कारः सहकारिमात्र'' मित्यादिग्रन्थेनानुवदिष्यति । इदन्तु द्रष्टव्यम् – तत्ताविशिष्टांशे**

भारती

ऐसी स्थिति में तत्तावच्छिन्न के साथ इदन्तावच्छिन्न का अभेद प्रत्यभिज्ञा ज्ञान का विषय नहीं हो पायेगा। (सम्बन्धतया अनुपस्थित अभेद भी अनुभव में तभी भास सकता है यदि उस अभेद की प्रतियोगितावच्छेदकीभूत तत्ता अनुभव में भासित होती हो। प्रकृत में तत्ता अनुभव का विषय नहीं है अतः तत्प्रतियोगितावच्छेदकक अभेद भी अनुभव का विषय नहीं हो सकता।)

यदि कहें कि संस्कार घटितपरम्परासम्बन्ध (स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत) से सम्बद्धविशेषणतया तत्ता का ग्रहण हो जायेगा। (तात्पर्य यह है कि -तत्ता में साक्षात् इन्द्रियसन्निकर्ष न होने पर भी स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेतसंस्कारविषयत्व - स्वं इन्द्रिय, इन्द्रिय (चक्षुः) से संयुक्त मनः, मन से संयुक्त आत्मा, आत्मसमवेत (समवाय सम्बन्धेन वृत्ति) संस्कार, संस्कार विषयघटादि, उसमें विशेषण है तत्ता, इस प्रकार संस्कारघटित परम्परा सम्बन्ध से तत्ता का इन्द्रिय के द्वारा ही प्रत्यक्ष हो जायेगा। तथा च तत्ता के अनुभवविषय

क्वापि तस्यावस्तुप्रकाशित्वाद्दोषत्वे कथमक्षादेरपि तन्न स्यात् ,

---

शारदा

'साक्षात्करोमी'तिवद'नुभवामी'तिधियोऽप्यभावेन 'स्मरामी'तिधियश्च सत्त्वेन तदंशेऽनुभवत्वोक्तिरयुक्तैव, तस्मादस्तु प्रत्यभिज्ञायास्तत्ताविशिष्टांशे स्मृतित्वमस्तु वा निरन्तरोत्पन्नाभिज्ञाद्वयादेव सोऽयमित्याद्यभिलापः, प्रत्यभिज्ञानं तु तत्ताद्यनवगाह्येव निर्विकल्पकमभेदमात्रविषयकमभिज्ञाद्वयानन्तरभावीति मतम् , तार्किकमतं त्वनुपपन्नमेवेति। संशयस्य सदर्थविषयकत्वमस्ति नवा, आद्ये सदर्थविषयकज्ञानस्य प्रमात्वनियमात् तज्जनकस्य दोषत्वं वक्तुमशक्यम्, अन्यथाक्षादेरपि दोषतापत्तेरित्याह वस्तुप्रकाशिनीति । सदर्थविषकज्ञानजनके इत्यर्थः । ननु सन्मात्रविषयकज्ञानस्यैव प्रमात्वं, नचान्यथाख्यातिमते भ्रमेऽतिव्याप्तिः, तत्रालीकस्य संसर्गस्यापि भानात्, संसर्गासत्तां विना व्याधिकरणप्रकारकत्वस्याप्यसम्भवात्, सम्बन्धसम्बन्धिनोरैक्यस्य 'स्वं न स्वीय'मित्यनुभवविरोधेन पराहतत्वात् तथाच संशयेऽप्येकतरकोटेः क्वचित्कोटिद्वयस्यैव वाऽलीक एव संसर्गो भासते इति संशयजनकस्य दोषतोपपत्तिरित्यत आह क्वापीति । **संसर्गांशे इत्यर्थः । तस्य = तिमिरादेः** । स्यादिति । **संशयजनकत्वस्य तत्राप्यविशिष्टत्वादिति**

राजहंसः

ननु तादात्म्येन भ्रमे तस्य सम्बन्धिरूपतया सत्तैव समवायादिना भ्रमेऽपि समवायादेरन्यत्र प्रसिद्धत्वात्तत्सम्बन्धस्य चानतिरेकान्नासत्त्वम् , संयोगस्थलेऽपि च तत्सम्बन्धसम्बन्धस्य स्वरूपात्मकतैवेत्यत आह—**सम्बन्धसम्बन्धिनोरिति**। अत्राधिकं प्रत्यक्षखण्डनशारदायां सामान्यनिरुक्तिनिरासशारदायां च दर्शितम् ।

भारती

होने से तत्प्रतियोगिक अभेद का भान भी अनुभव से ही हो जायेगा ।) तो आप का यह कथन युक्त नहीं है क्योंकि इस प्रकार तत्ता में सर्वत्र निश्चय जनक परम्परासम्बन्ध के विद्यमान होने से कहीं भी "सोऽयं नवा" (यह वह है या नहीं) इत्याकारकसंशय नहीं हो पायेगा ।

यदि कहें कि उक्त संशय में तत्ताविशिष्ट अभेदभान में दोष कारण है न कि सम्बद्धविशेषणता, अर्थात् उक्त परम्परासम्बन्ध के रहने पर दोष के उपस्थित होने से (निश्चय न होकर) संशय हो जाता है, तो यह कथन भी ठीक नहीं है । क्योंकि दोष को ही उक्त संशय के प्रति कारण मानें तो संस्कार के बिना (संस्कार के न रहने पर) भी उक्त संशय होना चाहिए।

अपि च संशय के वस्तु प्रकाशक (सदर्थविषयक) होने से संशय जनक को दोष कहना (दोषत्व व्यवहार करना) भी सर्वथा अनुचित है । (सदर्थ विषयक ज्ञान तो प्रमा होता है फिर उसके जनक को जो प्रमाण कहा जाता है दोष कैसे कहेंगे । यदि सदर्थ विषयक प्रमाज्ञान के जनक को भी दोष कहें तो प्रमाजनक चक्षुरादि भी दोष हो जायेंगे)

यदि कहें कि क्वचित् अर्थात् संसर्गांश में असदर्थ का भासक होने से संशयजनक तिमिरादि दोष कहे जाते हैं । तो इस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियों में भी दोषत्व व्यवहार क्यों नहीं करते, चक्षुरादिकों को भी दोष कहना चाहिए, क्योंकि तादृशसंशय के जनक हैं ।

विशिष्टत्वेन तथात्वस्य प्रकृतेऽप्यपरिहारः। नहि विनैव कुतोऽपि

शारदा

भावः । नन्वसद्भानासाधारणकारणतावच्छेदकशक्तिविशेषविशिष्टत्वेनैव नयनादेरवस्तुप्रकाशिता, शक्तिश्च सा दोषाद्याहिता न तु सहजेत्यन्यदेतत्, दोषाणां तु स्वरूपेणैवावस्तुप्रकाशिता, सैव च दोषत्वव्यवहारनियामिकेति न नयनादावतिप्रसङ्ग इत्यत आह विशिष्टत्वेनेति । उक्तशक्तिविशेषविशिष्टत्वेनेत्यर्थः । तथात्वस्य = अवस्तुप्रकाशित्वस्य। प्रकृतेऽपि = तिमिरादावपि । विनैव कुतोऽपि विशेषात् = उक्तशक्तिरूपविशेषं विना । अस्य = तिमिरादेः । शक्तिवादे सर्वस्यापि शक्तिविशेषविशिष्टत्वेनैव जनकत्वात्, तिमिरादेरपि नयनादिवद्दोषत्वासम्भव इत्यर्थः । नच तादृशसहजशक्तिविशिष्टत्वमेव दोषत्वम् तिमिरादेः स्वविषयकप्रमाद्यनाधायकत्वप्रसङ्गात् । एतेनासद्भानासाधारणकारणतावच्छेदकरूपवत्त्वं दोषत्वम् , असद्भानानभ्युपगमे चाप्रमात्वमेव कार्यतावच्छेदकमिति परास्तम् , तादृशरूपस्यानुगतस्याभावात् , क्वचिद्दोषस्याप्यपरत्र गुणत्वात् । तदुक्तं प्रामाण्यवादमणौ– ''नच जात्यैव कश्चिद्दोषोऽस्ती''ति । एतेन–यथार्थज्ञानत्वावच्छिन्न-प्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवत्त्वं दोषत्वम् , नच–यथार्थज्ञानप्रतिबन्धकेष्वेव न दोषत्वव्यवहारः, दोषविषयकज्ञानस्याप्रमात्वापत्तिश्चेति वाच्यम्; घटत्ववद्विशेष्यकघटत्वविरुद्धाप्रकारकज्ञानत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धक-तावच्छेदकरूपवतस्तादृशज्ञानस्थलीयदोषतेत्यननुगमस्यैव विवक्षास्पदत्वादिति–निरस्तम् तादृशज्ञानव्यक्तीनामपि नानात्वेन तत्रैकरूपावच्छिन्नदोषाणामप्रसिद्धेः । तादृशरूपाणां नानात्वे तु प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तेः । नचैवमननुगमे तत्तत्क्षणसम्बन्धानामेव प्रतिबन्धकताऽस्तु तावतैव प्रकृतसंशयोपपत्तेरिति वाच्यम्; एवं हि सर्वत्रैव तेषामेव प्रतिबन्धकताया वक्तुं शक्यत्वेन प्रतिबन्धकान्तरविलोपापातात्, दोषसमवधानं विना तेषामपि प्रतिबन्धकताया असम्भवदुक्तिकत्वाच्चेति दोषत्वस्य दुर्विवेकत्वमेवेति भावः । संशयस्य

राजहंसः

शक्तिविशेषविशिष्टत्वेनेति । शक्तिरियं तार्किकाणां शिरोमण्यादीनामपि सम्मतैव, भाट्टरीत्यापि च शङ्कासम्भवः । प्राचीनव्याख्यानं तु तुच्छत्वात्सर्वथैव शारदायामुपेक्षितम् ।

भारती

प्रश्न – असद्भान का असाधारणकारणतावच्छेदक शक्तिविशेष है, तादृशशक्ति से विशिष्ट (युक्त) होने के कारण ही नयनादि में असदर्थविषयक ज्ञानजनकता आती है और वह शक्ति दोषों के द्वारा आहित है न कि स्वतः । दोष तो स्वरूप से ही असदर्थविषयक ज्ञान के जनक है अतएव उन्हें (तिमिरादि) दोष कहते हैं । स्वभावतः असदर्थप्रकाशक ही दोष कहे जाते हैं । अतः स्वभावतः असदर्थप्रकाशक न होने से चक्षुरादि इन्द्रियों में दोषत्व व्यवहार नहीं हो सकता ।

समाधान – इस प्रकार मानने पर तो तिमिरादि दोष भी तादृश शक्ति विशेष विशिष्ट होकर ही असदर्थ के प्रकाशक होते हैं । ऐसी स्थिति में स्वभावतः असदर्थप्रकाशक न होने से तिमिरादि दोष में भी दोषत्व व्यवहार नहीं होना चाहिए । क्योंकि तिमिरादि दोष भी उक्त

विशेषादस्यावस्तुप्रकाशिता, सत्यप्यर्थे दोषादवस्तुन एव प्रकाशे संशयात्प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यादेरसम्भवापत्तेः। वस्तुविषयत्वेऽपि दोषादनिश्चयतेति चेन्न; वस्तुनस्तस्यासङ्कीर्णत्वात्तस्य प्रकाशे तदेव संशयैककोटौ प्रकाशितमिति कुतस्तदनिश्चयता। निश्चयार्थस्य

शारदा

सदर्थविषयकत्वाभावपक्षमाशङ्क्याह सत्यपीति । **अवस्तुनः = अलीकस्य, तस्य हि सत्त्वेन न भानाम्, भाने वा सद्विषयकत्वमावर्जितम् , संशयादपि च सकम्पप्रवृत्त्यादिकं कृष्यादौ सर्वसम्प्रतिपन्नमेवेति भावः ।** अनिश्चयतेति । **अत्र निश्चयत्वं यदि विषयिताविशेषो जातिविशेषो वा निश्चिनोमीतिप्रत्ययसाक्षिकस्तदा तस्य सन्देहसामान्येऽसत्त्वात् 'निश्चयत्वस्याप्रत्यूहत्वादेवे' त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतिः । निश्चयत्वस्य संशयान्यज्ञानत्वरूपत्वे तु संशयत्वे एवानिश्चयत्वस्य पर्यवसानेन तस्य सन्देह्मीतिधीसाक्षिकविषयिता-विशेषजातिविशेषान्यतरात्मकत्वेऽग्रिमग्रन्थस्यालग्नकतैव, तादृशधियः संशयेऽनपलपनीयत्वादिति तस्यैकधर्मिकविरुद्धानेकप्रकारकज्ञानत्वात्मकतैवेति तदवच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकत्वमेव दोषत्वमिति भावः । एतादृशसंशयत्वं नैकैककोट्यंशे, अपि तु विरुद्धोभयारोपसामग्रीभ्यामारोपद्वयस्य प्रसक्तत्वेऽपि ज्ञानकरणमेकदैकमेव ज्ञानमर्जयतीति नियमेन तुल्यबलविरुद्धोभयारोपसामग्रीसंवलनस्योभयविषय-कैकारोपहेतुतोपेयते इति कोटिद्वयारोपमेकमादायैव निरुक्तानेकप्रकारकज्ञानत्वमिति नीलघटत्वादिवत् संशयत्वस्यार्थसमाजग्रस्तत्वेन कार्यतानवच्छेदकत्वान्न तदवच्छिन्नजन्यताकजनकत्वं दोषत्वमित्यभिप्रायेणाह** वस्तुन इति । असङ्कीर्णत्वादिति । **धर्मिणोऽन्यतरकोटेर्वा वस्तुनः संशयीयकोटिद्वयासम्बन्धित्वादित्यर्थः ।** तदेवेति । **संशयमात्रस्य भावाभावकोटिकत्वात् स्थाणुर्वा पुरुषो वेत्यस्यापि स्थाणुत्वपुरुषत्वाभावावादाय कोटिचतुष्कावगाहित्वात् संशयैककोट्यंशे एकात्मना वस्तुनो भानसम्भवादिति भावः। वस्तुनः सङ्कीर्णत्वे तु कदाचिदनेकात्मनाऽपि भानसम्भवात्**

भारती

शक्तिरूपविशेष के बिना असदर्थ के प्रकाशक नहीं होते । सदर्थ के रहने पर भी संशयस्थल में दोषवशात् अवस्तु अर्थात् असदर्थ का ही प्रकाश होता है यदि ऐसा मानें तो संशय के द्वारा बुद्धिमान की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए । किन्तु संशय के द्वारा भी कृष्यादि में बुद्धिमानों की प्रवृत्ति सर्वजनसिद्ध है । यदि कहें कि प्रवृत्ति के अनुरोध से संशयात्मक ज्ञान के वस्तुविषयक होने पर भी दोषवशात् उस संशयज्ञान में निश्चयात्मकता (निश्चयरूपता) नहीं हो पाती। तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि धर्मीरूप वस्तु अथवा भावाभाव में से अन्यतर कोटि सङ्कीर्ण अर्थात् संशयीयकोटिद्वयरूप नहीं होती और उस वस्तु का सम्बन्धी भी नहीं , किन्तु एक रूप ही रहती है और वही एक रूप (धर्मी) अथवा एक-एक कोटिरूप अंश ही संशय की एकतर कोटिरूप से भासित होती है ऐसी स्थिति में वह एक-एक कोटि तो अपने में निश्चित ही है अत: अनिश्चितता कैसी हुई । संशय

च संशयकोटावखण्डने संशये तदभावाधिकग्राहित्वेऽपि निश्च-यत्वस्याप्रत्यूहत्वादेव। अभावनिश्चयः कोट्यन्तरं केवलमधिकं स्यात्।

शारदा

नैककोट्यंशे एकात्मनैव भाननियम इत्युपष्टम्भसङ्गतिः । संशयैककोटौ = संशयैकतरकोट्यंशे, संशयैकतरकोटिविषयकत्वावच्छेदेनेति यावत् । प्रकाशितम् = विषयताश्रयः । तदनिश्चयतेति । **एकैककोट्यंशे इत्यादिः । अनिश्चयता = निरुक्तानेकप्रकारकज्ञानत्वम् । उक्तं स्फोरयितुमेव विरोधिकोटिभासकसामग्रीसत्त्वे कथमेकतरकोट्यंशे निश्चयत्वमित्याशङ्कायामाह** निश्चयार्थस्येति । **यद्विषयकत्वावच्छेदेन निरुक्तज्ञानत्वाभावस्तस्येत्यर्थः भावाभावान्यतरात्मककोटेरिति यावत्।** संशयकोटावखण्डने इति । **संशयकोट्यन्तरभानाविरोधिभानकत्वे इत्यर्थः । कोट्यन्तरभासकसामग्र्या बलवत्त्वविरहेणापरकोटिभानाप्रतिबन्धकत्वादिति भावः । अथवा संशयकोटावित्यस्य ग्राहित्वेऽपीत्यनेनान्वयः, संशयैककोट्यंशे इत्यर्थः । संशये इत्येतत्स-मभिव्याहारेणाखण्डनेइत्यस्य चोक्तार्थकत्वम् ।** तदभावेति । **संशयस्य भावाभावकोटिविषयकत्वे द्वयोरेव परस्पराभावरूपत्वेन तदभावाधिकेत्यनेन कोट्यन्तरलाभः। भावद्वयमात्रकोटिकसंशयस्य प्रामाणिकत्वपक्षे त्वस्योपलक्षणत्वं द्रष्टव्यम्, उक्तसंशयत्वस्य जन्यतानवच्छेदकतायास्तावतापि निर्वाहात् । निश्चयत्वस्य = उक्तसंशयत्वाभावस्य । अभावनिश्चयः = निश्चीयमानोऽभावः, निश्चयत्वावच्छिन्न-विषयितानिरूपितविषयताश्रयोऽभाव इति यावत् । अत्रैकस्मिन् विशेष्येऽविरलोत्पन्नविरुद्धकोटिविषयकनिश्चयद्वयमेव संशयात्मकतया प्रभाकरमतवदभिप्रेतमिति तु न भ्रमितव्यम् , ग्रन्थास्वरसात् , ''संशये तदभावाधिकग्राहित्वेऽपी''त्यनेन स्फुटं विरोधाच्च तुल्यन्यायेन समूहालम्बनस्याप्युच्छेदे द्वित्वादिप्रत्यक्षताविलोपापाताच्चेति । नचैकत्वेऽपि संशयस्य निश्चयत्वोक्तेरसामञ्जस्यं, विरोधविषयकत्वेनैव संशयत्वावश्यम्भावात् , अन्यथा समुच्चयतोऽविशेषापत्तेरिति वाच्यम्; मूलावच्छिन्नो वृक्षः कपिसंयोगी न वेत्यादिसंशयस्याप्येकावच्छेदका-वच्छेदेन भावाभावोभयवत्तावगाहिनः सत्त्वेन विरोधविषयकत्वेन संशयसमुच्चय-वैलक्षण्योपपादनासम्भवात्, अतएव ''क्वचिद्विरोधभानस्यापि तत्सामग्र्यधी-नत्वा''दिति शिरोमण्युक्तौ क्वचिदित्यस्य सङ्गतिः विरोधभानापेक्षणीयस्याव्याप्यवृत्ति-**

भारती

में जिस अंश में संशयज्ञानत्वाभाव अर्थात् एक-एक कोटिविषयकनिश्चयत्व ही है उस निश्चय का विषयभूत अर्थ (भावाभावान्यतर कोटि) का बाधक प्रतीति से खण्डन नहीं होता है, अतः उस अंश में वह संशय भी निश्चय रूप ही है केवल संशय में अभाव कोटि अधिक भासती है उस अंश में भी अभावरूप एक विषयक निश्चय ही है केवल निश्चय का विषय अभाव रूप अंश अधिक भासित है । अतः सभी प्रकार से निश्चयत्व ही है ।

जातिः संशयत्वं तत्प्रयोजकश्च दोष इति चेत्, 'इदं तद्वा नवे'ति संशयकोट्यर्थनिर्देशसमन्वयेन वाशब्दप्रतीतिव्यवहारयोरभावापत्तेः। प्रतीत्या सह वाकारार्थसम्बन्धे 'प्रत्येमि नवे'ति तदापत्तेः। वाकारार्थस्य प्रतीतिगतत्वेऽपि निश्चयत्ववत् 'स्थाणुमानय पुरुषं वे'ति स्थाणुपुरुषगतपाक्षिकलोकव्यवहारानुपपत्तेः। तस्माद्वाकारार्थस्य ज्ञानधर्मत्वे साक्षात्का-

शारदा

त्वज्ञानाभावविरोधोपस्थित्यादेरसार्वत्रिकत्वात् संसर्गतया च विरोधभानस्याप्रामाणिकत्वात्। अथास्तु सन्देह्मीतिप्रतीतिसाक्षिको मानसत्वव्याप्यो जातिविशेषः संशयत्वम् तच्च पक्षधरमिश्रादिमतेऽव्याप्यवृत्ति वा, अन्यमते व्याप्यवृत्ति कोटिविषयतामात्रनिरूपकतावच्छेदकञ्चेत्यन्यदेतत् । अस्तु वा कोटिताख्यविलक्षणविषयतानिरूपकत्वमेव संशयत्वं, तथाच तत्रार्थसमाजग्रस्तताया असम्भवदुक्तिकत्वेन तदवच्छिन्नजन्यताकजनकतया प्रकृते दोषतोपपत्तिरित्याशयेनाशङ्कते जातिरिति । विषयताविशेषनिरूपकत्वस्याप्युपलक्षणमिदम् । तत्प्रयोजकः = तदवच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकताश्रयः ।

ज्ञानगतो जातिविशेषो विषयिताविशेषो वा विषयगतविशेषमपास्य न स्यात् तथाच तस्यावश्यकल्पनीयत्वे तेनैवोपपत्तौ ज्ञानगतविशेषकल्पना न प्रामाणिकी; अथ विषयगतो विशेषो यदि वाकारार्थः, तदा स न विरोधः, तस्य संशयविषयताया अनियमात्, नापि विषयताविशेषः, अनुव्यवसाये एव तद्भानेन 'इदं तद्वा नवे ति सन्देहाकारानुपपत्तेः; नापि विकल्पः, तस्य विषयताविशेषरूपत्वे उदीरितदोषात्; व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वेत्यादिनिश्चयस्थलेऽपि तद्दर्शनाच्च, अन्यादृशस्यापि संशये भानार्हस्य तस्य दुर्वचत्वाच्च,

भारती

प्रश्न– संदेह्मि इत्याकारक प्रतीतिसाक्षिक जातिविशेष ही संशयत्व है तादृशसंशयत्वावच्छिन्न जन्यतानिरूपित जनकताश्रय ही दोष है । (संशयत्वविशिष्ट का जनक ही दोष है ।)

समाधान– यदि इस प्रकार मानें तो ''इदं तद्वा न वा'' इस प्रकार से संशयकोटि का विषयभूत अर्थ - पुरुषत्व पुरुषत्वाभाव आदि का वाचक शब्द = पुरुषशब्द एवं 'न' शब्द के सामानाधिकरण्येन वाशब्द की प्रतीति और वाशब्द का व्यवहार नहीं होगा । (तात्पर्य यह है समुच्चय के साथ संशयज्ञान का वैलक्षण्य विषयगतविशेष को लेकर ही होता है और उस विषयगतविशेष (अव्यवस्थित्व विरोध आदि) का वाचक वाशब्द मानकर ही संशय स्थल में ''वा'' शब्द का प्रयोग किया जाता है । किन्तु यदि समुच्चय के साथ संशय के वैलक्षण्य के लिए संशयज्ञान में विषयगतविशेष रूप वैलक्षण्य न मानकर संशयत्वजाति के द्वारा ही वैलक्षण्य का सम्पादन करें तो संशयत्व रूप वैलक्षण्य का ही वाचक वाशब्द को मानना होगा और ऐसी स्थिति में उस वाशब्द का प्रयोग अर्थगततया न होकर संशयगततया ही होगा, और उस वाशब्द के अर्थ अव्यवस्थितत्व विरोध आदि का भान भी संशयगततया संशयविषयक प्रतीति (अनुव्यवसाय) में ही होगा ।) और यदि प्रतीति के साथ ही वाकारार्थ का

रित्वादिवद्विषयानन्वयापत्तिरेवेति । न च प्रत्यासत्तौ सत्यामपि

शारदा

तस्मात्सन्देह्मीत्यनुभवोपपत्तये जातिविशेषस्य विषयिताविशेषस्यैव वा कल्पनं युक्तमितिचेदेवं तर्हि समुच्चयात्संशयस्य विषयप्रयुक्तविशेषाभावे संशये वाकारार्थभानं न स्यात् स्याच्च संशयगततयैव संशयविषयकप्रतीतौ भानमिति प्राहेदं तद्वान वेत्यादिना । संशयकोट्यर्थकशब्दसामानाधिकरण्येनेति तृतीयान्तार्थः । तदापत्तेः = प्रतीतिव्यवहारयोरापत्तेः । निश्चयत्ववत्प्रतीतिगतत्वेऽपीत्यन्वयः । विषयानन्वयापत्तिः = विषयनिष्ठतया प्रतीत्यनापत्तिः, साक्षात्कृत इत्यादौ तु साक्षात्कारित्वस्य न विषयनिष्ठतया प्रतीतिः, अपि तु साक्षात्कारविषयत्वस्यैवेति भावः । इदमुपलक्षणम्-विषयतागतविशेषस्य दुर्वचत्वमपि द्रष्टव्यम् , तस्याखण्डोपाधित्वे स्वरूपसम्बन्धविशेषत्वे वा प्रतीतिविशेषसाक्षिकत्वेनैव निरूपणीयत्वेनान्योन्याश्रयस्य, स्वं न स्वीयमित्यनुभवबाधस्य, सम्बन्धानवस्थानस्य चापत्तेरनिर्वाच्यत्वावश्यम्भावात् । एतेन कोटिद्वयप्रकारितयोरवच्छेद्यावच्छेदकभावोपगमस्य संशये समुच्चयवैलक्षण्यायावश्यकत्वात् प्रकारितावच्छिन्नप्रकारितानिरूपकत्वमेव तत्र विशेष इति निरस्तम् ; न तावत्तादृशविशेषस्य सन्देह्मीतिप्रतीतौ भानम्, अवच्छेद्यावच्छेदकभावस्यानुभविकत्वे भावाभावोभयकोटिनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यताया ऐक्यकल्पनादिना समुच्चयवैलक्षण्योपपादनस्यान्येषामनवकाशापत्तेः । अपि तु संशयसमुच्चयवैलक्षण्यान्यथानुपपत्त्या तादृशविशेषस्य कल्पनैव, नचावश्यकल्पनीयस्योपपादकस्य सद्भावेऽन्यथानुपपत्तिरुदयमासदयितुमीष्टे, यदाच कल्प्यमानोऽपि तादृशविशेषो नानिर्वाच्यतामतिक्रमितुं प्रभुः, तदा वैलक्षण्यस्यैवानिर्वाच्यतयैवोपपादनं युक्तिमत्, लाघवात् ; विशेषं परिकल्प्य तदीयानिर्वाच्यताकल्पने गौरवात् । अतएव कोटिद्वयप्रकारतानिरूपितविशेष्यतयोरवच्छेद्यावच्छेदकभावः संशये, न तु समुच्चये इत्यप्ययुक्तम् , घटतदभाववद्भूतलमित्यत्र द्वन्द्वानुपपत्तिप्रसङ्गाच्च, एकवाक्यतायै तत्र विशेष्यतयोरवच्छेद्यावच्छेदकभावस्यावश्यकत्वात् । यत्तु—विरुद्धोभयप्रकारताकैकविशेष्यताकज्ञानत्वमेव संशयत्वम्, समुच्चये प्रकारताभेदेन विशेष्यताया भेदेऽपि संशयेऽतथात्वादिति; तदसत्। निरूपकभेदस्य निरूप्यभेदप्रयोजकत्वे संशयेऽपि विशेष्यताभेदावश्यम्भावात् अन्यथा तु

भारती

सम्बन्ध स्वीकार करें तो ''इदं तद् वा न वा'' यह आकार न होकर ''प्रत्येमिनवा'' इस प्रकार ही वाशब्द की प्रतीति एवं व्यवहार होना चाहिए ।

किञ्च यदि निश्चयत्व के समान वाकारार्थ को प्रतीति (ज्ञान) गत ही मानें, तो निश्चयत्व धर्म के समान ही ''स्थाणुमानय पुरुषं वा'' इत्यादि स्थलों में वाकारार्थ (विकल्प = पाक्षिकत्व) का स्थाणु अथवा पुरुष रूप विषय सम्बन्धितया व्यवहार नहीं होना चाहिए । तस्मात् वाकारार्थ (विकल्पादि) को ज्ञान धर्म मानने पर साक्षात्कारित्व धर्म के समान विषयवृत्तितया प्रतीति नहीं हो पायेगी ।

प्रत्यासत्त्यपुरस्कारान्मनसा न ग्रहणं तत्र दोषवशादित्यस्तु। दोषे सत्यपि वस्तुनः संस्कारेण, संस्कारस्यात्मना, तस्य मनसा, तस्य च बाह्येन्द्रियेण प्रत्यासत्त्यपेक्षणे एव तदर्थप्रकाशनियमोपपत्तेः कः प्रत्यासत्त्यपुरस्कारस्त्वन्मते स्यात् । यदि तु संस्कारप्रत्यासत्तिमनपेक्ष्य तथा सन्दिह्येत तदाऽननुभूय प्रस्मृत्य वा तथा सन्दिह्येत ।

शारदा

समुच्चयेऽपि तदसम्भवात् , अर्थापत्तेश्चोक्तदिशैवानुदयात् अनुभवस्य च भेदाभेदयोमौर्नित्वात्। अत्रन्यूनाधिकधर्मावच्छिन्नयोर्विशेष्यतयोरैक्यस्यासम्भवेन शुद्धपर्वतत्वावच्छेदेनाभावप्रकारकस्य नीलपर्वतत्वादिविशिष्टे व्याप्यवत्तावगाहिनः संशयस्य निरुक्तसंशयलक्षणानाक्रान्तत्वेनानुमित्याधायकत्वप्रसङ्ग इत्यपि वदन्ति । एवं विषयतायां विशेषस्य दुर्निर्वचत्वे संशयत्वस्य जातितापि न मानालिङ्गिता, 'व्यञ्जकोपाधिनियता च जातिरिष्यते' इत्यभिधास्यमानत्वात्, उक्तरीत्यैवान्योन्याश्रयाच्चेति । दोषवशात्प्रत्यासत्त्यपुरस्कारादित्यन्वयः। अपुरस्कारः = अभिभवः, फलोपधानप्रतिबन्ध इति यावत् । न ग्रहणं = न तत्ताविशिष्टाभेदनिश्चयः । तत्तोपनयनमेव संस्कारघटितप्रत्यासत्तेः फलं, तदुपधानं च निष्पन्नमेव, अन्यथा सोऽयं नवेति सन्देहाकारानुपपत्तेः अतएवेदन्त्वविशिष्टेनापि न नयनप्रत्यासत्तिप्रतिबन्धः, अभेदस्तु संसर्गतयाऽनुपनीतोऽपि भातुमलं संसर्गांशे सन्निकर्षानपेक्षणादिति न निरुक्तस्य प्रत्यासत्त्यपुरस्कारस्य सम्भव इत्याह दोषे इति । **प्रत्यासत्त्यपेक्षणे एव = अप्रतिबद्धप्रत्यासत्तिसत्त्वे एव ।** तदर्थेति । **तत्ताविशिष्टार्थेत्यर्थः। प्रत्यासत्त्यपुरस्काराङ्गीकारे बाधकमाह** यदि त्विति । **संस्कारप्रत्यासत्तिमनपेक्ष्य = अप्रतिबद्धसंस्कारप्रत्यासत्तिं विनैव । अननुभवस्थले विशेष्याभावप्रयुक्तो विशिष्टाभावः। विस्मृतिस्थले तु विशेषणाभावप्रयुक्तो विशिष्टाभावः। प्रस्मृत्य = विस्मृत्य । संस्कारघटितप्रत्यासत्त्यभिभवस्य संस्काराभिभवे एव पर्यसानमिति भावः ।**

भारती

यदि कहें प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) के रहने पर भी दोषवशात् उस (प्रत्यासत्ति) के अभिभूत हो जाने से उस (प्रत्यासत्ति) के द्वारा तत्ताविशिष्ट अभेद का निश्चय नहीं होता, तो यह कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि दोष के रहने पर भी वस्तु का संस्कार के साथ, संस्कार का आत्मा के साथ, आत्मा का मन के साथ और मन का बाह्येन्द्रिय के साथ अप्रतिबद्ध प्रत्यासत्ति के रहने पर ही तत्ताविशिष्ट अर्थ प्रकाश नियम से होता ही है ऐसी स्थिति में आप के मत में प्रत्यासत्ति का अभिभव (फलोपधानता का प्रतिबन्ध) ही क्या हुआ और यदि अप्रतिबद्ध संस्कार घटित सम्बन्ध के बिना भी उक्त संदेहात्मिका प्रत्यभिज्ञा होती है ऐसा मानें तो जहाँ तत्ताविशिष्ट का पूर्वकाल में अनुभव न हुआ है अथवा अनुभव होने पर विस्मृत हो गया है वहाँ भी उक्त प्रकार संदेहात्मक प्रत्यभिज्ञा होनी चाहिए ।

वस्तुतस्तु, मनसा संस्काराग्राहिणा, चक्षुरादिना चात्माग्राहिणा तादृशप्रत्यासत्त्या ग्रहणानुपपत्तेः । नियमेन तदिन्द्रियाग्राह्याश्रयकप्रतियोगिकेतरस्य ग्रहणे स्वग्राह्यसम्बद्धविशेषणतायाः प्रत्यासत्तित्वनियमात् । अन्यथाऽऽप्यपरमाण्वादौ

शारदा

एतावता संस्कारघटितविशेषणतायाः प्रत्यासत्तित्वमभ्युपेत्य संशयानुपपत्तिरभ्यधायि, इदानीं तु तदेव नेत्याह वस्तुत इत्यादिना । **स एवाहमित्याभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञाभिप्रायेण** मनसेति । **संस्काराग्राहिणा = संस्कारग्रहणायोग्येन । स एवायं घट इति बाह्यप्रत्यभिज्ञाभिप्रायेण** चक्षुरादिनेति । आत्माग्राहिणेति । यद्यपि **संस्कारग्रहणायोग्यत्वाभिधानमेव प्रकृतोपयोगि तदिन्द्रियसम्बद्धविशेषणतात्वविशिष्टप्रत्यासत्तित्वस्य तदिन्द्रियग्राह्यनिरूपितत्वव्याप्यत्वात्, मनोनयनादिग्राह्यत्वस्य संस्कारेऽसद्भावे मनोनयनादिसम्बद्धसंस्कारविशेषणतायां तद्ग्राह्यनिरूपितत्वाभावप्रयुक्तस्य तादृशप्रत्यासत्तित्वाभावस्य विशेष्याभावनिबन्धनस्याक्षतेः। नच नयनादिसम्बद्धात्मविशेषणतयापि न तत्तादेर्ग्रह इत्यनुशयानस्येयमुक्तिरिति वाच्यम्, तथासति नायनत्वादेराभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञायां निषेधस्य पर्यवसानेन सिद्धसाधनापत्तेः, घटः स एवायमिति प्रकृतबाह्यप्रत्यभिज्ञाने तत्ताविशिष्टाभेदविषयकत्वाभावस्यानभिधानापत्तेश्च ।** तथापि **सुखादिप्रत्यक्षस्यात्मविषयकत्वनियमदर्शनात् नायनादिग्रहस्यात्मविषयकत्वाभावे संस्कारविषयकत्वस्य सुतरामसम्भव इत्यभिप्रायेणात्माग्राहित्वाभिधानम् । तादृशप्रत्यासत्त्या = स्वसंयुक्तसमवेतसंस्कारविशेषणतया स्वसंयुक्तसंयुक्तसमवेतसंस्कारविशेषणतया च । संस्कारविशेषणतायां प्रत्यक्षौपयिकप्रत्यासत्तित्वस्य विरहसाधने प्रवृत्तस्य तस्यां तद्विवक्षाया असम्भवात् । स्वग्राह्यसम्बद्धविशेषणतायाः ग्रहणे प्रत्यासत्तित्वनियमात् =**

राजहंसः

अनभिधानापत्तेश्चेति । तादृशप्रत्यभिज्ञानेऽपि घटविशेषणतया तत्ताभानसम्भवादित्याशयः।

भारती

वस्तुतस्तु संस्कार के ग्रहण (ज्ञान) में अयोग्य मन के द्वारा उक्त प्रत्यासत्ति (स्वसंयुक्तसमवेतसंस्कारविशेषणता) से "स एवाहम्" इत्यादि आभ्यन्तर प्रत्यभिज्ञा में तत्ताविशिष्टार्थ का तथा आत्मा के ग्रहण में अयोग्य चक्षुरादि के द्वारा उक्त प्रत्यासत्ति (स्वसंयुक्तसंयुक्तसमवेतसंस्कारविशेषणता) से "स एवायम् घट" इत्यादि बाह्यप्रत्यभिज्ञा में तत्ताविशिष्टअर्थ का ग्रहण होना भी संभव नहीं है । क्योंकि नियम से तत्तद् इन्द्रिय के द्वारा अग्राह्य आश्रय वाले प्रतियोगिक पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ग्रहण (तत्तद् इन्द्रियजन्यप्रत्यक्ष) में स्वग्राह्य सम्बद्ध विशेषणता अर्थात् तत्तद् इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य एवं तत्तद् इन्द्रिय से सम्बद्ध निरूपित विशेषणता ही प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) होता है ऐसा नियम है । (यहाँ समन्वय का प्रकार यह है कि भूतलस्थ घटाभाव के प्रत्यक्ष में स्वग्राह्यविशेषणता सन्निकर्ष माना जाता है । घटाभाववद् भूतलम् यहाँ पर स्व अर्थात् चक्षुः से ग्राह्य चक्षुः से सम्बद्ध भूतल है और उसमें विशेषण है घटाभाव, अतः विशेषणता घटाभाव में होने से तेन सम्बन्धेन भूतलस्थ घटाभाव का चक्षुरिन्द्रियजन्य

शारदा

तत्तदिन्द्रियग्राह्याभिन्नतत्तदिन्द्रियसम्बद्धनिरूपितविशेषणताया एव तत्तदिन्द्रियजप्रत्यक्षौपयिकप्रत्यासत्तित्वात् । तथाच तत्तदिन्द्रियसम्बद्धविशेषणतात्वविशिष्टं तत्तदिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षौपयिकप्रत्यासत्तित्वं तत्तदिन्द्रियग्राह्यनिरूपितत्वव्याप्यमित्यर्थः । नन्वेवं कुसुमे सौरभाभावस्य गुडे तिक्तत्वाभावस्य गगने शब्दाभावस्य महति वायावुद्भूतरूपाभावस्य च प्रत्यक्षं न स्यात् , घ्राणादिसम्बद्धविशेषणतया हि तद्ग्रहणं साच न घ्राणादिग्राह्यनिरूपिता, कुसुमादेर्घ्राणादिग्राह्यत्वाभावात्, न च सौरभाभावः कुसुमवृत्तिः कुसुमवृत्तित्वेनानुपलभ्यमानयोग्यप्रतियोगिकत्वादित्याद्यनुमानेन तद्ग्रहणमिति वाच्यम् ; योग्यानुपलब्धिसत्त्वेनेन्द्रियेण तद्ग्रहणे बाधकाभावादित्याशङ्क्य यद्यत्स्वग्राहकेन्द्रियग्रहणायोग्याश्रयकं यथा सौरभादि, तत्तत्प्रतियोगिकेतरविषयकत्वं व्याप्यदलप्रविष्टप्रत्यक्षे विशेषयितुं षष्ठ्यन्तम् । नियमेनेति तु **ग्रहणायोग्यत्वस्याग्राह्यपदेनलाभार्थं तद्विशेषणम् अन्यथा कदाचिन्नयनादिजन्यग्रहणाविषयभूतलादिवृत्तिप्रतियोगिकत्वस्यैव घटाभावादौ सत्त्वेन तादृशप्रतियोगिकेतरविषयकत्वविशेषणमप्रसिद्धमेव स्यादिति व्याप्त्यसिद्धिप्रसङ्गः । नियमेनेत्यतद्बलाद्ग्रहणायोग्यत्वलाभे तु घटादिर्नस्वग्राहकेन्द्रियग्रहणायोग्याश्रयक इति तादृशप्रतियोगिकेतरविषयकत्वं तदभावप्रत्यक्षे निराबाधम्। अथैवमपि रूपस्य स्वग्राहकेन्द्रियग्रहणायोग्याश्रयकत्वाभावेन वायौ तदभावप्रत्यक्षस्य**

राजहंसः

अप्रसिद्धमेव स्यादिति । ननु घटाभावादिप्रत्यक्षे तादृशविशेषणाप्रसिद्धावप्याधारतादेरपि विशेषणतया ग्रहणेन तत्प्रत्यक्षान्तर्भावेनैव व्याप्तिसिद्धिरास्ताम् मैवम् , तथा सति घटाभावादेरयोग्याधिकरणेऽपि प्रत्यक्षप्रसङ्गात्तत्साधारण्यस्यावश्यकत्वात् । प्रतियोगितात्वस्यानुगतत्वे आधारत्वाधेयत्वादेरपि परस्परप्रतियोगिकत्वेन कदाचित्स्वग्राहकेन्द्रियजग्रहणाविषयाश्रयकाधारतादिप्रतियोगिकत्वस्याधेयत्वादौ सत्तया तत्राप्यप्रसिद्धेश्च, आधारतादे स्वरूपसम्बन्धरूपतापक्षे विशेषणतासन्निकर्षेण तत्प्रत्यक्षाभावेऽपि क्षत्यभावाच्चेति भावः ।

भारती

प्रत्यक्ष होता है । इस प्रकार से यहाँ – तत्तद् इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष में तत्तद् इन्द्रियग्राह्य तत्तद् इन्द्रिय सम्बद्ध विशेषणता कारण है, इत्याकारक नियम उपस्थित होता है। किन्तु यह नियम कुसुम में सौरभाभाव के प्रत्यक्ष में, गुण में तिक्तत्वाभाव के प्रत्यक्ष में, गगन में शब्दाभाव के प्रत्यक्ष में एवं महानवायु में उद्भूतरूपाभाव के प्रत्यक्ष में व्यभिचरित होता है । क्योंकि तत्तद् इन्द्रिय अर्थात् घ्राणेन्द्रिय जन्य सौरभाभाव के प्रत्यक्ष में घ्राणेन्द्रिय ग्राह्य घ्राणेन्द्रिय सम्बद्ध विशेषणता सन्निकर्ष नहीं है । कारण की कुसुमादि घ्राणेन्द्रिय ग्राह्य न होने से घ्राणेन्द्रिय से सम्बद्ध नहीं है । अतः ईदृश व्यभिचारवारणार्थ उक्त कार्यकारण भाव के कार्य कोटि में– तत्तदिन्द्रिय ग्राह्याश्रयकप्रतियोगिकेतर अर्थात् तत्तद् इन्द्रिय के द्वारा अग्राह्य आश्रय वाले प्रतियोगिक पदार्थ से भिन्नत्व विशेषण दिया गया है । तथा च तत्तद् इन्द्रिय के द्वारा अग्राह्य आश्रय वाले प्रतियोगिक पदार्थ से भिन्न पदार्थ विषयक तत्तदिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष में

थिवीत्वादेरन्यत्र ग्राह्यतया निरस्तस्वरूपायोग्यत्वस्याभावो

शारदा

परमाणौ महत्त्वाभाव प्रत्यक्षस्य चानुपपत्तिर्नसमाहिता, नचाश्रयपदेन स्वप्रकारकारोपविशेष्यो विवक्षाक्षमः, आरोपस्याभावबुद्धिपूर्वं नियमेनासद्भावात् । तदुक्तं नञर्थवादगादाधर्याम्– ''प्रत्यक्षएव प्रतियोग्यारोपस्य हेतुत्वमप्रामाणिकं कुतः शाब्दबोधे तद्धेतुत्व''मिति । तादृशारोपविषयतायोग्यत्वं त्ववच्छेदकमनिरूप्याशक्यनिवेशमिति चेत्तादृश-विशेष्यत्वस्योपलक्षणतया निवेशे क्षत्यभवात् । व्यभिचारस्यान्ततस्तत्तदविषयकत्वस्य प्रत्यक्षे विशेषणेनापि वारणसम्भवाच्च । अत्रग्राह्यत्वं ग्रहणयोग्यत्वं तच्च क्वचिन्महत्त्वावच्छिन्नत्वमेवेति वायावुद्भूतरूपाभावप्रत्यक्षोपपत्तिः क्वचिच्चोद्भूत-रूपावच्छिन्नत्वमेवेति परमाणौ महत्त्वाभावप्रत्यक्षोपपत्तिः, क्वचिच्च महत्त्वोद्भूत-रूपोभयावच्छिन्नत्वमेवेति न वायौ पिशाचभेदप्रत्यक्षापत्तिरित्यपि वदन्ति । नन्वेवं व्यभिचारवारणेऽप्यप्रयोजकत्वं दुर्वारमेवेतिचेत्तत्राह अन्यथेति । आप्यपरमाण्वादावभावो दृगादिभिर्गृह्येतेत्यन्वयः । निरस्तेति । तथाचात्यन्ताभावप्रत्यक्षापेक्षणीयस्य योग्यप्रतियोगिकत्वस्यासद्भावमादाय नापत्तिवारणोपपत्तिः । यदिचान्योन्याभावसंसर्गा-भावोभयस्थलीयानुपलम्भगतं तत्तद्व्याप्येतरतदीययत्किञ्चिदुपलम्भकारणकूटसमवधानमेव योग्यत्वं तदा तदपि पृथिवीत्वाद्यनुपलम्भेऽक्षतमेव । नच पृथिवीत्वप्रत्यक्षं प्रति स्वाश्रयसमवायेन महत्त्वस्य कारणत्वं तस्य चासत्त्वमत्रेति वाच्यम्; एवं सति महति जलेऽपि पृथिवीत्वाभावप्रत्यक्षं न स्यात्, घटादिकमादाय तत्र महत्वोपपादनं तु प्रकृतेऽपि समं, पृथिवीत्वाश्रयगतमहत्त्वस्य पृथिवीत्वव्याप्यत्वात्तदितरोपलम्भकसमवधानं तत्रेति यदि तदापि तत्प्रकृते समानमेव सम्बन्धिसाक्षात्कारस्य सम्बन्धसाक्षात्कारजनकत्वेन संयोगाभावस्य प्रत्यक्षानुपपत्तेश्च, तत्सत्त्वे संयोगिनो घटादेरसत्त्वेन तत्साक्षात्कारस्याप्यसम्भवात् । अतएव प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वमेव योग्यत्वमिति नवीनाः । नच परमाणौ पृथिवीत्वोपलम्भप्रसङ्गासम्भवेनैतादृशयोग्यत्वविशिष्टानुपलम्भविरहादेव प्रकृतापत्तिर्वारणीयेति साम्प्रतम् ; आरोपस्याभावबुद्धिहेतुताया निरस्तत्वेन तद्योग्यत्वस्यैव निवेशनीयत्वात् निरुक्तोपलम्भकारणकूटवत्त्वस्य तदवच्छेदकत्वे पुरोदीरितदोषोन्मेषात् । किञ्च घटादौ

भारती

स्वग्राह्य सम्बद्ध विशेषणता सन्निकर्ष कारण है ।'' इस प्रकार कार्यकारण भाव सम्पन्न हुआ।

घटाभाववद् भूतलम् यहाँ समन्वय इस प्रकार है तत्तद्इन्द्रिय = घ्राणेन्द्रिय से अग्राह्य आश्रय = कुसुम, वह है आश्रय जिसका – सौरभ का, तत्प्रतियोगिक = सौरभप्रतियोगिक = सौरभाभाव, उससे भिन्न पदार्थ = घटाभाव, घटाभाव के चक्षुरिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष में स्वसम्बद्ध विशेषणता सन्निकर्ष है । प्रकृत में संस्कार के अतीन्द्रिय होने से मन के द्वारा अग्राह्य होने से एवं आत्मा के चक्षुरिन्द्रिय से अग्राह्य होने से सम्बद्ध विशेषणसन्निकर्ष के न होने से तत्ताविशिष्ट अभेद का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है यह भाव है ।)

प्रश्न - उक्त रूप से व्यभिचार के वारण होने पर भी उक्त कार्यकारण भाव नियम अप्रयोजक (अनावश्यक) है ।

दृगादिभिर्गृह्येत। नहीन्द्रियविहारदेशेषु निष्परमाणुकत्वनियमो

शारदा

पिशाचत्वाभावप्रत्यक्षं तावत्तार्किकैरुपेयते तत्र च प्रतियोगिसत्त्वेत्याद्युक्तयोग्यत्वं न सम्भवति प्रतियोगितद्व्याप्यातिरिक्ततत्प्रत्यक्षकारणकूटावच्छिन्नस्यैव प्रतियोगिसत्त्वस्य प्रसञ्जकत्वात् पिशाचत्वप्रत्यक्षस्य चाप्रसिद्धत्वात्, किन्तु तदधिकरणीयत्वप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वमेव पिशाचत्वानुपलम्भे योग्यत्वं, परमाण्वादौ महत्त्वाभवप्रत्यक्षोपपत्तये च प्रतियोगि-सत्त्वेत्यादियोग्यत्वमप्यावश्यकमिति गुरुतरयोग्यानुलब्धिद्वयघटितकार्यकारणभावद्व-यकल्पनामपेक्ष्य लाघवादभावप्रत्यक्षे क्लृप्तकारणताकविशेषणतायामेव ग्राह्यनिरूपितत्वं निवेशयितुमुचितम् । परमाण्वादौ महत्त्वाभावप्रत्यक्षार्थं मया प्रतियोगिसत्त्वेत्यादियोग्यताया: कल्पनीयत्वेऽपि योग्यताद्वयवादिनस्तव गौरवं स्फुटमेव। नच—तदधिकरणीयत्वेत्यादियोग्यता न मयापि कल्पनीया, योग्यप्रतियोगिकाभावप्रत्यक्षे एव प्रतियोगिसत्त्वेत्यादियोग्यताया हेतुत्वेन तां विनापि पिशाचत्वाभावप्रत्यक्षोपपत्तेरिति वाच्यम्; परमाण्वादौ महत्त्वाभावप्रत्यक्षस्य मयाप्यन्यथोपपादितत्वेन प्रतियोगिसत्त्वेत्यादियोग्यत्वस्यापि मयाऽकल्पनसम्भवात् । एवं सत्ययोग्याधिकरणे पिशाचत्वाभावप्रत्यक्षापादानस्याशक्यसमाधित्वापत्तेश्च, ग्राह्यसम्बद्ध-विशेषणताया: प्रत्यासत्तितोपगमे च सिद्धं न: समीहितम् । एतेन—विशुद्धमातापितृयोनि-जत्वादिव्यञ्जकधीविरहकाले ब्राह्मणत्वाद्यभावग्रहप्रसङ्ग:, ग्राह्यसम्बद्धविशेषणताया: सत्त्वादिति योग्यानुपलब्धे: कारणत्वमावश्यकमिति—निरस्तम्; तस्या: कारणतोपगमेऽपि तादृशविशेषणताया उक्तरीत्या आवश्यकत्वात्, ग्राह्यत्वस्य योग्यतारूपस्याननुगमे च ब्राह्मणत्वाद्यभावप्रत्यक्षं प्रति व्यञ्जकविशेषावच्छिन्नत्वरूपयोग्यत्वविशिष्ट-सम्बद्धविशेषणताया: प्रत्यासत्तित्वसम्भवाच्चेति भाव: । नन्वाप्यपरमाणुगत-पृथिवीत्वाभावस्येन्द्रियसम्बद्धविशेषणताविरहादेवाप्रत्यक्षतोपपत्तिरितिग्राह्यत्वविवक्षा नादरणीयेत्यत आह नहीति । इन्द्रियविहारदेशेषु = इन्द्रियसम्बद्धदेशेषु । युक्ताभ्युपगम:

राजहंस:

तदधिकरणीयत्वेति। तदा पिशाचत्वाद्यभावपरामर्श: । पिशाचत्वं यदि घटाधिकरणकं स्यादुपलभ्येतेति हि प्रसङ्ग: । **अन्यथोपपादितत्वेनेति।** क्वचिच्चोद्भूतरूपा-वच्छिन्नत्वमेवेत्यनन्तरग्रन्थेनेति द्रष्टव्याम् ।

व्यञ्जकविशेषावच्छिन्नत्वेत्यादि । क्षत्रियादिपितृजत्वग्रहविषयत्वरूपयोग्यताविशिष्टं सम्बद्धं च यत्तद्विशेषणताया इत्यर्थ: । प्रायो हि पूर्वं कदाचिद्योनिविशेषेण ब्राह्मणत्वादि प्रयुक्तमासीदिति भाव: ।

भारती

समाधान- यह कथन समुचित नहीं है क्योंकि उक्तनियम को यदि न माना जाय तो जलीय परमाणु में पृथ्वीत्वाभाव जो कि अन्यत्र अर्थात् स्थूलजलादि में चक्षुरिन्द्रिय से ग्राह्य होने से प्रत्यक्ष के स्वरूपयोग्य है, का चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष होना चाहिए । वहाँ यह नहीं कह सकते कि जलीयपरमाणुगतपृथ्वीत्वाभाव में इन्द्रिय सम्बद्ध विशेषणता नहीं है । क्योंकि इन्द्रिय सम्बद्ध देशों में नियम से परमाणु है ही नहीं, यह नहीं मान सकते ।

युक्ताभ्युपगमः। शब्दाभावप्रत्यक्षतावादिनये श्रोत्रेन्द्रियविशेषणता सप्तमः सन्निकर्षः, नतु तत्र सम्बद्धविशेषणतेत्यतोऽपि न व्यभिचारः।

नचात्मसंयुक्तमनः प्रति पूर्वानुभूतार्थात्मप्रत्यासत्तिरेव संस्कार

शारदा

= **युक्तोऽभ्युपगमो यस्य सः । षष्ठ्यन्तस्य गगने शब्दाभावप्रत्यक्षस्थले व्यभिचारवारणार्थमेव नोपादनमपितु स्थलान्तरे व्यभिचारवारणार्थं, शब्दाभावप्रत्यक्षस्थले निविष्टविशेषणान्तरेणैव व्यभिचाराप्रसक्तेरित्याह** शब्दाभावेति । **चक्षुषि पृथिवीत्वाभावप्रत्यक्षस्य शङ्कैव नोदियादित्याशयेन** श्रोत्रेति । सप्तम इति । **सम्बद्धविशेषणतानात्मकत्वे एव तात्पर्यं, विशेषणतात्वेनैकीकृत्य तु षष्ठत्वव्यवहारेऽपि न क्षतिः ।** नतु सम्बद्धेति । **नहि संयोगादिना श्रोत्रसम्बद्धे शब्दाभावो विशेषणमपि तु श्रोत्र एव, सम्बद्धत्वस्या तादात्म्यासाधारणस्यैवाननुगतस्य निविष्टत्वादिति व्यक्तं कुसुमाञ्जलिप्रकाशादौ । यद्यपि स्मृतेरुपनायकत्वमते तस्या मनोग्राह्यत्वेनाभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञोपपादनं सम्भवति, तथापि तस्या नयनाद्यग्राह्यत्वेन बाह्यप्रत्यभिज्ञाने ग्राह्यसम्बद्धविशेषणताया असम्भव एव, नच तत्रापि घटादौनयनादिना ग्राह्ये सम्बद्धे च विशेषणतया तत्ताऽभासतामिति वाच्यम् ; एवं सति तत्र स्मृतेरनुपनायकतापातात् । विशेषणताया वर्तमानत्वनियतत्वेनैतत्कालावच्छिन्ने घटे पूर्वकालावच्छिन्नत्वस्योपलक्षणतासम्भवेऽपि विशेषणताया असम्भवाच्च, अन्यथा विशेषणस्य समानकालीनत्वसंसर्गेण विधेयान्वयित्वात् पूर्वकालस्येदानीं सत्त्वापत्तेः । अतएव स्मृतावपि तत्ताया न विशेषणतासम्भवः, विषयताया अतीतादिसम्बद्धत्वेऽपि विशेषणतानुपपादकत्वात् । वस्तुतस्तु प्रत्यक्षखण्डनादौ वक्ष्यमाणं युक्त्यन्तरमेवोपनयसन्निकर्षबाधकमनुसन्धेयम्। नच समवाया भावयोरेव विशेषणतया ग्रहणमित्यनुपपन्नोऽयं विचार इति वाच्यम्; इन्द्रियसम्बद्धविशेषणतयैव तत्ताभानस्य सविकल्पकवादे मणावुक्तत्वात्, अतएवोपनयसन्निकर्षस्य विशेषणतायामन्तर्भावः परिशुद्धिप्रकाशेऽभिहितः ।**

नचेति । **निस्तार इत्यन्वयः** । आत्मसंयुक्तमनः प्रतीति । **आत्मसंयुक्तमनोनिरूपितेत्यर्थः। तथाच मनः संयुक्तसमवेतसंस्कारः प्रत्यासत्तिः । मनः संयुक्तत्वादिरूपत्वाभिधानं तु**

राजहंसः

अतादात्म्यसाधारणस्येति । तादात्म्यव्यावृत्तस्येत्यर्थः ।

भारती

शब्दाभाव का प्रत्यक्ष मानने वाले तार्किक के मत में शब्दाभावप्रत्यक्षस्थल में श्रोत्रेन्द्रिय विशेषणता सप्तम सन्निकर्ष ही मानते हैं न कि स्वसम्बद्धविशेषणता, क्योंकि संयोग सम्बन्ध से श्रोत्रेन्द्रिय सम्बद्ध में शब्दाभाव विशेषण नहीं है अपितु श्रोत्र में ही वह (शब्दाभाव) विशेषण है । तस्मात् उक्त कार्यकारणभाव का व्यभिचार नहीं है ।

यदि कहें कि पूर्वानुभूत घटादि एवं आत्मा में मन का आत्मसंयुक्त मनोनिरूपित अर्थात् मनःसंयुक्तसमवेतसंस्काररूपप्रत्यासत्ति है और तादृशसंस्काररूप प्रत्यासत्ति का अतीन्द्रियत्व

इति तदतीन्द्रियत्वं न दोषाय, प्रत्यासत्तेरतीन्द्रियाया इन्द्रियार्थसन्निकर्षस्योपगमादिति स्वीकृते निस्तारः, तथासति 'स' इत्यंशे चक्षुरादेः प्रत्यासत्त्यभावात्प्रत्याभिज्ञाया अचाक्षुषत्वापातात्! 'अय' मित्यंशो दृगादिना, तदंशस्तु मनसा गृह्यतां तदेतदभेदस्तु केनेत्युक्तमप्यावर्तते इति। एतेन-संस्कारः सहकारिमात्रमिन्द्रियस्यातिप्रसङ्गनिवारकः प्रत्यभिज्ञायां, तदर्थ

शारदा

बाह्याभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञासाधारण्यानुरोधेन, नयनादिसंयुक्तादिरूपप्रत्यासत्तेराभ्यन्तर-प्रत्यभिज्ञासाधारण्यासम्भवात्, मनः संयुक्तत्वादेश्च तत्राप्यनुप्रवेशात् । अन्यथा प्रत्यासत्तिषट्ककल्पनापातेन गौरवप्रसङ्गात्, निष्प्रयोजनत्वाच्च, लौकिकविषयता-नियतचाक्षुषत्वादेरलौकिकविषयताशालिन्यनुपपादनीयत्वादिति भावः। अर्थेति **बाह्यप्रत्यभिज्ञाभिप्रायेण ।** आत्मेत्याभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञाभिप्रायेण **। अथवा पूर्वानुभूतोऽर्थ आत्मानात्मरूपः, तस्यात्मनश्च प्रत्यासत्तिरित्यर्थः । संस्कारस्यार्थविषयकत्वा-दात्मसमवेतत्वाच्च निरुक्तप्रत्यासत्तिलाभः** प्रत्यासत्तिरेवेति **। ननु सम्बद्ध-विशेषणताप्रत्यासत्तिघटको येनोदीरितव्याप्तिरुपरुध्येतेत्यर्थः । संस्कारस्य प्रत्यासत्तित्वं च विषयतासम्बन्धेन ।** संस्कार **इति । उद्बुद्धसंस्कारबलादेव तत्ताया विशिष्टधीविषयत्वोपपत्तौ मध्ये स्मृतिकल्पनायां प्रमाणाभावादिति भावः । निस्तारः = प्रत्यभिज्ञोपपत्तिः ।** प्रत्यासत्त्यभावादिति । **लौकिकेत्यादिः । अलौकिकप्रत्यासत्तेः सम्भवेऽपि तस्याश्चाक्षुषत्वाद्यनुपपादकत्वादिति भावः । अचाक्षुषत्वापातात् = अचाक्षुषत्वाद्यापातात्। नन्विदन्ताविशिष्टांशे एव चाक्षुषत्वं तत्ताविशिष्टांशे तु लौकिकविषयतानियतचाक्षुषत्वादिकं नेष्टमेवेत्यत आह** अयमित्यंश इति। **तदंशः = तत्ताविशिष्टांशः । तदेतदभेदः =**

राजहंसः

तदेतदभेद इति । अत्र द्वन्द्वविवक्षायां 'त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ' वित्येकशेषप्रसङ्ग इति भावेनान्यथा व्याचष्टे **तत्तावच्छिन्नेनेत्यादि ।**

भारती

(अतीन्द्रिय होना) दोष नहीं है क्योंकि घटादिप्रत्यक्षस्थल में भी इन्द्रियार्थसन्निकर्ष अतीन्द्रिय ही माना जाता है । तो इस प्रकार स्वीकार करने पर भी निस्तार (आप के स्वकीय प्रत्यभिज्ञोपपत्तिरूप उद्देश्य की सिद्धि) नहीं है । क्योंकि इस प्रकार मानने पर प्रत्यभिज्ञा "सः" इस अंश में अर्थात् तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन चक्षुरादि की प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) न होने से तदंश में चाक्षुषत्व अर्थात् चाक्षुषादि ज्ञानीयविषयता नहीं हो पायेगी । यदि कहें कि इदन्ताविशिष्ट का चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा और तत्ताविशिष्ट का चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा और तत्ताविशिष्ट का मन के द्वारा ग्रहण हो जायेगा, तो हम आपसे पूछेंगे कि तत्ताविशिष्ट के साथ इदन्ताविशिष्ट का अभेदरूप अंश न चक्षुरादि का विषय है और न मन का ही, अतः वह (तादृश अभेद) किसके द्वारा प्रकाशित होगा, अर्थात् किसी के द्वारा नहीं, ऐसी स्थिति में उक्त प्रत्यभिज्ञा ही अनुपपन्न हो जायेगी । इस प्रकार पूर्वोक्तदोष ही उपस्थित रहेगा ।

इन्द्रियेणासन्निकृष्ट एवोल्लिख्यते विभ्रमार्थवत् , सन्निकृष्टग्राहिता चेन्द्रियस्य सन्निकर्षसहकार्यवश्यम्भावमात्रं , तच्चेदमंशसन्निकर्षादिव स्यात् , नतु सर्वग्राह्यसन्निकर्षसहकारिता- इत्यपि निरस्तम् ; सोऽयं नवेति संशयाभावापातेनैवेति। 'तदद्राक्ष'मित्यादिस्मृतिरपि

शारदा

तात्तावच्छिन्नेनेदन्तावच्छिन्नस्याभेदेः केनेति। **तत्तेदन्तावच्छिन्नाविषयकस्य तादृशाभेदविषयकत्वासम्भवात् , न च चाक्षुषाद्यंशस्य मानसांशस्य च तत्तेदन्तावच्छिन्नविषयकत्वासम्भवे प्रत्यभिज्ञायास्तत्सम्भवतीति भावः । कथञ्चित्प्रत्यभिज्ञायास्तत्सम्भवे तु सोऽयं नवेति संशयानुपपत्तिरत्र पक्षेऽपि द्रष्टव्या ।** इन्द्रियस्येति। **आभ्यन्तरप्रत्यभिज्ञास्थले इदन्ताविशिष्टसन्निकृष्टस्य मनसः बाह्यप्रत्यभिज्ञास्थले च तादृशस्य नयनादेरित्यर्थः ।** अतिप्रसङ्गेति । **संस्कारं विनापि प्रत्यभिज्ञानापत्तीत्यर्थः । तदर्थः = तत्ताविशिष्टार्थः ।** विभ्रमार्थवदिति । **अन्यथाख्यातिमते रजते न लौकिकसन्निकर्षसम्भवः, अलौकिकसन्निकर्षस्तु सम्भवन्नपि रजतं साक्षात्करोमीति प्रतीत्यनुपपादक इति भावः ।** नतु सर्वेति । **अतएव "सादृश्यस्योभयवृत्तिधर्मस्य किञ्चिद्विशेष्यसन्निकर्षात्प्रत्यक्षेण भानं यावद्विशेष्यसन्निकर्षस्याप्रयोजकत्वा" दित्युपमानमणौ "यत्किञ्चिद्विषयसन्निकर्षजन्यतयैव प्रत्यक्षत्वनिर्वाहा" दिति परामर्शगादाधर्याञ्चोक्तमिति भावः ।** पातेनैवेति । **उद्बुद्धसंस्कारसहकृतेन्द्रियादिसत्त्वेन निश्चयस्यैवोत्पत्तुं युक्तत्वात् दोषत्वदुर्विवेकताया अभिहितत्वादभिधास्यमानत्वाच्चेति भावः । अयमेवात्र दोष इति परकीयश्रद्धामनुरुध्यापि संस्कारस्य मनः प्रत्यासत्तित्वे तद्घटकत्वे च दोषान्तरमाह** तदद्राक्षमिति ।

भारती

प्रश्न – इन्द्रिय सन्निकृष्ट (स्वसम्बद्ध) का ग्राही होती है इसका तात्पर्य यह है इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष अवश्य होना चाहिए, वह (सन्निकर्ष) भी ग्राह्य के सर्वांश में आवश्यक नहीं है किसी एक अंश में सन्निकर्ष होने पर भी प्रत्यक्षज्ञान होना सम्भव है प्रत्यभिज्ञास्थल में भी इदमंश में (इदन्ताविशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन) इन्द्रियसन्निकर्ष है । प्रत्यभिज्ञा स्थल में – "संस्कार के बिना भी प्रत्यभिज्ञा होनी चाहिए" इत्याकारक अतिप्रसङ्ग के वारणार्थ संस्कार इन्द्रिय का सहकारी माना जाता है । तथा च जैसे मेरे (अन्यथाख्यातिवादि) मत में इदं रजतम् इत्यादि भ्रमस्थल में इदमंशमात्र में लौकिक सन्निकर्ष है रजतांश में नहीं, और अलौकिक सन्निकर्ष होता हुआ भी रजतांशं साक्षात्करोमि इस प्रतीति का अनुत्पादक है । तथापि इदं रजतम् इत्याकारक ज्ञान में रजत भी भासित होता है उसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा स्थल में भी इदंताविशिष्ट विषयकत्वावच्छेदेन इन्द्रियसन्निकर्ष के रहने मात्र से ही इदंताविशिष्ट के साथ ही तत्ताविशिष्ट का भी भान हो जायेगा ।

समाधान - इस प्रकार मानने पर "सोऽयं नवा" इत्याकारक संशय नहीं हो पायेगा । क्योंकि उद्बुद्ध संस्कार सहकृत इन्द्रियसन्निकर्ष रूप सामग्री के रहने पर निश्चयात्मक ज्ञान ही होना उचित है, न कि संशय, कारण कि संशय का हेतु दोष है और वह (दोष) अनिर्वाच्य

चैवमनुभवः स्यात्, मनस आत्मसंयोगसहकृतादर्थात्म-सन्निकर्षात्संस्काराज्जायमानायास्तस्या इन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वादेव; मनसाऽऽत्मसंयोगादात्मसमवायेन प्रत्यक्षीक्रियमाणैर्ज्ञानादिभिः स्मर्यमाणस्यार्थस्याविशेषादिति ।

एतेन-तत्तावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभावविरहः स्वरूपाभेदो वाऽयं भातीत्यपि–निरस्तम् ; अन्योन्याभावव्यतिरेकोऽन्योन्यमेव

शारदा

एतेनेत्यादिपक्षे तु नायं दोषः, तत्ताविशिष्टेन सन्निकर्षासम्भवात्, आत्मनिष्ठ-तत्ताविषयकसंस्कारोद्बोधे तु मनःसन्निकृष्टात्मविषयकप्रत्यभिज्ञानस्यैवोत्पत्तेः । मनस इत्यस्य संयोगेऽन्वयः । मनः संयुक्तात्मसमवेतसंस्कारादित्यर्थः । मनसेत्यादि । **मनः संयुक्तात्मसमवायेनेत्यर्थः ।** अविशेषादिति । **मनः सन्निकर्षस्य संस्कारघटितत्वेन स्मृतेरनुभवत्वाभावे तु प्रत्यभिज्ञाया अपि तन्न स्यात् । ननु संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताकत्वेनैव स्मृतित्वं प्रत्यभिज्ञायास्तु न तथात्वमपि तु तत्तास्मृतिजन्यत्वमिति चेत् उद्बुद्धसंस्कारवशादेव प्रत्यभिज्ञायास्तत्ताविषयकत्वोपपत्तेर्मध्ये स्मृतिकल्पनायां प्रमाणाभावात्, प्राचीनैः सर्वैरनुभवस्य तथैव निर्णीतत्वात् । नचैवमनुभवस्य संस्कारद्वारा प्रत्यभिज्ञाकरणत्वे तस्या ज्ञानकरणकज्ञानत्वेन परोक्षतापत्तिरिति देश्यम्, नहि ज्ञानाकरणकज्ञानत्वं प्रत्यक्षत्वमपि तु जातिरित्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्, एवं च प्रत्यभिज्ञास्थले साक्षात्करोमीतिधीसत्त्वे प्रत्यक्षत्वमेव, ज्ञानकरणकज्ञानत्वस्य परोक्षत्वेऽप्रयोजकत्वात् । अन्यथा तस्यानुमितित्वं वा शाब्दत्वं वोपमितित्वं वा प्रत्येव प्रयोजकत्वं किमिति न रोचये: ।**

अन्योन्याभावविरहः = अन्योन्याभावात्मकभेदस्य विरहः, स्वरूपाभेदः = स्वरूपात्मकभेदस्य विरहः इदन्तावच्छिन्ने संस्कारेन्द्रियाभ्यां भाति, तादृशविरहद्वयस्यैव तत्तेदन्तावच्छिन्नात्मकतया ताभ्यां सम्भूय तद्विषयकज्ञानोत्पादनसम्भवादिति भावः । अन्योन्यमेवेति । **भेदाभावाधिकरणे तादात्म्यातिरिक्तसंसर्गेण प्रतियोगिता-**

भारती

है यह कह चुके हैं ।

किञ्च संस्कार को मन का सम्बन्ध या सम्बन्धघटक मानने पर "तद् अद्राक्षम्" इत्यादि स्मृति भी प्रत्यक्ष अनुभव हो जायेगी, क्योंकि वह स्मृति भी मन:संयुक्तात्मसमवेतसंस्कार के सहित मन:संयुक्तात्मसमवायरूप इन्द्रियसन्निकर्ष से जन्य है । "जानामि" अनुव्यसाय स्थल में मन:संयुक्तात्मसमवायसन्निकर्ष के द्वारा मन से प्रत्यक्षीक्रियमाण ज्ञान के साथ प्रत्यभिज्ञा स्थल में स्मर्यमाण तत्ताविशिष्ट अर्थ का कोई वैलक्षण्य (विशेषता) नहीं है अर्थात् दोनों की समानता होने से उक्त स्मृति भी प्रत्यक्षअनुभव हो जायेगी ।

प्रश्न – प्रत्यभिज्ञा स्थल में तत्तावछिन्न प्रतियोगिक अन्योन्याभावरूप भेद का विरह अथवा स्वरूपात्मक भेद का विरह (अभाव) ही इदन्तावच्छिन्न में इन्द्रिय और संस्कार के द्वारा भासित होता है । वे दोनों ही विरह (अभाव) तत्तावच्छिन्न इदन्तावच्छिन्न रूप ही है अत: इन्द्रिय और संस्कार दोनों मिलकर ही तद् विषयक ज्ञान को उत्पन्न करते हैं ।

तत्तेदन्तोपाध्यवच्छिन्नयोः स्यात् नच तन्मिलितमेकेन सुग्रहम् । एवं स्वरूपाभेदेऽपि तयोरैक्यं तदनवगाहिना दुरवगममेव। संस्कारोपनीते च विषये यदि ज्ञानमनुभवः स्यात्, स्मृतिरपि कुतो नानुभूतिः?। अथ न संस्काराधीनत्वमात्रेण स्मृतित्वं, किन्त्वनुभवकारणासम्पृक्तसंस्कारजत्वेन, ततश्चाधिकार्थाक्षसन्निकर्षापेक्षं प्रत्यभिज्ञानमनुभव एव भवति, नतु स्मृतिरिति चेन्न; संस्कारासम्पृक्तानुभवकारणजत्वेनानुभवत्वं भवति, प्रत्यभिज्ञानं तु संस्कारसहितानुभवकारणजं स्मृतिरेवेति वैपरीत्यं

शारदा

वच्छेदकव्यवहारवत्तादात्म्येन प्रतियोगिनोऽपि व्यवहारात्प्रतियोगिरूपत्वं भेदाभावस्य सम्भवदुक्तिकमिति भावः । एकेन = संस्कारेणेन्द्रियेण वा । सम्भूयकारित्वं तु साङ्कर्यस्य सुवज्रलेपत्वाभिधानेन प्राङ्निरस्तम् । संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताकत्वेन प्रत्यभिज्ञानस्य स्मृतित्वमापादयति संस्कारेति । **ज्ञानान्वयि विषयित्वं सप्तम्यर्थः । अर्थाक्षसन्निकर्षाजन्यत्वे सति संस्कारत्वावच्छिन्नजन्यत्वस्यैव स्मृतित्वसमव्याप्यत्वाद्विशेष्यमात्रस्य तत्साधने सोपाधिकत्वमित्याह** अथेति । **अनुभवकारणं = अर्थाक्षसन्निकर्षादि । प्रत्यभिज्ञानेऽनुभवत्वस्य सम्प्रतिपन्नत्वे हि स्मृतित्व व्यापकमर्थाक्षसन्निकर्षाजन्यत्वघटितं स्यादपि, तत्र तस्य विप्रतिपन्नत्वे तु संस्कारत्वावच्छिन्नाजन्यत्वे सत्यर्थाक्षसन्निकर्षव्याप्तिज्ञानाद्यन्यतमजन्यत्वस्यै-**

भारती

समाधान- अन्योन्याभाव का अभाव अन्योन्यरूप ही होता है अतः प्रत्यभिज्ञा में भी तत्ता इदन्ता रूप उपाधिद्वय से अवछिन्न धर्मियों को अन्योन्य (परस्परभिन्न) रूप ही मानना होगा और वह अन्योन्य (परस्परविभिन्न) रूप सम्मिलित होकर किसी भी एक-संस्कार या इन्द्रिय के द्वारा प्रकाशित नहीं हो सकता । इसी प्रकार स्वरूपात्मक भेद का अभाव ही अभेद है इस पक्ष में भी वह अभेद अन्योन्य रूप ही है । तत्ता और इदन्ता रूप धर्मों के एक धर्मि = आश्रय रूप ही मानना होगा, और उस एक धर्मि का ज्ञान न केवल संस्कार से होता है और न केवल इन्द्रिय के द्वारा ही, ऐसी स्थिति में उस एक धर्मि को विषय न करने वाले संस्कार या इन्द्रिय के द्वारा उस धर्मीरूप अभेद का ज्ञान कैसे हो सकता । अर्थात् नहीं हो सकता । (और यदि धर्मि रूप अंश में संस्कार एवं इन्द्रिय दोनों मिलकर प्रकाश करते हैं ऐसा मानें तो पूर्वोक्त सङ्कर दोष सुवज्रलेप हो जायेगा यह पूर्व में कह चुके हैं ।)

किञ्च प्रत्यभिज्ञा में संस्कार से जन्य तत्तावच्छिन्नरूपविषय विषयक ज्ञान भी यदि अनुभव है तो ''सा मे माता'' इत्यादि स्मृति भी अनुभव क्यों न मानी जाय । (क्योंकि प्रत्यभिज्ञा तत्ताविशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताक होने से तदंश में स्मृति मानी जाती है यदि संस्कारत्वावच्छिन्नकारणताक होने पर भी उसे यदि अनुभव ही मानें तो सा मे माता इत्यादि स्मृति भी अनुभव क्यों न हो ।)

यदि कहें कि ज्ञान संस्कारजन्य होने मात्र से स्मृति नहीं होता, अपितु अनुभव कारणीभूत इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से अजन्य होते हुए संस्कारजन्य होने से स्मृति होता है । अतः

किन्न स्यात् ?। 'अन्यत्र न स्मृतिरनुभवकारणसम्पृक्तसंस्कारजन्ये'ति तु 'नान्यत्रानुभवोऽपि संस्कारसम्पृक्तार्थेन्द्रियसम्प्रयोगजन्य' इति साम्यादेवाबाधकम्। तदेवं विनिगमनायां प्रमाणाभावात्, स्वयं कल्पितव्यवस्थावैपरीत्येनापि कल्पनासम्भवात्, प्रत्यभिज्ञानमुभयकारणसम्भवात् स्मृतिश्चानुभवश्चेति मन्तव्यम्। तथाच स्मृतिव्यावृत्तमनुभवत्वं जातिरस्तीति प्रत्याशानिरवकाशा। नच विषयांशे स्मृतित्वानुभवत्वयोर्व्यवस्था कर्तुं शक्यते; तन्निरासस्य निवेदितत्वात्।

शारदा

वानुभवत्वप्रयोजकत्वकल्पनसम्भवेन प्रत्यभिज्ञानेऽनुभवत्वं कुतो नापसार्यतामित्याह संस्कारेति। **इति त्वबाधकमित्यन्वयः । विनिगमनायां = अनुभवत्वस्मृतित्वान्यतरस्य प्रत्यभिज्ञायां निर्णये** । स्वयं कल्पितेति । **अथेत्यादिनाशङ्कितेत्यर्थः**। कल्पनेति । **संस्कारासम्पृक्तेत्याद्युक्तकल्पनेत्यर्थः । प्रत्यभिज्ञानं मन्तव्यमित्यन्वयः** । उभयकारणेति । **अनुभवत्वस्मृतित्वोभयप्रयोगजकेत्यर्थः । विषयांशे = तत्तद्विषयकत्वरूपावच्छेदकभेदेन । व्यवस्था = सामानाधिकरण्योपपादनं** । निवेदितत्वादिति । **''किञ्च यदा च प्रत्यभिज्ञानं स इत्यंशे स्मृति''रित्यादिग्रन्थे इति शेषः । तत्र हि धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यभिज्ञायां स्मृतित्वानुभूतित्वयोः सामानाधिकरण्यमुक्तं तदेव स्मारयन्नाह**

भारती

संस्कार से अतिरिक्त इन्द्रियार्थसन्निकर्ष की भी अपेक्षा रखने वाली प्रत्यभिज्ञा तो अनुभव ही है न कि स्मृति । तो आप का कहना ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान इन्द्रियार्थसन्निकर्षादि से जन्य होने मात्र से ही अनुभव नहीं होता, अपितु स्मृतिकारणीभूत संस्कार से अजन्य होते हुए इन्द्रियार्थ-सन्निकर्षादि से जन्य होने से अनुभव होता है किन्तु प्रत्यभिज्ञा में इन्द्रिार्थसन्निकर्षादि से अतिरिक्त संस्कार की भी अपेक्षा होने से अर्थात् संस्कार के सहित अनुभवकारणसामग्री से जन्य होने से उसे (प्रत्यभिज्ञा) अनुभव न मान कर स्मृति ही है ऐसा विपरीत ही क्यों न माना जाय।

यदि आप कहें कि प्रत्यभिज्ञा से अन्यत्र कहीं भी स्मृति अनुभव कारण से युक्त संस्कार से जन्य नहीं देखी जाती, अतः प्रत्यभिज्ञा स्मृति नहीं मानी जा सकती, तो हम भी कह सकते हैं कि प्रत्यभिज्ञा से अन्यत्र कहीं भी अनुभव भी संस्कार सहित इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य नहीं देखा जाता है अतः प्रत्यभिज्ञा अनुभव नहीं मानी जा सकती । इस प्रकार अनुपपत्ति साम्य होने से आप की युक्ति बाधक नहीं हो सकती । तस्मात् उक्त प्रकार से प्रत्यभिज्ञा में अनुभवत्व एवं स्मृतित्व अन्यतर का निर्णायक प्रमाण के न होने से ''संस्कारासम्पृक्त इत्यादि भवदुक्तकल्पना से विपरीत कल्पना भी की जा सकती है । अतः प्रत्यभिज्ञा के स्मृति अनुभव उभय कारण से जन्य होने से प्रत्यभिज्ञा में स्मृतित्व एवं अनुभवत्व दोनों विद्यमान है, यही मानना चाहिए। तथा च (ऐसी स्थिति में) स्मृति व्यावृत्त अनुभवत्व एक जाति है यह आशा ही नहीं की जा सकती । (क्योंकि साङ्कर्यदोष सुस्पष्ट है ।) तत्तद्विषयकत्वरूप अवच्छेदक के भेद से (तत्ता

ततश्च तदेव ज्ञानं तस्मिन्नेवांशे स्मृतिश्चानुभवश्चेत्यापतितेऽपि यदि न विरोधबुद्धिर्भवतस्तदा तदधीनेतत्रैवार्थे प्रमात्वाप्रमात्वापाते सा तेऽस्तु । एतेन विरोधापत्त्याऽनुभवत्वस्वीकारे बाधकेन स्मृतिव्यावृत्तमनुभवत्वं नामानुगतं साक्षात्कारिज्ञा-नानुमित्यादिसाधारणमनुभववलादेव व्यवस्थापनीयमिति प्रतीतिकलहोऽपि निरस्तः । ननु चानुभव एव शरणमिह,

शारदा

ततश्चेति । **तस्मिन्नेवांशे = एकधर्मिविषयकत्वावच्छेदेन । विरोधबुद्धिः = अनुपपन्नत्वग्रहः । ज्ञाताज्ञातविषयकत्वावच्छिन्नयोः स्मृतित्वानुभवत्वयोरेकावच्छिन्न-वृत्तिमत्त्वस्यानुपपन्नत्वादुक्तं** यदीति । **तदधीने = स्मृतित्वानुभवत्वयोरेकावच्छिन्नवृत्तिप्रयुक्ते प्रमात्वाप्रमात्वापाते इत्यन्वयः । तत्रैवार्थे = स्मृतित्वानुभवत्वीयवृत्त्यवच्छेदकावच्छेदेन । सा = विरोधबुद्धिः । स्मृतित्वस्याप्रमात्वनियतत्वात् स्मृतित्वाप्रमात्वयोरेकावच्छिन्नवृत्तिकत्वं द्रष्टव्यम् । यद्यप्यनुगतमतेर्जातिविषयकत्वनियमस्तथाप्यसति बाधके, नचात्र बाधकासत्त्वं, साङ्कर्यस्यैव बाधकस्य सत्त्वात् , तथाचानुगतमतिसत्त्वेऽपि नानुभवत्वं जातिरित्युपसंहरति** एतेनेत्यादिना। **स्मृंतित्वानुभवत्वयोरेकावच्छिन्नवृत्त्यापत्तिरूपबाधकेनेत्यर्थः । अनुभवत्वस्वीकारे = अनुभवत्वस्य जातितास्वीकारे । प्रतीतिकलहः = अनुगतमतिविरोधः।**

भारती

अंश में स्मृति इदन्ता अंश में अनुभव) भी स्मृतित्व अनुभवत्व के सामानधिकरण्य की उपपत्ति नहीं कर सकते, क्योंकि उस (व्यवस्था) का निरास करते हुए कह चुके हैं कि वही ज्ञान (प्रत्यभिज्ञारूप) उसी अंश में अर्थात् एकधर्मिविषयकत्वावच्छेदेन (एक धर्मी रूप अंश में) स्मृतित्व अनुभवत्व उभयविशिष्ट दिखा दिये जाने पर यदि आपको उसके अनुपपन्नत्व (युक्तिविरुद्धत्व) का ज्ञान नहीं हो रहा है तो स्मृतित्व अनुभवत्व के सामानाधिकरण्य से प्राप्त उसी धर्मीरूप अंश में ही प्रमात्व एवं अप्रमात्व का सामानाधिकरण्य (एकाधिकरणवृत्तित्व) अनुपपन्न है यही ज्ञात हो जाय । (स्मृति के अप्रमा होने से धर्मीज्ञानरूप एक अधिकरण में स्मृतित्व एवं अनुभूतित्व के रहने पर प्रमात्व एवं अप्रमात्व का उक्त एक अधिकरण में रहना स्पष्ट ही है।)

प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति शाब्द एतच्चतुष्टयसाधारण ''अनुभवामि'' इत्याकारक अनुगत प्रतीति के बल से ही स्मृति से व्यावृत्त अनुभवत्व जाति सिद्ध हो जायेगी'' इस प्रकार प्रतीति के बल पर अनुभवत्व को स्मृति व्यतिरिक्त जाति स्वीकार करने का कलह भी समाप्त हो गया, क्योंकि बाधक के अनुपस्थित होने पर ही अनुगत प्रतीति में जातिविषयकत्व का नियम है । प्रकृत में तो पूर्वोक्त स्मृतित्व अनुभूतित्व का साङ्कर्य दोष ही बाधक उपस्थित है और उस सांकर्य रूप बाधक के द्वारा प्राप्त प्रमात्व अप्रमात्व का एकाश्रयत्वविरोध की आपत्ति भी है । अतः स्मृति व्यतिरिक्त अनुभवत्व जाति में ''अनुभवामि'' यह अनुगत प्रतीति भी प्रमाण नहीं हो सकती ।

प्रत्यभिज्ञाने ह्यनुभवत्वमेवानुभूयते नतु स्मृतित्वं, तेन संस्कारजत्वेऽपीन्द्रियार्थसन्निकर्षाधिकापेक्षयाऽनुभवत्वमेवेति विनिगमनायामपीदमेव प्रमाणम् । अन्यथा प्रत्यभिज्ञानेऽनुभवप्रत्ययो न स्यादिति प्रतीतिकलहेन प्रत्यवस्थेयमिति। न; इदन्तातत्तावभासयोरनुभवस्मरणभागयोः सत्त्वेनानुभवस्यैकपक्षेऽसाधारणीकृत्य प्रमाणयितुमिहाशक्यत्वात्। एतेन स्मृत्यनुभवसङ्करप्रसङ्गेनानुभूतिपदव्यवच्छेद्यं परिप्लुतं मन्तव्यम्। न च वाच्यं प्रत्यभिज्ञानं व्यवच्छेद्यं माभूत् , स्मृत्यन्तरन्तु भविष्यतीति; तस्याप्यनुभूतित्वेन

शारदा

अनुभवत्वमेवेति। **तथाच न साङ्कर्यमिति भावः । इदमेव = अनुभवत्वानुभव एव । इदन्तातत्तावभासयोः = इदन्तातत्ताविशिष्टविषयितयोः । अनुभवस्मरणभागयोः = अनुभवत्वस्मरणत्वव्याप्ययोः । प्रत्यभिज्ञानस्यानुभवत्वस्मृतित्वोभयाश्रयतोपपादनं**

भारती

प्रश्न—अनुभूतित्व जाति में अनुभवामि "यह अनुभव ही प्रमाण है । प्रत्यभिज्ञा में भी अनुभवत्व का ही अनुभव होता है न कि स्मृतित्व का । अतः प्रत्यभिज्ञा ज्ञान के संस्कार जन्य होने पर भी संस्कार के अतिरिक्त इन्द्रियार्थसन्निकर्ष की भी उस (प्रत्यभिज्ञा) में अपेक्षा होने से वह (प्रत्यभिज्ञा) अनुभव ही है । इस प्रकार विनिगमना (स्मृतित्व अनुभूतित्व अन्यतर की सिद्धि) में अनुभवत्व प्रकारक अनुभव ही प्रमाण है । अन्यथा प्रत्यभिज्ञा में अनुभवामि" इत्याकारक अनुभवात्मिका प्रतीति नहीं होनी चाहिए । इस प्रकार अनुगतप्रतीति के बल पर ही हम अपने पक्ष का साधन करेंगे ।

समाधान—इदन्ताविशिष्ट विषयक एवं तत्ताविशिष्ट विषयक अनुभव एवं स्मरणात्मक ज्ञान रूप भाग के विद्यमान रहते हुए एक पक्ष (अनुभवपक्ष) का असाधारण रूप से निश्चय करके "प्रत्याभिज्ञा अनुभव ही है" इस प्रकार अनुभव को प्रमाणित नहीं किया जा सकता ।

इस स्मृतित्व अनुभूतित्व के साङ्कर्य दोष के कारण ही "तत्त्वानुभूतिः प्रमा" इस प्रमालक्षण के अन्तःपाति अनुभूति पद का व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) भी नही रह गया । (तार्किक मत में प्रत्यभिज्ञा के प्रमात्मक होने पर भी पूर्वोक्तरीति से उसे (प्रत्यभिज्ञा को) स्मृति भी मानना आवश्यक है और स्मृति ही तत्त्वानुभूतिः प्रमा इस प्रमालक्षणघटक अनुभूति पद का व्यवच्छेद्य है प्रत्यभिज्ञा के स्मृतिरूप होने से अनुभूति पद का व्यवच्छेद्य प्रत्यभिज्ञा भी प्राप्त है किन्तु साङ्कर्य के कारण उक्तलक्षण के अनुभूति पद से उस (प्रत्यभिज्ञा) की व्यावृत्ति नहीं हुई अपितु प्रत्यभिज्ञा के अनुभव रूप भी होने के कारण उक्त प्रमालक्षण प्रत्यभिज्ञा में भी चला गया ।)

यदि कहें कि—अनुभूति पद से प्रत्यभिज्ञा का व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) भले ही न हो, स्मृत्यन्तर (शुद्ध स्मृति) की व्यावृत्ति तो हो जायेगी, तो यह आपका कथन युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि शुद्धस्मृति भी अनुभव रूप है यह आपको अवश्य ही मानना होगा ।

भवताऽवश्यं स्वीकर्तव्यत्वात्, तथाहि-'घटस्तत्रासी' दित्यादिस्मृतौ पूर्वकालविशिष्टो घटः स्फुरति, नचासौ पूर्वमनुभूता भूतता, या संस्कारेणोपनीयेत, प्रत्युत पूर्वं वर्तमानताया एवानुभूत्या ग्रहणम्। तस्मादिदानीं पूर्वताग्रहणसामग्रीसम्भेदात् 'सोऽयमिति' प्रत्यभिज्ञानवद्विशिष्टावगमोऽप्यसौ स्मृत्यनुभवात्मक एवाभ्युपगन्तव्यः।

शारदा

प्रमालक्षणखण्डनेन सङ्गमयन्नाह एतेनेति। **प्रत्यभिज्ञानस्य परमते प्रमात्वेऽपि निर्दिष्टदिशा तत्र स्मृतित्वावश्यम्भावाद्व्यवच्छेद्यान्तः पातः सम्भाव्यते, तथाप्यनुभवत्वस्यापि तत्र सत्त्वेन न तद्व्यवच्छेद इति भावः । भूतता = अनुभूतिविषययत्किञ्चिद्धर्मस्यातीतत्वात्मिका तत्ता, तद्वैशिष्ट्यं चाननुभूतमेव ।** वर्तमानताया इति । **इदन्ताया इत्यर्थः । तथाचेदन्तैव स्वविषयकसंस्कारबलात्तत्तात्मना स्मृतौ भातीति तत्तांशे तस्या भ्रमत्वमेवेति भावः । इदानीं = स्मृत्यव्यवहितपूर्वक्षणे । पूर्वताग्रहणसामग्रीसम्भेदात् = निरुक्ततत्ताविषयकत्वावच्छेदेनानुभवत्वप्रयोजकसामग्रीसंवलनात्। विशिष्टावगमोऽपीत्यनेनैकज्ञानत्वं स्वीकुर्वता प्रभाकरमतव्यवच्छेदः कृत, तन्मते प्रत्यभिज्ञानस्यागृहीतासंसर्गकज्ञानद्वयात्मकत्वात् । अथैवं तत्तायाः संस्कारानुपनेयत्वे प्रत्यभिज्ञाने स्मृतित्वाभिधानं प्राचीनं विरुद्ध्यते इति चेत्तत्तांशे स्मृतित्वाभावेऽपि धर्म्यंशे संस्कारजन्यत्वेनैव प्रत्यभिज्ञानस्य तदंशे स्मृतित्वोपपत्तेः, नहि धर्मिणोऽपि पूर्वमननुभवः। तत्ताभानं तु प्रत्यभिज्ञाने संयुक्तविशेषणतया प्रत्यासत्त्या स्मृतौ चेन्द्रियसम्बद्धसंस्कारविशेषणविशेषणतयेति भावः ।** अत्रेदन्तत्त्वम्—**अनुभवविषयीभूतः पदार्थ एव स्मृतिविषय इति वह्न्यादिरेव तत्ता, वह्नित्वादिकमेव तत्तात्वं, तच्छब्दप्रयोगस्तु संस्कारजत्वप्रयुक्तः, सोऽपि चानियतः, प्रयोगेच्छाविरहे तदप्रयोगात्, आसीद्घट इत्यत्र तच्छब्दानुल्लेखेऽपि तत्ताभानाच्चेति मतं तावदयुक्तं, स वह्निरिति सहप्रयोगानुपपादनात्। अत एवातीतानुभवविषयत्वमतीतधर्मवैशिष्ट्यं वा तत्तेति मतमप्ययुक्तम्, अतीतानुभवविषयः स इत्यादिव्यवहारानुपपत्तेः तादृशविषयतात्वतत्तात्त्वयोर्भेदमादाय तदुपपादनस्य च**

राजहंसः

स्मृतौ चेन्द्रियेत्यादि । मनःसंयुक्तात्मसमवेतसंस्कारविशेषणीभूतधर्मिविशेषविशेषणतयेत्यर्थः। **स वह्निरिति सहप्रयोगानुपपादनादिति ।** संस्कारजज्ञानविषयत्वेन संस्कारविषयत्वेनैव वा बोधक इह तच्छब्द इति हि न युक्तम्। प्रयोगस्य वक्तुरिच्छानुसारितया तत्तावैशिष्ट्यबुबोधयिषयाऽपि प्रयोगसम्भवात्, नहि तादृशविषयत्वमेव तत्तेति साम्प्रतम्, तादृशविषयः स इति सामानाधिकरण्यव्यवहारानुपपत्तेरिति भावः ।

भारती

इसे इस प्रकार समझें—"घटस्तत्रासीत्" इत्यादि स्मृति में घट पूर्वकालविशिष्ट (तत्ताविशिष्ट) भासित होता है । किन्तु वह भूतता (तत्ता) पूर्वकाल में अनुभूत न होने पर इस समय संस्कार के द्वारा उपनीत (स्मृति विषयतया उपस्थित) नहीं हो सकती, प्रत्युत पूर्वकाल में घट में

एतेनानुभवसामग्रीसहितः संस्कारोऽनुभवकारणमिति पक्षे पूवमाशङ्किते इदमपि दूषणं द्रष्टव्यम् ; तथा सति स्मृत्युच्छेदापत्तेः।

अथानुभवत्वस्य जातित्वखण्डने प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डनम् ।

नच तदस्ति स्मरणं यत्र सा न प्रकाशते ततश्च

शारदा

तयोस्तत्राभानेनानुपपत्तेः, तत्तात्वस्यातिरिक्तत्वे वा स्मृतेस्तदवच्छिन्नविषयताकत्वेन कथन्नानधिगतगोचरत्वम्, तत्ताया अतिरिक्तत्वेन वा किमपराद्धम्, अतएव नातीतसमयसम्बन्धोऽपि तत्ता, स आसीदिति व्यवहारानुपपत्तेः, अनागत-विषयकानुमित्याद्यधीनस्मृतेस्तत्ताविषयकत्वानापत्तेश्च, अतएव नातीतत्वमपि सा, नापि पूर्वानुभवध्वंसः, तस्य घटादाववृत्तेः, नहि विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽपि स तत्र, ध्वंसीयप्रतियोगितायाः सम्बन्धावच्छिन्नत्वे मानाभावात् । किन्त्वखण्डोपाधिरेव सचाननुभूत एव स्मृतिगोचरः एवञ्च फलबलादेव तत्तांशे स्मृतेः संस्कारसीमालङ्घित्वमिति। ज्ञानसामान्यस्य स्वोत्पत्तिक्षणावच्छिन्नार्थविषयकत्वमते तु स्मृतेरननुभूतविषयकत्वं स्फुटमेव, यदाहुः-"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते" इति ।

इदमपि = स्मृत्युच्छेदापत्तिरूपमपि । प्रमुष्टतत्ताकस्मृतेरनुभवत्वासम्भवेना-

भारती

वर्तमानता का ही अनुभव हुआ था । अत: इस समय (स्मृति से अव्यवहित पूर्वक्षण में) उक्त तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन अनुभवत्व प्रयोजक सामग्री के संवलन (समवधान) होने से "सोऽयम्" इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा के समान घटस्तत्रासीत्" इत्याकारक विशिष्ट ज्ञान को भी स्मृति और अनुभव उभयात्मक ही मानना होगा । (तस्मात् स्मृतिमात्र के अनुभव संवलित होने से तत्त्वानुभूति: प्रमा इस लक्षण में अनुभूति पद से स्मृति की व्यावृत्ति नहीं हो सकती ।)

अनुभव सामग्री से सहित संस्कार अनुभव का कारण है इस पूर्व आशङ्कित कथन में यह दोष भी है कि इस प्रकार मानने पर स्मृति मात्र का उच्छेद हो जायेगा । (तात्पर्य यह है कि ऐसा कोई स्मरण नहीं है जिस में भूतता (तत्ता) न भासती हो । इस उक्त प्रकार से स्मृति मात्र के तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन अनुभवरूप होने से तत्त्वानुभूति प्रमा यह प्रमा का लक्षण सभी स्मृतियों में समन्वित हो जायेगा, इससे सभी स्मृतियाँ अनुभवरूप ही हो जायेगी कोई स्मृति रहेगी ही नहीं । एवं स्मृति के न रहने से अनुभूति पद का व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) ही नहीं है।

प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डन

ऐसा कोई स्मरण नहीं होता, जिसमें तत्ता का भान न होता हो, अत: "तत्त्वानुभूति प्रमा" इस लक्षण में अनुभूति पद का व्यवच्छेद्य स्मृति नहीं हो सकती । (पूर्वोक्त प्रकार से सभी स्मृतियों में तत्ता का भान अनुभव सामग्री से होता है अत: स्मृति में अनुभवत्व के विद्यमान होने से लक्षणगत अनुभूतिपद से उसकी व्यावृत्ति नहीं होती ।)

व्यवच्छेद्यानुपपत्तिः। यदपि कैश्चिदुच्यते- ''दोषवशात्प्रमुष्टतत्तांशं स्मरणं भवती'' तिः ; तदपि नोपपन्नम् , तदीयस्मरणत्वे प्रमाणाभावात् । नचानुभवसामग्र्यभावात्पारिशेष्येण स्मृतित्वम्;

शारदा

नुभूतिपदव्यवच्छेद्यत्वमाशङ्क्याह नचेति । **सा = तत्ता । कैश्चित् = अख्यातिवादिभिः । दोषवशात् = तत्ताविषयकसंस्कारोद्बोधाभावप्रयोजकवशात्, प्रमुष्टतत्तांशं = अविषयीकृततत्ताकम् । अयम्भावः = शुक्तिविशेष्यकरजतत्वप्रकारकेच्छादिजनकज्ञानस्य शुक्तिविशेष्यकस्य न रजतत्वप्रकारकत्वं रजतत्वप्रकारकस्य च न शुक्तिविशेष्यकत्वम्, शुक्तौ रजतत्वस्यावर्तमानत्वात् हट्टस्थरजतस्य चासन्निकर्षात्, अलौकिकसन्निकर्षस्य चाप्रामाणिकत्वात्, अन्यथा प्रत्यक्षखण्डने वक्तव्यप्रणाल्याऽनुमितिमात्रोच्छेदापत्तेः प्रत्यभिज्ञाने तत्तेदन्ताविशिष्टयोरभेदेन संस्कारेन्द्रिययोः समानविषयकतया सम्भूयकारित्वोपपत्तावपि प्रकृते शुक्तिरजतयोर्भेदेन तदसम्भवाच्च, दोषस्याजनकतया तद्बलादसन्निकृष्टमपि भासतामित्यस्यापि वक्तुमशक्यत्वाच्च, तस्मादनायत्यान्यत्रादृष्टमपि स्मृतेस्तत्त्वाविषयकत्वं व्यधिकरणप्रकारकेच्छाजनकज्ञानस्य पारिशेष्येण स्मृतित्वमासेदुषो मन्तव्यमेव, एवं शुक्तिविशेष्यके रजतत्वप्रकारकज्ञानत्वस्याप्रामाणिकत्वे च निरुक्तेच्छाधीनप्रवृत्तिं प्रत्यपि क्लृप्तनियतपूर्ववृत्तिताकयोरभावाप्रतियोगित्वेनोपस्थितरजतपुरोवर्तिज्ञानयोरेवागृहीतासंसर्गयोर्हेतुत्वं कल्पनीयं, अनन्यथासिद्धत्वमात्रकल्पनेन लावाच्च, शुक्तिविशेष्यकरजतत्वप्रकारकज्ञानस्य**

भारती

यहाँ अख्यातिवादी प्रभाकर का कहना है कि दोषवशात् तत्ता का अनुल्लेखी (तत्ता अविषयक) भी स्मरण होता है । (उन (प्रभाकर) का भाव यह है कि इदं रजतम् स्थल में शुक्ति विशेष्यक रजतत्वप्रकारक इच्छा का जनक ज्ञान-शुक्ति विशेष्यक है तो रजतत्व प्रकारक नहीं होगा, और रजतत्व प्रकार है तो शुक्ति विशेष्यक नहीं होगा, क्योंकि शुक्ति में रजतत्व नहीं है । एवं हट्टस्थ रजत का भी शुक्ति में भान नहीं हो सकता, कारण कि उसके साथ सन्निकर्ष नहीं है । अनुमान मात्र के उच्छेद के भय से अलौकिक सन्निकर्ष नहीं माना जा सकता, शुक्ति एवं रजत का भेद होने से प्रत्यभिज्ञा के समान शुक्ति एवं रजत उभयभान सामग्री को सम्भूयकारी भी नहीं मान सकते । तथा कार्य के प्रति दोष के स्वतन्त्र कारण न होने से दोष असन्निकृष्ट रजत का भासक नहीं हो सकता, अतः पारिशेष्यात् अगत्या (अन्यत्र न देखे जाने पर भी) इदं रजतम् स्थल में इदम् यह अनुभव तथा रजतम् यह ज्ञान स्मृति इस प्रकार दो पृथक्-पृथक् ज्ञान होता है । इसमें दोषवशात् तत्ताविषयक संस्कार के उद्बुद्ध न होने से रजतअशं में तत्ता का उल्लेख न होकर केवल ''रजतम्'' इत्याकारक प्रमुष्ट तत्ताक (त्यक्त तत्ताक) ही स्मरण होता है और ईदृश तत्ता अनुल्लेखी स्मरण ही उक्त प्रमालक्षण घटक अनुभूति पद का व्यावर्त्य है ।)

किन्तु प्रभाकर का कहना सर्वथा अनुपपन्न है । क्योंकि इदं रजतम् में रजतज्ञान के स्मरण होने में कोई प्रमाण नहीं है ।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षव्यावृत्त्याऽनुभवसामग्र्यभावात् पारिशेष्येणानुमित्यादेरपि स्मृतित्वापत्तेः। सर्वानुभवसा मग्र्यभावादिति चेत् ; कथं पुनस्तत्तांशशून्यरजतादिज्ञानहेतुसामग्री नानुभवसामग्रीत्यवधारितमायुष्मता । पञ्चप्रमाणीकारणसाग्र्यसम्भवादिति चेन्न; चतुष्प्रमाणीजनकसामग्र्यसम्भवात्पञ्चमी प्रमा किन्न पारिशेष्यात्स्मरणं त्वया व्यवास्थापि ?। कुत्र च प्रतिपन्नं पञ्चप्रमाणीकारणसामग्र्यभावे जायमानं ज्ञानं स्मृतिर्भवतीति?; घटस्तत्रासीदित्यादिज्ञानानामनुभवत्वोपन्यासस्य कृतत्वात् । अथ मन्यसे प्रत्यक्षादिकारणसामग्र्यनुपपत्त्या रजतमात्रस्य च पूर्वमनुभूतत्वेन तद्विषयकसंस्कारसम्भवात् संस्कारस्यैव हेतुताङ्गीक्रियते न त्वन्यत् कारणत्वेन कल्प्यते,

शारदा

कल्पनेऽनन्यथासिद्धत्वनियतपूर्ववर्त्तित्वयोः कल्पनापत्त्या गौरवस्य व्यक्तत्वादिति । यत्किञ्चिदनुभवसामग्रयभावविवक्षायामाह इन्द्रियेति । **पञ्चप्रमाणीति समाहारे । प्राभाकरमतेऽभावस्य भावानतिरेकादनुपलब्धिप्रमाणानङ्गीकारादुक्तं पञ्चेति । प्रमाणबलादनुभवत्वेन सिद्ध्यतोऽपि क्लृप्तानुभवनान्तर्भावेन स्मृतित्वोपगमेऽतिप्रसङ्गमाह चतुष्प्रमाणीति ।** संस्कारस्यैवेति । **रजतं पश्यामीत्यनुभवस्तु दर्शनविषयत्वासंसर्गाग्रहहादेवोपपाद्य**

राजहंसः

उक्तं पञ्चेति । नचाभावस्यानतिरेकेऽप्याभावत्वस्यातिरिक्तताध्रौव्येण तत्प्रकारकप्रतीत्यर्थं षष्ठप्रमाणोपगम आवश्यक इति वाच्यम्, प्रतियोगितावच्छेदकः प्रकारकज्ञानजन्यतयैवाभावत्वरूपविचित्राकारज्ञानसम्भवात् , यद्वक्ष्यति चतुर्थे 'गुरुर्धियमभावस्य स्थाने स्थानेऽभिषिक्तवा' निति ।

भारती

यदि कहें कि रजत अंश में अनुभव की सामग्री न होने से पारिशेष्यात् रजतज्ञान को स्मृतिरूप मानना ही उचित है तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि यहाँ अनुभवसामग्रीशब्द से यत्किञ्चत् अनुभव जनक सामग्री विवक्षित है या समस्त अनुभव जनक सामग्री, इसमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है कारण कि—इन्द्रियार्थसन्निकर्ष के न होने से अनुमिति में भी अनुभव सामग्री का अभाव है अतः पारिशेष्यात् वह (अनुमिति) भी स्मृति हो जायेगी । यदि सम्पूर्ण अनुभव की जनक सामग्री विवक्षित है तो तत्तांश से शून्य रजतादि ज्ञान की सामग्री अनुभव सामग्री नहीं है यह आपने कैसे निश्चय कर लिया।

प्रश्न—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति इन पाँच प्रमाणों की कारण सामग्रियों के न होने से रजत ज्ञान की हेतु सामग्री अनुभव सामग्री नहीं है ऐसा निश्चय किया है ।

समाधान—प्रत्यक्षादि चार प्रमाणों की जनक सामग्री के अभाव होने से पञ्चम प्रमाण अर्थापत्ति जन्य प्रमा को भी आप स्मृति क्यों नहीं मानते । किञ्च आपने किस उदाहरण में यह निश्चय किया है कि प्रत्यक्षादि पाँच प्रमाण सामग्री के अभाव रहने पर जायमान ज्ञान स्मृति

इन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यसम्भवे जायमानस्य त्वनुमानादेरननुभूतविषयत्वेन तस्मान्नोत्पत्तिसम्भव इति तत्कारणं लिङ्गादिकमङ्गीक्रियते, ततः प्रमाणान्तरासहकृतसंस्कारजत्वं तद्व्यङ्ग्यो वा जातिविशेष एव स्मृतित्वमिति; मैवम् : तत्र कारणत्वं किमिति नाक्षस्यैव, येन संस्कारजत्वं व्यवस्थाप्यते । तेनार्थेन सह तदाऽक्षस्य सन्निकर्षाभावादसन्निकृष्टस्य च तस्य ज्ञानजनकत्वेऽतिप्रसङ्गात्

शारदा

इति भावः । अननुभूतेति । **नहि पक्षधर्मताबललभ्यसाध्यसिद्धिरप्यनुमानाङ्गमिति भावः। तस्मात् = संस्कारात् । लिङ्गादिकमिति ज्ञायमानलिङ्गादेः कारणतामते । अन्यथा तु लिङ्गपरामर्शादिकमित्यर्थः । ''ज्ञातसम्बन्धनियमस्यैकदेशस्य दर्शनात् । एकदेशान्तरे बुद्धिरनुमानमबाधिते'' इति वदता प्राभाकरेण शालिकनाथेनापि लिङ्गदर्शनस्यैव कारणताभिधानात् । नैयायिकमतेन प्रत्यभिज्ञां व्यवच्छेत्तुं** प्रमाणान्तरासहकृतेत्युक्तम्, **अन्यथा मीमांसकनये ज्ञानद्वयस्यागृहीतासंसर्गकस्यांशिकस्मृतित्ववतो वैकस्य ज्ञानस्य प्रत्यभिज्ञात्वे तदसङ्गतेः । संस्कारजत्वं = संस्कारत्वावच्छिन्नजनकताकत्वम् ।** जातिविशेष इति । **सम्भवाभिप्रायेणेदम्, अन्यथा जातेः संस्थानव्यङ्ग्यत्वनियमोपगन्तृप्राभाकरमते गुणे जात्यनभ्युपगमेनासङ्गतिः । जातिलौकिकप्रत्यक्षजनकप्रत्यक्षविषयस्यैव जातिव्यञ्जकत्वे च संस्कारजत्वस्य व्यञ्जकत्वासम्भवेनाप्यसङ्गतिः । अखण्डोपाधित्वाभिधानं तु युज्यते।** स्मृतित्वमिति । **रजतज्ञानमध्यासितुं क्षममिति शेषः । येन = अक्षस्य कारणत्वासम्भवेन।**

राजहंसः

अनुमानाङ्गमिति । सामान्यलक्षणा तु प्रत्यासत्तिरनुमाननिरासशारदोदितदिशा नोपेयते प्राभाकरेणेति नाग्नित्वादिरूपेणापि साध्यव्यक्त्यवगमः प्रागिति भावः ।

भारती

होता है, क्योंकि घटस्तत्रासीत् यह ज्ञान भी तत्ताविषयकत्वाविच्छेदेन अनुभव ही है न कि स्मृति, यह प्रतिपादन कर चुके हैं ।

प्रश्न—इदं रजतम् यहाँ पर रजत के प्रत्यक्षादि की कारण सामग्री अनुपपन्न (अनुपस्थित) है और रजत मात्र के पूर्व अनुभूत होने से तद्विषयक संस्कार विद्यमान है अतः इदं रजतम् इत्याकारक ज्ञान के प्रति संस्कार को ही हेतु मानते हैं अन्य इन्द्रियसन्निकर्षादि को कारण नहीं मानते । इन्द्रियसन्निकर्षादि की अनुपस्थिति में जायमान अनुमानादि का विषय पूर्व अनुभूत न होने से उन (अनुमानादि) की उत्पत्ति संस्कार से नहीं हो सकती, अतः उनके उत्पत्ति का कारण लिङ्गादि (लिङ्गदर्शनादि) को माना है । ऐसी स्थिति में कारणान्तर (इन्द्रियसन्निकर्षादि) से असहकृत संस्कार जन्यत्व अर्थात् संस्कारमात्रजन्यत्व ही, अथवा तादृश संस्कारजन्यत्व से व्यङ्ग्य जातिविशेष ही स्मृतित्व है ।

समाधान—''रजतम्'' इस ज्ञान के प्रति इन्द्रिय को ही कारण क्यों नहीं मानते, संस्कारजन्य क्यों मानते हैं ।

नेन्द्रियजत्वं तस्येति चेन्न; संस्कारस्यापि केवलस्य तज्जननेऽति-प्रसङ्गतादवस्थ्यात् । सहचरितधर्मदर्शनादिना सहकारिणा युक्तस्य संस्कारस्य तज्जनने नास्त्यतिप्रसङ्ग इति चेत् ; तेनैव सहकारिणा सहितस्येन्द्रियस्यापि तज्ज्ञानजननेऽतिप्रसङ्गाभावात् । अननुभूतेऽपि तर्हि प्रसङ्ग इति चेन्न; तवापि तद्धर्मतानधिगते तद्धर्मवत्यधिगते तस्य संस्कारवतः स्मृत्यापत्त्या समाधिसाम्यात् ।

शारदा

तज्जनने = स्मृतिजनने । अतिप्रसङ्ग अनुद्बुद्धस्यापि संस्कारस्य स्मृत्युपधायकतापातः। सहचरितेति । **वस्तुगत्या रजतत्वतदभावसहचरितेत्यर्थः । विपरीतकोट्यनुपस्थितिकालीन-साधारणधर्मदर्शनस्य संशायकत्वाभावादिति भावः । आदिनाऽदृष्टचिन्तादिकं न्यायदर्शनगतप्रणिधानसूत्रोक्तं ग्राह्यम् ।** तेनैवेति । **पुरोवर्तिसन्निकर्षेणैव साधारणधर्मदर्शनस्य संस्कारोद्बोधकस्य सम्भव इति भावः । तर्हि = संस्कारानपेक्षायाम् । अननुभूतेऽपि रजतादौ प्रसङ्गः = भ्रमप्रसङ्गः, असन्निकृष्टे इत्यादिः । तेन पुराननुभूतस्यापि सन्निकृष्टत्वे पुरोवर्तिवस्त्वन्तरेण कदाचित्तादात्म्यभ्रमविषयत्वसम्भवेऽपि न क्षतिः । तद्धर्मतानधिगते= रजतसादृश्यप्रकारकज्ञानाविषये । तद्धर्मवति = वस्तुतो रजतसदृशे शुक्त्यादौ चाक-चक्यादिमत्तयाधिगते सतीत्यर्थः । तथाच वस्तुतः सहचरितधर्मदर्शनमप्यक्षतमेव ।** तस्य संस्कारेति । **रजतविषयकसंस्कारेत्यर्थः ।** समाधिसाम्यादिति । **रजतसादृश्यप्रकार-कज्ञानाव्यवहितोत्तरजायमानरजतविषयकस्मृतिं प्रति तादृशज्ञानस्य कारणत्वं स्वी-कृत्योक्तापत्तिसमाधानं तादृशज्ञानाव्यवहितोत्तरजायमानरजतविषयकप्रत्यक्षं प्रति**

भारती

प्रश्न—रजत के साथ उस समय इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं है अतः वह ज्ञान इन्द्रिय जन्य नहीं है। (इन्द्रिय स्वसम्बद्ध के ज्ञान की जनक होती है असम्बद्ध की नहीं। यदि असम्बद्ध के ज्ञान की जनक हो जाय तो सर्वदा सभी का ज्ञान इन्द्रिय द्वारा ही होना चाहिए)।

समाधान—केवल संस्कार से भी स्मृति की उत्पत्ति मानने पर अतिप्रसङ्ग (अनुद्बुद्धसंस्कार से भी स्मृति की उत्पत्ति होनी चाहिए) होगा।

प्रश्न—रजतत्व रजत्वाभाव के सहचरित चाकचिक्यादिसाधारण धर्मदर्शनरूप सहकारी से युक्त संस्कार से स्मृति की उत्पत्ति मानने पर अतिप्रसङ्ग नहीं है।

समाधान—इस प्रकार मानें तो उन्हीं सहकारियों से युक्त इन्द्रिय को रजतज्ञान के प्रति कारण मानने में भी अतिप्रसङ्ग नहीं है। पुरोवर्ति सन्निकर्ष से ही संस्कार का उद्बोधक साधारण धर्मदर्शन संभव है।

यदि कहें कि—संस्कार के विना ही रजत ज्ञान मानने पर अननुभूत (जिसका पूर्व में अनुभव न हो) असन्निकृष्ट रजत का भी रजतम् इस प्रकार भ्रमात्मक ज्ञान होना चाहिए। तो यह आपका कथन युक्तिसंङ्गत नहीं है क्योंकि आपके मत में भी रजतसदृशतया अज्ञात वस्तुत रजत सदृश शुक्ति में चाकचिक्यादि के अधिगत (ज्ञात) होने पर रजत विषयकसंस्कार युक्त पुरुष को रजत का स्मरण होना चाहिए। (इस प्रकार आपत्ति हमारे और आपके दोनों

लुप्ततत्साहचर्यदर्शनजसंस्कारस्यापि तथा सति सहचरितरज-ताद्यक्षजप्रतीतिप्रसङ्ग इति चेन्न; तवापि मते तादृशस्य रजतादिसंस्कारवतो रजतादिस्मृतिप्रसङ्गसाम्यात्। तस्माद्यतस्ते कालव्यवधानादितः संस्कारलोपस्तदनुपनिपातस्यापि हेतुत्वोपगमेऽनतिप्रसङ्गात् । तदेवं –

शारदा

तादृशज्ञानस्य कारणतां स्वीकृत्याननुभूतविषयकभ्रमापत्तिसमाधानसममित्यर्थः । लुप्तेति । **लुप्तो विनष्टो रजतसादृश्यदर्शनजन्यसंस्कारो यस्य, तस्येत्यर्थः । तथासति = विसंवादिप्रवृत्तिजनकज्ञानस्य संस्काराजन्यत्वे सति । उक्तक्रमेण रजतसादृश्यप्रकारकज्ञानस्य हेतुतोपगमे इति तु नार्थः । तादृशज्ञानस्य सादृश्यदर्शनजसंस्कारलोपेऽसम्भवात् ।** सहचरितेति । **पुरोवर्तिसदृशेत्यर्थः । अतएव ''संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिते''त्यत्र साहचर्यं सादृश्यमिति व्याचक्षते । तादृशस्य = लुप्तरजतसादृश्यविषयकसंस्कारस्य ।** रजतादिसंस्कारेति । **चाकचक्याविषयकरजतादिविषयकसंस्कारेत्यर्थः । रजतसादृश्यविषयकसंस्कारविलोपे चाकचक्यप्रकारकरजतसंस्कारासम्भवात् । तेन पुरोवर्तिनि चाकचक्यवत्तयाऽधिगते तेन रूपेण रजतविषयकसंस्कारवतः स्मृतेरिष्टत्वेऽपि न क्षतिः ।** साम्यादिति । **रजतसादृश्यसंस्कारस्य सहचारितधर्मदर्शने रजतसंस्कारोद्बोधकतौपयिकस्यासद्भावेऽपि सहचरितधर्मदर्शनसहकृतरजतसंस्कारस्य रजतस्मृतिहेतुत्वेन त्वयाभ्युपगतस्य सद्भावादिति भावः । व्यवधानादित इत्यादिना रोगादिरुपादेयः । व्यवधानपदं च व्यवधानविशेषपरम् । तदनुपनिपातस्यापि = तदभावस्यापि। अथ संस्कारनिवर्तकानां तदुद्बोधकानाञ्चाननुगमात्तवानन्तकार्य-कारणभावकल्पनप्रसङ्गाद्गौरवम्, मम तूद्बुद्धसंस्कारस्यैव स्मृतिहेतुताकल्पनेन लाघवं**

भारती

के मत में समान है ।) भाव यह है कि—यदि आप रजतसादृश्य प्रकारक ज्ञान के अव्यवहितोत्तर जायमान रजत विषयक स्मृति के प्रति तादृश ज्ञान (रजतसादृश्य प्रकारक ज्ञान) को कारण मानकर उक्त आपत्ति का वारण करते हैं तो हम भी रजत सादृश्यप्रकारक ज्ञान के अव्यवहितोत्तर जायमान रजतविषयक प्रत्यक्ष के प्रति तादृशज्ञान (रजतसादृश्यप्रकारक ज्ञान) को कारण मानकर अननुभूत विषयक भ्रमापत्ति का समाधान कर लेंगे इस प्रकार समाधान भी आप और मेरे दोनों के मत समान ही हैं ।

यदि कहें कि—विसंवादिप्रवृत्तिजनकज्ञान के संस्काराजन्य होने पर—नष्ट हो गया है रजतसादृश्यदर्शनजन्य संस्कार जिस पुरुष का, उसको भी पुरोवर्ति सदृश रजतादि का इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष होना चाहिए । तो हम भी कहेंगे कि आप (प्रभाकर) के मत में भी विनष्ट रजतसादृश्यदर्शनजन्य संस्कारयुक्त एवं चाकचक्य अविषयक अर्थात् केवल रजतविषयक संस्कारयुक्त पुरुष को भी रजतादिविषयक स्मृति होनी चाहिए । इस प्रकार आपत्ति उभयत्र सम है । तस्मात् आप के मत में जिस कालव्यवधान रोग आदि से संस्कार का लोप होता है ।

तत्सदृक्प्रत्यभिज्ञानं यत्ते संस्कारबोधकम् ।
सहकारि तदेवास्तामक्षस्यातिप्रसक्तिनुत् ।।२८।।
तत्सदृशप्रत्यभिज्ञानं तु स्मर्तव्यस्मरणपूर्वकमित्येतदपि सममेव।

शारदा

सादृश्यसंस्कारनिवर्तकविरहस्याप्युद्बोधेनैवोपक्षयादिति चेन्न; उद्‌बुद्धत्वस्य प्रतीतिविशेष-साक्षिकवैजात्यविशेषरूपत्वे विषयविषयिणोः परस्पराधीनवैलक्षण्यकत्वेन ज्ञप्तावन्योन्याश्रयात्। स्मृतिजनकत्वरूपत्वे स्मृतिजनकत्वेन स्मृतिजनकत्वपर्यवसानेनात्माश्रयात्, अनुद्‌बुद्धेऽपि स्वरूपयोग्यत्वरूपजनकत्वसत्त्वाच्च, स्मृतिविशिष्टत्वस्य जनकतात्मकत्वविवक्षणे च स्मृतेः पुरा तद्विशिष्टसंस्कास्य तदुत्पादनियामकस्य विरहेण तदनुत्पत्त्यापत्तेः । उद्‌बुद्धत्वस्य स्मृतिसामग्रीसमवहितत्वरूपत्वे तु संस्कारस्याप्युद्बोधान्तःपातः, उद्बोधकानामपि चैवं सति सामग्र्यन्तः पातस्य वक्तव्यतया तेषामननुगमेन कार्यकारणभावानन्त्यस्य तवापि प्रसङ्गः, सामग्र्या एकविशिष्टापरेत्यादिरूपतया विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहेण च स प्रसङ्गः अन्यादृशं चोद्‌बुद्धत्वं दुर्भणमेवेति भावः । तत्सदृक्प्रत्यभिज्ञानं = तत्सदृशमिदमिति विशिष्टज्ञानं, एतच्चादृष्टादिरूपोद्बोधकान्तरस्याप्युपलक्षणम्। बोधकम्=उद्बोधकम् । सहकारीति। **उद्बोधकानामननुगमाद्व्यभिचारस्त्वव्यवहितोत्तरत्वनिवेशेनैव वारणीय इति भावः । ननूक्तविशिष्टज्ञानस्य सादृश्यप्रतियोग्यात्मकविशेषणज्ञानजन्यत्वेन चक्रकप्रसङ्गः, रजतस्मृतिर्हि**

भारती

उस (काल व्यवधान रोग आदि) के अभाव को भी रजत स्मृति के प्रति कारण मानकर उक्त अतिप्रसङ्ग का वारण करते हैं । वैसे ही मेरे मत में भी अतिप्रसङ्ग का वारण हो जायेगा। (तात्पर्य यह है—जैसे सादृश्यसंस्कार नाश स्थल में संस्कार का नाशक कालव्यधानादि के रहने से कालव्यवधानाभावरूप कारण के न होने से रजत स्मृति नहीं होती, उसी प्रकार सादृश्यसंस्कारनाशस्थल में मेरे मत में भी काल व्यवधान रोगादि के विद्यमान होने से कालव्यवधान रोगादि का अभाव रूप सहकारी कारण के न होने से केवल चक्षु से रजतभ्रम नहीं होता, इस प्रकार अतिप्रसङ्ग और उसका समाधान मेरे तथा आपके दोनों के मत में समान ही है।

तस्मात् इस प्रकार से—

आपके मत में "तत्सदृशमिदम्" इत्याकारक विशिष्ट ज्ञान को संस्कार का उद्बोधक मानते हैं । हम उसी विशिष्ट ज्ञान को उक्त अतिप्रसङ्ग का वारक इन्द्रिय का सहकारी मानते हैं ।

प्रश्न—उक्त विशिष्ट ज्ञान के सादृश्यप्रतियाग्यात्मकविशेषणज्ञानजन्य होने से चक्रक दोष आयेगा । रजतस्मृति संस्कार के उद्बोध की अपेक्षा करती है । संस्कार का उद्‌बोध रजतसादृश्यज्ञान की अपेक्षा करता है । और रजतसादृश्यज्ञान रजतस्मृति की अपेक्षा करता है इस प्रकार चक्रक दोष है ।

समाधान—आप के मत में भी सादृश्य ज्ञान के विशिष्ट ज्ञान होने से विशेषण ज्ञानजन्य ही मानना होगा, अतः चक्रक दोष आप के मत में भी समान ही है ।

तथाप्यन्यत्रार्थसन्निकर्षमन्तरेणेन्द्रियस्य ज्ञानकरणत्वं नोपलब्धचरमितिचेन्न; विशिष्टरूपेण भ्रमविषये मया तदुपगमात्, सहकारिभूतदोषशक्तेर्वा प्रत्यासत्तित्वेनेष्टत्वात् ।

शारदा

संस्कारोद्बोधमपेक्षते, स च रजतसादृश्यज्ञानं तच्च रजतस्मृतिमिति, तत्राह तत्सदृशेति । सममेवेति । **त्वयापि सादृश्यज्ञानस्य विशिष्टज्ञानतया विशेषणज्ञानजन्यताया अवश्योपेयत्वाच्चक्रकप्रसङ्गसाम्यात्, विशेषणज्ञानहेतोरेव विशिष्टबुद्धौ विशेषणभाननियामकत्वं चेदेतदपि सममेव । फलीभूतज्ञानादन्यैव सादृश्यज्ञानजनयित्री स्मृतिरिति चेदेतदपि सममेव, संस्कारोद्बोधस्य सादृश्यज्ञानैकनियतत्वाभावेनानवस्था-परिहरणमपि सममेव; यदि तु स्मृतेरव्यवहितप्राक्क्षणे तादृशप्रत्यभिज्ञानमनपेक्ष्यम्, तज्जनकीभूतसंस्कारेणैव सहचरितधर्मदर्शनसहितेन निर्वाहात् तदा सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञयामिवेन्द्रियसहकारित्वमेव संस्कारस्य प्रत्यासत्तिविधया युज्यते कल्पयितुमिति मयाऽपि वक्ष्यतेऽनुपदमेवेति भावः ।**

रजतेच्छाजन्यशुक्तिविशेष्यकप्रवृत्तिजनकं रजतज्ञानं यदि रजतांशे साक्षात्कारि स्यात् रजतेन्द्रियसन्निकर्षजन्यं स्यात् सत्यरजतसाक्षात्कारवत्, नच सामान्यव्याप्तौ प्रत्यभिज्ञायां तत्तांशे नामविशिष्टनामिप्रत्यक्षे नामांशे व्यभिचार इति देश्यम्; सामान्यव्याप्तेरननुसरणीयत्वात्, तत्तानामांशयोः साक्षात्कारित्वस्यानभ्युपगमाच्चेत्यनुशयानो ब्रूते तथापीति । **निवेदितदिशा संस्कारोद्बोधकस्याक्षसहकारित्वोपपत्तावपीत्यर्थः । परमते स्वतन्त्रोपस्थितेष्टतावच्छेदक-**

राजहंसः

स्वतन्त्रोपस्थितेति । रजते नेदं रजतमिति व्यवहारस्थले प्रवृत्तिः स्यात्, भेदाग्रहस्य सद्भावात्, रजते रजतभेदग्रहोपगमेऽन्यथाख्यातिप्रसङ्गात् , इत्याशयेन भेदाप्रतियोगित्वरूपं स्वातन्त्र्यमिष्टे, संसर्गाभावाऽप्रतियोगित्वरूपं च तदिष्टतावच्छेदके उपस्थितिमादाय विवक्षणीयम्। परन्त्वेवं भेदाप्रतियोगित्वादिना रूपेणोपस्थितिः सर्वत्रापेक्षणीयाऽऽपद्यत इति भेदप्रतियोगित्वादिनाऽनुपस्थितत्वस्य निवेश उचितश्चकास्ति, उपस्थितत्वं तु पृथग्वक्तव्यमेव।

भारती

प्रश्न—पूर्वोक्त प्रकार से संस्कार के उद्‌बोधक को इन्द्रिय का सहकारी मानने पर भी अन्यत्र (प्रमास्थल में) अर्थसन्निकर्ष के विना इन्द्रिय में ज्ञानकरणता नहीं देखी गई है । अतः प्रकृत (इदं रजतम्) में असम्बद्ध रजत ज्ञान के प्रति इन्द्रिय करण कैसे होगी । तो आपका कथन समुचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र (प्रमास्थल में) न देखे जाने पर भी विशेषणतया भ्रम के विषय रजत में हम अन्यथाख्यातिवादी असन्निकृष्ट इन्द्रिय को ज्ञान का कारण मानते हैं यहाँ पर पूर्वपक्षी ने— रजतेच्छाजन्यशुक्तिविशेष्यकप्रवृत्तिजनकरजतज्ञानं यदि रजतांशे साक्षात्कारि स्यात् रजतेन्द्रियसन्निकर्षजन्यं स्यात् सत्यरजतसाक्षात्कारवत्, यह आपादन किया था—उसका समाधान दो प्रकार से दे रहे हैं—एक तो उक्त हेतु अप्रयोजक हैं—यह समाधान विशिष्टरूपेण इत्यादि ग्रन्थ से नैयायिक मतानुसारेण दिया है । दूसरा समाधन प्रोक्त आपत्ति को—इष्टापत्या स्वीकार कर रहे हैं— वा = अथवा

शारदा

धर्म्यसंसर्गाग्रहस्य प्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति दोषाधीनज्ञानस्य च विसंवादिप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति, विशिष्टज्ञानस्य च संवादिप्रवृत्तित्वावच्छिनं प्रति कारणताकल्पनेन गौरवापत्त्या लाघवाख्यतर्कसहकृतेन सत्यप्रवृत्तिस्थले क्लृप्तकार्यकारणभावमनुरुन्धानेन च 'निरुक्तं रजतत्वप्रकारकं ज्ञानं शुक्तिविशेष्यकं तद्विशेष्यकप्रवृत्तिजनकज्ञानत्वा' दित्याद्यनुमानेन, सत्यपि बाधग्रहे उदयमानतयाऽसंसर्गाग्रहेणोपपत्तुमप्रभवन्त्या 'शुक्तिरेव रजततयाऽन्वभावी ति नियतप्रमात्वकानुभूत्या च भ्रान्तेरवश्याभ्युपेयत्वव्यवस्थितौ दुष्टबीजस्य कार्यप्रसवहेतुताया अदृष्टचरत्वेऽपि दुष्टत्वस्यैकस्याधस्तादभिहितदिशाऽसद्भावेन दोषसचिवेन्द्रिय-स्यासन्निकृष्टभानजनकत्वे बाधकानाकलनेनोक्तहेतोरप्रयोजकतां पिशुनयन्नभिधत्ते विशिष्टरूपेणेति । **विशेषणतयेत्यर्थः । मया = अन्यथाख्यातिवादिना । तदुपगमात् = असन्निकृष्टेन्द्रियस्य ज्ञानकारणतोपगमात्, ''असन्निकृष्टमपि दोषाद्भासते'' इति मणिकृदुक्तेः।**

राजहंसः

दोषाधीनज्ञानस्येत्यादि। घटाभाववदगृहीतासंसर्गकघटविशेष्यकज्ञानत्वेन घटाभाववति घटप्रकारकप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति विशिष्य कारणता । प्रमाणैर्भ्रमखण्डने सति तद्विशेष्यकतत्प्रकारकप्रवृत्तिं प्रति तद्विशेष्यकतत्प्रकारकज्ञानत्वेनैव कारणतेति नियमस्यानादरणीयत्वादिति भावः । **लाघवाख्यतर्केति ।** भ्रान्तिवादिना सामान्यकारणता विशिष्टज्ञानत्वावच्छिन्ना, द्वितीया भ्रमत्वावच्छिन्ना, तृतीया तु प्रमात्वावच्छिन्ना कल्पनीयेति लाघवं शरीरे । **असंसर्गाग्रहेणोपपत्तु मिति ।** शुक्तिरजतयोरसंसर्गाग्रहमात्रेणोपपत्तुमित्यर्थः । शुक्तेरजतत्वप्रकारताकविशेष्यतायाश्च त्वसंसर्गाग्रहोऽस्त्येव, किन्तु संसर्गग्रहोऽपि ।

विशिष्टरूपेणेति । यद्यपि पुरोवर्तिसंसृष्टरजतरजतत्वान्यतरात्मकविशिष्टस्यैवासन्निकृष्टस्य भ्रमे भानाभ्युपगमो मूले स्वरसतोऽवगम्यते, तदंशे एव च भ्रमत्वम् , न तु विशेषणांशे

भारती

इत्यादि ग्रन्थ से (इस प्रकरण में पूर्वपक्ष (प्रश्न) प्रभाकर मीमांसक का है और उत्तरपक्ष (समाधान) नैयामिक का है । अतः मूलस्थ ''मया'' का अर्थ अन्यथाख्यातिवादी किया गया है । अतएव शारदा में असन्निकृष्टमपि दोषाद् भासते'' यह मणिकारोक्ति प्रमाणतया उद्धृत है।) अथवा तार्किक परिपाटी का अनुसरणकर्ता ग्रन्थकार का ही तदनुसारेण समाधान है ऐसा समझना चाहिये । अथवा इन्द्रिय की सहकारीभूत दोषात्मक शक्ति या दोषगततत्तद्विषयक ज्ञानानुकूल शक्ति को ही सन्निकर्ष मान लेने में कोई क्षति नहीं है । यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि ज्ञान से पूर्व प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) की अपेक्षा होती है । अतः स्व (इन्द्रिय) वृत्तिदोषजन्य ज्ञानविषयता में इन्द्रिय प्रत्यासत्तित्व के अनुपपन्न होने पर भी प्रमाता प्रमाण प्रमेयगत दोष ही—जो कि साक्षात्परम्परा से इन्द्रिय के साथ सङ्गत है, और विसंवादिप्रवृत्तिजनक ज्ञान हेतुतया कल्पित भी है—प्रत्यासत्तित्वेन (सम्बन्धरूप से) कल्पित है । अन्यथा भ्रान्ति ज्ञान न होगा । अथवा ज्ञान से पूर्व भी दोषों में तत्तद्विषयक ज्ञानानुकूल शक्ति के विद्यमान होने से तद्द्वारक ही इन्द्रियसम्बद्धतत्तद्दोष विषय सम्बन्ध है । इसी बात को व्यक्त करने के लिए ''दोषशक्तेः'' यह मूलस्थ शक्ति पद व्यधिकरण है अर्थात् ''दोषनिष्ठ शक्ति'' इसका अर्थ है।

शारदा

अयम्भावः—विशेषणज्ञानासंसर्गाग्रहसंवलितो विशेष्यसन्निकर्षो विशिष्टप्रत्यक्षहेतुः, अस्ति चात्र विशेष्येण पुरोवर्तिना समं नायनः सन्निकर्षः अनपेक्षणीयस्तुविशेषणसन्निकर्ष इति। न चैवमसंसर्गाग्रहस्यावश्यकत्वे तस्यैवास्तु प्रवर्तकतापदेऽभिषेक इति साम्प्रतम्; विशिष्टज्ञानत्वेन प्रवृत्तित्वेन च हेतुहेतुमद्भावेन पुरोवर्तिविशेष्यकरजतत्व-प्रकारकप्रतीतेस्तादृशप्रवृत्तिप्रसवित्र्याः सिद्धावेव तज्जनकतयाऽसंसर्गाग्रहस्य कल्पनीयत्वेन प्रथमं तदनुपस्थितेरित्यन्यत्र विस्तरः । समाधायि चैतत्तार्किकपरिपाटीमनुसरता, अनिर्वचनीयोत्पत्तिवादे तु रजतस्योत्पत्तिक्षणेऽसन्निकृष्टस्यापि द्वितीयक्षणोत्पन्ने-न्द्रियसम्प्रयोगबलादेव तृतीयक्षणे ऐन्द्रियकप्रत्यक्षविषयत्वम्,वस्तुत ऐन्द्रियक-प्रत्यक्षविषयत्वानाश्रयत्वेऽपि वाऽधिष्ठानतावच्छेदकेदमादिगततादृशविषयत्वस्यैव 'रजतं पश्यामी'त्यादि प्रतीतौ रजते भानम् प्रथमद्वितीयक्षणयोरसन्निकृष्टरजतभानं तु साक्ष्यात्मकमेव,

राजहंसः

तत्संसर्गांशे वा, तयोरन्यत्र सत्त्वात् , पुरोवर्तिनिष्ठतया तदंशे भ्रमत्वं तु विशिष्टांशे एवोक्तं भवति । दर्शितश्चायं स्वारसिकार्थो लक्षणप्रयोजनखण्डनशारदायाँ परतः पङ्क्तिमिमामवोद्धृत्य प्रसङ्गात् , तथापि विशिष्टस्य भ्रमगोचरस्याप्रसिद्धतयाऽसन्निकृष्टे एव तत्र विषये भ्रमत्वाभिधानं न मनोज्ञम् , प्रसिद्धे एव सन्निकर्षस्यापेक्षणीयतयाऽप्रसिद्धे सन्निकर्षकारणताया अप्रसक्तत्वात्। न च संसर्गस्य भ्रमे भातस्यालीकत्वपक्षेऽनिर्वाच्यत्वपक्षे वा तद्घटितं विशिष्टं तत्समान-योगक्षेममास्ताम् , संसर्गस्य तथात्वानुपगमे हि भ्रमत्वं न सम्भवत्येवेति व्युत्पादितमुक्तस्थलीय-शारदायामिति वाच्यम् , संसर्गिणोरनलीकत्वे संसर्गस्यालीकत्वं तयोः सत्यत्वे तस्य मिथ्यात्वं च नोपपद्यते इत्यस्य वक्तुं शक्यत्वेऽपि विशेष्यविशेषणयोर्वस्तुतः संसर्गासमानयोगक्षेमतामभ्युपेत्यैव विशिष्टघटनादशायां तयोरेव संसर्गसमानयोगक्षेमतेत्यभिधानस्य सर्वथैवाश्रद्धेयत्वात्, विशिष्टस्य च वस्तुगत्या विशेष्यविशेषणतत्संसर्गभिन्नत्वाभिन्नत्वाभ्यां दुर्निरूपत्वेऽपि तत्त्रितयस्यैव दशाविशेषे विशिष्टव्यवहारनिदानत्वमित्यस्यानुभवैकपक्षपातिनाऽवश्यमादरणीयत्वेन संसर्गविशेषेण विशेषणांशे एव भ्रमत्वस्य विशिष्टांशे भ्रमत्वमभिदधताऽप्यवश्यं पर्यवसायिताया वाच्यत्वाच्चेत्याशयेनान्यथा व्याचष्टे **विशेषणतयेत्यर्थ इति । मयेति ।** नन्वनुपदमेव शारदायां परतो दर्शनीयरीत्या मयेत्यनेनानिर्वाच्यवादिपरामर्शाऽसम्भवेऽपि प्रकृतमूलकारात्मकव्यक्तिविशेषपरामर्शे का क्षतिः, प्रक्रियानानात्वेन प्रकारान्तरस्यैवानिर्वाच्यवादिनोऽपि मूलकारस्याभिप्रायगोचरत्वसम्भवात् , सदसत्त्वाभ्यामिवोत्पन्नत्वानुत्पन्नत्वाभ्यामपि दुर्वचतया विपर्ययगोचरस्य सर्वथैवानिर्वाच्यत्वे मूलकृत्सम्मतिसम्भवादिति चेन्न, एवं सति तस्य सन्निकृष्टत्वासन्निकृष्टत्वाभ्यामपि दुर्वचत्वस्यैव वाच्यत्वेनासन्निकर्षपक्षपक्षपातस्य मूलकृतः सर्वथैवानुचितत्वापातादित्यभिप्रायेणान्यथाव्याख्यानमेव ज्यायो मत्वाह **अन्यथाख्यातिवादिनेति । अनिर्वचनीयोत्पत्तिवादे इति ।** अत्र कल्पेऽपि प्रातीतिवरजते व्यावहारिकरजतार्थिप्रवृत्त्युपपत्तये सद्रजतत्वेन रूपेण तत्तादात्म्यभानस्यान्य-थाख्यात्यात्मन उपगमस्यावश्यकत्वेन नोक्तार्थकस्य मयेत्यस्य सर्वथा निर्दलत्वम् ।

किञ्च संस्कारस्यापि प्रमाणान्तरासहकृतस्य नान्यत्र ज्ञानजनकत्वं दृष्टमिति

शारदा

इन्द्रियस्य संयुक्तादेरेव प्रत्यक्षहेतुत्वोपगमात्, अलौकिकप्रत्यक्षस्याप्रामाणिकत्वात्, रजतं साक्षात्करोमीति प्रतीत्यनुपपत्तेश्चेति द्रष्टव्यम् । एवमप्रयोजकतां सूचयित्वापत्तिमिष्टापत्त्याप्याभासयति सहकारीति । **इन्द्रियजन्यजनकेत्यर्थः । दोषशक्तेः = दोषात्मकशक्तेः ।** प्रत्यासत्तित्वेनेति । **ज्ञानात्पूर्वमेव प्रत्यासत्तेरपेक्षणीयत्वात् स्ववृत्तिदोषजन्यज्ञानविषयताया इन्द्रियप्रत्यासत्तित्वानुपपत्तावपि प्रमातृप्रमाणप्रमेयगतदोषाणामेवेन्द्रियेण साक्षात्परम्परया वा सङ्गतानां विसंवादिप्रवृत्तिजनकज्ञानहेतुतया क्लृप्तानां प्रत्यासत्तित्वं भ्रान्तिसिद्ध्यन्यथानुपपत्त्या कल्प्यते । यद्वा दोषेषु तत्तद्विषयकज्ञानानुकूलशक्तेर्ज्ञानात्पूर्वमपि सत्त्वेन तद्द्वारक एवेन्द्रियसम्बद्धतत्तद्दोषविषयसम्बन्ध इति सूचयितुं शक्तिपदं व्यधिकरणं बोध्यम् । नच रजतेन्द्रियसंयोगजत्वमेवापाद्यम्, रजतविशेष्यकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति रजतसंयोगत्वेनावश्यककारणतयैव निर्वाहेण रजतविषयकप्रत्क्षत्वावच्छिन्नं प्रतितत्त्वेन कारणताया अप्रामाणिकत्वादिदं रजतमिति पुरोवर्तिविशेष्यकप्रत्यक्षे रजतसंयोगस्यानपेक्षणीयत्वात् । अथैवं रजतनिर्विकल्पकं रजतसंयोगं विनापि स्यात्, तस्य रजतविशेष्यकत्वाभावादिति चेदत्र तार्किकाः—भ्रान्तिसिद्ध्यन्यथानुपपत्त्यैव निर्विकल्पकविषयताविशेष्यतान्यतरसम्बन्धेन रजतविशिष्टप्रत्यक्षत्वस्यैव कार्यतावच्छेदकतोपगमात्, सम्बन्धांशेऽननुगमस्य चादोषत्वात् । घटज्ञानात्पटविशिष्टज्ञानवारणाय विशिष्टधियं प्रति विशेषणज्ञानकारणताया विशिष्यैव विश्रान्ततया निर्विकल्पकस्याप्रामाणिकत्वाद्वेति वदन्ति। रजतविषयकप्रत्यक्षत्वस्यैव कार्यतावच्छेदकतोपगमे तु प्राभाकरविजयाय वेदान्तिन एवोक्तरीत्या प्रभविष्णव इत्यवधेयम् । दोषाणां प्रत्यासत्तित्वाभिधानञ्चेदं तार्किकमतेनैव, अनिर्वाच्योत्पत्तिवादे तु लाघवेन रजतत्वादिनैव दोषत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यताया अवच्छिन्नत्वोपगमात् रजतभ्रमत्वादिना तस्या अनवच्छिन्नत्वात्, विषयं प्रति चेन्द्रियस्याकारणतया तत्प्रत्यासत्तिताया दोषेष्वसम्भवदुक्तिकत्वादिति । एवमुक्तमतद्वयवदनुपदं संस्कारस्य स्मृतेर्वाप्रत्यासत्तित्वमित्यभिधास्यमानं मतद्वयमपि तार्किकाणामेव द्रष्टव्यम् । ननु दोषाणां भ्रमीयलौकिकविषयतानियामकत्वसम्भवेऽपि प्रत्यासत्तित्वासम्भव एव, नहि संयोगेन घटसन्निकृष्टमिन्द्रियमितिधीवत् दोषेण घटसन्निकृष्टमिन्द्रियमितिधीरुन्मेषमासादयतीत्यतः प्रथममेव पक्षं समर्थयते** किञ्चेति । **प्रमाणान्तरासहकृतस्या = प्रमाणासहकृत्य संस्कारस्याप्रमाणत्वादन्तरपदासङ्गतेः । प्रत्यभिज्ञायां संस्कारप्रमाणयोः सम्भूयकारित्वस्यैव**

भारती

(दोषों के भ्रमीय लौकिक विषयता के नियामक होने पर भी उन्हें (दोषों को) प्रत्यासत्ति मानना सम्भव नहीं है क्योंकि ''संयोगेन घटसन्निकृष्टम् इन्द्रियम्'' इस प्रतीति के समान दोषेण घट सन्निकृष्टम् इन्द्रियम्'' इत्याकारक ज्ञान नहीं होता । अत: कहते हैं—किञ्च) प्रमाणों से असहकृत (रहित) केवल संस्कार भी तो अन्यत्र ज्ञान का जनक नहीं देखा गया है । ऐसी

तदपि कथं कल्प्यते । प्रत्यभिज्ञाने एव संस्कारस्य सदृशदर्शनादि सहकारि कल्पितं नत्विन्द्रियस्येति चेन्न; प्रत्यभिज्ञाने संस्कारेन्द्रिययोर्द्वयोरपि कारणत्वात् सदृशदर्शनादिसहकृतत्वदर्शनाविशेषात् । अत्र सदृशदर्शनहकारित्वे संस्कारसहकारित्वस्यापि

शारदा

दर्शनात् स्मृतिमात्रस्य प्रमाणविनिर्मुक्तसंस्कारजत्वं न स्यात्, अन्यत्रादर्शनस्याप्रयोजकत्वं तु मयाऽपि सुवचमित्याशयः । प्रत्यभिज्ञाने एव = स्मृतौ संस्कारजन्यज्ञानत्वेन प्रमाणजन्यत्वापादनोदाहारणे एव । संस्कारस्य = संस्कारस्यैव । सदृशदर्शनादि = तत्कालैतत्कालावच्छिन्नयोरनुगतधर्मदर्शनादि । नत्विति । **इन्द्रियस्योद्बोधकविधया सदृशदर्शनाद्यपेक्षणासम्भवादिति भावः । तथाच यदुदाहरणीकृत्य स्मृतौ प्रमाणजत्वमापाद्यते तदेवोदाहरणीकृत्य स्मृतिविशेषे सदृशदर्शनापेक्षज्ञानत्वेन संस्कारजत्वमप्यापाद्यमिति प्रतिबन्दिः। सदृशदर्शनानपेक्षस्मृतेरप्युद्बोधकान्तरसापेक्षत्वेन तदपेक्षज्ञानत्वेन प्रत्यभिज्ञाविशेषमुदाहरणीकृत्य संस्कारजत्वमापाद्यमिति भावः । उद्बोधकविधयैव सदृशदर्शनाद्यपेक्षेति नियमे प्रमाणाभावमभिप्रेत्याह** प्रत्यभिज्ञाने इति । **निरुक्तं रजतज्ञानं यदि सदृशदर्शनापेक्षज्ञानं स्यादिन्द्रियजन्यं स्यात्प्रत्यभिज्ञावदित्येव किन्नापाद्यतामिति भावः। तर्हि विनिगमकाभावात् 'उक्तज्ञानं यदि सदृशदर्शनापेक्षज्ञानं स्यात् संस्कारेन्द्रियोभयजन्यं स्यात् प्रत्यभिज्ञानव'दित्यस्तु, तावतापि प्रमुष्टतत्ताकस्मृतेः सेत्स्यमानत्वात्, संस्कारजन्यज्ञानत्वेन स्मृतित्वाङ्गीकारादिति देशयति** अत्रेति । **निरुक्तरजतज्ञाने इत्यर्थः। सदृशदर्शनसहकारित्वे = सदृशदर्शनसहकृतजत्वे, सदृशदर्शनजत्वे इति यावत्। संस्कारसहकारित्वस्य = संस्कारसहकृतेन्द्रियजत्वस्य, संस्कारेन्द्रियोभयजत्वस्येति यावत्।**

भारती

स्थिति में इदं रजतम् स्थल में केवल संस्कार रजत स्मृति का कारण है यह कल्पना कैसे करेंगे।

प्रश्न—प्रत्यभिज्ञा में ही संस्कार के सहकारी सदृश दर्शनादि माने गये हैं अर्थात् प्रत्यभिज्ञा में सदृशदर्शनसहकृत संस्कार तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन ज्ञान का जनक होता है । सदृशदर्शन इन्द्रिय का सहकारी नहीं माना जाता, क्योंकि इन्द्रिय को उद्‌बोधकतया सदृशदर्शन की अपेक्षा ही नहीं है ।

समाधान—किन्तु यह आप का कथन ठीक नहीं है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा में संस्कार और इन्द्रिय दोनों ही कारण माने जाते हैं । सदृशदर्शनादि का सहकृतत्व भी संस्कार और इन्द्रिय उभयत्र समान है । (उद्‌बोधकविधया ही सदृशदर्शन की अपेक्षा हो तभी वह सहकारी हो इस नियम में कोई प्रमाण नहीं है । अत: यहाँ निरुक्त रजतज्ञान यदि सदृशदर्शनापेक्ष ज्ञान हो तो इन्द्रियजन्य हो "प्रत्याभिज्ञा के समान" इस प्रकार से आपादन कर सकते हैं ।)

प्रश्न—"इदं रजतम्" यह रजत ज्ञान यदि सदृशदर्शन सहकारिजन्य अर्थात् सदृशदर्शनजन्य होगा तो संस्कार सहकारीजन्य अर्थात् संस्कार इन्द्रिय उभयजन्य भी होगा, जैसे कि प्रत्यभिज्ञा

प्रसङ्गः प्रत्यभिज्ञानवदिति चेन्न; तथा सति तद्वदेव तत्तोल्लेखापत्तेः; सदृशदर्शनादिसहकृतत्वेन च तत्तांशप्रसञ्जने संस्कारजत्वस्योपाधित्वम् । न च सदृशदर्शनसहकारितैव तत्ताप्रयोजिकेति त्यज्यतां, न संस्कार इति युक्तम् ; सदृशदर्शनं

शारदा

इन्द्रियजत्वमेवापाद्यमित्यत्र विनिगमनामाचष्टे तथासतीति । **संस्कारजत्वोपगमे इत्यर्थः ।** **इन्द्रियजत्वोपगमेऽपि 'उक्तज्ञानं यदि सदृशदर्शनापेक्षज्ञानं स्यात् तत्ताविषयकं स्यात् प्रत्यभिज्ञानविशेषव' दित्यापादनस्य सावसरतया तत्ताविषयकत्वापत्तिर्नेन्द्रियजन्यत्वे विनिगमकभावमालम्बितुमीष्टे इति ''यत्रोभयोस्समोदोषः परिहारोऽपि वा सम'' इति न्यायस्यैवावकाशइत्याशङ्क्याह** सदृशदर्शनादिसहकृतत्वेनेति । **सदृशदर्शनाद्यन्यतमोद्बोधकापेक्षज्ञानत्वेनेत्यर्थः। ततांशप्रसञ्जने = तत्ताविषयकत्वप्रसञ्जने। ननु तत्तदुद्बोधकापेक्षतत्तत्प्रत्यभिज्ञायां तत्ताविषयकत्वं प्रति संस्कारस्यैव प्रयोजकत्वं नतु तत्तदुद्बोधकस्येत्यत्र विनिगमकस्यासौलभ्यात् प्रत्युत तत्तदुद्बोधकमन्तारेण संस्कारस्याकिञ्चित्करत्वात् तस्यैव तत्ताविषयकत्वप्रयोजकताया मन्तुमौचित्यात् प्रकृतज्ञाने संस्कारजत्वसत्त्वेऽपि तत्तदुद्बोधकानपेक्षितोपगमेनैव तत्ताविषयकत्वाघटनायास्तत्र सम्भवदुक्तिकत्वात् साधनव्यापकत्वेन न संस्कारजत्वस्योपाधितासम्भव इत्याशङ्कां निराकुरुते** नचेति । **सदृशदर्शनसहकारितैव = सदृशदर्शनाद्यन्यतमापेक्षज्ञानत्वमेव । तत्ताप्रयोजिका = तत्ताविषयकत्वसमनियता । न संस्कारः = न संस्कारजत्वं । त्यज्यतामित्यनुषङ्गः । सदृशदर्शनं = तत्तदुद्बोधकं । उद्बुद्धसंस्कारस्यैव स्मृत्युपधायकत्वादित्यादिः । अतथाबोधात्**

भारती

संस्कार इन्द्रिय उभयजन्य है । (तथाच यहाँ "उक्त ज्ञान यदि सदृशदर्शनापेक्ष ज्ञान हो तो संस्कार इन्द्रिय उभयजन्य भी हो प्रत्यभिज्ञा के समान" इस प्रकार आपादन किया जा सकता है । (एवञ्च संस्कारजन्यज्ञान होने से वह रजतज्ञान प्रमुष्ट तत्ताक ही स्मृति है यह पूर्वपक्ष का तात्पर्य है।)

समाधान—यदि प्रत्यभिज्ञा के समान रजतम् इस ज्ञान को संस्कारजन्य मानें तो प्रत्यभिज्ञा के समान इसमें तत्ता का भी उल्लेख होना चाहिए । तथाच उक्त ज्ञान यदि सदृशदर्शनापेक्षज्ञान हो तो तत्ताविषयक होना चाहिए प्रत्यभिज्ञा के समान । इस प्रकार आपादन किया जा सकता । किन्तु रजतम् यह तत्ता विषयक नहीं है, अतः सदृशदर्शनापेक्ष ज्ञान भी नहीं हो सकता, फलतः उसे इन्द्रियजन्य ही मानना होगा । यदि उसमें (रजतम् इस ज्ञान में) सदृशदर्शनादिसहकृतत्व अर्थात् सदृशदर्शनाद्यन्यतमोद्बोधकापेक्षज्ञानत्व हेतु के द्वारा तत्ताविषयत्व को सिद्ध करें (विमतं ज्ञानं तत्ताविषयकं सदृशदर्शनादिसहकृतत्वात् इस अनुमान से सिद्ध करें) तो नहीं कर सकते क्योंकि उस (अनुमान) में संस्कारजन्यत्व उपाधि है । (प्रत्याभिज्ञा को लेकर साध्यव्यापकत्व भी है एवं पक्ष को लेकर साधनाव्यापकत्व भी है ।)

यदि कहें कि सदृशदर्शनरूप तत्तदुद्बोधक ही तत्ताभान का प्रयोजक है अतः प्रकृत

परित्यज्य संस्कारे सत्यप्यतथाबोधात् । तथापि सदर्थे प्राप्य-कारित्वमिन्द्रियस्य दृष्टं न हातुं शक्यमिति चेन्न; उक्तमत्र यथेन्द्रियस्य प्राप्तिसहकृतस्य ज्ञापकत्वं दृष्टं तथैव संस्कारस्यापि प्रमाणान्तरसहकृतस्य ज्ञापकत्वमुपलब्धमिति तदपि हातुं न युक्त-मिति, संस्कारस्यापि चेन्द्रियप्रत्यासत्तित्वस्वीकारेण तद्विरहासिद्धेः ।

शारदा

= तत्ताविषयकबोधस्य प्रकृतरजतबोधस्य चाभावात् । तथा च संस्कारजत्ववादिनाप्युद्बोधकस्यावश्यमपेक्षणीयत्वात् तत्त्यागासम्भवात्तस्य तत्ताविषयकत्वसमनैयत्यस्यावचनीयत्वादन्यथा प्रकृतज्ञाने तत्ताविषयकत्वस्य दुर्वारत्वा-दिति परिशेषादतिप्रसङ्गभङ्गाय संस्कारस्मृत्योः समानविषयकत्वेन कार्यकारणभावस्यावश्यकत्वाच्च स्मृतिविषयतां प्रति संस्कारविषयताया एव प्रयोजकत्वेन संस्कारजज्ञानत्वस्यैव तत्ताविषयकत्वसमनैयत्यमिति तत्ताविषयकत्वविरहिणि प्रकृतज्ञाने संस्कारजत्वस्यासम्भवान्न तस्योपाधित्वासम्भवः, न वा प्रकृतज्ञानस्य स्मृतित्वसिद्धिरिति भावः । प्रत्यासत्त्यन्तरं वक्तुमुक्ते एव शङ्कासमाधाने अनुवदति तथापीत्यादिना । **सदर्थे = प्रकृतज्ञानसमानकालिके। एतच्च प्रत्यभिज्ञायां तत्तांशे व्यभिचारं परिहर्तुम्, परन्त्वेवमपि नामांशे व्यभिचारस्यापरिहाराद्रीतिरुक्तैवादर्तव्यापादनस्येति** । संस्कारस्यापीति । **संस्कारस्य स्मृतेर्वेत्यर्थः । चकारस्य तद्विरहासिद्धेश्चेत्यन्वयः । तदा प्रत्यासत्तिपरामर्शः ।**

भारती

ज्ञान में उसी का परित्याग करें, संस्कार का अर्थात् संस्कारजन्यत्व का परित्याग करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वह (संस्करजन्यत्व) तत्ता के भान का प्रयोजक नहीं है । अतः साधन का व्यापक होने से संस्कारजत्व उपाधि नहीं हो सकती । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि सदृशदर्शन रूप तत्तदुद्बोधक के बिना संस्कार के रहने पर भी तत्ताविषयक बोध (तत्ता का भान) एवं प्रकृत में रजत का ज्ञान दोनों ही नहीं होते हैं । तथा च सदृशदर्शनरूप तत्तदुद्बोधक (सदृशदर्शनाद्यन्यतमापेक्षज्ञानत्व) को ही तत्ता के भान का प्रयोजक (तत्ताविषयकत्वसमनियत) मानना उचित है ऐसी स्थिति में संस्कारजत्व उपाधि सङ्गत है । (ऐसी दशा में प्रकृत रजत ज्ञान में तत्ता का भान नहीं हो सकता अतः उसे स्मृति न मानकर इन्द्रियजन्य ज्ञान ही मानना उचित है । तस्मात् प्रमुष्ट तत्ताक स्मृति का उदाहरण "रजतम्" यह ज्ञान नही हो सकता ।)

प्रश्न—तत्तदुद्बोधक के तत्ताभान प्रयोजक होने पर भी सदर्थ अर्थात् प्रकृत ज्ञान के समानकालिक अर्थ में इन्द्रियों का स्वसम्बद्ध विषयकज्ञानजनकत्व देखा गया है अतः उसका परित्याग नहीं किया जा सकता ।

समाधान—इस प्रश्न का समाधान कर चुके हैं कि—जैसे इन्द्रियों में स्वसम्बद्ध-विषयकज्ञानजनकत्व देखा गया है उसी प्रकार संस्कार में भी प्रमाणान्तर सहकृत होकर ही ज्ञानजनकत्व देखा गया है जिसका परित्याग करना शक्य नहीं है और संस्कार अथवा स्मृति

तत्तांशमोषकल्पनं च स्वतन्त्रसंस्कारजत्वपक्षे एव यावदधिकम्। कुतश्चायं तत्तांशमोष इति विचारमधिकरोति, पूर्वं वर्तमानादिकालविशेषविशिष्टस्य रजतादेरेकस्मिन्ननुभवे प्रकाशिततया तज्जन्येन संस्कारेणापि तथैवोपनेतुमुचितत्वात्, प्रत्यभिज्ञायां

शारदा

सम्बद्धविशेषणतैव प्रत्यासत्तिर्नतु ग्राह्यासम्बद्धविशेषणता, आप्यपरमाणौ पृथिवीत्वाभावप्रत्यक्षस्य प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनेत्यादियोग्यताविशिष्टानुपलम्भाभावेनैव वारणसम्भवादित्याशयः । तत्त्वं तु निवेदितमेव । न च संस्कारस्य रजतविशेष्यकत्वादिन्द्रियेण शुक्तिविशेष्यकप्रत्यक्षजनकेन कथं सम्भूयकारिता, प्रत्यभिज्ञायां संस्कारस्य स्वसमानविशेष्यकप्रत्यक्षजनकेन्द्रियेणैव सम्भूयकारित्वदर्शनादिति देश्यम्; समानविशेष्यकत्वाभावेऽपि फलबलेन समानविषयकत्वेनैव सम्भूयकारित्वकल्पने बाधकाभावादित्याशयात् । तत्तांशमोषकल्पनं = तत्ताविषयकत्वाभावकल्पनं । स्वतन्त्रसंस्कारजत्वपक्षे = निरुक्तरजतत्वप्रकारकज्ञानस्याक्षानपेक्षसंस्कारजत्वे, स्मृतित्वपक्षे इति यावत् । तेन प्रत्यभिज्ञायामक्षापेक्षसंस्कारजन्यायामपि तत्ताविषयकत्वदर्शनेनात्र तदभावकल्पनेन साम्येऽपि नासङ्गतिः । अननुभूयमानस्मृतित्वकल्पने एव तावद्गौरवम्, तत्परिकल्प्य तत्ताविषयकत्वाभावकल्पने तु महद्गौरवमिति सूचनाय यावत्पदम् । स्मृतेरन्यत्र तत्ताविषयिकाया एव दृष्टत्वात् । प्रत्यक्षत्वं तु तत्रानुभविकम्, तत्ताविषयकत्वानियतं चेति मम न गौरवमिति भावः । विचारमधिकिरोति = विचारार्हम् । वर्तमानादीति । **अतीतानागतविषयकानुमित्यधीनस्मृतेरपि सद्भावादादिपदम् । अनुभूतिविषयस्यैव कालादेस्तत्तात्वमिति मतेनेदम्, अतीतानुभवविषयत्वं तत्ता, तच्चानुभवस्य स्वप्रकाशतया तद्विषय इति प्रभाकरमतेऽपि संस्कारस्य तद्विषयकस्य तदुपनायकत्वध्रौव्यमेव । तत्तांशे**

भारती

को ही इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष मान लेने से इदं रजतम् में रजत के साथ सन्निकर्ष का अभाव भी नहीं है । रजतम् इस ज्ञान को इन्द्रियजन्य मानने वाले की अपेक्षा उस (रजतम्) ज्ञान में स्वतन्त्र अर्थात् इन्द्रिय अनपेक्ष केवल संस्कारजन्यत्व (स्मृतित्व) मानने वाले के मत में तत्ता अंश के प्रमोष (त्याग) की कल्पना रूप गौरव दोष अधिक है । (इन्द्रियजन्यत्व पक्ष में तत्तांश का भान प्राप्त ही नहीं है अतः उसके प्रमोष (त्याग) की कल्पना नहीं करनी पड़ती अतः गौरव नहीं है ।)

किञ्च तत्तांश का प्रमोष कैसे होता है यह भी विचारणीय है । पूर्वकाल में अनुभव के द्वारा वर्तमानादिकाल विशेष से विशिष्ट (युक्त) रजतादि ही प्रकाशित होते हैं अतः उस अनुभव से जन्य संस्कार भी वैसे ही (वर्तमानादिकाल विशेष से विशिष्ट) रजत को विषय (प्रकाशित) करेगा । (ऐसी स्थिति में संस्कारजन्य स्मृति में भी वह कालरूपविशेषण तत्तारूप से भासित होगा ही । क्योंकि प्रत्यभिज्ञा में स्मृति के अनुभव समानविषयक होने से तत्तांश का भान देखा जाता है ।

तथैव फलदर्शनात् । दोषवशात्तत्तांशमोष इति चेन्न; विषयसम्बन्धस्य स्वभावत्वेन संस्कारे तदलोपात् । दोषात्स्मृतौ तथेति चेत् ; कः पुनरसौ दोषः? यस्माद्भ्रान्त्युत्पत्तिः परेषामिति चेत्, तर्हि 'तद्रजताविशिष्टमिदं रजत'मित्यत्र, 'सैव रजतव्यक्तिरिय' मित्यत्र वा, 'पुनस्तदेव रजतमुपस्थित' मितीह वा, सामान्यत एव रजतस्य तदापि परामृष्टस्य भ्रान्तौ तत्तांशमोषः स्यात् , दोषस्य विद्यमानत्वात् । अन्यथा इदं रजतं मित्यंशेऽपि तस्मिन्

शारदा

स्मृतेरज्ञानज्ञापकत्वमते तु नायं विचारः, प्रमोषवादिना तदनङ्गीकारादिति । विषयसम्बन्धस्य = सविषयकत्वस्य । स्वभावत्वेन = संस्कारत्वव्यापकत्वेन । तदलोपात् = तत्ताविषयकत्वाभावासम्भवात्, अनुपेक्षात्मकनिश्चयेन स्वीययावद्विषयविषयकसंस्कारस्योत्पाद्यत्वादिति भावः । तथा = तत्ताविषयकत्वाभावः । परेषां = भ्रान्त्यभ्युपगन्तृणां, प्रमोषवादिना तदनभ्युपगमात् । विपरीतव्यवहारजनकज्ञानत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदको धर्मो दोषत्वं तद्वत्त्वं च प्रमोषकस्येत्यर्थः, तेनेन्द्रियादेरदोषस्य भ्रान्त्युत्पादकत्वेऽपि नासङ्गतिः। अविशिष्टं = अविलक्षणम् । उपस्थितम् = पुरोवर्तिजातम् । सामान्यत इति । **पुरोवर्तितादात्म्येन प्रतीयमानरजताविलक्षणरूपेणेत्यर्थः । तद्विलक्षणरूपेण प्रतीतावुक्तभ्रमाणामसम्भवात् । तदा = तच्छब्देन परामृष्टस्यापि । अपिर्विरुद्धत्वप्रदर्शनाय तत्ताविषयकत्वाभावस्य । इत्यंशेऽपि = इत्याद्यंशेऽपि, तस्मिन्**

राजहंसः

भ्रान्त्युत्पत्तिः परेषामिति । अत्र परत्वं यत्किञ्चिदपेक्षयाऽव्यवस्थितम् , अकिञ्चित्करं च तदुपादानम्, भ्रमो हि यद्यस्ति तदा तदनभ्युपगन्तृमतेऽपि तेनोत्पत्तव्यमेवेति मतद्वयसाधारण्याय परत्वनिवेशमपास्यैवानुगमयति **विपरीतव्यवहारेत्यादिना** ।

इति खण्डनशारदायामनुभूतित्वस्य जातित्वखण्डने राजहंसः ।

भारती

यदि कहें कि—रजतम् इस स्मरण में दोषवशात् तत्तांश का त्याग हो जायेगा, तो यह कथन युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि संस्कार में विषयसम्बन्ध अर्थात् सविषयकत्व के स्वाभाविक होने से संस्कार में तत्ताविषयकत्व का अभाव नहीं हो सकता । यदि कहें कि संस्कार में तत्ताविषयत्व का लोप न होने पर भी तज्जन्य स्मृति में तत्तांश का प्रमोष (त्याग) हो जायेगा, (अर्थात् संस्कार गत दोष उस (संस्कार) के स्मृतिरूपकार्य में तत्ता के भान का प्रतिबन्धक हो जायेगा ।) तो यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि दोष क्या है अर्थात् दोष का लक्षण क्या है ? यही विचार करें ।

जिसके द्वारा तार्किकों को भ्रान्तिज्ञान उत्पन्न होता है वही दोष है (अर्थात् विपरीत व्यवहारजनकज्ञानत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकताच्छेदकधर्म दोषत्व है, और तद्वान् जो है वही दोष है ।) यही दोष का लक्षण करेंगे) तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि जहाँ पर— तद्रजताविशिष्टमिदं रजतम्'' (उस रजत से अविलक्षण = अभिन्न यह रजत है) ''सैव रजतव्यक्तिरियम्'' (यह वही रजत व्यक्ति है) ''पुनस्तदेव रजतमुपस्थितम्'' (पुनः वही रजत

ज्ञाने तत्तांशमोषो न स्यादित्यास्तामियं प्रसक्तानुप्रसक्तिः। इत्यनुभवत्वस्य जातित्वखण्डने प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डनम् ।

नच प्रत्यभिज्ञा नाम स्मरणानुभवाभ्यामन्य एव प्रकार इति वाच्यम् ; अननुभवत्वेनाप्रमात्वापातात् । नचैवमेवास्त्विति वाच्यम्; अक्षणिकत्ववादिना स्थिरसिद्धौ प्रमात्वेनोपन्यस्तत्वात् , ईदृश-

शारदा

ज्ञाने = उक्तज्ञानेषु । तत्तांशमोषो न स्यादिति परमते, स्वमते तु भ्रमत्वं न स्यादिति द्रष्टव्यम् । आद्योऽवैलक्षण्यस्य भ्रमः, द्वितीयोऽभेदस्य, तृतीयः पुरोवृत्तिताया इति विशेषमादृत्यैवानेकविधभ्रमोदाहरणम् , दोषस्य तत्ताविषयकत्वाभावप्रयोजकताया-मन्वयव्यभिचारस्यैकेनैव प्रतीत्युपपत्तेरिति । दोषत्वस्यानुगतत्वे पित्तादिनिष्ठतदवच्छिन्न-जनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकता न विपरीतव्यवहारजनकज्ञानत्वेऽभ्युपगन्तुमुचिता अपि तु भ्रमत्वे एव लाघवात् भ्रमत्वस्य जातिविशेषरूपताभ्युपगमे तु नितरामिति तादृशजन्यजनकभावबलादपि भ्रमात्मकज्ञानसिद्धिः । नच—व्यवहारगतं वैपरीत्यं न तदभाववति तत्प्रकारकत्वं वाच्यम् , अपि त्वनुगतव्यवहारबलादनुगतमेवेति तदवच्छिन्नैवोक्तजन्यतेति—वक्तव्यम्; त्वन्मते दोषस्य कारणताया अनङ्गीकृतत्वेन दोषसमवहितज्ञानस्यैव विपरीतव्यवहारजनकत्वेन च यथार्थव्यवहारस्थले ज्ञानस्यैव कारणतायाः क्लृप्तत्वेन च व्यवहारगतधर्मेण दोषत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यताया अवच्छिन्नत्वासम्भवात् , व्यवहारे वैपरीत्याभ्युपगमे ज्ञानगतवैपरीत्येऽकारणकप्रद्वेषानौ-चित्याच्चेत्यभिप्रेत्याह इत्यास्तामिति । **प्रमात्वखण्डनप्रसक्तं प्रत्यभिज्ञानखण्डनं तदनुप्रसक्तिश्च प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डनस्येत्यर्थः।** इति शारदायामनुभूतित्वस्य जातित्वखण्डने स्मृतेः प्रमुष्टतत्ताकत्वखण्डनम् ।

भारती

उपस्थित हो गया) इत्यादि रूप से सामान्यतः तत्शब्द से रजत का परामर्श भ्रान्ति होती है उनमें तत्तांश का प्रमोष (त्याग) होना चाहिए, क्योंकि उन सभी भ्रान्ति स्थलों में उक्त लक्षण दोष विद्यमान है । अन्यथा अर्थात् यदि दोष के विद्यमान होते हुए भी उक्त ज्ञानों में तत्तांश का प्रमोष नहीं होता, तो ''इदं रजतम्'' इत्यादि ज्ञानों में भी तत्तांश का प्रमोष (त्याग) नहीं होना चाहिए । तथा च प्रमात्वखण्डन में प्रसक्त (प्राप्त) प्रत्यभिज्ञाखण्डन में अनुप्रसक्त इस प्रमुष्टतत्ताकस्मृति के खण्डन का यहीं विराम कर दें ।

यदि कहें कि प्रत्यभिज्ञा स्मरण तथा अनुभव से भिन्न ही कोई प्रकार है, तो यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञान को अनुभव से भिन्न मानने पर वह (प्रत्यभिज्ञा) अप्रमा हो जायेगी । ''उसे (प्रत्यभिज्ञा) अप्रमा ही मान लिया जाय'' यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि अक्षणिकत्ववादी तार्किकों ने स्थिरत्व सिद्धि में प्रमाण देते हुए उसे (प्रत्यभिज्ञा को) प्रमा कहा है । (बौद्धाधिकार में ''कुतः पुनः स्थिरसिद्धिः ? प्रत्यभिज्ञानात्'' पूर्वापरकालीनाभेदावगाहि-प्रत्यक्षमेव स्थैर्ये प्रमाणम्'' इत्यादि दीधितिकार के वचन उपलब्ध है ।) अतः उसे अप्रमा नहीं

प्रसिद्धलक्ष्यत्यागेन च लक्षणोपपादनेऽनियमः प्रसज्येतेति । तस्माज्जातिवाचिनोऽनुभवपदस्य स्मृतितो व्यवच्छेदार्थमुपादानमिति सर्वथाऽनुपपन्नमिति । इति खण्डनखण्डखाद्येऽनुभवत्वस्य जातित्वखण्डनम् ।

अथ स्मृत्यन्यत्वखण्डनम् ।

नापि स्मृत्यन्यत्वमनुभवार्थः, नापि स्मृतिलक्षणरहितत्वम्, उक्तक्रमेण स्मृत्यनुभूतिसङ्करस्य दर्शितत्वेन व्यवच्छेदकत्वानुपपत्तेः ।

शारदा

'स्मरणानुभवाभ्या'मित्युक्त्या निरस्तं प्रकारचतुष्टयमेव सङ्गृहीतम् । प्रमात्वेनेति। **''कुतः पुनः स्थिरसिद्धिः? प्रत्यभिज्ञानात्'' ''पूर्वापरकालीनाभेदावगाहिप्रत्यक्षमेव स्थैर्ये प्रमाण''मिति बौद्धाधिकारतद्दीधित्यादावभिहितत्वादिति भावः । अनियमः = सर्वत्रैव सङ्ग्रहीतुमशक्यलक्ष्याणामलक्ष्यत्वोपगमः। तस्मात् = अनुभूतित्वस्य जातित्वासम्भवात्। जातिवाचिनः = ज्ञानत्वव्याप्यजातिविशेषावच्छिन्नशक्यताकस्य ।** इति खण्डनशारदायामनुभूतित्वस्य जातित्वखण्डनम् ।

स्मृत्यन्यत्वं = स्मृत्यन्यज्ञानत्वम् । रहितत्वं = **रहितज्ञानत्वम् । सङ्करपदमभेदपरं, तथा च स्मृतेरज्ञातज्ञापकात्मकत्वस्येत्यर्थः, स्मृत्यनुभूतिपदं वा भावपरम् ।** व्यवच्छेदकत्वानुपपत्तेरिति । **स्मृतिमात्रस्य तत्तांशेऽज्ञातज्ञापकत्वस्थितौ यदि प्रमालक्षणलक्ष्यत्वं तदा तत्र स्मृत्यन्यत्वस्मृतिलक्षणरहितत्वविरहेणाव्याप्तिः, अव्याप्यवृत्तिभेदात्यन्ताभाव-**

भारती

कह सकते और इस (प्रत्यभिज्ञा) प्रकार के प्रसिद्ध प्रमालक्षण के लक्ष्य का परित्याग करके प्रमा के लक्षण का उपपादन करें तो अव्यवस्था हो जायेगी (सर्वत्र ही संग्रह करने में अशक्य लक्ष्यों को अलक्ष्य ही मानना होगा।) तस्मात् अनुभूतित्व के जाति न होने से उक्त प्रमा लक्षण में स्मृति की व्यावृत्ति के लिए जातिवाचक अनुभूति पद का उपादान (कथन) करना तार्किकों का सर्वथा अनुपपन्न (युक्तिविरुद्ध) ही है ।

स्मृत्यन्यत्वखण्डन

स्मृति से अन्य ज्ञान अथवा स्मृति के लक्षण से रहित ज्ञान भी अनुभव पद का अर्थ नहीं है, क्योंकि उक्त प्रकार से स्मृति और अनुभव का साङ्कर्य (अभेद) दिखा दिये जाने से ज्ञानमात्र के अनुभव रूप होने से ''तत्त्वानुभूति प्रमा'' इस लक्षण में अनुभूति पद स्मृति का व्यवच्छेदक (व्यावर्तक) नहीं हो सकता । (तात्पर्य यह है कि स्मृतिमात्र ही तत्तांश में अज्ञातज्ञापक होने से प्रमा के लक्षण की लक्ष्य हो जाती है किन्तु स्मृत्यन्यज्ञानत्व अथवा स्मृति लक्षणरहित ज्ञानत्व यह दोनों ही लक्षण स्मृति में नहीं जाता, अतः अव्याप्ति ग्रस्त है ।)

इतोऽपि न स्मृत्यन्यत्वमनुभवार्थः, तथाहि–स्मृत्यन्यत्वं यत्किञ्चित्स्मरणान्यता वा, सर्वस्मृतिव्यक्त्यन्यता वा, स्मृतित्वरहितत्वं वा, अभिप्रेतम् । प्रथमे तु स्मृत्यन्तरव्यतिरेकात्स्मृत्यन्तरमप्यनुभूतिः स्यात्, नहि यतो व्यतिरिक्ता स्मरणव्यक्त्यन्तरादेका स्मृतिव्यक्तिस्तत्स्मरणमेव न भवति येन तदन्यत्वं न स्मृत्यन्यत्वं स्यात् । नापि द्वितीयः, मदीयादिस्मृतिव्यक्तिभ्यो हि भवता कथङ्कारं व्यतिरिक्तत्वमवधारणीयं प्रमायाः? तासां भवता प्रत्येतुमशक्यत्वात् । तथाहि–न तावत्परकीयज्ञाने परस्यास्मादृशोऽध्यक्षसम्भवः; नाप्यनुमानार्थापत्ती, लिङ्गानुपपद्यमानयोः सर्वत्रार्वाग्दृशा प्रत्येतुमशक्यत्वात् ; नापि शब्दः, सर्वत्र तस्यासम्भवात् । उपमानाद्यसम्भवोऽपि स्फुट एव, ततः कथं सर्वाभ्यः स्मृतिव्यक्तिभ्यो व्यतिरेको निरूप्यः प्रमाया

शारदा

योस्तत्राभ्युपगमे तु व्यर्थमनुभूतिपदम् , भ्रमभिन्नज्ञानमात्रस्यैव लक्ष्यत्वेन तत्त्वविषयकज्ञानत्वस्यैव लक्षणतौचित्यात् । यदि तु तस्य न प्रमालक्षणलक्ष्यता, न वा तत्र स्मृत्यन्यत्वादिकं तदाप्याह इतोऽपीति । सर्वेति । **सर्वस्मृतिव्यक्तिप्रतियोगिकभेदकूटवत्त्वमित्यर्थः । तत्तत्स्मृतिप्रतियोगिककतिपयभेदकूटाधिकरणत्वात्स्मृतिविशेषस्यापीत्यतः** सर्वेति । **सर्वस्मृतीनामपि स्मृतित्वमात्रावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य तादृशभेदसमुदायस्य वा स्मृतिर्नेति प्रतीतिविषयस्य विशिष्टवैशिष्ट्यबोधमर्यादामनतिशयानस्य स्मृतित्वप्रकारकधीजननीकबोधविषयतामासेदुषः सुप्रतिपदत्वेनोपरितनखण्डनासाङ्गत्यमित्यतो व्यक्तिपदं भेदाय तत्तद्विशेषधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं समर्पयितुम् । 'अस्मादृशः'**

भारती

किञ्च वक्ष्यमाण दूषण होने से भी स्मृत्यन्यज्ञानत्व अनुभव पदार्थ नहीं हो सकता । वक्ष्यमाण दोष दिखाते हैं—तथाहि स्मृत्यन्यत्व का क्या अर्थ है—क्या यत्किञ्चित् (एक-दो) स्मृति से भिन्न होना'' है या ''सम्पूर्ण स्मृति व्यक्तियों से भिन्न होना'' है या ''स्मृतित्व धर्म से रहित होना'' है (इनमें से कौन सा अर्थ आपको अभिप्रेत है ।)

यदि यत्किञ्चित् स्मरण से अन्य होना ही स्मृत्यन्यत्व का अर्थ है तो एक स्मृति से अन्य (भिन्न) द्वितीय स्मृति भी अनुभूति हो जायेगी अर्थात् अनुभूति घटितप्रमा लक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति हो जायेगी । क्योंकि जिस स्मरण व्यक्ति से अन्य वह (द्वितीय) स्मरण व्यक्ति है वह स्मृति ही नहीं है ऐसा नहीं कह सकते, जिससे उस स्मृति से अन्यत्व को स्मृत्यन्यत्व न कहा जाय ।

सम्पूर्ण स्मृति व्यक्तियों से अन्यत्व (अन्य होना) यह द्वितीय कल्प भी ठीक नहीं है। क्योंकि मेरे स्मृति व्यक्तियों से अन्यत्व का निश्चय आपने प्रमा में कैसा किया । कारण कि उन मेरी स्मृति व्यक्तियों को आप नहीं जान सकते । हमारे जैसे असर्वज्ञ एक पुरुष को दूसरे पुरुष

इत्यबोधादसिद्धिर्लक्षणस्य । न च वाच्यं स्मृतित्वेन सर्वाः स्मृतिव्यक्तयः सर्वकालसर्वपुरुषसम्बन्धिन्यः स्वात्मीयां स्मृतिव्यक्तिं प्रत्यक्षयता प्रत्यक्षादेवावगम्यन्ते सामान्यलक्षणयेन्द्रियप्रत्यासत्त्या व्याप्तिग्रहणकाले इव व्याप्यव्यापकव्यक्तय इति; दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्दोषग्रस्तत्वात्, तथा सत्येकं प्रमेयं प्रत्यक्षयतः प्रमेयत्वसामान्यप्रत्यासत्त्या विश्वमेव प्रत्यक्षं स्यात्, एवमभ्युपगच्छतश्च श्रद्दधीमहि ते सार्वज्ञ्यमिदं यदि जानासि किमस्मच्चेतसि विपरिवर्तते इति ।

शारदा

'अर्वाग्दृशा' इति सर्वज्ञं व्यवच्छेत्तुम् । ननु स्मृतित्वमात्रावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद एव विवक्षणीयः, नच तदभावबोधे तज्ज्ञानहेतुतायां तादृशभेदबोधस्यापि यावत्प्रतियोगिज्ञानाधीनत्वेनोक्तखण्डनं सावकाशमिति वाच्यम्; तादृशभेदबोधार्थं यावत्प्रतियोगिज्ञानस्य स्मृतित्वेनैवापेक्षणीयत्वात्तस्य च सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या सौलभ्यादिति प्राचीनमतमनुसरन्तीं शङ्कां निराचष्टे नचेति । **एकं प्रमेयं प्रत्यक्षयतः = प्रमेयवदितिज्ञानवतः । सार्वज्ञ्यं = सर्वसंशयविरोधिज्ञानम् । अस्मच्चेतसि विपरिवर्तते = अस्मदीयमानसबोधविषयः,**

भारती

के ज्ञान का प्रत्यक्ष हो नहीं सकता, अनुमान एवं अर्थापत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि असर्वज्ञ पुरुष सर्वत्र लिङ्ग तथा अनुपद्यमानता का ज्ञान नहीं कर सकता । शब्द प्रमाण से भी परकीय ज्ञान (स्मृति) को नहीं जान सकते, क्योंकि सर्वत्र शब्द का प्रयोग नहीं होता । उपमानादि प्रमाणों का न होना स्पष्ट ही है, क्योंकि उपमानादि तो शक्ति के ग्राहक होते हैं प्रकृत में शक्ति ग्रह नहीं करना है, अपितु एक पुरुष के स्मृति व्यक्ति को जानकर तदन्यत्व का ज्ञान अन्य पुरुष की स्मृति में करना है । अतः सम्पूर्ण स्मृति व्यक्तियों से भिन्नत्व (भेद) का ज्ञान प्रमा में कैसे होगा । अर्थात् नहीं हो सकता है । ऐसी स्थिति में स्मृत्यन्यत्व का ज्ञान न होने से तत्त्वानुभूति प्रमा यह प्रमा का लक्षण असिद्ध ही है ।

यदि कहें कि स्वकीय स्मृति का प्रत्यक्ष (मानस प्रत्यक्ष) करने वाला पुरुष इसी काल में स्मृतित्व रूप सामान्यलक्षणा अलौकिक सन्निकर्ष के द्वारा स्मृतित्वेनरूपेण सभी कालों में सभी पुरुषों से सम्बद्ध सम्पूर्ण स्मृति व्यक्तियों का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से कर लेगा ।

जैसे कि व्याप्तिग्रहण काल में ही धूमत्वादिसामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) के द्वारा सम्पूर्ण व्याप्य (धूमादि) व्यापक (वह्नि आदि) व्यक्तियों का प्रत्यक्ष कर लेता है । तो यह कहना ठीक नहीं है । क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक दोनों में ही दोष विद्यमान है । दोष यह है कि सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) मानने पर ''प्रमेयवत्'' इस प्रकार एक प्रमेय का प्रत्यक्ष करने वाले पुरुष को इसी काल में प्रमेयत्व रूप सामान्य प्रत्यासत्ति के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का ही प्रत्यक्ष हो जाएगा, और यदि आप स्वीकार करें कि ''हमें उक्तरूप से समस्त विश्व का ज्ञान है'' तो आप सर्वज्ञ हो जायेंगे, किन्तु हम आप की उस सर्वज्ञता का तभी विश्वास

शारदा

तादृशसार्वज्ञ्यवतः 'परकीयज्ञानविषयो घटो नवे'ति संशयो न स्यादिति यावत् , तादृशसंशयं प्रति घटत्वप्रकारकनिश्चयस्यैव विरोधित्वात् 'प्रमेयव'दिति ज्ञाने च प्रमेयत्वेन रूपेण घटत्वस्य मतुपोल्लिख्यमानघटानुयोगिकवैशिष्ट्यप्रतियोगितया भासमानत्वेन भासमानवैशिष्ट्यीयभासमानप्रतियोगितात्मकप्रकारतायास्तत्राक्षतत्वेन तादृशज्ञानस्यापि घटत्वप्रकारताकनिश्चयत्वेनोक्तसंशयविरोधितायाः सम्भवात् । एवं सामान्यज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वे तदनन्तरं 'इमामेव व्यक्तिं जानामि, न त्वन्या'मित्यनुभवविरोधमपि वदन्ति। व्याप्तिग्रहादिकं त्वन्यथैवोपपद्यते इत्यन्यत्र निरूपितम् । अधिकं त्वनुमानखण्डनशारदायां वक्ष्यते । ननु प्रतियोगिविशेषिताभावज्ञानं प्रति यावत्प्रतियोगिज्ञानत्वेन हेतुतायां गौरवेण मानाभावेन च प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्यैव हेतुतया न स्मृतिसामान्यान्योन्याभावप्रतीत्यसम्भव इति चेन्न; स्मृतिसामान्यान्योन्याभावस्य दुर्वचत्वात् , तथाहि– अनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितयादृशभेदत्वावच्छिन्नप्रकारताकनिश्चयत्वमभेदसम्बन्धावच्छिन्नस्मृतित्वावच्छिन्नप्रकारताकानाहार्यबुद्धित्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशभेदत्वावच्छिन्नाश्रयत्वं स्मृतिभिन्नत्वम्, अभेदस्य सम्बन्धत्वानभ्युपगमे सम्बन्धानवच्छिन्नत्वमेव प्रकारतायामुपादेयमिति तावदयुक्तम् ; अप्रामाण्यग्रहस्याप्रामाण्यग्रहास्कन्दितस्याकिञ्चित्करत्वेन तत्राप्यप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वस्य निवेश्यतया तद्घटकीभूताप्रामाण्यग्रहस्याप्यप्रामाण्यग्रहास्कन्दितस्याकिञ्चित्करतया तत्राप्यप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वस्य निवेशेऽनवस्थानात् । स्मृतिभेदनिश्चये सत्यपि यद्यद्प्रामाण्यज्ञानव्यक्तिसत्त्वे स्मृत्यभेदबुद्धिर्न प्रतिबध्यते तत्तद्व्यक्तिविरहकूटविशिष्टत्वनिवेशे तादृशव्यक्तीनामानन्त्यादसर्वज्ञदुर्ग्रहत्वप्रसङ्गात् । अनाहार्यत्वस्याहार्येऽपि यत्किञ्चिदाहार्यभेदादिकमादाय सत्त्वेन तादृशनिश्चयत्वस्य प्रतिबन्धकत्वातिरिक्तवृत्तित्वाच्च । तत्तदिच्छाविरहकूटवैशिष्ट्यनिवेशे चेच्छाव्यक्तीनामानन्त्येनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वमेव । प्रकारतायामिच्छाप्रयोज्यत्वाभावनिवेशेऽपि विशेषोभयाभावादिकमादाय दोष एव । इच्छाप्रयोज्यत्वत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोक्तावपि प्रतियोगितायां तादृशधर्मावच्छिन्नत्वघटोभयाभावं, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकं 'इच्छाप्रयोज्यत्वत्वेन घटो नास्ती'त्यभावञ्चादाय दोषतादवस्थ्यमेव । अथेच्छाप्रयोज्यत्वत्वगतैकत्ववृत्तिप्रतियोगिताकाभाववत्त्वं विवक्षणीयम् प्रतियोगितायामेकत्ववृत्तित्वञ्च स्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वस्वनिरूपकानुयोगितानिरूपितनिरूपकतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-

राजहंसः

स्मृत्यन्यत्वखण्डनशारदायां राजहंसः

स्वनिरूपकानुयोगितानिरूपितनिरूपकतेति । अभावनिष्ठानुयोगितानिरूपितनिरूपकता प्रतियोगिन्येवात्र द्रष्टव्या न तु प्रतियोगिताव्यधिकरणावच्छेदकीभूतधर्माश्रये ।

भारती

करेंगे यदि आप बतावें कि मेरे चिन्तन (मानसज्ञान) का विषय क्या है । (किञ्च सर्वज्ञता स्वीकार करने पर ''परकीय ज्ञानविषयों घटो नवा'' यह संशय नहीं होगा, एवं ''इमामेव व्यक्तिं जानामि न त्वन्याम्'' इस अनुभव का विरोध भी उपस्थित होगा ।)

शारदा

कपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वाभ्याम्। घटत्वेनेच्छाप्रयोज्यत्वाभावादिवारणायाद्यः सम्बन्धः। इच्छाप्रयोज्यत्वत्वेन घटाभाववारणाय द्वितीय इति चेन्न; इच्छाप्रयोज्यत्वत्वघटत्वाभ्यामिच्छाप्रयोज्यत्वाभावमिच्छाप्रयोज्यत्वत्वेनेच्छाप्रयोज्यत्वघटोभयाभावञ्चादाय तथापि दोषात्, इच्छाप्रयोज्यत्वत्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकत्वप्रतियोगिकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वस्येच्छाप्रयोज्यत्वत्वगतैकत्वे निराबाधत्वात् ।

नचोक्तसम्बन्धद्वयघटिका पर्याप्तिरवच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका, इच्छाप्रयोज्यत्वत्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकताप्रतियोगिकपर्याप्तिस्तु न तथा, अपितु तादृशवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगितावैव, लाघवादिति वाच्यम् ; एवं सति 'तादृशवृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकतावदिच्छाप्रयोज्यत्वत्व'मिति प्रतीत्या पर्याप्तिसंसर्गावच्छिन्नवृत्तिताया वृत्तित्वावच्छिन्नाया एवावगाह्यत्वेनात्माश्रयस्य दुर्वारत्वात् । अतएव-अयं ब्राह्मणएतद्ब्राह्मणवृत्तित्वविशिष्टब्राह्मणत्ववान् एतद्ब्राह्मणवृत्तित्वविशिष्टपदार्थत्ववानित्यादिप्रतीतिविषयीभूतवृत्तिता वृत्तितावच्छिन्नैवेति—निरस्तम् । नचाद्यसम्बन्धे निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वनिष्ठावच्छेदकताभिन्नावच्छेदकतात्वनिष्ठावच्छेदकताभिन्नावच्छेदकताया अनिरूपिका निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वनिष्ठावच्छेदकतायाश्च निरूपिका प्रतियोगिता प्रवेश्या, एवं द्वितीयसम्बन्धेऽपि निरूपकतानिष्ठनिरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताभिन्नावच्छेदकतात्वनिष्ठावच्छेदकताभिन्नावच्छेदकताया अनिरूपिका निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्न निरूपकतानिष्ठावच्छेदकतायाश्च निरूपिका प्रतियोगिता निवेश्या, तथा चोक्ताभावद्वयमादाय न दोषः, इच्छाप्रयोज्यत्वत्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताया उक्तावच्छेदकताभिन्नतादृशवृत्तित्ववैशिष्ट्यनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकत्वादिति साम्प्रतम्; तादृशप्रतियोगितायामपि तादृशवृत्तित्ववैशिष्ट्यनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकत्वघटोभयाभावमादाय निरुक्तानिरूपकत्वस्य सम्पादनीयत्वात्, निरूपकत्वाभावस्य निरूपकत्वत्वेतरधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन विवक्षणेऽपि तादृशधर्मावच्छिन्नत्वघटोभयाभावं प्रतियोगितायामादाय निरूपकत्वत्वेन घटाभावादिकञ्चादायातिप्रसङ्ग एवेति तत्तद्वारकविशेषणानां प्रक्षेपस्यावश्यकत्वे निर्दुष्टलक्षणस्य पुरुषायुषैरपि ज्ञातुमशक्यत्वमेव । नचानाहार्यबुद्धित्वस्थानेऽनुमितित्वमेव प्रवेश्यम् आहार्यज्ञानस्य प्रत्यक्षात्मकत्वनियतत्वादिति वदितुं युक्तम् ; अत्यन्तासत्यपीति न्यायेन शाब्दस्याप्याहार्यत्वोपगमेनाहार्यज्ञानस्य प्रत्यक्षात्मकत्वनियतेरप्रामाणिकत्वात्, कथमपि भवदीयश्रद्धामनुरुध्यानुमितेरनाहार्यत्वनियमोपगमेऽपि तादृशप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वस्योभयाभावादिकमादाय तत्स्मृतिभेदनिश्चयत्वे सम्पादनीयत्वेन तत्स्मृतिभेदस्य सङ्ग्रहप्रसङ्गात्, एवं व्यापकत्वस्यापि तद्वन्निष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावरूपत्वेन तादृशावच्छेदकत्वघटोभयाभावादिकमादाय तत्स्मृतिभेदनिश्चयन्निष्ठप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतायामक्षतत्वेनापि तत्स्मृतिभेदसङ्ग्रहस्य दुर्वारतैव । तत्तद्वारकविशेषणपरम्पराप्रक्षेपे च समुदितलक्षणस्यासर्वज्ञदुर्ज्ञेयतैव ।

शारदा

एतेन—यादृशभेदत्वावच्छिन्नप्रकारतात्वव्यापकं किञ्चिद्रूपावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभेदसम्बन्धावच्छिन्नस्मृतित्वावच्छिन्नप्रकारताकानुमितित्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं तादृशभेदत्वावच्छिन्नाश्रयत्वम् , उभयभेदादिप्रकारतायाः प्रतिबन्धकतानवच्छेदकत्वेन नातिप्रसङ्गः प्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यानवच्छिन्नत्वविवक्षणाच्च न 'घटभेदवान् स्मृतिभेदवान् घटभेदवानय'मिति ज्ञानविशिष्टज्ञानप्रतिबन्धकतामादाय प्रसङ्ग इति—निरस्तम् ; उक्तरीत्या व्यापकताया अतिप्रसक्त्या तत्स्मृतिभेदस्य दुर्वारत्वात् । अतएव-स्मृतित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वं स्मृत्यन्यत्वमिति-निरस्तम्, स्मृतिप्रतियोगिकभेदत्रयात्मककूटस्य स्मृतावपि सद्भावात् स्मृतित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वव्यापककूटत्वावच्छिन्नाधिकरणतानिवेशेऽपि स्मृतिप्रतियोगिकभेदत्रयकूटत्वस्याप्युक्तरीत्या स्मृतित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वव्यापकत्वेनोक्तदोषतादवस्थ्यात्, कूटत्वस्यासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वाच्च । एतेन—स्मृतित्वगतैकत्ववृत्तिप्रतियोगिताकभेदवत्त्वं स्मृतिभिन्नत्वम्, प्रतियोगितायामेकत्ववृत्तित्वञ्च निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकावच्छेदकतात्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकप्रतियोगितानिरूपकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्व स्वनिरूपकानुयोगितानिरूपितनिरूपकतानिष्ठनिरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतानिरूपकावच्छेदकतात्वनिष्ठावच्छेकतानिरूपकप्रतियोगितानिरूपकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्वाभ्यामिति, परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकत्वे तु प्रकारमुद्रयैव निवेश आद्रियतामिति-निरस्तम् ; व्यधिकरणप्रकरणे जगदीशोक्तदिशा पक्षधरमिश्रमतमनुसृत्य व्याधिकरणधर्मावच्छिन्नावच्छेदकताकप्रतियोगिताकभेदोपगमे घटत्वेन स्मृतित्वेन स्मृतिर्नेति भेदस्य दुर्वारत्वात् , नच साक्षात्परम्परासाधारणस्य स्वावच्छेदकत्वस्य संसर्गे विवक्षणीयतया तादृशभेदीयप्रतियोगिताया उक्तसम्बन्धेन घटत्वस्मृतित्वगतद्वित्वे एव सत्त्वेन न तत्सङ्ग्रह इति वाच्यम् ; साक्षात्परम्परासाधारणावच्छेदकतायां प्रमाणस्य दुर्निरूपत्वात्, स्मृतित्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकतामादाय दोषस्य तथापि तादवस्थ्याच्च, इच्छाप्रयोज्यत्वाभावखण्डनन्यायेन च घटत्वस्मृतित्वाभ्यां स्मृतिर्नेति भेदस्य निवारणायेतरवारकपर्याप्तिनिवेशस्यावश्यकत्वेन लक्षणापर्यवसानस्यासर्वज्ञदुर्ज्ञेयतायाश्चापत्तेश्च। रीतिश्चैषाऽभावघटितपरिष्कारमात्रे द्रष्टव्या । न च लक्षणापर्यवसानमेष्टव्यमेव बीजाङ्कुरपरम्पराऽपर्यवसानमिवेति वक्तुं युज्यते, दृष्टान्तवैषम्यात्, बीजाङ्कुरयोः कार्यकारणभावस्याध्यक्षसिद्धतया तत्र कारणपरम्पराक्षेपस्य प्रामाणिकत्वात्, एकेनापरजनने

राजहंसः

प्रकारमुद्रयैवेति । स्मृतित्वगतैकत्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तीयप्रतियोगितानिरूपितावच्छेदकताश्रयावच्छेदकतात्वा श्रयनिरूपकत्वे सति तादृशपर्याप्तीयप्रतियोगितानिरूपितावच्छेदकताश्रयावच्छेदकतात्वाश्रयनिरूपकनिरूपकतानिरूपितानुयोगितानिरूपिका या प्रतियोगिता तन्निरूपकभेदवत्त्वं स्मृतिभिन्नत्वमित्यर्थः ।

शारदा

स्वकारणपरम्परानन्त्यानपेक्षणेन च तत्रानवस्थाया आभासत्वात् । प्रकृते तु प्रत्यक्षानुमानादेर्विविच्य प्रदर्शयितुमशक्यत्वेन प्रमाणापगमस्यानाभासत्वप्रयोजकस्य सद्भावेन लक्षणस्य दुष्टस्य लक्ष्यव्यवस्थापकत्वासम्भवेन चानवस्थाया अनाभासत्वध्रौव्यात्।

एतच्च सर्वमभ्युपेत्यवादेन, वस्तुतस्त्वीदृशपरिष्कारणां शङ्कैव नोत्थातुमीष्टे, आगोपालाङ्गनं जायमानस्य स्मृतिभेदादिप्रत्ययस्यावच्छेदकतादिघटितार्थविषयकत्वस्य केनापि वक्तुमशक्यत्वात् । अतएव शब्दमणौ शब्दसाधुत्वविचारप्रस्तावे 'यज्ञप्रयोगार्हत्वं तत्त्व'मित्याशङ्क्य यज्ञाज्ञानेऽपि साधुत्वव्यवहारादित्यभिधाय तल्लक्षणं निराकृतम् । नचैतादृशलक्षणनिरूपणस्य व्यवहारौपयिकत्वाभावेऽपि व्यावृत्तिप्रतीत्यौपयिकत्वं स्यादेव; स्यादेव यदीदृशलक्षणमजानानो व्यावृत्तिं न प्रतीयादेव । नचोपायस्योपायान्तरादूषकत्वम्, व्यभिचारस्याव्यवहितोत्तरत्वनिवेशेनैव सुपरिहरत्वादिति वक्तव्यम्; तद्विषयकप्रतीत्यविषयस्य तदनात्मकतया पर्यवसानभूमिमनास्कन्दमानस्य च विपक्षव्यावृत्तिप्रमितेरप्रामाणिकतयोपायताया दुरधिगमत्वात् , व्यवहारौपयिकस्य रूपान्तरस्य वक्तव्यत्वापाताच्च ।

अथ तादात्म्यसम्बन्धेन स्मृतित्वविशिष्टप्रतियोगिताकभेदवत्त्वं स्मृतिभिन्नत्वम्, भेदवत्ता च स्वरूपसम्बन्धेन, तेन कालिकसम्बन्धमादाय न दोषः सामान्याभावीयप्रतियोगितायाः प्रतियोगितावच्छेदकानतिरेकः, अभावान्तरीयप्रतियोगितायाश्च तदतिरेक इत्यन्यत्र द्रष्टव्यम्, नचैकत्रावच्छेद्यावच्छेदकभावासम्भवः, विशिष्टशुद्धयोर्भेदमुपेत्य तस्योपपादनीयत्वात् , तथा सति शुद्धस्यावच्छेदकताया अभावनिरूपितत्वविशिष्टस्य चावच्छेद्यताया सम्भवदुक्तिकत्वादिति । अत्र केचित् – विशिष्टशुद्धयोस्तत्तदधिकरणतयोश्चातिरिक्तत्वापेक्षयाऽधिकरणताया एवातिरिक्तत्वं युक्तं लाघवादिति । तच्चिन्त्यम्, विशिष्टशुद्धयोरभेदे तत्तन्निष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणतयोरप्यभेदस्यापाद्यत्वात्, अन्यत्र तथा दृष्टवात् । विशिष्टशुद्धयोर्भेदादेव हि तत्क्षणवृत्तित्वविशिष्टघटविषयकबोधस्य शुद्धघटविषयकबोधाद्वैलक्षण्यं विषयवैलक्षण्यकृतमेवोपपद्यते । यत्तु विषयतावच्छेदकस्यापि वैशिष्ट्यस्य विषयत्वेन विषयवैलक्षण्यकृतवैलक्षण्यस्य ममापि सम्भव इति, तन्न; वैशिष्ट्यविषयकविशृङ्खलप्रतीतितोऽपि विशिष्टविषयकप्रतीतेर्वैलक्षण्यात् । यत्तु– सामान्याभावीयप्रतियोगित्वस्यावच्छेदकात्मकत्वे संयोगेन घटाभावीयप्रतियोगित्वं समवायेन घटाभावीयप्रतियोगित्वभिन्नमिति सकलानुभवसिद्धव्यवहारविलोप इति; तदपि न, तादृशानुभवस्य सकलानुभवसिद्धताया अर्वाग्दृशा वक्तुमनौचित्यात्, पुरुषविशेषस्य तादृशानुभवस्य तदीयव्युत्पत्तिमनुसरतो वस्त्वसाधकत्वात् । अथैवं संयोगेन घटो नास्तीति प्रतीतिसाक्षिकाभावात्समवायेन घटो नास्तीति प्रतीतिसाक्षिकाभावस्य वैलक्षण्यं न स्यात् घटत्वरूपैकप्रतियोगिताकत्वादिति चेन्न; एकस्या एव प्रतियोगितायाः संयोगत्वावच्छिन्नसंसर्गतात्वावच्छिन्नरूपकतानिरूपितनिरूप्यतावत्त्वेन समवायत्वावच्छिन्नसंसर्गतात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितनिरूप्यतावत्त्वेन च भेदसम्भवादिति ।

अत्रेदंवक्तव्यम्–भेदस्तावन्निराकृतोऽधस्तात्, यथा च स्वरूपसम्बन्धेन भेदवत्ताविवक्षापि लक्षणापर्यसानमतिप्रसक्तिं वा नातिक्रामति तथा निवेदितं

नापि तृतीयः, स्मृतित्वरहितत्वं हि स्मृतित्वाभाववत्त्वं वा स्यात् ? स्मृतित्वप्रतियोगिकमाश्रयस्य स्वरूपं वा ? तज्ज्ञानं वा?; न तावदाद्यः, तथाहि–स्मृतित्वान्योन्याभावोऽपि स्मृतित्वाभावो

शारदा

लक्षणसामान्यखण्डनप्रस्तावे । विशिष्टशुद्धयोश्चात्यन्तभेदो वा भेदाभेदो वा, आद्येऽवच्छेद्यावच्छेदकयोर्भेदेन न प्रतियोगितानतिरेकः, द्वितीये तु विरोधेनैकतरस्य कल्पितत्वोपगमावश्यम्भावेऽनिर्वाच्यवादो वा शून्यवादो वा । एवं तादृश-निरूप्यतावत्त्वविशिष्टरूपयोर्भेदाभेदेऽपि द्रष्टव्यमिति । अत्र **अतिप्रसङ्गाद्यनापादकस्य धर्मितावच्छेदकस्याज्ञाने प्रतियोगितायां तदवच्छेकदकतादात्म्यज्ञानासम्भवः, स्मृतिसामान्याभावीयप्रतियोगितात्वस्यातिप्रसङ्गाद्यनापादकत्वेऽपि स्मृतिसामान्याभावज्ञानं विना तज्ज्ञानानुपपत्तिः प्रकारान्तरेण तादृशाभावज्ञाने तु तेनैव परिष्कारोऽपि कर्तुमुचितः आवश्यकत्वादित्यपि** वदन्ति । **अपि च स्मृतिसामान्याभावस्य प्रतियोगिताया उक्तरीत्याऽवच्छभेदकानात्मकत्वे यदि यत्किञ्चित्प्रतियोगिस्वरूपत्वं तदा यत्किञ्चिद्विशेषवत्यपि सामान्याभावधियः प्रमात्वापत्तिः, यावत्प्रतियोगिस्वरूपत्वे तु सामान्याभावबोधे यावत्प्रतियोगिविषयकत्वस्य मानानालिङ्गितस्यापत्तिः । उभयथाप्याधाराधेयभावासङ्गतिश्च, घटाभावे घटो नास्तीत्यादावपि दोषत्वादेवात्माश्रयस्यानवस्थाया वा, रूपभेदेनाप्यऽधाराधेय-भावस्य बहुशो मिरस्तत्वात्, प्रतियोगितात्वस्यातिरिक्तस्योपगमे वा प्रतियोगितातिरिक्तता-विद्वेषस्यानौचित्यात् । यदि च प्रतियोगिताया अतिरिक्तत्वं तदापि तस्या अव्यासज्यवृत्तित्वे यत्किञ्चिद्विशेषवत्यपि सामान्याभावबोधस्य प्रमात्वापत्तिः, व्यासज्यवृत्तित्वे यावदाश्रयप्रत्यक्षं विना तत्प्रत्यक्षासम्भवः, कथञ्चित्सम्भवे वा तदवच्छेदकत्वस्य स्वरूपसम्बन्धात्मकताया उक्तयुक्त्याऽसम्भवेनाखण्डोपाधित्ववादस्य चानिर्वाच्यवादप्रसञ्जकत्वेनानतिरिक्तवृत्तित्वरूप-त्वमेव वाच्यम्, तस्य चोभयाभावादिसाधारणस्य सामान्ये सद्भावेन यत्किञ्चिद्विशेषवत्यपि सामान्याभावप्रतीतेःप्रमात्वापत्तिः, पर्याप्त्यादिनिवेशे चापर्यवसानमेवेत्यलं पल्लवैरिति।**

तज्ज्ञानं = आश्रयमात्रविषयकं ज्ञानम्, अन्तिमकल्पद्वयं प्रभाकरमतानुसारि, यदाह शालिकनाथः-''दृश्ये प्रतियोगिनि या तदेकविषया बुद्धिः सा तदभावो व्यपदिश्यते''

राजहंसः

व्यासज्यवृत्तिधर्मप्रत्यक्षं प्रति यावदाश्रयप्रत्यक्षहेतुतावादस्य फलबलेन सङ्कोचाभ्युपगमवादेनाह **कथञ्चित्सम्भवे वेति ।**

भारती

स्मृतित्वरहितत्व ही स्मृत्यन्यत्व है यह तृतीय कल्प भी युक्त नहीं है, क्योंकि स्मृतित्वरहितत्व क्या है, क्या स्मृतित्वाभाववत्त्व (स्मृतित्व के अभाव का अधिकरण होना) है अथवा स्मृतित्व प्रतियोगिक आश्रय का स्वरूप (स्मृतित्व है प्रतियोगि जिसका ऐसा आश्रय का स्वरूप) है अथवा-स्मृतित्वप्रतियोगिक आश्रयमात्र विषयक ज्ञान है ।

इनमें प्रथमपक्ष ठीक नहीं है । क्योंकि स्मृतित्व का अन्योन्याभाव भी स्मृतित्वाभाव ही

भवत्येव, तद्वत्त्वं स्मृतिष्वप्यस्ति, ततश्च स्मृतेरपि तथात्वापत्तिः तदव्यवच्छेदाद्विशेषणवैयर्थ्यं च, विना विशेष्यमिच्छादावपि प्रसङ्गात्। स्मृतित्वस्य संसर्गाभावस्तत्र विवक्षित इति चेन्न; तथाहि 'स्मृतित्वस्य संसर्गाभाव' इति किमुच्यते? किं स्मृतित्वस्य संसर्गाभावः? उत संसर्गविशिष्टस्य स्मृतित्वस्य ? अथान्यदेव वा किञ्चिदनया वाग्भङ्ग्या विवक्षितम् ? आद्ये स्मृतित्व-संसर्गस्यान्योन्याभावः स्मृतावस्तीति स एव प्रसङ्गः, नहि स्मृतित्वसंसर्गः स्मृतिः। अत एव न द्वितीयोऽपि, नहि संसर्गविशिष्टं

शारदा

इति । तथात्वापत्तिः = अनुभूतित्वापत्तिः । विशेषणं स्मृतित्वाभाववज्ज्ञानत्वरूपानुभूतित्व-घटकस्मृतित्वाभाववत्त्वम् । ननूक्तानुभूतित्वस्यैव वैयर्थ्यं कुतो नोच्यते इत्यत आह विनेति। **विशेष्यं = ज्ञानत्वम् ।** संसर्गाभाव इति । **अत्यन्ताभावस्य सदातनत्वविशिष्टसंसर्गाभाव-रूपत्वादिति भावः ।** संसर्गस्येति । **संसर्गाभावशब्दस्य संसर्गप्रतियोगिकाभावार्थकत्वे संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन प्रकृतेऽत्यन्ताभावसङ्ग्रहेऽप्यन्यत्रध्वंसादिसाधारण्यं न स्यादिति तु नाशङ्कनीयम्; ध्वंससमये तत्पूर्वकालस्य प्रागभावसमये च तदुत्तरकालस्याभावेन तयोरेव तयोः प्रतियोगितावच्छेदकसंसर्गत्वेन चोपपत्तेः, संसर्गाभावस्य भेदभिन्नाभावत्व-रूपत्वेऽपि च भेदघटोभयाभावादिकमादाय स्मृतावतिप्रसङ्गोऽस्त्येव, पर्याप्त्यादिनिवेशस्य प्रतिविहितत्वात् । तस्य प्रकृते तादात्म्यातिरिक्तसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वरूपता-विवक्षायामपि तादात्म्येऽपि तादात्म्यातिरेकस्योभयाभावादिकमादाय सत्त्वाद्दोषतादवस्थ्यम्। अत्यन्ताभावत्वस्याखण्डत्वोपगमेऽपि स्मृतित्वघटोभयाभावादिकमादायातिप्रसङ्गो बोध्यः।**

भारती

है और तद्वत्त्व (स्मृतित्वाभाववत्त्व = स्मृतित्व का अन्योन्याभाव) तो स्मृतियों में भी विद्यमान है ऐसी स्थिति में स्मृतियों में भी अनुभूतित्व की आपत्ति हो जायेगी । अर्थात् स्मृति में अनुभूति का लक्षण चले जाने से स्मृति भी अनुभूति हो जायेगी । फलतः स्मृतित्वाभाववज्ज्ञानत्व रूप अनुभूति के लक्षण में स्मृतित्वाभाववत्त्वरूप विशेषण के द्वारा स्मृति की व्यावृत्ति न होने से वह स्मृतित्वाभाववत्त्व रूप विशेषण व्यर्थ हो जायेगा और यदि उक्त लक्षण में ज्ञानत्व रूप विशेष्य न दें तो इच्छादि में भी लक्षण चला जायेगा । अर्थात् उक्त लक्षण इच्छा में अतिव्याप्त हो जायेगा ।

प्रश्न—स्मृतित्वाभावशब्द से स्मृतित्व का संसर्गाभाव विवक्षित है ।

समाधान—इस प्रकार आप नहीं कह सकते, क्योंकि "स्मृतित्व का संसर्गाभाव" इस वाक्य का क्या अर्थ है । क्या "स्मृतित्व के संसर्ग का अभाव अर्थ है या संसर्गविशिष्ट स्मृतित्व का अभाव । अथवा अन्य ही कुछ इस वाग्भङ्गी (वचन प्रकार) से मिवक्षित है ।

प्रथम पक्ष में—स्मृतित्व के संसर्ग का अन्योन्याभाव स्मृति में भी है अतः पुनः वही अतिव्याप्ति दोष प्राप्त हो गया) क्योंकि स्मृतित्व का संसर्ग (समवाय) ही तो स्मृति नहीं है।

यत्स्मृतित्वं तदेव स्मृतिव्यक्तिः, ततश्च संसर्गविशिष्टस्मृतित्वेन सह स्मृतिव्यक्तेरन्योन्याभावमादायोक्तदोषाऽनिवृत्तिः । एवं तत्र तत्रापि संसर्गविशेषणप्रक्षेपे दोषानिवृत्तिरेव, अनवस्थायां वा पर्यवसानं विशेषणप्रक्षेपपरम्परायाः। न च वाच्यं स्मृतित्वसंसर्गस्य न संसर्गान्तरेण सम्बन्धित्वं किन्तु स्वभावत एव तत्कुतः परम्परा-गवेषणं कार्यमिति; स्मृतित्वसंसर्गस्यान्योन्याभावमादाय कृतस्य प्रसङ्गस्य परिहर्तुं तदानीं सुतरामशक्यत्वात्, संसर्गान्तरविशेष-णवचनस्याधिकार्थापर्यवसायित्वात् ।

किञ्च तदुभयस्वरूपातिरेकं तत्संसर्गस्यामन्यमानेन स्मृतित्वसंसर्गः स्मृतित्वधर्मिस्वरूपं चेत्येतयोः संसर्गात्मकत्वे व्यवस्थाप्यमानेऽनुभूतौ कथं तादृशस्य संसर्गस्य निषेधः?

शारदा

तदुभयेति । **स्मृतित्वसमवायः स्मृतित्वधर्मी चेत्युभयेत्यर्थः** । **तत्संसर्गस्य = स्मृतित्वसमवायप्रतियोगिकसंसर्गस्य** । एतयोरिति । **विनिगमकाभावेन सम्बन्धिद्वयात्मकत्वमेव**

भारती

अतएव 'संसर्ग विशिष्ट स्मृतित्व का अभाव'' यह द्वितीय अर्थ भी नहीं हो सकता, क्योंकि संसर्ग (समवाय) से विशिष्ट स्मृतित्व ही स्मृति नहीं है अत: पुन: स्मृति में ही अतिव्याप्ति हो जायेगी । संसर्ग विशिष्ट स्मृतित्व के साथ स्मृति व्यक्ति का अन्योन्याभाव लेकर अतिव्याप्ति रहेगी ही, निवृत्त नहीं होगी । इसी प्रकार आगे भी संसर्ग रूप विशेषण लगाकर यदि— ''स्मृतित्व के संसर्ग का अभाव संसर्गाभाव पुन: स्मृतित्व के संसर्ग के संसर्ग का संसर्गाभाव'' इस प्रकार कहेंगे तो भी उक्त अतिव्याप्ति दोष रहेगा ही, विशेषण के प्रवेश की परम्परा मानने पर अनवस्था दोष भी आयेगा ।

यदि कहें स्मृतित्व का संसर्ग (समवाय) किसी सम्बन्धान्तर (अन्य सम्बन्ध) से स्मृति सम्बद्ध नहीं है अपि तु स्वभाव (स्वरूप) सम्बन्ध से ही सम्बद्ध है । अत: संसर्ग-परम्परा की गवेषणा न होने से अनवस्था दोष नहीं होगा, तो यह नहीं कह सकते । क्योंकि स्मृतित्व का संसर्ग (समवाय) किसी संसर्गान्तर से सम्बद्ध नहीं है अपितु स्वभाव (स्वरूप) से ही सम्बद्ध है इस कथन से स्मृतित्व के संसर्ग का स्वरूप सम्बन्ध ही सिद्ध होता है और वह स्वरूप संसर्गात्मक (समवायात्मक) प्रतियोगि का रूप ही सिद्ध होगा, न कि उससे अतिरिक्त, ऐसी स्थिति में पुनरपि स्मृतित्वसंसर्ग का अन्योन्याभाव लेकर दिये गये स्मृति में अतिव्याप्ति दोष का निराकरण सुतराम् अशक्य है अर्थात् वह दोष यथावत् स्थित है ।

किञ्च स्मृतित्वसंसर्ग (समवाय) प्रतियोगिक संसर्ग को स्मृतित्वसमवाय और स्मृतित्व का धर्मी स्मृति एतदुभयस्वरूप से अतिरिक्त न मानने वाले आपने विनिगमक के न होने से स्मृतित्वसमवायप्रतियोगिक उस संसर्ग को सम्बन्धिद्वयात्मक मानकर उन दोनों सम्बन्धियों को अर्थात् स्मृतित्वसंसर्ग (समवाय) और स्मृतित्व का धर्मी स्मृति इन दोनों को संसर्गात्मक (स्वरूपात्मक)

किमनुभूतेः स्वरूपं नास्ति? उत स्मृतित्वसंसर्गस्य ?, ततः कस्य निषेधः? अर्थान्तरभूतस्य च संसर्गस्य निषेधे स्मृतावपि प्रसङ्ग-स्तदवस्थः, स्मृतौ तस्यार्थान्तरभूतस्य भवताऽनभ्युपगतमात् । स्वरूपमेव तयोः सम्बन्ध इति हि तत्र भवतोऽभ्युपगमः। अथोच्यते– अनुभूतिस्मृतित्वसंसर्गयोः स्वरूपसम्भवेऽपि न परस्परसम्बद्धबुद्धिजनकत्वं तयोः तादृक्त्वं च यत्र तयोस्तत्र सम्बन्धात्मकत्वं स्वरूपयोरुच्यते इति; मैवम्, विशेषोपसङ्ग्राहकासिद्धौ तस्याप्यनुपपत्तेः। उपसङ्ग्राहकान्तरोक्तौ तत्सम्बन्धेऽपि

शारदा

समवायप्रतियोगिकसंसर्गस्येत्याशयः । अनुभूतेरिति । **स्मृतित्वेनापाद्यमानाया इति शेषः। अतएव स्मृतिस्वरूपञ्चेत्यनुक्त्वा स्मृतित्वधर्मिस्वरूपं चेत्युक्तम्** । भवतेति । **सम्बन्धानवस्थापत्तिभीरुणेत्यर्थः । सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्टबुद्धिजनकत्वं स्वरूपसम्बन्धत्वं नतु स्वरूपत्वमात्रं येन यत्र क्वचन स्यादित्याशयेनाशङ्कते** अथेति । **उपधानस्य भ्रममादायातिव्यापकत्वेन प्रमात्वविवक्षणेऽप्यव्यापकत्वेन च जनकतापदेना-विवक्षणीयत्वाद्योग्यतायाश्च तदवच्छेदकं विना सर्वत्र दुर्ग्रहत्वान्नोक्तस्वरूपसम्बन्धत्वं युक्तमित्याह** विशेषोपसङ्ग्राहकेति । **उक्तजनकताश्रययावद्व्यक्त्यनुगमकरूपेत्यर्थः । तस्य = उक्तजनकत्वस्य । अनुपपत्तेः = लक्ष्यमात्रसाधारण्यानुपपत्तेः । स्मृतित्वसमवायविशिष्ट-धीत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकतातिरिक्तवृत्त्यपि स्मृतित्वप्रतियोगिकसमवायत्वं स्मृतित्वं च न समवायस्मृत्युभयसाधारणम्, उभयत्वमन्यतरत्वं वा तदुभयसाधारणमपि नोक्तजनकतावच्छेदकम्, नवैकभेदविशिष्टापरभेदवद्भेदात्मकमन्यतरत्वमुभयाभावादि-कमादायानतिप्रसक्तम्, न च तदखण्डम्; अननुभवात्, धूमलिङ्गकालोकलिङ्गकपरामर्श-योर्व्यभिचारवारणाय जन्यतावच्छेदककोटावव्यवहितोत्तरत्वनिवेशस्य तार्किकाणामसाङ्गत्या-**

राजहंसः

तदुभयसाधारणमपि नोक्तजनकतावच्छेदकमिति । प्रत्येकरूपेणापि योग्यताव्यवहार-सद्भावादिति भावः । **अपर्यवसानमवसेयमिति** ।

भारती

ही व्यवस्थित कर दिया, ऐसी स्थिति में अनुभूति में तादृश संसर्ग अर्थात् उस स्वरूपात्मक संसर्ग का निषेध कैसे करेंगे । क्या अनुभूति का स्वरूप नहीं है ? या स्मृतित्वसंसर्ग का स्वरूप नहीं है ? जब दोनों का ही स्वरूप है ही, तब निषेध किसका करेंगे ।

यदि कहें अर्थान्तरभूत (स्वरूप से अतिरिक्त) संसर्ग का निषेध करेंगे तो अर्थान्तरभूतसंसर्ग का निषेध तो स्मृति में भी हो सकता है, क्योंकि सम्बन्धों की अनवस्थापत्ति के भय से आपने स्मृति में अर्थान्तरभूत (स्वरूप से अतिरिक्त) संसर्ग को नहीं माना है । स्वरूप ही उन दोनों (स्मृतित्वसमवाय और स्मृतित्व धर्मी) का सम्बन्ध है यही आपका सिद्धान्त है ।

प्रश्न—स्वरूपमात्र को सम्बन्ध नहीं कहते, अपितु जहाँ जिन दो स्वरूपों में सम्बन्धान्तर

प्रसङ्गेनापरापरोपसङ्ग्राहकगवेषणायामनवस्थापातात्; एतावतापि चानुभूतिस्वरूपे कस्य निषेधो वर्णितः स्यात्। 'स्मृतित्वसंसर्गानुभूती

शारदा

पत्तेश्च। ननूक्तजनकतावच्छेदकधर्मवत्त्वमेव लक्षणमुचितम्, प्रत्येकं स्मृतित्वादिकमादाय तत्समन्वयात्, कथमन्यथोभयकोट्युपस्थापकतावच्छेदकरूपवत्त्वादेः सव्यभिचारादिलक्षणता मण्यादावुक्ता सङ्गच्छेतेति चेत्तत्रापि प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तेः सावसरत्वात्। अभ्युपेत्याप्याह उपसङ्ग्राहकेति। **अन्तरपदं सम्पातायातम्। समवायत्वान्यतरत्वादेः स्वरूपसम्बन्धेन वृत्तिमत्त्वात् स्मृतित्वस्य समवायेन वृत्तावपि तस्य स्वरूपसम्बन्धेनैव वृत्तेः, विशिष्टधीजनकतावच्छेदकरूपान्तराणां वक्तव्यत्वाज्जनकताया अवच्छिन्नत्वनियमात् तेषामपि च स्वरूपेणैव वृत्तेर्वक्तव्यत्वादननुभूयमानधर्ममालोपगमापत्तिः। एवं जनकतायामवच्छेद्यतायाःस्मृतित्वादाववच्छेदकतायाश्च स्वरूपेणैव सम्बद्धत्वात्तत्राप्यपर्यवसानमवसेयम्।**

राजहंसः

स्वरूपसम्बन्धनिराकरणमधिकृत्याधिकं 'न तु रजतत्वमात्रे, तस्यान्यत्र सत्त्वा'दिति खण्डनपङ्क्तिशारदायां लक्षणप्रयोजनखण्डने निरूपितम्।

भारती

के बिना विशिष्ट बुद्धिजनकता हो उन दो स्वरूपों को सम्बन्ध कहते हैं। अनुभूति एवं स्मृतित्वसमवाय के स्वरूप होते हुए भी उन दोनों के स्वरूपों में परस्पर सम्बद्ध बुद्धिजनकत्व (परस्पर विशिष्टबुद्धिजनकत्व) नहीं है अतः वे दोनों स्वरूप सम्बन्ध नहीं कहे जाते।

समाधान—विशिष्टबुद्धिजनक यावत्स्वरूपव्यक्तियों का अनुगमक अर्थात् विशिष्टबुद्धिजनकतावच्छेक धर्म के निश्चय हुए बिना विशिष्ट बुद्धिजनकता का निश्चय भी नहीं हो सकता।

(तात्पर्य यह है कि अन्यूनानतिरिक्तवृत्ति धर्म के ही अवच्छेदक होने से स्मृतित्व प्रतियोगिसमवायत्व एवं स्मृतित्व धर्म भी विशिष्टबुद्धिजनकता के अवच्छेदक नहीं हो सकते, क्योंकि वे दोनों धर्म—स्मृतित्वसमवायविशिष्टधीत्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपिताजनकता से अनतिरिक्त वृत्ति होने पर भी समवाय स्मृति उभयसाधारण न होने अन्यूनवृत्ति नहीं है। ऐसी स्थिति में उन दो के स्वरूपों को भी सम्बन्ध (संसर्ग) कैसे कहेंगे।)

यदि कहें कि उक्त दोनों धर्मों का जनकता निश्चायकअनुगमक धर्म—समवायत्वान्यतरत्वादि की कल्पना करेंगे। तो इस प्रकार उपसंग्राहक (अनुगमक) की कल्पना भी निर्दोष नहीं है क्योंकि उसके लिए भी स्वरूपसम्बन्ध ही कहना होगा और उसके स्वरूप में सम्बन्धत्व के लिए पुनः तादृशजनकतावच्छेदकान्तरधर्म की कल्पना करनी ही होगी, ऐसी स्थिति उत्तरोत्तर अनेक धर्मों की कल्पना करने पर अनवस्था हो जायेगी।

किञ्च इस प्रकार कल्पना करने पर भी अनुभूति के स्वरूप में किसका निषेध वर्णित होगा।

सम्बद्धे' इत्येवंरूपबुद्धिजनकत्वस्येति चेन्न, भ्रान्त्यात्मिकाया ईदृशबुद्धेर्जनकत्वस्य वारयितुमशक्यत्वात् । यथार्थाया इति चेत्, ईदृशबुद्धेर्यथार्थाया यदि सत्त्वमभ्युपैषि तदानुभूतौ स्मृतित्वप्रसङ्गः, अथ नाभ्युपैषि, किं प्रति तस्या जनकत्वाभावो निरूप्यः?। अथात्यन्तासतीमेतादृशबुद्धि प्रति जनकत्वाभावावधारणमनुभूतेरभ्युपैषि तदा स्मृतावपि प्रसङ्गः, यावत्यस्तद्बुद्धयस्तत्र जायन्ते

शारदा

भ्रान्तीति । **स्मृतित्वानुभूतित्वयोर्विरोधानुपस्थितिदशायामित्यादिः । बुद्धेर्जनकत्वस्य = बुद्धिंनिरूपितजनकत्वस्य ।** प्रसङ्ग इति । **इदमुपलक्षणमात्माश्रयस्यापि, प्रमात्वलक्षणे प्रमात्वप्रवेशात् । एतेन सम्बन्धान्तरमन्तरेण स्मृतित्वसंसर्गवैशिष्ट्यप्रमितिजनकत्वाभाववज्ज्ञानत्वमेवानुभवत्वम्, तादृशप्रमितिश्च विशेष्यतया स्मृतौ प्रसिद्धैवेति नाप्रसिद्धप्रतियोगिकत्वमिति निरस्तम्, स्वं न स्वीयमित्यनुभवबाधेन स्वरूपस्य सम्बन्धताया बहुशोऽपहस्तिततत्वाच्च, तादृशजनकत्वघटोभयाभावादिकमादाय स्मृतावतिप्रसङ्गेनोदीरितरीतेरत्रापि सावसरत्वाच्चेति ।** किं प्रतीति । **किन्निरूपितजनकत्वस्याभावोऽनुभूतौ प्रत्येतव्यः, 'वस्तुनः प्रतियोगिते'ति वदद्भिरप्रसिद्धप्रतियोगिकाभावानभ्युपगमात् । तदभ्युपगमवादिमतेऽप्याह** अथेति । **तद्बुद्धयः = स्मृतित्वसंसर्गवैशिष्ट्यबुद्धयः । तत्र =**

भारती

यदि कहें कि—''स्मृतित्वसंसर्ग (समवाय) अनुभूती सम्बद्धे'' (स्मृतित्वसमवाय और अनुभूति दोनों सम्बद्ध है) इस प्रकार से परस्परविशिष्टबुद्धिजनकता का निषेध करेंगे । तो आपका यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि स्मृतित्वअनुभूतित्व के विरोध की अनुपस्थिति (अस्फुरण) दशा में किसी को 'स्मृतित्वसंसर्गानुभूती सम्बद्धे'' इस प्रकार भ्रमात्मक बुद्धि हो सकती, ऐसी स्थिति के उक्त भ्रमात्मक बुद्धि की जनकता का अनुभूति में निषेध नहीं कर सकते ।

यदि कहें कि यथार्थ उक्त बुद्धि की जनकता का निषेध अनुभूति में करेंगे, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यदि आप स्मृतित्व समवायानुभूती सम्बद्धे'' इस प्रकार यथार्थ बुद्धि की सत्ता मानते हैं तब तो अनुभूति में स्मृतित्वसमवाय के यथार्थ रूप से रहने से अनुभूति में स्मृतित्व भी रह ही गया, फिर निषेध कैसा । किञ्च इस पक्ष में यथार्थत्व के प्रमात्वरूप होने से प्रमात्व के लक्षण में प्रमात्व का प्रवेश होने से आत्माश्रय दोष भी है ।

यदि आप ''स्मृतित्वसमवायानुभूती सम्बद्धे'' इस प्रकार यथार्थबुद्धि की सत्ता ही नहीं मानते, तो किसकी जनकता का अभाव (निषेध) अनुभूति में कहेंगे । (अर्थात् जब जन्य पदार्थ ही नहीं है तो उसकी जनकता सुतरां प्राप्त नहीं है । फिर निषेध कैसा । अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभाव तार्किक नहीं मानते ।

यदि अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभाव मानने वालों के मत से—अत्यन्त असत् तादृशबुद्धि (स्मृतित्वसंसर्गानुभूती सम्बद्धे) की जनकता के अभाव (निषेध) का निश्चय अनुभूति में

तदधिकां तादृशबुद्धिमत्यन्तासती प्रत्यजनकत्वस्य स्मृतावपि सम्भवात् । सर्वामेव तादृशबुद्धिं प्रत्यजनकत्वमनुभूतेर्नत्वेवं स्मृतेरिति चेन्नः सर्वतद्व्यक्तिप्रमित्यसम्भवात् ।

किञ्च 'सर्वा' मिति कोऽर्थः ? किमसतीं सर्वाम् ? उत सतीम् ? उत सतीमसतीं चेत्यभुयीं प्रत्यजनकत्वम् ? आद्ये द्वितीये च स्मृतावपि तदजनकत्वमस्त्येव,

---

शारदा

स्मृतौ । तादृशबुद्धिं = उक्तवैशिष्ट्यबुद्धिं । सर्वेति । **प्रतियोगिधीनियामकसामग्र्या एवाभावबुद्धौ प्रतियोगिभाननियामकत्वमितिमते त्वर्वाग्दृशस्तादृशसामग्र्यसम्भव एव द्रष्टव्यः । ननु सम्बन्धान्तरमन्तरेण तादृशबुद्धित्वव्यापकजन्यतानिरूपितजनकताविवक्षायां नायं दोषः, साधारणकारणेष्वतिव्याप्तिवारणाय तु जन्यतायां तादृशबुद्धित्वावच्छिन्नत्वमप्युच्यता-मित्यतआह** किञ्चेति । **असतीं = अलीकामनुभूतिविशेष्यकतादृशवैशिष्ट्यप्रमाम् । तथाचासत्तादृशधीत्वव्यापकत्वं विवक्षितं किमिति विकल्पार्थः । एवमग्रेऽपि । सतीं = अनलीकां स्मृतिविशेष्यकतादृशवैशिष्ट्यप्रमाम्** । अपीति । **अप्रसिद्धप्रतियोगिकाभाव-मभ्युपेत्यासज्जनकत्वाभावो यथाऽनुभूतौ वाच्यः, तथा स्मृतावपीत्यर्थः । नन्वाद्यपक्षे**

भारती

स्वीकार करें तो तादृशबुद्धि की जनकता का निषेध स्मृति में प्राप्त है, क्योंकि जितनी स्मृतित्वसंसर्गवैशिष्ट्यबुद्धियाँ स्मृति में उत्पन्न होती हैं अर्थात् जिन-जिन स्मृतित्व संसर्ग वैशिष्ट्यबुद्धियों की जनकता स्मृति में मानी जाती हैं उनसे अतिरिक्त अत्यन्त असत् उक्त वैशिष्ट्यबुद्धि की जनकता का अभाव (निषेध) तो स्मृति में रहेगा ही । अतः स्मृति में अनुभूति के लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न—समस्त उक्तविशिष्ट बुद्धियों की जनकता का अभाव (निषेध) अनुभूति में कहेंगे और समस्त उक्तविशिष्टबुद्धि की जनकता का अभाव स्मृति में नहीं है अतः अतिव्याप्ति न होगी ।

समाधान—सम्पूर्ण तद्व्यक्तियों (उक्तविशिष्टबुद्धिव्यक्तियों) की प्रमिति ही होना सम्भव नहीं है अतः प्रतियोगिज्ञान के बिना उनका निषेध कैसे होगा । (तात्पर्य यह है अभाव ज्ञान में प्रतियोगि ज्ञान अपेक्षित होता है स्थूलदृष्टिपुरुष के पास समस्त उक्तविशिष्टबुद्धिरूप प्रतियोगिभान की सामग्री उपस्थित नहीं है अतः प्रतियोगि ज्ञान न होने से उन सबका निषेध नहीं किया जा सकता है ।)

किञ्च ''सर्वामेव तादृशबुद्धिं प्रत्यजनकत्वमनुभूतेः'' इस वाक्य में ''सर्वाम्'' का क्या अर्थ है । क्या असती सम्पूर्ण, या सती सम्पूर्ण, अथवा सती असती उभय के प्रति जनकता का अभाव । यदि ''सम्पूर्ण असती तादृश विशिष्ट बुद्धि की जनकता का अभाव अनुभूति में'' यह प्रथम पक्ष मानें, या सम्पूर्ण सती तादृशविशिष्ट बुद्धि की जनकता का अभाव अनुभूति में है'' यह द्वितीय पक्ष मानें तो, तादृश जनकता का अभाव स्मृति में भी विद्यमान है ही । (जैसे अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभाव मानकर अनुभूति में असत् तादृशविशिष्ट बुद्धि की जनकता का

नहि 'स्मृतित्वसंसर्गस्मृती सम्बद्धे' इति यावत्यः स्मृतिव्यक्तिषु बुद्धय उत्पद्यन्ते ताः प्रति प्रत्येकं स्मृतिव्यक्तिषु जनकत्वमस्ति। काञ्चित्सत्यां सतीं प्रति च तदजनकत्वं प्रागेव दूषितम्। तृतीये च नानुभूतावपि तदजनकत्वं, सत्यासत्यतादृशबुद्धेर्भावेनाभावेन च सतीमसतीं प्रत्यजनकत्वस्यासम्भवादिति।

शारदा

एवं सम्भवेऽपि द्वितीये कथमित्यतआह नहीति। **स्मृतिव्यक्तिषु = स्मृतिव्यक्तिविशेष्यिकाः। न यावत्सत्स्मृतित्वसंसर्गवैशिष्ट्यधीजनकत्वं विवक्षितं नवा सत्तादृशधीत्वव्यापकजन्यताकजनकत्व येनासम्भवः सम्भवेत्, अपितु सत्तादृशधीत्वावच्छिन्नजन्यताकजनकत्वमेवेत्यत आह** काञ्चिदिति। **भ्रमात्मिकाऽपि तादृशधीः सती, तत्त्वावच्छिन्नजनकता चानुभूतावपीत्यतः** सत्यामिति। **प्रमामित्यर्थः तदजनकत्वं = अनुभूतेरजनकत्वम्।** प्रागेवेति। **''ईदृशबुद्धेर्यथार्थाया'' इत्यादिनेत्यर्थः। नच स्मृतिविशेष्यिकैव तादृशधीः प्रमा, तत्त्वावच्छिन्नजनकत्वाभावश्चानुभूतौ सुलभ इति देश्यम्; दत्तोत्तरत्वात्। अपिशब्दोऽप्रसिद्धप्रतियोगिकाभावानभ्युपगन्तृपक्षे स्मृतिं दृष्टान्तीकर्तुम्, सदसदुभयनिरूपितजनकत्वाप्रसिद्धेः। अभावेन चेत्यन्तेन सिद्ध्यसिद्धिव्याघातः 'असम्भवा'दित्यत्रहेतुरुक्तः। भ्रमप्रमात्मिकयोस्तादृशबुद्ध्योः सत्त्वे प्रमां प्रति स्मृतेरिव भ्रमं प्रत्यनुभूतेरपि जनकत्वं ध्रुवम्, उभे प्रति तु नोभयोरपि जनकत्वम्। तयोरसत्त्वे तु तन्निरूपितजनकत्वाप्रसिद्ध्यैवाभावोऽप्रसिद्धः, मतान्तरे चानुभूताविव स्मृतावपि स तुल्य इत्यर्थः। सत्या**

भारती

अभाव है उसी प्रकार स्मृति में भी रहेगा।)

क्योंकि ''स्मृतित्वसंसर्गस्मृती सम्बद्धे'' (स्मृतित्वसमवाय और स्मृति सम्बद्ध) इत्याकारक स्मृतिव्यक्तिविशेष्यक जितनी बुद्धियाँ उत्पन्न होती है उन सब के प्रति प्रत्येक स्मृति व्यक्ति जनक नहीं है। किसी यथार्थ सती तादृशविशिष्टबुद्धि की जनकता का अभाव अनुभूति में कहें तो इस पक्ष में पहले दोष दे चुके हैं।

सती असती उभयात्मक तादृशविशिष्टबुद्धि की जनकता का निषेध करेंगे इस तृतीय पक्ष में भी दोष है। कारण कि सदसदुभय निरूपित जनकता अप्रसिद्ध होने से जैसे अप्रसिद्ध प्रतियोगि अभाव न मानने वालों के मत में स्मृति में तादृशबुद्धिजनकता का निषेध नहीं कर सकते वैसे ही अनुभूति में भी उसका निषेध नहीं कर सकते। क्योंकि तादृशबुद्धि यदि सत्या है तो उसकी जनकता का अभाव कैसे, और असत्या है तो निषेध कैसे, सतो और असती दोनों के प्रति जनकता का निषेध करना सम्भव नहीं है। सती असती उभयात्मक तादृश भ्रमप्रमात्मक बुद्धि है तो प्रमा के प्रति स्मृति जैसे जनक है वैसे भ्रम के प्रति अनुभूति भी जनक है दोनों के प्रति तो दोनों में जनकत्व नहीं है। यदि दोनों ही बुद्धियाँ असत् है तो तन्निरूपितजनकत्व के अप्रसिद्ध होने से ही अभाव अप्रसिद्ध है। अप्रसिद्ध प्रतियोगिक अभाव मानने वालों के मत में तो अनुभूति के सदृश स्मृति में भी तुल्य है।

स्यादेतत् स्मृतित्वस्यान्योन्याभावमादाय याऽतिप्रसक्तिर्दर्शिता सा नोपपद्यते, भेदाभेदावादिमते स्मृतित्वभेदाभेदस्य स्मृत्या सहाभ्युपगमात्, ययोर्भेदाभेदस्तयोस्तत्रान्योन्याभावानभ्युपगमात्।

शारदा

इति पृथक् पदं वा षष्ठ्यन्तम्, विद्यमानाया इत्यर्थः ।

भेदाभेदवादिमते इति । **भेदाभेदवादोऽयं मीमांसकादिसम्मत एकावच्छेदेनेति केचित्, अन्यथाऽवच्छेदकभेदेन तार्किकैरपि तदभ्युपगमेन सिद्धसाधनापत्तेः, द्रव्यत्वघटत्वाभ्यां भेदसत्त्वेऽपि घटः कलश इति सामानाधिकरण्यबुद्ध्यनुत्पत्तेस्तदुपपादकत्वस्य भेदाभेदवादेऽसम्भवापत्तेश्चेति । प्रतीयमानरूपयोरेवान्यतररूपेण भेदस्यापरतररूपेण चाभेदस्य सामानाधिकरण्यप्रयोजकत्वोपगमे घटः कलश' इति सामानाधिकरण्यधियो नापत्तिः, रूपद्वयाप्रतीतेः । नापि सिद्धसाधनम्, अवच्छेदकभेदेनावच्छेद्यभेदस्य तार्किकसम्मतत्वे मूलशाखावच्छिन्नवृक्षयोर्भेदेन संयोगतदभावयोः सामानाधिकरण्यस्यैवाभावेन तयोरव्याप्यवृत्तितोपगमस्यासङ्गतत्वापत्तेः । अतएव नीलो घट इत्यादावुद्देश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकभेदादेव सामानाधिकरण्यमुच्यते तैः नतूद्देश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकरूपाभ्यामुद्देश्यविधेयभेदात् । व्याप्तिपूर्वपक्षप्रकरणे ''मूले वृक्षः कपिसंयोगवान्नेत्यबाधितप्रतीतेस्तदन्योन्याभावस्यापि तत्र सत्त्वात्, नचैवं भेदाभेदः, अवच्छेदकभेदेन तत्सत्त्वाभ्युपगा''दिति मणिकारोक्तिस्त्वभ्युपेत्यवादः, परमताभिप्रायेण वा, प्राचीन लक्षणखण्डनस्य परमतानुसारिणोऽप्यनुवादसम्भवात्, अतएव सिद्धान्ते विशेषव्याप्तिग्रन्थेऽव्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वं मणौ नाङ्गीकृतम्, दीधितिकारैः पुनरव्याप्यवृत्तिमद्भेदस्यैवाव्याप्यवृत्तित्वं समर्थितमित्यन्यदेतत्,** तस्मादवच्छेदकभेदेनैव भेदाभेदवादः, **सति चैवं ''कार्यात्मना तु नानात्वमभेदः कारणात्मना'',**

राजहंसः

पृथक् पदं वेति । विसर्गान्तरमिति शेषः । **तदुपपादकत्वस्येति ।** तदा सामानाधिकरण्यबुद्धिपरामर्शः । **असम्भवापत्तेश्चेति ।** तद्रूपावच्छिन्ने तद्रूपावच्छिन्नस्य सामानाधिकरण्यबुद्धिं प्रति तद्रूपावच्छिन्ने तद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभेदयोः प्रयोजकत्वं न तु किञ्चिद्रूपावच्छिन्ने किञ्चिद्रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभेदयोः, मा भूद् घटः कलश इति धीरिति भावः ।

भारती

प्रश्न—स्मृतित्व का अन्योन्याभाव लेकर स्मृतित्वाभाववत्त्वरूप अनुभूतिलक्षण की स्मृति में जो अतिव्याप्ति दी गई, वह युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि भेदाभेदवादी मीमांसक के मत में धर्मधर्मी का भेदाभेद होने से स्मृतित्व का स्मृति के साथ भेदाभेद ही माना जाता है । और भेदाभेदवादि के मतमें जिन धर्मधर्मीयों का भेदाभेद होता है उनका परस्पर अन्योन्याभाव नहीं माना जाता । (तात्पर्य यह है कि भेद तादात्म्य विरोधी होता है ''घटो न पट'' इत्यादि स्थलों में तादात्म्यविरोधी भेद का नञ के द्वारा अभिलाप (कथन) होता है न कि तादात्म्य सहिष्णु भेद का । अतः स्मृतित्वं न स्मृतिः'' इस प्रकार से स्मृति में स्मृतित्वाभाववत्त्व लेकर अतिव्याप्ति नहीं दे सकते ।)

न; कथं ह्यवधार्यं स्मृतित्वस्य भेदाभेदः स्मृत्या नानुभूत्येति?।

शारदा

''भेदाभेदयोर्हाटकत्वकटकत्वावच्छेदकभेदेन वृत्तिरभ्युपगम्यते'', इति भामती-परिमलादिस्वरसोऽपि । अन्यथा क्लिष्टकल्पनापत्तेः । अतएव ''नह्यत्यन्तमभेदोऽस्ति रूपादिवदिहापि नः । धर्मयोर्भेद इष्टो हि धर्म्यभेदेऽपि नः स्थिते'' इति प्रघट्टके श्लोकवार्तिके ''भावाभावयोरपि स्वरूपेण भेदो धर्मिरूपेण चाभेद'' इति न्यायरत्नाकरेऽप्युक्तम् तेन च दृष्टान्तीभूतरूपादावपि भेदाभेदाववच्छेदकभेदेनैव सूचितौ, रूपादिदार्ष्टान्तिकस्थानीयाभावस्थले वार्तिकेऽपि च ''स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके'' इति तृतीयाऽवच्छिन्नत्वार्थिका प्रयुक्तेति तु मन्तव्यम् । **भेदाभेदः = भेदसमानाधि-करणोऽभेदः। तत्र = भेदाभेदवादिमते । अन्योन्याभावानभ्युपगमात् = तादात्म्यविरो-धिभेदानभ्युपगमात्, तादृशभेदस्यैव नञाभिलापो नतु तादात्म्यसहिष्णोरपि भेदस्य, अतएव घटत्वोपहिते द्रव्यत्वोपहितभेदसद्भावेऽपि घटो द्रव्यं नेति धीर्न प्रमेति लघुचन्द्रिकादावुक्तम्। एवं च स्मृतित्वं न स्मृतिरितिप्रतीतिमादाय स्मृतित्वाभाववत्त्वं न स्मृतौ सङ्गन्तुमुचितमिति भावः** । नानुभूत्येति । **अभेदस्य भेदाक्षेपकत्वं भेदस्यवाऽभेदाक्षेपकत्वमित्यत्र विनिगमनानुपलम्भात् स्मृतित्वभेदस्यानुभूतौ सत्त्वे तदभेदोऽपि किन्न स्यादिति**

राजहंसः

इति तु मन्तव्यमिति । अथ द्रव्यं घट इत्यादौ द्रव्यत्वेनैवाभेदस्य भानम् , घटत्वेनैव च भेदस्येति न वक्तुं शक्यंते, भेदाभेदयोरुभयोरपि प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकरूपद्वयमादायैव भानौचित्यात्, केवलं प्रतियोगितावच्छेदकमनुयोगितावच्छेदकं वाऽऽदाय तयोर्भानस्य श्रद्धातुमयोग्यत्वादिति चेन्न, घटो न पट इत्यादौ भेदभानस्य तादृशधर्मद्वयमादाय दर्शनेऽपि नाऽभेदभानस्य क्वापि तथा दर्शनम्, नीलो घटो द्रव्यं घट इत्यादेः केवलाभेदविषयकत्वाभावेना-नुदाहरणत्वात्, घटो न पट इत्यादावपि केवलस्यैव भेदस्य भानेन भेदाभेदयोर्मिलितयोर्भाने विलक्षणस्यैव कार्यकारणभावस्य वक्तव्यत्वात्, अन्यथाऽन्यत्र केवलभेदस्य भानेनाभेदसहिष्णोस्तस्य भानमेव त्याज्यं स्यात् । एवं च द्रव्यं घट इत्यादौ द्रव्यसामान्यस्यैव भानेन पटादौ घटत्वेन रूपेण घटभेदस्य द्रव्यत्वेन रूपेण च तदभेदस्य भानमिति रीत्या तृतीयमन्तर्भाव्यैव भेदाभेदभाने प्राचां स्वरसवर्णनमात्रमत्र कृतम् । एतेन नीलो घट इत्यत्र गुणगुणिनोर्नीलत्वघटत्वाभ्यामेव भेदाभेदयोर्वाच्यतया प्रतीयमानयो रूपयोरन्यतररूपेण भेदस्यापरतररूपेण चाभेदस्य भानं कथं निर्वाह्यतामिति नाशङ्कनीयम्, तत्र घटसामान्यस्यैव भानेन पीतघटादौ घटत्वेनाभेदस्य नीलत्वेन च भेदस्य भानमिति सम्भवदुक्तिकत्वात्। यदि च प्रतीयमानभिन्नरूपद्वयेनैव भेदभानमभ्युपगमनीयम्, रूपभेदे रूपिभेदभानस्यानुभविकत्वादित्युच्यते, तदा ताभ्यामेव रूपाभ्यामभेदभानस्यानुभव-विरोधेनानभ्युपगमे धर्मिमात्राश्रितोऽभेदो निरवच्छिन्नानुयोगिताप्रतियोगिताको भातु । दर्शितश्चैतद्व्यभिचारखण्डनशारदायाम् । **इति स्मृत्यन्यत्वखण्डनशारदायां राजहंसः।**

भारती

समाधान—स्मृति में ही स्मृतित्व का भेदाभेद है अनुभूति में नहीं, यह निश्चय कैसे किया । (भाव यह कि अभेद भेद का प्रतिक्षेपक (विरोधी) है या भेद अभेद का प्रतिक्षेपक

अनुभूत्या सह तद्विशिष्टप्रमाया अभावादिति चेन्न; किं सत्या वा, किमसत्या वेत्याद्युक्तविकल्पदोषात् । प्रागभावप्रतियोगिन्या इति

शारदा

स्मृताविवानुभूतावपि स्मृतित्वाभावो न स्यादिति भावः । न ब्रूमोऽभेदो भेदं भेदो वाऽभेदमाक्षिपतीति, अपि तु स्मृतिः स्मृतित्वप्रतियोगिकभेदाभेदवती समानविभक्त्यन्तनामद्वयाभिलप्यस्मृतित्वप्रकारकप्रमीयविशेष्यत्वादिति, संयोगेन तद्घटस्तद्घटवानितिधियः प्रभात्ववारणाय विशिष्टधीमात्रे विशेष्ये विशेषणस्य भेदसमानाधिकरणः सम्बन्धो विषयतया कल्प्यते इत्यादेरन्यत्र विस्तर इति नाप्रयोजकत्वम्, नचानुभूतावुक्तविशेष्यत्वं येन सा तादृशभेदाभेदवती स्यादित्याशङ्कते अनुभूत्येति । **तद्विशिष्टप्रमायाः = उक्तहेतुघटकप्रमायाः । अनुभूतिविशेष्यिकायास्तादृशप्रमाया विरहो यद्युच्यते तदा सिद्ध्यसिद्धिव्याघातमाह** किमिति । **न चानुभूतौ विशेष्यतासम्बन्धेन तादृशप्रमायास्तादृशप्रमीयविशेष्यताया वा निषेधे नायं दोष इति देश्यम्; एवं सति**

भारती

इसमें किसी विनिगमना (एकतरपक्षसाधिकायुक्ति) के न होने से स्मृतित्व भेद के अनुभूति में रहने पर स्मृतित्त्व का अभेद भी अनुभूति में क्यों न रहेगा। ऐसी स्थिति में जैसे स्मृति में स्मृतित्व के अभेद के रहने से स्मृतित्व का भेद नहीं रहता है उसी प्रकार अनुभूति में भी अभेद के रहने से स्मृतित्व का अभाव नहीं रहेगा । अत: उक्तलक्षण की अनुभूति में अव्याप्ति हो जायेगी ।)

यदि कहें कि "स्मृतित्वविशिष्टा अनुभूतिः" इत्याकारक प्रमा नहीं होती, अत: निश्चय किया जाता है कि स्मृतित्व का भेदाभेद अनुभूति में नहीं है । (यहाँ स्मृतिः स्मृतित्व-प्रतियोगिकभेदाभेदवती समानविभत्त्यन्तनामद्वयाभिलप्यस्मृतित्वप्रकारकप्रमीयविशेष्यत्वात् इस प्रकारक अनुमान से स्मृति में स्मृतित्व का भेदाभेद सिद्ध होता है । क्योंकि उक्तविशेष्यता रूप हेतु अर्थात् विशेष्यता सम्बन्ध से स्मृतित्वप्रकारकप्रमा स्मृति में है अत: वह प्रमा स्मृति में स्मृतित्व के भेदाभेद की साधिका है । किन्तु अनुभूति में तादृशविशेष्यता अर्थात् विशेष्यता सम्बन्धेन स्मृतित्वप्रकारक प्रमा नहीं है अपितु उक्त प्रमा का अभाव है अत: स्मृतित्व का भेदाभेद अनुभूति में सिद्ध नहीं होता ।) किन्तु पूर्वपक्षी का यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि स्मृतित्वविशिष्टा अनुभूतिः" इत्याकारक प्रमा सिद्ध है या असिद्ध इस प्रकार विकल्प होने से पूर्वपक्ष उभयथा भी दोषग्रस्त ही है । (तात्पर्य यह है कि अनुभूति में स्मृतित्व के भेदाभेद का अभाव सिद्ध करने के लिए पूर्वपक्षी "अनुभूर्तिन स्मृतित्वप्रतियोगिकभेदाभेदवती समानविभक्त्यन्तनामद्वयाभिलप्यस्मृतित्वप्रकारकप्रमीयाविशेष्यत्वाभावात्" इत्याकारक अनुमान करेगा । इस अनुमान में उक्त प्रमादिविशेष्यत्वाभाव अर्थात् विशेष्यता सम्बन्धेन उक्तप्रमा का अभाव हेतु है । अत: पूर्वपक्षी से पूछेंगे कि वह विशेष्यता सम्बन्धेन उक्त प्रमा अनुभूति में प्रसिद्ध है या अप्रसिद्ध, यदि प्रसिद्ध है तो "स्मृतित्ववती अनुभूति इस प्रमा के प्रसिद्ध होने से उसका विषय स्मृतित्व भी अनुभूति में रही गया, तथा च अनुभूति में स्मृतित्वाभाववत्त्व

चेन्न; अनुभूतौ तादृश्याः स्वीकारेणानुभूतेस्तथात्वापातात् । स्मृतिस्मृतित्वयोरन्योन्याभावाभावश्चान्योन्याभावात्माऽनुभूतावपि तुल्यः, नहि स्मृतित्वान्योन्याभावोऽनुभूतिरित्युक्तमावर्तते । इति स्मृत्यन्यत्वखण्डनम् ।

शारदा

तादृशप्रमीयविशेष्यत्वाभाववज्ज्ञानत्वस्यैव प्रमालक्षणघटकतापर्यवसानेनात्माश्रयापत्तेः । उभयभावादिकमादाय स्मृतावपि तादृशविशेष्यत्वाभावसत्त्वाच्च, तद्वारणप्रकाराणां पूर्वं वारणात् । विशिष्टप्रमयैव भेदाभेदसाधनेऽन्योन्याश्रयाच्च । प्रतियोगिन्या इति । **तादृशप्रमाया अनुभूतावभावादित्यनुषज्यते ।** स्वीकारेणेति । **विशेष्यतासम्बन्धेन स्वीकारप्रसङ्गेनेत्यर्थः । अनुत्पत्स्यमानस्य प्रागभावप्रतियोगितायां मानाभावेन तादृशप्रमाया अनुभूतिविशेष्यिकायाः प्रागभावप्रतियोगित्वोपगमेऽनुभूतावपि स्मृतित्वभेदाभेदौ दुर्वारौ, दुःखप्रागभावस्य मोक्षत्ववादस्त्वयुक्त एव केषाञ्चित्तार्किकाणाम्, तस्य प्रतियोगिजनकत्वापत्तेरिति व्यक्तं मणौ, अन्यथाऽत्यन्ताभावस्यैव नामान्तरं तत्स्यादिति भावः । ययोर्भेदाभेदस्तयोरन्योन्याभावस्याभावः पूर्ववादिनोक्तः, तस्याप्यतिप्रसञ्जकत्वमाह** स्मृतीति । **अन्योन्याभावात्यन्ताभावविवक्षायामपि व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकताकाभावमादायातिप्रसङ्गः, तदनवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोक्तावप्यन्योन्याभावत्वेन घटाभावादिकं तदवच्छिन्नत्वघटोभयाभावादिकञ्चादायातिप्रसङ्ग इत्यादिकमुक्तदिशाऽवसेयम् ।** इति खण्डनशारदायां स्मृत्यन्यत्वखण्डनम् ।

भारती

लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी और यदि वह उक्त प्रमा अप्रसिद्ध है तो प्रतियोगि के अप्रसिद्ध होने से उसका अभाव अनुभूति में नहीं रहेगा, तथा च उक्त अनुमान भेदाभेद के अभाव का साधक नहीं होगा । ऐसी स्थिति में साधकाभावादेव अनुभूति में स्मृतित्व का भेदाभेदाभाव सिद्ध न होकर स्मृतित्व का भेदाभेद ही सिद्ध मानना पड़ेगा । इस प्रकार उभय था भी सिद्धि असिद्धि को लेकर व्याघात दोष है ।)

प्रश्न—अनुभूति में विशेष्यता सम्बन्ध से प्रागभावप्रतियोगिनी ''स्मृतित्वविशिष्टा अनुभूति'' इत्याकारक स्मृतित्वप्रकारक प्रमा नहीं है अतः तादृशप्रमा के अभाव से अनुभूति में स्मृतित्व के भेदाभेद का अभाव सिद्ध हो जायेगा ।

समाधान—यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि कदापि उत्पन्न न होने वाले पदार्थ में प्रागभाव की प्रतियोगिता प्रमाणाभावात् नहीं मानी जाती । अतः अनुभूति में तादृशप्रमा को यदि सिद्ध मानते हैं तो उस प्रमा को प्रागभावप्रतियोगिनी भी स्वीकार करना होगा, ऐसी स्थिति में अनुभूति में स्मृतित्व का भेदाभेद भी मानना ही होगा ।

किञ्च जिन दो धर्मधर्मियों का भेदाभेद होता है उन दोनों का परस्पर अन्योन्याभाव नहीं होता यह पूर्वोक्त नियम अतिप्रसञ्जक भी है । क्योंकि स्मृति और स्मृतित्व का भेदाभेद होने से उन दोनों के अन्योन्याभाव का अभाव है और वह अन्योन्याभाव का अभाव (अन्योन्याभाव)

अथ भेदासंसर्गाभावयोर्भेदखण्डनम्

अथ मा भूद्भेदाभेदमादाय परिहारस्तथापि 'इदं तन्न भवति' 'इह तन्नास्ती'ति प्रतीतिसाक्षिक एवान्योन्याभावसंसर्गाभावयोर्भेद

शारदा

भेद इति । **नञः समानविभक्तिकपदोपस्थापितयोर्धर्मिप्रतियोगिनोर्भेदबोधकत्वस्य विभिन्नविभक्त्यन्तपदोपस्थापितयोश्च तयोरेकत्रापरसंसर्गाभावबोधकत्वस्य सर्वसम्प्रतिपन्नत्वात् 'स्मृतित्वं नानुभूता'विति प्रतीतिसिद्धाभावविवक्षायां भेदमादायातिसङ्गो दातुमशक्य इति**

भारती

अन्योन्यरूप ही है तथाच अनुभूति में भी स्मृतित्व के अन्योन्याभाव का अन्योन्याभाव ही है क्योंकि अनुभूति स्मृतित्व के अन्योन्याभाव रूप नहीं है । अत: स्मृतित्व का भेदाभेद अनुभूति में भी सिद्ध होता है ।

(एवं स्मृतित्व के अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव की विवक्षा करने पर भी स्मृतित्वान्योन्याभावो गगनम् उभयम् नास्ति'' इस प्रकार व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक अत्यन्ताभाव लेकर अनुभूति के लक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति रहेगी । यदि व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगि-कताकत्व का कथन करेंगे तो भी अन्योन्याभावत्वेन घटाभावादि अथवा व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नत्व घट उभयाभाव लेकर अतिव्याप्ति रहेगी ।)

अथ भेदसंसर्गाभाव के भेद का खण्डन

प्रश्न—जिन दो धर्मधर्मियों का भेदाभेद होता है उनका परस्पर में अन्योन्याभाव नहीं होता, इस नियम के अनुसार स्मृति में स्मृतित्व का भेदाभेद होने से—स्मृति में स्मृतित्व के अन्योन्याभाव के न रहने से स्मृतित्व अन्योन्याभाव को लेकर स्मृति में ''स्मृतित्वाभावत्त्व'' अनुभव लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं दी जा सकती'' इस प्रकार अतिव्याप्ति का परिहार किया गया था, किन्तु जब उक्त युक्तियों से अनुभूति में स्मृतित्व के भेदाभेद के रहते हुए भी स्मृतित्व का अन्योन्याभाव भी रहता है तो उक्तनियम के खण्डित हो जाने से स्मृति में भी स्मृतित्वभेदाभेद के रहते हुए स्मृतित्वान्योन्याभाव रह सकता है, ऐसी स्थिति में उक्त अतिव्याप्ति का वारण न हो सका ।

अत: भले ही इस प्रकार से भेदाभेद को लेकर अतिव्याप्ति का परिहार न हो, तथापि प्रकारान्तर से परिहार हो सकता है । प्रकारान्तर यह है कि—समानविभक्त्यन्तपदोपस्थापित धर्मि एवं प्रतियोगि के मध्य में नञ् अन्योन्याभाव का बोधक होता है जैसे इदं तन्न भवति । एवं विभिन्नविभक्त्यन्तपदोपस्थापित धर्मि एवं प्रतियोगि के मध्य नञ् संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) का बोधक होता है जैसे ''इह तन्नास्ति'' । अत: इन प्रतीतियों के बल से अन्योन्याभाव तथा संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) का भेद सिद्ध है । प्रकृत में स्मृतित्वम् अनुभूतौ नास्ति'' इस प्रतीति से सिद्ध स्मृतित्व के संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) की विवक्षा होने से स्मृतित्वान्योन्याभाव

इति चेन्न; प्रतियोगिरूपोपाध्यवैचित्र्यादभावे जात्यादिभेदानभ्युपगमाच्चानयोर्भेदबुद्धिरेव प्रामाण्यमनश्नुवाना कूटसाक्षिणीति तदनादरणात् । नच

शारदा

भावः । तादृशप्रतीत्योर्विषयगतवैधर्म्यस्य दुर्निरूपत्वे प्रमात्वस्यासम्भवदुक्तिकत्वेन न वस्तुसाधकत्वम्, अन्यथा प्रतीतिविषयवैलक्षण्ययोः परस्पराश्रितत्वापत्तेरित्याशयेनाह प्रतियोगीति । **प्रतियोगितद्रूपात्मकोपाधीत्यर्थः । घटो न पटो घटे न पट इत्यभावयोर्नप्रतियोगिभेदो न वा प्रतियोगितावच्छेदकधर्मभेद इति कथमभावयोरपि भेदः । नन्वैकघटप्रतियोगिकाभावचतुष्टयस्यैक्यप्रसङ्गान्न प्रतियोगिभेदस्योक्तात्यन्ताभावभेदयोरैक्यप्रसङ्गादेव च न प्रतियोगितावच्छेदकधर्मभेदस्याभावभेदनियामकत्वमुच्यते इति प्रकृते उक्तोपाध्यवैचित्र्यमकिञ्चित्करमित्यत आह** जात्यादिभेदानभ्युपगमाच्चेति । **एवं ह्यभावभेदनियामकत्वं जातिभेदस्य वा, प्रतियोगितावच्छेदकरूपसंसर्गान्यतरभेदस्य वा, अखण्डधर्मभेदस्य वा प्रतियोगिताभेदस्य वा स्यात्, नाद्यः, अभावे** जात्यनभ्युपगमात्, **न द्वितीयः, तादात्म्यसंयोगाद्यात्मकसंसर्गभेदेन भेदात्यन्ताभावयोर्भेदोपपत्तावपि तद्घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रागभावध्वंसयोर्भेदानुपपत्तेः, पूर्वापरकालीनत्वादेः ध्वंसादिप्रतियोगितावच्छेदकताया मानाभावेन भवदीयैः शिरोमण्यादिभिः सामान्याभावग्रन्थेऽ**नभ्युपगमात् । **न च ध्वंसप्रागभावयोरस्तु यथा तथा, भेदात्यन्ताभावयोस्तु भेदः प्रकृतोपयुक्त उक्तरीत्या सम्भवत्येवेति वाच्यम्; तादात्म्येन नायं घट इत्यप्रयोगेन मानाभावेन च तादात्म्ये भेदीयप्रतियोगितावच्छेदकताया नव्यवादादौ गदाधरादिभिर**नभ्युपगमात् । **नापि भेदत्वात्यन्ताभावत्वरूपाखण्डधर्मभेदात्तयोर्भेदः, क्लृप्तातिरिक्तस्यापसिद्धान्तापाते**नानभ्युपगमात् । **तस्य प्रतीतिवैलक्षण्याधीनवैलक्षण्यस्यैव वक्तव्यत्वेनान्योन्याश्रयाच्च ।**

भारती

लेकर स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं दी जा सकती ।

समाधान—अन्योन्याभाव संसर्गाभाव इन दोनों अभावों के भेद का नियामक क्या प्रतियोगीभेद है या प्रतियोगितावच्छेदक धर्मभेद है, अथवा उन अभावों में रहने वाला कोई जातिविशेष है ?

इनमें प्रथम तथा द्वितीय पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि "घटो न पटः" घटे न पटः" इन प्रतीतियों से सिद्ध अभावों में न प्रतियोगि का भेद है और न प्रतियोगीतावच्छेंदक धर्म का ही भेद है ऐसी स्थिति में प्रतियोगि एवं प्रतियोगितावच्छेदक रूप उपाधि का भेद न होने पर उन अभावों का भेद कैसे माना जाय । एवं तृतीय विकल्प भी ठीक नहीं है क्योंकि आपके सिद्धान्त में अभावों में किसी प्रकार का जातिविशेष नहीं माना जाता । तथाच उक्त भेद प्रतीति विषय के अभाव में प्रमाणभूत न होकर मिथ्याभासक होने से अनादरणीय ही है । अर्थात् उक्त प्रतीति प्रमात्मक न होने से भेद साधिका नहीं हो सकती । (यहाँ भेद में अत्यन्ताभाव का भेद मानने पर आत्माश्रय अनवस्था आदि दोष भी आता है ।)

स्वप्रतियोगिसमानकालसमानाधिकरणोऽभावोऽन्योन्याभावः तदन्योन्याभाववांश्च तदभावः संसर्गाभावः;

शारदा

अथास्तु प्रतियोगिताभेदादेव भेदः, तद्भेदश्च संसर्गावच्छिन्नत्वतदनवच्छिन्नरूपविरुद्धधर्माध्यासादेव, यद्यपि गुणो न संयोगीत्यादौ संयोगरूपसंसर्गावच्छिन्नत्वं भेदीयप्रतियोगितायामपि, तथापि विवक्षणीयं संसर्गविधयाऽनवच्छिन्नत्वमक्षतमेव, एवञ्च भेदेऽत्यन्ताभावभेदः संसर्गानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन शक्योऽनुमातुमिति चेन्न; भेदात्यन्ताभावयोर्भेदासिद्धावत्यन्ताभावप्रतियोगितायामपि संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य संसर्गत्वावच्छिन्नावच्छेदकतानिरूपकताभेदस्य वा सद्भावमादाय व्यभिचारस्योद्भावनीयत्वात्, एवञ्चोक्तहेतोर्व्याप्यत्वसिद्धिः साध्यसिद्धिमपेक्षमाणाऽन्योन्याश्रयमपि सावसरयति । परीक्षणीया चानुपदं प्रतियोगितापीति । अत्र भेदेऽत्यन्ताभावभेदोपगमे आत्माश्रयानवस्थादिकं तु स्फुटत्वान्नोक्तम्, विरुद्धधर्माध्यासादपि न भेदात्यन्ताभावभेदसिद्धिरित्याह नचेत्यादिनेति। **ध्वंसप्रागभावयोरपि स्वप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात्समानकालेति । स्वप्रतियोग्यनधिकरणदेशावच्छेदेनात्यन्ताभावस्यापि स्वप्रतियोगिसमानकालिकत्वात् समानाधिकरणेति । ननु प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नस्वप्रतियोगिनिष्ठनिरूपकतानिरूपितसम्बन्धितानिरूपितविशेषणताविशेषावच्छिन्ननिरूपकताश्रयत्वं न विवक्षाक्षमम् घटतादात्म्यवति विशेषणताविशेषेण घटभेदस्यावृत्तेरसम्भवापत्तेः, सम्बन्धितास्थानेऽधिकरणतानिवेशेऽपि तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणताया अप्रसिद्धिनिबन्धन एवासम्भवः । प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वाविवक्षणे च कालिकेन घटाधिकरणे संयोगादिना घटाभावस्य विशेषणताविशेषेण वृत्तेरतिव्याप्तितादवस्थ्यम् । न च तादृशाधिकरणतानिरूपितविशेषणताविशेषावच्छिन्ननिरूपकत्वाभाववान् योयस्तदन्यत्वात्मकं प्रतियोगिव्यधिकरणान्यत्वमेवोक्तदलेन विवक्षणीयम्, भेदस्तु न यत्पदेनोपादेयः, तादात्म्येनाधिकरणत्वाप्रसिद्धेः अत्र च तादात्म्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकतानभ्युपगमेऽपि न हानिरिति–वाच्यम्; संयोगात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तेः, विशेषणतायां निरवच्छिन्नत्वविवक्षणेऽप्यव्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्ननिरूपकताभाववत्त्वेऽपि तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्यैव तत्राव्याप्तिवारणेऽपि चात्माश्रयो दुर्वार एव, भेदघटितत्वात्,**

भारती

प्रश्न—स्वप्रतियोगी के समानकाल एवं समानअधिकरण में रहने वाला अभाव अन्योन्याभाव है, तथा इस प्रकार के अन्योन्याभाव के अभाव वाला अर्थात् अन्योन्याभाव से भिन्न अभाव संसर्गाभाव है । (यहाँ ''तदभाव'' शब्द के अन्तर्गत तत् शब्द प्रतियोगिविशेषपरक है तथा च घटभेदभिन्नो घटाभावो घटसंसर्गाभाव यह अर्थ पर्यवसित होता है । अतः उक्तभेदलक्षण के स्वत्वघटित होने से अननुगत होने से एक भेद से भिन्न द्वितीय भेद के होने पर भी संसर्गाभाव के लक्षण की भेद में अतिव्याप्ति नहीं है ।)

यथासम्भवमात्माश्रयाद्यननुभवस्वभेदाननुगमतत्तदवगमानभ्युपगमानामनुत्तरणीयत्वप्रसङ्गात् ।

शारदा

अन्यादृशभेदस्य तत्रानुप्रवेशे तादृशस्यैवाश्यकत्वात्प्रथममुपस्थितत्वाच्च प्रकृतवैयर्थ्यसम्पादकत्वम्, भेदकूटघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वञ्चेति चेन्न; स्वप्रतियोगिनिष्ठाधिकरणतानिरूपितविशेषणताविशेषावच्छिन्ननिरूपकताविरहस्य विवक्षितत्वात्, एवञ्च भेदस्य कालिकेन स्वप्रतियोगिवृत्तित्वेऽपि न क्षतिः । न च द्वित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदेऽव्याप्तिः तस्य प्रतियोगिन्यपि वृत्तेरिति वाच्यम्; स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपितनिरूपकताया विवक्षणीयत्वात्, तादृश-भेदस्य चातथात्वेनादोषात् । न च सत्तात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः, सत्ता सतीतिप्रतीत्या सत्तायां तदभावस्यासम्भवादिति वाच्यम्, सत्तायामन्यादृशसत्त्वस्य वृत्तावपि प्रतियोगिभूतसत्ताया अवृत्तेः, अन्यथात्माश्रयापत्तेरिति । स्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकत्व, स्वावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपितविशेषणताविशेषावच्छिन्ननिरूपकत्वेति संसर्गद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोगितावच्छेदकाभाववत्त्वमित्याद्यनुगमप्रणाली तु परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकत्वान्नाद्रिता । संयोगादावतिव्याप्तिवारणायाभावपदम् । संयोगादिव्यावृत्तप्रतियोगिताविशेषविवक्षायामपि तादृशनिरूपकताविरहस्य प्रविष्टत्वेनाभावत्वं विकल्प्योपरितनो निरासो नासङ्गतः । तदन्योन्याभाववानिति । **उक्तभेदभिन्न इत्यर्थः । ननूक्तभेदत्वस्य स्वत्वघटितत्वेनाननुगमादेकभेदभेदस्य भेदान्तरे सद्भावमादाय तत्रातिव्याप्तिरित्याशङ्क्य तदभाव इत्यत्र प्रतियोगिविशेषपरं तत्पदमुपात्तम् । तथा च घटभेदभिन्नो घटाभावो घटसंसर्गाभाव इत्यर्थः। घटप्रतियोगिक इत्यभिधाने तु घटसंयोगेऽतिव्याप्तिः ।** यथासम्भवमिति । **अभावत्वस्य भावभिन्नत्वरूपतया भेदे भेदानुप्रवेशेनात्माश्रयः, अभावत्वभेदत्वयोः परस्परघटितत्वेन परस्पराश्रयश्च, भावत्वात्यन्ताभावरूपतायां तु सदातनसंसर्गाभावस्यैवात्यन्ताभावत्वेन**

भारती

समाधान—उक्त लक्षण के अन्तर्गत अभावत्व यदि भावभिन्नत्वरूप है तो भेद में भेद का प्रवेश होने से आत्माश्रय दोष हो जायेगा । अभाव के लक्षण में भेद का प्रवेश, भेद के लक्षण में अभाव का प्रवेश होने से अभावत्व और भेदत्व के परस्पर घटित होने से अन्योन्याश्रय दोष होगा, यदि उक्त लक्षण के अन्तर्गत अभाव भावत्वात्यन्ताभावरूप है तो नित्यसंसर्गाभाव ही अत्यन्ताभाव होता है । इसलिए संसर्गाभावत्व से घटित अत्यन्ताभाव है अत्यन्ताभावत्व से घटित भेद है एवं भेदत्व से घटित संसर्गाभाव है इस प्रकार संसर्गाभावज्ञान के लिए, भेद ज्ञान की, भेद ज्ञान के लिए अत्यन्ताभावज्ञान की एवं अत्यन्ताभाव ज्ञान के लिए संसर्गाभाव ज्ञान की आवश्यकता होने से चक्रकदोष उपस्थित होता है ।

किञ्च संसर्गाभाव में रहने वाले भेद के भेद को न संसर्गाभाव रूप मान सकते हैं और न प्रथम भेद रूप, क्योंकि आधाराधेयभाव तथा प्रतियोगिअनुयोगिभाव भेद में देखा जाता है अभेद में नहीं, यदि अभेद में आधाराधेयभाव तथा प्रतियोगिअनुयोगिभाव मानेंगे तो

शारदा

चक्रकम्; संसर्गाभावत्वस्य स्वघटितात्यन्ताभावत्वघटितभेदत्वघटितत्वात् । नञुल्लेखेन तस्य सखण्डताया एवाधिगमादखण्डत्वस्याप्रामाणिकत्वात् । तस्याखण्डत्वे वा भेदत्वस्य सखण्डताया निर्बीजत्वात् । न च समवायसामानाधिकरण्यान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसत्ताऽभाव एवाभावत्वमिति वाच्यम्, एवं हि सत्ताभावस्याभावत्वं वा व्याहन्येत, आत्माश्रयो वा प्रसज्येत, व्यक्तिद्वयाद्यभ्युपगमेऽन्योन्याश्रयादिकं वापद्येत। पर्याप्त्यादिनिवेशस्य निरस्तत्वेन तादृशसत्ताघटोभयाभावादिकमादायातिप्रसङ्गाच्च । एवमुक्तभेदलक्षणेऽपि तादृशनिरूपकताविरहस्यातिप्रसक्तत्वं द्वित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदेऽव्याप्तिश्चेत्यपि द्रष्टव्यम्, घटत्वरूपयत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकोपादानसम्भवात् । न चाभावत्वमनुयोगिताविशेषः, तथासति तस्य प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वेनाभावप्रतीतेरनुगतत्वं भज्येत जातिमात्रं वा विलुप्येत । विशेषस्य प्रतीतिविशेषसाक्षिकतयाऽभिधानस्यान्योन्याश्रयापत्त्याऽसम्भवितया तस्य दुर्वचत्वाच्च । एवं विशेषणतायां विशेषोऽपि दुर्वच एवेति कालिकविशेषणतया स्वप्रतियोगिवृत्तित्वमादायाव्याप्तिरपि द्रष्टव्या । यथा चाखण्डोपाधितावादो न क्षोदक्षमः, नवा लक्षणान्तरं भेदस्य विचारसहं तथोपपादितं भेदभङ्गे पुरा, चतुर्थपरिच्छेदे चोपपादयिष्यते इति ।
अननुभवेति । **भेदभेदस्य संसर्गाभावनिष्ठस्य न तदात्मकत्वम्, नापि प्रथमभेदात्मकत्वम्, आधाराधेयभावस्य प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य च भेदे एव दृष्टतयाऽभेदे तदुपगमेऽनुभवविरोधात्, भेदमालोपगमस्यापि च तस्या अननुभूयमानतयाऽसम्भवात्, घटो न पट इत्यादिभेदबुद्धेरुक्तलक्षणविषयकत्वाननुभवाच्च । एवं संसर्गाभावबुद्धेरपि। नच न व्यवहारौपयिकमिदं लक्षणमपि तु व्यावृत्त्यौपयिकमिति वाच्यम्; व्यवहारौपयिकस्य लक्षणान्तरस्य वक्तव्यत्वापातात् ।** स्वभेदाननुगमेति । **स्वत्वाननुगमेत्यर्थः । भेदस्य भेदकपरत्वात् । तथाच स्वपदेन घटभेदोपादाने भेदान्तरासङ्ग्रह इति । यद्व्यक्तेः**

भारती

अनुभवविरोध होगा । अतः संसर्गाभाव रूप आधार से एवं प्रथम भेदरूप प्रतियोगि से उसे भिन्न ही मानना होगा इस प्रकार तृतीय भेद की उपस्थिति माननी होती है, आगे भी उस तृतीय भेद को भी भिन्न मानना पड़ेगा अतः चतुर्थ भेद, पुनः आगे पञ्चमभेद, इस प्रकार यह भेदपरम्परा अननुभूयमान होने से अप्रामाणिक है ।

किञ्च उक्तभेदलक्षण के स्वत्वघटित होने से स्वत्व के अननुगत होने से स्वशब्द से घटभेद का उपादान करने पर घटभेद में उक्त लक्षण का समन्वय होगा किन्तु भेदान्तर (पटभेद) का संग्रह नहीं होगा ।

यदि कहें कि लक्ष्य के भेद से लक्षण का भी भेद मान लिया जाय, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि घटभेद पटभेद मठभेद इस प्रकार से प्रातिस्विक रूप से प्रत्येक व्यक्तियों का ग्रहण करना असर्वज्ञपुरुष के द्वारा अशक्य है । इस प्रकार उक्त लक्षण अनेक दोषों से ग्रस्त है ।

शारदा

पूर्वस्वपदेनोपादानं तस्या एवोत्तरस्वपदेनेत्यत्र नियामकाभावप्रसङ्गेन यत्किञ्चित्प्रतियोगिसमानकालीनत्वमादायातिप्रसङ्गतादवस्थ्येन च स्वत्वानुगमपक्षं न कक्षीकुर्वन्ति । व्यक्तीभविष्यति चेदं द्वितीयपरिच्छेदे इति । इदमुलक्षणम् । कपिसंयोगिभेदस्य प्रतियोगिवृत्तितया स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकताविरहस्यैव विवक्षणीयतया व्याप्यवृत्तेरवच्छेदकाप्रसिद्ध्यातदवच्छिन्नभेदेऽव्याप्तिरपि द्रष्टव्या । अत्र-**स्वावच्छेदकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नस्वावच्छेदकनिष्ठाधेयताकाधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्ना या स्वावच्छेदकवत्ताग्रहविरोधितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना वृत्तिस्तदवच्छेदकत्वं स्वनिरूपकत्वं चेत्युभयसम्बन्धेन प्रतियोगिताविशिष्टान्यानुयोगितैव भेदमात्रवृत्तित्वात्तल्लक्षणमस्तु, शाखावच्छिन्नवृत्त्यवच्छेदकत्वस्य कपिसंयोगिभेदनिष्ठानुयोगितायामभावेन तस्या प्रतियोगिताविशिष्टान्यत्वाक्षतेः, एवं च स्वत्वस्य संसर्गघटकतयाऽननुगमोऽपि न, स्वाधिकरणवृत्तितावच्छेदकत्वनिवेशे द्वित्वावच्छिन्नप्रतियोगितावैशिष्ट्यस्य तादृशप्रतियोगिताकभेदनिष्ठानुयोगितायां सत्त्वेनाव्याप्तिवारणाय स्वावच्छेदकाधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्नत्वस्य वृत्तौ निवेश इति तु** न शक्यशङ्कमपि, **ध्वंसप्रागभावयोरतिप्रसक्तेः व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदासङ्ग्रहाच्च, भेदघटिततया आत्माश्रयाच्च, परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकत्वाच्च । नन्वस्तु लक्ष्यभेदेन लक्षणभेद इत्यत आह** तत्तदवगमानभ्युपगमेति । **प्रातिस्विकरूपेण तत्तद्व्यक्तीनामुपादातुमशक्यत्वेनासर्वज्ञानवगम्यत्वप्रसङ्गेन व्यवस्थापनासम्भवः, भेदत्वाद्यंशेऽनुगतव्यवहारविलोपापातश्चेत्यर्थः। अत्रव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदेऽव्याप्तिः । अनवस्थापेक्षयात्माश्रयस्य लघीयस्त्वेनोपगमे तु सत्तात्यन्ताभावे स्वप्रतियोग्यवृत्तावतिव्याप्तिरपि पूर्वोक्तरीत्या द्रष्टव्या।**

राजहंसः

भेदसंसर्गाभावयोर्भेदखण्डनशारदायां राजहंसः

नञुल्लेखेन तस्येति । तस्य = अभावत्वस्य । भेदस्य प्रतियोगितावच्छेदकेन समं विरोधो नत्वत्यन्ताभावस्येत्याशयमूलां निरुक्तिमनुवदति **अत्र स्वावच्छेदकताघटकसम्बन्धेत्यादिना।** घटत्वावच्छेदेन घटात्यन्ताभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन वर्तमानतया प्रतियोगितावच्छेदकताघटकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वनिष्ठाधेयताकाधिकरणतावच्छेदकघटत्वावच्छिन्ना स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्ना घटात्यन्ताभावनिष्ठा वृत्तिः, तदवच्छेदकत्वं घटात्यन्ताभावत्वरूपानुयोगितायाम् । घटभेदत्वरूपानुयोगिता तु नैवं शक्योपादातुम् घटत्वावच्छेदेन घटभेदस्य स्वरूपसम्बन्धेनावृत्तेः, घटध्वंसत्वघटप्रागभावत्वरूपानुयोगितयोस्तु घटभेदत्वरूपानुयोगितातुल्ययोगक्षेमतैव, अतएव ध्वंसप्रागभावयोरतिव्याप्तिं वक्ष्यति । ननु सत्यपि घटत्ववत्ताग्रहे स्वरूपसम्बन्धेन घटात्यन्ताभावबोधोद्भवेन कथं तस्य विरोधितावच्छेदकसम्बन्धतेतिचेद्, घटत्वात्यन्ताभावस्थलीयस्वरूपसम्बन्धस्य तथात्वात् । अपि वा स्वरूपसम्बन्धस्याननुगततया

ननु संसर्गप्रतियोगिको निषेधः संसर्गाभावः, तादात्म्यप्रतियोगिकश्च तादात्म्याभाव इत्युक्त एव न मिश्रता तयोः, यो हि संसर्गतादात्म्यस्य निषेधः स संसर्गनिषेध एव न भवति, तादात्म्यप्रतियोगिकत्वादिति; मैवम् , द्रव्यगुणकर्मणां समवायिकारणेषु हि तेषां प्रध्वंसा नैवं संसर्गाभावाः स्युः संसर्गप्रतियोगिकत्वे तु संसर्गस्य समवायस्वरूपतया

शारदा

संसर्गप्रतियोगिकेति । **तादात्म्यस्य संसर्गता तु न प्राचीनसरणिसिद्धा, तदन्यत्वं वा निवेश्यम् । घटीयसंसर्गविशेषविरहं विना संसर्गविशेषावच्छिन्नघटप्रतियोगिताकविरहस्याप्यसम्भवात् संसर्गान्तरेण घटसत्त्वेऽप्यपरसंसर्गेण घटाभावस्य तद्विरहेणैव निर्वाह्यत्वाच्च समवायेन घटो नास्तीतिप्रतीतेः समवायविशिष्टघटावगाहिन्या अपि शिखी ध्वस्त इत्यादेरिव विशेषणविरहविषयकत्वसम्भवाच्च क्लृप्तत्वात् संसर्गप्रतियोगिकत्वं सम्भवदुक्तिकमेव सर्वत्र संसर्गाभावस्य, अतएव व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावोऽपि न प्रामाणिक इत्याहुरित्यन्यत्र विस्तरः । संयोगप्रतियोगिकसमवायवारणाय** निषेध इति । तादात्म्यप्रतियोगिकश्चेति । **तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वादिकं तु न लक्षणं यथा, तथा दर्शितं पुरा । मिश्रता = अभेदः ।** नेति । **एवञ्च स्मृतित्वसंसर्गान्योन्याभावमादाय पुरोक्तातिप्रसङ्गनिरासः ।** प्रध्वंसा इति । **प्रागभावा इत्यपि द्रष्टव्यम्, तेषामपि समवायप्रतियोगिकत्वे तस्योत्पत्त्यावश्यकत्वेनानित्यत्वप्रसङ्गसाम्यात्** । प्रसङ्गादिति । **पूर्वापरकालीनत्वयोस्तु न संसर्गता प्रामाणिकीति भावः । एतेन संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वसंसर्गारोपजन्यप्रतीतिविषयाभावत्वयोरप्यव्यापकतोपदर्शिता । एवमतीन्द्रियसंसर्गाभावेऽव्याप्तिः, संसर्गारोपस्याभावप्रतिहेतुतायां मानाभावश्चेति ।**

राजहंसः

घटात्यन्ताभावीयस्वरूपसम्बन्धस्य विरोधितावच्छेदकत्वाभावेनायमपि दोषोऽत्रानुसन्धेय एव । **शाखावच्छिन्नेति।** तादृशाधिकरणतावच्छेदकीभूतशाखावच्छिन्नेत्यर्थः ।

स्वाधिकरणेति । प्रथमसम्बन्धतयेत्यादिः । **अव्याप्तिवारणायेति** । कपिसंयोगिभेदेऽप्यव्याप्तिवारणायेत्यपि द्रष्टव्यम् ।

भारती

प्रश्न—जिस अभाव का प्रतियोगी संसर्ग हो वह अभाव संसर्गाभाव है और जिस निषेध (अभाव) का प्रतियोगी तादात्म्य हो वह अभाव अन्योन्याभाव है । इस प्रकार लक्षण करने पर दोनो अभावों (संसर्गाभाव—अन्योन्याभाव) का अभेद (एकता) नहीं होगा । क्योंकि जो संसर्ग के तादात्म्य का निषेध (अभाव) है वह तादात्म्य प्रतियोगिक होने से संसर्गाभाव ही नहीं होता । एवञ्च स्मृतित्वसंसर्गान्योन्याभाव लेकर स्मृतित्वाभाववत्त्व रूप अनुभूति के लक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं होगी ।

समाधान—इस प्रकार लक्षण करने पर अपने समवायिकारण में द्रव्यगुण एवं कर्म के प्रध्वंसाभाव में संसर्गाभाव के लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी । क्योंकि उस प्रध्वंसाभाव का

समवायानित्यत्वप्रसङ्गात् । किञ्च –तर्हि संसर्गान्योन्याभावौ द्वावपि न घटादिप्रतियोगिकाविति घटादेः कालादिवन्निरवधित्वापातः, संसर्गतादात्म्ययोश्चाविशेषितयोर्निषेधे सामान्यत एव तयोरुच्छेदः स्यात् , एवं यद्यदेव प्रतियोगि वाच्यं तत्तत्स्वरूपत एव न स्यात् । तस्यापि संसर्गं प्रति धावने च तदक्षतम् । संसर्गानवस्था शेषोच्छेदात्पूर्वपूर्वोच्छेदो वा स्यात् ।

शारदा

समवायस्यानित्यतापक्षेऽप्याह किञ्चेति । निरवधित्वेति । **नित्यत्वेत्यर्थः । सर्वात्मकत्वकेवलान्वयित्वयोरप्युपलक्षणमिदम् । मीमांसकमते संसर्गस्यैवोत्पत्ति-विनाशशालित्वेन रूपादीनां च नित्यत्वेन नित्यत्वापादने तत्रेष्टापत्तिसम्भवेऽपि घटादिस्थले न तत्सम्भवः, तार्किकमते तु न क्वापीति भावः सर्वात्मत्वप्रसङ्गस्तु तादात्म्यस्य घटाद्यतिरिक्तत्वमतेन । अविशेषितयोः = प्रतियोगिदेशकालाद्यविशेषितयोः, सामान्यत उच्छेदः = अलीकत्वम् । गगनाद्यनात्मकस्य निरवच्छिन्नवृत्तिकाभावप्रतियोगिन एवालीकत्वात्। विशेषितयोर्निषेधपक्षं तु ''तर्हि विशिष्टस्य निषेधो विशेषणस्यापि भवती''त्यग्रेतनेन ग्रन्थेन निरसिष्यति । यद्यदेव =संसर्गप्रतियोगी वा संसृष्टं वा । प्रतियोगि = अविशेषितमेव निषेधप्रतियोगि । स्वरूपत एव न स्यात् = अलीकं स्यात् ।** तस्येत्यादि । **संसर्गतत्प्रतियोग्यादेरपि संसर्गस्यैवाविशेषितस्य निषिध्यमानत्वोपगमे चेत्यर्थः। तदक्षतम् = संसर्गतत्प्रतियोग्यादिकं सर्वात्मकं नित्यं केवलान्वयि चापन्नम् । तस्यालीकत्वानापत्तावपीत्यादिः । किञ्चैवमविशेषितसंसर्गस्यैव निषेधे तस्यालीकतापत्त्या किञ्चित्प्रतियोगिकत्वासम्भवेनाविशेषितसंसर्गतत्प्रतियोग्यादेरपि स्वरूपतो निषेधस्यैवापत्त्याऽलीकत्वं मा प्रसाङ्क्षीदिति संसर्गस्यापि संसर्गान्तरमेव निषेद्धव्यमित्यनवस्थापत्तिरित्यर्थः ।**

राजहंसः

संसर्गानवस्थेत्यादिमूले संसर्गानवस्थाप्रसङ्गे बीजप्रदर्शनार्थं शेषोच्छेदादित्यादिकमलीकत्वापत्तिपरतया पूर्वमेव व्याचष्टे **किञ्चैवमविशेषितेत्यादिना ।**

भारती

प्रतियोगी द्रव्य, गुण एवं कर्म ही हैं संसर्ग नहीं । यदि संसर्ग को उस प्रध्वंसाभाव का प्रतियोगी मानें, तो वहाँ द्रव्यादि का संसर्ग समवाय रूप होने से उसी का अभाव मानना होगा ऐसी स्थिति में समवाय में अनित्यत्वापत्ति हो जायेगी । इसी प्रकार उनके प्रागभाव में भी अव्याप्ति होगी ।

किञ्च—यदि समवाय को अनित्य मान कर उसी (समवाय) को प्रध्वंसाभाव-प्रागभाव का प्रतियोगी मानें तो संसर्गाभाव-अन्योन्याभाव दोनों ही घटादि प्रतियोगिक नहीं होंगे अर्थात् उन दोनों ही अभावों का प्रतियोगी घटादि नहीं होंगे, किसी भी देश या काल में घटादि का निषेध न होने से कालादि के समान घटादि भी नित्य सर्वात्मक एवं केवलान्वयी हो जायेंगे । किञ्च घटादिरूप प्रतियोगीदेश एवं काल से अविशेषित केवल संसर्ग तथा

अथ न प्रतियोग्यनुयोगिनोस्तथात्वं विरोधः किन्तु सहभावाभावः, अतस्तन्मात्रं न स्यात्, नतु तन्मात्रमेव न स्यादिति

शारदा

अनुयोगी प्रतियोगितानिरूपितानुयोगिताख्यस्वरूपसम्बन्धविशेषाश्रयः, स चाभावः, अतएवाभावत्वमनुयोगिताविशेष इति नवीनाः । तथात्वं = प्रतियोग्यनुयोगिभावः । प्राचीनमते सम्बन्धत्वमिव विरोधत्वमपि विशिष्टस्यैव, नव्यनये पुनरनुयोगित्वं प्रतियोगित्वञ्चेति द्वयमेव । प्रतियोगित्वमपि स्वरूपसम्बन्धविशेष एव, तथात्वे चानिर्वचनीयतेत्यन्यत्, नतु स्वाभावविरहात्मत्वम्, अबाधिताभावत्वप्रत्ययमनुरुन्धानैरभावाभावस्यातिरिक्ततोपगमात्, अनतिरिक्ततायामपि न भेदादिप्रतियोगितासाधारण्यसम्भवः कथञ्चित्तत्सम्भवेऽपि स्वाभावेत्यादेः स्वप्रतियोगिकाभावेत्याद्यर्थकत्वेनात्माश्रयप्रसङ्गः, प्रतियोगितासम्बन्धेन स्वविशिष्टाभावेत्याद्यर्थकत्वेऽपि प्रतियोगितासम्बन्धेनेत्यस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन स्वविशिष्टाभावेत्याद्यर्थकत्वेनैतदर्थघटकीभूतस्यापि तस्य तथैव निवेश्यत्वेन विषयतानवस्थानप्रसङ्गः स्पष्ट एव । स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपप्रतियोगितायास्तद्धटकत्वे चावश्यकत्वात्तस्यैव प्रतियोगितात्वमुचितमिति स्वाभावविरहात्मतायास्तत्त्वे न प्रमाणमिति । प्रतियोग्यनुयोगिनोर्विरोध इति सम्बन्धः । विरोधः = विरोधपदार्थः। सहभावाभावः = प्रतियोग्यभावव्याप्यत्वं स्वप्रतियोगिमदवृत्तित्वं स्वप्रतियोगिविरुद्धत्वमित्यर्थः। यद्यप्येवं **भेदाव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावध्वंसप्रागभावानां न स्वप्रतियोगिविरुद्धत्वोपपत्तिः**

राजहंसः

तादात्म्येन घटस्य घटभेदाभावेन समनियततया तस्य तदात्मकतासम्भवमभ्युपेत्याह **कथञ्चित्सम्भवेऽपीति ।**

भारती

तादात्म्य का ही यदि निषेध मानेंगे तो सामान्यतः उन दोनों का उच्छेद ही हो जायेगा, अर्थात् संसर्ग एवं तादात्म्य दोनों अलीक हो जायेंगे, (क्योंकि गगनाद्यनात्मक निरवच्छिन्नवृत्तिक अभाव का प्रतियोगी ही अलीक होता है ।) एवं जो भी संसर्ग का प्रतियोगी अथवा संसृष्टपदार्थ से अविशेषित होकर निषेध का प्रतियोगी होगा वह भी स्वरूपतः ही न रहेगा, अर्थात् अलीक ही हो जायेगा ।

यदि कहें कि संसर्ग एवं संसर्गप्रतियोगी के भी अविशेषित संसर्ग का ही निषेध मानेंगे तो इस प्रकार संसर्ग-संसर्गप्रतियोग्यादि के संसर्ग के ही निषेध का अनुसरण करने पर उनमें अलीकत्वापत्ति न होने पर भी उक्त दोष तदवस्थ ही है । अर्थात् संसर्ग-संसर्गप्रतियोग्यादि सभी सर्वात्मक नित्य तथा केवलान्वयी हो जायेंगे । इसी प्रकार यदि आगे-आगे संसर्ग के संसर्गान्तर की कल्पना करेंगे तो संसर्गधारा मानने से अनवस्था होगी, तथा जहाँ उस धारा की विश्रान्ति मानेंगे वहीं अन्तिम संसर्ग के उच्छेद से पूर्वपूर्व संसर्ग का भी उच्छेद हो जायेगा।

प्रश्न—प्रतियोगी अनुयोगी का परस्पर में प्रतियोगिअनुयोगिभाव रूप विरोध नहीं है अपितु उन दोनों (प्रतियोगि अनुयोगि) का सहभाव का अभाव ही विरोध है । अतः निषेध होने पर सहभाव मात्र ही नहीं रहेगा, प्रतियोगि भी नहीं रहेगा अर्थात् प्रतियोगी अलीक हो जायेगा यह बात नहीं है ।

शारदा

स्वप्रतियोगिमन्निरूपितवृत्तितायाः स्वप्रतियोग्यवच्छेदकदेशकालावच्छिन्नाया विरहस्य विवक्षायामपि भेदे तदनुपपत्तिस्तदवस्थैव । प्रतियोगिमत्ता यदि प्रतियोगितावच्छेदक-सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिनिष्ठनिरूपकतानिरूपितसम्बन्धिता तदा तादात्म्यसम्बन्धा-वच्छिन्नघटनिष्ठनिरूपकतानिरूपितसम्बन्धिताश्रयघटनिरूपितवृत्तिताया घटभेदे विरहेणोक्तानुपपत्तिपरिहारेऽपि ध्वंसप्रागभावयोरनुपपत्तिरेव, तयोः प्रतियोगिता-वच्छेदकसम्बन्धस्यैवाभावात् स्वपूर्वापरकालीनत्वादेस्तथात्वेऽपि वा ध्वंसपूर्वकालीनत्वाद्य-वच्छिन्नत्वस्य प्रतियोगिनिष्ठनिरूपकतायामप्रसिद्धिरेव, एवं प्रतियोगिनो व्याप्यवृत्तिता-स्थलेऽप्यगतिरेव, तदवच्छेदकाप्रसिद्धेः । तथापि **भेदस्य व्याप्यवृत्तिस**मानाधिकरणधर्मा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ना**धिकरणतानिरूपितविशेषणता-विशेषावच्छिन्नव**वृत्तिताविरहः अव्याप्य**वृत्तिमद्भेदस्य सोऽवच्छेद**कगर्भः, ध्वंसप्रागभावयोश्च स्वप्रतियोग्यवच्छेदककालावच्छिन्नस्वप्रतियोग्यधिकरणनिरूपितवृत्तिताविरहः, अत्यन्ताभावस्य तु समानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य **प्रतियोगितावच्छेदकस**म्बन्धावच्छिन्न-स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताश्रयनिरूपितविशेषणता-विशेषावच्छिन्ननिरूपकताया विरहः, स्वप्रतियोग्यवच्छेदकदेशावच्छिन्नायास्तादृशनिरूपकताया विरहस्त्वव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभा**वस्येति विशिष्यैव विरोधो वाच्यः, संयोगेन रूपं नास्तीत्याद्यभावस्य तु केवलान्वयितया न प्रतियोगिविरुद्धत्वमिति संयोगसम्बन्धावच्छिन्नरूपनिष्ठनिरूपकताया अप्रसिद्धावपि न क्षतिः ।**

यत्तु–स्वनिरूपकाभावस्य स्वविशिष्टावच्छेदकताकनिरूपकताकाधिकरणतावद-वृत्तित्वमित्येव सामान्याभावस्य विरोधः, वैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छेदकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-स्वावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणनिष्ठत्व–स्वनिरूपकानुयोगिताकनिरूपकतावत्त्वेतिसम्बन्ध-त्रयेण, निरूपकतावत्ता च स्वावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणनिष्ठसामानाधिकरण्यसम्बन्धा-वच्छिन्नावच्छेदकताकत्व–स्वावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभेदसम्बन्धावच्छिन्न-

राजहंसः

अप्रसिद्धिरेवेति। अव्यावर्तकत्वादिति भावः। व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य केनाप्यविरोधादाह **समानाधिकरणधर्मेति । स्वनिरूपकभावस्येति ।** स्वं प्रतियोगिता । **निरूपकतावत्त्वेत्यत्र** निरूपकताऽभावनिष्ठानुयोगितानिरूपिता प्रतियोगिनि द्रष्टव्या । तदवच्छेदकश्च प्रतियोगिनि प्रकारतया भासमानो धर्मो न तु प्रतियोगिताव्यधिकरणः ।

सामानाधिकरण्यसम्बन्धावच्छिन्नेति । उक्तनिरूपकताऽवच्छेदकस्याधेयतारूप-निरूपकतावच्छेदके सामानाधिकरण्येन सम्बद्धतया तादृशनिरूपकतावच्छेदकतावच्छेदकता सामानाधिकरण्यसम्बन्धावच्छिन्ना । वह्नित्वेन महानसीयो वह्निर्नास्तीत्यभावस्य वह्नित्वावच्छिन्ननिरूप-कतानिरूपिताधिकरणतया समं विरोधपरिहाराय चायं सम्बन्धः, महानसीयवह्नित्वस्य प्रतियोगितानिरूपकानुयोगितानिरूपितनिरूपकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणस्य सामानाधिकरण्येन वह्नित्वे सत्त्वेऽपि महानसीयवह्नित्वविशिष्टवह्नित्ववत्त्वान् पर्वत इत्यप्रतीतेः ।

शारदा

प्रमीयप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणनिष्ठत्वेति सम्बन्धद्वयेनेति; तत्तु ''नातत्तन्मन्यसे तावन्न तत्तदपि मंस्यसे''इत्युपरितनकारिकाव्याख्यानावसरे निर्देष्टव्यदिशा ''घटो घट'' इति प्रतीतिमात्रस्य प्रमात्वविरहेण भूतले घटो नास्तीत्यादौ निरूपकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणघटत्वावच्छिन्नाभेदसम्बन्धावच्छिन्नप्रमीयप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणनिष्ठत्वस्यावच्छेदकतायामसद्भावेनासम्भवदुक्तिकमिति ध्येयम् । तन्मात्रं = सहभावमात्रम्; न तु तन्मात्रमेव न स्यात् = न तु प्रतियोगिनोऽलीकत्वमपि स्यात् । देशविशेषादिकमनन्तर्भाव्य स्वरूपत एव विरोधोपगमे क्वचिदसतोऽन्यत्रापि सत्त्वस्यासम्भवेनालीकत्वप्रसक्तः स्यादपि, सहानवस्थानस्य तथात्वोपगमे त्वेकत्राभवतोऽप्यपरत्र भवनं निराबाधमिति न तत्प्रसक्तिरित्याभासाशयः । एवञ्चाविशेषितत्वमपि प्रतियोगिनैव, न तु देशकालादिनापीति पर्यवसन्नम् । इदन्त्ववधेयम्, यद्यपि **देशविशेषादिकमन्तर्भाव्य विरोधोपगमेऽपि प्रतियोग्यविशेषितादिसंसर्गादिनिषेधोपगमे भूतले घटसमवायो नास्तीति समवायेन घटो नास्तीति वा निषेधस्य घटाविशेषितसमवायप्रतियोगिकत्वेन समवायाविशेषितघटप्रतियोगिकत्वेन वा भूतले रूपादिसमवायस्य संयोगेन घटस्यापि चाभावप्रसङ्गोऽस्त्येव, एवमलीकसैवात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्, जलाहरणाद्यौपयिकघटादेर्न क्वापि निषेध इति मतेऽविशेषितस्य प्रतियोगिना विशेषितस्य वात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽलीकत्वापादनसम्भवः, 'नहीदमपि कुसुमं गगनकुसुमं येनामोदं नादध्या'दिति प्रतीतिबलादलीके प्रतियोगिताया मन्तव्यत्वात्, तत्र तस्या अनुपगमेपि मिथ्यासाधारणस्य सर्वदेशकालवृत्त्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यैवापादनीयत्वात्, अभावप्रतियोगित्वेन तस्यानुमेयत्वाद्वा । बाधादेरन्यत्र निरस्तत्वात् । यदाहुः-''तस्माद्यन्नास्ति नास्त्येव यत्वस्ति परमार्थतः । तत्सत्यमन्यन्मिथ्येति न सत्यद्वयकल्पने''ति ।। अयमेतस्य प्रकृतोपयुक्तार्थः-यन्नास्ति = प्रतियोगितासम्बन्धेन**

राजहंसः

पर्वतनिष्ठाधिकरणतानिरूपिताधेयतावच्छेदकतावच्छेदकता न सामानाधिकरण्यसम्बन्धावच्छिन्ना महानसीयवह्नित्वे । वस्तुतस्तु वह्नित्वावच्छिन्नाया महानसीयवह्नित्वावच्छिन्नाया वाऽऽधेयतायाः प्रसिद्धावपि महानसीयवह्नित्वविशिष्टवह्नित्वावच्छिन्नाधेयताया अप्रसिद्धिरेव, तत्कल्पने प्रयोजनाभावात् । एवं सामानाधिकरण्येन घटत्वविशिष्टघटत्वावच्छिन्नाधेयताया अप्यप्रसिद्धिरिति कथं लक्षणसमन्वयः। वह्नित्वेन वह्निधूमोभयाभावस्य वह्नित्वावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणतया समं विरोधव्युदासाय द्वितीयः सम्बन्धः, वह्निधूमोभयत्वस्य वह्नित्वे सामानाधिकरण्येन सत्त्वेन परीत्या प्रथमसम्बन्धसमन्वयसम्भवेऽपि वह्निधूमोभयं वह्निरित्यप्रतीते द्वितीयसम्बन्धसमन्वयानुपपत्तेः।

इति ध्येयमिति । अत्र स्वावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणधर्माभिन्ननिष्ठत्त्वोक्त्यापि न निस्तारः, घटत्वत्वाद्यवच्छिन्ने घटत्वत्वाद्यवच्छिन्नाभेदस्यापि प्रतिपादनाशक्यताया वक्ष्यमाणत्वात् । कपिसंयोगाभावस्य कपिसंयोगत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणतया समं विरोधो मा भूदित्यवच्छेदकविशेषस्य निवेशे न घटत्वाद्यभावसाधारण्यसम्भव इत्यपि द्रष्टव्यम् ।

एवञ्चाविशेषितत्वमपीति । अविशेषितसंसर्गतादात्म्ययोर्निषेधपक्षस्यैवोपक्रान्तत्वादिदम्।

चेन्न; अनुयोगिनि प्रतियोग्यापत्तेः । तथा प्रमाऽभावात्कथं

शारदा

यदभावविशिष्टम्, तन्नास्त्येव = तत्सर्वदेशकालवृत्त्यत्यन्ताभावप्रतियोगि । आत्मनः पारमार्थिकत्वव्यवस्थितौ तु तदवृत्तित्ववैशिष्ट्यं प्रतियोगितायां सम्बन्धे विशेषणीयम्, जडादिप्रतियोगिकभेदस्य तत्राभ्युपगमेनैव जडत्वाद्यापत्तिवारणसम्भवेन जडाद्यनुयोगिकभेदीयप्रतियोगित्वं तत्र नाभ्युपगमनीयमिति वा । यत्त्वस्ति = प्रतियोगिता-सम्बन्धेन यदभावविशिष्टं न, तत्परमार्थतः सत्यम् = परमार्थसत्यम् । एतेनोक्तसम्बन्धेना-भाववतः सांवृतसत्त्वस्वीकारो ध्वनितः, तदाह अन्यन्मिथ्येति, नत्वलीकम् । न सत्यद्वयकल्पना = परमार्थसत्यनानात्वकल्पना न युक्ता, श्रुतियुक्त्यादिविरोधादिति । तथापि **सहानवस्थानलक्षण एव भावाभावयोर्विरोधो नतु प्रतियोग्यनुयोगिभावलक्षणः स्वरूपतोऽपि विरोध इति पराभिप्रायममृष्यमाणस्तमेव स्वरूपतोऽपि विरोधोऽभ्युपेय एवेत्याशयेन निराकुरुते** अनुयोगिनीति । **अनुयोगिनि प्रतियोग्याधारतापि सम्भाव्येतेत्यर्थः । यद्यन्यत्र प्रतियोगिसत्त्वमुपगम्याभावसहावस्थानमेव निषिध्यते तत्किमभावस्य भावाधारतानुमन्यते प्रतियोगिसत्त्वसहानवस्थानयोस्तावताप्यव्याघातादिति भावः । घटो घटाभाववानिति प्रतीत्या प्रतियोगिन्यनुयोगिसम्भावना नाभिहिता ।** तथा प्रमेति । **अभावे प्रतियोग्याधारताप्रमेत्यर्थः । परित्यज्य निश्चितानतिप्रसञ्जकताकं सम्भाव्यमानातिप्रसञ्जकताकस्य कल्पनाया नौचिती, अन्यथा कार्यकारणयोः सहानवस्थितयोरप्यधाराधेयभावप्रमाया दर्शनेनानुयोगिनि प्रतियोग्याधारताप्रमाया अपि सम्भाव्यमानतया तादृशाधारताया अपि सम्भावनाया दुर्निवारत्वात्, प्रतियोग्यनुयोगिभावलक्षणविरोधस्य तु कल्प्यमानस्य तद्विरुद्धस्यैव कल्पनीयत्वेन न तत्सम्भावनापि, सहानवस्थानस्य तु तद्विरुद्धत्वकल्पनाया न सम्भवः, तत्सत्त्वेऽप्याधाराधेयभावदर्शनादित्याशयेनाह** तथाप्रमेति । **उक्तार्थकम् ।**

राजहंसः

प्रतियोग्यविशेषितादीति। आदिना प्रतियोगिविशेषितोपादानम् । **न क्वापि निषेध इति ।** आरोप्य हि निषेधः, देशविशेषगततयाऽऽरोपविषयस्य च प्रतियोगिनोऽलीकत्वम् , न तु देशान्तरगतत्वमिति भावः । **अयमेतस्य प्रकृतोपयुक्तार्थ इति ।** यद्ययं श्लोकोऽस्माभिर्निर्मीयेत तदाऽस्यायमर्थः स्यादिति भावः । एवञ्चास्य भट्टपादैः पारमार्थिकसांवृतेतिसत्य-द्वैविध्यनिराकरणाभिप्रायेण निर्मितत्वेऽपि न क्षतिरिति तात्पर्यम् । **इति वेति ।** सत्यात्मनोऽसङ्गतया तंत्र हेतोर्नास्ति सम्बन्ध इति तु स्वप्रकाशवादेऽवादिष्म शारदायाम्

भारती

समाधान—प्रतियोगीअनुयोगिभाव रूप स्वरूपतः विरोध न मानकर यदि सहभाव के अभाव को ही विरोध मानेंगे तो अनुयोगी (अभाव) प्रतियोगि (संसर्ग) का आधार भी हो सकता है । अर्थात् प्रतियोगी का अन्यत्र सत्व मानकर अभाव का सहावस्थान ही यदि निषिद्ध होता है तो क्या अभाव की भावाधारता अनुमत है क्योंकि अभाव की भावाधारता मानने से भी प्रतियोगिसत्व और सहानवस्थान का व्याघात नहीं होता ।

यदि कहें कि अनुयोगी (अभावः) प्रतियोगिवान् इस प्रकार अभाव रूप अनुयोगी में

तथास्तामिति चेन्न; तथाप्रमाभावमूलस्य विरोधस्य सहानवस्थानस्य नियमनभङ्गात् प्रतियोग्यनुयोगिभावादन्यः कस्तयोर्विरोधः स्यात्। तथा न प्रमीयमाणत्वमेव स इति चेन्न;

शारदा

भावमूलस्य = सम्भावकस्य सहानवस्थानात्मकविरोधस्य, मूलकस्येति पाठेऽपि मूलतीति मूलक इति व्युत्पत्त्योक्त एवार्थः। सम्पातायातो वा कः। अभावेतिच्छेदे तु सहानवस्थानस्येति भावप्रधानम्। तथाच तादृशप्रतीतेः प्रमात्वासम्भावकस्य विरोधस्य सहानवस्थानात्मकता न सम्भवतीत्यर्थः। तथाप्रमाऽभावपदेन घटे तदभावसहावस्थानविषयकप्रमितिविरहमभिधाय बहुव्रीहिणापि व्याख्यानं रोचयन्ति केचित्। वस्तुतस्त्वनुभवबलादेव भावाभावयोरनुयोगिप्रतियोगिभावलक्षणो विरोधो मन्तुमुचितः, सचातिरिक्तो वाऽनतिरिक्तो वेत्यन्यदेतत्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गसम्भावनयैव तत्कल्पने सहानवस्थितयोर्गोत्वाश्वत्वयोरपि विरोधान्तरस्यापि कल्पनापत्तेः, इष्टापत्तौ च प्रकृतेऽपि तेनैव निर्वहिणानुयोगिप्रतियोगिभावलक्षणविरोधस्याप्रामाणिकत्वापत्तिरिति ध्येयम्। अनुयोगिनि प्रतियोग्यापत्तेरितिग्रन्थस्यापत्तिपरत्वं तु न युक्तम्, आपत्तौ बाधस्यानुगुणत्वेन ''तथाप्रमाऽभावादिति' ग्रन्थासङ्गतेः। गोत्वाश्वत्वादौ व्यभिचारेण सहानवस्थानस्याधाराधेयभावानापादकत्वाच्च, अतएव न प्रतियोग्यनुयोगिभावविरहस्यापि तदापादकत्वम्, घटो घटात्यन्ताभाववानित्यस्याप्यनापत्तेश्च। नापि घटाभावे संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावानधिकरणत्वेन संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटनिष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणताया आपादनसम्भवः, तादृशघटाभावाधिकरणताया एव घटाभावे सद्भावेनासिद्धेः। नच– अनुयोगिनिरूपितत्वस्य प्रतियोगिगतत्वापत्तेरिति

राजहंसः

न सम्भवतीत्यर्थ इति। मूले नियमनभङ्गादिति स्वीकारासम्भवादित्यर्थकमितिभावः। **रोचयन्ति केचिदिति।** अत्र नियमनभङ्गे हेत्वलाभेन न्यूनत्वमरुचिबीजम्, अव्यवहितप्राक्तनतथाप्रमाशब्देनानुयोगिनि प्रतियोग्याधारताप्रमायाः परामृष्टतयाऽत्रापि तदुपस्थितेश्च, 'तथा न प्रमीयमाणत्व' मित्यग्रे तु साहित्यप्रमोपादानमगत्या।

भारती

प्रतियोगी (संसर्ग) के आधारता विषयक प्रमा नहीं है तो अनुयोगि में प्रतियोगि के आधारता की सम्भावना कैसे की जाय। तो यह आपका कथन उचित नहीं है आपने कहा कि अनुयोगि में प्रतियोगि-आधारता विषयक प्रमा नहीं होती – तो पूछते हैं कि प्रमा क्यों नहीं होती, इसका अभिप्राय है सहानवस्थानात्मक विरोध नहीं स्वीकार किया। तथाच तादृश प्रतीति के प्रमात्व का असंभावक विरोध सहानवस्थानात्मिक नहीं हो सकता क्योंकि अभावरूप अनुपयोगी में प्रतियोगी आधारता की सम्भावना का कारण सहानवस्थानरूप विरोध (विरोध में सहानवस्थानरूपता) ही नहीं रह गया। अर्थात् अनुयोगि (अभाव) में प्रतियोग्याधारता प्रतीति में प्रमात्व के असम्भावक विरोध में सहानवस्थानात्मकता नहीं हो सकती। अतः अनुभवबलात् अनुयोगि प्रतियोगी का अनुयोगीप्रतियोगिभाव ही विरोध मानना उचित है।

शारदा

तदर्थः, घटस्याभाव इतिवदभावस्य घट इत्यपि स्यादिति यावत्, प्रतियोग्यनुयोगिभावाभ्युपगमे तु प्रतियोगिताया घटे एवानुयोगिताया अभावे एव सत्त्वान्नातिप्रसङ्ग इति–वाच्यम्; ''प्रतियोग्यनुयोगिनोस्तथात्व''मिति ग्रन्थस्वरसेन प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य पूर्ववादिनाप्यङ्गीकारात्तस्य विरोधपदार्थतायामेव विवादात्, अतएव 'किन्तु सहभावाभाव' इति ग्रन्थेन विरोधात्मना प्रतियोगिता निरुच्यते इति न वक्तव्यम्; निरुक्तविरोधस्य प्रतियोग्यवृत्तित्वाच्च, यदभावप्रतियोगितावच्छेदको यः सम्बन्धस्तेन सम्बन्धेन तद्वदसम्बन्धित्वस्य सहानवस्थानपदार्थतयाऽभिधानेऽपि समवायेन सत्ताभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः स्पष्टैव, कथञ्चित्तद्वारणेऽपि प्रतियोगितायास्तद्घटकत्वावश्यम्भावेनोक्तरीत्याऽऽत्माश्रयानवस्थादिप्रसङ्गो दुर्वार एवेति । तथानेति । **नञ्समासानित्यतोपगमस्य महाविभाषाधिकारबाधितत्वेन समासाभावेऽपि न क्षतिः, यदाहुः–''असद्वादी हि कात्यायनः'' इति । नकारेणैव वा समासः । एवमग्रेऽपि । सः = विरोधः । घटाभाववृत्तित्वप्रकारकप्रमित्यविषयत्वं घटाभावविरुद्धत्वमिति नार्थः । पटादावतिप्रसक्तेः । नापि तादृशप्रमित्यविषयत्वे सति घटाभावसमानाधिकरणत्वप्रकारकप्रमित्यविषयत्वम्; विशेषणवैयर्थ्यात्, किन्तु विशेष्यदलमेव । समानाधिकरणत्वगर्भे सम्बन्धित्वं निवेश्यमिति न गगनादावतिप्रसङ्गः । वस्तुतस्तु 'सर्वमाकाशव'दिति प्रत्ययस्य सार्वजनीनत्वेन तस्यावृत्तित्वं निष्प्रमाणमेव । तादृशप्रमित्यविषयत्वञ्च तादृशप्रमितिविषयतात्वव्यापकप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव इति न पटादौ यत्किञ्चित्प्रमितिविषयताविरहमादायातिप्रसङ्गतादवस्थ्यम् । सम्बन्धविशेषावच्छेदकविशेषादिनिवेशस्तु पूर्वोक्तरीत्या द्रष्टव्यः । घटभेदविरुद्धत्वं तु घटभेदाधिकरणनिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नसम्बन्धित्ववैशिष्ट्यप्रमित्यविषयत्वम् ।**

राजहंसः

निरुक्तविरोधस्येति । सहभावाभावशब्दव्याख्यानेऽभावगतो विरोधः प्रतियोगिनिरूपितो निरुक्तः पुरा । यदभावेति कर्मधारयः । **तेन सम्बन्धेनेत्यादि** । तदभाववन्निरूपिताया-स्तत्सम्बन्धावच्छिन्नसम्बन्धिताया विरहस्येत्यर्थः । अभाववत्ता तु विशेषणताविशेषावच्छिन्ना । **कथञ्चित्तद्वारणेऽपीति** सत्तादौ तु स्वाधिकरणेत्यादिनाऽनुपदं तद्वारणप्रकारो वक्ष्यते। **असद्वादी हि कात्यायन इति ।** इदं शबरस्वामिवचः । मूले नञः प्रमीयमाणपदेनान्वयानन्तरं भावप्रत्यये प्रमीयमाणभिन्नत्वप्रतीत्याऽर्थात् प्रमीयमाणत्वात्यन्ताभावः प्रतीयते न तु भूतले घटो नास्तीत्यादाविव क्रियान्वयानुसन्धानापेक्षा तत्प्रतीतिः, यतः प्रसज्यप्रतिषेधविषयोऽयं स्यात् , क्रियान्वयानुसन्धानं विनापि भवत्यत्यन्ताभावस्य धीरसन्देहानुपलब्ध्यादिशब्देषु क्वचिदेव न तु सर्वत्र । एवमेव 'न विरुन्धतां हेतुदोषत्वासम्भवा' दिति हेत्वाभासप्रकरणमूले विरोधकर्तृभिन्नत्व-प्रतीत्यैवार्थाद्विरोधात्यन्ताभावप्रतीतिरिति पर्युदासविषय एवायम् , तत्र च नित्यःसमास इति समर्थसूत्रे 'महाविभाषासूत्रमनर्थकम् , समासव्यासयोर्भिन्नार्थतया व्यासप्रतिपाद्यार्थे समासप्राप्तिरेव नास्ति, समासाप्रतिपाद्यार्थे एव तु व्यासस्य स्वभावतः प्राप्तिरिति प्रयोगद्वयस्य व्याससमासात्मनः सिद्धि' रित्याशयेन 'वावचनमनर्थकं स्वभावसिद्धत्वा'दिति वदता कात्यायनेन सूचितम्, भिन्नार्थत्वं पुनरुद्देश्यविधेयभावापन्नसखण्डार्थबोधकत्वं व्यासस्य,

अतिप्रसङ्गात् । नियमेनेति चेन्न ; जात्या नियमाभ्युपगमात् व्यक्त्योरविरोधापत्तेः । तथा न

शारदा

सत्तादौ तु स्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वप्रकारकप्रमित्यविषयाभावकत्वादिकमेव वक्तव्यम् । अतिप्रसङ्गादिति। **यत्पटादिव्यक्तौ घटाभावसमानाधिकरणत्वप्रकारकप्रमितिविषयतासामान्याभावस्तत्रातिप्रसक्तेः। न च तादृशव्यक्तौ मानाभावः, संशयेनापि लक्षणासिद्धेः । नचान्तत ईश्वरीयतादृशप्रमीयविषयतासद्भाव इति वाच्यम्; अनीश्वरवादिन्यसिद्धेः** । नियमेनेति । **यद्रूपावच्छिन्नप्रकारताकप्रमीयविशेष्यत्वं घटाभावप्रकारकप्रमीयविशेष्यत्वाभावव्याप्यं, यद्रूपं वा घटाभावसमानाधिकरणत्वप्रकारकप्रमितिविशेष्यत्वसामान्याभावव्याप्यं तद्रूपावच्छिन्नत्वमित्यर्थः ।**

राजहंसः

तदनापन्नाखण्डार्थबोधकत्वं समासस्येति रीत्या वाऽन्यथा वा कथञ्चिदित्यन्यत् । व्यक्तिविवेकेऽपीदृशस्थले समासस्यौचित्यमेवादृतम् ।

'ननु साधुकृतं प्रजासृजा शशिकान्तेषु मनो न कुर्वता ।
नहि चेतनतामवाप्य ते विरमेयुर्गलितेन केवलम् ॥'

इत्यत्र न कुर्वतेति समासाकरणं व्यामोहमूलकमिति तत्रोक्तेः । इत एवारुचे 'नकारेणैव वा समास' इति शारदायामुक्तम् । मीमांसकैस्तु 'यजतिषु येयजामहं करोति नानुयाजेषु' इत्यत्रापि प्राप्तबाधमसहमानैर्भाषास्वरसमभिभूयैव पर्युदाससमर्थनेन कात्यायनस्यासद्वादित्वमुदितम्, तदनुसारेण च मूलमिदं योजितम् ।

तथा न प्रमीयमाणत्वमित्यत्र मूले यद्यपि घटाभाववृत्तित्वप्रकारकप्रमितेरव्यवहितमुपक्रान्तायाः परामर्शो युज्यत इति तादृशप्रमित्यविषयत्वमर्थः स्यात्, अनुयोगिनि प्रतियोग्याधारतासम्भावनावारणाय प्रतियोगिनि तादृशप्रमित्यविषयत्वस्वभावताकल्पनेन प्रत्यवस्थानस्य सुषुमालिङ्गतत्वात् , पटादावतिप्रसङ्गसत्त्वेऽपि तस्य मूलकृतैव 'अतिप्रसङ्गा' दित्यनेन प्रदर्शनसम्भवात् , तथापि नियमेनेत्याद्युत्तरग्रन्थस्य नात्र पक्षे कथमपि योजनसम्भवः, स्वभावत एव तादृशप्रमित्यविषयत्वमित्यत्र पूर्वपक्षितात्पर्यपर्यवसानेन प्रतियोग्यनुयोगिभावलक्षणस्य स्वभावतो विरोधस्यापि स्वीकारप्राप्त्या च क्व प्रत्यवस्थानसुषुमापीत्यशयेनान्यथाव्याख्यायतुमुपक्रमते **घटाभाववृत्तित्वप्रकारकेत्यादिना। विशेष्यदलमेवेति** । यद्यप्यत्र पक्षेऽपि प्रतियोग्याधारतासम्भवनाऽनुयोगिन्यस्त्येवेति पूर्वपक्षोत्थानमनवसरपराहतम् , तथापि 'प्रतियोग्यनुयोगिभावादन्यः कस्तयोर्विरोधः स्या' दित्यस्योत्तरदायित्वाभिमानेनाशङ्कामात्रमिदम् ।

भारती

यदि कहें कि तादृश प्रमिति (अभाव में प्रतियोग्याधारता प्रमा) विषयता का अभाव ही विरोध है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यत्किञ्चित् तादृशप्रमीतिविषयत्वाभाव लेकर पटादि में अतिव्याप्ति हो जायेगी । (अर्थात् संसर्गाभाव का विरोध संसर्गरूप प्रतियोगी के साथ ही न रहकर अब पट के साथ भी विरोध होने लगेगा अतः विरोध लक्षण की पटादि में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।) यदि कहें कि नियम से तादृश प्रमितिविषयत्वाभाव तादृश अर्थात् प्रमिति

प्रमातुमनौपाधिकी योग्यतेति चेत्; सैव मेयगता योग्यता

शारदा

तद्रूपं च घटत्वं नतु पटत्वतद्व्यक्तित्वादिकम्। आद्ये यद्रूपेऽवच्छेदकता द्वितीये च व्याप्यता हि समवायेन निविष्टा। जात्येति। **व्यक्तीनामानन्त्यव्यभिचाराभ्यां नियमस्यानुगतधर्मावच्छेदेनाभ्युपेयत्वात् घटत्वेन तदवच्छिन्नाभावत्वेन च विरोधस्य प्रत्येतुं शक्यत्वेऽपि तत्तद्घटत्वेन तत्तदभावत्वेन च तस्य ज्ञातुमशक्यतयाऽसम्भवदुक्तिकत्वम्। विशेषरूपेण तदसम्भवे च सामान्यरूपेणापि न तत्सम्भवः, अन्यथा विशेषरूपेण कार्यकारणभावादिकमन्तरापि सामान्यरूपेण तदभ्युपगमापत्तेरिति भावः।** व्यक्त्योरिति **विशेषरूपेणेति शेषः।** अथवा **तादृशप्रमितिविषयत्वाभाव इति यथाश्रुते यत्किञ्चित्तादृशप्रमितिविषयत्वाभावमादाय पटादावतिप्रसङ्ग एव 'अतिप्रसङ्गादि'ति ग्रन्थेनोक्तः। तादृशप्रमितिविषयतात्वव्यापकप्रतियोगिताकाभावो विवक्षणीय इति च 'नियमेने'त्यनेनोक्तम्। तत्तद्विषयतात्वेन तत्तदभावत्वेन च विरोधस्याज्ञेयतया तदसम्भवो 'जात्ये'त्यादिनोक्तः। तुल्यन्यायतया चान्यत्रापि विशेषरूपेण विरोधस्याप्रमिततयाऽसम्भवे सन्देहे वा सामान्यरूपेणापि न तस्य सम्भवो निश्चयो वेति भाव इति। उपलक्षणञ्चैतत्, भेदसंसर्गाभावयोर्वैलक्षण्यनिरूपणस्यैव प्रस्तुततया तस्याद्याप्यनिश्चयेनात्यन्ताभावविवक्षाया अकिञ्चित्करत्वेन तादृशप्रमितिविषयताभेदमादायाप्यतिप्रसङ्गः, प्रमात्वस्यैव निरूप्यमाणतया भ्रममादायाप्रसङ्गश्च द्रष्टव्यः। एवमग्रेऽपि।** तथा नेति। **कदाचिद् घटाभावसमानाधिकरणत्वप्रकारकप्रमितिविषयताविरहवत्त्वेन पटादावपि तादृशविरहयोग्यताया मन्तव्यत्वेनातिप्रसक्तेरित्यत अनौपाधिकीत्युक्तम्, स्वाभाविकीत्यर्थः। एषैव स्वरूपयोग्यतेति प्रसिद्धा। तादृशविषयतायोग्यताविरहवत एव च तादृशविषयताविरहयोग्यतेति तादृशविषयतायोग्यतावति पटादौ तादृशविषयताविरहयोग्यताया न सम्भव इति भावः। यद्यपि विचार्यमाणेयं**

राजहंसः

घटाभावसमानाधिकरणत्वाभावस्य लक्षणान्तरत्वेऽपि यथासन्निवेशे न वैयर्थ्यम्। ननु यदीदृशपूर्वपक्षे उक्तसम्भावनाऽस्त्येव, तदा तस्य तयैव पूर्ववन्निराकरणं कुतो नाद्रियत इति चेन्न, 'वस्तुतस्त्वनुभवबलादेवे' त्यादिना शारदायां प्रतिविहितत्वात्। अतएव मूलकारोऽपि दूषणान्तरमेवातिप्रसङ्गादित्यनेनाभ्यधात्। **प्रमित्यविषयाभावकत्वादिकमेवेति।** समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धेन सत्ताभाववन्निष्ठाधिकरणतानिरूपितवृत्तित्वाभावः समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वनिष्ठप्रकारताकप्रमीयविशेष्यताप्रतियोगिकस्वरूपसम्बन्धेन सत्ताऽभाववन्निष्ठाधिकरणतानिरूपितवृत्तित्वनिष्ठप्रकारताकप्रमीयविशेष्यताविरहश्चादिपदार्थतया ग्राह्यौ।

भारती

विषयतात्वव्यापकप्रतियोगिताकाभाव की विवक्षा करेंगे तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि व्यक्तियों के अनन्त एवं परस्पर व्यभिचरित होने से व्यापकत्वरूपनियम का ग्रहण किसी अनुगत धर्मावच्छेदेन (जात्यवच्छेदेन) ही करना होगा ऐसी स्थिति में घटत्वेन तदवच्छिन्नाभावत्वेन ही विरोध का निश्चय हो पायेगा, तत्तद्घटत्वेन और तत्तदभावत्वेन विरोध का निश्चय न होने से व्यक्तियों में विरोध का निश्चय नहीं हो सकेगा।

ऽनुयोगिप्रतियोगित्वादन्या का समर्थिता स्यात् । स्वरूपमेवेति चेन्न;

शारदा

योग्यता तादृशविषयताविरहव्याप्यत्वस्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नस्य तत्समव्याप्यत्वस्य वाऽवच्छेदकीभूतधर्मवत्तायामेव पर्यवस्यति, तथाच नियमेने'त्यादिग्रन्थेनैव गतार्थता, अथवेत्याद्युक्तकल्पे शङ्कापौनरुक्त्यपरिहारेऽपि समाधेस्तौल्यमक्षतम् । अत्रापि च तादृशयत्किञ्चित्प्रमितिविषयताविरहवतः पटादेस्तदनौपाधिकयोग्यतापि स्यादेवेति तादृशप्रमितिविषयतासामान्याभावो विवक्षणीय एव, तथा च सर्वज्ञवादे तेनैव चारितार्थ्याद्योग्यतानिवेशोऽकिञ्चित्करः असर्वज्ञवादे तु यत्पटादिव्यक्तौ तादृशसामान्याभावसम्भावना तत्र तद्योग्यताया अपि सम्भव इति रीतिरुक्तैवानुसर्तव्या, तथापि स्वरूपसम्बन्धविशेष एव सा योग्यता, सा च घटे एवाभ्युपेयेत्याशयः । एवं चा'नुयोगिप्रतियोगित्वादन्या का समर्थिता स्या'दित्यग्रिमग्रन्थस्यापि सामञ्जस्यम् । अतएव नञो व्यत्यासेन तादृशप्रमितिविषयतायोग्यताविरह इत्यर्थकतया नायं ग्रन्थो व्याख्यातः, तदा हि 'मेयगता योग्यते'त्यत्रायोग्यतेतिच्छेदसम्भवेऽपि 'प्रतियोगित्वानुयोगित्वे विहाय तादृशयोग्यताविरहस्य समर्थनासम्भवः, तयोरेव तादृशविरहनियामकत्वादिति तदभ्युपगम आवश्यक' इत्येव समाधेर्वक्तुमौचित्येनाग्रिमग्रन्थासङ्गतेः स्पष्टत्वादिति । न प्रमातुमितिप्रयोगतः प्रमातृगतापि योग्यता भात्येवेत्याशयेन तद्व्यावृत्तये मेयेति । **घट समानाधिकरणत्वप्रकारक-प्रमितिविषयत्वाभावयोग्यत्वमभावगतमनुयोगित्वमेवेति भावः। तादृशयोग्यता घटतदभावादिस्वरूपमेव नतु प्रतियोगित्वाद्यात्मिकेत्याह** स्वरूपमेवेति । **सम्भेदस्तादात्म्यं तदभ्युपगन्ता ''सर्वं हि वस्तु स्वरूपपररूपाभ्यां सदसदात्मना द्विविधम्'', ''भावाभावात्मकत्वाद्वस्तुन'' इति वदन्ननेकान्तवादी भाट्टजैनादिः। एवञ्चाभावप्रतियोगिनोस्तन्मते**

राजहंसः

रीतिरुक्तैवेति । नियमेनेत्यादिप्रतीकस्थशारदादर्शितदिशा शङ्कासमाधाने अनुवदनीये इति भावः । **एवञ्चेति** । स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपतायां पर्यवसाने चेत्यर्थः ।

सर्वं हि वस्तु स्वरूपपररूपाभ्यां सदसदात्मना द्विविधमिति । ननु पररूपेणासत्त्वं यदि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताके व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताके चाभावे पर्यवस्येत्, तदा तार्किकादिभिरपि भावाभावयोः सर्वत्र सामानाधिकरण्यमभ्युपगतमिति मतविशेषानुसरणं व्यर्थम्, यदि तु घटस्य पररूपेणासत्त्वं घटात्मकमेवेति तात्पर्य्यम्, तदा घटविरहवति पटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावस्यासत्त्वप्रसञ्जकत्वेन भाट्टादिमतस्यातितुच्छतया तदादाय प्रत्यवस्थानमनवकाशम् , यदि तु पररूपेणासत्त्वं नाम घटादौ परकीयतादात्म्याभावस्तदापि

भारती

यदि कहें कि अनुयोगी में प्रतियोग्याधारता प्रमितिविषयता की स्वाभाविकयोग्यता का अभाव ही विरोध है तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ योग्यता मेय (विषय) गत योग्यता ही कहनी होगी और वह अनुयोगि प्रतियोगि भाव रूप ही सिद्ध होगी, अन्य नहीं, अतः सहभावाभाव विरोध सिद्ध न होकर अनुयोगिप्रतियोगिभावरूप विरोध सिद्ध होता है ।

प्रश्न—उस योग्यता को घट घटाभावादि का स्वरूप मानेंगे, अनुयोगित्वप्रतियोगित्व रूप नहीं मानेंगे, इसलिए अनुयोगिप्रतियोगिभाव रूप विरोध नहीं है ।

मिथः सम्भेदाभ्युपगन्त्रापि तयोः स्वरूपोपगमात् । तथाभूतं स्वरूपमिति चेन्न; तस्यैव निर्वाच्यत्वापत्तेः । कश्च गोत्वाश्वत्वाभ्यां भावाभावयोरेवंविधविरोधे विशेषः स्यात्, सत्यां च तयोः साहित्य-प्रमायां प्रकारभेदेन व्यवस्थापना किमिति कार्या ? प्रमयैवाप्रमानु-पगमादिति ।

शारदा

सामानाधिकरण्यमप्यावश्यकमिति स्वरूपमात्रमतिप्रसक्तमिति भावः । तथाभूतमिति। **परस्परासामानाधिकरण्यवतोः स्वरूपविशेष एव निरुक्तयोग्यतेत्यर्थः । स्वरूपगतो विशेषो नानुयोगित्वप्रतियोगित्वादन्योनिर्वक्तुं शक्य इत्याह** तस्यैवेति । **एवंविधविरोधे = असामाना-धिकरण्यमात्रात्मके विरोधे, भावाभावयोः स्वरूपतोऽप्यनुभूयमानो विरोधो नापलप्य इति भावः । तयोः = अव्याप्यवृत्तितदभावयोः । साहित्यं = सामानाधिकरण्यम् । प्रकारभेदेन = अवच्छेदकभेदेन । व्यवस्थापना = विरोधापत्तिपरिहारः । प्रमयैव = सामानाधिकरण्यप्रमाविषयतयैव सामानाधिकरण्यप्रमाविषयताविरहस्यानुपगन्तव्यत्वात्। अयम्भावः – यद्यसामानाधिकरण्यमेव सामानाधिकरणत्वेनाप्रमीयमाणत्वमेव वा**

राजहंसः

सिद्धसाधनमेवेति चेत्प्रथमपक्षस्यैव विवक्षितत्वात् । यथा च तार्किकादीनां तादृशाभावे न सम्प्रतिपत्तिस्तथानुमानखण्डनशारदायां दर्शितत्वात् । किञ्च द्वितीयकल्पेऽपि पररूपेणासत्त्वस्य घटेन भेदाभेद एव न तु सर्वथैव घटात्मकत्वमिति घटत्वेन घटाभाववत्यपि भूतलादौ पटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकघटाभावस्य घटभिन्नाभिन्नात्मनः सद्भावसम्भवः ।

भारती

समाधान—परस्पर में तादात्म्य मानने वाले भाट्ट एवं जैन पदार्थमात्र को सत् और असत् उभयात्मक मानते हैं । अतः उनके मत में अभाव एवं प्रतियोगी का सामानाधिकरण्य भी मानते हैं । उनका स्वरूप होते हुए भी विरोध नहीं है इसलिए स्वरूपमात्र के अतिप्रसक्त होने से अभाव एवं प्रतियोगि के स्वरूप को विरोध नहीं कह सकते ।

यदि कहें कि अभाव एवं प्रतियोगि का स्वरूपमात्र विरोध नहीं है अपितु—परस्पर असमानाधिकरण पदार्थों (अभाव प्रतियोगी) का स्वरूपविशेष ही विरोध है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि स्वरूपगत विशेष का ही निर्वचन करना है और वह स्वरूपगत विशेष अनुयोगित्व प्रतियोगित्व से भिन्न निर्वचन नहीं किया जा सकता । अतः अनुयोगि प्रतियोगिभाव को ही विरोध कहना होगा ।

किञ्च—यदि असामानाधिकरण्यमात्ररूप (सहअनवस्थानमात्ररूप) ही विरोध है तो गोत्व अश्वत्व के विरोध से भाव-अभाव (अनुयोगि प्रतियोगी) के विरोध में भेद ही क्या रहेगा। अर्थात् अनुभूयमान (अनुभवसिद्ध) स्वरूप से ही भावाभाव के विरोध का अपलाप नहीं कर सकते ।

किञ्च परस्पर विरुद्ध अव्याप्यवृत्ति संयोगादि एवं संयोगादि के अभाव के सामानाधिकरण्य की उपपत्ति लिए प्रकारभेद (अवच्छेदकभेद) के द्वारा व्यवस्था (विरोधापत्ति का परिहार) क्यों

अथ घटादिविशेषितयोस्तयोर्निषेधौ तौ, सविशेषणौ च विधिनिषेधौ न कथञ्चिद्विशेषणमनुपसङ्क्रम्य स्यातामिति ब्रूषे; तदपि न, तर्हि विशिष्टस्य निषेधो विशेषणस्यापि भवतीति संसर्गान्योन्यनिषेधोऽपि संसर्गनिषेधः स्यादेवेति पुनः

शारदा

गोत्वाश्वत्वादिवद्भावाभावयोर्विरोधः, तदा घटत्वतदभावाद्योरेव विरोधोऽभ्युपेयः, नतु संयोगतदभावाद्योरपि, तयोः सामानाधिकरण्योपलम्भादित्येकावच्छेदेनासामानाधिकरण्यात्मकविरोधान्तरकल्पना किमिति क्रियते । भावाभावयोरवश्यं कथमप्यसामानाधिकरण्यात्मको विरोध उपपाद्योऽन्यथा भावत्वाभावत्वव्याघात इति चेदेवं तर्हि स्वरूपतोविरोधस्त्वयाऽभ्युपेत एव, तस्य तु विरोधान्तरव्याप्यत्वमप्यभ्युपगतमित्यन्यत्। केवलान्वयिषु व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकेषु मिथ्यात्वघटकीभूतेषु चाभावेषु व्यभिचारेण विरोधान्तरव्याप्यत्वमप्रामाणिकम्, स्वरूपसम्बन्धविशेषात्मकस्य प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य तत्रापि सद्भावादिति तु द्रष्टव्यम् ।

तयोः = संसर्गतादात्म्ययोः । तौ = संसर्गाभावान्योन्याभावौ । सविशेषणौ विधिनिषेधौ = विशिष्टसद्भावतदभावविषयकबोधौ । विशेषणमनुपसङ्क्रम्य = विशेषणसद्भावतदभावावनवगाह्य । संसर्गान्योन्यनिषेधः = संसर्गीयतादात्म्यस्य निषेधः,

राजहंसः

विरोधान्तरव्याप्यत्वमिति । विरोधान्तरं = सहानवस्थानम् ।

भारती

की गई है। सामानाधिकरण्य प्रमा के रहने पर सामानाधिकरण्य की अप्रमा अर्थात् असामानाधिकरण्य विषयक ज्ञान तो माना ही नहीं जा सकता।

(यहाँ भाव यह है कि यदि गोत्व अश्वत्व के समान भावाभाव का विरोध भी असामानाधिकरण्य रूप (सहानवस्थानरूप) या समानाधिकरणत्वेन अप्रमीयमाणत्व (सहावस्थानत्वेनाप्रमितत्व) रूप ही मान लें तो वह उक्त प्रकार का विरोध घट-घटाभाव का ही मानना होगा, न कि संयोग-संयोगाभावादि का, क्योंकि संयोग-संयोगाभाव का सामाधिकरण्य देखा जाता है। इसलिए संयोग-संयोगाभाव के एकावच्छेदेन असामानाधिकरण्यात्मक विरोधान्तर की कल्पना क्यों की जाती है। जबकि तार्किक सम्प्रदाय में संयोग-संयोगाभाव का एकावच्छेदेन असानाधिकरण्यात्मक विरोध माना जाता है और इसी विरोध के परिहार के लिए भिन्न-भिन्न अवच्छेदक की कल्पना की जाती है। तस्मात् अनुयोगी प्रतियोगी भावरूप विरोध ही मानना उचित है।

प्रश्न—घटादि विशेषित संसर्ग का निषेध संसर्गाभाव है, और घटादिविशेषित तादात्म्य का निषेध अन्योन्याभाव है। विशिष्ट के सद्भाव—असद्भावविषयक बोध विशेषण के सद्भाव—असद्भाव को विषय किए बिना नहीं हो सकता। अतः विशिष्ट विषयक निषेध विशेषण विषयक भी होता ही है।

स प्रसङ्गो वज्रलेपायते। अन्योन्याप्रतियोगिकसंसर्गप्रतिषेधस्तथा विवक्षितः एवमयोन्यनिषेधोऽपि संसर्गाप्रतियोगिकत्वेन निर्वाच्य इति चेन्न; एवं तर्ह्यन्योन्यसंसर्गाभावः संसर्गान्योन्याभावश्चापरा कोटिः स्यात्।

शारदा

अन्योन्यशब्दस्य तादात्म्यपरत्वात्। स प्रसङ्ग इति। **स्मृतित्वसंसर्गस्यान्योन्याभावमादाय स्मृतित्वसंसर्गाभावस्य स्मृतावपि सत्त्वेन तस्या अनुभूतित्वप्रसङ्गः। तादात्म्याप्रतियोगिकत्वे सति संसर्गप्रतियोगिकोऽभावः संसर्गाभावः, संसर्गाप्रतियोगिकत्वे सति तादात्म्यप्रतियोगिकस्त्वभावोऽन्योन्याभावः, तथा च स्मृतित्वसंसर्गस्य तादात्म्यप्रतियोगिकाभावो न संसर्गाभाव इति नोक्तदोष इत्याहान्योन्येति।** अपरेति **भेदसंसर्गाभावातिरिक्तेत्यर्थः। ननु विशिष्टनिषेधप्रत्ययस्य विशेषणनिषेधावगाहित्वमसति बाधके ब्रूमः स्मृतित्वसंसर्गस्य तु स्मृतौ सत्त्वप्रमितेस्तत्तादात्म्यनिषेधस्य न स्मृतित्वसंसर्गप्रतियोगिकत्वसम्भव इति चेन्न; एवं हि समवायादिना घटस्य सत्त्वे एव घटसंयोगादेर्निषेधस्य घटप्रतियोगिकत्वं न स्यादिति न विशेषितनिषेधपक्षेऽपि निस्तारः। तत्र संयोगादिना घटस्यासत्त्वात्तत्प्रतियोगिकत्वसम्भव इति तु प्रकृतेऽपि समम्, तादात्म्येन स्मृतित्वसंसर्गस्य स्मृतावसद्भावात्। अथ प्रतियोगिविशेषणत्वासमानाधिकरणायास्तादात्म्यनिष्ठप्रतियोगिताया अनिरूपकत्वमन्योन्याप्रतियोगिकत्वम्, प्रतियोगिविशेषणत्वासमानाधिकरणायाः संसर्गनिष्ठप्रतियोगिताया अनिरूपकत्वं च संसर्गाप्रतियोगिकत्वं निर्वाच्यम्, एवं च तादात्म्यीयसंसर्गाभावस्य प्रतियोगिविशेषणतासमानाधिकरणतादात्म्यनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकत्वेन संसर्गीयतादात्म्यनिषेधस्य च प्रतियोगिविशेषणतासमानाधिकरणसंसर्गनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकत्वेन**

राजहंसः

न विशेषितनिषेधपक्षेऽपि निस्तार इति। निस्तारः = घटस्यस दातनत्वाद्यापत्तिपरिहारः।

भारती

समाधान—इस प्रकार लक्षण के द्वारा भी संसर्गाभाव-अन्योन्याभाव का भेद नहीं कर सकते, क्योंकि विशिष्टविषयक निषेध विशेषण को भी विषय करता ही है'' ऐसा मानने पर संसर्ग के तादात्म्य का निषेध भी संसर्ग का (संसर्गविषयक) निषेध माना जायेगा, इसलिए स्मृतित्व के संसर्ग का अन्योन्याभाव लेकर स्मृतित्वसंसर्गाभाव के स्मृति में भी विद्यमान होने से स्मृति में अनुभूतित्वापत्ति रूप (अनुभूति लक्षण की अतिव्याप्ति) उक्त दोष तदवस्थ ही है।

प्रश्न—अन्योन्य अर्थात् तादात्म्य है अप्रतियोगी जिसका, एवं संसर्ग है प्रतियोगी जिसका (तादात्म्य अप्रतियोगिक एवं संसर्गप्रतियोगिक अभाव) ऐसा अभाव संसर्गाभाव है, और संसर्ग है अप्रतियोगी जिसका, एवं तादात्म्य है प्रतियोगि जिसका (संसर्ग अप्रतियोगिक एवं तादात्म्य प्रतियोगिक अभाव) ऐसा अभाव अन्योन्याभाव है। इस प्रकार संसर्गाभाव-अन्योन्याभाव का निर्वचन करने से स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि स्मृतित्वसंसर्ग का तादात्म्यप्रतियोगिक अभाव तो तादात्म्य प्रतियोगिक होने से संसर्गाभाव ही नहीं है।

समाधान—इस प्रकार लक्षण करने पर अन्योन्यसंसर्गाभाव और संसर्गान्योन्याभाव

किञ्च, एवं सति संसर्गाभावोऽन्योन्याभावो यो न भवति स संसर्गाभावतया विवक्षित इत्युक्तं स्यात् । तथा च संसर्गविशेषणं व्यर्थमिति संसर्गाभावमर्थमधिकमाकाङ्क्षता त्वयाऽन्वर्थः संसर्गाभावशब्दोऽपि हारितः स्यात् । किञ्चानयापि वाचाऽन्योन्याभावनिषेधोऽभिधीयमानोऽन्योन्या-भावेऽपि प्रसज्यते; नह्यन्योन्याभावोऽन्योन्याभावो भवतीति शक्यं प्रमातुम्, सामानाधिकरण्यं हि प्रकारभेदे सति भवति, यथा नीलमुत्पलमित्यादि, ततस्तदभावादेव न तथेत्यतिप्रसङ्गः ।

शारदा

नातिरेकप्रसङ्ग इत्यस्वरसादाह किञ्चेति । **अन्योन्याप्रतियोगिकेत्यस्यार्थः 'अन्योन्याभावो यो न भवती'ति, तथापदार्थः 'संसर्गाभावतये'ति** । व्यर्थमिति । **लक्षणे इत्यादिः** । इतीति । **तस्य त्यागावश्यकत्वे इति शेषः । संसर्गाभावम् = भेदभिन्नाभावम् । अधिकम् = संसर्गाभावशब्दयोगशक्त्यलभ्यम् । संसर्गशब्दस्य लक्षणवाक्यघटकत्वे संसर्गप्रतियोगिकाभावरूपयोगार्थस्य न त्याग इत्युपष्टम्भसङ्गतिः । यथा भेदत्वादिवत्संसर्गाभावत्वस्याखण्डस्याननुभवेन नाखण्डोपाधित्वं तस्य तार्किकैरनुमन्यते तथा संसर्गाभावशब्देन भेदभिन्नाभावत्वेनापि तस्याननुभवेन ताद्रूप्येण तत्पदबोध्यत्वमपि नानुमन्तुमर्हमित्याशयः । संसर्गाभावपदस्य रूढत्वपक्षमभ्युपेत्याप्याह** किञ्चेति । नहीति । **शक्यं प्रमातुमित्यन्वयः । सिद्ध्यसिद्धिव्याघातस्तु नोद्भावनीयः, अन्योन्याभावोऽन्योन्याभावइति बुद्धौ प्रमात्वस्य वा तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नभेदत्वावच्छिन्नप्रकारतायां भेदत्वावच्छिन्नप्रमीयविशेष्यतानिरूपितत्वस्य वा**

भारती

दोनों ही पूर्वोक्त अन्योन्याभाव-संसर्गाभाव दोनों से पृथक् तृतीय प्रकार के अभाव माने जायेंगे, क्योंकि ''अत्र अन्योन्यं नास्ति'' इत्यादि प्रतीतिसिद्ध अन्योन्यसंसर्गाभाव अन्योन्य (तादात्म्य) प्रतियोगिक होने से संसर्गाभाव नहीं हो सकता और संसर्गो न'' इत्याकारक संसर्गान्योन्याभाव संसर्ग प्रतियोगिक होने से अन्योन्याभाव नहीं हो सकता । अत: इन्हें तृतीय कोटि ही मानना होगा ।

किञ्च—अन्योन्य अप्रतियोगिक संसर्ग प्रतियोगिक अभाव संसर्गाभाव है इस लक्षण में ''अन्योन्य अप्रतियोगिक'' इसका अर्थ है—अन्योन्याभाव से भिन्न संसर्गाभाव-संसर्गाभाव है'' । किन्तु इस प्रकार अर्थ होने पर उक्त लक्षण में संसर्ग रूप विशेषण व्यर्थ हो जायेगा । (अन्योन्याभाव से भिन्न अभाव-'' इतना ही लक्षण पर्याप्त होगा ।) और व्यर्थ होने से संसर्ग—रूप विशेषण का परित्याग करने पर संसर्गाभावशब्द की व्युत्पत्ति से अलभ्य अर्थ की कामना करने वाले आपको संसर्गाभावशब्द के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ का भी परित्याग करना पड़ा। (जैसा कि ग्रन्थाकार श्री श्रीहर्ष ने अनेकत्र दोष दिया है—वृद्धिमिच्छत: मूलमपिनष्टमिति हा कष्टतरम्'' (ब्याज की कामना वाले आपका मूलधन भी नष्ट हो गया यह महान् कष्ट है ।) इस न्याय का अनुसरण यहाँ भी हो गया'' यह अभिप्राय है ।)

शारदा

निषेधे तात्पर्यात्। सामानाधिकरण्यं = अभेदान्वयबोधौपयिकाकाङ्क्षाशालिनामद्वयत्वं, समानविभक्तिकनाम्नोरभेदान्वयबोधौपयिकत्वमिति यावत्, अभेदविषयकप्रमात्वमिति तु परमार्थः, शाब्दातिरिक्ततादृशप्रमाया अपि भिन्नप्रकारविषयकत्वनियमस्य वक्तव्यत्वात्। प्रकारभेदे = उद्देश्यताविधेयतावच्छेदकयोर्भेदे। तदभावादेव = उद्देश्यता-विधेयतावच्छेदकयोर्भेदाभावादेव। न तथा = अन्योन्याभावत्वावच्छिन्ने तदवच्छिन्नाभेदधियः प्रमात्वं न। अन्योन्याभावत्वावच्छिन्ने तदवच्छिन्नस्याभेदो नेति यावत्। तथा च भेदस्यार्थप्राप्तत्वेन भेदभिन्नाभावत्वं संसर्गाभावलक्षणं भेदेऽतिप्रसक्तम्। न च निरुक्तप्रतियोगितानिरूपकत्वात्यन्ताभाव एव विवक्षणीयो नतु तन्निरूपकभेद इति वाच्यम्; तन्निरूपकभेदस्य प्रसक्तौ तादृशनिरूपकत्वात्यन्ताभावस्यापि प्रसक्तत्वात्, तादात्म्यनिष्ठप्रतियोगितायां यत्किञ्चित्प्रतियोगिविशेषणत्वसामानाधिकरण्यस्य सत्त्या स्वप्रतियोगिविशेषणताया विवक्षणीयत्वेन पूर्वोक्ताननुगमादीनां जागरूकत्वाच्च। न च भेदो भेद इत्यस्या अप्रमात्वेऽपि भेदो भेदाभिन्न इति प्रमयैवाभीष्टसिद्धिरिति देश्यम्; भेदाभेदस्य भेदत्वस्वरूपत्वेन विधेयांशेऽधिकावगाहिताया उक्तप्रतीतावभावात्, भेदो भेद इति सामानाधिकरण्यधियोऽप्रमात्वे, तस्या अप्यविश्वसनीयत्वाच्च, नहि नीलमुत्पलमितिप्रमितिविरहे नीलाभिन्नमुत्पलमितिमितिः प्रमात्वमालम्बेत। अतएव भेदे भेदत्वमिति प्रतीत्यापि न फलतो भेदत्वावच्छिन्नस्य भेदत्वावच्छिन्नात्मकतासिद्धि, उद्देश्यतावच्छेदकविधेययोरैक्यात्। अज्ञातविषयकत्वाभावे हि न प्रमात्वम्, न चोक्तप्रतीतीनां स्वकारणीभूतविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविषयादतिरिक्तोऽपि विषयो येनाज्ञातविषयकत्वं स्यात्। विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धिं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कारणत्वानुपगमे कार्यकारणीभूतज्ञानयोर्विषयतावैलक्षण्योपगमेऽपि वा ज्ञातज्ञापकसाम्यं नापाकर्तुं शक्यम्, नहि भेदो भेद इत्यादिधियां संशयादिनिवर्तकत्वम्, भेदो न भेद इत्यादेराहार्यतया निव-र्त्यत्वाभावात्। एवञ्च भेदसामानाधिकरण्योपलिक्षतततादात्म्यावगाहित्वे एवःभेदसंसर्गकधियः प्रमात्वम्, भेदसमानाधिकरणसंसर्गान्तरावगाहित्वेनैव च भेदसंसर्गकधियः प्रमात्वम्, अन्यथा

राजहंस:

भेदसामानाधिकरण्योपलक्षितेति। भेदो भेद इत्यत्र तु तादात्म्यं परं भायात्, न तु भेदसमानाधिकरणं तत्, रूपभेदाभावात्, एवमपि भेदावगाहने तु न परमज्ञातविषयकत्वा-भावप्रयुक्तमप्रमात्वमपि तु बाधितविषयकत्वप्रयुक्तमपि। किञ्च भेदत्वोपहितव्यक्तिमात्रे भेदत्वावगाहनस्य

भारती

किञ्च "अन्योन्याभावो यो न भवति अभाव" (इस वाग्भङ्गी के द्वारा कथित अन्योन्याभाव का निषेध अन्योन्याभाव में प्रसक्त (प्राप्त) होता है। कारण कि—अन्योन्याभाव अन्योन्याभाव है" ऐसी प्रमा नहीं की जा सकती है, क्योंकि सामानाधिकरण्यबोध अर्थात् समानविभक्तिक पदद्वय के द्वारा अभेदान्वयबोध प्रकारभेद अर्थात् उद्देश्यतावच्छेदक एवं विधेयतावच्छेदक के भेद होने पर ही होता है जैसा कि नीलम् उत्पलम्" इत्यादि में देखा जाता है। एवञ्च प्रकृत में उद्देश्यतावच्छेदक (अन्योन्याभावत्व) तथा विधेयतावच्छेदक (अन्योन्याभावत्व) के भेदाभाव

अन्यश्चान्योन्याभावेष्वेव तिष्ठन्नेव कः प्रमेयो यद्वति तथा कथ्यते? अभावमात्रे त्वतिप्रसङ्गात् । व्यक्तिविशेषे च शेषेष्वन्योन्याभावेषु

शारदा

तद्घटस्तद्घटवानिति धियोऽपि प्रमात्वापत्तेः, तद्वारणाय प्रमात्वान्तरनिर्वचने च प्रमापदार्थस्य पारिभाषिकत्वापत्तिरिति लघुचन्द्रिकाकारानुसारिणी सरणिः। **ननु भेदो न भेद इत्यादेराहार्यत्वस्य त्वयाप्युक्तत्वाद् भेदत्वावच्छिन्ने तदवच्छिन्नस्य भेदविरहेणार्थप्राप्तोऽभेद इति मयापि सुवचमिति नोक्तातिप्रसङ्ग इति चेदेवं तर्हि तदवच्छिन्ने तदवच्छिन्नस्य नाभेदो नापि भेद इति तृतीयैव सरणिरनिर्वाच्यतेति तद्वादिन एव विजयन्ते । अन्यः = भेदत्वान्यः । अन्योन्याभावेष्वेव तिष्ठन्नेव = भेदत्वान्यूनानतिरिक्तवृत्तिः । यद्वति = यमुद्देश्यतावच्छेदकीकृत्य । तथाकथ्यते = अभेदसंसर्गेण भेदत्वावच्छिन्नं विधीयते । यद्यपि भेदमात्रवृत्तित्वविशिष्टप्रमेयत्वादिकं भेदत्वान्यूनानतिरिक्तवृत्ति, तथापि तदवच्छेदेन भेदत्वावच्छिन्नाभेदविधाने भेदत्वावच्छेदेन तदसिद्धिरेवेति तेन रूपेणैव भेदातिरेकमादायातिप्रसञ्जनं सुकरम् । किञ्च तादृशप्रमेयत्वस्य विधेयकोट्यन्तःपातोपपत्तावप्युद्देश्यकोट्यन्तःपातो न सोपपत्तिकः । किञ्च भेदे भेदानतिरेकासिद्धौ भेदातिरिक्तावृत्तित्वं प्रमातुं शक्यं न क्वापि । आत्माश्रयाद्यापत्तेस्तु संसर्गाभावातिरिक्ताभावत्वस्योद्देश्यतावच्छेदकत्वं नाशङ्क्यमपि । अभावमात्रे = अभावत्वावच्छेदेन तथाविधाने तु संसर्गाभावस्यापि भेदत्वापत्तिरुद्भाव्या । अभावत्वसामानाधिकरण्येन तथा विधानं चेत्तदाह** व्यक्तिविशेषे इति । **व्यक्तिविशेषमुद्दिश्य तथाविधाने इत्यर्थः । सामानाधिकरण्येन बाधबुद्धेरवच्छेदकावच्छेदेन विशिष्टबुद्धिविरोधित्वादाह** शेषेष्विति ।

राजहंसः

भेद इत्येवानवच्छिन्नविशेष्यताकधिया सम्भवः, भेदत्वविशिष्टे तदवगाहनं तु भेदो भेद इति धीः कुर्यात् , तत्र च विशेषणस्य प्रकृतविधेयान्वयित्वन्यायेन भेदत्वेऽपि भेदत्वस्य भानेन बाधितविषयकत्वं निर्बाधम् ।

भारती

होने से (भेद न होने से) "अन्योन्याभावोऽन्योन्याभावः" इस प्रकार अन्योन्याभाव में अन्योन्याभाव का अभेदान्वयबोध (अभेदप्रमा) नहीं हो सकता । तथाच भेद के अर्थ प्राप्त होने से अन्योन्याभाव से भिन्न अभाव (भेदभिन्नाभावत्वम्) यह संसर्गाभाव का लक्षण अन्योन्याभाव में अतिव्याप्त है । अन्योन्याभावत्व से भिन्न अन्योन्याभावमात्र वृत्ति अर्थात् अन्योन्याभावत्व से अन्यूनानतिरिक्त वृत्ति कोई धर्म नहीं है जिसे उद्देश्यतावच्छेदक बना कर अभेदसम्बन्ध से अन्योन्याभाव में अन्योन्याभाव का विधान किया जा सके, और अभावत्वावच्छेदेन (अभावत्व को अवच्छेदक मान कर) "अभावः अन्योन्याभावः" इस प्रकार यदि अन्योन्याभाव का विधान करें तो संसर्गाभाव भी अन्योन्याभव हो जायेगा, क्योंकि अभावोऽन्योन्याभाव इस वाक्य में अभावशब्द से संसर्गाभाव भी लिया जा सकता है । यदि अभावत्व सामानाधिकरण्येन व्यक्ति विशेष में अर्थात् घटान्योन्याभाव में "घटान्योन्याभावः अन्योन्याभावः" इस प्रकार अन्योन्याभावत्व का अभेद सम्बन्ध से विधान करें तो घटान्योन्याभाव से अतिरिक्त पटान्योन्याभावादि में

संसर्गाभावत्वापत्तेः । एतच्च सर्वत्र तदन्यत्वेन व्यवच्छेद्यमाने द्रष्टव्यम् । तथाहि–

नातत्तन्मन्यसे तावन्न तत्तदपि मंस्यसे ।
सामानाधिकरण्यं हि रूपभेदमपेक्षते ।। २९।।

शारदा

संसर्गाभावत्वापत्तेरिति । **उद्भाव्यत्वादिति शेषः । नच–शेषेष्वेतद्भेदातिरिक्तभेदत्वेनैव संसर्गाभावत्वस्यापादनीयत्वात्तेन रूपेण तत्र भेदात्मता मयापि सुवचेति–वाच्यम्; विधेयांशेऽधिकानवगाहितया दत्तोत्तरत्वात् । तदंशे आधिक्यसम्पत्तिमात्रप्रयोजनक-मनाकाङ्क्षितविशेषणाभिधानं तु न युक्तम्; उद्देश्यवाचकपदेनैवावगततया घटस्यापूर्वत्वविरहेणाधिकांशस्यैव विधेयताया औचित्येऽपि घटो नीलघटो नवेति संशयस्य घटो नील इत्यसामानाकारकप्रतित्त्यप्रतिबध्यतामुपगच्छद्भिर्हि घटो नीलघट इति प्रयोगोऽनुमन्यते, न च प्रकृते भेदः प्रमेयभेदो नवेत्यादिसंशयो येन तथा स्यात् । एवं च कथायां प्रतिवादी नेत्थं शक्यः प्रतिपादयितुम् । स्वयमपि च केनापि प्रातिस्विकरूपेण तत्र तत्र भेदात्मता प्रतिपत्तुं न पार्यते इति व्यक्तमेव । एवञ्च भेदत्वेन रूपेण भेदस्याति-प्रसङ्गस्थलत्वं दुष्परिहरमेवेति भावः । सर्वत्र = निश्चयभिन्नत्वे सति ज्ञानत्वं संशयत्वमित्यादौ। तदन्यत्वेन = अलक्ष्यान्यत्वेन । निश्चयो निश्चय इति प्रतीतेरप्रमात्वेन तत्र तद्भेदस्यार्थप्राप्त-त्वादतिप्रसङ्ग इति भावः ।** मन्यसे इति । **योग्यताविरहादिति भावः ।** न तत्तदिति **तत्पदद्वयं तद्धर्मावच्छिन्नपरम् । तेन घटः कम्बुग्रीवादिमानित्यादिप्रतीतेः प्रमात्वेऽपि न क्षतिः ।** सामानाधिकरण्यमिति । **न परं शाब्दबुद्धित्वावच्छिन्नं शाब्दप्रमात्वावच्छिन्नं वा प्रति तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन**

राजहंसः

स्वयमपि च केनापीति जनेनेति शेषः ।

भारती

संसर्गाभावत्व की आपत्ति होगी क्योंकि पटान्योन्याभाव में अन्योन्याभावत्व का विधान नहीं है ।

एवञ्च जिन-जिन लक्षणों में अलक्ष्यभिन्नत्वेन इतरव्यावृत्ति (अलक्ष्यभिन्नत्व का निवेश कर अलक्ष्य व्यावृत्ततया लक्ष्य का निर्धारण) करेंङ्गें जैसे—''निश्चयभिन्नत्वे सति ज्ञानत्वं संशयत्वम्'' इत्यादि, उन सभी लक्षणों में यह दोष रहेगा ही । (तात्पर्य यह है कि जैसे निश्चयभिन्नत्वे सति ज्ञानत्वं संशयत्वम्'' इस लक्षण में ''निश्चयो निश्चयः'' यह प्रतीति प्रमात्मक नहीं हो सकती, अतः निश्चय में भी निश्चय का भेद अर्थात् प्राप्त होने से उक्तसंशय का लक्षण निश्चय में अतिव्याप्त है । इसी प्रकार से अलक्ष्यभिन्नत्वघटित सभी लक्षणों की अलक्ष्य में अतिव्याप्ति होगी ।) दोष के रहने का प्रकार कारिका से दिखाते हैं—अतत् वस्तु अर्थात् अघट = पट, तत् = घट नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पट में घट होने की योग्यता नहीं है, इसी प्रकार तत् अर्थात् घट भी तत् = घट नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उद्देश्यतावच्छेदक और विधेयतावच्छेदक के अभेद (एक) होने से ''घटो घट'' के द्वारा प्रमिति नहीं हो सकती । क्योंकि सामानाधिकरण्यप्रमिति अर्थात्

रूपान्तरेण निर्दिश्य तच्चेत्तदभिधीयते ।
ताद्रूप्येण तथापि स्यात्सैव सव्यभिचारिता ।। ३० ।।

अपि चान्योन्याभावस्य संसर्गाभावोप्येवं व्यवच्छिन्नः स्यात्, तस्याप्यन्योन्यप्रतियोगिकत्वात् । अथान्योन्याभावस्य संसर्गाभावो नामाधिको नोपेयते एव यमादाय तथा स्यादिति चेन्न; एवं

शारदा

तद्धर्मभेदोऽपेक्षितोऽपि तु प्रमात्वावच्छिन्नमेव प्रतीतिभावः, अन्यथा शाब्दातिरिक्तप्रमयैव तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्धर्मावच्छिन्नात्मकतासिद्धिसम्भवेनासङ्गतिः स्पष्टैव । युक्तिस्तूक्तैव । एवञ्चावच्छेदकभेदस्यापेक्षणीयत्वे तेन रूपेणावच्छेद्ययोरपि भेदस्यानुभविकत्वा-दात्यन्तिकाभेदाभिप्रायेण तत्तदपीति यथाश्रुतमपि सम्यगेव । रूपान्तरेण = भेदत्वासमनियतधर्मेण । निर्दिश्य = उद्दिश्य । ताद्रूप्येण = भेदत्वेन रूपेण भेदे भेदत्वावच्छिन्नभेदमादाय सव्यभिचारिता = संसर्गाभावलक्षणस्यातिप्रसक्तता । तदवच्छिन्ने तदवच्छिन्नस्य नाभेदो नापि भेद इति पूर्वोक्तवस्तुगतिमनुरुध्य दोषान्तरमाह अपिचेति । अन्योन्यप्रतियोगिकत्वादिति । **अन्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वे तद्विशेषणीभूततादात्म्या-त्मकान्योन्यस्य प्रतियोगितायास्त्वदुक्तपथेनैव प्राप्तत्वादिति भावः। यद्यप्यन्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वे तादात्म्ये प्रतियोगिविशेषणतासमानाधिकरणैव प्रतियोगितेति तदसमानाधिकरण-प्रतियोगित्वानिरूपकत्वसत्त्वेन नाव्याप्तिः, अन्योन्याभावस्याप्रतियोगित्वे तु तादात्म्यस्य प्रतियोगितायाःशङ्कयाप्यनास्कन्दनेन नितरां न सा । तथापि यथाश्रुते एवेदं दूषणं द्रष्टव्यम्।**

राजहंसः

भेदत्वासमनियतधर्मेणेति । यद्यपि भेदत्वभिन्नेनेत्येतावदेव वक्तुमुचितम् , तच्च भेदत्वसमनियतं वा तदसमनियतं वेत्यन्यत् , तथापि तत्समनियतधर्मस्य 'कः प्रमेयः' इत्यनेन मूले आक्षिप्तस्य टीकायामनुपदमपाकृततया पारिशेष्यमनुरुध्यसमनियतेत्युक्तम् ।

भारती

तद्धर्मावच्छिन्न में तद्धर्मावच्छिन्न का अभेदप्रमारूपबोध उद्देश्यतावच्छेदक एवं विधेयतावच्छेदक के भेद की अपेक्षा करता है । अर्थात् तादृश अभेदप्रमिति के प्रति तद्धर्म भेद कारण है । और यदि प्रकृत में भेदत्व से असमनियत धर्मान्तर (प्रमेयत्वादि) को उद्देश्य बनाकर अन्योन्याभाव का विधान करें तो भेदत्वरूप से भेद में भेद के भेद को लेकर ''अन्योन्याभावभिन्नत्वे सति अभावत्ववम्'' इस संसर्गाभाव के लक्षण की भेद (अन्योन्याभाव) में अतिव्याप्ति हो ही जायेगी ।

अपि च अन्योन्याप्रतियोगिकत्वे सति संसर्गप्रतियोगिकोऽभावः संसर्गाभावः'' इस प्रकार लक्षण बनाने पर—अन्योन्याभाव का संसर्गाभाव भी संसर्गाभाव न होगा, क्योंकि वह अन्योन्य (तादात्म्य) प्रतियोगिक है । तथा च संसर्गाभाव के उक्तलक्षण की अन्योन्याभाव के संसर्गाभाव में अव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि अन्योन्याभाव के संसर्गाभाव को अन्योन्याभाव से भिन्न नहीं मानेंगे, जिसे

तर्ह्यन्योन्याभावस्यान्योन्याभावोऽपि नाधिकोऽभ्युपगन्तव्यः स्यादित्यन्योन्याप्रतियोगिकत्वेन व्यवच्छेदोऽपि संसर्गाभावस्य त्वदभिमतस्य कथं स्यात् ? व्यवच्छेदस्य निषेधार्थत्वात् । अथ मा भूदधिकोऽसौ स्वरूपमेव तु तथेष्यते इति तदादायैव व्यवहार एष निर्द्दोष इति चेत्; तर्ह्यन्योन्याभवसंसर्गव्यतिरेकेऽपि तुल्यमेतत् ।

शारदा

अधिक इति । **भेदस्य नित्यत्वेन तत्प्रागभावध्वंसयोः केवलान्वयित्वेन च सामान्यतस्तदत्यन्ताभावस्याप्रसिद्धत्वात् विशिष्य घटान्योन्याभावात्यन्ताभावादावेवाव्याप्ति-र्वक्तव्या, तस्य च तादात्म्येन घटादिसमनैयत्येन, अभावमात्राधिकरणकस्येवाभावमात्र-प्रतियोगिकस्याप्यधिकरणात्मकतेतिमतेन वा घटात्मकता घटत्वाद्यात्मता वोपगन्तव्या, लाघवात् अन्यथाऽनवस्थानादित्यर्थः । घटभेदात्मकताभिधानं तु न युज्यते, पटे घटभेदात्यन्ताभावस्य घटे घटभेदस्य च सद्भावप्रसङ्गनात् । तथा स्यात् = अव्याप्तिः स्यात्।** नाधिक इति। **भेदप्रतियोगिकभेदस्य प्रथमभेदात्मकत्वं वाऽधिकरणात्मकत्वं वेत्यर्थः। अन्योन्याप्रतियोगिकत्वेन व्यवच्छेदः = संसर्गाभावेऽन्योन्याप्रतियोगिकत्वप्रयुक्तोऽन्योन्या-भावाद्भेदः।** कथमिति। **तस्यातिरिक्तस्य संसर्गाभावेऽनभ्युपगमे तत्सम्पत्त्यर्थं संसर्गाभाव-लक्षणेऽन्योन्याप्रतियोगिकत्वविशेषणवैयर्थ्यमिति भावः । स्वरूपमेव = प्रथमभेदस्या-धिकरणस्य वा स्वरूपमेव ।** व्यवहार इति। **संसर्गाभावेऽन्योन्याभावप्रतियोगिकभेदव्यवहार इत्यर्थः।**

भारती

लेकर संसर्गाभाव में अव्याप्ति हो सके । (तात्पर्य यह है कि यदि अन्योन्याभाव के संसर्गाभाव को अन्योन्याभाव से अतिरिक्त (भिन्न) मानते तो वह अन्योन्याभाव से भिन्न अभाव होने से संसर्गाभाव माना जाता, और उसके अन्योन्य (तादात्म्य) प्रतियोगिक होने से— ''अन्योन्याप्रतियागिकत्वे सति संसर्गप्रतियोगिकोऽभावः संसर्गाभावः'' यह संसर्गाभाव का लक्षण उसमें अव्याप्त होता, किन्तु जब हम उसे अन्योन्याभाव से भिन्न मानते ही नहीं हैं तो वह संसर्गाभाव के उक्तलक्षण का लक्ष्य न होने से उसमें लक्षण के न जाने से अव्याप्ति दोष नहीं है ।) तो यह आपका कथन ठीक नहीं है क्योंकि अन्योन्याभाव के संसर्गाभाव के समान ही अन्योन्याभाव के अन्योन्याभाव को भी अतिरिक्त (अन्योन्याभाव से भिन्न) नहीं मानना चाहिए, अर्थात् भेदप्रतियोगिक भेद भी अतिरिक्त न होने पर क्या उसे प्रथम भेदरूप मानेङ्गे या अधिकाणात्मक मानेङ्गे । ऐसी स्थिति में अन्योन्याप्रतिागिकत्व विशेषण के द्वारा संसर्गाभाव की व्यावृत्ति (अन्योन्याभाव से भेद) जो कि आपको अभिप्रेत है कैसे सिद्ध होगा । क्योंकि अन्योन्याभाव के अन्योन्याभाव (भेदप्रतियोगिक भेद) को अतिरिक्त न मानकर जब संसर्गाभाव में नहीं मानेंगे तो उस संसर्गाभाव की व्यावृत्ति के लिए अन्योन्याप्रतियोगिकत्व विशेषण देना भी व्यर्थ हो जायेगा । क्योंकि अन्योन्याप्रतियोगिकत्व विशेषण के द्वारा व्यवच्छेद भी निषेधार्थक है अर्थात् अन्योन्याभाव रूप ही है ।

अपि चान्योन्यप्रतियोगिको न भवत्यभावो यः स संसर्गाभाव इति वदताऽन्योन्यप्रतियोगिकेऽभावे निषिध्यमानेऽन्योन्यात्मकोऽसाव

शारदा

अनवस्थापेक्षयैकत्र प्रतियोग्यनुयोगिभावस्याधाराधेयभावस्य वा सहनौंचित्यादिति भावः। तुल्यमिति । **घटाद्यात्मना वर्तमानस्य घटभेदाभावस्य व्यवहारान्तरौ-पयिकत्वेऽव्याप्तिस्थलतापि सम्भवत्येवेति भावः । उक्तरीत्या विवक्षितपक्षे नेयमव्याप्तिरित्यतो दोषान्तरमाह** अपि चेति । **अन्योन्यप्रतियोगिको न भवतीत्यस्मादन्योन्यप्रतियोगिक-प्रतितियोगिकभेदो भासते, अन्योन्यपदार्थश्च तादात्म्यम्, तच्च तत्तद्व्यक्त्यतिरेकि न सुवचम्, यदाहुः-''तद्व्यक्तित्वं तादात्म्येन सैव व्यक्तिरिति''। एवञ्च भेदान्तरेऽ-तिव्याप्तिप्रसङ्गवारणाय यत्किञ्चिद्भेदस्याव्यावर्तनीयत्वेन भेदप्रतियोगितादात्म्यमात्रस्यैव निवेश्यतया भावाभावात्मकसर्वप्रपञ्चनिवेशस्यैव पर्यवसानेन तदभावानात्मकस्य संसर्गाभावस्य तदात्मकत्वापत्त्याऽन्योन्याभावात्मकत्व-मप्यापन्नम्; यथाहि भावाभावात्मकं जगदिति भावभिन्नस्याभावत्वमेव, अभावभिन्नस्य च भावत्वमेवापद्यते, प्रकारान्तराभावात्, तद्वत्। इयांस्तु विशेषो यदत्र भेदप्रतियोगिताया भेदेऽपि वृत्तेर्भावाभावात्मकतादात्म्यप्रतियोगिकाभावस्य स्वप्रतियोगिसमुदायान्तर्गततया तदनात्मकस्य तदात्मकत्वं व्याहतमापन्नमिति, अतएव 'महत्कौतुक'मित्युक्तम्। नहि तादात्म्याभाव इत्यत्राभावस्य भेदत्वेन प्रवेशः, येन तादात्म्याभावानात्मकं तादात्म्यात्मकं न स्यात्, किन्त्वभावत्वेन, अन्यथाऽत्माश्रयापत्तेर्भेदलक्षणे। भावात्मकतादात्म्याभावानात्मकस्य संसर्गाभावस्य भावात्मकताऽपि यद्यपि व्याहता, तथापि भेदानात्मकतासम्पत्तये उपात्तविशेषणस्य तदात्मकतासम्पादकत्वमत्युपहासास्पदमित्याशयेनैकैव**

राजहंसः

उक्तरीत्येति। यद्यप्यन्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वे इत्यादिनोक्तरीत्येत्यर्थः ।

यदाहुरिति । पक्षतायां जगदीशा इति शेषः । **भावात्मकतादाम्याभावानात्मकस्येति।** भावे भावप्रतियोगिकाभावानात्मके भावत्वाव्याहतावपि संसर्गाभावे तद्व्याहतिरिति भावः ।

भारती

यदि यह स्वीकार करें कि वह अतिरिक्त नहीं है किन्तु उसे (अन्योन्याभाव का अन्योन्याभाव) प्रथमभेदरूप या अधिकरण स्वरूप ही मानेंगें और उस प्रथमअन्योन्याभाव स्वरूप अथवा अधिकरणस्वरूप भेदप्रतियोगिक भेद के द्वारा ही संसर्गाभाव में अन्योन्याभावप्रतियोगिक भेद का व्यवहार भी निर्दोष (अनवस्थारहित) हो जायेगा । तो इस प्रकार स्वीकार करने पर अन्योन्याभाव के संसर्गाभाव (अन्योन्याभावो नास्ति इत्यादि प्रतीति के द्वारा सिद्ध) के अतिरिक्त अर्थात् अन्योन्याभाव से भिन्न न होने से घटात्मना वर्तमान उस घटभेदाभाव में व्यवहारान्तर (संसर्गाभावत्वव्यहार) का उपपादक होने पर संसर्गाभाव के उक्तलक्षण की अव्याप्ति भी संभावित हो ही जायेगी । यदि व्यवहारान्तरोपयोगित्व न मानें तो भी दोष है—अपि च अन्योन्यप्रतियोगिको न भवति अभावो यः स संसर्गाभाव (जो अभाव अन्योन्य (तादात्म्य) प्रतियोगिक (अभाव) नहीं है वह संसर्गाभाव है अर्थात् अन्योन्य प्रतियोगिक अभाव से भिन्न अभाव संसर्गाभाव है) इस प्रकार लक्षण बनाने वाले आपको

भावोभ्युपगतः स्यात्; द्वयोर्निषेधयोः सुन्दोपसुन्दतयाऽन्योन्यस्यैव स्थैर्यापत्तेः; तथा च सत्यन्योन्यस्मिन्निर्विशेषणे जगदेव प्रविष्टमिति संसर्गाभावत्वेन विवक्षितस्य जगदात्मतायां सिद्ध्यन्त्यामयोन्याभावात्मतापि स्यादिति व्यर्थो विशेषणप्रयासो हासायेति सविशेषणेप्यविशेषणवत्प्रसङ्ग इति महत्कौतुकम् । ननु' घटाभावो न भवति

शारदा

व्याहतिरुपन्यस्ता। यद्यपि सर्वप्रपञ्चान्योन्याभावोऽप्रसिद्धः, व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य तस्याविवक्षितत्वात्, अन्यथा भेदान्तरे संसर्गाभावत्वप्रसक्तेरिति तत्तत्तादात्म्याभावकूटनिवेशस्यावश्यम्भावः, तथाप्यनन्ततत्तत्तादात्म्यानां तत्तदभावानात्मकस्यानन्ततत्तत्तादात्म्यात्मकताप्रसक्त्योक्तापत्तिरत्रापि दत्तपदैव । असर्वज्ञदुर्ग्रहत्वापत्तिः पुनरधिकेत्यन्यत्। एवञ्चान्योन्याभावो न भवति संसर्गाभाव इति प्रमाणभूतया गिरा भेदस्य तादात्म्यप्रतियोगिकाभावत्वकल्पे संसर्गाभावस्य भेदात्मकतापर्यवसाने तादात्म्यनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकत्वात्यन्ताभावविवक्षयापि न निस्तारः, बाधात् । नच तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानात्मकता विवक्षाक्षमा, तादात्म्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वाभावादिना भेदभङ्गे दत्तोत्तरत्वादिति समुदायार्थः । सुन्दोपसुन्दतया = परस्परविरोधितया । सुन्दोपसन्दयोर्दैत्ययोः परस्परोपहन्तृत्वप्रसिद्धेः । अन्योन्यस्यैवेति । **तादात्म्याभावभेदस्य न तादात्म्यरूपत्वमपि तु तादात्म्यात्यन्ताभावात्यन्ताभावस्येति तु तदा स्यात्, यदि तयोः परस्परव्यावृत्तं स्वरूपं निर्वक्तुं शक्येत, संसर्गाभावत्वखण्डनेन तद्घटितात्यन्ताभावत्वस्यापि निरस्तप्रायत्वादिति भावः । निर्विशेषणे इति यावत्तादात्म्यनिवेशसूचनाय । जगदेव =**

राजहंसः

एवञ्च षष्ठ्यन्तमिदं भावात्मकतायां हेतुर्न तु व्याहताविति ध्येयम् । **अन्यथा भेदान्तरे इति ।** भेदान्तरे = यावत्त्वानवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदमात्रे ।

भारती

अन्योन्यप्रतियोगिक अभाव का निषेध होने पर इस संसर्गाभाव को अन्योन्यात्मक (अन्योन्यरूप) ही मानना होगा। (यहाँ अन्योन्यशब्द से भेदप्रतियोगिक तादात्म्यमात्र का ही ग्रहण करना होगा, क्योंकि भेदान्तर में अतिव्याप्ति के निरासार्थ यत्किञ्चित् भेद की व्यावृत्ति नहीं मान सकते । इदृश अन्योन्यात्मक संसर्गाभाव को मानना होगा ।) क्योंकि दोनों अभावों के सुन्द-उपसुन्द के समान परस्पर विरोधि होने से अन्योन्य की ही स्थिति होगी । (सुन्द उपसुन्द नामक दो राक्षस भाई भगवान् के मोहिनी रूप को देख कर परस्पर विरोधी होकर एक दूसरे के घातक (मारक) थे यह पुराण प्रसिद्ध हैं ।) ऐसी स्थिति में घटादिविशेषण से रहित इस अन्योन्य में भावाभावात्मक समस्त प्रपञ्च का ही प्रवेश हो जाने से—संसर्गाभावतया विवक्षित इस अन्योन्य के जगदात्मक (समस्तप्रपञ्च रूप) सिद्ध होने से वह संसर्गाभाव अन्योन्याभाव रूप भी हो जायेगा । एवञ्च अन्योन्याभाव की व्यावृत्ति के लिए दिया गया ''अन्योन्याप्रतियोगित्व'' विशेषण व्यर्थ एवं हास्यास्पद भी है तथा विस्मय (आश्चर्य) यह है कि विशेषण देने पर भी विशेषण रहित के समान ही दोष विद्यमान है ।

स्तम्भः' इत्युक्ते किं स्तम्भो घटात्मा विहितो भवति ? तत्कस्य हेतोः ? तदा हि तथा स्यात्, यदि घटस्तदभावश्चेत्येव जगत्स्यात्, यदा तु स्तम्भादिरप्यपरा कोटिरस्ति तदा कथं स्यादित्युक्तप्रसङ्गानवकाश इति; मैवम्, यथा घटतदभावाभ्यामन्या वस्त्रादिकमप्यस्ति कोटिस्तथान्योन्यतदभावाभ्यां नान्या कोटिः सम्भवति, निर्विशेषणान्योन्यमध्ये जगत एव प्रवेशात्, तदात्मनोऽपि निषिध्यमानत्वे तन्निषेधात्मके तदात्मनि जगत्प्रवेशात् । नहि 'घटः पटात्मे'त्यनेन

शारदा

सर्वं जगत् । अन्योन्यतदभावाभ्यामिति । **तदभावस्यान्योन्यान्तर्गतत्वेऽप्यन्योन्यत्वतदभावत्वाभ्यां भेदात्पृथगुपन्यासः । घटतत्तादात्म्योरतिरेकित्वेऽप्यन्योन्याभावशब्देन घटादिप्रतियोगिकाभावाभिधाने उक्तविचारसरणिरप्रतिहतैवेत्याह** तदात्मन इति । **तादात्म्याश्रयस्य घटादेरित्यर्थः। निषिध्यमानत्वे = अन्योन्याभावप्रतियोगित्वे, तन्निषेधात्मके = घटादिप्रतियोगिकान्योन्याभावाभावात्मके । जगत्प्रवेशात् = तादृशाभावस्य जगदात्मकत्वादिति यावत् । तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य सम्बन्धानवच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य वा घटाद्यभावस्याभावो न घटाद्यात्मक इति तु तदा नियन्तुं शक्येत यदि तादृशलक्षण-**

भारती

प्रश्न—घटाभावः स्तम्भो न भवति (स्तम्भ घटाभाव नहीं है) इस प्रकार कहने पर क्या स्तम्भ घटरूप सिद्ध होता है ? यदि नहीं, तो वह क्यों नहीं होता ? स्तम्भ घटरूप तब होता, यदि जगत् घट तथा घटाभाव मात्र ही होता । जब स्तम्भादि भी अतिरिक्त पदार्थ (घट घटाभाव से अतिरिक्त) हैं । तब स्तम्भ घटाभाव नहीं है ऐसा कहने पर स्तम्भ घटरूप कैसे हो सकता है । इसी प्रकार अन्योन्यप्रतियोगिक अभाव के निषिध्यमान होने पर संसर्गाभाव के अन्योन्यरूपता की आपत्ति का तथा अन्योन्य के अन्तर्गत समस्त जगत् का प्रवेश होने से संसर्गाभाव के अन्योन्याभावरूपता की आपत्ति का भी अवकाश (अवसर) नहीं है ।

समाधान—घट एवं घटाभाव इन दोनों से अतिरिक्त (पृथक) जैसे वस्त्रादि भी एक तृतीय प्रकार है, वैसे अन्योन्य एवं अन्योन्य प्रतियोगिक अभाव से अतिरिक्त (पृथक्) तृतीय कोटि (प्रकार) नहीं हो सकती । अतः घटादिरूपविशेषण से रहित अन्योन्य में समस्त जगत् का प्रवेश होगा ही । एवञ्च उक्तयुक्ति से अन्योन्यात्मक संसर्गाभाव की अन्योन्याभावरूपतापत्ति भी सुस्थिर ही है ।

यदि घट एवं घटतादात्म्य को पृथक् मानकर अन्योन्याभाव शब्द से घटप्रतियोगिक अभाव का भी विधान करें तो भी तादात्म्याश्रय घटादि के निषिध्यमान होने पर अर्थात् अन्योन्याभाव प्रतियोगि होने पर घटादि प्रतियोगिक अन्योन्याभाव के अभाव में समस्त जगत् का प्रवेश होगा, अर्थात् तादृश अभाव को जगदात्मक ही मानना होगा । क्योंकि घटः पटात्मा (घट पटरूप है) ऐसा कहने पर पट के स्वरूप से अन्य होकर घट पटात्मा प्रतीत नहीं होता।

पटस्वरूपादन्यस्तदात्मा विहितः स्यात् । यदि तु तादात्म्यं नामाभेदाख्यो धर्मः कश्चिदिष्यते स घटपटाद्यधिकरणतया निषिध्यते तदा संसर्गाभाव एव स स्यात् । तस्मान्निर्विशेषणतादात्म्यान्तर्भूतं जगदिति कोट्यन्तराभाव इति । अपि चैवं तर्हि घटे निषिध्यमाने घटाभावो विधीयते, घटाभावे च निषिध्यमाने घट इत्यपि न स्यात् ; तृतीयस्य विद्यमानत्वात् ; भवन्वा 'घटाभावः स्तम्भो न

शारदा

कोऽन्योन्याभावः स्यात्, न च तत्सम्भवतीत्युक्तमिति भावः । नहि तदात्मा तस्मादतिरिच्यते येन प्रपञ्चात्मनः प्रतियोगित्व प्रपञ्चस्य तन्न स्यादित्याह नहीति । तदात्मा = पटात्मा । स्यादिति । तादृशप्रतीतिर्भ्रम इत्यन्यदेतत् । द्रव्याद्यात्मेत्युचितः पाठः । ननु न घटादेर्भेदप्रतियोगिता, अपि तु तादात्म्यस्य, तच्च न घटाद्यात्मकम्, किन्त्वखण्डधर्मविशेष इति तादात्म्याभावानात्मकस्य न यावज्जगदात्मतापत्तिरत आह यदीति । सः = अन्योन्याभावः। घटे पटतादात्म्यं नास्तीति संसर्गाभावेन तस्याविशेषात् । एवञ्च समानविभक्त्यन्तप्रतियोग्यनुयोगिवाचकपदसमभिव्याहारस्यान्योन्याभावबोध-हेतुताभ्युपगमोऽपि निर्मूलः स्यादिति घटो न पट इति तत्प्रतीत्याकारोव्याहन्येतेति । घटाभावानात्मकस्य घटानात्मकत्वमभ्युपेत्य समाधायि पुरा अधुना तु तस्यापि घटात्मकत्वमभ्युपेयं सुतरां तादात्म्याभावानात्मकस्य तादात्म्यात्मकत्वमित्युपदर्शयितुमाह अपि चेति । एवं तर्हि = प्रतियोगितदभावातिरिक्तस्य विद्यमानत्वेऽभावाभावस्य प्रतियोगिस्वरूपत्वानुपगमे । भवन्वा = घटाभावनिषेधो घटात्मको भवन्वा 'घटाभावो न भवति स्तम्भ' इति धीसाक्षिकोऽपि स घटात्मको भवेदिति घटाभावो न भवति स्तम्भ इत्यत्रापि घटः स्तम्भात्मेत्येवोक्तं स्यात् = घटस्तम्भाभेद एव तादृशवाक्याधीनधीविषयः स्यादित्यध्याहृत्य व्याख्येयम्, अन्यथा

भारती

यदि कहें कि अन्योन्याभाव (भेद) का प्रतियोगी घट नहीं है अपितु तादात्म्य प्रतियोगी है, और वह तादात्म्य घटाद्यात्मक (घटादि रूप) नहीं है अपितु वह अखण्ड धर्म विशेष रूप है, अतः तादात्म्याभाव से भिन्न संसर्गाभाव यावज्जगदरूप नहीं हो सकता, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यदि तादात्म्य अभेद नामक अखण्ड धर्मविशेष है और उस (तादात्म्य) का घटरूप अधिकरण में या पटरूप अधिकरण में निषेध करेंगे, तो ''घटे पटतादास्यं नास्ति'' पटे घटतादात्म्यं नास्ति'' इत्याकारक संसर्गाभाव के समान होने से वह अन्योन्याभाव भी संसर्गाभाव (संसर्गाभावरूप) ही होगा । तस्मात् घटादिविशेषण रहित—केवल तादात्म्य के समस्त जगद् रूप होने से जगदात्मक संसर्गाभाव अन्योन्याभावरूप भी हो जायेगा, उससे पृथक् नहीं ।

अपि च यदि अन्योन्याभाव के अभाव को प्रतियोगी एवं प्रतियोगी के अभाव से अतिरिक्त स्वीकार करें अर्थात् अभावभाव को प्रतियोगीस्वरूप न मानें तो घट का निषेध करने पर घटाभाव का विधान (सत्तासिद्ध) होता है एवं घटाभावो नास्ति इत्याकारक घटाभाव का

भवती' त्यत्रापि घटाभावनिषेधत्वाविशेषात् विशेषान्तरानिर्वचनात् घटः स्तम्भात्मेत्येवोक्तं स्यादिति त्वत्प्रसङ्गस्त्वयि निपतेत् । संसर्गान्योन्याभाववैचित्र्यमादाय हि स परिहार्यः, स एव च नाद्यापि व्यवतिष्ठते। अतएव 'प्रतीतिबलादेव वैधर्म्यमनयोरुपेय'

शारदा

'भवन्वे'त्यस्यासङ्गते । घटाभावनिषेधत्वाविशेषादिति । **घटाभावभेदस्येत्यादिः । नतु घटात्यन्ताभावात्यन्ताभावस्य घटात्मकता तद्वत्येव तद्व्यवहारादिना कल्प्यते नतु घटाभावभेदस्य, अन्यथा घटाभाववति तदसत्त्वप्रसङ्गादित्यतआह** विशेषान्तरानिर्वचनादिति । **भेदात्यन्ताभावयोर्विविच्य निर्वचनमन्तरा तादृशकल्पनाया असम्भवेन तादृशप्रसङ्गस्य वक्ष्यमाणप्रकारेणैव समाधानस्य त्वयाप्यादरणीयत्वादिति भावः** । त्वदिति । **स्तम्भस्य घटात्मतापत्तिस्तवापि समानेत्यर्थः**। संसर्गान्योन्याभावेति । **संसर्गाभावान्योन्याभावेत्यर्थः। सः = उक्तप्रसङ्गः । स एव = संसर्गान्योन्याभावयोर्भेद एव । तदेवेत्युचितः पाठः । अतएव = वैधर्म्यस्यासम्भवदुक्तिकत्वे तत्प्रतीतेरप्रमात्वादेव** । प्रतीतीति ।

भारती

निषेध करने पर घट की सिद्धि (निश्चय) होती है अब वह घट की सिद्धि नहीं होनी चाहिए, क्योंकि प्रतियोगी (घट) एवं प्रतियोगी के अभाव से अतिरिक्त तृतीय कोटि (प्रतियोगी एवं तदभाव से अतिरिक्त पृथक् वस्तु) भी विद्यमान है । और यदि घटाभाव निषेध घटात्मक होता है तो "घटाभावो न भवति स्तम्भः" इत्यादि प्रतीतिसिद्ध घटाभावनिषेध भी घटात्मक हो जायेगा, और वह घटात्मक होता हुआ "घटाभावः स्तम्भो न भवति" इस वाक्य से घटाभाव का अन्योन्याभाव घटाभावाभाव होने से घटरूप सिद्ध होकर घट और स्तम्भ के अभेद का साधक हो जायेगा ।

यदि कहें कि घटवद् भूतल में घटात्यन्ताभावात्यन्ताभाव का व्यवहार होता है अतः तादृशव्यवहार बलात् घटवद् भूतल में घटात्यन्ताभावात्यन्ताभाव को ही घटरूप मानते हैं न कि अन्योन्याभाव को, अन्यथा घटान्योन्याभाववत् भूतल में घट की असत्ता होनी चाहिए, तो कहना ठीक नहीं है क्योंकि अभी तक आपके द्वारा अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव दोनों के परस्पर विलक्षणता का निर्वचन नहीं हो सका है । अतः अत्यन्ताभाव के समान अन्योन्याभाव भी प्रतियोगिरूप होगा । इसलिए आपके द्वारा प्रदत्त स्तम्भ में घटरूपतापत्ति दोष मेरे समान आप के मत में भी विद्यमान (प्राप्त) है । संसर्गाभाव तथा अन्योन्याभाव के वैचित्र्य (भेद) के द्वारा ही उस दोष का परिहार किया जा सकता है किन्तु वह वैचित्र्य (भेद) ही तो अद्यावधि सिद्ध न हो सका । अतएव—अर्थात् संसर्गाभाव-अन्योन्याभाव के वैचित्र्य के असिद्ध होने के कारण तद्विषयक प्रतीति के अप्रमात्मक होने से ही—आपका यह कथन भी निरस्त हो जाता है कि "संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) एवं अयोन्याभाव विषयक विलक्षणाकार प्रतीति के बल से ही संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) अन्योन्याभाव का वैधर्म्य (भेद) सिद्ध हो जायेगा ।

मित्यपि निरस्तम् । प्रतिषेधप्रतिषेध्यविरोधे प्रकारविशेषव्यवस्थानिरुक्त्यशक्तेरविशेषेणैकनिषेधेऽन्यविधिध्रौव्यं भवदन्योन्याभावनिषेधेऽप्यन्योन्यविधये स्यात् । मम चानिर्वचनीयतैव प्रतीतिव्यवहारव्यवस्थापर्यनुयोगवाणवारणाय वज्रवारबाणायमाना विजयते । मम ह्येवं दर्शनम्- प्रतीतिसिद्धत्वादत्यन्तासद्विलक्षणं भवदपि जगत्तथा सत्त्वोपगमेऽपि बाध्यमानत्वादनिर्वचनीयमिति। अतएव प्रतीयमानत्वाद्वैचित्र्यमनयोर्घुष्यमाणमतिदूरनिरस्तम् । उक्तप्रतियोग्यादिवैचित्र्यानुपपत्तितः प्रतीयमानस्यैव बाध्यमानताया एव कथनात् । तस्माद् –

शारदा

विलक्षणाकारेत्यादिः । प्रतिषेधेत्यादि । **प्रतियोग्यनुयोगिभावो घटतद्भेदयोरिव घटतत्संसर्गाभावयोरपि समानः, विरोधान्तरं वैधर्म्यञ्चानुगतं न भेदस्य नापि संसर्गाभावस्य नाप्यत्यन्ताभावस्य सुवचमित्युक्तमधस्तादिति भावः । अविशेषेण = अभावत्वावच्छेदेन। अभावनिषेधे प्रतियोगिविधीत्यर्थः ।** अन्योन्याभावनिषेधे इति । **तद्वतीत्यर्थः । अन्योन्याभावनिषेधस्याप्यन्योन्यात्मकतायै स्यादिति भावार्थः । स्वमते सर्वप्रसङ्गानां सत्समाधानमाह** ममेति । **यद्यपि वैतण्डिकस्य प्रतिबन्दिपरिहारोऽनुचितः, तेन परमतनिरासस्यैव प्रक्रान्तत्वात्, नवा परस्य पर्यनुयोगेऽप्यत्र कथायामधिकारः, अतएव द्वितीयपरिच्छेदे प्रतिबन्दिखण्डने ''मया साम्प्रतं तदभिधानस्याप्रस्तुतत्वा''दित्युक्तम्, तथापि ग्रन्थकृदुक्तिरियं सुहृद्भावेनैवेति । वारवाणः = कञ्चुकः । प्रतीतिसिद्धत्वात् = अलीकविषयकप्रतीतिविलक्षणप्रतीतिविषयत्वात् तथा सत्त्वोपगमेऽपि = तादृशप्रतीतिसिद्धसत्त्वेनोपगम्यमानमपि चानिर्वचनीयमेव, नतु परमार्थसत्, बाध्यमानत्वादिति योजना । कृतप्रपञ्चञ्च पुरैतत् । प्रतीतिबलादेवेत्यादिनोक्तमेव समाधानं स्फोरयितुमनुवदन्नाह** अत एवेति । **अनयोः = संसर्गाभावान्योयाभावयोः । अनुपपत्तितो बाध्यताया इत्यन्वयः।**

भारती

किञ्च—अनुयोगी-प्रतियोगिभाव घट-घटान्योन्याभाव के ही समान घट-घट संसर्गाभाव का भी है । इसके अतिरिक्त उन दोनों (घटान्योन्याभाव-घटसंसर्गाभाव) का कोई विरोधान्तर सिद्ध नहीं है और न कोई अनुगत वैधर्म्य ही इन अन्योन्याभाव-संसर्गाभाव एवं अत्यन्ताभाव का सिद्ध हो पाया है अतः इन अभावों के प्रकारविशेष की व्यवस्था के न होने से सामान्यतः अभावत्वावच्छेदेन अभाव के निषेध (अभाव) होने पर प्रतियोगि की विधि (सत्ता) का होना ही निश्चित है ऐसी स्थिति में अन्योन्याभाव के निषेध (अभाव) होने पर भी अन्योन्यरूप प्रतियोगी की विधि (सत्ता) माननी होगी (और उस अन्योन्य के अन्तर्गत समस्त प्रपञ्च के प्रविष्ट होने से उक्त अतिप्रसङ्ग (अन्योन्याभाव-संसर्गाभाव (अत्यन्ताभाव) का अभेदापत्ति) सुस्थिर है ।

यद्यपि वितण्डावाद में परिहार प्रदर्शन करना अनावश्यक है तथापि ग्रन्थकार सुहृद्भावेन

अन्योन्याभावसंसर्गाभावभेदव्यवस्थितौ
सत्यां स्यात्तद्व्यवस्थेति स्वाश्रयं कश्चिकित्सतु ।।३१।।

अभाव एव यत्रेति सावधारणं वक्तव्यमिति चेन्नः एवकारेण किमधिकमभिधीयते ?। भावो निषिध्यते इति चेन्न ; तस्याभावपदेनैव लब्धत्वात्, भावनिषेधोऽभाव इत्यनर्थान्तरमिदम् ।

शारदा

तद्व्यवस्था = तादृशभेदव्यवस्था । भेदभिन्नाभावत्वं संसर्गाभावलक्षणं भेदसंसर्गाभावयोर्भेदसिद्धिं विना न सम्भवति तयोर्भेदसिद्धिश्च तादृशलक्षणं विना न निर्वहतीत्यन्योन्याश्रयः लक्षणस्यैव भेदकत्वात् । परम्परया भेदसिद्धेः स्वसापेक्षत्वात्त्वात्माश्रय इति ।

भारती

उक्त आपत्तियों का स्वमतेन परिहार करते हैं—मम च इत्यादि से । मेरे मत में उक्त अभाव विषयक प्रतीति एवं व्यवहार व्यवस्था के आक्षेपात्मक वाणों से सुरक्षा हेतु अनिर्वचनीयता ही वज्र कवच है । (अर्थात् अनिर्वचनीय (व्यावहारिक) सत्ता के द्वारा ही सभी प्रतीतियों एवं व्यवहारों की व्यवस्था सम्पन्न हो जाती है तदर्थ पारमार्थिक सत्ता मानना आवश्यक नहीं है ।) क्योंकि मेरा यह दर्शन (सिद्धान्त) है कि अलीकविषयक प्रतीति से विलक्षण प्रतीति (व्यावहारिक प्रतीति) से सिद्ध (विषय) होने से यह जगत् अत्यन्त असत् से विलक्षण है किन्तु तादृश प्रतीति से सिद्ध होने से सद्रूप से स्वीकृत होने पर भी अनिर्वचनीय ही है क्योंकि बाधित होने से परमार्थ सत् नहीं है । अतएव अर्थात् प्रतीतिसिद्ध होने पर भी बाधित होने से ही—इन दोनों अभावों (अन्योन्याभाव-अत्यन्ताभाव) का वैचित्र्य (भेद) प्रतीतिसिद्ध होने पर भी निरस्त हो गया अर्थात् पारमार्थिक नहीं माना गया । उक्त प्रतियोगी आदि के वैचित्र्य (पारमार्थिक भेद) की अनुपपत्ति होने से प्रतीयमान होते हुए भी उन्हें (प्रतियोग्यादि को) बाधित ही कहा गया है । तस्मात्—

अन्योन्याभाव और संसर्गाभाव का भेद सिद्ध होने पर—भेदभिन्नाभावत्वम्'' यह संसर्गाभाव का लक्षण हो सकेगा और भेदभिन्नाभावत्वम् इस संसर्गाभाव लक्षण के सिद्ध होने पर अन्योन्याभाव-संसर्गाभाव का भेद सिद्ध होगा क्योंकि लक्षण ही भेदक होता है । इस प्रकार परस्पर सापेक्ष होने से अन्योन्याश्रय दोष होता है एवं परस्परया भेदसिद्धि में भेद की अपेक्षा होने से आत्माश्रय दोष भी उपस्थित है इसे दूर कौन करेगा ।

प्रश्न—जिस ज्ञान में स्मृतित्व का अभाव ही रहता हो वह ज्ञान अनुभूति है । स्मृति में तो स्मृतित्व का अन्योन्याभाव ही नहीं रहता, अपितु स्मृतित्व भी रहता है अतः अनुभूतिलक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं है ।

समाधान— एवकार (एवशब्द) के द्वारा किस अतिरिक्त पदार्थ का कथन करते हैं अर्थात् एव शब्द का क्या अर्थ है वह किसका व्यावर्तक है । यदि कहें कि एव शब्द से भाव का निषेध करते हैं । तो यह ठीक नहीं है क्योंकि भाव का निषेध तो अभाव पद के द्वारा ही हो जाता है । कारण कि भाव का निषेध ही तो अभाव कहा जाता है अतः एवकार का भी

भावसामानाधिकरण्यनिषेध एवकारार्थ इति चेत्; उक्तेनैव गतार्थत्वात्। अन्योन्याभावस्य च स्मृतावपि सम्भवात्, नहि भावसामानाधिकरण्यं स्मृतिः।

शारदा

स्मृतित्वस्याभाव एव अत्र तज्ज्ञानमनुभूतिः, स्मृतौ तु न स्मृतित्वस्य भेदात्मकोऽभाव एव, अपि तु स्मृतित्वमपीत्याशङ्कते अभाव इति । **शङ्खे पाण्डरत्वमेवेत्यत्र पाण्डरत्वाभाववदवृत्तित्वस्य शङ्खत्वे प्रतीतिवत्प्रकृते स्मृतित्वाभावाभाववदवृत्तित्वं स्मृतित्ववद-वृत्तित्वरूपं यादृशज्ञानत्वे तस्यानुभूतित्वमिति प्रतीत्यभिप्रायेणाह** भावसामानाधिकरण्येति । उक्तेनेति । **स्मृतित्वाभावोक्त्यैव स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभावस्यार्थाल्लाभात्, प्रत्यभिज्ञानात्मकांशिकानुभूतेरुभयथाऽपि सङ्ग्रहीतुमशक्यत्वादिति भावः । अवच्छेदकगर्भ-सामानाधिकरण्योपादाने तत्सङ्ग्रहेणैवैवकारसाफल्यसम्भवादाह** अन्योन्येति । **स्मृतित्वसामानाधिकरण्यभेदस्येत्यर्थः । स्मृतौ = स्मृतित्वे । स्मृतिः = स्मृतित्वम् । भेदात्यन्ताभावयोरद्यापि विविच्यानिर्वचनादिति भावः ।** यद्वा **प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणस्मृतित्वात्यन्ताभाववज्ज्ञानत्वमनुभवत्वमित्याशङ्कते** भावेति । **अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वनियमात् संयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यधिकरणे प्रतियोग्यवच्छेदकावच्छेदेनावृत्तित्वात् मूलशाखावच्छिन्नवृक्षयोरेव वा भेदात्प्रतियोगि-व्यधिकरणतालाभाय नैवकारसाफल्यमित्याह** उक्तेनेति । **अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगि-व्यधिकरणत्वनियमेऽपि भेदेन तद्विवेकानिरूपणदशायां तद्विवक्षाया अकिञ्चित्करत्वात् स्मृतित्वभेदमादायातिप्रसङ्गो मा भूदिति समवायेन प्रतियोगिवैयधिकरण्यलाभफल-कैवकारसाफल्यमित्याशङ्क्याह** अन्योन्याभावस्येति । **प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्व-प्रतियोगिकान्योन्याभावस्येत्यर्थः । तादृशवृत्तित्वाभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वपदार्थत्वात्,**

राजहंसः

विशेष्यसङ्गतैवकारस्थलीयनियममनुसृत्याह **शङ्खे पाण्डरत्वमेवेत्यत्रेति ।** भावसामानाधिकरण्यनिषेधेति मूलं प्रतियोगिवैयधिकरण्यार्थकमित्याशयेनाह **यद्वेति ।**

भारती

यदि वही अर्थ है तो पुनरुक्ति दोष हो जायेगा।

प्रश्न—एव शब्द के द्वारा भाव के सामानाधिकरण्य का निषेध विवक्षित है। अर्थात् प्रकृत में स्मृतित्वाभावाभाववदवृत्तित्ववद् (स्मृतित्ववदवृत्तित्ववद्) यज्ज्ञानम् तद् अनुभूतिः इस प्रकार लक्षण करेंगे।

समाधान—स्मृतित्वाभाव (जिस ज्ञान में स्मृतित्वाभाव हो) इस कथन से ही स्मृतित्व-सामानाधिकरण्य के अभाव का भी अर्थात् लाभ हो जाने से पुनः उसे (स्मृतित्वसामानाधिकरण्या-भाव) कहना व्यर्थ है।

किञ्च स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभाव की विवक्षा करने पर भी स्मृति में उक्तलक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि स्मृतित्वसामानाधिकरण्य का अन्योन्याभाव स्मृति में भी है, कारण कि स्मृति स्मृतित्वसामानाधिकरण्यरूप नहीं है।

स्मृतौ च भावमभावं चैकत्र मन्यमानेन तस्याप्येष्टव्यत्वात्, तयोः परस्परप्रतिक्षेपरूपत्वात्, नहि रूपरसयोरेकत्राभावे न

शारदा

अत्यन्ताभावविवक्षायाश्चाकिञ्चित्करत्वात्। स्मृतौ = स्मृतिनिष्ठे स्मृतित्वाभावे। स्मृतिः = स्मृतिनिष्ठः स्मृतित्वाभावः। एतेन–अयोगव्यवच्छेदोऽभावप्रतियोगित्वव्यवच्छेदः, तथा च शङ्खनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वस्य पाण्डरत्वे प्रतीतिवज्ज्ञानविशेषनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वस्य स्मृतित्वाभावे प्रतीत्या स्मृतिव्यावृत्तिरिति–परास्तम्, अभावप्रतियोगित्वभेदमादाय दोषतादवस्थ्यात्, नच–स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्यावश्यं विवक्षणीयत्वान्न भेदोपादानसम्भवः, एवं पूर्वत्र वृत्तित्वाभावेऽपि द्रष्टव्यमिति–वाच्यम्; भेदात्यन्ताभावयोर्विवेकानिरूपणे स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्य क्वचिन्नियन्तुमशक्यत्वात्। उभयाभावादिकमादाय तथापि दोषतादवस्थ्याच्च, पर्याप्त्यादिनिवेशस्यापहस्तितत्वात्। भेदात्मकस्मृतित्वाभावस्य स्मृतित्वस्यापि व्यापकत्वाच्चेति। स्मृतौ प्रकारान्तरेणाप्यतिप्रसक्तिमाह स्मृतौ चेति। **स्मृत्यात्मकैकाधिकरणे स्मृतित्वं भेदत्वेनाध्यवसितं तदभावञ्च मन्यमानेनापीत्यर्थः। तस्यापि = स्मृत्यन्तर्भावेण स्मृतित्वाभावे स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभावस्यापि। तथाच प्रतियोगिव्यधिकरणस्मृतित्वाभाववज्ज्ञानं स्मृतिरपीत्यतिव्याप्तिः, नहीदानीं स्मृतित्वतदत्यन्ताभावयोरेव परस्परविरहात्मकता नतु स्मृतित्वतद्भेदयोरपीति वक्तुं शक्यम्, येन स्मृतित्वाभावे भेदात्मके स्मृतित्वसामानाधिकरण्यं समर्थयितुं शक्येत, अपि तु सामान्यत एव भावाभावयोः सेति तादृशसामानाधिकरण्याभावस्यस्मृतित्वाभावे ध्रौव्यमित्याह** तयोरिति। **भावाभावयोरित्यर्थः। प्रतिक्षेपः = विरहः। एकत्राभावे इतिच्छेदः। तथाच रूपरसयोर्यदधिकरणावच्छेदेनाभावः, तदधिकरणावच्छेदेन तयोः**

राजहंसः

दोषतादवस्थ्यादिति। ज्ञानविशेषपदेन स्मृतेरपि ग्रहणसम्भवात् **अवश्यमिति**। प्रतियोगित्वाभावे इति शेषः। **इतिच्छेद इति**। तृतीयान्तत्वभ्रममपाकर्तुमिदम्। **इति भेदसंसर्गाभावयो र्भेदखण्डनशारदायां राजहंसः।**

भारती

किञ्च स्मृतिरूप एक अधिकरण में स्मृतित्व तथा स्मृतित्वान्योन्याभाव दोनों स्वीकार करने वाले आपको स्मृतिरूप एक अधिकरण को लेकर—स्मृतित्वाभाव में स्मृतित्वसामानाधिकरण्य के अभाव को भी मानना होगा, क्योंकि भाव-अभाव दोनों परस्पर विरह रूप है। तथा च जैसे—जिस एक अधिकरण में रूप-रस दोनों का अभाव रहता है उसी एक अधिकरण (वायु) में रूप रस के परस्पर सामानाधिकरण्य का अभाव रहता है उसी प्रकार प्रकृत में परस्पर प्रतिक्षेपात्मक अर्थात् विरहरूप स्मृतित्व स्मृतित्वाभाव दोनों ही स्मृतिरूप एक अधिकरण में रहते हैं अत: उसी स्मृतिरूप एक ही अधिकरण में परस्पर प्रतिक्षेपात्मक स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव इन दोनों के सामानाधिकरण्य के अभाव का लाभ होने से "स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभाव से विशिष्ट (युक्त) स्मृतित्वाभाव भी स्मृति में रहेगा अत: इस प्रकारान्तर के द्वारा भी उक्त अनुभूति का लक्षण स्मृति में अतिव्याप्त ही है।

तत्सामानाधिकरण्याभावः स्यात् । समाविष्टयोर्भावाभावयोः परस्परप्रतिक्षेपात्मकतैव न सिद्धेति चेत् ; तर्हि तथाविधयोर्भावाभावपदसङ्केतो नतु रूपरसयोरिति रुचिस्ते प्रमाणम् ।

शारदा

परस्परसामानाधिकरण्यस्याप्यभाववत्परस्परप्रतिक्षेपात्मकस्मृतित्वतदभावयोर्द्वयोस्स्मृतौ सद्भावासम्भवेन तदवच्छेदेन तयोः सामानाधिकरण्याभावलाभे स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभाववत्स्मृतित्वाभावस्य स्मृतौ लाभः । यद्यपि तयोः परस्परविरहात्मनोरन्यतरस्यैव स्मृतौ त्यागावश्यम्भावेन स्मृतित्वाभावत्यागेनैवोपपत्तेर्नातिव्याप्तिसम्भावना, तथापि विनिगमनाविरहात्स्मृतित्वस्यापि त्यागसम्भवेनेदमुक्तम् । नच–धर्मधर्मिणोरभेदेनापि निर्वाहिण स्मृतित्वाभाव एव त्यक्तुमुचितो नतु स्मृतित्वम् , वेदान्तसंस्कृतमतिरपि च स्मृतित्वस्य मिथ्यात्वोपपत्तये न तदेव स्मृतौ त्यजेदपि तु स्मृतित्वाभावस्यापि तत्र मिथ्यात्वेन तमपीति–वाच्यम्; अत्यन्ताभेदे स्मृतित्वस्य सुतरां त्यागात्, भेदाभेदे च द्वयोरेवात्यागात् । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तरीत्यैवातिव्याप्तिदानं युक्तम् , प्रतियोगिव्यधिकरणस्मृतित्वाभावं कालिकेन स्मृतावादाय च तद्दानं सुकरम् । यथा सम्बन्धविशेषनिवेशेनापि न निस्तारस्तथोक्तमधस्तात् ।

अत्रेदमवधेयम्–'नहि रूपरसयो'रिति ग्रन्थस्वारस्येन 'एकत्र मन्यमानेने' त्यत्रामन्यमानेनेति नञ्घटितपाठस्यौचित्यप्रतीतावपि 'तस्यापी'त्यत्रापिशब्दस्वारस्येन 'समाविष्टयो'रिति 'असामानाधिकरण्यमेव यत्रे'त्यग्रिमग्रन्थद्वयस्वारस्येन च प्रसिद्धो नञ्रहित एव पाठो व्याख्यातः । यदि तु **भावाभावावेकत्रास्वीकुर्वता स्मृतौ = तदन्तर्भावेण तस्यापि = स्मृतित्वतदभावयोरुभयोरसद्भावस्येव स्मृतित्वाभावे स्मृतित्वसामानाधिकरण्याभावस्याप्येष्टव्यत्वात् । एवञ्चापिना स्मृतित्वतदभावसामानाधिकरण्यस्य न समुच्चयः, शिष्टं पूर्ववत् । अग्रिमग्रन्थद्वयं च प्रतीतिबलात्समावेशं प्रसाध्य प्रवृत्तमित्युच्यते** तदा **नञ्घटितमेव पाठं युक्तं पश्याम इति ।** समाविष्टयोरिति । **स्मृतौ स्मृतित्वतद्भेदयोः प्रतीतिबलान्मन्तव्यत्वादिति भावः । तथाविधयोः = परस्परप्रतिक्षेपानात्मकयोः ।** रुचिरिति । **भेदस्यात्यन्ताभावतो विवेकानिरूपणादत्यन्ताभावस्य च प्रतियोगिना परस्परप्रतिक्षेपात्मताया एव दर्शनादिति भावः । यद्यपि भेदतत्प्रतियोगिनोः परस्परविरहात्मतायामपि तादात्म्येनैव प्रतियोगिसम्बद्धे तद्भेदो न स्यात्, नतु सम्बन्धान्तरेणापि तत्सम्बद्धे, तथा च स्मृतौ स्मृतित्वाभावस्य**

भारती

प्रश्न—स्मृतित्ववती स्मृतिः स्मृतित्वान्योन्याभाववती'' इत्याकारक प्रतीति के बल पर स्मृतिरूप एक अधिकरण में स्मृतित्व एवं स्मृतित्वान्योन्याभाव दोनों मानना पड़ता है । अतः स्मृतिरूप एक अधिकरण में समाविष्ट स्मृतित्व-स्मृतित्वभेद दोनों भावाभाव की परस्पर विरहरूपता ही असिद्ध है ।

समाधान—यदि स्मृतित्व-स्मृतित्वान्योन्याभाव परस्पर विरह (अभाव) रूप नहीं है तो इन परस्पर विरह अनात्मक स्मृतित्व-स्मृतित्वभेद में ही भाव-अभाव पद का संकेत (शक्ति) है और रूप रस में नहीं है इसमें आपकी रुचि ही प्रमाण (नियामक) है ।

रूपरसयोः परस्परप्रतिक्षेपानात्मकत्वात् तदभावे तयोः सामानाधिकरण्याभाव आस्ताम्, अत्र तु नैवमिति चेत् ; तथात्वस्यासामानाधिकरण्यप्रयोजकत्वे तद्व्यतिरेकः सामानाधिकरण्यप्रयोजकः स्यादिति रूपरसादीनामसामानाधिकरण्यापत्तिः, भावाभावयोरसामानाधिकरायानुपपत्तिश्च । असामानाधिकरण्यमेव यत्रेति विवक्षितमिति चेन्न ;

शारदा

प्रतियोगिवैयधिकरण्यं दुर्घटमेव, तथापि नैतदपि भेदात्यन्ताभावयोर्विविक्तरूपनिरूपणमन्तरा घटते इत्याशयः । सामान्यतो परस्परविरहात्मकतामुपेत्यैवापाततो वैधर्म्यमात्रमुद्भावयति रूपरसयोरिति । **तदभावे = रूपरसयोरभावाधिकरणावच्छेदेन । अत्र तु नैवम् = स्मृतित्वतदभावयोः परस्परप्रतिक्षेपानात्मकताविरहेण तदुभयाभावाधिकरणावच्छेदेनापि न तयोः सामानाधिकरण्याभाव इत्याभासः । तथात्वस्य = परस्परप्रतिक्षेपानात्मकत्वस्य। प्रयोजकत्वे = समनियतत्वे वा, व्यापकत्वे एव वा, व्याप्यत्वे एव वा । प्रयोजकः = समनियतो वा, व्याप्य एव वा, व्यापक एव वा । पक्षत्रयमपि दूषणद्वयेन निराचष्टे** रूपेति । असामानाधिकरण्यमेवेति । **स्मृतित्वतदभावयोरित्यादिः । तज्ज्ञानमनुभव इति**

भारती

(भाव यह है अन्योन्याभाव का अत्यन्ताभाव के साथ भेद तो निश्चय हुआ नहीं है और अत्यन्ताभाव में प्रतियोगी के साथ परस्पर प्रतिक्षेपात्मकता (परस्पर विरहरूपता) ही देखी जाती है । ऐसी स्थिति में भेद की भी प्रतियोगी के साथ परस्पर प्रतिक्षेपात्मकता मानना ही उचित है। किञ्च—यदि अन्योन्याभाव-अन्योन्याभावप्रतियोगी दोनों परस्पर प्रतिक्षेपानात्मक मानकर ही उन में भावाभाव शब्द का प्रयोग मानेंगे क्यों नहीं रूप रस में भी भावाभाव शब्द का प्रयोग किया जाय, क्योंकि रूप रस भी परस्पर प्रतिक्षेपानात्मक ही है ।)

प्रश्न—रूप रस परस्पर विरह रूप नहीं है इसलिए रूप रस के अभावाधिकरणावच्छेदेन (अभावाधिकरण में) रूप रस के सामानाधिकरण्य का भी अभाव है किन्तु स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव तो परस्पर विरह रूप ही है अतः उन दोनों (स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव) के अभावाधिकरणावच्छेदेन (अभाव के अधिकरण में) स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव के सामानाधिकरण्याभाव भी नहीं है ।

समाधान—यह आपका कथन युक्ति विरुद्ध है । क्योंकि यदि परस्पर प्रतिक्षेपानात्मकत्व (परस्पर विरहरूपत्वाभाव) को असामानाधिकरण्य का प्रयोजक मानेंगे परस्पर प्रतिक्षेपात्मकत्व को सामानाधिकरण्य का प्रयोजक मानना होगा, तथा च (ऐसी स्थिति में) रूपरसादियों का पृथिवी आदि में सामानाधिकरण्य नहीं होगा, क्योंकि रूपरसादि परस्पर में प्रतिक्षेपानात्मक है और भाव अभाव का असामानाधिकरण्य अनुपपन्न होकर सामानाधिकरण्य होना चाहिए, क्योंकि वे दोनों (भाव-अभाव) परस्पर प्रतिक्षेपात्मक है ।

एवकारार्थदौस्थ्यतादवस्थ्यात् । एतेन – विलक्षण एवायमभावो भावसहासनानुपवेशी य एवकारसमभिव्याहारेणोच्यते – इति निरस्तम् ; तस्यापि वैलक्षण्यं प्रतियोग्याश्रयनिषेधतासाम्येऽपि सामानाधिकरण्यविरहादुन्नेयम् , तच्च तुल्यमभावान्तरेण ।

शारदा

शेषः । तथा च स्वस्वाभावसामानाधिकरण्यानिरूपकत्वसम्बन्धेन स्मृतित्वविशिष्टज्ञानत्वमनुभवत्वमित्यर्थः । स्वस्वाभावासामानाधिकरण्यनिरूपकत्वेनापि वैशिष्ट्यनिवेशस्तु निष्फलः। स्मृतेस्तु परस्परप्रतिक्षेपात्मनोस्तयोरसामानाधिकरण्यनिरूपकत्वेऽपि स्मृतित्वं न स्मृतिरिति प्रत्ययबलात्तयोः सामानाधिकरण्यनिरूपकत्वमपीति तद्व्यावृत्तिरिति । सामानाधिकरण्ये च सम्बन्धविशेषस्य प्रवेशनीयत्वान्नासम्भव इति भावः । तादृशसामानाधिकरण्यनिरूपकत्वभेदस्य स्मृतावपि सत्त्वेनातिप्रसङ्ग इत्याह एवकारेति । भावसहेति । **स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरण इत्यर्थः ।** प्रतियोगीति । **अन्योन्याभावेन सह प्रतियोग्यनुयोग्यभावत्वानां साम्येऽपीत्यर्थः । सामानाधिकरण्यविरहात् = प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिसम्बन्ध्यवृत्तित्वात् । तच्च = उक्तावृत्तित्वं चात्यन्ताभावेऽन्योन्याभावेन तुल्यम्, नह्यन्योन्याभावः प्रतियोगितादात्म्यवति वर्तते । इदमुपलक्षणमन्योन्याश्रयस्यापि,**

भारती

प्रश्न—जिस ज्ञान में स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव का असामानाधिकरण्य ही हो, वह ज्ञान अनुभूति है । ऐसा लक्षण करेंगे । स्मृति में परस्पर प्रतिक्षेपात्मक स्मृतित्व-स्मृतित्वाभाव का असामानाधिकरण्य है किन्तु साथ ही स्मृतित्वं न स्मृतिः इत्यादि प्रतीतिबलात् उन दोनों का सामनाधिकरण्य भी माना जाता है अतः स्मृति में उक्त अनुभूति लक्षण की अतिव्याप्ति न होगी ।

समाधान—इस पक्ष में भी एवकारार्थ की दुरवस्था तदवस्थ है । क्योंकि तादृशसामानाधिकरण्य का भेद स्मृति में भी रह जायेगा अतः स्मृति में अतिव्याप्ति रह ही जायेगी ।

यहाँ यह कथन भी निरस्त हो गया कि—"भाव के साथ एक अधिकरण में न रहने वाला अर्थात् स्वप्रतियोगि के असमानाधिकरण एवं अन्योन्याभाव से विलक्षण ही अभाव यहाँ (इस लक्षण में) एवकार के सान्निध्य से विवक्षित है ।" क्योंकि अन्योन्याभाव के साथ अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी अनुयोगी एवं अभावत्वादि के द्वारा साम्य होने पर भी सामानाधिकरण्य विरह अर्थात् प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से प्रतियोगी के सम्बन्धी में अवृत्तित्व के द्वारा उसके वैलक्षण्य का भी अनुमान किया जायेगा । किन्तु उक्त अवृत्तित्व रूप साधक अत्यन्ताभाव के साथ अन्योन्याभाव का समान ही है । अर्थात् जिस प्रकार उक्त अवृत्तित्व के द्वारा वैलक्षण्य का अनुमान अत्यन्ताभाव में करेंगे उसी उक्त अवृत्तित्व के द्वारा वैलक्षण्य का अनुमान अन्योन्याभाव में भी किया जा सकता है । क्योंकि अन्योन्याभाव भी प्रतियोगितादात्म्य के अधिकरण में अवृत्ति ही है ।

सामानाधिकरण्याभावप्रत्ययेनेति चेन्न; प्रत्ययविशेषकस्यार्थस्य स्मृतावपि भावात्। अन्योन्याभावव्यतिरिक्तः स्मृतित्वाभाव इत्युक्तौ स्मृतिव्यतिरिक्तपक्षोक्त एव दोषः। तदास्तां विस्तरः।

शारदा

तादृशवैलक्षण्यस्य स्वाधीनविलक्षणताकप्रतीत्यधीनताया एव वक्तव्यत्वात्। सामानेति। **निरुक्तावृत्तित्वप्रत्ययेनेत्यर्थः। वैलक्षण्यमुन्नेयमित्यनुषज्यते। स्मृतौ = स्मृतिगते स्वस्वाभावसामानाधिकरण्यनिरूपकत्वभेदे।** भावादिति। **तथाच तत्प्रत्ययोऽपि तत्र स्यादेव। एतादृशभेदस्यापि निरुक्तावृत्तित्वाश्रयत्वात् निरुक्तावृत्तित्वाश्रयतादृशनिरूपकत्वाभावमादाय स्मृतावतिप्रसङ्गात्। स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतादृशनिरूपकत्वाभावविवक्षायामपि दत्तमुत्तरम्। नच तादात्म्यातिरिक्तसम्बन्धेन स्वप्रतियोगिसम्बन्ध्यवृत्तित्वेन भेदवैलक्षण्यमत्यन्ताभावे उन्नेयमिति वाच्यम्, भेदस्य कालिकेन स्वप्रतियोगिसम्बन्धिनि स्वप्रतियोगिन्यवृत्तेर्व्यभिचारात्। भेदात्यन्ताभावयोर्वैलक्षण्यासिद्धौ च तादात्म्यातिरिक्तत्वस्य तादात्म्यात्यन्ताभावमादायोभयाभावादिकमादाय च तादात्म्येऽपि प्रसक्तत्वाच्च।** स्मृतित्वाभाव

भारती

यदि कहें कि प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध से प्रतियोगीसम्बन्धी में अवृत्तित्व ज्ञान के द्वारा उक्त वैलक्षण्य का उन्नयन (अनुमान) करेंगे। उक्त अवृत्तित्व की प्रतीति अत्यन्ताभाव में ही होती है अन्योन्याभाव में नहीं, अतः अत्यन्ताभाव ही लक्षणघटक होगा, तस्मात् स्मृतित्वात्यन्ताभाव के स्मृति में न रहने से अनुभूति लक्षण की अतिव्याप्ति न होगी। तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि प्रत्ययगतविशेषता का परिचायक अर्थ ही होता है। सामानाधिकरण्याभाव प्रत्यय में सामानाधिकरण्याभाव ही विशेषक है और वह स्मृति में भी है अर्थात् स्मृतिगत स्वस्वाभावसामानाधिकरण्यनिरूपकत्व भेदरूप विशेष के रहने पर तद्विषयक प्रत्यय भी वहाँ अन्योन्याभाव में रहेगा, तथा च स्मृति में अतिव्याप्ति तदवस्थ है।

यदि कहें कि—जिस ज्ञान में अन्योन्याभाव से भिन्न स्मृतित्वाभाव रहता है वह ज्ञान अनुभूति है ऐसा लक्षण करेंगे, स्मृतित्व का अन्योन्याभाव-अन्योन्याभाव से भिन्न नहीं है अतः उस स्मृतित्वान्योन्याभाव को लेकर स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं होगी। तो यह आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि इस पक्ष में—यत्किञ्चित् अन्योन्याभाव से भिन्नत्व विवक्षित है या समस्त अन्योन्याभाव (अन्योन्याभाव कूट) से भिन्नत्व विवक्षित है। इसमें प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि एक अन्योन्याभाव से भिन्न दूसरा अन्योन्याभाव भी होता है अतः उक्त अतिव्याप्ति रह जायेगी। यदि समस्त अन्योन्याभाव से भिन्नत्व विवक्षित है तो समस्त अन्योन्याभावों का ज्ञान असर्वज्ञ (अल्पज्ञ) मानव के द्वारा सम्भव नहीं है। अतः लक्षण असम्भवग्रस्त हो जायेगा। यदि सामान्याभाव कहें तो अन्योन्याभाव गगनं उभयं नास्ति इत्यादि प्रतीतिसिद्ध उभयाभाव लेकर पुनः अतिव्याप्ति हो जायेगी'' इत्यादि स्मृत्यन्यत्वपक्षोक्त दोष विद्यमान है। तस्मात् इस विषय में विस्तार करना अनावश्यक है।

नापि स्मृतित्वप्रतियोगिकमाश्रयस्य स्वरूपं तद्धीर्वेति पक्षः, अन्योन्याभावेऽपि भवतामभावव्यवस्थायास्तादृशत्वेनोक्तप्रसङ्गस्य समानत्वात् । अथान्यदेव किञ्चित्संसर्गाभावनिर्वचनं क्रियते तथाहि-स्मृतित्वस्य यत्र संसर्गितया निषेधस्तत्र तदभावस्य संसर्गाभावत्वम्, यत्र तु तदात्मत्वेन, तत्र तदभावस्य न संसर्गाभावता, किन्त्वन्योन्याभावत्वमेव, स चेह न विवक्षितः, पूर्वक एव तु संसर्गाभावोऽभिधित्सित इति। नैतद्विचारसहम् संसर्गितया निषेध इति येयं तृतीया ? सा किं लक्षणे वा? सहयोगे वा, कारकभेदे वा करणादौ? नाद्यः, संसर्गितया लक्षितस्यैवान्योन्याभावमादाय प्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः,

---

शारदा

इति । **यत्र, तज्ज्ञानमनुभूतिरिति शेषः** । दोष इति । **यत्किञ्चिदन्योन्याभावभेदस्यातिप्रसक्तत्वाद्भेदकूटस्य चासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वात् सामान्याभावस्य चोभयाभावादिकमादायातिप्रसक्तत्वादित्यादिकमुक्तं स्मृत्यन्यत्वखण्डने** ।

भवताम् = प्राभाकरणाम् । तदभावस्य = स्मृतित्वाभावस्य । तदात्मत्वेन = तादात्म्येन स्मृतित्वस्य निषेध इत्यनुषज्यते । सः = अन्योन्याभावः । इत्थम्भूतलक्षणे, सहयुक्तेऽप्रधाने, कर्तृकरणयोस्तृतीयेति सूत्रत्रयं मनसिकृत्य विकल्पितम् । भेदे = विशेषे । लक्षणत्वं व्यावर्तकत्वं तच्च विशेषणतयेत्याशयेन परतः ''प्रकारवाचिनी'त्यादि ग्रन्थः । उपलक्षणतयेत्याशयेन तु नाद्य इत्यादि । लक्षितस्य = उपलक्षितस्य स्मृतित्वस्य।

भारती

स्मृतित्व है प्रतियोगी जिसका ऐसा आश्रय का स्वरूप, या तादृश आश्रयमात्र विषयक ज्ञान ही स्मृतित्व रहितत्व अर्थात् स्मृत्यन्यत्व है । और ईदृश स्मृत्यन्यत्व ही अनुभूति का लक्षण है जो स्मृति में नहीं है अतः अनुभूति लक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति नहीं है । (प्रभाकर के मत में अभाव आश्रयरूप अथवा आश्रयमात्रविषयकज्ञानरूप मानते हैं अतः तदनुसारेण यह लक्षण है ।) किन्तु यह लक्षण भी ठीक नहीं है । क्योंकि आप (प्रभाकर) के मत के अनुसार अन्योन्याभाव में भी अभाव व्यवस्था को उसी रूप से स्वीकार करना होगा ऐसी स्थिति में उक्त अतिव्याप्ति (स्मृति में अतिव्याप्ति) रह ही जायेगी । अर्थात् अत्यन्ताभाव के समान स्मृतित्व के अन्योन्याभाव को भी आश्रय का स्वरूप या आश्रयमात्र विषयक ज्ञान स्वरूप ही मानना होगा, और स्मृति में भी रहेगा अतः स्मृत्यन्यत्वरूप अनुभूति लक्षण की स्मृति में अतिव्याप्ति इस पक्ष में भी विद्यमान है ।

यदि कहें कि संसर्गाभाव का कुछ अन्य ही लक्षण किया जायेगा—प्रकार यह है कि—जिस अधिकरण में स्मृतित्व का संसर्गितया निषेध हो, उस अधिकरण में स्मृतित्वाभाव संसर्गाभाव है, और जिस अधिकरण में स्मृतित्व का तादाम्येन निषेध हो, उस अधिकरण में स्मृतित्वाभाव संसर्गाभाव नहीं है अपितु अन्योन्याभाव है । इस प्रकार का अन्योन्याभाव उक्त

तत्सहितस्यैवान्योन्यनिषेधस्य प्रत्याख्यातुमशक्यत्वात् । तृतीयस्तु न सम्भवति, अत्यन्तनिषेधस्यानुत्पत्तिधर्मकत्वात् , तस्य च प्रकृतोदाहरणत्वात् । प्रकारवाचिनीयं तृतीयेति चेन्न; प्रकारशब्दार्थस्याधिकस्य निर्वक्तव्यत्वापातात् । प्रकारः प्रकार एवेति चेन्न; अविदितलक्ष्यस्य लक्षणमनभिधायेतरव्यवच्छेदेन तस्य दर्शयितुमशक्यत्वात् ; अन्यथा सर्वत्र प्रष्टारं प्रति लक्षणानभिधानापातात् । को घट इत्यादिपृष्टे 'घट एव घट' इत्याद्येवोत्तरं सङ्गच्छेत। प्रकार इति पक्षो नोपपन्नः सदोषत्वादि'ति वक्ता 'को दोष' इत्यनुयुक्तो 'दोष एव दोष' इत्यभिधायैव निर्वृत्तो भवेदिति। इति भेदसंसर्गाभावयोर्भेदखण्डनम् ।

शारदा

एवं तादात्म्योपलक्षितस्मृतित्वादिप्रतियोगिताकात्यन्ताभावे भेदलक्षणस्यापि द्रष्टव्यातिव्याप्तिः तत्सहितस्येत्यादि । **संसर्गितासहितस्मृतित्वप्रतियोगिकान्योन्याभावस्येत्यर्थः । स्मृताविति शेषः । अत्यन्तनिषेधस्य = अत्यन्ताभावत्वेनाभिमतस्य । अधिकस्य = विशेषणतातिरिक्तस्य, संसर्गिताविशिष्टस्मृतित्वस्य भेदमादाय दोषसत्त्वादिति भावः यदि तु संसर्गावच्छिन्न-प्रतियोगिताकत्वं तादात्म्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं च विवक्षितं तदा निरस्तमेव पूर्वमिति द्रष्टव्यम् । प्रसिद्धपदार्थस्य न निर्वचनापेक्षेत्याशयेनाह** प्रकार इति । **प्रकारशब्दार्थ इत्यर्थः।** अविदितलक्ष्यस्येति । **इतरव्यावृत्ततयाऽनिश्चितलक्ष्यस्येत्यर्थः । अस्य 'लक्षण'मित्यने-नैवान्वयः, तेन 'तस्ये'त्यस्य न वैयर्थ्यम् । को दोषः = दोषपदार्थः, यद्विशिष्टवत्त्वेनास्य पक्षस्य सदोषतेत्याशयः । तेन विशेषप्रश्ने दोष एव दोष इत्यभिधाने सन्दर्भासङ्गतावपि न क्षतिः ।** इति खण्डनशारदायां भेदसंसर्गाभावयोर्भेदखण्डनम् ॥

भारती

अनुभूतिलक्षण में विवक्षित नहीं है अपितु संसर्गाभाव ही विवक्षित है अत: अतिव्याप्ति दोष नहीं है । तो यह कथन युक्तियुक्त न होने से विचारार्ह नहीं है, क्योंकि संसर्गितया निषेध'' इस वाक्य में जो तृतीया विभक्ति है वह क्या ''इत्थम्भूतलक्षणे'' इस सूत्र से विहित लक्षण अर्थ में है, या सहयुक्तेऽप्रधाने'' सूत्र विहित सहयोग अर्थ में है, अथवा ''कर्तृकरणयोस्तृतीया'' सूत्रविहित कारकविशेषकरण रूप अर्थ में है । इनमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है । क्योंकि संसर्गितया उपलक्षित स्मृतित्व का अन्योन्याभाव स्मृति में है अत: उक्त अनुभूतिलक्षण स्मृति में अतिव्याप्त है । (इसी प्रकार उक्त अन्योन्याभाव लक्षण भी तादात्म्योपलक्षितस्मृतित्वादि प्रतियोगिताकात्यन्ताभाव में अतिव्याप्त है ।)

द्वितीय पक्ष ठीक नहीं है । क्योंकि स्मृति में भी संसर्गिता सहित स्मृतित्वप्रतियोगिक अन्योन्याभाव है अत: उक्त अतिव्याप्ति तदवस्थ है । तृतीय कल्प भी युक्त नहीं है । क्योंकि अत्यन्ताभाव के नित्य होने से उसकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती, प्रकृत में उदाहरण रूप से अत्यन्ताभाव ही लेना होगा, जिसका करण संसर्गिता नहीं हो सकती । तथा च अनुभूति में उक्तलक्षण असम्भव हो जायेगा ।

अथ स्मृतित्वखण्डनम्

स्मृतित्ववत् 'स्मृतेर्लक्षणान्तरेण रहितत्वमनुभूतित्वमि'ति प्रत्युक्तं वेदितव्यम् । गृहीतस्य ज्ञानं स्मृतिरिति च स्मृतिलक्षणे-

शारदा

स्मृतित्ववदिति । **तृतीयान्ताद्वतिः । रहितत्वम् = रहितज्ञानत्वम्** । प्रत्युक्तमिति । **राहित्यशब्देन विशेषाभावस्य सामान्याभावस्यानुयोगिस्वरूपस्य तज्ज्ञानस्य वा विवक्षाया उदीरितनिरासरीत्यवतारभाजनत्वादिति भावः** । गृहीतस्येति । **ज्ञानविशिष्टज्ञानत्वं स्मृतित्वम्, वैशिष्ट्यमत्र यदि स्वसमवायिसमवेतत्वस्वसमानविषयकत्वस्वोत्तरकालिकत्वैर्निवेश्यते तदा धारावाहिनिप्रत्यभिज्ञायाञ्चातिव्याप्तिः, तृतीयस्थाने स्वजन्यत्वनिवेशेऽपि तथैव, विशेषणज्ञान-**

भारती

यदि कहें कि प्रकारवाची यह तृतीया है अर्थात् प्रकार ही तृतीया का अर्थ है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि विशेषणता के अतिरिक्त प्रकार शब्द के अर्थ का निर्वचन करना होगा ।

किञ्च—संसर्गिताविशिष्ट स्मृतित्व का अन्योन्याभाव लेकर पुनरपि स्मृति में अतिव्याप्ति दोष रहेगा ही ।

यदि कहें प्रसिद्ध पदार्थ का निर्वचन करना आवश्यक नहीं है अतः प्रकार शब्द का प्रकार ही अर्थ है तो यह कथन समुचित नहीं है क्योंकि—जिसे लक्ष्य का ज्ञान नहीं है ऐसे पुरुष को लक्षण किये बिना इतरभिन्नत्वेन लक्ष्य का ज्ञान नहीं कराया जा सकता है । और यदि लक्षण कथन किये बिना भी लक्ष्य का इतरव्यावृत्तरूप से ज्ञान कराया जा सके तो सर्वत्र ही वस्तु के प्रष्टा (इतरव्यावृत्तस्वरूप के जिज्ञासु) के प्रति लक्षण का कथन करना व्यर्थ हो जायेगा । "घट क्या है" इत्यादि पूछे जाने पर—"घट घट ही है" यही उत्तर उचित समझा जायेगा । "प्रकार ही तृतीयार्थ है" यह पक्ष सदोष (दोषयुक्त) होने से युक्तिसङ्गत नहीं है" इस प्रकार कहने वाला "क्या दोष है" अर्थात् जिसके कारण यह पक्ष सदोष है वह दोष पदार्थ क्या है" यह पूछे जाने पर—दोष दोष ही है" यह उत्तर देकर ही वक्ता सुखी हो जायेगा, तथा विजयी मान लिया जायेगा ।

स्मृतित्व - खण्डन

"स्मृतित्वरहितज्ञानत्वम् अनुभूतित्वम्" (स्मृतित्व से रहित ज्ञान ही अनुभूति है) इस अनुभूतिलक्षण के समान—स्मृतिलक्षणरहितज्ञानत्वम्" (स्मृति के लक्षण से रहित ज्ञान ही अनुभूति है) यह अनुभवलक्षण भी निरस्त समझना चाहिए, क्योंकि जैसे स्मृतित्वरहितज्ञानत्वम्" इस लक्षण में स्मृतित्व का अन्योन्याभाव लेकर स्मृति में अतिव्याप्ति दोष है उसी प्रकार-स्मृतिलक्षण रहितत्वे सति ज्ञानत्वम्" इस लक्षण में भी स्मृतिलक्षण का अन्योन्याभाव लेकर स्मृति में अतिव्याप्ति दोष विद्यमान है ।

धारावाहिकज्ञानेऽतिप्रसक्तिः। सापेक्षज्ञानं स्मृतिः, सापेक्षता च स्वविषयनियमे समानविषयज्ञानापेक्षेति चेन्न; प्रत्यभिज्ञायास्तत्ताभागस्य स्मृतित्वापत्तेः । एवमस्त्विति चेन्न;

शारदा

विधया धारावाहिन्यपि पूर्वस्य कारणतासम्भवात् । यदि तु स्वजन्यसंस्कारजन्यत्वं विवक्षणीयम्, एवञ्च प्रथमसम्बन्धो निष्प्रयोजनत्वात्त्याज्य एव, द्वितीयसम्बन्धस्थाने च स्वविषयानतिरिक्तविषयकत्वं वाच्यमिति प्रत्यभिज्ञायां नातिप्रसक्तिः, अनधिगतकालावगाहित्वमते धारावाहिनो द्वितीयेन वारणेऽपि मतान्तरेण तद्वारणाय स्वजन्येत्यादिसम्बन्ध इत्युच्यते, तदापि सर्वं प्रमेयमित्यनुभवजन्यस्मरणेऽव्याप्तिः, स्वविषयातिरिक्ताप्रसिद्धेः। स्वविषयताव्याप्यविषयताकत्वस्यापि स्वविषयत्वाभाववदप्रसिद्ध्याऽप्रसिद्धिरेव । यदि तु तत्स्थाने स्ववृत्तित्वं निवेश्यम्, तच्च स्वविषयताव्यापकविषयताकत्वसम्बन्धेनेत्युच्यते, तदापि तत्तांशे स्मृतेरनधिकगतविषयकत्वमिति प्राग्व्यवस्थापिते मतेऽसम्भव एव, व्यापकत्वेनाभिमतस्याप्यव्यापकतामावहन्ती च रीतिरुक्तैव । परम्परायाः संसगताया अप्रामाणिकत्वेन प्रकारमुद्रया निवेशस्यादरणीयत्वेनाननुगमश्चाप्रतिबद्धप्रसर एव । जन्यतावच्छेदकावधारणापेक्षणीयतायाञ्च प्रकृतस्य लक्षणताया अनौचितीचुम्बितैवेत्यादिकं द्रष्टव्यम् । जन्यतावच्छेकञ्च, दुर्निरूपमिति वक्ष्यते । सापेक्षताऽनुभवमात्रेऽतिप्रसक्तेत्यतस्तां निर्ब्रूते सापेक्षतेति । **स्वान्यूनविषयकज्ञानविषयतानियतविषयताकत्वमित्यर्थः, स्वविषयताव्यापकविषयताकज्ञानजन्यत्वमिति यावत्। अत्र स्वीययत्किञ्चिद्विषयताव्याकत्वविवक्षायामाह** प्रत्यभिज्ञाया इति । **तत्ताभागस्य = तत्ताविषयकत्वावच्छेदेन ।**

राजहंसः

स्मृतित्वखण्डनशारदायां राजहंसः

अव्यापकतामावहन्तीति । उभयाभावादिकमादायेदं द्रष्टव्यम् , विषयतात्वावच्छिन्न-

भारती

अपि च स्मृति लक्षण के निर्दुष्ट न होने से भी स्मृति लक्षणरहित ज्ञानत्वम्'' यह लक्षण भी निर्दोषतया नहीं किया जा सकता है ।

यदि कहें कि गृहीत अर्थात् पूर्व अनुभूत अर्थविषयक ज्ञान ही स्मृति है'' । यही स्मृतिलक्षण है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ''अयं घट अयं घट'' इत्यादि धारावाहिक द्वितीय-तृतीय ज्ञान के अनुभूतार्थ विषयक होने से उक्तलक्षण इसमें अतिव्याप्त है ।

प्रश्न—सापेक्ष ज्ञान अर्थात् स्वविषय के नियम में समानविषयक ज्ञान की अपेक्षा रखने वाले ज्ञान को स्मृति कहेंगे । अर्थात् स्मृति के अन्यूनविषयकज्ञान की विषयता नियतविषयताक जो ज्ञान वही स्मृति है ।

समाधान—इस प्रकार लक्षण करने पर ''तदेव इदम्'' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा के तत्तांश में समान विषयक ज्ञान की अपेक्षा होने से प्रत्यभिज्ञा के तत्तांश में उक्तलक्षण की अतिव्याप्ति हो

तर्हि प्रत्यभिज्ञायां स्मृत्यनुभवभागयोर्भिन्नविषयत्वव्यवस्थितौ तदभेदः केन गृह्यते इति पूर्वदोष आवर्तते। संस्कारमात्रजं ज्ञानं स्मृतिरित्यपि न; सामग्रीतः सर्वसम्भवेन लक्षणास्यासम्भवात् । असाधारणतद्धेतुकधीत्वमिति चेन्न; आत्मप्रत्यभिज्ञानेऽप्यापत्तेः,

शारदा

इदं विशिष्टानुभवमात्रेऽतिव्याप्तेरुपलक्षणम् । स्वीययावद्विषयताव्यापकत्वविवक्षायां कस्या अपि विषयताया तादृशयावद्विषयताव्यापकत्वाभावेनासम्भवः, कथञ्चित्तत्परिहारेऽपि धारावाहिकानुभवेऽतिव्याप्तिः । स्वीययावद्विषयताप्रयोजकज्ञानान्तरकत्वं विवक्षणीयम्, स्वप्रयोज्ययावद्विषयताकत्वसम्बन्धेन ज्ञानविशिष्टज्ञानत्वमिति यावत्, शाब्दबोधीयाः सांसर्गिकविषयता हि न पदार्थोपस्थितिप्रयोज्याः । धारावाहिकज्ञानीयविशेषणविषयतातिरिक्तविषयता न पूर्वज्ञानप्रयोज्या इति चेत्; प्रयोज्यत्वं हि जन्यतावच्छेदकत्वम् नच तद्विशेष्यकतत्प्रकारकत्वादेस्तत्, अतिप्रसक्तत्वात्, अनुगतानतिप्रसक्तं रूपं च प्राग्दुर्निरूपम् । प्रयोज्यत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेष एकदेशसाधारण इति चेत् ; अनिर्वाच्यवादापत्तेः । विशेषणज्ञानत्वावच्छिन्नकारणत्वानिरूपकज्ञानत्वं तु निर्विकल्पकप्रत्यक्षेऽतिव्यापकम्, सप्रकारकत्वसमानाधिकरणं च तन्निर्विकल्पकस्मृतावव्यापकम्, तस्या प्राग्व्यस्थापितत्वात् । ज्ञानजन्यत्वसमानाधिकरणं तत्स्मृतित्वम्, ज्ञानं च स्वसमवायिसमवेतत्वेन विशेषणीयमिति नेश्वरज्ञानजन्यतामादाय निर्विकल्पकातिव्याप्तितादवस्थ्यमिति चेत् जन्यतावच्छेदकस्य प्राग्दुर्निरूपत्वादिति प्रतिविहितत्वात् । घटज्ञानात्पटविशिष्टज्ञानवारणाय विशिष्यैव कारणताया वक्तव्यत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन कारणताया अप्रामाणिकत्वाच्च । नवाऽनुमित्यादौ विशेषणज्ञानत्वेन कारणतेत्युक्तमिति तत्रातिव्याप्तेश्च । स्वकारणीभूतज्ञानयाथार्थ्यप्रयुक्तयाथार्थ्यकज्ञानत्वं स्मृतित्वमिति तु तुच्छम्, प्रमाया गुणजन्यत्वमते शाब्दादावतिप्रसक्तेः, भ्रमजन्यस्मृतावप्रसक्तेश्च, याथार्थ्यस्य निरसिष्यमाणत्वाच्च । तद्धेतुकेति । संस्कारहेतुकेत्यर्थः।

राजहंसः

व्याप्यतानिरूपितव्यापकताविवक्षामाश्रित्याह **कथञ्चित्तत्परिहारेऽपीति** ।

भारती

जायेगी । यदि कहें कि प्रत्यभिज्ञा के तत्तांश में स्मृति मान लेंगे तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा के तत्तांश में स्मृति, इदम् अंश में अनुभव होने से स्मृति-अनुभव के भिन्न-भिन्न विषय का निश्चय होने पर भी उन दोनों के अभेद का भान किस ज्ञान से होगा, अर्थात् अभेद का मान किसी के द्वारा भी नहीं हो पायेगा । इस प्रकार पूर्वोक्त दोष ही उपस्थित हो जायेगा ।

संस्कारमात्र से जन्य ज्ञान ही स्मृति है'' ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि सभी कार्य सामग्री (कारणसमुदाय) से ही उत्पन्न होते हैं अतः संस्कारमात्र से अर्थात् केवल संस्कार के द्वारा किसी भी ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए इस लक्षण में असंभव दोष है ।

यदि कहें कि संस्कार है असाधारण कारण जिसका, ऐसा ज्ञान स्मृति है'' ऐसा कहेंगे तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि ''सोऽहम्'' इत्याकारक आत्मविषयक प्रत्यभिज्ञा भी स्मृति हो

आत्ममनोयोगस्य साधारण्यात् ; कार्यैक्यानवधारणे च कारणत्वानवधारणात् ; तदैक्ये च तदेव लक्षणं स्यात् । येन

शारदा

संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय धीत्वमिति । आत्ममनोयोगस्य = आत्ममनस्तद्योगानाम्। साधारण्यात् = जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकारणत्वात्, आत्मन आत्मत्वेन मनसश्च मनस्त्वेनोक्त-साधारण्यमक्षतम्, आत्मनो विषयत्वेन मनसश्चेन्द्रियत्वेनात्मप्रत्यभिज्ञानेऽसाधारण्येपि संस्कारस्यापि तत्रासाधारण्यं निर्बाधम्, संस्कारमात्रासाधारण्याविवक्षायामतिव्याप्तिदानात्। एवञ्च घटादिप्रत्यभिज्ञानेऽप्यतिव्याप्तिर्द्रष्टव्या, तत्रापीन्द्रियादिवत्संस्कारस्याप्यसाधारण्यात्। ननु तत्तास्मृतेरेव प्रत्यभिज्ञाहेतुत्वं नतु तत्संस्कारस्येति नव्यमते नातिव्याप्तिसम्भावना, प्राचीनमतेऽपि संस्कारमात्रासाधारणकारणकत्वविवक्षायां नातिव्याप्तिः, स्मृतिं प्रति मनसो मनस्त्वेनैव हेतुता, नत्विन्द्रियत्वेनेति न तस्यासाधारण्यम्, संस्कारत्वावच्छिन्नकारणता-प्रतियोगिककार्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वविवक्षायामप्यदोष एव, स्मृतित्वावच्छिन्नहेतुत्वेनैव संस्कारसिद्धेरित्याशङ्क्याह कार्यैक्येति । **कार्यतावच्छेदकेत्यर्थः । कार्यतावच्छेदकनिरूपणं विना न कार्यतानिरूपणम्, तन्निरूपणं विना च किन्निरूपपितकारणता संस्कारे निरूप्येति भावः । ननु निर्वचनान्तरासम्भवेऽपि स्मृतित्वं जातिरखण्डोपाधिर्वाऽस्तु तदेव च कार्य-तावच्छेदकमिति सुग्रहत्वमुक्तलक्षणस्येत्यत आह** तदैक्य इति । **कार्यतावच्छेदकावधारण**

भारती

जायेगी अर्थात् उसमें स्मृतिलक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा । क्योंकि उस प्रत्यभिज्ञा में संस्कार ही असाधारण कारण है । आत्मा, आत्मत्वेन मन मनस्त्वेन एवं उन दोनों का योग अर्थात् सम्बन्ध तो जन्य ज्ञानामात्र के प्रति साधारण कारण है । यद्यपि आत्मा के विषयत्वेन और मन के इन्द्रियत्वेन आत्मप्रत्यभिज्ञान के प्रति असाधारण कारण होने पर भी संस्कार भी असाधारण करण है ही । अतः यहाँ संस्कारमात्रासाधारण्य की विवक्षा न मानकर अतिव्याप्ति दी गयी है । एवं सोऽहं इत्यादि प्रत्याभिज्ञा में अतिव्याप्ति समझना चाहिए ।

यदि ऐसा कहें कि—नव्यमत में तत्तास्मृति ही प्रत्यभिज्ञाहेतु है न कि संस्कार, और प्राचीन मत में तो संस्कारमात्रासाधारणकारणकत्व की विवक्षा करेंगे अतः अतिव्याप्ति नहीं है । और स्मृति के प्रति मन को मनस्त्वेन ही हेतुता है न कि इन्द्रियत्वेन अतः आसाधारण्य नहीं है स्मृतित्वावच्छिन्नहेतुत्वे न ही संस्कारसिद्धि होती है ।

तो भी तुम्हारा कहना ठीक नहीं यह किञ्च से कहते हैं –

किञ्च—कार्यतावच्छेदक के निरुपण के बिना कार्यता का निरूपण नहीं हो सकता , और कार्यता का निरुपण के बिना तन्निरूपित कारणता का भी निरूपिण नहीं हो सकता । यदि कहें कि अन्य निर्वचन के न होने पर भी स्मृतित्व को जाति या अखण्डोपाधि मानकर उसे (स्मृतित्व) ही कार्यतावच्छेदक मानेंगे, तो अनुगत कार्यतावच्छेदक के निश्चय होने पर वही स्मृति का लक्षण हो जायेगा । (यदि कहें कि अस्तु, वही लक्षण मान लिया जाय, तादृशकार्यतावच्छेदक तो उसका परिचायक ही होता है, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि लक्षणधीना लक्ष्यसिद्धि होने से तादृशकार्यतावच्छेदकतया स्मृतित्वसिद्धि होगी, और

ज्ञानेनार्थो ज्ञाततात्मकः क्रियते तदनुभवः, येन तु ज्ञातमेव तथा, तत्स्मरणमिति चेन्न; ज्ञातो ज्ञास्यते चेत्यनुमानादावप्यापत्तेः। ततश्च

शारदा

इत्यर्थः । नन्वस्तु तदेव लक्षणम्, तादृशकार्यतावच्छेदकत्वं तु तत्परिचायकमेवेति चेत्, लक्षणाधीना लक्ष्यसिद्धिरिति तादृशकार्यतावच्छेदकतया स्मृतित्वसिद्धिरित्युक्तं स्यात्, स्मृतित्वावच्छिन्नकारणतया च संस्कारसिद्धिरिति चक्रकान्योन्याश्रयौ । स्मरामीति प्रमयैव स्मृतित्वसिद्धिरिति चेत्स्मृतित्वसद्भावसिद्धिं विना तत्प्रमात्वस्य दुरधिगमत्वेनान्योन्याश्रयतादवस्थ्यात् । निर्वाच्यस्मृतिलक्षणस्यातिप्रसक्तिनुभूतौ नोद्भाव्येतेत्याशयेन प्रथमं तद्व्यावृत्तमनुभूतिलक्षणमाह येनेति । **अर्थोऽज्ञातः** । ज्ञाततात्मक इति । **धर्मधर्मिणोर्भट्टैस्तादात्म्याङ्गीकारादित्याशयेनेदम् । क्रियाजन्यफलाश्रयत्वरूपकर्मत्वोपपत्तये क्रियया कर्मण्यतिशयस्यावश्याधेयत्वाज्ज्ञानेन घटादौ ''ज्ञातो घट''इति प्रतीतिसाक्षिकं प्राकट्यापरपर्यायं ज्ञातत्वमेवाधीयते तदेव च ज्ञानानुमापकम्, स्वविषयत्वस्य ज्ञाने निरस्तत्वात्, अयं घट इत्येव प्रथममनुभवाच्च, द्वितीये च क्षणे घटो ज्ञात इत्येवानु भवात्, तृतीयक्षणे ज्ञानस्यैवाभावेन प्रत्यक्षत्वासम्भवात्, ''सम्बद्धं वर्तमानञ्च गृह्यते चक्षुरादिने''ति नियमादिति तन्मतं द्रष्टव्यम् ।** ज्ञातमेवेति । **''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते'' इत्यस्यौत्सर्गिकत्वेन स्मृतेः स्वकारणीभूतज्ञानविषयीकृतकालावच्छिन्नस्यैव स्वविषयस्य ग्राहकत्वम्, न तु स्वकालावच्छिन्नस्येत्याशयेनैवकारः । अत्र स्वसामानाधिकरण्यस्वोत्तरकालिकत्वस्वजनकज्ञानविशिष्टज्ञानजन्यत्वेतिसम्बन्धत्रयावच्छिन्नप्रतियोगिताकज्ञातत्वा-**

भारती

स्मृतित्वाच्छिकारणतया संस्कार की सिद्धि इस प्रकार चक्रक एवं अन्योन्याश्रय दोष होंगे । कार्यतावच्छेदकतया यह प्रथम कोटी-स्मृतित्व सिद्धि यह द्वितीय कोटि स्मृतित्वावच्छेदन कारणतया यह तृतीय को ही संस्कारसिद्धिय चतुर्थ कोटी इस रीति चक्रक है अन्योन्याश्रय तो स्पष्ट ही है ।

यदि कहें कि जिस ज्ञान के द्वारा अज्ञात अर्थ ज्ञाततात्मक (ज्ञातता रूप) किया जाता है वह ज्ञान अनुभूति है, और जिस ज्ञान के द्वारा ज्ञात अर्थ ही ज्ञाततात्मक किया जाता है वह ज्ञान स्मृति है । (भट्टमीमांसक के मत धर्म धर्मि का तादात्म्य माना जाता है इसलिए ''ज्ञातो घट'' इस ज्ञान के द्वारा घट में ज्ञाततारूप धर्म का आधान किया जाता है और वह ज्ञातता धर्म धटात्मक धर्मिरूप ही होता है इस मत के अनुसार, यहाँ अज्ञात अर्थ को ज्ञाततात्मक कहा है ।)

किन्तु यह लक्षण ठीक नहीं हैं क्योंकि घटोज्ञातः ज्ञास्यते व्यवहारविषयत्वात् इत्यादि अनुमिति में उक्त स्मृति लक्षण अतिव्याप्त है क्योंकि अनुमिति भी ज्ञातताविशिष्ट घटादि में ही ज्ञातता उत्पन्न करती है ।

(वस्तवस्तु ज्ञातता भी प्रामाणिक नहीं है , क्योंकि विषय के न रहने से अतीत अनागत विषयक ज्ञान के द्वारा ज्ञातता की उत्पत्ति हो नहीं सकती, सत्कार्यवाद में यदि किसी रूप से

विषयतः स्मृतिविवेचनमन्ततो वाक्येनाप्यनुभाव्यत्वात्कार्यकारणाभ्यां चानुगतरूपस्य प्रागसिद्धेः, जातितश्च सङ्करप्रसङ्गादशक्यमिति। इति स्मृतित्वखण्डनम् ।।

शारदा

भाववज्ज्ञातताजनकज्ञानत्वमनुभवत्वम्, उक्तसम्बन्धत्रयेण ज्ञातताविशिष्टज्ञातताजनकज्ञानत्वञ्च स्मृतित्वमिति पर्यवसितोऽर्थः । उभयत्रापि द्वितीयसम्बन्धे वैशिष्ट्यं स्वसमवायिसमवेतत्वस्ववृत्तित्वाभ्याम्, स्ववृत्तित्वञ्च स्वविषयताव्यापकविषयताकत्वसम्बन्धेन। धारावाहिनः स्वकालावच्छिन्नविषयावगाहित्वात्पूर्वज्ञानीयविषयताया न तद्विषयताव्यापकत्वम्। अन्यपुरुषावगतावगाहिपुरुषान्तरीयानुभवस्य स्मृतित्ववारणाय स्वसमवायिसमवेतत्वनिवेशः। स्वविषयताव्यापकविषयताकस्मृतिजनकानुभवेऽतिप्रसक्तिवारणाय स्वोत्तरकालिकत्वनिवेशः, पटज्ञानजन्यज्ञाततावैशिष्ट्यं घटानुभवाहितज्ञाततायामादायातिप्रसङ्गभङ्गाय स्वसामानाधिकरण्यनिवेशः । नच घटानुभवविषयताव्यापकविषयताकत्वस्य पटज्ञानेऽभावादेव नातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; घटपटादिसमूहालम्बने तस्य सम्भवादिति दिक् । ज्ञात इति । **घटोऽयं मया ज्ञात इति प्रत्यक्षे 'घटोऽयं मया ज्ञातोव्यवहृतत्वा'दिति वाक्योपदर्शितपक्षसाध्यकानुमित्यादिविषयताव्यापकविषयताकत्वमादाय तादृशानुमित्यादावतिप्रसङ्गः, एवं**

राजहंसः

तस्य सम्भवादिति दिगिति । न च घटानुभवे स्वकालावच्छिन्नविषयावगाहिनि सति तद्विषयताव्यापकविषयताकत्वं न घटपटसमूहालम्बनेऽपीति वाच्यम्, तादृशकालस्याप्युपनयबलात्कदाचिदुक्तसमूहालम्बनविषयतोपपत्तेः, घट इति शब्दमात्रायत्तघटानुभवस्यापि स्वकालावच्छिन्नविषयावगाहित्वमित्यस्याप्रामाणिकत्वाच्च । न च तथापि घटावच्छेदेन ज्ञाततयोः सामानाधिकरण्यमप्यस्त्येवेति देश्यम्, स्वयावदधिकरणावच्छेदेन स्वसामानाधिकरण्यस्य स्वव्यापकत्वपर्यवसन्नस्य विवक्षितत्वात् । तदिदमाह **दिगिति । इति स्मृतित्वखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

भारती

विषय की सत्ता मान भी लिया जाय तो भी जिस रूप से ज्ञातत्व आता है । उस रूप से तो विषय अनुपस्थित है ऐसी स्थिति में घटो ज्ञात यह व्यवहार अनुपपन्न हो जायेगा, अतः उक्त स्थल में ज्ञातता के बिना ही ज्ञातो घट यह व्यवहार मानना होगा, तथाच वर्तमान में ज्ञातता के बिना ही व्यवहार की उपपत्ति मानना उचित है । अतः ज्ञातताघटित उक्तलक्षण सर्वथा अनुपपन्न है ।)

इसी प्रकार विषयघटित स्मृतिलक्षण भी नहीं कह सकते'' क्योंकि अन्ततोगत्वा वह लक्षण ''गृहीतज्ञानत्वम्'' इत्यादि वाक्य के द्वारा अनुभाव्य (वाक्यजन्य अनुभव = शाब्दबोध का विषय) मानना होगा, अतः उक्त विषय घटितलक्षण शाब्दबोधरूप अनुभव में अतिव्याप्त है । अनुगत कार्यतावच्छेदक तथा कारणतावच्छेदक स्मृतित्व के पूर्व असिद्ध होने से कार्यकारणभाव के द्वारा भी स्मृति का विवेचन नहीं कर सकते । एवं पूर्वोक्त रीति से प्रत्यभिज्ञा में सङ्कर दोष के विद्यमान होने से स्मृतित्व जाति के द्वारा भी स्मृति का विवेचन नहीं कर सकते ।

अथानुभवत्वविशेषखण्डनम्

नापि चतुर्थः, यतः कार्यगतवैलक्षण्यानवगमे क्व कारणता क्वासाधारण्यं वा ज्ञेयमिति । इत्यनुभवत्वविशेषखण्डनम् ।।

शारदा

यत्रोपनीतभानबलादन्यथा वा कस्यचिज्ज्ञानस्य घटो ज्ञास्यते इत्याकारकता, तस्य घटो ज्ञास्यते इत्यनुमित्यादिविषयताव्यापकविषयताकत्वात्तादृशानुमित्यादावपि । यथाश्रुते त्वतिव्याप्तिः स्पष्टैव, ज्ञात इति ज्ञास्यत इति चानुमित्यादिना ज्ञाततविशिष्टे एव ज्ञातताजननात्, विशेषणीभूता ज्ञातता पुनर्भूता वा भाविनी वेत्यन्यदेतत् । इदमुपलक्षणम्, जनकतावच्छेदकग्रहस्यात्राप्यक्षेपणीयत्वात् । एवमतीतानागतविषयकज्ञानेन ज्ञातताजननासम्भवः, विषयस्यासत्त्वात्, सत्कार्यवादे केनचिद्रूपेण तत्सत्त्वेऽपि येन रूपेण ज्ञातत्वं तेन रूपेण तदसत्त्वात् घटो ज्ञात इति व्यवहारानुपपत्तिप्रसङ्गात्, तस्मात्तादृशस्थले घटो ज्ञात इति प्रतीतेरन्यथैवोपपाद्यत्वात् वर्तमानस्थलेऽपि तस्यास्तथैवोपपादनमुचितमिति न ज्ञातताया: प्रामाणिकत्वम् । फलमप्यावरणभङ्गादिरेव । एवमसन्निकृष्टविषयकानुमित्यादिजनितज्ञातताया: प्रत्यक्षासम्भवेन तस्यास्तत्र ज्ञानानुमापकत्वस्याप्यसम्भव इति तादृशानुमित्यादिसद्भावस्याप्रामाणिकत्वापत्तिरिति साक्षिभास्यतैव ज्ञानानामित्यादिकमपि द्रष्टव्यम् । इदन्तानवगाहित्वे सति तत्तावगाहिज्ञानत्वं तु स्मृतिलक्षणं पूर्वं तत्ताया निरस्तत्वेन निरस्तप्रायमेव, तस्या अखण्डोपाधितोपगमे त्वन्योन्याश्रयो बहुशो निवेदितः, इदन्तानवगाहित्वप्रतीतिं विनापि स्मृतित्वव्यवहाराच्च, स घट इति शाब्दाद्यनुभवेऽतिप्रसक्तेश्चेति । विषयतः, कार्यकारणाभ्यां च, जातितश्च स्मृतिविवेचनमशक्यमिति सम्बन्धः । तत्र क्रमेण हेतुत्रयम् । गृहीतज्ञानत्वमिति प्राथमिकं विषयघटितं लक्षणम्, अग्रिमत्रयं च कारणघटितम्; चरमं तु कार्यघटितम्, स्मृतित्वं जातिरिति तु पञ्चमम्, तत्तावगाहित्वादिघटितं तु षष्ठं विषयघटितम् । तत्र यथाश्रुते विषयघटितलक्षणे स घट इत्यादिशाब्दाद्यनुभवेऽतिप्रसक्तिमाह अन्तत इति । **वाक्यपदं 'गृहीतज्ञानत्व'मिति लक्षणवाक्यपरमित्यपि व्याचक्षते, अनुगतरूपस्य = कार्यतावच्छेदकस्य कारणतावच्छेदकस्य च स्मृतित्वस्य । सङ्करः प्रत्यभिज्ञायाम्, तस्य जातिबाधकतानभ्युपगमेऽपि स्मृतित्वजातिनिरासोऽनुपदमुक्तएव।** इति शारदायां स्मृतित्वखण्डनम् ॥

स्मृतिलक्षणरहितज्ञानत्वमित्यनुभूतिलक्षणं महताप्रबन्धेन निराकृत्य तदविदूरप्राक्कालेत्यादि पूर्वं शङ्कितं लक्षणान्तरं निराचष्टे नापीति । **कार्यगतवैलक्षण्यम्**

भारती

(यहाँ मूलग्रन्थस्थ वाक्य का—अन्ततो वाक्येनाप्यनुभाव्यत्वाद् विषयतः स्मृतिविवेचनम् अशक्यम्, अनुगतरूपस्य (कार्यतावच्छेदकस्य कारणतावच्छेदकस्य च) प्रागसिद्धेः कार्यकारणाभ्यां स्मृतिविवेचनम् अशक्यम्,'' सङ्करप्रसङ्गाच्च जातितोऽपि स्मृतिविवेचनम् अशक्यम्,'' इस प्रकार अन्वय कर विषय से कार्यकारणभाव से, एवं जाति से स्मृति के विवेचन का निषेध किया गया है । उसमें क्रम से तीन हेतु दिये गये हैं ।)

अथ तत्त्वानुभवत्वखण्डनम्

न केवलं प्रत्येकपदार्थस्य तद्व्यवच्छेदकत्वस्य चानुपपत्तिः, मिलितेऽप्यस्मिन् लक्षणे दूषणमुच्यते, तथाहि–'तत्त्वानुभूतिः प्रमे'त्यनेन काकतालीयमपि यथार्थज्ञानं व्याप्यते, तद्यथा–पाणौ

शारदा

कार्यतावच्छेदकमनुभूतिगतम् । यद्धर्मावच्छेदेन स्वाव्यवहितपूर्वनियतोत्पत्तिकासाधारण-कारणजन्यता प्रत्येतव्या स धर्मो नाद्यापि प्रत्यक्षादिसाधारणो निरुक्तः, नवा सम्भवदुक्तिकोऽपि, प्रत्यक्षत्वानुमितित्वादेः प्रत्येकमेवेन्द्रियसन्निकर्षव्याप्तिज्ञानादिजन्यता-वच्छेदकत्वात्, एवञ्च प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तिरपि सावकाशा । नच प्रत्यक्षत्वाद्यन्यतमवत्त्वं प्रत्यक्षाद्यन्यतमत्वं वाऽनुभवत्वम्, अनुयोगिप्रतियोगिविधया सकलप्रपञ्चघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वापत्तेः, नहि प्रत्यक्षत्वादिभेद एव स्वानुयोगितावच्छेदकः, आत्माश्रयापत्तेः, विधिमुखप्रत्ययस्य निषेधमुखेनोपपादनेऽतिप्रसङ्गाच्च, उक्तरीत्या अनुभवामीति व्यवहारस्यानुमित्यादिव्यावृत्तत्वे च प्रमितिचतुष्टयसाधा-रणस्यानुभवत्वनिर्वचनस्य निरवसरत्वाच्चेति । इति खण्डनशारदायामनुभवत्वविशेषखण्डनम्।।

प्रत्येकेति । **प्रत्येकं तत्त्वादीत्यर्थः । काकतालीयं यथार्थज्ञानम् = दैववशसम्पन्न-याथार्थ्यकं ज्ञानम् । ''समासाच्च तद्विषया''दिति सूत्रेणेवार्थे समासाच्छः । एवं**

भारती

अनुभवत्वविशेष-खण्डन

''जिस ज्ञान के असाधारण कारण की कार्य (अनुभूतिरूपकार्य) के अव्यवहित पूर्वकाल में नियम से उत्पत्ति होती हो वह ज्ञान अनुभूति है'' यह चतुर्थ विकल्प भी युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि कार्य (अनुभूति) गत कार्यतावच्छेदक धर्म के निश्चय के बिना कार्यता का निश्चय नहीं हो सकता, और जब कार्यता का ही निश्चय नहीं है किन्निरूपितकारणता का अर्थात् किस के प्रति कारणता एवं असाधारणता का निंश्चय करेंगे ।

(तात्पर्य यह है प्रत्यक्षादि चतुष्टय साधारण ऐसे धर्म का ही अभी निश्चय नहीं है कि जिस धर्म को अवच्छेद मान कर स्वाव्यवहितपूर्वनियतोत्पत्तिक असाधारण कारण की जन्यता का निश्चय किया जाय । उस धर्म का निश्चय भी नहीं कर सकते हैं यह पहले कह चुके हैं । प्रत्यक्ष त्वाद्यन्यतमवत्त्व या प्रत्यक्षाद्यन्यतमत्व ही तादृश धर्म है यह नहीं कह सकते, क्योंकि भेदकूटावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्व के अन्यतमत्व होने से अन्यतमत्व के अन्तः सकल प्रपञ्च के प्रविष्ट हो जाने से उसका ज्ञान असर्वज्ञ मानव के द्वारा करना सम्भव नहीं है ।) तस्मात् यह लक्षण भी नहीं हो सकता ।

तत्त्वानुभवत्व-खण्डन

''तत्त्वानुभूतिः प्रमा'' इस लक्षण में केवल तत्त्व एवं अनुभूति इन प्रत्येक पदार्थ के

पञ्चवराटकान् पिधाय कश्चित्पृच्छति 'कति वराटका' इति? पृष्टश्चाजाकृपाणीयन्यायेन ब्रवीति 'पञ्चे'ति, ततः 'पञ्चे'ति ज्ञानमस्ति वक्तुः श्रोतुश्च; दृश्यन्ते तावदेवंविधान्युदाहरणानि; तच्च ज्ञानं न तत्त्वपदेन व्यवच्छेत्तुं शक्यम्, वस्तुतस्तस्य पञ्चसङ्ख्यावच्छिन्नत्वेनातथाभूतत्वाभावात् । नाप्यनुभवशब्दव्यवच्छेद्यम् , अननुभूतचरत्वेन स्मरणलक्षणोपेक्षणात् । नच—वक्तुः संशय एव, निश्चायकाभावात्, एकतरकोटिव्यवहारस्तु कृष्यादिप्रवृत्तिवदिति—युक्तम्; तत्राप्याहाररूपैककोटिनिश्चयाऽऽस्था-

शारदा

वक्ष्यमाणेऽजाकृपाणीयेऽपि । **आगच्छतः काकस्याकस्मात्तालफलपतनात्, आगच्छन्त्याश्चाजाया आकस्मिककृपाणपतनाद्यथा मरणं तथेत्यर्थः । अजाकृपाणीयन्यायेन = अवितर्क्यैव** । तत इति । **ततः पूर्वं वक्तुः, ततः परं च श्रोतुरित्यर्थः** । तच्चेति **वक्तृसमवेतमित्यर्थः । श्रोतृसमवेतस्य शाब्दप्रमायामन्तर्भावसम्भवादिति भावः । तस्य = वराटकादेः** । स्मरणेति । **यदा भावनाजन्मनोऽपि प्रातिभस्य स्मृतित्वम्, तदा तदजन्मनस्तद्दूरतरम्** । संशय इति । **तदुक्तं शास्त्रदीपिकायाम्–''यत्तु प्रातिभाख्यं प्रमाणम् 'श्वस्ते भ्राताऽऽगन्ते'ति तत्तु लिङ्गाद्याभासजमनिश्चायकत्वादेवाप्रमाणमि'ति । अनिश्चायकत्वात् = अनिश्चयत्वात् । अवग्रहाद्यन्तरायाणामपि सम्भवेनानिश्चितसस्याधिगमानामपि प्रवृत्तौ ''भविष्यति फलमवग्रहाद्यभावे'' इत्येकतरकोटिव्यवहारवदित्यर्थः । तत्रापि = कृष्यादिस्थलेऽपि । आहाररूपो = यदिपदघटितवाक्याभिलप्यविषयको निश्चयो यदि वृष्टिर्भविष्यति तदा कृष्यादितोऽवश्यं फलं लप्स्यते इत्याकारः । अयमेव मङ्गलवादमणौ तर्कशब्देन व्यवहृतः ''यदि च वृष्ट्यादौ सति कृष्यादितोऽवश्यं फलमिति तर्कात्तत्र प्रवृत्तिस्तदा सति विघ्ने मङ्गलादवश्यं फलमिति तर्कादत्रापि प्रवृत्ति''रिति तत्रोक्तम् । तर्कादिति निश्चयादित्यर्थ इति तत्र मथुरानाथाः । आस्थानात् = स्वीकारात् । संशयादेकतरकोटिव्यवहारा-**

भारती

निर्वचन की तथा प्रत्येक पदार्थगत व्यवच्छेदकत्व (व्यावर्तकत्व) की अनुपपत्ति से ही यह लक्षण दुष्ट नहीं है, अपितु तत्त्वानुभूति'' इस समुदित लक्षण में भी दोष विद्यमान है ।

वह दोष इस प्रकार है कि—तत्त्वानुभूति प्रमा यह लक्षण काकतालीय (जैसे उड़ते हुए कौवे पर अकस्मात् ताल (ताड़) फल के गिरने से उसकी मृत्यु हो जाती है, उस प्रकार अकस्मात् होने वाले अर्थात् दैववशसम्पन्न) यथार्थज्ञान में अतिव्याप्त है । जैसे कोई मनुष्य अपने हाथ में पाँच कौड़ियाँ छिपाकर किसी से पूछता है कि—''मेरे हाथ में कितनी कौड़ियाँ हैं'' । वह अजाकृपाणीन्याय से (जैसे आती हुई बकरी पर अकस्मात् तलवार गिरने से उसकी मृत्यु हो जाती है उसी प्रकार अकस्मात् अर्थात् दैववशात्) उत्तर देता है कि—''पाँच कौड़ियाँ हैं'' । ईदृशस्थल में वह कौड़ियों के पञ्च संख्या का ज्ञान वक्ता को पहले एवं श्रोता को पश्चात्

नात्, अन्यथा संशयस्य कोटिद्वयनिश्चयसमुच्चयतापत्तेः । नच प्रमैव तदित्युररीकरणीयम्; मध्येऽध्यक्षादिदुरन्तर्भावत्वात् ।

शारदा

नुपपत्तेरित्याशयः । एतेन–कृष्यादौ न निष्कम्पा प्रवृत्तिरपि तु सकम्पा, साच संशयाधीनैवेति निरस्तम्; उक्तज्ञानस्य च संशयानात्मकत्वात् । लिङ्गग्रहादिकमन्तरेणैवोत्पत्तेरानुभविकत्वात्ता-दृशनिश्चयस्य लिङ्गाद्याभासजत्वाभिधानं न युज्यते । अन्यथा = एकतरकोटिकव्यवहार-जनकत्वेन निश्चयस्यापि तादृशज्ञानस्य संशयत्वोपगमे । संशयस्य = पर्वतो वह्निमान्नवेति ज्ञानस्यापि । यदि संशयत्वमेककोटिकज्ञानवृत्ति स्यात् निश्चयत्वानतिरिक्तवृत्ति स्यात् निश्चयत्ववदित्यर्थः । दुरन्तरिति । **योगजधर्मप्रसूतानुभवस्येवास्यापि प्रत्यक्षत्वं स्यादिति तु न देश्यम् , अत्र साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायस्य वक्तुः कदाप्यनुदयात् ।**

राजहंसः

तत्त्वानुभवत्वखण्डनशारदायां राजहंसः

उक्तज्ञानस्य च संशयानात्मकत्वादिति । एवञ्च कृष्यादौ यदि सकम्पैव प्रवृत्तिः प्रामाणिकी तर्हि साऽऽहाराख्यविलक्षणनिश्चयादेव निर्वाह्यतामिमि भावः । **वक्तुः कदाप्यनुदयादिति।**

भारती

यथार्थ ही होता है । ऐसे अनेक उदाहरण देखने में आते हैं । किन्तु वक्ता के उस ज्ञान की लक्षण घटक तत्त्व पद के द्वारा व्यावृत्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि वस्तुतः वे कौड़ियाँ पाँच होने से तद्विषयकज्ञान यथार्थ ही है । अनुभूति पद से भी उसकी व्यावृत्ति नहीं कर सकते, क्योंकि पञ्च वराटक (पाँच कौड़ियाँ) के पूर्वकाल में अनुभूत न होने से उसका ज्ञान स्मरण नहीं हो सकता ।

प्रश्न—उक्त स्थल में वक्ता को संशय ही होता है । क्योंकि वह ज्ञान निश्चयात्मक नहीं है । एक पक्ष का व्यवहार तो कृष्णादि के समान हो सकता है अर्थात् जैसे कृषि आदि में प्रवृत्त मनुष्य को मध्य में अवग्रहादि अन्तराय के भी सम्भावित होने से कृषिविषयक निश्चय न रहने पर भी ''अवग्रहादि (प्रतिबन्धादि) के न रहने पर अवश्य ही वृष्टि सफल होगी'' इस आशय से कृषि व्यापार आदि में प्रवृत्ति होती है । उसी प्रकार प्रकृत में एकतर कोटि (पक्ष) का व्यवहार हो जायेगा ।

समाधान – यह मानना उचित नहीं है क्योंकि कृषि आदि स्थल में भी ''यदि वृष्टि होगी तो कृषि आदि के द्वारा हमें धान्यरूपफल की प्राप्ति होगी'' इत्याकारक आहार रूप (यदि पदघटित वाक्य के द्वारा अभिलाप (कथन के योग्य) विषयक निश्चय ही स्वीकार किया जाता है। एवञ्च ''पञ्चवराटका'' इत्याकारक वक्ता के ज्ञान को संशय नहीं कह सकते, यदि संशय मानेङ्गे तो उसके द्वारा एकत्तर कोटि का व्यवहार नहीं होगा । (संशय के द्वारा एकत्तर कोटि का व्यवहार नहीं होता है।) और यदि एकत्तर कोटि (पक्ष) के व्यवहार का जनक होने से निश्चयात्मक ''पञ्च वराटकाः'' इस ज्ञान को भी संशय मान लें तो ''पर्वतो वह्निमान् न वा'' इत्यादि संशय ज्ञान भी कोटिद्वय के निश्चयों का समुच्चय रूप ही हो जायेगा । (यहाँ यदि

अव्यभिचारिकरणजन्यत्वे सतीतिविशेषणीयमिति चेन्न; तत्त्वपदवैयर्थ्यापातात् । न च काकतालीयसंवादमपि ज्ञानं

शारदा

एवमनुमिनोमीत्यादिप्रत्ययाभावेन नानुमितित्वादिकमपि । अथाव्यभिचारिकरणजन्यत्वं यदि प्रमाकरणजन्यत्वं तदात्माश्रयः, शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शानुधावनापातश्च, यदि पित्तादिरहितेन्द्रियसन्निकर्षयथार्थलिङ्गज्ञानयथार्थसादृश्यज्ञान यथार्थयोग्यताज्ञानान्यतमजन्यत्वं तत्, तदाप्यात्माश्रयः, भ्रमात्मकलिङ्गज्ञानजन्यानुमितेरपि क्वचित् प्रमात्वेनाव्याप्तिश्च, तत्त्वपदवैयर्थ्यापाताभिधानस्यासङ्गतिश्च, तादृशानुमितेस्तत्त्वानुभवत्वलक्षणेन सङ्गृहीतत्वात्। अतएव दुष्टेन्द्रियभ्रमात्मकलिङ्गज्ञानाद्यजन्यत्वमपि न तत् । नच भ्रमजन्यानुमितेरयथार्थत्वमेव, तत्र विशेष्यावृत्तेरेव प्रकारस्य भानमिति मतस्यैवावलम्बनीयत्वात्, एवं च न तत्त्वपदवैयर्थ्याभिधानस्यासङ्गतिरिति वाच्यम्; एवं सति 'नच काकतालीयसंवादमपी'-त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतिरेव' उक्तमतानुसारे तत्रापि करावृत्तिवराटकादेर्व्यधिकरणप्रकारस्यैव भानोपगमसम्भवादिति चेन्न; उक्तमतानुसारेणैव वैयर्थ्याभिधानात्, नचेत्यादिग्रन्थस्य च लौकिकव्यवहारानुरोधेन याथार्थ्यमुपगम्य प्रवृत्तेर्वक्तुं शक्यत्वात् । अव्यभिचारित्वे च तत्त्वपदार्थातिरेकिण एव व्यधिकरणप्रकारकत्वाद्यभावरूपयाथार्थ्यस्य घटकत्वसम्भवादिति।

राजहंसः

ननु योगिभिन्नानां तादृशानुव्यवसायस्य लौकिकप्रत्यक्षस्थले एवोदयेन तदभावेन लौकिकप्रत्यक्षत्वं माऽस्तु प्रकृतज्ञानस्य, अलौकिकमानसप्रत्यक्षत्वं तु केन वार्यते, याथार्थ्यं त्वदृष्टविशेष-वशादेवेत्यगत्योपगन्तव्यमिति चेन्न, तादृशानुव्यवसायसद्भावस्थले एव प्रत्यक्षत्वस्य लौकिकव्यवहारानुरोधिसिद्धिकतया तदसद्भावस्थलेऽपि प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमस्य परिभाषामात्रत्वात्, न च योगिनामिवात्र स्फुटावभासोऽपि, तस्मात्क्लृप्तप्रमातिरेकित्वमेव तादृशज्ञानस्य पर्यवस्यति, तच्चाग्रे शारदायामाशङ्कितमेवेत्यदोषः ।

भारती

संशयत्वम् एकतरकोटिज्ञान वृत्ति स्यात् निश्चयत्वानतिरिक्तवृत्ति स्यात् निश्चयत्ववत्'' इस प्रकार आपादन किया जा सकता है ।)

यदि कहें कि ''पञ्च वराटकाः'' इस ज्ञान को प्रमा ही मान लिया जाय, (तथा च प्रमालक्षण के उसमें समन्वित होने पर अतिव्याप्ति न होगी, क्योंकि वह तो लक्ष्य ही है ।) तो यह कह नहीं सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष आदि परिगणित प्रमाओं में उस दैववश सञ्जात ''पञ्च 'वराटकाः'' इत्याकारक यथार्थ ज्ञान का अन्तर्भाव नहीं हो सकता ।

प्रश्न – तत्त्वानुभूतिः प्रमा इस प्रमा लक्षण में ''अव्यभिचारिकरणजन्यत्वे सति'' यह विशेषण देंगे । एवञ्च ''पञ्चवराटकाः'' इस ज्ञान में अतिव्याप्ति न होगी ।

समाधान – उक्त प्रमा लक्षण में इस प्रकार (अव्यभिचारिकरणजन्यत्वे सति) विशेषण देने पर ''तत्त्व'' पद (विशेषण) व्यर्थ हो जायेगा । (क्योंकि तत्त्व विशेषण से व्यावर्त्य की व्यावृत्ति ''अव्यभिचारिकरणजन्यत्वे सति'' विशेषण के द्वारा ही हो जायेगी ।)

व्यभिचारिकरणसामग्रीजन्यमास्थातुमीशिषे; व्यभिचारिणोऽपि कारणाविशेषाद्यथार्थत्वप्रसङ्गात् , नह्यहेतुकमेवास्य यथार्थत्वम्, नियामकाभावेनातिप्रसङ्गापातात्; अवश्यमस्याव्यभिचारित्वेऽ-व्यभिचारिनियतमेव करणं वक्तव्यम् । किं तदिति चेत्; स्वात्मनैवात्र प्रश्ने दीयतामुत्तरं भवता, येन नियतेषु प्रमाराशिष्वेवेदं ज्ञानमन्तर्भाव्यम्, प्रमासामान्यलक्षणेन वा व्यवच्छेतव्यम् ।

एवं लिङ्गाभासादिभ्योऽपि जातं लिङ्गिज्ञानं दैवगत्या स्थित-

शारदा

प्रकृतज्ञानं त लिङ्गभ्रमजन्यमित्यभिमानः । तत्त्वपदत्यागेऽप्युक्ताभिमानं निराकुर्वन्नाह नचेति । **संवादो याथार्थ्यम् । करणसामग्री = करणघटितसामग्री । व्यभिचारिणः = व्यधिकरणप्रकारकत्वेन प्रसिद्धग्रहस्यापि यथार्थत्वप्रसङ्गात्, प्रकृतज्ञानकारणेन तत्कारणस्य दुष्टत्वेनाविशिष्टत्वात्। ननु दोषघटितसामग्रीप्रयुक्तं न प्रकृतज्ञानस्य याथार्थ्यं येनान्यत्रापि तद्बलात्तदापत्तिः स्यात्, अपि त्वाकस्मिकमेवेत्यत आह** नहीति । **अव्यभिचारिनियतं = व्यधिकरणप्रकारकत्वाभाववज्ज्ञानजनकम्, एवञ्चैतावताऽव्यभिचारिकरणजत्वघटितलक्षणस्यापि तत्रातिव्याप्तिरुक्ता । येन भवता नियतेषु = क्लृप्तेषु ।**

ननु तस्य सम्भावनात्वमेव, कृष्यादिस्थलेऽपि सम्भावनायामेव निश्चयत्वभ्रमः,

भारती

किञ्च तत्त्व पद का परित्याग कर भी देंगे तब भी ''पञ्च वराटकाः'' इस काकतालीय ज्ञान की व्यावृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि काकतालीय संवाद (दैववशात् जायमान यथार्थ) ज्ञान को व्यभिचारीकरण घटितसामग्री से जन्य नहीं मान सकते, कारण कि यदि काकतालीय यथार्थ ज्ञान को व्यभिचारीकरणघटित सामग्री से जन्य मानें तो व्यधिकरण प्रकारकतया प्रसिद्ध शुक्तिरुप्य ज्ञान भी यथार्थ हो जायेगा, क्योंकि दोनों की कारण सामग्री दुष्टत्वेन समान है।

यदि कहें कि काकतालीय यथार्थज्ञान का यथार्थत्व अहेतुक (आकस्मिक) ही है न कि दोष घटितसामग्री प्रयुक्त, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यथार्थत्व को अहेतुक मानने पर–अर्थात् उसका नियामक न मानने इदं ग्जतम् इत्यादि भ्रमज्ञान भी यथार्थ हो जायेंगे । अतः काकतालीय ज्ञान के अव्यभिचारी (यथार्थ) होने पर अवश्य ही उसका कारण भी अव्यभिचारी (यथार्थ) ही मानना होगा।

यदि पूछें कि वह अव्यभिचारीकरण कौन है ? तो इस स्वयं के द्वारा उपस्थापित प्रश्न का उत्तर भी आप स्वयं दें, जिससे आपके द्वारा क्लृप्त (परिगणित प्रत्यक्षादि) प्रमा राशि में इस काकतालीय ज्ञान का अन्तर्भाव किया जाय, या ''तत्त्वानुभूतिः प्रमा'' इस प्रमा के सामान्यलक्षण से इसकी व्यावृत्ति की जाय।

एवं जहाँ धूलिपटल में धूमभ्रम के अनन्तर भ्रमात्मक धूमज्ञान के द्वारा वह्निज्ञान

लिङ्गलिङ्गिनि लिङ्गिमत्येव वा यत्स्यात् तत्तु यद्यपि लिङ्गाभासांशे न प्रमा, नवा तद्वति लिङ्गिस्वरूपे, तथापि विशिष्टं तथाविधं गोचरयन्त्यास्तस्या बुद्धेर्लिङ्गान्तरवति केवले वा लिङ्गिनि वह्न्यादावप्यंशे विषये प्रामाण्यस्वीकारेणोक्तदोषापरिहारादिति।

शारदा

''यदि जलं सहकारिभिः सम्पत्स्यते तदा मे तृषं शमयिष्यती'' त्यादेः सम्भावनाख्यतर्कत्वं चतुर्थे भवतैव व्युत्पादनीयम् , अतएवोक्तमणावपि तर्कशब्देन तदभिधानं यथाश्रुतमेव सम्यक्, यदि च तादृशसम्भावनायाः कोट्यन्तरास्पर्शित्वं प्रकृतज्ञानस्यैव वा तथात्वं शपथेन निर्णीयते तथाच तस्या निश्चयत्वमेवेत्याग्रहः, तदाऽस्तां प्रकृतज्ञानस्यातिरिक्तप्रमात्वम्, अपसिद्धान्तभीरुतायां वा निवेश्यतां प्रमालक्षणे प्रातिभभिन्नत्वम् , स्मृतेर्यथार्थाया अपि प्रमाणान्तरस्वीकारभयेन व्यावृत्तयेऽनुभवत्वमिवेत्यस्वरसादतिव्याप्तेः स्थलान्तरमाह एवमिति । लिङ्गेति । **अव्याप्यस्यापक्षधर्मस्य वा धूलीपटलादेर्व्याप्यत्वेन पक्षधर्मत्वेन च परामर्शादित इत्यर्थः। लिङ्गि=साध्यम् । दैवगत्या = स्वसामग्रीवशात् । स्थितेत्यादिबहुव्रीहिः । धूमवह्न्युभयवद्विशेष्यकमित्यर्थः । तत्र लिङ्गस्याभावेऽपि प्रकृतनिर्वाह इत्याशयेनाह** लिङ्गिमत्येव वेति । **धूमवदविशेष्यकत्वे सति। वह्निमद्विशेष्यकमित्यर्थः ।** लिङ्गाभासांशे इति। **इदञ्च लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानमताभिप्रायेण, अन्यथा लिङ्गाभासभानस्यानुमितौ प्रसक्तेरेवाभावेन तदंशे प्रमात्वनिषेधासङ्गतेः। तद्वति = सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तद्विशिष्टे। विशेषणांशे प्रमात्वं विना विशिष्टांशे प्रमात्वानिर्वाहादिति भावः। विशिष्टं = लिङ्गाभासविशिष्टं तथाविधं = लिङ्गिनं गोचरयन्त्याः = तत्तदंशे तेन तेन सम्बन्धेन तत्तत्प्रकारिकाया इति यावत् , तेनापक्षधर्मे सामानाधिकरण्यस्याव्याप्ये च व्याप्यादेरप्रसिद्धावपि न क्षतिः ।** बुद्धेरिति । **अनुमितेरितितुनोक्तम् , लिङ्गाभासादिभ्य इत्यत्रादिपदोपादानेन तादृशार्थापत्त्यादेरपि सङ्ग्राह्यत्वात् । अनुमित्यादेरित्यभिधाने च गौरवात् । वस्तुतस्तु वक्तव्यदिशा तस्यानुमित्यनन्तर्भावाभिप्रायेणेदमुक्तम् । लिङ्गान्तरवति लिङ्गिनि = सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन सल्लिङ्गविशिष्टलिङ्गिविषयकत्वावच्छेदेन । पूर्वं स्थितलिङ्गलिङ्गिनीत्युक्तत्वादिदमुक्तम्, लिङ्गिमत्येवेत्युक्तानुसारेणाह** केवले इति। **अंशे विषये = विषयात्मकांशे, तथाच वह्न्यादिरूपकेवललिङ्गिविषयकत्वावच्छेदेनेत्यर्थः ।**

भारती

दैववशात् अर्थात् स्वसामग्रीवशात् हेतुसाध्ययुक्त या साध्ययुक्तअधिकरण में ही होता है । यद्यपि वह ज्ञान हेत्वाभास अंश (धूलिपटलगत धूमभ्रमांश) में प्रमा नहीं है और न तादृशलिङ्गाभास (हेत्वाभास) विशिष्ट साध्य अंश में ही प्रमा है । तथापि हेत्वाभासविशिष्ट साध्य को विषय करने वाली उस बुद्धि का लिङ्गान्तर (सत्लिङ्ग) विशिष्ट साध्य (वह्नि) अंश में (अर्थात् साल्लिङ्गविशिष्टलिङ्गिविषयकत्वावच्छेदेन) अथवा केवल साध्य अंश (केवलवह्नि अंश) में प्रामाण्य स्वीकार किया जाता है । अतः उस ज्ञान में ''तत्त्वानुभूतिः प्रमा'' इस प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति दोष हो जायेगा ।

शारदा

अपिना धर्मिसमुच्चयः। नचैवं धर्म्यंशे ज्ञानमात्रस्य यथार्थत्वेन ज्ञानविशेषपर्यन्तं धावनं विफलमिति वाच्यम्, धर्म्यंशे ज्ञानमात्रस्य यथार्थत्वेऽपि 'इदं रजतमिति ज्ञानं भ्रमो नतु प्रमे'ति सार्वजनीनव्यवहारेण प्रकारांशमादायैव भ्रमत्वाभ्रमत्वयोर्व्यवस्थितेर्ज्ञानविशेषपर्यन्तधावनसाफल्यात् । वस्तुतस्तु अंशेऽपि विषये' इति योजनया 'नह्यनांशिकमेव यथार्थत्वमपित्वांशिकमपी'त्यपेः स्वरसःसाधीयान् । प्रामाण्यं = तद्वति तत्प्रकारकत्वम्, तेनातिव्याप्तिदानस्य यथाश्रुते नासङ्गतिः । लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाभ्युपगमेनांशिकयाथार्थ्यमुक्तम्, तदनभ्युपगमे तु सर्वांशे एव याथार्थ्यं द्रष्टव्यम् । उक्तदोषः = प्रमालक्षणातिव्याप्तिः । नच–लक्ष्यत्वान्नातिव्याप्तिः, अनुमितित्वस्य व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वरूपस्य जातिविशेषरूपस्य वा तत्र सम्भवदुक्तिकत्वादिति–वाच्यम्; दोषसमवहितजन्यज्ञानत्वस्याप्रमात्वसमनैयत्यमिति मीमांसकमते तावन्न तस्य लक्ष्यतासम्भवः, उक्तपरामर्शस्य भ्रमत्वेन तत्र दोषस्यावश्यकत्वात्, दोषाभावप्रयोज्यत्वं च प्रमात्वे तन्मते तत्स्वतस्त्वान्यथानुपपत्त्या आवश्यकम् । नापि तार्किकमते, तेन प्रमाया गुणजन्यत्वोपगमेनानुमितौ च यथार्थलिङ्गज्ञानस्यैव गुणत्वेन तस्य चात्रासद्भावेन प्रमात्वानुपपत्तेः । अतएव व्याप्तिविशिष्टप्रतियोगिकपक्षानुयोगिकसम्बन्धावगाहिज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिरिति प्राञ्चः। नचेश्वरीयतादृशज्ञानमेव तत्र गुण इति तज्जन्यत्वेनानुमित्यात्मकप्रमात्वोपपत्तिरिति वाच्यम्; ईश्वरीयतादृशज्ञानजन्यज्ञानत्वस्यानुमितित्वं प्रति वा, प्रमात्वं प्रति वा, उभयं प्रति वा प्रयोजकत्वम्, आद्ये ज्ञानमात्रस्येश्वरीयतादृशज्ञानजन्यत्वेनानुमितित्वप्रसङ्गः, जन्यतानवच्छिन्नजन्यताभिधाने च प्रकृतज्ञानेऽपीश्वरीयज्ञानजन्यताया जन्यतावच्छिन्नतया नानुमित्यन्तर्भावसम्भवः, द्वितीये ज्ञानमात्रस्य प्रमात्वप्रसङ्गः, अतएव न तृतीयोपि । अथ तादृशज्ञानजन्यज्ञानवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वेन प्रकृतज्ञानस्यानुमितित्वमवश्यं वाच्यम्, अतएव ''वस्तुतो वह्निमत्यपि पर्वते यदि कश्चिद्वाष्पं धूमं प्रतीत्य ततो वह्निमनुमिनोती'' ति मूले एव प्रश्नखण्डनप्रस्तावेऽभ्यधायि, तदीयप्रमात्वोपपादनाय परं तादृशं भगवज्ज्ञानं शरणीकरणीयम्, पर्वतो वह्निमानितियथार्थानुमितिं प्रत्येव 'पर्वतो वह्निव्याप्यवा' नित्येतद्विषयकत्वेन भगवज्ज्ञानस्य गुणत्वकल्पनाच्च नातिप्रसङ्गः, यथार्थानुमितित्वस्य प्रकृतज्ञाने तवापि सम्प्रतिपत्तेः, अनुमातरि परस्परोपश्लिष्टतया व्याप्त्यादिघटकपदार्थावगाहिज्ञानस्याप्यपेक्षणीयतया च न तद्विरहदशायां भगवतस्तादृशज्ञानमादायानुमितिप्रसङ्ग

राजहंसः

यथाश्रुते नासङ्गतिरिति । प्रामाण्यस्यैव स्वीकारे लयत्वेनातिव्याप्त्यसम्भवादिति भावः।

भारती

(यदि कहें लिङ्गाभास के द्वारा भी जायमान उक्त प्रकार से साध्याधिकरण में साध्यप्रकार ज्ञान– व्याप्तिप्रकारक पक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञान रूप होने से अनुमिति रूप है अतः वह (ज्ञान) प्रमारूप होने से उक्त प्रमालक्षण का लक्ष्य ही है । ऐसी स्थिति में अतिव्याप्ति कैसे होगी, तो आप का कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मीमांसक के मत में दोषविशिष्टसामग्रीजन्यज्ञानत्व अप्रमात्व का समनियत है और प्रकृत में उक्त परामर्श के भ्रमात्मक होने से उसे दोषविशिष्ट

आभासकरणजत्वात्तद्विषयस्य वस्तुभूतलिङ्ग्यादेरन्यत्वमेवेति चेन्न; विशेषस्यान्यत्वेऽपि तज्जातीयमात्रवत्तावभासांशे दोषापरिहारात्। सामान्यसम्बन्धकोटिनिविष्टत्वाद्विशेषस्य, तस्य च तत्रानवस्थितस्यैव

शारदा

इति चेन्न; प्रमात्वखण्डनशेषे वक्ष्यमाणदिशा प्रमायां गुणजन्यत्वस्याप्रामाणिकत्वेन दोषाभावप्रयोज्यताया एव तत्र वाच्यत्वेन प्रकृते च दोषस्य सत्त्वेन न प्रमात्वापादने इष्टापत्त्यवकाश इत्याशयेनातिव्याप्त्यभिधानात् । अतएव स्वतस्त्ववादिमतेनैवाशङ्कते आभासकरणजत्वादिति। **दोषघटितसामग्रीजन्यत्वादित्यर्थः । प्रकृतज्ञानस्येत्यादिः । तद्विषयस्य = प्रकृतज्ञाने विधेयतया भासमानस्य ।** वस्तुभूतेति । **विशेष्यवृत्तीत्यर्थः ।** अन्यत्वमेवेति। **तथा च स्वनिरूपितविशेष्यताश्रयावृत्तिप्रकारकत्वेन प्रकृतज्ञानस्य भ्रमत्वमेवेति भावः । तज्जातीयमात्रवत्तावभासांशे = वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारकत्वावच्छेदेन । वह्नित्वेन रूपेण हि व्यापकता गृहीत्ता न तु पर्वतावृत्तितत्तद्वह्नित्वेनेति व्यापकतावच्छेदकवह्नित्वेनैवानुमितौ विधेयस्य भानं युक्तम्, इतरविशेषबाधस्य लाघवस्य वा सहकारेण हि क्वचिद्व्यापकतानवच्छेदकरूपेणापि साध्यस्यानुमितौ भानमुपेयते नच प्रकृतेऽनुमातुस्तथा, तेन पूर्वं स्वपरामर्शस्य भ्रमत्वानवधारणात्, एवं च वह्निमति पर्वते 'पर्वतो वह्निमानि'त्याकारकधियः कथं न यथार्थत्वमिति भावः ।** सामान्येत्यादि । **वह्नित्वादिसामान्यप्रतियोगिकसम्बन्धनिरूपितसम्बन्धिताश्रयघटकत्वादित्यर्थः ।**

भारती

मानना आवश्यक है अतः मीमांसक मत के अनुसार लिङ्गाभासजन्य वह्निमत में वह्नि अनुमिति भी दोषसमवहितजन्यज्ञान रूप होने से अप्रमा ही होगी, अतः वह प्रमालक्षण का लक्ष्य नहीं हो सकती । एवं तार्किक मत में भी लक्ष्य नहीं हो सकती, क्योंकि तार्किक मत में प्रमा गुणजन्य मानी जाती है और अनुमिति रूप प्रमा में यथार्थ लिङ्गज्ञान ही गुण माना जाता है जो कि प्रकृत लिङ्गाभासजन्य अनुमिति में नहीं है । अतः गुणजन्य न होने से वह (लिङ्गाभासजन्य अनुमिति) प्रमा नहीं है अपितु अप्रमा ही है इसलिए प्रमालक्षण का लक्ष्य नहीं हो सकती ।)

प्रश्न – लिङ्गाभासजन्य ज्ञान का विषय वह्नि आदि साध्य विशेष्यवृत्ति परमार्थ वह्नि से भिन्न ही है क्योंकि यह लिङ्गाभासजन्य प्रकृतज्ञान दोषघटित सामग्री से जन्य है ।

समाधान – तत्तद् व्यक्तिविशेष को अन्य मान भी लें तो तत्तद्जातीयवत्ता अर्थात् वह्नित्वजातीयवत्ता अंश में तो वह ज्ञान यथार्थ ही है ऐसी स्थिति में वहाँ उक्तलक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । (तात्पर्य यह है कि वह्नित्व रूप से ही वह्नि में व्यापकत्व निश्चय है न कि पर्वतावृत्ति तत्तद्वह्नित्व रूप से, और व्यापकतावच्छेदवह्नित्व रूप से ही अनुमिति में वह्नि का भान मानना उचित है अतः वह्निमान् पर्वत में ''पर्वतोवह्निमान् इत्याकारक ज्ञान वन्हित्वावच्छिन्नप्रकारकत्वावच्छेदेन (वह्नित्वावच्छिन्न प्रकारकत्व अंश में) यथार्थ ही है अतः उसमें उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति होगी ।)

प्रश्न– तत्तद्वह्निरूपव्यक्तिविशेष ही वह्नित्वादि सामान्य है प्रतियोगि जिसके ऐसे

स्फुरणान्नैष दोष इति चेन्न; विशेषाप्रतिभासे सामान्यतस्तन्मात्रवत्ताप्रतिभासस्याप्यभ्युपेयत्वात्, देवदत्तयज्ञदत्तसम्बन्धितासंशयेऽपि पुरुषसम्बन्धितया निश्चयवत् । सम्बन्धिविशेषस्य निर्लुण्ठित-

शारदा

सामान्यधर्मावच्छिन्नत्वादिति यावत् । विशेषस्य = तत्तद्व्यक्तिरूपविशेषस्यैव । तस्य = विशेषस्य । तत्रानवस्थितस्य = पर्वतेऽवर्तमानस्य । विशेष एव हि सामान्यधर्मावच्छिन्नः, स च यदि पर्वतावृत्तिरेव प्रकृतज्ञानप्रकारतया तद्दोषजन्यत्वान्यथानुपपत्त्या कल्पितः, तदा सामान्यधर्मावच्छिन्नतयाऽपि स एव भायान्नतु पर्वतवृत्तिरिति कथमुक्तधियो यथार्थत्वमित्यर्थः । विशेषाप्रतिभासे = महानसीयत्वादिना वह्नेरुक्तबुद्ध्यविषयत्वे। महानसीयवह्नित्वाद्यवच्छिन्नव्यापकताग्रहादिघटितसामग्रीविरहदशायामित्यादिः । अपिरेवकारार्थे । वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकत्वस्यैवेत्यर्थः । यत्र सामान्यधर्मावच्छिन्नस्य कस्यापि न सद्भावः, यथा पुरोवर्तिनि रजतत्वावच्छिन्नस्य, तत्रान्यथाख्यातिवादिनां भवतां देशान्तरवर्तिन एव सामान्यधर्मपुरस्कारेण भानकल्पनं युज्यते, यत्र तु कस्यचित्सामान्यधर्मावच्छिन्नस्य सद्भावः, तत्र सामग्रीसत्त्वे सोऽपि कुतो न भायात्, प्रकृतज्ञाने च दोषजन्यत्वेन विशेष्यावृत्तिविषयकत्ववद्वह्नित्वावच्छिन्नव्यापकताग्रहघटितसामग्रीसत्त्वेन विशेष्यवृत्तिरपि वह्निः कुतो न भासेत, नहि महानसीयत्वादिना विशेषोऽनुमितौ परिस्फुरति, येन विशेषान्तरस्य तद्विषयत्वमसम्भवदुक्तिकं स्यात्, अपितु वह्नित्वेनैव, तथैव व्यापकताग्रहादिति भावः । देवदत्तेति । **यथा घटादौ देवदत्तीयत्वादिना निश्चयसामग्र्यभावदशायां पुरुषीयत्वेनैव च**

भारती

सम्बन्ध (समवाय) से निरूपित सम्बन्धिता के आश्रय (समस्तवह्नि) के अन्तर्गत होते हैं अर्थात् विशेष ही वह्नित्वादिरूप सामान्यधर्मावच्छिन्न होते हैं और वह तत्तद्वह्निरूप व्यक्तिविशेष तो पर्वत में अवर्तमान ही भासित होता है अतः तद्विषयक ज्ञान यथार्थ नहीं है अतः अतिव्याप्ति न होगी ।

(पूर्वपक्ष का आशय है कि विशेष ही सामान्यधर्मावच्छिन्न होता है और वह (विशेष) यदि पर्वतावृत्ति ही –उक्त ज्ञान के दोषजन्यत्व की अन्यथानुपपत्ति से प्रकृत ज्ञान में प्रकारतया भासित माना जाय तो सामान्यधर्मावच्छिन्न रूप से भी उसी का भान मानना होगा, न कि पर्वतवृत्तिं, ऐसी स्थिति में वह ज्ञान यथार्थ कैसे होगा ।)

समाधान– यह कहना ठीक नहीं है । क्योंकि (महानसीय वह्नित्वावच्छिन्नव्यापकता ग्रहादिघटित सामग्री के अभाव दशा में) महानसीयत्व रूप से वह्नि का भान न होने पर भी वह्नित्वरूप से वह्नि का भान होगा, क्योंकि उक्त अनुमिति को वह्नित्वावच्छिन्न विधेयताक ही मानते हैं । (तात्पर्य यह है–महानसीयत्वादि रूप से व्यापकता ग्रह नहीं है इसलिए महानसीयत्वादिना विशेष वह्नि का भान भले ही न हो, किन्तु वह्नित्वेन रूपेण तो सभी वह्नि विशेष का भी भान क्यों नहीं होगा, क्योंकि वह्नित्वेन ही व्यापकताग्रह सम्पन्न हुआ है ।) जैसे घटादि में देवदत्त

विशेषरूपतया च प्रवेशे व्याप्त्यादेरननुगमप्रसङ्गात्। सामान्यानुमा-

शारदा

निश्चयसामग्रीसत्त्वदशायां तेनैव रूपेण निश्चयस्तथेत्यर्थः। न च तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नव्यापकताकग्रहसम्भवः, व्यक्त्यानन्त्यात्, नवा पर्वतीयवह्निग्रहं विना तन्निष्ठव्यापकतायाः पर्वतीयधूमनिरूपिताया ग्रहसम्भव इति लाघवज्ञानादिविरहे महानसीयत्वाद्यवच्छिन्नविधेयताकत्वं कथमनुमितौ शङ्क्येतापीत्याह सम्बन्धिविशेषस्येति। **सामानाधिकरण्यनिरूपितसम्बन्धिताश्रयस्येत्यर्थः। तादृशाश्रयत्वं च व्यापके सामानाधिकरण्यस्य निरूपकतया, व्याप्ये च तदाश्रयतया। निर्लुण्ठितत्वं = सामान्यधर्मानवच्छिन्नत्वम्। तथा च सामान्यधर्मावच्छिन्नतया व्याप्त्याद्यघटकत्वे इत्यर्थः। व्याप्त्यादेरित्यादिनाऽनुमितिव्याप्तिज्ञानयोः कार्यकारणभावो विरोधिज्ञानैः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावश्च सङ्गृह्यते। प्रातिस्विकरूपैर्व्याप्त्यादेः पुरुषायुषैरपि ज्ञानासम्भवेन नेष्टापत्तिरिति भावः।** वस्तुतस्तु **'यो वह्निरन्वमायि, तमेवात्र निरीक्षे' इति प्रत्यभिज्ञानानुरोधेन पर्वतवृत्तिवह्निरेव तादृशानुमितिविषयः, अनुभवापलापे च कथानधिकारापत्तिरित्युक्तानुमितेः सर्वांशे एव यथार्थत्वम्। एतेन–प्रमात्वे दोषाभावप्रयोज्यत्वान्यथानुपपत्त्या वह्नित्वावच्छिन्नव्यापकताग्रहाधीनाया अपि प्रकृतानुमितेर्वह्नित्वेन पर्वतावृत्तिविषयकत्वमेव कल्पनीयम्। किञ्च सर्वांशे एव प्रमात्वं दोषाभावप्रयोज्यम्, आंशिकप्रमात्वं तु सत्यपि दोषे सम्भवत्येव, अन्यथा शुक्तौ 'इदं रजत'मिति घटाभाववति पटवति च ''इदं घटवत्पटवच्चे'त्यादिज्ञानस्यांशिकप्रमात्वं विलुप्येत, एवं च प्रकृतज्ञानस्यांशिकप्रमात्ववतोऽनुमितिप्रमायांमन्तर्भावसम्भव इति–देश्यस्य नावकाशः। यत्र व्यक्त्यन्तरभानकल्पनं नोदयमप्यासादयति तादृशस्थलेऽतिव्याप्तिमाह** सामान्यानुमानाभासे

भारती

सम्बन्धित्व यज्ञदत्तसम्बन्धित्व (यह घट देवदत्त का है या यज्ञदत्त का इस प्रकार के निश्चय की सामग्री न होने पर तादृशनिश्चय न होकर संदेह रहने पर भी पुरुष सम्बन्धितया (यह घट किसी पुरुष का है) निश्चय हो ही जाता है उसी प्रकार यहाँ भी महानसीयत्वादि रूप से निश्चय न होने पर भी वह्नित्व रूप से वह्नि का भान हो ही जायेगा तथा च उस अंश में यथार्थ होने से उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी।

किञ्च यदि सामान्यधर्मावच्छिन्नतया (वह्नित्वादिसामान्यधर्माश्रयतया) व्याप्तिग्रह न मानकर केवल विशेषधर्मावच्छिन्नतया (महानसीयत्वादि विशेषधर्माश्रयतया) ही वह्निधूम का व्याप्ति ग्रह मानेंगे, तो व्याप्ति का अननुगम हो जायेगा। (क्योंकि विशेष धर्मावच्छिन्न वह्नि व्यक्तियों के अनन्त होने से तेन रूपेण व्याप्तिग्रह होना सम्भव नहीं है। अपि च महानसीयवह्नित्वावच्छिन्न निरूपित महानसीयधूमत्वावच्छिन्न में व्याप्ति मानेंगे तो तादृश वह्निधूम के पर्वत में न होने से पर्वतीय धूमदर्शनादि के द्वारा पर्वत में वह्नि की अनुमिति न होगी। अतः सामान्यवह्नित्वादि रूप से ही व्याप्तिग्रह मानना होगा। तथा च उसी रूप से अनुमिति भी माननी होगी, अतः उसके यथार्थ होने से लिङ्गाभास जन्य अनुमिति में उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी।)

नाभासे च संवादिनि विशेषान्यवत्ताकल्पनानवकाशात्, सामान्य-समवाययोरप्यन्ययोरेव प्रतिभासेऽन्यथाख्यातिं विहायासत्ख्याति-प्रवेशापातात् । तत्रत्यधर्मान्तरस्य जात्या तादात्म्यारोपस्तत्रेति

शारदा

च संवादिनीति । **गोत्वव्याप्यपृथिवीत्ववतीयमित्यादिभ्रमजन्यगोत्वाद्येकव्यक्तिसाध्यकगोत्ववतीयमितियथार्थानुमितावित्यर्थः । गोत्वत्वेनोपस्थितिदशायां च तत्सम्भवः । विशेषान्यवत्तेति = पक्षावृत्तिगोत्वविषयकत्वेत्यर्थः । तथाच गोत्ववति गोत्वप्रकारकत्वेन तादृशानुमितेर्याथार्थ्याद्दोषजन्यत्वेन चालक्ष्यत्वादतिव्याप्तिरिति । समवायेति समवायव्याप्यभावत्ववान् घट इति भ्रमाधीनानुमित्यभिप्रायेण, एवञ्च पूर्वत्रापि सामान्यपदं समवायस्योपलक्षणम्, प्राचीनतार्किकमते तस्यैकत्वात्, तन्नानात्ववादिनव्यमते तु तत्साध्यकानुमितावतिव्याप्तिरग्नि-साध्यकानुमित्यतिव्याप्तिसमानयोगक्षेमा । तदनङ्गीकर्तृभट्टमते तु तत्साध्यकानुमितौ नातिव्याप्तिसम्भावना । अन्यथाख्यातिं = विशेष्यावृत्तिसतो ज्ञानविषयत्वं विहाय = अस्वीकृत्य । असत्ख्यातिप्रवेशः = असतः प्रकारतया ज्ञानविषयत्वस्वीकारः, तेन प्राचीनान्यथाख्यातिमतेऽसतः संसर्गतया ज्ञानविषयत्वोपगमेऽपि न क्षतिः । प्रकृते तु सामान्यसमवाययोः साध्यतया प्रकारतैवेति भावः । तत्रत्यधर्मान्तरस्य = गोत्वान्यस्य गोवृत्तिधर्मस्य । तत्र = गोत्वव्याप्यपृथिवीत्ववदिदमितिभ्रमाधीनः । तथाच तादृशभ्रमेण**

भारती

किञ्च संवादि सामान्यअनुमानाभास अर्थात् "गोत्वव्याप्य पृथिवीत्ववती इयम्" इत्याकारक भ्रमात्मक परामर्श से जन्य "गोत्ववती इयम्" इत्याकारक एक गोत्व व्यक्ति ही जहाँ साध्य है इस प्रकार की यथर्थ अनुमिति में विशेषान्यवत्ता अर्थात् भ्रमजन्य अनुमिति का विषय परमार्थ विषय से भिन्न है (अर्थात् पक्ष में आवृत्ति गोत्वविषयक ही वह अनुमिति है) ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते । तथाच गोत्ववति गोत्वप्रकारक होने से वह अनुमिति यथार्थ है अतः उसमें उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । (किन्तु दोषजन्य होने से वह लक्ष्य नहीं है यह पहले कहा जा चुका है ।)

इसी प्रकार समवायव्याप्यभावत्ववान् घटः इत्याकारक भ्रमात्मक परामर्शजन्य घटः समवायवान् इत्याकारक अनुमिति में भी यथार्थ समवाय से भिन्नत्व की कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि आपके मत में समवाय एक ही होता है । अतः यथार्थ अनुमिति में भी उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति होगी । यदि सामान्य (गोत्वादि) एवं समवाय दोनों में ही सत्परामर्शजन्य अनुमितिविषयीभूत सामान्य समवाय से भिन्नत्व की कल्पना करें तो आप तार्किक ने अन्यथाख्याति (विशेष्य में आवृत्ति सत् ज्ञान का विषय है) पक्ष का परित्याग कर असत्ख्याति (असत् ही प्रकारतया ज्ञान का विषय है) पक्ष को स्वीकार कर लिया । जो आपके लिए अपसिद्धान्त हो जायेगा ।

यदि कहें कि – गोत्वव्याप्य पृथिवीत्ववदिदम् इत्यादि भ्रमाधीन निरुक्त गोत्वानुमिति स्थल में गोत्व से भिन्न गोवृत्ति धर्मरूपादि का गोत्व जाति के साथ तादात्म्यारोप करेंगे ।

चेन्न; तथापि धर्मिणि जातौ च प्रमात्वतादवस्थ्यात्, संसर्गा-

शारदा

गोत्वभिन्नपक्षकतादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नगोत्वत्वावच्छिन्नसाध्यताका 'इदं गोत्व' मित्यनुमितिरेव प्रसूयते, न तु गोपक्षिका समवायसम्बन्धावच्छिन्नगोत्वत्वावच्छिन्नसाध्यिकेति न तस्य याथार्थ्यम् । यद्यपि गवावृत्तिधर्मे गवाधिकरणे च धर्मिण्यपि तादात्म्येन गोत्वानुमितेर्भ्रमत्वसम्भवस्तथापि तत्र भ्रमसामग्रीसम्पादनं क्लिष्टं स्यादित्याशयेन तत्रत्यधर्मान्तरस्येत्युक्तम् । उपलक्षणञ्चेदम्, गवान्तरस्यापि गोत्ववत्तया तादात्म्येन तत्साध्यकतयापि गोत्ववतीयमित्यनुमितेर्भ्रमत्वोपपत्तेः। तदनौपयिकपरामर्शस्थले एवातिव्याप्तिर्दिदित्सितेत्यस्याग्रे एव स्फोरणीयत्वात् । इदं गोत्वमित्युक्तानुमितेस्तादात्म्यांशे एव भ्रमत्वं नतु धर्मिप्रकारांशेऽपीत्यनुशयेनाह धर्मिणीति । प्रमात्वेति । **प्रमात्वापत्तीत्यर्थः। ननु धर्म्यंशे क्व नाम भ्रमे नाभ्रमत्वमिति भ्रमविशेषानुधावनवैफल्यम्, तत्सम्बन्धिनि तत्प्रकारकानुभवत्वस्य तदंश एव प्रमात्वव्यवहारनियामकतेत्युक्तत्वाच्च, एवं च गोत्वतादात्म्यानापन्ने एव तादात्म्येन गोत्वप्रकारकतयोक्तानुभवस्य न गोत्वांशेऽपि प्रमात्वापादनसम्भवः, उक्तरीत्यांशिकप्रमायाः क्लृप्तान्तर्भावसम्भवेन तत्रात्यापत्तिदानस्य नौचिती चेत्यस्वरसादाह** संसर्गेति । **समवायसम्बन्धावच्छिन्नगोत्वत्वावच्छिन्नप्रकारताकानुमितिकारणात् समवायसम्बन्धावच्छिन्नगोत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकगोत्वाभाववदवृत्तित्वनिष्ठप्रकारताकपृथिवीत्वादिनिष्ठविशेष्यतावच्छिन्नप्रकारताकगोनिष्ठविशेष्यताकपरामर्शादित्यर्थः । गोत्वभिन्नावृत्तित्वविषयकपरामर्शस्यैव तादात्म्येन**

भारती

(तथाच उक्तस्थल में उक्त भ्रमात्मक परामर्श के द्वारा ''इदं गोत्वम्'' यही अनुमिति होगी, और इसमें न गोपक्ष है एवं न समवाय सम्बन्ध से गोत्व साध्य है अपितु गोत्व से भिन्न (रूपादि) ही पक्ष है तथा तादात्म्यसम्बन्ध से गोत्व साध्य है अतः इस आरोप्यमाण रूपाद्यात्मक गोत्व सत्यगोत्व से अन्य ही है इसके यथार्थ न होने से इसमें अतिव्याप्ति न होगी ।) तो यह कथन उचित नहीं है क्योंकि इदं गोत्वम्'' यह अनुमिति तादात्म्य अंश में ही भ्रमात्मक है न कि धर्मी एवं प्रकार अंश में, अतः उक्त अनुमिति के धर्मी एवं जाति (गोत्व-प्रकार) अंश में यथार्थ होने से प्रमात्वापत्ति (उक्त प्रमालक्षण की अतिव्यापति) तदवस्थ ही है ।

यदि सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तम्'' न्याय के अनुसार धर्मी अंश में उक्त अनुमिति के यथार्थ एवं प्रमा होने से उक्त प्रमालक्षण का लक्ष्य होने से अतिव्याप्ति नहीं हैं, कहें तो भी संसर्गारोप के निमित्त के द्वारा तादात्म्य का आरोप नहीं हो सकता । (तात्पर्य यह है कि समवायेन गोत्वव्याप्यपृथिवीत्ववदिदम्'' इत्याकारक परामर्श से समवायेन गोत्वानुमिति ही हो सकती है न कि तादात्म्येन गोत्वानुमिति, तादात्म्येन गोत्वानुमिति के प्रति तो गोत्वभिन्न में आवृत्तित्वविषयक परामर्श ही कारण है जो प्रकृत में न होने से तादृश तादात्म्यारोप मानकर अतिव्याप्ति का वारण नहीं कर सकते ।)

रोपनिमित्ताच्च तादात्म्यारोपानुपपत्तेः, परार्थानुमानाभासे हि प्रतिपादितपदार्थसंसर्गारोपकारणसम्भवात्, तथापि तत्र तादात्म्यारोपकल्पने च तथाभ्रमनियमस्य निष्कारणत्वात् । कस्यचित्तत्र जातसंवादजातिसंसर्गभ्रमस्य मितौ का गतिः ?

शारदा

गोत्वानुमित्यौपयिकत्वादिति भावः । परार्थानुमानाभासे इति । **भ्रमात्मकपरामर्शप्रयोजकतयाऽऽभासीभूतवाक्यविशेषरूपन्याये इत्यर्थः । अधीनत्वं कारणान्वयि सप्तम्यर्थः । निरुक्तपरामर्शात्मकं हि संसर्गारोपकारणं व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहितया व्याप्तिप्रकारकपृथिवीत्वविशेष्यकज्ञानात्मकेन विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानेन जन्यम्, तच्च न्यायजन्यशाब्दबोधजन्यमिति परम्परयाऽधीनत्वमक्षतम् । प्रतिपादितपदार्थसंसर्गः = न्यायजन्यशाब्दबोधविषयीभूतो गोत्वनिष्ठव्यापकतावच्छेदकः समवायात्मकः संसर्गः । न्यायस्य समवायसम्बन्धावच्छिन्नगोत्वाभाववदवृत्तित्वविषयकशाब्दबोधजनकोपनयवाक्येघटितत्वे परामर्शस्यापि तादृशव्याप्तिविषयकत्वेन तत्स्थलेऽनुमितेरपि समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकत्वमावश्यकम्, अन्यथातिप्रसङ्गादिति भावः । इदमुपलक्षणम्, स्वार्थानुमितिजनकपरामर्शस्यापि तादृशव्यातिविषयकत्वेऽनुमितेस्तादृशप्रकारताकत्वस्यानपलपनीयत्वात्, एवञ्च भ्रमजन्याया गवि गोत्वसाध्यकानुमितेः सर्वांशे याथार्थ्येन प्रमात्वापत्तिरिति । तथापि = निरुक्तसंसर्गारोपकारणसत्त्वेऽपि । तथाभ्रम नियमस्य = तत्संसर्गकज्ञानत्वे तत्संसर्गकज्ञानकारणजत्वव्याप्तेः । निष्कारणत्वात् = अप्रामाणिकत्वापातात्, तथाचान्यत्रापि संसर्गान्तरज्ञानसामग्र्या अपरसंसर्गकज्ञानजनकत्वापत्तिः । ननु दोषजन्यज्ञानत्वस्याप्रमात्वव्याप्यत्वान्यथानुपपत्त्या क्वचित्संसर्गान्तरज्ञानसामग्र्या अपरसंसर्गज्ञानजनकत्वमास्ताम्, दोषसमवहितसामग्र्याः शक्तिविपर्याससम्भवाच्चेत्यतआह** कस्यचिदिति। **जातसंवादः = अनुव्यवसायविषयीभूतः समवायेन गोत्वप्रकारकबोधो यस्य तादृशपुरुषस्येत्यर्थः । तथा च समवायेन गोत्वप्रकारकतयाऽनुव्यवसीयमानानुमितावित्यर्थः ।**

भारती

किञ्च परार्थानुमिति स्थल में प्रतिपादित पदार्थों के संसर्ग अर्थात् गोत्वनिष्ठव्यापकतावच्छेदक समवायरूप संसर्ग के आरोप के प्रति परार्थानुमानाभास अर्थात् भ्रमात्मक परामर्श का प्रयोजक वाक्याभास रूप न्याय ही है । अतः उसके रहने पर संसर्गारोप ही होगा, न कि तादात्म्यारोप, एवञ्च भ्रमजन्य होने पर भी गो में गोत्व साध्यक अनुमिति सर्वांश में यथार्थ होने से प्रमात्वापत्ति है और यदि निरुक्त संसर्गारोप के कारण रहने पर भी तादात्म्यारोप ही मानें तो- संसर्गारोप की सामग्री से संसर्गभ्रम, एवं तादात्म्यारोप की सामग्री से तादात्म्यभ्रम होता है यह नियम अप्रामाणिक हो जायेगा । (और यदि नियम न मानें तो अन्यत्र भी दूसरे संसर्गज्ञान की सामग्री से अन्य संसर्गकज्ञान की उत्पत्ति भी होनी चाहिए ।)

किञ्च जिस पुरुष को समवायेन गोत्वप्रकारक बोध का अनुव्यवसाय हुआ हो, उस पुरुष के ''समवायेन गोत्वम् अनुमिनोमि'' इत्याकारक अनुमिति के अनुव्यवसाय में उक्त

का वा गतिः सिद्धसाधने ? तत्राप्यन्यत्वकल्पनायां सिद्धत्वव्या-

शारदा

अनुव्यवसायस्य प्रामाण्यनियमान्नात्र कुकल्पनावकाशः । प्रकृतज्ञानस्य यथार्थत्वेऽपि 'भ्रमस्ये'त्यभिधानं तस्य दोषजन्यतया प्रमात्वानन्तर्भावाभिप्रायेण, तदभाववति तत्प्रकारकत्व-रूपं भ्रमत्वं तु नात्र विवक्षितम् । गतिः = प्रमात्वापत्तिपरिहारोपायः । अतिव्याप्त्यन्तरमाह का वेति । **सिद्धसाधने = तत्र तत्प्रकारकनिश्चयानन्तरं तत्र तत्प्रकारकानुमितौ । तस्या यथार्थाया अपि आभासकरणजन्यतया प्रमात्वे नेष्टापत्तिः, क्लृप्तप्रमानन्तर्भावादिति । इदञ्चापाततः, तथाहि–सिद्धौ सत्यां पक्षताया विरहेण हेतोरपक्षधर्मतया स्वरूपासिद्धिर्वा पक्षविशेषणाप्रतीत्याऽऽश्रयासिद्धिर्वेति सा हेत्वाभास इति प्राचीनमतम्, अनुमितिं तद्धेतुज्ञानं वा प्रति साक्षाद्विरोधिन एव हेत्वाभासत्वेन सिद्धेश्च सिषाधयिषारूपपक्षताविघटकतयैवा-नुमितिविरोधित्वेन साक्षादतथात्वेन हेत्वाभासत्वाभावेऽपि तत्र हेतोर्दुष्टत्वमक्षतमेवेति मणिकारादिमतम् । स्वत एव तस्यानुमितिविरोधित्वमिति च मतान्तरम्, मतेषु चैषु सिद्ध्यनन्तरमनुमितेरसम्भवदुक्तिकत्वेन कथं तत्रातिव्याप्तिः । अनुमित्सासद्भावे तु सिद्धसाधनमदोष एव, इच्छाविषयतावच्छेदकरूपेण सिद्धेरसद्भावात् । पक्षता नानुमितिहेतुरिति वदतां प्राभाकराणां वेदान्तिनाञ्च मते सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वेनार्थान्तरविधयैव च कथायामुद्भावनीयत्वेन तदुत्तरोत्पन्नाया अप्यनुमितेरदुष्टकरणजत्वेन प्रमात्मकतया कथमतिव्याप्तिः । "प्रत्यक्षादौ बाधेन न ज्ञानं प्रतिबध्यते, किन्तूत्पन्नज्ञानेऽप्रामाण्यं ज्ञाप्यते, अनुमितौ तूत्पत्तिरेव प्रतिबध्यते" इति मण्युक्तविभागस्य शपथैकप्रमाणकत्वेन विनेयमात्रमनोरञ्जकत्वेनार्धजरतीयतया अनौचित्येन च सर्वत्रैव बाधादिभिरप्रामाण्यमेव ज्ञाप्यते उत्पन्ने ज्ञाने, उत्पत्तिस्तु न क्वापि प्रतिबध्यते इति मते यादृशविशिष्टविषयकनिश्चयत्व-व्यापकोऽनुमित्यप्रतिबन्धकत्वासाधारण्याविषयकत्वोभयाभावस्तादृशविशिष्टस्य हेत्वाभासतेत्युक्तेरप्रामाणिकत्वेन प्रकृतेऽनुमित्युत्पत्त्युपगमेऽपि सिद्धेस्तत्राप्रामाण्याज्ञापकत्वेन तत्र दोषता न सम्भवदुक्तिकेति कथमनुमितावतिव्याप्तिरिति कृतं विस्तरेण । तत्र = उक्तानुमितौ । अन्यत्वकल्पनायां = विशेष्यावृत्तिव्यक्तिविषयकत्वकल्पनायाम् । तथात्वे**

भारती

लक्षण के जाने से प्रमात्वापत्ति होगी । (यद्यपि अनुव्यवसाय ज्ञान के प्रमारूपता का नियम है तथापि उसके यथार्थ होने पर भी दोषजन्य होने से परिगणित प्रमाओं में उसका अन्तर्भाव न होने से उसे लक्ष्य नहीं कह सकते, यह बात "भ्रमस्य" कहकर ग्रन्थकार ने व्यक्त की है । किञ्च -- सिद्धसाधन अर्थात् जहाँ तत् प्रकारक निश्चय के अनन्तर तत्प्रकारक अनुमिति होती है उस अनुमिति में क्या गति (प्रमात्वापत्ति के परिहार का उपाय) है । उस सिद्धसाधन रूप अनुमिति के यथार्थ होने पर भी आभास करणजन्य होने से प्रमा मानकर परिगणित प्रमाओं में उसका अन्तर्भाव नहीं कर सकते । अत: उसमें लक्ष्य न होने से उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति होगी । यदि उक्त सिद्धसाधन रूप अनुमिति में अन्यत्व (यथार्थ लिङ्गज्ञान जन्य अनुमिति के विषय से भिन्न विषयकत्व) की कल्पना करेंगे तो उक्त अनुमिति विषय के पूर्वसिद्ध न होने से

घातात्, तथात्वे च हेत्वाभासस्यापि यथार्थग्राहितयोक्त-निमित्तस्य व्यभिचारेणान्यत्राप्याभासेऽन्यप्रतिभासकल्पनाया निर्निमित्तत्वात् । सिद्धसाधनमितेरेव वाऽव्यवच्छेदात् । इति खण्डने तत्त्वानुभवत्वखण्डनम् ।

शारदा

च = उक्तानुमितेः प्रमात्वोपगमे च । यथार्थग्राहितया = प्रमितिजनकतया । उक्तनिमित्तस्य व्यभिचारेण = दोषजन्यज्ञानत्वेऽप्रमात्वव्याप्तेरभावेन । अन्यत्राभासे = भ्रमात्मकपरामर्शजन्यानुमितौ। सिद्धसाधनमितेरिति । **प्रकारान्तरेण दूषणमिदमुक्तास्वरसादेव द्रष्टव्यम् । ज्ञानविषयकयथार्थज्ञानमात्रस्येत्यर्थः । ''अनुपलब्धेऽर्थे तत्प्रमाणमिति'' पारमर्षसूत्रादज्ञातविषयकस्यैव बोधस्य प्रमात्वेन 'ज्ञातविषयकस्य यथार्थस्यापि स्मृतिवदप्रमात्वेन तार्किकोक्तलक्षणमात्रस्य तत्रातिव्याप्तिः। अन्यथा स्मृतिव्यावृत्तयेऽनुभवत्वोपादानं प्रमात्वस्य पारिभाषिकतां प्रयुञ्जीत । स्मृतेरव्यावर्तने तद्धेतोः प्रमाणान्तरतापत्तिरिति चेत्सहस्रशो विषयतात्वानुयोगितात्वप्रतियोगितात्वादीनां क्लृप्तातिरेकिणां कल्पकस्य भवतो न यदि कापि हानिः, तर्हि प्रमाणान्तरस्वीकारेणापि न सा स्यादिति शिवम् ।** इति खण्डनशारदायां तत्त्वानुभवत्वखण्डनम् ।

राजहंसः

अन्यथा स्मृतिव्यावृत्तये इति । अन्यथा = स्मृतौ ज्ञातविषयकत्वप्रयुक्त एव प्रमात्वविरह इत्यनभ्युपगमे । **इति तत्त्वानुभवत्वखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

भारती

सिद्ध मानकर सिद्धसाधन दोष देना ही अनुपपन्न हो जायेगा, क्योंकि उसमें सिद्धत्व ही है । यदि उक्त अनुमिति को प्रमा मानकर उक्त प्रमालक्षण का लक्ष्य ही मान लें तो सिद्धसाधन रूप हेत्वाभास के भी यथार्थ ग्राहि अर्थात् प्रमितिजनक होने से उक्तनिमित्त के व्यभिचार (दोषजन्यज्ञानत्व में अप्रात्व की व्याप्ति का अभाव) होने से भ्रमात्मक परामर्शजन्य अनुमिति में भी नियामक निमित्त के न होने से व्यक्त्यन्तर भान की कल्पना हो जायेगी । किन्तु सिद्ध साधनरूप अनुमिति को प्रमा नहीं मान सकते, अतः उसके लक्ष्य न होने से उसमें उक्तप्रमालक्षण की अतिव्याप्ति रह ही जायेगी । (तात्पर्य यह है कि-''अनुपलब्धेऽर्थे तत्प्रमाणम्'' इस परमर्षिकृत सूत्र के अनुसार अज्ञातविषयक ज्ञान ही प्रमा होता है, ज्ञातविषयक ज्ञान तो यथार्थ होने पर भी स्मृति के समान अप्रमा ही माना जाता है अतः सिद्धसाधन अनुमिति के ज्ञातविषयक होने से अप्रमा होने से उक्त अनुमिति में तार्किकोक्त उक्त प्रमालक्षण मात्र की अतिव्याप्ति हो जायेगी।) सिद्धसाधन रूप अनुमिति की व्यावृत्ति नहीं होगी ।

अथ याथार्थ्यखण्डनम्

यथार्थानुभवः प्रमेत्यप्यलक्षणम् । यथार्थत्वं हि तत्त्वविषयत्वं वा ? अर्थसदृशता वा स्यात् ? नाद्यः, पूर्वं निरस्तत्वात्, नापि द्वितीयः, व्यभिचारिणोऽपि प्रमेयत्वादिनाऽर्थसादृश्येन प्रमात्वा-पातात् । ननु ज्ञानविषयीकृतरूपेण सादृश्यं विवक्षितम्, नच-प्रमेयत्वादिरूपस्य व्यभिचारिण्यपि प्रकाशसम्भवेन तथाप्यतिप्रसङ्ग इति-वाच्यम्; प्रमेयत्वाद्यंशे प्रकाशमाने विषयीभूतधर्मान्तरापेक्षया व्यभिचारिणोऽपि प्रमात्वाभ्युपगमादिति; नैतद्युक्तम्, प्रकाशमानेन

शारदा

यथार्थेति । **यथाशब्दस्य पदार्थानतिवृत्तिसादृश्यार्थकताभिप्रायेण विकल्पद्वयम्, योग्यतावीप्सयोः प्रकृतेऽसम्भवात् । व्यभिचारिणो भ्रमस्य** । प्रमेयत्वादिनेति । **अभेदस्तृतीयार्थः सादृश्यान्वयी** । व्यभिचारिणि प्रकाशेति । **भ्रमनिरूपितविषयतेत्यर्थः । विषयीभूतधर्मान्तर-विषयकत्वावच्छेदेन भ्रमत्ववतोऽपि प्रमेयत्वादिविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्वाभ्युपगमादित्यर्थः।** रूपादीति । **स्वविशेष्यतानिरूपितप्रकारताश्रयधर्मवतो ज्ञानस्य यथार्थत्वविवक्षायां रूपसमवायी**

भारती

याथार्थ्य-खण्डन

"यथार्थानुभवः प्रमा" प्रमा का यह लक्षण भी निर्दुष्ट नहीं है । क्योंकि उक्त लक्षण में यथार्थत्व क्या है । यथाशब्द को " पदार्थअनतिक्रम, एवं अर्थसादृश्य दो अर्थ होने से क्या तत्त्वविषयत्व ही यथार्थत्व है या अर्थसादृश्य । इनमें प्रथम अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि पूर्वग्रन्थ में उक्त युक्तियों से तत्त्व पदार्थ के खण्डित हो जाने से तत्त्वविषयत्व निरस्त हो चुका है एवं द्वितीय अर्थ भी उचित नहीं है क्योंकि इदं रजतम् इत्यादि भ्रमज्ञान में भी प्रमेयत्वादि रूप अर्थसादृश्य के रहने से प्रमात्वापत्ति हो जायेगी, अर्थात् उक्त भ्रम में उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न -- जिस रूप को ज्ञान विषय करता है उस रूप से सादृश्य विवक्षित है उक्त भ्रम स्थल में ज्ञानविषयीकृत रूप रजतत्वादि है न कि प्रमेयत्वादि, अतः प्रमेयत्वादि के द्वारा सादृश्य मानकर अतिव्याप्ति नहीं दे सकते । यदि कहें भ्रमात्मकज्ञान में भी कदाचित् प्रमेयत्वादि रूप का भी प्रकाश (भान) हो सकता है अर्थात् किसी को भ्रमकाल में इदंरजतं प्रमेयम् इत्याकारक यदि भ्रम होगा तो ज्ञानविषयीकृत प्रमेयत्वरूप भी उस ज्ञान में है अतः प्रमेयत्वादिना अर्थसादृश्य होने से पुनः भ्रमस्थल में अतिव्याप्ति हो जायेगी । तो यह खाण्डनिक का कथन ठीक नहीं है क्योंकि भ्रम में प्रमेयत्वादि का भान होने पर भ्रम का विषयीभूत रजतत्वादिरूप धर्मान्तर की अपेक्षा से रजतत्वादिरूप धर्मान्तरविषयकत्वावच्छेदेन

रूपादिसमवायित्वेन रूपेण ज्ञानस्यार्थसादृश्यानभ्युपगमेऽपि तत्र तदीयप्रमात्वाङ्गीकारादिति । प्रकाशमानेन रूपेण विशेषणभावादर्थसादृश्यमनुभवस्य विवक्षितम्, अर्थस्य च यथा समवायाद्रूपं विशेषणीभवति तथा विषयभावाज्ज्ञानस्यापि तद्विशेषणं भवत्येवेति चेन्न; एवं हि पुरोवर्तित्वादिना रूपेण तथाभाव-

शारदा

घट इति ज्ञानेऽव्याप्तिः रूपसमवायित्वरूपतादृशधर्मवत्त्वाभावादित्यर्थः । इदमुपलक्षणम्, अयं घट इत्यादिज्ञानेष्वपि द्रष्टव्याव्याप्तिः, प्रकारतावच्छेदकेन समवायसम्बन्धेन ज्ञाने घटत्वविरहात् । उक्तधर्मवैशिष्ट्यं न प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षितम्, अपितु विषयतासम्बन्धेनेति शङ्कते प्रकाशेति । **अत्र च तद्वद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वे एव पर्यवसानं द्रष्टव्यम् । शुक्तौ 'पुरोवर्ति रजत'मिति ज्ञानस्य पुरोवर्तित्ववच्छुक्तिविशेष्यकत्वावच्छिन्नपुरोवर्तित्वप्रकारकत्वेन तत्रातिव्याप्तिरित्याह** एवमिति । **तथाभावो विषयत्वम् ।**

भारती

"इदम् रजतम् इस ज्ञान के भ्रमात्मक होने पर भी प्रमेयत्वादि अंश में अर्थात् प्रमेयत्वादि विषयकत्वावच्छेदेन प्रमा ही माना जाता है अत: उसमें उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है ।

समाधान - उक्त प्रकार से स्व (ज्ञान) विशेष्यता निरूपित प्रकारताश्रय धर्मविशिष्ट ज्ञान में यदि यथार्थत्वं विवक्षा करेंगे तो इदं रजतम् इस ज्ञान में अतिव्याप्ति न होगी, क्योंकि तादृश-ज्ञानीय रजतनिष्ठविशेष्यतानिरूपित प्रकारताश्रय रजतत्वरूपधर्म से प्रकारतावच्छेदक-समवायसम्बन्धेन विशिष्ट उक्त ज्ञान (भ्रम) नहीं है । किन्तु इस प्रकार परिष्कार स्वीकार करने पर "रूपसमवायी घट" इत्याकारक ज्ञान अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि इस ज्ञान में प्रकाशमान (ज्ञानविषयीकृत) रूपादिसमवायित्व रूप से अर्थसादृश्य नहीं है अर्थात् प्रकारतावच्छेदक-सम्बन्ध से रूपसमवायित्व रूप धर्म उक्त ज्ञान में नहीं है किन्तु तादृश धर्म के न रहने पर भी वह ज्ञान रूपसमवायित्व को लेकर प्रमा ही माना जाता है । (एवं इसी प्रकार अयंघट इस ज्ञान में भी अव्याप्ति होगी । क्योंकि उस ज्ञान में भी प्रकारतावच्छेदक समवाय सम्बन्ध से उक्तज्ञानीय प्रकारताश्रयघटत्व धर्म नहीं है ।)

प्रश्न - प्रकाशमान (ज्ञानविषयीकृत) धर्म का विषयता सम्बन्धेन अर्थ सादृश्य अनुभव (ज्ञान) में विवक्षित है न कि प्रकारतावच्छेदक सम्बन्ध से, तथाच विषयता सम्बन्ध से उक्तधर्म ज्ञान में रहेगा, क्योंकि जैसे समवाय सम्बन्ध से रूप घटरूप अर्थ में विशेषण होता है उसी प्रकार विषयता सम्बन्ध से रूपादि ज्ञान में भी विशेषण होते ही हैं अत: विषयतासम्बन्धेन रूपसमवायित्वरूप धर्म से विशिष्ट ज्ञान होने से रूपसमवायिघट: अयंघट इत्यादि में अव्याप्ति दोष नहीं है ।

समाधान - विषयतासम्बन्धेन उक्त धर्म वैशिष्ट्य ज्ञान में मानकर अव्याप्ति का वारण करने पर शुक्ति में- पुरोवर्ति रजतम् । इदं रजतम्" इत्यादि भ्रान्तिज्ञान में अतिव्याप्ति हो जायेगी क्योंकि पुरोवर्तिशुक्ति को रजत रूप से भासित करने वाला "इदं रजतम्" इस ज्ञान

सम्भवात्पुरोवर्तिनीं शुक्तिं रजततयाऽवगाहमानं ज्ञानं प्रमा स्यात्। न च वाच्यमिष्यते एव सा प्रमापीति न व्यभिचारचोदनेयं युक्तिमतीति; यथार्थताविशेषणवैयर्थ्यप्रसङ्गात्, अनुभूतिः प्रमेत्युक्त एव हि तावन्नास्त्यतिप्रसङ्गः, सर्वस्य व्यभिचार्यनुभवस्यान्ततोऽन्यथाख्यातिवादिनये धर्मिण्यपि प्रमात्वसम्भवेन प्रमायामेवानुभवत्वस्य स्थैर्यात्। यदि त्वंशतोऽपि व्यभिचारिण्यां मा लक्षणं गमदिति चेतसि निधाय यथार्थत्वविशेषणं प्रयुक्तं तदा न युक्तम्, उक्तदोषात्।

शारदा

व्यभिचारचोदना = अतिव्याप्त्युद्भावनम्। प्रमायामिति। **अनुभवत्वं प्रमात्वव्याप्यं स्यात्, प्रमात्वसमनियतं स्यादिति यावत्। यदि तु ज्ञानमात्रस्य धर्म्यंशे प्रमात्वेऽपि तद्वद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वं तदंशे याथार्थ्यमिति लाभाय यथार्थपदम्, तदा तत्त्वानुभवत्वखण्डनोपक्रमे ''भवितुरतत्त्वशब्दार्थत्वप्रसङ्गेने''ति पङ्क्तिव्याख्यायामुक्तमनुसन्धेयम्।** व्यभिचारिण्यामिति। **प्रतीतावितिशेषः।** उक्तदोषादिति। **तवालक्ष्यत्वेनाभिमताया आंशिकप्रमाया उक्तलक्षणाक्रान्ततयाऽतिव्याप्तेरित्यर्थः।** अत्राहुः–**स्वाधिकरणावृत्तिनिष्ठ-**

भारती

में भी विषयता सम्बन्ध से पुरोवर्तित्व (इदन्त्व) धर्म का वैशिष्ट्य विद्यमान है अर्थात् विषयता सम्बन्ध से इदन्त्व धर्म भी इदं रजतम् इस ज्ञान में रहता है। अतः ''यथार्थानुभवः प्रमा'' इस प्रमालक्षण की उक्त भ्रमज्ञान में अतिव्याप्ति हो जायेगी। यदि कहें कि विषयतासम्बन्धेन इदन्त्वविषयकत्वावच्छेदेन तो वह ज्ञान प्रमा ही है, अतः उक्त लक्षण की इदं रजतम् इस ज्ञान में अतिव्याप्ति देना युक्तिसङ्गत नहीं है। तो यह आपका कथन सर्वथा असङ्गत है क्योंकि इस प्रकार से अतिव्याप्ति का वारण करने पर ''यथार्थानुभवः प्रमा'' इस प्रमा लक्षण में यथार्थत्वविशेषण देना व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि ''इदं रजतम्'' इत्यादि भ्रम ज्ञान में अतिव्याप्ति वारणार्थ ही उक्तलक्षण यथार्थत्व विशेषण दिया गया है अब तो उस उक्त विशेषण के बिना भी अतिव्याप्ति नहीं है क्योंकि इदं रजतम् यह ज्ञान भी इदन्त्वविषयकत्वावच्छेदेन प्रमा होने से उक्त प्रमालक्षण का लक्ष्य ही है। ऐसी स्थिति में अनुभूति प्रमा इतने लक्षण से कार्यनिर्वाह हो जायेगा।

एवं सभी व्यभिचारी अनुभव (भ्रमज्ञान) अन्ततोगत्वा अन्यथाख्यातिवादि तार्किक के मत में धर्मि = इदं इस अंश में (धर्मिविषयकत्वावच्छेदेन) प्रमारूप ही होगा, अतः अनुभवत्व की प्रमा में ही विश्रान्ति हो जायेगी अर्थात् अनुभवत्व प्रमात्व का व्याप्य (समनियत) हो जायेगा और यदि ''एक अंश (रजतादि) में भी व्यभिचारी (भ्रम) होने पर उक्त प्रमालक्षण का न जाना ही इष्ट है'' इस अभिप्राय को चित्त में रखकर यथार्थत्व विशेषण दिया गया है तो वह उक्त प्रमा (यथार्थानुभूतिः प्रमा) लक्षण युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि उसमें उक्त दोष (आप तार्किक के मत में अलक्ष्य रूप से स्वीकृत ''इदं रजतम्'' यह आंशिक प्रमा भी उक्त प्रमालक्षण से आक्रान्त है अतः अतिव्याप्ति विद्यमान है।

शारदा

प्रकारतानिरूपिता या या विशेष्यता तत्तदनिरूपकत्वं सर्वांशे याथार्थ्यम् । स्वाधिकरणावृत्तित्वं च स्वाधिकरणनिरूपितप्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाभावः, तेन सम्बन्धसामान्येनावृत्तिगगनादिनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वानिरूपकत्वमादाय 'ह्रदो वह्निमानि'त्यत्र नातिप्रसङ्गः । न च–गुणः संयोगेन घटवानिति ज्ञानस्य प्रमात्वापत्तिः, गुणनिरूपितसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाप्रसिद्धेरिति–वाच्यम्; प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धेन स्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वस्याभावः प्रकारताश्रयधर्मे विवक्षणीयः, तथा च संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धस्य गुणनिरूपितवृत्तित्वव्यधिकरणतया नोक्तापतिः । अथ घटत्वप्रतियोगिकसमवायेन पटत्ववान् पट इति ज्ञानस्य प्रमात्वं स्यात् प्रकारतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धेन पटनिरूपितवृत्तित्वस्य पटत्वे सत्त्वात् । न च–प्रकारतानिरूपितसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धेन स्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावो विवक्षणीयः, तथाच प्रकृते उक्तपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकं घटत्वप्रतियोगिकत्वसमवायत्वनिष्ठद्वित्वं तदवच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकताकघटत्वप्रतियोगिकसमवायनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धस्य तज्ज्ञानीयविषयताश्रयपटनिरूपितवृत्तित्वव्यधिकरणतया तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य तादृशवृत्तित्वाभावस्य पटत्वादिरूपप्रकारे सत्त्वान्नोक्तापत्तिरिति–वाच्यम्; गुणीयसंयोगेन घटवान् गुण इति ज्ञानस्य प्रमात्वापत्तेः, तज्ज्ञानीयप्रकारतावच्छेदकतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकगुणप्रतियोगिकत्वसंयोगत्वनिष्ठ द्वित्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतावच्छेदकताकवृत्तित्वाप्रसिद्धेः स्वपदेन ज्ञानान्तरीयविषयताया एव धरणीयत्वादिति चेन्न; स्वनिरूपितप्रकारतावच्छेदकसंसर्गतावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकावच्छेदकतानिरूपकीयस्वरूपसम्बन्धेन स्वाश्रयनिरूपितवृत्तित्वाभावस्य विवक्षणीयतया गुणप्रतियोगिकत्त्वसंयोगत्वनिष्ठतादृशपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकीभूतद्वित्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकीभूता या संसर्गविधयावच्छेदकता तन्निरूपकत्वस्य वृत्तितत्वेऽप्रसिद्धावपि तज्ज्ञानीयघटत्वावच्छिन्नप्रकारतायां प्रसिद्धेस्तादृशप्रकारत्वीयस्वरूपसम्बन्धस्य वृत्तित्वव्यधिकरणतया तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकस्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाववद्घटनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपके प्रोक्तज्ञानेऽनतिव्याप्तेः । अथ तद्व्यक्तित्वादिना घटत्वादिज्ञानं विशेष्यीकृत्य जायमाने विषयितासम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारकज्ञाने प्रमात्वं स्यात्, तज्ज्ञानीयोक्तज्ञाननिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारतानिरूपितसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकीभूतं यद्विषयतात्वनिष्ठं तद्व्यक्तित्वं तदवच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकसंसर्गनिष्ठा-

शारदा

वच्छेदकतानिरूपकविषयितासम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वीयस्वरूपसम्बन्धेन विशेष्यताश्रयतादृशज्ञाननिरूपितवृत्तित्वस्य घटत्वादिरूपप्रकारे सत्त्वेन स्वपदेन तादृशविशेष्यताया अशक्योपादानत्वात् । नच–निरुक्तस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्वाश्रयनिरूपितनिरवच्छिन्नवृत्तित्वाभाववन्निष्ठनिरवच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वानिरूपकत्वं विवक्षणीयम्, तथा च विशेष्यताश्रयोक्तज्ञाननिरूपितविषयितासम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वस्य घटत्वे सत्त्वेऽपि तद्वृत्तित्वं तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नं नतु निरवच्छिन्नमिति स्वपदेन तादृशविशेष्यतोपादातुं शक्या, प्रकारतायां निरवच्छिन्नत्वविशेषणं तु घटत्वत्वेन घटत्वावगाहिज्ञानविशेष्यकस्य विषयितासम्बन्धेन घटत्वत्वेन घटत्वप्रकारकज्ञानस्य सङ्ग्रहार्थम्, अन्यथा तस्य विशेष्यताश्रयज्ञाननिरूपितनिरवच्छिन्नवृत्तित्वाभाववद्घटत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपकत्वेन स्यादसङ्ग्रह इति–वाच्यम् ह्रदो वह्निमानिति ज्ञानस्य प्रमात्वापत्तेः, तदीयवह्निनिष्ठप्रकारताया निरवच्छिन्नत्वाभावेन ज्ञानान्तरीयनिरवच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वानिरूपकत्वस्य तत्र सद्भावादिति चेन्न; स्वाश्रयनिरूपितवृत्तितानवच्छेदकधर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिता या या विशेष्यता तत्तदनिरूपकत्वस्य विवक्षणीयत्वात्, उक्तज्ञाने स्वविशेष्यताश्रयह्रद निरूपितवृत्तितानवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपकतायाः सत्त्वेनानतिव्याप्तेः । वृत्तिता च प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना, अन्यथा वह्नित्वादेः कालिकसम्बन्धावच्छिन्नह्रदादिनिरूपितवृत्तितावच्छेदकत्वेन तदनवच्छेदकगगनत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारतानिरूपितज्ञानान्तरीयविशेष्यत्वानिरूपके उक्तज्ञानेऽतिव्याप्तितादवस्थ्यात्। वृत्तित्वावच्छेदकत्वाभावश्च न स्वरूपसम्बन्धेन, किन्तु स्वनिरूपितप्रकारतानिरूपितसंसर्गतानिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकसंसर्गतानिरूपकनिरूपितावच्छेदकत्वीयस्वरूपसम्बन्धेन, स्वं विशेष्यता, ह्रदो वह्निमानित्यत्र संयोगत्वगतैकत्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकसंयोगनिष्ठसंसर्गतानिरूपकप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वीयस्वरूपसम्बन्धेन ह्रदनिरूपितवृत्तितावच्छेदकत्वाभाववद्वह्नित्वमित्यनतिप्रसङ्गः । एवञ्च वृत्तिता प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना न विवक्षणीया, तेन गुणः संयोगेन घटवानितिज्ञाने विशेष्यताश्रयगुणनिरूपिततादृशवृत्तित्वस्याप्रसिद्धत्वेऽपि नातिव्याप्तिः । उक्तसंसर्गे तादृशसंसर्गतानिरूपकनिरूपितत्वस्यैव प्रवेशेन निरूपकपदेन प्रकारताया शक्योपादानत्वेन च गुणीयसंयोगेन घटवान् गुण इति ज्ञाने गुणप्रतियोगिकत्वसंयोगत्वनिष्ठद्वित्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिकावच्छेदकतानिरूपकसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकवृत्तित्वस्याप्रसिद्धत्वेऽपि नातिव्याप्तिरिति ।

अत्रोच्यते— तद्भिगस्तु कलयत्किल लक्ष्यं दूषणं पतति नैव यदत्र ।
विस्तरस्तु प्रथतां न महीयान् दूषणस्य भणितिः कियतोऽपि ।।

शारदा

न च नातिव्याप्तिः, स्वरूपतो रजतत्वादिप्रकारताकस्य तद्व्यक्तित्वादिना घटत्वादिज्ञानविशेष्यकस्य स्वरूपतो विषयितया घटत्वप्रकारताकस्य च भ्रमस्य धर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वानिरूपकत्वेन तत्र तस्या अवश्यम्भावात् । स्वाश्रयनिरूपितवृत्तितानवच्छेदकधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वानिरूपकत्वविवक्षायामुक्तभ्रमीयविशेष्यतानिरूपकप्रकारतायास्तादृशधर्मेतरधर्मानवच्छिन्नत्वेनातिव्याप्तिवारणेऽपि 'अयं घट' इत्यादिप्रमायाः स्वरूपतो घटत्वप्रकारिकाया अपि तादृशप्रकारताकविशेष्यताकत्वेनाव्याप्त्यापत्तेः । निखिलभ्रमीयविशेष्यतानां प्रातिस्विकरूपेण स्वपदेनोपादानासम्भवेन कतिपयभ्रमीयविशेष्यतानामुपादाने भ्रमान्तरेषु तदनिरूपकेष्वतिव्याप्तेर्दुर्वारत्वाच्च । एवं तादृशविशेष्यतानिरूपकत्वघटोभयाभावादिकमादायापि, तन्निवारणाय प्रकारान्तरानुसृतिस्तु स्मृतिसामान्यान्योन्याभावखण्डने निवेदितदोषभावामनवस्थामनापाद्य न शाम्यति । एवं तादृशनिरूपकत्वात्यन्ताभावं कालिकेन स्थापयित्वापि, स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नतादृशात्यन्ताभावत्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताविवक्षा तु लक्षणापर्यवसानं प्रसूते इति द्रष्टव्यं लक्षणसामान्यखण्डने । न च नाव्याप्तिः, उक्तरीत्यैव वृत्तितानवच्छेदकत्वस्यातिप्रसक्तत्वेन तस्या दुर्वारत्वात् । न च नासम्भवः, लक्षणघटकविशेष्यतानामनुगमकानतिप्रसक्तरूपविरहेण तत्तन्निरूपकत्वात्यन्ताभावानामनन्तानां क्वापि प्रमातुमशक्यत्वेन तस्यापि ध्रौव्यात्, एतावत्पदार्थानजानतोऽपि प्रमात्वव्यवहाराच्च, एतस्येतभेदानुमापकत्वे व्यवहारौपयिकस्य लक्षणान्तरस्य वक्तव्यत्वापाताच्च । नच नात्माश्रयादिः; विशेष्यताश्रयत्वादिकं वैज्ञानिकमतिप्रसक्तमिति वास्तवत्वं तत्र विवक्षणीयम्, भ्रमे विशेष्यानुयोगिकालीकसंसर्गावगाहनोपगमे तु नितराम्, वास्तवत्वं च प्रमात्वाघटितं दुर्वचमिति व्यक्तावात्माश्रयान्योन्याश्रयौ, प्रमात्वनिर्णयस्य स्वनिर्णयाधीनवास्तवत्वनिर्णयाधीनविशेष्यताश्रयत्वादिनिर्णयाधीनत्वात्तु चक्रकमपि । अनवस्था तूक्तैव । एवं घटत्वप्रतियोगिकसमवायेन पटत्ववान् पट इति प्रतीतेः प्रमात्ववारणाय संसर्गतावच्छेदकतापर्याप्तेरवश्यं निवेशनीयतयापि सा, समवायत्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकता समवायत्वे पर्याप्तेति प्रतीत्या समवायत्वगतैकत्वस्याप्यनुयोगितावच्छेदकतया शक्योपादानत्वादतिव्याप्तिस्तदवस्था मा भूदित्यवच्छेदकतात्वेतरानवच्छिन्नत्वेनापि पर्याप्तिप्रतियोगिताया विवक्षणीयत्वात् । अधिकं तूक्तम् । विशेष्यतादीनां लक्षणघटकानां यथासम्भवं स्वरूपसम्बन्धविशेषात्मकताया अखण्डोपाधिताया वोपगन्तव्यत्वेन त्वात्माश्रयान्योन्याश्रयौ सुप्रतीताविति । नच नापसिद्धान्तः, स्वाश्रयनिरूपितवृत्तितानवच्छेदकधर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपकत्वरूपं भ्रमत्वं ह्युक्तलक्षणप्रतियोगि, नच ह्रदो वह्निमानित्यत्र वह्निनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वं ह्रदनिष्ठविशेष्यतायां ह्रदवह्न्योः सम्बन्धमन्तरा सम्भवति, नच सम्बन्धस्य सम्बन्ध्यात्मकत्वं

राजहंसः

याथार्थ्यखण्डनशारदायां राजहंसः ।

विस्तरस्तु प्रथतामिति । संयोगपरत्वप्रयुक्तगुरूत्वस्य 'प्रह्ने वा' इति पिङ्गलोक्तोऽपवादोऽत्र स्मर्तव्यः ।

शारदा

प्रामाणिकम्, स्वं न स्वीयमित्यनुभवबाधात् । नचासौ सम्बन्धोऽतिरिक्तः सन्, तथा सति व्यधिकरणप्रकारकत्वस्यापि दुर्निरूपत्वेन तत्र भ्रमत्वव्याहतेः । वक्ष्यते चाधिकम्। नचासावसन्, तथा सति सदसतोरुपरागानुपपत्तेः सम्बन्धिनोरप्यसत्त्वस्यैव वक्तव्यत्वेन बौद्धमतप्रवेशापत्तेरिति । एतेन–**विशेष्यताविशिष्टप्रकारताशून्यत्वं सर्वांशे प्रमात्वम्, वैशिष्ट्यञ्च स्वनिरूपितत्वस्वाश्रयनिष्ठाधिकरणतानिरूपकताविशिष्टान्यत्वोभयसम्बन्धेन, अत्र वैशिष्ट्यञ्च स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्वसामानाधिकरण्यस्वानवच्छेदकानवच्छिन्नत्वस्ववृत्तित्वेति-सम्बन्धचतुष्टयेन, स्ववृत्तित्वं च स्वानवच्छेदकानवच्छिन्नत्वसम्बन्धेन, विशेष्यताश्रयह्रदनिष्ठाधिकरणतानिरूपितजलनिष्ठनिरूपकताविशिष्टा जलनिष्ठा प्रकारता तदन्यत्वं वह्निनिष्ठप्रकारतायामिति सैव विशेष्यताविशिष्टा तच्छून्यत्वं ह्रदो जलवानिति ज्ञाने एवेति नाप्रसङ्गातिप्रसङ्गौ । सम्बन्धचतुष्टयान्तर्गतप्रथमसम्बन्धानिवेशे ह्रदो वह्निमानितिज्ञानीयविशेष्यतानिरूपितवह्निनिष्ठप्रकारतायां ह्रदनिष्ठाधिकरणतानिरूपितकालिकसम्बन्धावच्छिन्नवह्निनिष्ठनिरूपकतायाः सामानाधिकरण्यादिसम्बन्धत्रयेण सत्त्वात्तादृशविशेष्यतायाः स्वपदेनोपादानानुपपत्तेर्घटो गगनवानितिज्ञानीयघटनिष्ठविशेष्यताया एवोपादेयतया तद्विशिष्टप्रकारताशून्यतया ह्रदो वह्निमानितिज्ञानेऽतिव्याप्तिः । द्वितीयसम्बन्धानिवेशे गुणत्वनिष्ठनिरवच्छिन्ननिरूपकतायाः परिशिष्टसम्बन्धैर्द्रव्यत्वनिष्ठनिरवच्छिन्नप्रकारतायां सत्त्वात्तदन्यप्रकारत्वानिरूपके गुणो द्रव्यमितिज्ञानेऽतिव्याप्तिः । न च निरवच्छिन्ननिरूपकत्वप्रकारत्वयोरवच्छेदकाप्रसिद्ध्या न द्रव्यत्वनिष्ठनिरवच्छिन्नप्रकारतायां तादृशनिरूपकतावैशिष्ट्यमिति वाच्यम् ; घटो द्रव्यमिति ज्ञानसङ्ग्रहाय स्वानवच्छेदकत्वस्यावच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाभाववत्त्वरूपस्य वक्तव्यत्वात्, अन्यथा विशेष्यताश्रयघटनिष्ठाधिकरणतानिरूपकताविशिष्टा द्रव्यत्वनिष्ठा प्रकारता न स्यात्, निरवच्छिन्नत्वात् । तृतीयसम्बन्धानिवेशे स्वरूपतो घटत्वावगाहिज्ञाने घटत्वत्वादिना विषयितासम्बन्धेन घटत्वप्रकारकज्ञानस्य विशिष्टसत्तावान् गुण इति ज्ञानस्य च प्रमात्वं स्यात् अधुना त्ववच्छेदकतासम्बन्धेन निरूपकत्वाभाववद्घटत्वत्वविशिष्ठसत्तात्वावच्छिन्नत्वस्यैव प्रकारतागतत्वात् तादृशप्रकारता निरूपकताविशिष्टान्यैवेति तन्निरूपकत्वेन नोक्तज्ञानयोरतिप्रसङ्गः । चतुर्थसम्बन्धानिवेशे घटत्वत्वेन घटत्वावगाहिज्ञाने विषयितासम्बन्धेन**

राजहंसः

वक्ष्यते चाधिकमिति । 'न तु रजतत्वमात्रे, तस्यान्यत्र सत्त्वा' दिति लक्षणप्रयोजनखण्डनपङ्क्तिस्थशारदायामिति शेषः ।

विशिष्टसत्तावान् गुण इति ज्ञानस्य च प्रमात्वं स्यादिति । न च गुणनिष्ठाधिकरणतानिरूपकता प्रकारतानवच्छेदककेवलसत्तात्वावच्छिन्नैवेति कथं चतुर्थसम्बन्धसमन्वय इति शङ्क्यम्, वैशिष्ट्यसत्तात्वयोर्द्वयोरेव प्रकारताऽवच्छेदकतया तदनवच्छेदकताया उदासीने घटत्वादावेव सत्तया तदनवच्छिन्नत्वमादाय चतुर्थसम्बन्धसमन्वयोपपत्तेरित्याशयात् ।

अथोच्येत–प्रकाशमानरूपेण सर्वेण विशेषणभावाद्यस्यानुभवस्यार्थसादृश्यं सा प्रमा, न च तावता धर्मिणो धर्म्यविशेषणतया दोषः; तस्यापि तद्विषयान्तरव्यवच्छेदकत्वादिति; तर्हि व्यभिचारि-

शारदा

स्वरूपतो घटत्वप्रकारकज्ञानस्य प्रमात्वं स्यात् । अत्र चेदं रजतमित्यादिनिरवच्छिन्नप्रकारताकभ्रमेष्वपि नातिव्याप्तिरिति – निरस्तम्; **प्रकारताया अवच्छिन्नत्वाभावप्रयुक्तायाः पूर्वलक्षणोक्तातिव्याप्तेरभावेऽपि प्रकारान्तरेणोक्तानामतिव्याप्त्यादीनां सर्वेषामेव दोषाणामत्रापि सावसरत्वात्, परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकत्वाच्च । एतेन भ्रमसामान्यभिन्नानुभवत्वं सर्वांशे प्रमात्वमित्यपि निरस्तम्; तस्योक्तप्रकारद्वयातिरिक्तस्य दुर्वचत्वात् । किञ्च भ्रमत्वमननुगतं वाऽनुगतं वा, आद्ये भेदकूटस्यैव निवेश्यत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वम्, द्वितीये तूभयाभावादिकमादायातिप्रसङ्गो वाऽनवस्था वेत्युक्तम् । नच गुणत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वं दोषाभावत्वावच्छिन्नप्रयोजकतानिरूपितप्रयोज्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वं वा प्रमात्वम्, रूपान्तरेण प्रमात्वस्य लक्ष्यतावच्छेदकता, उक्तरूपेण च लक्षणतेति न विरोध इति वाच्यम्; गुणत्वदोषत्वयोरनुगतयोरभावात्, ईश्वरज्ञानसाधारणप्रमात्वस्य जन्यतावच्छेदकत्वासम्भवाच्च, जन्यप्रमात्वस्य तथात्वे च नित्यानित्यसाधारणप्रमात्वस्य निर्वक्तव्यत्वापातात्, व्यवहारानुगमदर्शनात् । गुणत्वस्य प्रमात्वघटितत्वाच्च । दोषत्वस्यापि प्रमितिप्रतिबन्धकतारूपत्वे तथात्वाच्च ।**

विशेषणभावात् = विषयितादिसम्बन्धेन विशेषणतया, तथा च स्वविषयीभूतयावद्विशिष्टविषयकत्वं याथार्थ्यमित्यक्षरार्थः, इदं रजतमितिभ्रमस्य स्वविषयीभूतरजतत्वविशिष्टविषयकत्वाभावान्नाति प्रसङ्गः । दोषः = असम्भवः । अनुभवविषयान्तरं प्रकारः संसर्गश्च । तथा च स्वविषयीभूतं यद्यत्तत्तद्व्यावृत्तं यद्यत्ततत्तदितराविषयकत्वं वक्तव्यम्, यावद्व्यावृत्तस्यैकस्याभावात् । अत्र यद्यपि तद्व्यावृत्तत्वं यदि तज्ज्ञानजन्यव्यावृत्तिधीविषयत्वं तदा भ्रान्तावतिप्रसक्तिस्तदवस्था, यद्वक्ष्यति "रजतत्वादिकमपि व्यवच्छिन्नत्त्येव शुक्तिका"मिति। तादृशव्यावृत्तिप्रमितिविषयत्वं तु प्रमात्वस्यैव निरूप्यमाणतया न विवक्षाक्षमम् । नच स्वप्रकारीभूतयावद्विशिष्टविशेष्यकत्वविवक्षायां धर्मिणो यावदनन्तर्गतत्वान्नोक्ता-

भारती

प्रश्न - विषयिता सम्बन्ध से प्रकाशमान समस्त रूपों का अनुभव में विशेषण होना अर्थात् स्वविषयीभूतयावद्विशिष्टविषयकत्व ही अर्थसादृश्य विवक्षित है और ईदृश अर्थसादृश्य से विशिष्ट अनुभव ही प्रमा है। "इदं रजतम्" इस भ्रमज्ञान के स्वविषयीभूतरजतत्वविशिष्टविषयक न होने से उसमें उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है । यदि कहें कि धर्मि के स्वयं (धर्मि) में विशेषण न होने से प्रकाशमानयावद् विशिष्टविषयकत्व किसी भी प्रमा ज्ञान में न होने से उक्त प्रमालक्षण असम्भवदोष से ग्रस्त हो जायेगा, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि धर्मि भी विषयान्तर से अपनी व्यावृत्ति करता है । अतः विषयान्तर से अपने आपका व्यापर्तक होने से धर्मी भी विशेषण माना जायेगा । अतः उक्त लक्षण में असम्भवदोष नहीं है ।

ज्ञानं धर्मिण्यपि प्रमा न स्यात्, सर्वात्मना सादृश्याभावात्; अव्यभिचारिणं चांशमननुरुध्य तदीयाप्रमितकोटिनिक्षेपसाहसिक्यादविभ्यता किमव्यभिचार्यंशानुरोधेन व्यभिचार्य्यंशस्यापि प्रमाकोटिनिवेशनमेव नाध्यवसीयते भवता, शक्यन्ते ह्यनुभूतित्व-

शारदा

सम्भव इति वाच्यम्; घटवद्भूतलमित्यादौ कस्यापि विशेष्यस्य घटत्वादिरूपयावत्प्रकारविशिष्टत्वाभावेनाव्याप्त्यापत्तेः । स्वीयविशेष्यतानिरूपितयद्यत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताश्रयो यो यस्तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नतत्तन्निरूपितसम्बन्धितावद्विशेष्यकत्वविवक्षायामपि 'घट'इत्यादौ वीप्सार्थाप्रसिद्ध्याऽव्याप्तिः । विशिष्टसत्तावान् गुण इत्यत्रातिव्याप्तिश्च । तादृशप्रकारतावच्छेदकीभूतं यद्यत्, तत्तदवच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितसम्बन्धितोक्तौ च निरवच्छिन्नप्रकारताकप्रमित्यव्यातिरित्येवमादिपर्यालोच्यमाने पूर्वनिरस्तपरिष्कृतिभूयमननुभूय न लक्षणविश्रान्तिस्तथापि समाधिसौकर्यादाह तर्हीति । प्रमा न स्यादिति । **न च सर्वांशे प्रमात्वस्यैव निरुच्यमानतयेदमसङ्गतमिति वाच्यम्; 'इदं ज्ञानमंशे प्रमा, इदञ्च सर्वांशे प्रमे'ति व्यवहारस्य प्रमात्वांशेऽनुगतस्यैवानुभवादुभयानुगतप्रमात्वस्यावश्यं निर्वाच्यवादित्यभिप्रायात् । नच 'इदं रजत'मिति ज्ञानं प्रमेति व्यवहारविरहेण प्रकारांशमादायैव प्रमात्वाप्रमात्वव्यवस्थायाः स्वीकार्यत्वेन तदनुपग्रहेऽपि न क्षतिरिति वाच्यम्; भूतलमिदं घटवत्पटवच्चेति ज्ञानस्य घटप्रकारांशे प्रमात्वं पटांशे च भ्रमत्वमासेदुषःसङ्ग्राह्यत्वात् । प्रमासामान्यलक्षणेन तत्सङ्ग्राह्यतानुपगमे आह** अव्यभिचारिणमिति । **तदीयाप्रमितिकोटिनिक्षेपः = उक्तज्ञानस्याप्रमात्वोपगमः प्रमाकोटिनिवेशनम् = प्रमात्वाश्रयता ।** नेति । **तथा च विनिगमनाविरहात्प्रमात्वाप्रमात्वोभयमपि तत्रास्थेयमिति भावः । यथार्थस्मृतेलक्ष्यताभिप्रायेण**

भारती

समाधान - इस प्रकार मानने पर व्यभिचारी ज्ञान धर्मी अंश (धर्मीविषयकत्वावच्छेदेन) में भी प्रमा नहीं होगा, क्योंकि ''इदं रजतम्'' इत्यादि भ्रान्तिज्ञानों में सर्वात्मना (प्रकाशमान समस्तरूपों से) अर्थ सादृश्य नहीं है । यद्यपि सर्वांशे में प्रमात्व ही निरूच्यमान है तब यह कहना असंगत है तथापि ''इदं ज्ञानं अंशे प्रमा'' इदञ्च सर्वांश प्रमा यह व्यवहार प्रमात्वांशे अनुगत ही प्रतीत हो रहा है । अत: उभयानुगत प्रमात्व को कहना चाहिये यह अभिप्राय है।

किञ्च यदि आप तार्किक ''इदं रजतम्'' इत्यादि भ्रान्तिस्थलों में अव्यभिचारी अंश अर्थात् जिस धर्मी अंश में वह ज्ञान प्रमारूप है उस अंश का अनुरोधन न करके उस अव्यभिचारी अंश (धर्मीरूप प्रमा अंश अर्थात् धर्मीविषयकत्वावच्छेदेन) को भी अप्रमा कोटि में निवेश अर्थात् उक्तज्ञान के अप्रमात्व (भ्रमत्व) स्वीकार करने के साहस से भयभीत नहीं होते, तो क्यों नहीं अव्यभिचारी (प्रमा) अंश के अनुरोध से व्यभिचारी अंश को भी अर्थात् जिस अंश-(रजत अंश) में वह ज्ञान अप्रमा है उस अंश में भी अर्थात् रजतविषयकत्वावच्छेदेन भी इदं रजतम् इस ज्ञान को प्रमा ही मान लेते । (तथा च विनिगमना के न होने से इदं रजतम् इत्यादि भ्रमस्थलों में सर्वत्र प्रमात्व-अप्रमात्व दोनों ही मानना चाहिए ।) इदं रजतम् इत्यादि

ज्ञानत्वादयस्तादृगभिप्रायेण लक्षणीकर्तुम् । यदि च बाध्यार्थांशा धीरबाध्यांशेऽप्यप्रमैव तदा सौधाग्रकुम्भादिवत् दूरत्वात्तुहिनद्युतिविद्युदादिपरभागाग्रहणादवयविनं च तावत्परिमाणाग्रहणादल्पपरिमाणमुल्लिखत्प्रत्यक्षं प्रमात्वेन लोकप्रसिद्धमप्रमा स्यात् । क्वच लभ्यं देशकालालोकादिव्यक्तिसहितजलादिज्ञानस्य

शारदा

ज्ञानत्वेति । आदिपदेनागृहीतासंसर्गकधर्मधर्मिविषयकैकज्ञानत्वं सविषयकत्वञ्च गृह्यते, इच्छादौ याचितमण्डनन्यायेनैव सविषयकत्वव्यवहृतेर्नातिप्रसङ्गः । नायं घट इति यथार्थज्ञानमिदम्पदार्थधर्मिणि घटत्वप्रमात्वं नालम्बेतेत्याशयेनागृहीतासंसर्गमकेति । तादृगभिप्रायेण = आंशिकभ्रमत्ववतोऽपि प्रमात्वाभिप्रायेण । बाध्यार्थांशा = यत्किञ्चिद्विषयकत्वावच्छेदेन भ्रमत्ववती । सौधो राजसदनम् । दूरत्वात्परभागाग्रहणात्तावत्परिमाणाग्रहणादित्यत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रति हेतुता । तुहिनद्युतिः = चन्द्रमाः । विद्युदादीति द्वितीयान्तम् । अवयविनं च = अन्यञ्चावयविनम् , तेन चन्द्रादेरप्यवयवित्वेन नासङ्गतिः । यद्यपि सौधाग्रकुम्भादिप्रत्यक्षे एवाव्याप्तिसत्त्वेन तद्विषयं दृष्टान्तीकृत्य चन्द्रादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिदानमनुचितम्, तथाप्युक्तिवैचित्र्यार्थमेवेदम् । अनल्पपरिमाणेऽल्पपरिमाणतावगाहितयांशिकभ्रमत्वमुपोद्बलयितुं च दृष्टान्तोपन्यासः । प्रमात्वेनेति । **क्वचिदंशे इत्यादिः । अप्रमा =सर्वांशेऽप्रमा । सर्वांशे प्रमाया एव लक्ष्यतामुपेत्याप्याह** क्वेति । तावदर्थप्रवृत्ति-

राजहंसः

अगृहीतासंसर्गकेतीति । एकत्वविशेषणं तु विसंवादिप्रवृत्तिजनकस्य मतभेदेनैकज्ञानस्य ज्ञानद्वयस्य वेदानीं सङ्ग्राह्यत्वेऽपि मिलितज्ञानद्वये प्रमात्वव्यवहारापहाराय, प्रत्येकमेव तद्व्यवहारात्,

भारती

आंशिक भ्रमत्व वाले ज्ञानों में भी प्रमात्व ही यदि मान लें तो इस अभिप्राय से "अनुभूतित्व प्रमात्वम्" अथवा "ज्ञानत्वं प्रमात्वम्" इत्यादि लक्षण ही प्रमा लक्षण बनाये जा सकते हैं । (यहाँ यथार्थ स्मृति को भी प्रमा लक्षण का लक्ष्य मान सकते हैं" इस अभिप्राय से ज्ञानत्व को प्रमालक्षण कहा है । एवं "ज्ञानत्वादि" इस आदि शब्द से "अगृहीतासंसर्गक धर्मधर्मिविषयकज्ञानत्वम् प्रमात्वम्" इस लक्षण का संग्रह करना चाहिए ।)

और यदि बाध्य है अर्थ का एक अंश जिस बुद्धि का ऐसी बुद्धि अर्थात् यत्किञ्चित् विषयकत्वावच्छेदेन भ्रमत्व वाली इदं रजतम् इत्यादि बुद्धि भी अबाध्य अंश में भी अर्थात् इदं रूपधर्मिविषयकत्वावच्छेदेन भी अप्रमा ही हो जाय तो- राजसदन के शिखर पर स्थित स्वर्ण कुम्भ के समान दूर होने से चन्द्र एवं विद्युदादि के पुष्ट भाग का ग्रहण न होने से और इसी प्रकार अन्य किसी दूरस्थ अवयवी (पदार्थ) के वास्तविक परिमाण का ग्रहण न होने से उनके अल्पपरिमाण विषयक प्रत्यक्ष प्रमाण भी जो कि किसी अंश में प्रमात्वेन लोक प्रसिद्ध है सर्वांश में ही अप्रमा हो जायेगा ।

किञ्च देशकाल आलोकादि व्यक्तियों के सहित जलादि को विषय करने वाला ज्ञान

समस्ततावदर्थप्रवृत्तिसामर्थ्योदाहरणं येन तत्प्रामाण्यं मन्यसे । यदि चांशे बाधादवाध्येऽप्यंशे तद्बोधमिथ्यात्वं समर्थयसे तदा यदर्थजातीयं बाध्यं तदर्थजातीयमबाध्यमपि मिथ्येति मन्यमाने किमुत्तरं ते स्यादन्यत्र लोकप्रसिद्धप्रमोदाहरणत्यागात् ।

शारदा

सामर्थ्येति। **तज्ज्ञानीयविषयताश्रययावद्विषयकसफलप्रवृत्तिजनकत्वेत्यर्थः । उक्तजलादिज्ञानं क्वापि जने स्वीययावद्विषये संवादिप्रवृत्तिजनकमिति न शक्यमुदाहर्तुम् । प्रवृत्तिपर्यन्तं कालादेर्जलादिज्ञानविषयस्यानवस्थितत्वं सूचयितुं व्यक्तिपदं व्यक्तिविशेषपरम् । स्वतःप्रमात्ववादेऽपि तद्वति तत्प्रकारकत्वादिरूपमेव प्रमात्वं स्वाश्रयज्ञानविषयकप्रथमज्ञानेन गृह्यते नतु सर्वांशे प्रमात्वम्, तद्भानप्रयोजकसामग्रीविरहादिति व्यक्तमन्यत्र, एवञ्चानेकविषयकोक्तज्ञानस्य सर्वांशे प्रमात्वं स्वीययावद्विषये सफलप्रवृत्तिजनकत्वेनैव ग्राह्यम्, जनकत्वञ्च नोपधानम्, स्वीययावद्विषये प्रवृत्त्युपधाने मानाभावात्, केषाञ्चिद्विषयाणां प्रवृत्तिपर्यन्तमनवस्थायित्वाच्च, नापि स्वरूपयोग्यत्वम्, अवच्छेदकस्य निरूपणीयत्वापातात्, इदं जलत्वप्रकारकं ज्ञानं जलविशेष्यकं जलभिन्नाविशेष्यकत्वे सति सविशेष्यकत्वाद्व्यतिरेके जलभ्रमवदिति रीत्या तु विषयविशेषे एव प्रमात्वं गृह्येत नतु सर्वत्र, न वा तत्तत्प्रकारांशे तत्तत्प्रकाराश्रयभिन्नाविशेष्यकत्वं सर्वांशे संवादिप्रवृत्त्युपधानं विना शक्यं ग्रहीतुमिति तादृशप्रमितीनां सर्वांशे प्रमात्वं न स्यादिति भावः । सिंहावलोकितेनाह** यदीति । **मिथ्यात्वम् = अप्रमात्वम् । समर्थयसे =अभिमन्यसे । यदर्थजातीयं = यद्धर्मावच्छिन्नविषयकं किञ्चिज्ज्ञानं बाध्यं = भ्रमत्वेन प्रसिद्धं तदर्थजातीयं = तद्धर्मावच्छिन्नविषयकं ज्ञानान्तरमबाध्यमपि = प्रमात्वेन प्रसिद्धमपि मिथ्या = अप्रमेत्यभिमन्यमानं प्रतिवादिनं प्रति लोकप्रसिद्धप्रमोदाहरणातिरिक्तमुत्तरं ते न स्यात् । अंशे प्रमात्वमुपेयुषोऽपि सर्वात्मना**

राजहंसः

अन्यथा तु त्याज्यमेव तत् , नायं घट इत्यस्यापि च सामान्यतो लक्ष्यतयाऽगृहीतासंसर्गकेत्यपि त्याज्यमेव, एवं च धर्मधर्मिविषयकज्ञानत्वं शिष्यते, तत्र ज्ञानत्वस्य मूले उपात्ततया आदिपदार्थः सविषयकत्वात्मैव पर्यवस्यति, धर्मधर्मिनिवेशस्य निष्प्रयोजनत्वादित्याशयेन सविषयकत्वमन्ते आदिपदार्थतयोदीरितम् ।

भारती

कहाँ अर्थात् किस सज्जन का उपलब्ध है जो कि अपने समस्त विषयों (देश काल आलोकादि जल) में संवादि प्रवृत्ति (सफल प्रवृत्ति) का जनक रूप से उदाहरण हो सके । जिससे कि उसका प्रामाण्य माना जाय । तथा च सभी ज्ञान विषयविशेष अंश में ही प्रमा होता है सर्वांश में नहीं, अतः सर्वांश में प्रमा का उदाहरण उपलब्ध न होने से उक्त प्रमालक्षण असम्भवदोष से ग्रस्त हो जायेगा ।

किञ्च यदि एक अंश में (यत्किञ्चित्विषयकत्वावच्छेदेन) बाध होने से अबाध्य अंश में (अबाधितविषयकत्वावच्छेदेन) भी उस को अप्रमा ही मान लें तो-यद्धर्मावच्छिन्नविषयक यत्किञ्चित् ज्ञानबाधित (भ्रमत्वेन प्रसिद्ध) है । तद्धर्मावच्छिन्नविषयक ज्ञानान्तर अबाध्य (प्रमात्वेन प्रसिद्ध) को भी "यह ज्ञान मिथ्या अर्थात् अप्रमा है" इस प्रकार मानने वाले सज्जन के प्रति

अथोच्यते-प्रकाशमानेन रूपेण विशेषणतया यदर्थसाम्यमनुभवस्य तत्र तस्य प्रमात्वमिति विषयविशेषनियमेनैव प्रमात्वं लक्षणीयमित्येतदर्थमेव यथार्थविशेषणोपादानमिति; मैवम्; विशेष्यांशेऽनुभूतिरेवं प्रमा न स्यात् । व्यवच्छेदकत्वं विशेषणत्वमभिमतम् धर्म्यपि च स्वसम्बद्धान् धर्मान् विशिनष्टीति नोक्तदोष

शारदा

भ्रमत्वं यदि तदा सर्वांशे प्रमात्वमुपेयुषोऽपि तत्किन्न स्याद्विनिगमकाभावात्, आंशिकत्वानांशिकत्वयोरप्रयोजकत्वादिति भावः ।

तत्रेति । **विषयतया स्वविशिष्टं यत्, तद्विशिष्टविषयकत्वं स्वस्य तदंशे याथार्थ्यमित्यर्थः । विषयविशेषनियमेन = विषयदिशेषनियन्त्रितं, तत्तद्विषयकत्वावच्छिन्नमिति यावत् । तद्विशिष्टत्वं यदि तदाश्रयत्वं तदाह** विशेष्येति । **तद्व्यावृत्तत्वमेव तद्विशिष्टत्वम्, धर्मधर्मिणोश्च परस्परं व्यावृत्ततया न दोषः, अतएव गोत्वत्वं समवेतत्वसम्बन्धेन गोत्वे प्रकारीभूतं यत्किञ्चिद्गोव्यक्तिरेवेति वदन्तीत्याशङ्कते** व्यवच्छेदकत्वमिति । **अत्र धर्मधर्मिणोर्व्यावृत्तत्वज्ञानादन्योन्यव्यावृत्तिबोधेऽन्योन्याश्रयोपि द्रष्टव्यः । स्वीयप्रकारताश्रयतद्विशिष्टविशेष्यकस्य तदंशे याथार्थ्यमिति विवक्षायामपि विशिष्टसत्तावान् गुण इत्यादावतिव्याप्त्यादिकमुक्तमनुसन्धेयम् ।**

भारती

आपका क्या उत्तर होगा । अर्थात् लोकप्रसिद्धप्रमा के उदाहरण के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं हो सकता, और लोक प्रसिद्ध प्रमा के उदाहरण का तो आप तार्किक ने परित्याग कर दिया है । (तथाच एक अंश में प्रमा होने पर भी यदि सर्वात्मना भ्रम मान सकते हैं तो सर्वांश में जहाँ प्रमा है वहाँ भी भ्रम क्यों न मान लिया जाय । क्योंकि आंशिकत्व या अनांशिकत्व तो भ्रमत्व तथा प्रमात्व के प्रति प्रयोजक नहीं है ।)

प्रश्न - प्रकाशमानरूप से जो विशेषण है उसे लेकर जिस अनुभव में अर्थ का साम्य (सादृश्य) हो उस अर्थ में वह ज्ञान प्रमा होगा । (अर्थात् विषयता सम्बन्ध से ज्ञानविशिष्ट जो (रजतत्व) है तद्विशिष्ट विषयकत्व ही उस ज्ञान का तदंश में याथार्थ्य है । इदं रजतम् यह ज्ञान विशेषणताख्य विषयता सम्बन्ध से रजतत्व में है तादृश विशेषण (रजतत्व) से विशिष्ट इदम् पदार्थ नहीं है अत: इदं रजतम् यह ज्ञान तादृशविशेषण विशिष्टविषयक नहीं है इसलिए तदंश में अर्थात् रजतत्वविशिष्ट इदं विषयकत्वावच्छेदेन यह ज्ञान प्रमा नहीं हो सकता । अत: प्रमालक्षण की इदं रजतम् ज्ञान में अतिव्याप्ति नहीं है ।) इस प्रकार विषयविशेष से नियन्त्रित ही प्रमात्व का निर्वचन (लक्षण) करेंगे और इसके लिए ही अर्थात् इस अभिप्राय की पूर्ति के लिए लक्षण में यथार्थत्व विशेषण दिया गया है ।

समाधान - उक्त लक्षण में विशेषण विशिष्ट का विशेषणाश्रय अर्थ मानने पर- विशेष्य अंश में (विशेष्यविषयकत्वावच्छेदेन) ज्ञान प्रमा न होगा । (क्योंकि विशेष्य विशेषणाश्रय नहीं है ।) यदि कहें व्यावर्तकत्व ही विशेषणत्व अभिप्रेत है और धर्म धर्मी दोनों ही परस्पर में एक दूसरे का व्यावर्तक है । धर्मी भी स्वसम्बन्ध धर्मो को इतर से व्यावृत्त करता है । अत:

इत्युक्तमेवेति चेन्न; विशिष्टे प्रमात्वाभावापत्तेः । अपि च, एवं तर्हि रजतत्वादिकमपि व्यवच्छिनत्त्येव शुक्तिकां 'रजततया प्रकाशिता या शुक्तिव्यक्तिः सेय'मिति । ननु साक्षाद्विशेषणत्वं विवक्षितम्, रजतत्वं तु ज्ञानद्वारा शुक्तिविशेषणमिति नातिप्रसङ्ग

शारदा

विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वऽप्याह अपि चेति । रजततयेत्यादि । **इदमुपलक्षणम् बाधग्रहात्पूर्वमपि रजतत्वग्रहाधीनव्यावृत्तिग्रहविषयत्वरूपस्य रजतत्वव्यावृत्तत्वस्य सम्भवात् व्यावृत्तिग्रहे प्रमात्वविवक्षायां तूक्तमेव, व्यावृत्तेर्वस्तुगत्या पूर्वमपि सद्भावेन रजतत्वजन्यत्वस्य रजतत्वग्रहजन्यत्वस्य वा तत्रासम्भवदुक्तिकत्वेन व्यावृत्तिग्रहस्यैव व्यावृत्तत्वे प्रवेशनीयत्वात्। ज्ञानद्वारा = स्वप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वसम्बन्धेन ।** इत्यादावित्यादि । **इत्यादिज्ञानाधीनानुभवविषये विशेष्यनिष्ठवैलक्षण्ये इत्यर्थः । तेन वैलक्षण्यबुद्धेर्विशिष्टधीफलत्वादन्यथाऽपोहवादप्रसङ्गात् 'दीर्घदण्डः पुरुष' इति धियो वैलक्षण्याविषयकत्वेऽपि न क्षतिः । दण्डादिद्वारा = स्वसमवायिसंयोगसम्बन्धेन । आदिपदं खड्गादिविशेषणकधियमभिप्रेत्य । एकत्र द्वयमितिरीत्या च दीर्घत्वादेः पुरुषादौ भानसम्भवः एवञ्च दीर्घदण्डपुरुष' इति ज्ञाने पुरुषे धर्मिणि दीर्घत्वांशे प्रमात्वाभावद्वारा तदधीनव्यावृत्तिबुद्धेरप्रमात्वमित्यर्थः । तेन व्यावृत्तेः**

राजहंसः

वैलक्षण्याविषयकत्वेऽपि न क्षतिरिति । वैलक्षण्यपदेन व्यावृत्तिमनुपादाय दीर्घत्वादेरेव वैधर्म्यात्मनो ग्रहणे यथाश्रुतोक्तमूलसङ्गतावपि 'दीर्घत्वादेर्दण्डादिद्वारा' इत्युत्तरमूले 'तस्य दण्डादिद्वारा' इत्यनभिधानेन स्वरसतो वैलक्षण्यस्य वैधर्म्यानात्मकताध्वननात्, अन्यथोपक्रान्तस्य सर्वनाम्नैव

भारती

विशेष्यांश के ज्ञान में अव्याप्ति दोष न होगा । तो यह कहना उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर विशिष्ट अंश में (विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन) ज्ञान प्रमा न होगा, क्योंकि विशिष्ट विशेष का व्यावर्तक नहीं है ।

अपि च - यदि विशिष्ट को अतिरिक्त न मान कर विशेषण-विशेष्य रूप ही मानें तो भी इदं रजतम् इत्यादि ज्ञानों में रजतत्वादि भी शुक्ति की व्यावृत्ति करते हैं क्योंकि बाधग्रह होने पर भी - जो शुक्ति व्यक्ति रजतरूप से प्रकाशित भी वही व्यक्ति यह है'' अर्थात् ''रजतत्वेन ज्ञाता इयम्'' इस प्रकार ज्ञान होता है । अतः रजतत्वरूपविशेषण विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन भी वह ज्ञान प्रमा होने लगेगा अर्थात् इस प्रकार से उक्त प्रमालक्षण इदं रजतम् में अतिव्याप्त हो जायेगा ।

प्रश्न - साक्षात् विशेषणत्व विवक्षित है अर्थात् जिस ज्ञान का जो विषय अर्थ का साक्षात् विशेषण हो'' ऐसा कहेंगे । रजतत्व तो ज्ञान द्वारा (स्वप्रकारक ज्ञानविशेष्यत्व सम्बन्ध से) शुक्ति का विशेषण है । ''रजतत्वेन इदं ज्ञातम्'' इस ज्ञान में रजतत्व प्रकार ज्ञान की विशेष्यता इदम् में है अतः इस सम्बन्ध से रजतत्व भी शुक्ति में विशेषण मान लिया जाता है। अतः साक्षात् (ज्ञान को द्वार न मानकर) रजतत्व शुक्ति में विशेषण न होने से उक्त प्रमा लक्षण की इदं रजतम् में अतिव्याप्ति नहीं है ।

इति; मैवम् ; तर्हि दीर्घदण्डः पुरुष इत्यादौ ह्रस्वदण्डादिभ्यो वैलक्षण्ये विशेष्यस्यानुभूयमानेऽनुभूतेर्न प्रमात्वं स्यात् दीर्घत्वादेर्दण्डादिद्वारा विशेषणत्वादिति । ज्ञानरूपद्वारानपेक्षतया विशेषणत्वमिष्टमिति चेन्न; साक्षात्कृत इत्याद्यवगमानाम-

---

शारदा

साक्षाद्विशेषणत्वेऽपि न क्षतिः । व्यवच्छेदकाप्रमितौ व्यवच्छित्तेः प्रमित्यसम्भवात् । दीर्घदण्डः पुरुष इति ज्ञानस्य पुरुषरूपधर्मिणि दीर्घत्वविशिष्टबुद्धित्वमादाय प्रमात्वं न स्यादित्येतावदभिधानेनैव निर्वाहे तदधीनबुद्धेर्व्यावृत्त्यंशेऽप्रमात्वापादनं त्विष्टापत्तिं परिहर्तुम्। उपलक्षणञ्चेदम्, उक्तरीत्या भ्रमेऽतिव्याप्तिसत्त्वात् । साक्षाद्विशेषणत्वं नाम ज्ञानाघटितसम्बन्धेन विशेषणत्वमिति 'रजततया प्रकाशिते'ति ज्ञानमादाय नातिप्रसङ्ग इत्याशङ्कते ज्ञानेति । पातादिति । **साक्षात्त्वस्य स्वाश्रयविषयत्वसम्बन्धेन ज्ञानघटितेनैव विषयविशेषणत्वादिति भावः । एवं घटत्वस्य स्वप्रकारकसाक्षात्कारविषयत्वसम्बन्धेन विशिष्टबुद्धित्वमादाय घटत्वेन साक्षात्कृतोऽयमित्यादावप्यव्याप्तिर्द्रष्टव्या । रूपं प्रकारसंसर्गौ, तथा च**

राजहंसः

परामर्शौचित्यादित्याशयेन व्यावृत्तिरेव वैलक्षण्यपदेनोपात्ता । **ज्ञानघटितेनैवेति** । ननु ज्ञानधर्मस्य विशेषणत्वस्थले ज्ञानघटितसम्बन्धोऽस्तु, अन्यत्रैव तदघटितसम्बन्धस्यादरणीयत्वादित्यरुचेराह **एवं घटत्वस्येति । घटत्वेन साक्षात्कृतोऽयमिति** । न चात्र स्वप्रकारकसाक्षात्कारविषयत्वं न संसर्गः, अपि तु प्रकार एव, घटत्वप्रकारकत्वस्य साक्षात्कारे तद्विषयत्वस्य चेदम्पदार्थे तत्रानुभूयमानत्वादिति वाच्यम् , एकत्र द्वयमिति रीत्या घटत्वस्योक्तसंसर्गेणेदम्पदार्थे तत्र भानोपपत्तेः।

भारती

समाधान - साक्षात् विशेषणत्व की विवक्षा कहने पर "दीर्घदण्डः पुरुष इत्यादि ज्ञानाधीन अनुभव के विशेष्य (पुरुष) निष्ठ वैलक्षण्य रूप विषय में वह अनुभव प्रमा नहीं होगा, क्योंकि दीर्घत्वादि दण्डादि द्वारा पुरुष का विशेषण है साक्षात् नहीं है । (यहाँ स्वसमवायिसंयोग सम्बन्ध से दीर्घत्व पुरुष का विशेषण है स्वं दीर्घत्व, दीर्घत्व का समवायि दण्ड है उसका संयोग पुरुष में है इस प्रकार दण्ड द्वारा दीर्घत्व पुरुष का विशेषण होने से उक्त साक्षात्वघटित प्रमा लक्षण दीर्घदण्डः पुरुषः" इस ज्ञान में अव्याप्त हो जायेगा ।)

यदि कहें कि साक्षात् विशेषणत्व का तात्पर्य है — ज्ञानरूप द्वार की अपेक्षा न कर विशेषण होना, अर्थात् है - ज्ञानाघटित सम्बन्ध से विशेषण होना ही साक्षात् विशेषणत्व इष्ट है । (तथाच रजततया प्रकाशित शुक्तिरियम्" यहाँ स्व (रजतत्व) प्रकारक ज्ञानविशेष्यतव रूप ज्ञान घटित सम्बन्ध से ही रजतत्व इदम् में विशेषण है अतः वहाँ लक्षण न जाने से अतिव्याप्ति नहीं होगी, एवं "दीर्घदण्डः पुरुषः" यहाँ पर स्व (दीर्घत्व) समवायिसंयोगरूप ज्ञानाघटित सम्बन्ध से दीर्घत्व के पुरुष में विशेषण होने से साक्षात् विशेषण होने से उक्त प्रमा लक्षण का समन्वय हो जायेगा, अतः अव्याप्ति न होगी ।) तो यह कथन भी युक्तिसङ्गत नहीं

प्रमात्वापातात् । तज्ज्ञानप्रकाशितरूपेण विशेषणत्वमिति तु दूरं तुच्छम्, रूपादेः समवायेन तज्ज्ञानाविशेषकत्वात् । अर्थविशेषणत्वेऽयं नियमो यत्तज्ज्ञानप्रकाशितेन रूपेणेति, नतु ज्ञानेऽपीति चेन्न; तज्ज्ञानव्यक्तेरन्यत्रासम्भवेनासाधारण्यादव्यापकत्वादित्यलम् । इति खण्डनखण्डखाद्ये याथार्थ्यखण्डनम् ।

शारदा

यद्रूपावच्छिन्नयत्सम्बन्धावच्छिन्नयज्ज्ञानीयप्रकारताश्रयत्वं यस्य तद्रूपावच्छिन्नतत्सम्बन्धावच्छिन्नतत्सम्बन्धितावतस्तज्ज्ञानस्य तदंशे प्रमात्वमित्यर्थः । सम्बन्धितावत्त्वं यदि यथाश्रुतं तदा समवायेन रूपवान् घट इत्यादावव्याप्त्या दूषयति दूरमिति । **अतीत्यर्थः । तत्सम्बन्धितावत्त्वं स्वाश्रयविषयकत्वसम्बन्धेनेति नोक्तदोष इत्याशङ्कते** अर्थेति । **अन्यत्रासम्भवेन = स्वविषयान्यविषयकत्वासम्भवेन । असाधारण्यात् = अननुगमात्, लक्ष्यमात्रसाधारण्यविरहादिति यावत् । इदमुपलक्षणं रूपानवच्छिन्नप्रकारताकप्रमित्यव्याप्तेरपीति शिवम् ।**
इति खण्डनशारदायां याथार्थ्यखण्डनम् ॥

राजहंसः

तादृशसम्बन्धेन घटत्ववानयमिति च ज्ञानं शक्यमत्रोपलक्षयितुम् ।

रूपानवच्छिन्नप्रकारकतावेति । प्रकारोऽत्र रूपम् , एवं च स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारताकप्रमितिर्ग्राह्या । **इति याथार्थ्यखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

भारती

है । क्योंकि ऐसा निवेश करने पर ''साक्षात्कृतो घटः'' इस ज्ञान में अप्रमात्व की आपत्ति हो जायेगी कारण कि - इस ज्ञान में साक्षात्व स्वाश्रयविषयत्व रूप ज्ञान घटितसम्बन्ध से ही घट में विशेषण है । स्वं साक्षात्वं तदाश्रय है ज्ञान, तद्विषयत्व घट में है । अतः साक्षात्विशेषण न होने से उक्त प्रमालक्षण ''साक्षात् कृतो घट'' इस ज्ञान में अव्याप्त हो जायेगा ।

(एवं घटत्वेन साक्षात्कृतोऽयम्'' यहाँ पर भी घटत्व स्व (घटत्व) प्रकारक साक्षात्कार विषयत्वरूप ज्ञानघटितसम्बन्ध से ही अयम् रूप विशेषण है अतः उक्त लक्षण की अव्याप्ति है।)

यदि कहें कि - जिस ज्ञान का जो विषय है तज्ज्ञानविषयत्व सम्बन्ध से विशेषणत्व विवक्षित है । (यहाँ तात्पर्य है कि - रूपशब्द प्रकार एवं संसर्ग उभयबोधक है अतः यद्रूपावच्छिन्नयत्सम्बन्धावच्छिन्नयज्ज्ञानीयप्रकारता का आश्रय जो है तद्रूपावच्छिन्नतत्सम्बन्धावच्छिन्न तत्सम्बन्धिता से युक्त ज्ञान तदंश में प्रमा है ऐसा कहेंगे । ''इदं रजतम्'' यहाँ पर - रजतत्वत्वावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्न ''इदं रजतम्'' एतज्ज्ञानीय प्रकारता का आश्रय रजतत्व है, उस रजतत्व की - रजतत्वत्वावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्न सम्बन्धिता से युक्त इदं रजतम्'' यह ज्ञान नहीं है क्योंकि रजतत्व समवायेन ज्ञान में नहीं है । अतः ''इदं रजतम् इस ज्ञान में अतिव्याप्ति नहीं है । एवं ''रजततया प्रकाशिता इयम्'' इसमें भी यही स्थिति है अतः उसमें अतिव्याप्ति नहीं है ।) तो यह कथन अतीव तुच्छ है क्योंकि ''समवायेन रूपवान् घट'' इस ज्ञान में अव्याप्ति हो जायेगी । कारण कि इस ज्ञान में समवायेन रूपसम्बन्धिता का आश्रय ज्ञान नहीं है ।

अथ सम्यक्त्वखण्डनम्

सम्यक्परिच्छित्तिः प्रमेत्यपि न युक्तम्; न खलु सम्यक्त्वं तत्त्वविषयता याथार्थ्यं वा सम्भवति, उक्तदोषात् । ननु सामस्त्यं सम्यक्त्वमिष्टम्, अभिधीयते हि लोके-'न मया सम्यग्दृष्टं सामान्याकारेण तूपलब्ध'मिति, तदिह समीचोऽर्थस्य परिच्छेदः सम्यक्परिच्छेदः, सम्यगर्थविषयत्वाद्वा सम्यक्शब्दः परिच्छेदसमानाधिकरण एवायमितिः; मैवम्, सामस्त्यमर्थस्य किं सर्वावयवसहितत्वम्, अथवा सर्वधर्मसहितत्वम् नाद्यः,

---

शारदा

परिच्छित्ति = अनुभवः । सम्यगर्थविषयत्वात् = सम्यगर्थविषयकपरत्वात् । परिच्छेदसमानाधिकरणः = परिच्छित्तिपदार्थविशेष्यकाभेदबोधजनकः। सर्वेति । **स्वीयेत्यादिः।**

भारती

प्रश्न - जिस ज्ञान का जो विषय है तज्ज्ञानविषयत्व सम्बन्ध से इत्यादि पूर्वोक्त नियम अर्थ में विशेषण मानने के लिए है न कि ज्ञानविशेषणता पक्ष में । अर्थात् तत्सम्बन्धिता का आश्रय स्वाश्रयविषयकत्व सम्बन्ध से विवक्षित है तथा च "समवायेन रूपवान्घट" यहाँ पर स्वाश्रयविषयकत्व सम्बन्ध से रूपसम्बन्धिता का आश्रय ज्ञान हो जायेगा, अव्याप्ति न होगी।

समाधान - इस प्रकार परिष्कार करने पर इस लक्षण के यत् तत् घटित हो जाने स्वाश्रयविषयकत्व सम्बन्ध से तत्सम्बन्धिता का आश्रय एक ज्ञान व्यक्ति ही होगी, क्योंकि स्व (एक ज्ञान व्यक्ति) विषय से अन्यविषयकत्व उस ज्ञान व्यक्ति में नहीं रहेगा । अतः एक ज्ञान व्यक्ति में ही लक्षण समन्वय होगा, अन्य ज्ञान व्यक्ति में नहीं, ऐसी स्थिति में लक्षण का अननुगम होने से उक्त प्रमा लक्षण लक्ष्यमात्र साधारण नहीं होगा, तथा अन्य ज्ञान व्यक्तियों मे उक्त प्रमा लक्षण की अव्याप्ति दोष हो जायेगा ।

सम्यक्त्व-खण्डनम्

"सम्यक्परिच्छित्तिः प्रमा" यह लक्षण भी युक्तियुक्त नहीं है । कारण कि सम्यक्परिच्छिति अर्थात् सम्यग् अनुभव के अन्तर्गत सम्यक्त्व - तत्त्वविषयत्व या याथार्थ्या रूप नहीं हो सकता, क्योंकि उक्त दोषों के द्वारा वह निरस्त कर दिया गया है ।

प्रश्न -- इस लक्षणमें सम्यक्त्व सामस्त्यरूप ही अभिप्रेत है, क्योंकि लोक में कहा जाता है - कि "मैंने सम्यक् अर्थात् समस्त रूपों से नहीं देखा, अपितु सामान्य आकार अर्थात् यत्किञ्चित् रूप से देखा है" । तस्मात् प्रकृत में समीचीन अर्थ का निश्चय (समस्त रूपों से अर्थ का निश्चय) ही सम्यक् परिच्छेद है । अथवा यहाँ सम्यक् शब्द का सम्यग् अर्थ विषयक ज्ञानपरक है । अतः परिच्छेदसमानाधिकरण (परिच्छेद के साथ अभेद बोधक) होने से सम्यक् निश्चय (अनुभव) ही सम्यक्परिच्छेद है ।

समाधान -- यहाँ अर्थगत सामस्त्य क्या स्वकीय सर्वावयवसहितत्व है या स्वीय

अनवयवपदार्थपरिच्छेदस्य सावयवपदार्थपरिच्छेदस्यापि मध्यभागाद्यविषयस्याप्रमात्वापातात् । नापि द्वितीयः, असर्ववित्परिच्छित्तीनां सर्वासामप्रमात्वापत्तेः । अथ मन्यसे सम्यक् शब्द सविशेषार्थ, यदपि लोकेऽभिधीयते 'न मया सम्यग्दृष्टम्' तस्यापि मया न विशेषतो दृष्टमित्यर्थः, तस्मा-द्विशेषसहितधर्मिपरिच्छित्तिः प्रमेत्युक्तं भवति, विभ्रमादयो हि विशेषमपश्यतो जायन्त इति तद्व्यावृत्त्यर्थं विशेषणमिदम् , विशेषाणां च सर्वेषां विशेषान्तरानभ्युपगमेऽपि स्वरूपमेव केषाञ्चिद्विशेष इति; नैतद्युक्तम् , विशेषमात्राभिधाने रजतत्वादिना

शारदा

असर्वविदिति । **वस्तुमात्रस्यानन्तधर्मकत्वात् सामान्यप्रत्यासत्तेश्चाप्रामाणिकत्वात्, प्रामाणिकत्वेऽपि तदनधीनज्ञानासङ्ग्रहस्य दुर्वारत्वादिति भावः । नन्वेवमन्त्यविशेषविशेष्यक-प्रमित्यव्याप्तिः, तदीयविशेष्यस्य विशेषसहितत्वाभावादित्याशङ्क्याह** विशेषाणामिति । स्वरूपमेवेति । **तथा च विशेषविषयकत्वमेव सम्यक्त्वं विवक्षितमिति विशेषसाहित्यस्यान्तिम-**

भारती

सर्वधर्मसहितत्व है ? इनमें प्रथम पक्ष नहीं कह सकते, क्योंकि आद्यपक्ष मानने पर निरवयवपदार्थ (आकाशादि) विषयक अनुभव तथा मध्यभाग को विषय न करने वाले सावयव पदार्थ (घटादि) विषयक अनुभव अप्रमा हो जायेगा अर्थात् इन अनुभवों में उक्त प्रमा लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी । द्वितीय कल्प भी ठीक नहीं है क्योंकि वस्तुमात्र के अनन्त धर्मयुक्त होने से समस्त धर्म सहित पदार्थ का ज्ञान किसी भी असर्वज्ञ को नहीं हो सकता, अतः असर्वज्ञ प्राणी के सभी अनुभव अप्रमा हो जायेंगे अर्थात् उनमें उक्त प्रमा लक्षण अव्याप्त हो जायेगा।

प्रश्न -- सम्यक् शब्द सविशेष अर्थ का बोधक है जो कि लोक में भी कहा जाता है- ''मैंने सम्यक् नहीं देखा'' उसका यही अर्थ होता है कि मैंने उसे विशेष रूप से नहीं देखा'' (तस्मात् ''विशेष से सहित धर्मी (पदार्थ) की परिच्छिति (निश्चय) प्रमा है'' यही लक्षण पर्यवसित हुआ । विभ्रम संदेह आदि ज्ञान भी विशेष को न जानने वाले पुरुष को ही होता है अतः उस विभ्रम आदि की व्यावृत्ति के लिए अर्थात् विभ्रमादि में अतिव्याप्तिवारणार्थ प्रकृत लक्षण में सविशेषार्थक सम्यक्त्वाविशेषण दिया गया है । यदि कहें कि अन्त्यविशेष पदार्थ विशेष्यक प्रमा में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि वह अन्त्यविशेषरूप विशेष्य विशेष सहित नहीं है अर्थात् उसमें अन्य कोई विशेष नहीं है तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि सभी अन्त्यविशेषों में विशेषान्तर (अन्य विशेष) के न रहने पर भी उन अन्त्यविशेषों का स्वरूप ही विशेष है । और विशेष विषयकत्व ही प्रकृत लक्षण में सम्यक्त्व विवक्षित है अतः उक्त प्रमा लक्षण की अव्याप्ति अन्त्यविशेषविशेष्यक प्रमा में नहीं होगी । क्योंकि अन्त्यविशेष के विशेषान्तयुक्त न होने पर भी उसके स्वरूप ही विशेष होने से उक्तप्रमा में विशेषविषयकत्व विद्यमान है ।

विशेषेण सहैव शुक्तिव्यक्त्यादेर्भ्रमेणवगाहनात्तस्यापि प्रमात्वं स्यात्। प्रत्यर्थं व्यावृत्ताकाराणं च विशेषाणामुपादानेऽननुगमप्रसङ्गात् , सामान्यतश्चातिप्रसङ्गादित्युभयथाप्यसङ्गततापत्तेः । ननु न ब्रूमो विशेषेण सहोपलम्भो विशेषसहितोपलम्भः, किन्नाम विशेषण सहितस्य पदार्थस्योपलम्भः तथा च न शुक्तौ रजतत्वं विशेषोऽस्ति, तत्कथं रजतभ्रमेऽतिप्रसङ्ग इति; न; उक्तदोषेणैव निरस्तत्वात्,

शारदा

विशेषेष्वसम्भवेऽपि न क्षतिः । स्यादिति । **स्वविशेष्यवृत्तिविशेषविषयकत्वविवक्षायामपि पुरोवर्तित्वस्यापि किञ्चिदपेक्ष्य विशेषत्वेन तद्विषयकोक्तभ्रमेऽतिव्याप्तिः, अन्त्यविशेषविशेष्यकप्रमितावव्याप्तिश्चेति तत्तद्विशेषविषयकत्वेनैव तत्तज्ज्ञानस्य प्रमात्वं वाच्यमित्यभिसन्धानेनाह** प्रत्यर्थमिति । **उभयथेत्यनेन परामर्शसौकर्यार्थमुक्तमनुवदति** सामान्यत इति । **व्यावृत्ताकारेण शुक्तित्वादिनानुपादाने इत्यर्थः । विशेषत्वस्यानुगतस्याभावादननुगमोऽत्र**

भारती

समाधान -- यह कथन युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि उक्त प्रमा लक्षण में विशेष का सामान्यतः ही यदि निवेश मानें तो इदं रजतम् इत्यादि भ्रम में अतिव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि इदं रजतम् इत्यादि भ्रम में भी रजत्वादिरूप विशेष के साथ ही शुक्त्यादिव्यक्ति का भान होता है । अतः उक्त भ्रम में भी प्रमात्व की आपत्ति होगी । और यदि विशेषों का प्रतिव्यक्ति व्यावृत्त शुक्तित्वादिरूप से निवेश करें तो विशेषों के अनन्त होने से तत्तद्विशेषविषयकत्वेन ही तत्तद्ज्ञान को प्रमा कहना होगा, ऐसी स्थिति में लक्षण का अननुगम हो जायेगा, अर्थात् लक्षणघटकतत् शब्द से जिस व्यक्ति का ग्रहण करेंगे उसमें वह लक्षण समन्वित होगा और तद्भिन्न प्रमा व्यक्ति में अव्याप्त होगा । इस प्रकार परस्पर अव्याप्ति हो जायेगी और यदि उक्तप्रकार से सामान्य रूप से प्रवेश करेंगे इदं रजतम् में अतिव्याप्ति हो जायेगी इस प्रकार दोनों ही प्रकार से यह प्रमा लक्षण असङ्गत हो जायेगा । (यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि विशेषो में विशेषत्व जाति न होने से वह (विशेषत्व) भी अनुगत नहीं है अत विशेषत्वरूप से भी अनुगम नहीं हो सकता ।)

प्रश्न -- हम विशेष के साथ उपलम्भ (ज्ञान) को विशेष सहित उपलभ्य'' नहीं कहते अर्थात् विशेषविषयकत्वमात्र सम्यक्त्व नहीं है, अपितु विशेष का साहित्य अर्थ में विवक्षित कर विशेष सहित पदार्थ के उपलम्भ (विशेष सहितपदार्थविषयकत्व) को विशेष सहित उपलम्भ कहते हैं और इस प्रकार विशेषसहितपदार्थविषयकत्व ही सम्यक्त्व है । तथा च ''इदं रजतम्'' स्थल में रजतत्वरूपविशेष शुक्ति में नहीं है । पुरोवर्तित्व के शुक्ति में रहने पर भी पुरोवर्तित्व विशेष शब्द से ग्राह्य नहीं है क्योंकि भ्रम संशयनिवर्तक ज्ञान का विषय ही विशेष शब्द से कहा जाता है । अतः ''इदं रजतम्'' स्थल में शुक्तिरूप अर्थ के विशेष सहित न होने से उक्त प्रमालक्षण की ''इदं रजतम्'' ज्ञान में अतिव्याप्ति कैसे होगी, अर्थात् अतिव्याप्ति नहीं हो सकती ।

यदि हि विशेषस्य सामान्यतोऽभिधानं तदापुरोवर्तित्वादे; सत्त्वान्न प्रसङ्गनिवारणम्, विशेषणतदमिधाने त्वननुगम इति । विशेषस्य च भवतु स्वरूपमेव विशेषस्तथाप्यभेदादेव विशेषसहितत्वं नास्तीत्यव्याप्तेरपरिहारात् ।

यत्तु कश्चिदवोचत् - विशेषशब्देन तेऽभिधीयन्ते यददर्शनेन

शारदा

पक्षेऽपि द्रष्टव्यः । एवमग्रेऽपि । कथमिति । **भ्रमसंशयनिवर्तकज्ञानविषयस्यैव विशेषतया पुरोवर्तित्वं न विशेष इति गूढोभिसन्धिः । तादृशज्ञानविषयस्य विशेषतायाः परतो निराकरणीयतया न प्रामाणिकत्वमित्याशयेन परिहरति** उक्तेति । **ननु स्वविशेष्यवृत्तियद्विशेषविषयकत्वं यस्य तदंशे तस्य सम्यक्त्वमिति पुरोवर्तित्वांशे प्रमात्वमिष्टमेवेत्याशङ्क्यान्तिमविशेषविशेष्यकप्रमायामव्याप्तिमाह** विशेषस्येति । **नह्यभेदेऽपि सम्बन्धिता येन वृत्तित्वस्थाने तन्निवेशेन निस्तारः स्यात्, नवैवं प्रकारांशे प्रमात्वनियतिः स्यात्, नवा विशिष्टसत्तावान् गुण इत्यादौ नातिव्याप्तिः स्यात् । नच निरवच्छिन्नप्रकारताकभ्रमे नातिव्याप्तिर्येन स्वविशेष्यवृत्तितावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारताकत्वविवक्षा क्षोदक्षमा स्यात्। नच प्रकारान्तरं न पुरा निरस्तं येन तदेवात्रोपादेयं स्यादिति भावः ।**

पुरोवर्तित्वादिव्यावृत्तविशेषानुगमपरं कुसुमाञ्जलिस्थग्रन्थमर्थतः पठति विशेषशब्देनेति।

राजहंसः

सम्यक्त्वखण्डनशारदायां राजहंसः

नवैवं प्रकारांश इति । तादात्म्येन विशेष्यसम्बन्धिनो विशेष्यस्यापि प्रथमयत्पदेन ग्रहणार्हत्वादिति भावः । **क्षोदक्षमा स्यादिति ।** अनवच्छिन्नप्रकारताकप्रमित्यव्याप्तिवारणाय वृत्तित्वानवच्छेदकानवच्छिन्नप्रकारताकत्वपर्यन्तमवश्यं धावनीयत्वादनवच्छिन्नप्रकार-

भारती

समाधान — यदि विशेष का सामान्यतः लक्षण में उपादान (निवेश) करें तो इदं रजतम् इस भ्रमज्ञान में भी पुरोवर्तित्व रूप विशेष के इदं पदार्थ में विद्यमान होने से विशेषसहितपदार्थ विषयकत्व इदं रजतम् ज्ञान में रह जायेगा, ऐसी स्थिति में उक्त अतिव्याप्ति वारण न हो सकेगा। (यहाँ यह ध्यातव्य है कि ''भ्रमसंशयनिवर्तक ज्ञान का विषय ही विशेष होता है'' इसका आगे खण्डन होने से ''भ्रमसंशयनिवर्तक ज्ञानविषय ही विशेष शब्द से ग्राह्य है'' यह कथन अप्रामाणिक है । अतः पुरोवर्तित्व भी विशेष शब्द से ग्राह्य है ।) और यदि विशेष का विशेषरूप से अर्थात् व्यावृत्ताकार शुक्तित्वादिरूप से निवेश करें तो विशेषों के अनन्त होने से तत्तद्रूप से विशेषों निवेश करने पर अनुगम नहीं होगा, और परस्पर अव्याप्ति हो जायेगी।

किञ्च अन्त्यविशेष के स्वरूप से ही विशेष होने पर भी अभेद होने से विशेषसहितत्व के न होने से अन्त्यविशेषविषयक प्रमा में भी उक्त प्रमालक्षण की अव्याप्ति भी रहेगी, उसका परिहार नहीं हो सकता ।

श्रीउदयनाचार्य ने कुसुमाञ्जलि ग्रन्थ में जो यह कहा है कि - जिसके न जानने से भ्रम

शारदा

भ्रमसंशयान्यतरस्यैव निवेशः, विपरीतज्ञानत्वेनोभयोर्वा । तथा च तद्विशेष्यकभ्रमप्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वं तद्विशेषत्वम्, तेन पुरोवर्तित्वादेःक्वचिद्भ्रमप्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वेऽपि न क्षतिः । स्मृतिरूपे विशेषदर्शन सत्यपि पीतः शङ्ख इति भ्रमोदयेन शङ्खगतो विशेषो न सङ्गृह्यते इति तु न वाच्यम्; प्रत्यक्षभ्रमे प्रत्यक्षविशेषदर्शनस्यैव प्रतिबन्धकत्वेन तत्र तस्यैव निवेशनीयत्वात्, अननुगमस्य तार्किकैरगत्यास्वहस्तितत्वात् । नचैवं समूहालम्बनं पुरोर्तिनी शुक्तिरित्यादिज्ञानञ्चादायातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयताश्रयत्वस्यैव विवक्षणीयत्वात्, प्रतिबन्धकता च तद्विशेष्यकभ्रमत्वव्यापकप्रतिबध्यतानिरूपिता विवक्षणीया, नचावच्छेदकत्वस्यानतिरिक्तवृत्तित्वरूपत्वेऽसम्भवः; इच्छाप्रयोज्यत्वाभावेन विषयत्वावच्छिन्नत्वाभावेनाप्रामाण्यज्ञानाव्याप्यवृत्तित्वज्ञानानास्कन्दितज्ञानीयत्वेन च विशिष्टाया एव विषयतायाः प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वस्य वक्तव्यत्वात्। संशयीयैककोटिविषयताऽपरकोटिविषयतावच्छिन्नेति द्वितीयविशेषणेन तद्वारणम् । अधिकमन्यत्रप्रसिद्धदिशैव द्रष्टव्यम् । वस्तुतस्तु शुक्तित्वव्याप्यत्वेन रजतत्वाद्यभावव्याप्यत्वेन वा पुरोवर्तित्वेऽपि शुक्तिविशेषताऽस्त्येव, तथात्वेनागृह्यमाणे तु नीलपृष्ठत्वादावपि सा नास्त्येवेति तत्तद्ग्रहकालीनविषयताया एवानतिरिक्तवृत्तित्वम्, एवञ्च पुरुषविशेषनियन्त्रित्वमपि, परन्तु तथाग्रहस्य विशेषणत्वे तदभावकाले विशेषत्वाभावेन प्रमात्वाव्याप्तिः,उपलक्षणत्वे तु तथाग्रहाभावकालिकविशेषविषयतायाः प्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तितया नोक्तलक्षणसम्भवः, तस्मात्स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतां विवक्षित्वा यद्रूपावच्छिन्नविषयतात्वव्यापकं यद्विशेष्यक-

राजहंसः

ताकभ्रमेऽतिव्याप्तिरिति भावः । **भ्रमत्वव्यापकप्रतिबध्यतेति** सामान्यतः शुक्तिविशेष्यकभ्रमत्वं नाम शुक्तिविशेष्यकशुक्त्यवृत्तिप्रकारकज्ञानत्वम् , एवं च शुक्तिविशेष्यकपटखण्डादिभ्रमप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयताश्रयत्वस्य रजतत्वादावपि सत्त्वेन तस्यापि शुक्तिविशेषत्वप्रसङ्ग इति भ्रमत्वव्यापकत्वं प्रतिबध्यतायां वक्तव्यम् , तथा सति शुक्तिविशेष्यकरजतादिभ्रमं प्रति रजतत्वप्रकारकग्रहस्याप्रतिबन्धकत्वाददोष इति । **असम्भव इति** । आहार्यसंशयाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दिताव्याप्यवृत्तित्वज्ञानास्कन्दितज्ञानीयविषयतानां प्रबन्धकतातिरिक्तवृत्तित्वादिति भावः। क्रमेण ता व्यावर्तयन्नाह **इच्छाप्रयोज्यत्वाभावेनेत्यादि । यद्रूपावच्छिन्नविषयतात्वव्यापकमिति।** यद्यपि पूर्वकल्पे प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तिविषयितानिरूपकतावच्छेदकधर्मस्य रजतत्वाद्यभावव्याप्यत्वस्य सम्भवेन तद्वत्त्वमादाय शुक्तित्वादौ विशेषत्वं सम्भाव्यते तथापि तेनैव रूपेणैवं शुक्तित्वादेर्विशेषता स्यान्त्र तु स्वरूपेण शुक्तित्वत्वेन वा, अत्र कल्पे तु यद्रूपपदेव शुक्तित्वं चोभयमपि शक्यमुपादातुम् , तत्र शुक्तित्वत्वावच्छिन्नस्य समवायेन शुक्तित्वावच्छिन्नस्य तु तादात्म्येन शुक्तिविशेषत्वम् , यदा कदाचिच्छुक्तित्वे रजतत्वाद्यीाावव्याप्यत्वं गृह्यते तदा व्याप्यतावच्छेदकतया शुक्तित्वत्वस्य भानमपेक्ष्यत एव, शुक्तौ तादात्म्येन रजतत्वाद्यभावव्याप्यत्वस्य रजतत्वादिमदवृत्तित्वरूपस्य रजतादिभिन्नत्वपर्यवसन्नस्य ग्रहणे पुनः स्वरूपेणैव शुक्तित्वभानेन

भ्रमसंशयावकाशो यद्दर्शने च बाधाबाधव्यवस्था, तदनभ्युपगमे तत्त्वातत्त्वविभागो न स्यात्, भवितव्यं च तेन अन्यथा व्याघातादिति;

शारदा

भ्रमप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं तद्रूपावच्छिन्नस्य तद्विशेषत्वमित्येव वक्तव्यम्, समानाकारकज्ञानीयविषयतानामैक्याच्चाप्रतिबन्धकज्ञानीविषयताया अपि तादृशावच्छेदकत्वमिति दिक्। बाधाबाधाव्यस्था = विपरीतज्ञानेऽयथार्थत्वस्याविपरीतज्ञाने च यथार्थत्वस्य प्रमितिः, विशेषदर्शनं हि तद्व्याप्यस्य तदभावव्याप्यस्य वा दर्शनमिति तत्प्रकारकग्रहे तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वग्रहेण तद्वद्विशेष्यकत्वस्यापि प्रतीत्या यथार्थत्वग्रहस्य फलतः पर्यवसानम्, तदभावव्याप्यवद्विशेष्यकत्वग्रहेण तु तदभाववद्विशेष्यकत्वप्रतीत्याऽयथार्थत्वग्रहस्येति भावः। तथाच भ्रमत्वप्रमात्वान्यतरप्रमित्यौपयिकत्वम्, शुक्तिविशेष्यकतत्प्रकारकग्रहविशेष्यकतद्वद्विशेष्यकत्वप्रकारकप्रमितिजनकतावच्छेदकीभूतनिरूपकत्वनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविशेष्यतानिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवृत्तित्वनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताधिकरणनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रकारताश्रयत्व

राजहंसः

निर्वाहः। परन्तु स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकताकल्पे विशेषताव्यवहारार्थं तादृशव्याप्यत्वज्ञानं नोपासनीयमित्यन्यत्। ननु तथापि पटखण्डत्वकाचत्वादेरपि शुक्तिविशेषत्वं प्रसज्यत एव, रजतत्वाद्यभावव्याप्यत्वेन तस्य ग्रहणे शुक्तौ रजतत्वादिभ्रमस्य प्रतिबन्धात्तदीयविषयताया अपि स्वरूपसम्बन्धरूपप्रतिबन्धकतावच्छेदकताश्रयत्वादिति चेन्न, तद्रूपावच्छिन्नस्य तन्निष्ठस्य सतस्तद्विशेषत्वे तात्पर्यात्। एतदेव चाग्रे वाग्भङ्ग्यन्तरेण 'अत्र यद्यपि' इत्यादिनाऽऽशङ्क्य टीकायां निराकृतम्, प्रमात्वविवेचनमन्तरेण तन्निष्ठत्वस्य दुर्विवेचत्वात्। **तत्प्रकारकग्रहेति।** तदा शुक्तिगतो धर्मः परामर्शनीयः। शुक्तिविशेष्यकतत्प्रकारकग्रहस्तद्वद्विशेष्यक इत्याकारकप्रमात्वग्रहनिरूपितजनकत्वं शुक्तिविशेष्यकतत्प्रकारकग्रहस्तद्व्याप्यवन्निष्ठविशेष्यतानिरूपक इति ग्रहगतमित्यवगत्य परिष्कारो योजनीयः।

भारती

संशय होता है और जिसके ज्ञान से बाधअबाध की व्यवस्था अर्थात् विपरीतज्ञान में अयथार्थत्व का निश्चय एवं अविपरीत ज्ञान में यथार्थत्व का निश्चय होता है वे ही विशेष शब्द से कहे जाते हैं। इस प्रकार के विशेष पदार्थ के न मानने पर ज्ञानों में प्रमिति अप्रमिति कोटि का निश्चय अथवा ज्ञानों के प्रमात्व अप्रमात्व का विभाग नहीं होगा। और उक्त विभाग का होना तो आवश्यक है अन्यथा (ज्ञानों के प्रमात्व अप्रमात्व विभाग न होने पर) व्याघात हो जायेगा (अर्थात् ज्ञान के प्रमात्व अप्रमात्व का निश्चय न होने पर - वस्तु का निषेध करने पर प्रतियोगि सिद्धि एवं असिद्धि दोनों ही अनुपपन्न हो जायेगी। एवं ज्ञानमात्र के प्रमा होने पर शुक्ति में रजतज्ञान के द्वारा विफल प्रवृत्ति अनुपपन्न हो जायेगी। यदि ज्ञानमात्र को अप्रमा मानें तो रजत में रजत ज्ञान से सफल प्रवृत्ति अनुपपन्न हो जायेगी। एवं प्रतिवादि को प्रमा कराने हेतु आपका वाक्यप्रयोग भी अनुपपन्न हो जायेगा इत्यादि अनेक व्याघात प्राप्त हो जायेंगे।)

तदयुक्तम् ; न तावदेवंविधो विशेषोऽभिधातुं शक्यो यदवगमस्य न भ्रान्तित्वादिसम्भवः, स्वप्नदृशः सर्वविशेषोपलम्भात् । न च

शारदा

शुक्तिविशेषत्वमिति यावत् । एवं तद्वद्विशेष्यकत्वस्थाने तदभाववद्विशेष्यकत्वं निवेश्यापीति। तदनभ्युपगमे = विशेषानभ्युपगमे । तत्त्वातत्त्वविभागा = प्रमिताप्रमितकोटिविभागः, ज्ञानानां प्रमात्वाप्रमात्वविभागो वा । तेन = उक्तविभागेन । व्याघातादिति । **निषेधे क्रियमाणे प्रतियोगिनः सिद्ध्यसिद्धिभ्यामनुपपत्तेः, एवं ज्ञानमात्रस्य प्रमात्वे शुक्तौ रजतत्वज्ञानादेर्विसंवादिप्रवृत्तिजनकत्वानुपपत्तेः, अप्रमात्वे तु रजते रजतत्वज्ञानस्य संवादिप्रवृत्तिजनकत्वानुपपत्तेः प्रतिवादिनि प्रमित्याधानाय तव वाक्यप्रयोगानुपपत्तेश्चेत्यर्थः। स्वप्नेऽपि शुक्तित्वादिव्याप्यधर्मदर्शनं प्रतिबध्नात्येव शुक्तिविशेष्यकरजतत्वादिभ्रमादिकम्, तत्र तद्व्याप्यत्वेन प्रतीयमानस्य तद्व्यभिचारित्वेनाप्रतीतेः, अन्यथा क्वापि बाध्यबाधकभावो न स्यात् । यदि हि विशेषोपलम्भेऽपि विपर्ययो भवेत् तदा बाधकासद्भावेन विपर्ययत्वमपि तस्य कुतः बाधकत्वेनाभिमतस्यापि वा कुतो न तथात्वम्, तस्माद्विशेषोपलम्भाभावस्य भ्रमादिकारणत्वे तत्प्रतियोगिनो भ्रमादिप्रतिबन्धकत्वेनोक्तविशेषलक्षणसम्भव इति पराभिप्रायमभिप्रेत्य परिहरति** तदयुक्तमिति । यदवगमस्येति । **तथाच स्वप्ने तद्व्याप्यत्वेन प्रतीयमानस्यापि तद्व्यभिचारित्वेनेच्छानधीनापि प्रतीतिरिति सर्वेषामपि ज्ञानीयप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावानां स्वप्ने व्यभिचारः, एवं ज्ञानीयकार्यकारणभावानामपि, इच्छां विनापि शुक्तित्वस्य स्वाप्नभ्रमे रजतत्वप्रकारताकविशेष्यतावच्छेदकत्वाच्च तद्दर्शनस्य भ्रमादिप्रति-बन्धकत्वं दूरोत्सारितम् ।** अत्र **यद्यपि विशेषनिश्चयत्वेनैव जाग्रति प्रतिबन्धकता क्लृप्ता नतु विशेषप्रमात्वेनापि, सा च व्यभिचरिता, तथापि तद्विशेष्यकभ्रमादिप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव तद्विशेषत्वे शुक्ति-विशेष्यकरजतत्वप्रकारकभ्रमप्रतिबन्धककाचत्वप्रकारकभ्रमविषयस्य काचत्वस्यापि शुक्तिविशेषत्वं स्यात्, तस्मात्तद्विशेष्यकभ्रमादिप्रतिबन्धकप्रमाविषयस्यैव तद्विशेषत्वं वाच्यम्, स्वाप्नं विशेषदर्शनञ्च न प्रमेत्यदोष इति** न वाच्यम्, **प्रमात्वस्याद्याप्यविविक्तत्वात्, एतेन निरुक्तं भ्रमत्वप्रमात्वान्यतरप्रमित्यौपयिकत्वमपि निरस्तम्, दोषान्तरं च वक्ष्यति । यदि तु शुक्तित्वादिकमेव शुक्तेर्विशेष इत्येव वक्तव्यम्, तेनानुगमकरूपाभावेऽपि न क्षतिरित्युच्यते तदाऽपि शुक्तौ रजतमित्यादिविशेषविषयकस्वाप्नभ्रमेष्वतिव्याप्तिः प्रमालक्षणस्येत्यपि**

राजहंसः

साच व्यभिचरितेति । सा = विशेषनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता ।

भारती

किन्तु उदयनाचार्य का यह कथन भी सर्वथा युक्ति विरुद्ध है । क्योंकि इस प्रकार के विशेष का कथन आप नहीं कर सकते, जिसका ज्ञान भ्रम न कहा जाय, स्वप्नादितत्तद्भ्रम वाले पुरुष को स्वप्नात्मक भ्रम में जाग्रत् अवस्था के तत्तद्भ्रम प्रतिबन्धकतावच्छेदक विषयताश्रय सभी विशेषों का भान होता है ।

व्याघातदण्डभयमात्रादसावुपपादयितुमशक्योऽप्यभ्युपगन्तव्य इति युक्तम् ; तदुपदर्शनाशक्यत्वेन व्याघातपरिहार व कश्चिदन्यो निर्वक्तुमशक्योऽप्यस्तीत्येव तदा किन्न व्यवस्थाप्यते, नहि परिदृश्यमानपदार्थगोचरं तदस्ति किञ्चिदनुभूयमानं यत्स्वप्ने वा वाक्याभासे वा प्रतिपत्तुमशक्यमिति प्रतिपत्त्यारूढतया येयमप्रतीयमानकल्पना ततो वरमनुपलभ्यमानस्य व्याघात-परिहारस्यैव कल्पना भद्रा । बहुशश्च व्याघातोद्भावनवि-

शारदा

यदवगमस्येत्यादिनोक्तमेवेति **द्रष्टव्यम् । स्वप्नदृशः = स्वाप्नतत्तद्भ्रमवतः**। सर्वविशेषेति। **जाग्रति तत्तद्भ्रमप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयताश्रयेत्यादिः । उक्तानुपपत्त्यात्मकव्याघाते दण्डत्वं तु विशेषात्मके व्यवस्थापनीयेऽर्थे विप्रतिपत्तिनिराकृतिसाधनत्वम् । असौ = विशेषः तदुपदर्शनाशक्यत्वेन = विशेषस्य निर्वक्तुमशक्यत्वेन । कश्चित् = अनिर्वचनीयताख्यः । अनिर्वचनीयताया अप्यनिर्वचनीयत्वादित्याशयेनाह ।** निर्वक्तुमशक्य इति । **नन्वनिर्वचनीयानिर्वचनीयताया व्याघातपरिहारत्वं वा कल्प्यताम्, अनिर्वचनीयविशेषस्य व्याघातपरिहारसाधनत्वं वेत्यत्र किं विनिगमकमितिचेल्लाघवमेव, त्वया व्याघातपरिहार-तत्साधनयोर्द्वयोः कल्पनीयत्वात्, मया च व्याघातपरिहारस्यैव, यदि हि निरुक्तलक्षणो-विशेषोऽनुभूयेत तदा स्यादपि गौरवमकिञ्चित्करम्, नत्वेवम्, स्वाप्नभ्रमे वाक्याभासा-धीनभ्रमे च व्यभिचारेण विशेषदर्शनाभावस्य भ्रमाहेतुत्वादुक्तलक्षणस्यासम्भवादित्युक्तत्वा-दित्याह** नहीति । **परिदृश्यमानपदार्थगोचरं = प्रामाणिकपदार्थान्तर्गतं, परिदृश्यमानपदार्थेषु गोचरोऽवकाशो घटकतया यस्येति वा परिदृश्यमानाः पदार्था गोचरा घटितताया सन्निहिता यस्येति वा व्युत्पत्त्या तादृशार्थलाभात् । अन्यथाख्यातिमते सत्त्वस्य ज्ञानविषयताव्यापकत्वा-त्प्रामाणिकपदार्थानामेव भ्रमे भानादिति भावः ।** वाक्याभासे इति । **''अत्यन्तासत्यपी''तिन्यायेन**

भारती

किञ्च उपपादन के अयोग्य (जिसका उपपादन अर्थात् युक्तियों से साधन न हो सके ऐसे) विशेष को उक्तानुपपत्त्यादिरूपव्याघातात्मक दण्ड के भयमात्र से स्वीकार करना भी उचित नहीं है । जब विशेष का निर्वचन करना शक्य नहीं है तो ऐसी स्थिति में उक्त व्याघात का ही अन्य कोई अनिर्वचनीय परिहार ही क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि परिदृश्यमान अर्थात् प्रामाणिक पदार्थों के अन्तर्गत अनुभूयमान (अनुभव सिद्ध) कोई ऐसा विशेष पदार्थ नहीं है जो कि स्वप्न में या वाक्याभास में ज्ञातुं शक्य (भासित) न हो । इसलिए भ्रमादि के अप्रतिबन्धक प्रतिप्रत्ति (स्वाप्निकज्ञान या वाक्याभासजन्य ज्ञान) का विषय होने से पूर्वोक्त (उदयनाचार्योक्त) लक्षण के लक्ष्य रूप से अप्रतीयमान अर्थात् अनिर्वचनीय विशेष की (जो आप) कल्पना करते हैं उसकी अपेक्षा अनिर्वचनीय व्याघात के परिहार की कल्पना करना ही श्रेयस्कर (श्रेष्ठ) है। (तात्पर्य यह है कि - यदि पूर्वपक्षी पूछें कि अनिर्वचनीय अनिर्वचनीयता में व्याघात परिहारत्व की कल्पना की जाय, या अनिर्वचनीय विशेष में व्याघात परिहार के साधनता की कल्पना की जाय, इन दोनों में क्या विनिगमक है, तो इसके उत्तर में खाण्डनिक

भीषिकामिमामुन्मूलयिष्यामः । बाधाबाधव्यवस्थाहेतुरस्ति विशेष इति पक्षं यस्तु जडतरो न जहाति स 'आप्तानाप्तवाक्याभ्यां नदीतीरे फलानि सन्तीत्येवंरूपाभ्यां प्रतिपाद्यमानेऽर्थे स्थितं कं विशेषमेकत्र पश्यसि यमपरत्र न पश्यसी'' ति पृष्ट्वा

शारदा

विशेषदर्शनकाले उत्पन्नोऽपि शाब्दबोध आहार्य एव प्रतिबध्यभ्रमे चानाहार्यत्वमवश्य-निवेश्यमन्यथा भ्रमत्वव्यापकत्वस्य प्रतिबध्यतायामनुपपत्तेः, तदभाववति तत्प्रकारकत्व-स्याहार्येऽपि सद्भावादिति तु न वक्तव्यम्; अनाहार्यत्वं हि स्वविषयत्वस्वाव्यवहितोत्तरत्वा-भ्यामिच्छाविशिष्टज्ञानान्यत्वं तच्चोक्तशाब्दबोधेऽक्षतमेव, विशेषदर्शने सत्यपि वाक्याभास-श्रवणसमनन्तरमिच्छां विनैव शाब्दस्यानुभविकत्वात् विशेषदर्शनस्य प्रतिबन्धकत्वे हीच्छाया उत्तेजकता मन्येत शाब्देतस्याप्रतिबन्धकताया अनुभवेन निर्णये तु क्व तस्या उत्तेजकतेति

राजहंसः

इच्छाविशिष्टज्ञानान्यत्वमिति । यद्यपि परैरुक्तसम्बन्धद्वयेनेच्छाविशिष्टप्रत्यक्षस्यै-वाहार्यत्वमुपेयते, तथापि प्रकृते तदन्यत्वस्यानाहार्यतात्मकताया उक्तौ शाब्दे प्रत्यक्षत्वविरहेणैवाना-हार्यत्वसौलभ्यं मा भूदित्याशयेन ज्ञानत्वेन निवेशः, आवश्यकश्चैवं निवेशः शाब्दबोधस्या-हार्यत्ववादिनये । **भद्रेत्येव वरमिति** । मनाक्प्रिये वरशब्दस्य क्लीबत्वनियमेऽपि भद्राशब्देन

भारती

का कहना है कि - लाघव ही इसका विनिगमक (नियामक) है क्योंकि आप तार्किक को व्याघात परिहार एवं उसके साधन दो की कल्पना करनी पड़ती है और मुझे तो केवल व्याघात के परिहार की ही कल्पना करनी पड़ती है । किञ्च यदि आप उदयन के द्वारा उक्त लक्षण वाला विशेष अनुभवसिद्ध होता (अनुभव में आता) तो उसकी कल्पना में उपस्थित गौरव भी सोढव्य हो जाता, किन्तु तादृश विशेष अनुभवसिद्ध नहीं है, क्योंकि स्वाप्नभ्रम बिषय में या वाक्याभासजन्य भ्रम विषय में भ्रमसंशयादिप्रतिबन्धनकत्वादि रूप का व्यभिचार (अभाव) होने से विशेषदर्शाभाव को भ्रम का हेतु नहीं मान सकते । अतः आपके द्वारा उक्त लक्षण असम्भव दोष ग्रस्त है ।)

अपिच विशेष के न मानने में जिस व्याघात के उद्भावन की विभीषिका (भय) आप तार्किक दिखा रहे हैं उसका उन्मूलन (निरास/खण्डन) हम अनेक प्रकार से प्रथम परिच्छेद के अनुमानखण्ड में एवं द्वितीय चतुर्थ परिच्छेद में करेंगे । अतः उसका भय दिखाना व्यर्थ है ।

उदयनोक्तलक्षण में ''यद्दर्शने भ्रमसंशयावकाश'' इस अंश का खण्डन कर अब - ''यद्दर्शने बाधाबाधव्यवस्था'' इस अंश को दूषित करते हैं - जो जड़तर व्यक्ति ''बाध अबाध की व्यवस्था का हेतु विशेष है'' इस पक्ष को नहीं छोड़ता है उसे यह पूछ कर समझाना चाहिए कि - ''जहाँ आप्त एवं अनाप्त दोनों ही ''नदी के तीर पर पाँच फल है'' ऐसा कहते हैं वहाँ उन दोनों वाक्यों से प्रतिपादित अर्थ में कौन विशेष है जिसे आप एकत्र अर्थात् आप्तोक्त अर्थ में देखते हैं एवं अन्यत्र अर्थात् अनाप्तोक्त अर्थ में नहीं देखते हैं'' । (यहाँ उभयवाक्य जन्य

शारदा

भावः । प्रतिपत्त्यारूढतया = भ्रमाद्यप्रतिबन्धकप्रतिपत्तिविषयतया निरुक्तलक्षणवत्त्वेनाप्रतीयमानस्य = अनिर्वाच्यस्य विशेषस्य येयं कल्पना ततोऽनुपलभ्यमानस्य = अनिर्वचनीयस्य व्याघातपरिहारस्यैव कल्पना लाघवसहकृतत्वेन भद्रेत्येव वरम्, एवेन विशेषव्यवच्छेदः। यदि तु **'यददर्शने'त्यादिना तद्विशेष्यकभ्रमाप्रकारस्यैव तद्विशेषत्वं सूचितम्, 'यदवगमस्ये'त्यादिना च शुक्तिविशेष्यकभ्रमप्रकारतायाः शुक्ती रजतमिति स्वाप्नभ्रममादाय शुक्तित्वेऽपि सत्त्वेन तस्य शुक्तिविशेषत्वं न स्यादित्युक्तम्, नचेत्यादिग्रन्थश्च पूर्ववत्, वाक्याभासश्च 'शुक्ती रजत'मित्यादिर्गृह्यते,** तदा **प्रतिपत्त्यारूढतया = सर्वस्यापि तत्तद्विशेषस्य तत्तद्विशेष्यकभ्रमप्रकारत्वेऽपि अप्रतीयमानकल्पना = तादृशभ्रमाप्रकारत्वं परिकल्प्य विशेषस्योक्तलक्षणस्य कल्पना, तत्तद्विशेष्यकभ्रमाप्रकारीभूतानां विशेषाणामप्रतीयमानानां = अप्रामाणिकानामपि प्रतिपत्त्यारूढतया = प्रामाणिकत्वेन कल्पनेति वा** व्याख्येयम्, **प्रतीयमानता तु तादृशभ्रमप्रकारतावतामेव । अत्र च धर्मिकल्पना तत्र चानुभवविरुद्धतादृशभ्रमाप्रकारत्वादेश्च कल्पनेत्यधिकं गौरवम् । उपलक्षणञ्चेदम्, जाग्रतोऽपि शुक्तिविशेष्यकसमूहालम्बनभ्रमविषयताया शुक्तित्वे सम्भवेनाव्याप्तेः, नच–शुक्तिविशेष्यकभ्रमत्वावच्छेदकविषयित्वानिरूपकत्वमेव शुक्तिविशेषत्वमिति नोक्तदोषः शुक्त्यविशेषाणां तु स्वप्नदशामादाय तादृशविषयतानिरूपकत्वमेवेत्यनतिप्रसक्तिरिति–वाच्यम्; एवं हि पुरोवर्तित्वस्यापि तथात्वेन तद्विषयकभ्रमेऽतिप्रसक्तिः प्रसक्तैव प्रकृतप्रमात्वस्य। तत्तदीयविशेषवैशिष्ट्यविषयकानुभवस्य तदीयविशेषांशे प्रमात्वमित्यभिधानं तु नाननुगमान्योन्याश्रयादिकमतिक्रामति, निष्फलश्चैवं विशेषत्वनिवेश इति कृतं विस्तरेण।** उन्मूलयिष्याम इति । **अनुमानखण्डने प्रथमपरिच्छेदे, द्वितीयचतुर्थपरिच्छेदयोश्चेत्यर्थः । 'यदशनिन भ्रमसंशयावकाश' इत्यंशं दूषयित्वा 'यद्दर्शन बाधाबाधव्यवस्थे'त्यंशं दूषयितुमाह**

राजहंसः

गतार्थत्वपरिहाराय वाक्यार्थपरामर्शार्थिमितिशब्दमध्याहृत्य व्याख्यातम् । **तादृशभ्रमाप्रकारत्वादेश्चेति।** प्रामाणिकत्वमादिशब्दार्थः । **पुरोवर्तित्वस्यापि तथात्वेनेति** । इदं रजतमिति ज्ञानस्य रजतत्वविषयकत्वावच्छेदेन हि भ्रमत्वं न तु पुरोवर्तित्वविषयकत्वावच्छेदेनेति भावः । **नाननुगमान्योन्याश्रयादिकमिति** । प्रमात्वनिरूपणं विना कस्यचित्क्वचिद्वैशिष्ट्या प्रसिद्धेरन्योन्याश्रयः ।

भारती

दोनों शब्दबोधों के समानाकार होने से एक विशेष्यगत विशेषअविषयक है और दूसरा तद्विषयक है ऐसा नहीं कह सकते, अतः वहाँ न भ्रमत्व हो सकता है और न प्रमात्व ही। प्रमात्वव्यवस्था के बिना प्रमाविषयत्व ही विशेष है यह कह नहीं सकते । और न प्रकृतशाब्दबोध का विषय ही वह विशेष है ।) (यहाँ भ्रम का विषयीभूत विशेष बाधाबाध का व्यवस्थापक हो ही नहीं सकता है, अतः उसका त्याग ही उचित है, इस बात को न समझने के कारण प्रतिवादी को जड़तर कहा है । दूषण का प्रदर्शन न करने पर दूषण को न जानने वाला जड़ है एवं दूषण दिशा के प्रदर्शित होने पर भी पक्षान्तर में दूषण न देखने वाला जड़तर है ।)

प्रतिबोधनीयः, तथाप्यजातबोधस्तु जडतमः कश्चिद्यदि स्यात् , स एवं प्रबोध्यः, ये ते विशेषान्तर-

शारदा

बाधेति । **उक्तरीत्या तद्विशेष्यकभ्रमप्रकारीभूतत्वे तद्विशेषस्य बाधाबाधव्यवस्थापकत्वस्याप्यसम्भवात्तत्त्याग एवोचित इत्याशयेन** जडतर **इति । दूषणदिक्प्रदर्शनेऽपि पक्षान्तरे दूषणानभ्यूहितेत्यर्थः । तदप्रदर्शन दूषणानभ्यूहिता तु जड इति भावः । स पृष्ट्वा प्रतिबोधनीय इत्यन्वयः ।** कं विशेषमिति । **इदं रजतमितिशुक्तिविशेष्यकस्य शुक्तिविशेषाविषयकत्वेन भ्रमत्ववत्, इयं शुक्तिरितिशुक्तिविशेष्यकस्य च तद्विषयकत्वेन प्रमात्ववत् प्रकृतशाब्दयोः समानाकारतयैकस्य विशेष्यगतविशेषाविषयकत्वमपरस्य च तद्विषयकत्वमित्यस्य वक्तुमशक्यत्वेन भ्रमत्वं प्रमात्वं वा न व्यवतिष्ठेत, नहि प्रमात्वव्यवस्थां विना प्रमाविषयत्वं विशेषो वदितुं शक्यः, नवा स प्रकृतशाब्दव्यक्तिविषयः अतएव न स्वनिष्ठप्रकारताकविशेष्यतावद्वृत्तित्वं स्वनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रवरतावत्सम्बन्धित्वं वा स्वस्य विशेषः। ननु तादृशशाब्दयोरेकस्मिन्नदीतीरे एककाले एव फलावगाहित्वे द्वयोरेव भ्रमत्वं प्रमात्वं वा स्यात्, तस्माद्भिन्नकालिकोच्चारणविषयवाक्यजत्वमेव तयोर्वाच्यम्, तथासति 'सन्ती'ति पदमहिम्ना तयोर्भिन्नकालविषयत्वेन विषयगतो विशेषः सुवच इति चेन्न; उक्तवाक्ययोः समानकालिकोच्चारणविषयत्वेऽपि तज्जन्यशाब्दयोर्वस्तुतोऽन्यान्यतीरविषयकत्वेनैकतरस्य भ्रमत्वमपरस्य च प्रमात्वमित्युपपत्तेः । नदीतीरत्वेनैव भानेऽप्याप्तानाप्तवाक्यजत्वान्यथानुपपत्त्या प्रमात्वद्युपपत्तये शाब्दयोरन्यान्यतीरविषयकत्वस्य कल्पनसम्भवात्, भ्रमात्मकपरामर्शजन्यत्वान्यथानुपपत्त्या मीमांसकमते वह्निमत्पर्वतविषयिण्या अप्यनुमितेः पर्वतावृत्तिवह्निविषयकत्ववत् । किञ्च कालभेदेऽपि कालविशेषावच्छिन्ननदीतीरसामान्यवृत्तित्वं न फलस्य तदभावस्य वा विशेष इति नदीतीरभेदः कल्पनीय एवेति । उपलक्षणञ्चेदमिदं रजतमित्याद्यकाकारयोः प्रत्यक्षाद्यात्मकभ्रमप्रमयोरपि । वस्तुतस्तु शुक्तित्वादेरपि रजतत्वाद्यभावव्याप्यत्वेनागृह्यमाणतादशायां प्रमात्वादिव्यवस्थापकत्वाभावेन प्रमात्वाव्याप्तिपरिहाराय व्यवस्थायोग्यताया एव विवक्षणीयत्वेनानुगतावच्छेदकं विना च तस्यास्तत्तत्स्वरूपतायामेव पर्यवसानेनानुगमवार्ताया अपि विरहेण विशेषत्वेन विशेषावगाहितायाः प्रमात्वानुप्रवेश उपहास्यतापदवीमेवाधिरोहतीति । ननु वस्तुगत्या तदीयविशेषस्य तत्र वैशिष्ट्यावगाहित्वविवक्षायां नोक्तदोष इत्यत आह** तथापीति । **प्रमावनिरुक्तिंविना वस्तुगत्यादेर्निर्णयासम्भवेन स्फुटस्यापि दोषस्येक्षणाक्षमत्वादाह** जडतम

राजहंसः

अत एव न स्वनिष्ठप्रकारताकेत्यादि । वृत्तित्वमत्र सम्बन्धित्वमेव तादात्म्यस्थलसाधारण्याय, एवं च फलादिगतविशेषस्य निर्वाच्यत्वे फलादिप्रकारिकां तद्विशेष्यिकां च प्रतीतिमादायेव तोरादिगतविशेषस्य निर्वाच्यत्वे तीरादिप्रकारिकां तद्विशेष्यिकां च प्रतीतिमादायापि क्रमेण

भारती

तथापि (ऐसी स्थिति में भी) जिसको ज्ञान नहीं हो पाता, अर्थात् जिसे समझ में नहीं आता, ऐसा जड़तम यदि कोई व्यक्ति है तो उसे इस प्रकार समझाना चाहिए कि - आप

प्रवाहस्वीकारेऽनन्तविशेषापत्तिभयात्त्वया स्वत एव विशेषरूपा इति स्वीकृतास्तेषां स्वरूपं तावत्परस्परव्यावृत्तमतोऽनुगतैकरूपाभावादव्यापकवं स्यादिति। बाधव्यवस्थाहेतुत्वादेवानुगतिरिति चेन्न; क्वाचित्कबाधव्यवस्थाहेतोर्भ्रमेऽपि प्रकाशात्। तत्र तस्येति चेन्न; व्यावृत्तेः, बाधस्य च तद्विपरीतार्थप्रमात्वेन तदर्थाननुगमात्, प्रमायाश्चाद्याप्यव्यवस्थापनादिति। शङ्कान्तराणि चातः पराणि याथार्थ्यविशेषणदूषणदूषितान्येवोपनिपतन्तीतीह द्विरभिधानभयान्नोक्तानि। किञ्च तर्कज्ञानमाहार्यौ च संशयविपर्ययौ

शारदा

इति। **स्वतएवविशेषरूपाः = स्वेतरलिङ्गकव्यावृत्तिधीविशेष्यीभूतं यद्यत्तदन्ये इत्यर्थः।** क्वाचित्केति। **रजतत्वादेरपि रजतविशेष्यकप्रतीतेरुक्तरीत्या प्रमात्वव्यवस्थापकत्वादित्यर्थः।** तत्र तस्येति। **शुक्तिविशेष्यकतत्प्रकारकग्रहविशेष्यकेत्यादिपुरोदीरितनिरुक्तिरभिप्रेताऽत्र। व्यावृत्तेः = अननुगमात्। अननुगमेन वा समाधीयतामनिर्वचनीयतया वा, तत्र द्वितीय एव पक्षः प्रेक्षावद्भ्यो रोचते, अननुगमस्यानुगतव्यवहारापलापकत्वेनासमाधानत्वादिति भावः। ननु विशेषसाहित्यमर्थे ज्ञानोल्लिखितविशेषसम्बन्धित्वम् ज्ञाने तु स्वविशेष्यसम्बन्धिविशेषप्रकारकत्वमित्याशङ्क्याह** शङ्कान्तराणीति। द्विरभिधानभयादिति। **यद्यपि ''शब्दार्थयोः**

भारती

तार्किक ''एक विशेष का व्यावर्तक अन्य विशेष तथा अन्यविशेष का व्यावर्तक अपर विशेष'' इस प्रकार विशेषान्तर प्रवाह के स्वीकार करने पर अनन्तविशेषों की आपत्ति के भय से जिन विशेष पदार्थों को स्वीकार करते हैं, उन्हें स्वतः एव परस्पर व्यावृत्त स्वरूप वाले (अर्थात् स्वरूप से ही वे विशेष परस्पर व्यावृत्त है उनका व्यावर्तक धर्मान्तररूपविशेष नहीं है इस प्रकार) मानते हैं। अतः उन विशेषों में किसी अनुगत एकरूप (एक धर्म) के न होने से लक्षण में जिस विशेष का निवेश मानेंगे उससे अतिरिक्त विशेषवत्विशेष्यक प्रमा में उक्त लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी, और इस प्रकार सभी लक्षण परस्पर में अव्याप्ति दोष ग्रस्त हो जायेंगे।

यदि कहें कि बाध व्यवस्थाहेतुत्व रूप से उन सभी विशेषों का अनुगम करेंगे, तथा च परस्पर व्याप्ति न होगी तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि क्वाचित्क बाध व्यवस्था हेतु (स्थलविशेष में बाध व्यवस्था हेतु अर्थात् प्रमात्व का व्यवस्थापक) तो भ्रम में भासित होता है। (जैसे रजतत्वादि भी रजतविशेष्यक प्रतीति के प्रमात्व का व्यवस्थापक होता है। और वह रजतत्व ''इदं रजतम्'' इत्याकारक भ्रम में भासित भी होता है।)

यदि कहें कि शुक्तिविशेष्यक रजतत्वप्रकारक ज्ञान का विषयीभूत रजतत्व बाध व्यवस्था हेतु अर्थात् प्रमात्व का व्यवस्थापक नहीं है अतः उसे लेकर भ्रम में अतिव्याप्ति न होगी, लक्षण में तादृश ज्ञान का विषय बाध व्यवस्था हेतु विवक्षित है तो ऐसा मानने से अननुगम हो जायेगा, अतः परस्पर में अव्याप्ति दोषग्रस्त हो जायेगा। (अतः अननुगम के द्वारा समाधान

परिदृश्यमाने एव विशेषे भवन्तीति तैरतिप्रसङ्गः स्यात् । न चाहार्यौ तौ नाभ्युपगनव्याविति युक्तम् ; विप्रलम्भकस्य वाक्यप्रयोगमूलतयाऽऽहार्यभ्रमस्य, ज्ञाततत्त्वस्य च गुरोः शिष्यप्रबोधार्थं विचारं प्रवर्तयत आहार्यसंशयानां भवत एव शास्त्रेऽनुमतत्वात् । परिच्छेदशब्दश्चानुभूतिपर्यायोऽनुभूतिदूषणं नातिक्रामतीत्यलम् । इति सम्यक्त्वखण्डनम् ।

शारदा

पुनर्वचनमन्यत्रानुवादा''दितिंन्यायसूत्रात्पौनरुत्त्यस्य निग्रहस्थानत्वेन कथायामेव तस्माद्धयमुचितम्, 'शङ्कान्तराणी'त्याद्यभिधानं तु ग्रन्थकर्तुरेव, तथापि द्विरभिधाने प्रयोजनाभावो ग्रन्थगौरवश्चेति भावः। तर्कज्ञानमिति । **पर्वतो यदि वह्निमान्न स्याद्धूमवान्न स्यादित्यारोपे वह्न्यभावादिकं यद्यपि पर्वतविशेषः, पर्वतत्वस्य तद्विशेषताया अभिप्रेतत्वे तु तर्कपर्यन्तानुधावनवैफल्यम्, तथापि वह्न्यादेरुपस्थिततयाऽऽरोपविषयत्वसम्भवः, परं प्रत्यापादने तु तदभिलापकशब्दप्रयोगो नेत्यन्यदिति भावः। एवमाहार्यविपर्ययेऽपि ।** संशयेति । यद्यपि **संशयस्य द्विकोटिकारोपत्वेनैककोटेर्वास्तवत्वेऽनाहार्यसंशयेऽप्यतिव्याप्तिः सम्भवति, व्यधिकरणप्रकारकत्वाभावविवक्षायाञ्च नाहार्येऽपि सा, अपि त्वविरुद्धभावाभावद्वयकोटिकसंशयस्य प्रामाणिकत्वे ह्रदो जलवान् वह्न्यभाववान्वेत्यादावेव, तस्याप्रामाणिकत्वेऽपि वृक्षः कपिसंयोगाभाववान्नवेत्यादावेव, तस्य यथार्थत्वेऽपि प्रमात्वेनाव्यवहारात्, संशयान्यत्वनिवेशे च न तत्रापि । न चाहार्यसंशयस्य विशेषदर्शना-**

राजहंसः

कल्पद्वयसमन्वयसम्भवः ।

भवत एव शास्त्रे इत्येवकारस्य व्युत्क्रमेणानुमतत्वादेवेत्यन्वयः ।

इति सम्यक्त्वखण्डनशारदायां राजहंसः ।

भारती

करें या अनिर्वचनीयता के द्वारा समाधान मानें इन दोनों में द्वितीय पक्ष ही श्रेयान् होने से विवेक ज्ञानकुशलों को रुचिकर होगा, क्योंकि अननुगम मानने पर अनुगत व्यवहार का अपलाप हो जायेगा अत: अनिर्वचनीय मानकर ही संतोष कीजिए ।)

किञ्च बाधव्यवस्था हेतु इसके अन्तर्गत बाध का भी निर्वचन अपेक्षित है किन्तु निर्वचन करना सम्भव नहीं है क्योंकि तद्विपरीतार्थप्रमात्वेन (तद्विशेष्यकतत्प्रकारक भ्रमज्ञान के विषयीभूत अर्थ रजतत्वादि से विपरीत अर्थात् रजतत्वाद्यभावविषयक प्रमात्वेन) बाध का निर्वचन करने पर तद्घटक तत् शब्द के (तत्त्व) के अननुगत होने से लक्षण का अनुगम न होगा, फलत: परस्पर अव्याप्ति हो जायेगी । एवं उस निर्वचन के प्रमाघटित होने से और प्रमा का अद्यावधि निश्चय न होने से भी बाध का उक्त निर्वचन निर्दुष्ट नहीं है (तात्पर्य यह है इस प्रकार निर्वचन करने में - प्रमा का निश्चय होने पर बाध निश्चय, बाध का निश्चय होने पर विशेष का निश्चय, और विशेष का निश्चय होने पर प्रमा का निश्चय इस प्रकार चक्रक दोष होगा, अत: उक्त प्रकार से प्रमा का लक्षण करना सम्भव नहीं है ।)

शारदा

प्रतिबध्यत्वेनोक्तविशेषलक्षणासाङ्गत्यप्रदर्शनपरोऽयं ग्रन्थ इति वाच्यम्; पूर्वं प्रदर्शितरीत्या तदसाङ्गत्याभावात् । किञ्चैवमाहार्यविषयीभूतविशेषे विशेषलक्षणाप्रसङ्गस्यैव प्रदर्शनीयत्वेना'तिप्रसङ्गः स्या'दिति कथनासङ्गतेः, विशेषाविषयकत्वे प्रमात्वस्यापि तत्रानतिप्रसक्तेः; तथापि **संशयस्य भावाभावकोटिकत्वनैयत्यमते संशयमात्रस्योपलक्षणमेवेदम्, अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति भावद्वयकोटिकसंशयस्याप्यङ्गीकारे तु वास्तवैककोटिकसंशय-मात्रस्येति भावः । तैः = तेषु । तौ = संशयविपर्ययौ । आहार्यभ्रमस्यानुमतत्वादित्यन्वयः ।** भवत इति । **तदुक्तं न्यायकुसुमाञ्जलावाचार्यैः ''न च जिज्ञासासंशयादय ईश्वरे प्रतिषिद्धा इति युक्तम्, शिष्यप्रबोधनायाहार्यत्वेनाविरोधात्, को धर्मः, कथं लक्षणक इत्यादिभाष्यव''दिति ।** अनुभूतिपर्याय इति । **संशयान्यस्मृत्यन्यज्ञानपरत्वेऽपि स्मृतिसामान्यान्योन्याभावखण्डनावतारसम्भव एवेति भावः ।** इति खण्डनशारदायां सम्यक्त्वखण्डनम् ।

भारती

किञ्च - अर्थ में विशेष का साहित्य-ज्ञान से उल्लिखित अर्थात् विषयीकृत विशेष सम्बन्धित्व रूप है और ज्ञान में तो वह स्वविशेष्य सम्बन्धिविशेष प्रकारकत्वरूप है इत्यादि शङ्कान्तर तो यथार्थ्य विशेषण में उक्त दूषणों के द्वारा ही दूषित हो चुके हैं अतः पुनरुक्ति दोष के भय से यहाँ पुनः उनका कथन नहीं किया । (यहाँ यह अवश्य ध्यातव्य है कि यद्यपि ''शब्दार्थयोः पुनर्वचनमन्यत्रानुवादाद्'' इस न्यायसूत्र के अनुसार पुनरुक्तिदोष के निग्रहस्थान होने से कथा में ही उसके भय का कथन करना उचित होता है न कि ''शङ्कान्तराणि'' इत्यादि ग्रन्थकार के कथन में । तथापि पुनरुक्ति में कोई प्रयोजन भी नहीं है साथ ही ग्रन्थ का गौरव भी है । अतः पुनरुक्ति करना उचित नहीं है । यही तात्पर्य है ।)

किञ्च - पर्वतो यदि वह्निमान् न स्याद् धूमवान् न स्यात् इत्यादि तर्क ज्ञान, एवं आहार्य संशय-आहार्य भ्रम विशेष के ज्ञात होने पर ही होते हैं अतः उक्त तर्क ज्ञान - आहार्य संशय तथा आहार्य संशय तथा आहार्य भ्रम में उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । (यद्यपि यदि पर्वतो वह्निमान्न स्यात् धूमवान् न स्यात्'' इस तर्क में पर्वतत्व रूप विशेष नहीं कह सकते, अन्यथा तर्क पर्यन्त धावन करना व्यर्थ हो जायेगा । तथापि वह्नि ज्ञात होकर ही आरोप का विषय होती है अतः अन्य के प्रति उनपादन करने में तद्वाचक शब्द का प्रयोग नहीं होगा।

यदि कहें कि आहार्य संशय एवं आहार्य भ्रम होता ही नहीं है अतः उनमें अतिव्याप्ति नहीं दी जा सकती है तो आपका कथन अनुचित है क्योंकि वञ्चक के ''नदी तीरे पञ्च फलानि सन्ति'' इत्यादि वाक्य प्रयोगों के मूल (कारण) रूप से आपने अपने शास्त्र में आहार्यभ्रम को स्वीकार किया है । एवं शिष्यों के प्रबोध के लिए विचार प्रवृत्त करने वाले तत्त्वज्ञानी गुरु के आहार्य संशयों को भी आपने अपने शास्त्रों में स्वीकार किया है । अतः आपके द्वारा अनुमत उन दोनों में प्रमालक्षण अतिव्याप्त है ।

किञ्च प्रकृत लक्षण में परिच्छेद शब्द अनुभूति शब्द का पर्याय है, अतः अनुभूतित्व

अथाव्यभिचारित्वखण्डनम् ।

नाप्यव्यभिचार्यनुभवः प्रमेति युक्तम्, अव्यभिचारिपदस्य यदि तत्त्वविषयत्वाद्यर्थत्वं तदा दूषणान्युक्तान्येवावर्तन्ते । अथैवमुच्यते-अव्यभिचारित्वमर्थाविनाभूतत्वं तदा प्रष्टव्यं कोऽस्यार्थः? किं

शारदा

अर्थाविनेति । **अर्थं विना न भवनम्, विनापदार्थोऽभाववान्, द्वितीयार्थः प्रतियोगित्वम्, भवनं वृत्तिता, तथाच स्वविषयप्रतियोगिकाभाववन्निरूपितवृत्तित्वाभावो लभ्यते, अत्र च विषयो यदि प्रकारः, वृत्तिता च विशेष्यतासम्बन्धेन, तदा स्वीयप्रकारताश्रयप्रतियोगिकाभाववन्निष्ठविशेष्यत्वानिरूपकत्वं पर्यवस्यति, तत्र च भूतलं घटवदित्यादिप्रमायामव्याप्तिः, तस्याः स्वीयप्रकारताश्रयघटत्वाभावद्भूतलनिष्ठविशेष्यतानिरूपकत्वात्, तस्मात्स्वनिरूपितप्रकारताश्रयाभाववन्निष्ठा या या विशेष्यता तत्तदनिरूपकत्वं वाच्यम्, अत्र स्वं न ज्ञानमपि तु विशेष्यतेति नोक्तदोषः, प्रकारताश्रयाभावश्च न प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धमात्रावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, घटत्वप्रतियोगिकसमवायेन पटत्ववान् पट इत्यत्रातिव्याप्त्यापत्तेः, अपितु प्रकारतानिरूपितसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिप्रतियोगिभूतावच्छेदकतानिरूपकसंसर्गनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकप्रतियोगिताकः । नचैवमपि विशिष्टसत्तावान् गुण इत्यत्रातिव्याप्तिः, सत्ताऽभावन्निष्ठविशेष्यत्वानिरूपकत्वस्य तत्र सत्त्वादिति वाच्यम्; प्रकारतावच्छेदकधर्मपर्याप्तावच्छेदकताकप्रतियोगिताकाभावस्य विवक्षणीयत्वात् । परन्त्वेवमयं घट इत्यादिनिरवच्छिन्नप्रकारताकभ्रमेष्वतिव्याप्तिः, तदीयविशेष्यतायाः स्वपदेन धर्तुमशक्यत्वात्। अधिकं याथार्थ्यखण्डनोक्तरीत्याऽनुसन्धेयम् एवञ्चैवंविधनिरुक्तेः प्रागेव निरस्तत्वात्**

भारती

के खण्डनार्थ उक्त दूषणों से ही परिच्छेद (परिच्छिति) भी दूषित हो जाता है । (यदि संशयान्यस्मृत्यन्यज्ञानत्वम् इत्यादि अनुभूति (परिच्छेद) पद का अर्थ करें तो स्मृतिसामान्य के अन्योन्याभाव के खण्डनार्थ प्रयुक्त दूषण यहाँ उपस्थिति होंगे । तस्मात् ''सम्यक्परिच्छित्ति'' यह प्रमा का लक्षण निर्दुष्ट नहीं हो सकता । अतः उसे अनिर्वचनीय ही मानना चाहिए ।

अव्यभिचारित्व - खण्डन

''अव्यभिचारी अनुभवः प्रमा'' यह लक्षण भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि अव्यभिचारी पद का यदि तत्त्वविषयत्वादि अर्थ करें तो तत्त्वपदार्थ-खण्डनार्थ उक्त दूषण ही यहाँ उपस्थित हो जायेंगे ।

यदि कहें कि - अर्थाविनाभूतत्व ही अव्यभिचारित्व (का अर्थ) है तो इस प्रकार अर्थ करने पर हम आप से पूछेंगे कि इस अविनाभूतत्व का अभिनय किस प्रकार करेंगे, क्या जिस काल में अर्थ हो उसी काल में ज्ञान होना, अविनाभाव है, या जिस देश में अर्थ हो उसी देश

यदार्थस्तदैव ज्ञानम् ? उत यत्रार्थस्तत्रैव देशे ज्ञानम् ? अथ यादृगर्थस्तादृगेव ज्ञानं यत्तत्प्रमितिरिति ?। नाद्यः, अतीतानागतानुमित्यव्यापनात्। न द्वितीयः, ज्ञानासमान-देशार्थप्रमितीनामव्यापनात्, ज्ञानसमानदेशमर्थमन्यत्रारोपयतोप्यनु-भवस्य प्रमात्वापत्तेः। नापि तृतीयः, ज्ञानार्थभेदवादे सर्वाकारेण तत्साम्यानुपपत्तेः, अभेदवादे भ्रमस्यापि तथाभ्युपगन्तव्यत्वप्रसङ्गेन विशेषणवैयर्थ्यापातात्, तैश्च तैश्च विशेषैः सादृश्यस्य विवक्षितत्वे यथार्थताप्रस्तावोक्तदूषणान्यावर्तन्ते इति । इत्यव्यभिचारित्व खण्डनम् ।

शारदा

'यदार्थस्तदैव ज्ञान'मित्यादिना प्रकारान्तरेणाविनाभावः शङ्कित इत्यवधेयम् । कोऽस्यार्थः = कथमस्याभिनयः, तेन 'यदार्थस्तदैव ज्ञान'मित्यादेर्व्याप्तिस्वरूपत्वाभावेऽपि नासङ्गतिः। तदैवेति। **अत्रैवकारबलाद्व्याप्यता ज्ञाने एव भासते ।** यदृगिति। **सर्वाकारेण साम्यस्याभेदे एव सम्भवेन तादात्म्यसम्बन्धेन व्याप्यव्यापकभावमभिप्रेत्यायं विकल्पः । अनुमितीति शाब्दादेरप्युपलक्षणम् । अव्यापनादिति भ्रमविशेषेऽतिव्याप्तेरप्युपलक्षणम् ।** अव्यापनादिति। **सुखादिप्रमितौ लक्षणसमन्वयसम्भवेनासम्भवो नाभ्यधायि । अर्थं = आत्मत्वादिकं, अन्यत्र = देहादौ ।** सर्वाकारेणेति। **यद्यपि ज्ञानस्य यदर्थसारूप्यं तदेव तस्य प्रामाण्यमित्यर्थकात् ''अर्थसारूप्यमस्य प्रमाण''मिति न्यायबिन्दौ धर्मकीर्तिवचनात् सौत्रान्तिकादिमतेऽर्थसाम्यमेव प्रमात्वं तथापि न सर्वाकारेण, किन्तूल्लिखय्मानरूपेणैवेत्यर्थः । ननु योगाचारमते एवैतल्लक्षणमस्त्वत आह** अभेदेति। प्रसङ्गेनेति। **भ्रमस्यैव प्रत्ययवादौ स्वमात्रविषयकत्वा-दिव्याप्तिग्रहस्थलस्य परैरुपगमादिति भावः । विशेषणमव्यभिचारित्वरूपम् ।** तैश्चेत्यादि। **स्वप्रकारीभूतयावद्विशिष्टविशेष्यकत्वमेव सादृश्यमित्याद्युक्तौ घटवद्भूतलमित्यादौ कस्यापि विशेष्यस्य घटत्वादिरूपयावत्प्रकारवैशिष्ट्याभावेनाव्याप्तिरित्यादि पूर्वोक्तमनुसन्धेयम् ।**
इति खण्डनशारदायामव्यभिचारित्वखण्डनम् ।

भारती

में ज्ञान का रहना, अथवा जैसा अर्थ हो वैसा ही ज्ञान का होना । तथा च ईदृश ज्ञान ही प्रमा है । (यहाँ प्रथम दो विकल्पों में एवकारबलात् व्याप्यता (व्याप्ति) ज्ञान में ही भासती है । एवं सम्पूर्ण आकारों से अर्थ के साथ ज्ञान का साम्य ज्ञान-अर्थ दोनों का अभेद मानने पर ही सम्भव है इसलिए तादात्म्यसम्बन्ध से व्याप्यव्यापकभाव के अभिप्राय से तृतीय विकल्प किया गया है ।)

इनमें प्रथम कल्प नहीं कह सकते, क्योंकि अतीत-अनागत अर्थ विषयक अनुमिति में तथा अतीत अनागतविषयक शाब्दबोध में अव्याप्ति हो जायेगी । एवं भ्रमविशेष में अतिव्याप्ति भी है । (कारण कि इन सभी स्थलों में ज्ञान काल में अर्थ नहीं है ।) द्वितीय कल्प भी नहीं

अथाविसंवादित्वखण्डनम्

अविसंवाद्यनुभवः प्रमेत्यपि न युक्तम्; अविसंवादित्वं हि ज्ञानान्तरेण तथैवोल्लिख्यमानार्थत्वं वा ? ज्ञानान्तरेण

शारदा

ज्ञानान्तरेणेति । **स्वसमानविषयकज्ञानान्तरकत्वम्, यत्किञ्चिन्निश्चयविशिष्टत्वमिति यावत् वैशिष्ट्यं स्वभिन्नत्वस्वविशेष्यतानिरूपितप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपकत्वाभ्याम्। ज्ञानभेदेन विषयताभेदे मानाभावेनैकधर्मावच्छिन्नप्रकारत्वादेरैक्यादिति भावः।** ज्ञानान्तरेणेति।

भारती

कह सकते, क्योंकि सुखादि प्रतीति में लक्षण समन्वय होने से असम्भव न होने पर भी ज्ञान के असमान देश में रहने वाले घटादि विषयक प्रमा में अव्याप्ति हो जायेगी । एवं ज्ञान के समान देश (आत्मा) में रहने वाले आत्मत्व का अन्यत्र (शरीरादि में) आरोप कर जायमान अहम् इत्यादि भ्रम प्रमा हो जायेगी अर्थात् उक्त भ्रम में प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी। तृतीय कल्प भी ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान और अर्थ का परस्पर भेद मानने वाले (सौत्रान्तिक) के मत में ज्ञान एवं अर्थ का सर्व-आकार से साम्य (सादृश्य) न होने से असम्भव हो जायेगा। (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि न्यायबिन्दु ग्रन्थ में "अर्थसारूप्यमस्य प्रमाणम्" (ज्ञान का अर्थ के साथ जो सारूप्य है वही उस ज्ञान का प्रामाण्य (प्रमात्व) है) इस धर्म कीर्ति के वचन के अनुसार सौत्रान्तिक के मत में अर्थसाम्य ही ज्ञानगत प्रमात्व है किन्तु वह अर्थसाम्य सर्वाकारेण नहीं है अपितु उल्लिख्यमानरूपेण ही है।) योगाचार के मत में भी यह लक्षण ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान के साथ अर्थ का अभेदवादी योगाचार के मत में भ्रम के ही प्रत्ययत्वादि में स्वमात्रविषयकत्वादिव्याप्तिग्रह का स्थल होने से भ्रमात्मक ज्ञान में भी सर्वाकारेण अर्थ का साम्य मानना होगा, ऐसी स्थिति में उक्त प्रमालक्षण भ्रम में भी अतिव्याप्त हो जायेगा । अतः भ्रम की व्यावृत्ति के लिए लक्षण में निविष्ट अव्यभिचारित्व विशेषण व्यर्थ हो जायेगा ।

एव - स्वप्रकारीभूतयावद्विशिष्ट विशेष्यकत्व ही सादृश्य है इत्यादि तत्तद्विशेषों के द्वारा सादृश्य की विवक्षा करें तो "घटवद्भूतलम् इत्यादि में किसी भी विशेष्य में घटत्वादिरूपयावत् प्रकार का वैशिष्ट्य के न होने से अव्याप्ति हो जायेगी" इत्यादि यथार्थत्व खण्डन के प्रकरण में उक्त दूषण ही यहाँ उपस्थित किये जायेंगे ।

अविसंवादित्व - खण्डन

अविसंवादी अनुभवः प्रमा" यह लक्षण भी युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि इस लक्षण के अन्तर्गत अविसंवादित्व का निर्वचन (अर्थ) ही करना सम्भव नहीं है । क्या - ज्ञानान्तर के द्वारा तथैव (पूर्वज्ञानविषयीकृत रूप से) उल्लिख्यमान है अर्थ जिसका अर्थात् स्वसमानाविषयक ज्ञानान्तरकत्व ही अविसंवादित्व है, या ज्ञानान्तर के द्वारा विपरीततया (अभावप्रतियोगितया) अप्रतीयमान है अर्थ (विषय) जिसका ईदृश अनुभव या प्रतीयमान अर्थात् स्वविषयीभूत अर्थ का जो व्याप्य, तद्विषयकत्व (अर्थात् - तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकत्व) अथवा

विपरीततयाऽप्रतीयमानार्थत्वं वा ? प्रतीयमानव्याप्यविषयत्वं वा ? अन्यदेव वा किञ्चित् ? न प्रथमः, धारावाहिनो भ्रमस्य प्रमात्वप्रसङ्गात् । न च प्रमाभूतं ज्ञानान्तरं विवक्षितमिति वाच्यम्; प्रमाया एव लक्ष्यमाणत्वात् । नापि द्वितीयः, अनुपजातबाधभ्रम-व्यापनात् । स्वस्थदशोत्पन्नस्य शुक्लशङ्खादिज्ञानादेर्दुष्टेन्द्रियदशो-

शारदा

विपरीततया = अभावप्रतियोगितया । निश्चयीयविशेष्यतावृत्तिविशेष्यताकत्वा-त्यन्ताभाववत्त्वम्, वृत्तित्वं स्वावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वस्वनिरूपितप्रकारतावच्छेदक-धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपकत्वाभ्यामिति, नच वृक्षः कपिसंयोगवान् तद्भाववांश्चेतिप्रमित्यव्याप्तिः, अभावे प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यापि वक्तव्यत्वात्, वृत्तित्वञ्चैतादृशस्थले सम्बन्धित्वमेव, तेन तादृशसम्बन्धानां वृत्त्यनियामकत्वेऽपि नासङ्गतिरिति ध्येयम् । प्रतीयमानेति । **प्रतीयमानस्य = स्वविषयीभूतस्य यद्व्याप्यं तद्विषयकत्वम् , तत्र तद्व्याप्यविषयकत्वे सति तत्र तद्विषयकत्वम् , तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वमिति यावत् ।** अन्यदेवेति। **स्वयमेव वक्ष्यति । यत्किञ्चित्प्रमाविशिष्टत्वमेवोक्तसम्बन्धाभ्यां विवक्षणीयमित्याशङ्कते** नचेति । अनुपजातबाधेति । **अनुत्पन्नो बाधो यस्य तादृशभ्रमस्यापि निरुक्तविशेष्यताकान्यत्वादतिव्याप्तिरित्यर्थः । नन्वन्ततो भगवत एवान्यस्य वा सर्वज्ञस्य विपरीतनिश्चयमादाय भ्रमे निरुक्तविशेष्यताकत्वसम्भवेन नातिव्याप्तिरित्यत आह** स्वस्थेति।

भारती

अन्य ही कुछ अविसंवादित्व है ।

इनमें प्रथम विकल्प नहीं कह सकते, क्योंकि ''इदं रजतम्'' ''इदं रजतम्'' इत्यादि धारावाहिक भ्रम में अतिव्याप्ति हो जायेगी । यदि कहें कि स्वसमानविषयक ज्ञानान्तर प्रमारूप विवक्षित है उक्त भ्रमस्थल में तो ज्ञानान्तर भी भ्रान्तिरूप है अत: वहाँ अतिव्याप्ति न होगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रमा के लक्षण का ही विचार प्रचलित है । अर्थात् निर्दुष्ट लक्षण के न होने से प्रमा का ही अद्यावधि निश्चय नहीं है पुन: लक्षण में प्रमा का निवेश कैसे करेंगे।

किञ्च - प्रमा के लक्षण में प्रमा का निवेश करने पर प्रमा में स्वापेक्षत्व होने से आत्माश्रयादि दोष हो जायेंगे ।

द्वितीय विकल्प भी ठीक नहीं है, क्योंकि जिस भ्रम का बाध नहीं हुआ है ऐसा भ्रम भी ज्ञानान्तर के द्वारा विपरीतया अप्रतीयमानार्थक होने से उस भ्रम में अतिव्याप्ति हो जायेगी।

यदि कहें कि अनुपजातबाधभ्रम स्थल में अल्पज्ञ का बाधनिश्चय न होने पर भी अन्ततोगत्वा परमेश्वर का या किसी अन्य सर्वज्ञ महापुरुष का बाधनिश्चय लेकर उक्त भ्रम में विपरीततया प्रतीयमानार्थकत्व ही आ सकता है अत: उक्त भ्रम स्थल में अतिव्याप्ति न होगी, तो यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि इस प्रकार उक्त भ्रम में अतिव्याप्ति का वारण होने पर भी

त्पन्नतत्पीतिमज्ञानाद्युल्लिखितविषयवैपरीत्यस्याप्रमात्वप्रसङ्गाच्च । प्रमित्यानुल्लिखितार्थवैपरीत्यभावविवक्षायां तु 'प्रमाया लक्ष्यमाणत्वा'दित्युक्तमनुषज्जति । अदुष्टकरणकज्ञानेनाबाधितत्वं

शारदा

विषयवैपरीत्यस्येत्यत्र बहुव्रीहिः। प्रमीयविशेष्यतावृत्तीत्यादिविवक्षायां नायं दोष इत्यत आह प्रमित्येति। **अनुल्लिखितमविषयीकृतमर्थवैपरीत्यं यस्य तद्भावेत्यर्थः। दुष्टकरणाजन्यज्ञानीयविशेष्यतावृत्तीत्यादि विवक्षणीयमिति प्रकृतप्रमात्वस्य स्वस्मिन्ननुप्रविष्टत्वेन नात्माश्रय इत्याह** अदुष्टेति। **तदेव = दुष्टकरणाजन्यानुभवत्वमेव, दोषाजन्यानुभवत्वमेवेति यावत् , प्रथमोपस्थितिके एव विशेषणान्तरदानौचित्यात् । ननु व्याप्यत्वपक्षधर्मत्वाभ्यामव्याप्यापक्षधर्मावगाहिपरामर्शजन्यसाध्यवद्विशेष्यकमितेर्दुष्टकरणजत्वेन तत्राव्याप्त्या नास्य प्रमालक्षणत्वसम्भवः, नचैवं दुष्टकरणजन्ययथार्थज्ञानबाध्ये भ्रमेऽतिव्याप्तिः, सर्वज्ञज्ञानीयविशेष्यतावृत्तिविशेष्यताकत्वमादायैव तद्वारणात्;**

राजहंसः

अविसंवादित्वखण्डनशारदायां राजहंसः

विस्तरस्तु पुरेरित इति । पुरा = अनुभवत्वस्य जातित्वखण्डने 'वस्तुप्रकाशिनि च दोषत्ववाचोयुक्त्यनिरुक्ते' रिति प्रघट्टकशारदायाम् ।

भारती

यह लक्षण निर्दुष्ट नहीं है । कारण कि - स्वस्थ दशा में उत्पन्न "शुक्लः शंखः" इत्याकारक ज्ञान भी पित्तदोष से दूषित इन्द्रिय दशा में उत्पन्न "पीतः शङ्खः" इस ज्ञान के द्वारा उल्लिखितविषयवैपरीत्य (उल्लिखित = विषयीकृत है विषय का वैपरीत्य जिसका ऐसा) अर्थात् विपरीततया प्रतीयमानार्थक हो जाता है अतः उस "शुक्लः शङ्खः" इत्याकारक प्रमा में ज्ञानान्तर से विपरीततया प्रतीयमानार्थकत्व के होने से उक्त प्रमालक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि प्रमिति (प्रमा) के द्वारा अनुल्लिखित = अविषयीकृत है अर्थ का वैपरीत्य जिस ज्ञान का, तादृशज्ञानस्वरूप की विवक्षा करेंगे । एवञ्च प्रमात्मकज्ञानान्तर के द्वारा विपरीततया अप्रतीयमानार्थकत्व ही अविसंवादित्व है । और इस प्रकार विवक्षा करने पर "शुक्लः शङ्खः" में अप्रमात्वापत्ति (अव्याप्ति) न होगी, तो यह कहना भी सम्भव नहीं है क्योंकि प्रमा का लक्षण ही यहाँ विचारणीयतया प्रचलित है । अद्यावधि निर्दुष्ट प्रमालक्षण के सिद्ध न होने से प्रमा ही निर्णीत नहीं है । अतः पुनः प्रमा के लक्षण में प्रमा का निवेश नहीं कर सकते । यह पहले कह चुके हैं ।

यदि कहें कि अदुष्टकरणक ज्ञान (दोष से रहित है करण जिसका ऐसा ज्ञान) से अबाधितत्व विवक्षित है । तथा च दुष्ट करण से अजन्य ज्ञानान्तर से विपरीततया अप्रतीयमानार्थकत्व ही अविसंवादित्व है तादृशअविसंवादि अनुभव ही प्रमा है । इस प्रकार विवक्षा करने पर प्रकृत प्रमात्व का स्व में प्रवेश न होने से आत्माश्रयादि दोष नहीं है । तो यह कथन भी उचित नहीं

विवक्षितमिति चेन्न; तदेव तर्हि प्रमालक्षणमस्तु। किञ्च दुष्टत्वनिरूपणमन्तरेणादुष्टत्वस्य दुर्निरूपत्वात् । ननु किमेतावता, दुष्टत्वं विपरीतज्ञानप्रयोजकरतद्धेतुगतो विशेष इति सुवचमेवेति; न, विपरीतपदव्यवच्छेद्याप्रमितौ तदुपादानवैयर्थ्यात्, तदनुपादाने च ज्ञानजनकत्वमात्रं दुष्टत्वमियदुष्टकरणजं ज्ञानं नास्त्येवेति स्यात्। विषरीतपदव्यवच्छेद्या प्रमैवेति चेन्न; तस्या एव लक्ष्यमाणत्वात्। तदीयस्वरूपस्येतरव्यावृत्तस्याद्याप्यप्रतीतेः कुतो व्यवच्छेदः

शारदा

मैवम्, उक्तपरामर्शजन्यमितेः प्रमानन्तर्भावस्य पूर्वं निवेदितत्वात् । नन्वस्त्वेतदेव लक्षणमित्यत आह किञ्चेति । **प्रयोजकः = जनकः। तद्धेतुगतः=विपरीतज्ञानहेतुगतः । विपरीतज्ञानत्वं तदभाववति तत्प्रकारकज्ञानत्वं भ्रमसंशयोभयसाधारणम्, तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-कारणतावच्छेदकधर्मवत्त्वं दोषत्वमित्यर्थः। विस्तरस्तु पुरेरितः।** तदीयेति। **प्रमीयेत्यर्थः।**

भारती

है क्योंकि इस प्रकार विवक्षा करने पर वही अर्थात् ''दुष्टकरणाजन्यानुभवत्व (दुष्टकरण से अजन्य अनुभव) ही प्रमा का लक्षण मान लिया जाय । प्रथम उपस्थित में ही विशेषणान्तर देना उचित है अत: पारिशेष्यात् दोषाजन्यनुभवत्व ही प्रमालक्षण हो जाय ।

किञ्च - यदि ''दोषजन्यानुभवत्व'' ही लक्षण मान लेंगे इस प्रकार इष्टापत्ति भी नहीं कर सकते, क्योंकि दोष के निरूपण (निर्वचन) के विना अदुष्टत्व का अर्थात् दुष्टकरणाजन्यत्व (दोषाजन्यत्व) का निरूपण नहीं कर सकते ।

प्रश्न -- ऐसा कहने से क्या लाभ है । हम दोष का निर्वचन करते हैं - विपरीत ज्ञान के हेतुगत विपरीतज्ञान का जनक विशेष ही दोष है । (भ्रमसंशय उभय साधारणतदभाववति तत्प्रकारकज्ञानत्व ही विपरीतज्ञानत्व है अत: विपरीतज्ञानत्वावच्छिन्न कार्यतानिरूपित करणतावच्छेदक धर्मवत्त्व (धर्म) ही दोषत्व (दोष) है ।

समाधान -- इस दोष लक्षण में प्रविष्ट ''विपरीत'' पद के व्यवच्छेद्य अर्थात् व्यावर्त्य का प्रमिति (प्रमात्मक ज्ञान) न होने पर उस (विपरीतपद) का लक्षण में निवेश करना व्यर्थ है । (क्योंकि किसी की व्यावृत्ति करने पर ही विशेषण का सार्थक्य होता है व्यावर्त्य के बिना विशेषण व्यर्थ है ।) और यदि व्यावर्त्य का ज्ञान न होने से विपरीत पद का निवेश उक्त दोष लक्षण में न करें तो ज्ञानजनकत्वमात्र ही दुष्टत्व (दोष) का लक्षण रहेगा, ऐसी स्थिति में सभी ज्ञानों के ज्ञानजनक से ही जन्य होने से दुष्टकरण से अजन्य कोई ज्ञान रहेगा ही नहीं । तथा च उक्त प्रमालक्षण असम्भव दोषग्रस्त हो जायेगा ।

यदि कहें कि प्रमा ही विपरीत पद का व्यवच्छेद्य है, तो यह कहना सम्भव नहीं, क्योंकि प्रमा ही लक्ष्यमाण (लक्षणनिर्माणादि के द्वारा विचारणीय) है । अर्थात् निर्दुष्ट लक्षण

प्रत्येतव्य इति व्यवच्छिन्नतज्ज्ञानमन्तरेण व्यवच्छिन्नतज्ज्ञानमशक्यमित्यात्माश्रयान्योन्याश्रयावनवस्था वा ।

शारदा

व्यावृत्तप्रमास्वरूपनिर्णयं विना न तद्व्यावृत्तघटितदोषत्वनिर्णयः, तं विना च न दोषाजन्यानुभवत्वनिर्णय इति व्यावृत्तप्रमास्वरूपस्य दोषाजन्यानुभवत्वाभेदेऽन्योन्याश्रयः, तद्भेदे तु प्रकृताविसंवाद्यनुभवत्वरूपत्वे चक्रकम् , एवं च परम्परया व्यावृत्तप्रमात्वस्यस्वनिर्णयाधीननिर्णयकत्वेनात्माश्रयः, स्वनिर्णयाधीनव्यावृत्तविपरीतज्ञानत्वनिर्णयाधीननिर्णयकत्वेन चान्योन्याश्रयः, तादृशविपरीतज्ञानत्वनिर्णयाधीनदोषत्व-

भारती

के न होने से प्रमा का निश्चय नहीं है । इतरव्यावृत्त प्रमा के स्वरूप का ही जब अभी तक निर्णय नहीं हुआ, तो लक्षण में विपरीतपद देकर उस विपरीतपद के द्वारा ज्ञान (भ्रम) का किस से व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) करेंगे । ऐसी दशा में इतर व्यावृत्त प्रमा के ज्ञान के विना इतरव्यावृत्त विपरीज्ञान का ज्ञान करना सम्भव नहीं है इसमें आत्माश्रय आदि दोष प्रसक्त है ।

(इतरव्यावृत्त प्रमा के स्वरूप के निर्णय के बिना प्रमा से व्यावृत्तघटित दोषत्व का निर्णय नहीं हो सकता, और तादृशदोषत्व के निर्णय के विना दोषाजन्यानुभवत्वरूप प्रमा का निर्णय नहीं हो सकता, इस प्रकार दोषत्व निर्णय और प्रमात्वनिर्णय दोनों के परस्पर सापेक्ष होने से अन्योन्याश्रय दोष होगा । यदि प्रमा को दोषाजन्यानुभवत्वरूप न मानकर उससे भिन्न प्रकृत अविसंवादी अनुभवत्वरूप मानें तो अविसंवादित्व दोषत्व एवं प्रमात्व इन तीनों का निश्चय परस्पर सापेक्ष होने से चक्रक दोष होगा । एवं व्यावृत्तप्रमात्व का निर्णय भी परम्परया स्वनिर्णय सापेक्ष होने से आत्माश्रय दोष होगा । व्यावृत्त प्रमात्व निर्णय के अधीन व्यावृत्त विपरीतज्ञानत्व का निर्णय, और व्यावृत्तविपरीतज्ञानत्व के निर्णय के अधीन व्यावृत्तप्रमात्व का निर्णय होने से भी अन्योन्याश्रय, तथा तादृशविपरीतज्ञानत्व के निर्णय के अधीन दोषत्व का निर्णय, दोषत्व के निर्णय के अधीन व्यावृत्तप्रमात्व का निर्णय, व्यावृत्त प्रमात्व के निर्णय के अधीन पुनः विपरीतज्ञानत्व का निर्णय इस प्रकार चक्रक दोष है । और यदि तादृशविपरीतज्ञानत्व के निर्णय के अधीन जिस प्रमात्व का निर्णय है उस प्रमात्व के निर्णय की अपेक्षा तादृशविपरीतज्ञानत्व के निर्णय में नहीं है अपितु वह प्रमात्व भिन्न ही है क्योंकि प्रमात्व के अनेक लक्षण हैं । एवं प्रमात्व के निर्णय के अधीन जिस विपरीतज्ञानत्व का निर्णय है उस विपरीतज्ञानत्व की अपेक्षा प्रमात्व निर्णय के लिए नहीं है अपितु वह विपरीतज्ञानत्व भी भिन्न ही है । इस प्रकार प्रथम प्रमात्वनिर्णय में प्रथम विपरीत ज्ञान की, प्रथम प्रमात्वनिर्णय में प्रथमविपरीत ज्ञान की, प्रथम विपरीतज्ञानत्व के निर्णय में द्वितीय प्रमात्व की, द्वितीय प्रमात्व के निर्णय में द्वितीयविपरीतज्ञानत्व की, द्वितीयविपरीतज्ञानत्व के निर्णय में तृतीयप्रमात्व के निर्णय की, तृतीय प्रमात्व के निर्णय में तृतीयविपरीतज्ञानत्व की, तृतीयविपरीत ज्ञानत्व के निर्णय में चतुर्थप्रमात्व के निर्णय की अपेक्षा मानकर आगे आगे विपरीतज्ञानत्व तथा प्रमात्व की कल्पना करने पर अनवस्था दोष प्राप्त हो जायेगा ।)

एकोऽनेकविशेषेऽर्थे विशेषो यत्र लक्ष्यते ।
तद्विशेषान्तरान्यत्वाद्दोषस्तत्रैव धावति ॥३२॥

नापि तृतीयः, व्याप्यशब्देन व्याप्यमात्रं तद्विशेषो वा

शारदा

निर्णयाधीननिर्णयकत्वेन च चक्रकम्, यदि तु तादृशविपरीतज्ञानत्वनिर्णयाधीननिर्णयकं प्रमात्वं न विपरीतज्ञानत्वनिर्णयौपयिकनिर्णयकमपि तु प्रमात्वान्तरेमेव, लक्षणानां बहुत्वात्, तदपि च न स्वनिर्णयाधीनविपरीतज्ञानत्वनिर्णयाधीननिर्णयकतु विपरीतज्ञानत्वान्तरनिर्णयाधीन-निर्णयकमेव, विपरीतज्ञानत्वान्तरमपि तृतीयप्रमात्वनिर्णयाधीननिर्णयकमपि, एवं तृतीयप्रमात्वेऽपीतितदाव्यावृत्तस्वरूपनिर्णयेऽनवस्थेत्यर्थः । एक इति । **तद्व्याप्यत्वे सति तद्व्याप्याव्याप्यत्वे सति तद्भिन्नस्तद्विशेषः, यथा ज्ञानत्वविशेषः प्रमात्वभ्रमत्व-संशयत्वनिश्चयत्वादिः, एतादृशानेकविशेषकस्य वस्तुनो विशेषः कश्चिद्यल्लक्षणाधीन-निरूपणविषयः, तस्य लक्षणस्य तदीयविशेषान्तरव्यावृत्तिफलकविशेषणघटितत्वावश्यम्भावेन विशेषाणां च परस्परव्यावृत्तिग्रहस्य परस्परव्यावृत्तस्वरूपाधिगममन्तरेणासम्भवेन दोषस्यात्माश्रयादेरप्युक्तरीत्याऽवश्यम्भाव इत्यर्थः । तत्रैव धावति = तत्र धावत्येव । यद्यपि व्यावृत्तिग्रहमादायात्माश्रयादिर्लक्षणमात्रे लक्षणसामान्यखण्डने पूर्वमुक्तः, तथाप्यने-कावान्तरधर्मकवस्तुनोऽवान्तरधर्मलक्षणे स्फुटावसरताऽऽत्माश्रयादेरित्यभिप्रायेणायं श्लोकः। लक्ष्यलक्षणयोः परस्पराधीनव्यावृत्तिमादायापि पूर्वग्रन्थयोजनसम्भवाच्चेति भावः ।**

भारती

अनेक हैं विशेष जिसमें, ऐसे पदार्थ के किसी एक विशेष का जहाँ लक्षण के द्वारा निरूपण किया जाता है, वहाँ उस लक्षण को लक्ष्य का तदीयविशेषान्तर से व्यावर्तक विशेषणों से घटित अवश्य मानना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में वहाँ उक्तरीति से आत्माश्रयादि दोष अवश्य प्रसक्त होते ही हैं। क्योंकि उन विशेषों के परस्पर व्यावृत्तस्वरूप ज्ञान के बिना उनमें परस्पर भिन्नत्व का ज्ञान नहीं हो सकता। (प्रकृत में ज्ञानत्व के विशेष प्रमात्वभ्रमत्वसंशयत्व एवं निश्चयत्वादि है। तद्विशेष अर्थात् ज्ञानविशेष का तात्पर्य है कि - ज्ञानत्व के व्याप्य होते हुए ज्ञानत्व के व्याप्य के अव्याप्य हो एवं ज्ञानत्व से भिन्न हो वह ज्ञानत्व का विशेष कहलाता है जैसे प्रमात्वादि। अतः ज्ञानत्व के विशेष प्रमात्व का लक्षण करने में तद्लक्षण घकट विशेषणों के द्वारा ज्ञान के विशेषान्तरों से व्यावृत्ति करने में उक्तरीति से आत्माश्रय अन्योन्यांश्रय चक्रक अनवस्था यह दोष चतुष्टय अवश्य ही आपतित होंगे।)

(यहाँ यह ज्ञातव्य है यद्यपि यह आत्माश्रयादि दोष लक्षणमात्र में है यह बात लक्षण सामान्य खण्डन प्रकरण में कह चुके हैं तथापि अनेक अवान्तरधर्मयुक्तवस्तु के अवान्तर धर्म रूप लक्षण में यह दोष स्पष्ट है इस अभिप्राय से यहाँ एवं लक्ष्य लक्षण के परस्पराधीन व्यावृत्ति को लेकर पूर्वग्रन्थ में कहना अनुचित नहीं है।)

प्रतीयमान व्याप्यविषयत्व (प्रतीयमान अर्थात् स्वविषयीभूत का जो व्याप्य है तद्विषयकत्व)

कश्चिदभिप्रेतः स्यात् ? आद्ये सधूमाग्निविषयस्य स्वप्नज्ञान-स्यानाप्तवाक्यजबोधस्य वा, नाप्रमात्वं स्यात् । नापि द्वितीयः, स ह्यर्थक्रिया वा सामग्री वा, उभयत्रापि पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तेः ।

शारदा

तत्र तद्व्याप्यविषयकत्वे सति तद्विषयकत्वमिति तृतीययथाश्रुतार्थे विकल्पयति व्याप्यशब्देनेति । बोधस्य वेति । **वाशब्दः समुच्चये । अर्थक्रिया = कार्यम् । तत्सामग्री तदव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन तद्व्याप्या** । पूर्वेति । **स्वाप्नादिबोधस्य तत्कार्यादिविषयकत्वे सति तद्विषयकत्वसम्भवादिति भावः । नच तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्व-विवक्षायां नायं दोष इति वाच्यम्; तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वं हि तद्व्याप्यावच्छिन्नविशेष्यताकत्वं वा वस्तुगत्या तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वं वा ? आद्ये उक्तदोषतादवस्थ्यमेव, धूमवान् वह्निमानिति स्वप्नादिबोधसम्भवात्, पर्वतो वह्निमानितिज्ञानस्याप्रमात्वापत्तेश्च । एवं धूमवान् पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानस्य वह्न्यंशे प्रमात्वं यथा धूमावच्छिन्नविशेष्यताकत्वमादाय, तथा धूमांशे प्रमात्वं धूमव्याप्याञ्झनाद्यवच्छिन्नविशेष्यताकत्वमादायैव स्यात्, तच्च नोक्तज्ञाने इत्यव्याप्तिः, यत्र च तत्सम्भवः, तत्रापि धूमव्याप्यांशे प्रमात्वं धूमव्याप्यव्याप्यावच्छिन्नविशेष्यताकत्वेनैव स्यात्; तदभावे तु नेति कस्यापि ज्ञानस्यानन्ततत्तद्व्याप्यविषयकत्वस्यासम्भवेन सर्वांशे प्रमात्वं न स्यात्, व्याप्यांशे प्रमात्वानिरूपणे व्यापकांशेऽपि तदनिरूपणेन क्वाप्यंशे वा तन्न स्यादित्याह** एकदेति । **सर्वत्र व्याप्ये** । क्रमाश्रयणे इति । **तत्तत्प्रकारकज्ञानीयतत्तद्विशेष्य-**

भारती

ही अविसंवादित्व है यह तृतीय पक्ष भी ठीक नहीं है । व्याप्यशब्द से क्या व्याप्यमात्र ही अभिप्रेत है या कोई व्याप्यविशेष विवक्षित है । यदि प्रथम पक्ष मानें तो धूम के सहित वह्निविषयक स्वप्नज्ञान एवं अनाप्त पुरुषोच्चरित वाक्यजन्य ज्ञान भी अप्रमा नहीं होगा, अर्थात् प्रमा हो जायेगा । तथाच उक्त दोनों ज्ञानों में प्रकृत लक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा ।

यदि व्याप्यशब्द से व्याप्यविशेष ही कोई विवक्षित मानें तो वह व्याप्य विशेष क्या अर्थक्रिया (कार्य) है या सामग्री, (क्योंकि तत्सामग्री भी तदव्यवहित प्राक्क्षणावच्छेदेन तद्व्याप्य है ।) दोनों ही पक्षों में पूर्वोक्त दोष की निवृत्ति नहीं है । क्योंकि उक्त स्वप्न ज्ञान में भी तद्व्याप्यविषयकत्वे सति तद्विषयकत्व है । यदि कहें कि प्रतीयमान व्याप्यविषयत्व का तात्पर्यार्थ केवल "तत्र तद्व्याप्यविषयकत्वे सति तद्विषयकत्व ही नहीं है अपितु तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वरूप है । तथाच उक्त दोष नहीं है क्योंकि उक्त सधूमवह्निविषयक स्वप्नज्ञान तद्व्याप्यवद्विशेष्यक होते हुए तत्प्रकारक नहीं है । तो आप नहीं कह सकते, कारण कि इस विवक्षित अर्थ को मानने पर भी तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्व को तद्व्याप्यावच्छिन्नविशेष्यताकत्व रूप मानें तो उक्त दोष रह ही जायेगा, क्योंकि धूमवान् वह्निमान् इत्याकारक भी स्वप्नज्ञान हो सकता है और तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्व के न होने से पर्वतो वह्निमान् इस ज्ञान में अव्याप्ति भी होगी ।

किञ्च – उक्तविवक्षितार्थ में यावद्व्याप्यों के प्रविष्ट होने से एक काल में सभी व्याप्यों

एकदा च सर्वत्र प्रमाणासम्भवेन क्रमाश्रयणे तत्तदर्थक्रिया-तत्तत्सामग्रीपरम्परावगमनियमाभ्युपगमे एकस्मिन्नेव विषये पुरुषायुषः पर्यवसानप्रसङ्गात्, विच्छेदाभ्युपगमे त्वन्तिमाव-गमस्याप्रामाण्यादाप्रथममप्रमात्वापत्तेः। वास्तवतदर्थक्रियात्वस्य

शारदा

विशेष्यकतत्तद्व्याप्यप्रकारकप्रतीतीनां क्रमिकत्वमुपगम्येत्यर्थः । तथाच लक्षणं स्वावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वस्वनिरूपितप्रकारताश्रयनिरूपितव्याप्त्याश्रयनिष्ठप्रकारताकत्वाभ्यां निश्चयीयविशेष्यतावृत्तिविशेष्यताकत्वमेव वक्तव्यम्, नच धूमवान् पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानासङ्ग्रहः, वह्निनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यताया धूमपर्वतत्वोभयावच्छिन्नत्वात्, धूमनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतायाश्च पर्वतत्वमात्रावच्छिन्नत्वादिति वाच्यम्; धूमवान् पर्वत आलोकवानित्यादिनिश्चयान्तरमादाय लक्षणसमन्वयसम्भवात् । एकस्मिन्नेव विषये = यत्किञ्चिद्विषयांशे ज्ञानस्य प्रमात्वनिश्चये इत्यर्थः, नहि वह्न्यंशे प्रमात्वं तद्व्याप्यांशे प्रमात्वनिश्चयं विना तद्व्याप्यांशे च प्रमात्वं तद्व्याप्यव्याप्यांशे प्रमात्वनिश्चयं विना शक्यनिश्चयम्, भ्रमातिप्रसङ्गतादवस्थ्यादिति भावः । पुरुषायुष इति । **अचतुरविचुतरेत्यादिना प्राप्तस्यापि समासान्तस्याभावः सामासान्तविधेरनित्यत्वात्समर्थनीयः । वस्तुगत्या तद्व्याप्यवद्विशेष्यकत्वविवक्षां निरस्यति** वास्तवेति । **वस्तुगत्या तद्व्याप्याभूतार्थक्रियादिमद्विशेष्यकत्वस्येति तात्पर्यार्थः** । दुर्निरूपत्वेनेति । **प्रमात्वनिरूपणं विनेत्यादिः** । व्यवहारेति । **प्रमात्वव्यवहारेत्यर्थः। तद्वति तत्प्रकारकत्वपक्षोक्तदूषणानि चात्रानुसन्धेयानि । तद्व्याप्यार्थक्रियादिमत्त्वेन**

भारती

में प्रमाणों (इन्द्रिय सन्निकर्षादि) की प्रवृत्ति तो हो नहीं सकती । ऐसी स्थिति में क्रमशः प्रवृत्ति मानने पर तत्तद् अर्थक्रिया और तत्तत् सामग्री की परम्परा के अवगम के नियम को मानने से एक ही विषय में अर्थात् यत्किञ्चित् विषयविषयकत्वावच्छेदेन ज्ञान के प्रमात्वनिश्चय में ही पुरुष की सम्पूर्ण आयुः (जीवन) समाप्त हो जायेगी, क्योंकि वह्न्यश में प्रमात्व का निश्चय वह्नि के व्याप्यांश में प्रमात्वनिश्चय के विना नहीं हो सकता, वह्निव्याप्यांश में प्रमात्व का निश्चय भी वह्निव्याप्यांश में प्रमात्व का निश्चय के विना नहीं हो सकता है । इस प्रकार परम्परा मानने में अनवस्था दोष होगा एवं भ्रम में अतिव्याप्ति भी तदवस्थ है ।

और यदि इस प्रकार धारा की कहीं विश्रान्ति मान लें तो उस अन्तिम व्याप्यांश में ज्ञान के प्रमात्व का निश्चय न होने पर तत्पूर्व पूर्व का भी प्रमात्व निश्चय नहीं हो पायेगा, और प्रथम वह्निअंश में भी ज्ञान गत प्रमात्व का निश्चय नहीं होगा । वह अप्रमा हो जायेगा अर्थात् वहाँ उक्त प्रमालक्षण अव्याप्त हो जायेगा ।

यदि वस्तुगत्या तद्व्याप्य विशेष्यकत्व की विवक्षा करेंगे तो वास्तव तदर्थ क्रियात्व का अर्थात् वस्तुगत्या तत् (वह्नि) व्याप्यीभूत अर्थाक्रियादि (कार्य = धूम) वद्विशेष्यकत्व का निश्चय भी प्रमात्वनिश्चय के बिना नहीं हो सकता, तब उसमें प्रमात्वव्यवहार भी होना सम्भव नहीं है ।

च दुर्निरूपत्वेन व्यवहारानर्हत्वात्, तथा प्रतीतिमात्रस्याप्रमासाधारण्यात् । नन्वेवं चतुर्थः पक्षोऽस्तु, तथाहि–अर्थक्रियाविषयकत्वं वाऽविसंवादित्वमिति, यथाह–'प्रमाणमविसंवादिज्ञानमर्थक्रियास्थितिश्चाविसंवादः' इति; न, सामान्यतो विवक्षायां

शारदा

प्रतीयमानविशेष्यकत्वविवक्षायां स्वाप्नादिबोधेऽतिव्याप्तिं स्मारयति तथेति । अर्थक्रियेति। **अन्यथाख्यातिमते यद्विषयकत्वावच्छेदेन भ्रमत्वं तस्याप्यर्थक्रियाकारित्वेन न तन्मतेनायं ग्रन्थः, प्रातिभासिकविषयकज्ञानस्यैवार्थक्रियाकारित्वं नतु तद्विषयस्येति नव्यानिर्वचनीयतावादिमते व्यावहारिकप्रमात्वस्योक्तरूपत्वसम्भवेऽपि न तस्यात्र पूर्वपक्षिता, अनिर्वाच्यवादित्वादेव । योगाचरमते भ्रमविषयस्यापि ज्ञानाकारत्वेन स्वोत्तरज्ञानजनकत्वेनार्थक्रियाकारित्वान्न तन्मतेनापि ग्रन्थोऽयम् , अपि तु सौत्रान्तिकवैभाषिकमतेनैव, यद्यपि तन्मतेऽपि भ्रमविषयस्य ज्ञानाकारतैवेति भ्रमस्यार्थक्रियाकारिविषयकत्वमेव, आलम्बनप्रत्ययविधया सर्वज्ञज्ञानं प्रत्यपि ज्ञानमात्रस्य कारणत्वात्, तथापि ज्ञानातिरिक्तकार्यकारिप्रकारकत्वविवक्षया भ्रमवारण सम्भवः, योगाचारमते ज्ञानातिरिक्ताप्रसिद्धावपि तन्मते तत्प्रसिद्धेः, परन्तु कामिन्यादिविषयकस्वप्नबोधेऽतिव्याप्तिर्दुर्वारैव, नहि भ्रमप्रकारस्य ज्ञानात्मकत्ववादे कामिन्यादिज्ञानस्यैव ज्ञानातिरिक्तकार्यकारित्वं नतु कामिन्यादेरिति शक्यमभिधातुमिति** । भ्रान्ताविति

भारती

यदि केवल तद्व्याप्य अर्थक्रियादिमत्वेन प्रतीयमानविशेष्यकत्व की विवक्षा करें तो तद्व्याप्य अर्थक्रियादिमत्वेन प्रतीति के अप्रमा साधारण होने से स्वप्नबोध में भी तादृश अर्थक्रियादिमत्वेन प्रतीति के होने से तादृशप्रतीयमान विशेष्यकत्व को लेकर स्वप्नबोध में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न -- अर्थक्रियाकारिविषयकत्व ही अविसंवादित्व है यह चतुर्थ पक्ष ही मानेंगे । जैसा कि बौद्धाचार्य ने कहा है - प्रमाणमविसंवादिज्ञानम् अर्थक्रिया स्थितिश्चादि संवादः'' (अविसंवादि ज्ञान ही प्रमा है एवं अर्थक्रियाकारित्व ही असंविसंवाद है) (यह विकल्प सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक के मत से हैं । क्योंकि अन्यथाख्यातिमत में भ्रम का विषय भी अर्थक्रियाकारी माना जाता है अतः उस मत से यह विकल्प नहीं हो सकता । ''प्रातिभासिकविषयकज्ञान ही अर्थाक्रियाकारी होता है विषय नहीं, इस नवीन अनिर्वचनीयवादि के मत से भी यह विकल्प नहीं हो सकता, क्योंकि वह अनिर्वचनीयवादी होने से पूर्वापेक्षी नहीं हो सकता । योगाचार के मत से भी नहीं है - उसके मत में भ्रम का विषय ज्ञानाकार है और भ्रम अर्थक्रियाकारी होता है ।) अतः सौत्रान्तिक वैभाषिक मत से यह ग्रन्थ ज्ञेय है ।

समाधान -- यदि सामान्यतः अर्थक्रियाकारित्व विवक्षित है तो ''इदं रजतम्'' भ्रम भी ज्ञानातिरिक्त कार्यकारी शुक्तिविषयक है अतः भ्रान्तिज्ञान में प्रमात्व की आपत्ति होगी भ्रमज्ञान में उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । यदि कहें कि अर्थगत

भ्रान्तावपि प्रसङ्गात् । प्रतीयमानरूपेणार्थक्रियाकारित्वमर्थस्य विवक्षितमिति चेन्न; दुरवधारणत्वात् । तदर्थक्रियादर्शनात्तद-वधारणमिति चेन्न; विनाप्यर्थक्रियां तद्दर्शनसम्भवात् । अर्थक्रियाप्रमितिरभिधित्सितेति तु दूषितमेव, प्रमाया एव निरूप्यमाणत्वात् । अभिप्रायाविसंवादात्प्रमाणं सर्वमुच्यते इति चेन्न; तदाभिप्रायाविसंवादस्य स्वप्नादिप्रत्ययेऽपि सम्भवात्,

शारदा

भ्रान्तेर्ज्ञानातिरिक्तकार्यकारिताश्रयशुक्त्यादिविषयकत्वादिति भावः । अर्थस्येति । **नचार्थपदस्य विशेष्यपरत्वे स्वविशेष्यतावन्निष्ठज्ञानातिरिक्तकार्यकारितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नप्रकारता-कत्वस्य, स्वप्रकारतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नज्ञानातिरिक्तकार्यकारितावद्विशेष्यकत्वस्य वा लाभेन घटवद्भूतलमित्यादावव्याप्तिः, विशेष्यताश्रयभूतलनिष्ठाया ज्ञानातिरिक्तकार्यकारिताया घटत्वेनानवच्छेदात्, प्रकारपरत्वे तु ज्ञानातिरिक्तकार्यकारितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नप्रकारता-कत्वस्य पर्यवसिततया रजतत्वादेरपि तादात्म्यभ्रमप्रकारतावच्छेदकस्य ज्ञानातिरिक्तकटकादि-कार्यकारितावच्छेदकत्वादतिव्याप्तिरिति वाच्यम्; परमते रजतत्वादेरनुगतस्य धर्मस्याभावेन भ्रमविषयस्य च तस्य ज्ञानात्मकत्वेन कटकादिजनकतावच्छेदकत्वाभावेन प्रकारपरत्वेऽ-दोषात् । यदि तु रजताद्याकारपरिणतज्ञानस्योत्तरज्ञानं प्रति न रजतत्वेन कारणता अपि तु पूर्वज्ञानत्वेनैव, तदा ज्ञानात्मकरजतत्वस्य कस्यामपि जनकतायामनवच्छेदकत्वेन ज्ञाना-तिरिक्तपदं न देयम् । वस्तुतस्तु भ्रमविषयरजतत्वस्य पूर्वज्ञानत्वस्य च ज्ञानातिरिक्त-स्यासद्भावे एकस्य कारणतावच्छेदकत्वं नापरस्येति न नियन्तुं शक्यम् । नच 'अयं घट' इत्यादिघटत्वादिनिष्ठानवच्छिन्नप्रकारताकप्रमित्यव्याप्तिः, तादृशधर्मावच्छिन्नविषयताकत्वस्यैव विवक्षणीयत्वात्, पुरोवर्तित्वादेर्ज्ञानातिरिक्तकार्यकारणतानवच्छेदकत्वेन भ्रमेऽनतिप्रसङ्गादिति दिक् । अभिप्रायाविसंवादः = सफलकृतिजनकेच्छाजनकत्वम्** । सम्भवादिति । **स्वाप्न-**

राजहंसः

मूले 'प्रमाणमविसंवादिज्ञान' मित्यादि प्रमाणवार्तिके धर्मकीर्तिवाक्यम् । **पुरोवर्तित्वादेर्ज्ञानाति-रिक्तकार्यकारणतानवच्छेदकत्वेनेति** । पुरोवर्तित्वस्यानुगतधर्मस्थानीयापोहरूपत्वेऽतिप्रसक्ततया

भारती

अर्थक्रियाकारित्व प्रतीयमानरूप (ज्ञानविषयीकृतरूप) से ही विवक्षित है अतः भ्रम में अतिव्याप्ति न होगी, तो कह नहीं सकते, क्योंकि भ्रम का विषयरजतत्व एवं पूर्वज्ञानत्व इन दोनों के ज्ञानातिरिक्त असद्भाव होने पर पूर्वज्ञानत्व कारणतावच्छेदक है और रजतत्व कारणतावच्छेदक नहीं है इसका निश्चय नहीं कर सकते ।

यदि कहें कि उस (पूर्वज्ञान) की अर्थक्रिया (कार्य-उत्तरज्ञान) देखने से उसमें (पूर्वज्ञान में) अर्थक्रियाकारित्व निश्चय हो जायेगा । रजत का कोई कार्य नहीं देखा जाता है अतः उसमें प्रतीयमानरूपेण रजतत्वेन रूपेण अर्थक्रियाकारित्व नहीं है तो यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि अर्थक्रिया के विना भी अर्थक्रियाकारित्व का ज्ञान हो सकता है, कारण कि-प्रतिवादि के मत में स्वप्नज्ञान की विषयीभूत सफलकृति ज्ञानात्मक रूप से उत्पन्न होती है ।

कालान्तराविसंवादस्य च दुरवधारणत्वात् । एतेन प्राप्त्यादियोग्यता संवादार्थ इत्यादि निरस्तम्; दुराबाध इव चायं धर्मकीर्तेः पन्था इत्यवहितेन भाव्यमिहेति । इत्यविसंवादित्वखण्डनम् ।

शारदा

प्रत्ययविषयीभूतायाः फलविशिष्टायाः कृतेः परमते ज्ञानात्मकत्वेनोत्पन्नत्वादित्यर्थः। प्राप्त्यादियोग्यता = हानोपादानान्यतरयोग्यता, बौद्धमते उपेक्षणीयस्यापि हेयान्तर्भावाभ्युपगमात्तद्वियकप्रमित्यव्याप्तिर्न देशनीया, भ्रमविषयीभूतरजतादिकं तु ज्ञानात्मकत्वेन प्रतिपत्तृरूपत्वान्न हेयं नाप्युपादेयम् , भ्रमविषयीभूताधिष्ठानस्य बहिष्ट्वाभ्युपगमेन हेयोपादेयान्यतरत्वेऽपि स्वनिष्ठविषयताया हेयोपादेयानिष्ठविषयतायाश्च भिन्ना या विषयता तदनिरूपकत्वविवक्षायामदोषः, ज्ञानमात्रस्य स्वविषयकत्वेनासम्भववारणाय स्वनिष्ठविषयताया इति । नचैवं भ्रमप्रकारनिष्ठविषयताया अपि स्वनिष्ठत्वेनातिव्याप्तिस्तदवस्थेतिवक्तव्यम्; स्वनिष्ठविषयतापदेन ज्ञानत्वावच्छिन्नविषयताया विवक्षणीयत्वादिति दिक्। निरस्तमिति । **योग्यताया उक्तरीत्या दुर्ज्ञेयत्वादिति भावः । एतेन सफलप्रवृत्तिजनकत्वं प्रमात्वमिति निरस्तम्; जनकत्वस्य योग्यत्वरूपत्वे प्रमात्वस्यैव तादृशयोग्यतावच्छेदकत्वात्प्रमात्वग्रहमन्तरेण न तादृशयोग्यत्वग्रहसम्भवः । नच जनकत्वमुपधायकत्वमेव विवक्षणीयम्, सर्वत्र प्रवृत्त्युपधाने मानाभावात्, अस्ति हि कस्यचित्पुंसः किञ्चिदिष्टसाधनं किञ्चिदनिष्टसाधनम्, किञ्चिच्चोभयविलक्षणमिति सार्वजनीनव्यवहारबलादुपेक्षणीयस्यावश्योपेयत्वादिति । दुराबाध इत्यादिकं सोपहासम् ।** अवहितेनेति । **अवधानेन सहेत्यर्थः भावे क्तः तस्य कर्तरि सकर्मकस्यासम्भवात् ।** यत्तु–**उत्पादविशेषः प्राप्तियोग्यताऽविसंवाद**

राजहंसः

न घटादिनिष्ठकारणतायामवच्छेदकत्वम्, अननुगतत्वे तु स्वलक्षणमात्रात्मकतया न स्वलक्षणनिष्ठकारणतावच्छेदकत्वसम्भवः, नहि तेनैव तन्निष्ठकारणताऽवच्छिद्यते । ज्ञानं प्रत्यालम्बनविधया पुरोवर्तिनः कारणत्वे तु तदात्मकपुरोवर्तित्वस्य तन्निष्ठकारणतावच्छेदकत्वानुपपत्तावपि सामान्यस्थानीयापोहरूपपुरोवर्तित्वस्य स्वावच्छिन्नविषयताकज्ञाने आलम्बनविधया कारणतावच्छेदकत्वसम्भव इति भावः ।

भारती

यदि कहें कि अर्थक्रिया (कार्य) विषयक प्रमा से अर्थक्रियाकारित्व का अवधारण करेंगे तो यह कहना सर्वथा अनुचित है क्योंकि प्रमा ही तो निरूप्यमाण है । (प्रमात्व के निश्चयार्थ ही तो विचार प्रस्तुत अद्यावधि प्रमात्व का निश्चय ही नहीं है अतः लक्षण में उसका निवेश करने पर आत्माश्रयादिदोष आपतित होंगे ।

यदि कहें कि अभिप्राय (सफलकृतिजनक इच्छा) के अविसंवाद से अर्थात् सफलकृतिजनकेच्छाजनकत्वरूप अभिप्रायाविसंवाद से सब ज्ञानों में प्रमात्व का निश्चय होता है, तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि यदि तत्काल में ही अभिप्राय का अविसंवाद विवक्षित है, तो स्वाप्नप्रत्यय (स्वाप्नभ्रम) में भी स्वप्नकाल में अभिप्राय का अविसंवाद है अतः स्वाप्नभ्रम में उक्त प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । और यदि कालान्तर में अभिप्राय

अथाबाधितत्वादिखण्डनम्

अबाधितानुभूतिः प्रमेत्यपि निरस्तम् । तदानीं बाध-विरहस्यातिप्रसञ्जकत्वात् , कालान्तरेऽपि बाधविरहस्य च दुर्निरूपत्वात् , स्वतो बाधविरहस्यातिप्रसञ्जकत्वात् ,

शारदा

इति यदि धर्मकीर्तिः समाधत्ते तदा क्षणभङ्गभङ्गश्रमोन्मूलनीयोऽयं पक्ष इत्याह दुराबाध इवेति । तदपेशलम्–**भ्रमविषयरजतादेरपि धर्मकीर्तिमते बहिरसत्त्वेऽपि ज्ञानात्मकतया सत्त्वेन क्षणिकतया चेतनमनपेक्ष्य कारणकूटाधीनोत्पत्तिस्वभावत्वरूपोत्पाद-विशेषापरपर्यायप्रतीत्यसमुत्पादालिङ्गितत्वादिति । विस्तरेण प्रतीत्यसमुत्पादविचारस्तु सत्यवसरे करणीय इति** । इति खण्डनशारदायामविसंवादित्वखण्डनम् ।

अबाधितेति । **अबाधितत्वमनुभूतौ कालविशेषपुरुषविशेषानवच्छिन्नं भ्रमत्वज्ञापक-ज्ञानाविषयत्वं भ्रमत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितानाहार्यज्ञानीयविशेष्यतानाश्रयत्वमिति यावत्। अथवा तादृशानवच्छिन्नस्य तदभावप्रकारकप्रतीतिविषयत्वाभावस्याश्रये तदनुभवत्वमेव तत्प्रमात्वमबाधितेत्यादिना विवक्षितम् । एवञ्चात्रानवच्छिन्नत्वान्ताविवक्षायां** तदानीमिति स्वत इति च **दूषणम् । स्वस्य प्रतिपत्तुरित्यर्थः । तद्विवक्षायामपि कदाचित्किञ्चित्पुरुषी-**

राजहंसः

सफलप्रवृत्तिजनकत्वमिति । प्रवृत्तिरत्र 'यत्नमात्रम्, तेनानिष्टसाधनज्ञाने नाव्याप्तिः, यत्नजनकत्वं च ज्ञाने इच्छादिद्वारकम् । **सकर्मकस्यासम्भवादिति** । अवहितोऽस्मीत्या-दिबहुलप्रयोगस्तु 'अर्श आद्य' जन्तताामादाय । नदी वहतीत्यादिवत्कर्मणोऽविवक्षया वा सकर्मकस्यापि समर्थनीय ईदृशः प्रयोगः ।

विस्तरेणेति। दर्शनसर्वस्वे विस्तरो दर्शित एव। **इत्यविसंवादित्वखण्डनशारदायांराजहंसः।**

भारती

का अविसंवाद विवक्षित है तो किसी भी ज्ञान में कालान्तर में भी अविसंवाद ही रहेगा यह निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्वप्न में एवं वाक्याभासजन्य ज्ञान में सभी पदार्थों का भान होता है यह पहले कह चुके हैं ।

इसी से - प्राप्त्यादि योग्यता अर्थात् हान उपादान अन्यतर योग्यता ही अविसंवाद है यह कहना भी निरस्त हो गया, क्योंकि उक्तरीति से योग्यता का ही निश्चय नहीं कर सकते । तस्मात् धर्मकीर्ति का यह लक्षण दुराबाध सा प्रतीत होता है अतः इससे सावधान रहना चाहिए । यहाँ ''दुराबाध इव'' यह सोपहास (उपहास मात्र) है । क्योंकि बाध चुके हैं ।

अबाधितत्वादि-खण्डन

''अबाधित अनुभूतिः प्रमा'' यह लक्षण भी युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि यहाँ (अनुभूति में अबाधितत्व भ्रमत्वज्ञापक ज्ञानाविषयत्वरूप अर्थात् भ्रमत्वनिष्ठ प्रकारतानिरूपित अनाहार्य ज्ञानीय विशेष्यता का अनाश्रयत्व रूप विवक्षित है या तदभावप्रकारक प्रतीतिविषयत्वाभाव के आश्रय में तदनुभवत्व ही प्रमात्व है । इन दोनों ही पक्षों में भ्रमत्वज्ञापक ज्ञानविषयत्वाभावदिरूप बाधविरह तत्काल अर्थात् ज्ञानकालरूपकालविशेष में विवक्षित है या सभी कालों में बाधविरह विवक्षित है ।

सर्वजनबाधविरहस्य च दुरवधारणत्वादिति । तर्कसंशय-विपर्ययस्मृतिव्यतिरिक्ता प्रतीतिः प्रमेत्यपि न, स्मृति-व्यतिरिक्तत्वखण्डनन्यायेन निरस्तत्वादिति ।

शारदा

यतादृशभ्रमीयविशेष्यताश्रयत्वस्यानुभूतौ, तत्प्रकारानुभवविशेष्ये च तदभावप्रकारकभ्रम-विशेष्यत्वस्य सम्भवमभिप्रेत्य कालान्तरे इति सर्वजनेति **च दूषणम् । उभयत्रापि प्रतीतौ प्रमात्वविवक्षणे त्वात्माश्रय इति भावः ।** संशयेति । **वृक्षः कपिसंयोगी न वेति संशयस्य कोटिद्वयविरोधावगाहितया मूलावच्छिन्नो वृक्षः कपिसंयोगी नवेत्यस्य चैकावच्छेदेन भावाभावोभयावगाहितयाऽयथार्थत्वेन तद्भेदनिवेश आवश्यकः, संशयमात्रस्याप्रमात्वव्यवहारे तु सुतरामिति भावः ।**

भारती

यदि कालविशेष (ज्ञानकाल) में बाध विरह अपेक्षित है तो इदं रजतम् इत्यादि भ्रम में भी भ्रमात्मक ज्ञानकाल में बाधविरह होने से अबाधितानुभूति प्रमा इस प्रमालक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी और यदि कालान्तर में भी अर्थात् कालविशेष से अनवच्छिन्न बाधविरह ही विवक्षित है तो असर्वज्ञ जन को समस्त कालों का ज्ञान न होने से कालविशेषानवच्छिन्न बाधविरह का ज्ञान नहीं हो सकता, अत उक्त प्रमा लक्षण असम्भव दोष ग्रस्त हो जायेगा।

किञ्च वह बाधविरह पुरुषविशेषात्वाच्छिन्न विवक्षित है या पुरुषविशेषानवच्छिन्न, अर्थात् पुरुषविशेष को बाध का विरह चाहिए या सभी पुरुषों को बाध का विरह होना चाहिए । यदि प्रथम पक्ष मानें तो इदं रजतम् भ्रम में भी भ्रान्तपुरुष को बाध का विरह है अतः भ्रान्तिज्ञान में उक्त प्रमालक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा, और यदि सभी पुरुषों को बाध विरह कहें तो समस्त पुरुषों का ज्ञान न होने से सर्वपुरुषकर्तृक बाध विरह के ज्ञात न होने से उक्त लक्षण असम्भव दोष ग्रस्त हो जायेगा ।

(किञ्च भ्रमत्वज्ञापक ज्ञानाविषयत्वादि रूप बाध के स्वरूप में प्रविष्ट ज्ञानादि में यदि प्रमात्वविवक्षित हो तो आत्माश्रय दोष भी होगा ।)

किञ्च - तर्क संशय विपर्यय (भ्रम) एवं स्मृति से व्यतिरिक्त प्रतीति (ज्ञान) ही प्रमा है'' यह लक्षण ठीक नहीं है, स्मृतिव्यतिरिक्तत्व (स्मृत्यन्यत्व) की खण्डनरीति से ही यह लक्षण खण्डित हो चुका है । (अर्थात् यत्किञ्चित् तर्कादिव्यतिरिक्तत्व (यत्किञ्चित्तर्काद्यभाव) कहें यत्किञ्चित् तर्कादि का अन्योन्याभाव - तदतिरिक्त तर्कादि व्यक्तियों में रह जाने से उक्त लक्षण तर्कादि व्यक्तियों में अतिव्याप्त हो जायेगा और यदि सर्वतर्कादिव्यतिरिक्तत्व विवक्षित है तो समस्त तर्कादि के असर्वज्ञदुर्ज्ञेय होने से प्रमालक्षण असम्भव हो जायेगा इत्यादि दोष पूर्वोक्त है ।)

किञ्च - ''प्रमात्वजातिविशिष्टोऽनुभवः प्रमा'' यह लक्षण भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि सङ्करदोष को जातिबाधक मानने वालों की दृष्टि में प्रमात्व जाति ही नहीं हो सकती, कारण कि प्रमात्व को छोड़कर साक्षात्वनिर्विकल्प ज्ञान में है और साक्षत्व को छोड़कर प्रमात्व

जातिसङ्करमिच्छतश्च प्रमात्वलक्षणजात्यभिसम्बन्धात्प्रमेत्यपि दुर्लक्षणम् , अस्याज्ञातस्य तद्व्यवहारजनकत्वे प्रमायामप्रमाभ्रम-संशयौ न स्याताम् , दोषाभावसहकृतस्य तथात्वे चाजायमानभ्रम-संशयप्रमादिव्यवहारे ज्ञानमात्रावगमोदाहरणेऽपि तदापत्तेः । ज्ञातेनानेन लक्षणेन व्यवहारे च कथमिदमेव ज्ञातव्यमिति वक्तव्यम्, न तावत्प्रत्यक्षेण मानसेन, तथासति क्वचिज्जातायां प्रमायामप्रमाविपर्ययसंशयानवकाशादिः स्यात् , धर्मिवन्मनसैव

शारदा

जातिसङ्करमिति । **सङ्करस्य जातिबाधकत्वमित्यर्थः । प्रमात्वं विहाय साक्षात्त्वं निर्विकल्पके तस्य भ्रमप्रमाबहिर्भूतत्वोपगमात्, साक्षात्कारिभ्रमे वा, इयं रजतत्वस्य प्रमेत्यादि-व्यवहारेण प्रकारांशमादायैव प्रमात्वव्यवस्थितेः, धर्म्यंशे याथार्थ्यमात्रसद्भावेऽपि प्रमात्वाव्यवहारात् । साक्षात्त्वंविहाय प्रमात्वमनुमित्यादौ, उभयोः समावेशस्तु साक्षात्कारिप्रमितौ । चाक्षुषत्वरासनत्वादिनाऽप्येवं सङ्करः ।** प्रमात्वेति । **प्रमात्वेन लक्ष्यता प्रमात्वत्वेन च लक्षणता, अतएव "गुणानां च गुणत्वाभिसम्बन्ध" इति भाष्यसङ्गतिरिति भावः । सङ्करस्य जातिबाधकतानभ्युपगमेऽप्याह** अस्येति । **प्रमात्वस्येत्यर्थः ।** तद्व्यवहारेति। **प्रमात्वव्यवहारेत्यर्थः । अप्रमाभ्रमसंशयौ = अप्रमात्वप्रकारकभ्रमसंशयौ । तथात्वे = उक्तव्यवहारजनकत्वे ।** अजायमानभ्रमेत्यादि । **अजायमानो भ्रमत्वसंशयत्व-प्रमात्वादिप्रकारकव्यवहारो यस्मिन् तत्र, भ्रमत्वादिनिष्ठप्रकारतानिरूपितज्ञानीयविशेष्यताशून्ये इति यावत् । ज्ञानमात्रावगमोदाहरणे = ज्ञानत्वप्रकारकज्ञानीयविशेष्यतावति ज्ञाने । तदापत्तेः = विशेष्यतया प्रमात्वप्रकारकव्यवहारापत्तेः, दोषाभावसहकृतस्याज्ञातप्रमात्वस्य सत्त्वात् ।** अप्रमाविपर्ययसंशयेति । **अप्रमात्वप्रकारकविपर्ययसंशयेत्यर्थः । आदिना सकम्पप्रवृत्त्यनवकाशो गृह्यते । धर्मि = ज्ञानम् । वस्तुतस्तु योग्यव्यक्तिवृत्तित्वेन प्रमात्वस्य**

भारती

अनुमित्यादि प्रमाओं में रहता है, दोनों का समावेश साक्षात्कारिप्रमा में है इस प्रकार साङ्कर्य दोष होने से प्रमात्वजाति नहीं हो सकती । इसी प्रकार चाक्षुषत्व रासनत्वादि के द्वारा भी साङ्कर्य दोष है । तथाच उक्त प्रमालक्षण असम्भव दोषग्रस्त है ।

एवं साङ्कर्य दोष को जातिबाधक न मानने पर भी उक्त लक्षण ठीक नहीं है क्योंकि यह प्रमात्व का लक्षण अज्ञात ही प्रमात्वव्यवहार (इदं ज्ञानं प्रमा इत्याकारक व्यवहार) का यदि जनक है तो प्रमा में अप्रमात्वप्रकारक भ्रम तथा अप्रमात्वप्रकारक संशय नहीं होना चाहिए । यदि दोषाभावसहकृत अज्ञात प्रमात्व को प्रमात्वव्यवहार का जनक मानें (और अप्रमात्वप्रकारक भ्रम संशय स्थल में दोष के कारण प्रमात्व व्यवहार नहीं होता, अपितु दोषवशात् तादृशभ्रम संशयादि होते हैं ऐसा कहें) तो जिस ज्ञान में कदापि भ्रमत्व संशयत्व प्रमात्वादि प्रकारक व्यवहार नहीं हुआ है ऐसे ज्ञानमात्र के उदाहरण अर्थात् ज्ञानत्व प्रकारक ज्ञानीयविशेष्यतावत् ज्ञान में विशेष्यतया प्रमात्वव्यवहार होना चाहिए क्योंकि तादृशज्ञान में दोषाभाव सहकृत अज्ञातप्रमात्व विद्यमान है ।

निर्णीतत्वात् । चिह्नान्तरसापेक्षेण मनसा संवेदनम् चिह्नेनैव वा तेन लक्षणीभूय ज्ञापनमित्यपि प्रत्याशामात्रम् । तच्चिह्नेनैव

शारदा

योग्यत्वेऽपि दोषबलात्तत्संशयादिसम्भव इत्यवधेयम् । केचित्तु–एकस्यैव प्रमात्वस्य सर्वप्रतियोगिकत्वे रजतत्वाविषयकप्रमायामपीदं ज्ञानं रजतत्वप्रमेत्यापत्तिः । तत्र रजतत्व-प्रतियोगिकत्वविशिष्टप्रमात्वाधारताविरहान्न तथा प्रत्यय इति चेत्तथापि गुणे गुणान्यत्वविशिष्ट-सत्तेतिप्रतीतिवदत्र ज्ञाने रजतत्वप्रतियोगिकप्रमात्वमित्याधेयतावगाहिप्रतीतेरापत्तेः । वस्तुतस्तु तादृशाधारताया अतिरिक्तत्वोपगमे रजतत्वप्रतियोगिकत्वविशिष्टप्रमात्वस्यातिरिक्तत्वोपगमेन किमपराद्धम्, तस्यातिरिक्तत्वोपगमं विना तदाधारताया अतिरिक्ततोपगमस्य निर्मूलत्वाच्च, अनुपपद्यमानस्य स्वोपपादकमात्रकल्पकत्वात् । प्रतियोगिभेदेन प्रमात्वस्य भेदे तु नैकजातित्वम्, तासामनेकत्वे तु समूहालम्बनेऽनेकसमावेशार्थमवच्छेदकभेदः कल्पनीयः, तच्च न तत्तद्विषयित्वम्, अतिप्रसक्तत्वात्, अपि तु विशेष्यतासमानाधिकरणप्रकार-कानुभवत्वादिकमेवेति तेनैवान्यथासिद्धिस्तत्तत्प्रमात्वस्य । नचाखण्डप्रमात्वस्य गुणजन्यता-वच्छेदकत्वे लाघवात्तदभ्युपगमः, प्रमायां गुणजन्यत्वस्यानुपदं निरसनीयत्वात् , अखण्ड-धर्ममात्रस्य प्रतीतिसाक्षिकतया निरुक्तिविषयतामासेदुषोऽन्योन्याश्रयनिरस्तत्वाच्चेति प्राहुः। चिह्नान्तरेति । **अन्तरपदं प्रमात्वापेक्षया । चिह्नं = व्यञ्जकं विशेष्यतासमानाधिकरणप्रकार-**

राजहंसः

अबाधितत्वादिखण्डनशारदायां राजहंसः

चिन्तामणिटीकायां मथुरानाथोक्तं किञ्चिदालम्ब्य स्वाभिप्रेतमेवोपपादयति **केचित्तु एकस्यैवेत्यादिना । अन्तरपदं प्रमात्वापेक्षयेति ।** एवं च घटान्तरशब्दप्रयोगे भेदप्रतियोग्यनुयोगिनोर्घटत्वप्रतीतिवच्चिह्नान्तरशब्दप्रयोगे तयोश्चिह्नत्वप्रतीत्या प्रमात्वसाधारणं चिह्नत्वं यद्यपि लक्षणत्वरूपमेव स्यात्, तथापि जातिग्राहकप्रमाणसहकारिताया व्यञ्जके प्रसिद्धतया चिह्नशब्दस्य व्यञ्जकपरतयौचित्याद् व्याख्यानमादृतम् । वस्तुतस्त्वेवं मूले सम्पातायात एवान्तरशब्दः पर्यवस्यति। ननु चिह्नानां नानात्वेन तेषु केन जातिकल्पना प्रतिक्षेप्येत्यत्र विनिगमकालाभेन

भारती

यदि ज्ञात इस लक्षण को प्रमात्व व्यवहार का प्रयोजक (जनक) मानें तो लक्षण का ज्ञान ही कैसे हो, यह बतावें, क्योंकि मानस प्रत्यक्ष से लक्षण का ज्ञान हो नहीं सकता, कारण कि लक्षणविषयक मानस प्रत्यक्ष मानने पर उत्पन्न किसी प्रमा में अप्रमात्वप्रकारक विपर्यय (भ्रम) संशय नहीं होना चाहिए क्योंकि ज्ञानरूपधर्मि के समान प्रमात्व का भी निश्चय मानस प्रत्यक्ष से हो चुका है ।

यदि कहें कि चिह्न (व्यञ्जक) अर्थात् विशेष्यतासमानाधिकरण प्रकारकअनुभवत्वज्ञान से सहकृत मानस प्रत्यक्ष से लक्षण का ज्ञान होता है अथवा उक्त चिह्न ही व्याप्य बनकर लिङ्गरूप से प्रमात्व का ज्ञापन (प्रमात्वविषयक अनुमिति) करेगा । (तथाच तादृश चिह्न रूप सहकारी के अभाव में या चिह्न के अज्ञातदशा में उक्तविपर्यय संशय हो सकते हैं ।) तो यह

प्रमात्वजातिकल्पनाप्रतिक्षेपापत्तेः, तेषां नानात्वे च कानि तानीति वक्तव्यं स्यात्, तच्चिह्नानां यथोपन्यासं सर्वेषामेव दूषितत्वात् । प्रामाण्यपरतस्त्वव्युदस्तिप्रस्तावे च विस्तरेण दूषयिष्यामः । एतेन

शारदा

कानुभवत्वादिकं तज्ज्ञानसहकृतेनेत्यर्थः। लक्षणीभूय = व्याप्यीभूय। तथाच हेतुविधयेत्यर्थः। यथोपन्यासं = यथोक्तरीत्या । वस्तुतस्तु निष्कृष्टप्रमात्वलक्षणानामग्रहेऽपि प्रमात्वव्यवहारस्यानुभविकत्वेन तेषां लिङ्गविधया तद्धेतुत्वं व्यञ्जकत्वं वाऽप्रामाणिकमेव, तल्लौकिकप्रत्यक्षजनकप्रत्यक्षविषयस्यैव तद्व्यञ्जकत्वात् । प्रामाण्यपरतस्त्वेति । **अत्रायं निष्कर्षः– प्रायः प्रतीतीनां प्रमात्वस्यैव दर्शनेन तस्यौत्सर्गिकत्वमिव स्वतस्त्वमपि ज्ञप्त्युत्पत्त्योः। निश्चयत्वस्य विषयिताविशेषतया जातिविशेषतया वाऽगृहीताप्रामाण्यकस्य ज्ञानस्य प्रवर्तकतादिकल्पनापेक्षया निश्चितप्रामाण्यकस्य तस्य तादृशकल्पनायां लाघवेन दोषासमवहितस्वाश्रयविषयकग्रहत्वव्यापकनिश्चयत्वकत्वस्य प्रामाण्ये ज्ञप्तिस्वतस्त्वस्य मन्तुमौचित्यात् । ननु–ज्ञानग्रहे नियमेन प्रामाण्यभानसामग्रीविरहः । अथाज्ञाततायाज्ञानेऽभावेन साक्षिणाज्ञानस्यावश्यं ग्राह्यतया विशेष्यप्रकारयोरिव तद्वैशिष्ट्यस्याप्यवगाहनात्, व्यवसायलक्षणप्रत्यासत्तेस्तुल्यत्वात्, विशेष्यिताप्रकारितावच्छेद्यावच्छेदकभावानां पूर्वमनुपस्थितत्वेऽपि प्रमात्ववपुषि संसर्गतयैव प्रविष्टत्वेन साक्षिग्राह्यत्वसम्भवात् । साक्षिणो नित्यत्वेन विशेषणज्ञानाजन्यतया तद्विषयकत्वस्यैव विशेषणज्ञानजनकत्वेनाभिमतैर्नियम्यतयाऽवश्यं वक्तव्यत्वाच्च। विशिष्टबुद्धित्वविशेषणज्ञानत्वाभ्यां कार्यकारणभावे मानाभावाच्च। नच साक्षिप्रत्यक्षस्य मानसप्रत्यक्षस्थानीयत्वेन मनसो बहिरस्वातन्त्र्ये साक्षिणोऽपि तथात्वमन्यथाऽनुभववैषम्यापत्तेरिति देश्यम्; व्यवसायस्योपनायकस्य सद्भावात् । उपनयसहकारेणापि मनसो बहिर्विषयकत्वानभ्युपगमे बाधबुद्ध्युपनीततदभाववद्विशेष्यकत्वभानेन तदभाववति तत्प्रकारकत्वरूपाप्रामाण्यग्रहादिर्भवदभ्युपगतोऽ-**

राजहंसः

जातिरप्युपेयत इत्याशङ्क्याह मूले **तेषामिति**। अनुगतत्वेनाननुगतत्वेन वाऽभिमतानामिति शेषः। एवं चाननुगतेन व्यञ्जकेन कथमनुगतव्यङ्ग्यान्यथासिद्धिरित्यपि नाशङ्कनीयम् , व्यञ्जकमात्रनिरासे व्यङ्ग्यताया एव जातावसम्भवात् । न च व्यञ्जकं विनैव साऽऽस्ताम् , व्यञ्जकाग्रहेणेव दोषविशेषेणापि जातौ संशयोपपादनसम्भवाद् व्यञ्जकनैयत्यस्य तस्यामप्रामाणिकत्वादिति वाच्यम् , केचित्त्वेकस्यैवेत्यादिना शारदायां दत्तोत्तरत्वात् । अधिकं त्वनुगतधर्ममात्रखण्डनमधिकृत्य प्रत्यक्षखण्डनशारदायामदर्शयम् ।

भारती

कथन भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि जिस चिह्न के द्वारा प्रमात्वरूप लक्षण का ज्ञान मानेंगे उसी चिह्न के द्वारा ही प्रमात्वव्यवहार की उपपत्ति भी हो जायेगी, ऐसी स्थिति प्रमात्वव्यवहार की उपपत्ति के लिए प्रमात्व जाति की कल्पना करना व्यर्थ हो जायेगा । एवं वे चिह्न भी यदि नाना (अनेक) हैं तो वे चिह्न कौन-कौन हैं यह भी कहना होगा, क्योंकि प्रमात्व जो जो चिह्न तत्त्वानुभूतित्वादि सम्भावित है उन सभी चिह्नों को यथोक्तरीति से दूषित कर चुके हैं ।

किञ्च प्रमात्वपरतस्त्व के खण्डन-प्रस्ताव में हम इसे विस्तार से दूषित करेंगे ।

शारदा

सामाञ्जस्यमश्नुवीत । नच–प्रामाण्यवद्विशेष्यकत्वविशिष्टप्रामाण्यप्रकारकत्वरूपं प्रामाण्यं स्वगतं साक्षिग्राह्यं नवा, नाद्यः, साक्षिणः स्वविषयकत्वानङ्गीकारेण वैशिष्ट्ये च तस्यानुप्रविष्टत्वेन स्वगतप्रामाण्यग्रहणानुपपत्तेः, प्रामाण्यं स्वाश्रयग्राहकेण गृह्यते एवेत्यभ्युपगमाच्च, तादृशप्रामाण्यप्रकारकत्वरूपप्रामाण्यवद्विशेष्यकत्वविशिष्ट-प्रामाण्यप्रकारकत्वस्यापि साक्षिगतत्वेन तद्घटितप्रामाण्यान्तरस्यापि तथात्वेन च साक्षिणो विषयापर्यवसानप्रसङ्गाच्च , अनुभवविरोधाच्च । न द्वितीयः, अप्रतीतप्रामाण्यस्याशक्याभ्युपगमत्वात् । ज्ञानान्तरस्य निश्चितप्रामाण्यकस्यैव विषयनिश्चयरूपताया वाच्यत्वेनानवस्थानप्रसङ्गादिति–वाच्यम् ; घटत्ववति घटत्वप्रकारत्वाद्यतिरिक्तप्रामाण्यानामज्ञाततया तादृशातिरिक्तत्वादिना रूपेण कदापि साक्षिणाग्रहणसम्भवात्, ज्ञाततयाऽज्ञाततया वा सर्वं साक्षिभास्यमिति सिद्धान्तात् । साक्षिणि स्वात्मकज्ञानविषयकग्रहत्वस्यैवाभावेनोक्तप्रामाण्यानां विशिष्याग्रहणेऽपि निरुक्तज्ञप्तिस्व-तस्त्वाभङ्गात् । साक्ष्यतिरिक्तानुव्यवसायस्य ज्ञातताया: स्वविषयकत्वस्य चाप्रामाणिकत्वेन मुरारिभट्टप्रभाकरमतानां त्वसाङ्गत्यमेवेति चेन्न; सप्रकारकत्वघटितप्रमात्वस्य वेदान्त्य-सम्मतत्वात्, समानविभक्त्यन्तपदचयजन्यतयाऽभ्युपगतानां निर्विकल्पकानामसङ्ग्रहात् । नच वेदान्तिमते भ्रमस्याविद्यावृत्त्यात्मकत्वेन तत्र ज्ञानत्वानभ्युपगमेन ज्ञानत्वमेव प्रमात्वमिति वाच्यम्; प्रमात्वस्य ज्ञानत्वसमनियतत्वेऽपि ज्ञानत्वानात्मकत्वात्, नहि ज्ञानत्वं प्रमापदमुख्यार्थः। नवा ज्ञानत्वग्रहस्य प्रवृत्तिहेतुत्वम्, अनभ्यासदशापन्नज्ञानेऽपि साक्षिणा भवन्मते ज्ञानत्वस्य ग्रहात् । अतएव भ्रमानभ्युपगन्त्रापि तद्वति तत्प्रकारकत्वस्यैव स्वतस्त्वं समर्थ्यते । नचाज्ञात-विषयकत्वमेव प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यम्, घटत्वेनेमं जानामीत्यत्र ज्ञानत्वस्याज्ञानविरोधित्वरूपस्य भानेन घटेऽज्ञातताया अपि भानसम्भवादिति वाच्यम्; संस्कारानुद्बोधदशायां पूर्वमनु-भूतस्याप्यज्ञातत्वेन स्मृतेरज्ञातविषयकत्वपरिहाराय स्वकरणव्यापारोत्पत्त्यव्यवहितपूर्वक्षणे यदज्ञातं तद्विषयकत्वस्यैव प्रमात्वरूपताया वाच्यत्वेन तस्योक्तानुभवेऽभानात् । तावन्मात्रस्य ग्रहेऽपि ज्ञाने बाध्यविषयकत्वग्रहे प्रवृत्त्यनुदयेन तस्य ज्ञप्तौ स्वतस्त्वस्यानुपपादनीयत्वाच्च। असत्त्वापादकत्वरूपोपाधिविशेषाश्रयाज्ञानविषयत्वाभावप्रयोजकवृत्तिविशिष्टचित एव ज्ञानपदार्थत्वाच्च । नापि व्यवहारकालाबाध्यविषयकत्वमेव तद्घटितमेव वा प्रमात्वं स्वतः, मिथ्यात्वनिश्चयाविशेष्यत्वरूपाबाध्यत्वस्य साक्षिणा मानन्तरासहकृतेन ग्रहणासम्भवात्। नच मिथ्यात्वेन यदज्ञातं तद्विषयकत्वमेव प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यम्, तद्ग्रहस्यैव प्रवृत्त्युपधायकत्वात्, अज्ञाततया च मिथ्यात्वविशिष्टस्य साक्षिणा ग्रहणसम्भवः, यथा च मिथ्यात्वज्ञानं पूर्वं

राजहंसः

स्वकरणव्यापारेत्यादि । स्मृतेस्तु स्वकरणानुभवव्यापारसंस्कारोत्पत्त्य-व्यवहितपूर्वक्षणेऽनुभवेन गोचरीकृतविषयकत्वमेव, न तु तदाऽज्ञातविषयकत्वमिति भावः । **वृत्तिविशिष्टचित एव ज्ञानपदार्थत्वाच्चेति** । ज्ञानत्वस्याज्ञानविरोधित्वरूपतोक्तिनिराकरणाय वस्तुगतिस्तावद्वक्तव्यैवेयम्, घटं जानामीत्यनुभवे च वृत्तावज्ञानविषयत्वाभावप्रयोजकत्वस्य वस्तुगत्या सतोऽपि स्फुरणाभावेन न कथमप्यज्ञातविषयकत्वभानसम्भवइति भावः ।

शारदा

नापेक्षणीयं तथोक्तमिति वाच्यम्; मिथ्यात्वमज्ञातवतोऽपि प्रवृत्तिदर्शनेन तत्पूर्वं ज्ञानग्रहे नियमेनाज्ञाततयापि तद्भानस्य शपथैकनिर्णेयत्वादिति चेन्न; निर्विकल्पकात्पूर्वं सविकल्पस्याभ्युपगमेन सप्रकारकत्वघटितप्रमात्वस्यैव प्रवृत्त्युपधायकज्ञानग्रहविषयत्वोपगमे क्षत्यभावात्। वस्तुतस्तु सद्विषयकज्ञानत्वमेव प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यम्, तद्ग्रहस्यैव प्रवर्तकत्वात्, सत्त्वं च न त्रिकालाबाध्यत्वं नापि व्यवहारकालाबाध्यत्वं येनोक्तरीत्या तस्य ग्रहणासम्भवः शङ्क्येत, अपि तु सामान्यादिसाधारणं व्यवहारकालाबाध्यत्वनियतमखण्डमेव, सन्तं घटं सत्त्वेन वा घटं जानामीति प्रतीत्या तस्यैवावगाहनात्, बाधात्पूर्वं भ्रमेऽपि तद्भानं निर्बाधमेवेत्यवधेयम्। नच–प्रामाण्यस्य संशयान्यथानुपपत्त्याऽस्वतस्त्वमिति–वाच्यम्; दोषविशेषस्य प्रमात्वनिश्चयप्रतिबन्धकताभ्युपगमेन समाहितत्वात्। नच–संशयस्य धर्मितावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यत्वेन पूर्वं ज्ञानग्रहस्यावश्यकत्वे तत्र प्रामाण्यस्य भाने तत्संशयानुपपत्तिरिति–देशनीयम्; संशयान्यथानुपपत्त्यैव प्राचीनज्ञानग्रहेऽपि प्रामाण्याविषयकत्वस्य तदर्थं दोषविशेषस्य च कल्पनोपपत्तेः, संशये धर्मिविशेषभानं विषयिताविशेषरूपं जातिरूपं वा सम्भावनात्त्वापरपर्यायोत्कटत्वं च प्रति धर्मिज्ञानसामग्रीत्वेनैव नियामकताया अनन्यथासिद्धत्वमात्रकल्पनाप्रयुक्तलाघवबलात्सम्भवेन धर्मितावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेन संशयकारणतायां मानाभावात्, तव मते शरीरलाघवेऽपि विनिगमकाभाव एव, प्रत्युत संशयस्यापि धर्मिविषयकत्वेन ततः पूर्वं धर्मिज्ञानसामग्र्या निश्चितत्वेन धर्मिज्ञानस्य च मध्ये सन्दिग्धोत्पत्तिकत्वेन तत्त्वेन कारणतायां व्यभिचारसन्देहात्, परित्यज्य च निश्चिताव्यभिचारकं गृह्यमाणव्यभिचारकस्य कारणत्वकल्पनानौचित्यात्। प्रामाण्यनिश्चयस्तु दोषाभावस्थलीयप्रवृत्तेः पुरा निष्कम्पप्रवृत्तौ निश्चितप्रामाण्यकस्य ज्ञानस्य कारणतां मन्वानानां प्राचीनतर्कचणानामप्यानुभविकः, किम्पुनरपरेषां प्रमात्वस्वतस्त्वविदाम्। तत्सामग्र्या उपवर्णितत्वेन तस्य दुर्वारत्वाच्च। एतेनागृहीताप्रामाण्यकस्यैव ज्ञानस्य प्रवर्तकता नतु निश्चितप्रामाण्यकस्य, प्रामाण्यनिश्चयस्य प्रवृत्तेः पूर्वं सांशयिकोत्पत्तिकत्वादिति नाशङ्कनीयम्। दोषस्तु भूयः प्रवृत्त्यभावरूपोऽनभ्यासः, भूयस्त्वं च त्रिचतुरादिसाधारणमपि न त्रित्वचतुष्ट्वादिरूपमपि तु प्रतीत्यनुगमादनुगतमेव। तच्चोपाधिर्वाऽन्यद्वा किञ्चिदिति तु वायसदर्शनानुसन्धानम्। एतेनानुगतप्रतिबन्धकस्याभावेनानन्ततत्तत्क्षणसम्बन्धानां प्रतिबन्धकताकल्पनापेक्षयाऽनुव्यवसायस्य प्रामाण्याग्राहकत्वकल्पनमेवोचितमिति परास्तम्।

एवं जन्यप्रमात्वं न जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतातिरिक्तकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकं प्रमाणाभावादिति जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयातिरिक्ताजन्यत्वरूपोत्पत्तिस्वतस्त्वमपि। न चानित्यप्रमात्वं तादृशकारणतातिरिक्तकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकमनित्यज्ञानत्वव्याप्यकार्यतावच्छेदकधर्मत्वादप्रमात्ववदिति वाच्यम्; अनित्यप्रमात्वगुणत्वयोरननुगतत्वेन कार्यताकारणतानवच्छेदकत्वात्, तत्प्रकारकज्ञानजनकसामग्र्या तत्प्रकारकत्वस्य तद्वदिन्द्रियसन्निकर्षादिना च तद्वद्विशेष्यकत्वस्य ज्ञाने सम्भवेन

शक्तिविशेषः प्रमात्वं तद्योगः प्रमालक्षणमित्यपास्तम् ; दुरवधारणत्वात् । इत्यबाधितत्वादिखण्डनम् ।।

अथ प्रमालक्षणसामान्यखण्डनम्

यच्च किञ्चित्प्रमाया लक्षणमुच्यते तदज्ञातं ज्ञातमात्रं वा यदि तत्त्वव्यवहारकं तदाऽत्यापत्तिः, प्रमितञ्चेत्प्रमानवधारणे तस्य दुरवधारणता । माऽवधारि, वस्तुतस्तथेति चेन्न; वस्तुतो न तथैव किन्नेति वादिन्यनुत्तरापत्तेः, प्रमात्वनिरूपणवैयर्थ्यापाताच्च, वस्तुतस्तु प्रमयैव घटादितत्त्वव्यवहारोऽपि तर्ह्यस्त्वित्यास्तां विस्तरप्रसङ्गः। इति खण्डनखण्डखाद्ये प्रमालक्षणसामान्यखण्डनम् ।

शारदा

प्रमात्वस्यार्थसमाजग्रस्तत्वाच्च ।अतएव घटीयप्रत्यक्षप्रमात्वादेरपि न भूयोऽवयवेन्द्रियसन्निकर्षादिजन्यतावच्छेदकत्वम् । अप्रयोजकत्वाच । अनित्यज्ञानत्वावच्छिन्नकारणकूटेनैवाकस्मिकत्वस्य परिहारेण तदापत्तेरतर्कत्वात् । दोषस्याप्रमात्वप्रयोजकत्वेन तदभावस्याप्रमात्वविघटकतयैवान्यथासिद्धेर्नतज्जन्यत्वमपि । एतेन प्रमायाः स्वतस्त्वेऽप्रमापि स्वत एव स्यात्, अप्रमां प्रत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां दोषस्य हेतुत्वे प्रमां प्रति दोषाभावस्यापि हेतुत्वं स्यादित्यपास्तम्। अप्रमायाः सर्वमते दोषजत्वेन वेदान्तिमते तत्र ज्ञानत्वस्यैवानभ्युपगमेन च तस्या ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यत्वविरहेण तज्जन्यत्वेनाप्रमायाः प्रमात्वं नापादनीयमिति । शक्तिविशेषः **निष्कम्पप्रवृत्तिजनकतावच्छेदको भट्टादिसम्मतः ।** दुरवधारणत्वादिति । **शक्तिसद्भावस्य तत्प्रतीतौ प्रमात्वनिर्णयं विनाऽनभ्युपगमनीयत्वात् ।** इति खण्डनशारदायामबाधितत्वादिखण्डनम्।

तत्त्वव्यवहारकं = प्रमात्वस्य यथार्थव्यवहारजनकम् । अत्यापत्तिः = भ्रमादौ प्रमात्वव्यवहारस्य यथार्थत्वापत्तिः । माऽवधारिप्रमितत्वेन । तथा = प्रमितम् । तत्त्वव्यवहारः = वास्तवत्वव्यवहारः । इति शिवम् । इति खण्डनशारदायां प्रमालक्षणसामान्यखण्डनम्।

समाप्तं प्रमात्वखण्डनप्रकरणम् ।।

राजहंसः

प्रमात्वस्यार्थसमाजग्रस्तत्वाच्चेति । तत्प्रकारकत्वतद्वद्विशेष्यकत्वरूपप्रयोज्यद्वयसमाजात्मकप्रमात्वस्य प्रत्येकप्रयोजकसमाजमात्रायत्तत्वादित्यर्थः । प्रयोज्यद्वयं प्रत्येकं निष्पादयितुं प्रवृत्तः प्रयोजकसमाजः प्रयोज्यद्वयसमाजमनुनिष्पादयतीत्यार्थत्वमनुनिष्पादकत्वमत्र, तस्यानुनिष्पादितत्वरूपत्वे तु प्रमात्वस्य प्रत्येकप्रयोजकसमाजानुनिष्पन्नः = तन्मात्रायत्त इति यावत् , यः प्रयोज्यसमाजस्तदात्मकत्वादिति कथञ्चिल्लब्धव्यम् ।

इत्यबाधितत्वादिखण्डनशारदायां राजहंसः ।

भारती

भट्ट का यह मत भी निरस्त हो जाता है कि - निष्कम्पप्रवृत्तिजनकतावच्छेदक रूप शक्ति विशेष ही प्रमात्व है और उस प्रमात्व का सम्बन्ध अर्थात् आश्रयत्व ही प्रमा का लक्षण है । इसके निरस्त होने का कारण है कि शक्तिसद्भाव (सत्ता) विषयक प्रतीति में प्रमात्वनिश्चय

भारती

के विना शक्ति का सद्भाव (शाक्तसत्ता) ही स्वीकार नहीं कर सकते। तथाच शक्तिविशेष को प्रमात्व मानकर भी प्रमा का लक्षण नहीं कर सकते।

प्रमा लक्षणसामान्य-खण्डन

जो कुछ भी प्रमा का लक्षण करें, वह अज्ञात होकर या ज्ञातमात्र होकर प्रमात्व के यथार्थव्यवहार का कारण होगा तो भ्रमादि में भी प्रमात्व का व्यवहार यथार्थ होने लगेगा। यदि कहें कि लक्षण प्रमित होकर प्रमात्वव्यवहार का कारण होता है, तो अद्यावधि प्रमात्व का निश्चय न होने से प्रमात्वघटित विवक्षित लक्षण का भी ज्ञान (निश्चय) नहीं हो सकता।

यदि कहें कि विवक्षितलक्षण का प्रमितत्वेन अवधारण (निश्चय) भले ही न हो, किन्तु वस्तुतः वह प्रमित होकर यथार्थप्रमात्वव्यवहार को प्रयोजक हो जायेगा, तो यह कहना सम्भव नहीं है क्योंकि ''प्रमाण के अभाव में उसे (लक्षण) वस्तुत अप्रमित ही क्यों न मान लिया जाय, इस वादि के प्रश्न का आपके पास कोई उत्तर नहीं है।

किञ्च - स्वरूपतः प्रमित लक्षण को ही उक्त व्यवहार का प्रयोजक मानने पर - प्रमात्व का निरूपण करना भी व्यर्थ हो जायेगा क्योंकि निरूपण (ज्ञानानुकूलव्यापार) तो तेन रूपेण ज्ञान के लिए किया जाता है। वस्तुतः (स्वरूपसत्) प्रमा के द्वारा ही घटादि में भी वास्तवत्वव्यवहार सम्पन्न हो जाय। तस्मात् उक्त सभी प्रकारों से प्रमा का निर्वचन करना सम्भव नहीं है। अतः उसे अनिर्वचनीय मानकर तत्तत् व्यवहारों की उपपत्ति करना ही एक मात्र शरण है।

प्रमात्वखण्डनप्रकरण समाप्त।

अथ प्रमाणसामान्यखण्डनप्रकरणम्

करणत्वखण्डनम्

एवं प्रमितेरनिरुक्त्या 'प्रमाकरणं प्रमाण' मित्यप्ययुक्तम्, करणार्थानिरुक्तेश्च। ननु कारकान्तरेऽचरितार्थस्य हेतुत्वं करणत्वम्, कर्तुर्हि करणं निष्पादयतः कारकान्तरे चरितार्थत्वम्, स्वरूपतो-ऽनिष्पादनेऽपि व्यापारवत्तया निष्पादनात्, तादृशस्य च तस्य करणत्वात्, एवं कर्मापि करणनिष्पादने चरितार्थम्, करणव्यापारो हि कर्मविषयो भवति, कर्माभावे विषयाभावात्करणव्यापार एव न निष्पद्यत इति तन्निर्वाहे तस्यापि चरितार्थत्वम्, एवमधिकरणस्यापि करणव्यापारनिर्वाहकत्वम्, सम्प्रदानापादानयोश्चासार्वत्रिकत्वम्, करणं तु सार्वत्रिकमेवेति कारकान्तरेऽचरितार्थः सार्वत्रिको हेतुः करणमिति; मैवम्, अस्तु

शारदा

करणार्थेति। **कथायां प्रमात्वनिरासापरिस्फूर्तौ करणत्वनिरसनेनैव प्रमाणपदार्थो निरसनीय इति भावः। कर्मविषयकः, करणव्यापारविषयता च कर्मणि करणव्यापारजन्य-फलाश्रयत्वप्रकारकेच्छीयविशेष्यता। तन्निर्वाहे = करणव्यापारजनने। तस्य = कर्मणः। असार्वत्रिकत्वम् = क्रियामात्रानन्वयित्वम्।** सार्वत्रिकमेवेति। **यत्कार्यं तत्सकरणकमिति व्याप्तिः, अस्तीत्यादिक्रियास्वपि ''आत्मानमात्मना बिभ्रदस्तीतिव्यपदिश्यते'' इत्युक्तेः सकरणकत्वमेवेति भावः। कर्मणोऽप्यसार्वत्रिकत्वेन हेतौ सार्वत्रिकत्वविशेषणेन व्यावृत्तावपि कर्त्रादिव्यावृत्त्यर्थं विशेषणान्तरम्। इदन्तु तत्त्वम्–कारकान्तरेऽचरितार्थत्वं कारकान्तरनिष्ठ-**

राजहंसः

करणत्वखण्डनशारदायां राजहंसः

कर्मणोऽप्यसार्वत्रिकत्वेनेति। अस्तीत्यस्यैवात्मनाऽऽत्मानं विभर्त्तीत्येतत्परत्वे कर्मणोऽपि सार्वत्रिकत्वं स्यात्, अन्यत्राप्यकर्मकत्वाभिमतधातुषु तथाकल्पनसम्भवादिति यद्यपि शक्यते

भारती

करणत्व-खण्डन

पूर्वोक्त रीति से प्रमात्वका निर्वचन (लक्षण) न हो सकने से ''प्रमाकरणं प्रमाणम्'' (प्रमा का करण ही प्रमाण है) यह प्रमाण का लक्षण युक्तिविरुद्ध है अर्थात् यह प्रमाण लक्षण नहीं बनता है। एवं करण पदार्थ के निर्वचन न होने से भी उक्त प्रमाण लक्षण नहीं बन सकता है। (तात्पर्य यह है कि ''प्रमायाः करणम् प्रमाणम्'' इस प्रमाण लक्षण में प्रमा एवं करण ये पदार्थ प्रविष्ट है अतः जिसे कथाकाल में प्रमात्व के निरास की युक्तियों का स्फुरण न हो, वह पुरुष करणत्व के निरास के द्वारा भी उक्त प्रमाण लक्षण का खण्डन कर अनिर्वचनीयवाद को सिद्ध कर सकता है। इसी अभिप्राय से प्रमात्वखण्डन के अनन्तर उक्तप्रमाणलक्षण के घटकीभूत करणत्व के खण्डन का आरम्भ करते हैं।)

शारदा

व्यापाराजनकत्वमिति व्यापाराजनकव्यापारजनकत्वमेव लक्षणम्, तत्क्रियाजनकाजनकः सन् तत्क्रियाजनको यस्तज्जनकत्वं तत्क्रियाकरणत्वमिति यावत्, व्यापारत्वस्याननुगतत्वात्, कर्त्रादिजन्यस्तत्क्रियाजनकस्तु व्यापारस्तत्क्रियाजनकस्य करणव्यापारस्य जनक इति कर्त्रादिव्यावृत्तिः। तत्क्रियाजनकजनकस्य कथं तत्क्रियाजनकत्वमन्यथासिद्धेरिति तु मूले एव परतः प्रतिविहितम् । तत्क्रियाजनको य इत्यत्र प्रयोजकसाधारणजनकत्वं वा वक्तव्यम्। एवमनुगमाभावे च तत्क्रियाकरणस्य क्रियामात्रसाधारण्याभावात्सार्वत्रिकत्वोपादानस्यासम्भवापादकत्वेनासम्भवात् । एवञ्चोक्तव्याप्तेरप्रयोजकत्वेऽपि न क्षतिः । तथाच प्राचीनमते व्यापारवत एव कारणस्य कारकत्वेन सम्प्रदानापादानयोर्व्यापारस्य, व्यापारत्वान्यथानुपपत्त्या तत्र तत्क्रियाजनकत्वस्य चावश्यम्भावेऽपि तस्य कथञ्चित्तत्क्रियाजनकजनकत्वमेव वा वक्तव्यम्, उपधेयसङ्करेऽप्युपाधीनामसाङ्कर्यादिति नयेन वा क्वचित्प्रतिविधातव्यमिति ।

राजहंसः

वक्तुम् , तथापि वस्तुगतिमनुरुध्य कर्मणोऽसार्वत्रिकत्वमुच्यते, आत्मनाऽऽत्मानं विभर्तीत्यस्यौपचारिकत्वात् , अत एव यत्कार्यं तत्सकरणकमिति व्याप्तिरप्यनुपदं त्यक्ष्यते । **उक्तव्याप्तेरिति।** यत्कार्यं तत्सकरणकमिति व्याप्तेरित्यर्थः ।

भारती

प्रश्न– कारकान्तर में अचरितार्थ कार्य करने में असफल अर्थात् ''कारकान्तर के व्यापार का अजनक होकर जो क्रिया का हेतु हो वही करण है'' यही करण का लक्षण करेंगे। क्योंकि कर्ता करण का निष्पादन करता है अत: वह (कर्ता) कारकान्तर में चरितार्थ है । यद्यपि कर्ता स्वरूप से करण का निष्पादन (उत्पत्ति) नहीं करता, तथापि उसे (करण को) व्यापारवत्तया (व्यापार विशिष्ट रूप से) निष्पन्न (उत्पन्न) करता है । व्यापारविशिष्ट वस्तु (दण्डादि) ही करण होता है (तात्पर्य यह है कि व्यापारवत् कारण ही करण होता है । अत: वस्तु (दण्डादि) को व्यापार से युक्त करना ही उसे करण रूप से उत्पन्न करना है ।)

एवं कर्म भी करण के निष्पादन में चरितार्थ है । क्योंकि करण का व्यापार कर्मविषयक होता है । (कर्म में करणव्यापार विषयता करण व्यापार जन्यफलाश्रयत्व प्रकारक इच्छीयविशेष्यता रूप है ।) कर्म का अभाव होने पर विषय के न होने से करण का व्यापार नहीं होता, अत: करण व्यापार के निष्पादन में कर्म भी चरितार्थ है । एवं अधिकरण भी करण के व्यापार का निर्वाहक है । सम्प्रदान एवं अपादान असार्वत्रिक है अर्थात् क्रियामात्र में नहीं होते है और करण तो सार्वत्रिक (क्रियामात्र में) होता है (क्योंकि यत् कार्यं तत्सकरणम् (जो भी कार्य है सकरणक होता है) यह व्याप्ति है । अस्ति इत्यादि क्रियाओं में भी ''आत्मानमात्मना विभ्रदस्तीति व्यपदिश्यते'' इत्यादि कथन से सकरणत्व ही व्यक्त होता है ।) अत: कारकान्तर में अचरितार्थ सार्वत्रिक हेतु करण है ।

समाधान – करण विषयक आप (तार्किक) का यह व्याख्यान अविचारित (विचार किये विना) रमणीय (निर्दुष्ट) प्रतीत होता है, किन्तु विचार करने पर दोष युक्त ही सिद्ध होगा, क्योंकि लक्षण घटक अन्तर शब्द यदि ''अनयोरन्तरं महत्'' इत्यादि के समान विशेष मात्र

तावदविचारितरमणीयमिदं व्याख्यानम् , अन्तरशब्दो हि यदि विशेषमात्रवचनस्तदा न व्यवच्छेदकः, नहिं विशेषमपास्य कारकमात्रं केनचिज्जन्यते यद्व्यवच्छिद्येत, नापि चान्तरशब्दोऽन्यवचनस्तथा सति कस्मादन्यदिति विशेषानिर्देशे करणादिति समभिव्याहाराल्लभ्येत यथान्य आत्मा शरीरमन्यदित्यादौ, तथासति करणव्यतिरिक्तकारकाभिप्रायेण प्रयुक्तः स्यात्, तच्च न,

शारदा

अविचारितेति। **अयम्भावः–यथाश्रुते तावदसम्भव एव, क्रियाविशेषे करणस्यापि क्रियान्तरे कर्त्रादित्वेन कारकान्तरे चारितार्थ्यात्, उक्तरीत्या परिष्कारेऽपि सविकल्पकजनकसन्निकर्षस्येन्द्रियजन्यस्य सविकल्पकजनकनिर्विकल्पकजनकत्वेनेन्द्रियस्य सविकल्पककरणत्वानुपपत्तिः, स्वर्गादिजनकापूर्वस्य यागजन्यस्य स्वर्गादिजनकशरीरविशेषजनकत्वेन यागस्य स्वर्गादिकरणतानुपपत्तिश्च । नच–नेष्यत एव तत्रेन्द्रिययागयोः करणत्वम्, स्वजन्यगतकरणत्वस्य स्वस्मिन् विवक्षयैव तृतीयोपपत्तेः, सप्तमकारकत्वमेव च तस्य, षट्कारकपरिगणनं तूपलक्षणमिति– वाच्यम्; लक्षणानुरोधेन लक्ष्यान्यथानयने मौढ्यात्, तत्क्रियाजनकाजनक इत्यनेन तत्क्रियाजनकनिष्ठजन्यतातिरिक्तधर्मावच्छिन्नजन्यत्वानिरूपकत्वविवक्षया तु न निस्तारः, उक्तापूर्वविशेषजन्यताया जन्यतावच्छिन्नत्वे मानाभावात्। करणत्वस्याननुगमे करणपदसमयग्रहानुपपत्तेश्च । अक्षयोगमादायैव कर्मण्यतिव्याप्तेश्च, तदव्यवहितोत्तरमेव फलोत्पत्तेस्तस्य तत्क्रियाजनकाजनकत्वस्यावश्यकत्वात् । कर्त्रादिव्यापारेऽपि तत्क्रियाजनकजनकत्वघटोभयाभावादिसत्त्वेनातिप्रसक्तेश्च, अधस्तात्तद्वारकप्रकारवारणादिति।** विशेषमात्रेति । **अनयोरन्तरं महदित्यादिवदिति भावः। मात्रशब्देनान्यार्थकताव्यावृत्तिः ।**

भारती

का वाचक है तो कारकान्तर शब्द अव्यावर्तक हो जायेगा, कारण कि–विशेष का परित्याग कर कारक सामान्य किसी के द्वारा भी उत्पन्न नहीं किया जाता, जिसकी अन्तर शब्द से व्यावृत्ति की जाय । एवं कारकविशेष में अचरितार्थ सार्वत्रिक हेतु करण है'' यह लक्षण असम्भव दोष ग्रस्त भी है, क्योंकि करण भी कारकविशेष में चरितार्थ ही होता है न कि कारकसामान्य में। (किञ्च– क्रियाविशेष में जो करण है वही क्रियान्तर कर्त्रादिरूप से कारकान्तर में चरितार्थ ही होता है ।)

यदि अन्तरशब्द ''अन्य'' का वाचक है तो किस से अन्य'' इस जिज्ञासा में प्रतियोगी रूप से किसी विशेष का निर्देश न होने से ''करणात्'' इस समभिव्याहार से ''करण'' से अन्य कारक के अभिप्राय से कारकान्तर शब्द का प्रयोग मानना होगा । जैसे ''अन्यः आत्मा'' ''शरीरम् अन्यत्'' का अभिप्राय ''शरीराद् अन्य आत्मा'' आत्मनोऽन्यत् शरीरम्'' होता है । तथाच करण से अन्य कारक में अचरितार्थ सार्वत्रिक हेतु करण है यह लक्षण पर्यवसित होता है, किन्तु यह ठीक नहीं है । क्योंकि करणत्व का अद्यावधि निश्चय न होने से वही निरूप्यमाण है ऐसी स्थिति में लक्षण में करण का प्रवेश नहीं कर सकते ।

करणस्यैवाद्यापि निरूप्यमाणत्वात्, अतिव्याप्तेश्च । नापि कर्तृकर्मणोः स्वरूपोपादानपरोऽयमन्तरशब्दः, ताभ्यामेवातिव्याप्त्यापत्तेः । नापि कर्तृकर्मणी अपेक्ष्यान्यदन्तरशब्दार्थः , वैयर्थ्यापातात्

शारदा

अन्यः शरीरात्, अन्यदात्मन इति समभिव्याहारलभ्यम्। करणत्वस्यानुगमो वाऽननुगमो वा, आद्ये करणस्येति । **करणत्वस्येत्यर्थः । तथाचात्माश्रयः, करणत्वावच्छिन्नभेदवतोऽ-प्रसिद्ध्याऽसम्भवश्च । अननुगमे त्वाह** अतिव्याप्तेरिति । **तत्क्रियाकर्त्रादेरपि तत्क्रियाकरणान्य-तत्क्रियाकारकनिष्ठव्यापाराजनककारकत्वादिति भावः । उपधेयसङ्करेऽपीतिन्यायेना-तिव्याप्ताविष्टापत्तिं तु स्वयमेव समाधास्यति । स्वभिन्नप्रकृतक्रियाकारकनिष्ठव्यापारा-जनककारकत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वमित्युक्तौ तूक्तरीत्यैवातिप्रसक्त्यादिकमिति भावः ।** ताभ्यामिति । **तयोरित्यर्थः । कारकान्तराचारितार्थ्यमिदानीं कर्तृनिष्ठव्यापाराजनकत्वमात्रं यदि तदा कर्मण्यतिव्याप्तिः कर्मनिष्ठव्यापाराजनकत्वमात्रं यदि तदा कर्तर्यतिव्याप्तिः, कर्मोभयनिष्ठव्यापारस्तु न कश्चिदिति तदुभयाजनकत्वनिवेशोऽशक्यः । यदितु स्वकर्तृनिष्ठव्यापाराजनकत्वस्वकर्मनिष्ठव्यापाराजनकत्वस्वकारकत्वेतिसम्बन्धैः प्रकृतक्रियाविशिष्टत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वमिति वा करणव्यापारे इव परस्परव्यापारेऽपि कारकान्तराणां निमित्तत्वम्; अत एवाधिकरणादावपि नातिव्याप्तिरिति वोच्यते तदाप्युक्तरीत्येन्द्रियादावव्याप्त्यादिकं द्रष्टव्यम्।** वैयर्थ्येति । **प्रकृतक्रियाकर्तृभिन्नत्वे सति**

राजहंसः

अतिव्याप्तेरिति । तत्क्रियार्कत्रादेरपीति । ननु तत्क्रियाकर्त्रादेस्तत्क्रियाकरणान्य-स्वनिष्ठव्यापारजनकत्वेन कथमतिव्याप्तिः । न च यथाश्रुतमूललभ्ये तत्क्रियाकरणान्यत-त्क्रियाकारकाजनकतत्क्रियाकारकत्वे एवातिव्याप्तिः, नहि स्वं स्वात्मानं जनयतीति वाच्यम् ,

भारती

किञ्च– करण में करण का प्रवेश करने से आत्माश्रय दोष भी है । दोनों करणों को भिन्न मानेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा । ''करण से अन्य'' का अर्थ है करणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-भेदवत्त्व'' । किन्तु ईदृश भेदवान् के अप्रसिद्ध होने से उक्त करण लक्षण में असम्भव दोष भी है । किञ्च– तत्क्रिया का कर्ता आदि भी क्रिया के करण अन्य तत्क्रियाकारक निष्ठ व्यापार का अजनक कारक है अत: उक्त लक्षण कर्ता आदि में अतिव्याप्त भी है ।

कर्ता एवं कर्म के स्वरूप के उपादान (ग्रहण) परक ही यह अन्तरशब्द है यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि ऐसी विवक्षा करने पर कारकान्तर में अचरितार्थ का अर्थ यदि– कर्तृनिष्ठव्यापाराजनकत्वमात्र (कर्ता के व्यापार का अजनक) करें तो कर्म में अतिव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि कर्म भी कर्ता के व्यापार का अजनक एवं तत्क्रिया का जनक है और यदि कर्मनिष्ठ व्यापाराजनकत्वमात्र अर्थात् कर्म के व्यापार का अजनक, अर्थ करें तो कर्ता में अतिव्याप्ति हो जायेगी, कर्ता भी कर्मनिष्ठ व्यापार का अजनक है । यदि कर्मकर्ता उभयनिष्ठ व्यापार का अजनकत्व की विवक्षा करें तो असम्भव हो जायेगा, कारण कि कर्मकर्ता उभयनिष्ठ व्यापार ही अप्रसिद्ध है ।

कारकेऽचरितार्थ इत्येवोच्यताम् । नाप्यनधिकार्थ एवायमिति न

शारदा

प्रकृतक्रियाकर्मभिन्नस्य यः प्रकृतक्रियानुकूलो व्यापारस्तदजनकत्वविवक्षया हि कर्त्रादावतिव्याप्तिर्वार्यते, सा च प्रकृतक्रियौपयिकव्यापाराजनकत्वविवक्षयैव शक्यवारणा, असम्भवस्तूभयत्रापि समानः, प्रकृतक्रियाकरणस्यापि प्रकृतक्रियाकर्तृकर्मभ्यां भिन्नत्वेन प्रकृतक्रियाकारकत्वेन च तादृशव्यापाराजनकत्वविरहादित्यन्तरशब्दवैयर्थ्यम् । कारकपदसमभिव्याहारेण प्रकृतक्रियेत्याद्यर्थलाभात्तद्वैयर्थ्यं नोक्तम् । अन्तरपदानिवेशेऽसम्भवमुद्घाटयति तथा सतीति। **कारकजनकं = कारकनिष्ठव्यापारजनकम्।** कारकमिति। **ग्रामादेर्व्यापारवत्त्वे मानाभावेन गमनादौ कर्मत्वादिकं न स्यादिति क्रियाजनकत्वं कारकत्वमिति मतेऽप्यव्यापृतस्याग्न्यादेर्न कारकत्वमिति भावः। व्यापारवत्कारणमिति करणलक्षणमुक्तमिति तु भ्रमः प्राचीनग्रन्थान्तरेष्वपि तस्य कारकलक्षणतयोक्तत्वात्, कर्तर्यतिव्याप्तेरतिस्फुटत्वाच्च,**

राजहंसः

करणे व्यापारवत्तया निष्पाद्यताभिधानेन व्यापारघटितचारितार्थ्यस्यावश्यं वाच्यत्वात् । न च तत्क्रियाकरणान्यत्वघटितकल्पे व्यापारान्तर्भावो व्यर्थः, कर्त्राद्यजनकत्वामादाय समन्वयात् , नहि व्यापारोऽपि कारको येन तज्जनकत्वमादायासम्भवः स्यात् , 'स्वव्यापारे च कर्तृत्वं सर्वत्रैवास्ति कारके' इत्यादिवाचोयुक्त्या प्राचीनैर्व्यापारवत एव कारकत्वाभिधानेन व्यापारस्य चानवस्थाभिया निर्व्यापारतयाऽभ्युपगमनीयत्वेन कारकत्वानुपपत्तेः, क्रियाजनकत्वं कारकत्वमिति मते तु व्यापारस्य कारकत्वमर्हतोऽपि परिगणितकारकविशेषान्तर्भावस्य क्लेशसाध्यत्वात् , ग्रामादावप्यन्ततः कालदेशविशेषसम्बन्धस्यैव व्यापारत्वसम्भवेन गमनादिकर्मत्वोपपत्त्या व्यापारवत्कारणत्वस्य कारकलक्षणतात्यागानौचित्याच्चेति वाच्यम्, एवं हि मूले तत्करणान्यवनिवेशस्य व्यथताया अपि वक्तव्यत्वापातात् ; तत्क्रियाकरणस्य तत्क्रियाकरणेनाजननात् , यदि तु तेन तस्य क्वचिद् द्विकरणकस्थले जननं सम्भाव्यते तथाप्यतिव्याप्तिवारणार्थमेव

भारती

यदि ''कर्ता कर्म की अपेक्षा से अन्य'' अन्तरशब्द का अर्थ करें, तो अन्तर शब्द देना ही व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि करण में अचरितार्थ कहने मात्र से ही कर्ता कर्म में अतिव्याप्ति का वारण हो सकता है । (तात्पर्य है कि– ''कारकान्तरे अचरितार्थ'' शब्द से– प्रकृतक्रिया के कर्ता से भिन्न एवं प्रकृत क्रिया के कर्म से भिन्न प्रकृतक्रिया के अनुकूल व्यापार का अजनकत्व की विवक्षा कर कर्ता कर्म में अतिव्याप्ति का निरास करते हैं किन्तु उस अतिव्याप्ति का निरास तो प्रकृतक्रिया के जनकव्यापार का अजनकत्व की विवक्षा करने मात्र से हो सकता है अतः तदर्थ अन्तरशब्द देना व्यर्थ है तथाच कारकेऽचरितार्थ इतना कहना चाहिए । किञ्च इस प्रकार विवक्षा करने पर असम्भव दोष भी है, क्योंकि प्रकृतक्रिया के करण भी प्रकृतक्रिया के कर्ता कर्म से भिन्न होने से एवं प्रकृतक्रिया का जनक होने से उक्त प्रकार के व्यापार का अजनक नहीं है ।)

यदि कहें कि इस अन्तर शब्द का कोई अधिक अर्थ नहीं है अतः उक्त लक्षण में इसका

प्रयोक्तव्योऽन्तरशब्दः, तथासति कारकजनकं हस्तादि करणं न स्यात्, व्यापारवद्धि कारणं कारकमुच्यते, अस्ति च स्थालीसंयोगादिव्यापारवतो वह्न्यादेस्तथात्वम्, अस्ति च हस्तादेस्तज्जनकत्वम्। नच हस्ताद्यकरणमेवाभ्युपेयम्, व्यापारवतः कारणत्वेन तत्कारकत्व-

शारदा

अत एवासाधारण्यघटितं तत्करणलक्षणमित्यप्युक्तम्, कर्तुरप्यसाधारण्यात्, उपधेयसङ्करेऽपीति समाधानं तु निरसिष्यते । तज्जनकत्वं = वह्न्यादिनिष्ठव्यापारजनकत्वं,

राजहंसः

तत्क्रियाकरणान्यतत्क्रियाकारकनिष्ठव्यापाराजनकत्वस्य निवेशसम्भवात् , स्वनिष्ठव्यापारजनकत्वमादायासम्भववारणार्थं चेह तत्क्रियाकरणान्यत्वनिवेशस्यातीव सौष्ठवाधायकत्वादिति चेन्न, तत्क्रियानुकूलयादृशव्यापारवत्त्वेन तत्क्रियाकर्तृत्वं तादृशव्यापारवत्त्वेन न तादृशव्यापारजनकत्वम्, आत्माश्रयादित्याशयेनातिव्याप्तियोजनसम्भवात् , नचैवमग्रे स्वनिष्ठव्यापारजनकत्वमादयासम्भवाभिधानमसमञ्जसम्, यादृशव्यापारवत्त्वेन तत्क्रियाकरणत्वं तादृशव्यापारवत्त्वेन न तादृशव्यापारजनकत्वमात्माश्रयप्रसङ्गादिति हि तत्रापि शक्यते वक्तुमिति वक्तव्यम् , स्वनिष्ठव्यापारोपलक्षितस्य स्वनिष्ठव्यापारजनकत्वे आत्मश्रयाप्रसक्तेः । अथैवमत्राप्यतिव्याप्तिर्वार्यतामिति चेत्सत्यम्, अत एव स्वभिन्नप्रकृतक्रियाकारकेत्यादिस्वरसलभ्यव्याकृतावतिप्रसक्त्यादेः प्रागुक्तस्य स्मरणमग्रे कारितम् । तत्रादिपदेन यागेऽव्याप्तिः, इन्द्रियादौ च, अहंपदार्थनिष्ठापूर्वनिर्विकल्पकादिरूपव्यापारजनकत्वात्, अननुगमेन करणपदसमयग्रहानुपपत्तिश्च ग्राह्ये ।

भारती

निवेश नहीं करेंगे । तथाच "कारक में अचरितार्थ सार्वत्रिक हेतु करण है" इतना ही करण का लक्षण करेंगे तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि कारक में अचरितार्थ हेतु करण है इतना ही लक्षण करने पर असम्भव दोष हो जायेगा, कारण कि कारकनिष्ठ व्यापार का जनक हस्तादि भी करण नहीं होंगे । व्यापार विशिष्ट कारण ही कारक कहा जाता है । ग्रामादि की व्यापारवत्ता में प्रमाण न होने से गमनादि में ग्राम कर्म न होगा, अतः "क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्" यह लक्षण मानने वालों के मत में भी व्यापारहित वह्नि कारक नहीं होता, इसलिए कारक का– व्यापारविशिष्ट कारणत्व लक्षण मानना ही होगा । व्यापारवत्कारणम्" यह करण का लक्षण है यह मानना तो भ्रम है क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में– व्यापारवत् कारणम्" इसका कारक के लक्षण रूप से ही कथन किया है । किञ्च– उक्त लक्षण को करण का लक्षण मानेंगे तो कर्ता के व्यापारवान् एवं क्रिया के प्रति कारण होने से कर्ता में उक्त करण लक्षण की अतिव्याति भी अत्यन्त स्फुट ही है । कर्ता में अतिव्याप्त होने से ही– व्यापारवदसाधारण कारणम्" यह भी करण का लक्षण नहीं हो सकता । क्योंकि कर्ता भी क्रिया के प्रति असाधारण कारण ही है। स्थाली संयोगादि व्यापार से युक्त वह्नि कारक है और उस वह्नि रूप कारक के व्यापार का जनक हस्तादि है । अतः कारक में अचरितार्थ न होने से उक्तकरण का लक्षण करणत्वेन अभिमत हस्तादि में भी नहीं गया इसलिए उक्त लक्षण असम्भव दोषग्रस्त है ।

स्यावश्याभ्युपेयत्वात्, कर्त्रादिषु दुरन्तर्भावत्वात्, सप्तमकारकस्वीकारापत्तेः। नच व्यवधानात्तत्राहेतुत्वमेव तेषां किन्नाम हेतुहेतुत्वमिति, कर्तुरप्येवंप्रसङ्गात् पुंव्यापाराद्देहस्पन्दादिस्ततः कुठारक्रियादिस्ततश्छिदेति परम्पराव्यवधानात् । सर्वेयं कर्तृव्यापारपरम्परा न तस्य हेतुतां हन्तीति चेत्; तुल्यम् । तस्मात्करणत्वेनावश्याभ्युपगन्तव्यहस्ताद्यव्यापकत्वादलक्षणमिदम् । एतेनापि कारकान्तरशब्दः कर्तृकर्मव्यतिरिक्तवचन इति पक्षो व्युदास्यः।।

शारदा

स्वनिष्ठव्यापारजनकत्वमादायासम्भवस्तु स्पष्टः । व्यापारवतः **सतः, व्यापारवत्त्वे सतीति यावत्** । दुरन्तरिति । **स्वातन्त्र्याभावेन कर्तृत्वस्य, धात्वर्थतावच्छेदकविक्लित्त्यादिफलानाश्रयत्वेन कर्मत्वस्य, प्रकृतक्रियाकर्मसम्बन्धितयाऽनभिप्रेतत्वेन सम्प्रदानत्वस्य, स्वावृत्तिक्रियाजन्यविभागानाश्रयत्वादिनाऽपादानत्वादेश्च हस्तादावसम्भवादिति भावः। नच कारकान्तरानधीनत्वे सति कारकत्वरूपस्वातन्त्र्यविवक्षया कर्तृत्वं स्यात् ; हस्तः पचतीति प्रयोगनिर्वाहार्थमेव तत्; हस्तेन पचतीति तु हेतुत्वबुबोधयिषया सम्भवन्नपि करणत्वबुबोधयिषया कथं स्यात्।** स्वीकारापत्तेरिति । **तथा च तस्य करणत्वमेव परिशेषान्मन्तव्यमिति भावः। तत्र = पाकादिक्रियायाम् । तेषां = हस्तादीनाम् । किन्नाम = अपि तु ।** तुल्यमिति । **तत्तद्व्यापारस्य फलव्यवहितस्यापि तद्दशायां छिनत्तीत्यादि- व्यवहारमनुरुध्यानन्यथासिद्धत्वं त्वया वाच्यं तच्च तुल्यम्, उक्तहस्तादिव्यापारदशायामपि पचतीति व्यवहारसत्त्वादिति भावः। प्रकृतक्रियाकर्तृभिन्नत्वे सतीत्याद्युक्तरीतावप्यसम्भवमाह** एतेनेति । **अपिनाऽन्तरपदवैयर्थ्यपरिग्रहः ।**

राजहंसः

मूले व्यापारवद्धि कारणमिति । व्यापारे सामग्र्यां चातिव्याप्तिवारणाय व्यापारवदिति, तत्क्रियाजनकत्वे सति तत्क्रियाजनकजनकत्वं तत्क्रियाकारकत्वमिति तु भावार्थः । तत्क्रियां प्रत्यन्यथासिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम् ।

भारती

यदि कहें कि हस्तादि को करण नहीं मानेंगे, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि व्यापारविशिष्ट कारण होने से उसे (हस्तादि को) कारक तो अवश्य मानना होगा और कर्ता आदि कारकों में उस का अन्तर्भाव हो नहीं सकता । (स्वातन्त्र्यके न होने से कर्ता में, धात्वर्थतावच्छेदविक्लित्यादि फल का आश्रय न होने से कर्म में, प्रकृतक्रिया कर्म सम्बन्धितया अभिप्रेत न होने से सम्प्रदान में, एवं स्वावृत्तिक्रियाजन्यविभाग का आश्रय न होने से अपादान में हस्तादि का अन्तर्भाव नहीं हो सकता, फलतः उसे (हस्तादि को) करण ही मानना होगा) किन्तु जब करण भी नहीं मानेंगे तो उसे (हस्तादि को) सप्तम कारक स्वीकार करना पड़ेगा।

यदि कहें कि– पाकादिक्रिया के प्रति काष्ठव्यापारादि का व्यवधान होने से हस्तादि हेतु ही नहीं है– अपितु वे (हस्तादि) हेतु के हेतु हैं । (तथाच कारण विशेष ही कारक होता है और कारकविशेष ही करण होता है प्रकृत में हस्तादि तो हेतु न होने से कारक ही नहीं है अतः कारकविशेष (कारकत्वव्याप्य) करण भी नहीं हो सकता । ऐसा स्थिति में उक्त करण

कर्तृव्यापारविषयः करणमित्यपि न, शरीरचालनाय प्रयतमानस्य शरीरचलनक्रिया, क्रियाविशिष्टं वा शरीरं प्रयत्नलक्षणकर्तृव्यापारविषयीभवतीति तस्यां क्रियायां करणं स्यात् , न चैतच्छक्याङ्गीकारम् , भविष्यतः स्वं प्रति च कारकत्वानुपपत्तेः।

शारदा

विषयता यदि साध्यतारूपा व्यापारवत्त्वेन च करणस्यापि सा, तदा फले तद्विशिष्टे कर्मणि चातिव्याप्तिमाह शरीरेति । **एतत् = चलनक्रियायाः स्वं स्वविशिष्टं च शरीरं प्रति करणत्वम् । भविष्यतः फलस्य तद्विशिष्टस्य च कारकत्वानुपपत्तेः स्वं प्रति च स्वस्य कारकत्वानुपपत्तेः करणत्वस्य दूरोत्सारितत्वात्, कारकत्वादेः कार्याव्यवहितप्राक्क्षणवृत्तित्व-**

भारती

लक्षणकी हस्तादि में अव्याप्ति नहीं है ।) तो यह आपका कथन युक्ति संगत नहीं है क्योंकि यदि व्यवधान होने से हस्तादि को हेतु न मानें तो छिद्रादि क्रिया के प्रति कर्ता भी हेतु न होगा, ''कृष्णःकाष्ठं छिनत्ति'' यहाँ पर भी कृष्ण रूप पुरुष के व्यापार (यत्न) से देह में स्पन्दादि (क्रिया) होता है उससे कुठार में क्रिया (उद्यमननिपातन) ततः छेदनक्रिया इस प्रकार कर्ता एवं छेदनक्रिया के मध्य परम्परा का व्यवधान है ।

यदि कहें कि कर्ता के व्यापार की यह सम्पूर्ण परम्परा कर्ता के हेतुत्व की विघातक नहीं है अर्थात् कर्ता में अन्यथासिद्धत्व की साधक नहीं है तो हम भी कहेंगे हस्तादि के व्यापार की परम्परा भी हस्तादि के हेतुत्व की विघातक नहीं है अर्थात् हस्तादि में अन्यथासिद्धत्व की साधक नहीं है । (तात्पर्य यह है कि जैसे तत्तद्व्यापारदशा में ''छिनत्ति'' इत्यादिव्यवहार के अनुरोध से फल-व्यवधान सहित भी तत्तद् व्यापार आपको अनन्यथासिद्ध ही मानना पड़ता है वैसे ही उक्त हस्तादिव्यापार दशा में भी ''पचति'' इत्यादिव्यवहार के अनुरोध से हस्तादि व्यापार को भी अनन्यथासिद्ध ही मानना होगा, यह उभयत्र तुल्य है ।) तस्मात् करणरूप से अवश्य स्वीकरणीय हस्तादि में उक्तकरण का लक्षण अव्याप्त होने से अलक्षण ही है ।

-एवं ''कारकान्तर शब्द कर्तृकर्मव्यतिरिक्त का वाचक है'' यह पक्ष भी उक्त अव्याप्ति तथा अन्तर पदवैयर्थ्य से निरस्त हो जाता है ।

२　''कर्ता के व्यापार का विषय करण है'' यह लक्षण भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि इस लक्षण में विषयता यदि साध्यतारूपा है तो व्यापारवत्तया करण के भी कर्ता के व्यापार की साध्यतारूपा विषयता का आश्रय होने से अव्याप्ति तो नहीं है किन्तु शरीर को चलाने के लिए प्रयत्नशील कर्ता के यत्नरूप व्यापार का विषय (साध्यता रूप विषयता का आश्रय) शरीर की चलनक्रिया या क्रियाविशिष्ट शरीर भी होता है । अतः उस शरीर चलन क्रिया में चलन रूपा क्रिया या तादृशक्रियाविशिष्ट शरीर ही करण होना चाहिए । किन्तु चलनक्रिया को स्व के प्रति या स्वविशिष्ट शरीर के प्रति करण मान नहीं सकते, क्योंकि कार्याव्यवहितप्राक्क्षणवर्ती कारण ही कारक होता है अतः भावीकाल में होने वाली चलनक्रिया (चलनक्रियारूप फल) या

नच साक्षात्कर्तृव्यापारविषय इति विशेषोपादानेऽप्यस्य परिहारः, साक्षाद्व्यापार्यमनःप्रभृतिक्रियायां प्रसङ्गतादवस्थ्यात् अव्यापकत्वाच्च। अथ तत्क्रियाहेतुस्तक्रियाकर्तृव्यापारस्य विषयस्तत्क्रियायां करणमिति

शारदा

घटितकारणताघटितत्वात् कार्यकारणभावस्य च भेदाधिष्ठानत्वात् । साक्षादिति । **प्रकृतक्रियाकर्तृव्यापारजन्याजन्यत्वे सति तादृशव्यापारजन्यत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वम् फलं तद्वत्त्वेन वा कर्म तु तादृशव्यापारजन्यकरणव्यापारजन्यमित्यनतिप्रसङ्ग इति भावः। अस्य = अतिव्याप्तिदोषस्य।** मनः प्रभृतीति । **मनःप्राणक्रिययोः कृतिजन्यत्वेन तज्जन्याजन्यत्वेन च फलयोस्तयोस्तद्विशिष्टयोश्चातिप्रसङ्ग इत्यर्थः । इदमुपलक्षणं तादृशव्यापारध्वंसेऽतिव्याप्तेरपि। ननु स्वकर्तृव्यापारजन्याजन्यत्वस्वकर्तृव्यापारजन्यत्वाभ्यां प्रकृतक्रियाविशिष्टव्यापारवत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वमिति विवक्षायां नोक्तदोषः, कर्मणः क्वचिन्निर्व्यापारत्वात् क्वचिच्च तद्व्यापारस्य कर्तृव्यापारजन्यकरणव्यापारजन्यत्वात्, कर्तृव्यापारस्य च स्वाजन्यत्वात्, फलध्वंसयोश्च निर्व्यापारत्वादित्यत आह** अव्यापकत्वाच्चेति। **कृत्यात्मककर्तृव्यापारजन्यचेष्टादिरूपव्यापारजन्यत्वात्कुठारादिव्यापारस्येति भावः।** तत्क्रिया

भारती

तादृशक्रियाविशिष्ट शरीर स्व के प्रति कारक ही नहीं हो सकता, फिर करण होना तो दूर रहा।

(किञ्च कार्यकारणभाव भेद में ही होता है प्रकृत में अभेद होने से स्व के प्रति स्वयं कार्य एवं कारण नहीं हो सकता, अतः कारण भी नहीं हो सकता।) फिर करण होना तो सुदूर है । यदि कहें कि– साक्षात्कर्तृव्यापारविषयः करणम् (साक्षात्कर्ता के व्यापार का विषय करण है) इस प्रकार साक्षात्वरूपविशेष का उपादान कर लक्षण बनावेंगे इस लक्षण में साक्षात्त्व प्रकृतक्रियाकर्तृव्यापारजन्याजन्यत्वरूप है अतः प्रकृतक्रियाकर्तृव्यापारजन्याजन्यत्वे सति तादृशव्यापारजन्यत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वम्'' (प्रकृतक्रिया के कर्ता के व्यापार जन्य से अजन्य एवं प्रकृतक्रिया कर्ता के व्यापार से जन्य ही प्रकृतक्रिया का करण है) यह लक्षण पर्यवसित होगा । उक्त शरीरक्रिया रूप फल एवं तादृशफल विशिष्ट शरीररूप कार्य तो कर्ता के व्यापार से जन्य करणव्यापार से जन्य से अजन्य एवं प्रकृतक्रिया कर्ता के व्यापार से जन्य ही है अजन्य नहीं, अतः उक्त क्रिया रूप फल में या तादृशफल-विशिष्ट शरीर रूप कार्य में उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति न होगी, तो इस प्रकार लक्षण करने पर भी अतिव्याप्ति दोष का वारण नहीं होगा, क्योंकि– मन और प्राण की क्रिया या क्रियाविशिष्ट मन और प्राण कर्ता के कृतिरूप व्यापार से जन्य एवं तज्जन्य से अजन्य होने साक्षात्व्यापार का विषय है अतः वह क्रिया या क्रियाविशिष्ट मन और प्राण स्वं के प्रति करण हो जायेंगे । तथा च तादृशक्रिया रूपफल अथवा तादृशक्रियाविशिष्ट मन और प्राण रूप कर्म में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति रहेगी । (एवं कर्तृव्यापारध्वंस में भी अतिव्याप्ति होगी। वह भी कर्ता के व्यापार का साक्षात् विषय है ।)

किञ्च– कुठार रूप करण में अव्याप्ति भी है । क्योंकि कुठार कर्ता के कृतिरूप व्यापार से जन्य चेष्टारूप व्यापार से जन्य होने से साक्षात्कर्तृव्यापार का विषय नहीं है ।

मन्यसे; मैवम् , अनीश्वरवादेऽङ्कुरादीनामकरणकत्वप्रसङ्गात् , सुषुप्त्यनन्तरभाविन्याः प्रमायाः परिगणितकरणोपाधिभेद-

शारदा

हेतुरिति **फले तद्विशिष्टे च कर्मण्यतिव्याप्तिवारणाय । कर्तृव्यापारविषयत्वं च न कर्तृव्यापारसाध्यत्वम्, परमते नित्यस्य कालादेरपि कारणत्वेन 'ईश्वरव्यापारविषयः सर्वं कारणमि'त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः, अपितु साध्यासाध्यसाधारणम् । तस्य कर्तृव्यापाराधीन-व्यापारवत्कारणतारूपत्वे तु तावतैव फलतद्विशिष्टयोरतिव्याप्तिवारणेन विशेषणान्तर-वैयर्थ्यापत्तेः। यदि तु विशेषणान्तरोपादानापेक्षयोपात्तविशेषणस्यैव परिष्कारौचित्यम् , तदाऽस्तु प्रकृतक्रियाकर्तृव्यापाराधीनव्यापारवत्कारणत्वं प्रकृतक्रियाकरणत्वम्, साक्षात्त्वाविवक्षणेन कुठारादौ नाप्रसङ्गः। कर्तर्यतिव्याप्तिवारणायाधीनान्तम् । यदि तु क्वचित्कर्मणोऽपि तथात्वम् , एवं कृतिवच्चेष्टाया अपि कर्तृव्यापारत्वेन कृत्यात्मक-व्यापाराधीनचेष्टात्मकव्यापारवतः कर्तुरपि तथात्वम्, तदा प्रकृतक्रियाविशिष्ट-व्यापारवत्कारणत्वं विवक्षणीयम्, वैशिष्ट्यं स्वकर्तृव्यापाराधीनत्वस्वकर्तृवृत्तित्वस्वक-र्मावृत्तित्वेतिसम्बन्धत्रयेणेति भावः। अकर्मकक्रियास्थले तृतीयसम्बन्धोऽनुपादेयः। अर्थाक्षसन्निकर्षस्याक्षव्यापारत्वे तस्य कर्मवृत्तित्वेनाव्याप्तिर्नाशङ्कनीया, अक्षमनो-योगस्यैवाक्षव्यापारत्वात् । मीमांसकादेः प्रतिवादित्वे आह** अनीश्वरेति । अङ्कुरादीनामिति। **अदृष्टाद्वारकोपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्येव कर्तृत्वव्यवहारात् जीवो न तत्र कर्ता, ईश्वरस्तु तथासम्भवन्नपि नाङ्गीक्रियते इति भावः। नन्वन्यत्रास्तु यथातथा, प्रकृतलक्षणेऽदृष्टाद्वारकत्वाघटितमेव कर्तृत्वं निवेश्यम्, किञ्च कार्यत्वे सकरणकत्व-व्याप्तेरप्रयोजकत्वेनाङ्कुरादेरकरणकत्वेऽपि न क्षतिः, नचैवं रूपादिज्ञाने कार्यत्वान्यथानुपपत्ति-बलादिन्द्रियसिद्धिर्न स्यात्; श्रुत्यादिनैव तत्सिद्धिसम्भवादित्यत आह** सुषुप्तीति । **अनन्तरशब्दोऽव्यवहितोत्तरपरः। परिगणिताः करणोपाधिभेदाः प्रमितिकरणतावच्छेदकधर्मा**

भारती

प्रश्न– ''जो तत्क्रिया का हेतु होकर तत्क्रिया के कर्ता के व्यापार का विषय हो वह तत्क्रिया में करण है'' ऐसा लक्षण करेंगे। (एवञ्च पूर्वोक्त क्रियारूप फल या तादृशफलविशिष्ट कर्म दोनों ही तत्क्रिया के हेतु नहीं है अतः उनमें करण लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है। यहाँ पर विषयता भी साध्यरूपा नहीं है अपितु साध्यासाध्यसाधारण है क्योंकि प्रतिवादि के मत में नित्यकाल भी कारण माना जाता है इसलिए ईश्वरव्यापारविषयः सर्वकारणम्'' यह अग्रिम ग्रन्थ असङ्गत हो जायेगा।)

समाधान– प्रतिवादिमीमांसक के अनीश्वरवाद में अङ्कुरादि का कोई करण ही नहीं हो पायेगा अर्थात् अङ्कुर के करण में उक्त करण लक्षण अव्याप्त हो जायेगा। क्योंकि मीमांसक के मत में ईश्वर है नहीं, और जीव को कर्ता मान नहीं सकते, कारण कि– अदृष्टाद्वारक उपादानगोचर अपरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमान ही कर्ता माना जाता है तादृश जीव नहीं है, वह तो अदृष्ट द्वारक तादृशज्ञानादिमान है।

(यदि कहें कि ''यद् यत् कार्यं तत्सकरणकम्'' इस व्याप्ति के अप्रयोजक होने से

परिसङ्ख्यातेषु प्रमराशिषु बहिर्भावप्रसङ्गात्, अचेतनस्यापि कर्तृत्वे चातिप्रसङ्गात्। सेश्वरवादे त्वीश्वरव्यापारविषयः सर्वं कारणमिति

शारदा

इन्द्रियत्वव्याप्तिज्ञानत्वादयस्तैः परिसङ्ख्यातेषु = तत्समसङ्ख्याकेषु, तच्चातुर्विध्यादिप्रयुक्तचातुर्विध्यादिकेष्विति यावत्। व्यक्तीनामनन्त्याद्राशिशब्दः। प्रत्यक्षत्वादिना रूपेण प्रमितीनां चतुर्विधत्वं पञ्चविधत्वं षड्विधत्वं वेति भावः । अपपरिबहिरितिसमासविधानज्ञापकाद्बहिर्योगे पञ्चम्याःसाधुत्वेऽपि ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वात्सप्तमी समर्थनीया । प्रसङ्गादिति । **सुषुप्तिकालीनजीवस्य ज्ञानशून्यत्वेनाकर्तृत्वादीश्वरस्य चानभ्युपगमान्निरुक्तकर्तृव्यापारविषयत्वमादायेन्द्रियादौ करणत्वोपपादनासम्भवेन तज्जन्यज्ञाने प्रत्यक्षत्वादेरप्यनुपपत्तिः, अकरणकत्वात्, जन्यज्ञानस्य सकरणकस्यैव प्रत्यक्षादित्वादिति भावः। ज्ञानशून्यस्यैव जीवस्य कर्तृत्वमाशङ्क्याह** अचेतनस्येति । **अतिप्रसङ्गात् = ज्ञानशून्यतादशायामपि घटादिकर्तृत्वप्रसङ्गात्। सेश्वरवादे इत्यादिकं दूषणं यथाश्रुते स्पष्टम्। यदि तु पर्याप्त्यादेर्निरस्तत्वेन कर्तृवृत्तित्वादिप्रतियोगिकाभावस्य च केवलान्वयित्वेन कर्त्रादिसाधारण्यम्, तदा सर्वं कारणमित्यादौ कारणपदस्यासाधारणकारणपरतया**

राजहंसः

असाधारणकारणपरतयेति । व्यापारवत्कारणपरतयेति तात्पर्यम् ।

भारती

अङ्कुर रूप कार्य करण के विना ही होता है। अतः करण ही नहीं है फिर उक्तकरण लक्षण की अव्याप्ति कैसी ?। एवं इन्द्रियसिद्धि तो श्रुत्यादि से ही सम्भव है वहाँ रूपादि ज्ञान में कार्यत्वान्यथानुपपत्ति को प्रमाण मानना आवश्यक नहीं है, तो इस प्रकार उक्तदोष न होने पर भी–सुषुप्ति के अव्यवहितोत्तर काल में जायमान प्रमा का करण कर्तृव्यापार का विषय न होने से अकरण हो जायेगा और यदि उस प्रमा को भी करण के विना ही उत्पन्न मानें तो–परिगणित करणरूपनिमित्तविशेष (अर्थात् प्रमितिकरणतावच्छेदक इन्द्रियत्व व्याप्तिज्ञानत्वादिरूप धर्मों) से परिसंख्यात अर्थात् करण समसंख्यात (करणों के चातुर्विध्य से प्रयुक्त चातुर्विध्ययुक्त) प्रत्यक्ष अनुमिति आदि प्रमाराशि में उस (सुषुप्ति के अनन्तर जायमान प्रमा) का अन्तर्भाव न होने से उसे उन सभी प्रमाओं से बहिर्भूत (पृथक्) ही मानना होगा ।

(तात्पर्य यह है कि सुषुप्तिकालीन जीव ज्ञान शून्य होने से कर्ता हो नहीं सकता, और ईश्वर मीमांसकमत में स्वीकृत नहीं है अतः तत्क्रियाकर्तृव्यापारविषयत्व को लेकर इन्द्रिय आदि में करणत्व का उपपादन नहीं कर सकते । अत एव तज्जन्य ज्ञान में प्रत्यक्षत्व (प्रत्यक्षप्रमात्व) का उपपादन भी अनुपपन्न है क्योंकि उसका करण ही नहीं है सकरण जन्यज्ञान ही प्रत्यक्ष होता है।)

किञ्च यदि अचेतन अर्थात् ज्ञानशून्य जीव को ही उस (सुषुप्ति अनन्तर जायमान) प्रमा का कर्ता मानें तो कुलालादि ज्ञानशून्यदशा में भी घटादि का कर्ता (कर्तृत्वव्यवहार का भाजन) होना चाहिए। (किन्तु ईदृशव्यवहार नहीं देखा जाता, अतः ज्ञानशून्य जीव को कर्ता नहीं मान सकते ।)

नाकरणं कारणं स्यात् । ओमित्यभिधाने चाकारणमात्रं व्यवच्छेद्य-मिति कारणं करणमित्येवोच्यतां वृथाविशेषणपूरणप्रयासः । अथ मन्यसे – न धर्म्यन्तरव्यवच्छेदाय विशेषणानि, किन्त्वेकस्यापि धर्मिणो रूपभेदेन करणपदाभिधेयतोपदर्शनायेति; एवं तर्ह्येतद्रू-पालिङ्गितस्य करणत्वाल्लक्षणोक्तिप्रवृत्तेन त्वया लक्ष्यमात्रमुक्तं भवेत् । न च लक्ष्यपदप्रवृत्तिनिमित्तमेव लक्षणार्थः, गन्धवत्त्वादेः

शारदा

यथाव्याख्यातसाधारणमपीदम् । स्यादिति । **असाधारणकर्तुर्विवक्षायां त्वनीश्वरवादोक्तदोष इति भावः। कारणं करणम् = तत्क्रियाकारणं तत्क्रियाकरणम्** । एकस्यापीति । **उपधेयसाङ्कर्येऽप्युपाधीनामसाङ्कर्यमिति भावः। एवं तर्हि = उक्तरूपस्य करण-पदाभिधेयतावच्छेदकत्वे । लक्ष्यमात्रं = करणपदप्रवृत्तिनिमित्तम्** । भवेदिति । **तथा चार्थान्तरमिति भावः** । लक्ष्यपदेति । **लक्ष्यवाचकपदेत्यर्थः** । निमित्तमेवेति । **तथाच प्रकृतोपयुक्तस्यैव कथानान्नार्थान्तरमिति भावः। लक्षणार्थः = लक्षणम् । क्वचिदेव**

भारती

किञ्च सेश्वरवाद में वस्तु मात्र के ईश्वर व्यापार के विषय होने से सभी कारण करण हो जायेंगे, कोई कारण अकरण (करण से भिन्न) होगा ही नहीं। अर्थात् इस पक्ष में कर्ता कर्म सम्प्रदानादि सभी कारकों में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । (यदि लक्षण-घटक कर्तृपद से असाधारण कर्ता की विवक्षा करें तो अनीश्वरवाद में उक्त दोष उपस्थित हो जायेगा ।)

यदि कारणमात्र को करण रूप से स्वीकार करें तो अकारण पदार्थ ही करण लक्षण से व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) होगा, ऐसी स्थिति में "तत्क्रियाकारणं तत्क्रियाकरणम्" (तत्क्रिया का कारण ही तत्क्रिया का करण है) इतना ही करण का लक्षण मानना चाहिए । (इतने मात्र से ही अकारण की व्यावृत्ति हो ही जायेगी) अतः उक्त करण लक्षण में अन्य विशेषणों का देना व्यर्थ है ।

प्रश्न – उक्त करण लक्षण में कर्ता कर्म आदि अन्य धर्मियों की व्यावृत्ति के लिए विशेषण नहीं दिये गये हैं अपितु एक ही धर्मि (पदार्थ) में रूप भेद से करणपद-वाच्यता का प्रदर्शन करने हेतु दिये गये हैं । (क्योंकि उपधेय (लक्ष्य) के एक होने पर भी उपाधियों (तत्तत् कारकों के निमित्तों) की एकता न होने से अर्थात् उन निमित्तों के भिन्न-भिन्न होने से कर्तृत्व कर्मत्व आदि भिन्न-भिन्न व्यवहार हो जाता है ।)

समाधान – इस प्रकार से यदि उक्त करण लक्षण को आप करण पद की वाच्यता का अवच्छेदक (निश्चायक) मानेंगे कि "इन रूपों (तत्क्रिया का हेतु होकर तत्क्रिया के कर्ता के व्यापार का विषय तत्क्रिया का करण है) से युक्त पदार्थ करण होता है" तो – करण के लक्षण

पृथिव्याद्यलक्षणत्वापत्तेः। अपि चैवं वस्तुमात्रं करणमित्यभिधायैव किन्न करणपदप्रवृत्तिनिमित्तमुपादर्शि । स्यादेवं यदि सर्वत्र वस्तुनि करणव्यवहारः स्यादिति चेत्तर्हि त्वदुक्तलक्षणमपि भवेद्यदि सर्वत्र कारणे करणव्यवहारः स्यादित्यपि पश्य, नहि कर्तरि कर्मणि वा कस्यचित्करणव्यवहारः। कर्तरि तावदस्ति लोके 'प्रमाणमिह

शारदा

प्रवृत्तिनिमित्तस्य लक्षणत्वं नतु सर्वत्रेत्यरुचेराह अपिचेति । **वस्तुतस्तु रूपस्योक्तस्याननुगमेन शक्यतावच्छेदकत्वासम्भवः न वा रूपभेदं विना लक्ष्यतावच्छेदकस्य लक्षणत्वं युक्तम्, अतएवानुमितिगादाधर्यां ज्ञानव्यक्तिविशेषवृत्तिजातित्वेन लक्षणता स्वरूपेण चानुमितित्वस्य लक्ष्यतावच्छेदकतेत्यभिधाय विरोधः परिहृतः, नवा करणपदप्रवृत्तिनिमित्तस्य लक्षणत्वे करणपदार्थत्वेन लक्ष्यतासम्भवः, शक्यतावच्छेदकस्याशक्यत्वात्, शक्यत्वेऽपि लक्ष्यतावच्छेदकासमनियतत्वेनालक्षणत्वात् । करणपदत्वं च न शक्त्या करणत्वविशिष्टविषयकबोधजनकत्वादन्यदिति लक्षणज्ञानं विना न लक्ष्यतावच्छेदकज्ञानमित्यन्योन्याश्रयः** । कर्तरि कर्मणीति । **तत्क्रियाया** इत्यादिः। करणव्यवहार इति । **तत्क्रियाकरणत्वव्यवहार इत्यर्थः । लोकव्यवहारानुरोध्येव लक्ष्यलक्षणभावः अतएव ध्वन्यालोकालोचनेऽभिनवगुप्तपादैः ''खड्गलक्षणं करोमीत्युक्त्वा आतानवितानात्मा प्राव्रियमाणः सकलदेहाच्छादकः सुकुमारश्चित्रतन्तुविचितः संवर्तनविवर्तनसहिष्णुरच्छेदकः सुच्छेद्य उत्कृष्टः खड्ग इति ब्रुवाणः परैः पटः खल्वेवंविधो भवति न खड्ग इत्युक्त्या**

राजहंसः

करणपदत्वं चेति । न च करणेत्याकारकशब्दार्थत्वमेव लक्ष्यतावच्छेदकमिति न तत्र पदत्वनिवेशनिबन्धनं दूषणम् , शब्दार्थत्वस्य शक्तिघटितत्वेन तज्ज्ञानस्य शक्यतावच्छेदकज्ञानं विनाऽनुपपत्तेरित्याशयात् ।

भारती

निरूपण में प्रवृत्त आप (तार्किक) ने लक्ष्यमात्र अर्थात् करणपद के प्रवृत्तिनिमित्तमात्र का कथन किया, न कि करण लक्षण का, अत: अर्थान्तर दोष की आपत्ति होगी ।

यदि कहें कि लक्ष्यवाचक पद का प्रवृत्तिनिमित्त ही लक्षण होता है, अत: प्रकृत में उपयुक्त का ही कथन होने से अर्थान्तर दोष नहीं है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रवृत्तिनिमित्त को लक्षण मानने पर गन्धवत्त्व पृथिवी का लक्षण न होगा, क्योंकि गन्धवत्त्व रूप उपाधि की अपेक्षा लाघव होने से पृथिवीत्व जाति ही पृथिवी पद का प्रवृत्तिनिमित्त होगा । अत: पृथिवीत्व जाति ही लक्षण होगा, गन्धवत्त्व नहीं ।

अपि च प्रवृत्तिनिमित्त को ही लक्षण मानें तो ''वस्तुमात्र ही करण है'' ऐसा कह कर ही आप (तार्किकादि) ने करणपद का प्रवृत्तिनिमित्त क्यों नहीं दिखाया । (वस्तुतस्तु रूपों के अननुगम होने से शक्यतावच्छेदक का निर्णय नहीं है एवं रूप भेद के विना लक्ष्यतावच्छेदक को लक्षण नहीं मान सकते ।)

प्रश्न – ''वस्तुमात्रं करणम्'' वस्तुमात्र ही करण है ऐसा तब कह सकते हैं यदि सर्वत्र वस्तुओं में करणत्व व्यवहार होता ।

देवदत्त' इति, शास्त्रेऽपि ''मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्या'' दिति चेन्न; किमयं माणवकेऽग्निव्यवहार इव गौणो मुख्य एव वेति संशये यदि त्वत्परिकल्पितान्निमित्तान्मुख्यः स्यात् , ततः कर्मण्यपि स्यात्तत एव निमित्तादिति बाधदर्शनेन पारिशेष्याद् गौणतयैव तद्व्यवस्थापनाया युक्तत्वात् । अस्त्येव कर्मण्यपि तेन रूपेणेति चेन्न, न तावदयं शक्योपदर्शनोदाहरणः

शारदा

पर्यनुयुज्यमान एवं ब्रूयात् 'ईदृश एव खड्गो ममाभिमत' इति तादृगेवैत''दित्युपहसितमिति भावः । तत्प्रामाण्यम् = पारलौकिकफलकस्य वैदिकविधिभागस्य प्रामाण्यम्, तादृशभागः प्रमाणमिति यावत्, आप्तप्रामाण्यात् = आप्तोक्तत्वादिति यावत् प्रवृत्तिसामर्थ्यानुमितप्रामाण्यकविषादिनाशकमन्त्रनिचयवत् तादृशायुर्वेदवच्चेति न्यायसूत्रार्थः । अत्र प्रमातुरप्याप्तस्य प्रामाण्यमुक्तमिति भावः । गौणतया = प्रमाहेतुत्वरूपसदृशगुणप्रयुक्ततया। युक्तत्वादिति । **अतएव विश्वनाथवृत्तौ ''आप्तस्य प्रामाण्यात् = यथार्थोपदेशकर्तृत्वात्, आप्तं = गृहीतं प्रामाण्यं यत्र स वेदस्तादृशेन वेदत्वेन वे''ति व्याख्यातमिति भावः । एवं देवदत्तः प्रमाणमित्यत्रापि प्रमाणशब्दो निर्णायकपरो वा यथार्थवक्तृपरो वेति । काष्ठैः पचतिं, काष्ठानि पचन्तीत्यादावपि नैकक्रियायां करणस्य कर्तृत्वं कर्तुर्वा करणत्वं मुख्यम्, पच्यर्थक्रियाप्रचयान्तःपात्यवान्तरक्रियाभेदसद्भावाज्ज्वलनक्रियाकर्तृत्ववतामेव काष्ठानां पचिवाच्यसमूहकर्तृत्वारोपात् ।** तेनेति। **तत्क्रियाहेतुत्वविशिष्टतत्क्रियाकर्तृव्यापारविषयत्वादिनेत्यर्थः । अयम् = कर्मणि करणत्वव्यवहारः । शक्यमुपदर्शनं यस्य, एवम्भूतमुदाहरणं यस्य सः ।** शास्त्रेति । **''प्रमेया च तुलाप्रामाण्यव''दिति न्यायसूत्रे**

भारती

समाधान – तब तो आपके उक्त लक्षण भी तभी हो सकता है कि यदि सर्वत्र कारणों में तत्क्रियाकरणत्व का व्यवहार होता । किन्तु कर्ता, एवं कर्म में किसी का भी करणत्व व्यवहार नहीं देखा जाता । यदि कहें कि –''प्रमाणामिह देवदत्तः'' (इसमें देवदत्त ही प्रमाण है) इस प्रकार लोक में कर्ता में करणत्व व्यवहार देखा जाता है । एवं शास्त्र में भी ''मन्त्र इत्यादि = पारलौकिक फलक वैदिक विधिभाग प्रमाण है आप्तप्रामाण्य अर्थात् आप्तोक्त होने से मन्त्र आयुर्वेद प्रामाण्य के समान'' । इत्यादि स्थलों में कर्ता में करणत्व व्यवहार देखा जाता है तो यह कहना ठीक नहीं है । क्योंकि कर्ता में प्रदर्शित उक्त करणत्व व्यवहार क्या माणवक में अग्निव्यवहार के समान गौण है या मुख्य'' इस प्रकार संशय होने पर यदि आप के द्वारा कल्पित निमित्त से मुख्य मान लें तो आप के द्वारा परिकल्पित उसी निमित्त से कर्म में भी करणत्व व्यवहार होना चाहिए, किन्तु कर्म में करणत्वव्यवहार का बाध देखा जाता है अतः पारिशेष्यात् कर्ता आदि में उक्त करणत्वव्यवहार गौण ही मानना होगा । अर्थात् कर्ता के मुख्य रूप से करण न होने पर भी उस (कर्ता) में प्रमा हेतुत्वरूप गुण के सादृश्य से करणत्वव्यवहार की व्यवस्था गौण ही मानना उचित है ।

यदि कहें कि तत्क्रियाहेतुत्वविशिष्टतत्क्रिया के कर्ता के व्यापार विषयत्वादि रूप से कर्म में भी करणत्वव्यवहार होता ही है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि शास्त्र एवं लोक

शास्त्रलोकयोः, क्व दृष्यते घटं पश्यतीत्यर्थे घटेन पश्यतीति ? । यदि तु त्वच्चेतसि केवलं स्यात् तत्र नादरं विधातुमुत्सहामहे । प्रमेयमात्रं करणमिति वदतो वामबुद्धेर्मनसि परिवर्तमानं प्रमेयमात्रे

शारदा

तत्क्रियाकर्मण एव तत्क्रियाकरणत्वं व्यवहृतमिति तु भ्रमः, यथाहि सुवर्णादिगुरुत्वपरिच्छेदकत्वात्तुलायां प्रमाणत्वव्यवहारः, तुलान्तरेण तदीयगुरुत्वपरिच्छेदेन तु तत्र प्रमेयत्वव्यवहारः, तथेन्द्रियादेरपि प्रमाणत्वप्रमेयत्वव्यवहार इति हि तदर्थः, तत्र च क्रिययोः कर्मकरणयोश्च भेदः स्फुट एव । तन्निष्ठकर्मत्वनिरूपकक्रियानिरूपितकरणत्वव्यवहारस्य तु तत्र गौणताया वक्तव्यत्वात् । यथा ''बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित'' इत्यादौ। वस्तुतस्तु–आत्मा = कार्यकरणसङ्घातो येन वशीकृत आत्मनैव = विवेकयुक्तेन मनसैव, तस्यात्मनो मुमुक्षोर्जीवस्य आत्मा = बाह्यप्रवृत्तिरहितं मनः हितकरमित्येव तदर्थ इति भावः । क्वेति । **यद्दर्शनक्रियानिरूपितं कर्मत्वमावरणभङ्गादिरूपधात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वरूपं दर्शनविषयत्वरूपं वा यदा यत्र घटे, न तदा तत्र तद्दर्शननिरूपितसाधकतमत्वम्, फलोत्पत्तौ व्यापारविगमेन फलोपधायकव्यापारवत्त्वरूपस्य तस्यासम्भवात्, उभयोर्विवक्षा त्वेकदैकत्रैकस्यापि स्यात् सा चातिप्रसङ्गिकेत्युक्तं कर्मत्वनिरासप्रस्तावे स्वप्रकाशवादे पुरा । निरुक्तकर्मत्ववति निरुक्तसाधकतमत्वारोपे तु घटेन पश्यतीति प्रयोगस्य भाक्तत्वमेव न तु मुख्यत्वम् । तथा च तद्दर्शनक्रियाकर्मत्ववति घटे तद्दर्शनक्रियाकरणत्वव्यवहारो मुख्यः स्यादिति मूलार्थः। एतेन कर्मत्वकरणत्वयोः सामानाधिकरण्येऽप्यभेदाभावात्कर्मत्वेऽभिधेये कथं तृतीया स्यात्, करणत्वेऽभिधेये च कथं द्वितीया स्यात्, तत्र तयोरसाधुत्वात्, साधकतमत्वविवक्षायां तु घटेन पश्यतीति भवत्येव, स च न भाक्तः, मुख्येऽनुपपत्त्यभावादिति – निरस्तम् ।** प्रमेयमात्रे इति । **यद्यपि प्रमेयत्वस्य चरमध्वंसादिसाधारण्यम्,**

भारती

में ऐसा कोई उदाहरण आप प्रस्तुत नहीं कर सकते, जिसमें कर्म में करणत्वव्यवहार किया गया हो ।

(यहाँ यह मानना कि– ''प्रमेया च तुला प्रामाण्यवत्'' इस न्यायसूत्र में तत्क्रिया के कर्म में तत्क्रियाकरणत्व व्यवहार किया गया है ।'' भ्रममात्र है, ''क्योंकि जैसे सुवर्णादि के गुरुत्व (भार) का निश्चायक होने से तुला (तराजू) में प्रमाणत्व (प्रमाकरणत्व) व्यवहार होता है और उसी तुला में – दूसरी तुला के द्वारा उस के गुरुत्व का निश्चय किये जाने पर प्रमेयत्वव्यवहार होता है उसी प्रकार इन्द्रियादि में भी प्रमाणत्व एवं प्रमेयत्व दोनों व्यवहार होते हैं'' यह उक्त सूत्रार्थ है और इसमें क्रियाओं का तथा कर्म-करण का भेद स्पष्ट है ।) तथाच घटं पश्यति इस अर्थ में अर्थात् तत्क्रिया के कर्म घट में घटेन पश्यति अर्थात् तत्क्रिया के करण का मुख्यत्व व्यवहार कहाँ देखा जाता है अर्थात् कहीं नहीं देखा जाता ।

यदि केवल आपके चित्त में ही तत्क्रिया के कर्म घट में तत्क्रियाकरणत्व व्यवहार होता है, तो तादृशव्यवहार में हमें प्रामाण्यग्रह नहीं है अर्थात् हम आपके चित्त में जायमान उस

एव करणव्यवहारास्तित्वमेवमनुरोद्धव्यं स्यादिति । घटेन पश्यतीत्याद्यनभिधानवशान्न प्रयोगः, नहि सर्वं लाक्षणिकं प्रयुज्यते इति चेन्न; मास्तु, तदभावे कोऽन्योऽस्ति तेषु करणव्यवहार इति वक्तव्यः स स्यात् नचासौ शक्यदर्शन इति ।।

शारदा

तथापि करणत्वेनाव्यवह्रियमाणेऽपि तदभ्युपगन्तुश्चरमध्वंसादावपि तादृशे तदभ्युपगमो न पाण्डित्यनुदिति भावः। लाक्षणिकमिति। **सूत्रसिद्धमित्यर्थः। अतिप्रसङ्गो नोद्धाव्योऽभिधानस्य समाश्रयादिति वैयाकरणोक्तेः, अतएव वचिरन्तिपरो न प्रयुज्यते इति । भङ्क्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य दर्पं पदप्रयोगाध्वनि लोक एष इति च नैषधेऽप्युक्तम् । साधकतमत्वविवक्षायां च घटेन पश्यतीति लाक्षणिकमिति भावः । तदभावे = उक्तप्रयोगाभावे तेषु = कर्मादिषु । इदन्त्ववधेयम्— उक्तलक्षणघटकीभूतक्रियात्वं न धात्वर्थत्वं धातुत्वस्य क्रियावाचकत्वरूपत्वेऽन्योन्याश्रयापत्तेः, अन्यतमत्वस्य तु भेदकूटघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वम्, वाच्यत्वसम्बन्धेन सङ्केतसम्बन्धेन वा धातुपदवत एव प्रश्नविषयत्वेन तेन सम्बन्धेन तद्वत्त्वस्यालक्षणत्वात्, सङ्केतेनैवोपपत्तौ धातुपदवाच्यत्वस्य भ्वादावप्रामाणिकत्वाच्च वाच्यतादितदवच्छेदकयोरैक्यपर्यवसानाच्च । नच ण्वुल्निष्ठविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकवत्त्वं तत्, तादृशोद्देश्यतावच्छेदकत्वेन लक्षणस्यापि धातुत्वस्य स्वरूपतो लक्ष्यतावच्छेदकत्वमविरुद्धमिति वाच्यम्; तृजादिनिवेशेन विनिगमनाविरहात् । ण्वुल्तृजादिसकलकृत्प्रत्ययनिष्ठा विधेयता तु नैका काचिदिति सकलकृत्प्रत्ययोपादानस्याप्यसम्भवः कृत्प्रत्ययत्वेनोपादाने तु कृत्वप्रत्ययत्वयोरप्यनयैव रीत्या निरासावतारभाजनता, एवमेव लडाद्युपादानासम्भवोऽपि । क्रियात्वस्य धातुत्वस्य वाऽखण्डधर्मविशेषत्वे तु विषयवैलक्षण्यस्य प्रतीतौ प्रतीतिवैलक्षण्यस्य च विषये आयतमानत्वेनान्योन्याश्रयः। एवञ्च कृतिमत्त्वस्य रथादिसाधारण्याभावेन प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापाराश्रयत्वस्यैव कर्तृत्वरूपताया वक्तव्यतया तस्यापि दुर्वचता, आश्रयतावच्छेदकनिरूपणापेक्षा च । एवमेव च वाच्यतासम्बन्धेन**

राजहंसः

मूले **इति वक्तव्य इति** । इति प्रश्ने सति वक्तव्य इत्यर्थः ।

भारती

व्यवहार को प्रामाणिक नहीं मानते । कारण कि हम यदि उसे प्रमाण मानें तो ''प्रमेयमात्रं करणम्'' (प्रमेयमात्र ही करण है) इस प्रकार कहनेवाले विपरीत बुद्धि आप (तार्किकादि) के चित्त में होने वाले प्रमेयमात्र में ही करणत्वव्यवहार के अस्तित्व को भी स्वीकार करना होगा।

यदि कहें कि तत्क्रिया के कर्म घट में ''घटेन पश्यति'' इस प्रकार अभिधान न होने से तादृशप्रयोग नहीं होता यद्यपि साधकतमत्व की विवक्षा में ''घटेन पश्यति'' यह प्रयोग सूत्रसिद्ध हो सकता है तथापि सभी सूत्र सिद्धों का प्रयोग किया ही जाता है ऐसा नियम नहीं है । तो न हो तादृश प्रयोग, किन्तु उक्त प्रयोग के अभाव में कौन सा अन्य करणत्व व्यवहार है जो कि कर्मादि में होता हो, उसे कहना चाहिए । उसे (तादृशकरणत्वव्यवहार को) आप दिखा नहीं सकते । तस्मात् यह करण लक्षण निर्वक्तुं शक्य नहीं है ।

क्रियया ऽयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धि करणमित्यपि न । तथाहि–

शारदा

व्यापारपदवत्त्वस्याखण्डधर्मादिर्वा व्यापारालक्षणत्वेन धात्वर्थतावच्छेदकफलजनकत्वे सति धात्वर्थत्वस्यैव व्यापारत्वस्य वाच्यतया तस्यापि दुर्वचता, धातुत्वादिघटितत्वात्, व्यापारत्वस्यैव शक्यत्वे तदवच्छेदकत्वे चासङ्गतिः, अवच्छेदकान्तरञ्च दुर्वचम् । शक्यत्वत्वेनावच्छेद्यता स्वरूपतश्च व्यापारत्वस्यावच्छेदकतेति तु दुर्भणितिः, तथा सति भेदाभेदप्रसङ्गेनाद्वैतवादस्य शून्यवादस्य वाऽपत्तेर्बहुशोऽभिहितत्वात् । इच्छादिघटितशक्यत्वाप्रतीतावपि व्यापारत्वव्यवहारस्यानुभविकत्वाच्चेति । एतेन–यादृशार्थो विकरणविशिष्टयद्धातूपस्थाप्ययादृशार्थधर्मिकान्वयबोधनिरूपिततृतीयाज्ञानप्रयोज्यप्रकारताश्रयोऽनुभवसिद्धस्तादृशार्थस्तद्धातूपस्थाप्यतादृशार्थे करणत्वम्, यथा दात्रेण च्छिनत्तीत्यत्र धात्वर्थे छिदायां दात्रस्य व्यापारद्वारा जन्यत्वमिति निरस्तम् ; धातुत्ववद्विकरणत्वतृतीयात्वयोरपि पारिभाषिकयोरुक्तरीत्यैव दुर्वचत्वात् । लोके जन्यत्वादौ करणत्वात्मकताव्यवहारस्यादर्शनाच्च । व्युत्पत्त्यनुसारिणोऽनुभवस्य वस्त्वव्यवस्थापकत्वाच्चेति ।

क्रियया = कार्येण सम्बन्धि । अयोगव्यवच्छेदोऽभावप्रतियोगित्वव्यवच्छेदः, व्यापकत्वमिति यावत्, शङ्खः पाण्डर एवेत्यत्रायोगव्यवच्छेदार्थैवकारेण शङ्खनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वस्य पाण्डरत्वे प्रतीतेः । सम्बन्धान्वय्यभेदस्तृतीयार्थः । कार्यव्यापकत्वस्य कारकान्तरेऽपि सद्भावात्सम्बन्धित्वं सम्बन्धप्रतियोगित्वमेव विवक्षणीयम्, किन्तु स्वव्यापककार्यकत्वं सामग्र्यामतिप्रसक्तमिति स्वाव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिकार्यको यो व्यापारस्तद्वत्कारणत्वं यदि विवक्ष्यते तदा व्यापाराधिकरणे करणे स्वोपधायकव्यापारवत्त्वसम्बन्धेनैव कार्यात्यन्ताभावस्यावृत्तिताया वाच्यत्वात्तादृशव्यापारवत्कारणत्वस्यैव करणत्वात्मकतौचिती, एवं स्वव्यापककार्यकत्वमित्यत्रोक्तसम्बन्धेन व्यापकतायास्तादात्म्येन च व्याप्यताया विवक्षया सामग्र्यामतिप्रसक्तिवारणेऽपि । तस्माद्वस्तुविशिष्टकारणत्वं करणत्वम्, वैशिष्ट्यं स्वतादात्म्यस्वनिरूपितकार्यताविशिष्टनिरूपकताश्रयवृत्तित्वाभ्याम् । निरूपकतायां कार्यतावैशिष्ट्यं स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नस्वाश्रयनिष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणतावन्निरूपितत्व, स्वनिरूपितकारणतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व, स्वाश्रयोपधायकव्यापाराव्यवहितप्राक्क्षणावच्छिन्नत्वेति सम्बन्धत्रयेण । अव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वसम्बन्धेन कार्यविशिष्टत्वस्यैव कार्योपधायकतापदार्थत्वेनास्य फलाव्यभिचारिव्यापारवत्कारणत्वेन करणलक्षणेन फलतोऽविशिष्टत्वेन तत्र वक्ष्यमाणेन फलानुपधायकव्यापारविशिष्टहस्ताद्यव्याप्त्यादिनैव दूषितमिदमिति द्रष्टव्यम् । परम्पराणां संसर्गताया अप्रामाणिकता, अननुगमः, उक्तरूपस्याज्ञानेऽपि करणत्वव्यवहारेण तस्यालक्षणत्वम्, अस्य व्यावृत्त्यौपयिकत्वे तु

भारती

३. "क्रियया अयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धिकरणम्" (क्रिया अर्थात् कार्य के साथ अयोगव्यवच्छेदेन = सम्बन्धाभावाभाव अर्थात् व्यापकत्वेन जो सम्बन्धी है वही करण है) यह लक्षण भी

अयोगव्यवच्छेदो नाम योग एव पर्यवस्येदिति सम्बन्धेन सम्बन्धीत्युक्तं स्यादिति पौनरुक्त्यम् । यदा सम्बन्धीत्यनेन कालविशेष-नियतसम्बन्धिताऽभिधीयते ततोऽन्यस्मिन्नपि काले सम्बन्धि-ताऽयोगव्यवच्छेदपदेन विवक्षितेति चेन्मैवम्; सम्बन्धीत्यनेन न कालविशेषनियता सम्बन्धिताऽभिहिता येन कालान्तरेऽलब्ध-सम्बन्धिताभिधानाय पदान्तरमुपादीयेत । अथोच्यते – सम्बन्धी-त्यस्य सामान्यतोऽभिधायिनः कालविशेषनियतसम्बन्धमादायापि पर्यवसाने सार्थकत्वं भवत्येवेति कालान्तरेऽसम्बन्धितया व्यवतिष्ठमानं कर्त्राद्यपि करणं प्रसज्येत, तद्व्यवच्छेदाय कालान्तरे सम्बन्धिता

शारदा

व्यवहारौपयिकस्य लक्षणान्तरस्य वक्तव्यत्वापत्तिरित्येवमादिकं तु दूषणं स्पष्टमेव । यथाश्रुतं तु दूषयति तथाहीति । योगएवेति । **अयोगशब्दो योगाभावपर इति भावः ।** कालविशेषनियतेति। **कालविशेषावच्छिन्नेत्यर्थः । सम्बन्धोऽस्यास्तीत्येव सम्बन्धिपदव्युत्पत्तेरिति भावः ।** नेति। **अयं दण्डसम्बन्धी भविष्यत्यभूद्वेत्यपि प्रयोगादिति भावः ।** कालान्तरे सम्बन्धितेति । **पौनरुक्त्यस्यैवोद्भावितत्वेन तन्मात्रपरिहारे यत्नः, तेन स्वव्यापाराव्यवहितोत्तरक्षणे एव करणस्य फलसम्बन्धित्वेऽपि न क्षतिः । कालान्तरे इत्यस्य यावद्व्यापारसत्त्वमिति वार्थ। कर्त्रादेर्न यावद्व्यापारसत्त्वं फलसम्बन्धोऽपि तु करणस्येत्यभिमानः । स्वोपधायकव्यापारवत्त्वादिना फलवैशिष्ट्यलाभायायोगव्यवच्छेदपदम्, अन्यथा तादृशव्यापारजनकव्यापारवत्त्वादिना फलवैशिष्ट्यमादाय कर्त्रादावतिप्रसक्तिः स्यात्, सम्बन्धिपदं वा कारकत्वलाभार्थमन्यथा**

भारती

समीचीन नहीं है । क्योंकि अयोगशब्द योगाभावपरक है और योगशब्द सम्बन्ध का वाचक है अतः अयोगव्यवच्छेद शब्द के योग रूप अर्थ में पर्यवसित होने से उक्त करण लक्षण का सम्बन्धेन सम्बन्धी'' (सम्बन्ध से सम्बन्धी जो है वह करण है) इस आकार में पर्यवसान है और इस प्रकार लक्षण मानने में सम्बन्ध के द्विरुक्त होने से पुनरुक्ति दोष आता है ।

यदि कहें कि – ''सम्बन्धोऽस्य अस्ति'' इस व्युत्पत्ति से सम्बन्धी शब्द कालविशेषावच्छिन्न का कथन करता है । अतः काल विशेष से अन्य काल में भी सम्बन्धित्व (सम्बन्ध) का कथन करने के लिए अयोगव्यवच्छेद पद है तथाच प्रयोजन भिन्न होने से पुनरुक्तिदोष नहीं है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि सम्बन्धीपद के द्वारा कालविशेषावच्छिन्न सम्बन्ध का कथन नहीं होता, कारण कि ''अयं दण्डसम्बन्धी भविष्यति – अभूद्वा'' इत्यादि प्रयोग भी होता है । यदि सम्बन्धीपद कालविशेषावच्छिन्न का प्रत्यायक होता तो कालान्तर में अप्राप्त सम्बन्ध के अभिधान के लिए पदान्तर अर्थात् अयोगव्यवच्छेदपदका उपादान किया जा सकता था किन्तु सम्बन्धीपद तो सामान्यतः सम्बन्धमात्र का ही बोधक है ऐसी स्थिति में उक्त पदान्तर देने पर पुनरुक्ति दोष आपतित होगा ।

प्रश्न – यद्यपि सम्बन्धी पद सामान्यतः सम्बन्धमात्र का ही बोधक है तथापि

पदान्तरेणाभिधीयत इति । मैवम् ; तर्हि तेनापि क्वचिदेव कालान्तरे यदि सम्बन्धिताऽभिधीयते तदाऽपि तस्य सार्थकता सम्बन्धिपदन्यायेन सामान्याभिधायिनो भवेदिति ततोऽपि कालान्तरेऽसम्बन्धव्यवच्छेदाय विशेषणान्तरमपि निवेशनीयं स्यात् । अथ यदा कदाचिदपि योऽयोगस्तस्य सर्वस्य व्यवच्छेदो विवक्षित इति; तर्हि सम्बन्धिपदे एवैषा विवक्षास्तु, कृतमधिकमुपादाय तद्विवक्षया । निषेधव्य-वच्छेदेन सार्वत्रिकत्वलाभ इति चेन्न; निषेधव्यवच्छेदस्य विध्यन-

---

शारदा

नित्यं स्वज्ञानं प्रतीश्वरस्य करणत्वं स्यादिति तु वक्तुं युक्तमासीत् । तेनापि = अयोगव्यवच्छेदपदेनापि । सम्बन्धिपदन्यायेन = सम्बन्धिपदवत्। सार्वत्रिकत्वेति । **नियमेन फलवत्त्वेत्यर्थः । सार्वदिकत्वेति पाठे तु यावद्व्यापारसत्त्वं फलवत्तेत्यर्थः ।** लाभ इति ।

राजहंसः

नित्यं स्वज्ञानं प्रतीश्वरस्य करणत्वं स्यादिति । क्रियांशब्देन धात्वर्थविवक्षयेदम्, अन्यथा कार्यत्वस्य तत्राभावादेवातिव्याप्त्यप्रसक्तेः ।

भारती

कालविशेषावच्छिन्न सम्बन्ध को लेकर अर्थात् कालविशेषावच्छिन्न सम्बन्धबोधकतया भी उस (सामान्यतः सम्बन्धमात्रबोधक सम्बन्धीपद) का सार्थक्य हो सकता है । अतः कालान्तर में असम्बन्धी रूप से उपस्थित अर्थात् कालान्तर में क्रिया (कार्य) से असम्बद्ध कर्ता आदि भी करण न हो जाय, एतदर्थ कालान्तर में कार्य से असम्बद्ध कर्त्रादि की व्यवच्छित्ति (व्यावृत्ति) करने के लिए उक्त करणलक्षण में अयोगव्यवच्छेद पद का निवेश किया गया है । इससे खाण्डनिक के द्वारा उद्भावित पौनरुक्य नहीं है । यहाँ कालान्तर शब्द से यावद्व्यापार सत्ताकाल विवक्षित है । कर्ता आदि का व्यापारसत्त्व कालपर्यन्त फल सम्बन्ध नहीं होता । अपितु करण का व्यापारसत्त्वकालपर्यन्त ही फल सम्बन्ध होता है ।

समाधान – इस प्रकार नहीं कह सकते । क्योंकि सम्बन्धीपद के समान सामान्यतः सम्बन्धमात्र का वाचक अयोगव्यवच्छेदपद भी किसी कालान्तर अर्थात् कालविशेषावच्छिन्न सम्बन्ध का अभिधान करके भी सार्थक हो सकता है । अतः पुनरपि तद्भिन्न कालान्तर में असम्बन्ध के व्यावृत्त्यर्थ विशेषणान्तर का भी निवेश उक्त करणलक्षण में करना होगा, ऐसी स्थिति में उत्तरोत्तर विशेषण का निवेश करने से अनवस्थापत्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि जिस किसी भी काल में अर्थात् सभी कालविशेषों में रहने वाले सम्बन्धाभाव का व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) अयोगव्यवच्छेद पद से विवक्षित है तो यह विवक्षा सम्बन्धी पद में ही क्यों न की जाय, अर्थात् क्रिया (कार्य) के साथ यावत् कालविशेषावच्छिन्नसम्बन्धी ही करण है'' ऐसा ही मान लिया जाय, तदर्थ अयोगव्यवच्छेद पद का उक्त करणलक्षण में निवेश करना व्यर्थ है ।

यदि कहें कि अयोगव्यवच्छेद पद के द्वारा अयोग अर्थात् सम्बन्धाभावरूप निषेध व्यावृत्ति होने से करण में सार्वत्रिकत्व अर्थात् नियम से फलवत्ता का लाभ होता है । तथाच

तिरेकार्थत्वेनाविशेषात् । तद्धर्मिकं सम्बन्धस्यासम्बन्धा-सामानाधिकरण्यं 'अयोगव्यवच्छेदेने' त्यनेनोच्यते इति चेन्न; तस्यापि सिम्बन्धकाले तत्रासत्त्वोपगमात् । सर्वदेति चेन्न ;

शारदा

ननु विवक्षामात्रेणेति शेषः । विध्यनतिरिक्तार्थत्वेन = विध्यनतिरिक्तत्वेन । अविशेषात् = उक्तफलवत्त्वरूपविशेषलाभाप्रयोजकत्वात् । तद्धर्मिकमिति। **तदवच्छेदेनेत्यर्थः । तदा लक्ष्यपरामर्शः । निरूपकताविशेषो वाऽत्र धर्मिता । तथाच तत्फलसम्बन्धनिष्ठस्य स्वाभावसामानाधिकरण्यस्यानिरूपकत्वं तत्फलकरणत्वमित्यर्थः। कर्त्रादेस्तु फलसम्बन्धविरहदशायामपि व्यापृतत्वेनोक्तसामानाधिकरण्यनिरूपकत्वमेवेति भावः । फलसम्बन्धकालावच्छेदेन कर्त्रादिरपि तादृशनिरूपकत्वविरहितया तत्रातिव्याप्तिरित्याह** तस्येति। **तादृशनिरूपकत्वस्येत्यर्थः । तत्र = कर्त्रादावपि । इदमुपलक्षणम्–करणस्यापि व्यापारशून्यतादशायां तदाद्यक्षणे च फलविरहवत्तयोक्तसमानाधिकरण्यनिरूपकत्वे-नासम्भवोऽपि द्रष्टव्यः** । सर्वदेति । **तादृशसमानाधिकरण्यानिरूपकत्वं तत्फलकरणत्वमिति**

भारती

जो क्रिया (कार्य = फल) सम्बन्धी होकर नियम से फल (छेदनादि) वाला हो वह करण है'' यही करण लक्षण हो जायेगा, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि निषेध का निषध प्रतियोगी रूप ही होता है अतः प्रकृत में अयोग रूप निषेध के व्यवच्छेद अर्थात् निषेध करने पर विधि अर्थात् योग रूप अर्थ से अतिरिक्त न होने से वह अयोगव्यवच्छेदपद, उक्त फलवत्त्व रूप विशेष लाभ का प्रयोजक नहीं है । अर्थात् अयोगव्यवच्छेद पद के द्वारा उक्त फलवत्त्व रूप अर्थ का लाभ नहीं हो सकता ।

यदि कहें कि – अयोगव्यवच्छेद पद के द्वारा तद्धर्मिक अर्थात् तदवच्छेदेन (करणतया अभिमतपदार्थकुठारादि को आधार बनाकर) छिदाद्यात्मकक्रियारूपफलसम्बन्ध में असम्बन्ध (सम्बन्धाभाव) का असामानाधिकरण्य विवक्षित है तथाच यन्निष्ठ फल सम्बन्ध में स्वाभाव-सामानाधिकरण्य का अनिरूपक हो वह तादृशफल का करण है'' इत्याकारक करण का लक्षण मानेंगे । कर्ता आदि तो फलसम्बन्धाभाव दशा में भी व्यापार करते हैं अतः कर्ता आदि में रहने वाला फलसम्बन्ध स्वाभाव (सम्बन्धाभाव) सामानाधिकरण्य का निरूपक ही है अतः उस (कर्ता) में अतिव्याप्ति नहीं है । तो यह आप (तार्किक) का कथन ठीक नहीं है, क्योंकि कर्ता आदि में फलसम्बन्ध भी सम्बन्धकालावच्छेदेन स्वाभावसामानाधिकरण्य का अनिरूपक है अतः कर्ता आदि में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति है ।

अपिच – उक्त करणलक्षण असम्भव दोषग्रस्त भी है क्योंकि कुठारादि करण भी व्यापार के अभावदशा में या व्यापार के आद्य क्षण में फलाभाव से युक्त है अतः करणनिष्ठ फलसम्बन्ध भी स्वाभावसामानाधिकरण्य का निरूपक ही है ।

यदि कहें कि सर्वदा अर्थात् सर्वकालावच्छेदेन यन्निष्ठफलसम्बन्ध स्वाभावसामानाधिकरण्य का अनिरूपक हो वह तत्फल का करण है ऐसा कहेंगे तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि –

यद्येवं तत्किं करणासत्त्वकालेऽपि योग एव करणेन क्रियायाः?। यावत्सत्त्वमिति चेत्तर्हि सम्बन्धीति व्यर्थम् , यावत्सत्त्व-मयोगव्य-वच्छेदेन यद्विशिष्टमुपलक्षितं वा तत्करणमित्येवास्तु, सम्बन्धीत्येव वा तथा विवक्ष्यतामित्युक्तमेव । अयमेवार्थः कयाऽपि कुसृष्ट्या सम्बन्धिपदसार्थकतामुपपाद्य यदि

शारदा

शेषः । एवमग्रे यावत्सत्त्वमित्यत्रापि। व्यर्थमिति । **यथाश्रुतेऽसम्भवस्याप्युपलक्षणमिदम्, यावद्व्यापारसत्त्वमिति विवक्षायामपि तं वक्ष्यति ।** विशिष्टमिति । **कार्येणेत्यादिः । एतादृशयथाश्रुते कार्यविशिष्टत्वेन कारणत्वे आत्माश्रयाऽन्योन्याश्रयौ, कार्यवैशिष्ट्यस्य कारणतावच्छेदकावच्छिन्नसमवधानाधीनत्वादित्याशयेनोक्तमु**पलक्षितमिति । **उक्तनिरुक्तावेव तात्पर्यम् । कालिकव्याप्तिविवक्षया तत्कार्यव्याप्यसत्ताकत्वे सति तत्सम्बन्धित्वं वा तत्कार्यकरणत्वं विवक्षितम् । तेनाग्रिमदूषणपरग्रन्थस्य नासङ्गतिः । लाघवादाह** सम्बन्धीत्येवेति। **नित्ययोगेऽपि मतुपो विधानेनोक्तार्थलाभोपपत्तेरिति भावः । मतुपो नित्ययोगार्थ-कतायामयोगव्यवच्छेदपदस्य तात्पर्यग्राहकतयोभयसाफल्यमाशङ्क्याह** अयमेवेति । कुसृष्ट्येति।

राजहंसः

उक्तनिरुक्तावेवेति । यावत्सत्त्वं तादृशानिरूपकत्वे इत्यर्थः । लाघवादाह **कालिकव्याप्तीति। तेनेति ।** तज्जनकत्वमनिवेश्य तत्सम्बन्धित्वनिवेशेनेत्यर्थः ।

भारती

क्या करण के असत्त्व काल में भी क्रिया के साथ करण का सम्बन्ध ही रहता है ? अर्थात् करण के अभावकाल में करण में क्रियारूप फल का सम्बन्ध न रहने से करणनिष्ठ फल-सम्बन्ध भी सर्वकालावच्छेदेन तादृशसामानाधिकरण्य का अनिरूपक नहीं है अतः उक्त लक्षण असम्भव दोषग्रस्त हो जायेगा । यदि करण के यावत्सत्त्वकाल में (कारणसत्त्वकालावच्छेदेन) तादृशसामानाधिकरण्य का अनिरूपकत्व कहें तो ऐसा कहने पर सम्बन्धी पद व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि यावत् सत्त्व काल में अर्थात् स्वसत्त्वकालावच्छेदेन न अयोगव्यवच्छेद से कार्य से जो विशिष्ट हो या कार्य से जो उपलक्षित हो वह उस क्रियारूप फल का करण है'' इतना ही लक्षण मान लें, इसमें सम्बन्धी पद के निवेश का कोई प्रयोजन नहीं है । (यहाँ कार्यविशिष्ट रूप से कारण मानने पर – कार्य वैशिष्ट्य के कारणतावच्छेदकावच्छिन्न के समवधान के अधीन होने से आत्माश्रय एवं अन्योन्याश्रय दोष आपतित होते हैं अतः कार्य से उपलक्षित कहा गया है । अथवा लाघवात् सम्बन्धी पद में ही उक्त विवक्षा कर सम्बन्धीपद का ही लक्षण में निवेश करें, अयोग व्यवच्छेदपद का नहीं । क्योंकि नित्ययोग अर्थ में भी मतुप् का विधान होने से उक्त अर्थ का लाभ सम्बन्धीपद से ही हो सकता है ।

यदि इसी अर्थ को किसी कुसृष्टि के द्वारा अर्थात् – सम्बन्धीपद में मतुप् नित्ययोगार्थ में है इस तात्पर्य का ग्राहक अयोगव्यवच्छेदपद है'' इस कुकल्पना के द्वारा कहना चाहते हैं जिससे सम्बन्धी पद एवं अयोगव्यवच्छेदपद दोनों का साफल्य हो जाता है तो ऐसा कहने

विवक्षितस्तदाप्युच्यते । कृत्तिकोदयक्रियायां रोहिण्यासत्तिरप्येवं करणं स्यात् , अनन्तरभाविनश्चतुर्दशस्य नक्षत्रस्योदयं प्रति पूर्वभाविचतुर्दशसङ्ख्यनक्षत्रास्तमयस्य च करणत्वं स्यात् । नचैवमेव युक्तम्, यौगपद्येन कारणत्वानुपपत्त्या कारकत्वस्य दूरनिरस्तत्वेन करणत्वस्य सम्भावनानारोहात् । न च तत्र सम्बन्ध एव नास्तिः व्याप्तेः स्वभावसम्बन्धात्मिकाया दुरपह्नवत्वात् । अथ

शारदा

कुकल्पनयेत्यर्थः । अर्थविशेषे पदान्तरतात्पर्यग्राहकस्यैव पदस्य तदर्थपरत्वौचित्यात् , अन्यथा तात्पर्यग्राहकतयाऽयोगव्यवच्छेदपदं प्रयुक्तमिति स्वकीयतात्पर्यग्राहकस्यापि विशेषणान्तरस्य प्रक्षेपापत्तावव्यवस्थाप्रसङ्गात्, अतएव वादिवाक्ये न लक्षणेति प्रवादस्यापि सङ्गतिरिति भावः । रोहिण्यासत्तिरिति । कृत्तिकोदयक्रियाकालीनत्वविशिष्टेत्यादिः । तेन रोहिण्यासत्तेः कृत्तिकोदयक्रियाव्यापकत्वेऽपि नासङ्गतिः । अतएव कृत्तिकोदयादहोरात्रज एवासन्नरोहिण्युदयोऽनुमीयते इति तत्र तत्रोक्तं सङ्गच्छते । तस्यास्तद्व्याप्यत्वे तु नियमेन रोहिण्यासन्नत्वेन कृत्तिकानामस्तमयानापत्तिः । अनन्तरेति । यथाऽनुराधापेक्षयाऽनन्तरभाविनः कृत्तिकानक्षत्रस्योदयसमये एव तत्पूर्वभाव्यनुरोधास्तमयः । यद्यपि कृत्तिकाभरण्यश्विनीत्यादि-क्रमेण गणने कृत्तिकापेक्षयाऽनुराधानां पञ्चदशत्वमेव, उत्तराषाढाश्रवणयोर्मध्येऽभिजितोऽपि सद्भावात् । अतएव मध्यगतनक्षत्रदर्शनेन तत्पश्चिमभाविनोऽष्टमस्यास्तमयः पूर्वभाविन-श्चाष्टमस्योदयोऽनुमीयते इत्यन्यत्रोक्तम्, अन्यथा धनिष्ठाशतभिषेत्यादिक्रमेण गणने मध्यगतधनिष्ठापेक्षया कृत्तिकानामुदयमासादयन्तीनामष्टमत्वसम्भवेऽपि तदाऽस्तमयमासाद-

भारती

पर कृत्तिकोदयक्रियाकालीनत्वविशिष्ट रोहिणीनक्षत्र का सामीप्य भी कृतिकोदय क्रिया के प्रति करण हो जायेगा । एवं अनन्तरभावी चतुर्दश नक्षत्रों के उदय क्रिया के प्रति पूर्वभावी चतुर्दश नक्षत्रों की अस्तंगत क्रिया भी करण हो जायेगी । जैसे अनुराधा नक्षत्र की अपेक्षा अनन्तरभावी कृत्तिका नक्षत्र के उदयकाल में ही उसके पूर्वभावी अनुराधा नक्षत्र की अस्तमयक्रिया होती है। अतः कृत्तिकोदय के प्रति अनुराधा की अस्तमयक्रिया करण होनी चाहिए । ये दोनों उदय और अस्तमय कार्य भी है और परस्परव्याप्यसत्ताक भी है अतः परस्पर करण होने चाहिए एवं तद्रूपव्याप्य सत्ताक तद्रस के प्रति तद्रूप भी करण होना चाहिए । किन्तु इस उक्त प्रकार से उदय-अस्तमयादि को करण मानना उचित नहीं है, क्योंकि उन उदय अस्तमयादि का यौगपद्य (एककालभावी) होने से वे कारण न होने से कारक भी नहीं हो सकते, ऐसी स्थिति में उनमें करणत्व (करण होने) की तो सम्भावना भी नहीं की जा सकती ।

यदि कहें कि – उक्त उदयनादिक्रियाओं में सम्बन्ध ही नहीं है'' तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि उन क्रियाओं का स्वभाव अर्थात् अनौपाधिक सम्बन्धात्मक व्याप्ति रूप सम्बन्ध विद्यमान है उस (तादृशव्याप्त्याख्यसम्बन्ध) का अपलाप नहीं कर सकते । क्योंकि 'धूमवान्वह्ने' के समान यहाँ प्रकृत में कोई उपाधि नहीं है ।

कार्यकारणभावः सम्बन्धो विवक्षितः; न, सामग्र्याः करणत्वापत्तेः। ओमिति चेत्; तत्किमोमित्यभिधायैव निर्वृत्तो भवान्? आकलितं किलास्माभिः सामग्र्यपि करणमित्यत्र न श्रद्दधतः प्रणवपूर्विकां श्रुतिमेव काञ्चित्पठित्वा श्रद्धापयिष्यति भवानस्मानिति।

न सामग्री कारणं किन्तु तदेकदेशो नानाभूतः प्रत्येकं तथा, सामग्री तु यदनन्तरं कार्यं भवत्येवेत्येतावन्मात्ररूपेति चेन्न एतादृशस्य

शारदा

यन्तीनामनुराधानां धनिष्ठाश्रवणोत्तराषाढेत्यादिक्रमेण गणने सप्तमत्वमेव स्यान्नत्वष्टमत्वम्। तथापि "उत्तराषाढतुर्यांशं श्रुतिपञ्चदशांशकम्। कथितं चाभिजिन्मानं पुराणगणकोत्तमै"रित्युक्त्याऽभिजितो नक्षत्रान्तरशेषत्वेन पृथग्गणनामनादृत्य चतुर्थत्वाभिधानम्। एवञ्चोक्तोदयास्तमययोः कार्यत्वेन परस्परव्याप्यसत्ताकत्वेन च परस्परकरणतापत्तिः एवं तद्रूपादिव्याप्यसत्ताके तद्रसादावप्यतिप्रसङ्गो द्रष्टव्यः। स्वभावेति। **अनौपाधिकेत्यर्थः। धूमवान् वह्नेरित्यादाविव प्रकृते नोपाधिरिति भावः। अनौपाधिकत्वनिरुक्तिस्त्वनुमानापमाने वक्ष्यते।** कार्येति। **तत्कार्यव्याप्यसत्ताकत्वे सति तत्कार्यकारणत्वं तत्कार्यकरणत्वमित्यर्थः।** सामग्र्या इति। **सामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन कार्यस्य तद्व्यापकत्वात्। कालिकव्याप्तिविवक्षायाश्चासम्भवापादकत्वेनाशक्यत्वादिति भावः।** न श्रद्दधत इति। **सामग्र्याः करणघटितत्वं न तु करणत्वं मानाभावात्, व्यापारवत्येव करणत्वव्यवहारादिति भावः।**

भवत्येवेत्यत्र **क्रियासङ्गतस्याप्येवकारस्य ज्ञानं विषयं गृह्णात्येवेत्यादाविवायोग-**

भारती

यदि कहें कि – उक्त करण लक्षण में सम्बन्ध शब्द से कार्यकारणभावसम्बन्ध विवक्षित है। तथाच तत्कार्य का व्याप्यसत्ताक होकर तत्कार्य का जो कारण है वह तत्कार्य का करण है" इस प्रकार करण लक्षण हो जायेगा, तो यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि इस प्रकार मानने पर सामग्री भी करण हो जायेगी अर्थात् उक्त करण लक्षण सामग्री में अतिव्याप्त हो जायेगा। सामग्र्यव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन कार्य भी सामग्री का व्यापक है। यदि "ओम्" कहकर सामग्री में करणता स्वीकार करें तो क्या आप (तार्किक) "ओम्" कहकर ही आनन्द मग्न (कृतकृत्य) हो जायेंगे। अर्थात् नहीं, ओम्, कहने मात्र से आपकी इष्टसिद्धिः नहीं हो सकती। यहाँ ग्रन्थकार सोपहास कहते हैं– हम समझ गये कि – सामग्री को करण मानने में आप श्रद्धा (विश्वास) न रखने वाले हमें आप ओम् कहकर प्रणपूर्वक किसी श्रुति वाक्य को ही पढ़कर ही श्रद्धा करायेंगे। (तात्पर्य यह है सामग्री करण घटित होती है न कि करण, क्योंकि सामग्री की करणता में कोई प्रमाण नहीं है। व्यापार विशिष्ट कारण में ही करणत्व व्यवहार होता है।)

प्रश्न – सामग्री कारण नहीं है अपि तु सामग्री का एक देश नाना प्रकार का अर्थात् समवायि असमवायिनिमित्त रूप से प्रसिद्ध प्रत्येक कारण होते हैं। तथाच सामग्री में कारणता

सामग्रीलक्षणस्य करणेऽपि सत्त्वात्करणस्यापि सामग्रीत्वापातात्, क्रियाया विभागादौ विभागस्य च संयोगनाशादि प्रति तथात्वापत्तेः। यच्च प्रतिसामग्र्येकदेशं नियतप्राग्भावादि कारणलक्षणमिष्यते

शारदा

व्यवच्छेदोऽर्थो नत्वत्यन्तायोगव्यवच्छेदः, तथाच यदव्यवहितोत्तरक्षणत्वव्यापिका यदुत्पत्तिस्तस्य तत्सामग्रीत्वमित्यर्थः । नचैवमेकक्षणावच्छिन्नोत्पत्तिकानां समानसामग्रीकत्वापत्त्याऽभेदापत्तिः, यदुत्पत्तिरित्यत्र स्वकार्योत्पत्तिरित्युक्तौ तु सामग्र्याः कारणत्वस्वीकारप्रसङ्गः, स्वघटककारणनिरूपितकार्यताविशिष्टस्योत्पत्तिरित्युक्तौ तु मूले परतः करणादावतिव्याप्त्युद्भावनस्यासङ्गतिः, एवं कारणकूटस्यैव सामग्रीत्वपर्यवसानेन तस्य चानरिक्ततया सामग्र्यामपि कारणत्वप्रसङ्गतादवस्थ्यञ्चेति वाच्यम्; यत्समानाधिकरणेत्यस्यापि वक्तव्यत्वात् । करणे = फलोपधायकव्यापारवति । व्यापारशून्यत्वस्यापि निवेशे नेयमतिव्याप्तिरित्यतो व्यापारे तत्सत्त्वे एवाह क्रियाया इति । संयोगेति । **पूर्वेत्यादिः । पूर्वं क्रिया ततो विभागस्ततः पूर्वसंयोगनाशस्तत उत्तरदेशसंयोग इति प्रक्रियामाश्रित्येदम् । अव्यवहितोत्तरत्वविवक्षामकुर्वन्तं प्रत्यादिपदद्वयसाफल्यम् । आदिमेनादिना पूर्वसंयोगनाशादेरुत्तरेण चोत्तरदेशसंयोगादेः परिग्रहात्** । तथात्वेति । **सामग्रीत्वेत्यर्थः । एवञ्च सति स्वस्वव्यापारान्यतरनिष्ठनियतपूर्ववर्तितावच्छेदकावच्छिन्नस्तोमस्यैव सामग्रीपदार्थताया वक्तव्यत्वात् तस्य च कारणलक्षणाक्रान्तत्वात्करणलक्षणस्यातिव्या-**

राजहंसः

एवं च सति स्वस्वव्यापारेत्यादि । एवं च सति = उक्तसामग्रीलक्षणस्य दुष्टत्वे सति।

भारती

के न होने से उक्त लक्षण घटक सम्बन्धी पद से विवक्षित कार्यकरणभाव रूप सम्बन्ध के न होने से उक्त करण लक्षण सामग्री में अतिव्याप्त नहीं है । सामग्री तो उसे कहते हैं – जिसके अनन्तर कार्य अवश्य होता है, अर्थात् "भवत्येव" में एवकार के "ज्ञानं विषयं गृह्णात्येव" इत्यादि के समान अयोगव्यवच्छेदार्थक होने से– "जिसके अव्यवहितोत्तरक्षणत्व की व्यापिका जिसकी उत्पत्ति हो वह उसके प्रति सामग्री है यही सामग्री का लक्षण है ।

समाधान – इस प्रकार सामग्री का लक्षण नहीं कर सकते, क्योंकि इस प्रकार के सामग्री लक्षण की फलोपधायक व्यापार विशिष्ट करण में अतिव्याप्ति हो जायेगी । ऐसी स्थिति में करण भी सामग्री हो जायेगा । (यदि उक्त लक्षण में व्यापार शून्यत्व का निवेश कर उक्त अतिव्याप्ति का वारण करें तो भी व्यापार में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

किञ्च – प्रथमक्षण में क्रिया ततो विभाग ततः पूर्वसंयोगनाश तत उत्तर देश संयोग इस प्रक्रिया के अनुसार विभाग के प्रति क्रिया, एवं पूर्व संयोगानाश के प्रति विभाग भी सामग्री हो जायेगी । अर्थात् उक्त सामग्री लक्षण क्रिया एवं विभाग में अतिव्याप्त हो जायेगा । (अव्यवहितोत्तरत्व की विवक्षा न करने पर "विभागादि" में "संयोगनाशादि" इन दोनों आदि पदों का साफल्य हो जाता है । उनमें प्रथम आदि पद के द्वारा उत्तर संयोग का ग्रहण कर – पूर्वसंयोगनाश के प्रतिक्रिया में तथा उत्तरसंयोग के प्रति विभाग में सामग्रीत्वापत्ति (सामग्रीलक्षण की अतिव्याप्ति) हो जायेगी ।)

तत्सामग्र्यामपीति कथं तदकारणता ?। प्राक्कालमन्तर्भाव्य सामग्री, तादृश्याश्च तस्याः प्राक्सत्त्वमेव नास्तीति चेन्न; अत एव प्राक्कालस्याकारणत्वात् कारणसामग्र्यां तदनिवेशात्। अपि चैवं

शारदा

प्तिस्तत्पृष्ठारूढैवेत्याशयेनाह यच्चेति। **प्राक्कालमन्तर्भाव्य = प्राक्कालघटिता** । नास्तीति। **प्राक्कालस्य प्राक्कालावृत्तित्वादिति भावः । अयमेव 'अतएवे'त्यस्यार्थः । यदि च कालविशेषनियततत्तत्फलादौ तत्तत्कालस्य यद्विशेषयोरितिन्यायेन च कार्यसामान्ये कालत्वेन कारणताया आवश्यकत्वेन स्वरूपसम्बन्धविशेषोऽन्यादृशी वा सा कालसाधारणी निरुच्यते उपाधिभेदाधीना व्यवस्था वाद्रियते तदा कालघटितसामग्र्यामपि सा दुर्वारैवेति भावः । यत्तु–प्रागभावेतरकादाचित्कयावत्कारणप्रागभावानाधारः कार्यप्रागभावाधारः क्षणः सामग्री, क्षणश्चाकारणम्, कालोपाधीनां ह्यधिकरणत्वेन कारणत्वम्, अधिकरणत्वञ्चानेककालावस्थायिनामेवेत्यकारणत्वान्न सामग्र्यामतिव्याप्तिरिति; तदपेशलम्, क्षणस्याधिकरणत्वानभ्युपगमे कार्यप्रागभावाधारत्वोक्तेर्व्याहतत्वात्, क्षणस्य क्षणत्वादेरप्यनधिकरणतापाताच्च, सामग्री क्षणिकेति व्यवहारापलापापाताच्च, सामग्रीपदयोगार्थत्यागे मानाभावाच्च, तादृशक्षणस्यानेककार्यसाधारण्येन घटकारणकूटीयत्वेन तस्य घटसामग्रीत्वोपगमे घटकारणकूटस्यैव घटसामग्रीत्वौचित्याच्चेति भावः । एतेन तदव्यवहितप्राक्क्षणवैशिष्ट्यं तत्सामग्रीति परास्तम्। ननु तत्कार्यव्याप्यसत्ताकत्वदले कालिकव्याप्तिविवक्षायां सामग्र्याः कारणत्वेऽपि न तत्रातिव्याप्तिः, स्वाव्यवहितोत्तरक्षणे एव तया कार्यजननादित्याशङ्क्य तादृशविवक्षाया असम्भवापादकत्वमाह** अपिचेति । **व्यापारवतोऽपीत्यनेन कालिकव्याप्तिविवक्षया**

राजहंसः

अन्यादृशीति । कारणतावच्छेदकरूपाऽतिरिक्तपदार्थरूपा वेत्यर्थः ।

भारती

किञ्च – जो सामग्री का प्रत्येक एक देश है उसमें आप नियतपूर्ववर्तित्व रूप कारण का लक्षण मानते हैं तो सामग्री में भी वह (नियतपूर्ववर्तित्वं रूप कारण का लक्षण) विद्यमान है ऐसी स्थिति में वह सामग्री कारण नहीं है यह कैसे कह सकते हैं । (तात्पर्य यह है कि स्व एवं स्वव्यापार अन्यतरनिष्ठ जो नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकावच्छिन्न समुदाय को सामग्री पदार्थ मानना होगा, और सामग्री पदार्थ नियतपूर्ववर्तित्व रूप कारण के लक्षण से आक्रान्त है ऐसी स्थिति में उक्त करण लक्षण की उस सामग्री) में अतिव्याप्ति भी रहेगी ही ।)

यदि कहें कि – सामग्री प्राक्कालघटित है अर्थात् सामग्री के स्वरूप में प्राक्काल भी प्रविष्ट है अतः ईदृशसामग्री में पूर्वकालवर्तित्व रूप कारणत्व नहीं रह सकता, क्योंकि आत्माश्रय के भय से सामग्रीघटक प्राक्काल में प्राक्काल वृत्तित्व नहीं रह सकता । तो यह कथन युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि प्राक्काल में प्राक्कालवृत्तित्व के न रहने से ही प्राक्काल कारण नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में कारणसामग्री के स्वरूप में उस (प्राक्काल) का निवेश भी नहीं हो सकता ।

अपि च – यदि कहें कि लक्षणघटक सम्बन्धीपद से कार्यकारणभाव सम्बन्ध की

विवक्षितमपि करणं न स्यात् , नहि यावत्सत्त्वं व्यापारवतोऽपि तस्य क्रियाजनकत्वम् , क्रियाऽकाले क्षणमपि तदनुवृत्तिनिषेधं प्रमाणस्य दुरुपन्यासतया संशयेनापि लक्षणासिद्धेः, प्रत्युत चिर-स्थिरकरसंयोगे स्पृश्ये स्पर्शप्रमाकरणस्पर्शनेन्द्रियसंयोगस्थैर्यस्य मन्तुमुचितत्वात् । यावत्सत्त्वं च कारणमिति भाषायां सर्वस्मिन।

शारदा

तत्कार्यव्याप्यसत्ताकव्यापारवत्कारणत्वमपि न लक्षणमिति सूचयति । फलीभूतक्रियाविरह-कालेऽपि करणव्यापारस्यानुवृत्तिः = सद्भावोऽस्तीति मया वाच्यम्, तन्निषेधे च प्रमाणं त्वया दुरुपन्यासमित्यर्थः । असिद्धेरिति । **अतएवानुमितिग्रन्थे भट्टाचार्यैरतिव्याप्तेः सन्देहेनापि तद्वारकविशेषणदानौचित्यं समर्थितम् । अभ्युपेत्यवादश्चायं वस्तुतस्तु प्रकृतेऽसम्भवनिश्चय एव, व्यापारस्य तद्वतो वा क्रियाजनकत्वेन तदव्यवहितप्राक्क्षणे सद्भावावश्यम्भावादिति। क्रियाप्रागभावकाले व्यापारानुवृत्तिनिश्चयस्थलमाह** प्रत्युतेति । **चिरं स्थिरः करसंयोगो यत्र । स्पर्शप्रमाकरणं त्वगिन्द्रियं तद्व्यापारो विषयसंयोगः** । उचितत्वादिति । **तथा चासम्भवसन्देहेऽपि व्यासङ्गस्थले व्यापारसत्त्वेऽपि फलाभावेनाव्याप्तिर्निश्चितैवेत्यर्थः ।**

भारती

विवक्षाकर – तत्कार्यव्याप्यसत्ताकत्वे सति तत्कार्यकारणत्वं तत्कार्यकरणत्वम्'' यह करण लक्षण किया गया था इसमें व्याप्यशब्दघटकतया दैशिक व्याप्ति लेने पर सामग्री में अतिव्याप्ति होती है, किन्तु दैशिकव्याप्ति न लेकर कालिक व्याप्ति की विवक्षा करने पर सामग्री के कारण होने पर भी सामग्री में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति न होगी, क्योंकि सामग्री तो स्वाव्यवहितोत्तर क्षण में ही कार्य की उत्पत्ति करती है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि कालिकव्याप्ति की विवक्षा करने पर असम्भव दोष हो जायेगा, क्योंकि करणतया अभिमत कुठारादि भी स्वीकीय यावत्सत्ता काल में व्यापार विशिष्ट होकर क्रिया के जनक नहीं होते । फलीभूत क्रिया (छिद्रादि) के अभाव काल में भी करण का व्यापार अनुवृत्त रहता है । आप (तार्किकादि) उसके निषेध में अर्थात् ''तादृशक्रिया के अभाव का करण-व्यापार नहीं होता'' इसमें प्रमाण नहीं दे सकते हैं । तथाच उक्त करण लक्षण करणतया निश्चित कुठारादि में न जाने से असम्भव दोषग्रस्त है और यदि असम्भव का निश्चय न मान कर संदेह भी माना जाय तो भी असम्भवविषयक संदेह के द्वारा भी लक्षण असङ्गत (असिद्ध) हो जायेगा । (अतएव अनुमितिगादाधरी में भट्टाचार्य ने अतिव्याप्ति के संदेह से भी अतिव्याप्तिवारकविशेषण के लक्षण में निवेश का समर्थन किया है । संशय का कथन भी अभ्युपगमवाद से किया है । वस्तुतस्तु प्रकृत में असम्भव का निश्चय ही है । क्योंकि व्यापार या व्यापारविशिष्ट ही क्रिया का जनक होता है अतः क्रिया के अव्यवहित प्राक्क्षण में उस (व्यापार या व्यापारविशिष्ट) का सद्भाव अवश्य ही रहता है । (क्रिया के प्रागभाव काल में करण व्यापार के अनुवर्तन का निश्चय स्थल दिखाते हैं प्रत्युत इत्यादि से) प्रत्युत – चिरकाल पर्यन्त स्थिर है कर संयोग जिसमें ऐसे स्पृश्य द्रव्य में स्पर्श प्रमा के करणत्वगिन्द्रिय का विषय के साथ संयोग रूप

तत्सत्त्वकाले कारणत्वमित्यर्थः नच कारणत्वस्य नियतपूर्वककालसम्बन्धात्मकस्य क्वचित्काले सत्त्वम्, कालं प्रति कालान्तराभावादिति । अथ क्रिययाऽयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धीत्यस्यायमर्थो यस्मिन् सति भवत्येव क्रियेति; कोऽस्यार्थः? किं यस्मादनन्तरं क्रियोत्पद्यते एव ? उत यस्मिन् वर्तमाने क्रियोत्पद्यते

शारदा

सप्तमकारकस्वीकारस्त्वसङ्गत इत्युक्तम् । इति भाषायां = इतिवाक्यप्रतिपाद्यः । तत्सत्त्वेति। **तदा लिलक्षयिषितव्यक्तिपरामर्शः । स्वसत्ताव्यापककारणताकत्वमित्यत्र कारणता यद्युपधायकता, तदाऽसम्भव उक्तरीत्या, यदि योग्यता तदा कारणान्तरातिव्याप्तिरिति तु तत्त्वम् । तेन पूर्वकालसम्बन्धघटितस्य कारणतानात्मकत्वे, कालस्य विशेषणतया निवेशमनादृत्योपाधितया निवेशे, उपाध्यात्मकस्थूलकाले तदात्मकसूक्ष्मकालवृत्तेरुपगमे वा नासङ्गतिः ।** उत्पद्यते एवेति । **यदव्यवहितोत्तरक्षणत्वव्यापिका स्वकार्योत्पत्तिरित्यर्थः।**

राजहंसः

कारणतानात्मकत्वे इति । स्वरूपसम्बन्धादिरूपकारणतां मनसि निधायेदम् ।

भारती

व्यापार स्थिर देखा जाता है । तथाच असम्भव संशय होने पर भी अन्यमनस्कदशा में उक्त संयोग रूप व्यापार के रहने पर भी क्रिया रूप फल नहीं होता है अतः वहाँ अव्याप्ति तो निश्चित ही है ।

किञ्च – 'यावत्सत्त्वं च कारणम्'' (जो अपने यावत्सत्त्व क्रिया के प्रति कारण हैं वह करण है) इस वाक्य का प्रतिपाद्य अर्थ यह है कि – जो अपने सम्पूर्ण सत्त्वकाल में क्रिया का कारण हो वह करण है'' । किन्तु यह लक्षण ठीक नहीं है क्योंकि नियतपूर्ववर्तित्वरूप कारणत्व किसी भी काल में नहीं रहेगा, क्योंकि काल में काल के रहने पर आत्माश्रय दोष आपतित है । कारण कि काल के एक होने से काल के प्रति कालान्तर नहीं है । अतः काल में उक्त लक्षण अव्याप्त है ।

(यदि कहें कि कारणता के स्वरूप में पूर्वकाल सम्बन्ध का निवेश नहीं करेंगे, अथवा कारणता के स्वरूप में काल का विशेषण रूप से निवेश न करके उपाधिरूप से निवेश करेंगे, अथवा उपाध्यात्मक स्थूल और उपाध्यात्मक सूक्ष्मकाल के परस्पर भिन्न होने से उपाध्यात्मकस्थूल काल में उपाध्यात्मकसूक्ष्मकाल की वृत्तिता मान ली जायेगी । इन सभी पक्षों में आत्माश्रय दोष भी नहीं है एवं काल में अव्याप्ति भी नहीं होगी, तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि कारणता यदि उपधायकता रूपा स्वीकार करें तो उक्त रीति से असम्भव हो जायेगा, और यदि योग्यतारूपा कारणता लेंगे तो कारणान्तर में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।)

प्रश्न – क्रिययाऽयोग व्यवच्छेदेन सम्बन्धी (क्रिया के साथ अयोगव्यवच्छेदेन जो सम्बन्धी है वह करण है) इस लक्षण वाक्य का यह अर्थ है कि – जिसके रहने पर क्रिया अवश्य ही होती हो वह करण है ।

समाधान – यस्मिन् सति भवत्येव क्रिया (जिसके रहने पर क्रिया अवश्य होती है) इस

एव ? उत यस्मादनन्तरं क्रिया तिष्ठत्येव ? उत यस्मिन् वर्तमाने क्रिया तिष्ठत्येव । नाद्यः, सामग्र्याः करणत्वप्रसङ्गात्, हस्तादीनामकरणत्वप्रसङ्गात्, सुखदुःखादेः प्रमेयस्यापि प्रमाकरणत्वप्रसङ्गात् । नच प्रमेयमपि प्रमायाः करणं स्यादेवेति

शारदा

द्वितीये यत्कालत्वव्यापकत्वं निवेश्यम् । एवमुत्तरत्रापि । सामग्र्या इति । **क्रियादेरप्युपलक्षणम्, तस्य स्वाव्यवहितोत्तरक्षणे विभागाद्युत्पादकत्वात् । सामग्रीक्रियादिभिन्नत्वनिवेशेऽप्याह** हस्तादीनामिति । **सप्तमकारकस्वीकारापत्तिभयेन तेषां करणत्वेनावश्योपगन्तव्यानामपि कदाचिद्व्यापारवत्त्वेऽपि फलानुत्पादकत्वादिति भावः। भेदकूटस्यैव निवेश्यत्वे-नोपलक्षणमिदमसर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वस्यापि । तत्कार्यसामग्रीसमवहितत्वतत्कार्याव्यवहित-प्राक्क्षणावृत्तित्वोभयाभाववत्कारणत्वविवक्षायां नोक्तदोषः, उक्तहस्तादिषु सामग्री-**

भारती

वाक्य का भी क्या अर्थ है ? क्या जिसके अनन्तर क्रिया अवश्य ही उत्पन्न होती है अर्थात् जिसके अव्यवहितोत्तरक्षणत्व की व्यापिका स्वकार्योत्पत्ति है वह करण है । अथवा जिसके वर्तमान रहते हुए क्रिया अवश्य उत्पन्न होती हो अर्थात् जिसके कालत्व की व्यापिका स्वकार्योत्पत्ति हो । अथवा जिसके अनन्तर क्रिया अवश्य स्थित होती हो अर्थात् जिसके अव्यवहितोत्तरक्षणत्व की व्यापिका स्वकार्यस्थिति हो वह करण है अथवा जिसके वर्तमान रहते हुए अर्थात् जिसके कालत्व की व्यापिका स्वकार्य स्थिति हो वह करण है ।

इनमें प्रथम कल्प ठीक नहीं है क्योंकि प्रथम अर्थ मानने पर उक्त करणलक्षण की सामग्री में अतिव्याप्ति हो जायेगी । एवं विभाग के प्रति क्रियादि करण हो जायेंगे अर्थात् विभाग के अकरण क्रियादि में उक्त करण लक्षण अतिव्याप्ति हो जायेगा, क्योंकि क्रियादि स्वाव्यवहितोत्तर क्षण में विभागादि को उत्पन्न करती है ।

यदि कहें कि उक्त करण लक्षणमें सामग्री क्रियादि भिन्नत्व का निवेश करने पर सामग्री एवं क्रिया में अतिव्याप्ति न होगी तो इस प्रकार सामग्री आदि में अतिव्याप्ति का वारण होने पर भी हस्तादि अकरण हो जायेंगे अर्थात् करणतया प्रसिद्ध हस्तादि में उक्त करणलक्षण अव्याप्त हो जायेगा क्योंकि सप्तमकारक स्वीकारापत्ति के भय से हस्तादि को करण तो अवश्य मानना होगा, ऐसी स्थिति में हस्तादि व्यापार विशिष्ट होकर भी कदाचित् फल के उत्पादक नहीं होते ।

किञ्च – यदि कहें तत्कार्यसामग्री समवहितत्व एवं तत्कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावृत्तित्व उभयाभाववत् कारण ही करण है ऐसी विवक्षा करने से हस्तादि में अव्याप्ति न होगी, क्योंकि हस्तादि में सामग्री समवहितत्वाभाव प्रयुक्त उभयाभाव विद्यमान है, तो इस प्रकार विवक्षा करने पर हस्तादि में अव्याप्ति न होने पर भी सुख-दुःखादि प्रमेय भी प्रमाकरण हो जायेंगे । क्योंकि सुख साक्षात्कार की उत्पत्ति सुखाव्यवहितोत्तरक्षणत्व की व्यापिका भी एवं सुख में विवक्षित उभयाभाव भी है ।

वाच्यम्; तत्र तथाव्यवहारस्य कस्यचिदप्यसिद्धेः। नापि द्वितीयः, स्पृश्येन सह स्थिरसंयोगस्य स्पर्शनेन्द्रियस्याव्यापनात्, तत्सत्त्वेऽपि व्यासक्तौ तेन प्रमानुत्पादात् । नापि तृतीयः, सामग्र्यादेः करणत्वप्रसङ्गात्, उत्पत्तेः स्थिरे करणत्वप्रसङ्गाच्च । नापि चतुर्थः सहस्थायिनां करणत्वप्रसङ्गात् ।

शारदा

समवहितत्वाभावप्रयुक्तोभयाभावसत्त्वादित्यत आह सुखेति । **प्रमाऽत्र साक्षात्कारः। उपलक्षणमिदं कर्त्रादावतिव्याप्तेरपि । प्रमेयं = तत्प्रमाविषयः । प्रमायाः = तत्प्रमायाः। स्थिरः संयोगो यस्य । क्षणिकसंयोगस्यातीन्द्रियत्वेन तदात्मकव्यापारसद्भावानिर्णयेन व्यापारवतापीन्द्रियेण फलं न जन्यते इत्यस्यालाभात्स्थिरत्वोक्तिः संयोगस्य । व्यासक्तिः = ज्ञानान्तरानुत्पादप्रयोजको मनःसंयोगविशेषः । सामग्र्यादेरित्यादिना क्रियासुखादेः परिग्रहः, तदनन्तरं विभागसाक्षात्कारादिरूपकार्यस्यावश्यम्भावात् । उत्पत्तेरित्यादिकं यदव्यवहितोत्तरक्षणत्वव्यापिका यत्कार्यस्थितिस्तत्तस्यां करणमिति यथाश्रुतार्थे, नतु कारणत्वस्यापि निवेशे । एवं सहस्थायिनामित्यादिकमपि । स्थिरे = उत्पत्त्यनन्तरस्थायिनं प्रति । एतेन क्षणिकपदार्थव्यावृत्तिः** । सहेति । **कारणत्वविवक्षायामप्यसम्भवो द्रष्टव्यः।**

भारती

यदि कहें कि प्रमेय (तत् प्रमा का विषय) तो तत् प्रमा के प्रति करण होता ही है अतः सुखप्रमा (सुखसाक्षात्कार) के प्रति सुख को करण मान लेंगे, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि सुख साक्षात्कार के प्रति सुखरूप प्रमेय में करणत्व व्यवहार किसी का नहीं देखा जाता। एवं कर्ता आदि में भी अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

''जिसके वर्तमान रहते क्रिया अवश्य उत्पन्न होती है'' यह द्वितीय अर्थ भी युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि स्पृश्य द्रव्य के साथ स्थिरसंयोग वाली त्वगिन्द्रिय में उक्त करणलक्षण अव्याप्त हो जायेगा, कारण कि त्वगिन्द्रिय के स्थिर संयोग रूप व्यापार के रहने पर भी व्यासक्ति (ज्ञानान्तर के अनुत्पाद का प्रयोजक मनःसंयोगविशेष) दशा अर्थात् अन्यमनस्कदशा में स्पर्शविशेषविषयक प्रमा की उत्पत्ति नहीं होती। (यहाँ पर क्षणिक संयोग के अतीन्द्रिय होने से उस (क्षणिक संयोग रूप व्यापार) के सद्भाव का निर्णय नहीं किया जा सकता, इससे ''व्यापार विशिष्ट इन्द्रिय के द्वारा भी फल (प्रमा) उत्पन्न नहीं होता'' यह नहीं कहा जा सकता, अतः संयोग में स्थिरत्वविशेषण दिया गया है)

''जिसके अनन्तर क्रिया स्थित रहती है'' यह तृतीय अर्थ भी समीचीन नहीं है, क्योंकि सामग्री के अनन्तर कार्य, क्रिया के अनन्तर विभाग, एवं सुख के अनन्तर सुखविषयक साक्षात्कार अवश्य ही होते हैं अतः सामग्री क्रिया एवं सुख में उक्त करण की अतिव्याप्ति हो जायेगी तथा स्थायी के प्रति उत्पत्ति क्रिया भी करण (उत्पत्ति क्रिया में अतिव्याप्ति) हो जायेगी। कारण कि उत्पत्तिक्रिया के अनन्तर स्थायी अवश्य होता है ।

चतुर्थ कल्प भी ठीक नहीं है । क्योंकि सह स्थायी (एक साथ रहने वाले पदार्थ) पदार्थों

अथ क्रिययाऽयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धित्वं करणत्वमित्यस्यायमर्थः, व्यापारवतः फलाव्यभिचारित्वमिति । मैवम्; हस्ताद्यव्यापनात् । कश्चायं तद्व्यापारो नाम ? किं तज्जन्यं

शारदा

व्यापारवत इति । **तत्फलाव्यभिचारिव्यापारवत्कारणत्वं तत्फलकरणत्वमित्यर्थः। निर्व्यापारत्वेन सामग्र्यादावनतिप्रसङ्गः । तत्फलाव्यभिचारित्वं न कालिकम्, व्यापाराद्यक्षणे फलविरहेणासिद्धेः, अपितु तत्फलाव्यवहितप्राक्क्षणवैशिष्ट्यमेव ।** हस्तादीति । **हस्तादेर्ज्वालनादिव्यापारे सत्यपि पाकस्य कदाचिदनुत्पत्त्या तद्व्यापारे फलाव्यवहितप्राक्क्षणवैशिष्ट्याभावादव्याप्तिः । नच-तत्र तस्याकरणत्वमेव, हस्तेन पचतीत्यादिप्रयोगस्य हेतुतृतीययैव निर्वाहात्, हेतुत्वस्य योग्यतासाधारण्यात्, पाके हस्तकरणकत्वबुबोधयिषया तादृशप्रयोगस्तु फलानुपधानस्थले न प्रामाणिक इति-वाच्यम्; हस्तादेः कर्त्रादावन्तर्भावासम्भवेन करणताया एवोपेतव्यत्वादित्युक्तत्वात् । एवं व्यासङ्गस्थले त्वगादिसंयोगस्य फुलानुपधायकत्वेन त्वगादेः स्पार्शनादिकरणत्वानुपपत्तिः, ज्ञानादावात्मादेः करणत्वापत्तिश्च, तत्र तद्व्यवहारस्य क्वाप्यदर्शनेनेष्टापत्त्यनवकाशात् । अत एवाव्यवहितपूर्वत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोगिव्यधिकरणफलाभावविशिष्टान्यकारणत्वं करणत्वमिति-निरस्तम्, सामग्र्यामतिप्रसक्तेश्च । अतएव तत्कार्यसामग्रीव्याप्तव्यापारवत्कारणत्वं तत्कार्यकरणत्वमित्यपि न युक्तम्; फलानुपधायकव्यापारे सामग्रीव्याप्तत्वस्याप्रामाणिकत्वात्, कारणमात्रस्य करणकुक्षिनिक्षेपेण परम्परया कारणतावच्छेदकतापत्त्या कारणतानुपपत्तिप्रसङ्गाच्च । अतएव तत्कार्यसामग्रीव्याप्तत्वतत्कार्यानुपधायकत्वोभयाभाववद्व्यापारवत्कारणत्वं तत्कार्यकरणत्वमित्यपि नाशङ्कनीयम्; हस्तादावव्याप्त्युद्धारेऽप्युक्तदोषात्, कर्त्रादावतिव्याप्तेश्च, अननुगमस्तु प्रसिद्ध एव दोषः । कार्यताकारणतयोर्निरासश्चतुर्थे वक्ष्यते, व्यापारतामिदानीं निराचष्टे** कश्चेति । **स्वजन्यत्वस्वजन्यजनकत्वाभ्यां स्ववृत्तित्वस्वजन्यजनकत्वाभ्यां वा**

भारती

परस्पर एक दूसरे के करण हो जायेंगे अर्थात् उन पदार्थों में उक्त लक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा।

प्रश्न – "जो क्रिया के साथ अयोगव्यवच्छेदेन सम्बन्धी है वह करण है" इसका यह अर्थ है कि – व्यापार विशिष्ट का फल के साथ अव्यभिचार होना अर्थात् जो तत्फल के अव्यभिचारी व्यापार से विशिष्ट कारण है, वह तत्फल के प्रति करण है । इस प्रकार अर्थ करने पर सामग्री आदि के व्यापार रहित होने से सामग्री आदि में अतिव्याप्ति नहीं होगी। (व्यापार के आद्यलक्षण में फल के न होने से तत्फलाव्यभिचारित्व कालिक विवक्षित नहीं है अपितु तत्फलाव्यवहितप्राक्क्षण वैशिष्ट्य विवक्षित है ।)

समाधान – इस प्रकार अर्थ करने पर हस्तादि में अव्याप्ति हो ज़ायेगी, क्योंकि ज्वालनादि व्यापार के रहने पर भी हस्तादि से कदाचित् पाकरूप फल की उत्पत्ति नहीं होती, अतः तादृशव्यापार में फलाव्यभिचारित्व (फलाव्यवहितप्राक्क्षण वैशिष्ट्य) नहीं है ।

कारणम् ? उत तदाश्रयं कारणम् ?। नाद्यः, लिङ्गपरामर्शे तदसम्भवात् । पक्षे प्रथमधूमादिदर्शनस्य व्याप्तिस्मृतिद्वारा

शारदा

वस्तुविशिष्टत्वमित्याशयेन विकल्पद्वयम् । करणकर्त्रादावतिव्याप्तिवारणायोभयत्र प्रथमः सम्बन्धः । लिङ्गपरामर्शस्यानुमितिकरणतोपगन्तृप्राचीनमतेन दूषणमाह लिङ्गेति । **तदसम्भवात् = निरुक्तव्यापारवत्त्वासम्भवात् , लिङ्गपरामर्शाव्यवहितोत्तरक्षणे ह्यनुमित्युत्पत्तिरिति संस्कारस्तज्जन्योऽपि नानुमितिजनकः, अनुमित्युत्पत्तिक्षण एवोत्पन्नत्वादिति न स व्यापारः, तर्कस्तु धूमो यदि वह्निव्यभिचारी स्याद्वह्निजन्यो न स्यादिति व्याप्तिग्राहको वा, पर्वतो यदि निर्वह्निः स्यान्निर्धूमः स्यादिति परामर्शग्राह्याभावापादको वा कथञ्चित्सम्भवदनुमितिजनकताकोऽपि न परामर्शजन्य इति न सोऽपि व्यापार इति भावः । वक्ष्यति चैतदुपरिष्टात्स्वयमेव । शङ्कते** पक्षे इति । **प्रथमेति दर्शनान्वयि । चरमलिङ्गपरामर्शस्य करणतामेव न मन्महे, येन निर्व्यापारतया सा भज्येत, किन्तु स व्यापारः, करणता तु**

राजहंसः

अनुमित्युत्पत्तिक्षण एवोत्पन्नत्वादिति । परामर्शाव्यवहितोत्तोत्तरत्वं द्वितीयतृतीयक्षणसाधारणमिति तृतीयक्षणेऽनुमित्युत्पत्तिस्थले संस्कारस्यापि तदैव परामर्शेनोत्पादनम्, द्वितीयक्षणेऽनुमित्युत्पत्तिस्थले तु 'अनुमित्युत्पत्तिक्षणे' इत्यस्य सतिसप्तमी बलादनुमित्युत्पत्तिक्षणानन्तरमित्यर्थः ।

भारती

किञ्च – "तत्फलाव्यभिचारिव्यापारवत्कारणत्वं तत्फलकरणत्वम्" इस लक्षण के अन्तर्गत व्यापार पदार्थ भी क्या है ? क्या – जो तत् (करण) से जन्य एवं तत् (करण) जन्यकार्य का कारण हो वह व्यापार है । अथवा जो तदाश्रित (करण के आश्रित) एवं तज्जन्य का जनक हो वह व्यापार है । (यहाँ स्वजन्यत्व स्वजन्यजनकत्व उभय सम्बन्ध से, अथवा स्ववृत्तित्व स्वजन्यजनकत्व उभयसम्बन्ध से वस्तुविशिष्टत्व ही व्यापारत्व है इस आशय से उक्त विकल्पद्वय किया गया है । सम्बन्ध घटक स्वशब्द से तथा वस्तु शब्द से करणतया अभिमत पदार्थ ग्राह्य है । करणकर्ता आदि में अतिव्याप्ति निरासार्थ उभयत्र प्रथम सम्बन्ध (स्वजन्यत्व एवं स्ववृत्तित्व) दिया गया है ।)

इनमें प्रथम लक्षण ठीक नहीं है उसे मानने पर – लिङ्गपरामर्श को अनुमिति का करण मानने वाले प्राचीनों के मत में लिङ्ग परामर्श में उक्तव्यापारवत्त्व नहीं हो सकेगा, क्योंकि लिङ्ग परामर्श के अव्यवहितोत्तर क्षण में अनुमिति उत्पन्न होती है, इसलिए लिङ्ग परामर्श का संस्कारलिङ्गपरामर्शजन्य होने पर भी वह (संस्कार) अनुमिति के उत्पत्तिकाल में ही उत्पन्न होने से अनुमिति में व्यापार नहीं हो सकता । एवं तर्क भी व्यापार नहीं हो सकता, कारण कि –"धूमो यदि वह्नि व्यभिचारी स्यात् वह्निजन्यो न स्यात्" इत्याकारक चाहे व्याप्तिग्राहक हो या "पर्वतो यदि निर्वह्निः स्यान्निर्धूमः स्यात्" इत्याकारक परामर्शग्राह्याभाव का आपादक हो, कथञ्चित् अनुमिति का जनक होने पर भी परामर्श से जन्य नहीं है ।

प्रश्न – व्याप्तिस्मृति द्वारा द्वितीयलिङ्ग परामर्श का जनक जो पक्ष में प्रथम धूमदर्शन

द्वितीयलिङ्गपरामर्शं जनयतः करणत्वमेष्टव्यम्, एवञ्च परमार्थतो व्याप्यस्य स्वरूपेण प्रमितिर्द्वितीयव्याप्ततत्परामर्शव्यापारिकाऽनुमानमिष्यत इति चेन्न; अन्यतोजाताग्निधूमादिव्याप्तिस्मृतौ सत्यां पक्षगतप्रथमधूमादिदर्शनस्य तद्व्यापारकत्वासिद्धेः। तत्रा-

शारदा

तज्जनकस्य प्रथमस्य पक्षधर्महेतुदर्शनस्येति भावः। व्याप्तिस्मृतिद्वारा द्वितीयलिङ्गपरामर्शं व्यापारं जनयतः = द्वितीयलिङ्गपरामर्शरूपव्यापारजनकव्याप्तिस्मृतिजनकत्वे सति तादृशपरामर्शजनकस्य। तथाच चरमपरामर्शरूपव्यापारजनने व्याप्तिस्मृतेः प्रथमलिङ्गदर्शनव्यापारतालाभेनाग्रिमदूषणग्रन्थसामञ्जस्यम्। एवं च = प्रथमलिङ्गदर्शनस्य व्याप्तेः स्मृतिजनकत्वेन तदविषयकत्वे च। परमार्थतः = वस्तुगत्या व्याप्यस्य स्वरूपेण धूमत्वादिना प्रमितिः = व्याप्यतावच्छेदकतया पूर्वं गृहीतो यो धर्मस्तत्प्रकारिका प्रतीतिरिति यावत्, तेन धूलीपटलादौ धूमत्वादिभ्रमजन्याया वस्तुतो वह्निमद्विषयिकाया अनुमितेर्नाकरणकत्वापत्तिः। द्वितीयेत्यादि। **तदा लिङ्गपरामर्शः। व्याप्तिविशिष्टस्य पक्षे वैशिष्ट्यावगाही, व्याप्तिविशिष्टे वा पक्षधर्मतावैशिष्ट्यावगाही यो द्वितीयपरामर्शस्तद्व्यापारिकेत्यर्थः। पक्षविशेष्यकादिव व्याप्यविशेष्यकादपि परामर्शादनुमित्युत्पत्तेर्व्याप्यपक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वेनानुमितिहेतुत्वादिति भावः। अनुमानम् = अनुमितिकरणम्।** अन्यतोजातेति। **अदृष्टाद्युद्बोधकाधीनोत्पत्तिकेत्यर्थः। सत्यां = क्वचित्प्रमाणसिद्धायाम्, तद्व्यापारकत्वासिद्धेः =**

राजहंसः

वस्तुतो वह्निमद्विषयिकाया अनुमितेरिति। भ्रमात्मकानुमितेरपि यद्यपि नाकरणकत्वप्रसङ्ग इष्टः, तथापि प्रमाणखण्डनस्य प्रस्तुतत्वेन प्रमात्मकानुमितेरेव सकरणकत्वं पूर्वपक्षे उपपादयितुमुचितं मन्वानस्येयमुक्तिः 'परमार्थतः' प्रमितिः इति मूलस्थशब्दद्वयमनुरुध्य। अन्यथा तु वस्तुतो वह्निमदविषयिकाऽप्यनुमितिरुपलक्षणीया।

भारती

है। उसे ही अनुमिति के प्रति करण मानेंगे। अर्थात् द्वितीयलिङ्ग परामर्श रूप व्यापार का जनक जो व्याप्ति स्मृति, उस (व्याप्तिस्मृति) का जनक होते हुए द्वितीयलिङ्ग परामर्श का जनक होने से पक्ष में प्रथमलिङ्ग धूमादिदर्शन को ही करण मानेंगे। एवञ्च वस्तुतः व्याप्य धूम की स्वरूपतः (धूमत्वादिरूप से) प्रमा द्वितीयलिङ्ग परामर्श (वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः) रूप व्यापार से युक्त होकर "पर्वतोवह्निमान्" इत्याकारक अनुमिति की जनक होती है, ऐसा मानते हैं। (पूर्वपक्षी का आशय है कि हम चरमलिङ्गपरामर्श को करण मानते ही नहीं, जिससे कि व्यापाररहित होने से उस (चरमलिङ्ग परामर्श) में करणलक्षण न जावे, किन्तु हम उसे (चरमलिङ्ग परामर्श) व्यापार ही मानते हैं और करण तो पक्ष में प्रथम हेतु (धूम) दर्शन को ही मानेंगे।)

समाधान – जहाँ अदृष्टादि उद्बोधक के द्वारा जायमान अग्निधूमादि की व्याप्ति स्मृति प्रमाण सिद्ध है वहाँ चरम (द्वितीय) परामर्श रूप व्यापार के जनन (उत्पत्ति) में पक्षगत प्रथम धूमादि दर्शन का तादृश व्याप्तिस्मृति व्यापार नहीं हो सकता।

प्युभयकर्मजसंयोगवत्तदपि कारणमिति चेन्न; अभावादिसापेक्षविशिष्टप्रतिपत्तिवत्प्रागुपजातवह्निव्याप्तधूमस्मृतेः प्रथममपि

शारदा

चरमपरामर्शरूपव्यापारजनने व्याप्तिस्मृतिव्यापारकत्वासिद्धेः । प्रथमलिङ्गपरामर्शस्य व्याप्तिस्मृतिं प्रति हेतुत्वाभावे तद्द्वारा चरमपरामर्शं प्रत्यपि हेतुत्वासम्भवेन न तद्व्यापारकतया करणत्वसम्भव इति भावः । ननु सम्भेदे नान्यतरवैयर्थ्यमिति न्यायेन मल्लयोः संयोगस्योभयकर्मजत्ववदुक्तस्मृतेरपि पक्षे प्रथमलिङ्गदर्शनादृष्टाद्युभयजत्वमेवेति नोक्तदोष इत्याशङ्कते तत्रेति । **अदृष्टाद्युद्बोधकाधीनोत्पत्तिकव्याप्तिस्मृतावित्यर्थः। तदपि = पक्षे प्रथमलिङ्गदर्शनमपि ।** कारणमिति । **अन्यत्र व्याप्तिस्मृतिं प्रति तस्य हेतुतायाः क्लृप्तत्वादिति भावः । 'पक्षे लिङ्गदर्शनस्य तादृशस्मृतेः पुरा वर्तमानत्वे उक्तन्यायेन तस्य तद्धेतुतायाः सम्भवेऽपि तदभावकालिकतादृशस्मृतेस्तज्जन्यताया असम्भवदुक्तिकतया तस्य करणत्वानुपपत्तेः, अतएव चरमपरामर्शात्मकव्यापारजनने व्याप्तिस्मृतेर्व्यापारत्वाविवक्षायामपि न निस्तारः, प्रकारान्तरेण व्याप्तिस्मृतौ विशिष्टवैशिष्ट्यबोधसामग्रीसद्भावेन प्रथममेव व्याप्तिविशिष्टपक्षयोर्वैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयोत्पत्तिसम्भवेन मध्ये व्याप्त्यविषयकलिङ्गदर्शन-कल्पनाया निर्बीजत्वादित्यभिसन्धायाह** अभावादीति । **आदिना सम्बन्धसादृश्यादि। तेषां नित्यं प्रतियोगिसापेक्षत्वञ्च प्रतियोगिविशेषिततद्बोधानां विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकतानियमेन प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यज्ञानविषयतया स्वप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकत्वव्याप्या-**

भारती

(यहाँ अभिप्राय यह है कि – व्याप्तिस्मृति के प्रति प्रथमलिङ्ग परामर्श (पक्षगत प्रथमलिङ्ग दर्शन) के हेतु न होने से उस व्याप्तिस्मृति द्वारा चरमपरामर्श के प्रति भी प्रथमलिङ्ग दर्शन कारण नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में चरम परामर्श को व्यापार मानकर अनुमिति के प्रति पक्षगत प्रथमलिङ्ग दर्शन करण नहीं हो सकता । अर्थात् ईदृश परिस्थिति में व्याप्तिस्मृति में व्यापार लक्षण की तथा करणलक्षण की पक्षगत प्रथमलिङ्गदर्शन में अव्याप्ति हो जायेगी।)

यदि कहें कि – उभयकर्मजन्य संयोग के समान अदृष्टादि उद्बोधक जन्य व्याप्ति स्मृति के प्रति पक्षगत प्रथमलिङ्गदर्शन भी कारण है क्योंकि अन्यत्र व्याप्तिस्मृति के प्रति तादृशलिङ्ग दर्शनगत हेतुता निश्चित'' है । अतः उक्त अव्याप्ति नहीं होगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि – जैसे प्रतियोगिसापेक्ष अभाव सम्बन्ध एवं सादृश्यादि पदार्थों की विशिष्ट प्रतिपत्ति, अर्थात् प्रतियोगिविशेषित अभावादि का ज्ञान – पूर्व में अभावत्वादि रूप से अभावादिज्ञान के विना भी प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक ज्ञान के द्वारा ही सम्पन्न हो जाता है उसी प्रकार व्याप्ति अविषयक प्रथम प्रथमलिङ्ग दर्शन के विना ही अदृष्टादि उद्बोधकवशात् जायमान वह्निव्याप्तधूमस्मृति के द्वारा व्याप्ति अविषयलिङ्गदर्शन के विना ही योऽसौ वह्निव्याप्तः सोऽयंधूम'' (जो वह्निव्याप्तिविशिष्ट है वही यह धूम है ।) इस प्रकार का परामर्श हो सकता है । तथाच ईदृशस्थल में व्याप्तिस्मृति में व्यापार लक्षण की तथा प्रथमलिङ्गदर्शन में उक्तकरण लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

योऽसौ वह्निव्याप्तः सोऽयं धूम इति परामर्शोपपत्तेः। नित्यसापेक्षेऽर्थेऽस्तु तथा, नान्यत्र प्रथमं तथेति चेन्न; प्रागुक्ततत्कारणोपपत्तौ नान्यत्रैवमिति नियमे प्रमाणस्याभावात्।

शारदा

भावत्वादिप्रकारिताकविशेष्यिताकत्वेन । प्रागिति प्रथममिति च व्याप्त्यविषयलिङ्गदर्शनं विनैवेत्यर्थकम् । अयमिति पक्षधर्मतालाभाय । आकारे नादरः, वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति पक्षविशेष्यकस्यापि परामर्शस्य सम्भवात् । तथा = अभावत्वादिनाऽभावादिदर्शनानपेक्षप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानाधीनज्ञानविषयता । अन्यत्र = सम्बन्धाद्यन्यभावपदार्थे, प्रथमं तथा = स्वदर्शनानपेक्षस्वविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानाधीनज्ञानविषयता । अभावत्वादिनाभावादेः सप्रतियोगिकत्वेनैवानुभवेन प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य केवलाभावादिदर्शनाधीनोत्पत्तिकस्य प्रतियोगिविशेषिताभावबोधहेतुत्वं न वक्तुं शक्यते, अभावत्वादिनाऽभावादिबोधस्य प्रतियोग्यविषयकस्याप्रसिद्धत्वात्, अत एव तादृशबोधस्य निर्विकल्पकत्वानभ्युपगमः, पक्षे लिङ्गदर्शनस्य तु व्याप्त्यविषयकस्यापि सम्भवेन व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्प्राक् तस्य कल्पयितुं शक्यत्वेन तत्सापेक्षस्यैव विशेषणतावच्छेदकव्याप्तिप्रकारकस्मरणस्य व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधाधायकत्वमित्यभिमानः । तं निराकरोति प्रागुक्तेति । **विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वविशेषणतावच्छेदक-प्रकारकनिश्चयत्वाभ्यां हि कार्यकारणभावो नान्यथा मानाभावात्, एवं च लिङ्गदर्शनस्य व्याप्तिमविषयीकुर्वाणस्य सम्भवेऽपि तत्सम्भवस्योक्तस्थले तत्कल्पनायामप्रयोजकत्वेन तेन विनैवोत्पन्नया व्याप्तिस्मृत्या विशिष्टवैशिष्ट्यबोधोत्पत्तिर्निराबाधेति भावः । तस्य = उक्तस्मृत्य-**

भारती

यदि कहें कि नित्य ही प्रतियोगी सापेक्ष अभावादि पदार्थों का ज्ञान भले ही अभावत्वादि रूप से अभावादिज्ञान के विना ही प्रतियोगितावच्छेदक प्रकारकज्ञान के द्वारा ही हो जाता है। किन्तु अन्यत्र अर्थात् सम्बन्धादि सप्रतियोगिक पदार्थों से अन्य भावपदार्थों का ज्ञान स्वदर्शन-अनपेक्षस्वविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञान के द्वारा नहीं होता है। (तात्पर्य यह है कि अभावत्वादिना अभावादि का ज्ञान सप्रतियोगिकत्वरूप से ही अनुभवसिद्ध है अतः केवल अभावादिज्ञान से जन्य प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक ज्ञान को प्रतियोगिविशेषित अभावज्ञान के प्रति हेतु नहीं मान सकते। क्योंकि प्रतियोगि अविषयक अभावत्वादि रूप से अभाव का ज्ञान ही अप्रसिद्ध है। किन्तु पक्ष में लिङ्गदर्शन तो व्याप्ति अविषयक भी होता है अतः व्याप्तिविशिष्ट वैशिष्ट्यावगाहिज्ञान (वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याकारक परामर्श) के पहले व्याप्त्यविषयक लिङ्गदर्शन की कल्पना कर सकते हैं। अतः तादृशलिङ्गदर्शन सापेक्ष होकर ही विशेषणतावच्छेदक व्याप्ति प्रकारक स्मरण (वह्निव्याप्यो धूम इत्याकारक) व्याप्तिविशिष्ट वैशिष्ट्यावगाहिज्ञान के प्रति कारण है। तथाच उक्त अव्याप्ति दोष नहीं है।) तो यह कथन सङ्गत नहीं है। क्योंकि पूर्व दर्शित रीति से व्याप्ति स्मृति में ही जब व्याप्तिविशिष्ट वैशिष्ट्यबोध की कारणता सिद्ध हो चुकी है तो अन्यत्र सम्बन्धादि प्रतियोगि सापेक्ष पदार्थों से अन्यभावपदार्थों में स्वदर्शन अनपेक्ष

तस्य व्यापाराभावान्नानुमित्युत्पादकत्वमेवेति चेत्, स्यादप्येवं यदि व्यापारवतः करणत्वमित्येव सिद्धं स्यात्। तत्र धूमादिनिर्विकल्प-कस्य तद्व्यापारकस्य करणत्वमिति चेन्न; नित्यसङ्घटितार्थवह्निनाऽपि

शारदा

धीनपरामर्शस्य नानुमित्युत्पादकत्वमेव, अनुमित्युत्पादकव्यापारस्याभावात्, नहि तादृशपरामर्श एव तत्र व्यापारः, व्यापारिणः प्रथमपक्षधर्मदर्शनस्याभावे तत्र तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्, नच व्याप्तिस्मृतेरेव तत्र व्यापारित्वम्, तस्यां करणताया निरसिष्यमाणत्वात्, नच चरमपरामर्शस्य कश्चित्तत्रव्यापारः, तदव्यवहितोत्तरक्षणेऽनुमितेरेवोत्पत्तेरभ्युपगमादिति भावः। तत्र = अनुमितौ। तद्व्यापारकस्य = व्याप्तिविशिष्टपक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयव्यापारकस्य। नित्यसङ्घटितत्वं

भारती

स्वविशेषणतावच्छेदक प्रकारकज्ञान कारण नहीं है इस प्रकार मानने में कोई प्रमाण नहीं है। (भाव यह है कि – विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वावच्छिन्न के प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारक निश्चयकारण है'' इस प्रकार विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्व और विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्व उभयरूप से ही कार्यकारणभाव होता है। क्योंकि किसी अन्य प्रकार से कार्यकारणभाव में कोई प्रमाण नहीं है। एवञ्च व्याप्ति अविषयक लिङ्गदर्शन के सम्भव होने पर भी – उसका (अर्थात् व्याप्ति अविषयक लिङ्गदर्शन का) सम्भव होना उक्तस्थल (जहाँ अदृष्टादि उद्बोधकबलात् व्याप्ति स्मृति (वह्निव्याप्यो धूमः) हुई है वहाँ) में उस अर्थात् व्याप्ति अविषयक लिङ्गदर्शन को कल्पना का प्रयोजक नहीं है। क्योंकि उस लिङ्गदर्शन के विना ही – अदृष्टादि उद्बोधकवशात् जायमान व्याप्तिस्मृति से ही विशिष्ट वैशिष्ट्यबोध (वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत) की उत्पत्ति हो जाती है।)

यदि कहें कि उक्तस्थल में अनुमिति का उत्पादक व्यापार के न होने से उक्त व्याप्तिस्मृति के द्वारा जायमान परामर्श अनुमिति का जनक ही नहीं है। (''तादृशपरामर्श ही वहाँ व्यापार है'' यह नहीं कह सकते, क्योंकि व्यापारी प्रथम पक्षधर्म (लिङ्ग) दर्शन के न होने से उसे व्यापार नहीं मान सकते। उक्त व्याप्तिस्मृति को व्यापारी मान नहीं सकते, क्योंकि उसमें (उक्त व्याप्ति स्मृति) करणत्व का निरास करेंगे। चरमपरामर्श का कोई अन्य ही व्यापार मानें यह भी सम्भव नहीं है क्योंकि चरमपरामर्श के अव्यवहित उत्तर क्षण में अनुमिति उत्पन्न मानी जाती है।) तो यह कथन युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि उक्तरीति से कथन तब उचित होता। यदि ''व्यापारविशिष्ट कारण ही करण होता है'' यह सिद्ध हो जाता। किन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं है।

यदि कहें कि अनुमिति में उक्त परामर्शरूप व्यापार से युक्त धूमादि विषयक निर्विकल्पक ज्ञान को ही करण मानेंगे, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रतियोगी में नित्य सापेक्ष अभावविषयक प्रमा के समान निर्विकल्प ज्ञान के विना भी उक्त परामर्श रूप सविकल्पक ज्ञान के उत्पन्न होने में कोई विरोध नहीं है। अतः ''निर्विकल्पक ज्ञान के विना सविकल्पक ज्ञान नहीं होता, अपितु निर्विकल्पक ज्ञान के अनन्तर ही सविकल्पक बोध होता है'' आप

निर्विकल्पकं सविकल्पकोत्पत्तेरविरोधेन त्वदुक्तप्रक्रियानियमे प्रमाणाभावात्। नित्यसङ्घटितेष्वपि निर्विकल्पकं मंस्यत इति

शारदा

निरुक्तं नित्यसापेक्षत्वमेव । विनापीत्यादेस्तात्पर्यमुक्तम् । अविरोधेन = उपपन्नत्वेन । त्वदुक्तेति । **नहि सविकल्पकानुभवत्वेन निर्विकल्पकत्वेन च कार्यकारणभावः, अभावादिबोधे व्यभिचारात्, विशिष्टबुद्धित्वेन विशेषणबुद्धित्वेन च कार्यकारणभावस्यानभ्युपगमे निर्विकल्पकस्याप्यसिद्धिप्रसङ्गात्, तदभ्युपगमे तु वह्निव्याप्यो धूम इत्यदृष्टाद्यधीनस्मृत्यैवोक्तनिश्चयोपपत्तौ तत्र निर्विकल्पककल्पनायां मानाभावात् । किञ्च निर्विकल्पकमुक्तस्मृतेः पूर्वं वोत्तरं वा कल्प्येत, नाद्यः, तदेन्द्रियसन्निकर्षानियमात्, तादृशस्मृत्यनन्तरमुत्पत्स्यमानविशिष्टनिश्चयं प्रति तस्यानुपयुक्तत्वाच्च। न द्वितीयः, पूर्वं व्याप्त्यादेरुपस्थितत्वेन विशिष्टज्ञानसामग्रीसत्त्वेन तद्विषयकस्यैव धूमज्ञानस्य तदा वाच्यत्वेन तस्य निर्विकल्पकत्वानुपपत्तेः। वस्तुतस्तु पटज्ञानाद्घटविशिष्टबुद्धेर्वारणाय विशिष्यैव कार्यकारणभावस्य वक्तव्यत्वेन न निर्विकल्पके किमपि मानमिति ध्येयम् । नियमे = सत्त्वे ।** मंस्यते इति । **तथा च व्यभिचाराभावेन प्रकृतेऽपि निर्विकल्पककल्पनसम्भव इति भावः । कारणान्तरात् = प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानात् । तदुपपत्तौ = प्रतियोगिविशिष्टाभावादिबोधोत्पत्तौ । अनुभवानुसारेणाभावादौ स्वप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकत्वव्याप्याभावत्वादिप्रकारिताकविशेष्यिताकत्वस्योपगन्तव्यत्वे तत्र निर्विकल्पकज्ञानं नोपयुज्यते, उपयुज्यते तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानम्, तच्च सविकल्पकमेव, ततः परं हि न निर्विकल्पकसम्भवः, विशिष्टबोधस्यैव सामग्रीसत्त्वात्; नवा ततः पूर्वम्, अनुपयोगान्मानाभावाच्च । अतएवोक्तं**

भारती

(तार्किक) के द्वारा कल्पित प्रक्रिया में कोई प्रमाण नहीं है । (यहाँ यह ध्यातव्य है कि – ''सविकल्पक अनुभव के प्रति निर्विकल्पक ज्ञान कारण है'' यह कार्य कारणभाव नहीं मान सकते, कारण कि अभावविषयक अनुभव में निर्विकल्पक ज्ञान के पूर्व में न होने से व्यभिचार है । विशिष्ट ज्ञान के प्रति विशेषण ज्ञान कारण है इस कार्यकारण भाव के बल से ही सविकल्पक ज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) के पूर्व में निर्विकल्पक ज्ञान (विशेषण ज्ञान) की कल्पना करते हैं यदि उक्त कार्यकारणभाव न मानें तो निर्विकल्पकज्ञान की सिद्धि ही नहीं होगी और यदि उक्त कार्यकारणभाव मानते हैं तो वह्निव्याप्यो धूम इत्यादि अदृष्टादिजन्य व्याप्ति स्मृति से ही उक्त परामर्श रूप विशिष्ट निश्चय की उत्पत्ति हो ही जाती है अतः वहाँ निर्विकल्पक ज्ञान की कल्पना में कोई प्रमाण ही नहीं है, इत्यादि शारदा से अवगम्य है ।)

यदि कहें कि प्रतियोगी में नित्य सापेक्ष अभावादि पदार्थों में निर्विकल्पक ज्ञान मान लेंगे । तथाच अभावज्ञान में उक्त कार्यकारणभाव का व्यभिचार न होने से प्रकृत में भी निर्विकल्पक धूमज्ञान की करण रूप से कल्पना कर सकते हैं । तो यह कहना उचित नहीं है, क्योंकि प्रतियोगितावच्छेदक प्रकारकज्ञानरूप कारणान्तर के द्वारा ही प्रतियोगिविशिष्ट अभावादि ज्ञान की उत्पत्ति हो जाने से प्रतियोगिविशेषित अभावादि ज्ञान के पूर्व अभावादिविषयक

चेन्न; कारणान्तरादेव तदुपपत्तौ तत्र निर्विकल्पककल्पनायां प्रमाणाभावात् , प्रत्युत तत्सङ्घटनस्य स्वभावानतिरेकोपगमात् । तथापि यत्किञ्चित्तज्जनकं तदेव तत्रानुमितिकरणमास्तामिति चेन्न;

शारदा

कुसुमाञ्जलौ ''अवच्छेदग्रहध्रौव्या''दिति । अभावत्वप्रकारकबोधस्य प्रतियोगिविषयकत्व-नियमादिति तदर्थः। उक्तं च चिन्तामणौ ''सप्रतियोगिकोऽभावोऽनुभूयते नतु तन्मात्रम्, अतोऽभाववित्तिवेद्यत्वं प्रतियोगिनः प्रतियोगिज्ञानाधीनज्ञानत्वं चाभावस्यानुभवसाक्षिकं गोसादृश्यव''दिति । तदाह प्रत्युतेति । तत्सङ्घटनस्य = अभावादौ प्रतियोगिविषयकज्ञान-विषयत्वस्य भवद्भिः स्वभावानतिरेकेण = नियमेनोपगमात्, तथाचाभावादौ निरुक्तप्रकारिता-कविशेष्यिताकत्वस्योपगमः पर्यवस्यति । एवञ्चाभावत्वप्रतियोगित्वयोरनुपस्थितयोरेवा-भावबोधविषयत्वं स्वीकार्यं पूर्वं तदुपस्थापकाभावादिति भावः । तज्जनकं = व्याप्तिविशिष्टपक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयजनकम् । तत्र = प्रथमपक्षधर्मदर्शनान-पेक्षव्याप्तिस्मृतिस्थले । आस्तामिति । तथा च तत्र क्लृप्तस्यैव करणत्वमनुमितिमात्रे कल्पनीयमिति भावः । तथेन्द्रियादेः = तादृशनिश्चयजनकेन्द्रियादेः । आदिना व्याप्तिज्ञानलिङ्गयोः परिग्रहः । ननु यद्यपि लिङ्गं न करणम्, अतीतादिसाधारण्याभावादित्यग्रे मूले एव वक्ष्यमाणत्वात् । अभावज्ञानार्थं प्रतियोगिज्ञानस्यावश्यकत्वेन तत्र धूमध्वंसादे-र्लिङ्गत्वानौचित्यात्, शाब्दस्मृत्याद्यात्मकपरामर्शं प्रति लिङ्गस्याकारणत्वात्तद्व्यापारकतया करणत्वासम्भवाच्च, अन्येन परामृश्यमानलिङ्गात्परामर्शरहितान्यपुरुषस्यानुमितिप्रसङ्गवारणाय तत्तत्पुरुषीयानुमितिं प्रति तत्तत्पुरुषपरामर्शविषयलिङ्गत्वेन कारणताया वक्तव्यत्वेनानन्त-कार्यकारणभावकल्पनापत्तेश्च । नहि समवायेनानुमितिं प्रति लिङ्गस्य स्वप्रकारकपरामर्श-समवायित्वसम्बन्धेन हेतुता शक्यवचना, परामर्शस्य कारणतावच्छेदकसंसर्गघटकतापत्तेः। नापि व्याप्तिज्ञानं करणम्, तत्र यद्यपि कार्यकारणभावस्यात्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या कल्पनीयत्वेन

भारती

निर्विकल्पकज्ञान की पूर्व अभावादिविषयक निर्विकल्पकज्ञान की कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है । प्रत्युत आपलोगों (तार्किकों) ने ही अभावादि में प्रतियोगिविषयकज्ञान की विषयता नियम से मानी है (अर्थात् नियम से प्रतियोगिविशेषित अभाव का नियम से सविकल्पक ज्ञान ही माना है न कि निर्विकल्पक ज्ञान ।)

यदि कहें कि – व्याप्ति विशिष्ट पक्ष उभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चय रूप परामर्श का जो कुछ जनक है उसे ही उक्तस्थल (प्रथमपक्ष धर्मदर्शनअनपेक्षव्याप्तिस्मृति स्थल) में अनुमिति का करण मान लिया जाय । तो यह कथन युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर इन्द्रियादि भी अनुमिति के प्रति करण हो जायेंगे । तथाच इन्द्रियादि में अनुमितिकरणत्वापत्ति हो जायेगी । ''यहाँ कुछ अतिरिक्त भी विचारणीय विषय है जो शारदा से अवगम्य है'' एतत् सूचनार्थ ही मूलकार ने ''अलमतिविस्तरेणेति'' (इस विषय में विचार का अति विस्तार अलम् = स्वयं ऊह्नीय है) कहा है ।

शारदा

नानन्त्यम् । नापि परामर्शस्य स्मरणात्मकत्वस्थले विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया व्याप्तिग्रहस्य तदहेतुत्वप्रयुक्तानुपपत्तिः, तत्र प्राचीनव्याप्त्यनुभवस्यैव संस्कारद्वारा परामर्शहेतुत्वात्, विशिष्टव्याप्तेरनुपस्थितावपि विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन परामर्शादनु-मितिस्थलेऽपि नियतपूर्वोपस्थितिकव्याप्तिघटकाभावत्वादितत्तत्पदार्थज्ञानत्वेनैव करणत्व-सम्भवात्, तथापि व्याप्तिप्रकारकज्ञानस्यानुभवात्मकपरामर्शं प्रति कारणता विशेषणतावच्छेदक-प्रकारकज्ञानत्वेनैव वाच्या, नचैतद्युक्तम्, प्रत्यक्षत्वादिविशेषरूपेण क्लृप्तकार्यकारणभावैरेव निर्वाहे तथाकार्यकारणभावस्याप्रामाणिकत्वात्, विशिष्यैव तद्विश्रान्तेरुक्तत्वाच्च । किञ्च पक्षधर्मताज्ञानानन्तरं व्याप्तिस्मृत्यैव यत्रानुमितिर्जाता, तत्र परामर्शव्यापारमादाय तस्याः करणतोपपादनासम्भवः । स्मृत्यात्मकपरामर्शस्थले क्लृप्तत्वादत्रापि व्याप्तिस्मृत्यनन्तरं परामर्शः कल्पनीय इति ब्रुवाणस्य तु ममाद्यपक्षधर्मताज्ञानोत्तरं व्याप्तिस्मृत्यैवानुमितिरुत्पन्नेति वदन्तं प्रति किमुत्तरं स्यादृते मौनात्। सर्वत्र तत्कल्पने गौरवात् । परामर्शोत्तरं तत्प्रत्यक्ष-वारणायानुमितिसामग्र्याः प्राबल्यस्य त्वयाऽपि वक्तव्यत्वेन विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्य सामग्री-सद्भावेन सोऽपि स्यादित्यस्य वक्तुमशक्यत्वात्, तस्माद्व्याप्तिज्ञानं कारणमित्येव युक्तम्, व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्य वा कारणतासमर्थनं तु दुराग्रहमात्रमिति व्यापारस्य दुर्विवेकतैव । धूमलिङ्गकपरामर्शाव्यवहितोत्तरपर्वतपक्षकवह्निसाध्यकानुमितित्वा-वच्छिन्नं प्रति परामर्शस्य विशिष्टविषयकत्वेन व्याप्तेस्तद्घटकपदार्थानां च ज्ञानस्य विशेषणविषयकत्वेन कारणता वाच्या, नच विशिष्टविषयकत्वेन कारणत्वे केवलविशेषणादिविषयकत्वेन कारणत्वसम्भवः, व्याप्यधर्मपुरस्कारेण कारणतासम्भवे व्यापकधर्मेणान्यथासिद्धत्वादकारणत्वादित्यपि वदन्ति। तथापि नेन्द्रियस्यानुमितिकरणत्वे किञ्चिद्बाधकम्, उक्तं हि शिरोमण्यादिभिः–"अस्तु मनस एवानुमितिकरणत्वम्, मनःसंयोग एव च जन्यज्ञानमात्रे व्यापारः, जन्यात्मविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति मनस्त्वेन करणतायाःक्लृप्तत्वात् । अतएव–ज्ञानत्वेनानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जनकता, अतिप्रसङ्गस्तु विशेषसामग्र्या वारणीय इति मतमप्यनादेयम्। मानसत्वप्रयोजकं तु न मनोऽसाधारणकारणकत्वं येनानुमितेर्मानसत्वं प्रसज्येत । किं तर्हि तत्प्रयोजकमिति चेत्; प्रयोजकं किं कारणं वा कार्यं वा व्यापकं वा व्याप्यं वा, मानसत्वावच्छिन्नोत्पत्तिनियामकं वा, नाद्यम्, मानसत्वस्य जातित्वेन नित्यत्वात्, द्वितीयं तु मानसत्वविषयकप्रत्यक्षम्, तृतीयं तु प्रमेयत्वादि तुरीयं तु मानससामग्रीजन्यत्वादि, पञ्चमं तु मानसत्वावच्छिन्नसामग्री"तीति रमणीयोऽनु-मितेर्मनःकरणकत्वमार्ग इति चेन्न; मनोऽसाधारणकारणकज्ञानत्वस्य सुखादिज्ञाने प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वदर्शनेनानुमितेस्तथात्वे प्रत्यक्षत्वापत्तेः, नच तथाव्याप्तावप्रयोजकत्वम्; अनौपाधिकत्वस्यैव प्रयोजकत्वात्, हेतोर्निरुपाधेः, पक्षधर्मत्वे बाधस्यानवकाशात्, एवञ्च

राजहंसः

बाधस्यानवकाशादिति । आपाद्याभावेनापादकाभावानुमितावित्यादिः । आपत्तौ त्वनुगुणतया बाधस्य शङ्कैव नावतरति ।

तथेन्द्रियादेरनुमितिकरणत्वापत्तिरित्यलमतिविस्तरेणेति । शब्द-श्रोत्रसन्निकर्षस्य च श्रोत्राव्यापारत्वप्रसङ्गात्, तथा च श्रोत्रस्य शब्दप्रतिपत्तावकरणत्वप्रसङ्गात्, सन्निकर्षो हीन्द्रियव्यापार उच्यत इति, व्यापारान्तरञ्च तस्य क्षणिकमसिद्धम्, स्थिरे चोक्त एव

शारदा

प्रत्यक्षप्रमाणात् पार्थक्येनानुमानप्रमाणविभागभङ्गोऽपि भवताम् । नच करणैक्येऽपि करणताभेदेनैवप्रमाणभेदः, सच निरूपकभेदात्, निरूपिका च प्रत्यक्षप्रमितिक्रियाऽनुमितिक्रिया चेति वाच्यम्; उक्तरीत्याऽनुमितेः प्रत्यक्षत्वापत्तौ निरूपकभेदोपपादनानुपपत्तेः। किञ्च क्रियाभेदः सामग्रीभेदाधीन इति निर्विवादम्, किन्तु सामग्रीभेदोऽपि तद्घटक-भेदेन परवानेव, तद्घटकेषु च प्राधान्यात्साधकतमकारकस्य तद्भेदेनैव प्रमाणविभागः समुचितः । व्याप्यत्वज्ञानस्य च कारकतामासेदुषः करणातिरिक्तान्तर्भावासम्भवाच्च । वस्तुतस्तूक्तरीत्या प्रत्यक्षत्वापादनवत्तदवच्छिन्नसामग्रीकत्वस्याप्यनुमितावापादनीयतया सामग्रीभेदोऽपि न स्यात्, तस्य क्रियाभेदेनैव कल्पनीयत्वादित्यवधेयम् । व्याप्तिविषयकोद्बुद्धसंस्कार-पक्षधर्मताज्ञानयोरनुमितिहेतुत्वमिति तु न युक्तम्; संस्कारजन्यज्ञानत्वेनानुमितेः स्मृतित्वापत्तेः, अतएव प्रत्यभिज्ञाया अप्यंशे स्मृतित्वमनुमन्यन्ते, संस्कारोद्बोधे स्मृतेर्ध्रौव्याच्च, व्याप्तिज्ञानस्य परामर्शस्य वा स्मरणात्मकत्वस्थले तस्यापि कारणताकल्पने गौरवाच्च, कथञ्चिदुद्बुद्धसंस्कारव्याप्तिज्ञानयोः संस्कारोद्बोधक-व्याप्तिज्ञानयोर्वैकशक्तिमत्त्वेन कारणताकल्पनेऽपि तद्व्यापारस्य दुर्निरूपत्वान्न प्रस्तुतकरण-लक्षणसङ्गतिः, करणस्य सव्यापारत्वनियमानभ्युपगमेऽपि फलोपधायकत्वस्यैव करणलक्षणस्य वक्तव्यत्वात्तस्य च निरस्तत्वादिति । तदेतत्सर्वं सूचयन्नाह अलमतिविस्तरेणेति। प्रसङ्गादिति । **समवायस्य नित्यत्वाभ्युपगमेन श्रोत्राजन्यत्वादिति भावः । सन्निकर्षः = विषयेण सन्निकर्षः । तेन मनसा श्रोत्रसन्निकर्षस्यानित्यत्वेऽपि न क्षतिः ।** उच्यते इति । **सच प्रकृते नित्य इति शेषः । क्षणिकम् = अनित्यम् । स्थिरे = नित्ये समवाये। शब्दः = कर्णाविच्छिन्नशब्दः, तस्यैव कर्णाविच्छिन्नगगनात्मकश्रोत्रजन्यत्वात् ।**

भारती

किञ्च – "तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् व्यापारत्वम्" (करण से जन्य एवं करण से जन्य के प्रति कारण ही व्यापार है) इस प्रकार व्यापार का लक्षण मानने पर – शब्द के साक्षात्कार में शब्द और श्रोत्र का समवाय रूप सन्निकर्ष नित्य होने से श्रोत्र का व्यापार नहीं होगा । तथाच व्यापार के न होने से श्रोत्रेन्द्रिय शब्द साक्षात्कार में करण नहीं होगी । क्योंकि विषय के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष ही इन्द्रिय का व्यापार कहा जाता है, और वह प्रकृत में समवायरूप होने से आप (तार्किक) के द्वारा नित्य माना जाता है अतः इन्द्रियजन्य नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त अनित्य कोई श्रोत्रेन्द्रिय का व्यापार तो असिद्ध है और स्थिर अर्थात् नित्य समवाय में उक्त दोष अर्थात् उक्त व्यापार लक्षण की अव्याप्ति दोष विद्यमान है । अतः यह व्यापार का लक्षण नहीं हो सकता ।

यदि कहें कि शब्द एवं शब्द ध्वंस के साक्षात्कार की उत्पत्ति में कर्णाविच्छिन्न शब्द को

दोषः। शब्द एव तद्व्यापारः किन्न स्यादिति चेन्न; तस्य कर्मत्वेन करणकोटिबहिर्भावात् । क्वचित्तयोरेकत्वेऽपि का क्षतिरिति चेन्न; शब्दबुद्धौ कार्यायामुपधायकत्वेन प्रविष्टस्य शब्दस्य करणव्यापारतया करणकोटावपि प्रवेशनेंऽशतोऽपि नियम्यनियामकत्वविरोधापत्तेः।

शारदा

तद्व्यापार इति । **शब्दतद्ध्वंसयोःसाक्षात्कारजनने इत्यादिः । शब्दसाक्षात्कारे जनयितव्ये शब्दस्य व्यापारतां निराकुरुते** तस्येति । **कर्मत्वेन = विषयतयाकार्यतावच्छेदकत्वेन । करणकोटिबहिर्भावात् = करणतावच्छेदकत्वासम्भवात्, कारणत्वासम्भवादित्यपि द्रष्टव्यम्। तत्करणकबोधविषयत्वस्य तदव्यापारत्वव्याप्तेस्तत्क्रियाकर्मत्वस्य तत्क्रियाकरणतानवच्छेदकत्वव्याप्तेश्च नयनादिकरणकबोधकर्मणि रूपादौ दृष्टत्वादिति भावः। अत्राप्रयोजकत्वमाशङ्कते** क्वचिदिति । **अत्रेदम्बोध्यम्, यथा परामृश्यमानलिङ्गस्य करणत्वे परामर्शस्य करणतावच्छेदकत्वेन व्यापारत्वासम्भवमनुमेनिरे शिरोमण्यादयः, तथा व्यापारत्वेनाभ्युपगतं शब्दं प्रति शब्दविशिष्टत्वेन न कारणता । स्वं प्रति स्वावच्छिन्नजनकत्वानुपपत्तेः । नच शब्दप्रत्यक्षं प्रति शब्दविशिष्टत्वेन श्रोत्रस्य कारणत्वेऽपि शब्दं व्यापारं प्रति रूपान्तरेण जनकत्वं स्यादिति वाच्यम्; रूपान्तरं हि नाकाशत्वेन घटितम्, तस्य शब्दसमवायित्वादिरूपत्वात्तद्घटितरूपेण शब्दं प्रति कारणत्वानुपपत्तेः नचान्यदपि सुवचम् । अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वेन कारणत्वेऽतिप्रसङ्गात्, मानाभावाच्च । यथाच शब्दप्रत्यक्षं प्रत्यपि शब्दविशिष्टत्वेन कारणत्वं न सम्भवति तथा वदन्नेवाप्रयोजकत्वशङ्कां निवारयति** शब्दबुद्धाविति। **उपधायकत्वेन = विषयतया विशेषणत्वेन । करणकोटावपि = करणतावच्छेदकतयापि । कारणकार्ययोरैक्याभावादाह** अंशत इति । **स्वरूपसम्बन्धविशेषात्मा प्रयोज्यप्रयोजकभावो नियम्यनियामकत्वशब्देनाभिहितः । विरोधः = एकत्रानुपपत्तिः ।**

भारती

ही श्रोत्रेन्द्रिय का व्यापार क्यों न मान लिया जाय, क्योंकि वह (कर्णावच्छिन्नशब्द) कर्णावच्छिन्न गगनात्मक श्रोत्रेन्द्रिय से जन्य एवं शब्द साक्षात्कार के प्रति जनक है। तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि शब्द के कर्म होने से अर्थात् विषयतया कार्यतावच्छेदक होने से वह (शब्द) करणकोटि से बहिर्भूत है अर्थात् वह (शब्द) न करणतावच्छेदक हो सकता है और न कारण ही हो सकता। ऐसी स्थिति में वह व्यापार कैसे हो सकता। (तात्पर्य यह है कि यत्र-यत्र तत्करणजन्यबोधविषयत्वं तत्र-तत्र तत्करणअव्यापारत्वम्'' इस प्रकार की व्याप्ति, तथा यत्र-यत्र तत्क्रियाकर्मत्वं तत्र-तत्र तत्क्रियाकरणतानवच्छेदकत्वम्'' इस प्रकार की व्याप्ति चक्षुरादिजन्य-बोधविषयीभूत रूपादि में प्रसिद्ध है। अतः उक्त व्याप्ति के अनुसार शब्द श्रोत्रेन्द्रिय रूप करण जन्य बोध का विषय होने से तत्करण अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय का अव्यापार ही होगा, व्यापार नहीं हो सकता।)

यदि कहें कि उक्तनियम के अप्रयोजक होने से क्वचित् कर्म एवं व्यापार दोनों का एकत्व मान लें अर्थात् प्रकृत में शब्द को ही कार्यतावच्छेदक एवं करणतावच्छेदक दोनों मान लें तो क्या हानि है। तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि शब्द साक्षात्कार रूप कार्य में विषयतया विशेषण रूप से प्रविष्ट शब्द का करण के व्यापार रूप से करण के स्वरूप में

घटादिबुद्धौ चक्षुरादेश्चक्षुर्घटादिसंसर्गव्यापारवत्त्वेऽपि सममिदमिति चेत्; किन्नः स्यात् । तथा च –

शारदा

तथाच स्वं यदि स्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकं स्वनिष्ठजनकताकजन्यतावच्छेदकं वा स्यात्स्वभिन्नं स्यादित्यर्थः । यथा कारणतावच्छेदकावच्छिन्नसमवधानाधीनत्वेनान्योन्याश्रयात् कार्योत्पत्तेर्न कारणतावच्छेदकान्तःपातिता तार्किकैरनुमन्यत इति व्यक्तं पक्षतागादाधर्याम्। तथा कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्यैव कारणतावच्छेदकावच्छिन्नोत्तरत्वस्य वक्तव्यत्वात् कारणतावच्छेदकस्य कारणस्य वा स्वोत्तरत्वासम्भवेन न कार्यतावच्छेदकत्वं युज्यते । अतएव "कारणस्य कार्यतावच्छेदकत्वानुपगमा"दिति मङ्गलवादे दिनकरेणाप्युक्तम्। एवञ्चाव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन तल्लिङ्गकपरामर्शविशिष्टानुमितिं प्रति तल्लिङ्गकपरामर्शः कारणमित्यादिरीत्या कार्यकारणभावकल्पनमप्रामाणिकमेव, तथा सति तत्क्षणाव्यवहितोत्तर-कार्यं प्रति तत्क्षणः कारणमितिरीत्यापि तत्कल्पनं किन्न रोचयेः, एवं च जितं सौगतैः, प्रस्थितं च कार्यकारणभावान्तरैः, आपतितं च लोकव्यवहारविरोधैः। सामान्यकार्यकारण-भावस्य च विशेषकार्यकारणभावमूलकत्वाद्विषयत्वेन प्रयक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपित-कारणतायाश्शब्दत्वेन शब्दप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतां विनाऽनुपपत्तेः। सामान्यकार्यकारणभावमात्रसत्त्वे च घटप्रत्यक्षस्य पटादप्यापत्तेः। एवं च सामान्यकार्यकारणभावो निष्फलो नवेत्यन्यत् । शब्दप्रत्यक्षस्य कार्यत्वे विषयतासम्बन्धेनैव शब्दस्य तदवच्छेदकता, सम्बन्धान्तरेण कार्यतावच्छेदकतास्थले चोक्तरीतिरिति पक्षपातस्तु विषयविषयिभावानुपपत्तिजीवातुक-

भारती

प्रवेश मानने पर अंशतः एक ही शब्द में नियम्य नियामकभाव का मानना अनुपपन्न (युक्ति विरुद्ध) है । (तात्पर्य यह है कि एक ही शब्द विशेषण रूप से कार्य में तथा व्यापार रूप के करण में प्रविष्ट होने से एक ही शब्द में नियम्यत्व नियामकत्व दोनों धर्मों का समावेश होना युक्ति विरुद्ध है । यहाँ युक्ति यह है कि – स्वं यदि स्वावच्छिन्नजनकता निरूपित जन्यतावच्छेदकं स्वनिष्ठ जनकताकजन्यतावच्छेदकं वा स्यात् स्वभिन्नं स्यात्" (स्व = शब्द यदि स्व = शब्द से अवच्छिन्न श्रोत्रेन्द्रियवृत्ति जनकता से निरूपित शब्द साक्षात्कार वृत्तिजन्यता का अवच्छेदक होगा तो स्वयं स्वयं से भिन्न होना चाहिए अथवा स्व = शब्द यदि स्व = शब्दनिष्ठ जनकता निरूपित जन्यता का अवच्छेदक हो तो स्व से भिन्न होना चाहिए) इस प्रकार के तर्क के बल से प्राप्त व्याप्ति ज्ञान से – शब्दः स्वभिन्नः स्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकत्वात् स्वनिष्ठ जनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकत्वाद् वा" इत्याकारक अनुमिति के बाधित होने से स्व = शब्द में स्वभिन्नत्वसिद्ध नहीं हो सकता, अतः शब्द का तादृशजन्यतावच्छेदक एवं जनकतावच्छेदक भी नहीं मान सकते ।)

प्रश्न – यदि उक्त प्रकार से शब्द प्रत्यक्ष के साथ श्रोत्रेन्द्रिय के कार्यकारणभाव को अनुपपन्न कहेंगे तो सर्वत्र ही कार्यकारणभाव अनुपपन्न हो जायेगा, क्योंकि घटादि प्रत्यक्षस्थल में भी घटचक्षु संयोग रूप व्यापार से युक्त होकर ही चक्षुः करण होता है । तथाच घटविषयक

बाधेऽदृढेऽन्यसाम्यात्किं ? दृढेऽन्यदपि बाध्यताम् ।
क्व ममत्वं मुमुक्षूणामनिर्वचनवादिनाम् ।। ३३।।
तथाहि मिथिलानाथो मुमुक्षुर्निर्ममः पुरा ।
आहेदं मिथिलादाहे न मे किञ्चन दह्यते ।। ३४।। इति ।

शारदा

सिद्धान्तकैर्नैवानुमोदनीयः। तथा च स्वं प्रति स्वघटितरूपेणेव स्वघटितरूपावच्छिन्नं प्रति स्वस्य कारणता कल्प्यमानापि न युक्तिसहेति भावः । जात्युत्तरत्वाभिमानेनाशङ्कते घटादीति। इदम् = एकस्य जन्यताजनकतयोरवच्छेदकत्वानुपपत्तिरूपं दूषणम् । घटविषयकचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति घटसंयोगत्वेन कारणतया घटस्य जन्यतायां जनकतायाञ्चावच्छेदकत्वात्, सम्बन्धभेदेनैकस्यापि जन्यताजनकतयोरवच्छेदकत्वं न दुष्यतीति तु प्रकृतेऽपि समानमिति भावः । किञ्चिदव्यवस्थापयतां न जात्युत्तरं किञ्चिदित्यभिप्रेत्याह किमिति । नः = अनिर्वचनीयवादिनाम्। स्यात् = छिन्नं स्यात् । अस्मदुक्तं दूषणमदृढं वा दृढं वेति विकल्प्याह बाधे इति । अदृढत्वमाभासत्वम् । अन्यसाम्यात् = प्रकृतातिरिक्ते दोषाभाससत्त्वोपन्यासात्किम्। तथा सति दोषस्याभासताया एव व्युत्पादनौचित्यादिति भाव। इदन्त्ववधेयम्, शब्दतद्ध्वंससाक्षात्कारयोः शब्दस्य व्यापारत्वसम्भवेऽपि शब्दप्रागभावसामान्याभावयोः साक्षात्कारे न तस्य व्यापारत्वसम्भावनाऽपि, तयोरपि साक्षात्कारस्य प्रामाणिकत्वेनापलापानुपपत्तेः । तस्मात्तत्र कर्णशष्कुलीसंयोगस्य व्यापारत्वेऽन्यत्रापि तथैव, श्रोत्रमनसोःसंयोगस्यैव वा सर्वत्र व्यापारतेति नियम्यनियामकत्वविरोधस्यात्र पक्षेऽसम्भवेन पूर्वोक्ताऽनुमितौ व्यापाराव्यवस्थैव दूषणं सारमिति ।

भारती

चाक्षुष प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न के प्रति घटसंयुक्त चक्षुः कारण है'' इस प्रकार कार्यकारण भाव मानने पर घट का जन्यता (कार्य का स्वरूप) एवं जनकता (जनक के स्वरूप) में अवच्छेदक रूप से प्रवेश होने से घटादि स्थल में भी कार्य कारण भाव अनुपपन्न हो जायेगा । तथाच एक में जन्यता एवं जनकता दोनों की अवच्छेदकता की अनुपपत्ति दूषण समान ही है । यदि सम्बन्ध भेद से एकत्र तदुभय की अवच्छेदकता होने में दोष नहीं है तो प्रकृत शब्द साक्षात्कार स्थल में भी वह समान है अर्थात् वहाँ भी सम्बन्धभेद से शब्द में उभयावच्छेदकता मानी जा सकती है।

समाधान – एकत्र जन्यता तथा जनकता उभय की अवच्छेदकता के अनुपपन्न होने से (एक ही पदार्थ के कार्यकोटि तथा कारण कोटि में प्रवेश के अनुपपन्न होने से) शब्द स्थल के समान घटादि स्थलों में सर्वत्र ही कार्य कारण भाव यदि अनुपपन्न है तो, हो जाय अनुपपन्न, अर्थात् उक्त दोष के कारण न बनें कार्य कारण भाव, उससे किञ्चित् व्यवस्थित (सिद्ध) न करने वाले अनिर्वचनीयवादि हमारी क्या क्षति है अर्थात् कोई क्षति नहीं है । तथाच–

हमारे द्वारा उक्त बाध (दूषण) यदि अदृढ अर्थात् आभास (भ्रान्त) है तो अन्य साम्य

भारती

अर्थात् प्रकृत से अतिरिक्त स्थल (घटादि) में उस दोषाभास के अस्तित्व के प्रदर्शन से क्या लाभ है उस स्थिति में तो उक्त दोष में आभासत्व का व्युत्पादन (कथन) करना ही उचित है और यदि हमारे द्वारा उक्त बाध (बाधक = दूषण) दृढ़ है अर्थात् प्रामाणिक (यथार्थ) है तो उसी दोष रूप बाधक के द्वारा अन्य का भी अर्थात् प्रकृत शब्दादि स्थल से अतिरिक्त घटादि में कार्य कारणभावादि का भी बाध (खण्डन) मान लिया जाय । क्योंकि पदार्थमात्र को अनिर्वचनीय मानने वाले मुमुक्षु जनों का ममत्व कहाँ हो सकता, अर्थात् कहीं नहीं । अतएव निर्मम (ममता रहित) मुमुक्षु मिथिलानाथ राजा जनक ने प्राचीन काल में यह कहा कि – "मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता" ।

(महाभारत में कथानक है कि भगवान् याज्ञवल्क्य जनक को वेदान्त उपदेश देते हुए जनक में वेदान्तश्रवण की योग्यता के परीक्षणार्थ या अन्यश्रोताओं के समक्ष जनक में वेदान्त श्रवण योग्यता को व्यक्त करने हेतु मिथिला में अपनी माया (योगसामर्थ्य) से अग्नि लगा दी। उस समय अन्य सभी श्रोताओं के स्वकीय वस्तु रक्षणार्थ चले जाने पर भी जनक नहीं गया। तथा भृत्यों द्वारा जनक से यह कहे जाने पर कि "राजन् मिथिला में अग्नि लग गई" जनक सर्वथा शान्तभाव से सुस्थिर बैठे हुए ही कहता है –

अनन्तमेव मे वित्तं यस्य मे नास्ति किञ्चन । मिथिलायां प्रदाह्यायां न मे किञ्चन दह्यते"।। इसका पाठान्तर निम्न प्रकार से मिलता है –

"यस्य मे चास्ति सर्वत्र यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किञ्चन दह्यते" ।।

मेरा वित्त = धन तो स्वस्वरूपभूत निर्विशेष आत्म तत्त्व ही है और वह अनन्त अर्थात् अविनाशी ही है उसका विनाश होना सम्भव ही नहीं है । उसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं है ऐसी स्थिति में मिथिला के दग्ध होने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता । पाठान्तर दृष्टि से – जो मेरा है वह सर्वत्र है सर्वव्यापी एवं अविनाशी है उसके अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है" उत्तरार्द्ध का अर्थ पूर्ववत् है । इससे स्पष्ट है कि अनिर्वचनीयवादि मुमुक्षु राजा जनक का आत्मतत्त्व से अतिरिक्त किसी भी वस्तु में ममत्व नहीं था ।)

(यहाँ यह ध्यातव्य है कि – शब्द एवं शब्द ध्वंस के साक्षात्कार के प्रति शब्द को व्यापार मान भी लें तो भी शब्द प्रागभाव तथा शब्द सामान्याभाव के साक्षात्कार में शब्द को व्यापार मानने की सम्भावना भी नहीं की जा सकती है और उन (शब्द प्रागभाव-शब्दसामान्याभाव) के साक्षात्कार के प्रामाणिक होने से उसका अपलाप भी नहीं कर सकते । तस्मात् वहाँ (शब्द प्रागभाव सामान्याभाव के साक्षात्कार में) कर्ण शष्कुली संयोग को ही व्यापार मानना होगा ऐसी स्थिति में अन्यत्र शब्द साक्षात्कार में भी वही व्यापार होगा, अथवा श्रोत्र और मनः के संयोग को ही सर्वत्र व्यापार मान सकते हैं ऐसी स्थिति में इस पक्ष में नियम्य नियामकत्व के विरोध का अवसर ही नहीं है अतः पूर्वोक्त अनुमिति में किसी व्यापार का न होना ही दोष समझना चाहिए ।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कर्ण शष्कुली का संयोग श्रोत्र के साथ लेना है । क्योंकि

नापि द्वितीयः, लिङ्गपरामर्शस्यानुमितावकरणत्वप्रसङ्गात् , निर्विकल्पकस्यापि तस्योपगमे सविकल्पकानाश्रयत्वात् , अतद्धेत्वाश्रयस्य तद्धेतुव्यापारत्वे चात्यापत्तेः ।

शारदा

स्ववृत्तित्वस्वजन्यजनकत्वाभ्यां वस्तुविशिष्टत्वं व्यापारत्वमिति कल्पं विकलयति नापीति । प्रसङ्गादिति । **परामर्शजन्यजनकानां परामर्शावृत्तित्वादिति भावः। चक्रभ्रमणा-देर्दण्डादाववृत्तित्वात्तत्राप्यव्याप्तेरुपलक्षणमिदम्, वृत्तितावच्छेदकस्यानुगतसम्बन्धस्याभावात्, जनकताया वृत्तिनियामकत्वाभावात् । प्रथमलक्षणे एव पर्यवसानाच्च। निर्विकल्पकस्य पूर्वं निरस्तत्वेऽप्यभ्युपेत्यवादेनाह** निर्विकल्पकस्येति । **तस्य = लिङ्गज्ञानस्य । उपगमे = अनुमितिकरणत्वोपगमे । ननु प्रथमसम्बन्धानुपादाने लिङ्गनिर्विकल्पकजन्यजनकस्य सविकल्पकस्य लिङ्गनिर्विकल्पकव्यापारत्वसम्भव इत्यत आह** अतद्धेत्वाश्रयस्येति । **व्यापारतावच्छेदकसम्बन्धेन तद्धेत्वसम्बद्धस्येत्यर्थः । तद्धेत्वजन्यस्येति यावत् । तथाच परस्परजन्यजनकतया सहकारिमात्रस्य परस्परव्यापारत्वप्रसङ्ग इति स्वजन्यत्वसम्बन्ध-निवेशस्याप्यावश्यकत्वे प्रथमलक्षणखण्डनावतार इति भावः ।**

भारती

कर्ण शष्कुल्यवच्छिन्न नभः प्रदेश ही श्रोत्र है । कर्णशष्कुलीसंयोग श्रोत्र से जन्य एवं श्रोत्रजन्य शब्द प्रागभाव सामान्याभाव साक्षात्कार का जनक है अतः वह संयोग शब्द प्रागभाव सामान्याभाव साक्षात्कार तथा शब्द साक्षात्कार में व्यापार हो सकता है ।

जो तदाश्रित (करणाश्रित) होकर तज्जन्य (करण जन्य) का जनक हो वह व्यापार है अर्थात् स्ववृत्तित्वस्वजन्यजनकत्व उभय सम्बन्ध से वस्तु (करण) विशिष्ट हो वह व्यापार है। (यहाँ स्वशब्द से करण लेना है । इस प्रकार व्यापार का द्वितीय लक्षण भी निर्दुष्ट नहीं है । क्योंकि लिङ्ग परामर्श अनुमिति के प्रति करण न होगा । कारण कि लिङ्ग परामर्श से जन्य का जनक लिङ्ग परामर्श के आश्रित नहीं है अतः व्यापार के अभाव में लिङ्ग परामर्श करण नहीं होगा । अर्थात् उक्त व्यापार लक्षण एवं करण लक्षण दोनों ही अव्याप्त है । किञ्च – दण्ड के आश्रित न होने से चक्रभ्रमण दण्ड का व्यापार न होगा । अपि च जनकता के वृत्ति नियामक न होने से वृत्तितावच्छेद अनुगत सम्बन्ध के न होने से करण वृत्तित्व भी व्यापार में नहीं बन पायेगा और स्ववृत्तित्व अंश के परित्याग करने पर प्रथम व्यापार लक्षण में ही पर्यवसान हो जायेगा । यद्यपि निर्विकल्पक ज्ञान का निरास कर चुके हैं तथापि पर मत के अनुसार निर्विकल्पक मानकर निर्विकल्पक लिङ्गज्ञान को अनुमिति के प्रतिकरण मानें तथा सविकल्पक लिङ्ग ज्ञान को व्यापार मानें तो सविकल्पकलिङ्गज्ञान निर्विकल्पकलिङ्गज्ञान के आश्रित न होने से निर्विकल्पकलिङ्गज्ञान रूप करण का व्यापार नहीं होगा । यदि उक्त व्यापार लक्षण में स्वजन्यत्व अथवा स्ववृत्तित्व (तदाश्रयत्व) अंश का उपादान न करके तत् करण से असम्बद्ध को भी तत् करण का व्यापार मानें तो – कार्य के सहकारिकारण (चक्रचीवरादि) भी परस्पर जन्यजनक होने से सहकारिमात्र ही परस्पर में व्यापार हो जायेंगे ।

किञ्च फलाव्यभिचारित्वं किं तस्मिन्नेव काले फलसत्त्वनियमः?, उत तदनन्तरं फलसत्त्वनियमः?। नाद्यः, कारणस्य पूर्वभाविताया अवश्यं वक्तव्यत्वात्। न द्वितीयः, आनन्तर्यं यद्यव्यवहितानन्तर्यं विवक्षितं तदा यत्किञ्चिद्व्यापारवतः करणत्वपक्षे हस्तादेरकरणत्वापातः आफलव्यापारवतस्तु तथात्वे कर्त्रादिष्वतिव्याप्तिः।

शारदा

किञ्चेत्यादि । **फलसत्ताऽभाववत्कालावृत्तिव्यापारवत्कारणत्वमित्याद्यर्थः । स्वाव्यवहितोत्तरक्षणवृत्तिकभेदप्रतियोगितानवच्छेदकफलकव्यापारवत्कारणत्वमिति द्वितीयार्थः। भेदप्रतियोगितावच्छेदकता कालिकेन । अव्यवहितानन्तर्यम् = अव्यवहितोत्तरत्वम्, तच्च क्षणे स्वाधिकरणक्षणध्वंसानधिकरणत्वस्वाधिकरणत्वाभ्यां तदधिकरणक्षणध्वंसविशिष्टत्वम्।** तदेति । **अत्रोक्तलक्षणे व्यापारस्थाने यत्किञ्चिद्व्यापारेति निवेश्य नाव्याप्तिर्दीयते, सर्वस्य करणव्यापारस्य स्वाव्यवहितोत्तरक्षणवृत्तिभेदप्रतियोगितानवच्छेदकफलकत्वाभावेन यस्य कस्यचिदेव तथात्वात् । अपितु तादृशफलकप्रथमव्यापारककारणत्वं लक्षणमभिप्रेत्य । आफलव्यापारेत्यग्रिमकल्पे तु तादृशफलकयत्किञ्चिद्व्यापारककारणत्वमिति लक्षणे कर्त्रादावतिव्याप्तिर्दत्तेति । आफलव्यापारः = फलाव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिव्यापारः।** अतिव्याप्तिरिति । **कर्त्रादिरपि फलाव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिव्यापारस्योक्तभेदप्रतियोगितानवच्छेदक-**

भारती

किञ्च – ''व्यापारवतः फलाव्यभिचारित्वम्'' इस करण लक्षण के अन्तर्गत ''फलाव्यभिचारित्वम्'' भी क्या है ? क्या व्यापार विशिष्ट कारण के काल में ही नियम से फल (मुख्यक्रिया) की सत्ता होना फलाव्यभिचारित्व है, या व्यापार विशिष्ट कारण के अनन्तर काल में नियम से फल (मुख्यक्रिया) की सत्ता होना । (यहाँ फलसत्ता के अभाव विशिष्टकाल में वर्तमान व्यापार से युक्त करण का होना'' प्रथम विकल्प का अर्थ है एवं स्वाव्यवहितोत्तर क्षण में वृत्ति जो भेद, तादृशभेद प्रतियोगिता का अनवच्छेदक फल वाले व्यापार से युक्त कारण का होना'' यह द्वितीय विकल्प का अर्थ है । यहाँ भेदप्रतियोगितावच्छेदकता कालिक सम्बन्ध से लेना है ।)

इनमें प्रथम विकल्प युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि कारण को कार्य पूर्व काल वृत्ति अवश्य ही मानना होगा । अन्यथा कार्य व्यवहित प्राक्क्षणावच्छेदेन विद्यमानता रूपा कारणता ही नहीं होगी, तथाच उक्त लक्षण असम्भव दोषग्रस्त हो जायेगा ।

द्वितीय कल्प भी युक्ति संगत नहीं है क्योंकि यदि अनन्तर शब्द से अव्यहित आनन्तर्य विवक्षित है तो ''यत्किञ्चित् व्यापार विशिष्ट कारण ही करण है'' इस पक्ष में हस्त करण न होगा । अर्थात् हस्त के यत्किञ्चित्व्यापार के अव्यवहितोत्तर क्षण में फल (पाक क्रिया) न होने से हस्त रूप करण में उक्त करणलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी और यदि आफल व्यापार अर्थात् फल के अव्यवहित प्राक्क्षणवर्ति व्यापार से विशिष्ट कारण को करण मानें तो कर्ता

अथ व्यवहितस्याप्यानान्तर्यं विवक्षितम्, तथापि यत्किञ्चिद्व्यापाराभिप्रायेऽन्तरायसम्भवाद्धस्ताद्यव्याप्तिः, आफलव्यापाराभिप्राये च व्यवधानासम्भवात् कारकमात्रं करणमित्युक्तं स्यात्। व्यापारवतश्च तत्फलाव्यभिचार इति किं तद्व्यापारस्य फलाव्यभिचारित्वम्?

शारदा

फलकत्वात्। अथेति। **स्वाव्यवहितोत्तरेत्यस्य स्थाने स्वाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणेत्येव वक्तव्यम्, तथाच प्रथमव्यापारनिवेशेऽपि हस्तादौ नोक्तरीत्याऽव्याप्तिः, फलाधिकरणक्षणस्य प्रथमव्यापाराधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणत्वात्, किन्तु यत्र प्रथमव्यापाराधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणेऽपि क्षणे प्रतिबन्धकविशेषात्फलं नोत्पन्नम्, तत्राव्याप्तिः, कारकस्य हस्तादेः करणातिरिक्तेऽन्तर्भावासम्भवेनालक्ष्यत्वाभ्युपगमानुपपत्तेः, नहि कारकत्वमपि क्रियोपधायकत्वरूपं येन तत्र तन्न स्यादित्याह** तथापीति। **यत्किञ्चिद्व्यापाराभिप्राये = प्रथमव्यापारस्योक्तलक्षणेऽनुप्रवेशे। अन्तरायसम्भवात् = प्रतिबन्धकसम्भवात्। यत्किञ्चिद्व्यापारस्य लक्षणघटकत्वे तु फलाव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिनः कारकान्तरीयव्यापारस्यापि तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकफलकतयाऽतिव्याप्तिः, उपधेयसङ्करेऽपि न्यायेन प्रत्यवस्थानाशक्यताया निवेदनादित्यनुशयेनाह** आफलेति। तद्व्यापारस्येति। **फलाव्यभिचारिव्यापारवत्कारणत्वमित्यर्थः। अस्य प्राङ्निरस्तत्वेऽपि विकल्पे न्यूनतापरिहाराय पुनरभिधानम्।** व्यापारविशिष्टस्येति।

राजहंसः

प्रतिबन्धकसम्भवादिति। प्रतिबन्धकाभावस्थले तु कर्त्रादावतिव्याप्तिः, तस्यापि व्यापारोत्तरं व्यवधानेन फलोत्पत्तेः।

भारती

आदि में अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि कर्ता आदि का फलाव्यवहित प्राक्क्षणवर्ति व्यापार भी अवश्य ही फल वाला (उक्त भेद = फलाव्यवहित प्राक्क्षण वृत्ति व्यापार तत् क्षण वृत्ति व्यापार जन्य फलवान् न इत्याकारक भेद के प्रतियोगिता का अनवच्छेदक फल वाला) है। यदि अनन्तर शब्द से व्यवहित आनन्तर्य भी ग्राह्य है तो यत्किञ्चित् अर्थात् प्रथम व्यापार का लक्षण में प्रवेश मानने पर हस्तादि में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि हस्त व्यापार के अनन्तर अन्तराप (विघ्न रूप प्रतिबन्धक) उपस्थित होने से फल (पाकादि मुख्य क्रिया) नहीं होता और यदि आफल व्यापार (फलाव्यवहित प्राक्क्षणवर्तिव्यापार) का लक्षण में प्रवेश मानें तो व्यवधान के न होने से कारकान्तर (कर्ता आदि) का व्यापार भी नियम फल वाला (तादृशभेद प्रतियोगितानवच्छेदक फल वाला) होने से कारक मात्र ही करण हो जायेगा, अर्थात् कारक मात्र में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी।

किञ्च – "व्यापारवत फलाव्यभिचार" (व्यापारवान् में फल का अव्यभिचार) इस वाक्य का क्या तात्पर्य है, क्या जिस करण का व्यापार फल का अव्यभिचारी हो। अर्थात् फल के अव्यभिचारि व्यापार से युक्त कारण करण है यह अर्थ है। अथवा जो व्यापार विशिष्ट कारण फल का अव्यभिचारी (नियम से फल सम्बन्ध = फल वाला) हो वह करण है अर्थात् फल का अव्यभिचारि होकर व्यापार विशिष्ट कारण हो वह करण है" यह अर्थ है।

व्यापारविशिष्टस्य वा ?। नाद्यः, हस्ताद्यकरणत्वापातात् । अतएव न द्वितीयः, यागादेः स्वर्गाद्यकरणत्वापाताच्च, अपूर्ववाक्यार्थ-त्ववादिनापि चरमं यागस्य फलकरणत्वाभ्युपगमादिति ।

शारदा

फलाव्यभिचारित्वे सति व्यापारविशिष्टकारणत्वमित्यर्थः । पाताच्चेति । **अपूर्वात्मकयाग-व्यापारस्य फलाव्यवहितप्राक्क्षणवृत्तित्वेऽपि यागस्यापूर्वविशिष्टस्य तृतीयक्षणवृत्तिध्वंस-प्रतियोगिनोऽतथात्वादिति भावः । ननु "कार्येऽसङ्घटिताकारे करणत्वेन सम्मतः" इत्युक्तेः प्रभाकरमतेऽपूर्वं प्रति यागस्य करणत्वेन तदव्यवहितप्राक्क्षणवर्तित्वेन च न स्वर्गाद्यकरणतापत्तिर्दोषः, नच यागस्यापूर्वजनने निर्व्यापारतया नापूर्वनिरूपितस्यापि करणत्वस्य सम्भव इति देश्यम्, परमापूर्वं प्रत्येव करणतामासेदुषस्तस्योत्पत्त्यपूर्वव्यापार-कत्वादितिशङ्कां नित्याधिकारे फलकामिनोऽनधिकारित्वेनापूर्वस्यैव साध्यतया तत्रत्येव धात्वर्थस्य करणत्वेऽपि कामाधिकारे फलकामिन एव नियोज्यत्वेन फलकरणतामुपेयुष एव धात्वर्थस्य नियोगविषयतया यागे स्वर्गाद्यकरणतापातो दोष एवेत्यभिप्रायेण परिहरति** अपूर्ववाक्यार्थत्ववादिनेति । **स्वर्गकामो यजेतेत्यादिवाक्यात् स्वर्गकामकर्तव्यत्वप्रकार-कबोधविषयीभूतं यागविषयकं कार्यमितिशाब्दबोधं स्वीकुर्वतेत्यर्थः** । चरममिति । **उक्तशाब्दबोधानन्तरमित्यर्थः । यागस्य फलकरणत्वाभ्युपगमात् = यागविशेष्यकफल-कारणत्वप्रकारकार्थिकबोधमभ्युपगम्य यागे कारकान्तरात्मकत्वानुपपत्त्या करणत्वा-भ्युपगमात्। अयम्भावः–वेदे क्रियाभिन्ने एव धर्मिणि कार्यत्वेन रूपेण शक्तिनिर्णयः, एवं च लोके क्रियाया एव धर्मित्वेन धातुत एव च तस्या लाभसम्भवेन कार्यत्वे धर्मे लिङ्गादेर्लक्षणेत्यन्यत् । तथाच शक्तिग्रहपदार्थस्मृतिशाब्दबोधानां समानप्रकारकतयैव**

राजहंसः

कार्येऽसङ्घटिताकारे इति । कृत्याऽसम्बद्धस्वरूपे, साक्षात्कृत्यजन्ये इति यावत् । कार्ये = अपूर्वे।

भारती

इनमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि हस्तादि करण नहीं होंगे अर्थात् हस्तादि का व्यापार फल का अव्यभिचारी न होने से हस्तादि में अव्याप्ति हो जायेगी । अतएव द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि अन्तराय (प्रतिबन्धक) के होने से व्यापारविशिष्ट हस्त भी फल का व्यभिचारी हो सकता है ऐसी स्थिति में हस्त में अव्याप्ति रहेगी । किञ्च – यागादि स्वर्ग के प्रति करण नहीं होंगे अर्थात् याग में भी अव्याप्ति है । क्योंकि याग का अपूर्व रूप व्यापार फल का अव्यभिचारी (फल के अव्यवहित प्राक्क्षण वृत्ति) होने पर भी अपूर्व रूप व्यापार विशिष्टयाग तृतीय क्षण वृत्ति ध्वंस प्रतियोगी होने से फल का अव्यभिचारी नहीं है । अपूर्व को वाक्यार्थ मानने वाले प्रभाकरादि भी अर्थात् "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादि वाक्य से – "स्वर्ग काम कर्तव्यत्वप्रकारकबोधविषयीभूतं यागविषयकं कार्यम्" इत्याकारक शाब्द बोध स्वीकर्ता प्रभाकर ने भी उक्त शाब्द बोध के अनन्तर याग विशेष्यक फल कारणत्व प्रकारक आर्थिक बोध को स्वीकार कर याग में कारकान्तर रूपता की अनुपपत्ति से फल के प्रति याग को करण

अथोच्यते – यद्वानेव करोति तत्करणम्, यद्वानेव प्रमिमीते तत्प्रमाणम्। मैवम्, आत्मधर्मप्रध्वंसादीनामकरणानां प्रमाणत्व-प्रसङ्गात्। येन क्रियाकारणेन युक्त एव प्रमिमीत इति चेन्न;

शारदा

कार्यकारणभावात् प्रथममज्ञातस्याप्यपूर्वस्य कार्यत्वेन रूपेण शाब्दविषयत्वस्य नानुपपत्तिः। किन्तु कामिनः प्रथमं काम्याव्यवहितसाधने एव कर्तव्यत्वप्रकारकबोधोदयेनापूर्वे कार्यत्वेन रूपेण तथाबोधोदयेऽपि व्यवहितसाधने यागे प्रथमं न तथाबोधः, अपितु कार्यत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकोक्तबोधानन्तरमेव यागः स्वर्गकारणमिति बोधः, ततःपरं तु यागः कर्तव्य इति बोधः स्वर्गकामिन औचित्यावर्जित इति। केचित्तु चरमयागस्येति समस्तपाठमनुरुध्याग्नेयादिषु पूर्वपूर्वयागजन्यावान्तरापूर्वविशिष्टस्यान्तिमयागस्य फलकरणत्वाभ्युपगमादिति व्याचक्षते।

यद्वानेवेति। **यत्सम्बन्धिताव्याप्यं यत्क्रियाकर्तृत्वं तत्त्वं तत्क्रियाकरणत्वमित्यर्थः। कर्तृत्वञ्चोपधायकत्वम् एवं परतोऽपि।** आत्मेति। **आत्मधर्मस्य सुखादिविशेषस्य क्रियाविशेषकर्तृत्वदशायां तत्प्रध्वंसप्रागभावयोश्च तत्तद्भेदप्रमेयत्वादीनाञ्च क्रियामात्रकर्तृदशायां प्रमातरि क्रियान्तरकर्तरि च यथासम्भवं नियमेन सद्भावादतिप्रसङ्गः। यत्पदार्थे प्रकृतक्रियाकारणत्वनिवेशे तदकारणेष्वनतिप्रसङ्ग इत्याह** येनेति। क्रियाकारणेनेति। **तत्प्रमाकारणेनेत्यर्थः। प्रमिमीते = तत्प्रमाकर्ता। तत्त्वं तत्प्रमाकरणत्वमिति शेषः। अदृष्टादावतिप्रसङ्गभङ्गाय कारणपदेनासाधारणकारणमेव ग्राह्यम्, सुखादिप्रमिताविति**

भारती

ही माना है। (तात्पर्य यह है कि – यद्यपि प्रभाकर के मत में अपूर्व के प्रति ही याग को करण माना है क्योंकि याग अपूर्व के अव्यवहित प्राक्क्षणवृत्ति है अतः स्वर्ग के प्रति याग में अकरणत्वापत्ति दोष देना उचित नहीं है। यदि कहें कि अपूर्व के प्रति याग के निर्व्यापार होने से याग अपूर्व के प्रति करण नहीं हो सकता, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि याग को परमापूर्व के प्रति ही करण माना है और उसमें उत्पत्त्यपूर्व (अवान्तर अपूर्व) ही व्यापार हो जायेगा, अतः याग निर्व्यापार नहीं है। तथापि नित्यकर्म में फलकामी का अधिकार न होने से वहाँ (नित्य कर्म स्थल में) अपूर्व के प्रति भले ही यागादि धात्वर्थ करण हो जाय, किन्तु काम्य कर्म में तो फल कामी ही नियोज्य (अधिकारी) होने से वहाँ स्वर्गादि फल के प्रति ही धात्वर्थ यागादि को करण मानना होगा अतः इस पक्ष में धात्वर्थ यागादि ही नियोग के विषय होने से यागादि में स्वर्गादि रूप फल के प्रति अकरणत्वापत्ति दोष होगा ही।)

४. प्रश्न – जिससे युक्त होकर कर्ता कार्य करता है। अर्थात् यत्सम्बन्धिता से व्याप्य यत्क्रिया कर्तृत्व है तत्त्व ही तत्क्रियाकरणत्व है एवं जिससे युक्त प्रमाता प्रमिति करता है वह प्रमाण है। यहाँ – यत्सम्बन्धिताव्याप्ययत्प्रमितिकरणत्व है तत्त्व ही तत्प्रमितिकरणत्व है इस प्रकार परिष्कार होगा। कर्तृत्व उपधायकत्व रूप लेना है।

समाधान – यह लक्षण भी निर्दुष्ट नहीं है क्योंकि क्रियाविशेष की कर्तृत्व दशा में आत्मा के धर्म सुखादि विशेष से युक्त होकर प्रमाता कार्य करता है एवं क्रियामात्र की कर्तृत्व

सुखादिप्रमितौ तत्करणव्यापारस्यापि करणत्वप्रसङ्गात् । ओमिति चेन्न; अव्यापारतयाऽकारकत्वेन तद्विशेषकरणभावानुपपत्तेः । व्यापारवतापीति चेन्न; एवं हि व्यापारवत एव करणत्वं न स्यात्, नहि व्यापारवतस्तस्य व्यापारान्तरवत्तास्ति । अथ व्यापारवतो,

शारदा

प्रमितिमात्रस्योपलक्षणम्, करणसमान्यलक्षणनिरासपरत्वे तु कार्यमात्रस्य । करणं मनःप्रभृति। व्यापारो मनःसंयोगादिः इदमुपलक्षणं सहकारिमात्रे सामग्र्याञ्चातिप्रसङ्गस्य । नच यत्प्रकृतक्रियाकारणसम्बन्धित्वव्याप्यमित्यत्र सम्बन्धित्वस्य करणतावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षायामनतिप्रसङ्ग इति वाच्यम्; सम्बन्धस्य न करणतावच्छेदकत्वेन निवेशः, आत्माश्रयात्, सर्वस्यापि सम्बन्धस्य क्वचित्क्वचित्करणतावच्छेदकत्वसम्भवेनातिप्रसङ्गतादवस्थ्याच्च । अपि तु विशिष्यैव । तथापि तु यत्क्रियायां करणतावच्छेदकसम्बन्धस्यैव व्यापारताद्यवच्छेदकत्वं तत्र व्यापारादावतिप्रसङ्गोदुर्वार एव ।''स्वव्यापारे हि कर्तृत्वं सर्वत्रैवास्ति कारके''इत्यभियुक्तोक्तेर्व्यापारवत्कारणं कारकमिति प्राचीनसिद्धान्तमनुसृत्याह अव्यापारतयेति । **तादृशसिद्धान्तमनभ्युपगच्छतस्तु मते तत्र तत्रान्यैर्व्यापारतयाभ्युपगतानामेव करणतयाऽऽत्ममनःसंयोगस्यैव सुखादिसाक्षात्कारे करणत्वस्य वक्तव्यत्वेन तत्र सुखादेरपि करणतापंत्तिः, समवायेनैवात्मनि संयोगसुखाद्योर्वृत्तेः। अत्रेष्टापत्तेरनवसर इत्यगादि पुरा । यद्व्यापारवत्प्रकृतक्रियाऽसाधारणकारणसम्बन्धित्वव्याप्यं प्रकृतक्रियाकर्तृत्वमिति विवक्षया प्राचीनमतानुसारेणातिप्रसङ्गं वारयति** व्यापारवतेति । **कर्त्रादिस्तादृशकारणत्वेऽपि करणतावच्छेदकसम्बन्धेन**

भारती

दशा में तादृश सुखादि के प्रागभाव प्रध्वंस से युक्त होकर ही प्रमाता कार्य करता है अतः आत्म धर्म सुखादि में तादृश सुखादि के प्रागभाव एवं प्रध्वंसाभाव में अतिव्याप्ति हो जायेगी । इसी प्रकार तत्तद्भेद प्रमेयत्वादि में भी उक्त लक्षणों की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि जिस प्रमाकारण से युक्त होकर प्रमाता (तत्प्रमाकर्ता) प्रमिति करता है वह प्रमाण उस प्रमा का करण है, तो इस प्रकार नहीं कह सकते, क्योंकि आत्म मनःसंयोग से युक्त होकर ही प्रमाता सुखादि प्रमा को करता है इसलिए सुखादि प्रमा के प्रति मनः आदि करण का व्यापार आत्म मनःसंयोग भी करण हो जायेगा । यदि कहें कि तादृश आत्म मन संयोग तो सुखादि प्रमा के प्रति करण है ही, तो यह कहना सम्भव नहीं है क्योंकि (प्राचीनों के सिद्धान्त में व्यापारवत्कारण ही कारक होता है अतः) आत्म मनःसंयोग व्यापार रहित होने से कारक सामान्य ही नहीं हो सकता है फिर कारक विशेष करण कैसे होगा, अर्थात् नहीं हो सकता, अतः आत्ममनःसंयोगरूप व्यापार में उक्त करणलक्षण की अतिव्याप्ति है । (यहाँ नवीनों के मत के अनुसार सुखादि साक्षात्कार के प्रति सुखादि में ही करणत्वापत्ति समझना चाहिए, क्योंकि नव्य लोग प्राचीनों के उक्त मत को न मान कर आत्ममनःसंयोग को सुखादि प्रमा के प्रति कारण मानते हैं ।) (इसी प्रकार सहकारिमात्र तथा सामग्री में भी उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।)

व्यापारांशमपहाय करणत्वम्, तत्र चास्त्येवेदं लक्षणम्, यस्य करणत्वमस्ति तस्य व्यापारवत्त्वमप्यस्तीति व्यापारवत्करणमुच्यते इति । न; पटमुद्यम्य निपात्य च प्रक्षालयतः स कर्मैव हि करणं स्यात् ।

किञ्च, किं तस्य करणत्वमिति लक्ष्यीभूतस्यावश्यं

शारदा

तादृशसम्बन्धित्वविवक्षायां तत्रानतिप्रसङ्ग इत्यभिमानः । व्यापारान्तरवत्ता = व्यापारवत्ता। तदुक्तमुदयनाचार्यैः कुसुमाञ्जलौ ''नहि व्यापारवन्तं व्यापार आश्रयते आत्माश्रयत्वा''दिति। व्यापारविशिष्टे व्यापारवत्तानुपपत्तावपि व्यापारोपहिते करणतयाभिमते व्यापारवत्ता सम्भवति विशेषणस्येवोपाधेर्विधेयान्वियत्वाभावादित्याशङ्कते अथेति। **सः = पटः । करणतावच्छेदक-सम्बन्धेन तादृशसम्बन्धित्वविवक्षायां तूक्तरीत्या सुखादावतिव्याप्तिः । सर्वत्र च कर्त्रादिः करणतानवच्छेदकसम्बन्धेनैव कारणत्वमित्यस्यासम्भवदुक्तिकत्वेन तत्राप्यतिव्याप्तिर्द्रष्टव्या। व्यापारे कर्त्रवृत्तित्वकर्मावृत्तित्वयोर्निवेशादिनातिव्याप्तिवारणे तु प्राङ्निरस्तेष्वेव लक्षणेषु पर्यवसानम् ।**

राजहंसः

व्यापारान्तरवत्तेति । व्यापारविशिष्टे व्यापारान्तरमिव घटकीभूतोऽपि व्यापारो नास्तीत्याशयेनोभयसाधारण्येन व्याचष्टे **व्यापारवत्तेति ।**

भारती

यदि कहें कि जिस व्यापार विशिष्ट प्रकृतक्रिया (सुखादि प्रमा) के असाधारण कारण से युक्त होकर प्रमाता प्रकृतक्रिया (सुखादिप्रमा) को करता है वह प्रकृतक्रिया का करण है; तो यह लक्षण भी निर्दुष्ट नहीं है, क्योंकि इस प्रकार मानने पर व्यापारवान् चक्षुरादि करण भी करण न होंगे, अर्थात् तादृश चक्षुरादि में उक्त करण अव्याप्त हो जायेगा, क्योंकि व्यापार विशिष्ट करण में अंशतः आत्माश्रय होने से व्यापारवत्ता (व्यापार) नहीं रह सकती है ।

प्रश्न – व्यापार विशिष्ट में व्यापारवत्ता के अनुपपन्न होने पर भी व्यापार से उपहित करण में व्यापार रह सकता है, क्योंकि विशेषण के समान उपाधि कार्यान्वयी नहीं होती । अतः व्यापारांश को पृथक् करके ही व्यापारवान् करण होगा, और उस करण में उक्त करण लक्षण के रहने पर आत्माश्रय दोष नहीं है एवं अव्याप्ति भी नहीं है, जो करण है वह व्यापारवान् भी है अतः व्यापारवान् करण कहा जाता है ।

समाधान – इस प्रकार स्वीकारने पर – धोबी के द्वारा उठा पटक कर प्रक्षालन किये जाने वाला पट (वस्त्र) रूप कर्म भी करण हो जायेगा । क्योंकि उद्यमन निपतन रूप व्यापार से युक्त पटवान् होकर ही रजक (धोबी) प्रक्षालन क्रिया करता है । अतः उक्त करण लक्षण की उक्त पट में अतिव्याप्ति है ।

किञ्च – उक्त करण लक्षण के लक्ष्य करणतया अभिमत पदार्थ में करणत्व अर्थात् लक्ष्यतावच्छेदक क्या है यह भी अवश्य ही ज्ञातव्य है अन्यथा उक्त लक्षण हेतुक इतरभेदानुमिति

वक्तव्यत्वाद्यद्युक्तलक्षणवत्त्वमेव तत् स्यात्तदात्माश्रयापातः स्यात् । स्वरूपमिति चेत्; स्वरूपस्य प्रतिकरणं भिन्नतयैक-परित्यागेनापरत्र लक्षणं गतमित्यतिव्यापकं स्यात् , नहि चक्षुषः स्वरूपं श्रोत्रस्येति । किञ्चैवमिन्द्रियादेः प्रमाणत्वं न स्यात् ,

शारदा

तस्य = करणत्वेनाभिमतस्य । लक्ष्यीभूतस्येति । **लक्ष्यतावच्छेदकरूपेणेति शेषः** । अवश्यमिति । **अन्यथेतरभेदानुमाने आश्रयासिद्धेरिति भावः** । तदेति । **विधेयांशेऽधिकावगाहितयोपनयवाक्याच्छाब्दबोधसम्भवेऽपीति शेषः** । आत्माश्रयेति । **तद्विशिष्टे तस्य वृत्तौ तत्रापि तद्वृत्तेः प्रसक्त्येतरभेदानुमाने स्वरूपासिद्धेरापत्तिरिति तदुपहिते तद्वृत्तिर्वक्तव्या, तथाचोपाधित्वविशेषणत्वयोर्विरुद्धत्वेन तस्य विशेषणत्वासम्भवे क्वापि स्वाश्रयोद्देश्यक-विधेयान्वयित्वानुपपत्तिः। एवं लक्ष्यतावच्छेदकज्ञानस्य पूर्वमावश्यकत्वेन लक्षणाभिधानवैफल्यम्। किं करणमिति पृष्ठे करणं करणमित्यस्योन्मत्तप्रलापत्वात् । उक्तलक्षणान्यजानतोऽपि किं करणमिति प्रश्नदर्शनेन तेषां लक्ष्यतावच्छेदकताया असम्भवदुक्तिकत्वाच्च। यथा च करणपदार्थत्वेनापि न लक्ष्यतोपपादनसम्भवस्तथोक्तमधस्तात् । अभ्युपेत्यवादेन तु किञ्चैवमित्यादिना दूषणान्तरं वक्ष्यति** । अतिव्यापकमिति । **उक्तलक्षणस्यानुगतत्वाभ्युपगमेनेदम्, वस्तुतस्तु तस्याननुगतयत्तादिघटितत्वेनाननुगम एव दूषणं सारम्** । न स्यादिति । **यद्यपि**

भारती

में आश्रयासिद्धि हो जायेगी । यदि उक्त लक्षणवत्त्व ही करणत्व (लक्ष्यतावच्छेदक) मानें तो (विधेयांश में अधिकावगाहि होने से उपनय वाक्य से शाब्द बोध हो भी जाय तो भी) आत्माश्रय दोष हो जायेगा । (क्योंकि उक्त लक्षण विशिष्ट में उक्त लक्षण के रहने पर उक्त लक्षण में भी उक्त लक्षण के रहने से आत्माश्रय होगा, आत्माश्रय के वारणार्थ यदि उक्त लक्षण विशिष्ट में उक्त लक्षण न मानें तो स्वरूपासिद्धि हो जायेगी) एवं लक्ष्यतावच्छेदक के पूर्व ज्ञात हो जाने से लक्षण निर्माण का वैयर्थ्य दोष भी है ।

यदि कहें कि उक्त लक्षण विशिष्ट करणतया अभिमत पदार्थ करण नहीं है अपितु चक्षुरादि वस्तु का स्वरूप ही करण पदार्थ है अर्थात् उक्त लक्षण से उपहित वस्तु को करण मानेंगे, तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि तादृशस्वरूप के प्रतिव्यक्ति भिन्न-भिन्न होने से एक स्वरूप (चक्षु के स्वरूप) का परित्याग कर अन्य के स्वरूप (श्रोत्र के स्वरूप) में लक्षण के जाने से अतिव्याप्ति हो जायेगी । क्योंकि चक्षुः का स्वरूप श्रोत्र का स्वरूप नहीं है । (अर्थात् दोनों के स्वरूप भिन्न होने से यदि चक्षुः के स्वरूप को लक्ष्य मानेंगे तो श्रोत्र के स्वरूप के अलक्ष्य होने से उसमें लक्षण जाने पर अतिव्याप्ति हो जायेगी, इसी प्रकार श्रोत्रस्वरूप को लक्ष्य मानने पर चक्षुः स्वरूप में अतिव्याप्ति होगी ।) वस्तुतस्तु – उक्त लक्षण के यत् तत् से घटित होने से अननुगम ही दोष विद्यमान है । अनुगत व्यवहार न होगा ।

किञ्च – जिससे युक्त होकर ही प्रमाता प्रमिति करता हो वह प्रमाण है इस प्रकार लक्षण मानने पर चक्षुरादि इन्द्रियादि भी प्रमाण नहीं होगी, अर्थात् प्रमाण लक्षण चक्षुरादि इन्द्रियों में

अतद्वतोऽप्यनुमात्रादेः प्रमातृत्वात् । नासौ प्रत्यक्षमिति चेन्न; नेदमपि हि प्रत्यक्षमात्रस्य लक्षणं भवता क्रियते । ननु यद्यपीन्द्रियादेर्विशेषतो व्यावृत्तिः, तथापि तज्जातीयकरणमात्रतया तज्जातीयमात्रस्याव्यावृत्तिरेव, न ह्यनुमित्यादावप्यकरणजातीयवान् प्रमिमीत इति। न; करणतया साधारणभावस्याद्यापि निर्णेतुमशक्यत्वात्।

शारदा

यथाव्याख्याते नायं दोषः, तथाप्यनुगतव्यवहारानुरोधेनानुगतलक्षणे यतनीयम् । नच यत्ताद्यघटितं क्रियाकर्तृत्वव्यापकसम्बन्धिताकव्यापारवदसाधारणकारणत्वमेव लक्षणमस्तु, क्रियात्वादिकञ्च कथञ्चिदनुगतं मन्तव्यमिति वाच्यम्; कस्यापि कारणस्य सम्बन्धितायाः क्रियासामान्यकर्तृत्वव्यापकत्वविरहेणासम्भवप्रसङ्गात्, तदिदमाह अतद्वत इति । **इन्द्रियाद्यन्यतमासाधारणकारणकत्वाभाववत्क्रियाकर्तुरित्यर्थः । तेन वस्तुत इन्द्रियादेः सत्त्वेऽपि नासङ्गतिः। असौ = तादृशाभाववत्क्रिया । अनुगमपक्षं विस्मृत्येयमाशङ्का । अनुगमपक्षं स्मारयन्नाह** नेदमिति। **तादृशसम्बन्धिताकव्यापारवदसाधारणकारणजातीयत्वं विवक्षणीयमिति नासम्भव इत्याशङ्कते** नन्विति। **अप्रसङ्गातिप्रसङ्गयोर्व्युदासाय करणत्वेनैव साजात्यस्य विवक्षणीयत्वादात्माश्रय इत्याह** करणतयेति । **साधारणभावस्य = साजात्यस्य । इदमुपलक्षणम् , उक्तलक्षणस्यानुगतत्वमभिमन्यमानेन सम्बन्धितायास्तत्तत्सम्बन्धैरनिवेशनीयत्वेन कारकान्तरेष्वतिव्याप्तेरिति, एवञ्च कारकत्वव्याप्यधर्मवत्त्वेन साजात्यविवक्षयापि न निस्तारः ।**

भारती

अव्याप्त हो जायेगा, क्योंकि इन्द्रियादि अन्यतम रूप असाधारण कारण से रहित अनुमाता भी अनुमान रूप प्रमा को करता है । यदि कहें कि इन्द्रियादि के अभाव में उत्पन्न वह प्रमा प्रत्यक्ष प्रमा नहीं है अपितु अनुमिति रूप है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि यह करण लक्षण भी प्रत्यक्ष मात्र को करण मानकर नहीं किया गया है । अपितु प्रमा मात्र के करण का लक्षण किया गया है अत: चक्षुरादि के विना भी प्रमाता अनुमिति करता है इसलिए चक्षुरादि में उक्त करण लक्षण की अव्याप्ति है ।

प्रश्न – जिस व्यापारवद् असाधारण कारण जातीयवान होकर ही प्रमाता प्रमिति करता है । यह प्रमाण है ऐसी विवक्षा करेंगे । यद्यपि अनुमिति रूप प्रमिति विशेष लेने से प्रत्यक्ष प्रमा की व्यावृत्ति होती है । किन्तु अति व्याप्त्यादि दोष वारणार्थ करणत्वेन साजात्य की विवक्षा कर तादृशकरण सजातीयत्वघटित उक्त लक्षण करने पर प्रत्यक्ष प्रमा के भी तादृशकरणत्वजातीय होने से तादृशकरणत्व जातीयमात्र की अव्यावृत्ति (व्यावृत्ति न) होने से प्रत्यक्ष प्रमा की भी व्यावृत्ति न होगी । अत: अव्याप्ति न होगी । एवं अनुमिति आदि स्थल में भी अकरण जातीय से युक्त होकर प्रमाता अनुमिति नहीं करता, अपितु तादृश करणत्वजातीय से युक्त होकर ही प्रमाता अनुमिति प्रमा करता है अत: अनुमिति में अव्याप्ति नहीं है ।

समाधान – उक्त अतिव्याप्ति वारणार्थ करणत्वेन ही साजात्य की विवक्षा करने पर

अथ यां प्रमां यद्वानेव जनयति तस्यां तत्करणमिति मैवम् , कौपीनाच्छादनादेरपि करणत्वप्रसङ्गात् । यज्जातिकामितिचेन्मैवम्, परोक्षजातीयां प्रमां लिङ्गवानेव शब्दवानेव वा जनयतीतिनिय-

शारदा

उक्तासम्भवादिव्युदासायागत्या यत्तद्घटितमेव लक्षणमादरणीयम्, यत्तादेश्चानुगतत्वमेव वाच्यम्, कथमन्यथा यत्तद्भ्यां गृह्यमाणाया व्याप्तेः सामान्यमुखत्वसङ्गतिरित्याशयेनाशङ्कते अथेति । **वस्तुतस्तु यत्तादेरनुगतत्वे पूर्वयत्पदेन यादृशव्यक्तेर्ग्रहणं तादृश्या एवोपरितनेन तत्पदेनेत्यत्र नियामकाभावेनातिप्रसङ्गभङ्गाय शब्दस्वाभाव्यरक्षणाय चाननुगतत्वमेव तस्य, सामान्यमुखत्वे तु यत्तद्भ्यां गृह्यमाणाया व्याप्तेर्न मानमिति द्रष्टव्यम् । यत्प्रमाकर्तृत्वं यत्सम्बन्धित्वव्याप्यमित्यत्र द्वितीययत्पदार्थे प्रकृतक्रियाकारणत्वादिविवक्षणे पूर्वोक्तदिशैव दोषः, सम्बन्धित्वस्य सम्बन्धविशेषैर्विवक्षणे चाननुगमः, तथाऽविवक्षायां त्वाह** कौपीनेत्यादि। **गुह्याच्छादनादेरित्यर्थः**। करणत्वेति । **प्रमाविशेषे इत्यादिः । यज्जातीयप्रमासामान्यकर्तृत्वं यज्जात्यवच्छिन्नसम्बन्धित्वव्याप्यमित्यभिधाने प्रमाविशेषकर्तृताव्यापकसम्बन्धिताके आच्छादनादौ नातिप्रसङ्ग इत्याशङ्कते** यज्जातिकामिति । **प्रमां यद्वानेवेत्यादिकमनुषज्यते । लिङ्गेत्यादि ज्ञायमानस्य करणत्वमते । लिङ्गवत्ता च स्वविशेष्यकव्याप्यत्वप्रकारकज्ञान-समवायितया, नतु शब्दवत्तेव स्वज्ञानसमवायितया । तेन शब्दादेरपि क्वचिल्लिङ्गत्वेन लिङ्गजातीयत्वेन च न ग्रन्थासङ्गतिः। यद्वा लिङ्गपदं लिङ्गत्वपरम्, लिङ्गत्वं च व्याप्यत्वमिति तत्प्रकारकज्ञानवानेवेत्यर्थः । एवं शब्दपदमपि शब्दज्ञानपरम् । उपमित्यादिकरणस्याप्यु-**

भारती

तद्घटित लक्षण के लक्ष्य (करण) वृत्ति होने से आत्माश्रय दोष हो जायेगा । किञ्च करणत्व का अद्यावधि निर्णय नहीं कर सकते । ऐसी स्थिति में उक्त करण लक्षण में तादृश सजातीयत्व का निवेश भी नहीं कर सकते ।

प्रश्न- अतिव्याप्त्यादि के निरासार्थ यत्तद्घटित ही लक्षण करेंगे एवं यत्त्वतत्त्व भी अनुगत ही होते हैं अन्यथा यद् तत् से गृह्यमाण व्याप्ति का अनुगम कैसे होगा । तथाच जिस से युक्त होकर प्रमाता जिस प्रमा को उत्पन्न करता है वह उस प्रमा में करण है ऐसा लक्षण करेंगे ।

समाधान- इस प्रकार लक्षण करने पर गुह्य का आच्छादनवस्त्रादि भी करण हो जायेगा, अर्थात् गुह्य-आच्छादन से युक्त होकर ही प्रमाता प्रत्यक्षादि प्रमिति करता है अतः उक्त करण लक्षण की गुह्य-आच्छादन में अतिव्याप्ति हो जायेगी । एवं यत्त्व-तत्त्व के अनुगतत्त्व में प्रमाण न होने से अननुगम दोष भी रहेगा ।

यदि कहें कि- यज्जातीय प्रमा सामान्य का कर्ता नियम से यज्जातीय से युक्त होकर यज्जातीय प्रमा को करता है वह उसके प्रति करण है ऐसी विवक्षा करेंगे । प्रमा विशेष का कर्ता ही कौपीन-आच्छादनादियुक्त होकर कदाचित् प्रमा को करता है अतः उस में उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है । तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि परोक्षत्व जातीय अनुमिति आदि

माभावात्तस्याकरणत्वप्रसङ्गात् । साक्षात्कारित्वानुमितित्वादयो जातिभेदा विवक्षिता इति चेन्न; प्रत्येकमुपादाने भागाव्याप्तेः, सम्भूयोपादाने सर्वाव्याप्तेः, अनियमेनोपादाने च लक्षणा-

शारदा

पलक्षणमिदम् । अपरोक्षप्रमां प्रति त्विन्द्रियजातीयस्यैव करणत्वात्तत्राव्याप्तिर्नोद्भाविता । ननु परोक्षत्वेन साजात्यमादाय न दोषः, साजात्यस्याऽऽद्यस्य साक्षात्कारित्वानुमितित्वादिना विवक्षितत्वादित्याशङ्कते साक्षात्कारित्वेति । **अत्र साक्षात्कारिप्रमात्वावच्छिन्नकर्तृत्वं यज्जातीयत्वावच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यं तत्प्रमाणमित्येवं लक्षणे प्रत्येकं साक्षात्कारित्वादिनिवेशो लक्ष्ये च प्रमासामान्यस्य निवेशो यदि विवक्षितस्तदाह** प्रत्येकमिति। **उक्तकर्तृत्वे व्याप्तिज्ञानत्वाद्यवच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यत्वस्य, अनुमितिप्रमात्वावच्छिन्नकर्तृत्वे चेन्द्रियत्वाद्यवच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यत्वस्याभावेनैकैकप्रमाणसङ्ग्रहेऽपि न प्रमाणचतुष्टय-संग्रह इति भावः । साक्षात्कारिप्रमात्वानुमितिप्रमात्वादिचतुष्टयावच्छिन्नकर्तृत्वं यज्जाती-यत्वावच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यं तत्प्रमाणमिति विवक्षायामसम्भवः, तादृश-कर्तृत्वस्येन्द्रियत्वाद्यवच्छिन्नसम्बन्धित्वव्याप्यत्वविरहादित्याह** सम्भूयेति । **साक्षात्का-रिप्रमात्वावच्छिन्नकर्तृत्वं यज्जातीयत्वावच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यं तत्साक्षात्कारिप्रमाकरण-मित्येवं लक्ष्यलक्षणयोर्विशिष्य निवेशे नोक्तद्दोष इत्यत आह** अनियमेनेति । **विशिष्येत्यर्थः । लक्षणाननुगमो लक्षणस्य प्रमाणचतुष्टयसाधारण्याभावः । एतेन**

भारती

प्रमा को लिङ्गवान या लिङ्गज्ञानवान् होकर ही अथवा शब्दवान् या शब्दज्ञानवान् होकर ही प्रमाता उत्पन्न करता है यह नियम नहीं है अतः उस (लिङ्ग या लिङ्ग ज्ञान में अथवा शब्द में या शब्द ज्ञान में) में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । (यहाँ मूल में ''लिङ्ग'' शब्द एवं ''शब्द'' शब्द ज्ञानमान करणत्वमत से दिया गया है । अथवा नव्य मत के अनुसार लिङ्ग पद लिङ्ग ज्ञानपरक तथा ''शब्द'' पद शब्द ज्ञानपरक समझना चाहिए ।)

यदि कहें कि यहाँ परोक्षत्वेन साजात्य विवक्षित नहीं है अपितु साक्षात्कारित्व-अनुमितित्व आदि जातिविशेष से साजात्य विवक्षित है । तथाच साक्षात्कारित्वादि जातीय प्रमा का कर्ता नियम से यज्जातीय वस्तु से युक्त होकर ही प्रमा करता है वह उसके प्रति करण है'' इस प्रकार लक्षण करेंगे, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि उक्त लक्षण में प्रत्येक साक्षात्कारित्व-अनुमितित्व आदि का प्रवेश करें एवं लक्ष्य (करण) में प्रमा सामान्य का निवेश करें तो एक भाग में अव्याप्ति हो जायेगी । (अर्थात् यदि उक्त लक्षण में साक्षात्कारित्व का प्रवेश करेंगे तो अनुमिति के करण लिङ्ग परामर्श में, तथा अनुमितित्व का निवेश करेंगे तो साक्षात्कारि प्रमा के करण चक्षुरादि में इस प्रकार प्रत्येक में अव्याप्ति हो जायेगी ।) इस प्रकार एक एक प्रमाण का संग्रह होने पर भी प्रमाण चतुष्टय का संग्रह उक्त लक्षण से नहीं हो पायेगा । यदि प्रत्येक का प्रवेश न कर – सामस्त्येन सभी प्रमाओं का लक्षण में प्रवेश करें – अर्थात् साक्षात्कारि प्रमात्व अनुमिति प्रमात्च आदिचतुष्टयावच्छिन्न प्रमाओं का कर्ता नियम से यज्जातीयत्वावच्छिन्न से युक्त होकर ही प्रमा करता हो वह करण है इस प्रकार कहें तो सर्वत्र ही असम्भव हो जायेगा।

ननुगमापातादिति । यदभावात्कर्तृकर्मणी क्रियां न जनयतस्तत्करणम्, तेन यदभावात्प्रमातृप्रमेये प्रमां न जनयतस्तत्प्रमाणमिति लक्षणमित्यपि न युक्तम् , किं प्रमातृप्रमेये सती यत्र न जनयतः, उतासती अपि। आद्येऽतीतानागतानुमानादिकरणाव्याप्तिः। नापि द्वितीयः,

शारदा

साक्षात्कार्याद्यन्यतमप्रमात्वावच्छिन्नकर्तृत्वं यज्जातीयत्वावच्छिन्नसम्बन्धिताव्याप्यं तत्प्रमाणमित्यपि निरस्तम्; कर्त्रादावतिप्रसक्तेः । लक्ष्ये प्रमासामान्यकरणत्व-निवेशस्यासम्भवापादकत्वेन यत्किञ्चित्प्रमाकरणत्वनिवेशे यत्किञ्चित्वस्यानुगत-स्याभावेनाननुगमतादवस्थ्यात् । अन्यतमत्वस्याखण्डस्यान्योन्याश्रयपराहतत्वेन सखण्डस्य च भेदानुयोगिप्रतियोगिविधया सकलप्रपञ्चघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वात्। प्रमात्वस्य च विषयभेदभिन्नमूर्तिकत्वेन नानुगमवार्तापि। ज्ञानकरणत्वेन लक्ष्यत्वे साक्षात्कारित्वा-द्यन्यतमावच्छिन्नकर्तृत्वविवक्षायामपि व्याप्त्यादेः साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकतया तज्ज्ञानत्वावच्छिन्नसम्बन्धित्वव्याप्यत्वस्य तादृशकर्तृत्वेऽभावादिति। यदभावादिति । **यद्व्यापारवदसाधारणकारणासमवधानप्रयुक्तस्तत्प्रमाकर्तृकर्मनिष्ठस्तत्प्रमोपधायकत्वा-भावस्तस्य तत्प्रमायां करणत्वमित्यर्थः । व्यापारेऽतिव्याप्तिवारणाय व्यापारवदिति । असाधारणकारणत्वं तु कार्यत्वानवच्छिन्नकार्यताकत्वमदृष्टादेर्व्युदासाय विवक्षणीयम् । प्रमातृप्रमेययोः समवधानलाभार्थं तत्प्रमाकर्तृकर्मनिष्ठ इति विशेषणम् , तेन तयोरनतिव्याप्तिरिति भावः ।** किमित्यादि । **यद्व्यापारवदसाधारणकारणासमवधानप्रयुक्ता**

भारती

क्योंकि समस्त प्रमाओं को किसी भी करण से युक्त होकर प्रमाता उत्पन्न नहीं करता, अतः "उक्त लक्षण सर्वत्र असम्भव दोषग्रस्त हो जायेगा और यदि – साक्षात्कारिप्रमात्वावच्छिन्न का कर्ता यज्जातीयत्वावच्छिन्न से युक्त होकर साक्षात्कारि प्रमा करता है वह साक्षात्कारि प्रमा का करण है" इस प्रकार लक्ष्य तथा लक्षण में विशेष रूप से ही तत्तत्प्रमा तथा प्रमा करणों का निवेश करें तो भिन्न-भिन्न लक्षण होने से अननुगम दोष हो जायेगा ।

प्रश्न – जिसके अभाव से कर्ता एवं कर्म, क्रिया को उत्पन्न न कर सके अभाव से प्रमाता तथा प्रमेय प्रमा को उत्पन्न न कर सके, वह उसके प्रति प्रमाण है ऐसा लक्षण करेंगे (तथाच जिस व्यापार वद् असाधारण कारण के असमवधान प्रयुक्त तत्प्रमा का कर्ता तत्प्रमा का उपधायक (जनक) न बन सके, वह उस प्रमा में करण है इस प्रकार परिष्कृत लक्षण होगा ।)

समाधान – यह लक्षण भी निर्दुष्ट नहीं है, क्योंकि उक्त लक्षण में "प्रमाता तथा प्रमेय सत् (विद्यमान) होकर प्रमा को (उत्पन्न नहीं करते है" यह अर्थ विवक्षित है या वे दो असत् (अविद्यमान) होकर भी प्रमा को उत्पन्न नहीं करते हैं "यह अर्थ विवक्षित है । (तात्पर्य यह है कि जिस व्यापारवद्-असाधारण कारण के असमवधान प्रयुक्त तत्प्रमाकर्ता कर्म के द्वारा तत्प्रमा की अनुत्पत्ति हो रही है वह (प्रमा की अनुत्पत्ति) तत्प्रमाकर्ता कर्म के समवधान कालिक विवक्षित है या तत्प्रमा के कर्ता-कर्म के असमवधान कालिक विवक्षित है ।) इन में

प्रमातृप्रमेययोरपि प्रसङ्गात्, यथाहि चक्षुराद्यभावात्प्रमा न जायते, तथा प्रमातृप्रमेययोरप्यभावात् , अन्यथा तयोः कारणत्वमेव न स्यात् । एतेन सामान्यतोऽभिधानं प्रत्युक्तम् ; अस्मदा-

शारदा

तत्प्रमाकर्तृकर्मसमवधानकालिकी तत्प्रमानुत्पत्तिस्तस्य तत्प्रमाकरणत्वमिति प्रथमविकल्पार्थः। तत्प्रमाकर्तृकर्मसमवधानकालिकीत्यस्य स्थाने तत्प्रमाकर्तृकर्मासमवधानकालिकीति निवेश्य द्वितीयविकल्पार्थो द्रष्टव्यः। यद्व्यापारवदसाधारणकारणासमवधानप्रयुक्ता यत्प्रमानुत्पत्तिस्तस्य तत्प्रमाकरणत्वमिति तृतीयोऽपि विकल्पो बोद्धव्यः । तत्प्रमानुत्पादप्रयोजकाभावप्रतियोगित्वे सति कार्यतानवच्छिन्नकार्यताकत्वे च सति व्यापारवत्त्वं तत्प्रमाकरणत्वमिति यावत् । आद्ये इति । **नचाद्यकल्पे कर्मपदानुपादाने नायं दोष इति वाच्यम्; तथासति साक्षात्कारकर्मण्यतिव्याप्तेः ।** प्रसङ्गादिति । **एवञ्च कालिकान्तवैयर्थ्यमपीति भावः । तृतीयकल्पं निराचष्टे** एतेनेति । **कर्त्रादावतिव्यापकत्वेनेत्यर्थः । व्यापारे कर्त्राद्यवृत्तित्वविवक्षणे तूक्तं स्मरणीयम् । सामान्यतः = तादृशसमवधान-कालिकत्वतादृशसमवधानाभावकालिकत्वाभ्यां विनिर्मुक्तम् । ननु तत्प्रमा-कर्तृसमवधानकालिकस्तत्प्रमाकर्मभिन्नयद्व्यापारवदसाधारणकारणासमवधानप्रयुक्त-स्तत्प्रमानुत्पादस्तस्य तत्प्रमाकरणत्वमिति विवक्षणे न कर्तृकर्मणोरतिव्याप्त्यादिकमत आह** अस्मदादीति । कर्तृके इति । **ईश्वरस्य कार्यमात्रं प्रति कर्तृत्वादिति भावः । अस्मदादिसमवेते**

भारती

प्रथम कल्प नहीं कह सकते, क्योंकि अतीत-अनागत विषयक अनुमिति स्थल में प्रमेय (कर्म) के अवर्तमान रहते हुए ही अनुमिति रूप प्रमिति के उत्पन्न होने से उस अनुमिति करण लिङ्ग परामर्श में उक्त करण लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी । (यदि कहें कि प्रथम कल्प में प्रमेय (कर्म) का निवेश न करने पर यह अव्याप्ति न होगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रमेय (कर्म) का निवेश न करने पर साक्षात्कार के कर्म (प्रमेय) में ही अतिव्याप्ति हो जायेगी ।)

द्वितीय विकल्प भी युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि इसे (द्वितीय विकल्प) स्वीकार करने पर प्रमाता एवं प्रमेय भी करण हो जायेंगे क्योंकि जैसे चक्षुरादि के अभाव होने पर प्रमा उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार प्रमाता एवं प्रमेय (कर्म) के अभाव के रहने पर भी प्रमा उत्पन्न नहीं होती । अन्यथा अर्थात् प्रमाता एवं प्रमेय के अभाव रहने पर यदि प्रमा की उत्पत्ति हो जाय तो उस प्रमा के प्रति प्रमाता एवं प्रमेय कारण ही नहीं होंगे । तथाच उक्त करण लक्षण प्रमाता एवं प्रमेय में अतिव्याप्त है ।

यदि कहें कि "जो तत्प्रमा के अनुत्पाद के प्रयोजक अभाव का प्रतियोगी एवं कार्यतानवच्छिन्न कार्यता का निरूपक होकर व्यापार वाला हो वह तत्प्रमा का करण होता है" यही लक्षण मानेंगे और यह अर्थ सामान्यतः (अर्थात् पूर्वोक्त तादृश- समवधान कालिकत्व एवं तादृश समवधानकालिकत्वाभाव दोनों से विनिर्मुक्तरूप से) अभिहित (कहा गया) है अतः (तत्प्रमाकर्तृसमवधानकालिक तत्प्रमाकर्म से भिन्न जिस व्यापारवद् असाधारण कारण के

दिकर्तृसापेक्षेश्वरकर्तृके चास्मदादिज्ञानेऽस्मदादिकर्तृकरणत्वापत्तेः। एवञ्च सति प्रकारभेदेनापि प्रमाणप्रमात्रादिव्यवस्थासमर्थना कृता न स्यात् , येनैव रूपेण कर्तृत्वादिना तस्य प्रमायामन्वयस्तेनैव तद्व्यतिरेकस्य प्रमानुत्पत्तौ प्रयोजकत्वादिति ।

शारदा

घटादिज्ञाने । कर्तृकरणत्वापत्तेः = कर्तुः करणत्वापत्तेः । अस्मदादिकं विनाऽस्मदादिसमवेतप्रमाया ईश्वरेणानुत्पादनात् । प्रकारभेदेनापि = उपाधिभेदेनापि । उपधेयसाङ्कर्येऽप्युपाधीनामसाङ्कर्यादिति परसिद्धान्तादिति भावः । साङ्कर्यमभेदः । व्यवस्था = व्यपदेशभेदः। न स्यादिति । **प्रमाणादिव्यपदेशभेदो हि प्रमाणत्वादिभेदेन, सच प्रमाणताद्यवच्छेदकभेदेन वा प्रमाणत्वत्वादिभेदेन वा, नाद्य इत्याह** येनैवेति । **एतेन प्रमाणताप्रमातृतावच्छेदकयोरैक्यप्रतिपादकस्य येनैवेत्यादिग्रन्थस्योक्तव्यवस्थाखण्डनपरत्वासम्भवादसङ्गतिः, तादृशव्यवस्थायाः प्रमाणत्वप्रमातृत्वभेदेनैव प्रयोज्यत्वात्तस्य च स्फुटत्वादिति नाशङ्कनीयम् ।** कर्तृत्वादिनेति। **आत्मत्वादिनेत्यर्थः । कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेनेव प्रमात्वावच्छिन्नं प्रत्यात्मत्वेन तार्किकमते समवायिहेतुतेत्याशयः, घटं प्रति कपालत्वेनेव तु तत्प्रमां प्रति चैत्रत्वादिना सेत्यभिप्रायेणादिपदमुपात्तम् । तस्य = अस्मदादेः । प्रमायामन्वयः = प्रमातृता । तत्प्रमाकर्त्रीश्वरसमवधानकालिके तत्प्रमानुत्पादे चैत्रत्वादिनैव चैत्राद्यभावस्य प्रयोजकतया तेनैव रूपेण प्रमाकरणतापर्यवसानात्, प्रमातृत्वस्यापि च तद्रूपावच्छिन्नत्वात्,**

भारती

असमवधान प्रयुक्त जो तत्प्रमा का अनुत्पाद वही तत्प्रमा का कारण है ऐसी विवक्षा करने पर) कर्ता एवं कर्म में अतिव्याप्ति न होगी । तो यह कथन भी निरस्त ही समझना चाहिए, क्योंकि अस्मादि (हमरूप) कर्ता में सापेक्ष ईश्वर कर्तृक अस्मदादिसमवेत घटादि ज्ञान में अस्मदादि रूप (हम स्वयं) कर्ता ही करण हो जायेंगे (तात्पर्य यह है कि ईश्वर के कार्यमान के प्रति कर्ता होने से अस्मादि समवेत घटज्ञान के प्रति भी ईश्वर कर्ता है एवं वह ईश्वर अस्मदादि समवेत घटप्रमा को हमारे विना उत्पन्न नहीं कर सकता अतः उक्त करणलक्षण अस्मदादिरूप कर्ता में अतिव्याप्त है ।)

एवञ्च – उपधेय के साङ्कर्य (अभेद) होने पर उपाधि के असाङ्कर्य (भेद) से वस्तु का भेद होता है इस तार्किक सिद्धान्त के अनुसार-प्रकारभेद अर्थात् उपाधि के भेद से भी प्रमाणत्व प्रमातृत्व की व्यवस्था का समर्थन नहीं कर सकते । क्योंकि जिस कर्तृत्वादिरूप से अस्मदादि पदार्थ (अहंपदार्थ) प्रमाता होता है उसी कर्तृत्वादिरूप से अस्मदादि पदार्थ रूप प्रमाता का अभाव प्रमा की अनुत्पत्ति में प्रयोजक (कारण) भी है ।

(तात्पर्य यह है कि उपाधि के भेद से एक ही पदार्थ में कदाचित् प्रमातृत्व व्यवहार तथा कदाचित् प्रमाणत्वव्यवहार हो जायेगा'' किन्तु यह पूर्वपक्षी का कहना ठीक नहीं है क्योंकि प्रमाणादिव्यपदेश (कथन) का भेद प्रमाणत्वादि के भेद से ही सम्भव है और वह (प्रमाणत्वादि का भेद) प्रमाणताद्यवच्छेदक के भेद से होगा या प्रमाणत्वत्वादि के भेद से? इन में प्रथम

चरमव्यापारवत्त्वं करणत्वमित्यपि न ; व्यापाराभावाल्लिङ्ग-परामर्शस्याकरणत्वापातात् । नच सविकल्पकव्यापारवतो निर्विकल्पकस्य तत्र प्रामाण्यम् ; केवलविकल्पनीयलिङ्गविषये तदनुपपत्तेः, संस्कारादिपर्यन्तानुसरणे चानुमितेस्तज्जन्यत्वे

शारदा

नहि तत्प्रमानुत्पादप्रयोजकाभावप्रतियोगित्वघटितोक्तरूपेण तत्प्रमाकरणता शक्यवचना, तादृशरूपस्यैव करणतात्मकतया स्वस्य स्वावच्छिन्नत्वप्रसङ्गात् । द्वितीये तु प्रसक्तिरनवस्थायाः, स्वरूपभेदस्यापि वैधर्म्याविनाभूतत्वादिति भावः । ननु तत्प्रमाकर्तृसमवधानेत्यत्र कर्तृसामान्यस्य विवक्षितत्वादस्मदादेरपि तदन्तर्भावात्तत्समवधान-कालिकेऽनुत्पादेऽस्मदाद्यसमवधानस्य प्रयोजकतानुपपत्तेर्नोक्तातिव्याप्तिरिति चेन्न; तथापि तत्प्रमीययत्किञ्चित्कर्मणो भेदस्य निवेशे नानाविषयकप्रमितिकर्मणां करणत्वापत्तिः, तत्प्रमीयकर्मसामान्यभेदनिवेशे तु स्मृत्यन्यत्वखण्डनोक्तदिशोभयाभावादिक-मादायातिप्रसक्तिस्तत्तद्वारकविशेषणोपादानेऽनवस्थानादिति । एवं कर्मण्यतिप्रसक्तिं सूचयितुमेव प्रमाणप्रमात्रादीत्यत्रादिपदमुपात्तमिति ।

लिङ्गपरामर्शस्येति । **व्याप्तिज्ञानादेः करणता तु निरस्तेति भावः ।** सविकल्पकव्यापारवत इति । **न कर्मधारयान्मत्वर्थीय इत्यस्यौत्सर्गिकत्वमिति भावः । तत्र = लिङ्गपरामर्शस्य करणत्वमते । प्रामाण्यम् = अनुमितिकरणत्वम् ।** केवलेत्यादि । **अभावत्वादिना रूपेण सविकल्पकैकवेद्याभावादिविषयकपरामर्शे इत्यर्थः। निरुक्ततत्त्वमत्रैव प्रस्तावे एतत् । तदनुपपत्तेः = निर्विकल्पकत्वानुपपत्तेः, तथा च व्यापकाभावादिना व्याप्याभावाद्यनुमानं न स्यादित्यर्थः। उपलक्षणमिदम्, स्मृत्यात्मकपरामर्शस्य निर्विकल्पकाजन्यत्वेन तेनानुमित्यनापत्तेः। संस्कारादिपर्यन्तानुसरणे = संस्कारस्य तर्कस्य वा परामर्शव्यापारत्वोपगमे।**

भारती

विकल्प ठीक नहीं हैं क्योंकि प्रमाणता प्रमातृतावच्छेदक एक ही प्रमां प्रति कर्तृत्व अर्थात् आत्मत्व है उस का भेद नहीं है क्योंकि कार्यत्वावच्छिन्न के प्रति द्रव्यत्वेन के समान प्रमात्वावच्छिन्न के प्रति आत्मत्वेन ही समवायी हेतुता तार्किक ने मानी है । इसी प्रकार दूसरा विकल्प भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रमाणत्व वादि की कल्पना करने पर अनवस्था दोष प्रसक्त (प्राप्त) हो जायेगा । कारण कि-स्वरूप भेद भी वैधर्म्य के अविनाभूत होने से वैधर्म्य के विना नहीं रहेगा ।)

६. चरमव्यापारवान् ही करण है'' यह लक्षण भी ठीक नहीं है । क्योंकि व्यापार न होने से लिङ्ग परामर्श अनुमिति के प्रति करण नहीं होगा । यदि कहें कि – अनुमिति के प्रति लिङ्गपरामर्श के करणत्व मत में सविकल्पक लिङ्गपरामर्श को व्यापार मानेंगे, तथा च सविकल्पक लिङ्गपरामर्श रूप व्यापारवान् निर्विकल्पक लिङ्ग परामर्श ही अनुमिति के प्रति करण है । अतः वही प्रमाण है । तो यह कहना युक्तिविरुद्ध है । क्योंकि अभावविषयक निर्विकल्पक ज्ञान होता ही नहीं है अतः केवल सविकल्पक ज्ञान के विषय अभावादिविषयकपरामर्श व्यापार के न होने से अनुमिति के प्रति करण नहीं होगा। (तथाच व्यापकाभाव आदि के द्वारा

प्रमाणाभावात्, कार्याहेतोश्च कारकाव्यापारत्वात् । अपि चाज्ञातकरणत्वापातात् । नच लिङ्गमेव परामर्शव्यापारवत्तया

शारदा

संस्कारः परामर्शजन्योऽपि नानुमितिजनकः, अनुमित्युत्पत्तिक्षणे एवोत्पन्नत्वादिति न स व्यापारः, तर्कस्तु भवत्वनुमितेर्जनको मा वा, परामर्शेण त्वजन्य एवेति न सोऽपि व्यापार इति भावः। कायहितोश्चेति कारकाजन्यस्याप्युपलक्षणम्, तज्जन्यस्य तज्जन्यजनकस्यैव तद्व्यापारत्वादिति। अपिचेत्यादि । **प्रत्यक्षे इन्द्रियस्याज्ञातस्यैव करणत्वेनाज्ञातकरणकज्ञानत्वस्य प्रत्यक्षत्वनियतत्वे-नानुमितेरपि परामर्शकरणकत्वे तथात्वेन प्रत्यक्षत्वापत्तिरित्याशयः। इदमापाततः– ज्ञायमान-लिङ्गादेरनुमित्यादिकरणतोपगन्तृमतेऽज्ञातकरणकज्ञानत्वस्य प्रत्यक्षत्वनियतत्वेऽपि परामर्शादिस्तथात्वोपगन्त्रा तस्य प्रत्यक्षत्वनियतत्वस्यानभ्युपगमनीयत्वात्, अप्रयोजकत्वाच्च। ज्ञानाकरणकज्ञानत्वं च तन्मते प्रत्यक्षत्वनियतमपि नानुमित्यादावित्यनतिप्रसङ्गः, तस्मात्पूर्वोक्तमेव दूषणं सारम् ।** लिङ्गमेवेति । **विशिष्टे कारणताग्राहकमानेन विशेषणेऽपि कारणताग्रहाल्लिङ्ग-परामर्शस्य कारणत्वे लिङ्गस्य कारणताया अवश्यम्भावेन परामर्शव्यापारकत्वेन तस्य**

राजहंसः

अनुमित्युत्पत्तिक्षण एवोत्पन्नत्वादिति । अत्र किञ्चिदनुपदमुदितम् ।

भारती

व्याप्याभाव आदि का अनुमान नहीं होगा ।) इसी प्रकार स्मृत्यात्मक परामर्श के निर्विकल्पक से अजन्य होने से उस (स्मृत्यात्मक परामर्श) से अनुमिति नहीं होगी ।

यदि कहें केवल सविकल्पकज्ञान विषयक अभावादि लिङ्ग स्थल में तद्विषयसंस्कार या तर्क को व्यापार मानेंगे । तथाच संस्कार या तर्क रूप व्यापार से युक्त होने से सविकल्पकै-कवेद्यअभावादि विषयक परामर्श भी करण हो जायेगा, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि अनुमिति के संस्कारादिजन्यता में कोई प्रमाण नहीं है । (भाव यह है कि- संस्कार परामर्श से जन्य होने पर भी अनुमिति का जनक नहीं हो सकता, कारण कि अनुमिति के उत्पत्तिक्षण में ही संस्कार भी उत्पन्न होता है अत: वह (संस्कार) व्यापार नहीं हो सकता । एवं तर्क अनुमिति का जनक हो या न हो, किन्तु परामर्श से जन्य तो नहीं ही है और अत: वह (तर्क) भी व्यापार नहीं हो सकता, और कार्य अर्थात् क्रिया का अजनक कारक का व्यापार हो नहीं सकता, क्योंकि तज्जन्य (करण जन्य) होकर तज्जन्य का जनक (करण जन्य का जनक) ही तद् व्यापार होता है ।

अपिच संस्कारादि के अतीन्द्रिय होने से संस्कारादि रूप व्यापार विशिष्ट परामर्श भी अतीन्द्रिय ही होगा, ऐसी स्थिति में अनुमिति अज्ञातकरणत्वापत्ति भी होगी । तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष में इन्द्रिय अज्ञात ही करण होती है इसलिए अज्ञातकरणकज्ञानत्व प्रत्यक्ष से नियत (व्याप्य) है । अनुमिति भी तादृश परामर्शकरणक होने पर अज्ञातकरणकज्ञानात्मक ही होगी, अत: अनुमिति में प्रत्यक्षत्वापत्ति हो जायेगी । यहाँ अनुमितिः प्रत्यक्षा अज्ञातकरणकज्ञानत्वाद् घटादिविषयप्रत्यक्षज्ञानवत्'' इस प्रकार आपादन प्राप्त होगा । वस्तुतस्तु प्राचीन मत में उक्त व्याप्यत्व के अनङ्गीकृत एवं अप्रयोजक होने से पूर्वोक्त दूषण ही वास्तविक है ।

करणमिति युक्तम् ; अनुमितानुमानादौ परामर्शस्यालिङ्गजत्वेन तद्व्यापारवत्त्वानुपपत्तेः। आप्तोक्त्यादिभि'स्तत्रासीद्धूम' इति प्रतीत्या 'तदा तत्र वह्निरप्यासी'दिति यदनुमानं तत्रासत्त्वाद्धूमस्य परामर्शव्यापारवत्तया करणताया दूरनिरस्तत्वात् । किञ्च, यत्किञ्चिदपेक्षया चरमव्यापारवत्त्वस्य सर्वकारकसाधारण्यात् ,

शारदा

करणत्वसिद्धिः परामृश्यमानत्वेन तस्यानुमितिहेतुत्वेऽपि परामर्शं प्रति विषयतयैव हेतुत्वमिति न विरोधः, फलव्यापारौ प्रत्येकरूपेण हेतुतायां मानाभावादिति । यत्र परामर्शोऽनुमितिशाब्दस्मृत्याद्यन्यतमात्मकः, प्रत्यक्षात्मकोऽपि वा लिङ्गांशे न लौकिकविषयिताशाली, तत्र तादात्म्येन विषयत्वेन कारणतानिरूपितकार्यताया लौकिकविषयतासम्बन्धेनैवावच्छिन्नत्वात् लिङ्गस्य परामर्शाजनकतया न तद्द्वारा करणतासम्भव इत्याह अनुमितानुमानादाविति । **अनुमितमेवानुमानं = लिङ्गं = व्याप्त्यादिमत्तया प्रतीतमिति यावत्, अनुमानपदस्यानुमितिकरणार्थकत्वे तु व्याघातः । आदिना शाब्दादिप्रतीतं लिङ्गं ग्राह्यम् । तद्व्यापारवत्त्वानुपपत्तेरित्यन्वयः । तादृशस्थलमुदाहरति** आप्तेति । आसीदिति । **एवमनागतेऽतीन्द्रिये श्रुत्याद्यनुमापके आचाराद्यनुमितस्मृत्यादौ च द्रष्टव्यम् । अतीतानागतस्थले धूमध्वंसप्रागभावयोर्लिङ्गत्वसम्भवेऽपि शाब्दाद्यात्मकपरामर्शव्यापारकत्वासम्भव इति भावः।** तत्रेति । **करणताया इत्यन्वयः । अधिकं तूक्तम् । चरमत्वं व्यापारे फलोपधायकत्वं वा विवक्षितं व्यापाराजनकत्वं वा, उभयमपि निरस्तमेवेति प्रकारान्तराणि विकल्प्य निराकुरुते** किञ्चेति।

राजहंसः

तादात्म्येन विषयत्वेन कारणतेति । विषयत्वं धर्मविधयाऽवच्छेदकम् ।

भारती

यदि कहें कि विशिष्ट में कारणता का ग्राहक प्रमाण विशेषण में भी कारणता का ग्राहक होता है, लिङ्गपरामर्श के अनुमिति कारण होने पर लिङ्ग भी कारण होगा ही, अतः परामर्श रूप व्यापार से युक्त होकर लिंग ही अनुमिति का करण हो जायेगा। तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ व्याप्त्यादिविशिष्ट रूप से लिङ्ग अनुमिति या शब्दादि का विषय है वहाँ परामर्श लिङ्ग से जन्य न होने से परामर्श व्यापार नहीं हो सकता, और परामर्श रूप व्यापार से युक्त होकर लिङ्ग करण नहीं हो सकता। यहाँ तादृश उदाहरण प्रस्तुत करते हैं – जैसे जहाँ आप्त पुरुष के कथन आदि के द्वारा "वहाँ धूम था" यह जानकर – "तब तो वहाँ वह्नि भी अवश्य थी" इत्याकारक अनुमिति करता है वहाँ धूम के अविद्यमान होने से वह धूमरूप लिङ्ग परामर्श का जनक नहीं हो सकता, और तादृश व्यापार से विशिष्ट (युक्त) होकर वह धूम अनुमिति के प्रति करण भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार अतीत अनागत धूम का ध्वंस एवं प्रागभाव भी शाब्दबोधात्मक परामर्श रूप व्यापारवान् न होने से करण न होंगे।

किञ्च –चरम व्यापारवत्त्वं करणत्वम् इस लक्षण में व्यापार में चरमत्व यदि यत्किञ्चिद् व्यापार की अपेक्षा से विवक्षित है तो "व्यापारोत्तर व्यापारवान् कारण ही करण है" यह लक्षण पर्यवसित होगा, और यह सर्वकारण साधारण है अर्थात् यह लक्षण सभी कारको में अन्वित

सर्वकारकापेक्षया चरमव्यापारवत्त्वस्य स्वापेक्षया चरमत्वानुपपत्त्या सर्वत्रासिद्धेः। कर्त्रपेक्षयेति चेन्न; कर्तृधर्मिमात्रापेक्षया विवक्षितत्वे कर्तरि प्रसङ्गतादवस्थ्यात् , व्यापारवत्कर्त्रपेक्षाभिप्राये च कर्तरि

शारदा

यत्किञ्चिदपेक्षया चरमव्यापारवत्त्वमिति । **व्यापारोत्तरव्यापारवत्कारणत्वमिति यावत् । सर्वकारकापेक्षया चरमव्यापारवत्त्वं = प्रकृतक्रियौपयिकयावद्व्यापारोत्तरव्यापारवत्कारणत्वम्। स्वापेक्षया चरमत्वानुपपत्त्या = स्वकीययावद्व्यापारापेक्षया स्वव्यापारे उत्तरत्वानुपपत्त्या। सर्वत्रासिद्धेः = असम्भवापत्तेः** । कर्त्रपेक्षयेति । **चरमत्वं विवक्षितमिति शेषः । प्रकृतक्रियाकर्त्रुत्तरव्यापारवत्कारणत्वं वा, प्रकृतक्रियाकर्तृव्यापारोत्तरव्यापारवत्कारणत्वं वा, प्रकृतक्रियाकर्तृयावद्व्यापारोत्तरव्यापारवत्कारणत्वं वा प्रकृतक्रियाकरणत्वं विवक्षितम्, आद्ये** कर्तृधर्मीति । **द्वितीये** व्यापारवदित्यादि । **कर्तृव्यापारापेक्षयोत्तरत्वविवक्षायामित्यर्थः ।** एकेत्यादि। **कर्तुरेकव्यापारापेक्षयेत्यर्थः । तृतीये** यावदित्यादि। **कर्तृयावद्व्यापारापेक्षयोत्तरत्व-विवक्षापक्षे इत्यर्थः । ननु फलाव्यवहितप्राक्क्षणे न कर्तुर्व्यापारः, अपि तु करणस्येति तत्क्षणवृत्तिकरणव्यापारस्य कर्तृयावद्व्यापारोत्तरत्वेन नासम्भव इत्यत आह** व्यापारस्येति। **कर्तृव्यापारस्येत्यर्थः । विच्छेदे = फलाव्यवहितप्राक्क्षणेऽनभ्युपगमे । तदा कर्तृपरामर्शः।**

भारती

होने से सर्वत्र अतिव्याप्ति हो जायेगी और यदि सभी कारकों की अपेक्षा से चरमव्यापारवत्त्व विवक्षित है । अर्थात् प्रकृतक्रिया के जनक यावद् व्यापारोत्तर व्यापारवान् कारण ही करण है'' इस प्रकार से लक्षण विवाक्षित है तो स्व की अपेक्षा स्व में चरमत्व अनुपपन्न है अर्थात् स्वकीय यावद्व्यापारों की अपेक्षा से स्वव्यापार में उत्तरत्व के अनुपपन्न होने से सर्वत्र ही असम्भव दोष हो जायेगा ।

यदि कहें कि कर्ता की अपेक्षा चरमत्व विवक्षित है। तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि कर्तारूप धर्मी मात्र की अपेक्षा चरमत्व विवक्षा कर यदि – ''प्रकृत क्रिया कर्ता से उत्तर व्यापारवान् कारण ही करण है'' ऐसा लक्षण करें तो कर्ता में अतिव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि, कर्ता भी स्व के उत्तर व्यापार से विशिष्ट एवं प्रकृतक्रिया के प्रति कारण है । यदि व्यापारवत् कर्ता की अपेक्षा में अभिप्राय मानकर – ''प्रकृतक्रिया के कर्तृव्यापार से उत्तर व्यापारवान् कारण ही करण है'' ऐसा लक्षण करें तो भी कर्ता में ही पुनः अतिव्याप्ति हो जायेगी, कर्ता भी स्वकीय प्रथम व्यापार से उत्तर द्वितीय व्यापार से विशिष्ट एवं प्रकृतक्रिया का कारण है । एक ही कर्ता के पूर्व पूर्व व्यापार की अपेक्षा उत्तरोत्तर व्यापार चरम व्यापार माना जाता है । यदि कर्ता के यावद् व्यापारों की अपेक्षा चरमत्वं की विवक्षा कर – ''प्रकृतक्रिया के कर्ता के यावद् व्यापारों से उत्तर व्यापारवान् कारण ही करण है'' ऐसा लक्षण मानें तो इस पक्ष में विवक्षित (करण रूप से अभिमत पदार्थ कुठारादि) भी करण नहीं होंगे, क्योंकि फलसिद्धि पर्यन्त कर्ता के व्यापार का विराम नहीं होता और यदि कर्ता के व्यापार को फलाव्यवहित प्राक्क्षण में न माना जाय तो कर्ता में अनन्यथासिद्धत्व घटित करण लक्षण कर्ता में नहीं जायेगा, अर्थात् कर्ता कारण नहीं होगा । (करण के व्यापार का उत्पादक होने

स एव प्रसङ्गः, एकव्यापारवत्कर्त्रपेक्षयाऽपरापरकर्तृव्यापारस्य चरमव्यापारत्वात्, यावद्व्यापारवत्कर्त्रपेक्षापक्षे तु विवक्षितमपि करणं न स्यात्; आफलसिद्धेः कर्तृव्यापाराविरामात्। व्यापारस्य विच्छेदे तद्धेतुलक्षणप्रक्षीणतापत्तेः। यद्व्यापारानन्तरं कारकान्तरं न व्याप्रियते तच्चरमव्यापारमिष्टमिति चेन्न; सेश्वरपक्षे कर्तृ-

शारदा

हेतुलक्षणस्यानन्यथासिद्धत्वघटितस्य कर्तृगतत्वानुपपत्तेः, करणव्यापारोत्पादनेनैव तस्यान्यथासिद्धत्वात्, स्वव्यापारेण हि स्वस्यानन्यथासिद्धिर्नतु परकीयव्यापारेणापीति भावः। यदि तु करणव्यापारस्यापि कर्तृजन्यत्वेन तज्जन्यजनकत्वेन च तद्व्यापारत्वम्, अतएव ''सर्वेयं कर्तृव्यापारपरम्परा न तस्य हेतुतां हन्तीति'' मूले एव प्रागुक्तमिति कश्चिद्ब्रूयात्तदा सुतरामसम्भवः। न व्याप्रियते = प्रकृतक्रियौपयिकव्यापाररहितम्। चरमव्यापारमिति बहुव्रीहिः। सेश्वरेति। **ननुज्ञानादेरीश्वरव्यापारस्य नित्यत्वेन ध्वंसात्मकतद्विरामाप्रसिद्धावपि तदधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणवृत्तित्वरूपं तदानन्तर्यं प्रसिद्धमेव; अथ तद्ध्वंसाधिकरणकालवृत्तित्वस्य तदानन्तर्यात्मकतां विवक्षित्वेश्वरव्यापारानन्तर्याप्रसिद्ध्यभिधानम्, तदाप्युक्तलक्षणेऽनुयोगिन्येव यत्तायाः प्रविष्टत्वेनेश्वरव्यापारानन्तर्याप्रसिद्धौ यत्पदेनेश्वरस्योपादानासम्भवेन तत्रातिव्याप्त्यभिधानमसङ्गतमेव; यदि च नित्यज्ञानादेर्जन्यत्वघटितव्यापारत्वमेव न, अस्मदादिव्यापार एव चेश्वरजन्यत्वेन तज्जन्यजनकत्वेन च तद्व्यापारो विवक्षितः, तदा महाप्रलयानभ्युपगन्तृमते जन्यव्यापारपरम्पराया अविरामेऽपि प्रकृतक्रियौपयिकव्यापारविरामस्य सद्भावेन तत्तच्चरमव्यापारानन्तरं प्रकृतक्रियायां कारकाणामव्यापृतत्वेन यथाश्रुते यत्पदेन करणमिवेश्वरमुपादायातिप्रसङ्गस्यातिस्पष्टत्वेन व्यापाराविरामाद्यभिधानमसङ्गतमेवेति चेन्न, प्रतियोगिनि यत्ता, व्यापारत्वं च नित्येऽपि ज्ञानादौ तज्जन्यजनकत्वरूपम्, आनन्तर्यञ्च तद्ध्वंसाधिकरणकालवृत्तित्वरूपमिति वदन्तं प्रतीत्थमभिधानात्; एवं हीश्वरस्य व्यापारानन्तर्याप्रसिद्धौ स्वपदेन तदनुपादानेन प्रकृतक्रियौपयिकस्वव्यापारोत्तरतादृशव्यापारकं**

भारती

से ही वह (करण/कर्ता) अनन्यथा सिद्ध होता है अतः स्वव्यापार से ही स्व में अनन्यथा सिद्धिः होती है न कि पर के व्यापार से और यदि करण का व्यापार भी कर्ता से जन्य एवं कर्ता से जन्य का जनक होने से कर्ता का व्यापार मान लिया जाय तो सुतराम् कर्ता में करण लक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा।)

(प्रश्न – जिस व्यापार के अनन्तर अन्य कारक का व्यापार न हो अर्थात् प्रकृत क्रिया के जनक व्यापार से रहित होता हो वही चरम व्यापार शब्द से अभिप्रेत है और एतादृश चरम व्यापारवान् ही करण है। (मूलस्थ ''चरमव्यापारम्'' शब्द में बहुव्रीहि समास है।)

समाधान – ईश्वर रूप कर्ता के व्यापार का विराम ही नहीं होता (क्योंकि वह नित्य है) अतः उसके आनन्तर्य के अप्रसिद्ध होने से ईश्वर रूप कर्ता का व्यापार भी चरम व्यापार हो

व्यापाराविरामात्तदानन्तर्यासिद्धेस्तत्करणत्वापातात्, अनीश्वरपक्षे चाक्षयोगादिभिरेव सव्यापारे कर्मण्यपि प्रसङ्गात्, छेद्यादेर्हि करण-संयोगादिव्यापारश्चरम एवेति कुतस्तद्व्यवच्छेदः। हस्ताद्यव्याप्तेश्चेति।

शारदा

यद्यत्तदन्यप्रकृतक्रियाकारणत्वस्य तत्र निर्बाधत्वात् । अथ सहकारिण्यतिप्रसक्तिव्युदस्तये तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वमेव तद्व्यापारत्वम्, स्थितेऽपि कारणे तदुत्तरत्वस्य कार्ये व्यवहारेण च तदधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणवृत्तित्वमेव तदुत्तरत्वम्, नचैवमपि दण्डादेर्व्यापारस्यापि निर्दिष्टदिशेश्वरीयत्वेनेश्वरीयव्यापारोत्तरव्यापाराप्रसिद्ध्या तादृशव्यापारकान्यत्वेनेश्वरे साधारणकारणान्तरे चातिप्रसक्तिस्तदवस्थेति देशनीयम्, असाधारण्यविवक्षयैव तद्वारणात् । ईश्वरादिव्यावृत्तव्यापारतावच्छेदकसम्बन्धादरे च तत्तद्व्यापारे ईश्वरीयत्वाद्यनुपपत्तेः । न च कुठारादिव्यापारस्याप्यनेकव्यक्तिकत्वेन छिदौपयिकस्वीययत्किञ्चिद्व्यापारोत्तरतादृशव्यापारकत्वेनाव्याप्तिः, यावद्व्यापारोत्तरत्व-निवेशस्तूक्तरीत्यैवासम्भवाद्यापादक इति वाच्यम्, एतद्दोषवारणायैव मूले 'कारकान्तर'मित्य-त्रान्तरपदमुपात्तम्, तथासति निरुक्तलक्षणे स्वव्यापारोत्तरव्यापारे स्वातिरिक्तगतत्वस्य लाभादित्याशङ्कायामाह अनीश्वरपक्षे चेति । **चकारेण सेश्वरपक्षोपग्रहः । अक्षार्थसंयोगो ह्यक्षस्येवार्थस्यापि व्यापार इति स्वव्यापारोत्तरस्वातिरिक्तीयव्यापारकान्यत्वमर्थेऽ-पीत्यतिव्याप्तिरिति भावः । यदि श्रोत्रसाधारण्यमनुरुन्धानैर्नार्थाक्षसम्बन्धस्य प्रत्यक्षे व्यापारतानुमन्तव्या, अपित्वक्षमनोयोगस्यैव, तदार्थाक्षयोगमादायार्थेऽतिव्याप्तिरिव स्वव्यापार-**

राजहंसः

तदाऽर्थाक्षयोगमादायार्थेऽतिव्याप्तिरिवेति । अर्थाक्षयोगादानं नामार्थाक्षयोगस्या-र्थव्यापारतयानुसन्धानम्, तस्मिन् सति स्वव्यापारपदेनार्थाक्षयोगो न ग्रहीतुंशक्यते तदुत्तरं प्रकृतक्रियौपयिकव्यापाराप्रसिद्धेरिति स्वव्यापारोत्तरतादृशव्यापारकं यद्यत्तदन्यत्वमर्थे इत्यतिव्याप्तिरित्याशयः ।

भारती

जायेगा, और तादृश चरमव्यापारवान् एवं कारण होने से वह (ईश्वर)करण हो जायेगा । अर्थात् उक्त करण लक्षण ईश्वर रूप कर्ता में अतिव्याप्त हो जायेगा । एवं अनीश्वर (ईश्वर न मानने वालों के) पक्ष में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष रूप व्यापार जैसे इन्द्रिय का व्यापार है वैसे ही अर्थ घटादि का भी व्यापार है । अत: तादृश व्यापारवान घटादि कर्म में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति होगी । यह अतिव्याति दोष सेश्वर (ईश्वर मानने वालों के) पक्ष में भी है । इसी प्रकार काष्ठ कुठार का संयोग रूप व्यापार जैसे कुठार का है वैसे काष्ठ रूप छेद्य का भी है और वह चरम ही है । अत: तादृश व्यापारवान् छेद्य (छेदनीय) काष्ठ की व्यावृत्ति कैसे होगी, अर्थात् तादृश व्यापारवान् छेद्य काष्ठ रूप कर्म में उक्त करण लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

किञ्च – हस्तादि में अव्याप्ति भी है, क्योंकि हस्त व्यापार के अनन्तर वह्नि रूप कारकान्तर का व्यापार होने से हस्त का व्यापार चरम व्यापार नहीं है ।

अनन्तरफलं करणमित्यपि न, अविशेषितानन्तर्यस्य सर्व-कारणसाधारण्यात्, अव्यवहितानन्तर्यस्य व्यापार्यपेक्षस्य यागाद्य-व्यापनात्, व्यापारापेक्षस्य च हस्ताद्यव्यापनात्, व्यापारपरम्परापेक्षस्य

शारदा

पदेनाक्षमनोयोगमादायाक्षेऽव्याप्तिरपि, तद्व्यापारानन्तरं विषयव्यापारस्य सद्भावात् । ननु योगादीत्यत्रादिपदं किमित्युपात्तम्, समवायस्य नित्यत्वेनाव्यापारतया समवायसंयुक्त-समवायादेस्तेनोपादानासम्भवाद्विशेषणतायाश्च स्वरूपात्मकतयाऽर्थाजन्यत्वादित्याशङ्क्या-दिपदोपादेयमाह छेद्यादेरिति । **प्रक्षाल्यादिकमादिनाऽऽदेयम्, करणसंयोगादीत्यादिनाऽऽ-धारसंयोगादिकम्। चरमः = स्वजन्यजनकसामान्याभाववान् , प्रतियोगिता पूर्ववृत्तित्वसम्बन्धावच्छिन्ना । आफलव्यापारानुपरमे कर्तर्यप्यतिव्याप्तिर्द्रष्टव्या । ननूक्तलक्षणे प्रकृतक्रियाऽसाधारणकारणपदेन प्रकृतक्रियावाचकधात्वर्थानाश्रयीभूतासाधारणकारणस्य प्रकृतक्रियाकर्तृकर्मभिन्नासाधारणकारणस्य वा विवक्षायां न कर्तृकर्मणोरतिव्याप्तिः, तयोर्धात्वर्थव्यापारफलान्यतराश्रयत्वादित्यत आह** हस्तेति । **क्रियौपयिकत्वस्य क्रियोपधायकत्वरूपस्य स्वव्यापारे तदुत्तरत्वस्य तादृशव्यापारेऽप्रसिद्ध्याऽसम्भवापादकत्वेन विवक्षितुमशक्यतया हस्तादेःकारकान्तरानन्तर्भविष्णुतया स्वव्यापारोत्तरकार-कान्तरव्यापारकतया चाव्याप्तिरित्यर्थः ।**

अनन्तरफलमिति बहुव्रीहिः । फलविशिष्टमसाधारणकारणमित्यर्थः, अत्र वैशिष्ट्यं किं स्वप्राक्कालवृत्तित्वेन वा स्वाव्यवहितप्राक्कालवृत्तित्वेन वा, स्वाव्यवहित-प्राक्कालवृत्तिव्यापारवत्त्वेन वा सम्बन्धेन विवक्षितम्, तत्राद्ये अविशेषितेति । **अव्यवहितत्वेनाविशेषितेत्यर्थः। द्वितीये**ऽव्यवहितेति । **व्यापार्यपेक्षस्य = व्यापारिनिरूपितस्य। अव्यापनात् = अव्याप्तिप्रयोजकत्वात् । यागादेः क्षणिकतया स्वर्गाव्यवहित-प्राक्क्षणावृत्तित्वात् । तृतीये व्यापारत्वं किं तज्जन्यमात्रवृत्ति वा तज्जन्यजन्यादिसाधारणं**

राजहंसः

क्रियोपधायकत्वरूपस्य स्वव्यापारे इति । विवक्षितुमशक्यतयेत्यन्वयः ।

भारती

"अनन्तर फलम् करणम्" (जिसके अनन्तर फल होता हो अर्थात् फलविशिष्ट असाधारण कारण ही करण है" ।) यह लक्षण भी ठीक नहीं है । क्योंकि उक्त लक्षण में (वैशिष्ट्य क्या स्वप्राक्कालवृत्तित्व विवक्षित है या स्वाव्यवहितप्राक्कालवृत्तित्व अथवा स्वाव्यवहितप्राक्कालवृत्तिव्यापारवत्त्व, इनमें प्रथम सम्बन्ध नहीं मान सकते, क्योंकि) अव्यवहितत्व विशेषण से अविशेषित आनन्तर्य के सर्वकारण साधारण होने से कर्ता एवं कर्म भी करण हो जायेंगे, कर्ता एवं कर्म भी स्वप्राक्कालवृत्तित्वसम्बन्ध से फलविशिष्ट असाधारण कारण है । अत: उक्त करण लक्षण कर्ता-कर्म में अतिव्याप्त हो जायेगा ।

यदि व्यापारी के अव्यवहित आनन्तर्य की फल में विवक्षा हो अर्थात् स्वाव्यवहितप्राक्कालवृत्तित्व सम्बन्ध से फल विशिष्ट कहें तो यागादि में अव्याप्ति हो जायेगी। क्योंकि याग के अव्यवहित उत्तर में स्वर्ग के न होने से वह (याग) उक्त सम्बन्ध से फलविशिष्ट नहीं है । यदि व्यापार की अपेक्षा आनन्तर्य की विवक्षा करें अर्थात् स्वाव्यवहितप्राक्कालवृत्ति

सर्वकारकव्यापनात् । किञ्च, तत्कार्यो यदि क्रियाहेतुस्तद्व्यापार इष्टस्तदेन्द्रियकार्यो लिङ्गपरामर्शो ऽनुमितिक्रियाहेतुरितीन्द्रिय-करणिकाऽनुमितिः प्राप्ता । अथ हेतोः सतः कार्यः क्रिया-हेतुस्तद्व्यापारः, तथा सति चानुमित्यहेतोरिन्द्रियस्य कुतः करणत्वं

शारदा

वा, आद्ये व्यापारापेक्षस्येति। **हस्तादिव्यापाराव्यवहितोत्तरक्षणे पाकाद्यनुत्पत्तेस्तस्योक्तसम्बन्धेन फलाविशिष्टत्वादित्यर्थः। द्वितीये** व्यापारपरम्परेत्यादि । **परम्परया यो व्यापारस्तन्निरूपितस्य, तत्प्रयोज्यः सन् तज्जन्यजनको यस्तन्निरूपितस्येति यावत्, तेन व्यापारधारायाः फलाव्यवहितप्राक्कालवृत्तित्वासम्भवेऽपि न क्षतिः । प्रयोज्यत्वं जन्यजन्यादिसाधारणं विवक्षितम्, एवञ्च पाकाव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिनो यस्य कस्यचिद्व्यापारस्यापि हस्तव्यापारत्वेनाव्याप्तिविरहेऽपि तादृशव्यापारे कारकान्तरीयत्वस्यापि सत्त्वेनातिव्याप्तिर्दुर्वारैव। यत्र प्रतिबन्धकविशेषवशात्फलमेवानुत्पन्नं तत्राव्याप्तिस्तु पूर्वमभ्यधायि । यथा तत्प्रयोज्यत्वं तज्जन्यत्वं वा तद्व्यापारत्वमिति पक्षे इन्द्रियस्य परामर्शव्यापारकतयाऽनुमितिकरणत्वप्रसङ्गः, अन्ततो मनस एवेन्द्रियस्य चक्षुराद्यव्यापृतौ परामर्शजनकत्वसम्भवात्, तथा तज्जन्यजनकत्वगर्भितव्यापारत्वपक्षेऽपि सः, नहि नियतानन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकावनुमितिमात्रे नेन्द्रियस्य स्त इति निरूपयितुमाह** किञ्चेत्यादि। **यो यत्कार्यो यां क्रियां जनयति स तत्क्रियायां तद्व्यापार इति लाभाय** क्रियाहेतुरिति **अन्यथा सामान्यतः क्रियाहेतुत्वनिवेशस्य निष्प्रयोजनत्वात्। परामर्शपदं सादृश्यज्ञानादेरनुमितिपदञ्चोपमित्यादेरप्युपलक्षणम्** । प्राप्तेति । **नच जन्यात्मविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति मनस्त्वेन करणत्वोपगमेऽनुमित्यादेरिन्द्रिय-करणकत्वमिष्टमेवेति वाच्यम् ; ''तथेन्द्रियादेरनुमितिकरणत्वापत्ति''रिति पङ्क्तिव्याख्यानावसरे दत्तोत्तरत्वात् । तज्जन्यजनकत्वगर्भं व्यापारत्वमाशङ्कते** अथेति । **हेतोः = तत्क्रियाहेतोः। क्रियाहेतुः = तत्क्रियाहेतुः । तदा तत्क्रियाहेतोः परामर्शः।**

भारती

व्यापारवत्त्व सम्बन्ध से फल विशिष्ट कहें तो हस्त (हाथ) आदि में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि हस्तादि के अव्यवहितोत्तर क्षण में पाक नहीं होता । अतः उक्त सम्बन्ध से हस्तादि फल विशिष्ट नहीं है । यदि व्यापार परम्परा की अपेक्षा आनन्तर्य मानें तो कर्ता एवं कर्म आदि कारकों के भी व्यापार परम्परा के अनन्तर फल उत्पन्न होने से सम्बन्ध से फलविशिष्ट कर्ता-कर्म में उक्त करण लक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा ।

किञ्च – जो जिसका कार्य हो तथा जिस क्रिया के प्रति हेतु हो वह उस क्रिया के प्रति उसका व्यापार होता है (जैसे उद्यमन निपातन कुठार का कार्य है तथा छेदन क्रिया के प्रति हेतु है अतः वह उद्यमन निपातन छेदन क्रिया के प्रति कुठार का व्यापार है ।) ऐसी विवक्षा करें तो लिङ्ग परामर्श इन्द्रिय (चक्षुः) का कार्य है तथा अनुमितिक्रिया के प्रति हेतु भी है अतः लिङ्ग परामर्श इन्द्रिय का व्यापार हो जायेगा, और इन्द्रियाँ अनुमिति के प्रति करण हो जायेंगी ।

यदि कहें कि जिस तत्क्रिया के हेतु का कार्य हो तथा तत्क्रिया का हेतु हो वह तत्क्रिया के प्रति तत्करण का व्यापार होगा । चक्षुरादि इन्द्रियाँ अनुमिति रूप क्रिया के प्रति हेतु नहीं

स्यादिति; मैवम् , किं तद्धेतुत्वं यन्नास्त्यनुमिताविन्द्रियस्य । नियतपूर्वभावित्वमिति चेत् , अस्ति तावत्पूर्वभावित्वम् , नियतत्वमपि यदि कारणतायां प्रयोजकमिच्छसि तदा भवतैव यतितव्यं केनचिद्रूपेणेन्द्रियादेर्नियतत्वं प्रति, अन्यथा लिङ्गेन्द्रियादेः परस्परव्यभिचारित्वादकरणिकैव प्रमा स्यात् । मनः संयोगादेरेव

शारदा

नियतेत्यादि स्वरूपसम्बन्धविशेषादिरूपकारणताया अप्युपलक्षणम्, तस्या अपि तु नैयत्यादिघटितकारणतावत्येवोपगन्तव्यत्वान्नेन्द्रियेऽनुमितिनिरूपितायास्तस्या उपपादने उपपादकान्तरापेक्षेति नोत्तरग्रन्थन्यूनता । **नियतत्वमपि** = व्यापकत्वमपि । **यदी**त्यनादरात्, अन्यथासिद्धवारणायानन्यथासिद्धत्वस्य निवेशनीयत्वेऽपि लाघवेनानियतान्यथासिद्धानां नियतत्वनिवेशेनैव वारणौचित्यात्, अन्यथाऽधिकभेदनिवेशापत्त्या गौरवात्, अतएव ''पूर्वसम्बन्धनियमे हेतुत्वे'' इति स्वयमेव पूर्वमुक्तम् । **भवता** = समर्थनपक्षावलम्बिना । केनचिद्रूपेणेति । यद्यपि प्रमाणत्वं न तद्रूपम्, प्रमात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकरणतायाः प्रमाकरणत्वावच्छिन्नत्वे कार्यस्य कारणकोटौ प्रवेशापत्तेः, प्रमाया उपलक्षणतया निवेशेऽपि करणतायाः करणतावच्छिन्नत्वासम्भवात्, तथापीन्द्रियव्याप्तिज्ञानाद्यन्यतमत्वं तत्सम्भवति, अन्यतमत्वं चाखण्डमुपगन्तव्यम् । लिङ्गेति । व्याप्यत्वेन ज्ञायमानेत्यादिः, तथा च व्याप्तिज्ञानेत्यर्थः । परस्परेति । प्रमात्वावच्छिन्नं प्रतीत्यादिः । **प्रमाः** = प्रमात्वावच्छिन्नम्। गुणजन्यत्वनियतस्य प्रमात्वस्येश्वरज्ञानेऽभावाज्जन्यतावच्छेदकत्वसम्भवः, अनित्यप्रमात्वमेव वा जन्यतावच्छेदकं वक्तव्यम्, बाधकं विना च कार्यमात्रवृत्तिधर्मस्य जन्यतावच्छेदकत्वनियमः, अन्यथाऽनुगतकार्यस्याकस्मिकत्वापत्तेः, एतन्मूलक एव च ''यद्विशेषे यद्विशेषस्य प्रयोजकता

भारती

है अतः लिङ्ग परामर्श इन्द्रिय का कार्य होने पर भी तत्क्रिया (अनुमिति) के हेतुभूत इन्द्रिय से जन्य न होने से व्यापार नहीं है एवं अनुमिति में इन्द्रियकरणत्वापत्ति भी नहीं है तो यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि वह हेतुत्व क्या है जो इन्द्रियों में अनुमिति के प्रति नहीं। यदि कहें कि नियत पूर्वभावित्व अर्थात् नियम से पूर्ववृत्तित्व ही हेतुत्व है और ईदृश हेतुत्व इन्द्रिय में अनुमिति के प्रति नहीं है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि इन्द्रिय में अनुमिति के प्रति पूर्वक्षण वृत्तित्व तो है ही, यदि नियतत्व अर्थात् व्यापकत्व को भी कारणता में प्रयोजक मानना चाहते हैं तो करण लक्षण के समर्थयिता आप (तार्किक) को ही उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए कि किसी रूप से इन्द्रिय में भी नियतत्व अर्थात् व्यापकत्व भी आ जाय ।

(यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्रमाणत्व रूप से इन्द्रिय में व्यापकत्व नहीं मान सकते, क्योंकि प्रमात्वावच्छिन्नकार्यता निरूपित करणता के ही प्रमाकरणता होने से कार्य का कारण कोटि में प्रवेश हो जायेगा । यदि प्रमा का उपलक्षण रूप से प्रवेश मानें तो भी करणता करणता से अवच्छिन्न अर्थात् करणता ही करणता का अवच्छेदक नहीं हो सकती । अतः प्रमाणत्वेन रूपेण नियतत्व (व्यापकत्व) तो इन्द्रिय में नहीं हो सकता, किन्तु इन्द्रिय व्याप्ति

तथात्वे चाप्रमासाधारण्यम् । अपि चाक्षादेरकरणत्वापातः, यत्सामान्ये यत्सामान्यं प्रयोजकं तद्विशेषस्यैव तद्विशेषे

शारदा

तत्सामान्ये तत्सामान्यस्ये'' ति नियमः । यद्यपि प्रमात्वं विषयभेदभिन्नत्वेनाननुगतमेव, तथापि घटत्ववति घटत्वप्रकारकाद्यनुभवत्वमेव कार्यतावच्छेदकम्; तच्च घटप्रत्यक्षानुमित्यादिसाधारणमेव, एवञ्च प्रत्यक्षत्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकरणता यथेन्द्रियत्वादिनाऽवच्छिद्यते, तथोक्तानुभवत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकरणता नेन्द्रियत्वादिनाऽवच्छेत्तुं शक्या, इन्द्रियत्वाद्यवच्छिन्नकरणताककार्यतावतो ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वादिविशेषधर्मावच्छिन्नत्वनैयत्येन तादृशानुभवसामान्यस्य प्रत्यक्षत्वाद्यापत्तेः, नच न्यूनवृत्तेरवच्छेदकत्वम्, नचेन्द्रियत्वादिकं व्याप्तिज्ञानादौ वर्तते, नच मनसो ज्ञानमात्रे मनस्त्वेनाव्यभिचारेऽपीन्द्रियत्वेनाव्यभिचारः, ज्ञानमात्रस्य प्रत्यक्षत्वापत्तेः नवा तादृशानुभवत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकरणतावच्छेदकत्वं मनस्त्वे शक्यशङ्कमपि, अतिप्रसक्तवात्, अतएव नात्ममनःसंयोगत्वादृष्टत्वादावपि, नच गुणत्वे तत्, प्रमात्वपरतस्त्ववादेऽनित्यप्रमात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतायास्तदवच्छिन्नत्वसम्भवेऽपि तादृशकार्यतानिरूपितकरणतायास्तदवच्छिन्नत्वासम्भवात् , विशेषयोः कार्यकारणभावस्य सामान्यावच्छिन्नकार्यकारणभावनियतत्ववत् कार्यकरणभावस्यापि सामान्यावच्छिन्नकार्यकरणभावनियतत्वात्, गुणत्वस्यानुगतस्याभावाच्च, कथञ्चिदनुगतत्वेऽपि वाऽनित्यप्रमात्वेन रूपेणानुमितिं प्रति गुणत्वेन रूपेण विशेषणविशिष्टविशेष्यसन्निकर्षस्यापि कारणतापत्त्याभीष्टसिद्धिः । तथात्वे = प्रमाकरणत्वाभिधाने। अप्रमासाधारण्यमिति । **तथाचातिप्रसक्ततया न मनःसंयोगत्वादिकं प्रमात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकरणतावच्छेदकमिति भावः । विशेषसामग्र्यातिप्रसङ्गवारणसम्भवेनातिप्रसक्तस्यावच्छेदकत्वमुपेत्याप्याह** अपि चेति । यत्सामान्ये

राजहंसः

अतिप्रसक्तत्वादिति । मनसा भ्रमेच्छादेरपि जननात् , तदा च मनसि तादृशानुभवकरणत्वाभावात् । अधिकं चात्र प्रादर्शि प्राक्शारदायाम् ।

भारती

ज्ञानाद्यन्यतमत्वेन रूपेण इन्द्रिय में भी अनुमिति के प्रति नियतत्व हो सकता है और तादृश अन्यतमत्व अखण्ड मानेंगे । तथाच तादृश अन्यतमत्वेन रूपेण इन्द्रिय के भी नियतपूर्ववर्ति होने से अनुमिति में इन्द्रियकरणत्वापत्ति दूषण विद्यमान है ही ।

अन्यथा अर्थात् उक्त अन्यतमत्व रूप से यदि व्यापक न मानें तो प्रमात्वावच्छिन्न के प्रति व्याप्ति ज्ञान इन्द्रियादि के परस्पर व्यभिचारी होने से प्रमा मात्र ही अकरणक हो जायेगी। अर्थात् प्रमा मात्र की उत्पत्ति करण के विना ही माननी होगी जो कि सम्भव नहीं है ।

यदि कहें कि आत्ममनःसंयोग ही प्रमा का करण है अतः प्रमा मात्र अकरणक न होगी तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि आत्ममनःसंयोग अप्रमा के प्रति भी कारण है । अतः आत्ममनःसंयोगत्व के अतिप्रसक्त होने से उसे (आत्ममनःसंयोग को) प्रमात्वावच्छिन्नकार्यता निरूपित कारणता का अवच्छेदक नहीं मान सकते ।

अपिच – यदि विशेष सामग्री से अतिप्रसङ्ग का वारण हो जाने से – अतिप्रसक्त

प्रयोजकत्वनियमदर्शनात्, ततो येन केनापि रूपेणेन्द्रियस्य प्रमायां नियतत्वमुपपाद्यते तेन रूपेण प्रसङ्गोपपत्तिः। अथ प्रमात्वे तत्प्रयोजकं नानुमितित्वादाविति चेन्न ; निरुपाधिकत्वाविशेषेणोक्ता-

शारदा

इत्यादि । **यद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदको यो धर्मस्तद्धर्मव्याप्यस्यैव तद्धर्मावच्छिन्नकार्यताव्याप्यकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकत्वमिति नियमदर्शनादित्यर्थः। एवञ्च यथेन्द्रियत्वस्य प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकत्वे तद्व्याप्यचक्षुष्ट्वादेरेव प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यताव्याप्यचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नकार्यता-निरूपितकारणतावच्छेदकत्वं दृश्यते, तथा मनःसंयोगत्वादेः प्रमात्वावच्छिन्नकार्यता-निरूपितकारणतावच्छेदकत्वे तद्व्याप्यतत्तन्मनःसंयोगत्वादेरेव प्रमात्वावच्छिन्नकार्य-ताव्याप्यप्रत्यक्षत्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकत्वं स्यात्, नत्विन्द्रियत्वव्या-प्तिज्ञानत्वादेरिति भग्नो भवतां प्रमाणविभाग इति भावः । प्रसङ्गोपपत्तिः = इन्द्रियस्या-नुमितिप्रभृतिकरणत्वापत्तिः । तत् = इन्द्रियव्याप्तिज्ञानाद्यन्यतमत्वम् । कार्यतावच्छेदक प्रत्येव कारणतावच्छेदकस्य प्रयोजकत्वम्, प्रत्यक्षत्वानुमितित्वादिकं तु न तादृशान्यतमत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकमिति तादृशान्यतमत्वेन रूपेणेन्द्रियस्यानुमित्यादिकं प्रति करणत्वेऽपि न तस्य प्रत्यक्षत्वापत्तिरिति न प्रमाणविभागभङ्ग इति भावः । वृक्षत्वावच्छिन्नसामग्र्या शिंशपात्वावच्छिन्नसामग्रीमवधूय न वृक्षत्वावच्छिन्नं जन्यते, शिंशपात्वावच्छिन्नसामग्र्या च वृक्षत्वावच्छिन्नसामग्रीवधूय न शिंशपात्वावच्छिन्नमिति दर्शनेन व्यापकधर्मावच्छिन्नव्याप्यधर्मावच्छिन्नकारणानां परस्परप्रयोज्यप्रयोजकत्वमवश्यं मन्तव्यम्, अन्यथा तेषां परस्परमेलनस्यानुपयोगापत्तेः, अतएव प्रत्यभिज्ञायां स्मरणत्वानु-भवत्वप्रयोजकसामग्र्योः परस्परप्रयोज्यप्रयोजकत्वमाश्रित्य साङ्कर्यं प्रागुक्तम्, तदिहापि प्रमात्वप्रयोजकस्य प्रत्यक्षत्वादिप्रयोजकस्य च समवधाननियतौ परस्परप्रयोज्यप्रयोज-कत्वमङ्गीकार्यमेव अन्यथा प्रत्यक्षत्वादिप्रयोजकमनपेक्ष्यैव प्रमात्वं प्रयुज्येत, व्यापकत्वं च**

भारती

आत्ममनःसंयोगत्व को ही प्रमात्वावच्छिन्नकार्यता निरूपित कारणता का अवच्छेदक मान लें तो – प्रमाविशेष प्रत्यक्षादि के प्रति भी तत्तत् आत्ममनःसंयोग ही करण हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में चक्षुरादि इन्द्रियाँ अकरण हो जायेंगी । क्योंकि जिस सामान्य में जो सामान्य प्रयोजक (कारण) होता है उस विशेष में भी उसका विशेष ही कारण होता है ऐसा नियम देखा जाता है । (अर्थात् जिस धर्म से अवच्छिन्नकार्यता से निरूपित कारणता का अवच्छेदक जो धर्म है उस धर्म का व्याप्य धर्म ही – उस धर्म से अवच्छिन्न कार्यता की व्याप्य कार्यता से निरूपित कारणता का अवच्छेदक होता है'' ऐसा नियम है ।)

(तात्पर्य यह है कि इस नियम के अनुसार जैसे – प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यता निरूपित कारणता का अवच्छेदक इन्द्रियत्व है इसलिए उस इन्द्रियत्व का व्याप्य धर्म चक्षुष्ट्वादि ही प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यता की व्याप्य चाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नकार्यता से निरूपित कारणता का

र्थानाधिक्यात्, सामान्यप्रयोजकत्वेन विशेषत्यागानवकाशात् , अन्यथा व्यक्तेरकरणत्वापत्तेः।

शारदा

प्रमात्वमिव प्रत्यक्षत्वादिकमपि प्रत्यविशिष्टमेव तादृशान्यतमत्वस्य, वृक्षत्वप्रयोजकस्येव वृक्षत्वमिव शिंशपात्वादिकमपि प्रति, तथा चोक्तान्यतमत्वमनुमित्यादौ प्रत्यक्षत्वप्रयोजकं भवेदेवेत्यभिप्रेत्याह निरुपाधिकत्वाविशेषेणेति। **उक्तान्यतमत्वस्य प्रमात्वमिव प्रत्यक्षत्वादिकमपि प्रति व्यापकत्वेनेत्यर्थः । व्यापकता च स्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतासम्बन्धेन । उक्तार्थानाधिक्यात् = अस्मदुक्तप्रसङ्गरूपार्थस्य निरासे भवदुक्तेरसामर्थ्यात् ।** विशेषेति। **विशेषप्रयोजकत्वेत्यर्थः । अन्यथा = सामान्यप्रयोजकस्य विशेषप्रयोजकत्वानुपगमे । अकरणत्वापत्तेः = करणराहित्यापत्तेः, अनुत्पत्त्यापत्तेरिति यावत् , फलोपधायकस्यैव करणत्वात्। सामान्यप्रयोजकस्य विशेषाप्रयोजकत्वे विशेषप्रयोजकस्य सामान्यप्रयोजक-समवधानानपेक्षित्वात्तादृशस्य च तस्याभावस्यैव पर्यवसानाद्विशेषो न प्रयुज्येतैव, अतएव न सामान्यमपि, 'निर्विशेषं न सामान्य'मिति न्यायादिति भावः । यदि तु सामान्यप्रयोजकस्य विशेषप्रयोजकसापेक्षस्यैव सामान्यविशिष्टविशेषप्रयोजकत्वम्, इन्द्रियत्वेनैव चेन्द्रियं प्रत्यक्षत्वप्रयोजकम् , तथा चोक्तान्यतमत्वेनेवेन्द्रियत्वेनाप्यनुमित्यादाविन्द्रियस्य कारणत्वे एव तत्र प्रत्यक्षत्वमापद्येत, अनुमित्यादौ मनस इन्द्रियस्य कारणत्वेऽन्द्रियत्वेन न तस्य तदित्यत्र विनिगमकत्वनुमित्यादौ प्रत्यक्षत्वाननुभव एवेत्युच्यते तदा करणलक्षणे पूर्वोक्तदोषेष्वेव निर्भरो द्रष्टव्यः ।**

भारती

अवच्छेदक देखा जाता है उसी प्रकार प्रकृत में मनःसंयोगत्वादि को यदि प्रमात्वावच्छिननकार्यता निरूपित कारणता का अवच्छेदक मानेंगे तो प्रमात्वावच्छिन्नकार्यता की व्याप्य प्रत्यक्षत्वाद्यवच्छिन्नकार्यता से निरूपित कारणता का अवच्छेदक भी मनःसंयोगत्व का व्याप्य तत्तत् मनःसंयोगत्व को ही मानना होगा, न कि इन्द्रियत्व व्याप्तिज्ञानत्वादि को । और इस प्रकार से यदि सभी प्रमाविशेषो के प्रति यदि तत्तत् मनःसंयोग ही कारण हो जायेगा, तो एक ही प्रमाण के सिद्ध होने से आपके सिद्धान्त में प्रदर्शित प्रमाण विभाग समाप्त हो जायेगा ।) तस्मात् प्रदर्शित प्रमाण विभाग की उपपत्ति के लिए मनःसंयोग को प्रमाण न मानकर इन्द्रियादि को ही करण मानना पड़ेगा, अतः जिस इन्द्रिय व्याप्तिज्ञानत्वाद्यन्यतमत्व रूप से प्रमा के प्रति इन्द्रियादि में नियतत्व का उपपादन करेंगे उसी इन्द्रिय व्याप्ति ज्ञानत्वाद्यन्यतमत्वादि रूप से इन्द्रिय में अनुमितिकरणत्वापत्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि इन्द्रियव्याप्ति ज्ञानाद्यन्यतमत्व तो प्रमात्व के प्रति प्रयोजक है न कि अनुमितित्वादि के प्रतिं। (क्योंकि कार्यतावच्छेदक के प्रति ही कारणतावच्छेदक प्रयोजक होता है। प्रत्यक्षत्व-अनुमितित्व आदि तो तादृशअन्यतमत्वावच्छिन्न कारणता निरूपित कार्यतावच्छेदक है नहीं, अतः तादृश अन्यतमत्व रूप से इन्द्रिय को यदि अनुमिति के प्रति करण मान भी लें तो भी अनुमिति आदि प्रत्यक्षत्वापत्ति नहीं है और न प्रमाणविभाग की ही अनुपपत्ति है ।) तो

अथान्यत्रास्तु यद्वा तद्वा करणम् , प्रमाविवक्षितजाति-विशेषव्यपदेशकं प्रमाणम् , चतस्रः खल्विमाःप्रत्यक्षादिप्रमितयो भिन्नबुद्धिव्यपदेशभाजः, न च प्रमाता प्रमेयं वा तद्भेदहेतुः, प्रमाणानि तु यथायथं चतसृष्वसाधारणानीति भिन्नबुद्धि-व्यपदेशनिबन्धनानीति; मैवम् , विवक्षितपदं तावल्लक्षणे भण्डा-

---

शारदा

यद्वा तद्वा = यत्किञ्चित् । प्रमाविवक्षितेति । **प्रमागतत्वेन विवक्षितेत्यर्थः । जातिविशेषः = प्रत्यक्षत्वानुमितित्वादिस्तदन्यतमव्यपदेशः प्रत्यक्षमिदं ज्ञानमनुमानमिदं ज्ञानमित्याद्याकारो ज्ञानाभिलापात्मको व्यवहारस्तत्त्वावच्छिन्नप्रयोजकत्वमित्यर्थः** । भिन्नेति । **भिन्नौ बुद्धिव्यपदेशौ तद्विषया इत्यर्थः । व्यपदेशोऽत्राभिलापमात्रम्, बुद्धेः पृथगुपादानात्** । तद्भेदहेतुः = **उक्तविलक्षणव्यवहारत्वावच्छिन्नप्रयोजकम्। एकस्यापि प्रमातुःप्रत्यक्षत्वादितत्तद्धर्मा-वच्छिन्नानेकप्रमितिसमवायित्वेन प्रमेयस्य च तादृशानेकप्रमितिविषयत्वेन साधारण्यम्, इन्द्रियादेस्तु नेन्द्रियत्वादिना तादृशानेकप्रमितिकारणत्वम्, अपितु प्रत्येकमेव प्रत्यक्षत्वादिकं**

भास्ती

यह आप (तार्किक) का कहना ठीक नहीं है क्योंकि जैसे प्रमात्व के प्रति उक्त अन्यतमत्व व्यापक (नियत) है वैसे ही प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वादि के प्रति भी वह (तादृश अन्यतमत्व) व्यापक है अतः व्यापकत्व के समान होने से आपके द्वारा उक्त युक्ति हमारे (खाण्डनिक) के द्वारा उक्त अति प्रसङ्ग (अनुमिति आदि में इन्द्रियकरणकत्वापत्ति अर्थात् अनुमितिमें प्रत्यक्षापत्ति तथा प्रमाणविभाग का विलोप) की वारिका नहीं हो सकती । क्योंकि सामान्य विशेषों का अर्थात् व्यापक धर्मावच्छिन्न और व्याप्य धर्मावच्छिन्न कारणों का परस्पर प्रयोज्य प्रयोजक भाव देखा जाता है अतः सामान्य के प्रयोजक में (प्रमात्व के प्रयोजक तादृशान्यतमत्व में) विशेष के प्रयोजकत्व (प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वावच्छिन्न की प्रयोजकता) का परित्याग नहीं किया जा सकता है । अन्यथा = अर्थात् यदि सामान्य के प्रयोजक को विशेष के प्रति प्रयोजक न मानें तो व्यक्ति करण से रहित हो जायेगा, अर्थात् व्यक्ति के प्रति कोई करण नहीं बन पायेगा ।

८. प्रश्न – अन्यत्र अर्थात् कुठारादि करण में करणत्व व्यवहार का प्रयोजक यत्किञ्चित्करण लक्षण भले ही हो जाय, किन्तु प्रमाकरण स्थल में तो करण का लक्षण यही करेंगे कि – ''प्रमाविवक्षितजातिविशेषव्यपदेशकं प्रमाणम्'' (प्रमागततया विवक्षित प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वादि जाति विशेषों में अन्यतम का ''प्रत्यक्षमिदम् ज्ञानम् अनुमानमिदम् ज्ञानम्'' इत्याकारक व्यपदेश अर्थात् ज्ञान का अभिलाप (कथन) रूप व्यवहार का प्रयोजक ही प्रमाण है) प्रत्यक्ष अनुमिति उपमिति शाब्द इस प्रकार भिन्न-भिन्न बुद्धि एवं अभिलाप (कथन) का विषय चार प्रकार की प्रमितियाँ (प्रमाएँ) होती हैं । प्रमाता एवं प्रमेय उन (व्यवहारों) के भेद का हेतु अर्थात् उक्त विलक्षण व्यवहार का प्रयोजक नहीं होते, क्योंकि एक ही प्रमाता प्रत्यक्षादि अनेक

लेख्यमिव, पुरुषेच्छानामनियतविषयत्वात्, अर्थजत्वस्य साक्षात्कारित्वं प्रतीन्द्रियजत्वाविशिष्टतयाऽर्थस्यापि करणत्वप्रसङ्गात् । आप्तोक्तौ कर्तुरपि शाब्दप्रमाजातिविशेषकत्वेनातिप्रसङ्गात् ।

शारदा

प्रतीति भावः। भण्डालेख्यमिवेति । **सन्तानविषयकप्रश्नोत्तरतया पुत्रो न पुत्रीति विप्रलम्भकलेखनवदित्यर्थः। यथा तत्रविवक्षावशान्नञ उभयत्रान्वयसम्भवान्न सन्ततिविशेषनिश्चयस्तथा प्रकृतेऽपि विवक्षितानिश्चये न लक्षणनिश्चय इति भावः । ननु प्रत्यक्षत्वाद्यन्यतमविषयकव्यवहारत्वावच्छिन्नप्रयोजकत्वं वा तदन्यतमावच्छिन्नजन्यताकजनकत्वं वा वक्तव्यं तत्राह** अर्थजत्वस्येति। **यथेन्द्रियजन्यत्वं प्रतिसन्धाय प्रत्यक्षत्वव्यवहारस्तथाऽर्थजन्यत्वं प्रतिसन्धायापीति सम्भवत्यर्थेऽपि तादृशप्रयोजकत्वं जनकज्ञानविषयत्वरूपम्, सामान्यतोऽर्थान्यत्वनिवेशस्त्वसम्भवापादकः। एवं प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रतीन्द्रियत्वेनेव विषयत्वेनापि कारणतेति भावः । एवं सन्निकर्षादिरूपव्यापारेऽप्यतिप्रसक्तिर्द्रष्टव्या । इदमुपलक्षणं प्रयोजकताजनकतावच्छेदकरूपवत्त्वस्यावश्यनिवेश्यत्वेन प्रत्येकमिलितविकल्पेऽव्याप्त्यसम्भवयोरप्यापत्तेः । वक्तृतयाऽऽप्तमवेत्यापि शाब्दप्रमात्वव्यवहारेण तत्राप्यतिव्याप्तिमाह** आप्तेति ।

भारती

प्रमाओं का कर्ता होता और एक ही प्रमेय उक्त अनेक विध प्रमाओं का विषय होता है । किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान (व्याप्तिज्ञान) उपमान शब्द आदि प्रमाण तो यथायोग्य चार प्रकार की प्रमितियों (प्रत्यक्ष अनुमिति, उपमिति, शाब्द) में से अन्यतम के प्रति असाधारण कारण होते हैं । इसलिए वे (चतुर्विधप्रमाण) भिन्न-भिन्न बुद्धि एवं व्यपदेश (अभिलाप = कथन) के कारण होते हैं ।

समाधान – इस लक्षण के अन्तर्गत "विवक्षित" पद भण्डालेखा के समान अनिश्चायक है । (तात्पर्य यह है कि जैसे किसी वञ्चक ने सन्तान विषयक प्रश्न के उत्तर में "पुत्रो न पुत्री" लिख दिया, किन्तु वञ्चक का वह लेख मध्यवर्ती नकार के विवक्षावशात् क्रमशः उभयत्र (पुत्र एवं पुत्री दोनों में) अन्वित हो जाने से जैसे सन्तान विशेष (पुत्र या पुत्री) का निश्चायक नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृत में विवक्षित का निश्चय न होने से उक्त लक्षण का भी निश्चय नहीं हो सकता ।) क्योंकि वक्ताओं के इच्छा का विषय ही विवक्षित कहा जाता है और पुरुष की इच्छायें तो अनियत विषयक होती हैं अर्थात् इच्छाओं के विषय अनन्त होने से नियत नहीं है । तथाच विवक्षितार्थ के अनिश्चय के कारण उक्त लक्षण भी निश्चित नहीं है ।

किञ्च – साक्षात्कारित्व के प्रति अर्थजन्यत्व भी इन्द्रियजन्यत्व के समान ही है, क्योंकि जैसे इन्द्रियजन्यत्व का अनुसंधान कर ज्ञान में प्रत्यक्षत्व का व्यवहार करते हैं वैसे ही अर्थजन्यत्व के अनुसन्धान से भी प्रत्यक्षत्व व्यवहार होता है अतः अर्थ के भी प्रत्यक्षादि व्यवहार का प्रयोजक होने से अर्थ भी करण हो जायेगा अर्थात् उक्त करण लक्षण अर्थमें अतिव्याप्त हो गया । (इसी प्रकार सन्निकर्षादि रूप व्यापार में भी अतिव्याप्ति है ।) किञ्च – आप्त में भी अतिव्याप्ति होगी, क्योंकि आप्त की उक्ति में वक्ता रूप से आप्त को जानकर ही शाब्द

ओमित्युत्तरे च पूर्वोक्तमिति । विवक्षितजातिभेदौपयिकत्वेन प्रमित्यसमवायिकारणविशेषकं प्रमाणमित्यप्यत एव प्रत्युक्तमिति। इति खण्डनखण्डखाद्ये करणत्वखण्डनम् ।

शारदा

तत्तत्प्रमात्वव्यवहारप्रयोजकतत्तद्गुणेऽप्यतिव्याप्तिर्बोध्या । पूर्वोक्तमिति । **''आप्तप्रामाण्या''दिति व्यवहाराणां गौणतोक्ता पुरा ।** विवक्षितेति । **प्रमागतत्वेनेत्यादिः । जातिविशेषः प्रत्यक्षत्वादिकः, भेदपदस्य विशेषार्थकत्वात् । तृतीयान्तस्य विशेषकमित्यनेनान्वयः । प्रमितित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितासमवायिकारणताया अवच्छेदकमात्ममनःसंयोगत्वं दोषासमवहितं वा तत्, प्रत्यक्षप्रमितित्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितासमवायिकारणतायास्त्ववच्छेदकमिन्द्रियव्याप्तिज्ञानादिविशिष्टं तत्, अनतिप्रसक्तत्वात्, एवञ्च प्रत्यक्षप्रमात्वाद्यन्यतमावच्छिन्नकार्यतानिरूपितासमवायिकारणतावच्छेदकत्वमेव प्रमाणत्वम्, अवच्छेदकता च स्वप्रतियोगिकसंयोगानुयोगिसमवेतत्वस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धेन, तेनात्मनि तन्मनःसंयोगत्वे च नातिप्रसङ्गः, तत्राद्यसम्बन्ध इन्द्रियं सङ्गृह्णाति, द्वितीयस्तु व्याप्तिज्ञानादिकम् । विशिष्टस्य कारणत्वेऽसति बाधके** विशेषणेऽपि **कारणतोपगमात् स्वतन्त्रान्वयव्यतिरेकशालित्वाच्च न कारणतावच्छेदकत्वेऽपीन्द्रियादेरकारणत्वप्रसङ्ग इति भावः ।** अवएवेति।

राजहंसः

नितरां तु प्रत्यक्षादिप्रमात्वस्येति । प्रमात्वन्यूनवृत्तिप्रत्यक्षत्वादिघटितधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताविवक्षा तु न शक्यते, घटत्ववत्ति घटत्वप्रकारकप्रत्यक्षत्वादेरपि तादृशधर्मस्यार्थसमाजग्रस्तत्वात् , तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकार्यतानिवेशे चान्यथासिद्धेष्वतिव्याप्तेः,

भारती

प्रमात्व व्यवहार किया जाता है, अतः आप्त भी उक्त व्यवहार का प्रयोजक होने से करण हो जायेगा ।

यदि ओम् कह कर उसे (आप्त में करणता) स्वीकार करें तो पूर्वोक्त दूषण उपस्थित हो जायेगा, अर्थात् ''आप्त प्रामाण्यात्'' के द्वारा आप्त में प्रमाणत्व व्यवहारों को गौण कहा है । किसी का भी आप्तादि में मुख्य करणत्व व्यवहार नहीं देखा जाता, अतः उसकी करणता में इष्टापत्ति नहीं कर सकते ।

यदि कहें कि प्रमागततया विवक्षित प्रत्यक्षत्वादि जाति विशेषों का उपाय भूत जो प्रमिति के असमवायिकरण आत्ममनःसंयोग निष्ठ कारणता का अवच्छेदक है, वही करण है'' तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यह लक्षण भी पूर्वोक्त दूषणों से ही निरस्त हो जाता है । (तात्पर्य यह है कि इस लक्षण की भी अर्थ (विषय) में अतिव्याप्ति है । क्योंकि जैसे प्रत्यक्ष प्रमा में इन्द्रियविशिष्ट आत्ममनःसंयोग के कारण होने से कारणतावच्छेदक इन्द्रिय करण मानी जाती है उसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रमा में अर्थ विशिष्ट आत्ममनःसंयोग भी कारण हो सकता है अतः तादृशकारणता का अवच्छेदक अर्थ भी करण हो जायेगा ।) तस्मात् अर्थादि में अतिव्याप्त होने से उक्त लक्षण समीचीन (निर्दुष्ट) नहीं है ।

अथ प्रत्यक्षखण्डनप्रकरणम्

लक्षणप्रयोजनखण्डनम्

एवं विशेषतोऽपि प्रमाणलक्षणानि प्रतिवक्तव्यानि; तथाहि– ''प्रत्यक्षमिन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यभिचारी''त्याहुः, किम-

---

शारदा

प्रत्यक्षप्रमायामिन्द्रियविशिष्टस्येवार्थविशिष्टस्याप्यात्ममनःसंयोगस्य कारणतासम्भवेनाद्यसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकतामश्नुवानेऽर्थेऽतिप्रसङ्ग इत्यर्थः । इदमुपलक्षणम्, प्रमात्वस्याननुगतस्यार्थसमाजग्रस्तस्य प्रमात्वखण्डनशेषे कथितदिशा कार्यतावच्छेदकत्वासम्भवो नितरां तु प्रत्यक्षादिप्रमात्वस्येत्यपि द्रष्टव्यम् । इति खण्डनशारदायां करणत्वखण्डनम् ॥

समाप्तं प्रमाणसामान्यखण्डनप्रकरणम् ।

कथायां प्रमाणानां सामान्यलक्षणनिरासापरिस्फूर्तौ तद्विशेषलक्षणनिरासैरेव प्रत्यवस्थातव्यमन्यथा तु तैरपीत्यभिप्रायेणाहैवमित्यादि । **इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यभिचारिज्ञानं यथार्थप्रत्यक्षं तत्करणत्वञ्च प्रत्यक्षप्रमाणत्वमिति पूरणसंवलितार्थः, तेन न प्रमाणलक्षणखण्डनप्रतिज्ञाव्याहतिः । करणतानिरूपकनिरासे च करणस्यार्थान्निरास इति नासङ्गतिरुपरितनग्रन्थस्य । अत्र च यथाश्रुतेऽनुमित्यादिव्यावृत्तये आद्यं दलम्, भ्रमव्यावृत्तये द्वितीयम्, अव्यभिचारित्वं हि याथार्थ्यम्, आत्ममनःसंयोगजन्येच्छादिव्यावृत्तये तृतीयम् ।**

राजहंसः

अनुगतधर्मावच्छिन्नकार्यतास्थले एव तज्जातीये व्यभिचारदर्शनेनान्यथासिद्धे कारणतापत्तिरपाकर्तुं शक्यते न त्वन्यत्र, निरवधिकाननुगमापाताच्चेति भावः । **इति करणत्वखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

भारती

प्रत्यक्षखण्डन प्रकरण

लक्षणप्रयोजन खण्डन

कथा (नानाप्रवक्तृक शास्त्र चर्चा) में प्रमाणसामान्य लक्षण के निरासार्थ उक्त युक्तियों की स्फूर्ति (स्मृति) न होने पर प्रमाण विशेष लक्षण के निरास के द्वारा ही प्रत्यवस्थान (प्रतिवादि को परास्त) किया जा सकता है इस अभिप्राय से – ग्रन्थकार कहते हैं कि – एवं (उक्तरीति से) प्रमाण विशेष लक्षणों का भी खण्डन करना चाहिए । यद्यपि प्रमाण लक्षण खण्डन की प्रतिज्ञा करके प्रमा के लक्षण का उत्थापन करके प्रमाण लक्षण का खण्डन करना अनौचिति से चुम्बित है तथापि करणता निरूपक का खण्डन करणखण्डन में पर्यवसित है । वह खण्डन प्रकार यह है कि –

१. ''इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न एवं अर्थ का अव्यभिचारी ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमा है'' इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमा का लक्षण न्यायाचार्य ने किया है । ईदृशप्रमा का करण ही प्रत्यक्ष प्रमाण है । इस लक्षण में अनुमित्यादि की व्यावृत्ति के लिए प्रथम विशेषण है, भ्रम की व्यावृत्ति के लिए ''अव्यभिचारि पद है एवं इच्छा की व्यावृत्ति के लिए ज्ञान पद है । किन्तु

र्थमिदमुच्यते ? किं सजातीयविजातीयव्यवच्छिन्नतत्प्रतीत्यर्थम् ? उत साक्षात्कारित्वप्रतीतये तच्चिह्नोपदर्शनमिदम् ? उत व्यवहारार्थम्? उत प्रत्यक्षादिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तावधारणार्थम् ? उतान्यकिञ्चिदर्थमेव ?; नाद्यः, तथाहि– किं 'सजातीये'ति प्रत्यक्षत्वेन साजात्यमपेक्षितम् ? रूपान्तरेण वा ?; नाद्यः, तस्माद्व्यवच्छेदावधेः सजातीयादव्यावृत्तत्वे व्यवच्छेदकत्वानुपपत्त्या व्यावृत्तत्वस्वीकारेणाव्यापकत्वात् । नापि द्वितीयः, विजातीयपदोपादानवैयर्थ्यात्,

---

शारदा

अधिकं परतो वक्ष्यते । तत्प्रतीत्यर्थम् = प्रत्यक्षप्रमाणप्रतीत्यर्थम् । तच्चिह्नेति । **साक्षात्कारित्वव्याप्येत्यर्थः । अन्यथा व्यञ्जकापरपर्यायचिह्नशब्दस्यैव लौकिकप्रत्यक्षजनकप्रत्यक्षविषये प्रसिद्धत्वादसङ्गतिश्चतुर्थ्यन्तस्य । प्रतीतिशब्दो न लौकिकप्रत्यक्षपरः, ''साक्षात्कारित्वानुमानस्ये''त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेः। साक्षात्कारित्वञ्चात्र प्रघट्टके न लौकिकविषयिताविशेषः, अपितु लौकिकालौकिकसाधारणं प्रत्यक्षत्वमेवेति द्रष्टव्यम् ।** उतान्येति । **पञ्चमप्रकारसम्भावनाप्रयुक्तन्यूनतासम्भावनानिवर्तनायैवेतत्, वस्तुतस्तु पञ्चमप्रकारोपदर्शनाशक्यतां वक्ष्यति।** तस्मादित्यादि । **लक्षणस्य तादृशव्यावृत्तिप्रतियोग्यभिन्नप्रत्यक्षविशेषवृत्तित्वे इत्यर्थः ।** व्यवच्छेदकत्वानुपपत्त्येति । **व्यावृत्तिप्रतियोग्यवृत्तिधर्मस्यैव व्यावृत्त्यनुयोगिव्यावर्तकत्वादन्यथा प्रमेयत्वादेरपि व्यावर्तकत्वप्रसङ्गादिति भावः। व्यावृत्तत्वस्वीकारेण = व्यावृत्तिप्रतियोगिप्रत्यक्षविशेषावृत्तित्वेनैव स्वीकार्यत्वेन लक्षणस्य**

भारती

विचार करें कि यह लक्षण किसलिए किया है अर्थात् लक्षण प्रणयन का प्रयोजन क्या है । क्या सजातीय विजातीय से व्यावृत्त लक्ष्यप्रत्यक्षप्रमाण के स्वरूप ज्ञान के लिए लक्षण किया गया है, या साक्षात्कारित्व के ज्ञान के लिए साक्षात्कारित्व का चिह्न अर्थात् व्याप्य के प्रदर्शन के लिए, अथवा साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) के व्यवहार के लिए, या प्रत्यक्षादि शब्दों के प्रवृत्ति निमित्त के अवधारण (निश्चय) के लिए, अथवा अन्य ही किसी प्रयोजन के लिए ।

इनमें प्रथम कल्प नहीं कह सकते । क्योंकि सजातीय शब्द से क्या प्रत्यक्षत्वेन साजात्य अपेक्षित है या रूपान्तर से, इसमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, कारण कि – व्यवच्छेद की अवधि अर्थात् तादृश व्यावृत्ति के प्रतियोगी रूप सजातीय प्रत्यक्ष विशेष से यदि उक्त लक्षण अव्यावृत्त है अर्थात् उस तादृशव्यावृत्ति के प्रतियोगि रूप प्रत्यक्ष विशेष में उक्त लक्षण रहता है तो वह लक्षण व्यावर्तक नहीं हो सकता, क्योंकि व्यावृत्ति के प्रतियोगि में अवृत्ति धर्म ही व्यावृत्ति के अनुयोगि का व्यावर्तक होता है अन्यथा प्रमेयत्वादि धर्म भी व्यावर्तक हो जायेंगे । अतः उक्त लक्षण के अव्यावर्तक होने से उसे (उक्त लक्षण को) व्यावृत्ति प्रतियोगी प्रत्यक्ष विशेष में अवृत्तितया ही मानना होगा ऐसी स्थिति में उक्त लक्षण प्रत्यक्ष प्रमा सामान्य साधारण नहीं हुआ । अर्थात् लक्ष्य के एक देश में वह अव्याप्त है । तथाच लक्ष्यतावच्छेदक (प्रत्यक्षत्वादि) रूप से साजात्य की विवक्षा नहीं कर सकते ।

अस्ति हि प्रमेयत्वादिना सर्वसाजात्यम् । अथ प्रमाणत्वादिना विशेषेण साजात्यं विवक्षित्वेदमुच्यते, तर्हि लक्ष्यस्यापि प्रमाणत्वेन साजात्याद्व्यवच्छेद्यकोटिप्रविष्टतया सङ्ग्राह्याभावप्रसङ्गः । लक्ष्यस्य यत्प्रमाणत्वादिभिः सजातीयं तद्व्यवच्छेद्यम् , नच लक्ष्यस्य लक्ष्यं सजातीयम्, षष्ठ्यर्थस्य भेदव्यवहितत्वादिति चेत् , एवं तर्हि लक्ष्यापेक्षया भिन्नाद्व्यवच्छेद इत्येवोच्यताम् , कृतं प्रमाणत्वादिना साजात्येन प्रकृतानुपयोगिना वर्णितेन, यदा च लक्ष्यादन्यत्वं परेषामवगतं तदा परस्मादन्यत्वमपि लक्ष्यस्यार्थादवगम्यत इति सिद्धमग्रत एव लक्षणप्रयोजनमिति वैयर्थ्यमेव स्याल्लक्षणाख्यानस्येति ।

शारदा

प्रत्यक्षप्रमासामान्यसाधारण्यासम्भवाल्लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण साजात्यं नाभिधानीयमिति भावः। रूपान्तरं किं प्रमात्वं वा तदतिरिक्तं वा, द्वितीये विजातीयेति । वैयर्थ्यादिति । **सजातीयपदेनैव विजातीयसङ्ग्रहसम्भवादिति भावः। इदमुपलक्षणम्–''तर्हि' लक्ष्यस्यापी''त्यग्रिमग्रन्थानुसारेण साजात्यस्य भेदगर्भताया इदानीमप्रतीत्या लक्ष्यस्यापि प्रमेयत्वादिना स्वसजातीयतया सङ्ग्राह्याभावप्रसङ्गोऽपि द्रष्टव्यः । आद्यमाशङ्कते** अथेति । **लक्षणसामान्यखण्डनौपयिकत्वाद्विचारस्यास्यादिपदेन प्रमाणभिन्नलक्षणे विभज्यमानतावच्छेदकं रूपं ग्राह्यम् । व्यवहितत्वात् = व्याप्यत्वात् । तद्भिन्नत्वतद्गतधर्मवत्त्वाभ्यां वस्तुविशिष्टत्वमेव साजात्यमिति भावः । एवं तर्हि = विजातीयपदेनेव सजातीयपदेनापि लक्ष्यान्यस्यैव ग्रहणे ।** उच्यतामिति **लाघवादिति भावः । यदाचेत्यादिकं दूषणं तु सजात्याभिधानेऽपि, तत्प्रतीतये लक्ष्यान्यत्वस्य प्रत्येतव्यत्वात्।** अग्रत इति । **अनवधेयवचनतापरिहाराय प्रतिपाद्ये जनेऽवश्यापेक्षणीयाया लक्षणजिज्ञासाया लक्षणज्ञानेऽलक्ष्यव्यावृत्तिज्ञानजनकत्वरूपेष्टसाधनताज्ञानाधीनत्वादिति भावः ।** लक्षणप्रयोजनमिति । **लक्ष्यान्यत्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकं हि न प्रमेयत्वादिकमसम्भवात्, नापि लक्ष्यालक्ष्यसाधारणं रूपान्तरं ज्ञानत्वादिकम्,**

भारती

रूपान्तर से साजात्य विवक्षित है यह द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह रूपान्तर क्या प्रमात्व है या प्रमात्व से अतिरिक्त; यदि प्रमात्व से अतिरिक्त कहें तो उक्त लक्षण में विजातीय पद का उपादान व्यर्थ हो जायेगा, क्योंकि प्रमेयत्वादि रूपों से सभी पदार्थों के सजातीय होने से विजातीय व्यावर्तनीय कोई नहीं है ।

यदि कहें कि प्रमाणत्व रूप (प्रमात्व रूप) से साजात्य की विवक्षा कर सजातीय विजातीय से व्यावृत्ततया लक्ष्य ज्ञान के लिए उक्त लक्षण किया गया है, तो यह कहना युक्ति सङ्गत नहीं है । क्योंकि प्रमाणत्व रूप से लक्ष्य भी अपने आपका सजातीय है अत: लक्ष्य का व्यावर्त्य कोटि में प्रवेश होने से लक्ष्य का भी संग्रह नहीं हो पायेगा, अर्थात् उक्त लक्षण लक्ष्य में न जाने से अव्याप्त हो जायेगा ।

अस्तु वा विवक्षावैचित्रीवशात्कथमपीदृशमभिधानम्, तथापि न तावदनेन लक्षणेनानवगतेनैव व्यवच्छिन्नप्रतीतिसम्भवः,

शारदा

तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यानुमित्यादावलक्ष्येऽवृत्तेस्ततो व्यावृत्तिग्रहानुपपत्तेः, अपि तु लक्ष्यस्यासाधारणमेव रूपम् तादृशमपि च न लक्ष्यतावच्छेदकन्यूनवृत्ति, लक्ष्यतावच्छेदकाधिकरणादपि भेदग्रहापत्तेः, तथाच तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यालक्ष्येषु प्रतीतौ तदवच्छिन्नानुयोगिताकस्यैवालक्ष्यभेदस्याभीष्टस्यान्यथानुपपत्त्या सिद्धिः । तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य तदवच्छिन्नानुयोगिताकस्य सिद्धावपि तत्तदसाधारणरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य न सिद्धिरिति तु न वदितुं युक्तम्, लक्षणप्रतीतावपि तदसिद्ध्यापत्तेः, समाधानं तु समानमिति । नचानुमित्यादिव्यावृत्तिफलं प्रत्यक्षलक्षणमित्येवमेव प्रयोजनप्रतीतिरपेक्षणीयेति वाच्यम्; अनुगताननतिप्रसक्तरूपं विनाऽऽदिशब्दाप्रवृत्तेरनुमित्याद्यनुगमकरूपस्य प्रत्यक्षव्यावृत्तस्यैव वक्तव्यत्वात्, अन्यथाऽसङ्कुचितेनादिपदेन प्रत्यक्षस्याप्युपग्रहे तस्यापि व्यवच्छेद्यत्वापत्तेरिति भावः ।

विवक्षावैचित्रीति। **लक्ष्यान्यस्यैव लक्ष्यसजातीयविजातीयतया विवक्षेत्यर्थः। ईदृशमभिधानम् = 'सजातीयविजातीयव्यवच्छिन्नलक्ष्यप्रतीत्यर्थं लक्षण'मित्यभिधानम् । 'यदाचे'त्यादिनोक्तं दूषणं वस्तुतो लक्ष्यान्यस्यैव लक्ष्यसाजात्यादिनाऽभिधाने न सप्रसरमित्यभिमानेनेदम्। वस्तुतस्तु तत्रापि दूषणमुक्तमस्त्येव, वैजात्यस्य तदवृत्तिधर्मवत्त्वरूपस्य**

भारती

यदि कहें कि प्रमाणत्वादि धर्म से लक्ष्य का जो सजातीय होता है वह व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) है लक्ष्य अपने आपका सजातीय नहीं है, कारण कि षष्ठ्यर्थ (सादृश्य) भेद का व्याप्य होता है । (क्योंकि तद्भिन्नत्वतद्गतधर्मवत्त्व उभय सम्बन्ध से वस्तु विशिष्टत्व ही सादृश्य है वह भेद के विना रह नहीं सकता ।) तो यह कहना युक्ति विरुद्ध है क्योंकि इस प्रकार विजातीय पद के समान सजातीय पद के द्वारा भी यदि लक्ष्य से भिन्न का ही ग्रहण करें तो "लक्ष्य से जो भिन्न है उससे लक्ष्य का व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) करना ही लक्षण का प्रयोजन है" इतना ही कहें, प्रकृत में अनुपयोगी प्रमाणत्वादि रूप से साजात्य की विवक्षा का वर्णन करना व्यर्थ है और जब लक्ष्य से अन्यत्व पर पदार्थों में अवगत हो गया तो पर पदार्थों से अन्यत्व भी लक्ष्य में अर्थात् ज्ञात हो ही गया, ऐसी स्थिति में लक्षण निर्माण के पूर्व ही लक्षण का प्रयोजन (व्यावृत्ति) सिद्ध हो जाने से लक्षण का कथन करना व्यर्थ है ।

अथवा मान लिया जाय कि – लक्ष्य के सजातीय विजातीय रूप से लक्ष्य से अन्य की विवक्षा होने से "सजातीय विजातीय से व्यवच्छिन्न लक्ष्य की प्रतीति के लिए लक्षण है" यह कथन है । तथापि अज्ञात इस लक्षण से व्यवच्छिन्न प्रतीति नहीं हो सकती, क्योंकि अज्ञात लक्षण से व्यवच्छिन्न (व्यावृतत्त्व) प्रतीति मानने पर – जिसे लक्षण ज्ञात नहीं है उसे भी इतर से व्यावृत्त लक्ष्य की प्रतीति होनी चाहिए । एवं अज्ञात लक्षण से इतर व्यावृत्त लक्ष्य स्वरूप ज्ञान रूप प्रयोजन की सिद्धि होने से लक्षण का निरूपण (ज्ञानानुकूल व्यापार) करना भी व्यर्थ है ।

अतिप्रसङ्गात् । नापि ज्ञातेन, दुरवधारणत्वात्, न तावदिन्द्रियार्थ-सन्निकर्षोत्पत्तिः प्रत्यक्षा, अप्रत्यक्षविशेषणत्वात्, नापि कार्येण

शारदा

भेदाघटितत्वेऽपि भेदप्रतीत्यविनाभूतप्रतीतिकत्वादिति । अतिप्रसङ्गादिति । **लक्षणमजानतोऽपि व्यावृत्तिधीप्रसङ्गात् लक्षणनिरूपणवैफल्यप्रसङ्गाच्चेत्यर्थः । दुरवधारणत्वमुपपादयति** न तावदिति । **यद्यपि व्यावृत्तत्वेनैव लक्षणज्ञानस्यापेक्षणीयत्वात्तस्य लक्षणान्तरज्ञानाधीनत्वे-नानवस्थादिकमिति सर्वत्रैव दुरवधारणता शक्या वक्तुम्, विवेचितश्चैतल्लक्षणसामान्यखण्डने, तथापि प्रकृतेऽतीन्द्रियघटितत्वेनापि दुरवधारणता सम्भवत्येवेत्यभिप्रायेणेदम् ।** अप्रत्यक्षेति। **यद्यपिविशेषणयोरिन्द्रियतत्सन्निकर्षयोरिव विशेष्यीभूतोत्पत्तेरप्यतीन्द्रियत्वम्, इन्द्रियस्य चार्वाकादिसम्मतगोलकात्मकतायास्तात्पर्यटीकादौ निरस्तत्वेनातीन्द्रियत्वे तत्सम्बन्धस्यापि तथात्वात्, सम्बन्धिनोर्योग्यत्वे एव तस्य योग्यत्वात्, उत्पत्तेरप्याद्यक्षणसम्बन्धरूपत्वात्, तथापि कार्यत्वमेवोत्पत्तिशब्देन विवक्षितम्, तच्च तन्निष्ठान्यथासिद्ध्यनिरूपकत्वे सति तद्व्याप्यत्वमिति भावेनाप्रत्यक्षविशेष्यत्वं नाभाणि । वस्तुतस्तु साध्याभाववदवृत्तित्वा-दिरूपव्याप्यत्वस्यस्यापि नैन्द्रियकत्वम्, साध्याभावाधिकरणत्वस्यातीन्द्रियसाधारणत्वादिति वक्ष्यतेऽनुमानमानभङ्गे । इन्द्रियत्वस्य साक्षात्कारकरणत्वात्मकत्वेनान्योन्याश्रयस्तु न दर्शितः, तदीयनिरुक्त्यन्तरस्यापि सम्भवात्, वक्ष्यते चैतत् । नचेन्द्रियादिकमुपनीतमेव विशेषणतया प्रत्यक्षे भासताम्, उपनयस्य मानान्तरमूलकत्वात् । अस्तु प्रकृतेऽपि मानान्तरमिति चेत्तत्राह**

भारती

ज्ञात लक्षण से भी इतरव्यावृतत्व रूप से लक्ष्य की प्रतीति नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षण का ज्ञान होना ही सम्भव नहीं है । कारण कि लक्षण का ज्ञान भी किसी प्रमाण के द्वारा ही करना होगा, उसमें प्रत्यक्ष प्रमाण से लक्षण का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि उक्त लक्षण में अप्रत्यक्ष (प्रत्यक्ष का अविषय) विशेषण होने से इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पत्ति का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता । (इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पत्ति के अन्तर्गत इन्द्रिय अतीन्द्रिय है इन्द्रिय रूप प्रतियोगी के अप्रत्यक्ष होने से उसका अर्थ के साथ सन्निकर्ष भी अप्रत्यक्ष है एवं आद्यक्षणसम्बधरूप उत्पत्तिपदार्थ के प्रत्यक्ष का अविषय क्षण (काल) घटित होने से उत्पत्ति की भी प्रत्यक्षप्रमाण से प्रतीति नहीं हो सकती । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि – लक्षण का ज्ञान भी इतर व्यावृतत्वरूप से ही अपेक्षित है और इतरव्यावृतत्व रूप से लक्षण का ज्ञान भी लक्षणान्तर (लक्षण का लक्षण) के अधीन है इस प्रकार उत्तरोत्तर लक्षण ज्ञान के लिए लक्षण की अपेक्षा होने स अनवस्था दोष भी होने से लक्षण का ज्ञान नहीं हो सकता'' यह पूर्वोक्त दोष भी यहाँ विद्यमान है ।) यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यद्यपि मूलकार ने इन्द्रिय एवं सन्निकर्ष रूप विशेषण को ही अप्रत्यक्ष कहा है और उत्पत्ति को कार्यत्वरूप मानकर विशेष्य (उत्पत्ति) को अप्रत्यक्ष नहीं कहा । किन्तु सूक्ष्म विचार से कार्यत्व के तन्निष्ठान्यथासिद्ध्यनिरूपकत्वे सति तद्व्याप्यत्व'' (कारणवृत्ति अन्यथा सिद्धि का अनिरूपक होकर कारण का व्याप्य) रूप होने से तद्घटक व्याप्यत्व भी अप्रत्यक्ष ही है । अतः मूलकार का उक्त कथन इस विशेष्य प्रत्यक्षत्व दोष का

लिङ्गेन तदनुपपत्त्या वा तदवगमः, ताभ्यां सामान्यतः कारणमात्राक्षेपेण कारणगतानुगतरूपासिद्धावेकरूपलक्षणासिद्धेः। कार्यस्यैकजात्यादेकजातीयकारणसिद्धिरिति चेत्तर्हि कार्यगतैकजात्यस्य पूर्वमवश्यप्रत्येतव्यत्वाङ्गीकारे तत एव सजातीयविजातीयव्यवच्छेदप्रतीतिरस्तु कृतमनया पारम्पर्यकुसृष्ट्या।

शारदा

नापीति । **कार्येण = प्रत्यक्षबोधेन । लिङ्गता तादात्म्येन । तदवगमः = इन्द्रियतत्सन्निकर्षावगमः। ताभ्यां = अनुमानार्थापत्तिभ्याम्।** सामान्यत इति । **कार्यत्वस्य सकारणकत्वेनैव व्याप्तेरिति भावः । कारणानुगमं विना कार्यानुगमस्याकस्मिकत्वप्रसङ्गादनुगतधर्मावच्छिन्नकार्यतात्वलिङ्गेन जन्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतायामनुगतधर्मावच्छिन्नकारणतानिरूपितत्वसाधने इतरबाधसहकारेणेन्द्रियत्वावच्छिन्नकारणतासिद्धौ तत्सन्निकर्षस्यापि प्रतीतिसम्भवः, इन्द्रियसन्निकर्षत्वेनापि कारणत्वादित्याशङ्कते** कार्यस्येति। **ऐकजात्यात् = अनुगतधर्मावच्छिन्नत्वात् ।** प्रतीतिरस्त्विति । **जन्यप्रत्यक्षत्वेनेवेन्द्रियार्थेत्यादिलक्षणेनापि नित्यप्रत्यक्षं न सङ्गृह्यते, अस्तु वा प्रत्यक्षत्वस्यातिप्रसक्तस्यापि जन्यतावच्छेदकत्वम्, क्षत्यभावात्, जन्यतायाः स्वावच्छिन्नत्वे चात्माश्रयात्, वस्तुतस्तु प्रत्यक्षत्वमीश्वरज्ञानेऽप्रामाणिकमेव, अतएव–''अनुभवत्वजातेरीश्वरज्ञानवृत्तित्वे मानाभावः, एवं प्रत्यक्षत्वस्यापि, नच तत्र प्रत्यक्षत्वानङ्गीकारे तस्य जन्यमात्रं**

भारती

उपलक्षण है । व्याप्यत्व का अतीन्द्रियत्व अनुमान खण्ड में व्यक्त होगा ।)

उपनीत इन्द्रियादि का विशेषणतया ही प्रत्यक्ष में मान हो सकता है किन्तु उपनयमानान्तर मूलक होता है अतः प्रकृत में मानान्तर विद्यमान है यह ''नापि'' इत्यादि से कह रहे हैं। यदि कहें कि प्रत्यक्ष बोध रूप कार्यात्मक लिङ्ग से या प्रत्यक्षबोध रूप कार्य की अन्यथानुपपत्ति रूप अर्थापत्ति प्रमाण से इन्द्रिय-इन्द्रियसन्निकर्ष का अवगम हो जायेगा। (प्रत्यक्ष बोध के तादात्म्येन लिङ्ग होने से प्रकृत में ''प्रत्यक्ष बोधः सकारणकः कार्यत्वात् घटवत्'' यह अनुमान होगा ।) तो यह कह नहीं सकते, क्योंकि अनुमान और अर्थापत्ति के द्वारा सामान्यतः कारणमात्र की ही सिद्धि होगी, कारण कि कार्यत्व में सकारणकत्व की ही व्याप्ति है न कि इन्द्रियत्व तथा इन्द्रियसन्निकर्षत्वादि की । अतः उसके द्वारा सामान्यतः कारण मात्र का ही आक्षेप होगा, कारण अनुगत रूप की सिद्धि न होने से एक रूप लक्षण की सिद्धि भी न होगी।

यदि कहें कि प्रत्यक्ष रूप कार्य के एक जातीय अर्थात् प्रत्यक्षत्व रूप अनुगत धर्मावच्छिन्न होने से एक जातीय = अनुगत धर्मावच्छिन्न कारण सिद्धि हो जायेगी । (तात्पर्य यह है कि – कारण के अनुगम के विना कार्य का अनुगम नहीं होता, अतः ''जन्य प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ना कार्यता अनुगत धर्मावच्छिन्न कारणता निरूपिता अनुगत धर्मावच्छिन्न कार्यतात्वात्'' इत्याकारक इतर बाध सहकृत अनुमान के द्वारा इन्द्रियत्वावच्छिन्न कारणता की सिद्धि होने पर इन्द्रिय सन्निकर्ष की प्रतीति हो जायेगी, क्योंकि इन्द्रियसन्निकर्षत्वेन भी करणता होती है ।) तो

नन्वेतावतापि न प्रकृतलक्षणखण्डनं भवत्यव्याप्तेरति- व्याप्तेर्वाऽनुद्भावनात् । मैवम्, प्रथमभावितयाऽवश्यानुष्ठेयतया

शारदा

प्रत्युपादानविषयकलौकिकप्रत्यक्षत्वेन हेतुत्वानुपपत्तिरिति वाच्यम्; उपादानप्रत्यक्षहेतुतायां लौकिकविषयतायाः प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वेन ज्ञानत्वस्यावच्छेदकत्वसम्भवाद्भगवज्ज्ञाने प्रत्यक्षत्वानङ्गीकारेऽपि क्षतिविरहात्, लौकिकविषयतायाः प्रत्यक्षत्ववन्मात्रनिरूपितत्वे मानाभावादीश्वरज्ञाने प्रत्यक्षत्वव्यवहारस्य लौकिकविषयितावत्त्वनिबन्धनत्वेनौपचारिकत्वा'' दित्यादिकं परामर्शप्रकरणे गदाधरभट्टाचार्यैरुक्तम्, लक्ष्यतावच्छेदकस्यालक्षणत्वे च प्रत्यक्षत्वेनाभिमतव्यक्तिविशेषमुपादाय तद्व्यक्तिवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातित्वेनैव प्रत्यक्षत्वस्य लक्षणत्वसम्भवः, तद्व्याप्यत्वं तु तद्भिन्नत्वगर्भमिति भावः। पारम्पर्येति । पूर्वं प्रत्यक्षत्वा- वच्छिन्नकार्यताज्ञानं तत इन्द्रियत्वेन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नकारणताज्ञानं ततः परमिन्द्रियार्थे- त्यादिलक्षणज्ञानमिति परम्परा, तस्याः कुसृष्टित्वं गौरवग्रस्ततया । अव्याप्तेरित्यादि दोषान्तरस्याप्युपलक्षणम् प्रथमभावितया = प्रथमोपस्थिततया कदाचित्प्रथमोपस्थितस्यापि लघोर्धर्मस्य न लक्षणान्तरवैयर्थ्यापादकत्वमित्यत आह अवश्यानुष्ठेयतयेति । अवश्यप्रत्येतव्यतयेत्यर्थः । कार्यताया अवच्छेदकधर्मप्रतीतिसापेक्षप्रतीतिकत्वादिति भावः। तथाच नियमेन प्रथमापेक्षणीयोपस्थितिकत्वस्य जन्यतावच्छेदकधर्मे लाभेन इतर भेदानुमिति- मुपदधानस्य तस्य स्वोपस्थित्यधीनोपस्थितिकलक्षणान्तरान्यथासिद्ध्यापादकत्वं निराबाधमेवेति भावः । प्रदीपे सति । नन्वेवं पुरुषस्य दुष्टत्वेऽपि द्वयोर्लक्षणत्वमुपपन्नमेव, स्वसमानाधिकरण- लघुभूतधर्मान्तरघटितत्वाभावेन वैयर्थ्यानवकाशादित्यत आह सर्वेति । वस्तुतस्त्वित्यादिः। साधनं = लिङ्गत्वेनाभिमतं, लक्षणमपीतरभेदानुमाने साधनमेव । दोषः = अभिमतप्रमित्य- नुत्पादप्रयोजकत्वम् । तच्च क्वचिज्ज्ञातस्येवाज्ञातस्यापि । स्वप्रयोजकत्व स्वप्रयोजकज्ञान- विषयत्वान्यतरसम्बन्धेन तादृशानुत्पादवैशिष्ट्याभिधाने नाननुगमः। सम्भवन्नेवंविधोलघूपायोऽ- वश्यापेक्षणीयप्रागुपस्थितिकोव्याप्यो धर्मो यस्य = यदपेक्षया तस्य भावः । स्वसमनियतधर्मविषयकोपस्थितिजन्योपस्थितिकत्वमिति यावत्। स्वरूपासिद्धिः = तत्तद्देशवृत्त्यभावप्रतियोगित्वम्, तत्तद्देशश्च प्रत्यक्षे गोलकमनुमितौ पक्ष इत्येवं विशिष्यैव द्रष्टव्यः । प्रमाणानाम् =प्रमाणत्वेनाभिमतानाम्। हेत्वाभासखण्डनप्रकरणेऽपि ''स्वरूपासिद्धिः सर्वप्रमाणसाधारणो दोष'' इति वक्ष्यति । तथा चान्यथासिद्धत्वरूपवैयर्थ्यमस्त्येवेत्यौचित्यं प्रथमोपस्थितस्यैव लक्षणतायाः, अन्यथा सम्भवति लघौ गुराववच्छेदकत्वानभ्युपगमोऽपि न स्यादिति भावः । मा भूदिति । प्रौढिवादेनेदम्, यथाश्रुते दूषणान्तरस्य सद्भावात्, तथाहि–आत्ममनः सन्निकर्षस्याप्यर्थेन्द्रियसन्निकर्षत्वेन तज्जन्यस्मृतावतिव्याप्तिः अर्थपदेन स्वविषयविवक्षणेऽप्यात्मविषयकानुमित्यादौ सा, इन्द्रियकरणकत्वविवक्षायामपि सा तदवस्था,

भारती

यह तार्किकादि का कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर – कार्यगत एक जाति का अर्थात् कार्यतावच्छेदक अनुगत धर्म का ज्ञान प्रथम (पहले ही) अवश्य मानना होगा, ऐसी स्थिति में उस अनुगत कार्यतावच्छेदक धर्म के द्वारा ही लक्ष्य में सजातीय विजातीय से व्यवच्छेद = व्यावृतत्त्व (सजातीय विजातीय से व्यावृत्त लक्ष्य) की प्रतीति भी हो जायेगी,

च लघोरूपायात्साध्यसिद्धौ भवन्त्यां चरमभावितयाऽवश्यानुष्ठेयत्वाभावेन च गुरावुपाये प्रवर्तमानस्य तवैवेदं दोषोद्भावनं प्रदीपे प्रदीपं प्रज्वाल्य तमोनाशाय यतमानस्येव पुंसः। नहि तत्र दीपान्तरस्य कश्चिदोषः, किन्तु तथाकारी पुरुष एव पर्यनुयोज्यः। सर्वसाधनसाधारणोऽयं दोषो यत्सम्भवदेवंविधलघूपायत्वं नाम, स्वरूपासिद्धिरिव सर्वप्रमाणानाम्। तस्मान्मा भूदतिव्याप्त्यादिर्दोषः, सामान्यदोषादेवेदं लक्षणं दुष्टमिति ।

शारदा

शिरोमण्यादिभिरनुमित्यादेर्मनःकरणकत्वाभ्युपगमादिति इन्द्रियत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वे सति प्रमात्वमिति तु निरसिष्यते । एतेन–व्यर्थविशेषणत्वमपि यदा न साधनदोषः, तज्ज्ञानस्यानुमितितत्कारणान्यतरानुत्पादाप्रयोजकत्वात्, पुरुषस्य तु तत्राधिकेनैव निग्रहात्, तदा लक्षणान्तराधीनसिद्धिकस्यापि तदघटितस्य लक्षणस्यादुष्टतायां का कथा, नहि लक्षणस्यैकस्योपस्थित्यनन्तरं कदापि लक्षणान्तरमितरभेदं नानुमापयति, अन्ततोऽनुमित्सयैव तत्सम्भवात्, नच तदुपधानं लक्षणलक्षणम्, अपि तु लक्ष्यतावच्छेदकसमनैयत्यम्, न च जन्यतातदवच्छेदकयोर्नसमनैयत्यम्, न च सम्भवति लघावित्यपि नाप्रयोजकम्, एवञ्च जन्यतावच्छेदकप्रतीतिदशायां जन्यताया लक्षणत्वं किमिति न स्यादिति–कुचोद्यस्य नावसरः। एतेनेति । **साक्षात्कारित्वप्रतीतेरुक्तलक्षणप्रतीतिहेतुताव्यवस्थापनेनेत्यर्थः ।** तदवगमेति। **इन्द्रियार्थेत्यादिलक्षणावगमेत्यर्थः। अस्य = साक्षात्कारित्वस्य । अन्यदपि =**

भारती

अतः उसके लिए "पहले प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न कार्यता का ज्ञान, फिर उससे इन्द्रियत्व-इन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्न कारणता का ज्ञान, फिर उससे इन्द्रियार्थसन्निकर्ष" इत्यादि लक्षण का ज्ञान" इस प्रकार गौरवग्रस्त परम्परा की कल्पना करना व्यर्थ है ।

प्रश्न – उक्त प्रकार से युक्तियों के प्रदर्शन से भी इन्द्रियार्थसन्निकर्ष" इत्यादि प्रकृत लक्षण का खण्डन नहीं होता, क्योंकि आपने उक्त लक्षण में अव्याप्ति-अतिव्याप्ति दोष का उद्भावन नहीं किया । (यहाँ अव्याप्ति शब्द असम्भव दोष का भी उपलक्षण है)

समाधान – कार्य प्रतीति के अवच्छेदक धर्म प्रतीति सापेक्ष होने से प्रथम उपस्थित एवं अवश्य ज्ञातव्य होने लघुभूत उपाय से ही जब कार्य (उद्देश्य) की सिद्धि हो रही है, तो उसे छोड़कर जो पश्चात् उपस्थित है तथा अवश्य ज्ञातव्य भी नहीं है ऐसे गुरुभूत उपाय में आपका प्रवृत्त होना – एक प्रदीप के प्रज्ज्वलित रहते हुए प्रदीपान्तर को प्रज्ज्वलित कर तमोनाश के लिए प्रयत्नशील पुरुष के समान आप (तार्किक) का ही दोष है । उक्त दृष्टान्त में जैसे प्रदीपान्तर का कोई दोष नहीं है, अपितु एक प्रदीप के प्रज्ज्वलित रहते प्रदीपान्तर को प्रज्ज्वलित कर तमोनाश के लिए प्रयत्नशील पुरुष का ही दोष है उसी प्रकार प्रकृत गुरुभूत उपाय का दोष नहीं है अपितु लघु उपाय के रहते गुरु उपाय में प्रवृत्तिशील आपका ही दोष है । अतः आप ही आक्षेप के भाजन होंगे । (यहाँ प्रकृत में सजातीय विजातीय से व्यवच्छिन्न

एतेन द्वितीयोऽपि निरस्तः, साक्षात्कारित्वावगममन्तरेण तदवगमानुपपत्तेः, तदवगमाच्चास्य प्रतीतावन्योन्याश्रयप्रसङ्गः । अस्तु वाऽन्यदपि किञ्चिदिन्द्रियजत्वे लिङ्गं तथापि तदेव

शारदा

विषयत्वावच्छिन्नकारणताकज्ञानत्वादि । इन्द्रियजत्वे इति । **इन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वमिवेन्द्रियत्वावच्छिन्नजत्वमपि प्रकृतलक्षणघटकं सम्भवतीत्याशयेनेदम् । एवमग्रेऽपि।** लिङ्गमिति । **तथाच तेनानुमितेन्द्रियजत्वघटितलक्षणस्य साक्षात्कारित्वप्रत्यायकत्वोपगमे नान्योन्याश्रय इति भावः । यद्यपीन्द्रियप्रतीत्यनन्तरमेव तज्जत्वमुक्तलिङ्गेनानुमीयते, इन्द्रियमेव तु साक्षात्कारित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकावच्छिन्नतया सिद्ध्यतीति प्रागुक्तम्, कार्यतावच्छेदकञ्च लाघवात् साक्षात्कारित्वमेव, न तु विषयत्वावच्छिन्नकारणताकज्ञानत्वादिकम्, एवञ्चेन्द्रियजत्वं साक्षात्कारित्वप्रतीत्यधीनप्रतीतिकमेवेत्यन्योन्याश्रयो दुर्वारः । इन्द्रियजत्वघटितमेव च न साक्षात्कारित्वम्, इन्द्रियानुपनये साक्षात्करोमीत्य-**

भारती

लक्ष्य (प्रत्यक्ष) के ज्ञान रूप फल का लघुभूत उपाय ''प्रत्यक्षत्व'' रूप कार्यगत अनुगत जाति इससे ''प्रत्यक्षत्व जाति विशिष्टम्'' या ''प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नम् प्रत्यक्षम्'' इतना ही प्रत्यक्ष का लक्षण हो सकता है । ''इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नम्'' इत्यादि पूर्वोक्त लक्षण उक्त फल के लिए गुरुभूत उपाय है । तथाच स्वोपस्थित्यधीन उपस्थितिक लक्षणान्तर की अन्यथासिद्धि की आपादकता में कोई बाधा नहीं । देश शब्द से प्रत्यक्ष में गोलक अनुमिति में पक्ष लेना है यदि कहें कि इस प्रकार से पुरुष के दुष्ट होने पर भी उक्त दोनों लक्षण तो हो ही सकते हैं क्योंकि गुरुलक्षण के स्वसमानाधिकरण लघुभूत धर्मान्तर घटित न होने से वैयर्थ्य नहीं है, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तुतस्तु जैसे तत्तद्देशवृत्ति अभाव प्रतियोगित्वरूप स्वरूपासिद्धि प्रमाणत्वेन अभिमत सभी प्रमाणों का साधारण (सामान्य) दोष है, उसी प्रकार उपायगत गुरुता के अपेक्षा उक्त प्रकार उपायगत लघुता (लाघव) का सम्भव होना सभी साधनों का साधारण दोष है । तथाच लधुभूत उपाय से ही कार्य सिद्ध होने पर गुरुभूत उपाय का अन्यथा सिद्धत्व रूप वैयर्थ्य है ही । तस्मात् उक्त लक्षण में अतिव्याप्ति आदि दोष भले ही नहीं है किन्तु उक्त लक्षण तो उक्त सामान्य दोष से ही दुष्ट हो गया ।

''उक्त लक्षण ज्ञान के प्रति साक्षात्कारित्व का ज्ञान हेतु है'' इस प्रकार सिद्ध करने से ''साक्षात्कारित्व के ज्ञान के लिए साक्षात्कारित्व के व्याप्य दर्शन के लिए उक्त लक्षण किया गया है'' यह द्वितीय विकल्प भी निरस्त हो जाता है । क्योंकि साक्षात्कारित्व के अवगम (ज्ञान के विना ''इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्न'' इत्यादि लक्षण का ज्ञान नहीं हो सकता, और उक्त लक्षण ज्ञान के द्वारा ही साक्षात्कारित्व रूप लक्ष्य का ज्ञान मानने पर अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होता है ।

यदि कहें कि इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वादि लक्षण का अनुमापक (लिङ्ग) साक्षात्कारित्व है।

साक्षात्कारित्वाविनाभूततया प्रत्यक्षलक्षणमुपन्यस्यतां सन्निहितप्रतिपत्तिकत्वात् । न च तदवश्यं व्यापकं वक्तव्यम्,

शारदा

नुव्यवसायाभावापत्ते। यदि च साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायगोचरीकृतेनैवेन्द्रियजत्वग्रहस्तदा 'साक्षात्कारित्वप्रतीतये प्रवृत्तलक्षणमि'ति बालस्यैवालापः । तथापि लाघवाद्यप्रतिसन्धानदशायां विषयत्वावच्छिन्नकारणताकज्ञानत्वादेर्जन्यतावच्छेदकत्वग्रहेणे-न्द्रियादिप्रतीतिसम्भव इत्यभिमानः । अविनाभूततया = समव्याप्ततया, अन्यथा लक्षणत्वानुपपत्तेः । ननु विषयत्वावच्छिन्नकारणताकज्ञानत्वं न विवक्षितलौकि-कालौकिकसाधारणसाक्षात्कारित्वसमनियतम् लौकिकप्रत्यक्षं प्रत्येव विषयत्वेन कारणत्वादिति चेन्न, अतिप्रसक्तस्याप्यवच्छेदकत्वं सर्वांशे च किमपि न लौकिकं प्रत्यक्षमिति मते विषयत्वेन यत्किञ्चिद्विषयस्यैव कारणतासम्भवेनोक्तकारणताकज्ञानत्वस्य लौकिकालौकिकसाधारणत्वात्, विषयताशब्देन विशेष्यताया विवक्षासम्भवाच्च, जन्यत्वे सति ज्ञानाकरणकज्ञानत्वादेर्वा समनियतलिङ्गताया उक्तत्वादिति भावः । शङ्कते नचेति । नहीत्यर्थः। तद् = इन्द्रियत्वावच्छिन्नजनकताकजन्यताया लिङ्गम्, न त्ववच्छेदकम्, तस्य समनैयत्यात्। व्यापकं = तादृशजन्यतासमनियतम् साक्षात्कारित्वस्य समनैयत्यं त्वार्थिकं प्रत्येतव्यम् , तस्यैव लक्ष्यतावच्छेदकत्वात् । लिङ्गस्य = लिङ्गत्वस्य, धर्मविशेषनिष्ठस्य

राजहंसः

प्रत्यक्षखण्डनशारदायां राजहंसः

विशेष्यताया विवक्षासम्भवाच्चेति । विशेष्यांशे सर्वस्यापि प्रत्यक्षस्य लौकिकत्वादितिभावः।

भारती

(प्रत्यक्षबोध) को न मानकर अन्य अर्थात् विषय जन्य ज्ञानत्वादि को ही (उक्त लक्षण का अनुमाप को मानेंगे, तथाच विषय जन्य ज्ञानत्वादि के द्वारा अनुमिति इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्व घटित लक्षण से साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) का अवगम होने से अन्योन्याश्रय दोष न होगा,तो इस प्रकार मानने पर साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) का समव्याप्त होने से वही (विषयत्वा-वच्छिन्नकारणताकज्ञानत्व = विषयजन्य ज्ञानत्व) प्रत्यक्ष का लक्षण मान लिया जाय, क्योंकि वह इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वादि के ज्ञान के लिए प्रथम ज्ञातव्य है । (व्याप्य होकर व्यापक होना समनियत होता है प्रकृत में विषयजन्य ज्ञानत्वादि साक्षात्कारित्व का व्याप्य भी है और व्यापक भी, अत: साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) का समनियत है । समव्याप्त ही लक्षण होता है ।) (अथवा यदि – ''लौकिक प्रत्यक्ष के प्रति ही विषयत्वेन कारणता होती है अत: विषयत्वावच्छिन्न कारणताकज्ञानत्व लौकिक अलौकिक साधारण साक्षात्कारित्व का समनियत नहीं है । ऐसा मानें तो – जन्यत्वेसति ज्ञानाकरणकज्ञानत्व (जन्यत्वसमानाधिकरणज्ञानाकरणज्ञानत्व) को ही साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) का अविनाभूत अर्थात् समनियत मान लिया जाय । किन्तु इसके भी सन्निहितप्रतिपत्तिक (प्रथम ज्ञातव्य) होने से इन्द्रियजत्व में लिङ्ग (अनुमापक) मानने की अपेक्षा उसे ही प्रत्यक्ष का लक्षण मान लिया जाय ।)

लिङ्गस्य तद्व्याप्यत्वेनैवोपपत्तेरिति चेन्न; यत्र लिङ्गमव्यापकत्वान्नास्ति तत्रेन्द्रियजत्वस्य प्रमाणाभावात्प्रत्येतुमशक्यत्वेन कथं ततः साक्षात्कारित्वावगमः? यदा तु क्वचित्प्रत्यक्षजातीये एव

शारदा

सदनुमितिजनकतावच्छेदकत्वस्येति यावत् । तदिति । **साध्यत्वेनाभिमतेत्यर्थः । उक्तजन्यत्वानुमानस्य न विषयत्वावच्छिन्नकारणताकज्ञानत्वादिनैवोक्तरीत्येश्वरज्ञानव्यावृत्तसाक्षात्कारित्वसमनियतेन सम्भवः, अपि तु जन्यत्वसमानाधिकरणज्ञानाजन्यज्ञानत्वादिनापि, तद्धि विशेषणज्ञानजन्ये प्रत्यक्षेऽवर्तमानतया साक्षात्कारित्वासमव्याप्तमिति तेनेन्द्रियजत्वानुमानदशायां साक्षात्कारित्वसमनियतस्य धर्मान्तरस्य प्रथममनुपस्थिततया प्रकृतस्य लक्षणत्वोपपत्तिरिति भावः । लिङ्गस्य स्वाधिकरणतया प्रतीत एव साध्यानुमापकताया अतिप्रसङ्गभङ्गाय वाच्यतया जन्यत्वे सति ज्ञानाजन्यज्ञानत्वस्य विशिष्टप्रत्यक्षेऽसद्भावे निरुक्तेन्द्रियजत्वमपि तत्राप्रामाणिकम्, प्रतिवादिवाक्यस्यापि मानान्तरोत्थापकतयैव प्रामाण्यात्, अन्यथा लक्षणाभिधानं विनैवेतरव्यावृत्तिप्रत्यायनापत्तेः, एवं चेन्द्रियजत्वेन साक्षात्त्वप्रतीत्यसम्भवो विशिष्टप्रत्यक्ष इति प्रत्यक्षमात्रे साक्षात्त्वप्रत्ययफलकत्वं प्रकृतलक्षणाख्यानस्य न निर्वाहितमिति प्राह** यत्रेति । इन्द्रियजत्वस्येति । **षष्ठ्यर्थो विषयत्वं प्रमाणघटकप्रमितावप्यन्वेति । ततः = निरुक्तेन्द्रियजत्वात्, प्रकृतलक्षणाद्वा। प्रत्यक्षजातीये=विशिष्टप्रत्यक्षे अनवधारणीयतयेत्यन्वयः,**

भारती

प्रश्न – जन्यत्वसमानाधिकरण ज्ञाना करणक ज्ञानत्व लक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि विशेषण ज्ञानजन्य प्रत्यक्ष में उस (जन्यत्वसमानाधिकरण ज्ञानाकरणक ज्ञानत्व) के न होने से वह (जन्यत्वसमानाधिकरण ज्ञानाकरणक ज्ञानत्व) प्रत्यक्षत्व का समव्याप्त (समनियत) नहीं है, समनियत ही लक्षण होता है । अतः वह प्रत्यक्षत्व का समव्याप्त न होने से साक्षात्कारि अर्थात् प्रत्यक्ष का लक्षण तो नहीं हो सकता है किन्तु इन्द्रिय सन्निकर्ष जत्वादि को ज्ञापक (अनुमापक) लिंग होता है । क्योंकि लिंग का सांध्य व्यापक होना आवश्यक नहीं है । साध्यत्वेन अभिमत का व्याप्य होने से ही लिंग हो सकता है । तथाच जन्यत्व समानाधिकरण (अथवा जन्यत्वविशिष्ट) ज्ञानाकरणक ज्ञानत्वरूप लिंग से इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यत्वादि का ज्ञान (अनुमान) उस ज्ञात इन्द्रिय सन्निकर्षादिघटित उक्त लक्षण के द्वारा साक्षात्कारित्व का अवगम (ज्ञान) करेंगे ।

समाधान- अव्यापक होने से जिस विशिष्ट प्रत्यक्ष में जन्यत्वविशिष्ट ज्ञानाजन्यज्ञानत्व हेतु नहीं है उस में इन्द्रिय जन्यत्वादि का अनुमापक प्रमाण न होने इन्द्रिय जन्यत्वादि (इन्द्रिय सन्निकर्षजन्यत्वादि) का ज्ञान नहीं होगा, ऐसी स्थिति से उस विशिष्ट प्रत्यक्ष में इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यत्वादि साक्षात्कारित्व द्वारा (प्रत्यक्षत्व) का ज्ञान कैसे होगा, अर्थात् नहीं होगा।

(भाव यह है कि- अतिप्रसङ्ग के निरासार्थ लिंग के द्वारा स्वाधिकरण तथा प्रतीत में साध्य का अनुमान मानना होगा, अतः जिस विशेषण ज्ञानाजन्य ज्ञानत्व विशिष्ट ज्ञान में जन्यत्वादिविशिष्ट ज्ञानाजन्य ज्ञानत्व नहीं है उस विशिष्ट ज्ञान में तादृश ज्ञानाजन्य ज्ञानत्व के

प्रमाणाभावादिन्द्रियजत्वमनवधारणीयतया साक्षात्कारित्वव्यापकत्वेनानवगतमपि लक्षणम् , तदा किमपराद्धं लिङ्गान्तरेणाव्यापकेन । अथ यत्र तदिन्द्रियजत्वे लिङ्गं नास्ति तत्र लिङ्गान्तरात्प्रत्येतव्यम्; तथापि तदेवास्तां साक्षात्कारित्वे लिङ्गं कृतमिन्द्रियजत्वानुमानपूर्वकं तदनुमानकल्पनया । अथ तथालिङ्गद्वयं प्रत्येकम-

शारदा

तत्र हेतुः प्रमाणाभावादिति । व्यापकत्वेन = समव्याप्तत्वेन । **यद्यपि विशिष्टप्रत्यक्षेऽनुव्यवसायबलात्साक्षात्कारित्वप्रतीतौ तत्रेन्द्रियजत्वाप्रतीतावपि व्यभिचारग्रहाभावे समव्याप्तत्वावगमसम्भवस्तथापि जन्यत्वविशिष्टज्ञानाजन्यज्ञानत्वस्येन्द्रियजत्वानुमापकतास्थले प्रतिवादिनोपन्यस्ते साक्षात्कारित्वस्य विशिष्टप्रत्यक्षे प्रतीतावपीन्द्रियजत्वाप्रतीतिसम्भवेन व्यभिचारग्रहसम्भव इति भावः** । किमपराद्धमिति । **विशिष्टप्रत्यक्षेऽनवगततयोक्तज्ञानत्वेन्द्रियजज्ञानत्वयोर्द्वयोरेव प्रत्यक्षत्वसमनैयत्यानवगमतौल्ये प्रथमोपस्थितस्यैव लक्षणतोचितेति भावः । लिङ्गान्तरेण = जन्यत्वविशिष्टज्ञानाजन्यज्ञानत्वेन । अव्यापकेन = साक्षात्त्वासमनियतेन । यत्र = विशिष्टप्रत्यक्षे तत् = उक्तज्ञानत्वं लिङ्गं । लिङ्गान्तरं यद्यपि विषयत्वेन विषयजन्यज्ञानत्वं जन्यत्वे सति ज्ञानाकरणकज्ञानत्वादिकं वा न विवक्षितं सम्भवति, समनैयत्योक्त्या दत्तोत्तरत्वात्, 'प्रत्येकमव्यापकतये' त्यग्रिमग्रन्थासङ्गतेश्च । नापि साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायविषयज्ञानत्वम् तस्य निर्विकल्पकावृत्तित्वेनाग्रिमग्रन्थसङ्गतावपि साक्षात्कारित्वलिङ्गतानौचित्यात्, अत एव न निर्विकल्पकान्यजन्यप्रत्यक्षत्वं विशिष्टविषयकजन्यप्रत्यक्षत्वं वा, व्यभिचारावारकत्वेन जन्यप्रत्यक्षत्वातिरिक्तांशवैयर्थ्याच्च, तथापि निर्विकल्पजन्यज्ञानत्वमनुमित्याद्यन्यविशिष्टज्ञानत्वं वाऽनुमित्यादेर्लिङ्गादिकरणकत्वमते**

राजहंसः

अनुमित्याद्यन्यविशिष्टज्ञानत्वं वेति । अत्रान्तिमकल्पद्वये विशिष्टपदमग्रिमग्रन्थसङ्गतिपरिहारमात्रफलकम्, न तु व्यभिचारवारकमिति वाकारद्वयमनास्थायाम्, निर्विकल्पजन्यज्ञानत्व एव तु निर्भरः ।

भारती

द्वारा निरूक्त इन्द्रियजन्यत्व का अनुमान नहीं कर सकते, अतः जब विशेषण ज्ञानजन्य विशिष्ट ज्ञान में निरुक्त इन्द्रिय जन्यत्व ही अप्रमाणिक है तो उस के द्वारा साक्षात्कारित्व की प्रतीति कैसे होगी, अर्थात् नही हो सकती)

जब किसी विशिष्ट ज्ञानात्मक प्रत्यक्ष जातीय ज्ञान में प्रमाण के न होने से इन्द्रिय जन्यत्व के न रहने से साक्षात्कारित्व के व्यापक तथा अनवगत इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यत्व भी लक्षण हो सकता है तब साक्षात्कारित्व के अव्यापक (असमनियतो) जन्यत्वाविशिष्ट ज्ञानाजन्य ज्ञानत्वरूप लिंग का क्या अपराध है कि वह लक्षण नहीं हो सकता ।

यदि कहें कि जिस विशिष्ट प्रत्यक्षादि में तादृश ज्ञानाजन्यज्ञानत्वरूप लिंग नहीं है वहाँ निर्विकल्पजन्यज्ञानत्वादिरूप लिंगान्तर से इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वादि का ज्ञान (अनुमान) हो जायेगा, तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त लिंग (निर्विकल्पजन्यज्ञानत्वादि) ही साक्षात्कारित्व का अनुमापक हो जायेगा, मध्य में इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्व के अनुमानपूर्वक साक्षात्कारित्व के अनुमान की कल्पना करना व्यर्थ है।

व्यापकतया न लक्षणम् । इन्द्रियजत्वं तु तथात्वाल्लक्षणमिति चेन्न; साक्षात्कारित्वानुमानस्य लक्षणप्रयोजनस्योभाभ्यामेव सिद्धेः कृतं व्यापकेन तेन ।

नापि तृतीयः, सा ह्येवंरूपः – यदिन्द्रियार्थसन्निकर्षजनितं तत् 'प्रत्यक्षमिति व्यवहर्तव्यमिति; अयमप्यर्थोऽनुपपन्नः, लक्षणस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् , साक्षात्कारित्वात्तदवगमे साक्षात्कारित्वमेवास्तु व्यवहारनियमनिदानमव्यवहितप्रतिपत्तिकत्वादित्यावेदितम् । अतएव

शारदा

ज्ञाताकरणकविशिष्टज्ञानत्वं वेन्द्रियजत्वे लिङ्गं सम्भवत्येवेति भावः । तदनुमानेति । **साक्षात्कारित्वानुमानेत्यर्थः** । द्वयमिति । **जन्यत्वविशिष्टज्ञानाजन्यज्ञानत्वं निर्विकल्पकजन्यज्ञानत्वादिकञ्चेत्यर्थः । अव्यापकतया = साक्षात्कारित्वासमनियततया । तेन = इन्द्रियजत्वेन ।**

जनितमिति । **यथार्थज्ञानमिति शेषः** । प्रत्यक्षमिति । **यथार्थप्रत्यक्षमित्यर्थः । एतत्कल्पखण्डनं च प्रकारान्तरेणापि परतः ''प्रत्यक्षतया व्यवहर्तव्या इति व्यवहारस्य किं विषयभेदो विशेषः, उत शब्दभेद'' इत्यादिना करिष्यति ।** अत एवेति । **साक्षात्कारित्वस्य**

भारती

यदि कहें कि जन्यत्वादिविशिष्ट ज्ञानाजन्यज्ञानत्व निर्विकल्पजन्यज्ञानत्वादि प्रत्येक दोनों ही साक्षात्कारित्व के असमनियत होने से लक्षण नहीं हो सकते, और इन्द्रियजन्यत्व (इन्द्रियसन्निकर्ष जन्यत्व) तो साक्षात्कारित्व का समनियत होने से लक्षण हो सकता है अतः इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यत्वादि ही लक्षण मानेंगे तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि साक्षात्कारित्व का अनुमान ही लक्षण का प्रयोजन है । और वह प्रयोजन तो उक्त दोनों लक्षणों से ही सम्पन्न हो जायेगा, ऐसी स्थिति में (प्रयोजन के न होने से) व्यापक इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्व को लक्षण मानना व्यर्थ है ।

''साक्षात्कारि प्रमा में प्रत्यक्षत्व व्यवहार के लिए उक्त लक्षण है'' यह तृतीय विकल्प भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह व्यवहार इस प्रकार होगा कि-''जो इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से जन्य यथार्थ ज्ञान है वह- ''प्रत्यक्ष है'' इस प्रकार व्यवहर्तव्य है अर्थात् अयंघट इत्यादि प्रमात्मकं ज्ञानं ''प्रत्यक्षम्'' इति व्यवहर्तव्यम् इन्द्रियसन्निकर्षजन्यत्वात्'' इस प्रकार अनुमान करना होगा, किन्तु वह अनुमान भी अनुपपन्न है क्योंकि ज्ञातलिंग (लिंग ज्ञान) ही अनुमापक होता है और प्रकृत में इन्द्रियसन्निकर्षजन्य यथार्थज्ञानत्वरूप लिंग का ज्ञान ही नहीं हो सकता ।

यदि कहें कि- इदम् इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य यथार्थज्ञानम् साक्षात्कारित्वात्'' इस प्रकार साक्षात्कारित्व के द्वारा इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य यथार्थज्ञानत्व का अवगम (ज्ञान) करेंगे, तो इस प्रकार मानने पर-प्रथम ज्ञातव्य न होने से साक्षात्कारित्व को ही प्रत्यक्षत्वव्यव्यवहार के नियम का निदान अर्थात् प्रत्यक्षत्व व्यवहार का अनुमापक मान ले, मध्य में इन्द्रियसन्निकर्षजन्य ज्ञानत्व को मानना व्यर्थ है । यह पहले ही कहा जा चुका है ।

न चतुर्थः, कल्पनागौरवदोषश्चाधिकः। नापि पञ्चमः, तादृशस्य दर्शयितुमशक्यत्वात् ।

एतेन ''भासमानाकारेन्द्रियसम्प्रयोगजं प्रत्यक्ष''मित्यपि निरस्तम्।

शारदा

प्राक्प्रत्येतव्यत्वेन तस्यैव प्रत्यक्षादिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तत्वौचित्यादेवेत्यर्थः । न परमुपस्थितिकृतमेव लाघवमपि तु शरीरकृतमपि, साक्षात्कारित्वस्याखण्डत्वात् तादृशस्यैव च सति सम्भवे शक्यतावच्छेदकत्वम्, न तु गुरोः, अन्यथा गवयशब्दस्य गोसदृशत्वं गगनशब्दस्य चाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वं शक्यतावच्छेदकं स्यादित्याह कल्पनेति । एतेनेति । **इन्द्रिय-सम्प्रयोगजन्यतायाः साक्षात्कारित्वेनैवावच्छेद्यतया तत्प्रतिपत्त्यधीनप्रतिपत्तिकत्वेन तस्यैवेतरभेदानुमितिव्यवहारौपयिकतया लक्षणतौचित्येनेत्यर्थः । एवञ्चैतादृशलक्षणानां साक्षात्कारिताचिह्नत्वप्रवृत्तिनिमित्तत्वयोरनभ्युपगमेऽपि न क्षतिः।** भासमानेति । **स्वप्रकारीभूतार्थानुयोगिकेन्द्रियप्रतियोगिकसम्प्रयोगजन्यं ज्ञानं यथार्थप्रत्यक्षमित्यर्थः । इदं रजतमितिभ्रमे प्रकारीभूतरजतेनेन्द्रियासम्प्रयोगान्नातिप्रसङ्गः, इन्द्रियत्वावच्छिन्नप्रतियोगिक-सम्प्रयोगत्वेन कारणताविवक्षणाच्चात्मानुमादौ न स इति । साक्षात्कारित्वस्य प्रतीतिदशायां तत्समनियतोक्तजन्यत्वस्य तदवच्छेदकधर्मवत्त्वस्य वा लक्षणत्वसम्भव इत्यादेरीरितरीतेरुक्ता-**

भारती

अत एव ''प्रत्यक्ष साक्षात्कारि आदि शब्दों के प्रवृत्तिनिमित्त के अवधारणार्थ (निश्चयार्थ) उक्तलक्षण है'' यह चतुर्थ विकल्प भी युक्तिसङ्गत है । यहाँ ''अतएव'' शब्द का अर्थ यह है कि- इन्द्रिय सन्निकर्षजत्वादि के ज्ञान के लिए साक्षात्कारित्व के पूर्व ज्ञातव्य होने से उसे (साक्षात्कारित्व) ही प्रत्यक्षादि शब्दों का प्रवृत्तिनिमित्त मानना उचित है

किञ्च इस के अतिरिक्त इन्द्रियसन्निकर्ष जन्यत्व घटित लक्षण मानने पर गौरव दोष भी आता है, क्योंकि साक्षात्कारित्व को प्रत्यक्ष का लक्षण मानने पर केवल उपस्थिति (ज्ञान) कृत लाघव ही नहीं, अपितु शरीरकृत लाघव भी है, कारण कि साक्षात्कारित्व अखण्ड है । एक अखण्ड लघु धर्म के शक्यतावच्छेदक सम्भव होने पर गुरुधर्म को शक्यतावच्छेदक मानना उचित नहीं है ।

एवं ''किसी अन्य प्रयोजन के लिए ही उक्त लक्षण है'' यह पञ्चम विकल्प भी निरस्त है क्योंकि उसे (अन्य प्रयोजन को) दिखा नहीं सकते ।

भासमान आकार के साथ इन्द्रिय के सन्निकर्ष से जन्य ज्ञान (ज्ञान प्रकारीभूत अर्थ-अनुयोगिक इन्द्रिय प्रतियोगिक सन्निकर्ष से जन्यज्ञान) ही यथार्थ प्रत्यक्ष है'' यह लक्षण भी एतेन अर्थात् पूर्वोक्त दोष से ही निरस्त हो जाता है । (यहाँ एतेन शब्द से ग्राह्य पूर्वोक्त दोष यह है कि- साक्षात्कारित्व को ही इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यतावच्छेदक मानना होगा, और तादृश जन्यतावच्छेदक ज्ञानपूर्वक ही उक्त लक्षण का ज्ञान होगा, अतः प्रथम ज्ञातव्य होने से उसे (साक्षात्कारित्व को) ही लक्षण मानना उचित है । प्रकृत लक्षण भी इन्द्रिय सम्प्रयोग जन्यता घटित होने से उक्त दोष से ही दुष्ट है ।)

किञ्च, प्रमाणविशेषलक्षणमिदं प्रमाणलक्षणोपसङ्गृहीतस्य कियतः सङ्ग्राहकं कियतश्च प्रतिक्षेपकं वक्तव्यम् , प्रमाणलक्षणेन च व्यभिचारिणो निवृत्तिः प्रदर्श्यते, तथा च सति यथाश्रुतमिदमलक्षणम्, व्यभिचार्यपि हि भासमानस्य सत्तादेराकारस्येन्द्रियसंयोगादुत्पद्यते । अथ विशेषाभिप्रायेणेदं लक्षणं वाच्यं,

शारदा

वप्याह किञ्चेति । **अत्रेन्द्रियपदमकिञ्चित्करम्, सम्प्रयोगत्वञ्च षोढासाधारणं दुर्वचम्, संयोगाद्यन्यतमजन्यत्वेनेतरभेदसाधने व्यर्थविशेषणत्वञ्चेत्यपि द्रष्टव्यम् । प्रमाणपदं प्रमापरम्।** प्रमाणलक्षणेति। **प्रमासामान्यस्य विशेष्यावृत्त्यप्रकारकानुभवत्वादिलक्षणेत्यर्थः । कियतः = यथार्थप्रत्यक्षस्य । आश्रयतान्वयि निष्ठत्वं षष्ठ्यर्थः । सङ्ग्राहकत्वमाश्रयताया निरूपकत्वम्, प्रतिक्षेपकत्वं तु तदनिरूपकत्वम् । कियतः = भ्रमस्य यथार्थानुमादेश्च । व्यभिचारिणो भ्रमस्य, निवृत्तिः = प्रमात्वानाश्रयत्वम् ।** भासमानस्येति । **सद्रजतमिदमित्यादिभ्रमे सत्तेदन्तादेरपि प्रकारतेति भावः । ननु लौकिकालौकिकसाधारणसम्प्रयोगस्यैव निवेश्यतया तस्य रजतेऽपि सत्त्वात्किमिति सत्तादिपर्यन्तानुधावनम्, एतल्लक्षणस्य 'सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्ष''मिति मीमांसासूत्रीयवृत्तिकारादृततत्सत्पदव्यत्यासायत्तव्याख्यानरूपत्वेऽपि न निस्तारः, प्राभाकरैरुपनीतभानानभ्युपगमेऽपि भट्टैस्तदभ्युपगमादिति व्यक्तं प्रामाण्यवादगादाधर्यादाविति चेन्न; अलौकिकसन्निकर्षानियम्याया एव साक्षात्करोमीतिधीसाक्षिकविषयताया रजते सद्भावेनोपनीतभानस्येन्द्रियसम्प्रयोगत्वेनाहेतुत्वात् दोषस्यैव रजतभाननियामकताया वक्तव्यत्वात्, उपनीतांशे प्रत्यभिज्ञायां तत्तांशे इव स्मृतित्वस्यैव वक्तुं शक्यत्वाच्चेति यावदंशे प्रत्यक्षत्वं तावदंशे लौकिक एव सन्निकर्षोऽपेक्षणीय इति भावः ।** विशेषेति । **स्वप्रकारीभूतविशेषानुयोगिकेत्यादि लक्षणं**

राजहंसः

अत्रेन्द्रियपदमकिञ्चित्करमिति । न चात्मानुमितावतिव्याप्तिवारकमिदमिन्द्रियत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसमपर्णद्वारेत्यनुपदमुक्तं विरुध्यत इति वाच्यम् , स्वप्रकारीभूतविषयत्वावच्छिन्नानुयोगिकसम्प्रयोगजन्यत्वविवक्षयैवोक्तातिव्याप्त्यप्रसक्तेरित्याशयात् । स्वप्रकारीभूतत्वोपादानं

भारती

किञ्च- प्रमाणविशेष (प्रत्यक्ष) का यह लक्षण प्रमाणलक्षण द्वारा उपसंगृहीत लक्ष्यों का संग्राहक है एवं कितने लक्ष्यों का प्रतिक्षेपक (व्यावर्तक) है यह कहना होगा । यहाँ प्रमाण शब्द प्रमा का वाचक है अतः प्रमाविशेष प्रत्यक्ष का यह लक्षण यथार्थप्रत्यक्ष का संग्राहक एवं भ्रम तथा यथार्थ अनुमानादि का व्यावर्तक मानना होगा यदि प्रमाविशेष के इस लक्षण के द्वारा व्यभिचारी अर्थात् ''इदं रजतम्'' इत्यादि भ्रम की व्यावृत्ति (प्रमात्वानाश्रय) माने तो यह ''भासमानाकारेन्द्रिय संप्रयोग जन्य ज्ञान'' इस प्रकार यथाश्रुत लक्षण अलक्षण हो जायेगा, अर्थात् निर्दुष्ट लक्षण नहीं होगा, क्योंकि व्याभिचारी इदं रजतम् इत्यादि भ्रम भी सत्ता इदन्ता रूप भासमान आकार के उक्त लक्षण का आश्रय हो रहा है अर्थात् उक्तलक्षण प्रोक्त भ्रम में अतिव्याप्त हो रहा है ।

तथाप्यसङ्गतिः; तथाहि—किं कियन्मात्रभासमानेन्द्रियसम्प्रयोगजत्वं विवक्षितम्? उत यावद्भासमानेन्द्रियसम्प्रयोगजत्वम्? आद्ये व्यभिचार्यव्यवच्छेदः, निर्विकल्पासङ्ग्रहश्च ।

शारदा

वाच्यम्, सत्तादिकञ्च न विशेष इत्यनतिप्रसङ्ग इति भावः । यद्यपि प्रमेयत्वादिकमपेक्ष्य सत्तादिकमपि विशेष एव, प्रमेयत्वसत्ताद्रव्यत्वादितत्तद्धर्मभिन्नत्वेन तु विशेषोपादानं न सम्भवति, सत्तादिप्रकारकभ्रमेष्वतिप्रसक्तेः, तथाप्यनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितयादृशधर्मप्रकारकनिश्चयत्वं यद्विशेष्यकभ्रमत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशधर्मस्यैव तत्तदीयविशेषत्वविवक्षायां सत्तेदन्त्वादेर्नविशेषत्वसम्भव इति । तथाहीति । **किं स्वप्रकारीभूतयत्किञ्चिद्विशेषानुयोगिकेत्यादिकं विवक्षितं लक्षणम्, उत स्वप्रकारीभूतयावदनुयोगिकेत्यादिकमिति विकल्पार्थः ।** आद्ये इति । **अयम्भावः—उक्तविशेषत्वघटकीभूतं भ्रमत्वमनुगतं वाऽननुगतं वा, आद्ये न तादृशो धर्मः कश्चिद् यद्विषयकनिश्चयोऽनाहार्यत्वाद्याक्रान्तोऽपि किञ्चिद्विशेष्यकमपि भ्रमत्वावच्छिन्नं प्रतिबध्नीयात्, द्वितीये तु नेदन्त्वादेर्वारणम्, योगाचाराभिमतस्यान्यादृशस्य वाऽनिदमात्मकत्वग्रहस्य शुक्त्यादौ तार्किकादिमते भ्रमत्वमवाप्तवत इदन्त्वप्रकारकतादृशनिश्चयसामान्यप्रतिबध्यत्वादिति । विस्तरस्तु विशेषत्वदुर्वचतायाः सम्यक्त्वखण्डने प्राक्कृतः ।** निर्विकल्पेत्यादि । **निर्विकल्पकस्य प्रकारताऽप्रसिद्धेः स्वपदेन तदुपादानानुपपत्तेरिति भावः । प्रकारतास्थाने विषयत्वविवक्षायां तु पूर्वोक्तमेव दूषणं सारम् ।**

राजहंसः

त्वापाततो लक्षणसमन्वयप्रदर्शनार्थम् । तदुपादानेप्यतिव्याप्तेरग्रे वक्तव्यत्वेऽपि यथाश्रुतानुसारेणैवेदमिति तु तत्त्वम् ।

भारती

यदि कहें कि- घटत्वादिरूप विशेष (व्यावर्तक धर्म) के अभिप्राय से उक्त लक्षण किया गया है तथा च ज्ञान प्रकारीभूत विशेष अनुयोगिक इन्द्रिय प्रतियोगि सन्निकर्ष जन्य यथार्थ ''ज्ञानत्वम् प्रत्यक्षत्वम्'' इस प्रकार लक्षण करेंगे । सत्तादितो विशेष (व्यावर्तक) है नहीं, अतः सत्ता को लेकर उक्त अतिव्याप्ति दोष नहीं होगा । तो यह कहना उचित नहीं है । क्योंकि इस प्रकार मानने पर भी असङ्गति है । जो कि इस प्रकार है कि-उक्त लक्षण में क्या यत्किञ्चित् भासमानेन्द्रिय सम्प्रयोगजत्व (स्वप्रकारीभूतयत्किञ्चिद् विशेषानुयोगिक इत्यादि) विवक्षित है या यावद्भासमानेन्द्रिय सम्प्रयोगजत्व (स्वप्रकारीभूतयावद् अनुयोगिक इत्यादि) विवक्षित है ।

इन में प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि ''इदं रजतम्'' इत्यादि व्यभिचारी (भ्रम) का वारण नहीं होगा, उक्त भ्रम भी इदन्त्व रूप यत्किञ्चित् भासमान आकारेन्द्रिय सम्प्रयोग से जन्य है । अतः उक्त लक्षण भ्रम में अतिव्याप्त है । एवं निर्विकल्पक ज्ञान के निष्प्रकारक होने से उस का उक्त लक्षण से संग्रह नहीं होगा, अर्थात् उक्त लक्षण निर्विकल्पक ज्ञान में अव्याप्त हो जायेगा, कारण कि उस में भासमान आकार (विशेष = व्यावर्तक प्रकार) ही अप्रसिद्ध है। अथवा-निर्विकल्पक ज्ञान के वस्तुमात्र का अवगादि होने से किञ्चित् विशेषावगाहित्व के अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति है ।

नापि द्वितीयः, विकल्पासहत्वात्, तथाहि – किं भासमानताविशिष्टस्येन्द्रियसम्प्रयोगः ? उत भासमानतोपलक्षितस्य? नाद्यः, पूर्वं भासमानत्वाभावात्, कारणस्य च पूर्वभावित्वात् । द्वितीये लटोऽविवक्षितार्थत्वं वा? विवक्षितार्थत्वं वा ? नाद्यः, तथाहि–

शारदा

अथवा वस्तुमात्रावगाहित्वमेव निर्विकल्पस्य नतु किञ्चिद्विशेषावगाहित्वमपीतिमते विषयत्वविवक्षायामपि दूषणमिदमभिहितम् ।

पूर्वमिति । **स्वविषयताविशिष्टेनेन्द्रियसम्प्रयोगस्य जनकतयोक्तलक्षणघटकत्वे स्वस्मात्प्राक् स्वविषयताया असम्भवेन तद्विशिष्टस्याप्यभाव इत्यसम्भवप्रसङ्गः । विषयतायां स्वीयत्वानिवेशे तु पुरुषान्तरस्येश्वरस्य वा ज्ञानीयविषयताया वैशिष्ट्यस्य प्राक्सम्भवेऽपि सुदृढोऽसम्भवः तादृशविषयतायाः प्रपञ्चमात्रे सत्त्वात्तावदनुयोगिकसन्निकर्षजत्वस्य क्वचिदप्यभावादिति भावः।** लट इति । **शानचूस्थानिन इत्यर्थः । एतच्च–आदेशानां बहुत्वेन लाघवाल्लत्वस्यैव शक्तताबच्छेदकत्वम्, आदेशेन लकारस्य स्मरणाच्च शाब्दबोधः, स्थान्यादेशभावमप्रतिपद्यमानस्य त्वादेशे शक्तिभ्रमादेव स इति मताभिप्रायेण । वस्तुतस्तु शानजाद्यादेशानां शक्तताग्रहस्थले तद्घटितानुपूर्वीज्ञानस्य तदधीनोपस्थितिसहकृतस्य शाब्दधीकारणतायाः क्लृप्ततया श्रूयमाणतया च तेष्वेव शक्तिकल्पनौचित्यमित्यन्यत्र विस्तरः। एवञ्च स्वीयविषयतोपलक्षितयावदनुयोगिकेत्यादिकं वा, वर्तमानकालावच्छिन्नविषयतोपलक्षितयावदनुयोगिकेत्यादिकं वा लक्षणमिति विकल्पार्थः । विषयताया ज्ञानसमसमयत्वा-**

भारती

यावद् भासमान इत्यादि द्वितीय विकल्प भी नहीं कह सकते, क्योंकि विकल्पनीय यावद् विशेष का अभाव है, जो कि इस प्रकार है कि–क्या भासमानता विशिष्ट के साथ इन्द्रिय का सम्प्रयोग (सन्निकर्ष) विवक्षित है या भासमानता से उपलक्षित के इन्द्रिय सम्प्रयोग विवक्षित हैं?

इन में प्रथम कल्प नहीं कह सकते, क्योंकि भासमानता अर्थात् स्व (ज्ञान) विषयता विशिष्ट के साथ इन्द्रिय के सन्निकर्ष को ज्ञान जनक तथा यदि लक्षण में प्रवेश मानें तो उस स्वविषयता में न रहने से उक्त लक्षण असम्भव दोषग्रस्त होना आवश्यक है क्योंकि कारण का पूर्व उपस्थित होना आवश्यक है जो कि प्रकृत में नहीं है ।

(यदि विषयता में स्वीयत्व अर्थात् तत्पुरुषज्ञानीयत्व का निवेश न करें तो पुरुषान्तर अथवा ईश्वरज्ञानीय विषयता के पूर्व में सर्वत्र विद्यमान होने पर भी असम्भव हो जायेगा, क्योंकि तादृशविषयता के प्रपञ्च मात्र में रहने से प्रपञ्च मात्र अनुयोगिक सन्निकर्षजन्यत्व किसी भी ज्ञान में नहीं है ।)

''यदि भासमानता से उपलक्षित के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष विवक्षित है'' यह द्वितीय विकल्प मानें तो – इसमें लट् का अर्थ विवक्षित है या अविवक्षित । प्रथम पक्ष युक्त नहीं है,

यावद्भासमानाकारेन्द्रियसम्प्रयोगजमपि भवति ''घटोऽय'मिति विज्ञानं नचात्मनि प्रत्यक्षम्, आत्मनस्तदीयाविषयत्वात्, प्रमाणस्य च विषयनियतत्वाद्यत्र प्रामाण्यं तत्रैव विषये तद्विशेषस्य प्रत्यक्षत्वस्य वक्तव्यत्वात्, अन्यथा पटास्तित्वे 'घटोऽय'मिति प्रत्यक्षं प्रमाणयतः

शारदा

द्विद्वतीयकल्पे तस्यां स्वीयत्वं नोपात्तम् । विज्ञानं = यथार्थविज्ञानं, आत्मनि = आत्मविषयकम्, लक्ष्यतावच्छेदकं हि सामान्यतो यथार्थप्रत्यक्षत्वमेव भवतोक्तम्, नतु स्वविषयांशे इति भावः । एवञ्चात्मपदं पटादेरप्युपलक्षणम् । तदीयाविषयत्वात् = तदीयविषयत्वेनाननुभवात्, तेन 'न चे'त्यादि प्रतिज्ञया न पौनरुक्त्यम्। प्रमाणस्य = प्रमात्वस्य । तद्विशेषस्य = प्रमात्वव्याप्यस्य प्रत्यक्षत्वस्य = यथार्थप्रत्यक्षत्वस्य । आत्मेन्द्रियेति । **इन्द्रियं मनः । तदिन्द्रियसन्निकर्षजत्वस्य तद्विषयकत्वनियामकत्वे घटोऽयमिति प्रत्यक्षस्य पटविषयकत्वासम्भवेऽप्यात्मविषयकत्वं प्रसक्तमेव । स्वविषयतोपलक्षितो यो यस्तदिन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नजन्यज्ञानत्वं तद्विषयकयथार्थप्रत्यक्षत्वमिति विवक्षायामुक्तप्रत्यक्षाविषयीभवदात्मेन्द्रियसन्निकर्षजत्वमादाय नातिप्रसङ्गः, अयं घट इति प्रत्यक्षे आत्मानुयोगिकेन्द्रियत्वावच्छिन्न-**

राजहंसः

तस्यां स्वीयत्वं नोपात्तमिति । सम्प्रयोगापेक्षवर्तमानत्वोपादाने लक्ष्यज्ञानविषयताया भाविकालावच्छिन्नत्वाल्लक्ष्यीभूतज्ञानात्प्राक्कालस्यैव वर्तमानपदेन ग्राह्यत्वादितिभावः ।

भारती

क्योंकि स्वीयविषयतोपलक्षित यावद् अनुयोगिक इत्याद्यर्थक प्रथम विकल्प के मानने पर ''घटोऽयम्'' इत्याकारक यथार्थ ज्ञान के भासमानतोपलक्षितेन्द्रिय सन्निकर्षजन्य होने से आत्मा में (आत्मविषयक होकर अर्थात्) क्योंकि आपने लक्ष्यतावच्छेदक सामान्यतः यथार्थ प्रत्यक्षत्व ही कहा है स्वविषया में तो कहा नहीं आत्मविषयकत्वावच्छेदेन) प्रत्यक्ष होना चाहिए किन्तु वह (घटोऽयम् इत्याकारक यथार्थ विज्ञान) आत्मविषयक प्रत्यक्ष नहीं माना जाता, क्योंकि आत्मा का ''घटोऽयम्'' इस प्रत्यक्ष में विषय रूप से अनुभव नहीं होता और प्रमात्व तो विषय से नियत (व्याप्य) है जिस विषय में (यह विषयकत्वावच्छेदेन) ज्ञान का प्रमात्व है उसी विषय में (तद्विषयकत्वावच्छेदेन) प्रमाविशेष अर्थात् प्रमात्वव्याप्य यथार्थप्रत्यक्ष का भी प्रामाण्य (प्रमात्व) माना जाता है । अन्यथा पट के अस्तित्व में भी ''घटोऽयम्'' इस प्रत्यक्ष को प्रमाण देने वाले को आप क्या उत्तर देंगे ।

यदि कहें कि हम यह उत्तर देंगे कि – घटोऽयम् इत्याकारक घट विज्ञान पट के साथ इन्द्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न नहीं है अतः वह घटविज्ञान पटरूपविषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि इस प्रकार (जिसके साथ इन्द्रियसन्निकर्ष से जन्य जो ज्ञान है वह उस विषय में प्रमाण है) मानेंगे तो क्या आत्मा के साथ मनो रूप इन्द्रिय के सन्निकर्ष से जन्य होने से घटोऽयम् इत्यादि प्रत्यक्ष आत्म रूप विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण है ?

किमुत्तरम् ?। नन्विदमुत्तरम् — घटविज्ञानं न पटे प्रत्यक्षम्, नहि तदिन्द्रियसन्निकर्षेणोत्पन्नमिति। तत्किमात्मेन्द्रियसन्निकर्षजं घटविज्ञानमात्मनि प्रत्यक्षमेव । कथमेवं स्यात्, आत्मेन्द्रिय-सन्निकर्षाद्घटज्ञानस्योत्पादेऽप्यात्मनोऽनवभासमानत्वादिति चेन्न;

शारदा

प्रतियोगिकसन्निकर्षत्वेनाकारणत्वाच्चेति यद्यपि, तथापि स्वत्वस्यानुगमे स्वविषयत्वस्य प्रपञ्चमात्रे सत्त्वेनासम्भवस्य, अननुगमे तु तस्यैव प्रसङ्गोऽस्त्येवेति भावः । अनवभासमानत्वात् = वर्तमानकालावच्छिन्नविषयतानाश्रयत्वात्, सर्वज्ञस्य मयाऽनभ्युपगतत्वेनायं घट इति ज्ञानकालिकासर्वज्ञज्ञानीयविषयतानाश्रयत्वस्य च तत्तज्जीवात्मनि सम्भवेन तादृशविषयता-श्रयेन्द्रियसन्निकर्षजत्वस्य तद्विषयकत्वनियमाकत्वोपगमे तत्तदात्मनि नातिप्रसङ्ग इत्याभासः। एतेन— **अनवभासमानत्वादित्यस्य 'अयं घट इति प्रत्यक्षाविषयत्वा'दित्यर्थकत्वे वर्तमानकालावच्छिन्नत्वाविवक्षायामपि स्वविषयताश्रयो यो यस्तदनुयोगिकेत्यादिकल्पे प्रकृतातिप्रसङ्गभङ्गसम्भवेन 'लटोऽविवक्षितार्थत्वपक्षमाश्रित्ये' त्युत्तरग्रन्थसङ्गतिः। उक्तकल्पमनाश्रित्योत्तानार्थे एव दोषदाने तु वर्तमानकालावच्छिन्नत्वविवक्षायामपि स्वीयत्वस्योक्तरीत्याऽनुपादेयत्वेनायं घट इति ज्ञानाविषयत्वेऽपि तत्कालिकपुरुषान्तर-ज्ञानीयविषयताश्रयत्वेनात्मन्यतिप्रसङ्गस्य सत्त्वेन तदसङ्गतिरेव, अयं घट इति प्रत्यक्षे आत्मानुयोगिकेन्द्रियत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकसन्निकर्षत्वेनाकारणत्वात्तादृशरूपेण कारणता-निरूपकस्यैव च प्रत्यक्षस्यात्मविषयकत्वमित्येवमुक्तातिप्रसङ्गवारणं तु वर्तमानकाला-वच्छिन्नत्वाविवक्षायामपि तुल्यमिति**–नाशङ्कनीयम् । उक्तलक्षणकमिति । **स्वविषयतोपलक्षितो**

राजहंसः

अननुगमे तु तस्यैवेति । तस्य = अननुगमस्य । मया = मीमांसकेन । मीमांसासूत्रनिस्सृतं हि लक्षणमाक्षेप्तुं प्रक्रान्तम् ।

भारती

यदि कहें कि उक्त घट ज्ञान आत्मा में (आत्मविषयकत्वावच्छेदेन) प्रत्यक्ष प्रमाण कैसे हो सकता है क्योंकि उक्त घट ज्ञान के आत्मा और मनोरूप इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न होने पर भी उस ज्ञान में आत्मा का विषय रूप से भान नहीं होता, अर्थात् आत्मा वर्तमान कालीन ज्ञान (वर्तमानकालावच्छिन्न ज्ञान) की विषयता का आश्रय नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में उक्त घट ज्ञान आत्मा में प्रमाण कैसे हो सकता है । तो यह आपका कथन युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि आप ''भासमान शब्द में शानच् के स्थानी तट के वर्तमानत्व रूप अर्थ की विवक्षा नहीं है'' इस पक्ष को मानकर चल रहे हैं, यह स्मर्तव्य है। अत: भले ही वर्तमानकालीन ज्ञान में आत्मा भासित न हो, केवल किसी भान की विषयता तो कदाचित् आत्मा में अवश्य ही रहेगी, और यदि किसी भी ज्ञान के द्वारा आत्मा को भासित न मानें तो आत्मा अप्रमेय हो जायेगी ।

(आत्मा के अप्रमेयत्व की इष्टापत्ति (स्वीकृति) नहीं कर सकते, क्योंकि आप तार्किक ने द्वादशविध प्रमेयों में आत्मा की गणना की है, एवं प्रमेयत्व को केवलान्वयी माना है ।

भासमानेत्यत्र लटोऽविवक्षितार्थत्वपक्षमाश्रित्येदं भवतोच्यत इति स्मर्तव्यम् । अस्ति ह्यात्मनो भासमानत्वं कदाचित्केनचित्, अन्यथाऽप्रमेयत्वप्रसङ्गात् । उक्तलक्षणकं स्वविषये प्रत्यक्षं नत्वन्यत्रापीति चेन्न; स्वशब्देन यदि ज्ञानमात्रं विवक्षितं तदा स

शारदा

यो यस्तदनुयोगिकत्वविशिष्टेन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नजनकताकज्ञानमित्यर्थः । लक्षणलक्ष्यतावच्छेदकघटकस्वत्वस्यानुगतत्वे आह स्वशब्देनेत्यादि । **स दोषः = घटज्ञानस्यात्मविषयकत्वप्रसङ्गः, आत्मनोऽपि स्वविषयत्वात् । यदि लक्षणे स्वत्वमननुगतं लक्ष्यतावच्छेदके चानुगतं तदाऽव्याप्तिः, यदि तु लक्षणे तदनुगतं लक्ष्यतावच्छेदके चाननुगतं तदाह** अथेति। अतिव्याप्तिरिति। **यावत्पदं विस्मृत्येदम्, अन्यथा स्वत्वस्यानुगतत्वे स्वविषयतोपलक्षितत्वस्य निखिलप्रपञ्चे सत्त्वेन तदनुयोगिकेन्द्रियसन्निकर्षत्वा-वच्छिन्नजनकत्वाप्रसिद्धेरसम्भवस्यैव वक्तव्यत्वादिति।** लक्ष्यमेवेति। **प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नस्यैव लक्ष्यत्वमित्याशयः। असाधारणस्वरूपं=**

राजहंसः

मूले एकव्यक्त्यभिहितलक्ष्यीभूतेति । स्वपदाभिहितैकव्यक्तिरूपलक्ष्यीभूतेत्यर्थः ।

भारती

प्रश्न – उक्त लक्षणक अर्थात् स्वविषयता से उपलक्षित अनुयोगिक इन्द्रिय प्रतियोगिक सन्निकर्ष से जन्य यथार्थ ज्ञान इत्याकारक लक्षण वाला प्रत्यक्ष स्वविषय में प्रत्यक्ष होता है न कि अन्य विषय में। तथाच घटोऽयम् यह प्रत्यक्ष घट रूप स्वविषय में प्रत्यक्ष प्रमा है आत्मा में नहीं ।

समाधान – ''स्वविषय'' शब्द में स्व शब्द से यदि ज्ञान मात्र ही विवक्षित है तब पुनः उक्त दोष अर्थात् घटज्ञान की आत्मा में प्रत्यक्षत्वापत्ति तदवस्थ (ज्यों का त्यों) है । क्योंकि स्वविषय शब्द का अर्थ है – ज्ञान विषय, और आत्मा भी किसी ज्ञान का विषय होने से स्वविषय शब्द से गृहीत होगा, अतः उक्त लक्षण आत्म विषयकत्वावच्छेदेन प्रमाण होना चाहिए । (स्वविषयतोपलक्षि इत्यादि लक्षण घटक स्वत्व को यदि अननुगत मानें अर्थात् ज्ञान व्यक्ति विशेष परक मानें और स्वविषयक प्रत्यक्षत्त्व रूप लक्ष्यतावच्छेदक में स्वत्व को अनुगत यानी ज्ञानमात्र का वाचक मानें तो उक्त लक्षण एक लक्ष्य में ही संघटित होगा लक्ष्यत्वे न अभिमत अन्य लक्ष्य में न जाने से अव्याप्त होगा ।)

यदि कहें स्वविषय शब्द में स्वशब्द से ज्ञान व्यक्ति विवक्षित है अर्थात् उक्त लक्षण में स्वत्व को अनुगत यानी ज्ञान मात्र का वाचक मानेंगे, और उक्त लक्ष्यतावच्छेदक में स्वशब्द में स्वत्व अननुगत अर्थात् किसी ज्ञान व्यक्ति विशेष का वाचक है तो यह कहना सर्वथा असङ्गत है कारण कि इस प्रकार मान कर आपने ही लक्ष्य को असाधारण स्वरूप वाला मान लिया है ऐसी स्थिति में उक्त लक्षण के एक लक्ष्य का परित्याग कर अन्यत्र अर्थात् लक्ष्यतया अनभिमत में भी जाने से अतिव्याप्ति हो जायेगी । कारण कि उक्त लक्षण का आश्रय व्यक्त्यन्तर में लक्ष्य रूप से कथित एक व्यक्ति के असाधारण रूपता का अभाव है अतः उसे (व्यक्त्यन्तर को) लक्ष्य नहीं मान सकते ।

(यहाँ उक्त लक्षण घटक यावत् पद की उपेक्षा कर अतिव्यापि कही गई है । अन्यथा

दोषस्तदवस्थः, अथ ज्ञानव्यक्तिरपेक्षिता तदा लक्ष्यस्वरूपस्यासाधारणतया तत्परित्यागेन लक्षणस्यान्यत्रापि गतत्वादतिव्याप्तिः, व्यक्त्यन्तरस्य लक्षणाश्रयस्यैकव्यक्त्यभिहितलक्ष्यीभूतासाधारणरूपत्वाभावात्। व्यक्त्यन्तरमपि लक्ष्यमेव, अलक्ष्ये च लक्षणस्य गमनादतिव्याप्तिरिति चेन्न; यदेकत्रासाधारणस्वरूपं लक्ष्यत्वेन निरूप्यते भवता, न तदन्यस्वरूपम्, अतः कथं

शारदा

स्वविषयकप्रत्यक्षत्वं, लक्ष्यत्वेन = लक्ष्यतावच्छेदकत्वेन। अन्यस्वरूपम् = अन्यनिष्ठम्। साधारणं रूपं = प्रत्यक्षत्वं। तदिति। **भवतैवासाधारणीकृतमित्यन्वयः। पदं = पदार्थम्। ननु समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यस्यैव स्वपदबोध्यत्वात्तादृशेन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नजनकताकज्ञानं स्वविषयप्रत्यक्षमित्यत्र ज्ञानान्तस्य साधारण्ये स्वपदार्थस्यापि साधारण्यमिति नोक्तदोष इत्यत आह** स्वशब्दस्येति। ज्ञानेति। **उक्तजनकताकेत्यादिः। चकारव्युत्क्रमेणाशक्यत्वाच्चेत्यन्वयः। स्वपदार्थतावच्छेदकं स्वत्वं न जातिः, सामान्यादावपि सद्भावात्, नाप्यखण्डोपाधिः, प्रतीतिविशेषसाक्षिकतयैव निरूप्यत्वेनान्योन्याश्रयापत्तेः, स्वावृत्तित्वे स्वत्वविषयकप्रत्यक्षासङ्ग्रहेण स्ववृत्तित्वोपगमे आत्माश्रयाच्च, यदि च समभिव्याहृतपदोपस्थाप्यतावच्छेदको धर्म एव स्वत्वं तदापि नानुगतम्, एकस्मिन् ब्राह्मणे ब्राह्मणान्तरमातृदर्शनकर्तृत्वे ब्राह्मणः स्वमातरं न पश्यतीति प्रयोगप्रामाणिकताया अनुभवस्य चानुरोधेन व्यक्तिविशेषपरामर्शकतायाः स्वपदे वाच्यत्वे च नानुगमवार्तापि, यथेष्टविनियोग-**

राजहंसः

स्वत्वविषयकप्रत्यक्षासङ्ग्रहेणेति। स्वपदेन विषयविवक्षया स्वेन्द्रियसम्प्रयोगजन्यं ज्ञानं स्वांशे प्रत्यक्षमित्येतादृशलक्षणेषु स्वत्वविषयप्रत्यक्षाव्याप्तिस्तावत्स्पष्टैव, स्वपदार्थस्य तत्पदेन निवेशेऽपि चैतत्तुल्यम्, तत्तायां स्वगतत्वमस्ति न वेति विकल्पोपपत्तेः। प्रस्तुतलक्षणेऽपि

भारती

स्वत्व के अनुगत होने से स्वविषयत्वापत्ति तत्व समस्त प्रपञ्च में रहेगा, ऐसी स्थिति में तादृश निखिलप्रपञ्चानुयोगिकेन्द्रिय प्रतियोगिक सन्निकर्षजन्यत्व के किसी भी ज्ञान में प्रसिद्ध न होने से असम्भव दोष ही देना उचित था।)

यदि कहें कि प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न ही लक्ष्य है। प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न होने से व्यक्त्यन्तर भी उक्त लक्षण का लक्ष्य ही है। अलक्ष्य में लक्षण के गमन से (जाने से) अतिव्याप्ति होती है। तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि आप (तार्किक) ने एक व्यक्ति में रहने वाले जिस असाधारण स्वरूप अर्थात् स्वविषयक प्रत्यक्षत्व को लक्ष्यतावच्छेदक माना है वह (लक्ष्यतावच्छेदक) अन्य व्यक्ति में नहीं है। अतः ''तदपिलक्ष्यम्'' (वह व्यक्त्यन्तर भी लक्ष्य है) इस प्रकार अपि (भी) शब्द के द्वारा अनेकों को साधारण कर अर्थात् अनेकों का प्रत्यक्षत्वमात्र रूप से समुच्चय (संग्रह) कैसे कर सकते हैं। क्योंकि जो अन्य व्यक्ति का संग्राहक साधारण रूप अर्थात् प्रत्यक्षत्व रूप लक्ष्यतावच्छेदक था उसे आपने ही व्यक्त्यन्तर का व्यवच्छेदक (व्यावर्तक) स्वविषय पद रूप विशेषण देकर असाधारण (एक व्यक्ति विश्रान्त) कर दिया। तथाच ''स्व''

'तदपि लक्ष्य' मित्यपिशब्देनानेकं साधारणीकृत्य समुच्चेतुं शक्यम्, यदपि साधारणं रूपं तद् व्यक्त्यन्तरव्यवच्छेदकं स्वविषयपदं विशेषणं प्रक्षिपता भवतैवासाधारणीकृतम् , स्वशब्दस्य ज्ञानमात्रार्थत्वे दोषस्योक्तत्वात्, स्वत्वस्य चानुगतस्वरूपस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात्, अन्यथाऽन्यव्यक्तिविषयस्यान्यत्र तथात्वापत्तेः ।

नापि द्वितीयः पक्षः, विकल्पासहत्वात्, किं सम्प्रयोगापेक्षया

शारदा

योग्यत्वमपि स्वत्वं नानुगमाय स्वस्ति, ज्ञानघटदेवदत्तादीनां विनियोगस्य यथेष्टत्वस्य चानैक्यात्, योग्यतावच्छेदकानिर्णये सर्वस्यपि सर्वविनियोगयोग्यत्वोद्भावनस्य सावसरत्वाच्च, स्वीययथेष्टविनियोगयोग्यताया आत्माश्रयापादकत्वादिति भावः । अनुगमे बाधकान्तरमाह अन्यथेति । तथात्वेति । **प्रत्यक्षत्वेत्यर्थः । एतेन स्वत्वस्याननुगतत्वे तत्पुरस्कृत्य प्रवृत्तायाः सामान्यव्याप्तेर्विलोप इति तस्यानुगत्वमेव वाच्यम्, स्वत्वविषयकप्रत्यक्षे लक्षणसङ्गमनार्थं सोढव्य आत्माश्रयः, अन्यथाऽनवस्थानात्, अनवस्थापेक्षयाऽऽत्माश्रये लाघवात्, यदाह बौद्धाधिकारदीधिति :– ''अन्योन्याश्रयचक्रकानवस्थानामन्यतमप्रसङ्गे लाघवादात्माश्रयस्यैवोपगमा''दितीत्यपि निरस्तम्; आत्माश्रयोपगमेऽपि तस्यादोषतोपगमासम्भवाच्च, सामान्यव्याप्तिविलोपविभीषिकाया वैतण्डिकं प्रति प्रदर्शनानर्हत्वाच्च, स्वत्वस्य संसर्गकुक्षिनिक्षेपेणापि तत्समर्थनसम्भवाच्च, कयोरपि साध्यसाधनजातीययोर्व्यभिचाराग्रहे उपस्थितयावत्साध्यसाधनजातीयव्याप्तिग्रहबलादेवागृहीतव्याप्तिकसाधनविशेषस्य साध्यविशेषानुमापकत्वोपपत्तेश्च । अधिकं तूपमानापमाने शारदायां वक्ष्यते।**

लडर्थविवक्षापक्षे स्वाश्रयक्षणावच्छिन्नस्वीयविषयतोपलक्षितयावदनुयोगिकेन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नजनकताकजन्यताशालिज्ञानत्वविवक्षणे वैयर्थ्यमवच्छिन्नान्तस्य, प्रथमपक्षोक्तदोषोन्मेषश्च, स्वाश्रयक्षणावच्छिन्नविषयतोपलक्षितेत्यादिविवक्षायामपि दुर्वारोऽसम्भवः,

राजहंसः

स्वविषयेत्यत्र स्वश्चासौ विषय इति वा स्वस्य विषय इति वा समासः, आद्ये स्वीयार्थकतया स्वपदस्य विषयेऽपि स्वत्वं प्रविशतीति स्वत्वविषयकप्रत्यक्षेऽव्याप्तिसम्भवः । द्वितीये तु स्वशब्दस्य स्वरूपपरतया स्वत्वस्य स्वत्वानाश्रयत्वे निस्स्वरूपतापातेन प्रत्यक्षविषयताश्रयत्वमपि स्यादितिभावः। **वैयर्थ्यमवच्छिन्नान्तस्येति** । स्वीयाविषयतायाः स्वाश्रयक्षणानवच्छिन्नत्वाभावादिति भावः । अवच्छिन्नान्तमहिम्नैव स्वविषयताश्रयत्वलाभादरे त्वाह **प्रथमपक्षेति** ।

भारती

शंब्द को ज्ञान मात्र परक मानेंगे तो घटोऽयम्'' यह प्रत्यक्ष आत्मा में (आत्मविषयकत्वावच्छेदेन) प्रमाण होना चाहिए'' यह दोष हम कह आये हैं और स्वत्व के अनुगत स्वरूप का आप निर्वचन भी नहीं कर सकते । (कारण कि – सामान्यादि में रहने से स्वत्व जाति नहीं हो सकता, और यदि स्वत्व को अखण्डोपाधि के प्रतीति विशेषसाक्षिकतया सिद्ध होने से – प्रतीति के प्रमात्व सिद्ध होने पर स्वत्व की सिद्धि और अबाधित स्वत्व सिद्ध होने पर प्रतीति में प्रमात्व सिद्धि इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष हो जायेगा, इत्यादि स्वत्वानुगम के निर्वचन खण्डन प्रकार शारदा से अवगम्य है।) और यदि कथञ्चित् अनुगम मानें तो अन्यविषयक (घट विषयक) ज्ञान अन्यत्र (आत्मा में) प्रत्यक्ष हो जायेगा । ''भासमान पद घटक शानच् के स्थानी लट् का वर्तमानत्व अर्थ विवक्षित है'' यह

वर्तमानत्वम्, अथ यत्किञ्चिदपेक्षया, प्रथमे विशेषणत्वपक्षान्न, विशेष इत्युक्तदोषापत्तिः। द्वितीये तु लटोऽविवक्षितार्थत्वमेव स्यात्, व्यवच्छेद्ययोर्भासितभासिष्यमाणयोरपि तदा भासमानत्व-स्वीकारात्। इन्द्रियसम्प्रयोगानन्तरं भासमानत्वमपेक्षितम्, अतो विवक्षितार्थत्वमिति चेन्न; आत्मनोऽपीन्द्रियसंयोगानन्तरं भासमानत्वमस्ति, नहि स यदा मनसा गृह्यते तदा नेन्द्रियसंयोगानन्तरम्।

शारदा

सर्वज्ञानभ्युपगमेऽपि तत्तत्पुरुषज्ञानीयतादृशविषयताश्रयत्वस्य प्रायः सर्वत्र सत्त्वात् । सम्प्रयोगे स्वत्वविवक्षया स्वाश्रयक्षणावच्छिन्नविषयतोपलक्षितयावदनुयोगिकाक्षसम्प्रयोगत्वा-वच्छिन्नेत्यादिकमप्यभिधानं नातिक्रामत्यसम्भवम् । अत्रैव पक्षे विषयतायां स्वजन्यज्ञानीयत्व-स्याप्युपादाने स्वत्वाननुगमाभ्युपगमेऽसम्भवासम्भवेऽप्यवच्छिन्नान्तस्य वैयर्थ्यमस्त्येव । दूषणान्तरं त्वाह प्रथमे इति । **सम्प्रयोगस्य कतिपयक्षणावस्थायित्वे क्वचिद्यद्यपि तज्जन्यज्ञानीय-विषयतायास्तदाश्रयक्षणावच्छिन्नत्वं सम्भवति तथापि निर्विकल्पकस्य सविकल्पकस्य वोत्पत्तिक्षणे सम्प्रयोगस्य विनाशे तज्जन्यज्ञानीयविषयतायास्तदाश्रयक्षणावच्छिन्नत्वासम्भवेना-व्याप्तिरित्यर्थः।** न विशेष इति। **यावल्लक्ष्यासङ्ग्राहकत्वांशे इत्यादिः । अन्यथा विशेषणत्वपक्षेऽ-सम्भवोऽत्र त्वव्याप्तिरिति विशेषसद्भावेनासङ्गतिः । यथाश्रुतं तु स्वीयाद्यक्षणावच्छिन्नत्वस्य विषयतायां विवक्षायामेव शोभते।** द्वितीये इति। **वर्तमानकालावच्छिन्नत्वमात्रस्य विषयताया-**

भारती

द्वितीय कल्प भी युक्तिसङ्गत नहीं है । इस कल्प में – स्वाश्रयक्षणावच्छिन्न (वर्तमानकालावच्छिन्न) स्वीयविषयतोपलक्षित यावद् अनुयोगिक इन्द्रिय प्रतियोगिक सन्निकर्षत्वावच्छिन्नजनकता निरूपित जन्यता शालिज्ञानत्व'' यह लक्षण पर्यवसित होगा । किन्तु यह विकल्पनीय यावद् विशेषों के अभाव से युक्त है । इसमें विकल्पनीय यावद् विशेष इस प्रकार है कि – इस लक्षण में क्या संप्रयोग की अपेक्षा वर्तमानत्व विवक्षित है अथवा यत्किञ्चित् अर्थात् जिस किसी की अपेक्षा। इनमें प्रथम पक्ष युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि यावद् लक्ष्य का संग्राहक न होने से विशेषण पक्ष के समान सन्निकर्ष के कारण होने से – कारण के कार्याव्यवहित प्राक्क्षणवर्ती होने से सन्निकर्षकाल में भासमानता न रहने से उक्त अव्याप्ति दोष हो जायेगा ।

यत्किञ्चित् की अपेक्षा वर्तमानत्व विवक्षित है यह द्वितीयकल्प मानें तो अर्थतः लट् का अर्थ वर्तमानत्व अविवक्षित ही होगा क्योंकि व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) भासित और भासिष्यमाण में भी स्वभानकाल में भासमानता मानी ही जाती है । तथाच भासित एवं भासिष्यमाण पदार्थों की व्यावृत्ति न होने से सामान्यतः वर्तमानकालावच्छिन्नत्व का निवेश करना ही व्यर्थ है । एवं असम्भव भी है । तादृश यावद् अनुयोगि संयोग से जन्य कोई भी ज्ञान (प्रत्यक्ष) नहीं है । यदि कहें कि इन्द्रिय संप्रयोग के अनन्तर भासमानत्व अपेक्षित है अतः वर्तमानत्व विवक्षित ही है। तथाच सम्प्रयोग में स्वत्व की विवक्षाकर – स्वोत्तरक्षणावच्छिन्नविषयता से उपलक्षित यावद् अनुयोगिक इन्द्रियप्रतियोगिक सन्निकर्षजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है इस प्रकार लक्षण करेंगे, तो यह

नेन्द्रियसंयोगमात्रं विवक्षितं, किन्नाम ? यदनन्तरं भासमानतोत्पत्ति-रिति चेन्न; तदनन्तरमपि भासमानतोत्पत्तेः । भासमानतान्तरं तत्,

शारदा

मुपादानपक्ष इत्यर्थः । तदा = स्वभानकाले । स्वीकारादिति । **तथाच वैयर्थ्यं सामान्यतो वर्तमानकालावच्छिन्नत्वनिवेशस्य, असम्भवश्चेति भावः ।** इन्द्रियेति । **निर्विकल्पकसविकल्पकोभयसङ्ग्रहार्थमानन्तर्यं द्वितीयादिक्षणसाधारणं तदधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणावृत्तित्वरूपम्, तदधिकरणक्षणध्वंसाधिकरणक्षणवृत्तित्वस्य तूपादाने वाऽनुपादाने वा विषयतायां सम्प्रयोगजन्यज्ञानीयत्वस्यानुपादानेऽसम्भवोऽन्यथा तु वैयर्थ्यमित्युक्तमेव । तथाच सम्प्रयोगे स्वत्वविवक्षया स्वोत्तरक्षणावच्छिन्नविषयतोपलक्षितयावदनुयोगिकेत्यादिकं लक्षणं वाच्यमित्यर्थः ।** नहीति। संयोगानन्तरमिति । **गृह्यते इत्यनुषज्यते । उक्तलक्षणकमिन्द्रियसम्प्रयोगोत्तरक्षणावच्छिन्नविषयतावति प्रत्यक्षमित्यभिधानेऽन्यविषयकप्रत्यक्षस्यान्यत्र प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः स्पष्टः, असम्भवापादकत्वेन यावत्त्वस्यानुपादेयत्वात् । एवञ्च भ्रान्तावतिप्रसक्तिरित्यन्यत् । स्वविषये प्रत्यक्षमित्येवं लक्ष्योक्तिस्तु निराकृता । गूढाभिसन्धिराशङ्कते** नेन्द्रियेति । **गूढाभिसन्धिः परिहरति** तदनन्तरमिति । **आत्मप्रत्यक्षजनकसम्प्रयोगानन्तरमित्यर्थः । परोऽभिसन्धिमुद्घाटयति** भासमानतान्तरमिति । इदमिति । **विषयतायां स्वजन्यज्ञानीयत्वमुपादेयमिति भावः । एवं च यावत्त्वस्याप्युपादानसम्भव इति । एवं सति स्वोत्तरक्षणावच्छिन्नत्वविवक्षावैयर्थ्यम्,**

भारती

नहीं कह सकते, क्योंकि इन्द्रिय सम्प्रयोग के अनन्तर आत्मा भी भासमान है । यह नहीं कह सकते कि जिस समय आत्मा मनोरूप इन्द्रिय के गृहीत होता है वह इन्द्रिय संयोग के अनन्तर गृहीत नहीं होता । अर्थात् वह आत्मविषयक ज्ञान भी इन्द्रिय सम्प्रयोग के अनन्तर ही होता है । अतः उक्त घट ज्ञान में आत्मविषयक प्रत्यक्षत्वापत्ति रहेगी । एवं भ्रान्ति में अतिव्याप्ति भी है ।

यदि कहें कि – केवल इन्द्रिय संयोग मात्र का आनन्तर्य विवक्षित नहीं है अपितु जिस इन्द्रिय संयोग के अनन्तर भासमानता की उत्पत्ति होती है तादृश इन्द्रिय संयोग के अनन्तर भासमानाकारेन्द्रियसंयोगजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है, ऐसा कहेंगे । तो यह कहना सम्भव नहीं है । क्योंकि ऐसा कहने पर भी अन्य विषयक ज्ञान की अन्य विषय (आत्मा) में प्रत्यक्षत्वापत्ति रहेगी, क्योंकि आत्मविषयक प्रत्यक्ष के जनक सम्प्रयोग के अनन्तर भी भासमानता की उत्पत्ति होती है ।

यदि कहें कि – आत्मा में रहने वाली भासमानता (ज्ञानीयविषयता) भिन्न है । अतः यह (घटोऽयम् इत्याकारकज्ञानीया घट वृत्ति) भासमानंता (ज्ञानीयविषयता) वहाँ (आत्मा में) नहीं है । तथाच लक्षण में स्व (तादृशसन्निकर्ष) जन्य ज्ञानीय विषयता विवक्षित है । एवञ्च घटेन्द्रियसन्निकर्षजन्यज्ञानीय विषयता के आत्मामें न रहने से आत्मा में "घटोऽयम्" इत्याकारक ज्ञान प्रत्यक्ष न होगा, तो यह भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार कहने पर लक्षण के

नन्विदं भासमानत्वमिति चेन्न; अव्याप्तिप्रसङ्गात्, एकभासनमात्र-व्यवस्थिततत्वालक्षणस्य । अथ मन्यसे– यद्भासनं यस्य विषयस्येन्द्रियसम्प्रयगादुत्पन्नं तत्तत्र प्रत्यक्षं प्रमाणामिति निरुक्तौ न दोष इति । मैवम्, यद्भासनं 'घटोऽय'मिति यस्य विषयस्य = आत्मन इन्द्रियेण सह सन्निकर्षादुत्पन्नं तद्भासनं तस्मिन्नात्मनि प्रमाणं स्यात् । नात्मातस्य विषयः, तत्कथमेवं स्यादिति चेत्, नहि भवता तदीयविषयस्येत्युक्तम् , किन्तु सामान्यतो विषयस्येति, तेनेदमभिहितम् । यदि तु तदीयताविशेषणमुपादत्ते भवान् तदा यदि तच्छब्देनः ज्ञानजातीयमात्रपरामर्शस्तदा स दोषस्तदवस्थः, यदि तु ज्ञानव्यक्तिविशेषपरामर्शस्तदाऽव्यापकत्वम्, प्रतिज्ञानं तच्छब्दार्थस्य भेदात् , नहि यत्त्वं तत्त्वं वा किञ्चिदनुगतं रूपमस्ति।

शारदा

अननुगमप्रसङ्गश्चेत्यभिसन्धिं स्फोरयति खाण्डनिकोऽव्याप्तीति । न हीति । **उक्तरीत्या स्वत्ववदिदं ज्ञेयम् । प्रभाकरमतेऽयंघट इत्यस्य स्थाने घटत्वेनेममहं जानामीत्याकाराया एव ज्ञानज्ञेयज्ञातृविषयिकाया वित्तेरभ्युपगमेन कस्यचिज्ज्ञानस्यात्मविषयकत्वापादनं**

भारती

एक ज्ञानीय विषयता से व्यवस्थित (नियन्त्रित) हो जायेगा । तथाच एक लक्ष्य में समन्वय होने पर भी लक्ष्यान्तर में लक्षण के न जाने से अव्याप्ति दोष हो जायेगा । अनुगत लक्षण न होगा।

प्रश्न – जो ज्ञान जिस विषय के इन्द्रिय संयोग से उत्पन्न है, वह ज्ञान उस विषय में प्रत्यक्ष है ऐसा लक्षण करेंगे और इस प्रकार निर्वचन करने पर घटज्ञान आत्मा में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं होगा ।

समाधान – यह कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि जो ज्ञान = घटोऽयम्'' यह ज्ञान जिस विषय के इन्द्रियसन्निकर्ष = आत्म रूप विषय के साथ मनोरूप इन्द्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न है अतः वह ज्ञान = घटोऽयम् यह ज्ञान, उस विषय अर्थात् आत्म में प्रत्यक्ष प्रमाण हो जायेगा । इस प्रकार समन्वय करने से उक्त दोष तदवस्थ है ।

यदि कहें कि–आत्मा ''घटोऽयम्'' इस ज्ञान का विषय नहीं है, अतः घट ज्ञान आत्मा में प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है । तो यह आप नहीं कह सकते, क्योंकि आप (तार्किक) ने ''तज्ज्ञानीयविषय'' ऐसा नहीं कहा है अपितु सामान्य रूप से विषय का निवेश किया है । ऐसी स्थिति में उक्त दोष कहा गया है और यदि आप लक्षण में तज्ज्ञान का विषय'' इस प्रकार तदीयता विशेषण देते हैं और उस लक्षण घटक तत् शब्द से यदि ज्ञानजातीय मात्र (ज्ञानत्वावच्छिन्न) अर्थात् ज्ञानमात्र का परामर्श (वाचक) मानेंगे तो पुनः पूर्वोक्त दोष (घटज्ञान में आत्मविषयकत्वाच्छेदेन प्रत्यक्षत्वापत्ति) तदवस्थ ही रहेगा । क्योंकि तज्ज्ञान शब्द से आत्म ज्ञान भी लिया जा सकता है और यदि तादृश तत् शब्द को व्यक्ति विशेष परक मानेंगे तो तत्

अत एवात्मविषयत्वानुयोगवत्त्रिपुटीप्रत्यक्षवादिनि पटज्ञानस्य घटादौ प्रत्यक्षतया प्रामाण्यानुयोगो द्रष्टव्यः । तदर्थं 'यदिन्द्रियसन्निकर्षोत्पन्न' मिति विशेषणप्रक्षेपे यत्तच्छब्दस्यासाधारण्याद्व्याप्त्यापत्तेः। यदि तु यत्तच्छब्दार्थावनुगतौ स्यातां पुनरप्यन्यत्र 'घटोऽय' मिति ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेन प्रमाणता प्रसज्येत ।

शारदा

नानिष्टमित्याशङ्क्याह अत एवेति । **विषयविशेषस्य नियन्तुमशक्यत्वादेवेत्यर्थः । अनुयोग आपत्तिः । त्रिपुटी = ज्ञानज्ञेयज्ञातारः । तदर्थं = उक्तानुयोगवारणार्थं** । यदिति । **यदनुयोगिकेत्यर्थः । प्राभाकरेण भ्रमानभ्युपगमाद्भ्रासमानत्वादिकमनिवेश्यम्।** यत्तच्छब्दस्येति। **पूर्वमप्राभाकरं प्रतीदानीं तु प्राभाकरं प्रत्युक्तमित्यपौनरुक्त्यम् ।**

भारती

शब्द अर्थ ज्ञान के भिन्न-भिन्न होने से एक ज्ञान व्यक्ति में ही लक्षण जायेगा, अन्य लक्ष्यीभूत ज्ञान में न जाने से अव्याप्ति दोष हो जायेगा । क्योंकि स्वत्व के समान यत्त्व तत्त्व भी अनुगत धर्म नहीं है । (यत्त्व तत्त्व सामान्य में भी रहने से जाति नहीं हो सकते, अखण्ड धर्म के प्रतीति साक्षिक होने से पूर्ववत् अन्योन्याश्रय होने से अखण्डोपाधि भी नहीं हो सकते।)

अतएव अर्थात् विषय विशेष का नियन्त्रण करना शक्य न होने से ही तार्किक मत में घट ज्ञान के आत्मविषयक प्रमात्वापत्ति के समान त्रिपुटी (ज्ञाताज्ञानज्ञेय) प्रत्यक्षवादि प्रभाकर के मत में – ''पटज्ञान में घटादिविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्ष प्रमाणत्वापत्ति समझना चाहिए।

(तात्पर्य यह है कि प्रभाकर के मत में ''अयं घट'' इस प्रत्यक्ष के स्थान में घटत्वेन इमम् अहं जानामि'' इत्याकारक प्रत्यक्ष ही होता है । उस ज्ञान में विषयविधया घट का, आश्रयतया आत्म का और स्वप्रकाश रूप से ज्ञान का भान होता है । इस प्रकार प्रत्येक ज्ञान में ज्ञाता ज्ञान एवं ज्ञेय तीनों का प्रत्यक्ष होता है । ऐसी स्थिति में घटज्ञान में आत्मविषय प्रमात्वापत्ति प्रभाकर के मत इष्टापत्ति रूप ही है । अत: प्रभाकर के मत में वह (घट ज्ञान में आत्मविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वापत्ति दोष नहीं है । यह पूर्व पक्ष का आशय है । सिद्धान्त पक्ष का आशय यह है कि – घटज्ञान में आत्मविषयकावच्छेदेन प्रत्यक्षप्रमात्वापत्ति के स्थान पर प्रभाकर के प्रति पटज्ञान में घटविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षप्रमात्वापत्ति'' समझ लेनी चाहिए ।)

यदि तदर्थ (पटज्ञान में घटविषयकत्वावच्छेदेन प्रमात्वापत्ति के वारणार्थ) जिसके साथ (यदनुयोगिक) इन्द्रियसन्निकर्ष (इन्द्रिय प्रतियोगिकसन्निकर्ष) से जन्य जो ज्ञान है वह उस (अनुयोगिभूत पदार्थ) में प्रत्यक्ष है'' ऐसा लक्षण करेंगे तो इस प्रकार यत्तद्विशेषण का लक्षण में प्रवेश करने पर यत्त्व तत्त्व के अनुगत न होने से परस्पर अव्याप्ति दोष हो जायेगी, और यदि यत्त्व तत्त्व को अनुगत ही मानें तो पुन: घटोऽयम् इस प्रत्यक्ष में अन्यत्र अर्थात् पटादि विषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्ष प्रमाणत्वापत्ति प्रसक्त होगी ।

अथान्यव्यतिरिक्ते इति विशेषणं प्रक्षिपसि, तदाऽऽत्मविषयस्य प्रत्यक्षता न स्यात् , तच्छब्देनानुगतार्थाभिधाने व्यवच्छेदकत्वाभावाद्घटज्ञानस्य पटे प्रत्यक्षतया प्रामाण्यं प्रसज्येत । एतेन ''इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यभिचारि प्रत्यक्ष'' मित्यत्रापि दोषोऽयमुक्तो द्रष्टव्यः, तादृशस्यापि ज्ञानस्य विषयान्तरे प्रत्यक्षत्वेन प्रामाण्यप्रसङ्गात् । यस्यार्थस्य सन्निकर्षाद्यदुत्पद्यते तत्तत्र प्रत्यक्षतया प्रमाणमित्यभिधाने तु यच्छब्दतच्छब्दसाधारणासाधारणार्थाभिधा-

शारदा

विशेषणमिति । **लक्ष्यदले इति शेषः । स्वविषयीभूतं यद्यत्तदीयेन्द्रियसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं तद्भिन्नभिन्ने प्रत्यक्षं नतु तद्भिन्ने इति न घटसन्निकर्षजन्यज्ञानस्य घटभिन्ने पटादौ प्रत्यक्षत्वापादनसम्भव इत्यर्थः । प्रभाकरमते घटमहं जानामीति ज्ञानं ज्ञातृज्ञानांशेनेन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यम् अनुमित्यादेरपि ज्ञातृज्ञानांशे प्रत्यक्षत्वेन तद्विषयकत्वावच्छेदेन ज्ञानाजन्यत्वस्यैव ज्ञानानां तद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वनियामकत्वादिति वक्ष्यते । एवञ्चात्र तदिन्द्रियसन्निकर्षजन्यज्ञानस्य तद्भिन्ने प्रत्यक्षत्वानभ्युपगमे ज्ञातृज्ञानविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वानुपपत्तिरित्याह** तदिति। **आत्मपदं ज्ञानस्याप्युपलक्षणम्, तथा च ज्ञातृज्ञानविषयकत्वावच्छेदेनेत्यर्थः। एतच्च तत्ताया अननुगममभिप्रेत्य, तथैव तद्भिन्नत्वप्रसिद्धिसम्भवात् । तस्या अनुगमे तु तत्तावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्याप्रसिद्धावुक्तलक्ष्यदलस्यैवाप्रसिद्धिः स्यादिति तदिन्द्रियसन्निकर्षजन्यज्ञानस्य तद्विषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षताया वक्तव्यत्वे घटज्ञानस्य पटविषयकत्वप्रसङ्गस्तदवस्थ इत्याह** तच्छब्देनेति । साधारणासाधारणेति । **अनुगताननुगतेत्यर्थः।**

भारती

यदि कहें कि लक्ष्यदल में अन्यव्यतिरिक्तत्व विशेषण देंगे स्व (ज्ञान) विषयीभूत जो जो पदार्थ है उन-उनके साथ इन्द्रियसन्निकर्ष से जन्य ज्ञान तद्भिन्नभिन्न (लक्ष्य से भिन्न (अलक्ष्य) से भिन्न (लक्ष्य) में प्रत्यक्ष प्रमाण है न कि तद्भिन्न में । अत: घटसन्निकर्षजन्यज्ञान घटभिन्न पट में प्रत्यक्ष नहीं हो सकता । तो इस प्रकार कहने पर – तत्ता के अननुगत होने से घटज्ञान आत्मरूप विषय में भी प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं होगा । (तात्पर्य यह है प्रभाकर के मत में ''घटमहं जानामि'' यह ज्ञान – ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय तीनों का भासक होने पर भी ज्ञाता और ज्ञान अंश में इन्द्रियसन्निकर्षजन्य नहीं है, क्योंकि अनुमित्यादि ज्ञान भी ज्ञाता और ज्ञान रूप अंश में प्रत्यक्ष माने जाते हैं । तथाच तदिन्द्रियसन्निकर्षजन्य ज्ञान को तद्भिन्न में प्रत्यक्ष नहीं मानेंगे तो ज्ञाता और ज्ञान रूप अंश में भी (ज्ञातृज्ञानविषयकत्वावच्छेदेन) प्रत्यक्ष नहीं होगा । मूल में आत्मा शब्द ज्ञान का भी उपलक्षण (ज्ञान का भी ग्राहक) है ।)

और यदि यत्त्व तत्त्व को अनुगत मानकर तत् शब्द से अनुगत अर्थ का अभिधान (कथन) मानें तो व्यावर्तक के न होने से तत्तावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद के अप्रसिद्ध होने से लक्ष्य से भिन्न ही अप्रसिद्ध होगा, ऐसी स्थिति में घटज्ञान पट रूप विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण हो जायेगा ।

नविकल्पोक्तदोषप्रसङ्गः। अव्यभिचारिपदं च व्यर्थम् नहि शुक्तौ रजतज्ञानं रजतेन्द्रियसन्निकर्षादुत्पन्नम् । संस्कारलक्षणप्रत्यासत्ती रजतेऽप्यस्तीति चेन्न; रजतत्ववैशिष्ट्ये पुरोवर्तिनस्तदभावात्, तस्मिन्नेव चांशेऽप्रामाण्यं नतु रजतत्वमात्रे, तस्यान्यत्र सत्त्वात्।

शारदा

यत्तद्भ्यां लक्षणकरणे इदं रजतमिति भ्रमस्य प्रकारतत्संसर्गांशे न प्रत्यक्षप्रमात्वप्रसङ्गः, तदीयसन्निकर्षाजन्यत्वात्, इदमीयसन्निकर्षजत्वेऽपीदमंशे प्रत्यक्षप्रमात्वमपि तस्येष्टमेवेत्यभिप्रायेणाह अव्यभिचारीति । **ननु लौकिकसन्निकर्षाभावेऽपि प्रकारे तत्संसर्गे चान्यत्र प्रतिपन्नेऽलौकिकसन्निकर्षोऽस्त्येवेति तदंशे प्रत्यक्षप्रमात्ववारणायाव्यभिचारिपदं फलवदेवेत्याह** संस्कारेति । **प्राचीनमते संस्कारस्योपनायकत्वादिदम्, नव्यमते तु ज्ञानेति द्रष्टव्यम्** । रजते इति । **तत्संसर्गे इत्यपि द्रष्टव्यम् । यद्यप्यलौकिकसन्निकर्षो न प्रामाणिक इत्युक्तम्, लौकिकसन्निकर्षश्च न प्रकृते, तथाप्युपेत्यैवाह** रजतत्ववैशिष्ट्ये इति । **इदं रजतमित्यत्रेदमनुयोगिको रजतप्रतियोगिकस्तादात्म्यसंसर्गो रजतत्वप्रतियोगिकसमवायो वा भासते तस्य चालीकत्वान्न प्रागनुभव इति कथं तदुपनयसम्भवः । नहि शुक्तिगतेदन्ता रजते, तस्याः प्रतिव्यक्तिविश्रान्तत्वात् । एवञ्चेदंसंसृष्टरजतरजतत्वान्यतरात्मक-विशिष्टस्यासन्निकृष्टत्वाभिप्रायेणापि ''विशिष्टरूपेण भ्रमविषये मया तदुपगमा''दिति मूले प्रागुक्तं द्रष्टव्यम् । अत एव ''इदं रजतमित्येवंरूपं वस्तु न कुत्रचित् । न शुक्तौ रजतज्ञानं नेदन्ता रजतेऽस्ति नः''।। इति बृहदारण्यकवार्तिकेऽप्यन्यथाख्यातिखण्डनतयोक्तम् । रजतज्ञानं = ज्ञायमानं रजतं । रजते हट्टस्थे शुक्तिगतेदन्ता नास्तीति तदर्थः** । मात्रे इति ।

भारती

इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न अव्यभिचारि ज्ञान प्रत्यक्ष है इस लक्षण में भी उक्त दोष है । क्योंकि तादृश (इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्न) घट ज्ञान भी विषयान्तर (आत्मा या पटादि) में प्रत्यक्षप्रमाण हो जायेगा । यदि "जिस वस्तु के सन्निकर्ष से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण है" ऐसा लक्षण करें तो यत् तत् शब्द के अनुगत अननुगत अर्थवाचकत्व पक्षोक्त दोष प्राप्त हो जायेगा । अर्थात् अननुगत पक्ष में अव्याप्ति और अनुगत पक्ष में एक विषयक ज्ञान में अन्य विषय में प्रत्यक्ष प्रमाणत्वापत्ति: दोष हो जायेगा ।

किञ्च – यत् तत् घटित लक्षण करने पर उक्त लक्षण में अव्यभिचारी पद देना भी व्यर्थ है । क्योंकि शुक्ति में रजत ज्ञान रजत और इन्द्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न नहीं है ।

(भाव यह है कि उक्त लक्षण में अव्यभिचारी विशेषण इदं रजतम्'' भ्रम में प्रमात्वापत्ति के वारणार्थ माना जाता है किन्तु वह व्यर्थ है क्योंकि उक्तविशेषण के न देने पर भी उक्त लक्षण "इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यत्व घटित होने से भ्रमज्ञान में अतिव्याप्त नहीं होता, कारण कि इदं रजतम् यह भ्रम ज्ञान प्रकार (रजत) और उसके संसर्ग रूप अंश में – प्रकार एवं तत्संसर्ग के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष से जन्य न होने से उक्तस्थल में लक्षण के न जाने से प्रकार एवं तत्संसर्ग रूप अंश में तो प्रत्यक्ष प्रमात्व की आपत्ति दी ही न जा सकती, और यदि इदम् अंश

शारदा

नापि रजतनिष्ठे रजतरजतत्वयोः संसर्गे इति शेषः । अन्यत्र सत्त्वेऽप्यत्रासत्त्वेन तदंशे भ्रमत्वं तु तदीये तद्देशसंसर्गांशे एव पर्यवसन्नमिति भावः । संसर्गस्यानलीकत्वेऽपि व्यधिकरणप्रकारकत्वेन भ्रमत्वोपपादनं तु न युज्यते, तथाहि–शुक्तौ रजतत्वसंसर्गोऽस्ति न वा, आद्ये तद्वति तत्प्रकारकत्वेन प्रमात्वं दुर्वारम्, अन्यथा रजतेऽपि रजतत्वधियः प्रमात्वं न स्यात् । द्वितीये तु स्यादेवालीकत्वम् । अन्यत्र प्रसिद्धेन रजतत्वसंसर्गेण रजतत्वारोप इति चेत्, रजतत्वसंसर्गस्य प्रसिद्धिस्तत्संसर्गवत्येव वाच्या, अन्यथातिप्रसङ्गात्, तत्संसर्गश्च स्वरूपात्मक एव, अन्यथाऽनवस्थानात्, तथाच रजतत्वसंसर्गस्य शुक्तेश्च स्वरूपसत्त्वे शुक्तावपि सोऽभ्युपेय एवेति कथं न प्रमात्वप्रसङ्गः । सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्टप्रमितिजनकत्वाभावान्न तत्स्वरूपयोः सम्बन्धत्वमिति चेत्, प्रमात्वस्यैवापाद्यमानत्वेन विशिष्टप्रमितिजनकत्वाभावस्य पूर्वं निर्धारणासम्भवात्, आपादकनिरासेन ह्यापत्तेः परिहारो नत्वन्यथा । एवञ्च वस्तुतो रजतत्वसंसर्गाभाववत्तयाभिमतेऽपि रजतत्वसंसर्गसंसर्गस्य दुर्वारत्वेन तत्र रजतत्वप्रतीतेः प्रमात्वनिवारणमशक्यमेवेति भ्रमप्रमात्वव्यवस्था संसर्गानलीकत्ववादे न सम्भवत्येवेति ।

भारती

में इदम् अंश के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष जन्य होने से उक्त लक्षण संघटन कर इदम् अंश में प्रत्यक्ष प्रमात्व के इष्ट होने से वह दोष नहीं है ।)

यदि कहें कि – इदं रजतम् स्थल में प्रकार (रजत) एवं तत्संसर्ग अंश में लौकिक सन्निकर्ष के न होने पर भी अन्यत्र प्रसिद्ध उस रजत रूप प्रकार एवं तत्संसर्ग अंश में अलौकिक सन्निकर्ष हो जायेगा । तथाच प्राचीन मत में स्वं = चक्षुः चक्षु संयुक्त मनःसंयुक्त आत्मसमवेतसंस्कार विषयत्व रूप अलौकिकसन्निकर्ष से अथवा नव्य मत में स्वसंयुक्त-आत्मसमवेतज्ञानविषयत्व अलौकिक सन्निकर्ष से जन्य होने से इदं रजतम् भ्रम स्थल में रजत रूप प्रकार एवं तत्संसर्ग अंश में उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति (प्रमात्वापत्ति) वारणार्थ अव्यभिचारी पद दिया गया है। तो यह कहना सम्भव नहीं है । ''पूर्वानुभूतरजततादात्म्यस्य संस्कारभावादुक्त दोषतादवस्थ्यात्। गुरुमतानुसारेण सुतरां विशेषण वैयर्थ्यात् तेन व्यभिचारानङ्गीकारात्'' यह पाठ शारदा संस्करण तथा शाङ्करी (हनुमानदास हिन्दी) संस्करण में नहीं है और न शारदा एवं शाङ्करी में इसका उल्लेख है ।

किन्तु खण्डनभूषामणि (ब्रह्मदत्त द्वारा सम्पादित) संस्करण, विद्यासागरी (योगेन्द्रानन्द द्वारा सम्पादित) संस्करण, एवं चण्डीप्रसादी (हिन्दी टीका) संस्करण में यह उपरोक्त पाठ है तथा उसकी व्याख्या भी की गयी है ।

प्रकृत शारदानुसारी भारती हिन्दी व्याख्या में इस पाठ की हिन्दी की गयी है । क्योंकि-पूर्वानुभूत पदार्थ का ही संस्कार होता है इदं के साथ रजततादात्म्य के पूर्वानुभूत न होने से तादृश रजत एवं रजततादात्म्यविषयक संस्कार ही नहीं है । अतः संस्कार (संस्कार या ज्ञान) रूप अलौकिकसन्निकर्षजन्य मानकर उक्त भ्रम ज्ञान में प्रसक्त अतिव्याप्ति (प्रत्यक्ष प्रमात्वापत्ति) के वारणार्थ अव्यभिचारी पद का सार्थक्य नहीं कह सकते, अतः अव्यभिचारी पद व्यर्थ है ।

अथ साक्षात्कारित्वं प्रत्यक्षलक्षणमुच्यते तदा साक्षात्कारि-विभ्रमेऽपि प्रसङ्गः। अथाव्यभिचारित्वविशेषितं तल्लक्षणमिति वा भेदाग्रहव्यतिरिक्तविभ्रमाभावो वेति चेन्न; विकल्पासहत्वात्,

शारदा

प्रभाकरमतेनाह भेदेति। **भेदाग्रहव्यतिरिक्तस्य = अग्रहीतभेदकज्ञानद्वयव्यतिरिक्तस्य। विभ्रमस्य = विसंवादिप्रवृत्तिजनकज्ञानस्याभावो मन्तव्य इत्यर्थः। तादृशज्ञानद्वयव्यतिरिक्ते न विसंवादिप्रवृत्तिजनकज्ञानत्वमिति यावत्। तेन न सिद्ध्यसिद्धिव्याहतिः। विवेचितं मतमेतत्पुरा प्रमुष्टतत्ताकस्मृतिखण्डने। एवञ्च न भ्रान्तावतिप्रसक्तिरित्यर्थः। इतरव्यावृत्ति-**

राजहंसः

विवेचितं मतमेतत्पुरेति। अधिकं दर्शनसर्वस्वेऽपि समुपादर्शि।

भारती

किञ्च – गुरु (प्रभाकर) के मत में व्यभिचारी (भ्रमज्ञान) के अनङ्गीकृत होने से गुरु प्रभाकर के मत के अनुसार तो सुतरां अव्यभिचारी विशेषण देना व्यर्थ है।

किञ्च – पुरोवर्ति अर्थात् इदं पदार्थगत रजतत्व वैशिष्ट्य (रजत का तादात्म्य या रजतत्व का समवाय) विषयक संस्कार ही नहीं है। (यद्यपि अलौकिक सन्निकर्ष अप्रामाणिक है और लौकिक सन्निकर्ष प्रकृत में है नहीं, तथापि (सन्निकर्ष मान भी लें तो भी) इदं रजतम् यहाँ पर इदम् अनुयोगिक रजत प्रतियोगिक तादात्म्य सम्बन्ध या रजतत्व प्रतियोगिक समवाय ही भासित है किन्तु उन दोनों के अथवा अलीक अप्रामाणिक होने से उनका पूर्वानुभव नहीं हो सकता, ऐसी स्थिति में उनका संस्कार प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता।) और उस पुरोवर्ति इदं पदार्थगत संसर्ग रूप अंश में उक्त ज्ञान (इदं रजतम्) अप्रमाण माना जाता है न कि रजतत्व मात्र अंश में या रजतगत रजततादात्म्य और रजतत्व के समवाय रूप संसर्ग अंश में। क्योंकि वह (रजतत्व, रजत में रजत का तादात्म्य या रजत में रजतत्व का समवाय सम्बन्ध) तो अन्यत्र (हट्टस्थ रजतादि में) है ही। तस्मात् उस अंश में उसे भ्रम नहीं कह सकते। तथाच उक्त लक्षण में अव्यभिचारी विशेषण के व्यर्थ होने से उक्त प्रत्यक्ष प्रमा का लक्षण निर्दुष्ट नहीं है।

३. यदि कहें कि साक्षात्कारित्व ही प्रत्यक्ष का लक्षण है तो यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि इस लक्षण के अनुसार साक्षात्कारि भ्रम इदं रजतम् इत्यादि भी प्रत्यक्ष प्रमा हो जायेगा, अर्थात् उक्त लक्षण प्रत्यक्ष भ्रम में अतिव्याप्त है।

प्रश्न — उक्त अतिव्याप्ति वारणार्थ अव्यभिचारित्व से विशोषित अर्थात् अव्यभिचारित्वे सति साक्षात्कारित्वम् ही (अव्यभिचारि होकर जो साक्षात्कारिज्ञान है, उसे ही) प्रत्यक्षप्रमा का लक्षण मानेंगे, अथवा प्रभाकर के मत के अनुसार – विषय एवं स्वरूप से अज्ञात है भेद जिनका ऐसे ज्ञानद्वय (इदम्, रजतम्) से अतिरिक्त भ्रमज्ञान अर्थात् विसंवादि (विफल) प्रवृत्ति का जनक ज्ञान मानेंगे ही नहीं, तथा च व्यभिचारिज्ञान के न होने से सुतरां साक्षात्कारित्वरूप प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति न होगी।

समाधान — यह कहना उचित नहीं है। क्योंकि यह लक्षण विकल्पासह (विकल्पनीय

किमवगतमिदं लक्षणं फलहेतुः अनवगतं वा । न तावच्चरमः, तदभिधानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । अभिधानस्य ज्ञानोत्पादोपयोगित्वात्, तस्य चानवगतस्यैव फलसाधकत्वाभ्युपगमात् । आद्ये किमन्यस्मादवगमः? उत त्वदीयालक्षणवाक्यात् ? यद्यन्यस्मात्, कृतममुना लक्षणाभिधानप्रयासेन, अभिधानस्यास्य ज्ञानोत्पादातिरिक्तप्रयोजनाभावात्, तस्य चान्यत एव सिद्धेः। अन्त्ये किं त्वदभिधानमाप्तोपदेशतया साक्षात्कारित्वं बोधयति ? उत लिङ्गादिभावेन ?, न तावच्चरमः, त्वद्वचनस्य साक्षात्कारित्वाविनाभावादेर्दर्शयितुमशक्यत्वात् । नापि प्रथमः, वादिनं प्रति भवत

शारदा

मितिर्व्यवहतिर्वा फलम् । चरम इति । **चरमविकल्पखण्डने न बहु वक्तव्यमिति प्रथमं तत्खण्डनम् । अप्रयोजकश्चानुक्रमेणैव खण्डनम्, चरमस्मृत्युपारूढस्यापि प्रथमं निरासजिज्ञासासम्भवादिति। तस्य = लक्षणस्य । तस्य = ज्ञानोत्पादस्य । लिङ्गादीत्यादिनाऽन्यथानुपपत्त्युपमाने ग्राह्ये । अविनाभावादेरित्यादिनोपपाद्यत्वसादृश्ये ।**

भारती

यावद् विशेष अनुत्तरणीय) है । वे विकल्प इस प्रकार हैं कि — क्या यह लक्षण अवगत (ज्ञात) होकर फल (इतरव्यावृत्ति या व्यवहार) का हेतु है ? अथवा अनवगत (अज्ञात अर्थात् सत्तामात्र से) ही फल का हेतु है ?।

इनमें अन्तिम अर्थात् अनवगत फल हेतु तो कह नहीं सकते, क्योंकि अनवगत लक्षण को फल हेतु मानने पर लक्षण का अभिधान (कथन = निरूपण) करना ही व्यर्थ हो जायेगा। लक्षण के कथन का उपयोग लक्षण का ज्ञान कराने में ही होता है । किन्तु लक्षण का ज्ञान आवश्यक नहीं है, कारण कि अज्ञातलक्षण को फल का साधक आप ने माना है ।

यदि अवगतलक्षण को व्यावृत्यादि फल का हेतु मानें तो क्या लक्षण का अवगम प्रमाणान्तर से मानने या आप के प्रकृतलक्षण वाक्य से, यदि प्रमाणान्तर से कहें तो आप का यह लक्षणाभिधान का प्रयासव्यर्थ है । कारण कि इस अभिधान (लक्षणकथन) का लक्षणविषयक ज्ञानातिरिक्त कोई प्रयोजन नहीं है और वह लक्षणज्ञान तो प्रमाणान्तर से ही सिद्ध हो गया ।

अपने लक्षणवाक्य से ही लक्षण का ज्ञान होता है इस अन्तिम कल्प में आप का लक्षण वाक्याभिधान क्या आप्तोपदेश रूप से साक्षात्कारित्वरूप लक्षण का ज्ञान कराता है, अथवा लिङ्गादि रूप से, इनमें लिङ्गादिरूप से नहीं कह सकते, क्योंकि (कदाचित् त्वद्वचन बोध्य होने से घटादि में व्याभिचार होने से बोध्यत्व सम्बन्ध से) आप के वचन में साक्षात्कारित्व की व्याप्तिनहीं दिखा सकते । (साक्षात्कारित्व में व्यभिचार होने से आप के वचनविशेष में भी साक्षात्कारित्वनिरूपितव्याप्ति नहीं कह सकते । (यहाँ "लिङ्गादिभावेन" में आदि शब्द से अर्थापत्ति एवं उपमान प्रमाण ग्राह्य है और अविनाभावादि शब्द में आदि शब्द से उपपाद्यत्व और सादृश्य ग्राह्य है अतः वे दोनों भी दर्शयितुं

आप्तत्वासिद्धेः। सिद्धौ हि प्रतिज्ञामात्रादेव साध्यसिद्धेर्हेत्वाद्यभिधानमनर्थकं सर्वत्र स्यात्।

अथ मन्यसे, यः साक्षात्कारित्वमन्यतो जानाति, प्रत्यक्षव्यवहारनिदानतया च न जानाति, तं प्रति प्रत्यक्षव्यवहारनिदानत्वमस्य ज्ञाप्यते लक्षणवादिना, तच्चानुमानभावेनैव, नाप्तोपदेशतया, अत एव च लक्षणं केवलव्यतिरेक्यनुमानमाचक्ष्महे; तद्यथा – श्रावणादिप्रमितयः साक्षात्कारिप्रमितयो वा प्रत्यक्षत्वेन व्यवहर्तव्याः साक्षात्कारिप्रमितित्वात्, न यत्प्रत्यक्षतया व्यवह्रियते न तत्साक्षात्कारि

शारदा

बोध्यत्वसम्बन्धेन त्वद्वचनं न साक्षात्कारित्वव्याप्यम्, घटादेरपि कदाचित्त्वद्वचनबोध्यत्वेन व्यभिचारात्, नापि वचनविशेषस्तथा, साक्षात्कारित्वे एव व्यभिचारात्, बोध्यतासम्बन्धेन पक्षधर्मताप्रतीतेः शाब्दबोधात्प्रागसम्भवेन तस्य प्रागावश्यकत्वे लिङ्गादिविधया बोधकताया अकिञ्चित्करत्वाच्च, अनुव्यवसायस्य 'शाब्दायामी'त्यस्यैव सत्त्वादिति भावः । भवतः = लक्षणवादिनः, हेत्वादीत्यादिनोदाहरणादिवाक्येनाभिधीयमानव्याप्त्यादिकं ग्राह्यम् । सर्वत्र = कथायां शास्त्रे च ।

अन्यतः = प्रत्यक्षादिना । प्रत्यक्षव्यवहारेति । **प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । इतरव्यावृत्तिप्रत्यायकत्वं न लक्षणानां यथा, तथा प्रपञ्चितं लक्षणसामान्यखण्डने इत्याशयेनात्र व्यवहारनिदानत्वमेव निरसितुमाशङ्क्यते इत्यवधेयम् । अस्य= साक्षात्कारित्वस्य। केवलव्यतिरेकि–व्यतिरेकसहचारमात्रगृहीतव्याप्तिकं, व्याप्तिश्च सा प्राचीनमतेऽन्वयनिरूपिता**

भारती

अशक्य होने से निरस्त समझना चाहिए ।

आप्तोपदेश रूप से आप का वचन लक्षण का ज्ञान कराता है यह कल्प भी नहीं कह सकते, क्योंकि वादि की दृष्टि से आप लक्षणवादि में आप्तत्व ही असिद्ध है और यदि वादि भी आप को आप्त मानलें (वादि की दृष्टि से आप में आप्तत्व सिद्ध हो जाय) तो प्रतिज्ञा मात्र अर्थात् कथन मात्र से ही साध्य की सिद्धि हो जाने से कथा में या शास्त्र में हेत्वादि का कथन करना व्यर्थ हो जायेगा ।

प्रश्न — जो प्रत्यक्षादिरूप से साक्षात्कारित्व को जानता है किन्तु वह (साक्षात्कारित्व) साक्षात्कारिज्ञान में प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार का निदान (कारण) है यह नहीं जानता, उसके प्रति लक्षणवादी साक्षात्कारित्व में प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार के निदानत्व (कारणत्व) का ज्ञापन करता है और वह ज्ञापन अनुमान रूप से ही किया जाता है न कि आप्तोपदेशरूप से। अतएव लक्षण केवलव्यतिरेकि (व्यतिरेकसहचारमात्र के द्वारा गृहीत व्याप्ति वाला) अनुमान कहा जाता है। वह अनुमान इस प्रकार है — श्रावण आदि प्रमितियाँ अथवा साक्षात्कारिप्रमितियाँ प्रत्यक्षत्व रूप से व्यवहर्तव्य है साक्षात्कारिप्रमात्ववती होने से, जो प्रत्यक्षत्वरूप से व्यवहर्तव्य

यथानुमितिः, तथा चैताः, तस्मात्तथा । एतदनुमानप्रतिपादकञ्च वाक्यं नाप्तवाक्यत्वेन प्रयुज्यते वादिना, किन्तु व्याप्त्यादेः प्रतिपन्नस्यैव स्मारकं पूर्वाप्रतिपन्नस्यैव वा जिज्ञासोत्पादनद्वारेणेदानीमेव वादिनि प्रमाणोत्पादकमित्युक्तदोषानवकाश इति । न, 'प्रत्यक्षतया व्यवहर्तव्या' इति व्यवहारस्य किं विषयभेदो विशेषः? उत शब्दभेदः? आद्ये यद्यसौ विषयविशिष्टव्यवहारं नाज्ञासीत्, कथं साक्षात्कारिणि तस्य स्वकर्तव्यतां लक्षणवाक्यादप्यवगच्छेत्,

शारदा

नव्यमते तु व्यतिरेकनिरूपितेत्यन्यत् । हेत्वभावे साध्याभावव्यापकताग्रहे व्यापकाभावेन हेत्वात्मना साध्यात्मनो व्याप्याभावस्यानुमितिसम्भवः, तदिदमाहुः–''अन्वयेनैव व्यतिरेकव्याप्तेर्गमकत्व''मितीति भावः । श्रावणादीत्यसङ्कुचितेनादिपदेनानुमित्यादेरपि ग्रहणं माभूदित्यनुगतानतिप्रसक्तरूपस्य वाच्यत्वे तस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वमुचितमित्याशयेनाह साक्षात्कारिप्रमितय इति । साक्षात्कारिप्रमितित्वादिति । **व्यतिरेकसहचारेण पक्षेऽन्वयव्याप्तिरेव गृह्यते इत्युदयनाचार्यमते सिद्धसाधनेनानुमित्यनुदयप्रसङ्गेन पक्षतावच्छेदकस्य हेतुत्वं यद्यप्यनुचितम् तथापि व्याप्तिग्रहस्य पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकत्वाभावेन समानाकारसिद्धेरेव च प्रतिबन्धकत्वेन कथञ्चित्समर्थनीयम् । व्यतिरेकव्याप्तेरनुमित्यौपयिकत्वमते तु नेयमाशङ्कापीति भावः । प्राचीनमते व्यतिरेकसहचारस्य नव्यमते च व्यतिरेकव्याप्तेरुपदर्शकमुदाहरणवाक्यं प्रयुङ्क्ते** न यदिति । तथाचैता इति । **व्यतिरेकव्याप्तेरनुमित्यौपयिकत्वमते 'नच तथैताः' 'तस्मान्न तथे'ति प्रयोगः शोभते ।** अनुमानेति । **व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टलिङ्गेत्यर्थः । एवञ्च 'नाप्तोपदेशतये'त्यत्र धर्मिणि साध्यज्ञापकत्वं नाप्तोपदेशतयेत्युक्तम्, अत्र तु व्याप्त्यादिज्ञापकत्वं न तथेत्यपौनरुक्त्यम् ।** पूर्वेति । **विषयत्वं षष्ठ्यर्थो जिज्ञासायामन्वेति**

राजहंसः

सिद्धसाधनेनानुमित्यनुदयप्रसङ्गेनेति । पक्षतावच्छेदकस्य हेतुत्वे स्वव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तेः पक्षान्तर्भाविनैव ग्राह्यतया साध्यभानं पक्षेऽनुमितेः पुरैवौचित्यानीतमिति भावः ।

भारती

नहीं है वह साक्षात्कारिप्रमिति नहीं है जैसे अनुमिति, ये श्रावणादि प्रमितियाँ अर्थात् साक्षात्कारि प्रमात्ववती है, तस्मात् अर्थात् साक्षात्कारि प्रमात्ववती होने से तथा अर्थात् प्रत्यक्षत्व रूप से व्यवहर्तव्य है । (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अनुमिति के प्रति व्यतिरेकव्याप्तिकारणत्व मत में व्यतिरेक व्याप्ति का अभिनय ''यत्र साध्याभाव तत्र हेत्वभाव'' यही होगा, तदनुसार ''तथा चैताः'' इस उपनयवाक्य के स्थान पर ''नच तथा एताः'' (एताः = श्रावण आदि प्रमितियाँ, न च तथा = प्रत्यक्षत्वेन व्यवहर्तव्यत्व रूप साध्य के अभाव वाली नहीं है) इस प्रकार उपनय वाक्य प्रयुक्त होना चाहिए था । एवं इसी प्रकार ''तस्मात्तथा'' इस निगमन वाक्य के स्थान पर भी तस्मान्न तथा (तस्मात् = प्रत्यक्षत्वेन व्यवहर्तव्यत्वरूपसाध्याभाववती न होने से, न तथा = साक्षात्कारिप्रमितित्ववत्त्व के अभाव वाली भी नहीं है) ऐसा प्रयोग होना चाहिए था ।)

नह्यविदिताग्निरनुमानादप्यग्निसम्बन्धं बोधयितुं शक्यः । अथाज्ञासीत्, तदा ज्ञातज्ञापनवैयर्थ्यात् लक्षणरूपमनुमानं निष्प्रयोजनम् ।

शारदा

प्रमाणे च । प्रमाणं प्रमितिः सा च शाब्दबोधो वा तदनन्तरभावी चरमपरामर्शो वा न्यायप्रयोज्य एवेति प्रयोजकत्वमेवोत्पादकत्वमुक्तम् । इष्टसाधनताज्ञानजन्याया अपि जिज्ञासाया कथञ्चिद्वाक्यसापेक्षत्वमभिप्रेत्य 'जिज्ञासोत्पादने'ति कथितम् विप्रतिपत्तिवाक्याधीनसाध्य-तदभावकोटिकसंशयाधीनैकतरकोटिजिज्ञासायां हि प्रतिज्ञावाक्यप्रयोगे कुत इत्यादिहेतुव्याप्त्या-दिजिज्ञासाक्रमेण हेतूदाहरणादिवाक्यप्रयोगस्ततश्च शाब्दबोधद्वारा चरमपरामर्श इति भावेन व्याप्त्यादिप्रमितेः कथञ्चिज्जिज्ञासासापेक्षतां मन्वानेन 'द्वारेणे'त्युक्तम्। प्रतिज्ञावाक्यजबोधस्य साध्यसिद्ध्यात्मकत्वेऽपि 'वाद्युपन्यस्तप्रमाणेनानुमिनुया'मित्यनुमित्सायामनुमितिसम्भवेन न चरमपरामर्शकल्पनाऽपि विफलेति । प्रतिवादिन आप्तत्वानिश्चयेन तदीयवाक्यजबोधस्य नानुमित्युपधायकतेति तदनन्तरमनुमित्युपधायकस्य मानसपरामर्शस्योपगम इत्यादिकंत्वन्यत्र द्रष्टव्यम् । उक्तेति। **प्रतिज्ञामात्रादेव साध्यसिद्धेरित्याद्युक्तेत्यर्थः । इतिव्यवहारस्य = इत्येतत्सा-ध्यघटकव्यवहारस्य विशेषः = व्यावर्तकः 'प्रत्यक्षतये'त्यनेनोक्तः किं विषयविशेषः उत शब्दविशेष इत्यर्थः । व्यवहारे प्रत्यक्षत्वात्मकधर्मविशेषप्रकारकत्वं वा प्रत्यक्षशब्द-वाच्यत्वप्रकारकत्वं वा विवक्षितमिति भावः ।** शक्य इति । **अयम्भावः–अभावसाध्य-कव्यतिरेकिणा शक्यमप्रसिद्धमपि साधयितुम्, 'धूमव्यापको वह्निः, वह्न्यभाववां-श्चाय'मित्यादिधिया धूमाभावस्य सिद्धिर्हि प्रागप्रतीतस्याप्यानुभविकी, यथा वा पृथिवीत्वाभावे तादात्म्येन जलादिव्यापकत्वग्रहे पृथिवीत्वेन जलादिभेदस्याप्रसिद्धस्यैव सिद्धिः, नच प्रकृतेऽभावसाध्यकत्वम्, न वेयं रीतिः परार्थानुमाने शक्यशङ्कापि, यदाह मणिकारः– 'अयञ्च व्यतिरेकिप्रकारः स्वार्थे एव, परं प्रति साध्याप्रसिद्ध्या प्रतिज्ञाद्यसम्भवा'दितीति।**

भारती

व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्ट लिङ्ग के प्रतिपादक ये वाक्य वादि के द्वारा आप्तवाक्य रूप से प्रयुक्त नहीं होते, किन्तु पूर्वज्ञात व्याप्ति आदि के स्मारक रूप से अथवा पूर्व अज्ञात व्याप्त्यादिविषयकजिज्ञासा को उत्पन्न कर इसी काल में वादि को व्याप्ति आदिविषयक प्रमाण (प्रमा) के उत्पादक रूप से प्रयुक्त है । अतः "प्रतिज्ञामात्र से ही साध्य सिद्ध हो जायेगा" इत्यादि पूर्वोक्त दोष नहीं होगा ।

समाधान — "प्रत्यक्षतया व्यवहर्तव्या" इस साध्यघटक व्यवहार का क्या विषयविशेष व्यावर्तक है या शब्द विशेष (प्रत्यक्षतया इसके द्वारा क्या विषयविशेष कहा गया है या शब्द विशेष अर्थात् व्यवहार में प्रत्यक्षत्वरूप धर्मविशेष प्रकारकत्व विवक्षित है या प्रत्यक्षशब्द वाच्यत्वप्रकारकत्व विवक्षित है ?) ।

इनमें यदि प्रथम पक्ष मानें तो वह विषय विशिष्ट अर्थात् प्रत्यक्षत्वरूप धर्मविशेष

अथ सामान्यतो जानात्यस्ति कश्चिद्विषयः प्रत्यक्षव्यवहारस्य, विशेषतस्तु न जानाति, तं प्रतीदमुच्यते। न, किं सामान्यतो निमित्तवत्तां

शारदा

ज्ञातेति । **प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारस्य सविशेष्यकस्यैव ज्ञेयत्वादिति भावः** । निष्प्रयोजनमिति। **न हि परार्थानुमानस्थलीयोपि त्रयोदशसु प्रत्यकं त्रयोदशभेदप्रसिद्ध्याद्यभिधानक्रमोऽत्र सावसरः, भावसाध्यकत्वादेवास्य, नच–पक्षैकदेशे साध्यप्रसिद्धिः, अन्वयाप्रतिसन्धानदशायाञ्च व्यतिरेक्युपन्याससम्भव इति–वाच्यम्; एवं सति प्रत्यक्षत्वकारकव्यवहारनिदानत्वं साक्षात्कारित्वे प्रतीतमेवेति लक्षणाभिधानवैफल्यमेव । नहि काञ्चित्साक्षात्कारिव्यक्तिमन्तर्भाव्य साक्षात्कारित्वे तादृशव्यवहारनिदानत्वग्रहे व्यभिचाराग्रहदशायां साक्षात्कारिप्रमितित्वावच्छेदेन न तद्ग्रहसम्भवो येन तदर्थमपि भवदभिधानमुपासनीयं भवेत्। अन्यथा भवदभिधानादपि तदनुपपत्त्यापत्तेः । ननु साक्षात्कारित्वप्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारविषयत्वे जानन्नपि तयोः समानासनासीनतायामपरिचित एव जनोऽस्माकं प्रतिपाद्यः, 'प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारः किञ्चिद्विशेष्यक' इत्येवमपि साध्यप्रसिद्धौ प्रकृतानुमानसम्भवादित्याह** अथेति । **विशेषतः = तादृशव्यवहारः साक्षात्कारिविशेष्यक इत्येवम्** । **निमित्तवत्तां = विषयवत्तां** । व्यवहारमात्रस्येति। **यद्यपि शङ्काग्रन्थे 'प्रत्यक्षव्यवहारस्ये'त्युक्तम्, तथापि तत्र**

भारती

प्रकारक व्यवहार पूर्वतः ज्ञात है या नहीं । यदि ज्ञात नहीं है तो साक्षात्कारिज्ञान में तादृशव्यवहार की कर्त्तव्यता का ज्ञान लक्षण वाक्य से भी कैसे होगा, अर्थात् अज्ञात व्यवहार की कर्तव्यता का ज्ञान लक्षण वाक्य से भी नहीं हो सकता । क्योंकि जो जन अग्नि को नहीं जानता, उसे अनुमान से भी पर्वत में अग्नि का (अग्नि के सम्बन्ध) ज्ञान नहीं कराया जा सकता ।

और यदि वह तादृशव्यवहार पूर्णतः ज्ञात है, तो ज्ञात का ज्ञापन करना व्यर्थ होने से लक्षण रूप अनुमान (तादृशव्यवहर्तव्यत्व का अनुमापक लक्षणरूप व्याप्ति विशिष्ट हेतु) निष्प्रयोजन है ।

प्रश्न – जो पुरुष– "प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारः किञ्चिद्विशेष्यकः" (प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार का कोई विषय है) इस प्रकार सामान्यतः साक्षात्कारित्व-प्रत्यक्षत्वप्रकार व्यवहार के विषय को जानता किन्तु विशेषरूप से अर्थात् तादृशव्यवहारः साक्षात्कारिविशेष्यक" (वह प्रत्यक्षत्व प्रकारक व्यवहार साक्षात्कारिविशेष्यक है) (साक्षात्कारित्व एवं प्रत्यक्षत्व उभय प्रकारों का आश्रय = विशेष्य एक साक्षात्कारि ज्ञान ही है) इस प्रकार विशेषरूप से नहीं जानता है उसके प्रति यह अनुमान किया गया है ।

समाधान – "अस्ति कश्चिद् विषयः प्रत्यक्षव्यवहारस्य" इस मूल प्रश्न का क्या तात्पर्य है – क्या वह पुरुष व्यवहारमात्र के निमित्तवत्ता = विषयवत्ता को सामान्यतः जानता है अर्थात्

व्यवहारमात्रस्य जानाति ? उत व्यवहारविशेषस्य ?, आद्ये प्रकृतानुयोगः, व्यवहारविशेषस्य चिन्त्यमानत्वात्। द्वितीये किंकृतोऽयं व्यवहारस्य विशेष इति विकल्पितपक्षानुप्रवेशमन्तरेण न निस्तारः।

शारदा

प्रत्यक्षत्वप्रकारकत्वं विवक्षितं नवेति भावः । विशेष इति । **अयम्भावः– विशिष्टबुद्धेर्विशेषणविषयकत्वनियमात्प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारविषयकबुद्धेः प्रत्यक्षत्वविषयकत्वं तावदावश्यकम् , घटत्वादिप्रकारकप्रामाणिकव्यवहाराणाञ्च घटत्वाद्याश्रयविशेष्यकताया एव दर्शनेन प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारस्य प्रत्यक्षत्वाश्रयविशेष्यकत्वज्ञानमौचित्यावर्जितम् , प्रत्यक्षत्वाश्रयस्तु क इति जिज्ञासाशमनाय साक्षात्कारि प्रत्यक्षमिति भवता लक्षणवाक्यमभिधानीयम्, साक्षात्कारित्वमनुमित्यादिगतत्वेन ज्ञातवतस्तु न लक्षणवाक्यप्रतिपाद्यता, अतिप्रसङ्गात्, किन्तु तद्व्यावृत्ततयैव ज्ञातवतः, एवञ्च साक्षात्कारित्वस्यावृत्तित्वग्रहाभावे 'साक्षात्कारि प्रत्यक्ष'मितिमितिसामग्र्या निष्पन्नत्वात्सा भवन्ती केन वार्यते । तथाच साक्षात्कारित्वे प्रत्यक्षत्वस्य सामानाधिकरण्यस्यापि परिचये प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारविशेष्यत्वस्यापि सामानाधिकरण्यमतेरनिवार्यत्वादुक्तरीत्या साक्षात्कारित्वावच्छेदेन तद्ग्रहसम्भव इति क्वावकाशो लक्षणाभिधानानामिति । ननु वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानस्यापेक्षणीयत्वात्पदार्थस्य लक्षणत्वस्थले लक्षणमितरव्यावृत्तमवगच्छत एव लक्षणवाक्यप्रतिपाद्यता पर्यवस्यति, यथा गन्धस्य पृथिवीलक्षणत्वे, साक्षात्कारित्वस्य**

राजहंसः

सामानाधिकरण्यमतेरनिवार्यत्वादिति । साक्षात्कारित्वे इत्यादिः । **उक्तरीत्येति** । व्यभिचाराग्रहदशायामिति भावः ।

भारती

उस व्यवहार में प्रत्यक्षत्वप्रकारकत्व विवक्षित नहीं है ? अथवा व्यवहार विशेष के विषयवत्ता को अर्थात् उस व्यवहार में प्रत्यक्षत्वप्रकारकत्व की विवक्षा कर –''प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार का कोई विषय है'' ऐसा जानता है । यदि इनमें प्रथम पक्ष मानें तो व्यवहारमात्र की विषयवत्ता को सामान्यतः जानने का प्रकृत में कोई उपयोग न होने से व्यर्थ है । क्योंकि प्रकृत में व्यवहारविशेष (प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार) ही चिन्तनीय (विचारणीय) है ।

यदि ''व्यवहारविशेष के निमित्तवत्ता को जानता है'' इस द्वितीय पक्ष को स्वीकार करें तो यह व्यवहारगत विशेष किंकृत है अर्थात् क्या प्रत्यक्षज्ञानरूप विषयकृत है या प्रत्यक्षादिशब्दकृत'' इत्यादि उक्त विकल्प का सामना किये विना (उत्तर दिये विना) निस्तार (आपके उद्देश्य की सिद्धि) नहीं है । यहाँ तात्पर्य यह है कि विशिष्टबुद्धि के नियम से विशेषण विषयक होने से प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहार विषयक बुद्धि को भी प्रत्यक्षत्वविषयक मानना आवश्यक है । एवं जैसे घटत्वादिप्रकारक प्रामाणिक व्यवहार घटत्वाश्रयविशेष्यक होता है उसी प्रकार प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहार को भी प्रत्यक्षत्वाश्रयविशेष्यक मानना उचित है । यहाँ – ''वह प्रत्यक्षत्व का आश्रय

एतेन सर्वस्यैव लक्षणस्य स्वीकारः परासनीयः, तथाहि

नात्यापत्त्या प्रमामात्रात्ते तेऽर्थाः स्वीक्रियोचिताः ।
तद्धियस्तदुरीकारे स्वाश्रयं कश्चिकित्सतु ।। ३५ ।।

शारदा

वा प्रत्यक्षलक्षणत्वे, व्यामुग्धलक्ष्यज्ञानञ्च प्रागावश्यकमेव, एवञ्चेदृशस्थले विशिष्टबोधसामग्रीसत्त्वाद्गन्धवती पृथिवी साक्षात्कारि प्रत्यक्षमित्यादिबोधो लक्षणाभिधानात्प्रागपि सम्भवंस्तद्वैयर्थ्यमावहतु, वाक्यार्थस्य लक्षणत्वस्थले तु तस्य प्राग्ग्रहस्यानपेक्षणीयत्वाल्लक्षणवाक्यादेव तत्प्रतीतौ न कथमपि तद्वैयर्थ्यापादकत्वमिति चेन्न; वाक्यार्थात्मकलक्षणस्यापीतरव्यावृत्ततयाऽनवगतौ लक्ष्यव्यावर्तकताया अनतिप्रसक्तव्यवहारप्रयोजकताया वाऽसम्भवेन त्वद्वाक्यात्तस्य प्रतीत्यनन्तरं विपक्षव्यावृत्त्यवगमोऽवश्यमपेक्ष्यः, नच विपक्षवृत्तितत्तद्धर्मात्मकताया लक्षणे ग्रहे तत्सम्भव इति तत्तद्भिन्नत्वग्रहाय लक्षणान्तरापेक्षायामनवस्थाद्यापत्तेरिति ययैव रीत्या वाक्यार्थात्मकलक्षणस्येतरव्यावृत्त्यादिप्रतीतिस्तयैव लक्ष्यस्यापि साऽस्त्विति तादृशलक्षणस्याप्यभिधानं व्यर्थमेव । किञ्च तादृशलक्षणस्यानधिगतपदकृत्यस्य लक्ष्यव्यावृत्तिबुद्ध्यादिप्रयोजकत्वमधिगतपदकृत्यस्य वा, आद्ये लक्ष्यज्ञानमिव लक्षणज्ञानमपि व्यामुग्धमेवेति तस्य व्यावृत्तिबुद्ध्याद्याधायकत्वं नानुमोदामहे, द्वितीये तु लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्येतरव्यावृत्ततयाऽनधिगमेऽतिव्याप्त्यव्याप्त्यादिवारकत्वरूपपदकृत्याधिगमस्यासम्भवदुक्तिकत्वेन प्रागेव तदीयेतरव्यावृत्तत्वाधिगमस्यापेक्षणीयत्वेन लक्षणाभिधानवैफल्यं स्पष्टमेव, तस्य लक्षणज्ञानाधीनत्वोपगमे परस्पराश्रयाद्यापत्तेः ।

एतेन = वक्ष्यमाणेनापि, अपिना रीतेरुक्तायाः परिग्रहः । लक्षणस्येति । **इदं प्रमेयमात्रस्योपलक्षणम् । प्रमामात्रात् = यस्याः कस्याश्चित्प्रतीतेः प्रमात्वसिद्धितः ।** स्वीक्रियेति । **सत्यत्वेनेत्यादिः ।** अत्यापत्त्येति । **घटविषयकप्रतीतेः प्रमात्वसिद्धितो नरविषाणादेरपि सत्यत्वेनाभ्युपगमप्रसङ्गादित्यर्थः । तद्धियः = घटविषयकप्रमातः, घटविषयकप्रतीतेः प्रमात्वसिद्धित इति यावत् । तदुरीकारे = घटस्य सत्यत्वेनाभ्युपगमे । घटविषयकप्रतीतेः प्रमात्वसिद्धौ घटस्य सत्यत्वसिद्धिः, ततश्च घटविषयकप्रतीतेः प्रमात्वसिद्धिः,**

राजहंसः

प्रमामात्रादिति यथाश्रुतमूले घटप्रमया घटस्वीकाराभिधानं न शोभते, तयैव घटस्वीकारशब्दार्थस्य क्रोडीकारात् । अतएव नात्माश्रयः स्थित्युत्पत्तिज्ञप्तिषु । घटप्रमाविशेषं प्रति घटस्य कारणत्वेऽपि घटं प्रति तस्याकारणत्वात् । यदि च घटविशिष्टप्रमाविशेषं प्रति

भारती

कौन है'' इस जिज्ञासा की शान्ति के लिए ही तो आप (तार्किक) को ''साक्षात्कारि प्रत्यक्षम्'' यह लक्षण करना है । किन्तु यह लक्षण भी उसी व्यक्ति के प्रति करना होगा जो साक्षात्कारित्व के अनुमित्यादि से व्यावृत्तया जानता हो, अन्यथा उक्त लक्षण अति व्याप्त हो जायेगा ।

उक्त एवं वक्ष्यमाण युक्तियों से सभी लक्षणों (लक्षणमात्र एवं प्रमेयमात्र) का निराकरण (खण्डन) हो जाता है । वक्ष्यमाण युक्ति इस प्रकार है कि –

अथान्यः स विशेषश्चेत्तद्धीत्वं कश्चिदिष्यते ।
दत्तः साकारवादाय विष्टरः स्पष्टमेव तत् ।। ३६ ।।

शारदा

अन्यथाऽसत्संसर्गविषयकत्वमुपेयुषां भ्रमाणामपि प्रमात्वापत्तेरित्यन्योन्याश्रयः । घटप्रतीतेः प्रमात्वसिद्धिद्वारा तु घटस्य सत्यत्वसिद्धिरात्मानमेवापेक्षते इत्याशयेन स्वाश्रयमित्युक्तम् **। स्वाश्रयं चिकित्सतु = घटो यदि स्वाधीनसत्यत्वसिद्धिकः स्यात्स्वभिन्नः स्यादितिप्रसङ्गमाभासीकरोतु । आपादकस्य दृढत्वादिति भावः ।** अथेति । **अन्यः = बहिर्विषयानिरूपितः । तद्धीत्वं = तत्तद्धीगतो विषयिताविशेषः । साकारवादाय = ज्ञानस्य साकारत्ववादाय । विष्टरः = आसनम् । तत् = उक्ततद्धीत्वम् । अनुमिनोम्यु-**

राजहंसः

घटस्य कारणत्वे घटं प्रत्यपि तत् , न च विषयितादिसम्बन्धेन विशेषणतास्थले नैवं प्रसङ्गः; तादृशसम्बन्धस्य तुरीये निरस्ततया तमादाय प्रत्यवस्थानानवकाशादिति हठादुच्येत तदाप्यतीन्द्रियस्य स्वज्ञाने क्वचिदप्यकारणतया वस्तुमात्रखण्डनं न लभ्येतेत्याशयेनान्यथा व्याचष्टे **यस्याः**

भारती

प्रमामात्र के द्वारा अर्थात् जिस किसी भी प्रतीति के प्रमा होने से (प्रमात्वसिद्धि से) घट पट पृथिवी जल इत्यादि तत्तत् पदार्थों को सत्यतया सिद्ध नहीं मान सकते क्योंकि प्रमामात्र के द्वारा पदार्थ की सिद्धि (सत्ता) मानने पर – घटविषयक प्रमा (घटविषयकप्रतीति में प्रमात्वसिद्धि) के द्वारा नरविषाण (नरशृङ्ग) की भी सत्यतया सिद्धि होनी चाहिए'' इस प्रकार अत्यापत्ति = अतिप्रसङ्ग हो जायेगा । इस आपत्ति के निरासार्थ यदि घटविषयक प्रमा (घटविषयक प्रतीति में प्रमात्व सिद्धि) से घट की सत्ता (घट की सत्यतया सिद्धि) स्वीकार करें तो – घटविषयक प्रतीति के प्रमात्व सिद्ध होने पर घट की सत्ता (सत्यत्व) सिद्ध होगी, और घट की सत्ता (सत्यत्व) सिद्ध होने पर घटविषयक प्रतीति में प्रमात्व की सिद्धि होगी, (क्योंकि अबाधित (सत्य) विषयकत्व ही प्रतीतिगत प्रमात्व होता है ।) इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष हो जायेगा ।'' (घट प्रतीति के प्रमात्वसिद्धि द्वारा घट गत सत्यत्वसिद्धि स्वयं अपनी अपेक्षा करती है अतः मूलकार ने ''स्वाश्रय''शब्द का प्रयोग किया है । स्वाश्रयं चिकित्सतु कहकर ग्रन्थकार ने– घटो यदि स्वाधीनसत्यत्वसिद्धिकः स्यात्स्वभिन्नः स्यात्'' इस प्रसङ्ग को आभासित (भ्रान्ती) सिद्ध करें, कहा है क्योंकि यहाँ आपादक दृढ़ है ।) ॥ ३५॥

यदि कहें कि – घटविषयकबुद्धित्व बाह्य घटादिसे अतिरिक्त(अनिरूपित) तत्तत् बुद्धिगत विषयिताविशेषात्मक बुद्धि का ही धर्मविशेष है अतः अन्य बाह्यविषय की अपेक्षा न होने से अन्योन्याश्रय दोष नहीं है तो इस प्रकार मानकर आप (तार्किक) ने उस (उक्ततत्तद् बुद्धित्व) बौद्धाभिमत ज्ञान के साकारतावाद के लिए स्पष्ट रूप से आसन दे दिया, अर्थात् आपने ज्ञान के साकारतावाद को मान लिया । ॥ ३६॥

अर्थादुत्थास्नवो धर्मा नानुमात्वादयो यथा ।
तद्धीत्वमपि तद्वत्स्यादित्यर्थोऽनर्थमाविशेत् ।। ३७ ।।

शारदा

पमिनोमीत्यादिप्रतीतिसिद्धा अनुमितित्वोपमितित्वादयो ज्ञानगता धर्मा यथा अर्थादुत्थास्नवो न = विषयनिरूपिता न । साक्षात्कारित्वस्य त्वर्थज्ञानत्वरूपत्वे लौकिकविषयिताविशेषरूपत्वे वा विषयनिरूपितत्वमेवेति तन्नोपात्तम् । स्यात् = यदि बहिर्विषयानिरूपितं स्यात्, इति = तदा बहिर्विषयोऽनर्थमाविशेत् = युक्तिविरुद्धः स्यात् , ज्ञानातिरिक्तो न स्यादिति यावत् । अयम्भावः—यद्युक्तस्वाश्रयप्रसङ्गभङ्गाय ज्ञानातिरिक्तविषयानिरूपितमेव विषयिताविशेषं ज्ञाने स्वीकृत्य ततः सत्यत्वेनार्थसिद्धिरित्युच्यते तदा घटादेर्ज्ञानाकारत्वोपगमेनैवोपपत्तौ ज्ञानातिरिक्तस्य सार्वजनीनानुभवविषयस्यापलापप्रसङ्गः, घटपटाद्यंशे ज्ञानानां वैचित्र्यानुभवस्य विषयिताविशेषैरेवोपपत्तेः, शक्यते हि 'ज्ञानं यदि स्वातिरिक्तानिरूपितविषयिताविशेषाश्रयः स्यात्स्वमात्रविषयकः स्या'दिति वक्तुम्, तथाचाप्रतीतोऽर्थः कथं सत्यत्वेनाभ्युपेयेत ।

राजहंसः

कस्याश्चित्प्रतीतेः प्रमात्वसिद्धित इति । अर्थादुत्थास्तवो धर्मा इति । अनुमित्यादेः परोक्षत्वेन विषयाजन्यताया तज्जन्यतानवच्छेदकत्वमनुमितित्वादौ, साक्षात्कारित्वे तु तज्जन्यतावच्छेदकत्वमिति यद्यपि साक्षात्कारित्वानुपादानेन मूले स्वरसतः प्रतिभाति, तथाप्येवं सति तद्धीत्वस्य साक्षात्कारित्वात्मतायां पर्यवसानेन साक्षात्कारिविषयाणामेवात्माश्रयाद्यापत्त्या विलोपः प्राप्येत नत्वतीन्द्रियाणामपीत्याशयेनान्यथा व्याचष्टे **विषयनिरूपिता नेति** । नन्वेवमर्थादुत्थास्नुत्वाभावस्यार्थ-जन्यतानवच्छेदकत्वानात्मकत्वे साक्षात्कारित्वस्यापि तदाश्रयत्वेन 'न साक्षात्त्वादयो यथा' इत्येव मूले कुतो नाधीतमित्यत आह **साक्षात्कारित्वस्य त्विति । विषयनिरूपितत्वमेवेति** । तार्किकादिमते इति त्वनक्षरलभ्यम् । साकारवादे त्वखण्डविषयितानामपि न ज्ञानातिरिक्तविषयनिरूपितत्वम् ।

भारती

अनुमिनोमि – उपमिनोमि इत्यादिप्रतीति सिद्ध अनुमितित्व-उपमितित्व आदि ज्ञानगत धर्म जैसे घट आदि बाह्यविषय निरूपित नहीं है अपितु ज्ञान के ही स्वकीय धर्म (विषयिताविशेष) है, उसी प्रकार तद्बुद्धित्व अर्थात् घटविषयबुद्धित्व भी यदि ज्ञान का ही स्वकीय धर्म है बाह्य घटदिनिरूपित नहीं है तो बाह्य घटादिविषय युक्तिविरुद्ध हो जायेगा अर्थात् ज्ञानातिरिक्त बाह्यविषय की सत्ता सिद्ध न होगी । (भाव यह है कि यदि उक्त अन्योन्याश्रय के वारणार्थ ज्ञान गत विषयिता विशेष को बाह्य विषय से अनिरूपित ज्ञान का निजि धर्म मानकर उसके द्वारा सत्यतया पदार्थसिद्धि मानें तो घटादि को ज्ञानाकार मानने से ही उक्तसिद्धि सम्पन्न होने से सर्वानुभवसिद्ध ज्ञानातिरिक्त बाह्यविषय का सर्वथा अपलाप हो जायेगा और घटाद्यंश में ज्ञानों का वैचित्र्य भी तादृशविषयिताविशेष से ही सम्पन्न हो जायेगा अतः यह कह सकते हैं कि ''ज्ञान यदि स्वातिरिक्त बाह्यविषय से अनिरूपित विषयिता का आश्रय है तो स्व (ज्ञान) मात्र विषयक ही है ।'' ऐसी स्थिति में अप्रतीत पदार्थ सत्यतया सिद्ध कैसे माना जा सकता है । इसलिए बाह्यविषयविशेष से निरूपित ही ज्ञानगतविषयिताविशेष को मानना होगा, तथाच सत्यतया

सोऽपि वा धीविशेषः किं स्वीकार्यस्तद्धियं विना ।
एवञ्च सोऽपि सोऽपीति नान्तः सोपानधावने ।।३८।।

शारदा

तस्माद्बहिर्विषयनिरूपित एव विषयिताविशेषो वक्तव्य इति सत्यत्वेन बहिर्विषयसिद्धि-सापेक्षप्रमात्वसिद्ध्यैव सत्यत्वेन बहिर्विषयसिद्धिरित्युक्तदोषः, नहीदानीं प्रमात्वस्यान्यथासिद्धिवर्क्तुं शक्यत इति । साकारवादिनं प्रत्यप्याह सोऽपीति । **धीविशेषः = तत्तद्धीगतो विषयिताविशेषः।** स्वीकार्य इति । **सत्यत्वेनेत्यादिः तद्धियं विना = तादृशविशेषविषयकधियः प्रमात्वसिद्धिं विना । एतेन ज्ञानातिरिक्तापलापिनो मते ज्ञानस्य स्वविषयत्वोपगमेनानुव्यवसायसमानाकारतया तदीयविषयिताविशेषस्यापि तत्र भानावश्यकत्वेनानवस्थाप्रसङ्गासङ्गतिर्न देशनीया । उक्तमतेऽपि सत्यत्वेन कस्यचित्पदार्थस्योपगमाय तद्धियः प्रमात्वसिद्धिरावश्यकी, अन्यथा ज्ञाने बहिष्ट्वस्याप्युपगमापत्तेरिति भावः । यदि तु विषयिताविशेषात्मकविषयानिरूपित एव कश्चिद्विषयिताविशेषस्तज्ज्ञाने स्वीक्रियते तद्बलादेव च विषयस्य विषयिताविशेषस्य सत्यत्वेन सिद्धिरित्युच्यते तदोक्तरीत्यैव विषयीभूते विशेषे ज्ञानानात्मनि न मानम्, इष्टापत्तौ च विषयिताविशेषान्तरे प्रथमविशेषसाधकतया स्वीकृते उक्तरीत्यैवान्योन्याश्रयोद्भावने तद्वारणे च पूर्वपूर्वविशेषलोपस्य विषयिताविशेषान्तरोपगमस्य च प्रसङ्ग इत्यनवस्थामाह** एवञ्चेति । **सोपानधावने = उत्तरोत्तरविषयिताविशेषोपगमे । यदि तु न कोऽपि विशेषो ज्ञानानात्मा, ज्ञानमेव तु केवलम्, तदा घटज्ञानं पटज्ञानमितिविलक्षणानुभवानुपपत्तिः, नहि भवता वेदान्तिवदनिर्वचनीयं तत्तत्पदार्थसार्थमुपेत्यानुभवोपपादनं शक्यम् , ज्ञानातिरिक्तस्याली-**

राजहंसः

प्रमात्वसिद्धिरावश्यिकीति । परमते प्रमात्वस्य परतस्त्वात् , स्वतस्त्ववादेऽपि विवादिनं प्रति युक्त्यैव तत्प्रतिपादनौचित्यात् ।

भारती

बाह्यविषय सिद्धि सापेक्ष ही प्रमात्वसिद्धि के होने से उक्त अनोन्याश्रय दोष रहेगा ।) ॥ ३७॥

(यहाँ यदि बौद्ध पूर्वपक्ष रूप से उपस्थित होकर यह कहें कि हमें साकारवाद इष्ट ही है तो उस साकारवादि के प्रति ग्रन्थकार श्री श्रीहर्ष कहते हैं कि – वह धीविशेष अर्थात् तत्तज्ज्ञानगत वह विषयिताविशेष भी क्या तादृशतत्तज्ज्ञानगत विषयिताविशेषविषयकज्ञान के प्रमात्वसिद्धि के विना स्वीकार कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते । क्योंकि बौद्धमत में भी सत्यतया किसी पदार्थ की सिद्धि के लिए तद्विषयक ज्ञान में प्रमात्वसिद्धि आवश्यक है अन्यथा ज्ञान में बहिष्ट्व की भी सिद्धि हो जायेगी । तथाच तादृशधीविशेष की सिद्धि के लिए तद्विषयक ज्ञान में प्रमात्वसिद्धि की अपेक्षा मानने पर पुनः पूर्ववत् अन्योन्याश्रय होगा, और उसके वारणार्थ यदि पुनः प्रथम धीविशेषसाधकतया द्वितीयधीविशेष एवं द्वितीय धीविशेष साधकतया तृतीय धीविशेष इस प्रकार उत्तरोत्तर धीविशेष (तत्तज्ज्ञानगतविषयिता विशेष) की कल्पना करें तो पूर्वपूर्वविशेष का लोप तथा उत्तरोत्तर विषयिताविशेष के कल्पना करने से अनवस्था दोष हो जायेगा । ॥ ३८॥

समस्तलोकशास्त्रैकमत्यमाश्रित्य नृत्यतो :।
का तवास्तु गतिस्तत्तद्वस्तुधीव्यवहारयोः ।। ३९।।
उपपादयितुं तैस्तैर्मतैरशकनीययोः ।
अनिर्वक्तव्यतावादपादसेवा गतिस्तयोः ।।४०।।

शारदा

कत्वोपगमात् , एवञ्च ज्ञानस्य स्वविषयत्वेऽपि सत्यत्वेन तत्सिद्धिस्तस्य स्वांशे प्रमात्वसिद्धिमपेक्षमाणा स्वाश्रयं सावसरयत्येवेति भावः । लक्षणं लक्षणाभाववति वा वर्तते लक्षणवति वा, आद्ये व्याघातः, अन्त्ये त्वात्माश्रयः, यथाचोपाधिपक्षेऽपि नात्माश्रयपरिहारसम्भवस्तथोक्तं भेदभङ्गेपुरा, आधारतावच्छेदकं च यदि लक्षणान्तरं तदाऽन्योन्याश्रयादिकमित्यपि लक्षणसामान्यखण्डनरीतिर्द्रष्टव्या । गलितगर्वस्य पृच्छा समस्तेत्यादिका । **लोकशब्देनानिर्वचनीयवादिव्यतिरिक्तो ग्राह्यः, शास्त्रशब्देन चानिर्वचनीयताप्रतिपादकशास्त्रातिरिक्तम् । ऐकमत्यमाश्रित्य = सम्प्रतिपत्तिविषयीभूय । नृत्यतोः = निर्बाधमिव प्रतीयमानयोः, सम्प्रतिपन्नाबाध्यताकयोरिति यावत् । तव = प्रमेयमात्रनिरासिनो मते । गतिः = उपपादनरीतिः। उत्तरयति** उपपादयितुमिति । **तदुक्तम्– ''इह जन्मनि केषाञ्चिन्न तावदुपपद्यते । योग्यवस्थागतानां तु न विद्मः किं भविष्यती''ति। उपपद्यते इति । वस्तुधीव्यवहारद्वयमिति प्रपञ्च इति वा शेषः प्रकृत उपयुज्यते । किमिति। योगिना हि ब्रह्म चिन्तनीयमिति तदवस्थायां ब्रह्मोपपद्यते न त्वयं पूतिकूष्माण्डायितो द्वैतानर्थसार्थ इति भावः । वादपादसेवा तु वादाभ्युपगमपर्यवसन्ना ।**

भारती

(यदि गलित गर्व होकर तार्किकादि प्रतिवादी अनिर्वचनीयत्ववादी वेदान्ती से पूछें कि) यदि इस प्रकार आप वेदान्ती सर्वत्र लक्षण प्रमेयादि में दोष का उद्भावन कर खण्डन करेंगे तो समस्त लोक (सत्यत्ववादी लोक) एवं समस्त शास्त्र (सत्यत्वप्रतिपादक तर्क आदि शास्त्र) के एकमत अर्थात् सम्मति के द्वारा अबाधिततया प्रतीयमान तत्तद् वस्तुविषयक ज्ञान तथा व्यवहार का उपपादन आप (वेदान्ती) भी कैसे करेंगे ? ॥ ३९॥

(गन्थकार श्री श्रीहर्ष इसका उत्तर देते हैं कि) – सत्यत्ववादि तत्तत् तार्किकादि मतों के द्वारा तत्तद् वस्तुविषयक ज्ञान एवं व्यवहार का उपपादन नहीं किया जा सकता है (क्योंकि उक्तज्ञान एवं व्यवहार अर्थात् प्रपञ्च को अद्वैतश्रुति तथा उक्तयुक्तियों के द्वारा बाधित होने से सत्य नहीं मान सकते, और प्रत्यक्षतया अनुभवसिद्ध होने से असत् (अलीक) भी नहीं मान सकते अतः अनिर्वचनीयतावाद के पाद की सेवा करना ही उन (तादृश ज्ञान एवं व्यवहार अथवा प्रपञ्च) के लिए गति उपपादनरीति है अर्थात् उन्हें अनिर्वचनीय मानकर ही उपपादन किया जा सकता है । ॥ ४०॥

नापि द्वितीयः, तथाहि— अयमनुमानार्थः स्यात्— श्रावणादिप्रतिपत्तयः प्रत्यक्षशब्दाभिधेयाः साक्षात्कारित्वादित्यादिः, सोऽपि न, यद्यसाक्षात्कारिण्यनुमानादौ तच्छब्दाप्रयोगमात्रात्साक्षात्कारिणि तच्छब्दप्रयोगः क्रियते तर्हि शशविषाणजबगडादिशब्दप्रयोगोऽपि साक्षात्कारिणि कर्तव्य एवाविशेषात्। अथ जबगडदशादिशब्दाः सामान्यतोऽर्थवत्तया न प्रसिद्धाः, क्वचिदप्रयोगात्; शशविषाणादिशब्दा असद्विषया एवेति प्रसिद्धाः,

शारदा

'उत शब्दभेद' इति विकल्पं प्रत्याह नापीति । **अनुमानार्थः = न्यायाकारः । अत्र साध्येऽनादिसङ्केतः प्रविष्टः, तेन नामकरणवशात्कस्यचिज्जनस्यापि प्रत्यक्षशब्दाभिधेयतया सपक्षत्वेन तद्व्यावृत्ततया नासाधारण्यं हेतोराशङ्कनीयम् । अन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव वाच्यवाचकभावग्रहपर्यवसानाय प्रकारान्तरं तावन्निराचष्टे** यदीति। **तदा प्रत्यक्षपरामर्शः । अविशेषात् = असाक्षात्कार्यवाचकत्वाविशेषात् । सामान्यतः = सामान्यतोऽपि, किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नशक्यताकत्वेनापि, तत्तद्धर्मावच्छिन्नशक्यताकत्वेन तु दूरे ।** असद्विषया इति । **विकल्पाभ्युपगन्तृपक्षे केवलालीकबोधकत्वम्, अन्यथाख्यातिपक्षे तु बाधितसंसर्गबोधकत्वम्, तदुक्तं शब्दशक्तौ—''शशविषाणादिकः शब्दोऽपि शशीयत्वादिना विषाणादेरन्वयबोधमादधानस्तादृशविषयताकबोधजनने सार्थक एव परन्त्वयोग्य'' इति। सामान्यतः सद्विषयवत्तया = किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नशक्यताकतया । विशिष्य शक्यतावच्छेदक-**

भारती

''प्रत्यक्षतया व्यवहर्तव्या'' इस साध्यघटक व्यवहार में शब्दविशेष अर्थात् प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वप्रकारकत्व विवक्षित है'' यह द्वितीय विकल्प भी युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि यहाँ अनुमान का आकार इस प्रकार होगा कि – श्रावणादि प्रमितियाँ प्रत्यक्षशब्द वाच्य है साक्षात्कारित्ववती होने से । किन्तु यह न्याय ठीक नहीं है, कारण कि इस अनुमान के व्यतिरेकि अनुमान होने से – जो प्रत्यक्षशब्द वाच्य नहीं है वह साक्षात्कारित्ववान् (साक्षात्कारि) भी नहीं है जैसे अनुमिति । इस प्रकार व्यतिरेकी दृष्टान्त (उदाहरण) मानना होगा । किन्तु यदि असाक्षात्कारि अनुमिति में ''प्रत्यक्ष'' शब्द का प्रयोग न होने मात्र से ही साक्षात्कारि श्रावणादि में प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग माना जाये तो शशविषाण जबगड आदि शब्दों का प्रयोग भी साक्षात्कारी ज्ञान में करना चाहिए, क्योंकि प्रत्यक्ष शब्द के समान शशविषाण जबगड़दशादि शब्द भी असाक्षात्कारि ज्ञान वाचक नहीं है । अर्थात् असाक्षात्कारि-अवाचकत्व उभयत्र समान है ।

प्रश्न – जबगड़ दश आदि शब्द सामान्यतः अर्थात् किञ्चिद्धर्मावच्छिन्न शक्यताकत्व रूप से भी सार्थक रूप से प्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि किसी भी अर्थ में इस (जबगडदशादि शब्द) का प्रयोग नहीं देखा जाता है और शशविषाण आदि शब्द तो असद्विषयक अर्थात्

प्रत्यक्षादिशब्दास्तु सद्विषयवत्तया सामान्यतः सिद्धाः, प्रत्यक्ष-मस्तीत्यादिप्रयोगदर्शनादित्यस्ति विशेष इति; मैवम् , एतेनापि विशेषेण चाक्षुषादिशब्दानामव्यवच्छेदात् तेषामपि साक्षात्कारिप्रमामात्रे प्रयोगप्रसङ्गः। साक्षात्कारित्वे सत्यपि श्रावणादौ चाक्षुषादिशब्दानामप्रयोगो न त्वेवं प्रत्यक्षादिशब्दानामिति विशेष इति चेत्; एवं तर्हि 'यत्र साक्षात्कारित्वं नास्ति तत्र प्रत्यक्षशब्दप्रयोगो

शारदा

निश्चयस्तु प्रकृतानुमानेनेति भावः । विशेष इति । **योग्यार्थकत्वे सत्यसाक्षात्कार्यवाचकस्यैव साक्षात्कारिसामान्यवाचकत्वमिति नियम इति भावः । अत्र चाक्षुषादिशब्देषु व्यभिचारमाह** एतेनेति । **एवं तर्हि = साक्षात्कारित्वावच्छेदेनैव यस्य शब्दस्य प्रयोगस्तस्य साक्षात्कारित्वावच्छिन्नशक्यताकत्वे** । यत्रेति । **अस्य प्रकृतानुमानोदाहरणवाक्यत्वाभावेऽपि यद्यपि वैपरीत्येनैव भावाभावयोर्व्याप्यव्यापकभावोपदर्शनसङ्गतिः, तथापि समनैयत्येनान्य-**

भारती

विकल्पवृत्तिस्वीकर्ता के मत में अलीक का बोधक तथा अन्यथाख्यातिमत में बाधित संसर्ग (शुक्तिरजतसंसर्ग) का बोधक रूप से प्रसिद्ध है । किन्तु प्रत्यक्षादि शब्द तो सामान्यतः (किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नशक्यताकत्वरूप से) सद्विषय के बोधक रूप से प्रसिद्ध है क्योंकि प्रत्यक्षमस्ति (प्रत्यक्ष है) इत्यादि प्रयोग देखा जाता है । अतः जबगडदश शशविषाण शब्दों की अपेक्षा प्रत्यक्षशब्द में यही विशेषता है । (तात्पर्य यह है कि – यदि ''जो असाक्षात्कारि (अनुमित्यादि) का अवाचक होता है वह साक्षात्कारिसामान्य का वाचक होता है'' ऐसा ही नियम होता, तो उक्त आपत्ति हो सकती थी, किन्तु यहाँ वैसा नियम नहीं है अपितु उक्त नियम में योग्यार्थकत्व विशेषण देकर योग्यार्थक होकर जो असाक्षात्कारि का वाचक नहीं है वह साक्षात्कारि सामान्य का वाचक है'' ऐसा नियम मानते हैं । जबगडादि शशविषाण आदि शब्द योग्यार्थक न होने से उक्तनियम के अन्तर्गत नहीं आते, अतः उनमें साक्षात्कारि सामान्य के वाचकत्व की आपत्ति नहीं दी जा सकती ।)

समाधान – इस प्रकार विशेषण देने पर भी चाक्षुषादि शब्दों का व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) न होगा, क्योंकि चाक्षुषादि शब्द भी योग्यार्थक होकर असाक्षात्कारि (अनुमिति आदि) का अवाचक है अतः उन (चाक्षुषादिशब्दों) का भी साक्षात्कारी सामान्य में प्रयोग होना चाहिए । (अर्थात् चाक्षुषादि शब्द भी साक्षात्कारि सामान्य के वाचक होने चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है, चाक्षुष शब्द चक्षुर्जन्य प्रत्यक्ष का ही वाचक है, न कि प्रत्यक्षसामान्य का । तथाच चाक्षुषादि शब्दों में उक्तनियम का व्यभिचार है ।)

यदि कहें कि श्रावणादि के साक्षात्कारि होने पर भी उन (श्रावणादि) में चाक्षुष शब्द का प्रयोग नहीं होता, किन्तु प्रत्यक्षादि शब्द का प्रयोग होता, यही चाक्षुषादि शब्दों से प्रत्यक्षशब्द का विशेष (अन्तर = भेद) है । तो यह आपका कहना ठीक नहीं है । क्योंकि इस प्रकार मानने से यही सिद्ध होगा कि – ''जिस पदार्थ में साक्षात्कारित्व नहीं है उसमें प्रत्यक्षशब्द का प्रयोग

नास्ति, यत्र साक्षात्कारित्वमस्ति तत्र सर्वत्रास्ती'ति यो जानीते तं प्रति लक्षणाभिधानमिति स्यात्, स च व्यहारान्तरवदन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव वाच्यवाचकभावमवधारितवानिति व्यर्थं लक्षणम्। एतेनानुमित्यादिव्यवच्छिन्नतया व्यवहर्तव्यमित्युक्तानुमानसाध्यतयाऽभिधीयमानमपास्तं वेदितव्यम्। पूर्वप्रतिपन्नमेव वाच्यवाचकभावं लक्षणाभिधानेन स्मार्यते इति

शारदा

थाप्यभिधाने न क्षतिरिति भावः। जानीते **इति। अन्यथोक्तरीत्या जबगडादिशब्दाभिधेयत्वस्यापि साक्षात्कारिणि प्रसङ्गात्, नहि भवताऽऽप्तविधया लक्षणवाक्यं प्रयुज्यते, नवा भवता साक्षात्कारित्वात्मकलक्षणादन्यो हेतुरुच्यते शक्तिभ्रमाजन्यलक्षणाग्रहाजन्यप्रत्यक्षपदजन्यशाब्दबोधविषयत्वरूपः, येन भवद्वाक्यादेव साक्षात्कारित्वावच्छेदेन प्रत्यक्षपदप्रयोगविषयत्वप्रतीतिरिति स्यात्। नवा तादृशहेतोरवश्याभिधानीयत्वे साक्षात्कारित्वस्य लक्षणतयाऽभिधानं न विफलम्, अभिधानेऽपि च तादृशहेतोः कथन्तानिवृत्तयेऽन्वयव्यतिरेकाववश्योपासनीयौ, अन्यथा त्वदुक्तिमात्रेण जन्यजनकभावस्याश्रद्धेयत्वात्, तथाचान्यत्रेव प्रत्यक्षशब्देऽपि प्रागेव ताभ्यां सङ्गतिग्रहे पश्चादभिधीयमानं लक्षणं न प्रयोजनालम्बि, एवञ्च लक्षणाभिधानस्याप्तोपदेशत्वानभ्युपगमपक्षे उपायस्योपायान्तरादूषकत्वन्यायावतारोऽपि नेति। तदाह** सचेति। **उक्तज्ञानवांस्त्वित्यर्थः।** व्यवहारेति। **व्यवह्रियमाणेत्यर्थः।** वेदितव्यमिति। **अनुमित्यादिव्यवच्छिन्नत्वस्याज्ञाने विशेषणाज्ञानेन तद्विशेषितव्यवहारज्ञापनानुपपत्तेः, तज्ज्ञाने तु तत्प्रकारको व्यवहारस्तदाश्रयविशेष्यक इति ज्ञानमौचित्यप्राप्तमित्यादिकमुक्तरीत्या द्रष्टव्यम्।** वाच्यवाचकभावमिति। **अर्थविशेषितव्यवहारस्याप्युपलक्षणमिदम्। एवमुत्तरग्रन्थेऽपि समयादिपदम्।** स्मार्यते इति। **जन इति शेषः। ''बुद्धिभक्षार्थयोश्शब्दकर्मणाञ्च निजेच्छये''ति**

भारती

नहीं होता, और जहाँ साक्षात्कारित्व है वहाँ सर्वत्र प्रत्यक्षशब्द का प्रयोग होता है'' इस प्रकार जो जानता है उसके प्रति लक्षण का अभिधान (कथन) है और उक्त ज्ञानवान् तो प्रत्यक्षशब्द के वाच्यवाचक भाव का ज्ञान भी घटादिव्यवहारान्तर अर्थात् व्यवह्रियप्रमाण घटादि के समान अन्वय व्यतिरेक द्वारा ही कर सकता है ऐसी स्थिति में प्रत्यक्षशब्द के वाच्यवाचकभाव का ग्रहण करने हेतु प्रत्यक्ष का लक्षण करना व्यर्थ है।

इसी प्रकार ''साक्षात्कारी प्रमितियाँ अनुमित्यादि से व्यवच्छिन्नतया (व्यावृत्ततया) व्यवहर्तव्य है'' यह उक्त तादृशव्यवच्छिन्नतयाव्यवहर्तव्यत्व साध्यक अनुमान भी निरस्त हो जाता है क्योंकि यदि अनुमित्यादिव्यवच्छिन्नत्व का ज्ञान नहीं है तो विशेषण का ज्ञान न होने से तादृशविशेषण विशिष्ट व्यवहार का ज्ञापन उक्त अनुमान के द्वारा करना अनुपपन्न है अर्थात् उक्तानुमान के द्वारा साध्य सिद्ध नहीं कर सकते और यदि उस (अनुमितित्यादिव्यवच्छिन्नत्व) का ज्ञान है तो तादृशव्यवच्छिन्नप्रकारकव्यवहार तादृशव्यवच्छिन्नत्वाश्रय विशेष्यक है यह ज्ञान भी पूर्व ही सम्पन्न हो गया, अतः तदर्थ अनुमान करना व्यर्थ है।

चेन्न; अवगतसमयस्य प्रत्यक्षशब्दादेव तत्स्मरणसम्भवात् व्यर्थता लक्षणाभिधानस्य स्यात् । अवगतशब्दार्थसम्बन्धः शब्दादेव स्मरन् यदि लक्षणेन स्मार्यते, तदा लक्षणवाक्यगतपद-कदम्बार्थस्मरणार्थमपि लक्षणमभिधानीयमविशेषात् , एवं तल्लक्षणवाक्येऽपीत्यपर्यवसानं स्यात् ।

ननु प्रतिवादिनं प्रति लक्षणाभिधानं नार्थवत् , तेन वाद्याप्तभावानङ्गीकारात्, किन्तु शिष्यार्थं लक्षणमुच्यते शास्त्रे, स हि शास्त्रस्य कर्तारमाप्तमेव मन्यते, तस्माच्छिष्यं प्रत्याप्तवचनत्वेनैव लक्षणवाक्यमर्थं प्रतिपादयिष्यति गुरुणा गीयमानम् – यस्त्वया साक्षात्कारिशब्दार्थः प्रतीतः स एव प्रत्यक्षशब्दार्थ इति चेन्मैवम् , यदि वादिनं प्रति न शास्त्रं किन्तु शिष्यं प्रति, तदा प्रतिज्ञामात्रादेवाप्तवचनाच्छिष्यस्यार्थनिश्चयोत्पत्ते-

---

शारदा

वैयाकरणोक्तेरिति भावः । अवगतसमयस्येति अवगतशब्दार्थसम्बन्ध इति चान्यपदार्थप्रधानम्। ननु शब्दादिव लक्षणादपि ज्ञाताद्वाच्यावाचकभावस्य व्यवहारस्य च स्मरणसम्भवे विनिगमकं दुर्लभमत आह अवगतशब्देति । **शब्दात् = लक्ष्यवाचकशब्दात् । लक्षणेन = लक्षणाभिधानेन। लक्षणवाक्यानां स्वरूपमात्रपरत्वप्रकारस्त्वद्वैतसिद्ध्यादौ द्रष्टव्यः ।**

भारती

यदि कहें कि लक्षणाभिधान से पूर्व ज्ञात ही वाच्यवाचकभाव लक्षण कथन के द्वारा पुरुष का स्मरण कराया जाता है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि अवगतशब्दअर्थ सम्बन्ध (शक्ति) पुरुष को तो प्रत्यक्षशब्द से ही स्मरण दिलाया जा सकता है । तदर्थ लक्षण आवश्यक नहीं है । अवगतशब्दार्थ पुरुष यदि शब्द के द्वारा जानते हुए भी उक्त वाच्यवाचकभाव का लक्षण के द्वारा स्मरण करते हैं तो लक्षण वाक्य गत पद समुदाय के अर्थ स्मरण के लिए भी उन उन पदार्थों के लक्षण करना होगा । पुनः तत्तत् लक्षणवाक्य घटक पदार्थ स्मरणार्थ भी लक्षण करने होंगे इस प्रकार उत्तरोत्तर लक्षण करना आवश्यक होने से अनवस्था में ही पर्यवसान होगा ।

प्रश्न – प्रतिवादि खाण्डनिक के प्रति लक्षण का अभिधान (कथन) भले ही सार्थक न हो क्योंकि वह (खाण्डनिक) वादी (तार्किकादि) के आप्तत्व को नहीं मानता (अर्थात् उन्हें आप्त नहीं मानता) किन्तु शास्त्र (तर्कशास्त्र) में लक्षण का कथन शिष्य के लिए किया गया है और वह शिष्य तो शास्त्र के निर्माता को आप्त मानता है, तस्मात् गुरु के द्वारा उपदिष्ट लक्षण वाक्य शिष्य के प्रति आप्तवचन रूप से ही अर्थ-प्रतिपादन करता है कि – "जिसे तुम साक्षात्कारि शब्द का अर्थ जानते हो वही प्रत्यक्षशब्द का अर्थ है ।"

समाधान – इस प्रकार आप नहीं कह सकते, क्योंकि यदि वादी के प्रति शास्त्र उपदेष्टा नहीं है अपितु शिष्य के प्रति ही उपदेश देता है तो तत्तत् पदार्थ विषयक प्रतिज्ञामात्र रूप

हेत्वाद्यभिधानमनर्थकमापन्नं शास्त्रे । अथ भवतु तत्प्रतिवादिनमपि प्रति शास्त्रे वाक्यं यत्र हेत्वाद्युपात्तम् । लक्षणवाक्यं तु शिष्यमेव प्रति प्रयोजकं प्रतिपन्नशास्त्रकाराप्तभावमिति मन्यसे; तदप्यनुपपन्नम्, शास्त्रान्तरसाध्यत्वादस्यार्थस्य, अस्ति शास्त्रं समयस्य ग्राहकं मुनिभिः प्रणीतं नामलिङ्गानुशासनव्याकरणादि । यदि च शास्त्रान्तरसाध्योऽर्थो भवदीयशास्त्रस्य विषयस्तर्हि प्रकृतिप्रत्ययविभागेन साधनमपि शब्दानां कुतो न व्युत्पाद्यते ? लिङ्गं वा शब्दानां कुतो नाभिधीयते ? तदज्ञानेऽपि पराजयो जायते एव । अथवाऽस्तु व्याकरणादिविषयं विहाय नामव्युत्पादनं

शारदा

प्रतिपन्नशास्त्रकाराप्तभावं शिष्यमित्यन्वयः । प्रयोजकं = उपयुक्तम् । अस्यार्थस्य= वाच्यवाचकभावबोधरूपस्य लक्षणाभिधानप्रयोजनस्य। विभागेन = विभागप्रदर्शनपूर्वकम्। साधनं = साधुत्वं । व्युत्पाद्यते = निर्णीयते । ननु कथौपयिकपदार्थव्युत्पादनमेवास्मच्छास्त्रसाध्यमिति शब्दसाधुत्वादिकं न तत्र प्रदर्शितमित्यत आह तदज्ञानेऽपीति। **साधुशब्दाज्ञानेऽपीत्यर्थः। अपशब्दप्रयोगस्यावाचकपदप्रयोगात्मकनिग्रहस्थानान्तर्गतत्वादिति भावः। ननु वाच्यवाचकभावप्रदर्शनस्य शास्त्रान्तरेष्वपि बहुश उपलम्भात्तत्रापि पर्यनुयोगोऽयं सावकाशः,**

भारती

आप्तवचन के द्वारा ही शिष्य को तत्तद् अर्थविषयक निश्चय हो ही जायेगा, ऐसी स्थिति में शास्त्र में तत्तत् अर्थ के साधक हेत्वादि का कथन करना व्यर्थ हो जायेगा ।

यदि कहें कि जहाँ हेत्वादि का कथन किया गया है ऐसे शास्त्रघटक वचन भले ही प्रतिवादी (खाण्डनिक आदि) के प्रति सार्थक हो, किन्तु शास्त्रगतलक्षणप्रतिपादक वाक्य तो शास्त्रकार को आप्त मानने वाले शिष्य के प्रति ही उपयुक्त होते हैं । तो इस प्रकार आपका मानना युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि लक्षणाभिधान का यह वाच्यवाचकभाव विषयक बोधरूप प्रयोजन तो शास्त्रान्तर (अन्य शास्त्र = व्याकरणादि) के द्वारा भी सिद्ध होता है । पाणिनि आदि मुनियों के द्वारा प्रणीत नामलिङ्गानुशासनव्याकरण आदि शास्त्र समय अर्थात् शक्ति (वाच्यवाचकभाव) के ग्राहक (ज्ञापक) शास्त्र है और यदि शास्त्रान्तर (व्याकरणादि) के द्वारा प्रतिपाद्य पदार्थ भी आप (तार्किक) के शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय मानें तो प्रकृति प्रत्यय विभाग पूर्वक शब्दों के साधुत्व का भी निर्णय आपके शास्त्र द्वारा क्यों नहीं करते । शब्दों के लिङ्ग का कथन भी क्यों नहीं करते ।

(यदि कहें कि शास्त्रचर्चा (शास्त्रार्थ) के उपयोगी पदार्थों का ही व्युत्पादन हमारे शास्त्र (तर्कशास्त्र) का प्रतिपाद्य है न कि शब्द साधुत्वादि, तो यह नहीं कह सकते क्योंकि) साधुशब्दों के अज्ञान होने पर भी पराजय होता ही है । (अपशब्द का प्रयोग भी अवाचकपद-प्रयोगात्मकनिग्रहस्थान के अन्तर्गत परिगणित है ।) अथवा – मान लिया जाय कि व्याकरणादि शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय को छोड़कर नामार्थ का कथन आपके शास्त्र का विषय है, तो भी

कथमपि भवच्छास्त्रविषयः, तदापि न्यूनतरत्वमस्मिन् विषये भवदीयशास्त्रस्य, बहूनि नामानि विद्यन्ते कोषान्तरवर्तीनि, कुतो न व्युत्पादितानीति । अथास्मिन् शास्त्रे येषां शब्दानामुपयोगस्तेषामनेन व्युत्पादनं न सर्वेषामित्युच्यते; तथापि यथैकवाक्यगतस्य पदस्य लक्षणव्युत्पादनमेवं तल्लक्षणवाक्यगतपदस्यापीत्यपर्यवसानमापतितं शास्त्रस्य, तत्तल्लक्षणवाक्यप्रयोगे एव तेषां तेषां पदानां शास्त्रे जातोपयोगत्वात् । अथ नानालक्षणप्रणेतृणां वादिनां विप्रतिपत्तेः प्रत्यक्षादिशब्दार्थ एव व्युत्पाद्यते संशयनिरासाय, नान्योऽसंशयत्वादिति मन्यसे; तथाप्यनुपपत्तिः, अस्ति हि वादिनां वाऽऽदीनामर्थे वाच्यताद्योत्यताविवादः, अस्ति च

शारदा

समाधानं तु समानमेवेत्यत आह अथवेति। **व्युत्पादनमत्रार्थप्रदर्शनम्। असंशयत्वात्= संशयाविषयत्वात्। वाऽऽदीनाम् = वाप्रभृतिनिपातानाम् । अनुप्राससौष्ठवाय प्रादीनामिति चादीनामिति वा नोक्तम् । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तावत्तत्तदर्थे तत्तत्पदवाच्यत्वमित्युत्सर्ग इति समुच्चयादौ**

राजहंसः

अनुप्राससौष्ठवायेति । वादिनामित्यनेन विनाकृतस्य वाऽऽदीनामिति पाठस्योपलब्धमूलपुस्तकद्वये उपलम्भेऽपि प्रादीनां चादीनामित्यनभिधाय वाऽऽदीनामित्यभिधाने किं मूलमितिजिज्ञासायाः प्रकारान्तेण निवारणमनर्हन्त्या निवारणौचित्यमेवानुचिन्त्य वाऽऽदीनामित्यस्य प्रतिवेशितया वादिनामिति भ्रष्टतयाऽनुमितः पाठो योजितः, सुदृढं सम्भाव्यतां चैवं लेखनं सानुप्रासवक्राभिधानधनस्य मूलकृतः । अतएव वाऽऽदीनामित्यत्रैव प्रादीनां चादीनामिति वा मुख्यपाठकल्पनं नाध्यवसितम् ।

भारती

आपके तर्कशास्त्र की इस विषय में अत्यन्त न्यूनता ही है, क्योंकि बहुत से नाम कोषादि में विद्यमान है उनका व्युत्पादन (अर्थकथन) आपके शास्त्र में क्यों नहीं किया ।

यदि कहें कि जिन शब्दों का इस तर्कशास्त्र में उपयोग है उन्हीं के अर्थ का कथन इस शास्त्र के द्वारा किया गया है न कि सभी शब्दों का, तो ऐसा मानने पर भी जैसे एक लक्षण वाक्य (साक्षात्कारिज्ञानं प्रत्यक्षम्) गत प्रत्यक्ष पद के लक्षण द्वारा अर्थप्रदर्शन आपने किया उसी प्रकार तल्लक्षणवाक्यगत पद का भी लक्षण द्वारा अर्थ प्रदर्शन करना होगा इस प्रकार उत्तरोत्तर लक्षण द्वारा अर्थ प्रदर्शन करने पर अनवस्था हो जायेगी । क्योंकि तत्तत् लक्षणवाक्य के प्रयोग में ही उन उन पदों (उत्तरोत्तरलक्षणघटकपदों) का शास्त्र में उपयोग है ।

यदि आप यह मानें कि प्रत्यक्षादि शब्द के अर्थ में ही नानालक्षणप्रणेता वादियों की विप्रतिपत्ति (विवाद) है अतः संशय निरासार्थ प्रत्यक्षादिशब्दों का ही व्युत्पादन (अर्थप्रदर्शन) हमारे शास्त्र में करते हैं अन्य शब्दों का व्युत्पादन (अर्थप्रदर्शन) नहीं करते, क्योंकि उन (अन्यशब्दार्थ) में संशय नहीं है । अर्थात् अन्यशब्दार्थ संशय के विषय नहीं है । तथापि यह आपका मानना अनुपपन्न (युक्तिविरुद्ध) है; क्योंकि जिस-जिसमें संशय हो यदि उसे व्युत्पादनीय

छिदुरादिपदानामर्थे कर्मकर्तृत्वाकर्मकर्तृत्वे विवादः, अस्ति च

शारदा

चादिशक्तिरेव वक्तव्या, शब्दशक्तिस्वाभाव्यात्तु शोभनः समुच्चय इति वच्छोभनश्चेत्यस्य नापत्तिः । साक्षात्क्रियते इत्यादौ च साक्षात्पदेन फलस्य धातुना च तदनुकूलव्यापारस्य प्रतीतावपि स्वस्वयुक्तनिपातान्यतरार्थफलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वेन सकर्मकत्वोपपत्तेः। व्युत्पत्तिवैचित्र्याच्च नामार्थधात्वर्थयोरत्र भेदान्वयोपगमेऽपि न क्षतिः। एवञ्च ''साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययो''रित्यादिशक्तिग्राहकस्वरसोऽपि । उपसर्गाणां वाचकत्वे तु यद्यपि 'अनुभूयते' इत्यस्य सकर्मकत्वमुक्तरीत्यैवोपपद्यते, 'उपसर्गार्थधात्वर्थयोर्भेदान्वयश्च । तथापि तेषां क्रियागतविशेषावबोधकतया स्वातन्त्र्येणाप्रयोगात्, क्वचित्तथाप्रयोगेऽपि क्रियाध्याहारात्, प्रभवतीत्यादौ प्रोपसर्गबलात् प्रकृष्टभवनस्य प्रस्मरतीत्यादौ च विस्मरणस्य प्रतीत्यान्वयव्यतिरेकयोरप्यव्यवस्थितत्वाच्च क्लृप्तशक्तिकस्य धातोः शक्ततायामवच्छेदकत्वमेवोपसर्गाणां युक्तं नतु शक्तत्वम्, गौरवात्, उक्तं च निरुक्ते ''न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः, नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ती''ति । निर्बद्धाः = नामाख्याताभ्यां वियुक्ताः । एवञ्चात्र नामार्थधात्वर्थयोः साक्षाद्भेदान्वयानुपपत्तिव्युत्पत्तेरपि न सङ्कोच इति केचित् । ''साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययो''रित्यादेर्द्योत्यार्थमादायैवोपपत्तेरुपसर्गेष्विव चादिष्वपि तात्पर्यग्राहकतयैवान्वयव्यतिरेकयोरुपक्षयाच्च सर्वेषां निपातानां द्योतकत्वमेवेत्यपरे । शक्तिग्राहकतया प्रसिद्धानां तात्पर्यग्राहकतयैवोपक्षीणतोपगमे बहुविप्लवापत्तेः, प्रकर्षेऽभावे च शक्तस्यापि भवत्यादिसमभिव्याहारे प्रकर्षबोधकतायाः स्मरतिसमभिव्याहारे चाभावबोधकताया उपपत्तेश्च सर्वेषां वाचकत्वमेव, तदुक्तं निरुक्ते ''उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः, तद्य एषु पदार्थः प्राहुरिमे तमि''त्यन्ये । 'सर्वेषां वाचकत्वमेव', 'द्योतकत्वमेव', 'प्रादीनां द्योतकत्वमेव', 'चादीनां वाचकत्वमेवे'ति न कोऽपि नियमः, अपि तु क्रियागतविशेषबोधकातिरिक्तनिपातानां वाचकत्वं नत्वन्यस्येत्येव, अतएव 'पर्वतादा' इत्यादौ पर्वतादर्वागित्यादिप्रतीतिरित्येके । छिदुरेति । ''विदिभिदिच्छिदेः कुर''जिति विहितस्य कुरचः कर्मकर्तरि शक्तिः, तथाच स्वयमेवच्छिद्यते इति छिदुर इति केचित् । भाष्यादौ तथानुक्तत्वात्कर्तर्यपि प्रयोगदर्शनाच्च कर्तरि तस्य शक्तिरित्यपरे । एवं केलिमरोऽपि

राजहंसः

कर्मोपसंयोगद्योतका इति । कर्मणोऽर्थस्य नामाख्याताभ्यामुपसंयोगेन द्योतका उपसर्गा इत्यर्थः ।

भारती

मानें तो – ''वा'' ह'' इत्यादि निपातों के अर्थों में वाच्यता द्योत्यता का विवाद है । छिदुर आदि पदार्थ में कर्मकतृत्व एवं अकर्मकर्तृत्व का विवाद है (अर्थात् छिदुर शब्द में छिद् धातु से ''विदिभिदिच्छिदेः कुरच्'' इस सूत्र से विहित कुरच् प्रत्यय की शक्ति कर्मकर्ता में है ऐसा कुछ वादियों का मत है एवं भाष्यादि में तादृश कथन नहीं है तथा कर्त्ता में भी छिद्रुरशब्द का प्रयोग देखा जाता है अतः कर्ता अर्थ में कुरच् प्रत्यय होता है यह अन्य वादियों का मत है

भावशब्दस्य स्वरूपसत्त्वसत्तासामान्याद्यर्थत्वे, अस्ति चाधिकरणशब्दार्थस्य पतनप्रतिबन्धकत्वसमवायित्वादौ, एवमन्यस्मिन्नपि बहौ पदार्थे जाग्रति विप्रतिपत्तयः तत्तल्लक्षणानि कस्मान्नोक्तानि ? तदास्तामेकत्र विस्तराभिनिवेशः। इति लक्षणप्रयोजनखण्डनम् ।।

शारदा

कर्मकर्तरि वा कर्तरि वा शक्तिरिति । स्वरूपसत्त्वेति । **एवञ्चाभावेऽपि भावः, अभावोऽपि वा भाव इति भावः।** सत्तासामान्येति। **''भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुरिति सामान्यमेवे''ति कणादसूत्रादिति भावः । आदिना सिद्धावस्थापन्नो धात्वर्थः, तदितरावृत्तिः सकलतद्वृत्तिर्धर्मः, द्रव्यादिषडन्यतमः, अभिप्रायः, मनोवृत्तिविशेषो रत्यादिश्च गृह्यते। एते सर्वे एव भावपदशक्याः, विनिगमकाभावात् । अथवा कश्चिच्छक्योऽपरे लक्षणादिना बोध्या अनेकार्थत्वस्यान्याय्यत्वादिति विवाद इत्यर्थः ।** पतनप्रतिबन्धकत्वेति । **संयोगेनाधिकरणमभिप्रेत्येदम्।** समवायित्वेति। **समवायेनाधिकरणमभिप्रेत्य। आदिना सम्बन्धान्तरावच्छिन्नाधेयतानिरूपिताधिकरणत्वमतिरिक्तपदार्थविशेषः समवायश्च गृह्यते, परस्पराधाराधेयभावव्यवहारप्रसङ्गवारणाय संयोगेनाधारतायाः संयोगात्मकतामनुपेत्यातिरिक्तपदार्थतोपगमात्। समवायस्य तु द्विष्ठत्वे मानाभावेन तेन सम्बन्धेनाधारताया नव्यैः समवायात्मकतोपगमात्। एवञ्चोक्तरीत्यैवाधिकरणपदस्य नानार्थत्वं वैकार्थकत्वं वेति विवादः । तिङां कृतौ वा कर्तरि वा, लिङादेरिष्टसाधनत्वे वा कार्यत्वावच्छिन्ने वा भावनायां वा, धातोः फले वा व्यापारे वोभयत्र वा शक्तिरित्यादिविवादमभिप्रेत्याह** एवमिति । **बहौ= विपुले, अनेकस्मिन्नित्यर्थस्तु कथञ्चित्तात्पर्यतो लब्धव्यः, अन्यथा सङ्ख्येयपरत्वे एकवचनासङ्गतेः। सङ्ख्यापरतायां तत्सङ्गतावप्यन्वये क्लिष्टकल्पनापत्तेरिति।** कस्मादिति। **यत्तु निःश्रेयसहेतुतत्त्वज्ञानविषयीभूतपदार्थनिरूपणमेव न्यायशास्त्रसाध्यमिति निपाताद्यर्थविचारो न कृत इति; तदसत्, एवं सतिच्छलादेरपि तत्र निरूपणं न स्यात्, परम्परया तस्य निःश्रेयसोपयोग इति**

राजहंसः

—स्वरूपसत्त्वस्य भावपदशक्यत्वे तदवच्छेदकत्वे वा क्रमेणाह एवं **चाभावेऽपीति । रत्यादिश्च गृह्यत इति ।** वीर्यपतनरयो भावः कामशास्त्रे इत्यप्युपलक्षणीयम् ।

भारती

इस प्रकार छिदुर शब्दार्थ में विवाद है ।) और भाव शब्द स्वरूप सत्ता का वाचक है या सत्ता सामान्य का वाचक है, यह विवाद है । अधिकरण शब्द का पतन प्रतिबन्धकत्व अर्थात् संयोगेन अधिकरण अर्थ है या समवायित्व = समवायेन अधिकरण है यह विवाद है इस प्रकार अन्य अनेक पदार्थों में वादियों की विप्रतिपत्ति (विवाद) देखी जाती है अतः उन-उन पदार्थों के भी संशय विषय होने से उन-उनके भी लक्षणादिकथन आपने क्यों नहीं किया । तस्मात् एकत्र अर्थात् प्रत्यक्ष के लक्षण मात्र में विस्तार का अभिनिवेश (हठ) करना आप रहने दें अर्थात् छोड़ दें । (अर्थात् ईदृश हठ करने से आपके अभिप्रेतलक्षणादि की सिद्धि नहीं हो सकती अतः तदर्थ हठ करना व्यर्थ है ।)

शारदा

तु वाच्यताद्योत्यताविचारं विहाय प्रकृतेऽपि समम्, वेदार्थनिर्णयौपयिकत्वात्तादृशविचारस्य। अन्यथाऽन्यत्रापि तदकरणापत्तेः, जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थ इत्यादिसूत्राणामसाङ्गत्यापत्तेश्चेति। ननु यदुचितं प्रतिबभौ तद्विचारितं मुनिना, स्वतन्त्रेच्छश्च स नियोगपर्यनुयोगौ नार्हति ''नासूया कर्तव्या यत्रानुगमः क्रियते'' इति नीतेश्चेति चेदस्त्वेवं कथमपि, तथापि निश्चितशास्त्राकाराप्तभावं प्रत्यपि लक्षणवाक्योपयोगोऽनुपपन्न एव, तथाहि–मुनिभिरुक्तं यथाश्रुतं लक्षणं दुष्टं वाऽदुष्टं वा, चरमे नव्यानां तत्परिष्करणवैयर्थ्यापत्तिः । आद्ये यथार्थोपदेष्टुरेवाप्तत्वान्मुनेराप्तत्वव्याहतिः, यदाहुः–''आप्तो नामानुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कार्त्स्न्येन निश्चयवान् रागादिवशादपि नान्यथावादी''ति । नच–मुनेराप्तत्वाभावेऽपि तेन रूपेण तद्विशेष्यकनिश्चयवतस्तल्लक्षणवाक्यश्रवणाधिकारितेति–वाच्यम्, लक्षणावाक्यश्रवणस्य हि लक्ष्यव्यावृत्त्यादिप्रतीतिरेव फलं स्यात्, यदि च वस्तुतो दुष्टस्यापि लक्षणस्य लक्ष्यव्यावृत्तिप्रमितियथार्थव्यवहारौपयिकत्वं, तदा भावत्कीं तल्लक्षणपरिष्कृतिकृतिं नोचितां प्रतीमः, यथाश्रुतलक्षणेऽपि तत्तद्व्यावृत्तिफलकविशेषणोपादानव्यर्थतापत्तेश्च । नच – यथाश्रुतलक्षणं दुष्टत्वेन जानन्तं प्रत्यस्माकं परिष्कारः तदन्यं प्रति तु यथाश्रुतमेव व्यावृत्तिधियमादधातु यथार्थां तादृशव्यवहारञ्चेति – वाच्यम्; अव्याप्त्यादिना दुष्टत्वेन लक्षणप्रतीतेरितरव्यावृत्तलक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रत्ययं विनाऽनुपपत्त्या तादृशपुरुषं प्रति भवत्परिष्कारसाफल्यानुपपत्तेः, नच तादृशप्रत्ययं विना तत्तत्पदकृत्याधिगमः, नचानधिगतपदकृत्यं लक्षणं तादृशप्रत्ययमाधातुमीष्टे इत्युक्तम् । पदार्थमात्रं तु न क्वापि लक्षणम्, सम्बन्धविशेषावच्छिन्नतत्तन्निष्ठनिरूपकतानिरूपितसम्बन्धिताया अवश्यमतिप्रसङ्गवारणाय वक्तव्यत्वात् । एतेन–स्वयमेव सन्दूष्य भूष्यते परार्थमिति–परास्तम्; किञ्च भवतोऽपि यथाश्रुतलक्षणदूषणायापेक्षणीयस्तादृशप्रत्ययो यथाश्रुतलक्षणाद्वा, अन्यस्माद्वा, उभयथाऽपि परस्यापि तत एव सोऽस्तु लाघवात्, सति तस्मिन् व्यवहारकर्तव्यताज्ञापनस्यापि वैफल्यात्, उपायत्वदुर्निरूपतायाश्च सर्वत्र समानत्वात्। दुष्टलक्षणाधीनतादृशप्रत्ययस्य च भ्रमत्वे तदनुसारेण रच्यमानः परिष्कारोऽपि शुद्धः स्यादिति न विश्वसिमः, प्रमात्वे तु न परिष्कारकरणमुपयुक्तमित्युक्तम् । यदि च व्यवहारादेव लक्ष्यमितरव्यावृत्तिमन्तमवगत्य तल्लक्षणपरिष्क्रियाऽऽद्रियते, तदा व्यवहारेण कश्चिदसाधारणधर्मस्ते उपस्थापितो नवा, नचेन्न व्यावृत्तिग्रहस्य सम्भवः, तस्य प्रतियोगितानुयोगितावच्छेदकधर्मज्ञानसापेक्षत्वात् । आद्ये च तादृशधर्मस्याव्याप्त्यादिना दुष्टत्वं वाऽदुष्टत्वं वोभयथाऽपि प्रत्युक्तमेवेति । एवञ्च बुद्धिवैशद्याधानातिरिक्ते न लक्षणनिरूपणोपयोग इति न लक्ष्यव्यवस्थितिस्तेनेति । इति खण्डनशारदायां लक्षणप्रयोजनखण्डनम् ॥

राजहंसः

सर्वत्र समानत्वादिति । तत्तत्फलानामन्यथासिद्धेः प्रागुक्त्वात् ।

अथ साक्षात्कारित्वखण्डनम्

किञ्च तत्साक्षात्कारित्वम् ?। सविशेषार्थप्रकाशत्वमिति चेन्न; सविशेषत्वस्योपलक्षणत्वेऽनुमानादिव्याप्तिः, विशेषणत्वे च यदि विशेषश्रृङ्गलाया विश्रान्तिस्तदा शेषविशेषस्य बोधे प्रत्यक्षलक्षणक्षीणत्वेनाऽऽमूलमप्रत्यक्षत्वापातः, यद्यविश्रान्ति-

शारदा

तत्साक्षात्कारित्वमिति। **येन प्रत्यक्षत्वप्रकारकव्यवहारार्हतादिकं साध्यते इति शेषः। तत्स-खण्डमिति मत्वा निब्रूते** सविशेषेति। **प्रकाशत्वम् = ज्ञानत्वम्। सविशेषत्वस्य = विशेषस्य। उपलक्षणत्वे = विषयितया ज्ञानानन्वयित्वे।** व्याप्तिरिति। **वस्तुतो विशेषवतस्तत्रापि भानात्। विशेषणत्वे = विषयितया ज्ञानान्वयित्वे।** यद्यपि **विशेषविषयकज्ञानत्वविवक्षायामपि ज्ञानमात्रेऽ-तिप्रसङ्गः, नहि वह्नित्वादिकं न विशेषः, नवेदन्त्वादिकम्, अनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित-यद्रूपविषयकनिश्चयत्वं यद्विशेष्यकभ्रमत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तस्य तद्विशेषत्वमिति त्वसम्भवापादकम्, नहि कोऽपि धर्मस्तादृशो यद्विषयकस्तादृशोऽपि निश्चयः किञ्चिद्विशेष्यकमपि भ्रमसामान्यं प्रतिबध्नीयात्। क्वचित्कश्चिद्विशेष इत्येवं सङ्ग्रह-स्त्वतिप्रसञ्जक एव, कस्यचिदेव विशेषस्य निवेशस्तु प्रसञ्जयत्यव्याप्तिम्, नच विशेषानुग-मे रीत्यन्तरम्। अथानुमित्याद्यपेक्षया प्रत्यक्षे विशिष्यैव तत्तदर्थपरिस्फुरणमिति सार्वजनीनम्, तथाच स्फुटं भातीत्यादिप्रतीतिसाक्षिकविषयताविशेषनिरूपकत्वमेव साक्षात्कारित्वमत्र विवक्षितमिति चेन्न; तादृशविषयताविशेषस्य प्रतीत्यैव निरूप्यत्वेनान्योन्याश्रयापत्तेः प्रतीतिवैलक्षण्यस्य विषयवैलक्षण्याधीनत्वात्। विषयसद्भावसिद्धिं विना तादृशप्रतीतेः प्रमात्वेनानिर्णीताया वस्त्वभ्युपगमानापादकत्वेनाप्यन्योन्याश्रयाच्च। दुर्निरूपश्च विषयतामात्रमिति वक्ष्यते।** तथापि **निरासरीत्यन्तरं शिक्षयितुमाह** यदीति। **विशेषश्रृङ्खलायाः = विशेषे विशेषान्तरपरम्परायाः। शेषविशेषस्य बोधे = निर्विशेषविशेषविषयकत्वावच्छेदेन।** पात इति। **विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वं हि विशेषणविषयकत्वावच्छेदेन तद्विना न**

भारती

साक्षात्कारित्व–खण्डन

किञ्च जिसके द्वारा श्रावणादिप्रतिपत्तियों में प्रत्यक्षत्वप्रकारक व्यवहारार्हता की सिद्धि करते हैं वह साक्षात्कारित्व भी क्या है ?

यदि कहें कि घटत्वादिरूपविशेष से सहित पदार्थ (घटादि) विषयकज्ञानत्व ही साक्षात्कारित्व है, तो यह आप नहीं कह सकते, क्योंकि विशेष को यदि उपलक्षण मानें अर्थात् विषयिता सम्बन्ध से ज्ञान में विशेष का अन्वय न मानें तो अनुमिति में उक्त लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि अनुमिति में भी वस्तुतः विशेषवान् वह्नि आदि का ही भान होता है और यदि उसे (विशेष का) विशेषण मानें अर्थात् विषयिता सम्बन्धेन विशेष को यदि ज्ञानान्वयी मानें तो उस विशेषणीभूत विशेष में भी विशेषान्तर, उस विशेषान्तर में भी विशेषान्तर, पुनः उसमें भी

स्तदा तादृशस्यैव व्याप्तिग्रहादनुमायामपि तादृशसिद्धिरिति साक्षात्कारित्वापत्तिः। अथाननुगमात्तत्र न तदनुमा; तर्हि तदनुगतप्रतीत्याद्यनुपपत्तिः, व्यक्तेरनुमानादसिद्ध्यापत्तिश्च। यथाहि

शारदा

निर्वहति, तदंशे प्रत्यक्षत्वञ्च भवता तदीयविशेषांशे प्रत्यक्षतायामेव वक्तव्यम्, एवञ्च चरमविशेषांशे प्रत्यक्षत्वानुपपत्तौ तद्विशिष्टविशेषांशेऽपि तदनुपपत्तिरेवेति घटीयादिविशेषांशे तदभावे घटाद्यंशेऽपि तन्न स्यादिति भावः। तादृशस्यैव व्याप्तिग्रहात् = अनन्तविशेषावच्छिन्नेनैव निरूपिताया व्याप्तेः प्रत्यक्षात्। सिद्धिरिति। **भानमित्यर्थः। येन रूपेण व्यापकताग्रहस्तेन रूपेणैवानुमितौ साध्यस्य भानादिति भावः। इदमुपलक्षणं शाब्दादावप्यतिप्रसङ्गस्य, अनन्तविशेषवत्त्वेन घटादेः प्रत्यक्षविषयत्वे घटपदं कम्बुग्रीवादिमति शक्तं शक्तिभ्रमाजन्यलक्षणाग्रहाजन्यतद्विषयकशाब्दधीजनकत्वादित्याद्यनुमित्या शक्तिग्रहस्याप्यनन्तविशेषविषयकस्यैव वक्तव्यत्वेन शाब्दस्यापि तथात्वस्य दुर्वारत्वात्। तत्र = तेषां विशेषाणामनुगमकरूपाभावान्न तद्विषयकानुमितिः, वह्नित्वं हि व्यापकतावच्छेदकं रूपं वह्निव्यक्तीनामनुगमकं न तु तद्विशेषतद्विशेषादीनामिति कथं वह्नित्वेन रूपेणानन्तविशेषाणामनुमितिविषयता सम्भवेत्, नच लाघवज्ञानादिविरहदशायां व्यापकतावच्छेदकातिरिक्तरूपेणानुमितिरिति भावः। तर्हि = विशेषपरम्परानुगमकरूपाभावे।** तदनुगतेति। **विशेषपरम्पराविषयकानुगतप्रत्यक्षात्मकप्रतीतितदभिलापानुपपत्तिः। प्रत्यक्षेऽनन्तविशेषाणां भानं यद्यभ्युपेयते तदा तेषामनुगमकमपि रूपं किञ्चित्कथञ्चिदास्थेयम्, प्रातिस्विकरूपेण**

भारती

अन्य विशेषान्तर इस प्रकार विशेष शृङ्खला (विशेषों की परम्परा) माननी होगी, उस विशेष शृङ्खला (विशेष में विशेषान्तर परम्परा) की कहीं विश्रान्ति (सीमा) मानेंगे तो उस शेषविशेष (अन्तिम विशेष) के बोध में "सविशेषार्थप्रकाशत्वम्" इस प्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति होने से पूर्व पूर्वके अप्रत्यक्ष होने से मूलभूतज्ञान (घटज्ञान आदि कोई भी ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहा जायेगा।)

और यदि उस विशेष शृङ्खला की विश्रान्ति न मानें तो अनन्तविशेषविशिष्ट वह्नि निरूपित व्याप्तिप्रत्यक्ष से जायमान अनुमिति में भी तादृश अनन्तविशेषविशिष्ट वह्नि का ही भान मानना होगा, क्योंकि येन रूपेण व्यापकताग्रह होता है तेन रूपेण ही अनुमिति में साध्य का भान माना जाता है। तथा च तादृश अनन्तविशेष विशिष्ट वह्नि-अनुमिति में साक्षात्कारित्वापत्ति (अतिव्याप्ति) हो जायेगी।

(यहाँ अनुमिति शब्द शाब्दबोध का भी उपलक्षण है। अनन्तविशेषविशिष्ट कम्बुग्रीवादिमान् में घटपद का शक्तिग्रह होने से तादृश घट पद जन्य शाब्दबोध में भी अनन्तविशेषविशिष्ट घटपदार्थ का ही भान होगा, अतः तादृश शाब्दबोध में भी उक्तलक्षण की अतिव्याप्ति होगी।

यदि कहें कि उन अनन्तविशेषों का कोई अनुगमक रूप न होने से तद्विषयक अनुमिति नहीं हो सकती, अर्थात् अनुमिति में उन अनन्त विशेषों का भान नहीं हो सकता,

व्यक्तिं विना सामान्यस्य, तथा तावन्तं विशेषं विना व्यक्तेरप्यनुपपत्त्यविशेषात् । यदि च प्रतीत्यपर्यवसानाभावात्पक्ष-

शारदा

तेषां भानाभ्युपगमस्यानुभवविरुद्धत्वात्, अयं घट इत्यादौ घटत्वगतविशेषादेरपरिस्फुरणात्, एवञ्च भासमानरूपस्यैव क्वचित्साक्षात्क्वचिच्च परम्परयाऽनुगमकताया वाच्यत्वे प्रत्यक्षस्येवानुमितेरपि तेन रूपेण निश्शेषविशेषविषयकत्वे साक्षात्कारित्वापत्तिरस्त्येवेति भावः । नन्वेवं भासमानस्य घटत्वादेरेव विशेषपरम्परानुगमकत्वेऽपि प्रत्यक्षे एव तेन रूपेण तावद्विशेषभानं स्वीकार्यं नत्वनुमित्यादौ, कल्पनायाः फलबलमूलत्वात्, प्रत्यक्षा-नुमित्यादेर्वैजात्यस्य च 'साक्षात्करोमि' 'अनुमिनोमी'त्यादिप्रत्ययसिद्धत्वादित्यतो दोषान्तरमाह व्यक्तेरिति । **आपत्तिमेव स्फोरयति** यथेति । अनुपपत्त्यविशेषादिति । **तथाच सामान्यप्रकारिकाया अनुमितेस्तदाश्रयव्यक्तिविषयकत्वमिव व्यक्तिविषयिकायास्तस्यास्तावद्विशेषविषय-कत्वमप्युपेयम्, अन्यथा तु व्यक्तिविषयकत्वमपि नानुमन्तव्यम् । ननु नैतद्युक्तम्, अनुपपत्तिर्हि प्रतीतेर्वा प्रतीतस्य वेति द्वयी, तत्र धूमविषयकप्रतीतेर्हुताशनाविषयिण्या हुताशनज्ञानानियतायाश्च दर्शनेन प्रतीतस्य धूमस्यैव हुताशनं विनाऽनुपपत्तिरिति द्वितीया, जातिव्यक्त्योस्तु तुल्यवित्तिवेद्यत्वनियमेन जातिविषयकप्रतीतेर्व्यक्त्यविषयिकाया अदर्शनेन प्रतीतेरेवानुपपत्तिरिति प्रथमा, जातिनिष्ठा समवायसम्बन्धावच्छिन्ना प्रमीया प्रकारता तत्समवायिव्यक्तिनिष्ठविशेष्यतानिरूपितैवेति । कालिकेन घटो गोत्ववान्, गोत्वेनेमं जानामीत्यादिबोधीयप्रकारतायां व्यभिचारवारणाय समवायसम्बन्धावच्छिन्नेति ।**

भारती

अतः तादृश अनुमिति में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति न होगी, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विशेषपरम्परा के अनुगमक रूप के अभाव में विशेषपरम्पराविषयक अनुगतप्रत्यक्ष-ज्ञान अथवा तद्विषयक अभिलाप रूप व्यवहार भी नहीं होगा । तथाच अयं घट इस प्रत्यक्ष ज्ञान में उक्त लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

(यहाँ तात्पर्य यह है कि यदि प्रत्यक्ष में अनन्तविशेषों का भान स्वीकार करें तो उन अनन्तविशेषों का कोई अनुगमक रूप कथञ्चित् अवश्य मानना होगा, क्योंकि प्रातिस्विक रूप से अनन्तविशेषों का भान मानना अनुभवविरुद्ध है, अयं घट इत्यादि में घटत्वगतविशेषादि का अनुभव नहीं होता । अतः किसी भासमान रूप को ही साक्षात् या परम्परया अनुगमक मानना होगा, ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष के समान अनुमिति भी उसी अनुगमक रूप से अनन्तविशेष विषयक हो जायेगी, तथाच तादृश अनुमिति में साक्षात्कारित्वापत्ति हो जायेगी ।)

किञ्च यदि अनुमिति में विशेष का भान न हो तो अनुमान के द्वारा व्यक्ति की सिद्धि (अनुमिति) भी नहीं हो पायेगी, क्योंकि जैसे व्यक्ति के विना सामान्य (जाति) का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही उन अनन्त विशेषों के विना व्यक्ति का भान भी अनुमिति में नहीं हो सकता। (तथाच सामान्य प्रकारिका अनुमिति में तदाश्रयव्यक्ति विषयकत्व के समान व्यक्तिविषयिका अनुमिति में तावद्विशेषविषयकत्व भी अवश्य ही मानना होगा, अन्यथा व्यक्तिविषयकत्व भी

धर्मतया नानन्तविशेषसिद्धिरिति मन्यसे तदा प्रतीतापर्यवसानात्तद्-बुद्धिः साक्षात्प्रकाशः स्यात् । अप्रतिपद्यमानानन्तविशेषप्रकाश-कल्पनाच्चैकाकिसाक्षात्त्वनामकविशेषकल्पनैवाल्पत्वाच्छ्रेयसितरा, साक्षात्त्वव्यवहारान्यथानुपपतेः कल्पनाबीतस्य तावतापि चरितार्थ-

शारदा

भ्रमीयप्रकारतायां तद्वारणाय प्रमीयेति । एवं च सामान्यप्रकारिकाया अनुमितेस्तत्समवा-यिविषयकत्वमास्ताम्, व्यक्तिप्रतीतेस्तु तद्गतविशेषपरम्परामविषयीकुर्वत्या अपि दर्शनेन प्रतीताया व्यक्तेरेव विशेषपरम्परां विनाऽनुपपत्तेर्वक्तव्यत्वेनानुमित्या तत्परम्पराऽनवगाहनेऽपि क्षत्यभावान्न तस्याः साक्षात्कारित्वापत्तिरित्याशङ्क्याह यदीति । **अपर्यवसानमनुपपत्तिः ।** पक्षधर्मतयेति । **धूमस्य पर्वतवृत्तिताया ज्ञाताया बह्नित्वेन पर्वतीयवह्निमितिप्रयुक्त्यैव चारिता-र्थ्यादिति भावः । प्रतीतापर्यवसानात्तद्बुद्धिः = प्रतीतवह्निव्यक्त्यनुपपत्तिग्रहाधीनतावद्विशेष-विषयकार्थापत्त्यात्मकबुद्धिः ।** स्यादिति । **तस्या अनन्तविशेषविषयकत्वाभावस्य कथमपि वक्तुमशक्यत्वादिति भावः । एतत्सर्वमनन्तविशेषाभ्युपगमेनोक्तम्, वस्तुगतिमनुरुध्याधुनाऽ-भिदधाति** अप्रतिपद्यमानेति । **अननुभूयमानेत्यर्थः । प्रत्यक्षेऽपि वह्नित्वेनाप्यनन्तविशेषान् जानामीत्यप्रत्ययात्, किञ्चिद्धि वस्तु स्वत एव व्यावृत्तमित्यनुभवानुरोधिन्यायाच्चेति भावः। अल्पत्वात् = लाघवात् ।** श्रेयसीति । **घरूपेतिह्रस्वः । अनन्तविशेषकल्पनाम-**

राजहंसः

घरूपेति ह्रस्व इति । यद्यपि घरूपेतिप्रकरणस्थेन 'उगितश्चे' तिसूत्रेण श्रेयसितरेत्यादौ ह्रस्वसिद्धिमुदाहरन्ति, तथापि तस्य प्राप्तविभाषात्वेनाप्राप्तनिषेधांशे एव तद्व्यापारस्य वक्तुमौचित्येन

भारती

नहीं मान सकते । तथाच तादृश अनन्तविशेषविशिष्ट व्यक्ति विषयक अनुमिति में साक्षात्कारत्वापत्ति होगी ।)

यदि कहें कि सामान्यप्रकारक अनुमिति में व्यक्तिविषयकत्व का नियम होने पर भी व्यक्तिविषयक अनुमिति में सामान्यविषयकत्व का नियम नहीं है क्योंकि व्यक्तिविषयक प्रतीति तो तद्गतविशेषपरम्परा अविषयक भी देखी जाती है । तथाच अनन्तविशेषों को विषय किये विना व्यक्तिविषयक प्रतीति (अनुमिति) के अनुपपन्न न होने से – केवल व्यक्तिविषयक ही अनुमिति होगी, व्यक्ति में विशेषण रूप से अनन्तविशेषों की सिद्धि (अनुमिति) पक्ष न होगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि (अनन्तविशेषों को विषय किये विना व्यक्ति विषयक प्रतीति भले ही अनुपपन्न न हो किन्तु जैसे प्रतीत धूम वह्नि के विना अनुपपन्न है उसी प्रकार प्रतीत (ज्ञात) वह्नि व्यक्ति भी अनन्तविशेषों के विना अनुपपन्न है अतः) प्रतीत वह्नि व्यक्ति के अनुपपत्तिज्ञान के द्वारा जायमान तावद् विशेष (अनन्तविशेष) विषयक अर्थापत्ति रूप ज्ञान में प्रत्यक्षत्वापत्ति हो जायेगी अर्थात् उक्त अर्थापत्ति में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी । अनन्तविशेषों के मानने पर उक्तप्रकार से अतिव्याप्ति आदि दोष होते हैं वस्तुतस्तु अननुभूयमान (अप्रामाणिक) अनन्तविशेषविषयकज्ञान की कल्पना की अपेक्षा लाघवात् एक साक्षात्व नाम के विशेष की कल्पना करना ही अतिश्रेष्ठतम है ।

त्वादिति कृत्वा । तत्कल्पनापि नात एव । विस्तरश्चात्र वक्ष्यते ।

शारदा

पेक्ष्येन्द्रियजज्ञानत्वादेः साक्षात्त्वात्मकताकल्पना लघुत्वात्प्रशस्या, ज्ञानाकरणकज्ञानत्वादेस्तथात्वकल्पना तु लाघवात् नित्यप्रत्यक्षस्यापि सङ्ग्राहकत्वाच्च श्रेयसी, साक्षात्वस्याखण्डधर्मस्य कल्पना तूक्तहेतुद्वयात्साक्षात्करोमी'ति व्यवहारोपपादकत्वाच्च श्रेयसितरेति भावः। तदाह साक्षात्वेति। **तावतापि = तावतैव = साक्षात्त्वस्याखण्डधर्मस्य ज्ञाने कल्पनेनैव। इन्द्रियत्वज्ञानाकरणकत्वाद्यनुपस्थितिदशायामपि साक्षात्करोमीति प्रतीतेरिति भावः । इति कृत्वा श्रेयसितरेत्यन्वयः । नन्वस्तु साक्षात्त्वस्याखण्डस्यैव कल्पनेत्यत आह** तत्कल्पनापीति। **अत एव = तदुपपाद्योपपादकस्य ततोऽन्यस्यावश्यकल्पनीयस्य सद्भावादेव ।**

राजहंसः

घरूपेतिसूत्रेणैव ह्रस्वः साधयितुमुचित इत्यभिप्रायः । एतेन नियमसूत्रोदाहरणत्वं व्यावर्तनीयेष्वेवोचितं नतु नियमसूत्रत्वप्रयोजकपूर्वप्राप्तिकसूत्रेण सिद्ध्यत्स्वित्यपि दर्शितम् । नियमसूत्राणां व्यापारद्वयाभ्युपगमे निष्प्रयाजनगौरवप्रसङ्गात् । लाघवेन विधिमुखेनैव प्रवृत्त्युपगमस्य निषेधमुखेनार्थाविगमं विनातिप्रसक्तिनिवारणानुपपत्त्याऽसङ्गतत्वात् । तथा च 'लव्यम्' 'अवश्यलाव्यम्' इत्यनयोरपि गव्यादिशब्दवद् 'वान्तो यि प्रत्यये' इत्यनेन सिद्धिं विधाय 'ओयते' इत्यादावतिप्रसङ्गमाशङ्क्य 'धातोस्तन्निमित्तस्यैवेति' सूत्रावतारणं सुषमामातनोति । एवमन्यत्रापि।

भारती

(यहाँ श्रेयसितराशब्द में अतिशय अर्थ में प्रशस्य के स्थान में श्र आदेश कर पुनः उससे अतिशय अर्थ में तरप् प्रत्यय किया गया है अतः – यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अनन्तविशेष कल्पना की अपेक्षा इन्द्रियजन्यज्ञानत्व में साक्षात्त्वरूपता की कल्पना लाघव होने से प्रशस्य है इन्द्रियजन्यज्ञानत्व की अपेक्षा भी लाघव होने से तथा नित्यप्रत्यक्ष का सङ्ग्राहक होने से ज्ञानाकरणकज्ञानत्व में साक्षात्त्वरूपता की कल्पना श्रेयसी है एवं ज्ञानाकरणकज्ञानत्व की अपेक्षा भी लाघव होने से नित्यप्रत्यक्ष का संग्राहक होने से तथा "साक्षात्करोमि" इस व्यवहार का उपपादक होने से साक्षात्त्व नामक अखण्ड धर्म की कल्पना करना श्रेयसितर है।) इन्द्रियजन्यज्ञानत्व-ज्ञानाकरणकज्ञानत्व की कल्पना का बीज (कारण) भूत प्रत्यक्षज्ञान में साक्षात्त्वव्यवहार (साक्षात्कारित्वव्यवहार) की अन्यथानुपपत्ति तो ज्ञानगत एक साक्षात्त्व नामक अखण्ड धर्म की कल्पना करने से ही चरितार्थ (सार्थक) हो जायेगी । क्योंकि इन्द्रियत्व-ज्ञानाकरणकत्व की अनुपस्थिति (अज्ञानावस्था) में भी साक्षात्करोमि" इस प्रकार प्रतीति होती है । अतः साक्षात्त्वरूप एक अखण्ड धर्म की कल्पना करना ही श्रेयस्कर है ।

यदि कहें कि साक्षात्त्व अखण्ड धर्म ही प्रत्यक्षप्रमा का लक्षण मान लिया जाय, उसीसे साक्षात्कारित्व-प्रत्यक्षत्वादि व्यवहार की उपपत्ति हो जायेगी, तो यह भी आपका कथन युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि उससे भिन्न उसके किसी उपपाद्य उपपादक की कल्पना भी अवश्य ही करनी होगी । यदि अखण्ड धर्म को जाति मानें तो जाति के व्यञ्जक से नियत (व्याप्य) होने से जाति का कोई व्यञ्जक अवश्य मानना होगा, अतः अवश्य स्वीकरणीय उस व्यञ्जक से ही अनुगत व्यवहार की उपपत्ति हो जायेगी, ऐसी स्थिति में जाति की कल्पना करना व्यर्थ है ।

विशेषश्च यदि व्यवच्छेदस्तदा निर्विकल्पकाव्याप्तिः, यदि च तदितर-

शारदा

जातेर्व्यञ्जकनियतत्वेन व्यञ्जकस्य कस्यचिदवश्यवाच्यत्वेन तेनैवानुगतव्यवहारोपपत्तेर्जातिकल्पना व्यर्था, क्लृप्ते व्यञ्जके विषयिताविशेष एवानुगतत्वकल्पनौचित्यात् । अथास्त्वेवमेव चाक्षुषत्वादेर्व्यञ्जकत्वोपगमे तु तत्र नानुगतत्वकल्पनासम्भवोऽपीति चेन्न, कल्प्यमानस्यापि जातिविशेषस्य व्यञ्जकस्य वाऽनिर्वचनीयताया आवश्यकत्वेन तयैव तत्तद्व्यवहारोपपादनस्योचितत्वात् सत्यधर्मकल्पनानवकाशात् । नह्यखण्डमित्येतावता लक्षणनिवृत्तिः, अलीकत्वप्रसङ्गात् । नच प्रतीतिविशेषविषयत्वं लक्षणं सम्भवतीत्युक्तं बहुशः, न च व्यञ्जकस्य चाक्षुषत्वादेर्न व्यञ्जकान्तरापेक्षा, न च वक्ष्यमाणरीत्या कस्यापि धर्मस्यानुगतत्वसम्भवो येन व्यञ्जकस्याननुगतत्वेन न जात्यन्यथासिद्ध्यापादकत्वमित्याशङ्क्येतेति भावः । वक्ष्यते इति । **अत्रैव प्रकरणे साङ्कर्यादिकं वक्ष्यते इत्यर्थः। व्यवच्छेदः = व्यावृत्तिः** । निर्विकल्पकेति। **यद्यप्ययं घट इति सविकल्पेऽपि व्यावृत्तिर्नस्फुरति, अत एवापोहवादनिरासः, विशिष्टज्ञानानन्तरं तु व्यावृत्तिधीरित्युक्तं वैशिष्ट्यस्य सम्बन्धात्मकताम-**

भारती

(किञ्च उस क्लृप्त व्यञ्जक विषयिताविशेष में ही अनुगतत्त्व की कल्पना उचित है, यदि कहें कि– उक्त क्लृप्त व्यञ्जक विषयिताविशेष को अनुगत मान भी लें तो भी साक्षात्त्व का व्यञ्जक चाक्षुषत्वादि को मानें तो उसमें अनुगतत्व की कल्पना नहीं कर सकते, कारण कि चाक्षुषत्व तो चाक्षुष प्रत्यक्ष में ही रहेगा, न कि श्रावणादिप्रत्यक्ष में, अतः व्यञ्जक विषयिताविशेष को ही अनुगत मानना उचित होगा, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि कुछ भी मानो किन्तु कल्प्यमान को अनिर्वचनीय मानना होगा वह कल्प्यमान जाति विशेष हो या व्यञ्जक हो तत्तद् व्यवहार की उंपपत्ति तो अनिर्वचनीय से ही हो जायेगी, उसकी सत्य धर्मता की कल्पना सर्वथा अनुचित है क्योंकि अखण्ड कहने से लक्षण की निवृत्ति नहीं हो तो अन्यथा अलीक हो जायेगा– और प्रतीति विशेष साक्षित्व भी अन्योन्याश्रय पराहत है यदि चाक्षुषत्वादि को व्यञ्जक मान भी लें तो उसे व्यञ्जकान्तर की अपेक्षा नहीं है । यह नहीं कह सकते वस्तुतः कोई भी धर्म अनुगत नहीं हो सकता । इसको हम आगे बतलायेंगे), जिससे कहा जाये कि व्यञ्जक के अननुगत होने से जात्यन्यथा सिद्ध्यापादकत्व नहीं हो सकता । तथा च अनिर्वचनीय से सब व्यवहार सिद्ध होंगे । कल्प्यमान जातिविशेष में या व्यञ्जक में अनिर्वचनीयता भी अवश्य ही माननी होगी, ऐसी स्थिति में उस अनिर्वचनीय जाति विशेष से या व्यञ्जक विशेष से ही तत्तद् व्यवहार (साक्षात्त्वादि व्यवहार) की उपपत्ति हो जायेगी, तदर्थ सत्यधर्म (साक्षात्त्वादि सत्यधर्म) की कल्पना का अवसर ही नहीं है)

किञ्च साक्षात्त्वरूप जाति की कल्पना करने में साङ्कर्यादि दोष प्राप्त होते हैं जिन्हें विस्तार से आगे इसी प्रकरण में कहेंगे ।

किञ्च यहाँ विशेष शब्द से यदि व्यवच्छेद अर्थात् इतरव्यावृत्ति विवक्षित है तो निर्विकल्पक ज्ञान में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि उस (निर्विकल्पक ज्ञान) में इतर व्यावृत्ति का बोध नहीं होता ।

विश्वाव्यावृत्तस्वरूपप्रकाशात्सोऽपि तथा, तदा दूरात् सामान्य-

शारदा

भिप्रेत्य ''विशेषणं हि नागृहीतं नाप्यगृहीतविशेष्यसम्बन्धमन्यव्यावृत्तिबुद्धिमाधत्ते, परन्तु विशेष्ये गृहीतसम्बन्धम् , स एव च ग्रहो विशिष्टबुद्धिस्तदधीना तु पश्चात्तनीतरव्यावृत्ति-बुद्धिरिति तत्त्व''मिति सन्दर्भेण बौद्धाधिकारशिरोमण्यादौ, तथापि ''अतद्व्या-वृत्तिवैशिष्ट्य''मिति किरणावल्युक्तनयेन सविकल्पेऽव्याप्तिर्नोक्ता, अयं घट इत्यत्र घटत्ववैशिष्ट्यस्य भानात्, धटत्वस्य भावात्मकस्यापि भानाभ्युपगमेन च नापोहवादप्रसङ्ग इति भावः । यद्यप्येवमनुमित्यादावतिव्याप्तिरपि वक्तुमुचिता, तथापि विशेषशब्देन स्वविषयेतर-विश्वव्यावृत्तेर्विवक्षणेऽनुमित्यादौ च तद्भानानभ्युपगमे न तत्रातिव्याप्तिरित्याशयेन सा नोक्ता। यदीति । **तदा निर्विकल्पकविषयपरामर्शः । सोऽपि = निर्विकल्पकोऽपि बोधः । तथा = निरुच्यमानसाक्षात्कारित्वाश्रयः । उत्तरग्रन्थासाङ्गत्यापत्त्याऽत्र वस्तुतो व्यावृत्तिमतः प्रकाशो न विवक्षितः अपि तु व्यावृत्तेरेव, निर्विकल्पकस्य तद्विषयकत्वं च प्राचीनानां केषाञ्चित्सम्मतमेव, अत एव ''ज्ञानाभावस्यापि स्वरूपेण भेदादिवन्निर्विकल्पसिद्धस्ये''ति तत्त्वप्रदीपिकायामप्युक्तम्। अभावत्वादिनाऽभावस्य सविकल्पकैकवेद्यत्वेऽपि स्वरूपेण प्रतियोग्यविशेषितरूपेण निर्विकल्पकविषयत्वोपगमे न किमपि बाधकम्, प्रतियोगिविशेषितरूपेणैव तद्बोधस्य प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यतया विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वं नत्वन्यादृशस्येति भावः। सामान्यप्रत्यक्षस्य = साधारणधर्मप्रत्यक्षस्य । स्वविषयेतरविश्वव्यावृत्त्यविषयकत्वादिति**

भारती

(यद्यपि ''अयं घट'' इस सविल्पक ज्ञान में भी इतरव्यावृत्ति का बोध बौद्धाधिकार में शिरोमणि ने स्वीकार नहीं किया है अत: सविकल्पक में भी अव्याप्ति देनी चाहिए थी किन्तु ''अतद्व्यावृत्ति वैशिष्ट्यम्'' उदयनोक्त इस किरणावली के अनुसार वैशिष्ट्य इतरव्यावृत्ति है और वैशिष्ट्य रूप इतर व्यावृत्ति का भान ''अयं घट:'' में होता है अत: अव्याप्ति नहीं दी गई ।)

यदि कहें कि निर्विकल्पज्ञान का विषयभूत पदार्थ–निर्विकल्पकज्ञान के विषय से इतर समस्त विश्व से व्यावृत्त (भिन्न) स्वरूप वाला है और उस तादृशव्यावृत्त स्वरूप का प्रकाश निर्विकल्प ज्ञान में भी होता है, अत: निर्विकल्पज्ञान में उक्त साक्षात्कारित्व संघटित होने से अव्याप्ति नहीं है । (वस्तुतस्तु ''प्रतिपत्रादि व्यवच्छेदमात्रप्रकाशात्'' इस उत्तर ग्रन्थ की असङ्गति के भय से उक्त लक्षण में इतरव्यावृत्ति ही विवक्षित है न कि व्यावृत्तपदार्थ, और प्राचीनों के मत से निर्विकल्पक ज्ञान में भी व्यावृत्ति का भान होता ही है अत: निर्विकल्प ज्ञान में उक्त लक्षण की अव्याप्ति नहीं है, तो यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है) क्योंकि इस प्रकार मानने पर दूर से सामान्यप्रत्यक्ष अर्थात् ''चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा'' इत्यादि साधारणधर्म प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हो जायेगा, अर्थात् तादृश साधारणधर्मप्रत्यक्ष में उक्त साक्षात्कारित्व लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि तादृशज्ञान स्वविषय से इतरविश्व व्यावृत्ति को विषय

प्रत्यक्षस्याप्रत्यक्षत्वापातः, तत्र जगद्वैलक्षण्यप्रकाशे संशयाद्यनुपपत्तेः। यदि तत्रापि प्रतिपत्त्रादिव्यवच्छेदमात्रप्रकाशाद्विशेषप्रकाशत्वमेव तदाऽनुमित्यादिव्याप्तिः ।

अथेन्द्रियकरणकानुभवत्वम् । तत्र साक्षात्कारिधीकरण-

शारदा

शेषः । संशयादीति । **अस्य निर्विकल्पकत्वाभावेन स्वरूपतो व्यावृत्तिविषयकत्वमुपगम्य संशयभ्रमोपपादनासम्भवादिति भावः । यदि तून्नाहसन्नाहादिसाधारणधर्मदर्शनस्य स्थाणुपुरुषाद्यभेदसंशयाद्याधायकत्वेनैव तद्व्यावृत्तिविषयकत्वाभावः कल्प्यते, अन्यथा प्रतिबन्धकसद्भावेन तादृशसंशयाद्यनुत्पत्त्यापत्तेः। प्रतिपत्त्राद्यभेदसंशयाद्यभावानुरोधेन तु तद्भेदविषयकत्वमनुमन्यते प्रतिबन्धकस्य कारणान्तराभावेनाविनिगम्यत्वात्, लक्षणे च स्वविषयेतरविश्वव्यावृत्तिविषयकत्वमपहाय स्वविषयेतरयत्किञ्चित्प्रतियोगिकव्यावृत्तिविषयकत्वमेव निवेश्यते इति नाव्याप्तिः, तदानुमित्यादावप्यनयैव रीत्या प्रतिपत्त्रादिभेदावगाहिताया वक्तव्यत्वेन तत्रातिव्याप्तिरित्याह** यदीति ।

अनुभवत्वमिति । **जन्यसाक्षात्कारित्वमिति शेषः । ईश्वरज्ञाने प्रत्यक्षत्वमप्रामाणिकमिति निवेदितमते तु जन्यत्वं नोपादेयम् । अनुभवत्वं स्मृत्यन्यज्ञानत्वम्, एतच्च जन्यात्मविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति मनसः करणत्वे चिकीर्षादौ स्मृतौ चातिप्रसङ्गवारणाय । परन्त्वेवमप्यनुमित्यादावतिप्रसक्तिरिति विवक्षणीयमिन्द्रियत्वेन कारणत्वम्, अनुमित्यादौ तु मनसो मनस्त्वेनैव कारणता नत्विन्द्रियत्वेन, अतिप्रसक्तत्वात्, एवञ्च करणतापर्यन्तमपि नानुधावनीयमितीन्द्रियत्वावच्छिन्नजनकताकजन्यज्ञानत्वमेव तादृशजन्यतैव वा लक्षणमिति । सामान्यतो ध्वंसं प्रति प्रतियोगित्वेनैव कारणता, विशिष्यापि नेन्द्रियत्वेन, तस्य परमते श्रोत्रमनआत्मकनित्यसाधारणत्वादित्यनतिप्रसङ्गः, इन्द्रियगतरूपादिसमवायिकारणतापि नेन्द्रियत्वेन नीरूपादिसाधारणेनावच्छिद्यते** । साक्षात्कारिधीति। **आत्मनि साक्षात्काराश्रयेऽपि**

राजहंसः

—ननु प्रतिपत्त्राद्यभेदसंशयाभावस्तत्र कारणान्तरविरहेण प्रयुक्तो न तु तद्भेदभानरूपप्रतिबन्धकेनेति चेत् , **तत्राह-प्रतिबन्धकस्य कारणान्तराभावेनाविनिगम्यत्वादिति ।**

भारती

नहीं करता और यदि उस दूर से जायमान ज्ञान के विषय में भी जगत् के वैलक्षण्य का प्रकाश मानें तो तद्विषय में संशय या भ्रम की उपपत्ति नहीं होगी,

यदि कहें तादृश दूर से जायमान ज्ञान के विषय में भी प्रतिपत्ता (ज्ञाता) आदि के व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) मात्र का प्रकाश (बोध) होने से "विशेष विषयक प्रकाशत्वम्" इस लक्षण की अव्याप्ति न होगी, तो इस प्रकार मानने पर अनुमिति में अतिव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि अनुमिति के विषय में भी प्रतिपत्ता आदि के व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) का बोध होता है।

५. इन्द्रियकरणक (इन्द्रिय है करण जिसका ऐसा) अनुभवत्व ही जन्य साक्षात्कारित्व

स्यैवेन्द्रियत्वेनान्योन्याश्रयत्वापत्तिरिति केचित् ; तन्न, अज्ञातप्रमाकरणत्वस्य भावत्वविशेषितस्येन्द्रियनिरूक्तेः सम्भवात्। विना

शारदा

साक्षात्कारिपदप्रयोगसम्भवाद्बुद्धिगतसाक्षात्कारित्वलाभाय धीपदम् । करणस्येति । **कारणत्वस्य कालादिसाधारण्यात्करणत्वनिवेशः । सन्निकर्षस्तु निर्व्यापारत्वादकरणम्। निर्विकल्पकस्यापि सङ्ग्राह्यत्वात्तस्य तद्व्यापारत्वानुपपत्तेः** । अन्योन्याश्रयेति । **करणतायाः किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्वनियमादुक्तकरणतायाः स्वावच्छिन्नत्वस्यैवेन्द्रियलक्षणान्तरानभ्युपगमे वक्तव्यत्वादात्माश्रयोऽपि द्रष्टव्यः । प्रत्यक्षकारणशरीरसंयोगवत्त्वे सत्यतीन्द्रियत्वमितीन्द्रियलक्षणे त्वन्योन्याश्रय एव । कालेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रत्यक्षकारणत्वस्य संयोगे निवेशः** । अज्ञातेति । **अज्ञातसतो ज्ञानकरणत्वमित्यर्थः, विषयतासम्बन्धावच्छिन्नज्ञाननिष्ठावच्छेदकताया अनिरूपिका ज्ञाननिरूपितकरणतेति यावत् । ज्ञायमानलिङ्गादेरनुमादिकरणत्वमते लिङ्गादिनिष्ठा ज्ञानकरणता ज्ञानावच्छिन्नैवेति तद्व्युदासः । अनुपलब्धेर्ज्ञातायाः करणत्वोपगमे तस्या अभावरूपतया ज्ञातेनानुपलब्ध्यन्तरेण ग्राह्यतायामनवस्थापत्त्याऽज्ञाताया एव करणत्वस्योपगन्तव्यत्वात्तत्रातिव्याप्तिरित्याशङ्क्य भावत्वे सतीत्यपि वक्तव्यमित्याह** भावत्वेति । **सम्भवात् = उक्तान्योन्याश्रयराहित्यात् ,**

राजहंसः

सन्निकर्षस्तु निर्व्यपारत्वादिति । यद्यपीन्द्रियलक्षणस्य सन्निकर्षसाधारणत्वे इन्द्रियकरणकानुभवत्वं सन्निकर्षकरणकत्वमादाय सविकल्पकप्रत्यक्षे स्यात् , तत्र सन्निकर्षस्य निर्विकल्पकव्यापारकस्य करणतासम्भवात् , इन्द्रियलक्षणस्य चक्षुरादावपि गतत्वेन तु तत्करणकत्वेन निर्विकल्पकेऽपि प्रत्यक्षत्वव्यवहारः स्यात् , तथापि सन्निकर्षे इन्द्रियत्वव्यवहारविरहेण तद्व्यवहारप्रयोजकं सन्निकर्षव्यावृत्तमेव वाच्यमितिभावः । अत एवाह **निर्विल्पकस्यापीति** । सङ्ग्राह्यत्वात् = इन्द्रियलक्षणं साक्षात्कारिधीशब्देन विवक्षणीयत्वात्, तस्य = निर्विकल्पकस्य तद्व्यापारत्वानुपपत्तेः = सन्निकर्षव्यापारत्वानुपपत्तेः । एवं हि सति साक्षात्कारिधीसामान्यकरणता न सन्निकर्षे इति नातिव्याप्तिः । नचैवमपीन्द्रियकरणकानुभवतवं निर्विकल्पके परं स्यात्, तत्र सन्निकर्षव्यापारमादायेन्द्रिये करणत्वोपपत्तेः, सविकल्पके तु सन्निकर्षनिर्विकल्पकद्वयव्यवधानेनेन्द्रियस्यान्यथासिद्धिरेव स्यात् करणतवं तु दूर इति वाच्यम्, अन्यथासिद्धत्वकल्पनायाः प्रामाणिकव्यवहारमात्रशरणतया व्यापारद्वयकल्पनोपपत्तेः, नह्येक एव व्यापारो व्यापारिणोऽनन्यथासिद्धत्वं रक्षति न तु व्यापारद्वयमिति श्रीपत्युपज्ञागमावगमितम् । साधीयानित्यत्र मूले 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधाविति पाणिनिस्मरणेन

भारती

(प्रत्यक्षप्रमा का लक्षण) है । इस लक्षण में अन्योन्याश्रय दोष है, क्योंकि "इन्द्रियकरणक अनुभवत्व साक्षात्कारित्व है" और "साक्षात्कारिज्ञान का करणत्व ही इन्द्रियत्व" है यहाँ इन्द्रियत्व और साक्षात्कारित्व परस्पर सापेक्ष है । ऐसा किसी का कथन है किन्तु इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष इस लक्षण में प्रसक्त नहीं होता क्योंकि इन्द्रियत्व का तादृश साक्षात्कारित्वघटित लक्षण नहीं करते, अपितु– भावत्वविशेषित अज्ञातप्रमाकरणत्व अर्थात् भावत्वे सति अज्ञातत्वे सति प्रमाकरणत्व ही इन्द्रियत्व है इस प्रकार इन्द्रियत्व का निर्वचन (लक्षण) किया जा सकता

कार्यगतविशेषसिद्धिं किं प्रति करणत्वमेव ज्ञेयमिति तु बाधः साधीयान् ।

एतेन ज्ञातता काचिद्विलक्षणा, तज्जनकत्वं ज्ञानस्य

शारदा

तेनोक्तरीत्याऽऽत्माश्रयसत्त्वेऽपि न क्षतिः। वस्तुतस्तु लिङ्गज्ञानादेरेवानुमित्यादिकरणत्वेन तत्रातिव्याप्तमिदं लक्षणम्, तस्मात् स्मृतिस्वरूपायोग्यस्य ज्ञानहेतुमनःसंयोगस्याश्रयत्वं वा शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वेन सति ज्ञानहेतुमनःसंयोगाश्रयत्वं वेन्द्रियत्वं नव्यसम्मतमेव द्रष्टव्यम् । अस्यापि न व्यवहारौपयिकत्वम्, एतदज्ञातवतोऽपीन्द्रियत्वव्यवहारात्, नापि व्यावृत्त्यौपयिकत्वम्, निरस्तत्वात्, लक्षणसामान्यखण्डनानां स्मृत्यन्यत्वखण्डनानाञ्चा-वतारभाजनत्वञ्चेत्यन्यत्। कार्यगतविशेषसिद्धिं = कार्यतावच्छेदकसिद्धिं, किं प्रति = किंधर्मावच्छिन्ननिरूपितं जन्यतायाः किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्वनियमादवच्छेदक-ग्रहाधीनग्रहविषयत्वाच्चेन्द्रियत्वावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यताया अवच्छेदकीभूतो धर्मो निरूपणीयः, नचैषा जन्यतैव सः, आत्माश्रयात्, नच धर्मान्तरं शक्यं निवर्त्तुम्, साक्षात्कारित्वस्य जातेर्निरसिष्यमाणत्वादिति भावः । एतेन साक्षात्कारित्वं स्वरूपेण लक्ष्यतावच्छेदकमुक्तजन्यतावच्छेदकत्वेन च लक्षणमिति न देशनीयम् । साधीयानिति । इन्द्रियलक्षणान्तरास्फूर्तिदशायामन्योन्याश्रयदूषणमपि बाढमिति भावः ।

विलक्षणेति । साक्षात्कृतो घट इति प्रत्ययसाक्षिका क्रियाजन्यफलाश्रयत्वघटित-कर्मत्वान्यथानुपपत्त्या स्वीक्रियमाणाऽखण्डैव साक्षात्कृतता नतु साक्षात्कारविषयत्वरूपेति नात्माश्रयः, नहि विषयता ज्ञानेन जन्यते तत्पूर्वं ज्ञानस्य निर्विषयत्वप्रसङ्गादिति भावः ।

राजहंसः

बाढपदार्थोत्कर्षविशिष्टप्रतियोगिकातिशयविवक्षायामीयसुनः प्रयोगौचित्येनातिशयप्रतियोगिनमाह **इन्द्रियलक्षणान्तरेत्यादि ।**

भारती

है । अतः इन्द्रियत्व के साक्षात्कारित्व सापेक्ष न होने से अन्योन्याश्रय दोष तो नहीं है, किन्तु कार्यगतविशेष सिद्धि अर्थात् कार्यतावच्छेदक धर्म की सिद्धि के विना किसके प्रति अर्थात् किस धर्मावच्छिन्न के प्रति इन्द्रिय में करणता निश्चय करेंगे इस प्रकार उक्तलक्षण में बाध दोष समुचित है । (तात्पर्य यह है कि जन्यता (कार्यता) में किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्व का नियम होने से– इन्द्रियत्वावच्छिन्न जनकता निरूपित जन्यता के अवच्छेदकीभूत किसी धर्म का निरूपण करना होगा, जो कि सम्भव नहीं है । क्योंकि आत्माश्रय होने से "जन्यता का अवच्छेदक धर्म जन्यता ही है ऐसा नहीं कह सकते, और साक्षात्कारित्व जाति वक्ष्यमाण रीति से खण्डित है अतः अन्य किसी धर्मान्तर को जन्यतावच्छेदक मान नहीं सकते, तथाच उक्त प्रत्यक्ष लक्षण निर्दुष्ट नहीं है ।)

प्रश्न – ज्ञातता एक विलक्षण धर्म है अर्थात् साक्षात्कृतो घट" इत्यादि प्रत्ययसाक्षिक एवं परसमवेतक्रियाजन्यफलशालित्व रूप कर्मत्व की अन्यथानुपपत्ति से स्वीक्रिय-माण साक्षात्कृततारूप एक अखण्ड धर्म ही ज्ञातता है और तादृश ज्ञातता का जनक

साक्षात्त्वमित्यपि निरस्तम् ; ऐकरूप्याव्यवस्थितौ कारणत्वानवधारणात् । नच ज्ञाततावैलक्षण्यान्यथानुपपत्तेरेव तत्सिद्धिः, कारणान्तरवैलक्षण्यादेव तदुपपत्तेः।

शारदा

तज्जनकत्वमिति । **साक्षात्कृतताात्वावच्छिन्नजन्यताकजनकत्वमित्यर्थः। ऐकरूप्याव्यवस्थितौ = कारणतावच्छेदकानवधारणे । प्रामाण्यवादे गदाधरभट्टाचार्योक्तदिशोपनीतभानस्य भट्टैरप्यभ्युपगतत्वेन तत्राव्याप्तिरित्यपि द्रष्टव्यम्, तद्विषये साक्षात्कृतताया अननुभवात् ।** वैलक्षण्येति । **उक्तजन्यतानिरूपितजनकतायाः किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्वावश्यम्भावात्, अन्यथा कार्यतावच्छेदकस्याप्यनुगतस्याकस्मिकत्वप्रसङ्गादिति भावः । तत्सिद्धिः = कारणतावच्छेदकसिद्धिः ।** कारणान्तरेति । **एवोऽप्यर्थे । तादृशजनकतया प्रत्यक्षगतधर्मेणैवावच्छिन्नया भवितव्यमित्यत्र नियामकाभावात्, सामग्रीतः सर्वसम्भवेन साक्षात्कृततायां कारणन्तरजन्यताया अपि वक्तत्यत्वादित्याभासः । वस्तुतस्तु साक्षात्कारित्वस्यैव जनकतावच्छेदताया वक्तव्यत्वेन तन्निरासो वक्ष्यमाण एवानुसन्धेयः । साक्षात्कृतताया अतिरिक्ताया अप्रामाणिकत्वञ्च, साक्षात्कृतो घट इति प्रतीतेर्विषयतावगाहितयैवोपपत्तेः, अतीतादौ विषये फलाश्रयत्वासम्भवेन ज्ञानविषयत्वस्यैव ज्ञानकर्मतात्वाच्च, आवरणभङ्गादेरेव फलत्वसम्भवाच्चेति । एवञ्चानुमित्यादेर्व्युदासे प्रत्यक्षस्यैव साक्षात्कृततां प्रत्यसाधारणकारणत्वेन तद्गतेनैवानुगतानतिप्रसक्तधर्मेणोक्तजनकताया अवच्छिन्नत्वमुचितमिति नाशङ्कनीयम् ।**

राजहंसः

प्रामाण्यवादे इत्यादि । सर्वांशे स्वप्नादावुपनीतभानाभ्युपगमे तत्रान्यथा तु सुरभि चन्दनमित्यादौ सौरभादिविषयकत्वावच्छेदेनाव्याप्तिरिति भावः ।

भारती

(साक्षात्कृतताात्वावच्छिन्नजन्यता निरूपित जनकता का आश्रय) ज्ञान ही साक्षात्कार है अतः ज्ञानगत तादृश ज्ञातता जनकत्व ही साक्षात्त्व है ।

समाधान – कारणतावच्छेदक के निश्चय के विना कारणता का निश्चय नहीं हो सकता, अतएव उक्तलक्षण खण्डित हो जाता है । यदि कहें कि ज्ञातता गत वैलक्षण्य की अन्यथानुपपत्ति से कारणतावच्छेदक धर्म की सिद्धि हो जायेगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि सामग्री के वैलक्षण्य से ही ज्ञातता गत वैलक्षण्य की उपपत्ति हो सकती है । (भाव यह है कि अनुमित्यादि ज्ञान जन्य ज्ञातता से साक्षात्कारात्मक ज्ञान जन्य ज्ञातता विलक्षण है अतः ज्ञाततागत उस वैलक्षण्य (साक्षात्कृतता रूप) की उपपत्ति के लिए कारणीभूत साक्षात्कारात्मकज्ञान में कारणतावच्छेदक धर्म की कल्पना करेंगे'' यह पूर्वपक्षी का कहना है। उत्तरदाता का कहना है उस ज्ञान की इन्द्रियघटिता सामग्री के विलक्षण होने से ही ज्ञाततागत वैलक्षण्य की उपपत्ति हो जायेगी । तदर्थ साक्षात्कारात्मकज्ञानगत कारणतावच्छेदकधर्म की कल्पना करना आवश्यक नहीं है । किन्तु वस्तुतस्तु, तादृशज्ञान की सामग्री के वैलक्षण्य से कार्यभूत साक्षात्कारात्मक ज्ञान में वैलक्षण्य आ सकता है, न कि ज्ञातता में, क्योंकि ज्ञातता इन्द्रियघटित सामग्री का कार्य नहीं है । अतः ज्ञातता वैलक्षण्य की उपपत्ति के लिए तो तत्कारणीभूत साक्षात्कारात्मक

नापि मेयजनितत्वम् ; अतिप्रसङ्गात् , स्वमेयजत्वे च स्वार्थव्यावृत्त्याननुगमात्, पूर्वदोषानिवृत्तेश्च ।

अथ येन प्रमिते सति न प्रमित्सा पुनर्भवति तज्ज्ञानं साक्षात्कारीति;

शारदा

मेयजनितत्वमिति । **विषयजन्यज्ञानत्वं जन्यप्रत्यक्षत्वमित्यर्थः । सर्वांशेऽलौकिकप्रत्यक्षस्याप्रामाणिकत्वेन यत्किञ्चिद्विषयजन्यत्वस्यालौकिकप्रत्यक्षेऽप्यक्षतेरिति भावः ।** अतिप्रसङ्गादिति । **विषयत्वस्य केवलान्वयितयाऽनुमित्यादेरपि विषयेणैव जन्यत्वादिति भावः।** अननुगमादिति । **आत्मविषयकानुमित्यादावतिव्याप्तेरप्युपलक्षणमिदम् । ननु विषयत्वावच्छिन्नजनकताकजन्यताविवक्षायां नायं दोषः, स्वत्वाप्रवेशात्, विषयत्वस्य विषयभेदभिन्नत्वेऽपि विषयतात्वेनाखण्डोपाधिनाऽनुगमात्, अनुमित्यादौ च न कस्यचिद्विषयत्वेन कारणता, आत्मविषयकानुमित्यादावप्यात्मनो हेतुताऽऽमत्वेनैवेत्यस्वरसादाह** पूर्वेति । **जन्यताग्रहायावश्यनिरूपणीयताकं जन्यतावच्छेदकं निरसिष्यमाणं साक्षात्कारित्वमेवेति भावः।**

अथेति । **स्वविशिष्टेच्छाप्रतिबन्धकज्ञानत्वं जन्यप्रत्यक्षत्वम् । वैशिष्ट्यं स्वसमवायिसमवेतत्वस्वविशिष्टज्ञानविषयकत्वाभ्याम्, वैशिष्ट्यमत्र स्वसमवायिसमवेतत्वस्वानतिरिक्तविषयकत्वाभ्याम् । तेनातिरिक्तविषयकज्ञानविषयिकाया अतादृश्या अपि व्यधिकरणज्ञानविषयिकायाः समानाधिकरणज्ञानविषयिकाया अपि व्यधिकरणाया वेच्छाया**

भारती

ज्ञान में साक्षात्कारित्वादि धर्म की कल्पना करनी होगी जो कि वक्ष्यमाण रीति से खण्डित होने के कारण सम्भव नहीं है । तथाच ज्ञाततात्वावच्छिन्नजन्यता निरूपित जनकताकज्ञानत्वम् यह प्रत्यक्षलक्षण निर्दुष्ट नहीं है ।)

यदि कहें कि मेय अर्थात् विषय जन्य ज्ञान ही प्रत्यक्ष है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि विषयजन्य ज्ञानत्व यह प्रत्यक्ष का लक्षण अनुमिति में अतिव्याप्त है कारण कि विषयत्व के केवलान्वयि होने से अनुमिति रूप ज्ञान भी विषय से ही जन्य है ।

(सभी ज्ञानों के आत्मजन्य होने से आत्मविषयक अनुमिति भी आत्मरूपविषय से ही जन्य है अतः उक्त प्रत्यक्षलक्षण आत्मविषयक अनुमिति में भी अतिव्याप्त है ।)

किञ्च यदि स्वविषयजन्यत्व कहें तो स्वत्व के अननुगत होने से स्व अर्थ के विभिन्न होने से लक्षण भी अननुगत होगा, अतः एकत्र प्रत्यक्ष में लक्षण समन्वय होने पर अपरत्र प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी ।

(यदि कहें कि लक्षण में स्वत्व का प्रवेश न करके – विषयत्वावच्छिन्नजनकता निरूपित जन्यता की विवक्षा करेंगे । एवं विषयत्व के विषय भेद से विभिन्न होने पर भी विषयता का विषयतात्वेन अनुगम हो जायेगा तथाच अनुमित्यादि में अतिव्याप्ति भी न होगी, क्योंकि अनुमिति के प्रति आत्मा आत्मत्वेन ही कारण है न कि विषयत्वेन तो यह कथन भी उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर भी जन्यतावच्छेदक के ज्ञान के विना जन्यता का ज्ञान

तन्न, प्रत्यक्षावगतेऽपीष्टे तनयादौ प्रमित्सादर्शनात्। अथ यदनन्तरं न विजातीयप्रमित्सा तद्भावस्तथात्वम् ; तन्न, तत्साजात्यानवगतौ तद्विजातीयत्वानवगतेः, अरिसम्पद्यनुमानादिविषयायां प्रत्यक्ष-

शारदा

अप्रतिबन्धेऽपि न क्षतिः । प्रत्यक्षेति । **प्रमित्सा = पश्येयमित्यादीच्छा** । नेति । **अतएवोक्तं तात्पर्यटीकायाम्–''नहि करिणि दृष्टे चीत्कारेण तमनुमिमतेऽनुमातार'' इति । तथा च द्वितीयवैशिष्ट्ये स्ववैजात्यमिति तृतीयोऽपि सम्बन्धो न निवेशनीय इति भावः । तथात्वं = जन्यप्रत्यक्षत्वम्** । नवगतेरिति । **स्वानतिरिक्तविषयकज्ञानस्य स्ववैजात्यं हि न तत्तद्विषयकत्वेन सम्भवति, नापि तत्तद्व्यक्तित्वेन, तथासति स्वभिन्नत्वस्यैव तृतीयसम्बन्धस्य पर्यवसानेन तन्निवेशवैफल्यात्, अपितु संशयत्वनिश्चयत्वस्मृतित्वानां जातित्वमनभ्युपेत्य तद्भेदं वा जातौ निवेश्य स्ववृत्त्यनुभवत्वाव्यापकजात्यनवच्छिन्नत्वेनैव, एवञ्च 'अयं घट' इत्यादिय-त्किञ्चिद्व्यक्तिवृत्तितादृशजात्यवच्छिन्नत्वमेव लक्षणमुचितम्, जातिश्च तादृशी निराकरिष्यमाणा साक्षात्कारित्वमेवेति भावः । ननु स्वावृत्त्यनुभवत्वाव्यापकजात्यवच्छिन्नत्वमेव स्ववैजात्यमिति न साक्षात्कारित्वखण्डनस्यात्रावसरः, अनुमितित्वादेरेव तादृशजातित्वादित्यस्वरसादाह** अरीति। **अनुमानादेर्विषयोऽवकाशो, विषयतया विषयत वा यस्यां तत्रेत्यर्थः, तेन विषयशब्दस्य**

राजहंसः

अपितु संशयत्वनिश्चयत्वस्मृतित्वानामिति । संशयत्वनिश्चयत्वयोस्तावत्प्रत्यक्षगामित्वमस्त्येव, प्रत्यभिज्ञाया आंशिकस्मृतित्वनये च स्मृतित्वस्यापि तथात्वम्, यदि चांशिकत्वस्य जातित्वाविरोधित्वमभ्युपेत्योक्तत्रितयस्य जातित्वमप्यनुमन्यते, तदा प्रत्यक्षवृत्त्यनुभवत्वाव्यापकजातितया तस्योपादानसम्भवेन प्रत्येकं तदवच्छिन्नस्य विप्रतित्तिवाक्यजस्य मतविशेषे शब्दसंशयस्य परोक्षनिश्चयसामान्यस्य प्रत्यभिज्ञानानात्मकस्य स्मरणस्य च प्रत्यक्षविजातीयतया सङ्ग्रहो न स्यात्, प्रत्यक्षविजातीयेष्वन्तर्भावो न भवेदिति यावत्, अग्रे निर्वाच्यस्य प्रत्यक्षविशेषवृत्तितादृशजात्यव-च्छिन्नत्वलक्षणस्योक्तत्रितयावच्छिन्नेषूक्तेषु स्यादतिव्याप्तिरपीत्याशयेन 'निवेश्ये'त्यन्तम् ।

भारती

सम्भव न होने से उक्त दोष की निवृत्ति न होगी, जन्यतावच्छेदक साक्षात्कारित्वादि की कल्पना करने में दोष पूर्व में दिखा चुके हैं ।

प्रश्न – जिस ज्ञान से अर्थ के प्रमित होने पर पुनः प्रमित्सा (प्रमा की इच्छा) अर्थात् ''पश्येयम्'' इस प्रकार की इच्छा न हो वह ज्ञान साक्षात्कारि (प्रत्यक्ष) है । (स्वविशिष्ट इच्छा प्रतिबन्धक ज्ञानत्व ही जन्यप्रत्यक्षत्व है ।)

समाधान – इस प्रकार भी प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं कर सकते, क्योंकि इष्ट अर्थात् अतिप्रिय पुत्रादि के प्रत्यक्ष से अवगत होने पर भी पुनः उसे देखने की ''पश्येयम्'' इत्याकारक इच्छा होती है । तथा च पुत्रविषयक प्रत्यक्ष में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न – जिस ज्ञान के अनन्तर विजातीय प्रमा की इच्छा न हो, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, इष्ट पुत्रादि में पुनः प्रत्यक्ष की इच्छा होने पर भी प्रत्यक्ष विजातीय अनुमित्यादि ज्ञान की इच्छा नहीं होती, अतः पुत्र प्रत्यक्ष में अव्याप्ति दोष नहीं है ।

यितुमनिष्टेश्च, प्रत्यक्षावगतेऽपि दहने रक्ताशोकस्तबकसन्देहे धूमदर्शनेन वह्नेरनुमीयमानत्वादित्यप्येके।

शारदा

नियत्तपुंस्त्वेऽपि न क्षतिः । तथाचानुमित्यादेरपि क्वचित्स्वावृत्त्यनुभवत्वाव्यापकप्रत्यक्षत्वजात्यवच्छिन्नज्ञानेच्छाप्रतिबन्धकत्वेन तत्रातिव्याप्तिरिति । यदि चात्रानुमित्यादेस्तादृशेच्छाप्रतिबन्धकत्वे नानुमितित्वादिकं तन्त्रमपित्वनिष्टविषयकत्वम्, प्रत्यक्षस्य तु तादृशानुमितित्वाद्यवच्छिन्नविषयताकेच्छाप्रतिबन्धकत्वे प्रत्यक्षत्वमेव तन्त्रम्, तथाच स्वविशिष्टेच्छाप्रतिबन्धकतावच्छेदकीभूतस्ववृत्त्यनुभवत्वाव्यापकजातिमत्त्वं विवक्षणीयम्, एवं सति प्रोक्तसम्बन्धाभ्यां यत्प्रत्यक्षव्यक्तिविशिष्टेच्छैवाप्रसिद्धा तत्र नाव्याप्तिरपि । तदापि दत्तमेवोत्तरम्। साक्षात्कारित्वस्येवानुमितित्वादेरपि न जातित्व मित्यपि च वक्ष्यते। सन्देहे इति । **सन्देहस्य दुःखजनकत्वेन तन्निवृत्तिरूपेष्टसाधनत्वज्ञानेऽनुमित्सासम्भव इति भावः । अनुमीयमानत्वात्– अनुमित्स्यमानत्वात् । एवञ्चात्र स्वविजातीयानुमितीच्छाप्रतिबन्धकताविरहिणि प्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति भावः ।** एके इति । **अत्रायमस्वरसः, "प्रत्यक्षपरिकल्पितमप्यर्थमनुमानेन वुभुत्सन्ते तर्करसिका" इति सरणेरनुसरणे सन्देहसम्पादनं विफलम्, तदभावेऽप्यव्याप्त्युपपत्तेः। शाब्दादिनिश्चयानन्तरमनुमित्सयानुमितेर्निर्विवादत्वेऽपि प्रत्यक्षनिश्चयानन्तरमनुमित्सायाः सन्देहं विनाऽभ्युपगमस्याऽनुभवकलहेनावहेलनमिति चेत्, तथाप्युक्तलक्षणे प्रतिबन्धकीभूतज्ञानस्य निश्चयात्मकताया अवश्यं विवक्षणीयत्वेनात्र वह्नित्वप्रकारकप्रत्यक्षस्य निश्चयात्मकस्यैवोपादेयत्वेन तदनन्तरं कथं संशयः, दूरत्वादिदोषसत्त्वे प्रथममपि निश्चयानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । सादृश्यादिप्रतिसन्धानादन्यथा वा कथमपि संशयोपपत्तावपि तदनन्तरमिष्टसाधनताज्ञानस्यानुमित्सौपयिकस्योपगमेऽनुमित्साऽव्यवहितप्राक्क्षणे प्रतिबन्धकस्य विनाशेन नाव्याप्त्युपदर्शनसङ्गतिः, यदि च सन्देहोक्तिः साध्यसन्देहात्मकपक्षतासम्पत्तये, वह्नित्वप्रकारकप्रत्यक्षस्य रक्ताशोकोपस्थित्यात्मकत्वे तदुत्तरभाविनः सन्देहस्य चेष्टसाधनताज्ञानात्मकत्वेऽनुमित्साऽव्यवहितप्राक्क्षणे प्रतिबन्धकसद्भावसम्भव इत्युच्यते,**

राजहंसः

एवं सतीति । जातिघटितलक्षणादरे सतीत्यर्थः ।

भारती

समाधान – प्रत्यक्ष के साजात्य (समान जातीयता) के ज्ञान के विना प्रत्यक्ष के वैजात्य (विजातीयता अर्थात् प्रत्यक्ष से भिन्न जातीयता) का ज्ञान नहीं हो सकता, अतः वैजात्य घटित प्रत्यक्ष लक्षण का भी ज्ञान नहीं हो सकता ।

किञ्च – जहाँ शत्रुसम्पत्ति विषयक अनुमिति होती है वहाँ अनुमान की विषयभूत शत्रु सम्पत्ति में प्रत्यक्ष की इच्छा नहीं होती, अतः शत्रुसम्पत्ति विषयक अनुमिति में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

किञ्च जहाँ प्रत्यक्ष से ज्ञात वह्नि में रक्त अशोक के स्तवक (गुच्छ) का संदेह होने पर "अयं वह्निः धूमात्" इस प्रकार धूम ज्ञान के द्वारा वह्नि के अनुमान की इच्छा भी होती है । वहाँ तादृश वह्निप्रत्यक्ष में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण की अव्याप्ति है । क्योंकि वहाँ उक्तस्थल में प्रत्यक्ष से विजातीय अनुमिति की इच्छा होती है ।

अज्ञायमानासाधारणकारणकानुभवत्वं कारणविशेषणीकृतभावत्वं वा साक्षात्कारित्वमिति चेन्न; दीर्घादिप्रत्यक्षाव्यापनात्, तत्रावधिप्रभृतेः प्रतीयमानस्यापेक्षणात् । नावधिस्तत्र ज्ञायामानस्तथा,

शारदा

तदापि श्रौतादिनिश्चयानन्तरमनुमित्सयाऽऽत्माद्यनुमित्यभ्युपगमो विरुद्ध्याते, तत्र साध्यसन्देहात्मकपक्षतानुपपत्तेः । अनुमित्साया अन्यथोपपादने साध्यसन्देहस्यान्यथासिद्धत्वाच्च। स्वविषयविषयकसन्देहानुत्तरत्वस्यापीच्छायां विवक्षासम्भवाच्च । जातिघटितलक्षणस्यावश्यादरणीयत्वाच्चेति ।

अज्ञायमानेति । **अनुमित्यादेर्ज्ञायमानलिङ्गादिकरणकत्वमते लक्षणमिदम्, परामर्शाद्यात्मकासाधारणकारणस्य तत्राप्यज्ञायमानत्वात्तु विषयतासम्बनावच्छिन्नज्ञाननिष्ठावच्छेदकतानिरूपककारणतानिरूपकतासामान्याभाववदनुभवत्वं विवक्षणीयम् । एवञ्चासाधारण्यमपि नोपादेयम् । स्मृतेस्तु तादृशनिरूपकत्वाभाववत्त्वेऽपि नानुभवत्वमितिभावः। अनुपलब्धेः पृथक् प्रमाणत्वमते तन्निष्ठकारणताया ज्ञानानवच्छिन्नत्वादतिव्याप्तिरिति भावत्ववन्निष्ठत्वमपि निवेशनीयं कारणतायामित्याशयेनाह** कारणेति । **कारणत्वेत्यर्थः विशेषणता सामानाधिकरण्येन ।** दीर्घादिप्रत्यक्षेति । **दीर्घत्वसादृश्यादिप्रकारकप्रत्यक्षेत्यर्थः।**

राजहंसः

नाव्याप्त्युपदर्शनसङ्गतिरिति । स्वविजातीयानुमितीच्छाकारणीभूताभावप्रतियोगित्वस्य प्रकृतप्रत्यक्षे समन्वयादिति भावः । **निवेशनीयमिति** । यथाश्रुते इतिशेषः । टीकायां परिष्कृतरीत्या त्वनुपलब्ध्यजन्यत्वमनुभवे निवेशनीयमिति भावः ।

भारती

प्रश्न – अज्ञायमान है असाधारण कारण जिसका, ऐसा अनुभव ही प्रत्यक्ष (साक्षात्कारि) है । ("अनुमित्यादि के प्रति ज्ञायमान लिङ्गादि ही करण होते हैं" इस मत के अनुसार यह प्रत्यक्ष का लक्षण है । यदि लिङ्गपरामर्शादि को अनुमित्यादि के प्रति करण मानें, और उस लिङ्गपरामर्शादि के अज्ञायमान होने से तज्जन्य अनुमित्यादि में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति का उद्भावन करें तो –विषयतासम्बन्धावच्छिन्न जो ज्ञाननिष्ठ अवच्छेदकता, तादृश अवच्छेदकता निरूपक जो कारणता, तादृशकारणता निरूपकता का सामान्याभाव से विशिष्ट अनुभवत्व प्रत्यक्ष है इस प्रकार परिष्कार करना चाहिए । यदि इस प्रकार परिष्कार करने पर भी अनुपलब्धि को पृथक् प्रमाण मानने वालों के मत में अनुपलब्धि निष्ठ कारणता के ज्ञानानवच्छिन्न होने से अनुपलब्धि में अतिव्याप्ति प्रसक्त हो तो) कारण में भावत्वविशेषण भी देना चाहिए । (तथाच विषयतासम्बन्धावच्छिन्न ज्ञाननिष्ठ अवच्छेदकता निरूपक भावत्ववन्निष्ठा जो कारणता, तादृश कारणता निरूपकता सामान्याभाववद् अनुभवत्व ही प्रत्यक्षत्व है इस प्रकार प्रत्यक्ष लक्षण होगा।

समाधान – इस प्रकार लक्षण नहीं कर सकते, क्योंकि उक्तप्रत्यक्ष लक्षण दीर्घादि के प्रत्यक्ष में अर्थात् दीर्घत्वप्रकारक प्रत्यक्ष, सादृश्यप्रकारक प्रत्यक्ष एवं विशिष्ट प्रत्यक्षमात्र में अव्याप्त (अव्याप्तिदोष से ग्रस्त) है । कारण कि दीर्घत्वादि प्रकारक ज्ञान में उसका अवधीभूत

अवधिज्ञानं तु स्यात्, अतीतादावप्यवधौ तथाप्रत्ययादिति चेत्तुल्यं लिङ्गे धूमादावपि धूमदर्शनात् तत्राग्निरासीदिति पश्चादप्यनुमानात्।

शारदा

विशिष्टप्रत्यक्षमात्रस्योपलक्षणमिदम्, तत्र विशेषणनिष्ठज्ञानावच्छिन्नकारणतानिरूपकतायाएव सत्त्वात् । विशेषणज्ञानस्य विशिष्टधीहेतुतानभ्युपगन्तृमते तु दीर्घत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षेऽपि नाव्याप्तिः, तद्व्यवहारे एव ह्रस्वत्वादिना ह्रस्वाद्यात्मकावधिज्ञानस्य कारणत्वं नतु तत्प्रकारकबोधे इति तत्सिद्धान्तात् । अवधिः = अवधिप्रभृतिः तत्र = दीर्घत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षे। तथा = कारणम् । तथाप्रत्ययात् = दीर्घत्वादिप्रकारकप्रत्ययात् । तथाचावधेस्तादृशप्रत्ययहेतुत्वेऽतीतं भाविनं वाऽवधिमपेक्ष्य दीर्घत्वादिप्रत्ययो नोपपद्येत, कार्याव्यवहितप्राक्क्षणवर्तिन एव कारणत्वादिति न ज्ञाननिष्ठकारणतानिरूपकस्य ज्ञानावच्छिन्नतन्निरूपकत्वमिति नाव्याप्तिरिति। तुल्यमिति। **ज्ञानावच्छिन्नकारणतानाश्रयत्वमिति शेषः। धूमदर्शनात्पश्चादपि = धूमप्रत्यक्षानन्तरमपि, अतीतादिधूमस्मृत्यादितोऽपीति यावत् । आसीदिति भविष्यतीत्यस्याप्युपलक्षणम् । एवञ्च लिङ्गज्ञानस्यैवानुमितिकारणताया वक्तव्यत्वेन ज्ञानावच्छिन्नकारणत्वानिरूपिकायामनुमितावतिव्याप्तिरिति । यदि तु विशिष्टे कारणताग्राहकमानेन विशेषणेऽप्यसति बाधके कारणताग्रहाल्लिङ्गज्ञानस्य कारणत्वे लिङ्गस्यापि तत्, अतीतानागतधूमस्थले च वर्तमानयोरेव धूमध्वंसप्रागभावयोर्लिङ्गत्वम्, धर्मिभेदाच्च न वैयर्थ्यम् सत्कार्यवादाश्रयणे पुनर्धूमस्यातीतादेरपि केनचिदात्मना सद्भावेनकारणतासम्भवः, स्वस्वावस्थाऽन्यतरस्यैव नियतपूर्ववर्तितायाः कारणताघटकत्वादिति ज्ञानावच्छिन्नकारणतानिरूपकत्वाभावो नानुमितावित्युच्यते, तदाऽनयैव रीत्याऽवध्यादिज्ञानस्य**

भारती

ह्रस्वत्वादि ज्ञायमान होकर कारण होते हैं ।

यदि कहें कि दीर्घात्वादि प्रकारक प्रत्यक्ष में जायमान ह्रस्वादिरूप अवधि आदि कारण नहीं है अपितु ह्रस्वादिरूप अवधि आदि का ज्ञान ही कारण है, क्योंकि ह्रस्वादि रूप अवधि आदि के अतीत (विनष्ट) होने पर भी दीर्घत्वादि प्रकारक ज्ञान होता है । (तात्पर्य यह है कि यदि अवधि को दीर्घत्वादिप्रकारक प्रत्यक्ष के प्रति कारण मानें तो अवधि के अतीत एवं भावी होने पर दीर्घत्वादि प्रकारक ज्ञान नहीं होना चाहिए, क्योंकि कार्य के अव्यवहित प्राक् क्षणवर्ती ही कारण होता है, अत: दीर्घत्वादि प्रकारक प्रत्यक्ष के प्रति अवधि को कारण न मानकर अवधि ज्ञान को ही कारण मानना होगा, और वह अवधिज्ञान तो अज्ञायमान ही है अत: "अज्ञायमान कारणक अनुभवत्व" यह प्रत्यक्ष का लक्षण दीर्घत्वादि प्रकारक प्रत्यक्ष में अव्याप्त नहीं है ।) तो आपका कहना युक्तियुक्त नहीं है । क्योंकि इसके समान ही धूमलिङ्गस्थल में भी धूमप्रत्यक्ष के अनन्तर अर्थात् धूम के अतीत एवं भावी रहने पर भी वह्नि की अनुमिति होती है अत: वहाँ भी धूमज्ञान (लिङ्गज्ञान) को ही अनुमिति के प्रति कारण मानना होगा, और वह धूमरूपलिङ्गज्ञान तो अज्ञायमान होकर ही अनुमिति के प्रति कारण है अत: उक्त प्रत्यक्षलक्षण तादृशवह्निविषयक अनुमिति में अतिव्याप्त हो जायेगा ।

ज्ञानविशेषणतया तु ज्ञेयहेतुता तुल्यैवेति । असाधारणकारणगिरा करणमभिमतमिति चेन्न; अनुमितभाविलिङ्गकभाविलिङ्ग्यनुमितावसतो

शारदा

हेतुत्वेऽवध्यादेरपि हेतुत्वं दीर्घत्वादिप्रकारकज्ञाने वाच्यमेव, अतीतादिस्थले समाधानसाम्यात्, तथाचाव्याप्तिरस्त्येवेत्याह ज्ञानेति । **नच धूमध्वंसादेरपि वह्निव्याप्यत्वेन दैशिकविशेषणतया पर्वतवृत्तित्वेन च वह्न्यनुमापकत्वसम्भवेऽपि ह्रस्वाद्यपेक्ष्यैव दीर्घत्वादिव्यवहारेण तद्ध्वंसस्यानवधित्वेन कथं दीर्घत्वादिप्रत्ययहेतुत्वमिति वाच्यम्, यस्मादत्रासीद्धूमस्तस्माद्वह्निरपीति प्रतीतेस्त्वयाऽपि धूम एवातीतेऽतीतबह्निव्याप्यतां प्रतीतवतो वक्तव्यत्वादिति भावः । ननु ज्ञानावच्छिन्नकरणत्वानिरूपकत्वविवक्षायां दैर्ध्यादिप्रत्यक्षे ज्ञायमानह्रस्वादिजन्यतया तादृशकारणतानिरूपकेऽपि ह्रस्वादेस्तत्र करणत्वे मानाभावेन तस्य स्वज्ञानव्यापारकत्वसम्भवेऽपि प्रमाणविभागायेन्द्रियादेः करणताया अवश्यकल्पनीयत्वेन कस्य करणतेत्यस्य प्रमाणिकव्यवहारमात्रानुरोधित्वेन च तादृशकरणत्वनिरूपकत्वाभावान्नाव्याप्तिः, अनुमित्यादेस्तु परामृश्यमानलिङ्गादिकरणकतया तादृशकरणत्वनिरूपकत्वेन न तत्रातिव्याप्तिरित्यभिमानेनाह** असाधारणकारणेति । **असाधारणपदं यथाश्रुताभिप्रायेण । भावीत्यतीतस्याप्युपलक्षणं वर्तमानस्याप्यतीन्द्रियस्य च, तत्रानुमितिशाब्दाद्यात्मकपरामर्शस्य विषयजन्यत्वे प्रमाणमलभमानस्य लिङ्गव्यापारत्वानुपपत्तौ लिङ्गस्य निर्व्यापारतया करणत्वानुपपत्तेः ।**

भारती

यदि कहें कि (बाधक के न रहने पर विशिष्ट में कारणता के ग्राहक प्रमाण से विशेषण में भी कारणता का ग्रह होता है अतः) लिङ्ग ज्ञान के अनुमितिकारण होने पर उस ज्ञान में विशेषणीभूत लिङ्ग भी कारण होगा ही, और वह लिङ्ग तो अज्ञायमान नहीं है अतः अनुमिति में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है । तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार से लिङ्ग के समान ही अवधि ज्ञान में विशेषणीभूत ह्रस्वादिरूप अवधि भी दीर्घत्वादि प्रकारक ज्ञान का कारण हो जायेगी । ऐसी स्थिति में उस अवधि के ज्ञायमान होकर दीर्घत्वादिप्रकारक ज्ञान के प्रतिकारण होने से उक्तप्रत्यक्ष लक्षण की दीर्घत्वादिप्रकारक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न – असाधारण कारण शब्द से करण अभिप्रेत है । (तात्पर्य यह है कि दीर्घादि के प्रत्यक्ष में ज्ञायमानह्रस्वादि कारण होने पर भी उस (ह्रस्वादि) के करण होने में कोई प्रमाण नहीं है । यदि ह्रस्वज्ञान को व्यापार मानकर व्यापारवत्तया उसे (ह्रस्वादि) करण कहें तो प्रमाण विभाग के लिए इन्द्रियादि को भी करण मानना आवश्यक है ऐसी स्थिति में ''वस्तुतः कौन करण है'' इस निश्चय के लिए प्रामाणिकों का व्यवहार ही अनुरोधव्य है अर्थात् प्रामाणिक आचार्यों का जिसमें करणत्व व्यवहार होता है उसे ही करण माना जाय । तथाच आचार्यव्यवहारानुध से इन्द्रियादि ही करण होगी न कि ह्रस्वादि और वह चक्षुरादि इन्द्रियाँ तो अज्ञायमान ही है अतः उक्त प्रत्यक्षलक्षण दीर्घादिज्ञान में अव्याप्त नहीं है । एवं अनुमित्यादि के प्रति तो ज्ञायमानालिङ्गादि ही करण है अतः अनुमिति में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है।)

लिङ्गस्य करणत्वासम्भवेन ज्ञायमानकरणकत्वाभावात् । लिङ्गज्ञानं तावत्करणं तच्च स्वप्रकाशवादिनो मम ज्ञायमानमेव तत्रेति चेन्न; तस्यापि ज्ञायमानतया करणकोटिप्रवेशे प्रमाणाभावात्, उक्तप्रत्यनानां

शारदा

अधिकं तु करणत्वखण्डनशारदायां निवेदितम् । एवञ्च व्याप्तिज्ञानस्याज्ञायमानस्यैवानुमितौ करणताया वाच्यत्वादुक्तकरणताघटितलक्षणस्यापि तत्रातिव्याप्तिरिति । लिङ्गज्ञानं = लिङ्गत्वज्ञानं, लिङ्गत्वं व्याप्तिः । स्वप्रकाशवादिन इति । **यद्यपि ज्ञानमात्रस्य मातृमित्यंशे प्रत्यक्षत्वं वदतोऽस्य मते ज्ञानावच्छिन्नकरणत्वानिरूपकानुभवत्वस्य प्रत्यक्षलक्षणत्वमव्यापकत्वादसम्भवि, तथापि सर्वांशे प्रत्यक्षस्य लक्षणमिदं तन्मतेऽपि सम्भवतीति भावः । तत्र = अनुमितिप्राक्क्षणे ।** ज्ञायमानमेवेति । **तथाच ज्ञानावच्छिन्नकरणतानिरूपकत्वमेवानुमितावित्यभिमानः । लिङ्गत्वज्ञानस्य ज्ञायमानत्वेऽपि न ज्ञानावच्छिन्नं तस्य करणत्वम्, अन्यथा तार्किकाणामपि तत्र ज्ञानान्तरकल्पनापत्तेः, अनुभववैषम्यायोगादित्याशयेनोक्ताभिमानं निराकरोति** तस्यापीति । **स्वविषयकस्यापि लिङ्गत्वज्ञानस्येत्यर्थः । ज्ञायमानतया करणकोटिप्रवेशे = ज्ञानावच्छिन्नकरणताश्रयत्वे । उक्तप्रत्ययानां = भाव्यादिलिङ्गकानुमितीनां स्वान्यथानुपपत्त्या ज्ञानस्य**

भारती

समाधान – जिस यज्ञशालादि में हवन सामग्री आदि के द्वारा भावी भूत धूम की अनुमिति कर उससे भावी-भूत वह्नि की अनुमिति की जाती है वहाँ उस लिङ्गविषयक अनुमिति रूप परामर्श के विषय असत् = अविद्यामानलिङ्ग जन्य होने में प्रमाण न होने से वह परामर्श लिङ्ग का व्यापार नहीं हो सकता, और व्यापार के अभाव में वह लिङ्ग करण भी नहीं हो सकता । तथाच तादृश वह्न्यनुमिति के प्रति लिङ्गत्व (व्याप्ति) ज्ञान को ही करण मानना होगा, और उस व्याप्तिज्ञान के अज्ञायमान होने से भावीवह्नि विषयक अनुमिति में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि अनुमिति के प्रति लिङ्गत्व (व्याप्ति) ज्ञान ही करण है और वह लिङ्गत्वज्ञान (व्याप्तिज्ञान) ज्ञान स्वप्रकाशवादी मेरे मत में ज्ञायमान ही है अतः भावीवह्न्यनुमिति के पूर्वक्षण में ज्ञायमानकरण होने से तादृश अनुमिति में अतिव्याप्ति न होगी, तो यह आपका कथन युक्तिविरुद्ध है क्योंकि स्वविषयक उस व्याप्तिज्ञान के ज्ञायमान होने पर भी ज्ञायमान (ज्ञात) रूप से उसे करण मानने में कोई प्रमाण नहीं है । (भाव यह है व्याप्तिज्ञान के ज्ञायमान होने पर भी उस व्याप्तिज्ञाननिष्ठा करणता के ज्ञानावच्छिन्न होने में कोई प्रमाण नहीं है अन्यथा तार्किकों को भी अनुभव की एकरूपता के लिए व्याप्तिज्ञान के ज्ञानान्तर की कल्पना करनी होगी ।) भावी लिङ्ग विषयक अनुमितियाँ (अर्थात् लिङ्गविषयक अनुमित्यन्यथानुपपत्ति स्व की अन्यथानुपपत्ति से ज्ञानगत करणता में प्रमाण होने पर भी उस ज्ञाननिष्ठकरणता के ज्ञानावच्छिन्नत्व (ज्ञानावच्छिन्न होने) में प्रमाण नहीं है ।

तथात्वाभावात् , अन्यथासिद्धस्यापि ज्ञायमानत्वस्यावर्जने चक्षुराद्यनुमित्यनन्तरं दैवोपजातघटादिप्रत्यक्षाव्यापनात् । नियमेनेति चेन्न ; विधौ वैयर्थ्यात् । ''नियमेन निषेधस्य विशेषणे दैवावगतेन्द्रियानन्तरजप्रत्यक्षसम्भवादसिद्धिः ।

शारदा

करणतायां प्रमाणत्वेऽपि तस्या ज्ञानावच्छिन्नत्वे तथात्वाभावात् = प्रमाणत्वाभावात्। व्याप्तिज्ञानस्य तत्त्वेनानन्यथासिद्धस्यापि व्याप्तिज्ञानविषयकज्ञानत्वेनान्यथासिद्धत्वमेव, कपालत्वेनानन्यथासिद्धस्यापि कपालस्य जन्यद्रव्यत्वेन द्रव्यत्वेन वाऽन्यथासिद्धत्ववदिति भावः । प्रमाणाभावमभिधाय बाधकमप्याह अन्यथासिद्धस्येति । **अनुमित्यप्रयोजकस्येत्यर्थः। अवर्जने = करणतावच्छेदकत्वोपगमे । दैवोपजातेति प्रत्यक्षान्वयि। स्वसामग्रीवशनिष्पन्नेत्यर्थः। एतदभिधानञ्चनुमितेस्तत्रानपेक्षासूचनाय ।** प्रत्यक्षाव्यापनादिति । **तत्करणताया अपि ज्ञानावच्छिन्नाया वक्तुं शक्यत्वादिति भावः ।** नियमेनेति । **यद्यद्धर्मव्यापकं ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वं तत्तद्धर्मानवच्छिन्नानुभवत्वमिति वा, ज्ञानगतयद्धर्मव्यापको ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभावस्तद्धर्मावच्छिन्नत्वमिति वा विवक्षितम्, आद्येऽपि किं विवक्षेयमनुमित्यादावतिप्रसक्तिव्युदासाय, आहोस्विच्चक्षुराद्यनुमित्यनन्तरजातप्रत्यक्षेऽप्रसक्तिव्युदासाय, प्रथमे**

भारती

(व्याप्तिज्ञानगत करणता के ज्ञानावच्छिन्नत्व में प्रमाण का अभाव ही केवल नहीं है अपितु उसे (करणता) ज्ञानावच्छिन्न मानने में बाधक है) (व्याप्तिज्ञानगत करणता में ज्ञायमानत्व (ज्ञानावच्छिन्नत्व) के माने विना भी व्याप्तिज्ञानरूप करण से अनुमिति की उत्पत्ति हो सकती है अतः अनुमिति के प्रति व्याप्तिज्ञानगत करणता में ज्ञानावच्छिन्नत्व मानना अन्यथा सिद्ध है इस प्रकार अन्यथासिद्ध अनुमिति का अप्रयोजक ज्ञानावच्छिन्नत्व को यदि व्याप्तिज्ञानगत करणता का अवच्छेदक मान लें तो उक्त अनुमिति में प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति तो न होगी, किन्तु ''रूपप्रत्यक्षं सकरणं कार्यत्वात् घटवत् '' इत्याकारक चक्षुरादिविषयक अनुमिति के अनन्तर दैवोपजात अर्थात् स्वसामग्रीवशात् जायमान घटादि प्रत्यक्ष में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि वह घटप्रत्यक्ष ज्ञायमानकरणक है । (यहाँ प्रत्यक्ष में ''दैवोपजात'' विशेषण देने का तात्पर्य यह है कि – उक्त घटप्रत्यक्ष में चक्षुरादिविषयक अनुमिति की अपेक्षा नहीं है अपितु वह (अनुमिति) उक्त घट प्रत्यक्ष के प्रति अन्यथासिद्ध है तथापि उस अनुमिति ज्ञान को चक्षुगत करणता का अवच्छेदक मान सकते हैं और उसे करणतावच्छेदक मानने पर घटप्रत्यक्ष में अव्याप्ति दोष भी दिया जा सकता है ।)

यदि कहें कि नियम से अज्ञायमान करणक अनुभवत्व कहेंगे तो यह आपका कथन युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि इस नियम (व्यापकत्व) का निवेश आप विधिकोटि ज्ञायमानत्व (ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्व) में करते हैं या निषेध कोटि ज्ञायमानत्वाभाव (ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव) में, यदि विधिकोटि में करेंगे तो ''जिस-जिस धर्म (अनुमितित्वादि) का व्यापक ज्ञानावच्छिन्न करणताकत्व है तत्तद् अर्थात् उस-उस धर्म (अनुमितित्वादि) से अनवच्छिन्न

विधौ करणत्वप्रविष्ट एवायं नियमो निरुच्यते इति चेन्न; तथापि

शारदा

आह विधाविति । **ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभावप्रतियोगिनीत्यर्थः । व्यापकत्वनिवेशस्येति शेषः** । वैयर्थ्यादिति । **ज्ञानकरणकस्याप्यनुमित्यादेर्ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वोपगमे तादृशकरणकत्वाभाववदनुभवत्वमिति यथाश्रुतेऽप्यनुमित्यादावतिव्याप्तिविरहेण तदर्थं न व्यापकत्वनिवेशौचित्यम्। ज्ञानगतयद्धर्मेत्यादिकमाशङ्क्याह** नियमेनेति । **व्यापकत्वेनेत्यर्थः। निषेधस्य = तादृशकरणकत्वाभावस्य** । दैवावगतेति । **उक्तफलकमिदमिन्द्रियविशेषणम्।** असिद्धिरिति । **असम्भव इत्यर्थः । तदप्रयोजकस्यापि तदीयकरणतावच्छेदकतामभ्युपगतवतो भवतो नोक्तप्रत्यक्षे ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव इति न तस्य प्रत्यक्षत्वव्यापकत्वमिति भावः । आद्यमेव पक्षमाश्रित्याशङ्कते** विधाविति । **यद्यपि तत्र धर्मव्यापकता ज्ञानावच्छिन्नकरणतानिरूपकत्वे प्रविष्टा, तथापि सापि न करणस्य ज्ञानावच्छिन्नस्य धर्मिव्यापकतां विना निर्वहति, करणत्वं हि व्यापकताघटितकारणताघटितम्, एवञ्चानुमितिप्रभृतिसामान्ये ज्ञानावच्छिन्नस्य व्यापकतयैव निर्वाहमासादयन्ती ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभावस्यानतिप्रसक्तिरेवानुमितित्वाद्यवच्छेदेन तादृशकरणताकत्वमभिधाय स्फुटीक्रियते**

भारती

अनुभव ही प्रत्यक्ष है'' इस प्रकार लक्षण की विवक्षा माननी होगी, और निषेध में व्यापकत्व का निवेश करने पर – ''ज्ञानगतयद्धर्म (प्रत्यक्षत्व) का व्यापक ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव हो तद्धर्म से अवच्छिन्न अनुभव ही प्रत्यक्ष है ऐसी विवक्षा करनी होगी ।

इन दोनों में भी प्रथम कल्प (विधिकोटि में निवेश) का अनुसरण – क्या अनुमिति में अतिव्याप्ति के निरासार्थ करेंगे, या चक्षुरादि की अनुमिति के अनन्तर जायमान घट प्रत्यक्ष में अव्याप्ति के निरासार्थ, इनमें प्रथम कल्प मानें तो विधिकोटि (ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व) में नियम (व्यापकत्व) का निवेश करना व्यर्थ है, कारण कि ज्ञानकरणक अनुमित्यादि में ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्व मानकर ''तादृशकरणकत्वाभाववद् अनुभवत्व'' इस प्रकार व्यापकत्व का निवेश के विना यथाश्रुत लक्षण से ही अनुमिति में अतिव्याप्ति का वारण हो जायेगा । पुनः तदर्थ व्यापकत्व का निवेश करना व्यर्थ है ।

यदि व्यापकत्व को निषेध का विशेषण कर ''ज्ञानगतयद्धर्म (जिस धर्म = प्रत्यक्षत्व) का व्यापक ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव हो तद्धर्मावच्छिन्न अनुभवत्व ही प्रत्यक्षत्व है'' इस प्रकार लक्षण की विवक्षा करेंगे तो दैवोपजात (स्वसामग्रीवशात्) इन्द्रियज्ञान के अनन्तर जायमान घटादिप्रत्यक्ष में ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव प्रत्यक्षत्व का व्यापक न होने से असम्भव दोष होगा । (तात्पर्य यह है कि तद्अप्रयोजक को भी तदीय करणता का अवच्छेदक मानने वाले आपके मत में उक्तघट प्रत्यक्ष में प्रत्यक्षत्व के रहते हुए भी ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव नहीं है अतः ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्वाभाव प्रत्यक्षत्व का व्यापक नहीं है ।)

प्रश्न – ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व रूप विधिकोटि में ही व्यापकत्व का निवेश करेंगे, क्योंकि नियतपूर्ववर्ति असाधारण कारण ही करण होता है अतः करण के स्वरूप में ही इस

वैयर्थ्यदिव। अन्यथाऽतिप्रसक्तेरवैयर्थ्यमिति चेन्न; तथाप्यतिप्रसक्तेरेव, नहि रसादिसाक्षात्कारे रूपादिर्हेतुः। अन्यथासिद्धेर्नेति चेन्न; तुल्यत्वादनुमानेऽपि। किञ्च यत्र निषेधस्तद्गतमैकरूप्यं निरूप्यम्,

शारदा

इत्याभासः। निरुच्यते इति। **नियमान्तरं निवेश्य फलवत्तया स्फोर्यते इत्यर्थः।** वैयर्थ्यादिवेति। **अतिप्रसक्तिवारकतया साफल्याभावादेवेत्यर्थः। आद्यस्य द्वितीयमाशङ्कते** अन्यथेति। **अतिप्रसक्तेः = आपत्तेः, सा चाव्याप्तेः। मन्मते उक्तरीत्या यत्किञ्चित्प्रत्यक्षस्यापि ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वेनाव्याप्तिवारणाय नियमान्तरप्रवेशः, नहि प्रत्यक्षत्वव्यापकत्वं तादृशकरणताकत्वे। धर्मपदेन च जातिर्विवक्षितेति न तत्तद्व्यक्तित्वव्यापकत्वमादायाव्याप्तितादवस्थ्यमिति भावः। अतिप्रसक्तेः = आपत्तेः, सा च कारणतायास्तदवच्छेदकताया वा। अयम्भावः – अनपेक्षणीयस्यापि ज्ञानस्य यत्किञ्चित्प्रत्यक्षनिरूपितकरणतायामवच्छेदकत्वोपगमनिबन्धनाव्याप्तिवारणाय हि नियमान्तरोपादानप्रयासः, तादृशोपगम एव तु न युज्यते, अन्यत्राप्यनपेक्षणीयस्य कारणतायास्तदवच्छेदकताया वाऽऽपादकत्वादिति। इष्टापत्तावाह** नहीति। रूपादिरिति। **नियताव्यवहितप्राग्वृत्तिरपीति शेषः। हेतुः = हेतुतया तदवच्छेदकतया वा लोकसिद्धः। अन्यथासिद्धेः = हेतुहेतुतावच्छेदकसाधारणस्वरूपसम्बन्धविशेषरूपप्रयोजकताविरहाद्धेतुता तदवच्छेदकता वा नेत्यर्थः।** अनुमाने इति। **व्याप्तिज्ञानस्यानुमितिकरणत्वे स्वप्रकाशतया तत्र तद्विषयकत्वस्य विषयतया तस्यवाऽनुमितेः प्राक्सत्त्वेऽपि तस्य निरुक्तप्रयोजकताविरहाद्धेतुतेव तदवच्छेदकत्वमपि नेत्यर्थः। एवञ्चानुमित्यादौ प्रकृतलक्षणतिव्याप्तिः स्थिरेति भावः। अनुभवत्वसमानाधिकरणयज्जातिव्यापको ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभावस्तदवच्छिन्नत्वमिति विवक्षायां निरुक्तप्रयोजकताविरहिणि कारणतावच्छेदकत्वानभ्युपगमे नोक्तस्यासम्भवस्यावकाश इत्यनुमित्यादेर्ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वमभ्युपेत्यैव दूषणान्तरमाह** किञ्चेति। **यत्र = प्रत्यक्षे।**

भारती

नियम (व्यापकत्व) का प्रवेश है। (भाव यह है कि यद्यपि धर्म की व्यापकता का निवेश ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व अर्थात् ज्ञानावच्छिन्नकरणतानिरूपकत्व में ही किया गया है किन्तु धर्म की व्यापकता ज्ञानावच्छिन्नकरण में धर्मी अनुमित्यादि की व्यापकता के विना नहीं हो सकती, क्योंकि करण के स्वरूप में व्यापकता घटितकारणता प्रविष्ट है। एवञ्च अनुमित्यादि सामान्य में ज्ञानावच्छिन्न व्यापकता से ही धर्म व्यापकता का निर्वाह होने से अनुमिति आदि को ज्ञानावच्छिन्नकरण का व्यापक कहते हुए अनुमितित्वाद्यवच्छेदेन ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व के कथन के द्वारा ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभाव के अनतिप्रसक्ति को ही स्फुट किया गया है।)

समाधान – उक्त प्रत्यक्षलक्षण में व्यापकत्व के निवेश के विना यदि वह (लक्षण) अतिप्रसक्त (अतिव्याप्त) होता, तो तद्वारकतया उस (व्यापकत्व निवेश) का सार्थक्य होता, किन्तु जब व्यापकत्व निवेश के विना भी ज्ञानकरणकअनुमिति में ज्ञानावच्छिन्नकरणकत्व मानकर "ज्ञानकरणकत्वाभाववदनुभवत्वम्" इत्याकारक यथाश्रुत लक्षण करने पर भी उक्तलक्षण अतिप्रसक्त ही नहीं है तब तद्वारणार्थ व्यापकत्व का निवेश करना व्यर्थ ही है।

अन्यथा किमादाय नियमो निरूप्येतेति कार्यगतैकरूप्यमनाभिधाय

शारदा

ऐकरूप्यं = अनुगतानतिप्रसक्तरूपम् । किमादाय नियमो निरूप्येत = किंधर्मनिरूपिता

भारती

यदि कहें कि ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व रूप विधि कोटि में ही व्यापकत्व का निवेश करेंगे क्योंकि तादृशविधिकोटि में व्यापकत्वनिवेश के विना चक्षुरादि अनुमिति के अनन्तर दैवोपजात घटादि प्रत्यक्ष में अव्याप्ति रूप आपत्ति आती है । अतः तद्वारणार्थ व्यापकत्व निवेश सार्थक है, व्यर्थ नहीं है । तो आप यह नहीं कह सकते, क्योंकि इस प्रकार मानने पर अन्यत्र भी कारणता अथवा कारणतावच्छेदकता की आपत्ति आयेगी ही । (यहाँ अवश्य ज्ञातव्य भाव यह है कि – दैवोपजातघटादि प्रत्यक्ष में सर्वथा अनपेक्षणीय चक्षुरादिज्ञान (चक्षुरादिविषयकअनुमिति) को भी उक्तघटादिप्रत्यक्ष की कारणता (चक्षुर्निष्ठा) का अवच्छेदक मानते हैं इसलिए उक्तघटादिप्रत्यक्ष में "अज्ञायमानकरणकअनुभवत्व" इस प्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति होती है और उस अव्याप्ति का वारण करने हेतु नियमान्तर (करणस्वरूप में प्रविष्ट व्यापकत्व के अतिरिक्त व्यापकत्व) की कल्पना करनी पड़ती है । किन्तु अनपेक्षणीय ज्ञान को कारण अथवा कारणतावच्छेदक भी तो नहीं मान सकते, क्योंकि यदि एकत्र (दैवोपजातघटादि प्रत्यक्ष स्थल में) अनपेक्षणीय (कार्य के अप्रयोजक) को कारण अथवा कारणतावच्छेदक मानेंगे तो उसी के अनुसार अन्यत्र भी अनपेक्षणीय को कारण अथवा कारणतावच्छेदक मानना पड़ेगा । इस प्रकार अन्यत्र अप्रयोजक में कारणत्व अथवा कारणतावच्छेदकत्व का आपादक होने से उक्तघटादिप्रत्यक्षस्थल में भी अनपेक्षणीय चक्षुरादिज्ञान (चक्षुरादि अनुमिति) को भी कारण अथवा कारणतावच्छेदक नहीं मान सकते । ऐसी स्थिति में उक्तप्रत्यक्षलक्षण की तादृशघटादि प्रत्यक्ष में अव्याप्ति भी नहीं है, और जब अव्याप्ति ही नहीं है तो तद्वारणार्थ व्यापकत्व का निवेश करना भी व्यर्थ है ।)

"अन्यत्र सर्वत्र ही अनपेक्षणीय भी कारण अथवा कारणतावच्छेदक होता ही है" इस प्रकार इष्टापत्ति भी नहीं कर सकते, क्योंकि रसादिसाक्षात्कार में रूपादि कारण रूप से अथवा कारणतावच्छेदक रूप से लोक सिद्ध (लोक में प्रसिद्ध) नहीं है ।

यदि कहें कि रसादिसाक्षात्कार के प्रति रूपादि अन्यथा सिद्ध है अर्थात् हेतु हेतुतावच्छेदक उभय साधारण स्वरूपसम्बन्ध विशेषरूप प्रयोजकता का अभाव होने से रूपादि रसादिसाक्षात्कार के प्रति न हेतु है और हेतुतावच्छेदक है । तो इसी प्रकार अनुमान में भी अर्थात् व्याप्तिज्ञाननिष्ठ अनुमितिकरणता में भी तद्विषयक ज्ञान अवच्छेदक नहीं है । (यद्यपि अनुमिति के प्राक्काल में व्याप्तिज्ञान में स्वप्रकाशतया व्याप्तिज्ञनविषयकत्व अथवा विषयतया (विषयतासम्बन्धेन) व्याप्तिज्ञान रहता है तथापि तादृशज्ञान में पूर्वोक्त प्रकार की प्रयोजकता के न रहने से हेतुतावच्छेदकता भी नहीं है । तथाच तादृशव्याप्तिज्ञान के अज्ञानयमान होने से तज्जन्य अनुमिति में उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति सुस्थिर ही है ।)

किञ्च जिस प्रत्यक्ष में ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व का निषेध करते हैं उसमें एक अनुगत अनतिप्रसक्त व्याप्यतावच्छेदक धर्म की कल्पना करनी होगी, अन्यथा (तादृश अनुगत धर्म के

न निस्तारः । विनापि च नियमपदप्रवेशं कार्यगतैक-रूप्यमनिरूप्यानिस्तार एव । ज्ञायमानं नात्र करणमिति हि यदि कार्यव्यक्तिमाभिसन्धाय, तदा तत्पूर्वं प्रतीतानां तत्राकारणवं दुरवधारणम् , ततस्तज्जातीये तज्जातीयव्यभिचारप्रतिसन्धानेऽवश्यं यतनीयमिति ।

शारदा

व्यापकता ज्ञायेत । तादात्म्येन धर्मिव्यापकत्वनिवेशेऽपि व्याप्यतावच्छेदकमनुगतानतिप्रसक्तं वक्तव्यमेव, व्यक्तीनामानन्त्यात् , यदाहुस्तार्किकाः – ''अनुगतधर्मावच्छिन्नसमयनियमग्रहाधीनप्रवृत्तिकयोरप्रवृत्तिरेव शब्दलिङ्गयोरन्तरेणानुगतधर्म'' मिति । कार्येति । प्रत्यक्षेत्यर्थः । न निस्तारः = न प्रकृतलक्षणनिरूपणसम्भवः । आहत्य विप्रतिपत्तिजन्मनः स्वीकारे संशयत्वं न तादृशं रूपम्, मतान्तरे तादृशं सम्भवदपि न जातिरिति प्रत्यक्षमात्रसाधारणं साक्षात्कारित्वमेव तथा, तच्च परतोनिरसनीयमिति भावः । ज्ञानावच्छिन्नकरणतनिरूपकत्वाभाववदनुभावत्वमिति यथाश्रुतेऽपि ज्ञातकरणकत्वमनुमित्यादावभ्युपेत्य दूषणमाह विनापीति । **तादृशनिरूपकत्वाभावो नानुभवत्वं धर्मितावच्छेदकीकृत्य शक्यप्रमः, तस्यातिप्रसक्तेः, नापि तत्तज्ज्ञानत्व, आनन्त्यात्, अपितु साक्षात्कारित्वमेवेति भावः तत्तज्ज्ञानत्वस्य धर्मितावच्छेदकत्वाभावे हेत्वन्तरमप्याह** ज्ञायमानमिति । **कार्यव्यक्तिमभिसन्धाय = प्रत्यक्षविशेषं धर्मीकृत्येति यावत् । प्रत्येतव्यमिति शेषः । तत्पूर्वं = प्रत्यक्षविशेषात्पूर्वं । तत्र = प्रत्यक्षविशेषे । ज्ञातनयनादिजन्यप्रत्यक्षविशेषे**

भारती

अभाव में) किंधर्मनिरूपिता व्यापकता का ग्रहण ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व में करेंगे । अतः प्रत्यक्षरूप कार्यगत एक रूप = कार्यतावच्छेदक की कल्पना किये विना उक्तप्रत्यक्ष लक्षण की सिद्धि नहीं हो सकती ।

किञ्च उक्तप्रत्यक्ष लक्षण में व्यापकत्व का निवेश न कर ज्ञानावच्छिन्नकरणतानिरूपकत्वाभावदनुभवत्व'' इस प्रकार यथाश्रुत लक्षण भी करें तथापि कार्य (प्रत्यक्ष) गत एक रूप कार्यतावच्छेदक के निरूपण किये विना उक्त प्रत्यक्षलक्षण की सिद्धि नहीं हो सकती । (यहाँ पर अनुभवत्व को धर्मितावच्छेदक (कार्यतावच्छेदक) मानकर ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभाव की प्रमा नहीं की जा सकती, क्योंकि अनुभवत्व अतिप्रसक्त (प्रत्यक्ष से अतिरिक्त अनुमिति में भी रहता) है । एवं तत्तज्ज्ञानत्व भी कार्यतावच्छेदक नहीं हो सकता, क्योंकि वह अनन्त है, अपि तु साक्षात्कारित्व को ही कार्यतावच्छेदक मानना होगा, और वह लक्षणनिर्माण से पूर्व ज्ञात नहीं हो सकता, यदि ज्ञात मानकर उसके द्वारा लक्षण सिद्धि मानें तो अन्योन्याश्रय होगा। वस्तुतस्तु साक्षात्कारित्व क्या है इसका निर्वचन भी कर्तुंशक्य नहीं है । तथाच उक्त प्रत्यक्षलक्षण सिद्ध नहीं हो सकता ।

किञ्च तत्तज्ज्ञानत्व को धर्मितावच्छेदक (कार्यतावच्छेदक या लक्ष्यतावच्छेदक) नहीं मान सकते इसमें यह भी कारण है कि – ''ज्ञायमानं नात्र करणम्'' इस प्रकार ज्ञायमानकरणकत्व

अथाव्यवहितार्थप्रमात्वं तथा । तर्हि किमपेक्ष्य व्यवधानम् ? किञ्च तदिति वाच्यम् । इन्द्रियमपेक्ष्य तत्, असन्निकर्षश्च तदिति चेत्तर्हीन्द्रियसन्निकृष्टप्रकाशत्वमिति कुटिलिकार्थः, स चानुपपन्नः, स्वविलोचनगोलकानुमानव्याप्तेः ।

शारदा

ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभावस्य तज्जातीयज्ञानान्तराणामज्ञातेन्द्रियजन्यत्वप्रतीतावेव प्रतीति-सम्भवः केषाञ्चिद्घटानां रासभानपेक्षोत्पत्तिकत्वदर्शनमन्तरेण रासभनियतोत्पत्तिकघटविशेषे रासभस्यानान्यथासिद्धत्वाप्रत्ययात्, तज्जातीयत्वञ्च प्रत्यक्षत्वेनैव प्रकृते स्यादिति तस्यैव धर्मितावच्छेदकत्वमापतितम् अन्यथोक्तप्रत्यक्षविशेषेऽव्याप्तेर्दुर्वारत्वादिति भावः । तज्जातीये = उक्तप्रत्यक्षविशेषजातीयेऽज्ञातनयनादिजन्यज्ञाने तज्जातीयव्यभिचारप्रतिसन्धाने यतनीयम् = ज्ञातनयनादेः व्यभिचारः प्रत्येतव्यः, तत्प्रतीतये च साजात्यं प्रत्येतव्यमिति भावः ।

तथा = जन्यसाक्षात्कारिप्रमात्वम् । तदा सर्वत्र व्यवधानपरामर्शः । इन्द्रियेति । **इन्द्रियसन्निकृष्टविषयकप्रमात्वमित्यर्थः । सन्निकर्षस्त्वन्यतमत्वेनोपादेय इति भावः । कुटिलिका = अस्फुटोक्तिः ।** स्वविलोचनेति । **स्वपदं पुरुषान्तराक्षसन्निकृष्टाग्न्याद्यनुमित्या-**

भारती

का निषेध यदि कार्य व्यक्ति को लक्ष्य करके अर्थात् प्रत्यक्षविशेष को धर्मी मानकर करते हैं तो उस प्रत्यक्षविशेष के पूर्व प्रतीत (ज्ञात = अनुमित) चक्षुरादि को उस प्रत्यक्षविशेष में अकारण नहीं कह सकते ।

(यहाँ यह भाव अवश्य ज्ञातव्य है कि जैसे – कुछ घटविशेषों में जब तक रासभ निरपेक्ष उत्पत्तिकत्व का ज्ञान न हो तब तक रासभ से नियत उत्पत्ति वाले घटविशेष में अन्यथासिद्धत्व का ज्ञान नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब तक प्रत्यक्षविशेष में अज्ञातनयनजन्यत्व का ज्ञान न हो तब तक ज्ञात (अनुमित) नयनजन्य प्रत्यक्षविशेष में ज्ञातनयनजनकताकत्व (ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्व) के अन्यथासिद्धत्व का ज्ञान नहीं हो सकता ।) अतः ज्ञातनयनादिजन्य प्रत्यक्षविशेष में ज्ञानावच्छिन्नकरणताकत्वाभाव के ज्ञान के लिए उक्त प्रत्यक्षविशेष जातीय अज्ञातनयनादिजन्य ज्ञान में तज्जातीय अर्थात् ज्ञातनयनादि के व्यभिचार (ज्ञातकरणकत्वाभाव) का ज्ञान अवश्य ही करना होगा । (और उस ज्ञान के लिए साजात्य भी अवश्य ज्ञातव्य होगा, एवं वह साजात्य प्रत्यक्षत्व से मानना होगा न कि तत्तज्ज्ञानत्व से । तथाच लक्षण निर्माण से पूर्व ही प्रत्यक्षत्व के ज्ञातव्य होने से तदर्थ लक्षणनिर्माण व्यर्थ है ।

प्रश्न – व्यवधानरहित अर्थविषयक प्रमा ही जन्यसाक्षात्कारिप्रमा (का लक्षण) है ।

समाधान – यदि इस प्रकार कहेंगे तो विचार करना होगा कि – किसकी अपेक्षा से व्यवधान का निषेध है एवं व्यवधान वस्तु क्या है ।

यदि कहें कि – इन्द्रिय की अपेक्षा व्यवधान निषिद्ध है और इन्द्रिय के साथ सन्निकर्ष न होना, ही व्यवधान है । तो आपके इस वक्रोक्ति से ''इन्द्रियसन्निकृष्टविषयक प्रमात्व'' यही लक्षण उपस्थित होता है । किन्तु यह लक्षण ठीक नहीं है क्योंकि सन्निकर्ष को अन्यतमत्वेन

ज्ञानाजन्यज्ञानत्वं तदिति चेन्न; सविकल्पकविशेषाव्यापनात्।

शारदा

दावपरपुरुषसमवेतेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्तत्पुरुषीयत्वस्येन्द्रिये निवेशेऽप्यतिव्याप्तिं स्थिरयितुम्। अनुमित्साधीनायां स्वनयनसन्निकृष्टहुतभुगाद्यनुमितावतिव्याप्तिसम्भवेऽपि गोलकपर्यन्तानुधावनं प्रत्यक्षनिश्चितेऽप्यर्थेऽनुमित्साधीनानुमितावनुभवकलहमभिप्रेत्य, एवञ्चैतेनाप्यनुशयेन स्वत्वोपादानमिन्द्रियविशेषापादानञ्च युक्तमेव कृतम्, अन्यथा परकीयगोलकस्यान्यदीयप्रत्यक्षविषयस्य स्वकीयस्यापि त्वगादिगोलकस्य स्वप्रत्यक्षविषयस्यानुमितिविषयत्वोपपादनं क्लिष्टं स्यादिति। अनुमानव्याप्तेः = अनुमित्याद्यतिव्याप्तेः । अत्र यद्यपीन्द्रियसन्निकर्षत्वावच्छिन्नकारणताककार्यताश्रयप्रमात्वविवक्षायामिन्द्रियत्वावच्छिन्नकारणताककार्यताश्रयप्रमात्वविवक्षायां वा नेयमतिव्याप्तिः, अनुमित्यादौ मनस इन्द्रियत्वेन तत्सन्निकर्षस्य चेन्द्रियत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकसन्निकर्षत्वेनाकारणत्वात्, तथापि तदपि तादृशकार्यतावच्छेदकनिरूपणसापेक्षमेव, कार्यतावच्छेदकञ्च साक्षात्कारित्वं निरसनीयमेवेति भावः ।

ज्ञानेति । **स्वसमानाधिकरणेत्यादिः । तत् = साक्षात्कारित्वम् । अनुमित्यादिकं तु स्वसमानाधिकरणव्याप्तिज्ञानादिजन्यमित्यनतिव्याप्तिः । सविकल्पकविशेषः = सविकल्पकात्मकः प्रत्यक्षविशेषः। विशिष्टज्ञानमात्रस्य विशेषणज्ञानजन्यत्वात् । ज्ञानाजन्यज्ञानवृत्त्यनुभवत्वाव्यापकजातिमत्त्वविवक्षायां तादृशज्ञानाजन्यज्ञानं निर्विकल्पकमादाय सर्वत्र समन्वयसम्भवेऽपि साक्षात्कारित्वस्य तादृशजातेरग्रे निरासो वक्तव्यः । नच–ज्ञानत्वपर्याप्तावच्छेदकताकजनकतानिरूपकत्वाभाववज्ज्ञानत्वं विवक्षणीयम्; स्मृतिं प्रति ज्ञानत्वेनैव**

राजहंसः

ईश्वरज्ञानजन्यत्वमादायासम्भववारणायाह स्वसमानाधिकरणेत्यादिरिति ।

भारती

ही उपादान (ग्रहण) करना होगा ऐसी स्थिति में "अहं गोलकवान् तदाश्रित चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञानवत्त्वात्" इत्याकारक स्वकीय गोलकविषयक अनुमिति में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

(यद्यपि यहाँ पर – इन्द्रियसन्निकर्षत्वेन अथवा इन्द्रियत्वेन कारणता की विवक्षा करने पर तादृशकारणताककार्यताश्रय प्रमात्व ही प्रत्यक्षलक्षण होगा, जो कि अनुमिति में अतिव्याप्त नहीं है कारण कि अनुमिति के प्रति मन इन्द्रियत्वेन एवं मनः सन्निकर्ष इन्द्रियत्वावच्छिन्न प्रतियोगिकसन्निकर्षत्वेन कारण नहीं है अपितु मनस्त्वादिना है । तथापि उक्त लक्षण भी कार्यतावच्छेदक ज्ञान सापेक्ष ही है और कार्यतावच्छेदक तो साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) ही मानना होगा, अतः यह लक्षण भी पूर्वोक्त दोष से ही दुष्ट है ।

प्रश्न – स्वसमानाधिकरणज्ञान से अजन्य ज्ञान ही साक्षात्कारिप्रमा है । (अनुमित्यादि तो स्वसमानाधिकरण व्याप्तिज्ञानादि से जन्य है अतः अनुमित्यादि में उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है ।)

समाधान – यह लक्षण भी युक्तिसङ्गत नहीं है क्योंकि विशिष्ट ज्ञानमात्र के विशेषण ज्ञानजन्य होने से सविकल्पात्मक प्रत्यक्षविशेष में उक्त प्रत्यक्षलक्षण अव्याप्त है ।

शारदा

हेतुतेति तत्र नातिव्याप्तिः । संस्कारं प्रति पुनरुपेक्षान्यज्ञानत्वेनैव सोचिता नवेत्यन्यत् । ईश्वरज्ञानं तूपादानप्रत्यक्षविधया कारणम्, विशेषणज्ञानत्वादिना कारणतावच्छेदकता तु न ज्ञानत्वपर्याप्ता, ज्ञानत्वगततद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तेर्विवक्षितत्वात्, अनुमित्यादिकं तु प्रति ज्ञानत्वेनैव कारणता, लाघवात्, विशेषसामग्र्या चातिप्रसङ्गभङ्ग इति-वाच्यम्; सुखादिसाधारणजन्यात्मविशेषगुणत्वावच्छिन्नं प्रति मनस्त्वेन कारणतायाः क्लृप्ततया ज्ञानत्वेनानुमित्यादावपि कारणताया अकल्पनीयत्वात्तत्रातिप्रसक्तेः । ज्ञानत्ववृत्तित्वविशिष्टावच्छेदकता ज्ञानत्वे पर्याप्तेति प्रतीत्या विशेषणज्ञानत्वाद्यवच्छिन्नजनकताया अपि ग्रहणसम्भवेनाव्याप्तेश्च । ज्ञानत्वेतरावच्छिन्नत्वाभावविवक्षणे चोभयाभावादिकमादायातिप्रसङ्गवारणाय विशेषणानवस्थानप्रसङ्ग इत्यादिकमुक्तं पूर्वमिति भावः। अथवा— ज्ञानाजन्यज्ञानत्वं = ज्ञानाकरणकज्ञानत्वं, ज्ञानकरणकत्वमनुमित्यादेः, विशेषणज्ञानं तु निर्व्यापारतया विशिष्टबोधे न करणमपि तु कारणमिति नाव्याप्तिः । नच-ज्ञानजन्यत्वे सति ज्ञानजन्यजन्यो यस्तद्भिन्नत्वमेव ज्ञानाकरणकत्वम्, तस्य चेश्वरज्ञाने सम्भवेऽपि जन्यप्रत्यक्षेऽव्यापकत्वमेव, ईश्वरज्ञानजन्यस्य तस्य तज्जन्यसन्निकर्षादिनापि जन्यत्वादिति-वाच्यम्; ज्ञाननिरूपिताया जन्यतातिरिक्तधर्मावच्छिन्नाया जन्यताया आश्रयो यस्तज्जन्यभिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात्, ईश्वरज्ञाननिरूपिता जन्यता तु जन्यतावच्छिन्नेत्युक्तजन्यताश्रयो न सन्निकर्षादिरपि तु व्याप्तिज्ञानजन्यपरामर्शादिकमेवेति नाप्रसङ्गातिप्रसङ्गौ । नचैवमपि धारावाहिकतृतीयादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः, तस्योक्तजन्यताश्रयद्वितीयादिज्ञानजन्यत्वात्, स्वनिरूपिततादृशजन्यताश्रयत्वस्वनिरूपिततादृशजन्यताश्रयजन्यत्वाभ्यां ज्ञानविशिष्टान्यत्वविवक्षणेऽपि सम्भेदे नान्यतरवैयर्थ्यमिति न्यायेन द्वितीयक्षणे द्वितीयस्येव प्रथमस्यापि ज्ञानस्य वर्तमानत्वेन विशेषणज्ञानविधया प्रथमस्यापि तृतीयज्ञानजनकत्वादव्याप्तितादवस्थ्यादिति वाच्यम्; स्वघटकधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयज्ञानजन्यमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकं यद्यत्तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। धूमलिङ्गकवह्न्यनुमितित्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयव्याप्तिज्ञानादिजन्यपरामर्शादिमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकं धूमलिङ्गकपर्वतपक्षकवह्न्यनुमितित्वादिकं तद्घटकमेव धूमलिङ्गकवह्न्यनुमितित्वादिकमिति नातिव्याप्तिः । नच-परामर्शत्वमीश्वरज्ञानेऽपि वर्तते इति न व्याप्तिज्ञानादिजन्यमात्रवृत्तीति तदवस्थातिव्याप्तिरिति वाच्यम्, परामर्शत्वस्य मानसत्वव्याप्यजातिविशेषस्येश्वरज्ञानेऽनभ्युपगमात्, तादृशकारणताश्रयज्ञानजन्यमात्रवृत्तित्वस्य वा तादृशकारणताश्रयजन्यज्ञानाजन्यजन्यज्ञानावृत्तित्वे सति तादृशकारणताश्रयजन्यवृत्तित्वरूपस्य विवक्षितत्वात् । परामर्शत्वस्य नित्यज्ञानवृत्तित्वेऽपि तादृशकारणताश्रयीभूतजन्यज्ञानाजन्ये जन्यज्ञानेऽवर्तमानत्वात् । नच-भ्रमसंशयोत्तरप्रत्यक्षे स्थाणुत्वव्याप्यकोटरादिमानयमित्यादिविशेषदर्शनस्य हेतुत्वेऽव्याप्तिस्तत्रेति वाच्यम्; विशेषदर्शनस्य तत्र हेतुतानभ्युपगमेऽपि क्षत्यभावात्, संशयोत्तरं विशेषदर्शनासत्त्वदशायां कोट्युपस्थित्यादिरूपसंशयसामग्रीसत्तया संशयस्यैवोत्पत्तुं युक्ततत्वेन विशिष्टनिश्चयोत्पत्त्या-

एतेन विषयान्तरज्ञानाजन्यज्ञानत्वं तदिति प्रत्युक्तम् ।

शारदा

पत्तेरयोगात्, विपरीतनिश्चयोत्तरमपि तथैव, तस्य दोषविशेषाजन्यलौकिकसन्निकर्षाजन्यविशिष्टज्ञानसामान्यं प्रति प्रतिबन्धकत्वात् । नच–आत्मसाक्षात्कारेऽव्याप्तिः, तत्साक्षात्कारत्वस्य स्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयश्रवणजन्यमननमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वादिति – वाच्यम् ; स्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताया ज्ञानत्वन्यूनवृत्तिजात्यनियतत्वेन विशेषणीयत्वात्, श्रवणनिष्ठकारणतायाश्च श्रुतिजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नाया ज्ञानत्वन्यूनवृत्तिशाब्दत्वजातिनियतत्वादिति पूर्वः पक्षः । अत्राह सविकल्पकविशेषेति । प्रत्यभिज्ञेत्यर्थः । उद्बुद्धसंस्कारवशादेव प्रत्यभिज्ञायास्तत्ताविषयकत्वोपपत्तेर्मध्ये स्मृतिकल्पनायां प्रमाणाभावात्, अतएव तथैवानुभवं विनिर्णीय संस्कारस्यैवोपनायकत्वं प्राञ्चो वदन्ति, एवञ्च तत्ताज्ञानजन्यतत्तासंस्कारजन्यतावच्छेदकमेव प्रत्यभिज्ञानिष्ठं संयोगाद्यजन्यतत्तद्विषयकप्रत्यक्षत्वमित्यव्याप्तिरित्यर्थः । नचैवं तस्य संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वापत्तिः, अनुभवामीत्यनुव्यवसायसत्त्वे संस्कारजन्यत्वस्याप्रयोजकत्वात्, अन्यथा त्वांशिकस्मृतित्वे इष्टापत्तेः । यद्वा सविकल्पकविशेषः = विशिष्टवैशिष्ट्यबोधः, तत्राव्याप्तिः, तस्य विशेषणतावच्छेदकज्ञानजन्यविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वात्, सामान्यरूपेण कार्यकारणभावस्यानङ्गीकारेऽपि विशिष्यैव तामादायाव्याप्तिदानसम्भवात्, पूर्वं हि दण्डत्वनिर्विकल्पकं ततः परं 'दण्ड' इति दण्डत्वप्रकारकं ज्ञानं ततो दण्डी पुरुष इति । एवञ्च करणलक्षणसङ्गमान्निर्विकल्पकज्ञानकरणकत्वं तत्र निर्बाधम् । अन्यथैतत्स्थलव्यावृत्तस्य करणत्वस्य निर्वक्तव्यत्वापातात् । अतएवानुमितिप्रकरणशेषे गदाधरभट्टाचार्यैरपि विशेषणतावच्छेदकज्ञानकरणकविशिष्टवैशिष्ट्यबोधादावव्याप्तिमभिधाय ज्ञानाकरणकज्ञानत्वस्य प्रत्यक्षलक्षणत्वं नाङ्गीकृतम् । किञ्च तादृशकार्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः कं धर्मं धर्मितावच्छेदकीकृत्य ज्ञेय इति तादृशधर्मस्यावश्यनिरूपणीयत्वम्, तं विना साक्षात्करोमीति प्रतीतेरप्यनुपपत्तेश्च। किञ्च तादृशभेदकूटघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वमपि। नचास्तु यत्किञ्चित्प्रत्यक्षव्यक्तिमुपादाय तद्वृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वं ज्ञानाकरणकज्ञानवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वं वा लक्षणम्, व्याप्यत्वञ्च तत्समानाधिकरणत्वेसति तत्समानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वमत्रेति नानुभवत्वमादायातिप्रसङ्गः, प्रत्यक्षत्वमेवानुभवत्वमिति प्रत्यभिज्ञानखण्डनोक्तनिष्कृष्टमते तु तादृशज्ञानसमवेतानुमित्यसमवेतजातिमत्त्वादिकमेव वक्तव्यमिति वाच्यम् ; तादृशजातेर्निरसिष्यमाणत्वादिति भावः। प्राभाकरास्तु मातृमित्यंशे ज्ञानमात्रस्य प्रत्यक्षत्वं प्रसाध्योक्तलक्षणस्याव्याप्तिव्याप्तत्वमाहुः । भाट्टास्तु— पार्थक्यमनुपलब्धेर्निरूप्य तज्जन्यज्ञानेऽतिव्याप्तिमुक्तलक्षणस्याचक्षते।

एतेनेति । वक्ष्यमाणेनेत्यर्थः । विषयान्तरेति । स्वविषयातिरिक्तविषयक-

भारती

यदि कहें कि स्वविषय से अतिरिक्त विषय का जो जन्यज्ञान उससे अजन्य अनुभव ही

सविकल्पकस्याधिकव्यवच्छेदरूपविषयत्वात्तदवधिज्ञानजन्यत्वात्। स्वविषयानन्तर्गतार्थज्ञानाजन्यधीत्वं तत्, नच सप्रतियोगिकार्थ-प्रत्यक्षाव्याप्तिः; प्रतियोगिनोऽपि स्वविशिष्टार्थप्रविष्टस्य तत्ताया

शारदा

जन्यज्ञानाजन्यानुभवत्वं जन्यलौकिकसाक्षात्कारित्वमित्यर्थः । लिङ्गोपहितलैङ्गिक-भानस्याप्रामाणिकत्वेनानुमित्यादौ नातिप्रसङ्गः, विशेषणज्ञानजन्यं विशिष्टप्रत्यक्षं तु स्वविषयविषयकज्ञानेनैव जन्यमिति भावः । अत्र स्वविषयीभूतयत्किञ्चित्प्रतियोगिकातिरिक्तत्वं विवक्षितम्, स्वविषयीभूतयगयावत्प्रतियोगिकातिरिक्तत्वं वेति विकल्प्य प्रथमं निराकुरुते सविकल्पस्येति । **सविकल्पकविशेषस्येत्यर्थः । यथाश्रुतमिदं वैशिष्ट्यमतद्व्यावृत्तिरितिमतेन। निर्विकल्पकंसविकल्पकञ्चान्तरा प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानं कल्पनीयमिति भावः। तत्त्वं तूदितं प्राक् । अधिकः = स्वकारणभूतविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानाविषयो व्यवच्छेदरूपो विषयो यस्य, तथात्वात् ।** तदवधीति । **व्यवच्छेदविशेषणतावच्छेदकेत्यर्थः। तथाचेदं तद्व्यावृत्तमित्यादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः, स्वविषयीभूतयत्किञ्चिद्व्यवच्छेदातिरिक्त-विशेषणतावच्छेदकप्रकारकजन्यज्ञानजन्यत्वादिति भावः । विशिष्टप्रत्यक्षमात्रेऽ-व्याप्तेरुपलक्षणमिदम् । द्वितीयमाशङ्कते** स्वविषयेति । **नचेत्यादेः 'उक्ता सप्रतियोगिकार्थ-प्रत्यक्षाव्याप्तिस्तु ने'त्यर्थः । विशिष्टप्रत्यक्षान्तरेऽप्यव्याप्त्यभावस्योपलक्षणमिदम्। स्वविशिष्टार्थप्रविष्टस्य = प्रतियोगिविशिष्टार्थो भेदस्तन्निरूपकस्य । अतीतानागतयोरपि**

राजहंसः

निर्विकल्पकं सविकल्पकं चान्तरेति । प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य निर्विकल्प-काव्यवहितप्राक्क्षणे कल्पनेऽपेक्षणीयतादशायां तस्य सद्भावोपपत्तावपि तद्विषयस्योपस्थिततया निर्विकल्पकेऽपि भाने सर्वांशे निविकल्पकं विलुप्येत, अन्नेष्टापत्तौ तु सम्भवाभिप्रायेणान्तरेत्युक्तमिति द्रष्टव्यम् ।

भारती

प्रत्यक्ष है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यहाँ अतिरिक्त (भिन्न) शब्द से क्या स्वविषयीभूतयत्किञ्चित्प्रतियोगिक अतिरिक्तत्व विवक्षित है या स्वविषयीभूतयावत्प्रतियोगिक अतिरिक्तत्व? इनमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है कारण कि सविकल्पक विशेष के अधिक अर्थात् स्वकारणभूतविशेषणतावछेदक प्रकारक ज्ञान के अविषयव्यवच्छेद (अतद्व्यावृत्ति) विषयक होने से उस व्यवच्छेद की अवधि विशेषणतावच्छेदक के ज्ञान से जन्य है । (तथाच ''इदं तद् व्यावृत्तम्'' इत्याकारक सविकल्पविशेष में अव्याप्ति हो जायेगी, क्योंकि उक्तप्रत्यक्ष स्वविषयीभूत यत्किञ्चित् व्यवच्छेद से अतिरिक्त विशेषणतावच्छेदक प्रकारक जन्यज्ञान से जन्य है । अतः विषयान्तरज्ञान से अजन्य नहीं है । एवं विशेषणतावच्छेदकप्रकारक ज्ञान (विशेषण ज्ञान) से जन्य होने से विशिष्ट प्रत्यक्षमात्र में भी अव्याप्ति होगी ।)

प्रश्न – स्वविषय के अनन्तर्गत अर्थज्ञान से अजन्य ज्ञान ही प्रत्यक्ष है । (तथाच ''पूर्वोक्त विकल्पद्वय में द्वितीयविकल्प अर्थात् स्वविषयीभूतयावत्प्रतियोगिक अतिरिक्तत्व विवक्षित है ।'' यह स्थिर होता है) और इस प्रकार लक्षण करने पर प्रतियोगिज्ञान से जन्य

इव प्रत्यभिज्ञायां प्रत्यक्षे विषयत्वोपगमात्, अप्रतियोगित्वेन विशेषणाद्वेति चेन्न: स्वपदेनैव क्षारीकृतत्वात् । कार्यव्यक्ताव-जन्यताया दुरवधारणत्वात्तज्जातीये तज्जातीयव्यभिचारशास्त्रग्रहणे च कार्यैकजात्ये पूर्ववत्पतनमिति ।

शारदा

प्रतियोगित्वेन प्रत्यक्षविषयत्वासम्भवमाशङ्क्योपनीतभानाभिप्रायेणाह तत्ताया इति । **प्रत्यक्षविशेष्यस्य विद्यमानत्वनियमो नतु विशेषणस्यापि** । अप्रतियोगित्वेनेति । **प्रतियोगिभिन्नत्वेनेत्यर्थ:** । **स्वविषयानन्तर्गतार्थस्येति शेष:** । **इदमभ्युपगममात्रम्, अभावत्वेनाभावबोधस्य प्रतियोगिविषयकत्वनियते:, सामान्याभावबोधस्य सकलप्रतियोगिविषयकत्वानभ्युपगन्तृनव्यमते तु तत्कारणभूते विशेषणतावच्छेदकप्रकार-कज्ञानेऽपि न सकलप्रतियोगिविषयकत्वमुपगम्यत इति । स्वपदेनैव = स्वत्वघटिततयैव। क्षारीकृतत्वात् = दूषितत्वात्** । **स्वत्वस्यानुगमे स्वविषयानन्तर्गतार्थाप्रसिद्धेरननुगमस्यैव वक्तव्यत्वादिति न लक्ष्यमात्रसाधारण्यनिर्वाह इति भाव:** । कार्यव्यक्ताविति । **स्वविषयातिरिक्त-विषयकज्ञानाव्यवहितोत्तरजातप्रत्यक्षविशेषे इत्यर्थ:** । **अजन्यताया: = स्वविषया-तिरिक्तविषयकज्ञानाजन्यताया:** । दुरवधारणत्वात् । **स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञानस्य प्रत्यक्षविशेषनियताव्यवहितप्राग्वर्तितया तत्कारणत्वसम्भवेन तादृशप्रत्यक्षेऽव्याप्ति: स्यादिति**

भारती

अभाव एवं संयोग आदि सप्रतियोगिक पदार्थ विषयक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति नहीं है क्योंकि जैसे प्रत्यभिज्ञा में विषय के अन्तर्गततया तत्ता का भी अलौकिक सन्निकर्ष से भान होता है वैसे ही प्रतियोगिविशिष्ट अर्थ (भेद) का निरूपक प्रतियोगि भी अभावादि विषयक प्रत्यक्ष में भासित होता है । अत: प्रतियोगि स्वविषय के अनन्तर्गत नहीं है । अथवा स्वविषय के अनन्तर्गत (बहिर्भूत) अर्थ में प्रतियोगिभिन्नत्व विशेषण देने से भेदात्मकप्रतियोगिविशिष्ट अर्थ विषयक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति दोष नहीं होगा ।

समाधान – उक्तलक्षण स्वत्वघटित होने से ही दूषित हो जाता है । (स्वत्व के अनुगत होने पर स्वशब्द से ज्ञानमात्र का संग्रह होने से स्वविषय के अनन्तर्गत अर्थ ही अप्रसिद्ध हो जायेगा, इसलिए स्वत्व को अननुगत ही मानना होगा तथा च स्वत्वघटित उस लक्षण से लक्ष्यमात्र का संग्रह नहीं हो सकेगा, अर्थात् लक्षणघटक स्वशब्द से घटज्ञान लेकर घटप्रत्यक्ष में लक्षण समन्वय होने पर भी पटप्रत्यक्ष में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण अव्याप्त हो जायेगा ।)

किञ्च कार्यव्यक्ति अर्थात् स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञान के अव्यवहितोत्तर जायमान प्रत्यक्षविशेष में स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञान की अजन्यता का निर्धारण (निश्चय) नहीं कर सकते, क्योंकि स्वविषयातिरिक्ताविषयकज्ञानके उक्त प्रत्यक्षविशेष से नियत अव्यवहित पूर्ववर्ति होने से उक्त प्रत्यक्ष विशेष के प्रति वह (स्वविषयातिरिक्त विषयक ज्ञान) कारण हो सकता है । तथाच उक्तप्रत्यक्षविशेष में उक्त प्रत्यक्ष लक्षण (स्वविषयानन्तर्गतार्थज्ञानाजन्यधीत्व) की अव्याप्ति है।

(यदि कहें कि कारणता में अनन्यथासिद्धत्व भी प्रविष्ट है । प्रकृत में स्वविषयातिरिक्ता-

स्वकालावच्छिन्नार्थबोधत्वं साक्षात्त्वमित्यपि न स्वार्थाविवेच-

शारदा

भावः । नन्वनन्यथासिद्धत्वमपि कारणताघटकमिति कथमेवम्, नचात्र तदेव नास्तीति कथं ज्ञेयम्; उक्तप्रत्यक्षविशेषजातीयव्यक्त्यन्तरस्य स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञानं विनैवोत्पत्तिदर्शनेन तस्य प्रत्यक्षत्वावच्छेदेनावश्यक्लृप्तैरन्यथासिद्धेरावश्यकत्वादित्याशङ्क्याह तज्जातीये इति। **उक्तप्रत्यक्षविशेषसजातीये इत्यर्थः । साजात्यञ्चेन्द्रियजन्यज्ञानत्वसाक्षात्कारित्वादिना । तज्जातीयव्यभिचारशस्त्रग्रहणे = स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञानत्वावच्छिन्नव्यभिचार एव कारणताग्रहविघटकतया शस्त्रं तद्ग्रहणे, तत्प्रतीत्योक्तप्रत्यक्षविशेषस्य निरुक्तज्ञानाजन्यत्वोपपादने इति यावत् । कार्यैकजात्ये पतनं = प्रत्यक्षत्वसमनियतधर्मान्तरस्य निरूपणप्रसङ्गः, अन्यथा साजात्यग्रहे तज्जातीये व्यभिचारग्रहानुपपत्तेरिति भावः । इदमुपलक्षणम्–विशिष्टस्यातिरिक्तत्वेन निर्विकल्पकस्य च तदविषयकत्वेन तज्जन्यज्ञानासङ्ग्रहः, अत्यन्तातिरेकनिवेशस्त्वसम्भवप्रसञ्जकः, अन्ततः प्रमेयत्वादिनैव सर्वानतिरेकात्। नित्यसर्वविषयकालौकिकप्रत्यक्षासङ्ग्रहश्चेति जातिघटितं लक्षणमवश्यमादरणीयमिति।**

स्वकालेति। **वस्तुगत्या स्वध्वंसप्रागभावानधिकरणीभूतो यः कालस्तद्वृत्तित्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानत्वं जन्यसप्रकारकप्रत्यक्षत्वमित्यर्थः । ज्ञाने स्वविषयत्वस्याप्रामाणिकत्वेन वस्तुगत्येति । स्थूलकालोपाधेः प्रत्यक्षविषयत्वानैयत्येन भूतान्तम् । तादृशकालवृत्तिविशेष्यकत्वस्यानुमित्यादावपि सम्भवेन विशेष्यतावच्छेदकतया तादृशकालवृत्तित्वनिवेशः । उपनीतस्यातीतादेरपि भानसम्भवेन विशेष्यतापर्यन्तानुधावनम्,**

राजहंसः

असम्भवप्रसञ्जक इति । ननु नायं दोषः, अतिरिक्तत्वमपास्याघटकत्वस्यैव निवेशनीयत्वादिति चेत्तत्राह **नित्येति** । प्रत्यक्षेत्यनेनान्वयः । ईश्वरे स्वीकृतस्य नित्यप्रत्यक्षस्य सर्वविषयकत्वेन तद्विषयाघटकाप्रसिद्धेः । अस्मदादेस्तु सर्वविषयकं प्रत्यक्षमलौकिकमेव सम्भवतीति भावेनालौकिकेति। अत्र लक्ष्यस्य सङ्कोचेऽपि तादृशजन्यत्वाभावः कं धर्मं धर्मितावच्छेदकीकृत्यावगन्तव्य इति जातिरादर्तव्येति द्रष्टव्यं पूर्वलक्षणवत् ।

भारती

विषयकज्ञान के विना भी उक्तप्रत्यक्षविशेष जातीय व्यक्त्यन्तर (प्रत्यक्षविशेषान्तर की उत्पत्ति देखी जाति है अतः वह (स्वविषयातिरिक्त विषयकज्ञान) प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न (प्रत्यक्षमात्र) के प्रति अन्यथासिद्ध होने से कारण ही नहीं है। तथाच उक्त प्रत्यक्षविशेष में भी उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति नहीं है । तो यह नहीं कह सकते हैं क्योंकि) उक्तप्रत्यक्षविशेष के सजातीयप्रत्यक्षविशेष में (अर्थात् स्वविषयातिरिक्तविषयक ज्ञान के अभाव में ही उत्पन्न होने वाले प्रत्यक्षविशेष में) स्वविषयातिरिक्तविषयक ज्ञान का व्यभिचार (कारणकत्वाभाव) का निश्चय होने पर ही स्वविषयातिरिक्तविषयक ज्ञान में अन्यथासिद्धत्व का निश्चय होगा और उक्तव्यभिचार ग्रह अर्थात् उक्तप्रत्यक्षविशेष में उक्त ज्ञान (स्वविषयातिरिक्तविषयकज्ञान) के अजन्यत्व के उपपादन में कार्यतावच्छेदक धर्म (प्रत्यक्षत्वसमनियतधर्मान्तर) से साजात्यग्रह अपेक्षित है । अन्यथा (साजात्यग्रह के अभाव में) तज्जातीय (प्रत्यक्षत्वजातीय

नात् । कथञ्चानुमानादिव्यवच्छेदः ? तत्र व्याप्त्यादिप्रविष्टकाल-

शारदा

उपनीतं तु विशेषणतयैव भासते, सर्वांशे चोपनीतभाने न मानम् । अनागत-विषयकानुमित्याद्यधीनानगतविषयकस्मृतौ न स्वाधिकरणकालावच्छिन्नतया विशेष्यभानम्, अन्यादृशस्मृतौ तु पूर्वकालावच्छिन्नस्यैव विशेष्यस्य भानमिति नातिप्रसङ्गः। नित्यप्रत्यक्षस्य ध्वंसाद्यप्रसिद्धेर्लक्ष्ये जन्यत्वस्य निवेशः, अलौकिकं तु प्रत्यक्षमतीता-दिविशेष्यकमपि यत्किञ्चिद्विशेष्यांशे सम्भवल्लौकिकताकमिति तस्यापि सङ्ग्रहः । स्वार्थेति। **स्वत्वस्यानुगतस्य निर्वक्तुमशक्यत्वादित्यर्थः । निवेदिततत्त्वमेतत् । तथाच प्रत्यक्षविशेषनिवेशे प्रत्यक्षान्तराव्याप्तिरिति । स्वत्वानुगमाभ्युपगमवादेनाह** कथमिति । **''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते'' इत्यौत्सर्गिकवादेनानुमित्यादेरपि कदाचित्स्वा-धिकरणक्षणावच्छिन्नार्थविषयकत्वसम्भवेन तत्रातिव्याप्तिरिति भावः। अतिव्याप्तिं परिहरन्नाह** तत्रेति । **अनुमित्यादावित्यर्थः । यत्र यदा धूमस्तत्र तदा वह्निरितिवाक्यप्रदर्श्या व्याप्तिः कालघटिता, आदिना कालगर्भव्याप्त्यग्रहेऽपि तत्तद्धूमकालस्य पक्षतावच्छेदकत्वे 'उद्देश्यता-वच्छेदककालावच्छिन्नत्वं विधेयगतत्वेन भासते' इत्युत्सर्गेण तत्तद्धूमकालिक-वह्निविषयकत्वस्यानुमितावभ्युपगमेन पक्षतावच्छेदकं वर्तमानत्वादिभानप्रयोजकतिबादिशक्तिश्च गृह्यते । कालनियतार्थत्वम् = कालावच्छिन्नविशेष्यताकत्वम् । विधेयतायाः प्रकारत्वानियतत्वेन**

भारती

प्रत्यक्षविशेष) में व्यभिचार ग्रह ही नहीं हो सकता । तथाच साजात्य ग्रह इन्द्रियजन्यज्ञानत्व प्रत्यक्षत्व साक्षात्कारित्वादि के द्वारा ही कहना होगा और साक्षात्कारित्वादि का अभी निश्चय ही नहीं है । (यहाँ कारणता ग्रह का विघटक होने से व्यभिचारग्रह को ''शस्त्र'' कहा गया है ।

प्रश्न – स्व (ज्ञान) काल से अवच्छिन्न अर्थविषयक ज्ञान ही प्रत्यक्ष है । (अर्थात् वस्तुस्थिति में स्व (ज्ञान) ध्वंसप्रागभाव का अनधिकरणीभूत जो काल तद्वृत्तित्वावच्छिन्नविशेष्यताक ज्ञान ही जन्यसप्रकारक प्रत्यक्ष है ।)

समाधान – यह भी लक्षण युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि इसमें अनुगत स्वार्थ (स्वत्व) का निर्वचन नहीं कर सकते । अर्थात् यदि उक्त स्वशब्द से प्रत्यक्षविशेष (घटप्रत्यक्ष) का ग्रहण करें तो घटप्रत्यक्ष में ही लक्षण समन्वय होने से प्रत्यक्षविशेषान्तर (पटादिप्रत्यक्ष) में अव्याप्ति हो जायेगी, और यदि स्वत्व को अनुगत मानें तो स्वशब्द से अनुमिति भी ली जा सकती है ऐसी स्थिति में अनुमिति में अतिव्याप्ति हो जायेगी । तथाच उक्तप्रत्यक्ष लक्षण से अनुमिति का व्यवच्छेद (व्यावृत्ति) कैसे होगा । अनुमिति भी कदाचित् स्वकालावच्छिन्नार्थविषयक होती है।

प्रश्न – ''यत्र यदा धूमस्तत्र तदा वह्नि'' इत्यादि कालघटितव्याप्तिग्रह होने पर अथवा काल अघटित व्याप्तिग्रह होने पर भी ''उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्वं विधेयगतत्वेन भासते'' इस नियम के अनुसार – तत्तद्धूमकाल का पक्षतावच्छेदक में प्रवेश मानकर तत्तद्धूमकालिक वह्निविषयकत्व अनुमिति में मानेंगे । तथाच तादृश अनुमिति के अतीतादिकालघटित-व्याप्त्यादिज्ञानजन्य होने से स्वाधिकरणक्षणावच्छिन्नअर्थविषयक न होने से उसमें उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है ।

नियतार्थत्वम्, यत्रापि चन्द्रोदयसमुद्रवृद्ध्यादौ स्वकालार्थत्वं तत्रापि व्याप्तिप्रविष्टतैव तादृशत्वस्य प्रयोजिकेति चेन्न, कथमप्यस्तु, तथापि स्वकालावच्छिन्नार्थत्वस्य सम्भवात् । नच यज्जातीयमेवमेवेति विशेषः; साजात्यस्य वैलक्षण्यस्याग्रतः सिद्धो किमनेन । नच तदपीति

शारदा

साध्यविशेष्यकत्वस्याप्यनुमितौ सम्भव इत्यभिप्रायः । एवञ्चातीतादिकालघटितव्याप्त्यादिज्ञानजन्यानुमित्यादेः स्वाधिकरणक्षणावच्छिन्नार्थविषयकत्वासम्भवेन तत्र तावन्नातिव्याप्तिः, यत्र चानुमादौ स्वाधिकरणक्षणावच्छिन्नार्थविषयकत्वं तत्रापि सा नेत्याह यत्रापि चन्द्रेत्यादि । **यस्मिन् कालविशेषादिपक्षकचन्द्रोदयादिलिङ्गकसमुद्रवृद्ध्यादिसाध्यकानुमित्यादावित्यर्थः । स्वकालार्थत्वं = स्वाधिकरणक्षण-वच्छिन्नार्थविषयकत्वम् ।** व्याप्तीति। **व्याप्त्यादीत्यर्थः । तादृशत्वस्य = उक्तार्थविषयकत्वस्य** प्रयोजिकेति । **नत्वनुमितित्वादिकं प्रयोजकम्, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजज्ञानस्य तथात्वे तु प्रत्यक्षत्वमेव, तथाच यज्जात्यवच्छेदेन स्वध्वंसप्रागभावानधिकरणकालवृत्तित्वावच्छिन्नयत्किञ्चिद्विशेष्यताकत्वं तज्जातिमत्त्वमेव लक्षणं विवक्षणीयमित्यभिप्रायः । अभिप्रायस्यास्याग्रे एवोद्घाटनीयत्वात्तु यथाश्रुते एवातिव्याप्तिं स्थापयति** कथमपीति। **अनुमादेस्तादृशविशेष्यताकत्वमिति शेषः ।** सम्भवादिति । **अनुमादावित्यादिः । निरुक्ताभिप्रायमुद्घाट्यापि निराचष्टे** नचेति । **एवमेव = उक्तविशेष्यताकमेव। वैलक्षण्यस्य = अनुमित्यादिनिरूपितवृत्तित्वाभाववतः । ननु साक्षात्कारित्वस्यैवोक्तरूपेण लक्षणत्वं स्वरूपेण च लक्ष्यतावच्छेदकत्वमित्यत आह** नचेति । **तत् = साक्षात्कारित्वरूपं साजात्यम् । अनुमित्यादावतिव्याप्तिवारणाय व्याप्त्यादिज्ञानाजन्यत्वे सति निरुक्तविशेष्यताक ज्ञानत्वमेव विवक्षणीयमिति न साजात्यखण्डनावसर इत्याशङ्कते** व्याप्त्यादीति । **ज्ञानाकरणकत्वं**

भारती

किञ्च जहाँ पर – कालविशेषः समुद्रवृद्ध्यादिमान् चन्द्रोदयवत्त्वात् इत्यादि अनुमिति स्वाधिकरणक्षणावच्छिन्नार्थविषयक है, वहाँ भी उक्त अनुमितिनिष्ठ स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व के प्रति व्याप्तिनिष्ठ स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व ही प्रयोजक है न कि अनुमितित्व । (अर्थात् उक्तानुमिति के करणभूतव्याप्तिज्ञान में स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व है इसलिए तादृशअनुमिति में भी स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व है, स्वतः अनुमिति में नहीं है और इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य ज्ञान के स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व में तो प्रत्यक्षत्व ही प्रयोजक है । तथाच यज्जात्यवच्छेदेन स्वकालावच्छिन्नार्थविशेष्यताकत्व हो तज्जातिमत्त्व ही प्रत्यक्षत्व है इस प्रकार विवक्षा करने पर उक्त अनुमिति में प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति नहीं है ।

समाधान – अनुमिति में स्वकालावच्छिन्नार्थविशेष्यताकत्व भले ही किसी भी प्रकार आता हो किन्तु उक्त अनुमिति में स्वकालावच्छिन्नार्थविशेष्यताकत्व तो है ही, अतः प्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति होगी ।

यदि कहें कि यज्जात्यवच्छेदेन स्वकालावच्छिन्नार्थविषयकत्व है तज्जात्यवच्छेदेन ही प्रत्यक्षत्व है ऐसा कहने से अतिव्याप्ति न होगी, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि अनुमित्यादि से विलक्षण प्रत्यक्ष में साजात्य का ग्रह (ज्ञान) होने पर ही उक्त जातिघटितलक्षण किया जा

वक्ष्यते । व्याप्त्यादिकमन्तरेणेति चेन्न, तस्यैव समर्थत्वेन स्वकालकथावैयर्थ्यात् । यथाच न तदपि तथा वक्ष्यते । यत्तु कश्चिदाह – "स्वप्रकाशनिषेधात्स्वकालावच्छिन्नार्थप्रकाश-

शारदा

तु सत्यन्तार्थ इति व्याप्तिज्ञानानुव्यवसाये नाव्याप्तिः, व्याप्त्यादिनिवेशस्तु निष्फल इत्यवधेयम्, एवञ्चोत्तरग्रन्थसाङ्गत्यमपि । वस्तुतस्तु लक्ष्यतावच्छेदकताया साक्षात्कारित्वजातावेव वक्तव्यतया तत्खण्डनमत्रापि सप्रसरमेवेति। तस्येति। **ज्ञानाकरणकज्ञानत्वस्येत्यर्थः । समर्थत्वेन = इतरव्यावृत्तिप्रमित्याद्यौपयिकत्वसम्भवेन।** स्वकालकथेति । **निरुक्तविशेष्यताकत्वनिवेशेत्यर्थः। स्मृतेर्ज्ञानकरणकत्वेनैव व्यावृत्तिसम्भवेन तदर्थं तन्निवेशसाफल्यानुपपत्तेः प्रत्युत प्रत्यक्षमात्रासङ्ग्रहापत्तेरिति भावः । वक्ष्यते इति यथाश्रुतमभिप्रेत्य । ज्ञानाकरणकज्ञानत्वं तु निरस्तमेव पूर्वम् । व्याप्तिप्रभृतिज्ञाना-जन्यत्वघटितस्यापि वक्ष्यमाणलक्षणस्य तादृशज्ञानत्वे एव पर्यवसानस्य वक्ष्यमाणत्वाच्चेति। स्वप्रकाशनिषेधात् = ज्ञाने स्वविषयकत्वस्याभावात्, अन्यथा ज्ञाने स्वसन्निकर्ष-जत्वस्य, 'अयं घट' इत्यनुभवापलापस्य चापत्तेरिति भावः। उक्तलक्षणे स्वीयत्वेन कालभानं विवक्षास्पदमित्यभिमानः । तं निराकरोति** वस्तुत इति । सर्वेति **निर्वचनीयवादिसर्वपरम्, एवञ्च दूषणस्योक्तस्योद्भावकोऽपि निर्वचनीयवादीति न तेन वर्तमानत्वनिर्वचनभङ्गेनैव प्रत्यवस्थेयमिति भावः । वर्तमानत्वं स्वध्वंसप्रागभावानधि-**

राजहंसः

प्रत्युत प्रत्यक्षमात्रासङ्ग्रहापत्तेरिति । ईश्वरीयप्रत्यक्षस्य ध्वंसाद्यप्रसिद्ध्या निर्विकल्पकस्य च विशेष्यताया अप्रसिद्ध्या स्वपदेनोपादानानुपपत्तेः, अतएव जन्यसप्रकारकप्रत्यक्षत्वमेव लक्ष्यतावच्छेदकतया प्रागभ्यधायि ।

भारती

सकता है, उसके विना नहीं, और साजात्य प्रत्यक्षत्वादि से कहना होगा, ऐसी स्थिति में लक्षणनिर्माण के पूर्व ही यदि प्रत्यक्षत्व का निश्चय हो गया तो उक्तलक्षण निर्माण व्यर्थ हो जायेगा ।

यदि कहें कि साक्षात्कारित्व (प्रत्यक्षत्व) रूप साजात्य ही उक्तरूप से लक्षण है और वही स्वरूपेण लक्ष्यतावच्छेदक भी हो जायेगा, तथाच लक्षण व्यर्थ नहीं है तो यह कहना युक्तिविरुद्ध है यह आगे कहेंगे ।

यदि कहें कि व्याप्त्यादि के विना अर्थात् व्याप्त्यादि ज्ञानाजन्यत्वे सति निरुक्तविशेष्यताक ज्ञानत्व ऐसी विवक्षा करने पर अनुमिति में अतिव्याप्ति न होगी, तो यह कहना सम्भव नहीं है । कारण कि ऐसा कहने पर – व्याप्तिज्ञान के अनुव्यवसाय में अव्याप्तिवारणार्थ "व्याप्त्यादि-ज्ञानाजन्यत्वेसति" का – ज्ञानाकरणकज्ञानत्व ही अर्थ करना पड़ेगा, उसमें व्याप्त्यादि का निवेश आवश्यक नहीं है । तथाच "ज्ञानाकरणकज्ञानत्व" इस सत्यन्त दल से इतरव्यावृत्ति एवं प्रत्यक्षत्वादि व्यवहाररूप फल के निष्पन्न होने से उक्तलक्षणघटकतया – "स्वकालावच्छिन्नार्थविशेष्यताकत्व" कहना व्यर्थ है ।

किन्तु ज्ञानाकरणकज्ञानत्व भी प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं मान सकते यह पूर्व में कह चुके हैं एवं आगे भी व्याप्त्यादि ज्ञानाजन्यत्वघटित लक्षण खण्डन के द्वारा खण्डन करेंगे ।

त्वासम्भवः'' इति; तदयुक्तम्, वस्तुतो यः स्वकालस्तस्य विवक्षितत्वात्, वर्तमानप्रकाशस्तथेति निरुक्तिपर्यवसानात्, वर्तमानार्थस्य च सर्वनिर्वचनीयत्वात्, तथा चोक्तम्–''सम्बद्धं वर्तमानञ्च गृह्यते चक्षुरादिना'' । तस्मादस्मदुक्तमेव युक्तम् ।

षोढासन्निकर्षेतराप्रयुक्तविषयनियमं ज्ञानं तथेति चेन्न;

शारदा

करणकालावच्छिन्नत्वं वा कालिकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितावच्छेदककालावच्छिन्नत्वं वा वर्तते इति प्रतीतिसाक्षिककालविशेषानुयोगिकसम्बन्धप्रतियोगित्वं वेति भावः । अलौकिकसन्निकर्षेण पारम्परिकसम्बन्धान्तरेण च सम्बद्धत्वव्यावृत्तये वर्तमानमिति । **चक्षुरादिना गृह्यते = चक्षुराद्यधीनलौकिकप्रत्यक्षविशेष्यताश्रयः। विशिष्टबुद्धेर्विशेषणज्ञानजन्यत्वमते सुखाद्युत्पत्तिक्षणे सुखादिज्ञानाभावे द्वितीयक्षणे सुखादिप्रकारकप्रत्यक्षमसम्भवि, तृतीयक्षणे तु सुखादेरवर्तमानत्वेनैव न तत्स्यादित्यतो विशेष्यतानिवेशः । प्राक्क्षणवर्तमानतापरं वर्तमानपदमित्यपि केचित् । अलौकिकप्रत्यक्षानभ्युपगन्तृमते तु गृह्यत इत्यपि यथाश्रुतमेव सम्यक् ।**

षोढेति । **इन्द्रियसन्निकर्षेत्यनभिधाय षोढासन्निकर्षेत्यभिधानं तु सन्निकर्षत्वस्य षोढासाधारणस्याभावेन विशिष्य सन्निकर्षनिवेशं सूचयितुम् । तथाच संयोगादीतराप्रयोज्यविषयताकत्वमर्थः, अनुमितिशाब्दादिविषयता परामर्शपदार्थोपस्थित्यादिप्रयुक्ता, स्मृतिसंस्कारेच्छादिविषयता तु संस्कारानुभवेष्टसाधनताज्ञानादिप्रयुक्ता । अभावद्वयोपादानं तु नित्यप्रत्यक्षसङ्ग्रहाय । सुरभि चन्दनमित्यादेरपि नासङ्ग्रहः, सामान्यज्ञानप्रत्यासत्त्योर्विशेषणतान्तर्भावाभ्युपगमात् । नियममित्यन्तं बहुव्रीहिः । तथा = साक्षात्कारि ।** तदसम्भवादिति। **रजतं साक्षात्करोमीत्यादिप्रतीतिसिद्धाया विपरीतज्ञानीयविषयताया**

भारती

किसी विद्वान् ने इस लक्षण में यह दोष दिया था कि – ज्ञान के स्वप्रकाश (स्वविषयकत्व रूप स्वप्रकाशत्व के) न होने से उक्तलक्षण में स्वकालावच्छिन्नार्थ प्रकाश के सम्भव न होने से अर्थात् उक्तलक्षण में स्वीयत्वेन काल का भान विवादास्पद होने से उक्तलक्षण असम्भव ग्रस्त है । तो यह उनका कहना युक्तियुक्त नहीं । क्योंकि वस्तुतः जो स्वकाल है वहीं यहाँ विवक्षित है न कि ज्ञानविषयीभूत स्वकाल और वह स्वकाल शब्द वर्तमान प्रकाश का वाचक है जिस वर्तमान अर्थ को सभी निर्वचनवादी तार्किक आदि स्वीकार करते हैं । तथाच कहा है – ''चक्षुरादि के द्वारा वर्तमान एवं सम्बद्ध का ज्ञान होता है ।'' तस्मात् हमारे द्वारा उपस्थापित दोष ही उक्तलक्षण के खण्डन के लिए उपयुक्त है ।

प्रश्न – संयोगादिषट्सन्निकर्ष से इतर से अप्रयोज्य है विषयता जिस की ऐसा ज्ञान ही साक्षात्कारी (प्रत्यक्ष) ज्ञान है । (अनुमित्यादि की विषयता संयोगादि से इतर परामर्शादि से प्रयोज्य है अतः अनुमित्यादि में अतिव्याप्ति नहीं है और अभावद्वय के उपादान से नित्यप्रत्यक्ष में अव्याप्ति भी नहीं है ।)

समाधान – रजतं साक्षात्करोमि इत्यादिप्रतीतिसिद्ध विपरीत अर्थात् इदंरजतम् इत्याकारकज्ञानीयविषयता के दोष (संयोगादिषट्सन्निकर्ष से इतर) प्रयोज्य होने से दोषवशात्

दोषवशजातसाक्षाद्बोधे तदसम्भवात् । प्रमासाक्षात्कारस्तथेति चेन्न; साक्षात्त्वेन प्रमेतरयोरविशिष्टतया तस्य साधारणस्यैव निर्वक्तव्यत्वात्, अनिष्टभ्रमबुद्धिमते षोढासन्निकर्षस्य प्रत्येकमिलितविकल्पानुपपत्तेः ।

शारदा

नालौकिकसन्निकर्षप्रयोज्यत्वसम्भवः, अन्यथा सौरभं पश्यामीति प्रतीतेरप्यापत्तेः, अपि तु दोषप्रयोज्यत्वमेवेत्यव्याप्तिरित्यर्थः । यथार्थसाक्षात्कारत्वमेवोक्तलक्षणलक्ष्यतावच्छेदकमिति न भ्रमानुपग्रहो दोष इत्याशङ्कते प्रमेति । **प्रमेतरयोः = प्रत्यक्षात्मकप्रमाविपरीतज्ञानयोः ।** निर्वक्तव्यत्वादिति। **ननु भ्रमानभ्युपगमे नेदं दूषणम्, किञ्च संयोगादीतराप्रयोज्ययत्किञ्चिद्विषयताकत्वं विवक्षितम्, नतु तादृशयावद्विषयताकत्वमिति न विपरीतप्रत्यक्षासङ्ग्रहः, एवञ्च ज्ञानसामान्यप्रत्यासत्तिद्वयस्य विशेषणतानन्तर्भावपक्षेऽपि सुरभिचन्दनमित्यादेर्नासङ्ग्रहः, योगजधर्माधीनप्रत्यक्षम्याप्यात्मादिनिष्ठविषयतायाः संयोगादीतराप्रयोज्यत्वसम्भवेन न तत्राव्याप्तिः, प्रत्यक्षपक्षकानुमित्यादिविषयताया उद्देश्यताख्यायाः संयोगादिप्रयोज्यत्वे तु स्वीकार्यं तत्र प्रत्यक्षत्वमपि, पर्वतःसाक्षात्कृतोऽग्निरनुमित इत्यनुभवानुरोधात्साङ्कर्यांशिकत्व योर्जात्योरभ्युपगमे क्षतिविरहात्। यदि तु साङ्कर्यांशिकत्वयोरगतिकगतित्वेन पर्वतः साक्षात्कृत इत्यनुभवस्य च परामर्शमादायैवोपपादनसम्भवेन पर्वतसाक्षात्काराग्न्यनुमित्योर्यौगपद्यानुभवस्य च स्थूलकालविषयकतयैवोपपन्नत्वेन पर्वतमनुमिनोमीत्यनुव्यवसायापत्तेश्च विधेयताख्यविषयताया एव तादृशप्रतीतिविषयतां परिकल्प्य पर्वते तदभावेनैव वारणसम्भवेन न पर्वतांशेऽनुमितेः प्रत्यक्षत्वमित्युच्यते तदाऽनुमानिरूपितपर्वतविषयतायां संयोगादिप्रयोज्यताया अप्यनङ्गीकार्यत्वेन नातिव्याप्तिशङ्कापीत्यस्वरसादाह** अनिष्टेति । **अनिष्टा भ्रमात्मिका बुद्धिर्यस्याख्यातिवादिनः, तन्मते इत्यर्थः । भ्रमपदं व्यधिकरणप्रकारकत्वमात्रपरं तेन न बुद्धिपदस्य वैयर्थ्यम्, तृणोलपन्यायेन वा । इदं यत्किञ्चिद्विषयतानिवेशपक्षस्याप्युपलक्षणम् । प्रभाकरमतेऽभावस्यातिरिक्तस्यानभ्युपगमेन विशेषणतायाः, गुणे जात्यनङ्गीकारेण च संयुक्तसमवेतसमवायस्य समवेतसमवायस्य च सन्निकर्षस्यानभ्युपेयत्वेन संयोगः संयुक्तसमवायः समवायश्चेतित्रिविधसन्निकर्षस्य प्रकरणपञ्चिकोक्तरीत्या स्वीकारेऽपि** षोढासन्निकर्षस्ये**त्यभिधानं**

भारती

जात इदं रजतम् इत्याकारक साक्षात्कारात्मक ज्ञान में उक्तप्रत्यक्षलक्षण अव्याप्त हो जायेगा ।

यदि कहें कि यथार्थसाक्षात्कार ही उक्तलक्षण का लक्ष्य है, अतः भ्रमात्मक साक्षात्कार में लक्षण की अव्याप्ति (न जाना) दोष नहीं है, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षात्मक प्रमा एवं प्रत्यक्षभ्रम दोनों में साक्षात्त्व धर्म के समान होने से उभय (प्रत्यक्षप्रमा एवं प्रत्यक्षभ्रम) साधारण ही प्रत्यक्ष का लक्षण करना होगा ।

एवं प्रत्यक्षभ्रम के अस्वीकर्ता अख्यातिवादि प्रभाकर के मत में उक्त दोष (प्रत्यक्षभ्रम में अव्याप्ति) न होने पर भी षट्सन्निकर्ष के प्रत्येक एवं मिलित कारणता के विकल्प से उक्त प्रत्यक्षलक्षण अनुपपन्न ही है ।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उक्तलक्षण में ''षोढासन्निकर्षेतर'' शब्द से क्या संयोगादिषट् सन्निकर्षों में प्रत्येक से इतर (भेद) अर्थात् संयोगत्वसमवायत्वादि यत्किञ्चधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिक-

शारदा

प्रकृतलक्षणमनुसृत्यैवेति द्रष्टव्यम् । प्रत्येकेति । **षोढासन्निकर्षेतरेत्यत्र संयोगत्वसमवायत्वादियत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदो वा, संयोगत्वादितत्तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसमुदायो वा, संयोगादिगतसमुदायत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदो वा विवक्षितः, आद्ये संयोगादीतरसमवायादि प्रयुक्तविषयताकशब्दादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिः, द्वितीये तु तादृशभेदसमुदायाधिकरणं यत्किञ्चिद्वा, यावद्वा, परामर्शपदार्थोपस्थित्यादिकं परिगणितं वा, आद्ये परामर्शाद्यप्रयोज्यविषयताकशब्दादावतिव्याप्तिः, द्वितीये त्वसर्वज्ञदुर्ग्रहत्वम्, विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षं प्रति ग्राह्यव्याप्यवत्तानिश्चयस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणत्वमते तत्राव्याप्तिश्च। अतएव न तृतीयोऽपि, षोढासन्निकर्षेतरत्वनिवेशवैयर्थ्याच्च । किञ्चात्रापि परामर्शोपस्थित्यादिप्रत्येकाप्रयोज्यत्वं वा समुदायाप्रयोज्यत्वं वा परामर्शादिनिरूपितत्तत्प्रयोज्यत्वाभावकूटो वा, आद्ये कथितातिव्याप्तिः, द्वितीयेऽपि न कस्या अपि विषयतायाः समुदायप्रयोज्यत्वमित्यतिव्याप्तिः, तृतीयेऽसर्वज्ञदुर्ग्रहत्वम्, परामर्शादि साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकव्याप्त्यादिघटितत्वेनोक्ताभावानामानन्त्यात् । एतेन षोढासन्निकर्षेतरप्रयोज्यत्वसामान्याभावविवक्षा पराकृता, षोढासन्निकर्षेतरस्य यावत्त्वेनाविवक्षणे तादृशसामान्याभावस्यातिप्रसक्तत्वात्, तथा विवक्षणे तूक्तदोषावकाशात् । तृतीये तु घटो घटपटोभयं नेतिप्रतीतेर्व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यैकदेशे स्वीकार्यत्वेन संयोगादिसमुदायत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य प्रत्येकं संयोगादौ सद्भावेनासम्भवापत्तेः, नहि समुदायप्रयोज्या काचिद्विषयता येन तत्र समन्वयः स्यादिति भावः ।**

साक्षाद्धित्वं लक्ष्यतावच्छेदकम् । स्वरूपधीरित्यस्य विवरणं स्वेनेति । **स्वविशेष्यतासमानाधिकरण प्रकारकानुभवत्वमित्यर्थः** । व्यापनादिति । **साक्षात्कारिभ्रमे विशेष्यवृत्तेरपि पुरोवर्तित्वादेः प्रकारतया तत्राव्याप्तिर्नोदभावि। स्वरूपधीत्वमन्यथानिर्वक्तुमाशङ्कते**

राजहंसः

तादृशसामान्याभावस्यातिप्रसक्तत्वादिति । स्मृत्यन्यत्वनिराकरणशारदोदितमत्रानुसन्धातव्यम्।

भारती

भेद) विवक्षित है । या – संयोगत्वादि तत्तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद समुदाय विवक्षित है अथवा संयोगादिसमुदायत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद विवक्षित है ।

यदि प्रथमपक्ष मानें तो संयोगादि से इतर समवायादिप्रयुक्त विषयताक शब्दादि प्रत्यक्ष में उक्त लक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

द्वितीय कल्प में भी तादृशभेदसमुदायाधिकरण क्या यत्किञ्चित् विवक्षित है, या यावद्अधिकरण अथवा परामर्शपदार्थोपस्थिति आदि परिगणित ही अधिकरण विवक्षित है ?

इनमें प्रथम मानें तो – तादृशभेद के परामर्शरूप अधिकरण से अप्रयोज्य विषयताक शाब्दबोध में उक्तलक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा ।

द्वितीयकल्प में यावद्अधिकरण ही असर्वज्ञ दुर्ज्ञेय है । अतः लक्षण का ज्ञान ही सम्भव नहीं है । प्रथम कल्पोक्त दोष के कारण ही तृतीयकल्प भी उचित नहीं है और षोढासन्निकर्षेतरत्वनिवेश भी व्यर्थ है ।

एवं संयोगादिगतसमुदायत्वावच्छिप्रतियोगिताकभेद'' यह तृतीय विकल्प भी ठीक नहीं

साक्षाद्धीः स्वरूपधीः = स्वेन रूपेण वस्तुनो भानमिति चेन्न, अनुमानादिव्यापनात् । अनुमानादौ लिङ्गाद्यपेक्षत्वात्तदवच्छिन्न-कालसम्बद्धबोधत्वं नत्वध्यक्ष इति चेन्न, व्यभिचारात्, यत्र लिङ्गादि

शारदा

अनुमानादाविति । **अत्र लिङ्गादिकालानवच्छिन्नविषयकानुभवत्वं न लक्षणम्, प्रत्यक्षविषयस्यापि क्वचिल्लिङ्गादित्वेन लिङ्गादिकालावच्छिन्नविषयकत्वस्यैव प्रत्यक्षे सत्त्वात्, स्वकारणीभूत्वं तु लिङ्गादौ न विवक्षाक्षमम्, लिङ्गत्वादिना कारणताविवक्षणे प्रत्यक्षनिरूपिततादृश-कारणत्वाप्रसिद्ध्याऽसम्भवप्रसङ्गात्, तदविवक्षणे तु प्रत्यक्षकारणस्य तदीयविषयस्यापि क्वचिल्लिङ्गादित्वेनोक्तदोषात्, अपि तु स्वकरणाधिकरणकालानवच्छिन्नविषयकानुभवत्वमेव, वस्तुतः स्वकारणीभूतं यत्तदीयत्वावच्छिन्नकालनिष्ठाधारतानिरूपिताधेयतानवच्छिन्नविषयता-कानुभवत्वमिति यावत् । चक्षुरादेरज्ञायमानस्यैव करणत्वेन तदीयत्वेन न कालावगाहित्वं प्रत्यक्षे । ईश्वरज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे तु न मानमित्युक्तं प्राक् स्वकरणीभूतं यत्तदीयत्वावच्छिन्न-कालनिष्ठाधारतानिरूपिताधेयतावच्छिन्नयत्किञ्चिद्विषयताको योयस्तत्तद्भेदकूटवदनुभवत्वमिति वा वक्तव्यम् । अनुमितिशाब्दादौ तु लिङ्गपदादिज्ञानस्य कारणत्वे तद्विशेषणीभूतस्य तद्व्यापारकस्य च लिङ्गपदादेः करणत्वेन तत्कालावच्छिन्नत्वेनैव साध्यादिविषयकत्वमित्य-भिमानः ।** व्यभिचारादिति । **लक्षणस्य लक्ष्यतावच्छेदकाभाववद्वृत्तित्वरूपातिव्याप्तेरित्यर्थः। उक्ताभिमानं निराकुर्वन्नतिव्याप्तौ हेतुमाचष्टे** यत्रेति । **तत्कालताव्यभिचारात् = लिङ्गादि-कालीनत्वस्य लिङ्ग्यादौ भाननियमस्य व्यभिचारात् । अनुमितौ धूमकालीनत्वस्य हुतभुजि भानानुरोधेन, धूमालोकादिनानालिङ्गकैकाकारानुमितौ तत्तल्लिङ्गकपरामर्शस्य प्रत्येकं व्यभिचारवारणायाव्यवहितोत्तरत्वनिवेशेनानेककार्यकारणभावकल्पनाया विरहप्रयुक्त-लाघवानुरोधेन चानुमितौ लिङ्गस्योद्देश्यतावच्छेदकतया भानोपगमे लिङ्गलिङ्गिनोः समानकालि-कत्वस्थले लिङ्गकालावच्छिन्नत्वस्य लिङ्गिनि भानसम्भवेऽपि विद्यमानतत्त्वज्ञानादिना भाविविदेहकैवल्याद्यनुमितौ तदसम्भवेनातिव्याप्तिरुक्तलक्षणस्य, एवं भाव्यादिविषय-**

भारती

है, क्योंकि घटो घटपटोभयं न इत्यादि प्रतीति के बल से व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद को एकदेश में ही स्वीकार किया जाता है अतः संयोगादिसमुदायत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद के प्रत्येक संयोगादि में विद्यमान होने से असम्भवदोष हो जायेगा ।

प्रश्न – स्वरूपज्ञान अर्थात् स्वकीय रूप से वस्तु का ज्ञान ही साक्षात्कारज्ञान (प्रत्यक्षज्ञान) है ।

समाधान – यह लक्षण भी ठीक नहीं है क्योंकि अनुमान (अनुमिति) के भी स्वरूपविषयक ज्ञान होने से अनुमिति में अतिव्याप्ति होती है । यदि कहें कि व्याप्तिज्ञान की अपेक्षा होती है। अतः अनुमिति व्याप्तिज्ञानावच्छिन्नकालसम्बद्ध विषयक होती है और प्रत्यक्ष तो स्वकारणावच्छिन्न काल से सम्बद्ध वस्तु को विषय नहीं करता । तथाच स्वकरणाधिकरणकाल से अनवच्छिन्नपदार्थ विषयक ज्ञान ही सात्कारि ज्ञान है । तो यह कथन युक्तिविरुद्ध है क्योंकि जहाँ वर्तमानतत्त्वज्ञान

भाव्यादिबोधकं तत्र तत्कालताव्यभिचारात् । एतेन—यदि न लिङ्गकालावच्छिन्नव्यापकप्रतिभासोऽनुमानं तदा कूटव्याप्यानुमितस्य व्यापकस्य दैववशात्सत्यव्याप्यव्यक्त्यन्तरवतः प्राप्तौ व्याप्तिकाला-

शारदा

कशाब्दादावपीति भावः । एतेन = उक्तद्वितीयव्यभिचारेण । व्यापकप्रतिभासोऽनुमानं = व्यापकविषयकत्वमनुमितित्वव्यापकम् । कूटव्याप्यानुमितस्य = वस्तुतोऽव्याप्यमपक्षधर्मं वा व्याप्यत्वपक्षधर्मताभ्यामवगाहमानपरामर्शविषयस्य व्यापकस्य प्राप्तौ = अनुमितौ तादृशपरामर्शाधीनानुमिताविति यावत्, प्रमात्वं प्रमाविशेषान्तर्भावानिर्वाह्यमापद्येतेत्यन्वयः। यद्युक्तानुमितेः साध्ये लिङ्गकालिकत्व विषयकत्वं स्वीक्रियेत तदोद्देश्यतावच्छेदककालावच्छित्वं विधेये भासत इति नियमेन कालघटितव्याप्त्यग्रहदशयां तस्या वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानित्याकाराया एव वक्तव्यत्वेन धूमवत्त्वाद्यंशे भ्रमत्वं शक्यते वक्तुमिति न तस्याः प्रमान्तर्भावनिर्वाहप्रयासापेक्षा, तथाऽस्वीकारे तु पर्वतो वह्निमानित्याकृतिं विभ्रती सा वस्तुतो वह्निमद्विशेष्यकत्वेन क्लृप्तप्रमास्वेवान्तर्भावार्हा स्यात्, किन्तु व्याप्तिविशिष्ट-प्रतियोगिकपक्षानुयोगिकसम्बन्धावगाहिनिश्चयजन्यतायाः प्रमानुमितौ नियतत्वेनान्यथा प्रमात्वे गुणप्रयोज्यताया दोषाभावप्रयोज्यताया वाऽसम्भवेन भ्रमजन्यतया तादृशनिश्चयाजन्यायाः प्रकृतानुमाया अनुमितौ प्रमायां नान्तर्भावः शक्यः, प्रत्यक्षादौ तु स न शङ्क्योऽपीति तस्या अतिरिक्तप्रमात्वोपगमोऽपसिद्धान्तापादक आपतेदिति लिङ्गकालिकलिङ्गिभानस्य, काल-घटितव्याप्त्यग्रहदशायां तदुपपादकस्य लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्य चोपगम आवश्यक इति भावः । अधिकं तु तत्त्वानुभवत्वखण्डनशेषे प्रागभ्यधायि । ननु सामान्यतो व्याप्यवच्छिन्ना-श्रयकालवृत्तिव्यापकविषयकत्वस्यानुमितिसामान्य उपगमेऽपि तादृशभ्रमात्मक-परामर्शजन्यानुमितेरग्निव्याप्यवान् पर्वतोऽग्निमानित्याकाराया वस्तुतोऽग्निव्याप्याभाव-वद्विशेष्यिकाया भ्रमत्वोपपादनसम्भवादनुमितौ विशिष्य लिङ्गभानोपगमे किं बीजमित्यत आह दैववशादिति । **सामग्रीवशादित्यर्थः** । सत्यव्याप्येति । **अग्निनिरूपितव्याप्तिमत्त्वेन प्रमितालोकादीत्यर्थः** । व्यक्त्यन्तरवतः = व्यक्त्यन्तरसमानाधिकरणस्य । तथाचाग्निव्याप्यवद्विशेष्यकत्वेनोक्तानुमितेर्भ्रमत्वोपपादनासम्भव इति भावः । नन्वनुमितौ

भारती

से भावि विदेह कैवल्य की अनुमिति की जाती है (अहं भाविविदेहकैवल्यवान् तत्त्व-ज्ञानवत्त्वात्) ''लिङ्गादिकालीन व्यापक ही अनुमिति में भासता है'' इस नियम का व्यभिचार है। अत: उक्त प्रत्यक्षलक्षण उक्त अनुमिति में अतिव्याप्त हो जायेगा और वर्तमानतत्त्वज्ञान से भाविविदेह कैवल्यानुमिति में उक्त नियम के व्यभिचरित होने से यह किसी का कहना भी निरस्त हो गया कि – ''यदि अनुमिति में लिङ्गादिकालीनव्यापक का भान न मानें तो जहाँ धूलीपटल में धूमभ्रम के अनन्तर तादृशभ्रमात्मकपरामर्श से जायमान ''वह्निव्याप्यवान् पर्वतोवह्निमान्'' इत्याकारक अनुमिति जो कि सामग्रीवशात् अग्निनिरूपितव्याप्तिमत्त्वेन प्रमित आलोकादिरूप व्यक्त्यन्तर के समानाधिकरण वह्नि को विषय न करने से व्याप्तिकालावच्छिन्न व्यापक

वच्छिन्नव्यापकप्राप्त्या तावत्यंशे प्रमात्वं प्रमाविशेषान्तर्भावानिर्वाह्य-मापद्येतेति—निरस्तम्, भूतादिव्यापकानुमाने व्याप्यकालत्वासम्भ-

शारदा

परामर्शविषयीभूतव्याप्तेर्भानोपगमे परामर्श विषयीभूतधूमनिष्ठव्याप्तेरालोकाद्यन्वितया तदवगाहयुक्तानुमितेर्भ्रमत्वसम्भवः, तद्विषयीभूतव्याप्तिमतस्तत्राभावादित्याशङ्कातस्तादृशानुमितेः परामर्शविषयीभूतव्याप्तिविशिष्टविषयकत्वेऽपि यथार्थत्वमेव, हेतुतावच्छेदक विशेषघटितायाः स्वव्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेर्धूमनिष्ठाया आलोकाद्यवृत्तित्वेऽपि साध्याभाववद-वृत्तित्वरूपव्याप्तेर्हेतुतावच्छेदकविशेषाघटिततया समानसम्बन्धावच्छिन्नहेतुताक-धूमालोकादावभिन्नत्वादित्याह व्याप्तिकालेति । **साध्याभाववदवृत्तित्वावच्छिन्नाश्रयकालेत्यर्थः। अन्यथा पर्वतनिष्ठोद्देश्यताया व्याप्त्यवच्छिन्नत्वासम्भवेन संसर्गतया तत्कालावच्छिन्नत्वभानस्य च तस्या उद्देश्यतावच्छेदकतायामेव सम्भवेनासङ्गतिः । पर्वतो व्याप्तिकालि-काग्निमानित्याकारकतामनुमितेरुपगम्य व्याख्याने तु सन्दर्भसङ्गतिः स्यात्, तेन रूपेण व्यापकताया अग्रहात्, लिङ्गविशिष्टे लिङ्गिभानमते लिङ्गकालावच्छिन्नत्वस्य संसर्गतयैव भानाच्च, तादृशाकारकतोपगमस्यानुमितेर्भ्रमत्वोपपादकताशङ्काया अतिनिर्दलत्वाच्च, अग्नेर्व्याप्तिकालिकत्वस्य नियतत्वादिति । इदमुपलक्षणम्, उक्तरीत्या मध्यमकार्य-कारणभावाकल्पनप्रयुक्तलाघवेन कालघटितव्याप्त्यग्रहदशायां धूमकालीनाग्निभानानुरोधेन च धूमत्वादिनैव लिङ्गभानस्यानुमितौ वक्तव्यत्वादिति ।** व्याप्यकालत्वेति । **व्याप्यकालावच्छिन्नविषयकत्वेत्यर्थः। हेतोर्विद्यमानत्वादेः साध्यस्य च भूतत्वादे-र्ग्रहदशायामित्यादिः । तथा चोक्तानुमितेः प्रमाबहिर्भावोपपादिकियं रीतिर्बाधितेति भावः। ननु तादृशदोषजानुमितावेव तदीयभ्रमत्वान्यथानुपपत्त्या मीमांसकैः पक्षावृत्तिव्यापकावगा-हित्वमिवास्माभिर्लिङ्गकालावच्छिन्नव्यापकावगाहित्वं कल्पनीयमित्याशङ्क्याह** तथापीति । **तादृशव्यापकावगाहित्वकल्पनेऽपीत्यर्थः** । उक्तत्वादिति । **तत्त्वानुभवत्वखण्डनशेषे इति**

राजहंसः

सम्भवेनासङ्गतिरिति । मूले व्याप्तकालेति पाठे तु नासङ्गतिशङ्कापि ।

भारती

विषयक होने से उस जो कि व्याप्तिकालावच्छिन्न व्यापक विषय अंश में प्रमा है – का प्रमाविशेष में अन्तर्भाव नहीं हो पायेगा'' भाव यह है कि यदि उक्त अनुमिति के साध्य में लिङ्गकालिकत्वविषयकत्व स्वीकार करें तो उद्देश्यतावच्छेदवकालावच्छिन्नत्वं विधेये भासते'' इस नियम से कालघटितव्याप्त्यग्रहदशा में अनुमितिका वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान् यही आकार कहना होगा तब धूमवत्वाद्यंश में भ्रमत्व कह सकते हैं तथाच प्रमान्तर्भाव निर्वाह प्रयास की कोई अपेक्षा ही नहीं किन्तु यदि लिङ्ग कालिकत्व विषयकत्व उक्तानुमिति के साध्य में न मानें तो पर्वतो वह्निमान् इत्याकारा ही अनुमिति होगी, इस अनुमिति के वस्तुतः वह्निमद्विशेष्यत्व होने से प्रमा के अन्तर्भाव के योग्य है तो भी व्याप्ति विशिष्टप्रतियोगिकपक्षानुयोगिक

वात्, तथापि चाग्न्यादिमदंशमात्रे प्रमात्वापातस्य दुष्परिहरत्व-स्योक्तत्वात्।

अनुपहितप्रतीतिः साक्षाद्धीरिति चेन्न; विशिष्टप्रविष्टविशेष्य-

---

शारदा

शेषः । वस्तुतस्तु सर्वांशे यथार्थत्वे दोषजन्यज्ञानस्य क्लृप्तप्रमान्तर्भावासम्भवः प्रमात्वस्य दोषाभावप्रयोज्यत्वमते, प्रमात्वभ्रमत्वयोरांशिकत्वे तु दोषतदभावप्रयोज्यत्वयोरप्यांशिकयोः सम्भव एवेत्युक्तमस्माभिरपि तत्रैवेति ।

अनुपहितेति । **विशिष्टाविषयकप्रतीतित्वमिति यथाश्रुतार्थेऽनुमित्यादेर्विशिष्ट-विषयकत्वनियमेन स्मृतेर्निर्विकल्पिकाया अप्युपगमे त्वनुभवत्वस्यैव प्रतीतिपदेन विवक्षितत्वेनातिव्याप्त्यभावेऽपि विशिष्टस्यातिरिक्तत्वे तद्विषयकप्रत्यक्षमात्रासङ्ग्रहः, एवमनतिरिक्तत्वेऽपि, यदि त्वत्र पक्षे गौरित्यादिविशिष्टप्रत्यक्षमात्रस्य गोत्वाद्यंशे निर्विकल्पकत्वेन तदंशे विशिष्टविषयकत्वाभावेन लक्षणं सङ्गम्यते तदापि विशिष्टविषयकत्वावच्छेदेन तदभावस्यासम्भवेन विशिष्टांशेऽव्याप्तिरेवेत्यभिप्रेत्याह** विशिष्टप्रविष्टविशेष्येति । **विशिष्टेत्यर्थः। विशिष्टेत्यस्य भावप्रधानतया वैशिष्ट्यं प्रविष्टं यत्रेतिव्युत्पत्त्या तादृशार्थलाभात् । अन्यथा-तिरिक्तत्वानतिरिक्तत्वोभयपक्षेऽपि ग्रन्थस्यैतस्यासङ्गतिः । अनुमित्यादौ लिङ्गादिविशिष्ट-**

भारती

सम्बन्धावगाहि निश्चय जन्यता के प्रमानुमिति में नियत होने से ऐसा न मानें तो प्रमात्व में गुणप्रयोज्यत्व किं वा दोषाभावप्रयोज्यत्व के असम्भव होने से प्रोक्तानुमिति भ्रमजन्य होने से तादृश निश्चयाजन्य है अतः उसका अनुमित्यात्मकप्रमा में अन्तर्भाव नहीं हो सकता, और प्रत्यक्षप्रमा तो अन्तर्भाव की शंका ही नहीं, यदि अतिरिक्त प्रमा मानें तो अपसिद्धान्त होगा अतः लिङ्गोपहितलैङ्गिक भान मानने से ही लिङ्गकालिकलिङ्गि भान का काल घटित व्याप्त्यग्रह दशा में उपपादन हो सकता है किन्तु सामग्री से अग्निनिरूपितव्याप्तिमत्वेन प्रतीत आलोकादिसमानाधिकरण होने पर अग्निव्याप्यंवद्विशेष्यकत्वेन प्रोक्तानुमिति को भ्रमत्व कह नहीं सकते और प्रमानुमिति में भी अन्तर्भाव नहीं कर सकते । यहाँ व्याप्ति साध्याभावद्वृत्तित्व लेना है इत्यादि शारदा में द्रष्टव्य है । निरस्त होने में कारण यह है कि अतीतादिकालीनव्यापक की अनुमिति में व्याप्तिकालावच्छिन्नत्व का भान होना सम्भव ही नहीं है और यदि व्याप्तिकालीन व्यापक का भान अनुमिति में मान भी लें तो भी वह्न्यंश में उसका प्रमात्व अपरिहार्य है यह पूर्व में कहा गया है ।

प्रश्न – अनुपहित अर्थात् विशिष्टाविषयक ज्ञान ही प्रत्यक्ष है ।

समाधान – यह लक्षण भी ठीक नहीं है क्योंकि उक्त लक्षण विशिष्टविषयक प्रत्यक्ष में अव्याप्त है । यहाँ पर विशिष्ट शब्द भाव प्रधान निर्देश है तथाच वैशिष्ट्यं प्रविष्टं यत्र इस व्युपत्ति से विशिष्ट प्रविष्ट विशेष्य शब्द से विशिष्टरूप अर्थ का लाभ होता है । अन्यथा विशिष्ट के अतिरिक्तत्वानतिरिक्तत्व इन दोनों पक्ष में ग्रन्थ असङ्गत होता है । यह शारदा में द्रष्टव्य है ।

प्रत्यक्षाव्यापनात् । करणानुपहितत्वं विवक्षितमिति चेन्न; परकरणोपहिताव्यापनात्, स्वकरणोपहितत्वस्य च स्वपदकुक्षिनिक्षिप्तत्वात् । व्याप्याद्युपहितत्वानां व्यतिरेकस्य यत्र समुच्चयः सा धीः

शारदा

लिङ्ग्यादिभानमतेनाशङ्कते करणेति । **अनुपहितपदेनेत्यादिः। प्रत्यक्षे दण्डादौ विशेषणतया भासमानस्यापि ज्ञायमानलिङ्गादिकरणत्ववादेऽनुमित्यादौ करणत्वेन तत्तद्विशिष्टविषयकप्रत्यक्षेऽव्याप्तिस्तदवस्थेत्याह** परेति । **अनुमित्यादिकरणदण्डत्वादिविशिष्टस्य करणानुपहितत्वेनासङ्ग्रहादित्यर्थः । ननु स्वकरणविशिष्टविषयकत्वाभाववदनुभवत्वं विवक्षितम्, ईश्वरज्ञानस्य सङ्ग्राह्यत्वे तु स्वकरणविशिष्टविषयकं यद्यत्तदन्यानुभवत्वं विवक्षणीयम्, एकत्र विषयविषयिभावोपगमपक्षे पूर्वानुभवात्मकस्वकरणघटितपूर्वानुभवविषयतात्मकतत्ताविषयकत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि तदनुपगमपक्षे स्मृतावतिव्याप्तिवारणायानुभवत्वविवक्षा । अनुमित्यादेस्तु स्वकरणलिङ्गादिविशिष्टविषयकत्वमेव । उपनीतेन्द्रियविषयकप्रत्यक्षविशेषेऽव्याप्तिवारणाय तु यद्यज्जात्यवच्छेदेन स्वाश्रयनिरूपितकरणताश्रयविशिष्टविषयकत्वं तत्तज्जात्यवच्छिन्नान्यानुभवत्वं वक्तव्यम्, अत्राह** स्वकरणेति । **निक्षिप्तान्तो बहुव्रीहिः, तथा च स्वत्वघटितत्वादित्यर्थः । करणतायत्तादिघटितत्वादित्यपि द्रष्टव्यम् । एवञ्च स्वत्वादेरननुगतत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मोपादाने तदनवच्छिन्नत्वमनुमित्यादावादायातिप्रसङ्गः, शब्दानुमानोपमानजेत्यादिलक्षणखण्डने वक्ष्यमाणदूषणगणग्रासश्च, ज्ञायमानलिङ्गादेः करणतायाः प्रङ्निरस्तत्वेन प्रतियोग्यप्रसिद्ध्याऽसम्भवश्चेति भावः। स्वत्वं करणत्वञ्च बहिष्कृत्य शङ्कते** व्याप्त्याद्युपहितत्वानां व्यतिरेकस्येति । **व्याप्तिविषयकत्वसादृश्यविषयकत्वपद-**

भारती

यदि कहें कि अनुपहित पद से करण से अनुपहितत्व विवक्षित है । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञायमानलिङ्गादिकरणत्वावाद में दण्डत्वलिङ्गक अनुमिति का करण दण्डत्व विशिष्ट "दण्ड" इत्यादि प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी । यदि कहें कि स्वकरण से अनुपहितत्व विवक्षित है । तथा स्वकरण विशिष्टविषयकत्वाभाववद् अनुभवत्व ही प्रत्यक्ष का लक्षण है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि इस लक्षण के स्वत्वघटित होने से स्वत्व के अननुगत होने पर स्वपद से यत्किञ्चित् ज्ञान का ग्रहण कर तादृश स्वकरण से अनुपहित अनुमिति में भी उक्तलक्षण अतिव्याप्त है । एवं स्वत्व को अनुगत मानने पर अन्य के करण को स्वकरण शब्द से ग्रहण कर उक्त "दण्डः" इत्याकारक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी । किञ्च उक्तलक्षण करणता से घटित होने से भी पूर्वोक्त करणखण्डन युक्तियों से खण्डित है।

यदि कहें कि व्याप्ति विषयकत्व सादृश्य-विषयकत्व-पदविषयकत्व प्रतियोगिक अभावों का जिस ज्ञान में समुच्चयव्याप्तिविषयक प्रत्यक्ष में हो ऐसा अनुभव ही साक्षात्कारि ज्ञान है। तो यह कहना भी युक्तिसङ्गत नहीं है । क्योंकि व्याप्तिविषयक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी।

साक्षाद्धीरिति चेन्न; व्याप्त्यादिप्रत्यक्षाव्यापनात्, असिद्धत्वाच्च, पर्वतोऽग्निमानित्येव प्रतिज्ञानात् शब्देन च स्वाप्रतिपादनात् साध्यादिमितेश्च प्रत्यक्षत्वापादानात् ।

शारदा

विषयकत्वप्रतियोगिकाभावानामित्यर्थः । सर्वस्यापि क्वचिल्लिङ्गत्वेन लिङ्ग-विषयकत्वाभावनिवेशोऽसम्भवापादक इत्यत व्याप्तीति । लिङ्गोपधानमते चानुमितौ लिङ्गस्य व्याप्यत्वेनैव भानमिति नातिव्याप्तिः । समुच्चय इति । **व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावस्यातिप्रसक्तत्वेन व्याप्तिविषयकत्वादित्रितयानुगताननतिप्रसक्तधर्मा भावेन समुच्चयनिवेश आवश्यक इति भावः । सा धीः = अनुभूतिः । व्याप्त्यादेः साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकत्वेन भेदकूटस्यैव निवेश्यतयाऽसर्वज्ञाज्ञेयत्वसत्त्वे एवाह** व्याप्त्यादीति। **नच प्रत्यक्षव्यावृत्तविषयताविशेषस्यैव प्रतियोगितया निवेश्यतया नेयमव्याप्तिरिति वाच्यम्; साध्यादौ तादृशविषयताविशेषस्य वह्निमनुमिनोमीत्यादिप्रतीतिसाक्षिकस्याभ्युपगमेऽपि व्याप्तिसादृश्यादौ तस्याप्रामाणिकत्वात्, प्रत्यक्षत्वनिरूपणं विना तदाश्रयव्यावृत्तत्वस्य निरूपयितुमशक्यत्वाच्चेति भावः । अनुमित्यादौ व्याप्त्यादिविषयकत्वे प्रमाणाभावेन तत्रातिव्याप्तिमाह** असिद्धत्वाच्चेति । **अनुमित्यादौ व्याप्त्यादिविषयकत्वस्येत्यादिः ।** प्रतिज्ञानादिति। **यादृशशाब्दबोधजनयित्री प्रतिज्ञा ताहश्येवानुमितिः प्रतिज्ञा पुनर्विप्रतिपत्त्यनुसारेणेति विप्रतिपत्तिविषयतावच्छेदकधर्मप्रकारेणैव परार्थानुमितिरित्यपि प्रवादः, अतएव प्रकृतन्यायावयवत्वे सति प्रकृतानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दबोधजनकवाक्यत्वं प्रतिज्ञालक्षणमामनन्ति तार्किका इति भावः ।** शब्देनेति । **घटादिशब्देनेत्यर्थः । तेन शब्दशब्देन स्वप्रतिपादनेऽपि न क्षतिः। स्वपरतातिरिक्तस्थले इति शेषः । नहि घटादिपदस्य घटत्वादाविव स्वस्मिन्नपि शक्तिरिति भावः । पञ्चम्यन्तद्वयमसिद्धत्वे हेतुतामापद्य प्रत्यक्षत्वापादने हेतुः । शक्तिग्रहस्योपमानफलत्वमते सादृश्यज्ञानस्य सादृश्यविषयकबुद्ध्यजनकत्वादित्यपि वक्तव्यम्।** साध्यादिमितेश्चेति । **अनुमितिशाब्दादेरित्यर्थः । चकार उक्ताव्याप्तिसमुच्चायकः, प्रत्यक्षत्वापादनाच्चेत्यन्वयः। वस्तुतस्तु ज्ञायमानलिङ्गस्याकरणत्वेऽपि लिङ्गोपहित-लिङ्गिभानोपगमे न काचित्क्षतिः, पूर्वव्याप्यत्वेनापस्थितस्य तेनरूपेणाप्यनुमितिविषयतोपपत्तेः, लाघवञ्चात्रपक्षे प्रागुक्तमेव, उद्देश्यतावच्छेदककालावच्छिन्नत्वस्य विधेये भानं त्वसति बाधके। एवं शब्द सादृश्ययोरपि प्रागुपस्थितत्वेन शाब्दादौ भानसम्भव एव, तदभावश्च शपथैकनिर्णेय एव, पदान्तरप्रतिपादितः स एवार्थोऽर्थान्तिरतयेव प्रतिभासमान एकरूपताप्रतीतिं स्थगयती'ति**

राजहंसः

स्वंरूपमिति सूत्रनिष्फलत्वेति । राज्ञो यदिति विहितप्रत्ययो 'राजन्' शब्दादेव भविष्यति तस्यैव स्वजन्यबोधे भानात्, न तु तत्पर्यायान्नृपादिशब्दादिति किमेतेन शब्दस्य स्वरूपसंज्ञित्वप्रतिपादकेन सूत्रेणेति भावः ।

भारती

किञ्च प्रमाण के न होने से अनुमित्यादि में व्याप्त्यादिविषयकत्व असिद्ध है, क्योंकि

अथाव्यवहितधीत्वं साक्षाद्धीत्वमिति चेन्न; व्यवधानविकल्पानुपपत्तेः । यदि द्रव्यविशेषान्तरावस्थितिर्व्यवधिस्तदानीमप्रत्यक्षविभुधियां साक्षात्त्वापत्तिः । अथ ज्ञापकज्ञानस्य पूर्वसत्ता व्यवधानं तदा परत्वाद्यप्रत्यक्षतापत्तिरिति । विशिष्टवैशिष्ट्यं

शारदा

काव्यमीमांसिनः स्वं रूपमितिसूत्रनिष्फलत्वप्रतिपादिकाया व्याकरणमीमांसिनश्च सम्मतायाः सरणेरनुसरणे पुनरावश्यक एव शाब्दे शब्दभानोपगम, घटशब्दं शाब्दयामीत्यनुव्यवसायाभावस्य वृत्त्या संसर्गमुद्रया वा भासमानांशे एव शाब्दत्वाभ्युपगमेन समर्थनसम्भवादिति, एवञ्चोक्ताव्याप्तिरेव दूषणं सारमिति ।

अव्यवहितधीत्वं यदीन्द्रियसन्निकृष्टविषयकधीत्वादिकं तदा प्राङ्निरस्तम्, अन्यादृशमपि तु निराकर्तुं पुनरुत्थापयति अथाव्यवहितेति। द्रव्येत्यादि । **कुड्यादेर्मध्यावस्थितिरित्यर्थः । एवञ्चेन्द्रियसन्निकृष्टविषयकधीत्वमेव यथाश्रुतार्थः, तेन विषयव्यवधानाभावनिवेशे गगनादेर्व्यवधानाप्रसिद्ध्यैव तदभावाप्रसिद्धावपि नोत्तरग्रन्थासङ्गतिः इन्द्रियसंयुक्तत्वस्य तत्र सत्त्वात्, सन्निकर्षस्यान्यतमत्वेनैव निवेश्यत्वात् । इन्द्रियव्यवधानाभावनिवेशेऽपि व्यवधायकानामानन्त्ये विशिष्य निवेशस्यासम्भवेनाप्रसिद्ध्यापत्तिः ।** अप्रत्यक्षेति । **नित्यानुमेयेत्यर्थः । इन्द्रियसन्निकर्षजत्वादिविवक्षा प्रागपहस्तिता ।** ज्ञापकेति । **ज्ञानाजन्यानुभवत्वमित्यर्थः। यथाश्रुतं विशिष्टप्रत्यक्षेऽव्यापकमित्याह** तदेति । **अधिकं प्रागुक्तम्।** विशिष्टेत्यादि। **अत्र विशिष्टवैशिष्ट्यविषयत्वानिरूपकबोधत्वं यथाश्रुतलभ्यम्, तत्र च दण्डी पुरुष इत्यादिप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति विशिष्टवैशिष्ट्यविषयिताव्याप्यतावच्छेदकजात्यनवच्छिन्नबोधत्वं विवक्षणीयम् जातिश्चानुमितित्वादिका तादृशी, प्रत्यक्षविशेषगततत्तद्व्यक्तित्वादिकं तु तादृशव्याप्यतावच्छेदकमपि न जातिरिति । अत्रानुमितित्वस्य तादृशव्याप्यतावच्छेदकत्वं**

भारती

प्रतिज्ञानुसारिणी ही अनुमिति होती है और प्रतिज्ञा ''पर्वतो वह्निमान्'' इत्याकारक ही है अतः तादृशअनुमिति में उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति होगी । एवं घटादिशब्द भी (घटशब्द) का अप्रतिपादक होने से शब्द जन्य शाब्दबोध में अतिव्याप्ति हो जायेगी, और साध्यादिमिति में अर्थात् अनुमिति शब्दादि में भी प्रत्यक्षत्वापादन होगा ।

यदि कहें कि अव्यवहितविषयक अनुभव ही साक्षात्कारि ज्ञान है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि यह लक्षण व्यवधान के विकल्प से अनुपपन्न है । अर्थात् यदि पूर्वोक्त रीति से–किस की अपेक्षा व्यवधान का निषेध है एवं व्यवधान क्या है'' ऐसा विकल्प कर उक्त रीति से इस लक्षण का – ''इन्द्रियसन्निकृष्ट विषयक अनुभव'' ही अर्थ करें तो उसके पूर्व निरस्त हो जाने से यह लक्षण निरस्त हो गया । और यदि कुड्यादि (भित्ती) द्रव्यविशेष की स्थिति होना ही व्यवधान शब्दार्थ मानें तो नित्यानुमेय आकाशादि विषयक अनुमिति में अतिव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि नित्यानुमेय आकाशादि विभुपदार्थों में उक्तप्रकार का व्यवधान नहीं है।

व्यवधानमिति चेन्न; धूमविशिष्टे वह्निवैशिष्टमिति स्वरूपस्थितौ तथात्वे कार्यकारणभावविरोधः, प्रतीतौ धूमवैशिष्ट्यस्य धर्मि-

शारदा

यदि लिङ्गविशिष्टे लिङ्गिवैशिष्ट्यमादाय, तदाऽऽह धूमविशिष्टे इति । **स्वरूपस्थितौ = वस्तुगतौ, वस्तुतो नतु प्रतीतित इति यावत्, धूम विशिष्टतया प्रतीतस्य वह्निमत्त्वेन प्रतीतौ कार्यकारणभावविरोधाभावात्। तथात्वे = विशिष्टवैशिष्ट्ये। यतो धूमविशिष्टस्ततो वह्निविशिष्ट इति यदि, तदा धूमस्य वह्निकारणत्वापत्तिरित्यर्थः। ननु धूमविशिष्टस्य वह्निवैशिष्ट्यमिति ब्रूमः, न तु धूमविशिष्टस्यैवेति, धनी सुखीत्यादावपि सुखपदस्य सुखविशेषपरत्वे एव धनप्रयोज्यत्वप्रतीतिः, अन्यथा निर्धनस्यापि सुखित्वदर्शनेनासङ्गतिरिति चेन्न; यादृशस्थले वस्तुतो लिङ्गाभावेऽपि लिङ्गवत्तामित्याऽनुमितिरुत्पन्ना, तत्र व्यभिचारेण वस्तुतो लिङ्गविशिष्टवैशिष्ट्यमादायानुमितित्वे तादृशव्याप्यतावच्छेदकताघटनानुपपत्तेः । नच लिङ्गिनोऽपि व्याप्यत्वरूपलिङ्गत्वाश्रयत्वेन वस्तुतो लिङ्गविशिष्टे लिङ्गिवैशिष्ट्यं तत्र निर्बाधमिति वाच्यम्, एवमपि लिङ्गिवैशिष्ट्यस्याभावस्थलीयभ्रमानुमितिमादाय व्यभिचारस्य दुर्वारत्वात्। ननु विशिष्टस्य यद्वैशिष्ट्यं तद्विषयिता न विवक्षिता, अपि तु वैशिष्ट्यविषयिता-निरूपितधर्मिविषयितानिरूपितवैशिष्ट्यविषयितेति नोक्तदोष इत्यत आह** प्रतीताविति ।

भारती

यदि ज्ञापक ज्ञान की पूर्व सत्ता होना ही व्यवधान मानें, तो ज्ञानाजन्य अनुभवत्व ही उक्त लक्षण का अर्थ होगा, तथाच परत्वादिविषयक प्रत्यक्ष के अवधि (जिससे परत्व है तादृशअवधि) ज्ञान से जन्य होने से परत्वादिविषयक प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी एवं विशिष्ट प्रत्यक्षमात्र विशेषणज्ञानजन्य होने से सर्वत्र विशिष्ट प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि विशिष्ट वैशिष्ट्य ही व्यवधान है तथाच विशिष्ट वैशिष्ट्य विषयत्व का अनिरूपक अनुभव ही अव्यवहितधीत्व का अर्थ है तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि दण्डी पुरुष इत्यादि प्रत्यक्ष में अव्याप्ति है । (यदि कहें उक्त अव्याप्ति वारणार्थ – विशिष्ट वैशिष्ट्यविषयिता की व्याप्यतावच्छेदक जाति से अनवच्छिन्नज्ञानत्व ही प्रत्यक्षत्व है" ऐसी विवक्षा करेंगे और तादृशी जाति तो अनुमितित्व होगी, न कि प्रत्यक्षविशेषगत तत्तद्व्यक्तित्व, कारण कि तादृशतत्तद् व्यक्तित्व तादृशव्याप्यतावच्छेदक होने पर भी जाति नहीं है । तो यह कहना भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि) उक्त विवक्षा में यदि वस्तुत (नतु प्रतीतितः) धूमविशिष्ट में वह्निवैशि को विशिष्टवैशिष्ट्य मानें तो "यतो धूमविशिष्टस्ततोवह्निविशिष्ट इस प्रकार मानने पर कार्यकारणभाव का विरोध अर्थात् धूम में वह्निकारणता की आपत्ति होगी ।

यदि कहें कि स्वरूपतः विशिष्ट में जो वैशिष्ट्य तद्विषयिता विवक्षित नहीं है अपितु प्रतीतित अर्थात् विषयिता का अन्तर्भाव करके "धूमवैशिष्ट्यविषयितानिरूपितधर्मिविषयिता-निरूपितवैशिष्ट्यविषयिता" इस प्रकार धूम वैशिष्ट्यविषयिता और धर्मि अर्थात् धूमवन्निष्ठ-

विशेषणत्वे हेतोरंशतः स्ववृत्तिः, साध्यविशेषणत्वे व्याप्तिग्रह-प्रत्यक्षेऽव्यवधानाभावान्न साक्षात्त्वं स्यात् ।

अथ ज्ञानस्य जातिभेदः कश्चित्साक्षात्त्वम् तत्रानुभवत्वेन

शारदा

विषयितामन्तर्भाव्येत्यर्थः । अत्र धर्मी यदि हेतुमान्, तदा प्रमीययोर्हेतुवैशिष्ट्यविषयिताहेतुमन्निष्ठविषयितयोर्निरूप्यनिरूपकभावस्थले हेतोर्हेतुविशिष्टे वृत्तेरभ्युपगमनीयत्वेन प्रसक्तिरात्माश्रयस्येत्यर्थः। अंशतःस्ववृत्तिः = स्वविशिष्टवृत्तिप्रयुक्ता स्ववृत्तिः। यथा च विधेयान्वयिन एव विशेषणत्वं तथोपदर्शितं प्राक् 'अन्तर्भावितसत्त्व'मिति कारिकाव्याख्यावसरे । यदितु धर्मिपदेनाधिकरणमात्रं विवक्षितम्, सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन साध्यस्यैव हेतुविशिष्टतया वैशिष्ट्यविषयितानिरूपितवैशिष्ट्यविषयितैव वा विवक्षिता तदाऽऽह साध्यविशेषणत्वे इति। **अधिकरणमात्रविशेषणत्वे वेत्यपि द्रष्टव्यम् । व्याप्तिग्राहिप्रत्यक्षे = यो यो धूमवान् सोऽग्निमानिति प्रत्यक्षे । अत्राव्याप्तिर्विशिष्टवैशिष्ट्यविषयित्वानिरूपकबोधत्वमिति यथाश्रुते स्पष्टैव, तादृशजात्यनवच्छिन्नबोधत्वविवक्षायामपि प्रत्यक्षस्य स्वाश्रयकालविशिष्टवस्तुविषयकत्वनियमेन निर्विकल्पकस्य च तार्किकैर्नव्यैरनुपगमे साक्षात्कारित्वस्यापि तादृशजातित्वेनासम्भव एव । एवञ्च—प्रकारतानिरूपितविशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारताकत्वमेव विशिष्टवैशिष्ट्यविषयित्वम्, तच्च विशेष्ये विशेषणमितिरीत्या जायमानज्ञानसाधारणमपि, लिङ्गवैशिष्ट्यमादायैवानुमितौ तत्सङ्गम इति तु न नियमः, अपि तु शाब्दादिवदेव, एवञ्च लिङ्गोपधानवादस्यानभ्युपगमेऽपि न क्षतिरित्यपि – नाशङ्कनीयम् । शाब्दस्मृत्यार्निविकल्पकताया अपि प्रागुपदर्शितत्वेन शाब्दत्वस्मृतित्वयोस्तादृशविषयितव्याप्यतावच्छेदकत्वाभावेनातिव्याप्तेश्च । सामान्याभावघटितत्वेनोपवर्णिततन्निरासविषयत्वाच्च ।**

भेदः = विशेषः । कश्चित् = साक्षात्करोमीतिधीसिद्धः। अनुभवत्वेनेति। **अनुभवत्वं स्मृतिव्यावृत्ताऽनुमित्यादिसाधारणी जातिरित्यभिमानः । वस्तुतस्तु साक्षात्त्वमेव**

भारती

विषयिता का परस्पर निरूप्यनिरूपकभाव मानेंगे तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर धूमवैशिष्ट्य के धर्मि अर्थात् धूमवान् पर्वत का विशेषण होने से धूमविशिष्ट पर्वत में धूमवृत्तिता के उपस्थित होने से अंशतः आत्माश्रय हो जायेगा ।

यदि कहें कि धूमवैशिष्ट्य को धर्मी का विशेषण न मानकर अधिकरण मात्र का विशेषण मानेंगे "विशेषण विधेयान्वयि होता है" इस नियम के अनुसार सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से वह्निरूप साध्य के धूमविशिष्ट होने से धूमवैशिष्ट्य को साध्य का ही विशेषण मानेंगे तथाच आत्माश्रय न होगा, तो ऐसी विवक्षा करने पर व्याप्तिग्राही यो यो धूमवान् सोऽग्निमान्" इत्याकारक प्रत्यक्ष में वह्निरूप साध्य में विशेषणतयाभासित धूमविशिष्टवैशिष्ट्य रूप व्यवधान होने से उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न – साक्षात्करोमि "इत्यादिप्रतीति सिद्ध ज्ञान का जातिविशेष ही साक्षात्त्व है और वही साक्षात्त्वजाति प्रत्यक्ष का लक्षण है ।

परापरभावानुपपत्तिः, स्मृतेरपि साक्षात्कारित्वादिति केचित्, तन्न,

शारदा

तदित्युक्तमनुभवत्वखण्डने प्राक् । परेति । **तज्जातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातेस्तज्जातिव्यापकत्वमिति नियमः, पृथिवीत्वद्रव्यत्वादौ तथादर्शनादित्यभिमानः। वस्तुतस्तु परिभाषामात्रमिदम्, क्वचिद्दर्शनस्य प्रयोजकत्वे जगद्वैचित्र्यभङ्गप्रसङ्गात् । ननु साक्षात्त्वतदभावसमानाधिकरणस्यानुभवत्वस्य साक्षात्त्वव्यापकत्वमेव व्यभिचारविरहादिति क्व सङ्करस्तत्राह** स्मृतेरिति। **स्वाप्नादिबोधस्य साक्षात्करोमीतिप्रतीतिबलात्साक्षात्कारित्ववतोऽपि नानुभवत्वम्, तत्प्रयोजकाक्षसन्निकर्षव्याप्तिग्रहाद्यभावात्, अपि तु स्मृतित्वमेव पारिशेष्यात्संस्कारजस्य तस्येत्यभिमानः** । केचिदिति । **मीमांसकैकदेशिन इत्यर्थः । भट्टैरन्यथाख्यात्यभ्युपगमात्तेषां मते साक्षात्करोमीतिबुद्धेः साक्षात्त्वारोपेणैवोपपादनसम्भवात्, स्वाप्नादिबोधस्यापि स्मर्यमाणादौ स्मर्यमाणाद्यन्तरस्यारोपात्मकतोपगमाच्च, आरोपस्य मानसादित्वं पुनरलौकिकसन्निकर्षमसन्निकृष्टस्यापि दोषबलाद्भानं वोपेत्योपपादनीयमित्यन्यत्।**

भारती

अनुभवत्व स्मृतिव्यावृत्त अनुमित्यादिसाधारण जाति है ऐसा मानते हुए मीमांसकैकदेशी ने इस लक्षण में साङ्कर्य दोष इस प्रकार दिया है कि – स्मृति के साक्षात्कार रूप होने से अनुभवत्व के साथ साक्षात्त्व का परापरभाव अनुपपन्न है (अतः अनुभवत्व के विना साक्षात्त्व धर्म स्मृति में है और साक्षात्त्व के विना अनुभवत्व अनुमित्यादि में है एवं साक्षात्त्व और अनुभवत्व दोनों का सामानाधिकरण्य "अयं घटः" इत्याकारक प्रत्यक्ष में है अतः साङ्कर्य होने से साक्षात्त्वजाति नहीं हो सकती ।

यहाँ परापरभाव का अर्थ व्याप्यव्यापकभाव है । परत्व = व्यापकत्व है एवं अपरत्व = व्याप्यत्व है । जो जाति जिस जाति के समानाधिकरण में रहते हुए जिस जाति के अभावाधिकरण में रहती है उस जाति का उस जाति के साथ परापरभाव (व्याप्यव्यापकभाव) होता है अर्थात् वह जाति उस जाति की व्यापक होती है । जैसे द्रव्यत्व जाति पृथिवीत्व जाति के अधिकरण = घट में रहते हुए पृथिवीत्वाभाव के अधिकरण जल में भी रहती है अतः वह द्रव्यत्व जाति पृथिवीत्वजाति की व्यापक होती है । अतएव द्रव्यत्वरूप व्यापक के अभावाधिकरण में पृथिवीत्व कदापि नहीं रहती । इसी प्रकार यदि अनुभवत्व के साक्षात्त्वजाति का परापरभाव (व्याप्यव्यापकभाव) होता तो अनुभवत्व व्यापक होती और साक्षात्त्व व्याप्य होती, ऐसी स्थिति में अनुभवत्व के विना (अनुभवत्वाभावधिकरण) स्मृति में साक्षात्त्व न रहता । किन्तु प्रकृत में स्वाप्नज्ञान के साक्षात्करोमि इत्यादिप्रतीतिबलात् साक्षात्कार रूप होने पर भी अनुभवरूप नहीं मान सकते, क्योंकि अनुभवत्व का प्रयोजक इन्द्रियसन्निकर्षव्याप्तिग्रहादि स्वप्न में नहीं है अतः स्वप्नज्ञान को स्मृति रूप ही मानना पड़ता है और उस स्वप्न ज्ञानात्मक स्मृति में अनुभूतित्व के अभाव में भी साक्षात्त्व है अतः साक्षात्त्व का व्यापक अनुभवत्व नहीं है और साक्षात्त्व के अभाव में अनुमित्यादि में अनुभवत्व है तथाच उभय का समावेश अयं घट" इस प्रत्यक्ष में है अतः साङ्कर्य दोष होने से साक्षात्त्वजाति नहीं हो सकती ।

स्मृतेस्तथात्वानभ्युपगमात्, स्वप्नस्य तावत्स्मृतित्वासिद्धेः, सिद्धौ

शारदा

एवमेव तार्किकमतेऽपि । प्रभाकरमते तु स्मृतीनामेवागृहीतासंसर्गाणां स्वप्नादिबोधत्वोपगमेऽपि न मेयांशे साक्षात्कारित्वोपगमः, साक्षात्करोमीतिप्रतीतेः साक्षात्त्वासंसर्गाग्रहेणैवोपपादनसम्भवात्, मातृमानांशे तु तेन ज्ञानमात्रस्य साक्षात्कारित्वोपगमेन तदंशे स्मृतीनामपि तथात्वेऽपि न तदत्र विवक्षितम्, तथासत्यविप्रतिपन्नस्मरणभावेष्वपि प्रत्ययेष्वनुभवत्वव्यभिचारस्य साक्षात्त्वे शक्योपदर्शनत्वेनोत्तरग्रन्थे स्वाप्नादिबोधानां स्मृतित्वनिराकरणासङ्गतेर्दुर्वरतापत्तेः नवा प्रभाकरमतेऽनुभवत्वं जातिरपितु स्मृत्यन्यज्ञानत्वम्, जातेः संस्थानव्यङ्ग्यत्वनियमाभ्युपगमेन गुणे तदसम्भवात्, इत्थमेव च न तन्मते साक्षात्त्वमपि जातिः, आंशिकत्वाच्च । अतएव न साक्षात्त्वाभावसमानाधिकरणमप्यनुभवत्वम्, अनुमित्यादेरपि मितिमात्रंशे साक्षात्वात्, परमतानुसारेण साङ्कर्यप्रदर्शने तु न मातृमानांशे साक्षात्कारित्वविवक्षासम्भावनापि, न वा मेयांशेऽपि स्मृतेः कस्याश्चित्परैरुपेतं साक्षात्कारित्वमिति मतमिदमेकदेशिन एव प्राभाकरस्य कस्यचिद्विवक्षितमितीक्षितव्यम् । यदि तु **केचिदित्यस्य सामान्यतः प्राभाकरपरतामनुमत्य 'स्मृतेः साक्षात्कारित्वं किं मितिमात्रंशे विवक्षितमुत मेयांशे, नाद्यः, स्वप्रकाशवादे नित्यज्ञानस्यात्मभूतस्य साधितत्वेन मितिमात्रोस्तद्विषयतयैव संशयाद्यविषयत्वोपपत्तेर्न मितिमात्रस्य मातृविषयकत्वं स्वविषयकत्वं वा, अन्यथाऽयं घट इत्यादिमतेरपलपनीयतापत्तेः। न द्वितीयः, तथाहि– मेयांशे साक्षात्त्वं किं तत्तोल्लेखिनीनां मतीनामथ भ्रान्तिपदाभिषिक्तानाम्, नाद्यः, मानाभावात्, तत्र स्मरामीत्येवानुभवात् । द्वितीयं तु निराचष्टे** स्मृतेस्तथात्वानभ्युपगमादिति । **व्यधिकरणप्रकारकेच्छाभावयित्र्याः स्मृतेर्मेयांशे साक्षात्त्वस्याभ्युपगमासम्भवादित्यर्थ इत्येवं ग्रन्थार्थ** उपवर्ण्यते **तदा न विवदामहे** । स्वप्नस्येति। **सम्प्रतिपन्नस्मृतेः परोक्षताया आनुभविकत्वेन स्वाप्नबोधस्य साक्षात्कारित्वेन प्रतीतस्य तद्विरुद्धस्मृतित्वाभ्युपगमो नोचित इति तस्यानुभवत्वमेवेति साक्षात्कारित्वव्यापकत्वस्यानुभवत्वे सम्भव इति न साङ्कर्यमिति भावः । नन्वलौकिकसन्निकर्षस्याप्रामाणिकत्वादनुभवकारणान्तरस्य चात्रानुपलम्भात्संस्कारजत्वेन स्मृतित्वं तावदावश्यकम्, साक्षात्कारित्वं पुनरनुभवबलात्। नचैवमनुभवामीत्यनुभवबलादनुभवत्वमप्यस्त्विति तस्य व्यापकत्वं निर्व्यूढमेवेति वाच्यम्; अत्रानुभवकारणानिरूपणेनानुभवत्वासंसर्गाग्रहेणैव तादृशानुभवस्योपपाद्यत्वात् । नचैवं साक्षात्करोमीत्यनुभवस्यापीत्थमेवोपपादनमस्त्विति न प्रकृतसङ्कर इति वाच्यम्; मितिमात्रंशेऽक्षसन्निकर्षमन्तरापि साक्षात्कारित्वस्यक्लृप्तत्वेन मेयागेऽपि क्वचित्तत्कल्पने बाधकाभावादित्याशङ्क्याह ।**

भारती

किन्तु मीमांसकैकदेशी के द्वारा प्रदत्त यह दोष युक्त नहीं है । क्योंकि स्मृति के साक्षात्कार रूप होने में कोई प्रमाण नहीं है । सर्वसम्मत स्मृति में परोक्षता के अनुभव सिद्ध होने से साक्षात्कारित्वेन प्रतीत स्वप्नज्ञान को स्मृति मानना अनुभव विरुद्ध होने से अनुचित है । तथाच स्वप्नज्ञान के अनुभव रूप ही होने से साक्षात्त्व का व्यापक अनुभवत्व है और साङ्कर्य दोष नहीं है ।

वा तत्र साक्षात्त्वारोपोपगमात् । भावनाबलजस्य च क्वचिदालोकादिधर्मिकप्रियाद्याश्रयधर्मारोपत्वं शुक्तिरजतभ्रमवत्, निमीलितनयनादेश्च स्वप्नवदेव गतिरवगन्तव्येति । इदं तु स्यात्, परमाण्वा-

शारदा

सिद्धौ वेति । साक्षात्त्वारोपेति । **साक्षात्त्वासंसर्गाग्रहेति तु नोक्तम्, जाग्रत्यपि 'स्वप्ने पदार्थममुं साक्षादकार्ष'मिति मितेरुत्पत्त्याऽसंसर्गाग्रहेण तदुपपत्त्यनुपपत्तेः। एवञ्चान्वभूवमित्यपि बाधग्रहकालिकोऽनुभवोऽनुभवत्वं स्वाप्नमतावानयत्येवेत्यपि सूचितम् । अख्यातेः प्राङ्निरस्तत्वेन साक्षात्त्वारोपेणैवोपपत्तौ वस्तुतः साक्षात्कारित्वस्य स्मृतौ मेयांशे कल्पना न प्रामाणिकी, अन्यत्र स्मृतौ तथाऽदर्शनात्, यावच्छक्यं च दृष्टस्यानुरोधव्यत्वादिति भावः। अभ्युपेत्यवादेन चेदम्, लौकिकविषयतायां दोषाणां नियामकत्वेन तद्बलादेव स्वाप्नानुभवस्य साक्षात्कारात्मन एवोत्पत्तेर्वक्तुं शक्यत्वादिति । सर्वञ्चैतत्तार्किकमतेनैव, तल्लक्षणस्य तन्मतेनैवोपपादनौचित्यात्, नत्वनिर्वचनीयोत्पत्तिवादिमतेनेति ध्येयम्** । बलजस्येति। **प्रियादिज्ञानस्येति शेषः। आलोकादिविशेष्यकः प्रियादिवृत्तिधर्मप्रकारकः साक्षात्कारानुभवात्मक आरोपस्तत्त्वं नतु स्मृतौ साक्षात्त्वारोपः, विशेष्यसन्निकर्षत्वेनैव प्रत्यक्षं प्रति कारणत्वादालोकादिना नयनादिसन्निकर्षस्यानुभवत्वसाक्षात्त्वयोः प्रयोजकस्य सत्त्वादिति भावः। निमीलितेत्यादि बहुव्रीहिणा पुरुषपरम् । भावनाबलजस्येत्यनुषज्यते।** स्वप्नेति । **अक्षसन्निकर्षस्याभावेन स्मृतौ साक्षात्त्वारोपो वा दोषबलात्साक्षात्कारस्यैवोत्पत्तिर्वेति भावः। गतिः = स्मृतित्वसाक्षात्त्वान्यतरवत्ता । परोक्तदोषं निराकृत्य स्वयं दूषयति**

भारती

यदि कहें कि अलौकिक सन्निकर्ष तो अप्रामाणिक है और अनुभव का लौकिक सन्निकर्ष रूप कारणान्तर स्वप्न में उपस्थित नहीं है अत: संस्कारजन्य होने से अनुभवसिद्ध साक्षात्कारात्मक स्वप्नजन्य में स्मृतित्व सिद्ध ही है तो इस प्रकार स्वप्नज्ञान में स्मृतित्व के सिद्ध होने पर भी उस (स्वप्न ज्ञान) में साक्षात्त्व के प्रयोजक इन्द्रियसन्निकर्षादि के न होने से साक्षात्त्व का आरोपमात्र ही मानना होगा, न कि वास्तविक । किसी मनुष्य को भावना के बल से जो प्रियादि ज्ञान होता है वहाँ स्मृति में साक्षात्त्व का आरोप नहीं है अपितु शुक्ति में रजत भ्रम के समान आलोकरूप धर्मि (आश्रय) में प्रियागतधर्मों का "आलोकादिविशेष्यक प्रियादिवृत्तिधर्म प्रकारक साक्षात्कारानुभवात्मक आरोप ही होता है । निमिलित नयन पुरुष को जो भावनाबल जन्य किसी वस्तुविशेष की प्रतीति होती है वह भी स्वप्न के समान इन्द्रियसन्निकर्ष के न होने से स्मृति साक्षात्त्व का आरोप अथवा दोषवलात् साक्षात्कार की उत्पत्ति ही है । अत: उसे स्मृति या साक्षात्कार दोनों में एक ही मान सकते हैं दोनों नहीं । तथाच स्मृति में साक्षात्त्व के न होने से साङ्कर्य दोष नहीं है ।

मीमांसकैकदेशी के द्वारा उक्त साङ्कर्य के न होने पर भी परोक्षत्व जाति के साथ साक्षात्त्व का साङ्कर्य है । क्योंकि "अयं घट परमाणुभिरारब्धः" इत्याकारकज्ञान के अनन्तर "परमाणुभिराब्धं घटमिम् जानामि" इत्याकारक अनुव्यवसाय होता है । उस अनुव्यवसाय के द्वारा व्यवसायात्मक

दिबुद्धावनुव्यवस्यमानायां परमाणुप्रतीत्यंशेऽपि साक्षात्त्वमनुभूयत

शारदा

इदन्त्विति । **परमाण्वादीत्यादिना ग्राह्यमिन्द्रियसन्निकृष्टम्, परमाणुपदञ्चासन्निकृष्टपरम्, तच्चैन्द्रियकं वाऽनैन्द्रियकं वा, सन्निकर्षो लौकिकः।** अनुव्यवस्यमानायामिति । **अध्यवसितव्यमितिबहुलप्रयोगविषयस्य धातोरिदं रूपम्, न तु षोऽन्तकर्मणीति प्रसिद्धस्य, तथा सति 'अनुव्यवसीयमानाया'मिति अध्यवसातव्य'मिति च स्यात् । परमाणुप्रतीत्यंशे = परमाणुविषयकत्वावच्छेदेन । 'अयं घटः 'परमाणुभिरारब्ध' इत्यादिबुद्धेरनुव्यवसायेन घटविषयकत्वावच्छेदेन तादृशबुद्धेः साक्षात्त्वावगाहनेऽपि परमाणुविषयकत्वावच्छेदेन परोक्षत्वमेवावगाह्यते इत्यनुभवानुरोधेनांशिकत्वात्परोक्षत्वस्य जातित्वे तेन साङ्कर्याच्च न साक्षात्वं जातिरिति भावः । ननु तादृशबुद्धावुपनीतस्यैव परमाणोभनिनालौकिकसन्निकर्षसत्त्वेन तद्विषयकत्ववच्छेदेनापि प्रत्यक्षत्वमेव, उभयविधसन्निकर्षस्यैव तत्प्रयोजकत्वात्, नचैवं परमाणुं साक्षात्करोमीत्यप्यनुभूयेतेति वाच्यम्; तादृशानुभवे भासमानाया लौकिकविषयितायाः परमाणावनङ्गीकारात्, नचैवं साक्षात्करोमीत्यनुभवस्य प्रत्यक्षत्वजातावमानत्वेन विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकतायास्तादृशविषयिताविशेषे एव वक्तुं शक्यत्वेन प्रत्यक्षत्वजातेरसिद्धिः, सर्वांशे उपनीतभाने तु न मानमिति विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकस्य तत्साधारणस्यैव कल्पनीयतया प्रत्यक्षत्वजातिः सेत्स्यतीति नाशङ्कनीयम्, यथा च तादृशजन्यतावच्छेदकस्यानुमित्यादिसाधारण्याभावेऽपि न काचित्क्षतिस्तथोक्तमनुभवत्वस्य**

राजहंसः

ग्राह्यमिन्द्रियसन्निकृष्टमिति । किन्तु प्रत्यक्षायोग्यम्, प्रत्यक्षयोग्यस्यापि ग्रहणं तु तदंशे परं साक्षात्त्वानुभवप्रदर्शनार्थं स्यात् ।

भारती

ज्ञान में घटविषयकत्वावच्छेदेन साक्षात्त्व का और परमाणुविषयकत्वावच्छेदेन परोक्षत्व का अवगाहन होता है । इस प्रकार अनुभवानुरोधी आंशिक परोक्षत्व का अवगाहन में कोई विवाद नहीं है । तथा च परोक्षत्व – साक्षात्त्व उभय का एकत्र समावेश होने से साङ्कर्य दोष के कारण साक्षात्त्व जाति नहीं हो सकती । (यहाँ परमाणु पद असन्निकृष्टपरक है एवं आदि शब्द से इन्द्रियसन्निकृष्ट ग्राह्य है ।) अन्यथा अर्थात् यदि कहें कि उक्त ज्ञान में परमाणु अंश में भी ज्ञानलक्षणा अलौकिकसन्निकर्ष के विद्यमान होने से तादृशसन्निकर्ष से परमाणुविषयकत्वावच्छेदेन भी प्रत्यक्षत्व ही है न कि परोक्षत्व, अतः साङ्कर्य नहीं है तो इस प्रकार उपनयसन्निकर्ष को प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक मानने पर – लिङ्गबुद्धि अर्थात् व्याप्यत्वस्वरूपलिङ्गत्वविशिष्ट विषयकज्ञान रूप ज्ञानलक्षणासन्निकर्ष से वह्निरूपसाध्य का भी ज्ञान मानस प्रत्यक्ष ही हो जायेगा, न कि लिङ्गजन्य होने से अनुमिति । अतः अनुमानमात्र का उच्छेद हो जायेगा यह कहा जा सकता है ।

एवं ''सोऽयं शिव'' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा में भी तत्तांश में स्मृतित्व (परोक्षत्व) तथा इदन्तांश में साक्षात्त्व होने से साङ्कर्य है । क्योंकि पूर्वदेशकाल के सम्बन्धांश में ''पश्यामि'' इत्याकार अनुभव किसको होता है ? जिसके बल से प्रत्यभिज्ञा में तत्तांश में भी प्रत्यक्षत्व

इत्यत्र न नः सम्प्रतिपत्तिः, अन्यथा लिङ्गबुद्धिलक्षणया प्रत्यासत्त्या वह्निरपि मानसप्रत्यक्ष एव, न लैङ्गिक इति परेण सुवचत्वात् । एवं प्रत्यभिज्ञायां पूर्वदेशकालस्थितिमस्य पश्यामीति कस्यानुभवो यद्बलात्तथाभ्युपेयम् । तस्मात्प्रतीतिकलहोऽयम् ।

शारदा

जातित्वखण्डने पुरेति वाच्यम्; लाघवात्तादृशजन्यतावच्छेदकतया प्रत्यक्षत्वजातिसिद्धेरित्याशङ्क्याह अन्यथेति । **उपनयसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षत्वप्रयोजकत्वे इत्यर्थः। वस्तुतस्तु क्लृप्ततया तादृशविषयिताविशेषे एव प्रत्यक्षमात्रानुगतत्वं कल्पयितुमुचितम्, नह्यांशिकत्वमपि जन्यतावच्छेदकतां विरुणद्धि। किञ्च कल्प्यमानाया अपि जातेरनुगतत्वं न शक्यसमर्थनम्, व्यक्त्यन्तरसङ्गतायास्तस्य अभिनवव्यक्त्यन्तरे सङ्गत्ययोगात्, विभुत्वस्य द्रव्यधर्मत्वात्, नच तदुत्पत्तेः प्रागपि कालिकेन तद्देशे तस्या वर्तमानतयोत्पन्नमात्रस्य तद्योगः यदाहुः 'जातः सम्बद्धश्चेत्येकः काल' इतीति वाच्यम् ; इदानीमत्र घट इत्यादिप्रतीतिर्हि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतामवगाहते घटादौ घटसंयुक्तादिदेशावच्छेदेनैव, नतु घटासंयुक्तादिदेशावच्छेदेन, नहि कस्यचित्सुस्थात्मनो मतिरुदेति घटानधिकरणेऽपि भूतले तादृशी, एवञ्च कालस्य विभुत्वेऽपि, उपाधिरूपस्यापि च तस्य सर्वत्र सुलभत्वेऽपि घटानधिकरणदेशावच्छेदेन तस्य घटाधिकरणत्वाभावव्यवस्थितौ न घटत्वाधिकरणतापि तदवच्छेदेनेति पूर्वं घटानधिकरणे देशे उत्पन्ने घटे कथं घटत्वस्याभिसम्बन्धः । एतेन दैशिकविशेषणतया सर्वदेशसम्बद्धत्वरूपं जातेर्व्यापकत्वमित्यप्यपाकृतम्; तत्राप्यवच्छेदकविशेषस्यापेक्षणीयत्वात् । तस्मात्सुगीतं सौगतैः– ''न याति न च तत्रासीन्नचोत्पन्नं नचांशवत् । जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसन्तति''रिति । एतच्च न केवलं जातावपि त्वनुगतधर्ममात्रे द्रष्टव्यम् । नचानुगतमतिबलादेव तत्सिद्धिः, विषयस्य दुर्निरूपत्वे तस्याः प्रमात्वस्याविश्वसनीयत्वात् । प्रकृते च साक्षात्करोमीति प्रतीतेर्विषयिताविशेषे एव मानतयाऽभ्युपगतत्वेन जातौ नानुगतमतेर्मानताशङ्कापीत्यधिकं द्रष्टव्यम् । वेदान्तिनां तु जातिमात्रस्य ब्रह्मरूपत्वं वा, अविद्यारूपत्वं वा, अविद्याकार्यान्तर्गतत्वं वेति मतत्रयमित्याद्ये प्राङ्निवेदितब्रह्मसिद्धिरेव तत्सिद्धिः, द्वितीययोश्चानिर्वाच्यत्वमिष्टमेवेति न काचित्क्षतिः।** लिङ्गबुद्धीति । **व्याप्यत्वरूपलिङ्गत्वविशिष्टविषयकबुद्धीत्यर्थः। एवञ्चैतादृशबुद्ध्या साध्यस्यापि**

राजहंसः

कथं घटत्वस्याभिसम्बन्ध इति । काले जातेरनवच्छिन्नवृत्तिकत्वमेव, संशयत्वादेर्जातित्वमतेऽपि नानुपपत्तिः, तस्य कालेऽनवच्छिन्नवृत्तिकत्वेऽपि व्यञ्जकानुरोधेन व्यक्तौ तत्तत्कोटिविषयकत्वाद्यवच्छेदेन वृत्तिमत्त्वोपपत्तेरिति मतं हि न युक्तम्, घटत्वादेर्धर्मतामधिगच्छतोऽवच्छेदकं धर्मिविशेषमस्पृशन्त्या इदानीं घटत्वमित्यादिमतेःस्वरसतोऽनुदयात् । अवच्छेदकविशेषमनपेक्ष्यैव सर्वव्यापकत्वाविशेषेऽपि

भारती

माना जाय । तस्मात् उक्तज्ञानों में सर्वांश में प्रत्यक्षत्व का मानना अनुभवविरुद्ध है । तथा च प्रत्यक्षत्व और परोक्षत्व के आंशिक होने से साङ्कर्य दुर्वार है । अतः साक्षात्त्व जाति नहीं हो सकती ।

शारदा

विषयीकरणादुपनीतस्य तस्य धर्मिप्रत्यक्षे भानसम्भवः, यो यत्र विशिष्य पूर्वमवगतः स तत्र संस्कारवशात्प्रत्यक्षे भासते' इति नियमस्त्वप्रामाणिक इति भावः। वह्निरिति । **पक्षधर्मताबललभ्यसाध्यप्रसिद्धेरनुमानानङ्गत्वेन सामान्यप्रत्यासत्तेरप्रामाणिकत्वेन च प्रागज्ञातपर्वतीयादिवह्निव्यक्तेस्तादृशप्रत्यासत्तिविधुरतया कथं मानसप्रत्यक्षविषयताऽ-ऽशङ्क्येतापीति तु मा शङ्किष्ठाः, केवलान्वयिप्रकरणे ''व्यतिरेकव्याप्तिग्रहाधीना च धीर्नानुमितिस्तत्त्वेनाननुभवात्, कलृप्तकारणाभावात्, सामग्रीभेदकल्पनायाश्चानु-भवैकाधीनत्वात्, किन्तु विजातीया, तत्करणमपि च प्रमाणान्तरमर्थापत्तिरेवे''त्याद्य-भिदधानैस्तार्किकशिरोमण्यादिभिरप्यप्रसिद्धसाध्यकस्थलेऽर्थापत्तेरेवाङ्गीकारात्, किं पुनरङ्ग धर्मब्रह्ममीमांसकैः। अप्रसिद्धत्वञ्च भावस्य वाऽभावस्य वेत्यन्यत् । प्रसिद्धसाध्यकानुमिति-मात्रोच्छेदेऽपि तार्किकैरिष्टापत्तेः कर्तुमशक्यत्वाच्चेति भावः।** मानसेति । **धर्मिणो**

राजहंसः

च घटत्वादिकमत्रैव व्यज्यते नान्यत्रेति कुतः । वस्तुस्वभावादितिचेदसौ घटत्वादिकं वा घटादिकंवा, व्यञ्जकविशेषो वा, नाद्यः, नियम्यनियामकभावविरोधात्, न द्वितीयः, घटत्वाद्यभिसम्बन्धं विना हि कथं घटादिकत्वम् । न तृतीयः, अक्षसन्निकर्षाविशेषेऽपि संस्थानं प्राक्प्रतीयते जातिस्तु परत इत्यस्याविनिगम्यत्वात्, एकज्ञानविषयत्वनियतौ व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावकल्पनाया निर्मूलत्वात्। ब्राह्मणत्वादिजातेः स्वाविषयकज्ञानविषयशब्दविशेषव्यङ्ग्यत्वमिति भट्टादिपक्षस्तु सर्वथैवाश्रद्धेयः, सन्ततिविशेषप्रसूतत्वश्रवणेन ब्राह्मणत्वादेरनुमानं परं स्यात्, न तु प्रत्यक्षात्मिकाऽभिव्यक्तिः, न च प्रत्यक्षत्वाभावेऽपि प्रत्यक्षयोग्यव्यक्तिगतधर्मस्य जातित्वम्, प्रसिद्धजातिवैलक्षण्येऽपि जातित्वं तु दुराग्रहैरेव रक्षितम् । अतएव प्राभाकरैःसन्ततिविशेष-प्रसूतत्वमेव ब्राह्मणत्वादिकमुच्यते न तु जातिरूपम्, संस्थानेनैव जातेरभिव्यक्तेः । तन्त्रालोकपरात्रिंशिकादौ मुकुटसंहितानुसारिश्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यादिदर्शितदिशा ब्राह्मणत्वादेः सन्ततिविशेषप्रसूतत्वरूपताऽपि नास्ति, किन्तु स्वभावविशेषरूपतेत्यन्यत् । मनुष्यत्वव्यवहारप्रयोजकाकृतिविशेषे पित्रोरनन्यथासिद्धत्वेऽपि शमाद्यौपयिकशक्तिविशेषस्य सङ्कल्पबलेन वीर्ये रजसि चाधानं विना ब्राह्मणत्वादौ तयोरन्यथासिद्धत्वात्, स्वकीयादृष्टविशेषमात्रेणापि च पुत्रे शमाद्युपपत्तेः । अल्पे वयस्युपनेतव्यः स्याद्, ब्राह्मणः, शान्तात्मा च स स्यादित्यादिस्थले तु गृहस्थः सदृशीं भार्यामुपेयादित्यादिस्थले इव भाविनीं वृत्तिमाश्रित्योद्देश्यता । ब्राह्मण इत्यस्य ब्राह्मणपदभागबुभूषुरित्यर्थपर्यवसानात् । भूयस्त्वात्तु तद्वाद इति न्यायेन च शमादिप्राधान्येन ब्राह्मणत्वादिव्यवहारः, तेन ब्राह्मणत्वादिना प्रामाणिकव्यवहारविषयेऽपि कदाचित्क्रोधाद्युद्भवे न सहसैव ब्राह्मणत्वादिव्यवहारत्याग इत्यादिकस्तेषामाशयः स्वयमूहनीयः । प्रकृतमनुसरामः

प्रतिव्यक्तिविश्रान्तत्वेन संस्थानस्यैव जातित्वं तु केनोच्येत, तस्यापि किञ्चिदनुगतं धर्मान्तरमादायानुगमस्तु पुनर्दुरवस्थातिरिक्तजातिं शरणीकरोति । अतएव संस्थान-विशेषावच्छिन्नसत्तायास्तत्तज्जातिस्थानीयत्वमिति पक्षोऽप्यपासनीयः । तत्तद्घटव्यक्ति-भेदकूटवदवृत्तिविषयतासम्बन्धेन यावद्घटव्यक्तिषु सम्बद्धं तावद्विषयकं ज्ञानमेव 'अयं

शारदा

बहिरिन्द्रियसन्निकृष्टतास्थले यद्यपि साध्यस्य चाक्षुषत्वादिकं वक्तुं शक्यते, तथापि परमाण्वादिपक्षकस्थलाभिप्रायेणेत्थमभिधानमनुमितिमात्रोच्छेदस्य मानसत्वस्यैवोपनायकज्ञानजन्यतावच्छेदकतायाश्च सूचनाय । यद्यपि बहिरिन्द्रियजन्यज्ञानेऽप्युपनीतभानम्, तथापि विशेषणतयैव, बहिरिन्द्रियाणां स्वायोग्यमुख्यविशेष्यकज्ञानाजनकत्वनियमात्, एवञ्च तत्रोपनायकज्ञानस्य विशेषणज्ञानविधयैव कारणतासम्भव इति मानसत्वस्य तद्व्यावृत्तत्वेऽपि न क्षतिः । मानसे तु स्वातन्त्र्येणैव तत्रोपनीतस्य विशेष्यतयापि भानेन विशेषणज्ञानविधया कारणतया विशिष्टबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितयाऽनिर्वाहादिति भावः। इदन्त्ववधेयम्– उपनयज्ञानजन्यतावच्छेदको यदि जातिविशेषः प्रत्यक्षत्वातिरिक्तस्तदा चाक्षुषत्वादिनातस्यांशिकत्वसाङ्कर्ये बहुजातिविप्लवस्य हेतू मा भूतामिति तत्परित्यज्य प्रत्यक्षत्व एवोपनायकज्ञानजन्यतावच्छेदकता स्वीकार्या, परन्तु परोक्षत्वादिना साङ्कर्यांशिकत्वे तस्याप्युपप्लावके इति त्यक्तव्यं तदपीत्यहो व्यसनम् । नहि सर्वांशे प्रत्यक्षत्वं सर्वांशे 'साक्षात्करोमी' त्यनुभवमन्तरेण शक्यं व्यवस्थापयितुम् , लौकिकालौकिकविषयताविभागस्यालौकिकप्रत्यक्षसिद्धिं विना गर्तवर्तिगोधामांसविभजनानुकारित्वात् । सुरभि चन्दनमित्यादिर्हि सौरभादिप्रकारकत्वेन प्रमा वा, सुरभिर्गन्ध इत्यादिवत्सौरभत्वादिप्रकारकत्वेन भ्रमो वोभयथापि तत्रालौकिकप्रत्यक्षत्वे न मानम्, तस्यांशिकस्मृतित्वस्य वा प्रत्यक्षधर्मिकानुमितौ प्रत्यक्षत्वानुमितित्वयोः साङ्कर्यमभ्युपेतवतो मते आंशिकानुमितित्वस्य वा मतान्तरेऽनुमितित्वस्यैव वाऽनुभवमनुरुन्धतोऽभ्युपगमौचित्यात्। आस्तां वा सौरभाद्यंशे तस्य ज्ञानत्वमात्रं नतु स्मृतित्वादिकम्, अनुभवानुरोधस्यात्याधिक्यात् । प्रत्यक्षत्वादेर्विशेषस्य विरहे ज्ञानत्वस्य सामान्यस्यावस्थानं कथमिति तु भगवज्ज्ञाने प्रत्यक्षत्वानुभत्वयोरप्रामाणिकत्वं परामर्शप्रकरणे ब्रुवाणो भट्टाचार्य एव प्रष्टव्यः । अंशान्तरमादाय तादृशज्ञाने प्रत्यक्षत्वस्य सद्भावाच्च । एतेन ज्ञानप्रत्यासत्त्यनभ्युपगमे वह्निमनुमिनोमि स्मरामि

राजहंसः

घटः' इत्यादौ स्वरूपतः प्रकारतया भासमानं घटत्वमिति रीतिस्तु निराकृता दर्शनसर्वस्वे शरीरशरीरिभावभङ्गे । तादृशज्ञानव्यक्तीनामपि नानात्वेनानुगतव्यवहारनिर्वाहकत्वासम्भवस्तु स्पष्ट एव। किञ्च सर्वेषां घटानां भानं विना तादृशज्ञानस्य 'अयं घटः' इत्यत्र स्वरूपतो भानमश्रद्धेयम्, न च सर्वे घटभान्ति कस्यचित्, प्रत्युत सर्वघटान् जानामीति वदन्तमुपहसन्ति । सामान्यलक्षणप्रत्यासत्तिनिराकृतिशारदा चात्रानुसन्धातव्या । न चापरोक्षज्ञाने परोक्षज्ञज्ञानस्यापि सर्वविषयकस्य स्वरूपतो भानं सम्भाव्यत इति विभावनीयम् । युक्त्यन्तरं च जातिमात्रखण्नस्य 'प्रत्यक्षत्वस्यैकत्वे पटाविषयकप्रत्यक्षेऽपी'त्यादिना शारदायामग्र व्यक्तामनुपदम् ।

प्रत्यक्षत्वातिरिक्त इति । प्रत्यक्षत्वेन मानसत्वमप्युपलक्षणीयम् ।

प्रत्यक्षत्वे एवेति । मानसत्वे उपनायकज्ञानजन्यतावच्छेदकताया निरसिष्यमाणत्वादिति भावः।

वह्निमनुमिनोमि स्मरामीत्यादि । अत्रानुमित्यादेः प्रत्यासत्तित्वं बह्निभानार्थं विवक्षितम्।

शारदा

साक्षात्करोमीत्यादिप्रत्ययानां विषयांशे का गतिरिति प्रत्यादिष्टम्; एकत्र विषयविषयिभावाभ्युपगमे तादृशप्रत्ययानां स्वांशे प्रत्यक्षत्वं विषयांशे तु यथायोगमनुमितित्वस्मृतित्वसाक्षात्कारित्वादिकमेव । मानसप्रत्यक्षाभ्युपगमे तु विषयांशे ज्ञानत्वमेवोक्तरीत्या, व्याप्तिज्ञानादिजन्यत्वाभावेन मानसप्रत्यक्षस्य तदंशेऽनुमितित्वादेर्वक्तुमशक्यत्वात् । एवमेव साक्ष्यभ्युपगमेऽपि विषयांशे ज्ञानत्वमेव समर्थनीयम् । किञ्च वृत्यात्मकज्ञानविषयकत्वावच्छेदेनापि न साक्षिणि प्रत्यक्षत्वादिकम्, तस्य वृत्तिगतत्वाभ्युपगमात्, अपरोक्षत्वं तु तदीयमज्ञानविषयतासामान्याभावप्रयोजकवैशिष्ट्यात्मकं प्रत्यक्षत्वव्यावृत्तमेव, तच्चेन्द्रियजन्यज्ञानविषयघटादिविषयकत्वावच्छेदेन साक्षिणि निराबाधमेव, अनुमित्यादिविषयघटादिविषयकत्वावच्छेदेन त्वज्ञानविषयताविशेषाभावप्रयोजकवैशिष्ट्यमेव तत्रेत्यवधेयम् । एतेन– विशिष्टप्रत्यक्षत्वविशेषणज्ञानत्वाभ्यां विशिष्टवैशिष्ट्यप्रत्यक्षत्वविशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वाभ्यामेव च कार्यकारणभावो न तूपनयज्ञानमादायापि कश्चित्पृथक्, अन्ततोऽहमर्थस्यैव विशेष्यतासम्भवेन मानसेऽपि विशेषणतयैवोपनीतभानस्य वक्तव्यत्वात् । अतएव सर्वांशेऽप्युपनीतभाने न मानम् । कार्यतावच्छेदके चानुमित्यादिसाधारणधर्मस्याप्रवेशेऽपि न काचित्क्षतिर्यथा तथोदितमनुभवत्वस्य जातित्वखण्डने पुरेत्यपि– नाशङ्कनीयम् ; एतावता ज्ञानजन्यत्वस्य प्रत्यक्षे सिद्धावपि यद्विषयकज्ञानजन्यत्वं तदंशे लौकिकसन्निकर्षविरहदशायां प्रत्यक्षत्वस्यासिद्धेः, उक्तरीत्यैवोपपत्तेः । आंशिकानुमितित्वाद्यभ्युपगमेऽपि विषयतानां निरूप्यनिरूपकभावविरहस्य ज्ञानद्वयवदभावेन विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धित्वविशेषणतावच्छेदकप्रकारकत्वाद्युपपत्तेः। प्रत्यक्षत्वव्यवहारस्य विशेष्यांशे लौकिकसन्निकर्षजत्वनिबन्धनस्यैवोपपत्तेः । आंशिकस्मृतित्वपक्षे तु संस्कारबलादेव तदुपपत्त्याविशेषणादिज्ञानस्य प्रागनपेक्षणीयतैवेति । प्रत्यक्ष एवेति । अनुमिनोमीति धीविषयता त्विदानीं व्याप्तिधीजननीके प्रत्यक्ष एवेदृशे वक्तव्या, वह्निं साक्षात्करोमीतिप्रत्ययप्रसङ्गस्त्वत्र पक्षे 'परमाणुं साक्षात्करोमी'त्यनेन समानः समानसमाधानश्चेत्युक्तप्रायम् । पक्षताजन्यत्वेन तु नानुमितित्वम्, ज्ञानस्येच्छाजन्यत्वाभावेन सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वेन च पक्षताया अनुमित्यहेतुत्वात्, न परं प्राभाकरवेदान्तिनोरेव, ''अनुमितावेव पक्षताया हेतुत्वस्य निरस्तत्वा''दिति केवलान्वयिग्रन्थे भणतः शिरोमणेरपि त्वत्रैव स्वरसः। विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनः परामर्शस्यानुमितिहेतुभावे तु विवाद एव । नच परामर्शत्वस्य मानसत्वव्याप्यजातिविशेषता प्रमाणसिद्धा येन तदवच्छिन्नजनकताकजन्यतयाऽनुमितित्वसिद्धिराशङ्क्येत । न वा व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चेयत्वेनापि जनकताऽनुमितिं प्रत्येव, स्मृतिविशेषं प्रत्यपि तथात्वात् । न वा व्याप्यपक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वमप्यनुमितित्वावच्छिन्नजन्यताकजनकतामवच्छिनत्ति, व्याप्त्यादेः साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकत्वेनानुमितिविशेषं प्रत्येव तादृशनिश्चयस्य जनकत्वात् । कार्यकारणभावानुगमाभावे च प्रकृतमानसप्रत्यक्षं प्रत्यपि तादृशनिश्चयस्य हेतुतायाः स्वीक्रियोपपत्तेः । केवलविशेषणज्ञानस्य हेतुतापक्षेऽपेक्षणीयकेवलवह्निस्मृतिद्वारैव

यदि च साक्षात्त्वजातिरध्यक्षमानिका, तदा प्रतीतौ कस्याञ्चि-

शारदा

व्याप्तिनिश्चयस्य वह्निविषयकस्यापि व्याप्त्यात्मकधूमसम्बन्धज्ञानविधयोपयोगोपपत्तेः। वस्तुतस्तु विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानासंसर्गाग्रहविशेष्यसन्निकर्षाणामेव पर्वतो वह्निमानित्यादिप्रत्यक्षेऽपेक्ष्यत्वाद्वह्नित्वप्रकारकस्मृत्यैव प्रकृते निर्वाहेऽपि व्याप्यव्यापकभावापन्नतयैव धूमवह्न्योः प्राग्गृहीततया धूमदर्शने वह्नेस्तथैव स्मरणमित्युक्तनिश्चयो वह्नित्वप्रकारकनिश्चयत्वेनैव हेतुतामासादयन्नपि व्याप्त्यादि-विषयकत्वघटितोक्तरूपेण न तामालम्बितुमीष्टे इति तेन रूपेण तस्यानुपयोगापत्तिरपि ज्ञाने प्रत्यक्षत्वप्रयोजकप्रत्यासत्तित्वाभ्युपगमानौचित्यमेव समर्थयते, यद्वक्ष्यति ''निमित्तस्यानत्यापत्तिद्वारस्यैव कल्प्यत्वा'' दिति । नचैवमत्रैव तदीयप्रत्यासत्तित्वं मा भूत्, अन्यत्र तु तद्भवत्केन वार्यत इति वाच्यम्; अन्यत्रापि तदुपयोगाभावेनैवेत्युक्तमेव । किञ्च को वा रागो व्याप्त्यादिविषयकत्वघटितरूपेण कारणतायामिति वक्तव्यम्, अननुगमस्य भवद्भिरेव स्वहस्तितत्वात् । किञ्चैवमनुमितित्वस्योपगमेऽपि प्रत्यक्षत्वव्याप्यताया एव तत्रोपगन्तव्यत्वेन प्रमाणविभागभङ्गो जागरूक एव । केचित्तु वह्न्यादिप्रमात्वस्य विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षात्मकनिश्चये वह्न्यादिव्याप्यवद्विशेष्यकवह्न्यादिप्रकारकज्ञानत्व-रूपवह्न्यादिप्रमात्वव्याप्यधर्मनिश्चयस्योपयोगेन परामर्शाकार्यतावच्छेदकतया 'अनुमिनोमी'ति धीविषयस्य जातिविशेषता सेद्धुं नालम् , तादृशव्याप्यधर्मवत्तानिश्चय-जन्यनिश्चयविषयीभूतप्रमात्वकप्रत्यक्षत्वस्यैव तादृशधीविषयत्वादित्याहुः। न लैङ्गिकः = नानुमितित्वावच्छिन्नविषयत्वेन व्यवहारार्हः। पश्यामीति । **लौकिकविषयताया ईदृशप्रतीतिविषयतामुपगम्य समाधानं तु न सम्भवतीत्युक्तम् । तथाभ्युपेयम् = प्रत्यभिज्ञायां तत्तांशे प्रत्यक्षत्वमभ्युपेयम् । प्रतीतिकलहोऽयम् = उक्तज्ञानेषु सर्वांशे प्रत्यक्षत्वोपगमोऽ-नुभवविरुद्धः । तथा च साङ्कर्यांशिकत्वयोर्दुर्वारतेति ।**

अत्र प्रकारान्तरेणाप्येते वक्ष्यति, प्रामाणिकयोरेतयोर्दोषताया अप्रामाणिकतोप-गन्तृमतसाधारण्येन तु दूषणान्तराणामभिधानं बौद्धव्यम्, तयोर्दोषत्वेऽप्रामाणिकताया अभ्युपगमेन यदि चेत्यादि ग्रन्थस्यावतारणं पुनर्नादृतम्, तथासत्यग्रे प्रकारान्तरेण तयोरभिधानस्यासाङ्गत्यापत्तेरिति । अध्यक्षमानिकेति । **अयं घट इति प्रत्यक्षानन्तरं**

राजहंसः

तादृशधीविषयत्वादित्याहुरिति । लघुचन्द्रिकोक्तपक्षेऽस्मिन्नयमस्वरसः—विपरीतज्ञानोत्तरत्वस्य वह्न्यादिप्रमात्वनिश्चये सर्वत्रासम्भवेन न सार्वत्रिकः परामर्शोपयोगोऽनयारीत्येति । **न लैङ्गिक इति।** अनुमितित्वस्य प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वानुपगमपक्षे व्याचष्टे **नानुमितित्वेत्यादि ।** तदुपगमपक्षे तु प्रत्यक्षत्वविरुद्धयाऽनुमितित्वमिह निषेध्यकोटौ ग्राह्यम् ।

भारती

यदि कहें कि ''अयं घटः'' इत्यादि प्रत्यक्ष के अनन्तर लिङ्ग शब्द आदि का प्रतिसन्धान न होने पर भी ''घटं साक्षात्करोमि'' इत्याकारक अनुव्यवसाय होता है अतः साक्षात्त्व जाति मानस प्रत्यक्ष रूप प्रमाण से सिद्ध है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि

दध्यक्षानध्यक्षविवादो न स्यात्, नहि घटादिप्रत्यक्षत्वे विवदन्ते। क्वचिदस्फुटत्वाद्विवाद इति चेन्मैवम्, निरंशे वस्तुनि कः स्फुटावभासः ? । यद्येकार्थसमवायिभिर्भूयोभिःसहोपलम्भः, स ज्ञानत्वादिवत्साक्षात्त्वेऽपि तर्हीति ज्ञानादित्वे न विवादः साक्षात्त्वे

शारदा

लिङ्गशब्दाद्यप्रतिसन्धानेऽपि घटं साक्षात्करोमीतिमतेरुन्मेषेण साक्षात्त्वस्य मानसप्रत्यक्षविषयत्वमिति भावः। कस्याञ्चिदिति। **ज्ञानवाय्वभावादिविषयिकायामित्यर्थः। सप्तम्यर्थोविशेष्यता। भट्टा हि ज्ञानज्ञानस्याभावज्ञानस्य च न प्रत्यक्षत्वमपि त्वनुमित्यनुपलब्ध्यादिरूपत्वमाहुः । वायोश्च प्रत्यक्षत्वानुमेयत्वयोः प्राभाकरनव्यतार्किकाणां प्राचीनतार्किकाणाञ्च विवादः। अध्यक्षानध्यक्षविवादः = प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वकोटिताकविप्रतिपत्तिः । घटादिप्रत्यक्षत्वे = घटादेः स्वरूपसत्त्वस्य प्रत्यक्षविषयत्वे सति तदीयस्वरूपसत्त्वे नहि विवदन्ते इत्यर्थः । तेनारम्भसंहतिविकारविवर्तसाकारशून्यवादानाश्रित्य घटादावपि विवाददर्शनेऽपि नासङ्गतिः। साक्षात्कारित्वस्य प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वयोर्विवादग्रस्तत्वे तु तदवच्छिन्नविषयत्वे विवादाभावाभिधानं न युज्यते । अस्फुटत्वात् = साक्षात्कारित्वस्य स्फुटावभासाभावात् ।** निरंशे इति। **तदीयभूयोऽवयवावभासाभावो हि तदीयस्फुटानवभासः,**

राजहंस:

ननु 'घटादिप्रत्यक्षत्वे' इत्यस्य घटादौ प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नविषयत्वे इतिकुतो नार्थः ? तत्राह,

भारती

साक्षात्त्व के प्रत्यक्ष सिद्ध होने पर ज्ञान-वायु-अभावादिविषयक प्रतीतियों के प्रत्यक्षत्वअप्रत्यक्षत्वविषयक विवाद नहीं होना चाहिए । (किन्तु विवाद देखा जाता है – भट्ट ज्ञान के ज्ञान तथा अभाव के ज्ञान को प्रत्यक्ष नहीं मानते, अपितु ज्ञानविषयकज्ञान को अनुमिति और अभावज्ञान को अनुपलब्धिजन्य मानते हैं । तार्किक उसे प्रत्यक्ष मानता है । इसी प्रकार वायु के प्रत्यक्षत्व एवं अनुमेयत्व में प्राभाकर नव्य तार्किक तथा प्राचीन तार्किकों का विवाद देखा जाता है । यह विवाद नहीं होना चाहिए, क्योंकि प्रत्यक्षसिद्ध में विवाद नहीं होता) जैसे घटादि की स्वरूपसत्ता के प्रत्यक्ष होने पर उसकी स्वरूपसत्ता में घटोऽस्ति न वा (घट है – घट नहीं है) इस प्रकार कोई भी विवाद नहीं करते ।

यदि कहें कि साक्षात्कारित्व के स्फुट अर्थात् स्पष्ट अवभास (ज्ञान) के न होने से इसमें विवाद हो रहा है तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि किसी वस्तु के सब अवयवों का भान न होना ही उसके ज्ञान में स्फुट अनवभास (स्फुट अवभासाभाव) कहा जाता है । किन्तु प्रकृत में तो साक्षात्त्व जाति निरवयव है अतः उसके ज्ञान में (स्फुट अवभास रूप प्रतियोगी के अप्रसिद्ध होने से) स्फुट अनवभास नहीं कह सकते ।

यदि कहें कि ज्ञानत्वसमानाधिकरण अनुभवत्व अपरोक्षत्वादि अनेक धर्मों (में रहने वाली निश्चयीयविषयता से निरूपिता विषयितानिरूपितविषयत्व) के सहित धर्मी का भान होना ही तत्स्फुटावभास है अतः प्रतियोगि अप्रसिद्ध नहीं है । यहाँ निश्चयीय विषयतानिरूपितविषयत्ताधर्मिक विषयता समझना चाहिए । तो यह कहना सम्भव नहीं है क्योंकि जैसे एक

त्विति विशेषो वाच्यः, दर्शनकृतां हि विवादो न मात्सर्येण वाङ्मात्रेण

शारदा

न च साक्षात्कारित्वस्य निरवयवस्य स सम्भवति, प्रतियोग्यप्रसिद्धेः। प्रतियोगिनि तत्तानिवेशे च साक्षात्कारित्वस्य क्वचिदपि स्फुटावभासासम्भवात्सार्वत्रिकत्वं विवादे तदीय आपन्नमिति भावः। तत्समानाधिकरणभूयोधर्मनिष्ठनिश्चयीयविषयतानिरूपितविषयतानिरूपितविषयत्वं तत्स्फुटावभास इति न प्रतियोग्यप्रसिद्धिः, धर्मेऽवयवत्वानुपादानात्, सामानाधिकरण्यं तु तत्तस्थले तत्तत्सम्बन्धेनैवोपादेयमित्याशङ्क्याह यदीति । ज्ञानादित्वे इति । वाय्वादिप्रतीतेरित्यादिः । साक्षात्वेत्विति । विवाद इत्यनुषङ्गः। इतीतिलुप्तसप्तमीकम् । विशेषो विनिगमना । ज्ञानत्वसमानाधिकरणनिश्चयत्वानुभवत्वादीनां निश्चये यथा ज्ञानत्वे न संशयः, तथा साक्षात्त्वस्यापि समानाधिकरणानां तेषां निश्चये साक्षात्त्वे कुतः संशयः। अथ तद्व्याप्यधर्मदर्शनमेव तत्स्फुटाभासः, निश्चयत्वादिकं च ज्ञानत्वस्य व्याप्यं नतु साक्षात्त्वस्येति तद्दर्शनस्य कथं साक्षात्त्वसंशयापहन्तृत्वं स्यात्, इन्द्रियजज्ञानत्वार्थजज्ञानत्वादिरूपस्य साक्षात्त्वव्याप्यस्य निश्चये तु न भूयते एव साक्षात्त्वसंशयेनेति चेन्न; तादृशव्याप्यधर्मघटकजन्यतायाः स्वावच्छेदकीभूतसाक्षात्त्वग्रहं विना ग्रहीतुमशक्यतयाऽन्योन्याश्रयप्रसङ्गात् । नच प्रत्यक्षलक्षणानां सर्वेषां सति निरासे धर्मान्तरं किञ्चित्साक्षात्त्वव्याप्यं सुनिरूपं स्यात् । अथ साक्षात्करोमीतिप्रतीतिसाक्षिकविषयिताविशेषस्यैव प्रत्यक्षत्वव्यञ्जकत्वम्, सर्वांशे उपनीतभानानभ्युपगमेन तस्य प्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वात्, तादृशप्रतीतिविरहदशायामेव च क्वकचित्प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविवादः, तादृशप्रतीतिविरह एव कुत इत्यत्र तु दोष एव शरणीकरणीय इति चेन्न; दोषत्वदुर्विवेकतायाः प्रागुदीरितत्वात्। प्रतीतिविषययोः परस्परायत्तविशेषकत्वेऽन्योन्याश्रयाच्च । उक्तरीत्या प्रत्यक्षत्वस्यानुगतताया वक्तुमशक्यत्वेन तस्योक्तप्रतीतिसाक्षिकविषयिताविशेषानतिरिक्तत्वाच्च । प्रत्यक्षत्वस्यैकत्वे पटाविषयकप्रत्यक्षेऽपीदं ज्ञानं पटीयप्रत्यक्षत्ववदित्यापत्तेश्च । तत्र पटीयत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वाधारताविरहान्न तथा प्रत्यय इति चेत्तथापि विशेष्यवृत्तिधर्मस्य विशिष्टानुयोगिकाभावानभ्युपगमेनात्रज्ञाने पटीयप्रत्यक्षत्वमितिप्रतीतेरापत्तेः। तादृशासाधारणताया अतिरिक्तत्वोपगमे पटीयप्रत्यक्षत्वातिरिक्तताया अनपराधित्वाच्च । अनुपपद्यमानस्य स्वोपपादकमात्रकल्पकत्वेन तदतिरिक्ततां विना तदाधारतातिरेकस्यासम्भवेन तस्या आवश्यकत्वाच्च। नहि यदभेदस्तन्निष्ठनिरूपकतानिरूपिताधारताभेदोऽन्यत्र दृष्टचरः । प्रत्यक्षत्वस्य नानात्वे तु न सखण्डत्वम्, लक्षणनिरासात्, अखण्डत्वे तु तादृशविषयिताविशेषात्मकतैवेति

राजहंसः

साक्षात्कारित्वस्येति । ग्रस्तत्वे त्विति । घटादाविति शेषः । **न युज्यत इति ।** तादृशविवादस्य घटादिप्रतीतेः प्रत्यक्षत्वजातिमत्तायां पर्यवसानादितिभावः ।

निश्चयीयविषयतानिरूपितविषयतेति । इयं धर्मिणि ।

भारती

ज्ञान रूप धर्मी में समवायी ज्ञानत्व साक्षात्त्व अनुभवत्वादि धर्मों के मध्य ज्ञानत्व धर्म में स्फुटावभास है उसी प्रकार ज्ञानगत साक्षात्त्व में भी स्फुटावभास है ऐसी स्थिति में ज्ञानात्वादि

वा, किन्तु तत्त्वाभिमानादेव । प्रत्यक्षार्थधर्मिकायां चानुमायां साक्षात्त्वपरोक्षत्वसङ्करो दुर्वारः । परोक्षत्वं न जातिः, किन्तु साक्षात्त्वमेव तथा, केवलं तु साक्षात्त्वाभावः परोक्षत्वमिति चेन्न; अस्यार्थस्य विनिगन्तव्यत्वापत्तेः । सर्वज्ञमनुमन्यमानस्य च मते

शारदा

तन्निरासभागिता दुर्वारेति । तदेतत्सूचयन्नाह दर्शनकृतामिति। **परीक्षकाणामित्यर्थः। तत्त्वाभिमानात् = अस्माभिरुच्यमानं प्रामाणिकमेवेत्यभिमानात् । तथा च स्वपक्षस्य प्रामाणिकत्वसिद्ध्यै प्रोक्तार्थे विनिगमना वक्तव्यैवेति भावः।** प्रत्यक्षेत्यादि। **प्रत्यक्षार्थः = प्रत्यक्षविषयः, गिरिरग्निमानित्याद्यक्षसन्निकृष्टोद्देश्यिकायामित्यर्थः। अक्षासन्निकृष्टोद्देश्यकानुमितौ साक्षात्त्वाभावसमानाधिकरणं परोक्षत्वम् । एवमनुमितित्वेनापि साङ्कर्यं द्रष्टव्यम्।** सङ्कर इति । **आंशिकत्वस्याप्युपलक्षणमिदम् । अनुमितेर्धर्मिविषयकत्वनियमेन ज्ञानद्वयस्य वक्तुमशक्यत्वात्, धर्म्यंशेऽप्यनुमितित्वोपगमे च पर्वतमनुमिनोमीत्यनुव्यवसायापत्तेः, पर्वतं साक्षात्करोमीत्यनुभवानापत्तेश्च। अतएव प्रत्यक्षत्वानुमितित्वयोरखण्डविषयिताविशेषत्वमेवेति केचित्तार्किकाः। अखण्डविषयत्वासम्भवस्तूक्तः ।** न जातिरिति । **अनुगतमत्यादेर्मानस्याभावादिति शेषः। जात्येव हि साङ्कर्यांशिकत्वे दुष्यत इति भावः । तथा = जातिः, साक्षात्करोमीत्यनुगतमत्या विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेदकतया च तत्सिद्धिरिति भावः। साक्षात्त्वाभावः = साक्षात्त्वाभाववज्ज्ञानत्वम् ।** विनिगन्तव्यत्वेति । **साक्षात्करोमीति प्रतीतेरलौकिकप्रत्यक्षाभ्युपगमे**

भारती

में विवाद नहीं है और साक्षात्त्व में विवाद है इसमें कुछ कारणविशेष कहना होगा । विवेकज्ञानकुशल दार्शनिकों का यह विवाद है अत: मात्सर्य (ईर्ष्या) तथा वाङ्मात्र से नहीं, अपितु "हमारे द्वारा उक्त प्रामाणिक ही है" इत्याकारक तत्त्व के अभिमान से किया जाता है। (तथाच स्वपक्ष में प्रामाणिकत्व की सिद्धि के लिए कुछ विनिगमक प्रमाण कहना ही होगा।)

किञ्च पर्वतो वह्निमान् इत्याकारक प्रत्यक्ष धर्मिक अनुमिति में साक्षात्त्व एवं परोक्षत्व का साङ्कर्य दुर्वार है (क्योंकि यह अनुमिति पर्वत अंश में (पर्वतविषयकत्वावच्छेदेन) साक्षात्त्व (प्रत्यक्षत्व) है और वह्नि अंश में (वह्निविषयकत्वावच्छेदेन) परोक्षत्व है । इसी प्रकार अनुमितित्व के द्वारा भी साङ्कर्य दोष है ।)

यदि कहें कि विनिगमक प्रमाण के न होने से परोक्षत्व जाति नहीं है अपितु साक्षात्त्व ही जाति है । क्योंकि साक्षात्करोमि इत्याकारक अनुगतबुद्धि से तथा विशेषणज्ञानजन्यतावच्छेकतया साक्षात्त्व जाति सिद्ध है । परोक्षत्व तो केवल साक्षात्त्वाभाववज्ज्ञानत्व रूप ही है । तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि परोक्षत्व जाति नहीं है और साक्षात्त्व जाति है इसमें भी विनिगमक कहना होगा । (साक्षात्करोमि इत्याकारक प्रतीति के अलौकिक प्रत्यक्ष स्वीकृत होने पर लौकिकविषयिताविषयकत्व भी आवश्यक है और उक्तजन्यतावच्छेदक रूप से साक्षात्त्व जाति सिद्ध नहीं हो सकती यह कहा जा चुका है । एवं परोक्षत्व के जाति न होने पर भी

दृष्टलिङ्गादेरीशस्य लिङ्ग्यादिकबुद्धावपरोक्षत्वेनापि विरोधः । लिङ्गादिधीजन्यत्वमनुमित्यादौ प्रयोजकमिति चेन्न; साक्षात्त्वेऽपि तर्हीन्द्रियसन्निकर्षादिजत्वमिति साक्षादपि सा न स्यात् । व्यञ्जको-

शारदा

लौकिकविषयिताविषयकत्वस्यावश्यकत्वात्, उक्तजन्यतावच्छेदकतया च तत्सिद्ध्यसम्भवस्य निवेदितत्वादिति भावः। इदमुपलक्षणम्, परोक्षत्वस्य जातित्वाभावेऽप्यनुमितित्वेन जात्या साङ्कर्यात्, तस्य जातित्वानभ्युपगन्त्रा प्रत्यक्षत्वस्यापि तथात्वानभ्युपगमादिति । ननु धर्म्यंशे विधेयताख्यविषयताया विरहेण अग्निमनुमिनोमीत्यत्र च तस्या एव भानेन पर्वतमनुमिनोमीति प्रतीत्यापत्तेरसम्भवाद्धर्म्यंशेऽनुमितित्वाभ्युपगमेऽपि न काचित्क्षतिरिति न साङ्कर्यादिकम्, पर्वतः साक्षात्कृत इत्यनुभवस्तु परामर्शमूलः। यदाऽग्निरनुमितस्तदैव पर्वतः साक्षात्कृत इत्यनुभवस्य तु स्थूलकालमादायैवोपपत्तिः। अथेदृशकल्पना वा क्रियन्तामनुमितित्व-स्यांशिकत्वं वा मन्यतामित्यत्र किं विनिगमकमितिचेल्लाघवमेव, अनुमितित्वस्यांशिकत्वे हि विषयिताविशेषरूपताया वक्तव्यत्वात् तस्य चाननुगतत्वात्, सङ्किर्णजात्यभ्युपगमस्य चागतिकगतित्वात्, विषयिताविशेषस्याखण्डानुगतोपाध्यात्मकताभ्युपगमे चापसिद्धान्तात्, जातौ साङ्कर्यं दोषो नतूपाधावित्यत्र विनिगमकाभावाच्चेत्यस्वरसादाह सर्वज्ञमिति । **वस्तुतस्तु जातेरप्यनुगतत्वासम्भव इत्युक्तमिति विषयिताविशेषातिरेके तस्या न मानसौलभ्यमित्यवधेयम्। अपरोक्षत्वेनापि = अपरोक्षत्वस्यापि सद्भावेन च । विरोधः= साङ्कर्यम् । ईश्वरज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात्, अन्यथोपादानलौकिकप्रत्यक्षविधया तस्य कारणत्वानुपपत्तेः, स्वसमानकालिकलिङ्गशब्दादिज्ञानसमवायिसमवेतत्वेन तु तस्यानुमितित्वादिकमप्यापन्नमिति**

भारती

अनुमितित्व के साथ साङ्कर्य होने से भी साक्षात्त्व जाति नहीं हो सकती ।)

किञ्च सर्वज्ञ ईश्वर के मानने वाले आचार्यों के मत में जहाँ ईश्वर को धूम ज्ञान के अनन्तर वह्नि का ज्ञान होता है वहाँ वह ईश्वरीय ज्ञान होने से प्रत्यक्ष है तथा लिङ्गज्ञान के अनन्तर अर्थात् स्वसमानकालिकलिङ्गज्ञानसमवायिसमवेत होने से अनुमिति (परोक्ष) भी है अतः उक्त ईश्वरगत ज्ञान में प्रत्यक्षत्व और परोक्षत्व का साङ्कर्य होने से साक्षात्त्व जाति नहीं हो सकती ।

प्रश्न – ज्ञानगत अनुमितित्वादि के प्रति लिङ्गादिधीजन्यत्व अर्थात् व्याप्तिज्ञान जन्यत्वादि प्रयोजक है, पूर्वोक्त ईश्वर ज्ञान के नित्य होने से वह व्याप्तिज्ञानादिजन्य नहीं है अतः अनुमिति रूप नहीं हो सकता । तथाच साङ्कर्य दोष नहीं है ।

समाधान – इस प्रकार मानने पर तो – साक्षात्त्व के प्रति भी इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यत्व प्रयोजक है और नित्य ईश्वर ज्ञान के इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य न होने से वह (ईश्वरगतज्ञान) साक्षात्कार अर्थात् प्रत्यक्ष भी नहीं होगा ।

(यदि ईश्वर ज्ञान को ज्ञानाकरणकज्ञानत्वेन प्रत्यक्ष मानेंगे तो इन्द्रियाद्यकरणकज्ञानत्वेन

पाधिनियता च जातिरिष्यते, नच तदत्र, उक्तप्रकारबाधात् । न च

शारदा

भावः । अनुमित्यादौ = अनुमितित्वादौ । प्रयोजकमिति । अन्यथा प्रत्यक्षत्वादिना सम्प्रतिपन्नानामस्मदादिज्ञानानामपि केषाञ्चिदनुमितित्वाद्यापत्तेः। तथाच नित्ये भगवज्ज्ञाने नानुमितित्वादिसम्भव इति भावः। सन्निकर्षादीत्यादिनेन्द्रियार्थौ गृह्येते । सा = ईश्वरगता धीः। ज्ञानाकरणकज्ञानत्वेन प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमेत्विन्द्रियाद्यकरणकज्ञानत्वेनानुमितित्वादेरप्यभ्युपगमं किन्न रोचयेः। किञ्च व्याप्त्यादिनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताकजन्यताकानुभवत्वेनानुमितित्वाद्यभ्युपगमे व्याप्त्यादेः साध्यादिभेदभिन्नमूर्तिकतयैकसाध्यकव्याप्त्यादिनिवेशेऽपरसाध्यकादिग्रहस्यानुमितित्वाद्यानापत्तिरित्यनुमिनोमीत्याद्यनुभवलादेवानुमितित्वादिकं व्यवस्थापनीयम्, नचेश्वरस्य तादृशानुभावाभवोऽस्मादृशा निर्णेतुं शक्यः। यदि च नित्यैकज्ञानस्य भगवतस्तादृशानुभवे मानाभावादेव तदभावनिर्णयः, तदा साक्षात्करोमीत्यनुभवाभावस्यापि तथैव निर्णय इति प्रस्थितं साक्षात्त्वेनापि ततः। तादृशानुभवाभावे ईश्वरज्ञानस्य सर्वविषयकत्वाभावप्रसङ्गस्तु समानः समानसमाधानश्च। नन्वीश्वरज्ञाने साक्षात्त्वानभ्युपगमेऽपि न क्षतिः, नचैवं तस्योपादानलौकिकप्रत्यक्षत्वेन कारणतानुपपत्तिः, लौकिकविषयतासम्बन्धेनोपादानज्ञानत्वेनैव कारणत्वोपगमसम्भवात्, नचेश्वरज्ञानस्य लौकिकविषयतापि प्रत्यक्षत्वाभावे कथम् ? तस्याःप्रत्यक्षत्ववन्मात्रनिरूपितत्वे मानाभावात्, ईश्वरज्ञाने प्रत्यक्षत्वव्यवहारस्तु लौकिकविषयितावत्त्वनिबन्धन औपचारिकएवेति चेन्न; यत्र यत्र साक्षात्करोमीतिप्रतीतिसिद्धलौकिकविषयिता तत्र प्रत्यक्षत्वमिति व्याप्तेर्निरुपप्लवत्वेन भगवज्ज्ञाने तादृशविषयितोपगमे प्रत्यक्षत्वस्यानिवार्यत्वात् । लौकिकालौकिकप्रत्यक्षीयविषयिताविभागस्याप्रामाणिकताया लौकिकविषयिताया एव प्रत्यक्षत्वात्मकतायाश्चोपपादितत्वाच्चेति । अथैवं धर्मिग्राहकमानेनैव तज्ज्ञानेऽपरोक्षत्वमप्यानीयते इत्यस्तु, नह्युपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिशून्यस्य कर्तृता नाम, अनुमितित्वादौ तु तज्ज्ञाने न मानमित्युक्तमेवेति चेदित एवास्वरसादाह व्यञ्जकोपाधिनियतेति। स्वलौकिकप्रत्यक्षजनकज्ञानविषयीभूतोपाधिव्याप्येत्यर्थः । तत् = निरुक्तव्यञ्जकत्ववत्। अत्र = प्रत्यक्षज्ञानेषु । तथाच व्यापकं व्यावर्तमानं स्वव्याप्यमपि व्यावर्तयतीति न तेषु प्रत्यक्षत्वं जातिरिति । इन्द्रियजन्यज्ञानत्वादेर्व्यञ्जकत्वमाशङ्क्याह उक्तेति । प्रकारो लक्षणीभूतो धर्मः । बाधात् = निरासात् । इदमुपलक्षणम् , उक्तधर्माग्रहेऽपि

भारती

उसे अनुमिति भी मानना होगा, ऐसी स्थिति में पुनः साङ्कर्य आपतित हो जायेगा ।)

किञ्च जाति व्यञ्जक उपाधि (स्वलौकिक प्रत्यक्ष जनक ज्ञानविषयीभूत उपाधि) से नियत अर्थात् व्याप्य मानी जाती है । यहाँ प्रत्यक्षज्ञान में उक्त इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यत्वादि लक्षणात्मक धर्म रूप व्यञ्जकों के निरस्त हो जाने से व्यञ्जक उपाधि नहीं है ऐसी स्थिति में ''व्यापकाभावाद्-व्याप्याभाव'' नियमानुसार व्यापकव्यञ्जक उपाधि के न होने से व्याप्यीभूत प्रत्यक्षत्व जाति भी नहीं हो सकती ।

व्यञ्जकनियमानभ्युपगत्या न तदत्रोपगम्यमिति वाच्यम्; किं मया

शारदा

प्रत्यक्षत्वस्यानुव्यवसीयमानत्वादित्यपि द्रष्टव्यम् । साक्षात्करोमीतिधीसिद्ध-लौकिकविषयिताविशेषस्य प्रत्यक्षत्वव्यञ्जकत्वशङ्का त्वनुपदं दत्तोत्तरैव । ननु चाक्षुषत्वादिजातेरेव प्रत्यक्षत्वव्यञ्जकत्वम्, व्यञ्जकाननुगमस्तु गुण एव नतु दोषः, अन्यथा तेनैव जातिकल्पनाप्रतिक्षेपापत्तेः, चक्षुःकरणकानुभवत्वादेस्तु न व्यञ्जकत्वम्, चक्षुराद्यग्रहेऽपि प्रत्यक्षत्वप्रत्यक्षोदयात्, निर्विकल्पकेश्वरयोगिप्रत्यक्षेषु तु धर्मिग्राहकमानसिद्धं प्रत्यक्षत्वमिति चेन्न; चाक्षुषत्वादिजातावपि व्यञ्जकप्रश्नस्य सावसरत्वात् । घटं पश्यामीत्यादिप्रतीतिसाक्षिकविषयिताविशेषस्य तद्व्यञ्जकत्वं तु न युक्तं वक्तुम्, चाक्षुषत्वस्यापि तादृशप्रतीतिविषयत्वेन ततः पूर्वमेव व्यञ्जकप्रतीतेर्वक्तव्यत्वात् । प्रत्यक्षत्वस्य लौकिकविषयिताविशेषात्मकताव्यवस्थापनन्यायेनोक्तेन तादृशविषयिताविशेष एव चाक्षुषत्वादिरिति वक्तव्यत्वाच्च । अस्त्वेवमिति चेद्विषयिताविशेषमात्रस्य बहुशो निरस्तत्वात्। पश्यामि स्पृशामीत्यादिप्रतीतिं विनैव साक्षात्करोमीतिप्रतीतिस्थले व्यञ्जकदौर्लभ्याच्च। उक्तन्यायस्य जातिमात्रापघातकत्वाच्च । नियमानभ्युपगत्येति । **यथा द्रव्यगतजातेः संस्थानव्यङ्ग्यत्वदर्शनेपि गुणादावप्यनुगतमतेरबाधितायाः सद्भावेन जातिविषयकत्वं संस्थानव्यङ्ग्यत्वनियमं परिभूयैवानुमन्यते, द्रव्ये एव वा ब्राह्मणत्वादेरुपदेशादिना सन्ततिविशेषजत्वव्यङ्ग्यत्वेऽपि जातित्वं स्वीक्रियते, क्वचिदन्यथादर्शनस्याप्रयोजकत्वात्, तथा व्यञ्जकसामान्यनियममप्यवधीर्य प्रत्यक्षत्वं जातिरस्तु, अनुगतमतेर्बाधकं विना जातिविषयकत्वादिति भावः। पूर्वं मयि जातं तद्विषयकज्ञानम्, किन्तु तत्प्रत्यक्षं वा शाब्दं वाऽसीदिति न निश्चिनोमीत्यानुभूयमानसंशयः प्रत्यक्षत्वादेर्व्यञ्जकग्रहाभावनिबन्धन एव वक्तव्यः, प्रत्यक्षत्वादेर्व्यञ्जकग्रहानपेक्षप्रत्यक्षविषयत्वे तादृशसंशये कारणीभूतस्य धर्मिज्ञानस्य**

राजहंसः

बहुशो निरस्तत्वादिति । विषयितागतविशेषस्य प्रतीतिसाक्षिकतया निरूपणे प्रतीतिविषययोः परस्परायत्तप्रमात्वसत्यत्वसिद्धिकत्वादितिभावः ।

उक्तन्यायस्येति । 'किञ्च कल्प्यमानाया अपि जातेः' इत्यादिना 'प्रत्यक्षत्वस्यैकत्वे पटाविषयकप्रत्यक्षेऽपी'त्यादिना च शारदायां प्रायोऽनुपदमुक्तन्यायस्येत्यर्थः । **जातित्वं स्वीक्रियत इति ।** भट्टादिभिरिति तु प्रसिद्धत्वाल्लब्धुं शक्यते । तेन वस्तुगत्या ब्राह्मणत्वादेश्चित्तगतयोग्यता-विशेषरूपत्वस्यैव पक्षान्तरापेक्षयोक्तरीत्या क्षोदक्षमतायाः सम्भवेऽपि न क्षतिः, योग्यताविशेषश्चासौ दृष्टादृष्टसामग्रीप्रसूततयाऽऽगमापायी, सङ्कीर्णश्च कचिद्द्विजातीययोग्यताविशेषेण, परशुरामद्रोणादौ, क्षत्रत्वब्राह्मणत्वोभयस्यैव प्रतिष्ठितत्वव्यवहारदर्शनात् । पक्षान्तरापक्षयपुरस्सरमेतत्पक्षोपपादनं तु स्वतन्त्रनिबन्धनिबन्धनमपेक्षते, न वा कलिकालस्यैव कवलतां कलयति धर्मेऽद्यश्वो विचार ईदृशःकस्यचिदुपेयस्योपायताप्युपैतीत्युपरम्यते ।

भारती

यदि कहें कि जाति व्यञ्जक उपाधि से नियत ही होती है'' इस नियम को हम नहीं मानते, तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि उक्तनियम के न मानने पर – ''क्या मैंने उसे देखा

दृष्टं तथा किं वा केनचित्कथितमिति संशयानुपपत्तेः, प्राग्भूतायां स्मर्यमाणायां तद्बुद्धौ त्वन्मते मनसा ज्ञानरूपया प्रत्यासत्त्या प्रत्यक्षीक्रियमाणायां साक्षात्त्वाग्रहो विना व्यञ्जकाभावं कथं स्यात्।

शारदा

प्रत्यक्षत्वेनैव शाब्दत्वेनैव वा धर्मिविषयकत्वं स्यात्, सामग्रीसद्भावात्, धर्मिज्ञानस्य संशयकारणतानुपगमेऽपि धर्मिण एकतररूपेणैव भानं स्यात्, नतु कोटिद्वयस्पर्शितया। नच दोषबलात्तथा भानमिति वाच्यम्; व्यञ्जकाग्रहातिरिक्तस्य दोषस्य प्रकृतेऽशक्यवचनत्वात्, कालविशेषादेर्व्यञ्जकग्रहविघटने एव चारितार्थ्यात् । एवञ्च व्यञ्जकसामान्यनियमो नावहेलनीय इत्याह किमित्यादिना । **इदानीमेवोत्पन्नं ज्ञानं धर्मीकृत्य तादृशसंशयोत्पत्तेर्विप्रतिपत्तिगोचरत्वसम्भवात्स्मर्यमाणत्वस्यापि चतुर्थक्षणात्प्राक्कथम्भप्यसमवाच्चोक्तं** प्राग्भूतायामिति। **स्मर्यमाणायामिति तादृशसंशये धर्मिभानप्रयोजकलाभाय । त्वन्मते = ज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वोपगन्तृमते। धर्मिणः प्रत्यक्षत्वाभावे न तज्जातेः प्रत्यक्षत्वशङ्काऽपि, स्मृतिस्तु जातेः प्रागनुभवं विना न निर्वहति प्रकृतानुपयुक्ता चेत्याशयेन** प्रत्यक्षीक्रियमाणायामिति । **साक्षात्त्वाग्रहः = साक्षात्त्वानिश्चयः। व्यञ्जकाभावं = व्यञ्जकग्रहाभावं। ननु तत्तज्ज्ञानव्यक्तेरेवात्र व्यञ्जकत्वमस्तु यद्यपि तस्या अप्यत्र ग्रहः, तथापि न स लौकिकप्रत्यक्षात्मकः, व्यञ्जकलौकिकप्रत्यक्षस्यैव च जातिलौकिकप्रत्यक्षहेतुत्वम्, किञ्च जातिलौकिकप्रत्यक्षजनकज्ञानविषयस्यैव व्यञ्जकत्वाभ्युपगमेऽपि तज्ज्ञानव्यक्तिविषयकज्ञानस्य चात्र सद्भावेऽपि धर्मिणो लौकिकप्रत्यक्षं विना जातिलौकिकप्रत्यक्षं कथं स्यादिति चेन्न; तत्तज्ज्ञानव्यक्तेर्ज्ञानत्वव्यञ्जकत्वसम्भवेऽपि न साक्षात्त्वव्यञ्जकत्वसम्भवः अन्यथा कर्मादिज्ञाने प्राभाकरैः सह तार्किकाणां साक्षात्वानुमितित्वादिविवादो न स्यात्, तज्ज्ञानव्यक्तेर्गृहीतत्वात्। एवञ्च कर्मादिज्ञानं साक्षात्कारात्मकं नवेत्यपि सन्देहो व्यञ्जकनैयत्यसमर्थकतया शक्योदाहरणः, तदभ्युपगमे व्यञ्जकाग्रहेणैव सन्देहोपपादनसम्भवात् । नच – व्यञ्जकसद्भावेऽपि तदग्रहो दोषविशेषादेव समर्थनीयः, एवञ्च तस्यैव व्यञ्जकासत्त्वेऽपि तादृशसन्देहार्जकत्वमस्तु लाघवादिति वाच्यम्; विसंवादिप्रवृत्तिस्थले भेदाग्रहायत्तस्यापि विशिष्टज्ञानस्य यथा न निरासः, तथा व्यञ्जकसिद्ध्यनन्तरं तदग्रहस्य**

राजहंसः

यथा न निरास इति । प्रवृत्तिं प्रति क्लृप्तकारणताबलाद्विशिष्टज्ञानसिद्धौ तदन्यथानुपपत्त्या कल्पनीयो भेदाग्रहः स्वोपजीव्यं विशिष्टज्ञानं प्रतिक्षेप्तुमप्रभुरितिभावः ।

भारती

था या किसी ने कहा (सुनाया) था'' इस प्रकार इष्ट वस्तु के विषय में संदेह होता है वह नहीं होगा, क्योंकि प्राक्काल में जात स्मर्यमाण उक्त बुद्धि के होने पर या तुम्हारे (तार्किक) मत में ज्ञान लक्षणा सन्निकर्ष के द्वारा मानस प्रत्यक्ष होने पर उसमें साक्षात्त्व जाति का अनिश्चय (संदेह) व्यञ्जकाभाव के विना कैसे होगा अर्थात् नहीं हो सकता । (जाति को व्यञ्जक से नियत मानने पर तो व्यक्ति का भान (प्रत्यक्ष) होने पर भी व्यञ्जजक रूप उपाधि के अनिश्चय (संदेह) से तादृश संदेह हो सकता है ।)

अर्थधर्मश्च साक्षात्त्वमिति स्वप्रकाशवादे निरास्यम् ।

शारदा

दोषविशेषेणोपपादनेऽपि तन्निरासासम्भवादिति भावः । वस्तुतस्तु बाधकान्तरमुक्तमेवानुसन्धे-यम् । जातेः संस्थानव्यङ्ग्यत्वनियममाद्रियमाणाः प्राभाकरास्तु – **साक्षाद्धीत्वं प्रत्यक्षत्वम्, यज्ज्ञानं यद्विषयकत्वावच्छेदेन ज्ञानाजन्यं तस्य तत्र साक्षात्त्वम्, मितिमातृविषयकत्वावच्छेदेन त्वनुमित्यादेरपि तथात्वात्साक्षात्त्वम्, स्वप्रकाशतासाधनात्, ज्ञानमात्रे मातुर्भानोपगमस्य चानुभवानुरोधित्वात्, आत्मानुमितेस्त्वात्मविषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वमिव परोक्षत्वमपि। ज्ञानत्वघटितधर्मावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतानवच्छेदिकाया यस्या विषयताया निरूपकं यज्ज्ञानं तदाश्रयविषयकत्वावच्छेदेन तस्य प्रत्यक्षत्वमिति हि विवक्षितम् । आत्मानुमितौ चानुमितिनिष्ठसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितात्मनिष्ठविशेष्यता तादृश्येव, आत्मानमहमनुमिनोमीति प्रतीतेः। निर्विकल्पकं त्वनभ्युपगमपराहतमिति तज्जन्यत्वमादाय क्वचिदव्याप्तिर्नोद्भावनीया, विशिष्टवैशिष्ट्यप्रत्यक्षेऽपि न विशेषणतावच्छेदकप्रकारकग्रहस्य कारणता, युगपदिन्द्रियसन्निकर्षेणैव तत्सम्भवादिति नाव्याप्तिः। दीर्घादिप्रत्यक्षमपि न ह्रस्वादिज्ञानजन्यमपि तु तद्व्यवहार एव । प्रत्यभिज्ञायास्तु तत्तांशे ज्ञानजन्यतया तदंशे परोक्षत्वमेवेति–** वदन्ति । **तदसदित्याह** अर्थ धर्मश्चेति । **मितिमात्रात्मकार्थविशेषनियन्त्रितं साक्षात्त्वमिति मतं वेदान्त्यभिमतस्वप्रकाशवादे स्थित्वा खाण्डनिकेन निरास्यमित्यर्थः। एकत्र विषयविषयिभावाप्रामाणिकत्वादिना संविदन्तरानपेक्षव्यवहारकत्वादेरेव स्वप्रकाश-पदार्थताया उक्तत्वात्स्वविषयत्वस्य तथात्वाभावात्, अयं घट इत्यहम्पदार्थाविषयकस्यापि ज्ञानस्यानुभवाच्च मितिमात्रंशे ज्ञानमात्रस्य प्रत्यक्षत्वोपपादनाय न यतनीयम्, तथाच यद्विषयकत्वावच्छेदेनेत्यस्य वैयर्थ्यम् । नच– प्रत्यभिज्ञायामिदन्तांशे प्रत्यक्षत्वोपपत्तये तदावश्यकम्, तस्यास्तत्तानुभवजन्यत्वादिति– वाच्यम् ; तत्तांशेऽनधिगतगोचरतायाः प्रागुपपादितत्वेन तदनुभवजत्वानुपपत्तेः । नच तथापि संस्कारद्वारा धर्मिविषयकानु-भवजत्वमावश्यकमेव, अन्यथा तत्तोल्लेखानुपपत्तेरिति वाच्यम् ; तथा सति शुद्धधर्म्यंशे एव परोक्षत्वापरोक्षत्वयोरनुभवविरुद्धयोरापत्तेः । अतएव स्वविषयत्वस्य स्वप्रकाशपदार्थतापक्षेऽपि नोक्तलक्षणसङ्गतिः आत्मानुमित्यादेरेकस्मिन्नेव विषये परोक्षत्वापरोक्षत्वयोरापत्तेः। अथात्मांशे तदनुमित्यादेरप्यपरोक्षत्वमेव, नतु परोक्षत्वम् वस्तुस्वाभाव्यात् , तदेतदप्युक्तम् –** अर्थधर्मश्चेत्यादिना । **कस्यचिदर्थस्य स्वभाव एवेदृशो यत्तदंशे साक्षात्त्वमेव ज्ञानमात्रस्येति तदर्थ इतीति चेत् ; आत्मा ज्ञानभिन्नो वा तदभिन्नो वा, आद्ये तस्योक्तस्वाभाव्ये मानाभावः, अन्यथा घटादेरपि तथात्वापत्तेः, जडत्वाविशेषात् , प्रमातृत्वस्य चाप्रयोजकत्वात् । द्वितीये तु संविद आत्मरूपतया नित्याया एव तस्याः स्वप्रकाशताया उपगन्तव्यत्वेन तत्प्रकाश्यानां जन्यज्ञानानां**

भारती

किञ्च – "साक्षात्त्व ज्ञान का धर्म नहीं है अपितु अर्थ का धर्म है ।" इस कथन का खण्डन तो हमने स्वयंप्रकाशवाद में कर दिया है ।

तथाप्यबाधितसाक्षात्त्वबुद्धिव्यवहारबलादन्ततः पदार्थान्तरमपि साक्षात्त्वमननुमत्य न निस्तारोऽस्ति, भ्रान्तेरप्यभ्रान्तिपूर्वकत्वादिति

शारदा

तद्विषयकप्रत्यक्षत्वोपपादनप्रयासवैफल्यमेव, तदेतदपि सूचितं स्वप्रकाशवादे इत्यनेन । **नित्येत्यादिः। वेदान्तिमतानुसारेण तत्तदुपाध्यवच्छिन्नायास्तस्या जन्यज्ञानमात्रविषयत्वोपगमेऽपि तादृशतद्विषयकत्वावच्छेदेन ज्ञानमात्रस्य प्रत्यक्षत्वं न प्रामाणिकमिति ध्येयम्। अत्र ज्ञानजन्यत्वाभावो ज्ञाने कं धर्मं धर्मितावच्छेदकीकृत्य प्रत्येतव्य इति तस्यावश्यनिरूपणीयत्वम्, नचासौ शक्यनिरूपणः, नचास्य साक्षात्करोमीति प्रतीतौ परिस्फुरणमित्यपि द्रष्टव्यम्। अर्थस्य घटादेरेव धर्मः साक्षात्त्वम् घटः प्रत्यक्ष इति व्यवहारात्, नचैवं क्वचित्प्रत्यक्षस्यापरत्र परोक्षता न स्यादिति वक्तव्यम्; यादृशस्य प्रत्यक्षविषयतान्यैरुच्यते तादृशस्यैव प्रत्यक्षताया मया वाच्यत्वात्, एवञ्च प्रत्यक्षत्वं न जातिः, नहि कदाचिद्गौर्न गौरिति पूर्वपक्षस्त्वतितुच्छत्वादुपेक्षितः, तथा सति जात्यतिरिक्तस्य साक्षात्त्वस्य लक्षणीयतापत्तेरेवाभिधेयत्वेन 'स्वप्रकाशवादे' इत्यस्यालग्नकता, एकत्र विषयविषयिभावनिरासपरतया वेदान्तिमतेन योजने पूर्वान्वयित्वोपगमे वा तदलग्नकतापरिहारेऽपि साक्षात्त्वस्य लक्षणान्तरानभिधानेन न्यूनता, 'अर्थधर्मश्चे' त्यस्यास्वरसश्च, तन्मते विषयधर्मस्य विषयिधर्मत्वेनैवार्थधर्मत्वोक्तेरविशेषकत्वात् । ज्ञानतद्भिन्नार्थाभ्युपगन्तृमते तु ज्ञानविषयताया घटादाववश्योपेयत्वेन घटो ज्ञातः साक्षात्कृत इति व्यवहारानुपपत्तेर्घटःप्रत्यक्षमितिव्यवहारापत्तेश्चातिस्पष्टत्वेन तादृशपूर्वपक्षस्य न सम्भावनारोहोऽपि । अतएव न मतान्तरेऽपि। पूर्वपक्षस्य ज्ञाननिराकरणपरत्वे ज्ञानमात्रसिद्धेरेवापेक्षितत्वेन 'स्वप्रकाशवादे' इत्यस्यासाङ्गत्यात्, यथासम्भवमुक्तन्यूनतादेरतिस्पष्टत्वाच्चेति कृतमतिपल्लवितैः।**

बलं = अन्यथानुपपत्तिः । पदार्थान्तरं = सप्तपदार्थीव्यतिरिक्तं निर्वक्तुमशक्यमपि। साक्षात्त्वबुद्धेर्भ्रमत्वं व्यवहारस्य च भ्रममूलकत्वमाशङ्क्याह भ्रान्तेरिति । **अन्यथाख्यातेः**

भारती

प्रश्न – उक्त प्रकार से साङ्कर्य दोष के होने से साक्षात्त्व के जाति न होने पर भी अबाधित साक्षात्त्वबुद्धि एवं साक्षात्त्वविषयक व्यवहार के बल से साक्षात्त्व को पदार्थान्तर अर्थात् सप्तपदार्थ से व्यतिरिक्त (भिन्न) पदार्थ तो मानना ही होगा । (तात्पर्य यह है साक्षात्त्व भले ही जाति न हो किन्तु साक्षात्त्वबुद्धि और साक्षात्त्वव्यवहार की अन्यथा अनुपपत्ति से उस (बुद्धि एवं व्यवहार) का विषय भले ही वह निर्वचन में अशक्य हो तो भी सप्तपदार्थ भिन्न साक्षात्त्व नाम का पदार्थ मानना ही होगा । यदि कहें कि वह साक्षात्त्वबुद्धि भ्रमात्मक है और उसका व्यवहार भी भ्रममूलक ही है अतः उसके बल से साक्षात्त्व नाम का पदार्थान्तर नहीं मान सकते । क्योंकि भ्रमात्मक ज्ञान तो समक्ष में विषय के विना ही हो जाता है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि भ्रान्ति ज्ञान भी अभ्रान्तिपूर्वक ही होता है । (अन्यथाख्याति मतानुसार हट्टस्थ रजत का यथार्थ ज्ञान पूर्व होने पर ही इदं पदार्थ में उसकी भ्रान्ति देखी जाती है ।)

चेन्न; तस्यापि साक्षाद्ग्रहे क्वचिदपि तद्विवादो न स्यादित्यादिदोषसाम्यात् । अनुमानादिवेद्यत्वे च लिङ्गाद्यनुपपत्तिः, क्वच व्याप्त्यादिग्रह इत्यादिदुरुत्तरपरम्परैव स्यात् । सप्तपदार्थो-नियमसाधनानि च कथं परिपन्थीनि न स्युरिति ।

शारदा

प्रसाधितत्वादित्यभिमानः। अन्यथाख्यातेः प्राङ्निरस्तत्वेन बुद्धिव्यवहारयोर्बाध्यतायाएव च कथनेनानिर्वचनीयस्य क्लृप्तान्तर्गतस्य तदतिरेकिणो वा कस्यचिदभ्युपगमेऽपि न नो हानिरित्यभिप्रायेणाह तस्यापीति । **साक्षाद्ग्रहे = प्रत्यक्षप्रमाणकत्वे ।** लिङ्गेति । **लक्षणानां यथोपन्यासं दूषणात्, तद्व्यक्तित्वादेश्चाप्रयोजकत्वादिदुष्टत्वात्, निर्णीतप्रामाण्यकस्य च शब्दस्य तत्प्रतिपादकस्याभावाच्छक्यतावच्छेदकस्य च दुर्निरूपत्वादिति भावः। तदाह** क्वचेति । **आदिना शक्तिग्रहः, इत्यादीत्यादिना लिङ्गादेर्निर्वचनं विना कथं तत्प्रतीतेःप्रमात्वनिर्णय इत्यादि ग्राह्यम् ।** दुरुत्तरेति । **अनुत्तरणीयपर्यनुयोगेत्यर्थः कलृप्तपदार्थातिरिक्तोपगमेऽपसिद्धा-न्तोऽपीत्याह** सप्तेति । **सप्तपदार्थीति समाहारे । सप्तैव पदार्था इति नियमस्य साधिकाः युक्तय इत्यर्थः। प्राञ्चस्तार्किका हि– भावाभावावेव तत्त्वम्, परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिरिति न्यायात्, अतएव भावत्वेऽपि गुणवन्निर्गुणं वेति द्वयमेव, आद्यं द्रव्य-मेव, द्वितीयं त्वाश्रितानाश्रितभेदेन द्विविधमेव, तृतीयस्योक्तयुक्त्यैवासम्भवात्। तत्रापि चानाश्रितः समवाय एव, अन्यथा तदवस्थितये सम्बन्धान्तरापेक्षायामनवस्थानात्, आश्रितं तु ससामान्यं निस्सामान्यञ्चेति द्वयमेव, उक्तन्यायात्, अतएव तत्र प्रथमं स्पन्दोऽस्पन्द इति द्वयमेव, आद्यं कर्म द्वितीयं तु गुणः। निस्सामान्यं तु निर्गुणमेव, आश्रितन्त्वेकाश्रितमनेकाश्रितं वेति द्वयमेव, तत्राद्यस्य विशेष इति द्वितीयस्य तु सामान्यमिति व्यवहार इति रीत्या सप्तैव पदार्था इत्याहुः। अतएव ''सादृश्यमेतास्त्वेकां विधामासादयन्नातिरिच्यते, अनासादयन्न पदार्थीभूय स्थातुमुत्सहते'' इत्युक्तमुदयनाचार्यैः। अत्र यद्यपि विरुद्धयोर्नैक्यं नापि प्रकारान्तरं विरुद्धत्वादेवेत्येकैव युक्तिः, तथापि भावाभावादिविषयभेदेन विरोधभेदमभिप्रेत्य** साधनानीति

भारती

समाधान – उस साक्षात्त्व रूप पदार्थान्तर को यदि प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय मानें तो तद्विषयक विवाद नहीं होना चाहिए, इत्यादि पूर्वोक्त दोष यहाँ उपस्थिति होगा, और यदि उसे (साक्षात्त्व को) अनुमानादि का विषय मानें, तो लिङ्गादि के अनुपपन्न होने से अनुमान का विषय मानना सम्भव नहीं है ।

(तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष के पूर्वोक्त सभी लक्षणों में दोष दिया जा चुका है, तद्व्यक्तित्व अप्रयोजकत्वादि दोषों से दुष्ट है, निश्चित प्रमाणभूत कोई शब्द भी साक्षात्त्व का प्रतिपादक नहीं है, तथा शक्यतावच्छेदक भी दुर्निरूप है । ऐसी स्थिति में) व्याप्ति ग्रह एवं शक्ति ग्रह ही नहीं हो सकता इत्यादि दोषपरम्परा दुरुत्तर है ।

किञ्च साक्षात्त्व को अतिरिक्त पदार्थ मानने में ''सप्तैव पदार्थाः'' (सात ही पदार्थ है) इस नियम के साधक युक्तियों का भी विरोध होगा ।

लिङ्गादिजत्वाभावसमुदायवती धीः साक्षादिति चेन्न; परोक्षविषयसंशयादावतिव्याप्तेः। ईदृशी प्रमा तथेति चेत् प्रत्यक्षभ्रमाव्याप्तेः। अनुमानादिव्यवच्छेद्यतत्तदसाधारणकारणा-

शारदा

बहुवचनम्। यदि तु निःश्रेयसफलकतत्त्वज्ञानोपयोगिनामेव केषाञ्चित्पदार्थानां शास्त्र उपवर्णनं स्वतन्त्रेच्छामूलश्च विभागः, अन्यथा सामान्यविशेषसमवायानामपि गुणवत्त्वे द्रव्यत्वं निर्गुणत्वे तु गुणत्वं कर्मत्वं वेति पार्थक्येन परिगणनं न स्यात्, तस्मादतिरिक्तपदार्थस्य प्रमाणबलायातस्याभ्युपगमेऽपि न काचित्क्षतिः, अतएवाखण्डोपाधीनामपरिमित एव कोषो नव्यतार्किकाणामित्युच्यते तदाप्यखण्डोपाधिमात्रं विषयाधीनविशेषकप्रतीत्यधीनविशेषकं बहुशो निरस्तमेवेति भावः।

ज्ञायमानलिङ्गादेः कारणतामतेनाशङ्कते लिङ्गादीति। **अत्र लिङ्गादिविधया कारणता प्रविष्टा तेन लिङ्गादिविषयकप्रत्यक्षे नाव्याप्तिरिति भावः। धीरनुभवः।** परोक्षेति। **यद्यपि परोक्षविषयकसंशयस्य मानसत्वे लक्ष्यत्वमेव, तथापि विप्रतिपत्त्या संशयस्याहत्यैव जननोपगमेन तादृशसंशयस्यालक्ष्यत्वसम्भवः। आदिना परोक्षविपर्यासो गृह्यते।** अनुमानादीति। **अनुमित्यादिरूपं यद्व्यवच्छेद्यं तस्य यत्तत्तदसाधारणकारणं तदजनितेत्यर्थः। एवञ्च व्यवच्छेद्यान्तःपातिनः परोक्षसंशयादेर्न सङ्ग्रहप्रसङ्गः। ज्ञायमानलिङ्गादेरनुमित्यादिकारणत्वस्य निरस्तत्वेन व्याप्तिपदज्ञानाद्यजन्यत्वं वक्तव्यम्, व्याप्तिप्रभृतिज्ञानविषयकप्रत्यक्षेऽ-व्याप्तिवारणाय तु ज्ञानाकरणकज्ञानत्वमेव विवक्षणीयम्, व्याप्त्यादिनिवेशवैफल्यात् विस्तरस्तु पुरेरितः। विशिष्टबुद्ध्यादौ विशेषणज्ञानत्वादिना कारणताऽनभ्युपगमपक्षे तु ज्ञानत्वघटित-धर्मावच्छिन्नजनकताकजन्यतानवच्छेदकविषयिताशालिज्ञानत्वं विवक्षितुं शक्यम्, नच**

राजहंसः

आहत्यैवेति । साक्षादेवेत्यर्थः । **अलक्ष्यत्वसम्भवइति** । यद्यपि तस्यालक्ष्यत्वेऽपि लिङ्गाद्यन्तर्गतशब्दजन्यत्वमेवेति नातिव्याप्तिसम्भवः, तथापि लिङ्गादीत्यत्रादि पदार्थेषु विप्रतिपत्तिभिन्नमेव शब्दं प्रवेश्य मूलं कथञ्चिद्योजनीयम्, परोक्षविपर्यासार्थकादिशब्दोपादानेन लिङ्गादीत्यत्र परोक्षप्रमाकरणानामेव प्रवेशस्य ध्वनितत्वादितिभावः । दूषणान्तरणि त्वत्र लक्षणे शारदायां परतो वक्ष्यन्त एवेति न क्षतिः। करणतापर्यन्तधावनं त्यक्तुमाह **विशिष्टबुद्ध्यादौ विशेषणाज्ञानत्वादिनेति ।**

भारती

प्रश्न – लिङ्गजन्यत्व का अभाव, सादृश्यजन्यत्व का अभाव, तथा शब्दजन्यत्व का अभाव एतद् अभावत्रय के समुदायवान् जो अनुभव वही साक्षात्त्व (प्रत्यक्ष) है ।

समाधान – ''ज्ञायमानलिङ्गादि करण है'' इस मत से किया गया यह लक्षण ठीक नहीं है, क्योंकि परोक्षविषयक ''धर्मोऽस्ति नवा'' इत्यादि संशय में एवं परोक्षविषयक भ्रम में यह लक्षण अतिव्याप्त है ।

यदि कहें कि उक्त अभावत्रयविशिष्ट प्रमा प्रत्यक्ष है । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि

जनितधीः साक्षादिति चेन्न; एवं हि प्रत्यक्षतत्तदपरव्यतिरिक्ता धीरनुमानादिरिति वैपरीतयमेव कुतो न स्यादित्यविनिगम्यत्वं स्यात्।

शारदा

तत्ताज्ञानजन्यायां प्रत्यभिज्ञायामव्याप्तिः, तादृशजन्यतानवच्छेदकानुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वे तात्पर्यात्, तादृशकारणताभ्युपगमे तु तद्व्यक्तिवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वं विवक्षणीयम्, व्याप्यत्वं तु तत्समानाधिकरणत्वे सति तत्समानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वम्, तेनानुभवत्वमादायानुमित्यादौ नातिप्रसङ्गः। अनुभवत्वस्य प्रत्यक्षादिचतुष्टयसाधारण-जातितानभ्युपगमे तु तादृशजन्यतानवच्छेदकज्ञानत्वव्याप्यस्मृत्यवृत्तिजातिमत्त्वं वा व्यक्तिविशेषवृत्तिज्ञानत्वव्याप्यस्मृत्यवृत्तिजातिमत्त्वं वा वक्तव्यमिति भावः। प्रत्यक्षेत्यादि। **प्रत्यक्षं च तत्तदपरं शाब्दादिकं च तद्व्यतिरिक्तेत्यर्थः। अयम्भावः, यथाश्रुते तत्तदसाधारणकारणाजनितेत्यनेन तादृशकारणजनितान्यत्वविवक्षणे तादृशजन्यत्वस्य प्रतिव्यक्तिविश्रान्तत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वपरिहृतयेऽनुगतधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्यैव भेदस्य निवेश आदर्तव्यः, तादृशधर्मश्चानुमितित्वादिरिति प्रत्यक्षस्यानुमित्याद्यन्यत्वघटितरूपेण लक्षणेऽनुमित्यादेरपि प्रत्यक्षाद्यन्यत्वघटितरूपेण लक्षणीयत्वं विनिगमनाविरहात्स्यादिति व्यक्तः परस्परसंश्रयः। एवं तादृशजनितत्वात्यन्ताभावविवक्षाया अप्यनुमितित्वाद्यत्यन्ताभावे पर्यवसानस्य वक्तव्यतया प्रत्यक्षत्वाद्यत्यन्ताभावेनानुमित्यादेर्लक्षणीयतायामुक्तदोषः। उक्तरीत्या ज्ञानाकरणकज्ञानत्वेऽपि विवक्षिते तत्पर्यवसानस्य स्वघटकधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरू-पितकारणताश्रयज्ञानजन्यमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकं यद्यत्तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्तायां प्रागुपदर्शितया धूमलिङ्गकपर्वतपक्षकवह्न्य-नुमितित्वादेरेव च तादृशकार्यतावच्छेदकधर्मतया तदवछिन्नभेदघटितत्वेनोक्तदोष एव। भेदकूटघटितत्वेनासर्वज्ञदुर्ज्ञेयत्वादिकं तु प्रागुक्तमेव। तादृशजन्यतानवच्छेदकज्ञानत्व-व्याप्यस्मृत्यवृत्तिजातिमत्त्वस्य लक्षणत्वेऽपि जन्यतावच्छेदकभेदस्य जन्यतावच्छेद-कत्वात्यन्ताभावस्य वा तद्घटकताया वक्तव्यतयाऽऽद्येऽनुमितित्वादिभेदप्रवेशेनोक्तरीत्या दोष एव। द्वितीयेऽपि तादृशजन्यताया अनुमितित्वादिप्रतीत्यधीनप्रतीतिकतया विनिगमनाविरहेण चानुमित्यादेरिन्द्रियत्वाद्यवच्छिन्नजनकताकजन्यतावच्छेकदत्वात्यन्ता-भावघटितरूपेण लक्षणीयतायां तादृशजन्यतायाः प्रत्यक्षत्वादिप्रतीत्यधीनप्रतीतिक-तयाऽन्योन्याश्रयो द्रष्टव्यः। व्यक्तिविशेषघटितलक्षणेऽपि का व्यक्तिर्निवेशनीयेत्यविनिगम्यमेव।**

भारती

प्रत्यक्ष भ्रम में अव्याप्ति हो जायेगी।

प्रश्न – अनुमिति उपमिति, शाब्दबोध परोक्ष संशय परोक्षभ्रम आदि जो व्यवच्छेद्य (व्यावर्त्य) उनके जो जो असाधारण कारण, उन से अजन्य अनुभव ही प्रत्यक्ष है। तथाच उक्त परोक्ष संशय एवं भ्रमादि में अतिव्याप्ति न होगी।

समाधान – इस प्रकार लक्षण करने पर अनुमिति आदि के भी "प्रत्यक्ष उपमिति शाब्दबोध आदि के तत्तद् असाधारण कारण से अजनित अनुभव अनुमिति आदि है," इस

तेषु व्यवच्छेद्येष्वेकद्वयादि परिहाय व्यवच्छेद्यहेत्वजनितत्वेनापि साक्षात्त्ववत्तत्र तत्रानुगतबुद्ध्यन्तरापत्तेः । व्यवहारे सति निमित्तानुसरणं नतु निमित्तानुसरणेन व्यवहार इति चेन्न, निमित्तस्यानत्थापत्तिद्वारस्यैव कल्प्यत्वात् । तत्तज्जनितत्वाभावो हि तेनैव रूपेणानुग-

शारदा

लक्षणानन्त्यस्य कथञ्चिदिष्टत्वेऽपि जातिस्तादृशी निरस्तैवेति । ननु ज्ञानविशेषाणामेकस्यापरभेदेन लक्षणेऽपि नापरस्य विशेषान्तरभेदेन लक्षणमित्यत्र विनिगमकत्वमन्योन्याश्रयविरहस्यैवेत्याशङ्क्यातिप्रसक्त्यन्तरमाह तेष्विति । एकविशेषस्यापरभेदेनालक्षणेऽपि ''एकोऽनेकाविशेषेऽर्थे'' इति प्रघट्टके प्रागुपदर्शितरीत्या विशेषान्तरव्यावृत्तिफलकविशेषणानामेकविशेषलक्षणेऽनुप्रवेशावश्यम्भावेन व्यावृत्तिप्रतीतेश्च व्यावर्त्यप्रतीतिं विनाऽसम्भवेनान्योन्याश्रयस्य दुर्वारतैव, एवं विशेषान्तरभेदाघटितलक्षणनिरासदशायां विशेषान्तरभेदेनैव लक्षणीयतयापीति तु द्रष्टव्यम् । साक्षात्त्ववदिति । निरुक्तसाक्षात्त्वेनेवेत्यर्थः । यदि ह्यनुमित्युपमितिशाब्दस्मृत्यसाधारणकारणाजनितज्ञानत्वेन प्रत्यक्षमात्रे साक्षात्करोमीत्यनुगतबुद्धेरुपपादनम्, तदाऽनुमित्युपमितिशाब्दासाधारणकारणाजनितज्ञानत्वेन प्रत्यक्षस्मृत्योः, अनुमित्युपमित्यसाधारणकारणाजनिताज्ञानत्वेन प्रत्यक्षस्मृतिशाब्देषु अनुमित्यसाधारणकारणाजनितज्ञानत्वेन प्रत्यक्षस्मृतिशाब्दोपमितिष्वनुगतबुद्धिव्यवहारयोरापत्तिः, एवमनुमित्यादिकमपि क्रमेण बहिष्कृत्य निष्पन्नरूपान्तरैरापत्तयो द्रष्टव्याः, तथोक्तकार्यतावच्छेदकभेदघटितलक्षणेऽपि कार्यतावच्छेदकानामावापोद्वापाभ्याम्। निमित्तानुसरणेन = यत्किञ्चिन्निमित्तसद्भावमात्रेण । व्यवहारः = व्यवहारप्रसङ्गः। सामग्री तु फलेनैवानुमेया तदभावे न सद्भावमर्हतीति भावः। कल्प्यत्वादिति । अन्यथाऽदृष्टादेरपि त्यागप्रसङ्गात्, तदभावे सम्भाव्यमानापत्तेस्त्वदुक्तन्यायेनैव वारणसम्भवात्, तस्मात्सामग्र्यसद्भावोऽप्यसाधारणनिमित्तस्यासद्भावेनैवोपवर्णनार्हः, अन्यथा फलमापादयतः सामग्र्यापादनमपि न दुष्करमित्यभिप्रायः। ननूक्तप्रत्यक्षस्मृतिद्वयादावनुगतव्यवहारस्यादर्शने तदसाधारणनिमित्तविरहस्य कल्पनीयत्वे आस्तामुक्तरूपाणां तत्रानिमित्तत्वमित्याशङ्क्यैवं

भारती

प्रकार से लक्षण किये जा सकते, क्योंकि कोई विनिगमक नहीं है । अतः परस्पर एक दूसरे के सापेक्ष होने से परस्पर अन्योन्याश्रय दोष हो जायेगा ।

किञ्च उन व्यवच्छेद्यों में भी एक या दो का परित्याग कर – ''व्यवच्छेद्य के असाधारण कारण से अजनित ही प्रत्यक्ष है'' इस प्रकार अन्य ज्ञानविशेषों का भी लक्षण कर अनुगत बुद्धि की जा सकती । (तात्पर्य यह है कि यदि अनुमिति उपमिति शाब्दमिति स्मृति के असाधारण कारण से अजनित ज्ञानत्वेन प्रत्यक्षमात्र में ''साक्षात्करोमि'' इस प्रकार अनुगत बुद्धि समर्थन करें तो – अनुमिति उपमिति शाब्द के असाधारण कारण से अजनित ज्ञानत्वेन

तव्यवहारप्रत्ययावादध्यान्नत्वन्येनापि । तथात्वे यावत्परिदृष्ट-व्यक्तिविशेषान्यत्वेन व्यवहारोपपत्तौ गोत्वाद्युच्छेदप्रसङ्गः ।

शारदा

तर्हि साक्षात्करोमीत्यनुगतबुद्धेरपि नानुमित्याद्यसाधारणकारणाजनितत्वादिघटितरूपेणोप-पादनसम्भवः, एतदविषयकत्वात्तादृशबुद्धेरित्याह तज्जनितत्वाभावो हीति । **उक्तकार्यता-वच्छेदकभेदस्याप्युपलक्षणमिदम् । तथात्वे = निषेधस्यापि विधिमुखप्रत्ययव्यवहाराधायकत्वे, गोत्वाद्युच्छेदप्रसङ्ग इत्यन्वयः । ननु गोभिन्नव्यावृत्त्या गोत्वबुद्धेरुपपादनेऽपि न गोत्वोच्छेदः, तथासति गोभेदस्यैवासिद्ध्यापत्तेः, यदाहुः – ''सिद्धश्चागौरपोह्येत गोनिषेधात्मकश्च सः। तत्र गौरवे वक्तव्यो नञा यः प्रतिषिध्यते'' इतीत्यत आह** यावत्परिदृष्टेति। **यावन्तः परिदृष्टाः = तेन तेन व्यवहर्त्रा व्यवहारप्राक्क्षणे स्मृता गोभिन्ना व्यक्तिविशेषास्तत्तद्भेदकूटवत्त्वेन नतु गोत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वेन। नापि वस्तुगत्या गोभिन्न-यावद्व्यक्तिविशेषान्यत्वेन, वस्तुतो गोत्वस्यैतादृशत्वेऽपि तद्व्यवहारात्प्राक्यावद्व्यक्तिभान-स्याप्रामाणिकत्वात्तदा स्मृतयावद्व्यक्त्यन्यत्वेनैव तद्व्यवहारस्योपपादनीयत्वादिति भावः।**

भारती

प्रत्यक्षस्मृति में, अनुमिति उपमिति के असाधारण कारण अजनितज्ञानत्वेन प्रत्यक्ष स्मृति शाब्दबोध उपमिति में भी अनुगतबुद्धि एवं व्यवहार की आपत्ति होगी । इसी प्रकार अनुमिति आदि का क्रम से परित्याग कर अवशिष्ट ज्ञानों में अनुगतबुद्धि की आपत्ति होगी ।)

यदि कहें कि प्रत्यक्ष आदि दो या तीन में अनुगत व्यवहार नहीं देखा जाता, अतः प्रत्यक्ष आदि दो या तीन अनुगत लक्षण रूप निमित्त की कल्पना नहीं करते, कयोंकि व्यवहार के रहने पर उसके निमित्त का अनुसरण (अन्वेषण) किया जाता है न कि यत्किञ्चित् निमित्त के अनुसरण (सद्भाव मात्र) से व्यवहार की उपपत्ति (प्रसक्ति) की जाति है । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि निमित्त की कल्पना भी ऐसी ही होनी चाहिए जो निमित्त अति प्रसक्ति का द्वार (कारण) न हो ।

किञ्च – यदि अनुमिति आदि तत्तद् व्यवच्छेद्यों के असाधारण कारणों से अजनित अनुभवत्व ही प्रत्यक्ष का लक्षण मानें तो तादृशजनितत्वाभाव रूप लक्षण तादृशजनितत्वाभाव रूप से ही अनुगतव्यवहार तथा अनुगतबुद्धि का आधान (उत्पादन) करेगा न कि अन्यरूप अर्थात् विधिमुखेन जायमान प्रत्यय व्यवहार का और यदि उक्त तत्तज्जनितत्वाभावरूप निषेध भी विधिमुखेन (प्रत्यक्षत्वेन) जायमान अनुगतबुद्धि एवं व्यवहार का आधायक (जनक) हो जाय तो गोत्वादि जाति का भी उच्छेद हो जायेगा, अर्थात् गोत्वादि जाति मानना भी व्यर्थ हो जायेगा । क्योंकि तत्तद्व्यवहारकर्ताओं के द्वारा व्यवहार के प्राक्क्षण में स्मृत जो जो गोभिन्न (अश्वादि) व्यक्तिविशेष है तत्तद् भेदसमुदायवत्त्वेन (तत्तद्समस्तभेद समुदाय के आश्रयरूप से) ''अयंगौः अयंगौः'' इत्यादि गवादि विषयक अनुगत बुद्धि एवं व्यवहार की उपपत्ति हो ही जायेगी, अतः तदर्थ गोत्वादि का मानना व्यर्थ हो जायेगा ।

तस्मात्–

विधिजः प्रत्ययोऽन्योऽयं व्यतिरेकासमर्थनः ।
नैवं चेदपराद्धं ते किमन्यापोहवादिना ।। ४१।।

शब्दानुमानोपमानजप्रमितिव्यतिरिक्तत्वे सति प्रमितित्त्वं प्रत्यक्ष-लक्षणमभिधाय यः कोऽपि न त्रपते, स प्रष्टव्यः किं प्रत्येकमिदं

शारदा

व्यतिरेकविषयकप्रत्ययादन्योऽयं प्रत्ययो विधिजः = विषयविधया विधिजन्यः, विधिविषयक इति यावत्, व्यतिरेकेण तद्घटितेन विध्यन्तरेण वा न शक्यः समर्थयितुम्, अनुभवविरोधात्, विशेषणस्य विशेष्ये गृहीतसम्बन्धस्यैव व्यावृत्तिप्रतीत्याधायकत्वेन तु गोत्वविशिष्टप्रतीत्यनन्तरमश्वादिव्यावृत्तिप्रतीतौ न 'गां बधाने'ति देशितस्याश्वादिबन्धने प्रवृत्तिरिति भावः। अन्यापोहवादिना = गवाद्यन्ययावदुपस्थितव्यक्तिविशेषव्यावृत्तेरेव गवादि-प्रत्ययविषयत्ववादिना ते = तार्किकस्य किमपराद्धं, येन तेन सह विवदस इति शेषः।

नन्वनुमित्यादिभेदस्योपलक्षणतया निवेशे तमनवगाह्यापि साक्षात्करोमीति प्रतीतेरुपपत्तौ नोक्तदोषः, तद्विषयीभूतबुद्धित्वस्य भावरूपत्वादित्यभिप्रायेणोक्तलक्षणमेवाशङ्कते शब्देति। **शाब्दानुमित्युपमितिस्मृतिभिन्नत्वोपलक्षितबुद्धित्वं साक्षात्त्वमित्यर्थः। प्रमितित्वनिवेशस्या-व्याप्त्यापादकत्वात्** । न त्रपते इति । **साक्षात्करोमीतिमतेर्बुद्धित्वमात्रावगाहित्वेऽनुमित्यादावपि तदापत्तेरतिस्फुटाया ईक्षणे त्रपेतैवेति भावः। भेदानुयोगितावच्छेदकस्यापरिचये नोक्तलक्षणं**

भारती

तस्मात् – ''इदं प्रत्यक्षम्'' अयं गौः'' इत्यादि विधिविषयक प्रत्यय का समर्थन परस्पर के अभावों द्वारा अर्थात् परस्पर भिन्नत्व (परस्पर भेद समुदाय) घटित उक्त लक्षण के द्वारा नहीं किया जा सकता है । क्योंकि वह अनुभवविरुद्ध है और यदि अनुभवविरुद्ध होने पर भी निषेध घटित लक्षण से ही विधिविषयक उक्त प्रत्ययों की उपपत्ति मानें तो अपोहवादि बौद्धों ने क्या अपराध किया है जिससे कि आप तार्किक अपोहवाद स्वीकार न करके गोत्व जाति के सिद्ध्यर्थ बौद्धों के साथ विवाद करते हैं ॥ ४१॥

(यहाँ यह ज्ञातव्य है कि बौद्ध सिद्धान्त में गोत्व जाति नहीं मानी जाती । अपितु अतद्-व्यावृत्तिरूप (अगोव्यावृत्तिरूप) गोत्वधर्म है । अपोह्यते व्यावर्त्यते इत्यपोहः = अतद् व्यावृत्तिरूप इस व्युत्पत्ति के अनुसार बौद्ध दर्शन में गोत्वादिधर्मों का अपोह शब्द से व्यवहार करते हैं और वह गोत्वादि अपोह भी गवात्मक विज्ञान का धर्म है । तथा गौ की अगौ (गोभिन्न) पदार्थ से व्यावृत्ति करता है ।)

अनुमिति आदि के भेद का उपलक्षण रूप से उक्त प्रत्यक्ष लक्षण में प्रवेश करने से उसे (भेद) विषय न करके भी साक्षात्करोमि'' इत्यादि प्रतीति की उपपत्ति हो सकती है अतः उक्त अन्योन्याश्रयादि दोष नहीं है, और तद्विषयीभूत बुद्धित्व के भावरूप होने से ''निषेध के द्वारा विधिमुखप्रत्यय की उपपत्ति न होगी'' यह दोष भी नहीं है इस अभिप्राय से शब्द अनुमान उपमान जन्य प्रमिति से भिन्न प्रमिति प्रत्यक्ष है अर्थात् शब्द अनुमिति उपमिति एवं स्मृति के

लक्षणं मिलितं वा ? । नाद्यः, प्रत्येकं व्यभिचारात् । द्वितीये किं मिलितानां निषेधः ? उत निषेधानां मिलितत्वम् ? । नाद्यः, प्रत्येकमेव व्यभिचारात्, नहि प्रत्येकमनुमित्यादौ मिलिततद्रूप-सम्भवः । नापि द्वितीयः, मिलितास्वनुमित्यदिषु निषेधमेलक-

शारदा

शक्यं परिचेतुम्, बुद्धित्वस्यातिप्रसक्तत्वात्, प्रत्यक्षलक्षणान्तराणां च निरस्तत्वात्, प्रकृतस्य च निरूप्यमाणत्वात्, अतएव लक्ष्यतावच्छेदकस्यापि प्रतिपादयितुमिहाशक्यत्वेन लक्षणकार्ये आश्रयासिद्धिरपि । एवं भेदप्रतियोगितावच्छेदकानामपीह दुर्निरूपत्वमेव, जातिमात्रस्य निरस्तत्वेन शाब्दत्वादेर्जातित्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्, तत्तद्व्यक्तिभेदकूटनिवेशे चासर्वज्ञदुर्ग्रहत्वमित्यपि द्रष्टव्यम् । प्रत्येकमिति । **शाब्दादिभेदेष्वेकैकभेदघटितं लक्षणचतुष्टयमित्यर्थः। मिलितं = भेदचतुष्टयघटितमेकम् ।** व्यभिचारादिति । **शाब्दाद्येकैक-भेदस्यानुमित्यादावेकैकस्मिन्सत्त्वादतिव्याप्तेरित्यर्थः। मिलितानां निषेधः = अनुमित्युपमितिशाब्दस्मृतिगतचतुष्ट्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको भेदः। निषेधानां मिलितत्वं = अनुमितित्वाद्येकैकधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदचतुष्कवत्त्वम् ।** व्यभिचारादिति । **घटो घटपटोभयं नेति प्रतीतेरेकदेशे व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्याङ्गी-कार्यत्वेनानुमित्यादौ प्रत्येकं तादृशचतुष्ट्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसत्त्वेनातिव्याप्तेरित्यर्थः। मिलिततद्रूपसम्भवः = तादृशचतुष्ट्वपर्याप्तिः । अवयवापर्याप्तस्य समुदायपर्याप्त्यनभ्युपगमेन साप्येकवृत्तिधर्मावच्छेदेनैवानुमित्यादौ नास्तीत्याशयेनोक्तं** प्रत्येकमिति । **मिलितास्वनुमित्यादिषु = अनुमित्यादिगतसमुदायत्वावच्छेदेन निषेधमेलकसम्भवेऽपि = उक्तभेदचतुष्टयकूटसत्त्वेऽपि**

भारती

भिन्नत्व (भेद) से उपलक्षित बुद्धित्व साक्षात्त्व है'' इस प्रकार प्रत्यक्ष का लक्षण कर जो लज्जित नहीं होता, उसे पूछना चाहिए कि क्या शाब्दादिभेदचतुष्टय में एक-एक भेद घटित यह लक्षणचतुष्टय है ? या उक्त भेद चतुष्टय से घटित एक ही लक्षण है ?

इनमें प्रत्येक भेद घटित चार लक्षण नहीं मान सकते, क्योंकि – शाब्दभिन्नत्वोपलक्षित-बुद्धित्व अनुमिति में, अनुमितिभिन्नत्वोपलक्षितबुद्धित्व उपमिति में, उपमितिभिन्नत्वोपलक्षित बुद्धित्व शाब्दबोध में, इस प्रकार अनुमिति आदि प्रत्येक में उन लक्षणों की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि द्वितीय कल्प अर्थात् भेदचतुष्टय घटित एक लक्षण मानें तो उसमें भी क्या मिलितों का निषेध है (अर्थात् अनुमिति उपमिति शाब्दबोध स्मृतिगत जो चतुष्ट्वसंख्या, तादृशचतुष्ट्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद) विवक्षित है । या – निषेधों का मिलित्व (अर्थात् अनुमितित्वादि एक-एक धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदचतुष्टयवत्त्व) विवक्षित है ?

इनमें प्रथम ठीक नहीं है क्योंकि अनुमिति आदि प्रत्येक के चतुष्टय (समुदाय) रूप न होने से प्रत्येक अर्थात् एक एक अनुमिति आदि में उक्तलक्षण की अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

द्वितीय पक्ष भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि मिलित अनुमित्यादि अर्थात् अनुमित्यादिगत-

सम्भवेऽपि प्रत्यक्षत्वानभ्युपगमात् । न बह्वाश्रयाणामुक्तनिषेधानां लक्षणत्वमपित्वेकाश्रयाणामिति चेन्न, समुदायिभेदेऽपि समुदायस्यानुमित्यादिवदेकतोपचारबीजाविशेषाभ्युपगम इति हि वक्ष्यते । असमुदायत्वे सतीत्यपि विवक्षितमिति चेन्न,

शारदा

प्रत्यक्षत्वाभावेनातिव्याप्तिः। व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नानुयोगिताकैकदेशप्रतियोगिताक-भेदानभ्युपगमेनासङ्गतमिदमिति चेन्न; घटपटोभयं न घट इति प्रतीतेः, अन्यथा घटो न घटपटोभयमित्यपि न स्यात्, भेदस्य पारस्परिकत्वात् । घटपटोभयत्वावच्छेदेन घटभेदो यदि घटेऽपि घटभेदप्रसङ्गेन नानुमन्येत तर्हि पटेऽपि घटाभेदप्रसङ्गेन घटपटोभयत्वावच्छेदेन घटाभेदोऽपि नानुमन्तव्य इति तृतीयैव कोटिरिति जितमनिर्वचनीयवादिना । अनुपदं दोषान्तरन्तूदीरितमेव । बह्वाश्रयाणां = बह्वनुयोगिकानां लक्षणत्वं = लक्षणघटकत्वं । अपि त्वेकेति । **तथाचोक्तभेदकूटाधिकरणताया एकानुयोगिकविशेषणताविशेषावच्छिन्नाया लक्षणे निवेशेऽनुमित्यादिगतसमुदायत्वावच्छेदेन तस्या असम्भवेन नातिव्याप्तिरिति भावः। भेदेऽपि = बहुत्वेऽपि । अनुमित्यादिसमुदाये द्व्यादिघटिते हि मयातिव्याप्तिरुद्भाविना, तत्र चैकत्वविरहो गुणसमुदायत्वप्रयुक्तो वा प्रतीत्यभावप्रयुक्तो वा, नान्त्यः, समुदाये एकत्वप्रतीतेर्जागरूकत्वात्, आद्ये तु वैशेषिकमतेऽनुमित्यादेर्गुणत्वेऽपि तत्रैकत्वव्यवहारस्य येन बुद्धिविशेषविषयत्वेन द्वित्वाद्यभावेन वैकतोपचारबीजेनोपपादनं तस्यानुमित्या-दिसमुदायेऽप्यविशेषेणाभ्युपगमात्तदुपपादनं समानम्, अन्यथा प्रत्यक्षबोधेऽप्येकत्व-विरहेणोक्तलक्षणस्यासम्भवित्वप्रसङ्गादित्यर्थः।** असमुदायत्वे सतीति। **समुदायत्वं**

भारती

समुदायत्वावच्छेदेन उक्तभेदचतुष्टयवत्त्व है किन्तु अनुमित्यादिसमुदाय प्रत्यक्षरूप नहीं है । अत: अतिव्याप्ति है ।

यदि कहें बहुत आश्रयवाले (बहुअनुयोगिक) उक्त निषेध लक्षण घटक नहीं है । अपितु एकाश्रय (एकानुयोगिक) उक्त निषेध लक्षणघटकतया विवक्षित है तो ऐसी विवक्षा करने पर भी उक्त अनुमित्यादि के समुदाय में अतिव्याप्ति रहेगी ही, क्योंकि समुदायी (प्रत्येक अनुमिति आदि) के बहुत होने पर भी अनुमित्यादि का समुदाय तो एक ही है । अत: जैसे वैशेषिक मत में अनुमित्यादि प्रत्येक के गुण रूप होने से उनमें एकत्व संख्या के न रहने पर भी बुद्धिविशेषविषयत्वेन या द्वित्वाद्यभावेन औपचारिक एकत्वव्यवहार होता है उसी प्रकार अनुमित्यादि समुदाय के गुणसमुदायरूप होने से मुख्यरूप से एकत्व के न रहने भी उक्त उपचार हेतु के द्वारा औपचारिक रूप से उसमें एकत्व रह ही जायेगा । क्योंकि उपचार का बीज यानी निमित्त उभयत्र समान ही है । यह आगे कहेंगे । (अन्यथा प्रत्यक्ष में भी एकत्व का अभाव होने से उक्त लक्षण असम्भवग्रस्त हो जायेगा ।

यदि कहें कि "असमुदायत्वे सति" इस विशेषण की विवक्षा करेंगे (तथा च बुद्धिविशेषविषयत्वरूप जो समुदायत्व, तदनवच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेषावच्छिन्न-

समुदायत्वविशिष्टे एवांशतः स्वात्मनि वृत्तिविरोधभयेनासमुदायत्वस्यैष्टव्यत्वेन तादृशि प्रसङ्गो दुर्वारः । ज्ञानस्यैवं विवक्षितमिति चेन्न, विशिष्टस्यापि ज्ञानस्य ज्ञानत्वादेव ।

'एके'ति च किमाश्रयव्यक्त्यभेदो विवक्षितः ? उताभिन्नजातीयता?

शारदा

बुद्धिविशेषविषयत्वं, तदनवच्छिन्नानुयोगिकविशेषणाताविशेषावच्छिन्नभेदकूटाधिकरणता लक्षणे प्रवेश्येति न समुदायत्वावच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेषावच्छिन्नाधिकरणतामादाय समुदायेऽतिप्रसक्तिरित्यर्थः। अंशतः स्वात्मनि वृत्तीति । **स्वविशिष्टवृत्तित्वप्रयुक्तस्ववृत्तीत्यर्थः। विशेषणस्य विधेयान्वयितायाः प्रागुपवर्णितत्वादिति भावः। तादृशि = समुदायत्वशिष्टे। समुदायत्वेनोपहिते उपलक्षिते वाऽतिप्रसङ्गाभावेऽपि तद्विशिष्टे तस्यावृत्तौ तदवच्छिन्नानुयोगिकत्वस्य विशिष्टानुयोगिकविशेषणताविशेषे विरहेण तत्रातिव्याप्तिरस्त्येवेत्यर्थः। एतेन व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नानुयोगिकत्वनिवेशोऽप्यपहस्तितः, व्यासज्यवृत्तिधर्मेण विशिष्टे तदभावेन विशिष्टीयविशेषणताविशेषे तदनवच्छिन्नानुयोगिकत्वस्याक्षतत्वात् । बुद्धित्वं ह्युक्तलक्षण विशेष्यतयोपात्तम्, नच समुदाये तदिति कुतोऽतिव्याप्तिरित्याशङ्कते** ज्ञानस्येति। **एवं = उक्तभेदकूटवत्वं, विशिष्टस्य = समुदायत्वविशिष्टस्यानुमादेः, नहि दण्डी पुरुषो न पुरुषः, नवा वृक्षा एव वनमिति नानुभव इति नैकदेशातिरेकः समुदायस्य, सम्मतश्चैतत्तार्किकाणामपि, अनुमितिगादाधर्यादौ तथाभिहितत्वादिति भावः ।**

ननु विशेषणताविशेषे तद्व्यक्तित्वाद्यवच्छिन्ननानुयोगिकत्वविवक्षायां न समुदायेऽतिव्याप्तिः, तदीयविशेषणताविशेषस्य तथात्वाभावादित्याशङ्कां पराकर्तुं विकल्पयति एकेतीति । **अभेदस्तादात्म्यं तच्च तद्व्यक्तित्वमिति तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वमाद्यार्थः।**

भारती

भेदकूटाधिकरणता का लक्षण में प्रवेश करने से – समुदायत्वावच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेषावच्छिन्नभेदकूटाधिकरणता लेकर उक्तरीति से अनुमित्यादि के समुदाय में अतिव्याप्ति नहीं होगी ।) तो कहना ठीक नहीं है क्योंकि समुदायत्वविशिष्ट में समुदायत्व मानें तो विशिष्टवृत्ति धर्म विशेषणवृत्ति अवश्य होने से अंशतः आत्माश्रय हो जायेगा, अतः इस आत्माश्रय के भय से समुदायत्वविशिष्ट में समुदायत के न रहने से अनुमित्यादि का समुदाय भी असमुदाय हो गया । तथा च पुनः तादृशसमुदाय में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

प्रश्न – ज्ञान में उक्तभेदकूटवत्ता विवक्षित है । (तथा च उक्तलक्षण में विशेष्यरूप से बुद्धित्व के प्रविष्ट होने से अनुमित्यादि के समुदाय में अतिव्याप्ति नहीं है । कारण कि उक्तसमुदाय ज्ञान नहीं है ।)

समाधान – समुदायत्व विशिष्ट अनुमिति आदि भी ज्ञानरूप ही है अतः उक्तसमुदाय में बुद्धित्वरूपविशेष्यदल भी घट जाने से अतिव्याप्ति रहेगी ही ।

किञ्च – लक्षण में प्रविष्ट "एक" शब्द से लक्षणाश्रय लक्ष्य व्यक्ति का अभेद (तद्-व्यक्तित्वरूप तादात्म्य) विवक्षित है या अभिन्न (एक) जातीयता, अथवा एक उपाधिकता

उतैकोपाधिकता ? उतैकसंख्यायोगिता ? उत द्व्यादि-सङ्ख्यायोगाभाव ? आद्ये तद्विशिष्टस्याव्यापकतादोषः व्यक्त्यात्मनोऽभेदस्य व्यावृत्तत्वात् । धर्मिणा च लक्षणस्य विशेषणेऽलक्ष्यधर्मत्वं धर्मस्य स्यात्, स्वस्यैव स्वधर्मत्वानुपपत्तेः ।

शारदा

जातिविशेषावच्छिन्नानुयोगिकत्वमिति द्वितीयार्थः। एकधर्मावच्छिन्नानुयोगिकत्वमिति तृतीयार्थः। एकत्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वमिति चतुर्थार्थः। द्वित्वाद्यनवच्छिन्नानुयोगिकत्वं पञ्चमार्थः। तद्विशिष्टस्य = तादृशानुयोगिकत्वघटितलक्षणस्य । तद्व्यक्तित्वं हि तद्व्यक्तिरेव, अखण्डोपाधित्वेऽपि प्रतिव्यक्तिविश्रान्तमेवेति व्यक्तिविशेषगतस्यैव तस्य निवेशार्हतया चालनीन्यायेनाव्याप्तिरित्यर्थः। तदाह व्यक्त्यात्मन इति । **व्यावृत्तत्वात् = प्रतिव्यक्तिविश्रान्तत्वात् । स्वनिरूपितप्रतियोगिताश्रयनिरूपितनिरूपकत्वस्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताश्रयनिरूपितनिरूपकत्वाभ्यामनुयोगिताविशेषविशिष्टान्यत्वेन तद्व्यक्तित्वानामनुगमाभ्युपगमेऽप्याह** धर्मिणोति। **तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वेन धर्मिघटितेनेत्यर्थः। लक्षणस्य = लक्षणघटितविशेषणताविशेषस्य । धर्मस्य = प्रकृतलक्षणस्य । अयम्भावः—**

राजहंसः

अनुयोगिताविशेषविशिष्टान्यत्वेनेति । सर्वस्यापि तद्व्यक्तित्वस्य यत्किञ्चिद्भेदप्रतियोगिनि यत्किञ्चिद्भेदानुयोगिनि वर्तमानतयाऽसम्भवो मा भूदिति स्वप्रतियोगिवृत्तित्वस्वानुयोगिवृतित्वाभ्यां भेदविशिष्टान्यत्वं परित्यज्य प्रतीतिविशेषसाक्षिकतत्तद्भेदगतानुयोगिताविशेषमादाय लक्षणसमन्वयप्रदर्शनार्थमनुयोगिताविशेषविशिष्टत्वनिवेशः । परन्त्वेवं शब्दानुगमो नत्वर्थानुगम इत्याशयेनास्वरससूचनायानुगमाभ्युपगमेऽपीत्युक्तम् ।

भारती

(एक धर्माश्रय), अथवा एकत्वसंख्या का सम्बन्ध, अथवा द्वित्व आदि संख्या के सम्बन्ध का अभाव ?

(यहाँ यह ज्ञातव्य है कि पहले उक्त अनुमित्यादि के भेद कूटाधिकरणता में "एकानुयोगिकविशेषणताविशेषावच्छिन्नत्व" विशेषण दिया गया था । उसी विशेषणघटक एकत्व का विचार करते हुए यहाँ प्रश्नरूप से पाँच विकल्प किया गया है उनमें – "तद्व्यक्तित्वावच्छिननानुयोगिकत्व" यह प्रथमविकल्प का अर्थ है । "जातिविशेषावच्छिन्नानुयोगिकत्व" द्वितीय विकल्प का, "एकधर्मावच्छिन्नानुयोगिकत्व" तृतीय का, "एकत्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वचतुर्थ का, एवं "द्वित्वाद्यनवच्छिन्ननुयोगिकत्व" पञ्चमविकल्प का अर्थ है । यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं है कि – यह "तद्व्यक्तित्वाद्यवच्छिन्नानुयोगिकत्व" विशेषणता विशेष" का विशेषण है।)

इनमें प्रथम कल्प मानें तो तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वघटितलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी । क्योंकि तद्व्यक्तिरूप अभेद (तद्व्यक्तित्व) अखण्डोपाधि होने पर भी प्रतिव्यक्ति विश्रान्त होने से एक व्यक्तिविशेष का ही संग्राहक (लक्षणसमन्वय) होगा, अन्य प्रत्यक्षव्यक्ति का नहीं, अतः चालनीन्यायेन प्रत्यक्ष में अव्याप्त हो जायेगा ।

आश्रयाभेदस्योपलक्षणत्वे प्रागुक्तदोषः । द्वितीये तदेवाभिन्नजातीयत्वं

शारदा

तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वविशिष्टविशेषणताविशेषेण तादृशभेदाधिकरणता प्रत्यक्षव्यक्तौ तदा स्यात्, यदि तादृशभेदप्रतियोगिकतद्व्यक्तिवृत्तिविशेषणताविशेषे तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्ववैशिष्ट्यं स्यात्, नचैतत्तद्व्यक्तौ तद्व्यक्तित्वस्यावृत्तित्वे सम्भवति, नच तद्व्यक्तिरूपं तद्व्यक्तित्वं तद्व्यक्तौ वर्तितुमुत्सहते, एवञ्चात्माश्रयो वाऽसम्भवो वा । यदि च तद्व्यक्तित्वमखण्डोपाधिः, तदापि तद्व्यक्तित्वविशिष्टे तद्व्यक्तित्वस्योक्तरीत्या वर्तनानुपपत्त्या तद्व्यक्तित्वविशिष्टे लक्षणसङ्गमनासम्भव एव । अन्यथा समुदायीयविशेषणताविशेषानुयोगिता समुदायत्वेनैवावच्छिद्यते नतु समुदायगततद्व्यक्तित्वेनेत्यत्र विनिगमकदौर्लभ्यादनुमित्यादिसमुदायेऽतिप्रसङ्गात् । किञ्च तादृशानुयोगिकत्वविशिष्टविशेषणताविशेषो यदि तद्व्यक्तिवृत्तिः स्यात्, तदैव तेन सम्बन्धेन तादृशभेदा अपि तद्व्यक्तौ वर्तेरन्, नचैवं सम्भवति, तथा सति तद्व्यक्तिवृत्तित्वविशिष्टस्य तद्व्यक्तिवृत्तित्वे पर्यवसानेन तादृशवृत्तित्वस्य स्वावच्छिन्नत्वापात इति । ननु तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वोपलक्षितविशेषणताविशेषस्य तद्व्यक्तिवृत्तित्वसम्भवेन नायं दोषः, समवायस्यैकत्वपक्षे घटत्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वोपलक्षितसमवायस्य घटत्वाभाववद्गतत्वमपि स्वीक्रियत एवेत्यत आह आश्रयाभेदस्येति **तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वस्येत्यर्थः ।** प्रागिति । **अनुमित्यादिसमुदायेऽपि तादृशानुयोगिकत्वोपल-**

भारती

यदि कहें कि लक्षणघटक विशेषणता विशेष को तद्व्यक्तित्वाच्छिन्नानुयोगिकत्वेन धर्मि से घटित कहेंगे । अर्थात् तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वविशिष्टविशेषणताविशेष से तादृशभेदाधिकरणता की विवक्षा करेंगे । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसी विवक्षा करने पर – प्रकृतलक्षण अपने लक्ष्य (प्रत्यक्ष) में नहीं जा पायेगा, कारण कि स्वयं स्वयं का धर्म (आश्रित) नहीं हो सकता ।

(तात्पर्य यह है कि तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वविशिष्टविशेषणताविशेष सम्बन्ध से तादृशभेदाधिकरणता प्रत्यक्षव्यक्ति में तब रह सकती है जबकि तादृशभेदप्रतियोगिकतत्ततद्व्यक्तिवृत्ति विशेषणताविशेष में तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्व का वैशिष्ट्य (सम्बन्ध) रहे, और यह वैशिष्ट्य तब ही रह सकता, जब तद्व्यक्ति में तद्व्यक्तित्व रहे, किन्तु यह सम्भव नहीं है क्योंकि तद्व्यक्तिरूप तद्व्यक्तित्व तद्व्यक्ति में रहने पर आत्माश्रय दोष हो जायेगा । तस्मात् इस प्रकार विवक्षा करने पर असम्भव दोष हो जायेगा । यदि तद्व्यक्ति को अखण्डोपाधि भी मानें तो भी आत्माश्रय के भय से पूर्वोक्तरीति से तद्व्यक्तित्वविशिष्ट में तद्व्यक्तित्व नहीं रह सकता, तस्मात् असम्भव दोष हो जायेगा ।)

यदि कहें कि आश्रयाभेद को उपलक्षण मानेंगे, अर्थात् तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्व से उपलक्षित विशेषणताविशेष कहेंगे और तादृशविशेषणताविशेष के तद्व्यक्ति में भी रह जाने से आत्माश्रयादिदोष न होगा और न असम्भव होगा । तो यह आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने पर – पूर्वोक्त अनुमित्यादि समुदाय में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

लक्षणमस्तु, अवश्यन्तया प्राथम्येन प्रतीयमानत्वात्। न तृतीयः, परोक्षप्रमितित्वस्यानुमित्यादिषु मिलितास्वपि भावात्। नापि चतुर्थः, वैशेषिकपक्षे गुणतया तदभावात्। भावे वाऽनुमित्यादित्रयवृत्तीनां

शारदा

क्षितविशेषणताविशेषस्य वृत्तेस्तेन सम्बन्धेन भेदानामपि तद्वृत्तित्वसम्भवेनातिव्याप्तिः, समुदायीयविशेषणताविशेषानुयोगिताया अपि तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नत्वे तु सुतरामिति भावः। अभिन्नजातीयत्वं = जातिविशेषावच्छिन्नत्वं प्रतीयमानत्वादिति । **वस्तुतस्तु जातिः सा निरस्तैवेति। प्रत्यक्षत्वविशिष्टे चाव्याप्तिरुक्तरीत्यैव द्रष्टव्या।** परोक्षप्रमितित्वस्येति। **समुदायत्वादेरप्युपलक्षणमिदम् । नचैकमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नानुयोगिकत्वं विवक्षितमिति वाच्यम्, तादृशधर्मविशिष्टे प्रत्यक्षे तस्यावृत्तौ प्रत्यक्षनिष्ठविशेषणताविशेषेऽपि तदवच्छिन्नानुयोगिकत्वासम्भवात्तत्राव्याप्तेः। सामान्यत एकान्यस्याप्रसिद्ध्या मात्रार्थासङ्गतेश्च। तद्व्यक्तित्वस्यैव विवक्षितत्वे तूक्तम् । गुणतया प्रत्यक्षस्य तदभावात् = एकत्वासमवायित्वात्, गुणे गुणाभ्युपगमेऽनवस्थानात् । तथाच प्रत्यक्षगतविशेषणतायामपि नैकत्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वसम्भव इत्यसम्भवः। प्रतीतिबलात्क्वचिद्गुणेऽपि गुणान्तराभ्युपगमे न काचित्क्षतिः, बुद्धिविशेषविषयत्वसाधारणस्य वैकत्वस्य निवेश आद्रियतामित्याशङ्क्याह** भावे इति ।

भारती

क्योंकि वहाँ भी तादृशानुयोगिकत्व से उपलक्षित विशेषणताविशेष अनुमित्यादिसमुदाय में रह जाने से, तेन सम्बन्धेन उक्तभेदाधिकरणता भी उक्तसमुदाय में रह जायेगी । तथा च अतिव्याप्ति हो जायेगी।

यदि ''जातिविशेषावच्छिन्नानुयोगिकत्व'' यह द्वितीय कल्प मानें तो यह भी नहीं मान सकते, क्योंकि वह जातिविशेष साक्षात्त्व ही कहना होगा, और उसे मानने पर – वही अर्थात् (जातिविशेषावच्छिन्नत्वं तादृशजातिविशिष्टत्वं) प्रत्यक्षत्वम्'' यही प्रत्यक्ष का लक्षण हो जायेगा। क्योंकि उक्तलक्षण में विशेषण होने से वह जातिविशेष अवश्य एवं प्रथम ज्ञातव्य है । तथा च यह प्रकृतलक्षण व्यर्थ है ।

(इसमें इष्टापत्ति भी नहीं कर सकते, क्योंकि वस्तुतः जाति का खण्डन पूर्व किया जा चुका है ।)

''एक धर्मावच्छिन्नानुयोगिकत्व'' यह तृतीयकल्प भी नहीं मान सकते, क्योंकि एकधर्म शब्द से परोक्षप्रमात्वसमुदायत्व आदि धर्म का ग्रहण किया जा सकता है ऐसी स्थिति में परोक्षप्रमात्वादि धर्म के अनुमित्यादि समुदाय में रहने से उक्तलक्षण की अनुमित्यादिसमुदाय में अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

चतुर्थपक्ष भी ठीक नहीं है । कारण कि वैशेषिक के मत में प्रत्यक्ष के गुण होने से ''गुण में गुण नहीं रहता'' इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्ष में एकत्वसंख्या के समवायेन न रहने से असम्भव दोष हो जायेगा ।

यदि कहें कि ''एकं ज्ञानम्'' इत्यादि प्रतीतिबलात् क्वचित् गुण में गुण भी मान सकते हैं अथवा एकत्वसंख्या न मानकर बुद्धिविशेषविषयत्वसाधारण ही एकत्व मानेंगे तथा च

त्रयाणामप्यभावानामेकत्वसङ्ख्यासामानाधिकरण्यसम्भवात्, मिलितानामेकसमुदायापेक्षया तथात्वात्। नापि पञ्चमः, वैशेषिकमतानुसारेणानुमित्यादित्रयेऽपि तदभावस्य तुल्यत्वात् । अतदनुसारेण प्रत्यक्षव्यक्तिष्वपि द्व्यादिसङ्ख्यायोगात्।

शारदा

प्रत्यक्षे एकत्वस्य सद्भावोपगमे इत्यर्थः। यथाश्रुते स्मृतिभेदस्यानिवेशितत्वादुक्तं त्रयेति । **समुदायेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि ।** एकत्वसङ्ख्यासामानाधिकरण्येति । **एकत्वावच्छिन्नानुयोगिक-विशेषणताविशेषावच्छिन्नवृत्तित्वेत्यर्थः । स्यादेवं यद्यनुमित्यादित्रये स्यादेकत्वम्, नचैवमित्याशङ्क्याह** मिलितानामिति । **अनुमित्यादीनामिति शेषः। एकसमुदायापेक्षया = एकः समुदाय इति धीविषयतया, तथात्वात् = एकत्वाश्रयत्वात् संविदेव हि भगवती वस्तूपगमे शरणमिति भावः । तदभावस्य = द्वित्वाद्यभावस्य ।** तुल्यत्वादिति । **गुणसमुदायस्यापि गुणत्वादिति भावः। तथाच द्वित्वाद्यनवच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेषेण प्रत्यक्षे इवानुमित्यादिसमुदायेऽपि तादृशभेदानां सत्तयाऽतिव्याप्तिरिति । अतदनुसारेण = वैशेषिकमताननुसारेण । उक्तरीत्या गुणेऽपि गुणाङ्गीकारे इति यावत् ।** द्व्यादीति । **द्वित्वादीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि । योगात् = समवायात्, व्यक्त्यन्तरमादायैकस्यामपि व्यक्तौ द्वित्वसमवायाभ्युपगमः, अन्यथा प्रत्यक्षं द्वित्ववदिति प्रतीत्यनापत्तेरिति द्वित्वाद्यनवच्छिन्नानुयोगिकत्वं प्रत्यक्षवृत्तौ विशेषणताविशेषे कथं प्रत्येतव्यम्, नच प्रत्यक्षमनुमित्यादिभेदकूटवदिति प्रतीत्या निर्वाहः, द्वित्ववत्प्रत्यक्षमनुमित्यादिभेदकूटवदिति प्रतीतेरपि सत्त्वे द्वित्वानवच्छिन्नानुयोगिकत्वस्य सङ्गमासम्भवादिति भावः।**

भारती

उक्तदोष न होगा । तो यह नहीं कह सकते क्योंकि इस प्रकार प्रत्यक्ष में एकत्व को स्वीकार करें तो अनुमित्यादि के समुदाय में रहने वाले उक्तभेदत्रय के साथ एकत्वसंख्या का सामानाधिकरण्य हो जायेगा, अर्थात् अनुमित्यादि के समुदाय में एकत्वावच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेष सम्बन्ध से तादृश भेदकूटाधिकरणता रह जायेगी, अतः अनुमित्यादि के समुदाय में अतिव्याप्ति हो जायेगी । यदि कहें कि अनुमित्यादित्रय में एकत्व कैसे रहेगा, तो "एकः समुदायः" इस प्रतीति के बल से एक समुदाय की अपेक्षा से एकत्व का आश्रय भी वह समुदाय हो जायेगा।

पञ्चम पक्ष भी ठीक नहीं है । वैशेषिकमतानुसार अनुमित्यादि के समुदाय में भी द्वित्वादि का अभाव रहने से उक्तलक्षण अतिव्याप्त हो जायेगा । (गुणसमुदाय के भी गुणरूप होने से प्रत्यक्ष के समान अनुमित्यादि समुदाय में भी द्वित्वाद्यनवच्छिन्नानुयोगिक विशेषणताविशेष सम्बन्ध से तादृशभेदाधिकरणता के रह जाने से अतिव्याप्ति हो जायेगी ।) यदि वैशेषिक मत का अनुसरण न करें तो गुण में गुण के रह जाने से समवाय सम्बन्ध से द्वित्व संख्या प्रत्यक्ष में रह जायेगी । अतः प्रत्यक्ष में उक्तलक्षण का असम्भव हो जायेगा ।

तथापि नैकस्यां प्रत्यक्षव्यक्तौ द्व्यादिसङ्ख्यापरिसमाप्तिः, द्व्यादिसङ्ख्यापरिसमाप्त्यभावश्च तदभावशब्देन विवक्षित दति चेन्न, का हि परिसमाप्तिर्यैकस्यां प्रत्यक्षव्यक्तौ नास्तीत्युच्यते । तत्रैव

शारदा

तथापि = एकस्यां प्रत्यक्षव्यक्तौ द्वित्वादिसमवायेऽपि । परिसमाप्तिः= पर्याप्तिः द्व्यादीत्यादि। **पर्याप्तिसम्बन्धावच्छिन्नद्वित्वादिनिष्ठावच्छेदकत्वानिरूपकानुयोगिताकत्वं द्वित्वादि-सङ्ख्यायोगाभावशब्देन विवक्षितमित्यर्थः। तथा च द्वित्ववत्प्रत्यक्षमनुमित्यादिभेदकूटवदिति प्रतीत्या समवायसम्बन्धावच्छिन्नद्वित्वनिष्ठावच्छेदकताकानुयोगिताकत्वस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः। द्वे प्रत्यक्षे अनुमित्यादिभेदकूटवती इति प्रतीतिमादाय तु न दोषः, एकैकव्यक्तिमादाय लक्षणसमन्वयात् ।** का हीति । **अयम्भावः– अयमेकः, इमौ द्वाविति प्रतीतिसाक्षिकः स्वरूपसम्बन्धविशेषः पर्याप्तिः, अन्यथा घटो द्वित्ववानिति प्रतीतेरिव घटो द्वाविति प्रतीतेरपि प्रमात्वापातः, आकाशाविति शाब्दमतेश्चेति तार्किकमतं तावदयुक्तम्, स्वं न स्वीयमित्यनुभवबाधेन सम्बन्धिस्वरूपतायाः सम्बन्धेऽप्रामाणिकत्वात् । द्वित्वादिस्वरूपस्य च परिवर्तनासम्भवेन तदात्मकसम्बन्धस्य घटो द्वावित्यादिधियः प्रमात्ववारणेऽसामर्थ्याच्च। उद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यत्वविशिष्टद्वित्वादेरतिरिक्ततोपगमे च सबन्धानतिरेकिता-वाचोयुक्तेरसम्भवात् । अतिरिक्तेऽपि तत्र द्वित्वादिप्रतियोगिकताया अनुभवपराहतत्वेन सम्बन्धतोपगमस्य श्रद्धामात्रविलासत्वाच्च, तत्र सम्बन्धत्वसिद्धिं विना सम्बन्धत्वेन रूपेण तस्य द्वित्वादिप्रतियोगिकत्वमित्यस्य बालालापायमानत्वाच्च । अतिरिक्तत्वेऽपि लक्षणनिरूपणमन्तरेणानिस्ताराच्च, प्रतीत्या निरूपणस्यान्योन्याश्रयावहत्वाच्च । अवयवापर्याप्तस्य समुदायेऽपर्याप्तत्वेन घटो द्वावितिप्रतीतेः प्रमात्वस्य दुर्वारत्वाच्च,**

भारती

प्रश्न – एक प्रत्यक्षव्यक्ति में समवायसम्बन्ध से द्वित्व के रहने पर भी पर्याप्ति सम्बन्ध से एक प्रत्यक्ष व्यक्ति में द्वित्वसंख्या नहीं रह सकती । अतः पर्याप्ति सम्बन्ध से द्वित्वसंख्या का अभाव (द्वित्वसंख्यापर्याप्त्यभाव) ही द्वित्वादिसंख्यायोगाभाव शब्द से विवक्षित है । तथा च एक प्रत्यक्षव्यक्ति में उक्तलक्षण का असम्भव दोष नहीं है ।

समाधान – वह द्वित्वादि संख्या की पर्याप्ति क्या है जो एक प्रत्यक्षव्यक्ति में नहीं है। (''का हि परिसमाप्तिः'' यहाँ किं शब्द आक्षेपार्थक है ग्रन्थकार का अभिप्राय है कि – पर्याप्ति सम्बन्ध का स्वरूप ही निर्दुष्ट स्थिर नहीं हो पाता, ऐसी स्थिति में पर्याप्तिसम्बन्ध की सहायता से उक्त दोष का वारण नहीं कर सकते ।)

(भाव यह है कि – ''अयमेकः'' इमौ द्वौ'' इत्याकारक प्रतीतिसाक्षिक स्वरूपसम्बन्धविशेष ही पर्याप्ति है । यदि पर्याप्ति सम्बन्ध माना न जाय तो घटो द्वित्ववान् इस प्रतीति के समान ''घटो द्वौ'' यह प्रतीति भी प्रमात्मक होनी चाहिए । ''आकाशौ'' यह शाब्दबोध भी प्रमात्मक होना चाहिए । अतः इन आपत्तियों के वारणार्थ पर्याप्ति सम्बन्ध मानना चाहिए'' यह तार्किकों का मत है ।

किन्तु यह युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि स्वं न स्वीयम्'' इस अनुभव से बाधित होने के

वृत्तिर्द्व्यादेः परिसमाप्तिः, सैकस्यां व्यक्तौ नास्तीति चेन्न, एवमेकत्वस्यापि न क्वचित्परिसमाप्तिः स्यात्, नहि तस्य तत्रैव वृत्तिरन्यस्यैकत्वाभावप्रसङ्गात्, अत एकत्वसङ्ख्यावत्यामेव व्यक्तौ द्व्यादिपरिसमाप्तिरित्यविशेष एव । एकव्यक्तिगतैकत्वसङ्ख्या-

शारदा

अवयवे समुदायवृत्तिधर्मावच्छेदेनैव पर्याप्तेरभ्युपगमेऽपि घटवृत्तित्वविशिष्टं द्वित्वं घटे पर्याप्तमिति प्रतीतेरपलपनीयत्वेन प्रत्यक्षवृत्तित्वविशिष्टद्वित्वस्य पर्याप्तिमादाय प्रकृताव्याप्तेरनिवार्यत्वाच्च । इतरवारकपर्याप्तिनिवेशेऽनवस्थानाच्च । द्वित्वाद्यवच्छेदेन द्वित्वादिपर्याप्त्यभ्युपगमे आत्माश्रयस्य दुरुद्धरत्वाच्च । एतेन– एकगोदानेन सहस्रगोदानजन्यफलाजननेन तत्कारणतावच्छेदकतयातिरिक्तपर्याप्तिसिद्धिः, अन्यथा प्रत्येक-गोदानवृत्तिधर्मसहस्रस्य कारणतावच्छेदकत्वकल्पनायां गौरवादिति– परास्तम्, अलक्षिते वस्तुनि प्रमाणस्याकिञ्चित्करत्वात् । एतेन– आकाशावित्यादिशाब्दबोधस्य प्रमात्वमुद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यत्वविशिष्टसमवायस्य सङ्ख्यासंसर्गतामुपगम्य वारणीयमिति स एव पर्याप्तिः, नच घटपटाविति प्रतीत्या घटादिनिष्ठद्वित्वादिसमवायस्य पटादावपि सत्त्वेन घटत्वव्याप्तेर्द्वित्वादिसमवायेऽसत्त्वाद्घटाविति वाक्यस्याप्रामाण्यप्रसङ्ग इति–वाच्यम्, समवायनानात्वोपगमादिति–निरस्तम्, तादृशसमवायस्यापि पर्याप्तिपदाभिषिक्तस्य यथोक्तदोषसंस्पर्शित्वात् । आकाशवृत्तित्वविशिष्टसमवायस्याकाशत्वव्याप्तत्वेनोक्तबोधे प्रमात्वातिप्रसङ्गतादवस्थ्याच्च । सङ्ख्यासंसर्गताया अपि पर्याप्तिनिवेशादियत्नान्तरानुसृतौ चानवस्थादिनैवानिर्वचनीयताचरणचुम्बितायाः सम्पादनीयत्वादिति । एवं स्थिते दूषणान्तराण्यभिधातुमेवोत्थापयति तत्रैवेति । **अन्ययोगव्यवच्छेदबलात्समवायेन तद्धर्मव्याप्तिरेव तद्धर्मावच्छिन्नानुयोगिका सङ्ख्याप्रतियोगिकपर्याप्तिरित्यर्थलाभः** । न क्वचिदित्यादि ।

भारती

कारण उक्त सम्बन्ध को सम्बन्धीस्वरूप मानना अप्रामाणिक है । द्वित्वादिरूप प्रतियोगि के स्वरूप का परिवर्तन न होने से तदात्मक (द्वित्वादिप्रतियोगीस्वरूपभूत) उक्त सम्बन्ध में ''घटो द्वौ'' इत्यादि प्रतीति के प्रमात्व के वारण का सामर्थ्य भी नहीं है । इत्यादि अनेक युक्तियों से पर्याप्ति सम्बन्ध निरस्त है । इस विषय का विस्तार शारदा में द्रष्टव्य है ।)

प्रश्न – केवल उसीमें वृत्ति होना (रहना) द्वित्वादि की पर्याप्ति है और वह एक व्यक्ति में नहीं है । अपितु द्वित्व दो व्यक्तियों में ही रहता है ।

समाधान – यदि इस प्रकार मानेंगे तो एकत्व की कहीं भी पर्याप्ति नहीं होगी । क्योंकि एकत्व एक व्यक्ति में ही वृत्ति (विश्रान्त) नहीं होता, अन्यथा (एकत्व के एक व्यक्ति में ही वृत्ति (विश्रान्त) होने पर) अन्यत्र सर्वत्र एकत्व का अभाव हो जायेगा । (''घटपटौ'') यहाँ घट में भी एकत्व है और पट में भी । यदि उसे घट में ही विश्रान्त माना जाय तो पट में एकत्व का अभाव हो जायेगा यदि पटादि में भी घटत्वगत एकत्व को मानो तो वह एकत्व घटत्वाव्याप्त होगा । अतः उक्तरूप पर्याप्ति को लेकर अव्याप्ति का वारण नहीं कर सकते, अपितु

व्यक्तिर्नान्यत्रेति चेन्न, सत्ताव्यक्तेरप्येवम्भावप्रसङ्गात्, अननुगतत्वापत्तेश्च। सत्तैकैव जातिरूपा, एकत्वं तु प्रतिव्यक्तिभिन्नं गुणपदार्थ इति चेन्नूनं वैशेषिकैर्विप्रलब्धोऽसि, कथमन्यथा सदेकप्रत्यययोरनुभवव्यवहारविशेषमपश्यन्नपि कानिचित्कानिचिदसम्बद्धान्यक्षरणि प्रलपसि। सत्तैकत्वयोः परापरत्वानुपपत्तेर्नैवं स्यादिति चेन्न, साम्यात्,

शारदा

द्वित्वादाविव घटत्वतद्व्यक्तित्वाद्यवच्छिन्नपर्याप्तत्वमेकत्वे न स्यात्, अनुगतप्रतीतिबलात्तस्यैकत्वव्यवस्थितौ पटादावपि घटादिगतैकत्वस्य सत्त्वेन घटत्वाव्याप्तत्वात्, एकत्वाभाववतोऽप्रसिद्धौ चैकत्वव्याप्तत्वस्याप्यभाव इति नैकत्वावच्छिन्नपर्याप्तत्वमपि तस्येत्यर्थः। अतः = निरुक्तरूपां पर्याप्तिमादाय प्रत्यवस्थानासम्भवात्। अविशेषः = अव्याप्तितादवस्थ्यम्। नान्यत्रेति। **तथाच तद्व्यक्तित्वादिव्याप्यत्वस्यैकत्वे सम्भवेन तदवच्छिन्नपर्याप्तत्वसम्भवेनोक्तलक्षणसामञ्जस्यमिति भावः। एवम्भावप्रसङ्गात् = नानात्वप्रसङ्गात्, इष्टापत्तावाह** अननुगतेति। **सत्त्वैकत्वाकारप्रतीत्योरनुगतत्वस्यापलापापत्तेरित्यर्थः। सदेकप्रत्यययोः = सत्त्वप्रकारकैकत्वप्रकारकप्रत्यययोः। विषयत्वं सप्तम्यर्थोऽनुभवव्यवहारोभयान्वयि। असम्बद्धानि = अनुपपन्नार्थानि। अक्षराणि = पदानि।** प्रलपसीति। **गुणादावपि प्रतीयमानत्वेनैकत्वस्य गुणत्वं तावद्वक्तुमशक्यम्, जात्यादावपि प्रतीयमानत्वेन तु पदार्थान्तरत्वमेव तस्यास्तु, द्रव्यादित्रिकवृत्तिरेव जातिरितिपरिभाषाऽनादरे**

भारती

एकत्वसंख्या के आश्रय व्यक्ति प्रत्यक्ष व्यक्ति में ही द्वित्व भी रह जाय, न कि उस (द्वित्व) का अभाव, तथाच उक्त अव्याप्ति यथावत् स्थिर ही है।

यदि कहें कि एक व्यक्तिगत एकत्व संख्याव्यक्ति अन्यत्र नहीं रहती। तथाच तद्व्यक्तित्वादिव्याप्यत्व एकत्व में हो सकता है ऐसी स्थिति में तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नानुयोगिक पर्याप्तिप्रतियोगिकत्व एकत्व में रह जायेगा। तस्मात् उक्तदोष (एकत्व की कही भी पर्याप्ति नहीं रहेगी यह दोष) नहीं है। तथाच पर्याप्ति का उक्तलक्षण ठीक है। तो यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर एकत्व के समान सत्ताव्यक्ति भी नाना (प्रतिव्यक्ति विश्रान्त) हो जायेगी। यदि सत्ताव्यक्ति के भी नानात्व को अङ्गीकार करेंगे तो "सन् घटः सन् पटः" इत्याकारक सत्त्व प्रकारक प्रतीति एवं एको घटः एकः पटः" इत्याकारक एकत्वप्रकारक प्रतीति के अनुगतत्व का अपलाप हो जायेगा अर्थात् उक्त प्रकार से अनुगत प्रतीति नहीं होगी। यदि कहें कि – जाति रूप होने से सत्ता एक ही है और एकत्व तो गुणपदार्थ होने से प्रतिव्यक्ति भिन्न (प्रतिव्यक्ति विश्रान्त) है। तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि निश्चित ही आप वैशेषिकों से वञ्चित हो गये, यदि वञ्चित न होते तो – सत्ता और एकत्व दोनों के अनुभव तथा व्यवहार में भेद न देखते हुए भी असम्बद्ध अर्थात् युक्तिविरुद्ध पदार्थों का कथन कैसे करते?

प्रश्न – सत्ता के साथ एकत्व का परापरत्व (परापरभाव) अर्थात् व्याप्यव्यापकभाव

शारदा

च जातित्वमेव तस्य व्यवह्रियताम् । गुणान्तरस्वभाववैलक्षण्येऽपि गुणत्वव्यवहारस्तु परिभाषामात्रमिति भावः। अतएव "संख्या च पदार्थान्तरं नतु गुणः, गुणादिष्वपि तद्वत्त्वप्रत्ययात् । नचासौ भ्रमः, बाधकाभावात् । एकार्थसमवायप्रत्यासत्त्या तथाप्रत्यय इति चेन्न; विलक्षणाभ्यां समवायैकार्थसमवायाभ्यामविलक्षणायास्तद्वत्ताप्रतीतेरयोगात्। घटत्वादौ चैकार्थसमवायादेकत्वप्रत्ययवद्द्वित्वाद्येकार्थसमवायाद्द्वित्वादिप्रत्ययप्रसङ्गः रूपत्वादौ च न तत्सम्भव" इति शिरोमणिभिरभिहितं पदार्थतत्त्वनिरूपणे इति ध्येयम् । तत्सम्भवः = एकत्वविशिष्टार्थसमवायसम्भवः। रूपे भवतैकत्वस्यानङ्गीकारादिति भावः। नैवं स्यात् = एकत्वस्य जातित्वं न स्यात् । परापरत्वेति । **सत्तावदेकत्वस्य न द्रव्यादित्रयमात्रवृत्तित्वम्, तुल्यव्यक्तिकत्वेन तज्जातित्वस्य शङ्काया एवासम्भवात्, जात्यादावपि तत्प्रतीतेश्च, एवञ्च तज्जातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातेस्तज्जातिव्यापकत्वमिति नियमस्यान्यत्र क्लृप्तत्वात्, सत्ताजातिसमानाधिकरणस्य तदभावसमानाधिकरणस्य चैकत्वस्य तद्व्यापकत्वं वाच्यम्, नचैतत्सम्भवति, सत्ताया एकत्वाभाववत्यप्येकत्वे सद्भावादित्यर्थः।** साम्यादिति। **द्वयोरेवाजातित्वस्य जातित्वस्य वाऽभ्युपेयत्वादित्यर्थः। यथोक्तरीत्यैकत्वस्य न जातित्वं तथा द्रव्यादावेकत्वसमानाधिकरणाया एकत्वान्तर्भाविण च तदभावसमानाधिकरणायाः सत्ताया अपि जात्यादौ व्यभिचारेणैकत्वव्यापकत्वाभावाज्जातित्वं न स्यात्, सत्त्व प्रत्ययस्याप्येकत्वप्रत्ययवत्सप्तपदार्थीसाधारण्यात्तु नोभयोरपि पारिभाषिकं जातित्वम्,**

भारती

नहीं है। अतः एकत्व जाति नहीं हो सकती । (तात्पर्य यह है कि सत्ता के समान एकत्व द्रव्यादित्रयमात्र वृत्ति नहीं है अपितु सत्ता शून्य जाति में भी एकत्व रहता है । नियम यह है कि तज्जातिसमानाधिकरण एवं तदभावसमानाधिकरण जाति तज्जाति की व्यापक होती है । जैसे पृथिवीत्वसमानाधिकरण एवं पृथित्वाभावसमानाधिकरणद्रव्यत्वजाति पृथिवीत्व जाति की व्यापक जाति है । प्रकृत में सत्तासमानाधिकरण एवं सत्ताभावसमानाधिकरण एकत्वजाति होती तो वह एकत्व जाति सत्ता की व्यापक जाति होती, किन्तु एकत्व में व्यभिचार (एकत्व में एकत्व नहीं है अपितु सत्ता है) होने से एकत्व सत्ता की व्यापक जाति नहीं है । साङ्कर्य दोष इस प्रकार है– सत्ताभाववति सामान्य में एकत्व है और एकत्वाभाववति एकत्व में सत्ता है और उभय का सामानाधिकरण्य द्रव्यादित्रय में है । एवञ्च साङ्कर्यदोषबलात् एकत्व जाति नहीं हो सकती ।)

समाधान – एकत्व तथा सत्ता दोनों के साम्य होने से एकत्व यदि जाति नहीं है तो सत्ता को भी जाति नहीं मानना चाहिए, और यदि सत्ता को जाति मानते हैं तो एकत्व को भी जाति मानना चाहिए । (जैसे उक्तरीति से एकत्व जाति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सत्ता भी एकत्व की व्यापक न होने से जाति नहीं हो सकती । क्योंकि सत्ता के द्रव्यान्तर्भाविण एकत्व समानाधिकरण तथा एकत्वान्तर्भाविण एकत्वाभावसमानाधिकरण होने पर भी जाति में व्यभिचार (जाति में सत्ता नहीं है किन्तु एकत्व है) होने से एकत्व की व्यापक सत्ता नहीं हो सकती । तथाच एकत्व के समान सत्ता को भी जाति नहीं माननी चाहिए ।)

जातिपरापरत्वध्रौव्यमेव च क्वाप्येकस्य न्यूनवृत्तित्वे प्रमाणं स्यात्। क्व तथेति चेन्न, शैलेऽनलस्यानुमायां क्व हस्तवितस्त्यादौ तदंश

शारदा

अविलक्षणाकारसदाकारप्रतीतेर्विलक्षणसम्बन्धेनानुपपादनीयत्वात् । भावत्वमेव सत्ता नतु द्रव्यादिकवृत्तिर्जातिरित्यपि न युक्तम्, अभावस्यापि सत्त्वप्रत्ययादिति। नन्वेवमजातित्वस्योभयोरभ्युपगमसम्भवेऽपि जातित्वस्याभ्युपेयत्वसाम्यं कथमुक्तम्, उक्तनियमस्य प्रामाणिकस्य जागरूकत्वादित्यत आह जातिपरापरत्वध्रौव्यमिति । **उक्तनियम इत्यर्थः । अनुगतप्रतीतिबलादुभयोरेव जातिताया रक्षणीयत्वे त्वित्यर्थकश्चकारः। एवं हि द्वयोः सप्तपदार्थीसाधारण्यं नोपेयम्, तुल्यव्यक्तिकत्वापत्तेः। किन्तु जन्यसत्त्वावच्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेन कारणतया कार्यतावच्छेदकघटकतया सिद्धायाः सत्ताया भवन्मतानुसारेण द्रव्यादित्रिकवृत्तित्वमेव, तथा चैकत्वं पक्षीकृत्य सत्ताव्यापकत्वं सत्ताजातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातित्वेनानुमेयम् । सत्ताभावसमानाधिकरणत्वस्य जातावप्रसिद्ध्या हेत्वप्रसिद्धिस्तु नाशङ्कनीया, उक्तार्थकचकारेणैव दत्तोत्तरत्वात् । क्वाप्येकस्य न्यूनवृत्तित्वे = किञ्चिदन्तर्भाविणैकस्यापराभाववद्वृत्तित्वे, एकस्यापरव्यापकत्वे इति यावत्। प्रमाणं = प्रमाणतावच्छेदकं, व्याप्तिज्ञानस्यानुमितिकरणत्वात् । एवञ्चैकत्वे सत्ताव्यापकत्वस्य व्यभिचारेण निरस्तत्वेन कथं व्यापकत्वनिर्वाह इत्यभिप्रायेण 'कथं तथे'त्येव शङ्काया औचित्येऽपि 'क्व तथे'त्याशङ्का भ्रान्तिमूला, यक्षानुरूपो बलिरिति न्यायेन चोत्तरग्रन्थः। यथाश्रुतं त्वसङ्गतमिति सूक्ष्ममीक्षणीयम् । तदंशे = शैलांशे, पर्वते हस्तप्रदेशे वा**

भारती

यदि सन् घट इत्यादि अनुगत प्रतीतिबलात् सत्ता को जाति मानेंगे तो ''एको घटः'' इत्यादि प्रतीतिबलात् एकत्व को भी जाति मानना चाहिए, क्योंकि एकत्र व्यभिचार के रहते हुए भी किञ्चिदन्तर्भाविण एक को अपर का व्यापक मानने में जाति का परापरभाव प्रमाण या व्याप्तिज्ञान के अनुमिति करणत्वपक्ष में प्रमाणतावच्छेदक (हेतु) बन ही सकता है । (तात्पर्य यह है कि एकत्व में व्यभिचार होने पर भी एकत्वं सत्ताव्यापकं सत्ताजातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातित्वात्'' इस प्रकार अनुमान से एकत्व में भी सत्ताव्यापकत्व सिद्ध कर सकते हैं ।)

यदि कहें कि – तज्जातिसमानाधिकरणतदभावसमानाधिकरणजातित्वरूप हेतु के एकत्व एवं सत्ता उभयत्र समान होने पर दोनों में से व्यापकत्व कहाँ अर्थात् किसमें है तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि – पर्वत में वह्निविषयक अनुमिति होने पर – वह वह्नि हस्तपरिमित पर्वत अंश में है या वितस्तिपरिमित पर्वतांश में है यह संशय होना, अनुमान का दोष नहीं है । तथाच प्रकृत में सामान्यतः व्यापकत्व की सिद्धि होगी वह एकत्व में है, या सत्ता में यह संशय अनुमान का दोष नहीं है ।

(यहाँ यह अवश्य ज्ञातव्य है कि – ''व्यभिचार होने से एकत्व में सत्ताव्यापकत्व तो निरस्त हो चुका है ऐसी स्थिति में एकत्व में सत्ताव्यापकत्व का निर्वाह (सिद्ध) ही कैसे हुआ''

F-7(V)

इत्यनिश्चयवददोषत्वात् । अथास्तु मा वाऽऽसीदेकत्वमनुगतम्, किमनेनात्र निरूपिते नः द्वित्वादिर्यत्र न समाप्यते, अभिहिता-भावत्रयञ्चास्ति तत्प्रत्यक्षमिति । मैवम्, अनुमित्यादित्रयेऽपि न

शारदा

वह्निर्वितस्तिप्रदेशे वेति संशयो नानुमाने दुष्टिमाधत्ते । व्याप्तिपक्षधर्मतासामर्थ्यविषयस्य तेन निश्चायनान्नात्रानुमाने संशायकतेति भावः। अनवस्थापेक्षयाऽऽत्माश्रयस्य लाघवेन घटाभावे घटो नास्तीत्यादौ तार्किकैरभ्युपगतत्वेनैकत्वे स्वस्य वृत्त्यभ्युपगमे सत्ताव्यापकत्वस्य तत्र निर्वाहसम्भव इति तु द्रष्टव्यम् । वस्तुतस्तूक्तरीत्या नोभयोरपि जातित्वम्, किन्त्वेकत्वं पदार्थान्तरं सत्ता तु ब्रह्मरूपा, सा जातिःसा महासत्ता तामाहुस्त्वतलादय' इत्युक्तेः । तादात्म्येन जन्यभावसम्बन्धित्वविशिष्टायाश्चास्या एव द्रव्यकार्यतावच्छेदकत्वम्, भावत्वञ्चाखण्डम्, एतस्याश्चावश्यकल्पनीयत्वे द्रव्यादित्रिकमात्रगतसत्ताकल्पने गौरवमेवेत्यवधेयम् । मेति । **नायं ङित्, माङि लुङापत्तेः । आसीदितिच्छेदः, ङिदिवाङिदपि मा भूतत्वप्रतीतिं रुणद्धीति भावः।** किमनेनेति । **एकत्वस्यानुगतस्य वाऽननुगतस्य वा पर्याप्तिर्नोपेया, एकत्वमेकस्मिन्नेव पर्याप्तमिति प्रतीतेर्द्वित्वादिस्थले इव समवायावगा-हितोपगमेऽतिप्रसञ्जकत्वस्यासम्भवादिति नोक्तपर्याप्तिलक्षणे दोष इति हृदयम् ।** द्वित्वादिरिति। **व्यासज्यवृत्तित्वेनैवैकत्वानवच्छिन्नानुयोगिकपर्याप्तिप्रतियोगित्वरूपेण निवेश उचितः, द्वित्वादेरनन्तत्वात् । तथा च व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेषेणानुमित्या-दिभेदसमुदायस्याधिकरणता विवक्षिता, अवच्छेदकता च पर्याप्तिसम्बन्धावच्छिन्नेति भावः।**

राजहंसः

भावत्वं चाखण्डमिति । तेन न जन्यतावच्छेदकगौरवम् ।

रुणद्धीति भाव इति । असगतिदीप्त्यादाविति भौवादिकस्य लुङि तादुशरूपसम्भवस्यापलक्षण-मिदम् । एवं च माङपि शक्यः प्रयोक्तुम् । अर्थस्तु प्रकृतोपयुक्त एव ग्राह्यः । **अतिप्रसञ्जकवस्येति।** द्वित्वादिस्थले समवायावगाहने घटो द्वित्ववानितिमतेरिव घटो द्वावितिमतेरपि प्रमात्वप्रसङ्गो न त्वेकत्वस्थले इति भावः ।

भारती

इस अभिप्राय से पूर्वपक्षी को ''कथं तथा'' (एकत्व में सत्ताव्यापकत्व कैसे) इस प्रकार ही शंका करना ही उचित था, किन्तु पूर्वपक्षी की ''क्व तथा'' (व्यापकत्व कहाँ है) यह शङ्का भ्रान्तिमूलक है और ''यक्षानुरूपो वलि'' न्यायानुसार उत्तर (समाधान) भी वैसा ही दिया गया है ।) (वस्तुतस्तु उक्तरीति से एकत्व तथा सत्ता दोनों जाति रूप नहीं है । किन्तु इनमें एकत्व पदार्थान्तर है जो अनिर्वचनीय है और सत्ता तो ब्रह्मरूपा है अतएव ''सा जातिः सा महासत्ता तामाहुस्त्वतलादय'' इत्यादि कहा गया है ।)

प्रश्न – एकत्व अनुगत हो या न हो, यहाँ इसके निरूपण से क्या प्रयोजन है । द्वित्वादि जहाँ पर्याप्ति सम्बन्ध से न हो और उक्त अभावत्रय (अनुमित्यादि का भेदत्रय) हो वह प्रत्यक्ष है'' यही प्रत्यक्ष का लक्षण करेंगे ।

त्रित्वं परिसमाप्तम्, एवं सत्यन्यानि श्रीणि न स्युः । अन्या सा त्रित्वव्यक्तिर्यान्यत्रेति चेन्न, त्रित्वव्यक्तेः कस्याश्चिदनुमित्यादित्रये परिसमाप्त्यभावात् । काचिदपि त्रित्वव्यक्तिर्यत्र न समाप्यत इति चेन्न, अव्यापकत्वात्, प्रत्यक्षत्वस्य त्रित्वव्यक्तेश्चावश्यं सामानाधिकरण्यस्य वैशेषिकमतव्युत्थितेन भवताभ्युपगन्तव्यत्वात्, अन्यथा प्रत्यक्षव्यक्तयस्तिस्रो न स्युः, तदेव हि त्रिरित्यभिधीयते यत्र त्रित्वं परिसमाप्यते ।

शारदा

एवं सति = अनुमित्यादिगतसमुदायत्वव्याप्यत्वस्य त्रित्वे सत्त्वोपगमे । स्युरिति । **एतच्च व्यासज्यवृत्तिधर्मान्तरेऽपि द्रष्टव्यम्, तथाचानुमित्यादिसमुदायीयविशेषणताऽपि न पर्याप्तिसम्बन्धावच्छिन्नव्यासज्यवृत्तिधर्मनिष्ठावच्छेदकताकानुयोगितावेति तादृशसमुदायेऽतिव्याप्तिरिति भावः।** अन्येति । **तथा चानुमित्यादिगतो व्यासज्यवृत्तिधर्मस्तादृशसमुदायत्वव्याप्य एवेति नोक्तदोषः। कस्याश्चित् = घटादिगतायाः। अत्रैकत्ववृत्तित्वादेरनुगतत्वसमर्थनाय न चेष्टितम्, व्यासज्यवृत्तेर्जातिताया असम्भवदुक्तिकत्वात्, यावदाश्रयप्रत्यक्षं विनाऽप्रत्यक्षत्वात्, अपेक्षाबुद्ध्यायत्ततया चानुगतस्वारसिकधियोऽभावात्। व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वमित्यत्र सामान्याभावविवक्षायां न विशेषाभावमादायातिप्रसङ्ग इत्याह** काचिदपीति । **अत्र सामान्याभावविक्षायामपि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावमुभयाभावादिकञ्चादायातिप्रसङ्गः सुकरः, पर्याप्त्यादिनिवेशे चानवस्थानमिति स्मृत्यन्यत्वखण्डनोक्तरीत्याऽनुसन्धेयम् । दूषणान्तरं त्वाह** अव्यापकत्वादित्यादिना । **व्युत्थितेन = अनङ्गीकर्त्रा, गुणे गुणाङ्गीकर्त्रेति भावः। त्रिरिति स्वरूपपरतायामेकवचनम्, त्रिरितिसुबन्तबोध्यत्रिशब्देनाभिधीयते इत्यर्थः।** परिसमाप्यते इति । **अन्यथैकस्त्रय इति व्यवहारापत्तेरिति । तथा च त्रित्वादिविशिष्टप्रत्यक्षेष्वव्याप्तिः स्थिरा, तन्निष्ठानुमित्यादिभेदविशेषणतायास्त्रित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वसम्भवात्, त्रित्वादिविशिष्टप्रत्यक्षस्यापि प्रत्यक्षत्वादेव च लक्ष्यतावश्यम्भाव इति भावः।**

भारती

(यहाँ भाव यह कि – अनुगत या अननुगत किसी भी एकत्व की पर्याप्ति हमें यहाँ उपादेय नहीं है, क्योंकि जैसे द्वित्व को समवाय सम्बन्ध से मानने पर अतिप्रसक्ति (अव्याप्ति) दोष होता है उस प्रकार ''एकत्वमेकस्मिन्नेव पर्याप्तम्'' यह प्रतीति किसी आपत्ति की जनिका नहीं है । अत: उक्त पर्याप्ति के लक्षण में कोई दोष नहीं है । किन्तु द्वित्वादि के अनन्त होने से व्यासज्यवृत्तित्वरूप (एकत्वानवच्छिन्नानुयोगिकपर्याप्तिप्रतियोगिकत्वरूप) से ही उसका निवेश करना उचित है । तथाच व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नानुयोगिकविशेषणताविशेष सम्बन्ध से अनुमित्यादिभेदसमुदाय की अधिकरणता विवक्षित है । यहाँ अवच्छेदकता पर्याप्तिसम्बन्ध से विवक्षित है ।)

समाधान – अनुमिति आदित्रय में भी त्रित्व परिसमाप्त (पर्याप्तिसम्बन्ध से) नहीं है ।

किञ्च, तथापि स एवाव्यापकतादोषः, त्रित्वेनावच्छिन्ना-स्वनुमित्यादिव्यक्तिषु त्वदभिमतमभावत्रयमस्तीति तत्र प्रत्यक्षलक्षणं गतमित्यतिव्याप्तिरुक्ता, तद्व्यावर्तनाय भवताऽभिधीयते काचिदपि

शारदा

ननु प्रत्येकं प्रत्यक्षमादायैव लक्षणसमन्वयसम्भवः, प्रत्यक्षत्वं तु न व्यासज्यवृत्तिः, उक्तरीत्यैकत्ववत्तत्पर्याप्तेरनभ्युपगमनीयत्वादिति तदवच्छिन्नानुयोगिकस्य व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नानुयोगिकत्वमक्षतमेव, किञ्च त्रित्वादिविशिष्टप्रत्यक्षेऽपि विशेषणतायास्त्रित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वानभ्युपगमेऽपि न काचित्क्षतिः, नह्यनुमित्यादाविव प्रत्येकं न तत्रानुमित्यादिभेदसमुदायसद्भाव इत्यस्वरसादाह किञ्चेति ।

भारती

यदि अनुमित्यादित्रय (अनुमित्यादिसमुदाय) में ही त्रित्व को परिसमाप्त (अर्थात् त्रित्व को अनुमित्यादिगतसमुदायत्व का व्याप्य) मानें तो अन्यत्र जहाँ अनुमित्यादिगतसमुदायत्व नहीं है वहाँ (यथा प्रमेयादीनि त्रीणि इत्यादि में) त्रित्व नहीं रहना चाहिए । तथाच उक्त प्रत्यक्षलक्षण की अनुमित्यादि के समुदाय में अतिव्याप्ति रहेगी ही ।

यदि कहें कि – अन्यत्र जो त्रित्व व्यक्ति है वह अनुमित्यादित्रयगत त्रित्व से अन्य (भिन्न) ही है । तथाच अनुमित्यादिगत त्रित्व तो अनुमित्यादिसमुदायत्व का व्याप्य ही है अत: अतिव्याप्ति नहीं है । तो यह आपका कथन युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि लक्षणघटक द्वित्वादि (व्यासज्य वृत्तिधर्म) में यावत्वविशेषण तो दिया नहीं है अत: अनुमित्यादि के समुदाय में भी यत्किञ्चित् घटादिगतत्रित्वव्यक्ति (व्यासज्यवृत्तिधर्म) की पर्याप्ति का अभाव होने से उक्तसमुदाय में पुन: अतिव्याप्ति हो जायेगी ।

यदि कहें कि किसी भी त्रित्वव्यक्ति की जहाँ परिसमाप्ति (पर्याप्ति) न हो वह प्रत्यक्ष है । (अर्थात् व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्व विशेषण में सामान्याभाव विवक्षित है अत: उक्त अभावविशेष लेकर अनुमित्यादि समुदाय में अतिव्याप्ति नहीं होगी । तो यह नहीं कह सकते, क्योंकि (सामान्याभाव की विवक्षा करने पर भी व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव तथा उभयाभाव लेकर अतिव्याप्ति तो रह ही जायेगी, साथ ही साथ) प्रत्यक्ष में अव्याप्ति हो जायेगी, कारण कि "गुणे गुणानङ्गीकार" इस वैशेषिक मत के अनङ्गीकर्ता आपको भी प्रत्यक्षत्व के साथ त्रित्व के सामानाधिकरण्य को (अर्थात् प्रत्यक्ष में त्रित्व संख्या) अवश्य मानना होगा, यदि प्रत्यक्ष में त्रित्व संख्या न मानें, तो "प्रत्यक्ष व्यक्तयस्तिस्र:" यह व्यवहार आपके मत में नहीं होगा । वे ही तीन कहे जाते हैं जहाँ त्रित्व संख्या परिसमाप्त हो (पर्याप्ति सम्बन्ध से रहे ।) तथाच त्रित्वादिविशिष्ट प्रत्यक्ष में उक्तलक्षण की अव्याप्ति हो जायेगी ।

किञ्च – कोई भी त्रित्व व्यक्ति जहाँ परिसमाप्त न हो" इस प्रकार विवक्षा करने पर उक्त अनुमित्यादिसमुदाय में अतिव्याप्ति रह जायेगी । कैसे ? तो सुनिये – त्रित्व से विशिष्ट अनुमित्यादि व्यक्ति में अपको अभिप्रेत उक्त अभावत्रय (अनुमित्यादि भेदत्रय) है अत: उस में प्रत्यक्ष का लक्षण चले जाने से अतिव्याप्ति हुई । उसकी व्यावृत्ति के लिए आपने – कोई भी

त्रित्वव्यक्तिर्यत्र न परिसमाप्यत इति, नचैवमुक्तेऽसावतिव्याप्ति-निर्वर्तते तत्राप्युक्तविशेषणस्य विद्यमानवात्, नहि त्रित्वावच्छिन्ने तस्मिंस्त्रित्वव्यक्तिः काचित्समाप्यते, त्रित्वलक्षणैकोपाध्यवच्छिन्ने तस्मिंस्त्रित्वव्यक्त्यन्तरं भवदप्याश्रयान्तरमादाय वर्तते, नतु तत्रैव परिसमाप्यते, यत्र चोक्तमुपाधिभूतं त्रित्वम् तेषु यदि त्रित्वसमाप्ति-धर्मिषु दृश्यते, तदा तद्दशनिन तत्र धर्मिमात्रे लक्षणव्यावृत्तिः सिद्ध्येन्नतु त्रित्वविशिष्टे धर्मिणि, तस्मादतिव्याकत्वं तदवस्थमेव। अभावत्रयं च त्रित्वोपाध्यवच्छेदेन समुदिततामुपगतवति विशिष्टे धर्मिणि वर्तते, नत्वविशिष्टे, प्रत्येकमभावत्रयावस्थानस्य तेषु वक्तुमशक्यत्वात् ।

शारदा

अतिव्याप्तिमुपपादयितुं पूर्वोक्तमनुवदति त्रित्वेनेत्यादिना। नहीति । **अंशत आत्माश्रयभयान्न त्रित्वादिविशिष्टे त्रित्वादिकमिति त्रित्वादिविशिष्टनिष्ठविशेषणतायास्त्रित्वाद्यन-वच्छिन्नानुयोगिकत्वमक्षतमेवेति विशिष्टेऽतिव्याप्तिः । ननु त्रित्वादिविशिष्टे त्रित्वाद्यन्तरोपगमे आत्माश्रयाभावेनोक्तविशेषणतायास्त्रित्वावच्छिन्नानुयोगिकत्वसम्भव इत्यत आह** त्रित्वलक्षणेति । आश्रयान्तरमादायेति। **अनुमित्यादित्रयसमुदायो घटपटौ चेतित्रयमिति प्रतीतेर्घटादिसहिते एव समुदाये त्रित्वान्तरम्, तच्च नानुमित्यादित्रयमात्रगतसमुदायत्वव्याप्यमिति न तदवच्छिन्नपर्याप्तमित्यर्थः । ननु प्रथमं त्रित्वं हि नानुमितित्वादिप्रत्येकधर्मावच्छेदेन वर्तते, अतिप्रसङ्गात्, किन्तु त्रित्वावच्छेदेनैव, अवच्छेदकता च त्रित्वस्योपलक्षणतया न तु**

भारती

त्रित्व व्यक्ति जहाँ परिसमाप्त न हो वहा प्रत्यक्ष है'' ऐसा निवेश किया, किन्तु ऐसा निवेश करने पर भी उक्त अतिव्याप्ति का वारण नहीं होता, क्योंकि अंशतः आत्माश्रय के भय से त्रित्वादिविशिष्ट अनुमित्यादि समुदाय में किसी भी त्रित्व व्यक्ति के परिसमाप्त (पर्याप्ति-सम्बन्धेनविद्यमान) न होने से उक्तलक्षण अनुमित्यादिसमुदाय में भी विद्यमान है ।

यदि कहें कि त्रित्वादिविशिष्ट उक्त अनुमित्यादिसमुदाय में अन्य त्रित्वव्यक्ति (अनुमित्यादित्रयसमुदायो घटपटौ च एतत् त्रितयगत त्रित्वव्यक्ति) रह जायेगा, इससे आत्माश्रय भी नहीं है और त्रित्व के परिसमाप्त होने से ''काचिदपि त्रित्वव्यक्ति न परिसमाप्यते'' इत्यादि लक्षण के न होने से अतिव्याप्ति भी नहीं है । तो यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार वह अन्यत्रित्व व्यक्ति घटपटादि सहित अनुमित्यादित्रयसमुदाय में ही रहेगा, न कि केवल अनुमित्यादित्रयसमुदाय में, अतः घटपटादि आश्रयान्तर को लेकर ही रहने वाला वह अन्य त्रित्वव्यक्ति अनुमित्यादित्रयमात्रसमुदाय में परिसमाप्त (पर्याप्तिसम्बन्ध से) नहीं है (अर्थात् तादृशसमुदायत्व व्याप्य न होने से तादृशत्रित्वावच्छिन्नपर्याप्त नहीं है ।) एवञ्च उक्त प्रत्यक्षलक्षण की उक्तसमुदाय में अतिव्याप्ति रहेगी ही ।

(यदि कहें कि – प्रथम त्रित्व व्यक्ति भी अनुमित्यादि के समुदाय में अनुमितित्वादि प्रत्येक धर्मावच्छेदेन (प्रत्येक धर्मविशिष्ट में) तो रह नहीं सकता, अतः त्रित्वावच्छेदेन ही कहना

अथ मन्यसे—तादृशस्य विशिष्टस्य प्रमितित्वेनैव व्यवच्छेदः, नह्यभावत्रयवृत्तित्वं विशेषणमाश्रयकोटावन्तर्भाव्य तासु व्यक्तिषु प्रमितित्वं वर्तते, किन्तु तेषां धर्मिणां स्वरूपमात्रे, उक्ताभावत्रयं प्रमितित्वञ्चेत्येतद्यत्रास्ति तत्प्रत्यक्षमिति ब्रूम इति । न, भवतापि

शारदा

विशेषणतयेति नात्माश्रयः, एवञ्च व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नानुयोगित्वं विशेषणताया-मागतमेवेत्याशङ्क्य त्रित्वोपलक्षितेऽनुमित्यादावतिव्याप्तिरेवं वारिता, नच तत्र तत्प्रसक्तिः, तत्रानुमित्यादिभेदानामभावात्, त्रित्वविशिष्टे त्वतिव्याप्तिः प्रसज्यते एवेत्याह यत्रेति । **अनुमित्यादिष्वित्यर्थः। धर्मिषु = त्रित्वोपलक्षितेषु । चो ह्यर्थे । पूर्वं विशेष्यीभूतज्ञानत्वदलेन समुदायेऽतिव्याप्तिवारणमाशङ्क्य विशिष्टस्यापि ज्ञानस्य ज्ञानत्वादेवेत्यभिधाय पर्यहार्षीत्। अधुना तु प्रकारान्तरेण तद्दलेनैवातिव्याप्तिवारणमाशङ्कते** अथेत्यादिना । **प्रमितित्वेन = ज्ञानत्वेन एवं परतोऽपि । त्रित्वं विशेषणमित्यादि त्रित्वमधिकरणतावच्छेदककीकृत्येत्यर्थकम्। स्वरूपमात्रे = अनुमितित्वाद्यवच्छेदेन। यत्र = यदवच्छेदेन । तत् = तदवच्छिन्नम् । स्वनिष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपितनिरूप-कत्वसम्बन्धेनानुमित्यादिभेदकूटविशिष्टं ज्ञानत्वं प्रत्यक्षत्वमिति यावत् । यद्यपि त्रित्वावच्छिन्नेऽनुमित्यादौ ज्ञानत्वं न शक्यमपाकर्तुं तथापि तदधिकरणता**

भारती

होगा, उसमें त्रित्व विशेषणतया अवच्छेदक मानने पर आत्माश्रय होने से उपलक्षणतया ही अवच्छेदक मानना उचित है । ऐसी स्थिति में त्रित्व से उपलक्षित उक्त अनुमित्यादित्रयसमुदाय में त्रित्व के परिसमाप्त होने से अतिव्याप्ति नहीं होगी । तो यह भी आप नहीं कह सकते, क्योंकि) जिस अनुमित्यादिधर्मि में उक्त उपाधिभूत त्रित्व है उस त्रित्वोपलक्षित अनुमित्यादि में अन्यत्रित्व परिसमाप्त मानने से तो त्रित्वोपलक्षित अनुमित्यादि धर्मिमात्र में ही अतिव्याप्ति का वारण आपने किया, न कि त्रित्वविशिष्ट में, किन्तु वहाँ (त्रित्वोपलक्षितअनुमित्यादिधर्मिमात्र में) अतिव्याप्ति प्रसक्त (प्राप्त) ही नहीं थी, क्योंकि तादृश धर्मिमात्र में अनुमित्यादिभेदत्रय ही नहीं है । अत: त्रित्वविशिष्ट में ही अतिव्याप्ति प्रसक्त थी । कारण कि – त्रित्वविशिष्ट धर्मि में ही उक्त अनुमित्यादिभेदत्रय है न कि केवल धर्मि में; अनुमित्यादि प्रत्येक में अनुमित्यादि भेदत्रय कह नहीं सकते, और उसी त्रित्वविशिष्ट धर्मि में पर्याप्ति सम्बन्ध से त्रित्वाभाव है । तस्मात् त्रित्वविशिष्टअनुमित्यादित्रयसमुदाय में अतिव्याप्ति तदवस्थ है ।

प्रश्न – उक्तप्रत्यक्षलक्षण में प्रमितित्व (ज्ञानत्व) के निवेश से ही अनुमित्यादित्रयसमुदाय में अतिव्याप्ति का वारण हो जायेगा क्योंकि जैसे अनुमित्यादि का अभावत्रय त्रित्वविशिष्ट धर्मि में है वैसे प्रमितित्व (ज्ञानत्व) आश्रय अर्थात् अनुमित्यादित्रय में त्रित्व को विशेषण मानकर त्रित्वविशिष्टअनुमित्यादित्रयसमुदायरूप धर्मी में नहीं है अपितु अनुमितित्वाद्यवच्छेदेन अनुमित्यादिरूपधर्मिमात्र में ही है । "उक्त अभावत्रय तथा प्रमितित्व (ज्ञानत्व) दोनों जहाँ (यदवच्छेदेन)एकत्र रहते हों वह प्रत्यक्ष है" ऐसा हम कहते हैं ।

भिन्नभिन्नधर्मावच्छिन्नस्यैव धर्मिण प्रमितित्वमभावत्रयवत्त्वञ्चा-वश्यमभ्युपगन्तव्यम्, तथाहि–यदि प्रमितित्वस्य क्वाचित्कत्वे नियामकं नोच्यते तदा सर्वा प्रमितिः स्यात् न वा काचिदपि ।

सर्वत्र सत्ताऽसत्ता वा नियमेऽन्यानपेक्षया ।
नियामकाद्धि भावानां क्वाचित्कत्वस्य सम्भवः ।। ४२।।

तन्नियामकमाश्रये विशेषणीभूतं वक्तव्यमुपलक्षणीभूतं वा? आद्ये यदेव प्रमितित्वस्याश्रये विशेषणं तदेव यद्यभावत्रयस्यापि,

शारदा

न त्रित्वेनावच्छिद्यते, अवच्छेदकता ह्यत्र विलक्षणा प्रविष्टेत्यग्रेव्यक्तीभविष्यति । अवश्यमिति। **तथाचासम्भव इति भावः। क्वाचित्कत्वे = किञ्चिद्वस्त्ववृत्तित्वे सति किञ्चिद्वस्तुवृत्तित्वे। नियामकं = प्रयोजकं ।** स्यादिति । **ज्ञानत्वं यदि नियामकरहितं स्यात् क्वाचित्कं न स्यादित्यापादनीयम्, क्वाचित्कत्वाभावस्तु विशेषणस्य विशेष्यस्य वाऽभावेन प्रयुक्तः सार्वत्रिकत्वेऽलीकत्वे वा पर्यवस्यति। तत्रान्यथाख्यातिमते आद्ये, असत्ख्यातिमते तु द्वितीये, मतान्तरे त्वन्यतरस्मिन् । असार्वत्रिकत्वस्य पक्षे विशेषणे तु सर्वमते एवालीकत्वे पर्यवसानम्। यद्यप्यवृत्तिपदार्थाभ्युपगन्तृमतेऽवृत्तित्वेऽपि पर्यवसानसम्भवस्तथापि तस्यापि प्रकृते आपादने इष्टप्रसञ्जनासम्भवेन विपर्ययपर्यवसानेन प्रयोज्यत्वसिद्धिसम्भवान्नार्थान्तरमिति।** वेति । **प्रसज्येतेति शेषः। नियमेऽन्यानपेक्षया = क्वाचित्कत्वनियमनार्थं कस्यचिदनपेक्षया।** यदेवेत्यादि । **यदेवाभावत्रयस्याश्रये विशेषणं तदेव यदि प्रमितित्वस्यापीति योजनीयम् ।**

भारती

समाधान – आप (तार्किक) को भी भिन्न-भिन्न धर्मावच्छिन्न (धर्मविशिष्ट) धर्मी में ही प्रमितित्व (ज्ञानत्व) तथा अभावत्रय को अवश्य ही मानना होगा । (तथाच किसी प्रत्यक्ष में एकत्र एकधर्मावच्छेदेन ज्ञानत्व एवं अभावत्रय (भेदत्रय) के न होने से उक्तप्रत्यक्षलक्षण सर्वत्र असम्भवग्रस्त हो जायेगा । एकधर्मावच्छेदेन एकत्र उभय का समावेश न होने में प्रकार यह है कि – यदि ज्ञानत्व के क्वाचित्कत्व (अर्थात् किञ्चिद्वस्तु में अवृत्ति होकर किञ्चिद्वस्तु में वृत्ति होने में कुछ नियामक (प्रयोजक) न मानें तो सभी प्रमिति (ज्ञान) हो जायेगी । या कोई भी प्रमिति (ज्ञान) न होगी । (यहाँ ज्ञानत्व यदि नियामक रहित हो तो क्वाचित्क न हो'' इस प्रकार आपादन कर सकते हैं और क्वाचित्कत्वाभाव का पर्यवसान विशेषण या विशेष्य के अभाव से सार्वत्रिकत्व में या अलीकत्व में होता है । किसी पदार्थ के क्वाचित्कत्व के नियमार्थ अन्य किसी नियामक की अपेक्षा यदि न हो तो, उस पदार्थ की सर्वत्र ही सत्ता ही हो जायेगी अर्थात् वह पदार्थ नित्य हो जायेगा, या उसकी सर्वत्र असत्ता ही हो जायेगी, अर्थात् वह सर्वथा अलीक ही हो जायेगा । क्योंकि सभी भाव पदार्थों का क्वाचित्कत्व (कदाचित् उत्पन्न होना और कदाचित् न होना) नियामक के ही अधीन है। ।।४२।।

यदि कुछ नियामक मानें तो उस नियामक कोई आश्रय में विशेषण मानेंगे या

तदा त्रित्वावच्छिन्नेऽनुमित्यादावभावत्रयस्य दर्शितत्वात्तत्र प्रमितित्वेनापि त्रित्वावच्छिन्ने भवितव्यमिति प्रमितित्वान्न तद्व्यवच्छेदः । अथान्यावच्छिन्ने प्रमितित्वमन्यधर्मावच्छिन्ने चाभावत्रयसम्बन्धः, तदा नास्ति त्वत्पक्षेऽपि प्रमितित्वस्यैकधर्मविशिष्टाश्रयत्वलक्षण-

शारदा

आश्रये विशेषणं = क्वचिद्वृत्तौ प्रयोजकीभूतं विशेषणं । त्रित्वावच्छिन्ने इति । **प्रयोजकस्य व्याप्यात्मकतामभिप्रेत्येदम्, अन्यथाऽनुमित्यादिगतत्रित्वस्य प्रत्यक्षेऽभावेन तस्याभावत्रयानाश्रयतापत्तेः** । अथान्येति । **प्रयोजकं नात्र व्याप्यं विवक्षितम्, उक्तापत्त्या तत्साधनेऽलीकत्वपरिहारेऽपि सार्वत्रिकत्वपरिहारासम्भवात्। अतएव न कार्यमपि । नापि जनकम्, ज्ञानत्वस्य भेदकूटस्य च नित्यत्वात् । नापि व्यापकमात्रम्, प्रमेयत्वादेर्व्यापकस्य सत्त्वेऽपि सार्वत्रिकत्वापरिहारात् । अपि तु स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपप्रयोजकताश्रयः, सा च ज्ञानत्वस्य तदवच्छिन्नजनकादौ, अनुमित्यादिभेदानां तु तत्तद्व्यासज्यवृत्तिधर्मे प्रत्यक्षत्वादिके चानुमितित्वाद्यभावव्याप्ये, एवञ्च ज्ञानत्वं स्वावच्छिन्नकारणजन्यत्वादिविशिष्टे वर्तते, नित्ये तु ज्ञानत्वं धर्मिग्राहकमानाऽऽनीतमित्यर्थः।** एकधर्मविशिष्टाश्रयत्वेति । **एकधर्मावच्छिन्नाधिकरणताकत्वेत्यर्थः । यद्यपि भिन्नप्रयोजकप्रयोज्यानामपि घटपटादीनामेकभूतलवर्तिनामेकधर्मावच्छिन्नाधिकरणताकत्वमुपलब्धमेवेति प्रत्यक्षत्वावच्छेदेन ज्ञानत्वभेदसमुदाययोर्वृत्तिसम्भवादसम्भवसम्भवो न, तथापि प्रयोजकमेवात्राधिकरणतावच्छेदकं विवक्षितं पूर्वपक्षयितुः, अन्यथाऽनुमित्यादित्रयं ज्ञानत्ववदिति प्रतीत्या भेदकूटाधिकरणतावच्छेदकत्रित्वस्य ज्ञानत्वाधिकरणतावच्छेदकत्वे बाधकभावेनातिव्याप्तिवारणशङ्काया असङ्गतेरिति भावः। तादृशभेदकूटज्ञानत्वयोः सामानाधिकरण्यमात्रविवक्षायां तु यथा**

भारती

उपलक्षण? प्रथम पक्ष में जो प्रमितित्व का नियामक आश्रय का विशेषण है यदि वही अभावत्रय का नियामक भी आश्रय में विशेषण है अर्थात् जो उक्त अभावत्रय के आश्रय में विशेषण है वही यदि प्रमितित्व के आश्रय में भी विशेषण है तो त्रित्वविशिष्ट अनुमित्यादित्रय में अभावत्रय (भेदत्रय) को दिखा चुके हैं अत: उसी त्रित्वविशिष्ट अनुमित्यादित्रय में प्रमितित्व भी अवश्य ही रहेगा, ऐसी स्थिति में उक्त प्रत्यक्षलक्षण में प्रमितित्व विशेषण देने पर उक्तविशेषण के द्वारा अनुमित्यादित्रय के समुदाय में अतिव्याप्ति का वारण नहीं हो सकता ।

यदि अन्य धर्म से अवच्छिन्न (विशिष्ट) आश्रय में प्रमिति (ज्ञानत्व) एवं अन्य धर्म से अवच्छिन्न (विशिष्ट) आश्रय में अभावत्रय (भेदत्रय) मानें तो आप (तार्किक) के पक्ष में भी प्रमितित्व तथा अभावत्रय एकधर्मावच्छिन्न (एकधर्मविशिष्ट) प्रत्यक्ष में नहीं है । (प्रत्यक्षत्रयसमुदाय में त्रित्वावच्छेदेन अथवा प्रत्यक्षत्रयसमुदायत्वावच्छेदेन अनुमित्यादिभेदत्रय (अभावत्रय) रहता है तथा प्रत्येक प्रत्यक्षगत प्रत्यक्षत्वावच्छेदेन प्रमितित्व (ज्ञानत्व) रहता है इसलिए) प्रमितित्व तथा अभावत्रय का प्रत्यक्ष में भी एकधर्मविशिष्टाश्रयत्व अर्थात् एकधर्मावच्छिन्नाधिकरणताकत्वरूप एकाश्रयत्व न होने से असम्भव हो जायेगा ।

मेकाश्रयत्वम् । विशिष्टेऽपि धर्मिण्याश्रितो धर्म्याश्रित एवेति कृत्वा च प्रमितित्वस्याभावत्रयसमानाश्रयत्वेऽनुमित्यादित्रयेऽपि प्रसङ्गस्तदवस्थः नापि द्वितीयः, उपलक्षणीभूतेन केनचिद्धर्मेण योऽसावुपलक्षितो धर्मी स एव खलु त्रित्वविशिष्टः, विशेषणवतोऽपि यावद्विशेष्य-वस्तुनो विशेष्यवस्त्वात्मकत्वात्, यथा दण्ड्यपि पुरुषः पुरुष एव, एवञ्च सत्युपलक्षितादनन्यभूते त्रित्वविशिष्टेऽप्यनुमित्यादौ प्रमितित्व-माश्रितम्, नियामकेनोपलक्षणेनोपलक्ष्याभेदव्यवस्थिततया तस्याप्यवच्छिन्नत्वात्, तथाचातिव्याप्तिर्वज्रलेपायिता । तथाप्युप-

---

शारदा

प्रत्यक्षे लक्षणसमन्वयस्तथाऽनुमित्यादिसमुदायेऽपीत्याह विशिष्टे इति । **प्रयोजकविशिष्टे इत्यर्थः।** धर्मेणेति । **उक्तप्रयोजकेनेत्यर्थः। उपलक्षणत्वञ्चात्र परिचायकत्वमेव, नत्वविद्यमानत्वगर्भम् । यावदिति यत इत्यर्थकं वा साकल्यार्थकं षष्ठीसमस्तं वा ज्ञेयम्।** आश्रितमिति । **विशिष्टशुद्धयोरभेद इव भेदाभेदेऽपि समानमिदम् । नन्वेतावता कारणविशेषजन्यत्वाद्युपलक्षणावच्छिन्नाधिकरणताकत्वं ज्ञानत्वे नायातमिति कथमतिव्याप्तिरित्यत आह** नियामकेनोपलक्षणेनेति । **तस्याप्यवच्छिन्नत्वादित्यन्वयः । तत्र हेतुः** – उपलक्ष्याभेदव्यवस्थिततयेति । **उपलक्ष्याभिन्नतयेत्यर्थः। तस्यापि = त्रित्वविशिष्टस्यापि। तथाच = अनुमित्यादिभेदकूटाधिकरणे त्रित्वविशिष्टे वर्तमानस्यापि ज्ञानत्वस्य तन्निष्ठोक्तोपलक्षणावच्छिन्नाधिकरणताकत्वे च । ईदृशविवक्षायामेवातिव्याप्तिर्दीयते,**

भारती

यदि कहें कि – अवच्छेदक के भिन्न होने पर भी विशिष्ट धर्मि के आश्रित वस्तु धर्मि के आश्रित होती ही है अतः प्रत्यक्षरूप धर्मि में प्रमितित्व और अभावत्रय दोनों के रहने से असम्भव नहीं है । तो इस प्रकार प्रत्यक्ष में असम्भव दोष के निवृत्त होने पर भी अनुमित्यादित्रय में अतिव्याप्ति हो जायेगी । (क्योंकि अनुमित्यादित्रय में भी अवच्छेदक भेद होने पर भी अनुमित्यादिरूप धर्मि में प्रमितित्व और अभावत्रय का सामानाधिकरण्य है ।)

"नियामक आश्रय में उपलक्षण है" यह द्वितीय विकल्प भी युक्तियुक्त नहीं है । कारण कि जो उपलक्षणीभूत किसी धर्म से उपलक्षित धर्मी है वही त्रित्वविशिष्ट भी है क्योंकि (विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते" नियम के अनुसार विशिष्ट एवं शुद्ध का अभेद होने से) विशेषणवान् (विशेषणविशिष्ट) विशेष्य भी विशेष्य ही है । जैसे दण्डी पुरुष (दण्डविशिष्ट पुरुष) भी पुरुष ही है । ऐसी स्थिति में त्रित्वोपलक्षित अनुमित्यादि में प्रमितित्व (ज्ञानत्व) होने से उपलक्षित से अनन्यभूत (अभिन्न) त्रित्वविशिष्ट अनुमित्यादित्रय में भी प्रमितित्व है । वह त्रित्वविशिष्ट अनुमित्यादित्रय भी – विशिष्ट के उपलक्ष्याभिन्नतया व्यवस्थित होने से नियामक उपलक्षणीभूत धर्म से भी अवच्छिन्न है । तथाच अनुमित्यादिभेदकूटाधिकरण त्रित्वविशिष्ट अनुमित्यादित्रय में प्रमितित्व (ज्ञानत्व) के विद्यमान होने से अनुमित्यादित्रय में उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति पुनः वज्रलेप हो गई ।

लक्षकेण त्रित्वविशिष्टतया नोपलक्षितोऽसौ धर्मी, किन्तु स्वरूपेणेति चेन्न, उक्तमत्र यदेव तदुपलक्षितं तदेव विशिष्टमपि । तथापि

शारदा

एवञ्चेश्वरज्ञानेऽव्याप्तिरपि द्रष्टव्या। अनुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताकत्वस्य ज्ञानत्वे विवक्षायां तूक्तोपलक्षणस्यैव ज्ञानत्वाधिकरणतावच्छेदकत्वविवक्षणेऽसम्भवः स्फुट एव, अन्यथा तु समुदायेऽतिव्याप्तिरनुमित्यादित्रयं ज्ञानत्ववदिति प्रतीतिमादाय द्रष्टव्या । अन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकता तु न प्रत्यक्षत्वेऽपीत्यसम्भवापादिका तद्विवक्षा । अथानुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकमात्रावच्छिन्नाधिकरणताकत्वविशिष्टज्ञानसमवेतजातिमत्त्वं प्रत्यक्षत्वम्, ज्ञानत्वं तु न तादृशं नाप्यनुमितित्वादिकम्, अनुमित्यादिगतसमुदायत्वं तु तादृशमपि न जातिरिति चेन्न; तादृशजातिनिरासेन दत्तोत्तरत्वादिति । तथापि = विशेष्यवृत्तेर्विशिष्टवृत्तित्वेऽपि । स्वरूपेण = अनुमितित्वादिना । समुदायत्ववत्तयोपलक्षितत्वे उपलक्षणावच्छिन्नाधिकरणवृत्तेरुपलक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्तिताया औचित्यावर्जिततत्वात् स्वावच्छिन्नकारणजत्वावच्छिन्नाधिकरणवृत्तिज्ञानत्वस्य समुदायत्वात्मकोपलक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्तित्वं स्यादिति स्यादतिव्याप्तिः, अनुमित्यादिभेदकूटस्यापि समुदायत्वावच्छिन्नाधिकरणवृत्तित्वात्, यदा तु समुदायत्वं नोपलक्ष्यतावच्छेदकम्, तदा ज्ञानत्वस्य न तदवच्छिन्नाधिकरणवृत्तित्वमपि तु स्वावच्छिन्नकारणजत्वावच्छिन्नाधिकरणवृत्तित्वमेवेति विवक्षितसामानाधिकरण्यविरहात्कुतोऽतिव्याप्तिरिति भावः। उक्तमिति। **समुदायत्वस्योपलक्ष्यतानवच्छेदकत्वे ज्ञानत्वाधिकरणतावच्छेदकत्वमस्तु मा वा, समुदायत्वावच्छिन्नस्य कारणविशेषजत्वोपलक्षितस्य चैक्ये त्वनुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकसमुदायत्वविशिष्टनिरूपितवृत्तितावज्ज्ञानत्वमादायातिव्याप्तिर्दुरतिक्रमैवेति भावः। ननु स्यादेवं यद्यनुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकविशिष्टनिरूपितवृत्तितावज्ज्ञानत्वमेव प्रत्यक्षत्वं मे विवक्षास्पदतामास्कन्देत, अनुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताकज्ञानत्वं प्रत्यक्षत्वात्मतया विवक्ष्यमाणं तु न कथमतिव्याप्तिमतिक्रामति, अनुमित्यादिसमुदायत्वस्योपलक्ष्यतावच्छेदकत्वाभावे तदवच्छिन्नाधिकरणताकत्वस्य ज्ञानत्वेऽसद्भावादित्यभिप्रायेणाशङ्कते** तथापीति ।

भारती

यदि कहें कि – यद्यपि विशेष्यवृत्ति धर्म विशिष्टवृत्ति भी होता है तथापि अनुमित्यादित्रयरूपधर्मी त्रित्वविशिटत्वरूप से उपलक्षक से उपलक्षित नहीं है, अपितु अनुमितित्वादिस्वरूप से ही उक्त धर्मी उपलक्षित है । तथाच विवक्षित सामानाधिकरण्य के न होने से उक्तप्रत्यक्षलक्षण की अतिव्याप्ति न होगी । तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो धर्मि त्रित्व से उपलक्षित है वही त्रित्वविशिष्ट भी है, यह कहा जा चुका है । तथाच विशिष्ट और उपलक्षित के एक होने से धर्मि को लेकर सामानाधिकरण्य हो जाने से उक्त अतिव्याप्ति तदवस्थ ही है ।

विशिष्टेन रूपेण तावन्नोपलक्षितमिति चेत्, मोपलक्षि, अविशिष्टेनापि तन्नोपलक्षितमेव अन्यथा प्रकृतेऽपि वैयधिकरण्यापत्तेः। तदास्यतामुल्लसत्पल्लववचनविलसितेनेति। तदेवं लक्षणान्तरेऽपि प्रतिपादितोऽयं दूषणसमूहः स्वयमूहनीयः।

शारदा

विशिष्टोपलक्षितयोरैक्येऽपीत्यर्थः। **विशिष्टेन = समुदायत्वविशिष्टतया। अविशिष्टेन = समुदायत्वाविशिष्टतया।** अन्यथेति। **अवैशिष्ट्यस्योपलक्ष्यतावच्छेदकत्वे कारणविशेषजत्वस्य चोपलक्षणतया ज्ञानत्वाधिकरणतावच्छेदकत्वे इत्यर्थः। प्रकृते = प्रत्यक्षमात्रे। उपलक्षणावच्छिन्नवृत्तिकज्ञानत्वस्योपलक्ष्यतावच्छेदकावैशिष्ट्यावच्छिन्नाधिकरणताकत्वमपि स्यात्, अनुमित्यादिभेदकूटस्य तु समुदायत्वावच्छिन्नाधिकरणताकत्वेनेवानुमित्यादिसमुदाये प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नाधिकरणताकत्वेन प्रत्यक्षेऽपि भिन्नाधिकरणतावच्छेदकत्वमेवेत्यसम्भवः। यदि चावैशिष्ट्यस्येव प्रत्यक्षत्वस्याप्युपलक्ष्यतावच्छेदकत्वम्, वस्तुतस्त्ववैशिष्ट्यस्योपलक्ष्यतावच्छेदकत्वं न मानैर्दूरतोऽप्यवलोकितम्, तदाऽप्युपलक्षणावच्छिन्नाधिकरणताकत्वमादायैवाधिकरणतावच्छेदकभेदः सम्पादनीय इत्यसम्भव एव। अथ प्रत्यक्षत्वस्योपलक्ष्यतावच्छेदकस्यापि ज्ञानत्वाधिकरणावच्छेदकतया न तद्भेदः, तथापीश्वरज्ञानेऽव्याप्तिरेव, तत्रोक्तोपलक्षणविरहात्। अथोपलक्षणोपलक्ष्यतावच्छेदकादिविवक्षाऽपासनीया, उपासनीया चानुमित्यादिभेदकूटाधिकरणतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताकत्वस्य ज्ञानत्वे विवक्षा, तदाप्यनुमित्यादित्रयं ज्ञानत्ववदिति प्रतीतिमादायातिव्याप्तिरुक्तैवेति भावः।** उल्लसत्पल्लवेत्यादि। **अतिविस्तृतवाग्विलासेनेत्यर्थः। आस्तामिति पाठे सहार्थे तृतीया।** लक्षणान्तरेऽपीति। **ऊहनीय इत्यन्वयः।** एतदिति।

भारती

यदि कहें कि विशिष्ट और उपलक्षित के एक होने पर भी अनुमित्यादित्रयगत समुदायत्वविशिष्टरूप से तो वह उपलक्षित नहीं है, तो ठीक है वह भले ही विशिष्ट रूप से उपलक्षित नहीं है। किन्तु अविशिष्ट रूप (केवल अनुमितित्वादि रूप) से भी तो उपलक्षित नहीं है। अन्यथा (अर्थात् यदि वैशिष्ट्य को उपलक्ष्यतावच्छेदक न मानें और कारण विशेषजन्यत्व को उपलक्षणतया ज्ञानत्व के अधिकरणता का अवच्छेदक मानें तो) प्रकृत – प्रत्यक्षमात्र में भी वैयाधिकरण्य के प्राप्त होने से असम्भव हो जायेगा। क्योंकि प्रत्यक्ष में भी अविशिष्ट रूप से उपलक्षित में प्रमितित्व (ज्ञानत्व) एवं प्रत्यक्षत्वविशिष्ट रूप से अनुमित्यादि-भेदकूट के रहने से वैयाधिकरण्य स्पष्ट है। तथाच उक्तप्रत्यक्षलक्षण असम्भव दोषग्रस्त हो जायेगा। तस्मात् इस अतिविस्तृत वाग् विलास को रहने दिया जाय, अर्थात् इस वाग् विस्तार से कोई लाभ न होने से यह व्यर्थ है। इसी प्रकार लक्षणान्तरों में भी इस पूर्वप्रतिपादित दूषणसमूह का ऊघ्न (उत्थापन) स्वयं कर लेना चाहिए।

एतदेव परामृश्य भट्टैरिदमुदाहृतम् ।
''लक्षणस्याभिधानं तु केनांशेनोपयुज्यते'' ।। ४३।।

अन्याभिप्रायोक्तमपि हि तत्सामान्यतोऽप्युपपद्यमानमेवेति साक्षात्कारित्वखण्डनम् । इति कवितार्किकचक्रचूडामणेः श्रीश्रीहर्षस्य कृतौ खण्डनखण्डखाद्ये प्रथमपरिच्छेदे प्रत्यक्ष-खण्डनप्रकरणम् ।

शारदा

लक्षणमात्रस्य व्यवहारव्यावृत्त्यात्मकफलतः स्वरूपतश्च दुर्वचत्वमित्यर्थः। एवोऽप्यर्थे। इदम् = लक्षणस्येत्यादिकम् । उदाहृतमिति । **''सत्सम्प्रयोगे'' इति प्रत्यक्षसूत्रवार्तिके इति द्रष्टव्यम् ।** केनांशेनेति । **न कथमपीत्यर्थः** । अन्याभिप्रायोक्तमिति । **सत्सम्प्रयोगे इन्द्रियाणां बुद्धिजन्मेति प्रत्यक्षलक्षणविशेषस्यैवानुपयोगः, सोऽपि च 'चोदनैव धर्मे प्रमाणम्' 'चोदना धर्मे प्रमाणमेवे'ति प्रतिज्ञातार्थयोरेवेत्यभिप्रायेणोक्तमित्यर्थः।** सामान्यतोऽपीति। **न केवलं प्रत्यक्षलक्षणविशेषस्यैवानुपयोगोऽपितु लक्षणसामान्यस्य, सोऽपि च न केवलमुक्तप्रतिज्ञातार्थयोरेव, अपि तु व्यावृत्तिव्यवहारयोरपीत्यभिप्रायेणापीत्यर्थः । तथाचैतदभिप्रायकतयापि भट्टपादोक्तेरुपवर्णने ''सत्सम्प्रयोगे'' इति सूत्रस्य भवदासाभिमतलक्षणपरत्वनिरासस्य सम्भवेनोक्तविशेषाभिप्रायकतयैवोपवर्णने विनिगमकाभावः, अतएव ''न चाप्येतेन सूत्रेण प्रत्यक्षं लक्ष्यते स्फुटम् । तदाभासेऽपि तुल्यत्वात्स्वप्नज्ञानैकवर्जनात् ।। तद्धीन्द्रियार्थसम्बन्धव्यापारेण विना भवेत् । केनचित्सम्प्रयोगे तु भ्रान्त्यादि स्यान्नियोगतः।।'' इत्यनेन लक्षणदोषमुत्कीर्त्य ''प्रत्यक्षं यज्जने सिद्धं तस्यैवंधर्मकत्वतः । विद्यमानोपलम्भत्वं तेन धर्मेऽनिमित्तते''ति स्वाभिमतसूत्राशयोपवर्णने**

भारती

व्यवहार तथा व्यावृत्ति रूप फल की दृष्टि से एवं स्वरूप से लक्षणमात्र ही दुर्वच है'' इस प्रकार लक्षण मात्र के दुर्वचत्व का परामर्श (विचार) करके ही भट्टपाद (कौमारिलभट्ट) ने ''सत्सम्प्रयोगे'' इस प्रत्यक्षसूत्र के वार्तिक में यह कहा है कि – लक्षण का अभिधान (कथन) तो किस अंश (किस प्रकार) से उपयोगी होगा, अर्थात् किसी भी प्रकार से उपयोगी नहीं है । ।। ४३।।

यद्यपि भट्टपाद ने उक्त वार्ता अन्य अभिप्राय से कही है । (उनका अभिप्राय यह है कि– ''चोदनैव धर्मे प्रमाणम्'' ''चोदना धर्मे प्रमाणमेव'' (''धर्म में वेदवाक्य ही प्रमाण है'' धर्म में वेदवाक्य प्रमाण ही है'' इस प्रतिज्ञात अर्थ में अर्थात् धर्म के निश्चय में ''सत्सम्प्रयोगे इन्द्रियाणां बुद्धिजन्म'' (इन्द्रियों का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होने पर जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, अर्थात् इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है) इत्याकारक प्रत्यक्ष के लक्षण विशेष का कोई उपयोग नहीं है ।) किन्तु अन्य अभिप्राय से उक्त भी उनके उस कथन को सामान्यतः मानने पर भी उस कथन को सामान्यतः मानने पर भी वह (कथन) युक्तिसङ्गत ही है । तात्पर्य यह है कि – वह भट्टोक्ति – ''न केवल प्रत्यक्षलक्षणविशेष का अनुपयोग है

शारदा

''यज्जने सिद्ध'' मित्यनेन यौक्तिककटाक्षवीक्षणाक्षमत्वेऽपि कथञ्चिदनिर्वाच्यलौकिकव्यवहारसाधकत्वं सूचितम्, तच्च लक्षणसामान्ये निवेदितदिशा तुल्यमेव । एवमेव ''सम्यगर्थे च संशब्दो दुष्प्रयोगनिवारणः । प्रयोग इन्द्रियाणाञ्च व्यापारोऽर्थेषु कथ्यते ।। दुष्टत्वाच्छुक्तिकायोगो वार्यते रजते क्षणा''दिति ग्रन्थेन भासमानाकारेन्द्रियसम्प्रयोगेत्यादिमूले प्रत्यक्षखण्डनोपक्रमे प्राङ्निरस्तं लक्षणं सूत्रार्थतयाऽभिधाय ''एवं सत्यनुवादत्वं लक्षणस्यापि सम्भवे'' दित्यनेन सूत्रस्य लक्षणानुवादतां वदता सतां सूत्रकृतां तत्र तात्पर्यविषयताया विरह एव ध्वनितः, प्रामाणिके ह्यर्थे सत्फलप्रसूरसाविति साक्षात्कारित्वखण्डनम् ।।

शारदां शरणीकृत्य तीर्यते शारदार्णवः।
प्रसवित्री प्रपञ्चानां तेन तुष्यतु शारदा ।

इति श्रीशङ्करचैतन्यभारतीविरचितायां खण्डनशारदायां प्रथमपरिच्छेदे प्रत्यक्षखण्डनप्रकरणम् ।।

श्री शारदार्पणमस्तु ।

राजहंसः

सत्फलप्रसूरसाविति । अनया वाचोभङ्ग्या जगद्धत्र्यपि स्मृता मङ्गलायेति । **शारदार्णव इति**। सारस्वतार्णव इत्यर्थः । ग्रन्थपक्षेऽपि शारदाशब्दव्युत्पत्तिप्रभेदा उपक्रमे एवानुक्रान्ताः । तत्र मूलग्रन्थस्य तरणं तद्व्याख्यायां तस्यास्तु समाप्तौ पर्यवस्यति, तदनुकूलयत्नपरम्पराया अव्युपरमः पुनस्तिङन्तमहिम्ना प्रतीयते । तेनेत्यनेन पूर्ववाक्यार्थः परामृश्यते । **इति प्रत्यक्षखण्डनशारदायां राजहंसः ।**

भारती

अपितु लक्षण सामान्य का ही अनुपयोग है, और वह अनुपयोग (उपयोगाभाव) भी न केवल उक्तप्रतिज्ञात अर्थ अर्थात् धर्मनिश्चय में ही है, अपितु व्यावृत्ति व्यवहार रूप फल के न होने से सर्वथा ही अनुपयोग है ।'' इस प्रकार लक्षण सामान्य निराकरण परक होकर भी युक्तिसङ्गत ही है ।

इतिसाक्षात्कारित्व खण्डन
शारदां शरणीकृत्य तीर्यते शारदार्णवः
प्रसवित्री प्रपञ्चानां तेन तुष्यतु शारदा ।।